

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
International Relations
(1945-68)



By

DR M L SHARMA

M.A., D.Litt.,

Professor (Emeritus) and Head of the Deptt. of History and sometime
Vice-Chancellor University of Rajasthan.



कालेज बुक डिपो, जयपुर

प्रकाशक :
कामेश्वर शुक डिपो
जयपुर

प्रथम संस्करण १९६८

सर्वाधिकार प्रकाशकश्रीमती सुषमा

शुक्ल जीव रचना मात्र

मुद्रक :
कामेश्वर प्रेस
जयपुर

पाठकों से दो शब्द

राज के युग में केवल राजनीति के विद्यार्थी के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य व्यक्ति के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का उतना ही महत्व है जितना स्थानीय अथवा पारिवारिक घटनाओं का। राजनीति जीवन का सूत्र बन चुकी है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रभाव से कोई मुक्त नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में बटित होने वाली घटनाओं का प्रत्येक समाज और प्रत्येक राष्ट्र पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अतः उपयोपिता की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर किसी भी अल्पे ग्रन्थ का प्रणयन स्वतः ही आवश्यक एवं वांछनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक द्वितीय महायुद्ध के बाद से अब तक की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और क्रिया-कलापों का चित्र प्रस्तुत करने का एक प्रयास है। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के किसी भी चित्र में जिन बातों का समावेश करना चाहिए—जैसे, पुस्तक के सम्बन्ध के अनुरूप समाविष्ट करने की चेष्टा की गई है। चूंकि पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय अन्तर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक घटनाक्रमों, राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों आदि के व्यावहारिक रूप का विवर्तन करना है, अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पदा को प्रस्तुत नहीं किया गया है—आवश्यकतानुसार प्रासंगिक रूप में यथास्थान निवेदन कर देने का ध्यान बरकर रखा गया है।

यह प्रयास किया गया है कि बर्तमान पूर्ण स्पष्ट और आलोचनात्मक हो। विषय-सामग्री विविध और बहुमूल है। फिर भी यह पूरी चेष्टा की गई है कि पुस्तक पाठकों के लिए बोधिलस न बन कर रोचक बनी रहे। विषय पूरी तरह बोधमय रहे भाषा सुलभ न हो आवश्यक प्रयोग सूटे नहीं—इन बातों का विशेष ध्यान रखा गया है।

पुस्तक के प्रणयन में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर लिखे गये सभी प्रसिद्ध विद्वानों के ग्रन्थों से पुरा लाभ उठाया गया है। उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

पुस्तक के प्रणयन व प्रकाशन में जिन मित्रों ने सहयोग दिया है उनका मैं कृतज्ञ हूँ।

विषय-सूची

1. <u>युद्धोत्तर विश्व</u>	१
(The Post War World)	
द्वितीय युद्ध का विनाशकारी रूप	१
युद्धोत्तर विश्व अथवा 'नूतन युग के नूतन चितित्र'	७
यूरोपियन प्रभुत्व का अन्त	८
एशिया और अफ्रीका का आगमण	८
दो अस्तित्व युगों का उदय	११
राष्ट्रमण्डल का प्रसार	१२
मिडलानों का संघर्ष ..	१३
<u>शीतयुद्ध</u>	१६
प्रादेशिक संगठन ..	१७
<u>निःअस्त्रीकरण</u> ..	१८
मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व की विशिष्ट स्थिति	१९
विश्व सरकार अथवा एक विश्व का स्वप्न	२०
Exercises	२२
2. <u>युद्धोत्तर शांति-समाप्ति</u> ..	२५
(The Post War Peace Settlement)	
समस्या का स्वरूप : शांति-स्वागता की कठिनाइयाँ	२७
शांति सम्मेलनों के सम्बन्धन और सम्मिलन	३३
विदेश मंत्री-परिषद् की मंडल में बैठक	३३
मास्को की विदेश मंत्री परिषद्	३५
पेरिस का उपविदेश मंत्री सम्मेलन ..	३६
पेरिस का शांति सम्मेलन	३७
पाँच शांति संधियाँ	३८
इटली के साथ संधि	६८
रुमानिया के साथ संधि	४०
बल्गेरिया के साथ संधि	४०
हंगरी के साथ संधि	४१

द्वितीय के माघ मणि	४१
शान्ति संधि का उद्भव	४२
घातिया के माघ मणि	४४
मेची के माघ मणि शान्ति ..	४६
ताप के माघ मणि	४९
Exercises	५०
युन एम्स सघ का ढय-विधान (The United Nations Structure & Organisation)	५६
सुलु ढाण्डमंड के विधान का उद्भव ढीर विधान	६१
सुलु ढाण्डमंड का ढांटेर	६२
सुलु ढाण्डमंड के उद्भव ढीर सुलु ढाण्डमंड	६६
सुलु ढाण्डमंड के ढय	७१
सुलु ढाण्डमंड का ढांढा (ढय विधान) या ढण्डमंड ..	७२
सुलु ढाण्डमंड का ढांढा	७३
सुलु ढाण्डमंड	७७
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	७९
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	८४
सुलु ढाण्डमंड	८७
सुलु ढाण्डमंड	८८
सुलु ढाण्डमंड का ढांढा	८९
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९०
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९१
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९२
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९३
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९४
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९५
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९६
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९७
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९८
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	९९
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१००
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०१
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०२
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०३
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०४
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०५
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०६
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०७
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०८
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१०९
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११०
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१११
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११२
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११३
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११४
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११५
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११६
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११७
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११८
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	११९
सुलु ढाण्डमंड के ढांढा ढीर ढांढा	१२०

प्रन्तर्राष्ट्रीय दूर-संचार सङ्घ	7	
विश्व धातु विज्ञान सङ्घ	"	१६०
प्रन्तर्राष्ट्रीय धातु शक्ति एजेंसी	"	१६१
प्रन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम	"	१६२
Exercises	---	१६४
	---	१६४
	---	१६५

संयुक्त राष्ट्र सच—विश्व शान्ति में भूमिका (The U N O.—Its role in World Peace)		१७१
--	--	-----

रूस-ईरान विवाद	"	"	१७५
यूनायिड विवाद	"	"	१७५
बेल्जियम की समस्या	Graph	"	१७८

१. रोरिया का सङ्घट	Graph	"	१८०
सीरिया-लेबनान समस्या	Graph	"	१८४
फिलिस्तीन (Palestine) विभाजन की समस्या			१८२

इण्डोनेशिया विवाद			१८४
कारफू बँस विवाद	---		१८४
ट्रीस्ट (Trestle) का विभाजन			१८७

एग्जो-ईगनियम टेस विवाद	---		१८८
बर्मा में चीनी मेगाए	Graph		२००

संयुक्त राज्य धमकी का के हुआबाबों सम्बन्धी विवाद			२०२
○ इटली धमकी का में भारतीयों के साथ दुर्भावहार का प्रश्न			२०२

अरबी की समस्या	Graph		२०४
स्वेड नहर विवाद	Graph		२०७
हंगरी विवाद	---		२१७

अल्बेनिया विवाद	Graph		२४६
कांगो की समस्या	Graph		२४६
पश्चिमी इण्डियन की समस्या			२५२

यू-२ विमान घटना			२६५
भार० बी०-४७ विमान-काण्ड			२६८
स्पेन का प्रश्न	---		२७२

नामोस की समस्या	---		२७६
○ यमन की समस्या	---		२७८
○ क्यूबा का प्रश्न	Graph		२७६

○ साइप्रस की समस्या			२८१
	---		२८७

होमिनिजन तलाश का विवाद	..	२८३
परेव इतरायन संघर्ष <i>in India</i> —		२८७
मनु में भीम के प्रकाश की समस्या	...	२८७
संयुक्त राष्ट्र मनु अन्तर्राष्ट्रीयता की धारा	...	२८९
संयुक्त राष्ट्र संघ नियम सरकार की धारा एक करण	...	२९३
अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का धारण एक संश्लेषण	..	२९८
मनु द्वारा मानव परिभाषा की रक्षा	...	३००
संयुक्त राष्ट्र मनु एक सुस्पष्टन	...	३०१
Exercises	...	३०७
नि-सशस्त्रीकरण	..	३११
(Disarmament)		
अशस्त्रीकरण नि-सशस्त्रीकरण वातावरण	..	३११
संयुक्त राष्ट्र मनु के चार्टर में नि-सशस्त्रीकरण की व्यवस्था		३१४
घण्टागणित आयोग की स्थापना	...	३१५
परम्परागत हथियारों का आयोग	...	३१७
संयुक्त राष्ट्रसंघीय नि-सशस्त्रीकरण आयोग	...	३१७
संयुक्त राष्ट्र संघ संयुक्त आयोग	...	३२०
संयुक्त राष्ट्र संघ संयुक्त आयोग	...	३२१
नि-सशस्त्रीकरण आयोग का विस्तार	...	३२१
सुझावित योजना	...	३२२
रक्षा की योजना		३२३
आइएम द्वारा जारी कमी प्रस्तावों का जवाब	..	३२३
संयुक्त राष्ट्र संघ में सुझाव का प्रस्ताव	..	३२४
संयुक्त राष्ट्रों का नि-सशस्त्रीकरण सम्मेलन	..	३२५
नि-सशस्त्रीकरण पर अमेरिकन स्वर्गीय राष्ट्रपति कैनेडी का महत्वपूर्ण भाषण	..	३२६
घातु-सरीसृप प्रतिबंध सन्धि	...	३३७
नि-सशस्त्रीकरण की दिशा में १९६३ के उपरोक्त क्रिये बने प्रस्ताव	..	३४१
अप्रैल १९६७ का परमाणु धरम संधि आयोग		३४६
Exercises	...	३५०

१ प्रादेशिक संगठन और समझौते
(Regional Organization and Pacts)

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में प्रादेशिक प्रयोग

प्रमुख प्रादेशिक संगठन एवं समझौते

प्रयोजन राज्यों का संज्ञक

इंटरकॉ सन्धि

ब्रूटिस की सन्धि

← माटो—उत्तरी पटमांटिक सन्धि संज्ञक **NETO**

बंगलुरु की सन्धि

बार्सा पैक्ट या पूर्वी युरोपियन सन्धि संज्ञक

← पश्चिमी यूरोप का एकीकरण

← दक्षिण पूर्वी एशिया सन्धि संज्ञक

← पारब शीत

← बगदाद पैक्ट

केन्द्रीय सन्धि संज्ञक

अमेरिका की एशिया का संज्ञक

← एशिया विकास बैंक

प्रादेशिक संज्ञकों का सूचकांक

Exercises

राष्ट्रमण्डल और भारत

(The Commonwealth of Nations and India)

राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रमण्डल

राष्ट्रमण्डल का वर्तमान स्वरूप

राष्ट्रमण्डल का संज्ञक

राष्ट्रमण्डल के उद्देश्य

राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्य

राष्ट्रमण्डल की संस्थाएँ

क्रोम्वो योजना

भारत और राष्ट्रमण्डल

भारत सरकार का राष्ट्रमण्डल में प्रवेश का निर्णय

राष्ट्रमण्डल का भविष्य

Exercises

४११

४१३

४१८

४१९

४२१

४२२

४२३

४२४

४२५

४२६

४१४

४१५

शीतयुद्ध (Cold War)	४१७
शीतयुद्ध का जन्म	४१८
रूस एवं पश्चिमी दश	४४०
शीत युद्ध का प्रारम्भ और इतिहास	४४१
पश्चिम की 'पूर्व' के विस्तृत विभाजन	४४४
पूर्व की पश्चिम व विस्तृत विभाजन	४४६
१९४७ में वर्तमान समय तक शीत युद्ध पर एक दृष्टि	४४२
१९४७ से १९५३ तक का शीत युद्ध	४४२
१९५३ से १९५५ तक का शीत युद्ध	४४५
१९५५ से विभाजन १९६७ तक का शीत युद्ध	४६०
सैद्धांतिक संदर्भ बनाम प्रकृत राजनीति	४६९
Exercises	४७१
अमेरिका ब्रिटेन और फ्रांस की विदेश नीति ... (The Foreign Policies of U.S.A., U.K. & France)	४७१
अमेरिकन विदेश नीति के सिद्धान्त एवं तथ्य...	४७६
१९४१ से पूर्व तक की अमेरिकन विदेश नीति	४७५
अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति	४८५
मधु रात्रि का काल	४८२
नवीन विद्याभ्युदय का काल	४८३
कूनाम की समस्या	४८७
टर्फी की समस्या	४८७
ईरान की समस्या	४९०
दुर्जन सिद्धान्त	४९१
मार्शल योजना	४९९
भार-भूमी कार्यक्रम	५००
गाटा अमेरिका की रण-विधि	५०१
हुने सङ्घर्ष का काल	५०१
वैश्विक शक्ति के उपयोग एवं सीमाओं पर वेस्टर ब्लाक के विचार	५०२
वाशिंग्टन सहायता के उपयोग एवं सीमाओं पर ब्लाक के विचार	५०२
शीत युद्ध का काल	५०२

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम हावर सिद्धान्त	१०८
पाठ्यक्रम हावर सिद्धान्त का प्रयोग	१११
पाठ्यक्रम हावर सिद्धान्त का मूल्यांकन	११४
शिार सम्मेलन के उपशान्त	११६
सह प्रतिष्ठान का काल	११८
मानवीय अधिकारों के सम्बन्ध में केनेडी की विदेश नीति	१२१
संयुक्त राष्ट्रसंघ शान्ति एवं सद् व्यवहार का प्रति	
केनेडी की विदेश नीति	१२३
ब्रूबा का सफूट और समझौते का विदेश नीति	१२६
निष्पत्तीकरण के क्षेत्र में प्रगति	१३०
केनेडी की सीटिंग समझौते का प्रति नीति	१३२
घरिआका की वर्तमान विदेश नीति	१३६
जर्मनी और रूस के एकीकरण का प्रश्न	१४०
विश्वनाम के सम्बन्ध में जानमन प्रशासन की नीति	१४३
नरुनर राज्य अमेरिका का विदेश नीति का मूल्यांकन	१४७
ब्रिटेन की विदेश नीति	१४८
(The Foreign Policy of Britain)	
ब्रिटेन और पश्चिम	१५०
ब्रिटेन एवं विश्व के प्राय वेस	१५४
ब्रिटेन की विदेश नीति	१५५
(The Foreign Policy of France)	
Exercises	१६०
सोवियत संघ की विदेश नीति	१६३
(The Foreign Policy of U.S.S.R.)	
सोवियत विदेश नीति के आधार	१६५
सोवियत विदेश नीति के लक्ष्य	१६८
सहतावादी नीति का काल (१९४५-४९)	१७३
स्टालिन की विदेश नीति का मूल्यांकन	१८०
सोवियत प्रतिभोगिता का स्टालिनोत्तर काल (१९५६-६७)	१८८
सोवियत युग	१९३
सोवियत का पतन, उसकी नीति का मूल्यांकन	१०४
सोवियत के पतन के बाद सोवियत विदेश नीति	१०७
Exercises	११४

११	भारत की विदेश नीति (The Foreign Policy of India)	११०
	भारत में स्वतन्त्रता का सूत्रोप	१११
	स्वतन्त्रता में पूर्व तक की भारत के धर्मराष्ट्रीय व्यक्तिगत के विकास की कक्षा	११०
	वर्तमान भारत की विदेश नीति के प्रारम्भ	१११
	भारत की विदेश नीति के निर्धारण तत्त्व या मूल	१११
	भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ	१११
	स्वतन्त्रता की नीति	११२
	सोवियत के नीति	११२
	भारत के लो लेनी की नीति	११३
	भारत विरोधी शक्तियों के बीच सेतुत्व का कार्य करना	११३
	साम्राज्यवाद अतिविरोधवाद धारि का विरोध	११३
	राष्ट्रीय एवं वर्ग भेद की नीति का विरोध	११६
	सिद्ध राष्ट्र सङ्घ का सम्बन्ध	११६
	हि प्रतिष्ठित में विरोध	११७
	चामी के सिद्धांत	११८
	भारत की धर्मराष्ट्रीय राजनीति और संबन्ध राष्ट्रसङ्घ से	
	भारत का योगदान	११७
	भारत का सम्बन्ध	११८
	भारत द्वारा काश्मीर के प्रश्न पर अपने दख में प्रस्तुत किये ये तर्क	११९
	भारत-नाक सङ्घ १९६१	११९
	सम्बन्ध घोषणा	११९
	भारत चीन सीमा विवाद और भारतीय विदेश नीति	११९
	भारत विवाद का प्रारम्भ—१९६१ से ६९ तक काल	१२१
	भारत की सीमा में पुनर्पैठ	१२१
	नी धारमण और भारत में धर्मराष्ट्रीय स्थिति की विषय	१२८
	भारत के सङ्घ के समय विभिन्न राष्ट्रों का सम्बन्ध	१२९
	सम्बन्ध प्रस्ताव	१२९
	भारत और संबन्ध राष्ट्र सङ्घ	१२९
	भारत और सार्वभौम सङ्घ	१२९
	भारत की विदेश नीति का सूत्रोप	१२९
	संक्षेप	१२९

दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया (South and South East Asia)	..	---	७०१
✓ एशिया की वापसि	---	---	७०७
✓ एशिया में स्वातन्त्र्य आंदोलनों का गुणगान	..	---	७०७
✓ एशियाई स्थिति का विकास—बाहु म सम्मेलन	✓	---	७०९
बाहु म भाषना की मपाति	---	---	७०९
पाकिस्तान की विदेश नीति	---	---	७०७
पाकिस्तान की विदेश नीति का मुख्य तत्व	---	---	७०९
पाकिस्तान और उसका इस्लामवाद	---	..	७११
पाकिस्तान और राष्ट्रमण्डल	---	---	७१२
पाकिस्तान का पश्चिम से गठबन्धन और उमरी साम्यवाद विरोधी नीति	---	---	७१३
पाकिस्तान की चीन से भारत-विरोधी छोट-गोट	---	---	७१३
पाकिस्तान अफगानिस्तान सम्बन्ध	---	---	७०९
पूर्वी पाकिस्तान में स्वातन्त्रता के लिए सङ्घर्ष नेपाल	..	---	७०९
नेपाल की विदेश नीति और नेपाल भारत सम्बन्ध	---	---	७००
बीसका	---	---	७१४
बीसका की विदेश नीति और भारत से सम्बन्ध	---	---	७१६
दक्षिण-पूर्वी एशिया क्षेत्र और महत्ता	---	---	७२१
बर्मा	---	---	७२४
बर्मा चीन विवाद १९६७	---	---	७२६
बाइसेट	---	---	७३०
ब्रिटेन	---	---	७३४
कम्बोडिया	---	---	७३०
दियतनाम	---	---	७३६
दियेबा में बुद्ध विराम समिधि और दियतनाम का विभाजन	---	---	७४३
बुद्ध विराम की असफलता और दियतनाम सङ्घर्ष	---	---	७४४
मलेशिया	---	---	७४७
बृहत् मलेशिया योजना	---	---	७४६
✓ मलेशिया	---	---	७४२
फिलीपाइन्स	---	---	७७४
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में फिलीपाइन्स	---	---	७७५
Exercises	---	---	७७७

११ पूर्वी एशिया ---
(East Asia)

साम्यवादी चीन	---	---	---	---	---
चीन में साम्यवादी दलों का सम्मुख और उत्तर	---	---	---	---	२०१
साम्यवादी क्रांति का परिणाम	---	---	---	---	२०१
चीन में साम्यवाद के प्रकार के कारण	---	---	---	---	२०५
साम्यवादी चीन की वि. न. नीति के आधारभूत तत्त्व	---	---	---	---	२०८
चीन की विदेश नीति के स्थापन	---	---	---	---	२१२
साम्यवादी चीन की विदेश नीति	---	---	---	---	२१३
चीन की विदेश नीति की प्रथम अवस्था	---	---	---	---	२१५
चीन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध	---	---	---	---	२०५
साम्यवाद एवं समुक्त राष्ट्र सङ्घ में प्रवेश का प्रश्न	---	---	---	---	२०६
चीन द्वारा ए. ए. एस. राज्य समीक्षा के सम्बन्ध	---	---	---	---	२०६
चीन तथा भारत के सम्बन्ध	---	---	---	---	२१२
चीन तथा सोवियत सङ्घ एवं साम्यवादी गुप्त के सम्बन्ध	---	---	---	---	२१३
चीन एवं बाह्य मनोविद्या	---	---	---	---	२१६
चीन और तिब्बत	---	---	---	---	२२१
चीन की आर्थिक क्रांति	---	---	---	---	२२१
हायड्रास	---	---	---	---	२११
जापान	---	---	---	---	२१३
जापान पर विभिन्न राष्ट्रों का नियन्त्रण	---	---	---	---	२१८
जापान के पुनरुत्थान के प्रथम	---	---	---	---	२१६
जापान के साथ शान्ति सन्धि	---	---	---	---	२५०
जापान के साम्यवादी दलों के साथ सम्बन्ध	---	---	---	---	२५२
जापान का समीक्षा के साथ सम्बन्ध	---	---	---	---	२५३
Exercises	---	---	---	---	२५५
					२५१

१४ मध्य-पूर्व (पश्चिमी) एशिया ---
[Middle-East (West) Asia]


मध्यपूर्व का स्वरूप	---	---	---	---	---
मध्यपूर्व का महत्व और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के	---	---	---	---	२१३
भौतिक तत्व	---	---	---	---	---
संयुक्त अरब अमिरात (मिस्र)	---	---	---	---	२१६
					२१२

एम्बो-मिरी सङ्घर्ष राजतन्त्र का प्रन्ध व सीतिर शासन की स्थापना और स्वेज का राष्ट्रीयकरण	---	---	---	---	१९१
परब सङ्घ की स्थापना के धगरुन प्रपाम	---	---	---	---	१९१
परब जनत के बाहर क देसों के नाप मिग क सम्बन्ध	---	---	---	---	१९७
सीरिया	---	---	---	---	१९८
सीरिया और बरिबमी मत्तियां	---	---	---	---	१९९
सीरिया और माम्बारी बग	---	---	---	---	२००
सीरिया और इजरायल	---	---	---	---	२०१
दर्जी क शाब सीरिया के सम्बन्ध	---	---	---	---	२०२
परब देसों के साथ सीरिया के सम्बन्ध	---	---	---	---	२०२
बोर्डन	---	---	---	---	२०१
क्रिमस्लीन बिषाद और बोर्डन	---	---	---	---	२०४
बोर्डन तथा इजरायल	---	---	---	---	२०५
<u>सबनाम</u>	---	---	---	---	२८०
सङ्घरी परब	---	---	---	---	२८३
इजरायल	---	---	---	---	२८६
परब इजरायल सङ्घर्ष, जून १९६७	---	---	---	---	२९३
परब-इजरायल सङ्घर्ष और भारत	---	---	---	---	२९२
इजरायल एब पदिसमी मत्तियां	---	---	---	---	१०००
इजरायल एब साम्बारी बग	---	---	---	---	१००२
साइप्रस	---	---	---	---	१००३
ग्नी	---	---	---	---	१००८
ईराक	---	---	---	---	१०११
ईरान	---	---	---	---	१०१८
परब तथा दक्षिण परब सङ्घ	---	---	---	---	१०२४
मध्य-पूर्ब में महा मत्तियों का सङ्घर्ष	---	---	---	---	१०२८
Exercises	---	---	---	---	१०३१
५. अफ्रीका की जागृति	---	---	---	---	१०३३
(The Rise of Africa)					
<u>अफ्रीका का जागृति और बिभिन्न अन्धकार देसों का स्वतन्त्र</u>					
होना	---	---	---	---	१०३२
सीरिया	---	---	---	---	१०४०
ट्यूनीसिया	---	---	---	---	१०४१

मोरक्को	---	---	---	1041
इकोरिया	---	---	---	1042
नागो	---	---	---	1042
<u>माल्डीविया</u>	---	---	---	1043
<u>म्यांमार</u>	---	---	---	1043
मेक्सिको	---	---	---	1044
पापुआ	---	---	---	1044
<u>सूरीनाम</u>	---	---	---	1045
संयुक्त राज्यान्तिका का समुदाय	---	---	---	1045
संयुक्त राज्यान्तिका द्वारा स्वतन्त्रता वा एक सरकार को गठना	---	---	---	1046
संयुक्त राज्यान्तिका महाद्वीप की समस्याएँ	---	---	---	1046
संयुक्त राज्यान्तिका प्रशासन	---	---	---	1046
Exercises	---	---	---	1047
एशिया व अफ्रीका के देशों के सम्मेलन (Afro-Asian Nations Conferences)				1048
प्रथम एशियाई सम्मेलन 1955	..	---	---	1048
द्वितीय एशियाई सम्मेलन 1956	---	---	---	1049
तृतीय सम्मेलन 1957	---	---	---	1049
चतुर्थ सम्मेलन 1958	---	---	---	1049
पाँचवाँ सम्मेलन 1959	---	---	---	1050
छठवाँ सम्मेलन 1960	---	---	---	1050
सातवाँ सम्मेलन 1961	---	---	---	1051
आठवाँ सम्मेलन 1962	---	---	---	1051
नववाँ सम्मेलन, 1963	---	---	---	1052
Selected Readings	---	---	---	1052

युद्धोत्तर विश्व

(THE POST WAR WORLD)

द्वितीय महायुद्ध का विनाशकारी रूप 

युद्धोत्तर विश्व अथवा 'नूतन युग के नूतन चित्तिज' १

- (क) यूरोपियन प्रभुत्व का अन्त
- (ख) एशिया और अफ्रीका का आयरल
- (ग) दो शक्ति युक्तों का उदय ✓
- (घ) राष्ट्र अण्डल का प्रसार
- (ङ) सिद्धान्तों का संपर्क
- (च) शीत युद्ध
- (झ) प्रादेशिक संगठन
- (ञ) नि-राश्रीकरण
- (झ) मध्य पूर्व और सुदूर पूर्व की विविध स्थिति
- (झ) विश्व सरकार अथवा एक विश्व का स्वप्न

हमारा अराब घब भी यूरोपियन रंगमंच की सबसे अधिक महत्व
 देने की ओर है। अब ऐसी बात नहीं रही है वास्तव में
 अब प्रथम कोटि की घटनाएँ नहीं हैं । निस्तम्येह
 रंगमंच अब यूरोप से दूर पूर्वी एशिया की ओर प्रयाप्त
 महासागर में बहुत्र गया है। मेरा विश्वास है
 कि अगले २० वर्षों या इससे भी अधिक
 वर्षों तक प्रयाप्त महासागर की
 समस्याएँ विश्व-समस्याएँ
 होंगी।

—अनुराग इन्द्रस

वर्तमान
 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का
 पुनर्गठन हो रहा है जिसमें कि बहुते
 की राज व्यवस्था एवं राष्ट्रीय राज्य
 व्यवस्था धीरे-धीरे नवीन राजनीतिक रूपों में
 बदलती जा रही है। साम्राज्यों का बतल हो रहा है
 और उपनिवेश स्वतंत्रता प्राप्त करते जा रहे हैं। राष्ट्र
 राज्य एक बड़े संघ में विलीन होते जा रहे हैं।

—डी. बी. कालिजार्गी

घरने को धरराज्येय ममम्नौ जाने धर्मनौ धीर वापान की धारमधाती पराजय के साथ ही मगम्न १९४५ में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति हुई। सय मन ६ वर्ष तट लड़ा जत वापा यह युद्ध मानव-इतिहास का सर्वाधिक क्रूर मयानक और विनाशकारी युद्ध था जिनत सगमग सम्पूर्ण संसार के प्रत्येक राष्ट्र यहाँ तक कि प्रत्येक परिवार को किसी न किसी रूप म प्रभावित किया। यह युद्ध इतना व्यापक और प्रमायकारी था कि इसके धर्म के साथ ही विश्व इतिहास के एक धरराय धमबा युग का धर्म हो गया और 'नूतन युग क नूतन धिति' का उदय हुआ।

द्वितीय महायुद्ध का विनाशकारी रूप-द्वितीय महायुद्ध मानव इतिहास के किसी भी पूर्ववर्ती युद्ध का धवेसा धधिक मानिक और बज्ञानिक युद्ध था। यह युद्ध प्रधातत मर्तानों टीनों पनइन्धियों जहाजा हवाई-जहाजों और धमक धम्य विनाशकारी धर्मों की सहायता से लड़ा गया था। युद्ध के सलत सभी रनों ने धरने बज्ञानिक धनुसधानों का मयाधति सैनिक धावरयधताओं का पुति के लिए प्रयास किया था। नन्तत राष्ट्रों की सम्पूर्ण बज्ञानिक बुद्धि नये-नये धिध्वंतकारी धर्मों के निर्माण में ध्यय की गयी थी और युद्ध-सामपी के उत्पाधन में सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्रोतों को मगा दिया गया था। उदाहरण के लिए, समुक्त राज्य धर्मरिका में धकेसे धलु-धम के सलसलन पर दो क्रिमियन डामर (२० पररक डामर) प्रतिधय ध्यय किया जाता था। यहाँ १९४२ में इतिरिन एक जहाज और प्रति पांच मिनिट पर एक हवाई-जहाज का निर्माण हो रहा था।

महायुद्ध काम में ही धोनों पधों को धपार सति उठानी पड़ी थी। विनाश के सबसे धधिक धर्मकर रूप का दर्शन सोवियत रूस को करना पडा था। यह धनुमान मयाया गया है कि धकेसे स्टालिनघाट के युद्ध में जितने सोवियत नागरिक मृत्यु के धात बने वे जनकी संख्या सम्पूर्ण युद्ध में धारे गये धमरिधनों के धराधर थी। यूसु कि सोवियत संघ के युद्ध-कामीन पाश्चात्य मिधों ने १९४४ तक रूस के धार-धर कइत पर भी धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध कोई धुमरा मोर्चा नहीं सोला जत। नाभी धर्मनौ का प्रहार सबसे धधिक भास रसा को ही महता पडा। मधिरुत सरकारी धनुमान के धनुसार युद्ध के परि धामसधरय ७० लाख सोवियत नागरिक धारे गय १० हजार नगर ध्वंस हुए और १ करर २८ करोड़ डामर की सम्पति मष्ट हुई। ८ लाख धर्ममील से भी धधिक धु-सोन को नाबिधों ने बर्बाद कर दिया। सभी रीतों धैक्टरिया, विधत-स्टेधनों और रस-मार्गों का कल्पनाधीत रूप में संगठित विनाश किया गया। सयमय २६० लाख नापरिक दुहूहीन हो गये। इसके धतिरिक्त युद्ध के

व्यय का अनुमान २०,०००,००० डॉलर लगाया गया। घाँटिया की बसा भी बहुत बुरी बनी। उसकी सम्पूर्ण अव्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो गई क्योंकि उसे हिटलर ने जर्मन उद्योगों के लिए वायु आक्रमण से आश्रयस्वयम् (The Air Raid Shelter for German Industry) का रूप दे दिया। यूगोस्लाविया में हुए विनाश का अनुमान इन्हीं से लगाया जा सकता है कि युद्ध की समाप्ति पर वहाँ केवल एक रैमदे मान काम कर रही थी। हंगरी के ७० प्रतिशत जन-आरण्ये युद्ध-काल में नष्ट होगये। जेरमाके को सम्बन्धित साम्राज्य एवं औद्योगिक क्षति उठानी पड़ी। युद्ध काल में उसका आयात निर्यात व्यापार ६३ प्रतिशत से भी घटि कर गया। जर्मन आर्थिक के परिणामस्वरूप मार्च को २,०००,००० डॉलर की क्षति गहनो पड़ी। तटस्थ स्वीडन को भी युद्ध से पीड़ित जाना पड़ा। १९३९ से १९४५ की अवधि में लगभग १२०,००० फिनलैण्डियों घबवा फिनो (Finns) का घबने प्राणों का विसर्जन करला पड़ा। बेल्जियम के अनुमानत एक लाख व्यक्ति मारे गये और समक २५ प्रतिशत मकान विनष्ट बबबा क्षतिग्रस्त हा गये। यूनान, इटली और जर्मन फौजों के बीच में करीब करीब विस गया और उस मरुभूमि क्षति उठानी पड़ी। मलेप में द्वितीय महायुद्ध ने संपूर्ण संसार पर विनाश की कासिमा पोत दी। युद्ध समाप्त होने पर संसार के सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों के सम्पूर्ण मानव इतिहास के सम्भवत सर्वाधिक मरकर घाँटिक सामाजिक और राजनीतिक स्रष्ट विद्यमान थे। सर्वत्र अव्यवस्था का साभाव्य था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निराशा और साहमहीनता का बोत-जामा था लेकिन पुनर्निर्माण की चिन्ता सभी को सता रही थी।

यूरोप-विश्व घबवा 'नूतन युग के नूतन क्षितिज'

[The Post-War World]

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पुरी राष्ट्रों की पराजय और विघराष्ट्रों की विजय में हुई। मानव इतिहास के एक अध्याय की इतिथी हो गई और युग का समाप्ति हुआ। इस 'नूतन युग' में 'नूतन क्षितिज' समरे प्रमुख के लक्ष बबब गय नबीन प्रकृतियों और सिद्धांतों का प्राबुवाण हुआ और नवीन समस्यायें अन्तर्राष्ट्रीय जगत को सवाने लगीं। विश्व इतिहास में इस युद्धोत्तर युग ने विज्ञान की समुद्रपूबं प्रगति के ज्ञान विले और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की घनेक प्राचीन तथा अन्तररायत साम्यताओं को नष्ट कर दिया। इस युग में अनेक विरोधी प्रकृतियाँ एक साथ क्रियाशील हुई और विभिन्न 'बाद' विश्व को प्रभावित करने लगे। यूरोपियन राष्ट्रों में राष्ट्रवाद की दुबतताओं के प्रति लक्षेनता घाई हो एजिमा और अफीका के लक्षविन राष्ट्र राष्ट्रीय संघुता की बबिबता का प्रतिपादन करने लगा। ये प्रकृतियाँ मिटी नहीं प्रकृत पात्र भी जारी हैं और इवीलिए डी. क्रावसे (Desmond Crowley) के मध्यों में यह ठीक ही व्यक्त किया गया है कि 'बोतबो घातावरी के मध्य में विश्व घबने इतिहास के एक अमीते और विभू क्षिति युग में से गुजर रहा है।'^{*}

* D. Crowley The Background to Current Affairs, p 1

युद्धोत्तर युग में एक साथ दृढ़नी नवीनताओं और विक्षयताओं को जन्म दिया कि उनका पूरा निरूपण एक अटल विषय है। महायुद्ध ने किस तरह एक नवीन युग का सूत्रपात किया और किस नवीन परिवर्तनों को जन्म दिया—इन्हें मोटे तौर पर निम्नलिखित घुस-घुसक शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकट करना सुविधा व बोधमयता की दृष्टि से उपायनी होगा।

(१) यूरोपियन प्रभुत्व का अन्त—युद्धोत्तर युग की प्रथम महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है कि किसी यूरोपियन प्रभुत्व का अन्त। तृतीय महायुद्ध से पूर्व एक यूरोप विश्व-निहास का निर्वाण था। मई १४६२ में कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज के बाद १६३६ तक के युग को विश्व इतिहास का यूरोपियन-युग कहा जाता था। किन्तु द्वितीय महायुद्ध ने यूरोपियन राष्ट्रों के घातक एक राजनीतिक प्रभुत्व को अन्तहीन बना दिया। उनकी सामरिक शक्ति को गहरा क्षायात पहुंचाया। प्राचीन काल का "मन्तार की अनुमानित करने वाला यूरोप (World dominating Europe) महायुद्ध के बाद नवीन 'मनस्यो प्रथम यूरोप' (Problem Europe) बन गया। १९४५ में इनके राजनीतिक प्रभुत्व का न्यून घटनाक्रम को पहुंच चुका था और विश्व-नेतृत्व उसके हाथों से गिरकर चला था। जैसे ही यूरोपियन प्रभुत्व के पहले प्रभाव के मसख प्रथम महायुद्ध और उसके बाद के युग में ही दृष्टिगोचर होने लगे थे किन्तु द्वितीय महायुद्ध ने तो यूरोपियन प्रभुत्व का एक प्रकार से अन्तहीन ही निकाल दिया। महायुद्ध समाप्त होने तक जर्मनी बर्बाद हो चुका था। दृष्टी घपनी कर में लटक रहा था और ब्रिटेन तथा फ्रांस आदि की स्थिति तृतीय पंथी के राष्ट्रों जैसी हो चुकी थी। युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब सत्ता में हो ही महानतम शक्तियाँ रह गई हैं—सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका। ये दोनों ही हैं प्रथम पंथी के राष्ट्रों के रूप में उचित हुए और युद्धोत्तर विश्व शक्ति हैं इनके प्रभाव क्षेत्रों में बढ़ते लगे। विश्व का नेतृत्व यूरोप के हाथ से निकल कर इन दोनों राष्ट्रों के हाथों में आ गया। दोनों राष्ट्र साम्य-विप्लव की दो प्रथम विचारधाराओं के प्रतीक बन गये। सोवियत रूस साम्यवादी विचार की बर्बाद फहराने लगे तो संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियतवादी धारणाओं का संहारा बन गया।

'नूतन युग' के 'नूतन शक्ति' में उचित रूप और अमेरिका की दो शक्तियों ने तो यूरोप के हाथों से विश्व-नेतृत्व की कुर्ची छीन ही ली। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय जागरण ने भी यूरोपियन राष्ट्रों ने अक्षिप्त प्रभाव को सत्ता पैदा कर दिया। उन देशों में जो यूरोपियन प्रभुत्व के अन्त ही राष्ट्रीयता और गव-आन्दोलन की शक्तियाँ दृढ़नी प्रकट हो उठीं कि यूरोपियन राष्ट्रों के लिये बड़ी अपने साम्राज्यों का बनाये रखना एक अत्यन्त दुष्कर काम हो गया पराजित राष्ट्रों जर्मनी दृष्टी जापान आदि के साम्राज्य तो छिन ही गये परन्तु ब्रिटेन फ्रांस आदि विजेता राष्ट्र भी अपने साम्राज्यों की रक्षा नहीं कर सके। काल-बक में प्रभावित होकर लगे लगे ब्रिटेन फ्रांस हार्मिन्ड बेकिन्जम आदि के साम्राज्यों के अन्तहीन प्रवेश स्वतंत्र हो गये। यद्यपि पुर्तगाल और स्पेन आदि कुछ देश अफ्रीका के कुछ प्रदेशों में अभी तक बने हुए हैं परन्तु वह अल्प संदेहरहित है कि यूरोप का साम्राज्य-सूर्य अस्त हो चुका है।

(२) एशिया और अफ्रीका का आगमन—प्रथम एवं द्वितीय महायुद्धों में एशिया तथा अफ्रीका में युगांतरारी परिवर्तन बिये। इन युद्धों से पहले ये दोनों महाद्वीप विभिन्न यूरोपियन देशों के साम्राज्य के अंग थे। अफ्रीका का एक मात्र स्वतंत्र राज्य एबोसीनिया १९३५ में इटली के साम्राज्यवाद का शिकार बन गया था और एशिया के अधिकांश प्रदेश १९१४ तक ब्रिटिश कॉम्बेन शक्ति एवं अन्य साम्राज्यों के अंग बन चुके थे। इस समय तक यहाँ बेबस चीन जापान स्वयं अफगानिस्तान और टर्की ही स्वाधीन बने थे। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर सम्पूर्ण एशिया और अफ्रीका में स्वतंत्रता राष्ट्रीयता और आत्मशक्ति की गहरी महूर छापी और द्वितीय महायुद्ध के बाद इनमें प्रबल बढ़ावा देने में सिया। यह कहा जा सकता है कि १९१९ के बाद एशिया और अफ्रीका में यूरोपियन साम्राज्यवाद की पराजय धारण हुई और १९४५ के बाद इसका समूचीनूलन होना लगा।

वास्तव में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति और संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बाद का दशक एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीप के लिए नयी आशाएं एवं स्वतंत्रता भविष्य लेकर उद्विग्न हुआ। एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में राष्ट्रीय (अफ्रीका) में स्वतंत्रता के पट्टे पड़े और अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलनों के भीषण विस्फोट हुए। दोनों महाद्वीपों का नया विश्व धीरे धीरे अंतरराष्ट्रीय शक्ति पर उभरने लगा और इनमें पराधीन राष्ट्र स्वतंत्र होने लगे। जी सी स्मिथ (Gordon Connell Smith) के शब्दों में यह "यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य के लिए यूरोपियन राष्ट्रों के सम्बन्ध और अंतर-यूरोपियन राष्ट्रों के सम्बन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे।" यूरोप-पर काल में भारत, अफ्रीका, अमेरिका, चीन का आना इंडोनेशिया, इजिप्ट, कोरिया, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, मौरिशस, फिलिपाइन्स, सूडान, मीरमा, ट्यूनिशिया आदि देश स्वतंत्र हुए। १९६० में अफ्रीका के १६ देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की और इसीलिए १९६० को अफ्रीका का स्वाधीनता का वर्ष तक कहा जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि महायुद्ध के बाद के विश्व में एशिया और अफ्रीका की राजनीति के इतिहास में निर्णायक भूमिका होगी। पाल्मर और पार्किंस (Palmer and Perkins) के अनुसार "एशिया का विश्व २०वीं शताब्दी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास बिन्दु हो सकता है।"†

१९४५ के उपरान्त यूरोपियन साम्राज्यवाद अथवा औपनिवेशिक व्यवस्था की कितना प्रबल भाषातः पतन हुआ इसका अनुमान इसी तथ्य से सुगमता पूर्वक लगाया जा सकता है कि पहले जहाँ संसार की जनसंख्या का ३३% भाग इन उपनिवेशों में निवास करता था वहाँ आज इसकी संख्या घट कर १४ प्रतिशत रह गयी है। महायुद्ध से पूर्व अनेक ऐसे ही देश थे जो कहने पर के लिए स्वतंत्र के अर्थ में वास्तव में वे भी औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के पंथों में

*G C Smith Pattern of the Post War World, p. 9
 †Palmer and Perkins—International Relations, p 472.
 (Second Edition)

पकड़े हुए थे। ऐसे देशों में चीन और सिप के नाम उदाहरण के तौर पर लिये जा सकते हैं। बुन्दोरवास्त इन देशों में चीन केवल वास्तविक स्वतन्त्रता को प्राप्त किया अर्थात् आपुनिक विरा में वह स्वतन्त्र ही शामिल कर लिया कि मात्र के अन्तर्देशीय सम्बन्धों में उनकी पूर्णतया आत्मन्य बहाकगुण मानी जाती है। चैस्टर बाउलस (Chester Bowles) ने ठीक ही सिगा है कि 'सम्पूर्ण' महादीप पर हुई क्रांति क बुए और भागिन में उन दिनों का अर्थ हो गया है अर्थात् एशिया के बुनाय सौग जिनी पश्चिमी राष्ट्र द्वारा आकाज की हुई अनाय के अनुसार मात्र उठते थे।

एशिया और अफ्रीका के लोगों में युरोपियन आधिपत्य के विरुद्ध इतनी प्रबल गहर भावित उठी क्यों? वेरुमहोनबात (W Mac Mahon Ball) के अनुसार विद्रोह की यह गहर निम्नलिखित तीन प्रमुख शक्तियों के कारण उषयी—

- १ विदेशी राजनीतिक नियंत्रण एवं उपनिवेशवाद विरोधी प्रवृत्ति।
- २ अपनी दरिद्रता और अभाव की तीव्रतर अनुभूति करने वाले व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक विद्रोह की आकांक्षा।
- ३ एक आतीम (Racial) विद्रोह की भावना अथवा पूर्व का अशिम के विरुद्ध विद्रोह अर्थात् यह बुद्ध निरूपण कि एशिया के भाग्य का निर्णय एशियावासी ही करेयें युरोपियन नहीं और पूर्व के मदीन राष्ट्र स्वयं में भाग्य हवि आरथाय सार्यों के साधन नहीं।

सार रूप में यह कहना चाहिए कि एशिया और अफ्रीका की क्रांति न केवल विदेशी आकांक्षा के विरुद्ध की अर्थात् यह सामाजिक और आर्थिक अस्वीकृत के विरुद्ध भी एक विद्रोह की गुणक थी। इन महादीपों में मदीन अनाय के प्रादुर्भाव के कारण युरोपियन राष्ट्र इनमें फीने हुए अपने साम्राज्यों की रसा नहीं कर सके और जने जने स्वतंत्र होते अने गये। एशिया और अफ्रीका भाग के आगते हुए विद्रोह हैं जिन्होंने न केवल अराधीमता की गुल-लापो को छोड़ा है बल्कि जो इनसे भी अधिक प्रबल और अताधियों के अनी का उही निर्धनता अिरलायता सामाजिक एवं आतीम अेद भाव तथा महा-मारियों आदि की लौह-गुललापो से भी मुक्ति अने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो अैरुक ने १९५७ में प्रथम 'एशियाधी सम्बन्ध सम्मेलन' (Asian Relations Conference) में ही घोषणा कर ही थी कि—“एक पक्ष अर्थात् हो रहा है एशिया अपने स्वक्य को पुनः बहायन रहा है। हम अरिअर्तन के महायुग में

²⁴ "The days when a Western nation could call the tune and the Asian subject peoples would dance to it have ended in the smoke and fire of a revolution across the whole continent."

—Chester Bowles

रह रहे हैं और इसमें नबपुत्र तब घायग जब एशिया धन्य महाद्वीपों के साथ धपना उचित स्थान पहुँच करेगा । विश्व-इतिहास के इस संकट में एशिया धन्य महाद्वीपों भूमिका धरा करेगा ।”

एशिया और अफ्रीका के नबोदित राष्ट्रों की संघीरतम समस्याएं गरीबी और धार्मिक विधमता की हैं । इस धीर चीन में साम्यवाद के धनतर्गत जो तीव्र धार्मिक प्रगति की है उसने उन्हें बहुत धार्मिक प्रजाधिन किया है । मुठोतर धन्य में अन्बानिया बल्गेरिया, बेरोम्माबाकिया पूर्वी जर्मनी स्टीनिया इमरी, लेटविया लिथुआनिया पोर्लैण्ड र्मानिया, बाह्य मंगानिया उत्तरी कोरिया चीन धार्मिक देश प्रत्यय या धनतत्परा रूप में साम्यवादी प्रभाव में धने धये हैं । विख्यात इतिहासज्ञ धनरिच टॉयनबी (Toynbee) ने यह नबिध्यावाची की है * कि धार्मिक इम (पश्चिमी देश) साम्यवाद की बुनीगी को धार्मिक महत्त्व दे रहे हैं किन्तु जब भारत और चीन की धार्मिक शक्ति शाली सन्धराएँ पश्चिमी जगत की बुनीगी का उत्तर देने सगेगी तो साम्यवाद का महत्त्व धत धायमा और धनततोर्गत्वा में सन्धराएँ हमारे पाठ्यालय जीवन पर उससे कहीं धार्मिक गहरा प्रभाव डालगी जितना प्रभाव इस धपने धाम्नाम्य द्वारा हमारी सन्धरा पर डाल सकते हैं ।”

बन्धुस्विति यही है कि एशिया और अफ्रीका के “नूतन इतिज” (नबोदित राष्ट्र) न तो पाठ्यालय शक्तियों के धमान साम्यवादी देशों को धपना धनबा धनतर्कीय शक्ति का शत्रु मानने को उद्यत हैं और न पाठ्यालय धाम्नाम्यवादी शक्ति में धंभना चाहते हैं । दखिता और धार्मिक विधमता का धनत उनक लिए साम्यवाद धपना सोकृतनबाध से कहीं धार्मिक महत्त्वपूर्ण नश्य है ।

‘३) जो शक्ति मुठों का धन्य—द्वितीय महायुध का तृतीय महत्त्व पूरा परिधाम यह निकला कि प्राधीन शक्ति संतुलन का पूरी तर्ह बिनाश हा गया । युध के उपरान्त जो प्रमुख कासिस्ट शक्तियों जर्मनी और इटली का पूर्ण धरामन हो चुका था और फ्रान्स के बिनाश को देखने के लिए किसी धंभ की धाधनयकता न थी । ब्रिटेन राजनीतिक, धार्मिक और सामरिक दृष्टि ध पहने की धपेया बहुत धार्मिक सीध हो चुका था । युरोपीय महाद्वीप पर यदि कोई देश युधकालीन महान् शक्तियों के बाधपूर भी धधितशाली होकर निरन्धरा था तो बहु सोधियत संघ था । महायुध ने २॥ करोड़ शक्तियों को धाधामहीन बना दिया था भासों र्म्मी सैनिकों और नागरिकों के प्राण से लिए थे और इस के ८ लाख धंभ मील से भी धार्मिक प्रयेध को सन्धीधुत कर दिया था । परन्तु इस के ध धारे धनियान और संकट उसके लिए धधम बेधधारी बन्धान सिध हुआ । उसको बिनाश प्रयेधों की उपनब्धि हुई और धनक पड़ीनी देशों पर उसकी धार्मिक नीधियों का प्रभाव पड़ा । युध काल में तो उसने धपनी सीधार्धों का शक्ति में बिस्तार कर ही लिया धब उसके सीधार्धों में ये सन्धीधुत प्रयेध शानिध हो गये जो किसी धमम धारकालीन इस में हुमा करते थे । धाम्नाम्य धंभ धं ही नहीं धधियु बिधियों में भी इस

हुए स्टालिन के अपनी अंतिम पुस्तक 'सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्या' (Economic Problem of Socialism in the U S S R) में लिखे गए थे कि 'द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप संसार के पूंजीवादी बाजार की सीमाएं संकुचित हुई हैं जिसके फलस्वरूप संसार की पूंजीवादी व्यवस्था के सामान्य संकट में वृद्धि हुई है। पूंजीवादी बाजार के इसी विघटन ने औपनिवेशिक संकट का धोरण गहरा बनाया है और फलतः सावियत संघ और पश्चिमी देशों के बीच की याई दिन पर दिन गहरी होती जा रही है।

(४) राष्ट्रमण्डल का प्रसार—१९४५ के उपरांत एक पन्ध्रवर्षीय महत्वपूर्ण बात यह हुई कि भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहे अर्थात् ऐसे लोग जो ब्रिटिश प्रभुता यूरोपीय एक-सम्राज्य के नहीं थे वे भी उसमें सम्मिलित हो गये। धीरे धीरे यूरोपीय एशियायी अफ्रीकी आदि अनेक जातियों के लोग राष्ट्रमण्डल के सदस्य बन गये और आज इसका रूप बहु-जातीय (Multi racial) संस्था का है। राष्ट्रमण्डल के सभी सदस्य देश इसमंडल के राज (Crown) को अपने-अपने राज का प्रतिकारमक प्रभुता (Symbolic Head of State) मानते हैं, चाहे वे डोमिनियन हों या गणतंत्र हों।

(५) सिद्धान्तों का संघर्ष—प्रथम महायुद्ध से पूर्व तक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में राष्ट्रीयता का सिद्धान्त प्रभावी था। युद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय विश्व में अन्य अनेक सिद्धान्तों तथा आंदोलनों का प्रवेश हुआ। पश्चिमी देशों ने प्रजातंत्र की रक्षा के सिद्धान्त के नाम पर युद्ध मद्दा, अमेरिकन राष्ट्रपति विल्सन ने जाति के विख्यात चौदह मुद्दों को प्रतिपादित करते हुए आत्मनिर्णय के सिद्धान्त की वकालत की और १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में विधि के शासन (Rule of Law) के प्रतिष्ठापन के लिए और अन्तर्राष्ट्रीय जाति व मुद्दा बनाये रखने के लिये राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। द्वितीय महायुद्ध के बाद सिद्धान्तों और आंदोलनों पर विजय प्राप्त हो गयी थी। वास्तव में द्वितीय महायुद्धोत्तर विश्व में सिद्धान्तों व आंदोलनों पर बल देने की प्रवृत्ति अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में एक प्रमुख विशेषता बन गयी। विभिन्न सिद्धान्तों आंदोलनों अथवा विचारधाराओं ने निर उठाया जिसमें से कुछ में साम्य था तो अधिकांश में परस्पर विरोध। वे विभिन्न विचारधाराएं पनपती रही अपनी आकांक्षों प्रशासकों का विस्तार करती रही और आज भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को व्यापक रूप में प्रभावित करती हैं। १९४५ के उपरांत जिन सिद्धान्तों या आंदोलनों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष पर अपना जोड़ दिया है व संघर्ष में प्रमुखतः निम्नलिखित हैं—

- (क) अमेरिकन उदारवाद (American Liberalism)
- (ख) साम्यवाद (Communism)
- (ग) अक्षतमतावाद (Non-alignment)
- (घ) राष्ट्रवाद (Nationalism)
- (ङ) अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और मानवतावाद (Internationalism and Humanism)

(५) अमेरिकन उदारवाद—द्वितीय महायुद्ध के उपरांत अमेरिका विश्व के अनाद्यतन और समृद्धतम राष्ट्र के रूप में प्रकट हुआ। विभिन्न और बिना कोशों ही राष्ट्रों में एतन्मोक्ष अमेरिका ही ऐसा राष्ट्र था जिस पर महायुद्ध के बिनाम भी कमी छाया नहीं के बताकर पड़ी। अमेरिका ने देखा कि सम्पूर्ण युगत और विश्व के अत्याम्य देश अपनी धार्मिक बन्ध में बुरी तरह छटपटा रहे हैं और परि धार्मिक पुनर्निर्माण के लिए कुछ महानग म रिया गया तो उन्ही बन्धो-मुन्धो धार्मिक समता भी बुरी तरह मल्ट हा जायगी। अमेरिका के इस उदारत्व की चिन्ता के मूल में यह विचार भी निहित था कि धार्मिक दृष्टि से उन्नत यूरोप एक विश्व में अन्य देश ही अविद्य में अमेरिका की धार्मिक समृद्धि का कारण और अमेरिकन मान के साहस बन मन्टे है। यही सब कुछ मोक्षकर अमेरिका ने युद्धोपरांत एक उदारवादी नीति धरनायी। एक तरफ तो उन्ने धार्मिक दृष्टि से अत्य-अत्य युरोपियन देशों को धार्मिक महायता देना प्रारम्भ किया और दूसरी तरफ पिछड़ हुए ऐजिवादा राष्ट्रों का भी उनके निर्माण के कार्यों में महायता देन की नीति धरनायी।

(६) साम्यवाद—कार्म मावस के सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप साम्यवाद मन् १९१७ की बोलशेविक क्रांति के बाद सोवियत र्ग में प्रकट हुयी। हा महायुद्धों के बीच ही अन्ध में तो सोवियत मन् अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने प्रभाव की बुन न मचा ला। किन्तु द्वितीय महायुद्ध के दौरान और उसके पश्चात् बहु समार की एक महानतम शक्ति के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति पर उभरा। यह सोवियत र्ग साम्यवाद का केन्द्र बन गया और उताका एक मान लव्य विश्व में साम्यवाद का प्रसार करना हो गया। अमिकों और कपकों के समर्थन तथा यूजीपानियों के तोपरण के विरोध के अपने अक-पक विचारों से साम्यवाद ने विश्व के सामान्य जन का ध्यान अपनी ओर खीचा। विश्व के पराधीन राष्ट्रों को साम्यवाद ने स्वाधीनता का प्रास्तावक दिया उनमें गांधी-ज्यवाद और उपनिवेश के विरुद्ध कड़वा प्रचार करके राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया। साम्यवाद ने मनुष्य को रोटी कपड़े धारि की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने की चारुटी देकर तथा बहु संकरक निर्बल परिवारों को सम्पन्न व कुलहाल बनाने का वायवा कर एजिया और अफ्रीका के देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत जाने में सफलता पजित की। अनेक देशों में साम्यवादा बला द्वारा क्रांति प्रपवा नूह युद्ध के नाशम से सला को हुधिया लिया गया। इस प्रक्रिया में मास्को द्वारा प्रेरणा निर्बलन सहयोग एक माण-दर्शन दिया गया। आज भी साम्यवाद अपने प्रभुत्व के प्रसार में प्रत्येक सम्भव साधन प्रयुक्त करती है नहीं शुकता। इसका अ्येय पूर्वीवादा का अन्त कर अमिकों के अधिनामकत्व की स्थापना करना है। साम्यवादियों का यह विरवास है कि अमेरिका के कृतत्व में पाल्पात्य देश यूजीपानियों की ईष्ट शक्ति में रत हैं।

साम्यवाद के विकास की विश्व राजनीति पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। अमेरिका एक यूरोप के पूर्वीवादी देशों ने साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को अपने अस्तित्व के निचे अतरा समझा। कतत उन्हीं इस विचारवादा का

डटकर विरोध करने को कम्बु कसती। इस क्रिया प्रतिक्रिया का ही यह परिणाम है कि आज सम्पूर्ण विश्व साम्यवाद और पूँजीवादी को धर्मार्थ में विभाजित है और दोनों ही खेमे प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार से एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने को प्रयत्नाधीन है।

(ग) असंलग्नतावाद—द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त १९४७ में स्वतन्त्र भारत के साथ के साथ ही असंलग्नतावाद (Non-alignment) की प्रभावशाली विचारधारा प्रादुर्भूत हुई। भारत की इस विचारधारा का एशिया और अफ्रीका के अधिकांश तन्त्राधिक राष्ट्रों ने अपना समर्थन प्रदान किया। यह विचारधारा इस बात को मानने के लिए प्रस्तुत मही है कि साम्यवाद और अमेरिकन प्रजातांत्रिक उदारवाद ही विश्व के मानने सम्भावित मार्ग हैं। भारत ने प्रभावपूर्ण शब्दों में बसपूषक यह धारणा प्रस्तुत की कि भावी बिनाश की स्थिति को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि दोनों पक्षों के बीच के मतभेदों को दूर किया जाय और उनके मध्य सहयोग तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जाय। सोवियत संघ में स्टाँलिन तथा अमेरिकन में एडवार्डो की समाप्ति कर दिया गया अतः वर्तमान का दृष्टिकोण अपने विरोधी वर्गों और तटस्थ देशों के प्रति बहुत कुछ उदारतापूर्ण बन गया। पहले तटस्थता असंलग्न देशों को पूँजीवाद का पिट्टू समझा जाता था, किन्तु एडवार्डो युग में सोवियत सरकार ने असंलग्नतावादी देश भारत की ईमानदारीपूर्ण अश्रित तटस्थता का प्रादर किया और यह भारत को अपना मित्र समझने लगी। भारत विश्व में असंलग्न या तटस्थ देशों (Non-aligned Count rous) का नेता बना और उसने कुछ शब्दों में यह विश्वास व्यक्त किया कि रूस या अमेरिका दोनों में से किसी के भी अस्तित्व गुट का अस्तित्व बने बिना स्वयं अपना मार्ग खोजने और आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति करने में ही प्रत्येक राष्ट्र का कल्याण है।

(घ) राष्ट्रवाद—१९४३ के उपरान्त एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवाद की प्रबल महार हिमोर् मारने लगी। जहाँ १९१९ के बाद इन महाद्वीपों में साम्राज्यवाद की पराजय आरम्भ हुई वहाँ १९४३ के बाद इसका लम्बो अभ्युत्थान हुआ गया। यूरोप के पराजय पर राष्ट्रवाद का महान उद्वेग हुआ गया और राष्ट्रवाद की यह भावना आज के विश्व की सबसे बड़ी विशेषता बन चुका है।

राष्ट्रवाद का विकास प्रायः वहाँ पर होता है जहाँ इसे बचाया जाता है। अभी तुमना मानव आत्मा से की जा सकती है। मानव आत्मा की भाँति राष्ट्र भी एक राष्ट्र का चेतना प्रदान करता है उसे विकास के लिये प्राये बड़ा है उद्वेग की प्रेरणा देता है और एक देश के स्वयं के व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहायक बनता है। राष्ट्रवाद किसी भी देश की स्वतन्त्रता की भाँति ही काम देता है क्योंकि इसके अन्तर्गत के नीचे एकत्रित होकर राष्ट्र की बनता अपनी स्वतन्त्रता के अक्षर—कर्तों का विरोध करने लग है। द्वितीय महायुद्ध के बाद इसी अक्षर ही राष्ट्रवाद की भावना में एशिया और अफ्रीका के युवा राष्ट्रों में स्वाधीनता की अक्षर लालसा उत्पन्न कर और वे अपनी अक्षर के अनुसार अपना शासन और विकास करने को

कटिबद्ध लोगमें। शनै-शनै एक-एक बरस अधिकात् पराधीन एशियायी और पचीसी देशों में अपनी पराधीनता की बहिर्जात बाट डाली और घाय भी वे विश्व के लोगों मस्तिष्काली बुद्धों और विचारक-लोगों को अमेरिजन घुट की बहि-विधिया के प्रति समर्पित करते हैं ताकि वे पुन विश्वी नवीन साम्राज्यवाद के अगुन में न पड़ जाय।

(४) अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और मानवतावाद—द्वितीय महायुद्ध का एक सुदूरस्थान यह निश्चय है। ध्वारराष्ट्रीयतावाद की विचारधारा की लोक-प्रियता प्राप्त होने लगी। मात्र एक तरह की युगाधिकत देग मध्युद्ध को समझानीय विचार मात्र पर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की ओर उन्मुख हो रहे हैं और दुगरी तरह एशिया एवं अरब-देशों के नव-सम्बन्धना प्राप्त राष्ट्र संघुक्त राष्ट्र मध्य अंगी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाया वा साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद विरोधी शक्ति के रूप में पस्त-बोबल कर रहे हैं।

युगागत विश्व में एक अन्व विचारधारा 'मानवतावाद' प्रभावकारा रूप में सामन आयी। महायुद्ध के पहले और महायुद्ध की अवधि में अन्व-संरचना के अधिकांशों की मूलमतापूर्वक कृषना गया वा। अत युद्ध के बाद एक ऐसी व्यवस्था के प्रतिफल की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो अन्वसंरचना की समस्या का सफलतापूर्वक समाधान कर सके। परिणामस्वरुप संघुक्तराष्ट्र संघ ने मानवीय अधिकारों का एक घोषणा-पत्र (Declaration of Human Rights) प्रस्तुत किया। इन तरह युद्धोत्तर विश्व में मानव-अधिकार की पवित्रता वा स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया।

(५) शीतयुद्ध—यैना कि कहा वा चुका है द्वितीय महायुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय अवल प अत और अमेरिका इन दोनों महाशक्तियों का उदय हुआ। बुटी राष्ट्रों पर, विशेषकर नाजी जर्मनी पर विजय प्राप्त करने की समान स्वार्थ भावना के कारण युद्ध काल में अत तथा अमेरिका एवं पाश्चात्य शक्तियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे थे किन्तु स्वार्थ पर आधारित मैत्री कब तक टिकी रह सकती थी? युद्ध के बाद दोनों महा शक्तियों के मतेभेद अत रूप में उठ पड़े हुए। साम्यवादी देशों का केन्द्र अत बन गया और साम्यवाद विरोधी देशों का नेतृत्व संघुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा किया जाने लगा। दोनों महाशक्तियों के अन्व में एक नवीन प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की जन्म दिया जो 'शीत-युद्ध' (Cold-war) के नाम से विख्यात है। इस प्रकार के सम्बन्ध में विरोधी राष्ट्रों में गुटनीतिक सम्बन्ध बने रहते हैं और स्पष्ट समुदा नहीं होती लेकिन फिर भी अतका पारस्परिक व्यवहार समुदा रहता है। मात्र अत और अमेरिका तथा उनके अपने-अपने पिछलभू राष्ट्रों के मध्य इसी शीत-युद्ध की स्थिति है। अत्येक गुट का जीवन के प्रति अन्व अन्विकोण अन्व है। अने समान अन्व अन्व, अन्व अन्विके बारे में दोनों ही बुद्धों के विचार परस्पर युद्धोत्ता विरोधी हैं। एक अपनी विचारधारा का प्रसार चाहता है जब कि दूसरा इस प्रसार को अपनी पूरी शक्ति से रोकने के लिए कटिबद्ध है। दोनों गुट एक-दूसरे पर बुटी तरह विषममन करते हैं। एक कहा है कि युद्धोत्ता की शीत मजदूरों और मरीची के शोचल पर आधुनिक

है यह धर्म्याय गैर-अस्वाचार से जन्म लेता है और दासता तथा गरीबी में प्रतिष्ठित होता है। अतः इसका समुद्र नाश किया जाना चाहिये। दूसरा गुट प्रतिस्पर्धास्वरूप अपने विरोधी को दमन हिंसा और घातक पर आधारित बताते हुए धारण लगाता है कि इसमें मानव स्वतन्त्रता का कोई स्थान नहीं है, मनुष्य की आत्मा में स्वतन्त्र विकास की इसमें कोई प्राणा नहीं है यह फासीवादी प्रकृतियों का मूलरूप है और हिंसावादी तानाशाही का पुनर्जन्म।

दोनों गुटों के इस प्रकार के विरामी विचार भूतवास के अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और सम्मेलनों में प्रकट किये जाते रहे हैं और वर्तमान में प्रकट किये जा रहे हैं। परस्पर बिना सशस्त्र संघर्ष किये अपनी कट-नीतिक चारों ओर शरारत भरी पैतरेबाजियों के बम पर दोनों गुट अपने-अपने प्रमाण शोधों के विस्तार में ससज्ज हैं और दुर्भाग्य की बात यह है कि वो सिंह की इस सड़ाई में छोटे-छोटे सियार (नष्ट राष्ट्र) मारे जा रहे हैं।

(७) प्रादेशिक संघटन—पुढोत्तर विश्व में साम्यवाद ने प्रबलता ग्रहण की और शीत-युद्ध में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में संदेह धारणका और लगाव का बाता परम दिया किया। इन स्थितियों में युद्ध के बाद कोई संतोषजनक शान्ति समझौता (Peace Settlement) नहीं हो सका। दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र सब भी स्पष्ट अन्तर्राष्ट्रीय-शान्ति के प्राप्ति के अपने सक्षम में सक्षम नहीं हो पाया क्योंकि इस ओर अमेरिका के दोनों ही शक्ति-गुटों ने इसे शीत-युद्ध के प्रकार का एक साधन बना लिया। पश्चिम यह हुआ कि दोनों ही शक्ति केन्द्र अपनी माथी सुरक्षा के लिये प्रादेशिक संघटनों और संघियों के निर्माण की ओर अग्रसर हुए। साम्यवाद का प्रसार एशिया अफ्रीका तथा मेटिन अमेरिका में स्थापित पृथिव्यादी राष्ट्रों के साम्राज्य और उपनिवेशों में पुनः का काम कर रहा था। अतः जहाँ जहाँ भी साम्राज्यवादी शक्तियों का चुनौती मिली वही पृथिव्यादी अजातघनों ने इस चुनौती का डट कर मुकाबला करने की कोशिश की। फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर अनेक ऐसी संघिया एवं संघटनों का विकास होने लगा जिनका मुख्य सक्षम अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देकर साम्यवाद के प्रसार को रोकना था। स्वाभाविक था कि साम्यवादी इस तथा उसके साथी राष्ट्रों में भी पारम्पर्य शक्तियों के इन प्रमासों की प्रतिस्पर्धा हुई। इस तरह की जिया-प्रतिस्पर्धा का परिणाम यह निकला कि जहाँ एक ओर अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियों ने साम्यवादी राष्ट्रों के चारों ओर सुरक्षा-संघटनों का एक बरा सा बाल कर साम्यवाद पर अग्रहण लगाने की चेष्टा की वहाँ दूसरी ओर इस में अपने ओर पश्चिमी राष्ट्रों के बीच के देशों में साम्यवादी जासनों की स्थापना और संघटन करके अपनी सुरक्षा व्यवस्था को अधिकधिक सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। पश्चिमी पृथिव्यादी राष्ट्रों के सुरक्षा संगठनों में अस्मैकनीय हैं— उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन [NATO] एशिया-पृथ्वी एशिया संधि संगठन [SEATO] अमेरिका के अति। साम्यवादी सुरक्षा संगठनों में सब से अधिक प्रमुख आरामा देवत है।

गढ़ रहा जाता है कि सामान्यतः मूल्य राज्य अमेरिका की कोई भी नीय महत्वकांक्षा नहीं है और न ही उसका यह मकसद है कि नारा सभार टीक उभा प्रकार रहे और सोचि विचि प्रकार कि उनके वाकन का तरीका है। उसका प्रमुख मकसद तो यह है कि वह स्वयं की रक्षा करना चाहता है और साथ ही उन देशों की रक्षा करने को बटिबद्ध है या साम्यवादी सत्ताओं को नष्ट करे। श्लेचर (Schleicher) का कहना है कि अमेरिका के कुछ लोग का मकसद कुछ स्वयं निश्चित मकसद का प्राप्ति करना नहीं है बल्कि यह ना उन साम्यवादी चुनौती के लिये लीपा उत्तर है जिसे वह एक चुनौती मानता है।⁴⁰⁰

यह उत्सवानीय है कि गुरखा व गठनों के प्रतिरिक्त कुछ उच्च-मधीय प्रादेशिक मकसदों का भी विकास हो रहा है। ये उच्च-मधीय विश्व के बहते हुए एकीकरण के परिणामक हैं। इनमें सर्वाधिक उत्प्रेरणीय युरोपियन साम्य बाजार (European Common Market or European Economic Community) है जिसके द्वारा परिवर्षी युरोप के छ. देशों-फ्रान्स, जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैंड्स और लक्जमबर्ग ने अपने को प्राथिक दृष्टि से एक बड़ी संज्ञा तक एक इकाई बना लिया है। अमेरिका के सीमाह राज्य इन प्राथिक सहभाग के साथी सदस्य (Associate Members) हैं। इस बाण की काफी सम्भावना है कि निकट भविष्य में ब्रिटेन भी साम्य बाजार में सम्मिलित हो जायगा। मूल्य राज्य अमेरिका के मूल्युर्बं विदेश मंत्री किश्चिन हर्टर के कथनों में युरोपियन साम्य बाजार वह 'केन्द्र' [Nucleus] है जिससे युरोप के लिए एक मधीय सरकार का विकास हो सकता है।⁴⁰¹ बिस्व के मध्य प्रायों में भी इसी प्रकार के एकीकरण कीवोलन चल रहे हैं जिनमें प्राथिक अमेरिकन कीवोलन [Pan-American Movement], आफिस-आफ्रीकन कीवोलन [Pan-African Movement] प्रादि प्रमुख हैं। अरबबीण अमेरिका से अ प्राथिक के नाम भी इस सभर्ष में उत्प्रेरणीय है।

(८) वि सत्सीकरण—द्वितीय महायुद्ध के पहले भी निःसत्सीकरण के प्रयास होते रहते थे किन्तु १९४२ के उपरान्त तो इस समस्या का महत्व बहुत प्राथिक बढ़ गया क्योंकि मल्ल-यम के प्राथिकार में मानक-विनाश की कई संघाओं पैदा कर थीं। द्वितीय महायुद्धोत्तर अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय अणु में सत्सी को सीमित करने का प्रथम विचारकों के मधीय मानसिक व्यापार का प्रतीक बना हुआ है। इस प्रश्न के समाधान के लिए सरकारी और मीर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर प्रयास किये जाते लगे हैं। प्रमुखतम समस्या यही है कि यदि सत्सी को सीमित किया जाए तो कितना किया जाए तथा एक देश द्वारा सत्सी नई सीमाओं का निरीक्षण किस प्रकार किया जाए। सोचि यत् कर और अमेरिका के मध्य निःसत्सीकरण के प्रयासों के सम्बन्ध में

⁴⁰⁰ American strategy is often a direct response to what it considers the communist threat rather than the pursuit of an independent set of goals."

गम्भीर मतभेद है। एक पूर्ण निःशस्त्रीकरण चाहता है दूसरा घातित्व का पक्षपाती है। एक निःशस्त्रीकरण करन से पूर्व ही निरीक्षणों की नियमित करना चाहता है दूसरा निःशस्त्रीकरण के बाद ही निरीक्षण की व्यवस्था करना नहीं मान कर पसन्ता है। ध्वनिक बिम्ब में चीन एक नई शक्ति के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय धिक्किज पर अक्षत रहित हुआ है। युद्ध की उद्दाम भावना घोर द्विदशकवासी मनाहुति की माकार प्रतिमा चीन निःशस्त्रीकरण को टालन लगाते हुए हथियारों का सभ्राट बमन का महत्त्वकांक्षी है। इन सभी मतभेदों के कारण निःशस्त्रीकरण की दिशा में किये गए अधिकांश प्रयास कुरी तरह असफल हो गए हैं। यद्यपि आशिया परीक्षण-विरोधी संधि (Partial Test Ban Treaty) द्वारा इन दिशा में कुछ सफलता प्राप्त की गई है घोर अणु प्रारम्भों के बिनाम का लक्ष्य लेकर समूहक राष्ट्र संधि का कुछ विकास में भी कुछ काम किया है तथापि निःशस्त्रीकरण के ये सभी प्रयास अभी तक 'ऊट के मुह में जाया' या माघर में बूझ जैसे ही छिड़ हुए हैं।

(६) मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व की बिनाशित स्थिति—१९४२ के उपरान्त एशिया के दो प्रदेश मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में निरन्तर बिनाश महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इनके कृहत मदारों की शक्ति के परिणामस्वरूप मध्यपूर्व में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र घटितु बिम्ब का एक प्रभाव संकट-स्थल (Danger Spot) भी बन गया है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इस प्रदेश का अधिकांश भाग यूरोपियन बिसेपकार ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र में था। किन्तु महायुद्ध के बाद राष्ट्रवाद के प्रभाव के कारण ब्रिटेन को इस क्षेत्र के एक बड़े भाग से हटना पड़ा। फलतः यहाँ एक 'शक्ति-शून्यता' (Power Vacuum) उत्पन्न हो गई। कहीं कम इस शक्ति-शून्यता से सामने उठते इस समय से पाश्चात्य शक्तियों ने इस क्षेत्र में सुरक्षा संगठनों की एक शक्तिशाली व्यवस्था का निर्माण करना चाहा परन्तु इन प्रयास में उन्हें अभी तक उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है। इस क्षेत्र में द्वितीय विश्व युद्ध का पुरा पुरा प्रभाव किया है घोर आज स्थिति यह है कि मध्यपूर्व शीतयुद्ध का एक प्रमुख अंगड़ा घोर बिनाशशक्ति के लिए प्रमुख संकटकेन्द्र बना हुआ है।

दूसरी घोर एक महत्त्वपूर्ण अर्थमान राष्ट्र के रूप में स्वतन्त्र भारत के उदय ने घोर एक महान् शक्ति के रूप में सामने चीन के विकास से सुदूर पूर्वीय प्रदेश को विश्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रदेशों की श्रेणी में ला दिया। इस क्षेत्र में बिनाश रूप से चीन और अमेरिका घोर प्रतिद्वन्द्वी बन गये। उनके पारस्परिक सम्बन्ध न सुदूरपूर्व को विश्व राजनीति का तूफान केन्द्र (Storm Centre) बना दिया। चीन को अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों में 'कोरिया घोर इन्डो चीन ने चीन की सफलताओं का एशिया में प्रभाव २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जापान की कम पर बिनाश से उत्पन्न प्रभाव के समान था। इनके कारण संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्वयं को पश्चिमी प्रशांत महासागर में एक कर्णर रूप बनाने को बाधित अनुभव किया घोर बहु उन्नत क्षेत्र में बिसे अमेरिकन अपना महासागर समझने लगे थे अपनी स्थिति छोड़ने की अपेक्षा

तद्दने का प्रस्तुत हो गया ।*

सामर्थीय का उदय ध्वस्तरीय राजनीति के इतिहास में एक नाजिकारी घटना है और सर्वाधिक चिन्ता का विषय यह है कि विस्तारवादी तथा साक्रमण नीति का सम्बन्ध चीन भ्रष्ट प्रयुक्तों से सम्बन्धित है कि विषय-सोपान के लिए तथा सामर्थीय राष्ट्रों के लिए एक सम्मोह प्रवृत्ति बन गया । निष्पत्ति का इच्छा कर उत्तम भारतीय प्रयोग का भी कुछ हिस्सा प्रोथ में रिय गये प्राप्तता में हुआ गया है । और ता और जाना हा विराहरी क सम्बन्धी रूप में भी उभरने लगी तथा वैदिक-सिद्धि सम्बन्धी उदय रूप में आ रहे हैं । इस कारण कुञ्जालर विश्व क इतिहास में एक सर्वथा नवीन परिवर्तन दृष्टिगत होन लगा है और यह परिवर्तन है रूप व चीन के सम्बन्धी सम्बन्धों की सम्बन्धिता तथा रूप और घरेलू क सम्बन्धों में आजायद सुधार । मोक्षित रूप अपने साम्बन्धी भाई (चीन) के विरोध करने पर भी आतिगुण महाम्बन्धिता की नीति को अपनाया जा रहा है और इन तरह सम्बन्धी सुधार में सैद्धांतिक दृष्टि (Ideological Conflict) बोधी होती जा रही है । कुछ विचारकों का मत है कि सामर्थीय रूप के लक्ष्य यदि बरसे भी हैं तो वे केन्द्रिय रूप से तो बँधे क बँधे ही हैं । एथीकल (Amoral Ethical) का मत है कि "सामर्थीय रूप को वैदिकी तथा विरोधों द्वारा सम्बन्धित किया गया है कि वह अपनी विस्तारवादी नीतियों को छोड़ कर सम्बन्ध-विहीन प्रयासों की ओर धमिक इवान है ।"†

(१०) विश्व सरकार बनना एक विश्व का स्वप्न—कुञ्जालर युग में एक विश्व व्यवस्था बहुलपूर्ण प्रवृत्ति का उदय हुआ है वह है—ध्वस्तरीयवतावाद बनना एक विश्व का स्वप्न बनना विश्व सरकार की भावना । त्रितीय महा-युद्ध के समयक विनाश में राजनीतियों और सातवतावाधियों की इस बात के लिए प्रेरित किया कि ध्वस्तरीय सामर्थी की रक्षा के प्रभावशाली साधन के रूप में व सम्बन्धित राष्ट्र संघ की स्थापना करें । अनेक दुर्बलताओं के होते हुए भी यह सम्बन्धित राष्ट्रसंघ की प्रेरणा अधिक पूर्ण और सक्तिशाली निष्ठा हुआ किन्तु ध्वस्तरीय राजनीति के विचारक एक विश्व का स्वप्न बनना विश्व सरकार की स्थापना का स्वप्न देखने लगे हैं । वे चाहते हैं—विश्व सरकार की स्थापना तथा राष्ट्र राज्य के बर्तमान स्वरूप की समाप्ति । यह कहा जाता है कि "यदि प्राय विश्व में स्थायी रूप से सामर्थी चाहते हैं और तृतीय विश्व-युद्ध में प्राप्त सक्ति के प्रकोप से यदि मानवता को बचाना चाहते हैं तो प्राय विश्व के सभी राष्ट्रों को मिता कर हम एक विश्वसन्ध का निर्माण कर दें जिससे सामर्थी और स्ववस्था का काम विश्व सरकार की ओर किया जाए । पूर्ण निःसस्तीकरण को भी विश्व सरकार के विचार का पूरक माना जाता है क्योंकि प्रमत्त सम्बन्धित राष्ट्रों की स्थिति एक पक्ष काटे हुए लोभे के समान हो

*G C Smith—Pattern of the Post War World p. 14-15

† The Soviets are pressed by the combination of containment and deterrence to limit their expansionist efforts largely to non-armed capabilities."

—Annual Record, Winning Without War 1964 p. 23

बायबी बिस्वके सामने विश्व प्राणासन मानने के प्रतिरिक्त सम्य कोई मार्ग नहीं रहेगा ।

विश्व सरकार का समर्थन करने वाले पब्लिकिंग विचारक यह मानकर समते हैं कि जब राष्ट्रीय स्तर पर संघ सरकार की रचना संभव है तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसा किया जा सकता है । ये सभी मानते हैं कि वर्तमान विश्व में संघर्ष और झगड़ों का मुख्य कारण राष्ट्रवाद है और जब तक संघर्ष राष्ट्र बिस्व में रहेंगे तब तक यह कारण भी बना रहेगा अतः प्रयत्न है कि इन बिर्से दोष को ही समाप्त कर दिया जाए । श्री नेहरू का तो यह बड़ा विश्वास था कि "विश्व सरकार प्रबन्ध धानी चाहिए और धायेगी क्योंकि बिस्व की ध्याधि का और कोई उपचार नहीं है ।" अनेक विचारक संयुक्त राष्ट्र संघ को अभी विश्व सरकार के केन्द्र (Nucleus) के रूप में देखते हैं । उनका कहना है कि "संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से विश्व सरकार का विकास हुआ है और होगा क्योंकि भोग इस विकास के लिए इच्छुक है ।"

किन्तु दूसरी ओर ऐसे विचारक भी हैं जो विश्व सरकार के बिचार को एक कल्पना-कल्पना मानते हैं । उनके अनुसार यह विचार मिथ्या रूप में कृत्रिम ध्याबहासिक और धानाधारी दृष्टिकोण पर धायारित धष्यों के बिपरीत सुनय कल्पना है ।

ऊपर युद्धोत्तर युग के अन्तर्राष्ट्रीय महान के जिन उमरते हुए प्रश्नों का उत्तर किया गया है उनमें से कुछ राजनीतिक प्रश्न हैं । कुछ पर राजनीतिक धायिक एवं संघाधिक धरों का प्रभाव है और कुछ मनुष्य के नासि धिय एवं मानवताधारी विधारों की उपज है । इधमें कोई सन्देह नहीं कि १९४५ के बाद का बिस्व इन सभी सिद्धांशों रूपों, विधारों या धारणों का रण-स्थल बना हुआ है । इनके कारण विश्व राजनीति के केवल धाधार ही नहीं परिवर्तित हो रहे हैं बरन नवीन राजनीतिक रूपों और सम्बन्धों की भी धीरे धीरे सृष्टि होनी आ रही है । टी० वी० कालिजार्जी (T V Kalljarji) ने वर्तमान बिस्व के इन परिवर्तनों को ध्याक्या बड़े स्पष्ट धष्यों में की है । उनका कहना है कि "वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का पुनर्वहन हो रहा है जिसमें कि पहले की राजध्वबस्था एवं राष्ट्रीय राजध्वबस्था धीरे-धीरे नवीन राजनीतिक रूपों में बदलती आ रही है । साम्राज्यों का पतन हो रहा है और अनिधेय स्वतन्त्रता प्राप्त करत आ रहे हैं । राष्ट्र राज्य एक बड़े संघ में बिसीन होते आ रहे हैं ।" यह परिवर्तन कस्याए की धौर है अपना बिनाब

"Contemporary international relations are going through a reorganisation in which the old national state and the old state system are being slowly molded into new political forms. Colonies are gaining independence as empires are breaking up. National States are being merged into great federations

—T V Kalljarji "The persistence of lower Politics The annals of the American academy of Political and Social Science CCLVII (May 1948) p 10-11

की निम्न में उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अनेक विचारकों का मत है कि इन परिवर्तनों की धार बिना ही बीमारी गरीबी दामगा समयावस्था आदि बच्चों में पुष्टकारा पाये तथा स्वतन्त्रता एवं समानतापूर्ण प्रयत्न प्राप्त व्यतीत करने के लिए धारा की दृष्टि से देगला चाहिए। किन्तु दूसरी ओर इन परिवर्तन के प्रति विरोधी विचार रखने वाले विचारक भी हैं जो निराशावादी तो हैं किन्तु उनका अध्ययन भी तथ्यों पर ही आधारित है। ये विचारक यह मानते हैं कि विश्व आज एकी निश्चिन्त म घा गया है जहाँ पर अपना पूरा बिनाग करने की अनिष्ट उनके हाथों में कैड्रिन हो गयी है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल (Sir Winston Churchill) ने एक बार कहा था कि हम एक पत्तन और दुःख के युग में प्रवेश कर चुके हैं। एक बार हमका स्वतन्त्र को छोड़ कर शरण्य क्षेत्र में विकसित हो चुकी मनुष्य की अनिष्ट कैड्रिन हो चुकी है किन्तु उसमें आज नियन्त्रण का विकास है। इस रूप का मान्य है कि आज धातु-अनिस के रूप में मनुष्य के पाठ बड़ी मारी अनिष्ट कैड्रिन हो चुकी है और इसीलिए इन अनिष्ट का विश्व स्थावत को धमी तक नहीं हो पाया है और इसीलिए इन अनिष्ट का प्रयोग करने का मय सर्वेय ही बना रहता है यह भय जब सत्य बनगा तो विश्व स्थावत को अपना जायगा। इन प्रकार विश्व के "न परिवर्तनों के कारण धारावादी और विरातावादी दोनों ही प्रकार की सम्बन्धनाएँ ही जा रही हैं। वर्तमान ध्वस्तारंष्ट्रीय बटमाओं तथा सम्बन्धी पर इन दोनों दृष्टिकोणों का प्रभाव है तथा दोनों ही पक्षों ने विश्व राजनीति पर प्रभाव डालने वाले बल मान लखों की प्रभावित करन का बड़ा महत्वपूर्ण काय किया है।

EXERCISES

1. Discuss the main features of International Relations after the Second World War

द्वितीय महायुद्ध के बाद के ध्वस्तारंष्ट्रीय सम्बन्धों की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

2. "The Problems of the Pacific are, to mind the world problems of the next 50 years or more" (General Smuts) Bring out the significance of the Pacific in World Affairs after the Second World War

"मेरे विचार से प्रशान्त दक्षिण की समस्याएँ अपने ५० वर्षों के इतिहास की अधिक वर्षों के लिए विश्व समस्याएँ हैं" (जनरल स्मट्स)। द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व मामलों में प्रशान्त दक्षिण की महत्त्व को इंगित कीजिए।

3. Explain your thoughts on the awakening of Asia and its effects on world politics

एशिया के जागरण पर अपने विचार प्रकट कीजिए और विश्व राजनीति पर इसके प्रभाव बताइए —

4. Write short notes on —

- [a] Conflict of Ideologies in International Politics after the Second World War
- [b] Internationalism

[c] Far East and World Politics.

[d] Cold War

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

- (अ) द्वितीय महायुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विदाग्यों की समय;
 (ब) अन्तर्राष्ट्रीयतावाद
 (ग) सुदूर पूर्व की विरम राजनीति
 (द) शीत युद्ध,

5 "Contemporary international relations are going through a reorganisation in which the old national state and old state system are being slowly molded into new political units. Colonies are gaining independence as empires are breaking up, National States are being merged into great federations. (T V Kalljarvi) Discuss.

"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का पुनर्गठन हो रहा है जिसमें कि पहले राज-स्यबन्धा एवं राष्ट्रीय राज्य-स्यबन्धा धीरे धीरे नवीन राजनीतिक इकाई बनती जा रही हैं। साम्राज्यों का पतन हो रहा है और उपनिवेश स्वतन्त्रता प्राप्त करते जा रहे हैं। राष्ट्र राज्य एक बड़े संघ में विलीन होत रहे हैं।" (टी वी कालीजार्वी) विवेचना कीजिए।

2

युद्धोत्तर शांति-समझौता

(THE POST WAR PEACE SETTLEMENT)

१ सनस्य का स्वरूप शांति स्थापना की कठिनाइयाँ

२ शांति समझौते के सम्मेलन और संधियाँ :-

(i) बिदेस मंत्री परिषद् की सभ्यता की बैठक

(ii) मास्को की बिदेस मंत्री परिषद्

(iii) पेरिस का शांति सम्मेलन

(iv) पाँच शांति संधियाँ ।

(क) इटली के साथ संधि

(ख) जर्मनिया के साथ संधि

(ग) अमेरिका के साथ संधि

(घ) हंगरी के साथ संधि

(ङ) फिनलैण्ड के साथ संधि

(v) शांति संधियों का उद्देश्य

(vi) पारिटिया के साथ संधि

(vii) जर्मनी के साथ संधि बार्ता

(viii) जापान के साथ संधि

2

युद्धोत्तर शांति-समझौता

(THE POST WAR PEACE SETTLEMENT)

१. समस्या का स्वरूप शांति स्थापना की कठिनाइयाँ

२. शांति सम्झौते के सम्मेलन और संधियाँ :-

(i) बिदेरा धरती परिवर्तन की समस्या की रूढ़ि

(ii) मास्को की बिदेरा मंत्री परिवर्तन

(iii) पैरिस का शांति सम्मेलन

(iv) पाँच शांति संधियाँ ।

(क) इटली के साथ संधि

(ख) जर्मनिया के साथ संधि

(घ) बल्गेरिया के साथ संधि

(घ) हंगरी के साथ संधि

(ङ) फिनलैण्ड के साथ संधि

(v) शांति संधियों का जसंघन

(vi) घासिह्रवा के साथ संधि

(vii) जर्मनी के साथ संधि बार्डा

(viii) जापान के साथ संधि

“अटलांटिक चार्टर ‘आर स्वतंत्रताओं’ तथा संयुक्त
राष्ट्र संघ के विषय में परमबल आशाएँ
विजेताओं के भ्रमों एवं पृथिया के
विरोध के कारण अपूर्ण रह गयीं।”

“सतिपूति के प्रश्न का
संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए एक
‘घर्य है और छोड़ियत संघ के लिए दूसरा।
संयुक्त राज्य अमेरिका दूसरी स्थिति में है। संभवतः
वहाँ के यह अनुभव नहीं करते कि नाजी अविहृत प्रवैरों
में शास्त्र धर्मग्रन्थों, विध्वंस और मृत्यु का अनुभव करने के
अपराध छोड़ियत नागरिक कतके सम्बन्ध में क्या महसूस करते हैं।”

—मोतीदोष

७ मई १९४५ को जमनी के साथ बिराम संधि होने के उपरान्त २ सितम्बर, १९४५ को जापान के प्रतिनिधियों और जनरल मैकापर के मध्य बिचिबू बिराम संधि सम्पन्न हो जाने पर द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति हो गई। जमनी और जापान के भारत-समर्पण से सैनिक संपर्क का अन्त प्रबल्य हो गया किन्तु वास्तविक शान्ति की स्थापना की जाना अभी बाकी था। शान्ति के भीतर व्यवस्था स्थापित करने के तब का समावेश होता है और पराजित शक्तियों जर्मनी, जापान, इटली, फ्रांसिस्को, रूमानिया, हंगरी, बल्गेरिया और फिनलैंड के साथ शान्ति संधियां करने बाधित व्यवस्था स्थापित करने का काय अभी शेष था।

समस्या का स्वरूप शान्ति-स्थापना की कठिनाइयां

यद्योत्तर शान्ति-स्थापना का उपरोक्त कार्य प्रथम महायुद्ध के उपरान्त शान्ति स्थापना करने के कार्य से कहीं अधिक सरल प्रतीत होता था क्योंकि बिजेता राष्ट्र महायुद्ध के कास की घबपि में बिचिबू सम्मेलनों और बार्ताओं द्वारा शान्ति-स्थापना के माग की काफी दुरी तय कर चुके थे। लैंगसम (Langsam) के शब्दों में "१९४५ में युद्ध की समाप्ति के उपरान्त शान्ति की व्यवस्था का प्रयत्न १९१८-१९ की शान्ति-व्यवस्था की स्थापना की प्रक्रिया से प्रति अल्प समानता रखता है। द्वितीय महायुद्ध में भिन्नराष्ट्रीय नेता अन्तिम शान्ति-बार्ता के लिये, अन्तिम शान्ति-बार्ता के लिये अन्तिम तैयारी के माग पर प्रथम महायुद्ध के समय की अपेक्षा कहीं अधिक आगे बढ़ चुके थे।" १९४१ में स्त्रेवेट और बिचिबू अन्तिम शान्ति स्थापित करने के कुछ सिद्धांतों की स्थापना कर चुके थे और पार्टर के प्रति लोचियत इस ने भी कोई प्रापति प्रकट नहीं की थी। नवम्बर १९४३ में काहिरा सम्मेलन में (Cairo Conference) में जापान के साथ की जाने वाली शान्ति संधि की घाम त्यों की "निर्देश हो चुका था और नवम्बर १९४३ में ही होने वाले तेहरान सम्मेलन (Tehran Conference) में जापानी शान्ति संधि और पोर्सब के हीमान्तों पर उपयोगी शर्तों के साथ ईरान की प्रादेशिक अक्षयता के सम्मान का निश्चय किया जा चुका था। फरवरी १९४५ के वास्टा सम्मेलन में न केवल पोर्सब की सीमाओं और जापान से इस की अनेक प्रवेश बिनाये जाने के सम्बन्ध में निर्णय ले लिया गया था बल्कि बिजेता शक्तियों के मध्य जर्मनी के अन्तिम बिभाजन का निश्चय भी कर लिया गया था। अतः ही नहीं बिभिन्न दृष्टीगतिक प्रश्नों पर बिचार करने के लिए १९४३

"The attempted organisation of peace after the close of hostilities in 1945 offered little parallel to the peace-making procedures of 1918-19. During the Second War the Allied leaders had gone much farther along the path of advance preparation for the eventual peace proceedings than had previously been the case."

यं ही एक मुराविषय परामर्शदाता घायोय (European Advisory Commission) की स्थापना भी की जा चुकी थी। ब्रिटेन के The Royal Institute of International Affairs और संयुक्त राज्य अमेरिका में The Council on Foreign Relations जैसी और सरकारी समूहों (Private Groups) भी जन्म में चुकी थी और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के महान अध्ययन में व्यस्त थी। एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के रूप में नान शान्ति-सम्मेलन (San-Francisco Conference) द्वारा संयुक्त राष्ट्रमण्डल का चार्टर तैयार किया जा चुका था। पुनर्जापान-सम्मेलन (Potsdam Conference) में यह भी निश्चय कर लिया गया था कि १९१९ के समान किसी बृहत् शान्ति-सम्मेलन का आयोजन नहीं किया जायेगा बल्कि शक्तिशाली—ब्रिटेन अमेरिका कठ शक्ति और चीन—के विदेश मंत्रियों की एक परिषद् द्वारा शान्ति सम्झौते (Peace Settlement) के लिए आवश्यक प्राथमिक कार्य किया जायेगा।

इस बृहत् भूमि और इन परिस्थितियों में यह घासा की जा सकती थी कि शान्ति सम्झौते का कार्य १९१९ की घोषणा निरिच्छत रूप से कहीं अधिक सरल होगा। बल्कि यह भागा कभी-भूग नहीं हुई। १९१९ का वैश्व सम्मेलन लगभग सभी पठ्यविषयों के साथ शान्ति संधियों का प्राक्कण एक वर्ष के पारदर्शन में सफल हो गया था और १ अगस्त १९२४ को टर्की के साथ की गई लान्जो की संधि (Treaty of Lausanne) के कार्यान्वित होने के साथ शान्ति सम्झौते की व्यवस्था पूर्ण हो गई थी। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने के लगभग १॥ वर्ष बाद तक भी शान्ति संधियों के प्राक्कण तैयार नहीं हो सके। १० अक्टूबर १९४० को जाकर केवल इटली कमालिया अमेरिका हंगरी और फिनलैण्ड के साथ शान्ति संधियाँ सम्पन्न की जा सकी। जापान के साथ तो कुछ समाप्ति के लगभग ६॥ वर्ष बाद २८ अगस्त १९४१ को शान्ति संधि की गई किन्तु फिर भी उस समय यह एक बड़ी शान्ति संधि ही रही क्योंकि कठ ने उस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। कठ और जापान के मध्य युद्ध-व्यवस्था की औपचारिक समाप्ति तो अक्टूबर १९४६ में हुई जब दोनों राष्ट्रों द्वारा एक सन्तुलित विलिखित जारी की गई। आस्ट्रिया के साथ शान्ति संधि युद्ध समाप्ति के लगभग १० वर्ष बाद २० जुलाई १९४५ को कार्यान्वित की गई, और जर्मनी के साथ स्थायी शान्ति-संधि अभी तक नहीं की जा सकी है। बर्लिन का प्रश्न आज भी प्रबलक रूप कारण विद्यमान है। बोत्सवाम सम्मेलन के निर्णय के आधार पर जर्मनी पाश्चिमी भागों में विभक्त है। पूर्वी जर्मनी पर सोवियत कठ का अधिकार है और पश्चिमी जर्मनी पर मित्र राष्ट्रों का। इसकी एकता का प्रश्न अभी तक शेष है।

स्पष्ट है कि १९४५ के बाद की शान्ति-व्यवस्था करने का कार्य प्रथम महायुद्ध के बाद की शान्ति-व्यवस्था के कार्यों की घोषणा कहीं अधिक कठिन और दुष्कर सिद्ध हुआ। निश्चय ही इसके मूल में कुछ प्रमुख कारण थे जिन्हें सशोक में हमें देखना चाहिये।

प्रथम और सर्वप्रमुख कारण विभिन्न राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक मतभेदों का उठ खड़ा होना था। अर्थात् प्रथम महायुद्ध के बाद भी मित्र राष्ट्रों

पारस्परिक मतभेदों में शांति-व्यवस्था के मार्ग में बाधा सड़ी की थी किन्तु इस
 र क मतभेद प्रथम रूप एवं स्थायी थे। युद्ध के दौरान विजिता राष्ट्रों का
 शौरिक उत्थान कबल जर्मनी एवं अन्य छोटी राष्ट्रों को पराजित करना था।
 तब स्थायी मंत्री के कारण में युद्ध काल में उनके मतभेद रह रहे। लेकिन
 जय के पश्चात् इन मतभेदों को सुन कर ब्याप्त किया जाने लगा। तबिन
 सार के स स्वापक नाम्यवारी और पूजीवादी धारणा के मध्य उत्पन्न गये।
 नाम्यवारी कम पारशात्य पूजीवादी राष्ट्रों द्वारा स्वयं को भेरे जाने के मय
 संशोक्ति हो गया और ब्रिटेन फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका अन्तर्रा
 श्रीय साम्यवाद के रूसी दृष्टिकोण को महान शंका की दृष्टि से देखने लगे।
 इस प्रकार के पारस्परिक संशय और अविश्वास में शांति-व्यवस्था के निर्माण
 मार्ग को अंतर्काकीर्ण बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ
 कि द्वितीय महायुद्ध की स्थापति के तुरन्त बाद भी युद्ध का भी गणना
 हो गया।

वास्तव में सन्देश के बीच तो युद्ध काल में ही पड़ गये थे। सहयोग के
 बावजूद भी दोनों पक्ष युद्धकाल में एक दूसरे के उद्देश्यों के प्रति अंकासु थे।
 परिणामी राष्ट्र यह समझते थे कि वे यद्यपि कम को सैनिक सहायता पहुँचा
 रहे हैं, परन्तु कम उनके साथ मिल कर जर्मनी पर संयुक्त आक्रमण
 की योजनायें नहीं बनाता उन्हें अपने सैनिक रहस्य नहीं बताता, अपने सैनिक
 प्रयुक्तों का उपयोग नहीं करते हैं। वे समझते थे कि कम प्राग एवं बर्लिन
 जैसे महत्वपूर्ण स्थान अपने कब्जे में बनाए रखना चाहता है। उनका कहना
 था कि १९४३-४४ में मास्को बर्लिन के साथ अल्बिन्टोवस्क की संधि की
 भांति बुरक सन्धि करना चाहता था। इसके विपरीत कम का आरोप था कि
 विजयराष्ट्रों द्वारा ही नई युद्ध-सामग्री की सहायता रूस द्वारा सम्पन्न की गई
 युद्ध सामग्री का केवल ४ प्रतिशत थी। विजय-राष्ट्र हृदय से यही चाहते थे कि
 जर्मनी के साथ संधि द्वारा रूस बिलकुल लीज हो जाय। इन्हीं विचारों से
 प्रथम ही केवल प्रदर्शनारम्भ सहायता ही और दूसरे यह सहायता भी बहुत
 विषम्य से ही। ब्रिटिश सरकार अपनी सेनाओं में सोवियत विरोधी साहित्य
 का प्रचार करती रही अन्त में पोल सरकार ने १९४२ में रूस से एक लाख
 पोल सेना हटा ली। स्टालिनग्राड की विजय (फरवरी १९४३) ने विजय राष्ट्रों
 को मास्को के प्रति ईर्ष्या भू बना दिया। अगस्त १९४३ से अन्त में अलुबम की
 बार्ता रूस से पुन्य रकी। इतना ही नहीं युद्धकाल में सत्र १९४३ में ब्रिटिश
 मजिम्बल के सदस्य जाम स्मट्स ने सोवियत संध को यूरोप का नया
 'महात्मा' (New Colossus) बताया। रूस का यह भी कहना था कि तेहरान
 सम्मेलन में प्रस्तावित बाल्कन प्रवेश पर आक्रमण की एंग्लो-अमेरिकन योजना
 का अर्थ य यूरोप में दूसरा मार्क खोलने की स्थिति को टालने का बढ़ाना
 था। युद्धकाल में और भी ऐसी अनेक बातें हुईं जिनसे बार्नी पक्षों के मतभेद
 विकसित हुए। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अन्तरल फ्रांको के स्पेन के साथ
 जुलाई १९४४ क समझौते ने अमेरिकन सरकार के साथ ब्रिटिश अमेरिकन
 सरकारों की पूर्वक अन्धकारों ने और यूनाय में ब्रिटिश मोर्चे में दोनों ही
 पक्षों की कटुता में अभिवृद्धि की। मास्को सामर्थ्यसिद्धी और पोद्घबम

सम्मेलनों द्वारा ये मतभेद कुछ घोर भी उभर हो गये। युद्ध के समय बरिबिबिषियों बह, इन मतभेदों में स्वयं को र्थवी के अन्तर्भव में दिनाये रता। वरन् युद्ध समाप्त होत के बाद दोनों ही बर्गों के सदस्यों में मतभेदों का सुसमता रूप जगलामुगी पून पडा। परिणामतः शान्ति की रचना (Peace Making) देदी गीर हो गई।

दूसरा कारण या लोबियत इस घोर संयुक्तराज्य अमेरिका द्वारा संसार पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रनित्ययो। द्वितीय महायुद्ध के उपरांत दोनों ही राष्ट्र बिन्न क महान् शक्तियों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर अचलित हुए। अणु बम का रहस्य इत समय तक केवल अमेरिका के पास था। इसके पतिरिक्त अमेरिका ही संसार का अनाहयतम देश भी था। अतः अमेरिकन एकाएक यह अनुभव करने लगे की वे संसार की सबसे बड़ी ताकत हैं। उन्हें इस बात का अविमान हुआ कि अणु बम के रूप में उनके राष्ट्र के पास एक ऐसी शक्ति है जिसके बारे में न किसी राष्ट्र को कुछ जानकारी है और न ही किसी के पास बह शक्ति से बचाव के साधन ही हैं। दूसरी तरफ बिन्न फ्रांस आदि पश्चिमी देश भी यही अनुभव करने लगे कि उन्हें अपने पुनर्निर्माण के लिये संयुक्तराज्य अमेरिका की आबिक सहायता से महती आवश्यकता है। यह अनुभव भी उन्हें हो चुका था कि बिछने दोनों महायुद्धों में जो सफलता उन्हें मिली थी—बहु भी प्रभुत्व। अमेरिकन महायुद्ध के कारण ही उपलब्ध हो सकी थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने अमेरिका का धाव देने में ही अपना अस्याय समय और इत तरह पुजीबारी पश्चिमी राष्ट्रों का नेतृत्व अमेरिका के हाथ में आ गया। किन्तु यह स्थिति लोबियत रूप को कैसे रहनु हो सकती थी? द्वितीय महायुद्ध में अपने रक्त-कीर्षम घोर बीर्य का बहु सिक्का बसा चुका था और महायुद्ध के उपरांत एक अत्यन्त प्रबल शक्ति के रूप में उचित हुआ था।

अमेरिका द्वारा संसार पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास उसके लिए अन्धीर बुनौर्दी थी। बरि पुजीबारी पश्चिमी गुट का अमुबा अमेरिका बना हुआ था ता बहु भी पूर्वी युद्ध का नेतृत्व कर रहा था। उसे अपनी बिजय पर अन्तोप था और यह बात बाध भी कि उसने अपने स्वयं के प्रबलों घोर त्याग से अपनी बीठी महाशक्ति को अगजित किया था। बहु इस्टोनिया सेटबिया सिबुआनिया बेधारबिया इमानिया पूर्वी पोलीश पूर्वी प्रसा के कुछ भागों एवं फिनलैण्ड के कुछ हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला चुका था और इत तरह उसकी आबारी में लगभग २४ मिलियन की वृद्धि हो गई थी। इसके पतिरिक्त उसका अम्य अनेक देशों पर प्रभाव तथा निर्बंध था। बहु वही चाहता था कि उसके प्रभाव अक्ष में किसी प्रकार की कमी हो अथवा अमेरिका अपनी महाशक्तियों को छोकर लगभग में अक्षम हो सके। अतः बहु स्वाभाविक था कि दोनों ही राष्ट्रों में प्रतिद्विन्द्विता की उभ माबनाए पैदा हो गई। दोनों ही अपने प्रभाव के प्रसार के लिये कंटमीतिक दाव-लेख लेनने लगे और उनमें एक-दूसरे के प्रति शत्रुता की भावनाए पलपती गई। वास्तव में शान्ति व्यवस्था के मार्ग में एक बड़ा अचरोध यह भी था कि वहाँ १९१६ में बिबिताओं में पारस्परिक मतभेद के अंशतः नहीं वहाँ १९४२ में बिबिताओं

में न कबल बैमनस्य या बरन् स्पष्ट मञ्जुता मी थी। पश्चिमात् मन्देह बैमनस्य और मञ्जुता के इस बातान्वरण में होना ही राष्ट्रों में किमी का भी यह ध्येय नहीं था कि पराजित देश फिर से अपने यहां प्रत्यन्तियुय का अधिकार प्राप्त कर सकें। दोनों ही पक्ष अपने-अपने ङंग से साम्राज्य विस्तार के प्राणांसी थे। इसी का यह परिणाम हुआ कि भाविगत संघ यूरोप और जापान में साम्यवाद की स्थापना की पट्टा करने समा तथा पश्चिमी देश विजुद्ध मोम्स्ट्रन की स्थापना के लिये मञ्जुट हुए और हर तरह से साम्यवादी शक्ति का विरोध करने लगे।

चौथा कारण शक्ति के मार्ग में बाधक रूप में यह था कि इन बार १९१९ की शक्ति शक्ति-सम्मेलन आयोजित करने की इच्छा यह उचित समझा गया कि किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस, और चीन के विदेश मंत्रियों को एक परिपक्व बनायी जाय जो शक्ति-संधियों के बारे में सर्व सम्मतिये निर्णय करे। सब सम्मति से निर्णय करने का यह निश्चय बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि इसके द्वारा सोवियतसंघ को मित्र राष्ट्रों के समस्त कार्यों पर निषेधाधिकार (Veto Power) प्राप्त हो गया। इस तरह वह किसी भी निर्णय को रोकने की स्थिति में आ गया। सर्व सम्मति से निर्णय करने का निश्चय स्वीकार करके मित्र राष्ट्रों ने सोवियत संघ के सामने एक तरह से धारममर्षक किया था। स्पष्ट ही शक्ति रचना के मार्ग में इस व्यवस्था ने एक बड़ी बाधा पहुंचाई।

पांचवां कारण व्यक्तित्व सम्बन्धी था। शक्ति-संधियों के निर्माण में व्यक्तियों के व्यक्तित्व की उपयोग नहीं की जा सकती। जिन तीन बड़ों ने महायुद्ध का संघासन किया था, उनमें से एक-कैम्ब्रिज का स्वगवास हो चुका था और दूसरे-वर्चिन्स का दल चुनाव में हार चुका था। इसी तरह एक विदेश नीति का संघासन एक समय के प्राध्यापक जॉर्ज बिरो (Bidault) कर रहे थे। ये सब उतने अनुभवी नहीं थे जितने की रूस के स्टॉलिन और मोमोटीव थे। अतः सुधियों का काम उन्हीं से 'घाये न बढ़ सका'। पुनश्च मोमोटीव बेकिन तथा बर्सेस (Byres) को अमल रूस बिरोन एवं अमेरिका के विदेश मंत्री थे, के प्राध्यापक भवभेद एवं विभिन्नता के कारण द्वितीय महा युद्धोत्तर शक्ति शक्ति युद्ध में परिणत हो गयी। बड़ी विफल मंत्री मोमोटीव हीनों में सर्वाधिक अनुभवी एवं कूटनीतिज्ञ था। उसकी स्टॉलिन के नेतृत्व में पूर्ण मुवा थी और पश्चिमी राष्ट्रों पर पूर्ण अधिकार था। पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति उसकी आलोचना बड़ी उग्र होती थी। जॉर्ज बिरो के गृहमंत्री के रूप में धारममर्षक स्थापित प्राप्त कर चुका था और व्यक्तित्व में मोमोटीव के समान ही प्रभावशाली था। बर्सेस ही इन तीनों में सबसे अधिक शक्ति प्रकृति का था। जब उसने अमेरिका की ओर से रूस को धर्मिक सुविधाएं प्रदान की तो बेकिन द्वारा उसके इस बुद्धिबोध की कटु आलोचना हुई। परिणाम स्वल्प राष्ट्रपति ट्रुमेन ने बर्सेस के स्थान पर मोमोटीव को अग्रणी माना। वह धर्मिक का और उसकी धर्मिक शक्ति स्वाभाविक थी। कि अतः

व्यक्तियों और उनके विभिन्न दृष्टिकोणों ने १९४३ के बाद की शान्ति-सम्मेलन में उन्नीस तरह बनेको समस्याएँ उत्पन्न कर दीं जिन तरह १९१८ के शान्ति-सम्मेलन में विभिन्न भाषाओं और बलैमेंबो के विपरीत दृष्टिकोणों के विभिन्न समायाएँ उत्पन्न कर दीं थीं। मोसोटोव केवल और बनेंस एवम बर्न बर्न में ही किसी के भी ऐसे कुछ नहीं थे कि वे ठेकी से किसी तरह की वस्तु कहें। १९१८ के शान्ति-सम्मेलनों में विभिन्न दृष्टिकोणों के होने हुए भी ठेकी से निष्पन्न वस्तु बने की शान्ति-सम्मेलन में ही नहीं थी।*

एक बार एक जितने शान्ति-बापना के मार्ग में प्रयत्न करने प्रस्तुत की जा पा कि विदेश मंत्री बरिबद में फ्रांस और चीन के विदेश मंत्रियों को सम्मिलित कर लिया गया था, लेकिन पांच पराजित देशों के साथ भी जाने वाली संविधान का प्रावण तैयार करने और उनके बारे में सन्तुष्टि मिलान करने के काम में भाग नहीं ले सकते थे क्योंकि उन्होंने मुठबंदी के निश्चयों पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। इस समस्या को बाद में इन तीनों तक ही समाप्त किया गया कि प्रावण तैयार करने में फ्रांस और चीन के विदेश मंत्री भी भाग लें परन्तु वास्तविकता यह है कि वे उन पर होने वाले मतदान में भाग नहीं ले सकते।

उपरोक्त सभी कारणों से और पारस्परिक परिचयों से ही सम्मेलन तथा सम्मेलन के आगा-पराग में शान्ति सम्मेलनों के प्रयत्नों का बड़ी मात्रा में एक ऐसी याड़ी का होना है जिसके बनें और बनें हुए हैं किन्तु वे छोटे उस बाड़ी को ही विपरीत दिशाओं में खींच रहे हैं और बहुत धीरे धीरे करके उनमें से अधिक शक्तिशाली बड़ा बाड़ी का बड़ा-बड़ा करके बाँटने की दिशा में खींच सका है।

* In so far as there is a parallel to the Big Three of 1919 it lies in the curious trinity of Molotov, Bevin and Byrnes. The first, though handicapped by an inability to speak English was infinitely the most-experienced of the three in the ways of diplomacy. Plump and urbane, non-smoker and vegetarian, Molotov as an associate of Lenin, was steeped in distrust of the west, and as Stalin's most loyal lieutenant was vigorous in his denunciation of its motives. Bevin brought to the conference table the methods of the trade-union organizer, the high reputation he had won as Mr. Churchill's Minister of Labour during the war years as intransigence as complete and language as robust as Molotov's own. Byrnes, the U.S. Secretary of State, was the most patient negotiator of the three but in the worsening weather of international relations he soon made way for the more soldierly virtues of General Marshall. None of the three had the qualities, or the success in coming to speedy agreements, of their predecessors of twenty-six years before."

शांति समझौता के स्वरूप एवं शांति-स्थापना के मार्ग को कटकाबीज बनान वाली बाधाधा घादि पर विचार करने के उपरान्त जब हम शांति समझौता सम्पन्न करने को प्रारम्भिक तयारी हेतु किए गए युद्धोत्तर प्रयासों और इनके फलस्वरूप हुई विभिन्न शांति-संधियों पर प्रकाश डालते हैं।

शांति समझौते के सम्मेलन और संधियाँ

शांति स्थापित करने के मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन मित्र राष्ट्रों ने घटनाटिच चार्टर कासांख्याका मास्को, टेहरान, मास्टा और पोर्ट्समथ सम्मेलनों में किया। विश्वयुद्ध के बाद १९१९ के गमान किमी बहुल शांति सम्मेलन का आयोजन करना उचित न समझते हुए पोर्ट्समथ सम्मेलन में शांति-समझौते की प्रारम्भिक तैयारी का काम शुरू करके राष्ट्रों के विदेश मंत्रियों की परिषद का सौंग गया और यह प्राणा भी गई कि यह परिषद बिना किमी विशेष कटिनाई के अपना कार्य करले में सफल होगी। परन्तु दुर्भाग्य से इन विभाग प्रतिनिधियों में समझौता न हो सका और पराजित राष्ट्रों के साथ यथार्थ संधियाँ भी न की जा सकी। २ वर्ष के काफी वादविवाद के बाद इटली कमालिया बल्गेरिया हंगरी और जर्मनी से संधियाँ हुईं। इनके पीछे भी राजनीतिक उद्देश्य थे—किस चाहता था कि वास्तविक रूप से इटली से यथार्थ संधियाँ जब कि पश्चिमी देश चाहते थे कि मध्य यूरोप से कम यथार्थ संधियाँ हट जायें।* इन राजनीतिक स्वार्थों को अनिवार्यताओं के कारण ही ये संधियाँ जल्दी ही सभी परन्तु जर्मनी फ्रांसिमा और जापान के बारे में पूरा तथा पश्चिम का मतभेद ब्रह्म होता गया और नतीजा यह हुआ कि आज तक एक सम्मिलित संधि का काम खटाई में पड़ा हुआ है।

विदेश मंत्री-परिषद की सम्मेलन में बैठक (सितम्बर १९४५)—विदेश मंत्री-परिषद का प्रथम सम्मेलन १९ सितम्बर से ३ अक्टूबर, १९४५ तक संवन में हुआ। इसमें सम्मुख राज्य अमेरिका ब्रिटिश फ्रांस और कम के विदेश मंत्रियों-बर्नेस (Barnes), बेबिन (Bebin) बिरो (Bidpai) तथा मोलोतोव (Molotov) ने सबप्रथम इटली की संधि पर विचार प्रारम्भ किया। मोलोतोव ने इटली के जूतपुत्र उपनिवेश सीबिया पर सोवियत कम के संरक्षण (Trusteeship) की माँग करने और कम्युनिस्ट प्रघानता वाले युगोस्लाविया के एड्रियाटिक सागर पर प्रादेशिक विस्तार का समर्थन करके पश्चिमी राष्ट्रों को स्थम्भ कर दिया। द्वितीय महायुद्ध में टर्की की तटस्थता से कम बर्नेस-नियाम और वास्फारस द्वारा मध्यसागर में प्रवेश और प्रमुख की विरवाहित घमिसाया की पुति से घतुप्त रह गया था। अब उसकी घाफाता थी कि सीबिया पर प्रमुख स्थापित किया जाए और युगोस्लाविया के समर्थन से उसे प्राप्त किया जाय। कम की इस नीति की व्याख्या करते हुए लैंगसम (Langsam) ने लिखा है कि 'यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि प्रमुख कार्य इटली के साथ संधि करना नहीं है बल्कि पश्चिमी राष्ट्रों और सोवियत कम के मध्य समझौता करना है।' यहाँ पर एक बात यह स्मरणनीय है कि सोवियत कम ने पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों—कमालिया बल्गेरिया फिनलैण्ड और हंगरी के साथ पहले ही स्वतंत्र कम संधियाँ करली थी और पश्चिमी राष्ट्रों

ने जग के इन कार्य के विरुद्ध घण्टा बिरुद्ध का प्रदर्शन इसलिये नहीं किया था कि वे पूर्वी यूरोप में रानी प्रभाव को मानने को तैयार थे बगैरे कि जग पश्चिमी यूरोप में हस्तक्षेप न करे। लेकिन पश्चिमी शक्तियों की यह भागा निष्कम हुई। जब इटली का प्रश्न था तो जग उसमें भी अपनी स्थिति को दृढ़ करने की दृष्टि से अपनी मांग पर बढ़ने पर गया पश्चिमी राज्यों को यद्यपि पूर्वी यूरोप पर रुक की प्रभाव-बुद्धि दिनी थी जग में स्वीकारणीय नहीं थी तथापि उन्होंने उसे अनुष्ट करने के सिव कुछ रियायतें देना चाहा। लेकिन हम ने उनकी इस मनोबुद्धि को समझकर रुक बड़ी मांग रखकर हठ करना शुरू किया ताकि अन्तिम समझौतों में उसकी अधिकांश मांगें मान्य हो सकें।*

संभव की बिना मंत्री बगैर में इटालियन संघ के सम्बन्ध में दोनों पक्षों के मतभेद मुख्य रूप से इन समस्याओं पर केन्द्रित थे —

- (क) इटली एवं यूगोस्लाविया की सीमा।
- (ख) इटली में भी जाने वाली शक्ति पूर्ति की राशि।
- (ग) इटली के उपनिवेशों का विभाजन।

(क) इटली एवं यूगोस्लाविया की सीमा—इस विषय में सोवियत संघ चाहता था कि ट्रीस्टे और क्रुम के बन्दरगाहों सहित सम्पूर्ण जूलियन मार्च (जूलियन साम्राज्य का उत्तर-पश्चिमी यूगोस्लाविया और उत्तर-पूर्वी इटली का सीमावर्ती प्रदेश) यूगोस्लाविया को दे दिया जाए। रुक की मांग के विपरीत पश्चिमी देश ट्रीस्टे के बन्दरगाह का अन्तर्राष्ट्रीयकरण चाहते थे और जूलियन मार्च का भाग एक संरक्षित क्षेत्र के धारण पर इटली तथा यूगोस्लाविया के मध्य बँटवारा चाहते थे। चूँकि इस प्रश्न को विदेश मंत्री हल करने में असमर्थ रहे इसलिये यह निश्चित किया गया कि उस पर उपविदेश मंत्री विस्तार पूर्वक विचार करेंगे।

(ख) इटली से भी जाने वाली शक्ति-पूर्ति की रश्मि-सोवियत संघ इटली से १० करोड़ टास्कर की शक्तिपूर्ति बसूना करना और उसका घबि काँच मांग स्वयं हस्तगत करना चाहता था। उसका तर्क था कि महायुद्ध में सबसे अधिक शक्ति उसी को हुई थी घत शक्तिपूर्ति का सबसे बड़ा हिस्सा उसे ही मिलना चाहिये। पश्चिमी राष्ट्र १० करोड़ टास्कर की बज राशि को घतपूर्ति के रूप में अत्याधिक समझते थे। उनका कहना था कि उन्होंने इटली को पर्याप्त धन उपार में दिया है और इटली की धारिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह शक्ति-पूर्ति को रकम दे सके।

(ग) इटली के उपनिवेशों का विभाजन-सोवियत रुक लीबिया पर टुस्टीलिय तथा डोडेकनीस टापू में सैनिक पठा चाहता था। पश्चिमी राष्ट्र मूमध्यसागर और धरक प्रदेशों पर रुक के प्रभाव के विरोधी थे।

इस तरह स्पष्ट ही इटालियन संघ के प्रत्येक पक्ष पर सोवियत संघ और पश्चिमी देशों में महुरे मतभेद विद्यमान थे। इससे प्रश्नों पर भी उनमें मझक्य का सर्वथा अभाव था। जवाहरलाल जब मोसोटोव ने पश्चिमी प्रतिनिधियों से बस्पेरिया और रूमानिया की सरकारों को माग्पता देने का

घानुगोष किया तो उन्होंने इस प्रायना को यह कहकर टुकरा दिया कि मे सरकारें अपने देश की जनता की इच्छा का समुचित प्रति-निधित्व नहीं करती। इन सभी प्रश्नों पर कोई समझौता न हो सभन के कारण घमन म सन्धन का विवेक मंत्रियों का यह सम्मेलन पूरा रूप से विफल होकर भाग हो गया। मुद्र में जिन राष्ट्रों ने विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी वे ही शांति-सधि करने में असफल रहे।

सन्धन की बैठक के उपरान्त और बैठक की अध्यक्ष में कुछ अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें तेजी से घटी जिनका फलस्वरूप दोनों पक्षों के बीच तनाव में वृद्धि होती गई। कम न सुदूर पूर्व में कोरिया में ३८ की अक्षांश रेखा के उत्तर में और मंगूरिया में अपनी स्थिति को सुवृद्ध कर लिया। ऐसा करना उसके लिए इसलिए आवश्यक होगया क्योंकि दक्षिणी कोरिया में अमेरिका ने सिंग मरी (Syngman Rhee) की अध्यक्षता में सुल्समधुम्सा नाम्यवादी विरोधी सरकार को स्थापित करवा दिया था। उस में एक कदम और घाग बढ़ते हुए ईरान में भी अपनी मनार्यें बढ़ाई जब कि पूर्व समझौतों के अनुसार मार्च १९४६ तक उस वहाँ से अपनी फौजें हटा लनी चाहिए थीं। इतना ही नहीं बल्कि यूनान में भी रुधी हस्तलेप बढ़ता गया। अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन को उस की यह नीति पसन्द नहीं आई। उसने इस नीति की भाट में निकटपूर्व और मूमध्यसागर पर रुमी प्रमुख की तृष्णा को पक्षान लिया। इसीलिए उसन इन सोवियत जातों को "विद्यमान संघर्षी की जातें" (Giant Pincer Movements) का नाम दिया। परन्तु संधियों के काम को तो किसी न किसी प्रकार पूरा करना ही था घट दोनों पक्षों ने समझौते के प्रयत्न जारी रहे।

।

पास्को की विदेश मंत्री परिषद (१६ दिसम्बर १९४३)—सन्धन सम्मेलन के बाद अमेरिकन विदेश मंत्री बर्नेस के सुझाव पर १६ दिसम्बर १९४३ को विदेश मंत्री परिषद का दूसरा सम्मेलन हुआ। बर्नेस के इस सुझाव पर इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए फ्रान्स और चीन को आमंत्रित नहीं किया गया। घट यह सम्मेलन केवल संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और सोवियत रूस के विदेश मंत्रियों के मध्य ही हुआ। यह सम्मेलन प्रथम सम्मेलन की अपेक्षा कुछ अधिक सफल रहा और इसमें प्रयोजित पांच शांति संधियों से सम्बन्धित मामलों पर विचार-विमर्श किया गया। इसके अतिरिक्त सम्मेलन के समस्त विचारणीय प्रश्न दो रहे—(१) रुमाभिया एवं वलो रिया की सरकार को नाम्यता देने के प्रश्न पर विचार करना (२) मणुसाति के नियन्त्रण की समस्या पर विचार करना (३) एक ऐसे यंत्र की स्थापना करना जो सुदूरपूर्व तथा ईरान की समस्याओं का समाधान कर सके।

पूरा निश्चित ठिंकि से सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक प्राथमिक कठिनाइयों का शीघ्रता से इस प्रकार निराकरण हो गया कि पहले संधियों के प्राक्य उन राष्ट्रों द्वारा तैयार किये जायेंगे जिन्होंने विचार-सधि पर हस्ताक्षर किये थे। तत्पश्चात् उन प्राक्यों पर वे सब राज्य विचार करेंगे जिन्होंने बुरी राष्ट्रों (Axis-powers) के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था। यह निश्चय किया गया कि इस विचार-विमर्श में पांचवाँ पराजित राज्य

की अपनी बात बहने के अधिकारी हुई। संधियों के अन्तिम वेग लिगने का कार्य विदेश मंत्रियों की परिषद द्वारा किया जायगा। इसके माथ ही यह भी व्यवस्था की गयी कि संधियों पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद पराजित राष्ट्रों का प्रेन्सी में मित्र राष्ट्रों की मेनाए हटा भी जायेगी केवल आस्ट्रिया के साथ यदि हान तक बिपना-स्विन लगी होना के लिए स्वदेश में गानायाल का कार्य सुरक्षित बनाये रखन के लिए रमातिया और हमरी में मोविया सेनाधी का बना रहना स्वीकार किया गया। शासन में यह निर्णय रग की एक बहुत बड़ी सफलता की वरीकि इसमें कम को बिपना के साथ बटोर जने तक करने का परसर मिल गया। हमने बिपना के साथ संधि में बड़ी समझ बनने रली और इनके पूरा न होने पर संधि न होने से बहुत समय तक हीनों देनों में अपनी कीर्ति बनाये रखने का उये अधिकार प्राप्त हो गया।

इसी सम्मेलन में विम्मसिलिंग घायोगों की स्थापना भी की गयी—

(क) सुदूरपूर्व घायोग [Far-Eastern Commission]—यह घायोग कम, संबुक्त राज्य अमेरिका चीन प्र ट ब्रिटेन फ्रान्स हार्लैण्ड कनाडा आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड फिलिपाइन्स और भारत का जो वागिपटन में स्थापित किया गया।

(ख) मित्र परिषद [Allied Council]—जापान के लिए मोवियन कम प्र ट ब्रिटेन संबुक्त राज्य अमेरिका और चीन की यह परिषद बनायी गयी जिसका अध्यक्ष टोकियो स्थित मित्र राष्ट्रों का सर्वोच्च कमाण्डर नियुक्त किया गया।

(ग) रूस अमेरिका घायोग [Russia-America Commission]—इस घायोग की स्थापना कोरिया की समस्या के अध्ययन और समाधान हेतु की गयी।

सम्मेलन में प्रत्युक्ति के नियंत्रण के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि संबुक्त राष्ट्र सब एक अनुकूलित नियंत्रण घायोग [Atomic Energy Control Commission] की स्थापना करे जिसमें सुरक्षा परिषद [Security Council] के समस्त सदस्यों के प्रतिरिक्त कनाडा को भी स्थापित किया जाय।

मास्को-सम्मेलन में रूस के प्रति बर्सेल द्वारा दिखायी गयी उदारता को अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने पसन्द नहीं किया और इसलिए उसके स्थान पर मार्शल को विदेश मंत्री नियुक्त किया गया। ब्रिटेन के बेविन ने भी बर्सेल की तुष्टीकरण की नीति को अनुचित मानते हुए उसकी कठोर घातकता की। इस सम्मेलन के निर्णयों की वाचस्पय रीता में अच्छी प्रतिक्रिया नहीं हुई और ब्रिटेन तथा अमेरिका के मध्य भी एक खाई पैदा हो गयी।

बेरिन का अपविशेस बंभी सम्मेलन—मास्को सम्मेलन के उपरान्त लन्दन की विदेशमंत्री परिषद के निर्णय के अनुसार जनवरी १९४६ में उप विदेशमंत्रियों की नियमित बैठकें जाति संधियों के प्राक्ष्यों को लेकर करने के लिए आरम्भ हुई। ये बैठकें छोटे समय को छोड़ कर १२ जुलाई तक चलती रहीं और इनमें पांच संधि-संधियों (Five-power Treaties) के

मसजिदे अथवा प्रारूप तैयार किये गये। सम्मेलन के समस्त अतिमत्तम समस्या इटली और यूगोस्लाविया के सीमान्त की थी। प्रश्न था कि ट्रीस्टे और उसके समीपवर्ती प्रदेश को कितने दिया जाय—इटली को अथवा युगोस्लाविया को। १९४५ के अग्रिम के अंतिम दिनों में ट्रीस्टे को जर्मन प्राधिपत्य से मुक्त कराने का अथवा युगोस्लाव सत्ता को था। २ मई, १९४५ को मित्र राष्ट्रीय फौजों की ट्रीस्टे में प्रवेश हुई और युगोस्लाविया तथा मित्र राष्ट्रों के मध्य सम्झौते हुए एक सम्झौते के अनुसार ट्रीस्टे के स्वतन्त्र त्तर का दो क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया—एक क्षेत्र पर अमेरिका के प्राधिरत्य को स्वीकार किया गया जब कि दूसरा क्षेत्र युगोस्लाविया के अधिकार में रखा दिया गया। सम्मेलन में सोवियत संघ ने अपना यह तर्क दोहराया कि बुलियन माच एक अविभाज्य पूर्ण इकाई है और सामंजसिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से उक्त पर युगोस्लाविया का अधिकार होना चाहिए। रूसी तर्क के विरोध में पश्चिमी देशों ने कहा कि सांस्कृतिक एवं जातीय आधार पर बुलियन माच पर इटली एवं युगोस्लाविया दोनों ही का अधिकार बांणित है। सोवियत रूस युगोस्लाविया के सम्बन्ध में अपनी बात मनवाने को धामाया था अतः ट्रिपोनिटानिया पर अपनी दुस्तीतिन के बाधे का उसने परिणाम कर दिया। अन्त में बिदो (Bedault) के सुझाव पर ट्रीस्टे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव मान लिया गया। इस विवादास्पद प्रदेश के सम्बन्ध में बिदो ने २९ जून को एक सात सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमें यह कहा गया था कि इस प्रदेश को दस वर्ष की अवधि के लिए स्वतंत्र क्षेत्र घोषित कर दिया जाय और उसके प्रशासन पर रूसी ब्रिटेन अमेरिका फ्रांस, इटली युगोस्लाविया, सुरक्षा परिषद और उस क्षेत्र के निवासियों का संयुक्त नियंत्रण स्थापित किया जाय। प्रस्तावित कार्यक्रम में यह भी कहा गया कि स्वतंत्र क्षेत्र की प्रादेशिक प्रणालियाँ बनाये रखने का उत्तरदायित्व सुरक्षा परिषद पर डाला जाय।

बाद में यह निश्चय हुआ कि बुलियन माच का अधिकांश भाग युगोस्लाविया को मिलेगा। स्वतंत्र क्षेत्र के लिए बाद में एक संविधान भी बनाया गया जिसे इटली के साथ की गयी संधि में शामिल कर लिया गया।

पेरिस का शांति सम्मेलन—प्रारम्भिक चरणों के निराकरण के उपरान्त मास्को की विदेश मंत्री परिषद के निर्णय के अनुसार, पेरिस में २९ जुलाई, १९४६ से १५ अक्टूबर १९४६ तक २१ राष्ट्रों का एक सामान्य सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में विदेशमन्त्री परिषद द्वारा तैयार किये गये ५ पराजित देशों के साथ शांति संधियों के प्रारूपों पर विचार किया गया। संधि प्रारूपों के समय ६० अनुच्छेद ऐसे थे जिन पर विदेशी मंत्री परिषद एक मत न थी। इन सभी का सामान्य सम्मेलन में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। २१ राष्ट्रों के समय १५०० प्रतिनिधियों ने संधि प्रारूपों पर अनुच्छेदों के अनुसार वृत्तकर विचार-विमर्श एवं वाद-विवाद किया। कैम्बेज (Campbell) महोदय का विचार है कि इस सम्मेलन में विचार-विमर्श का जो तरीका अपनाया गया तथा प्रतिनिधियों द्वारा जो दृष्टिकोण रखा गया उसके कारण किसी सर्वमान्य सम्झौते पर पहुँचने की संभावना ही समाप्त हो

गयी। धर्मराष्ट्रीयों के सम्मेलन पर बड़ी शक्तियों के प्रतिमाय प्रभाव का बिरोध किया गया तथा इसी प्रश्न पर असंतुष्ट होकर धर्मराष्ट्रियों के बिदगमनी के सम्मेलन को ही धाक दिया।

पेरिस में होने वाला सामान्य सम्मेलन प्रायः धर्मराष्ट्रीय ही माना जाता है किन्तु तो भी इस सम्मेलन का महत्त्व है क्योंकि इसमें जो सिफारिशें की गई थीं उन पर बिदेशमंत्री सम्मेलन में बड़ी गम्भीरता पूरक बिचार किया गया और उनमें से कुछ को अपनाया भी गया। ४ नवम्बर १९४६ को बिदेश मंत्रियों के इस परिषद की स्म्यार्क में पुनः बैठक हुई। डिसेम्बर १९४६ में सब मतभेदों का निराकरण करते परिषद द्वारा पाँचों शांति संधियों के धर्म प्राकल्प तैयार कर दिये गए। १० फरवरी १९४७ को पेरिस में २१ मंत्रियों का मित्रराष्ट्रों तथा २ पराजित राष्ट्रों द्वारा इस संधियों पर हस्ताक्षर दिये गए। शांति-संधियों के अनुगमन के लिए १३ सितम्बर १९४७ को सिद्धि माननी गई। इस तरह यूरोप के अधिकांश भाग में शांति पर शांति। पुरावृत्ति सम्भव हो सकी। फिर भी किसी भी पराजित राष्ट्र ने शांति संधियों को मंतापत्रक ग्याय संघत और धरती नहीं माना तथा समीच बिम्बोजन का यथाशीघ्र सूत्रगत हुआ। धर्मराष्ट्रिया जर्मनी और जापान के साथ शांति-संधियों के बारे में पारस्परिक मतभेदों की उदया बनी रही और बिठिरोक जारी रहा। चार्ल्स श्लीचर (Charles S. Schlicher) का मत है कि "संघर्ष बिद्वेषों और पराजित राष्ट्रों में कम या तो बिद्वेष संघ और पारिभाष्य शक्तियों में अधिन तथा बहु यूरोप के राजनीतिक डाँक और धर्मराष्ट्रीय अनुस्थापन (International Orientation) के निर्धारण में तो बिद्वेष संघ और पश्चिम के बढ़ते हुए संघर्ष का परिचायक था।"⁺

पाँच शांति संधियाँ
(The Peace Treaties)

जिन २ शांति संधियों पर २१ सप्टेम्बर राष्ट्रों और २ पराजित राष्ट्रों के पेरिस में हस्ताक्षर किये के बिम्बनिश्चित थीं—

इटली के साथ संधि (Peace Treaty with Italy)—इस संधि में १० धारों और १० परिशिष्ट के बिम्बके धर्मगत की जाने वाली प्रमुख बिम्बन्यायें इस प्रकार थीं—

(क) इटली के प्रदेसों का बिभाजन—संधि के धर्मगत इटली को अपने बिभिन्न प्रदेस अन्य राष्ट्रों को देने पड़े—

*"The possibility of arriving of generally accepted solutions by negotiations was ruled by the methods adopted and by the temper of the delegates"
—J. C. Campbell—The U.S. in World Affairs, 1945—
47 p 136.

+Schlicher—Introduction to International Politics p. 347

- (i) फ्रांस को छोटा सैण्ड बर्नार्ड का दर्रा और वीगा टाण्डा (Briga Tonda) का प्रान्त मिला ।
- (ii) यूगोस्लाविया को पूर्वी वायास्स्या जूमिया (Venezia Giulia) में १००० वर्ग मील का क्षेत्र तथा जारा (Zara) और एड्रियाटिक सागर के कुछ टापू मिले ।
- (iii) यूनान को डोडेकैनीज़ रोइम तथा कास्टेलोरिजो (Castellorizo) के टापू मिले ।
- (iv) प्रस्वानिया का साजेनो (Sorseno) का टापू दिया गया ।
- (v) इटली टिरोल यद्यपि इटली के पास रहा किन्तु उसे इस प्रदेश के जमन मापा-मापियों को समान अधिकार और मर्यादित स्वायत्त शासन देना पड़ा ।
- (vi) ट्रीस्टे को स्वतन्त्र बन्दरगाह बनाया गया तथा वहाँ मुरदा परिषद में अपना गवर्नर नियुक्त किया ।

(घ) इटली के उपनिवेशों की समाप्ति—इटली को अपने उपनिवेशों से हटाया गया। उसे एरीट्रिया (Eritrea) और सोमालीलैण्ड के अपने उपनिवेशों पर अधिकार का परित्याग करना पड़ा तथा इसके भविष्य का निर्णय अमेरिका संसद और ब्रिटेन पर छोड़ा गया। इनमें इनके भविष्य का निर्णय करने का अधिकार दिया गया। यू.कि. चार बर्षों का इस विषय में मतभेद न होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ की महा-सभा को इनके भविष्य का निर्णय करने का अधिकार दिया गया। १ दिसम्बर १९४६ में महासभा के निर्णय के अनुसार यह निश्चित हुआ कि १ जनवरी, १९४९ तक सोवियत को स्वतंत्र कर दिया जाएगा। इटालियन सोमाली लैण्ड को १० बर्ष के लिए इटली की ट्रस्टीशिप में रखने का निश्चय हुआ और यह व्यवस्था की गई कि इस अवधि के बाद उसे भी स्वाधीन घोषित कर दिया जाएगा। इरीट्रिया को १९४४ तक संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय में रखने का निश्चय किया।

१९४६ में महासभा द्वारा किये गए निर्णयों के अनुसार सोवियत जनवरी १९४९ में और सोमालीलैण्ड दिसम्बर, १९६० में स्वतंत्र हो गया। प्रस्वानिया और एबीसीनिया युद्ध के दौरान ही मित्रराष्ट्रीय सेनाओं द्वारा स्वाधीन किये जा चुके थे।

उपरोक्त व्यवस्थाओं के अन्तर्गत इस प्रकार इटली का औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तृत समाप्त कर दिया गया।

(घ) इटली से बसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि—संधि के अन्तर्गत यह निश्चित हुआ कि इटली क्षतिपूर्ति के तौर पर ३६ करोड़ डालर मित्रराष्ट्रों को देगा। भुगतान की अवधि ७ वर्ष नियत की गई। यह राशि विभिन्न देशों में इस प्रकार से बँटनी थी—

१ यूगोस्लाविया को	१२५ करोड़ डालर
२ यूनान को	१०५ करोड़ डालर
३ सोवियत संघ को	१००० करोड़ डालर
४ एबीसीनिया को	२५ करोड़ डालर
५ प्रस्वानिया को	५० सास डालर

ने फिनलैण्ड को पुनः पराजित कर दिया और इस शांति-संधि के अन्तर्गत हार्गों के बदले उसमें पोरकक्या-उह का प्रदेश प्राप्त किया।

(ख) तिन्त्रोत्तरराज्य—फिनलैण्ड पर सैनिक प्रतिबन्ध समाप्ते हुए उसके एगन-मैनिनो की सन्ख्या ३४४०० थी सैनिकों की संख्या ४२०० बायुसेना ३०० और बिमानों की संख्या ९० निरक्षर कर दी गयी। यह भी तय हुआ कि यह ७० हजार टन से अधिक के जहाज नहीं रहेगा।

(ग) सतिपूर्ति-सतिपूर्ति के रूप में फिनलैण्ड द्वारा १६ सितम्बर १९४४ में १० वर्षों में सोवियत संघ को ३० करोड़ डॉलर वस्तुओं के रूप में बुकाना तय किया गया।

यूरोप में शांति प्रयासों के फलस्वरूप इस प्रकार को पांच शांति संधियां सम्पन्न की गयीं जिनके द्वारा पराजित राष्ट्रों की भाग्यकारि प्रयासों का समुचित दृष्टि मिला और बिजयी राष्ट्रों को उनकी सतिपूर्ति की व्यवस्था के लिए धन एवं प्रदेश विभागे का प्रबन्ध किया गया। शांति-संधियों ने यूरोप-साथिया को बालकान प्रायद्वीप में सब अविश्वसनी राष्ट्र बना दिया जिसके परिणामस्वरूप बड़ इटली का प्रतिस्पर्धी बन गया। आर्थिक दृष्टिकोण से सर्वाधिक लाभ इसको हुआ क्योंकि पाँचों राष्ट्रों पर सारी नवी सतिपूर्ति का ७० प्रतिशत भाग बर्षान्व १० करोड़ डॉलर वस्तु करने का अधिकार इसको मिला। राजनीतिक प्रभाव की दृष्टि से भी पूर्वी यूरोप में इसका अधिकार स्थापित हो गया। २६ जून १९४३ की संधि के अनुसार उसे बैकोस्लोवाकिया से सबकार्पेथियन रुथेनिया (Subcarpathian Ruthenia) मिला और पोलैण्ड से १९ फरवरी १९४३ की संधि द्वारा पूर्वी पोलैण्ड का बड़ा भाग प्राप्त हुआ। इन शांति-संधियों से पश्चिमी राष्ट्रों को आर्थिक अथवा प्रादेशिक दृष्टि से किसी प्रकार का लाभ नहीं हुआ अन्तर्गत समझौतों में इसकी पांचे उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं जिनके परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्र अन्तर्गत जापान और आस्ट्रिया के साथ सामूहिक रूप से शांति संधियां करने में असफल रहे।

शांति संधियों का अन्तर्गमन—इटली, हंगरी, बल्गेरिया, रूमानिया और फिनलैण्ड के साथ सम्पन्न की गयीं शांति संधियां यद्यपि १३ सितम्बर १९४७ से अन्तिम रूप में लागू कर दी गयीं तथापि इन संधियों का पूरी तरह पालन नहीं किया गया और इनके अनेक प्रावधानों का उल्लंघन हुआ अथवा उनकी अवहेला की गई। * हंगरी, बल्गेरिया, और रूमानिया के लोगों की स्वतंत्रता की भारती के प्रति अभी तक केवल मौखिक सेवा [Lip Service] ही बुकानी गयी है। सोवियत संघ की सहमति से डैम्पूर में स्वतंत्र-नी-स आन्दोलन की भारती की गयी थी किन्तु बाद में इसमें इस प्रकार की स्वतंत्रता को क्रियामित

* "Some two years after the cessation of hostilities, the peace-treaties with Italy, Hungary, Bulgaria, Rumania, and Finland were finally declared to be in effect as of September 15, 1947. Many of their provisions, however, have been deliberately violated, evaded or ignored."

होने से रोक दिया। इस पर ईंग्लैंड में अन्तर्राष्ट्रीय मोनो-सोवियत-सत्ता की व्यवस्था के लिए सन् १९४८ के पुनर्जाई-प्रगस्त में बेलग्रेड में एक सम्मेलन बुलाया गया। इस में इस तरह की संधि प्रस्तावित की जिसमें सिद्धान्त रूप में ईंग्लैंड में स्वतंत्र मोनो-सोवियत को स्वीकार किया गया था लेकिन व्यवहार में इस व्यवस्था मोनो-सोवियत व्यवस्था पर बुद्धारीपात था। पश्चिमी शक्तियों ने संधि पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया और रुमी प्रयामों की बहुत निन्दा की। तत्पश्चात् व्यावहारिक दृष्टि से ईंग्लैंड का नियन्त्रण मोनोसोवियत संधि और उससे भूत के हारों में बना गया केवल यूगोस्लाविया ही इस सम्बन्ध से संबंधित स्थिति के प्रति संपर्कीय रहा।

महाशक्तियों के पारस्परिक विरोधों के कारण सुरक्षा-परिषद इटालियन भाँति-संधि में की गई व्यवस्था के अनुसार ट्रीस्टे के मुक्त क्षेत्र [Free Territory of Trieste] का निर्माण करने के लिए आवश्यक कदम उठाने में असमर्थ रहा। इस प्रकार, वहाँ सैन्यनिरपेक्ष क्षेत्र ट्रीस्टे के मुक्त क्षेत्र का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया वहाँ व्यवहार में यूगोस्लाविया का एक ही क्षेत्र [Zone B] और अमेरिका तथा ब्रिटिश सेनाओं का क्षेत्र [Zone A] पर नियंत्रण विद्यमान रहा। १९४८ में इटालियन निर्वाचनों के पश्चात् पर सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स में अन्तर्गत ही यह प्रस्तावित किया कि ट्रीस्टे इटली का सौदा किया जाय किन्तु यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाया असम्भव प्रमाणित हुआ। वास्तव में इटली और यूगोस्लाविया दोनों की सहमति के बिना कोई भी वास्तविक समझौता नहीं हो सकता था। यद्यपि १९४८ के बाद शान्ति के मध्य सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ किन्तु फिर भी अनेक महीनों तक ट्रीस्टे विवाद शान्त व्यवस्था में विद्यमान रहा। अन्त में अन्त में समझे-बाद-विवाद के उपरान्त ९ अक्टूबर, १९५४ को इटली, यूगोस्लाविया-शेड ब्रिटेन और सयुक्त राज्य अमेरिका ने ट्रीस्टे विवाद पर एक सहमति पत्रका समझौते के स्मरणपत्र (Memorandum of Understanding) पर हस्ताक्षर किये। इस स्मरण पत्र के अनुसार ईंग्लैंड अमेरिका, फ्री-क्षेत्र ए [Zone A] का संपूर्ण सम्युक्त भाग इटली को दे दिया गया, और क्षेत्र बी [Zone B] का छोड़ा, सा बड़ा हुआ भाग यूगोस्लाविया को दिया गया।-

इटालियन भाँति-संधि अमेरिका, हंगरी और रूसिया के साथ की गयी संधियों की भाँति ही संपूर्ण भूतप्राय हो गयी। १९५१ में सयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और फ्रांस ने सोवियत संघ तथा अग्निशी रक्षण वाले अन्य राष्ट्रों के सामने प्रस्ताव रखा कि संधि का सशोषण किया जाय तथा इटली का पूर्ण सार्वभौमिकता की प्राप्ति एवं उच्च सयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया जाय। कि इटली अपना भाग्य पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ बाँध चुका था तथा प्रस्तावित संधि सशोषण का प्रारम्भिक उद्देश्य इटली की अन्तर्गत सेनाओं पर सन् प्रतिबंधों को हटाना था पर इसमें कोई प्राण्य नहीं कि कुछ ने प्रस्ताव का उत्तर अंततः सशोषणक दिया। अंत स्थिति यह है कि इटली ने अपनी पूर्ण स्वतंत्रता और राष्ट्रीय सुरक्षा को अपने अस्तित्व के लिये आवश्यक मानते हुए भाँति संधि की

प्रथिकांग पारामों का पूर्ण उन्मूलन कर दिया है और ऐसा करने में उसे नारवाय मन्त्रियों के दृढ़ समर्थन का प्रयत्न व प्रत्यक्ष बल मिला है।

शास्त्रिया के साथ संधि

[Peace Treaty with Austria]

छोटे-छाटे राज्यों के साथ उपरोक्त पाँचों संधियाँ करने में मित्र राष्ट्रों को अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा परन्तु शास्त्रिया जर्मनी और जापान की समस्याएँ इतनी ससम्प्री हुईं तथा महत्वपूर्ण थीं कि इनके साथ संधि संधियाँ करने में मित्र राष्ट्रों के मार्ग में पैम्पीर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं और उनके जापसी तनाव बढ़ते गये। अक्टूबर १९४३ से होम वाली सत्री बैठकों में समस्या को सुलझाने में काफी समय व्यर्थ किया गया, परन्तु मित्र राष्ट्र किसी एक सब-सम्पत्त में तीव्रतापूर्वक निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ रहे। फिर भी शास्त्रिया के साथ संधि करने की दिशा में प्रगति और जापान के अधिक सहाय्य पुष्टिपोषक हुए।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान नवम्बर १९४३ में मास्को में हुए विदेशमन्त्री सम्मेलन में यह घोषणा की गयी थी कि जर्मनी द्वारा शास्त्रिया को अनैतिक रूप से घेरने का प्रयत्न है जिससे शास्त्रिया को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापना की जायगी। इस घोषणा से स्पष्ट था कि युद्ध के बाद शास्त्रिया के साथ यह सन्ध होना चाहिए जो एक स्वतंत्र किन्तु हुए देश के साथ होता है न कि यह समूह को बनूँ देश के साथ किया जाता है। परन्तु इस घोषणा के बावजूद भी जुलाई १९४३ के सम्मेलन के अनुसार शास्त्रिया चार क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया वहाँ तक कि लोचियत क्षेत्र में स्थित शास्त्रिया की राजधानी वियना के भी चार टुकड़े कर दिये गये। फिर भी इन विभाजनों के होते हुए भी शास्त्रिया को जर्मनी इच्छानुसार सरकार स्थापित करके एवं अपने वैदेशिक सम्बन्धों का सहायन करने का अधिकार दिया गया। युद्ध समाप्त होने के वर्षभर विदेश मन्त्रियों की परिषद में शास्त्रिया और जर्मनी का मामला अनेक बार उठा और चला। अगस्त-मई १९४६ में वेरिड की विदेशमन्त्री परिषद में बहुसंख्यक राज्य अमेरिका ने शास्त्रिया की संधि का प्रश्न उठाया लेकिन रूस द्वारा इसे वीटो (Veto) कर दिया गया। जून-जुलाई १९४६ की विदेशमन्त्री परिषद को दूसरी बैठक में पुनः विदेश तथा अमेरिका ने शास्त्रिया से विदेशी सेनाएँ हटाने का प्रस्ताव पेश किया परन्तु रूस द्वारा विरोध में यह तर्क किया गया कि शास्त्रिया में नाजी ताकतों का पूरी तरह उन्मूलन नहीं हुआ है और वह जर्मनी मास्को विराधी शरणाधिकियों का घर है अतः वहाँ से सेनाएँ नहीं हटायी जा सकती।

पाँच संधिसन्धियों (Five Peace Treaties) के अन्तर्गत होने के उपरान्त विदेशमन्त्री परिषद को १९४७ के मास्को सम्मेलन में शास्त्रिया और जर्मनी के साथ संधि स्थापित करने वाले मसलों पर पुनः विचार-विमर्श हुआ। शास्त्रिया के सम्बन्ध में एक व्यापक समझौता होने की आशाएँ

जायूठ हुई। इस समय घास्ट्रिया से सम्बन्धित सभ्य शान्ति पर सोवियत रूस का पारचायन शक्तिशाली के साथ हीन मुख्य शान्ति पर मतभेद था—

- (i) दक्षिणी कैरिन्थिया (Southern Carinthia) में घास्ट्रियन प्रदेश के एक भाग पर युगोस्लाविया का शासन,
- (ii) युगोस्लाविया द्वारा शान्तिपूर्ति के रूप में १२ करोड़ की धनराशि की मांग एवं
- (iii) जर्मन सम्पत्ति (assets) की परिमाणा।

पश्चिम बिदा (जर्मन सम्पत्ति की परिमाणा का) अधिक आधारभूत था। सोवियत रूस का कहना था कि घास्ट्रिया में किसी भी साधन द्वारा अधिकृत की गयी जर्मन सम्पत्ति पर उसका स्वयं का अधिकार है। इस परिमाणा को मान लेने पर घास्ट्रिया अपनी बहुत ही सम्पत्ति एवं बिनाश भोगों से संबंधित रह जाता। इस कारण पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा इस सोवियत शान्ति का बृहत्पूर्वक विरोध किया गया। मतभेद के कारण अब घास्ट्रिया के मामले पर कोई समझौता न हो सका तो विदेशमंत्री परिषद में एक शत्रु शक्ति संधि धायोय Four Power Treaty Commission] की स्थापना की जो बिना में समस्या का समाधान ढूँढने के लिए मिलन वांछा था। इस धायोय की घनेक बैठकों में पर्याप्त बिचार-विमर्श करने के बाद भी घास्ट्रिया के सम्बन्ध में कोई संतोषजनक हल नहीं निकल पाया।

१९२२ के प्रारम्भ तक घास्ट्रिया का प्रश्न धर धूल में लटक रहा। अप्रैल १९२२ में घास्ट्रिया के चांसलर जुलियस रैब (Julius Raab) ने अपने देश की निरपेक्ष नीति (Policy of Neutrality) की घोषणा की। सोवियत रूस ने इन घोषणा का समर्थन किया। बाद में शान्ति के लिए चार बड़े देशों के विदेश मंत्री बिना में मिले। काफ़ी बिचार विमर्श के उपरान्त १२ जुलाई, १९२२ को घास्ट्रिया के साथ शान्ति-संधि पर हस्ताक्षर हो गये। इस संधि द्वारा १२ मार्च १९१८ के बाद १७ वर्ष तक पराधीन रहने के पश्चात् घास्ट्रिया को स्वाधीनता एवं सर्वोच्च प्रभुता प्राप्त हुई। घास्ट्रिया राज्य की संधि पर सयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस ब्रिटिश और घास्ट्रिया ने हस्ताक्षर किये। संधि के द्वारा घास्ट्रिया यद्यपि 'एक प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र और प्रजातन्त्रात्मक राज्य (A Sovereign, Independent and Democratic State) के रूप में उचित हो गया किन्तु उसके द्वारा यह बचन दिया गया कि वह जर्मनी के साथ किसी प्रकार का राजनीतिक या धार्मिक संबंध नहीं बनाकर और बिधिसकारी शक्तों की दृष्टि में अपने आप को सम्मिलित नहीं करेगा। संधि के द्वारा की गई व्यवस्थाओं के धनुष्य ३१ दिसम्बर, १९२२ तक घास्ट्रिया से सभी देशों की सेनाओं को हट जाना था। इसमें कोई संदेह नहीं कि घास्ट्रिया को स्वतन्त्रता प्रदान करने वांछा यह समझौता शीघ्र-पूर्वक सिद्ध करने के बाद पूर्व और पश्चिम के बीच प्रथम और महत्वपूर्ण शान्ति समझौता था।*

*Thus Austria regained her independence in "the first major European settlement between East and West since the outbreak of the cold war"

—Quoted from "International Relations" (page 443) by Palmer & Perkins.

जर्मनी के साथ संधि-वार्ता

[Peace Talks with Germany]

यद्यपि युद्ध कास में ही विभिन्न सम्मेलनों द्वारा मित्र राष्ट्रों ने यह तय कर लिया था कि जर्मनी के साथ आग्रि रचना किन सिद्धान्तों के आधार पर होगी किन्तु युद्ध के बाद यह समस्या इतने उग्र रूप में प्रकट हुई और पाश्चात्य शक्तियों ने मोक्षियत सब के मध्य जर्मनी के प्रश्न पर इतने व्यापक मतभेद प्रकट हुए कि घनक प्रयत्नों के बावजूद भी अब तक इस सम्बन्ध में बिबिषुबक कोई संधि सम्पन्न नहीं हो सकी है।

जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की अन्तिम अवस्था के समय अगस्त १९४४ में हुए पोर्टस्मथ सम्मेलन में सबसे अधिक विस्तृत व्यवस्थाएँ की गयी थीं। इस सम्मेलन में अमेरिका, ब्रिटेन और रूस द्वारा यह निर्णय किया गया था कि युद्धोत्तरावस्था जर्मनी का पूर्ण रूप से अस्तित्वपूर्ण और निःशस्त्रीकरण किया जाय ताकी कानून का सम्मूलन और ताकी हक को भंग किया जाय। युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाया जाय प्रशासन का केंद्रीकरण और गणतन्त्री सिद्धान्तों पर स्वामीय उत्तरदायित्व का विकास हो। गणतन्त्री और बास्वों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध समाप्त जाय जर्मनी की विदेशों में पड़ी सम्पत्ति और औद्योगिक उत्पादनों से प्राप्त रकम क्षतिपूर्ति प्रदा करने में व्यवस्था की जाय। इसके अतिरिक्त जर्मनी को अमेरिकन ब्रिटिश रूसी और फ्रान्सीय अधिकार क्षेत्रों में बांटा गया तथा इसके नियन्त्रण के लिए चार महाशक्तियों के प्रतिनिधियों की एक परिषद स्थापित की गयी।

युद्ध की समाप्ति पर स्थिति यह थी कि चारों महाशक्तियों ने जर्मनी को चार भागों में विभक्त कर उन पर अपना अधिकार जमा लिया था और चारों ही भागों के प्रधान सेनापतियों को अपने प्रदेश में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। जर्मनी की राजधानी बर्लिन को भी चार भागों में विभक्त कर दिया गया था। चारों राष्ट्रों की मित्र राष्ट्रीय नियन्त्रण परिषद बर्लिन में स्थापित हुई जो आधी मतभेदों के कारण अधिक समय तक काम नहीं कर सकी और १९४८ में समाप्त हो गयी।

युद्ध के बाद १९४६ से जर्मनी से सम्बन्धित प्रत्येक मामले पर इस एवं अमेरिका में अवरुद्ध सीमाशान्ति होने लगी। रूस की मांग थी कि जर्मनी को शक्तिशाली सशस्त्र राज्य बनाया जाय और वह १८ वर्षों के भीतर इस अवस्था में क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदा करे। इसके अतिरिक्त रूस का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाय और पूर्वी सीमाओं का नये ढंग से निर्धारण हो। फ्रान्सीय-अमेरिकन युट चाहता था कि जर्मनी में प्रजातांत्रिक सशस्त्र सरकार की स्थापना भी जाय शान्ति का पुनर्निर्धारण किया जाय और जर्मनी की अन्तर्-राष्ट्रिय वृष्टि से स्वल्प बना भी जाय ताकि वह क्षतिपूर्ति दासानी से प्रदा कर सके।

पेरिस बैठक में अमेरिकन विदेशमंत्री बर्नेस (Boardman) ने रूसी मन को कम करने की वृष्टि से जर्मन निःशस्त्रीकरण और अस्तित्वपूर्ण के सम्बन्ध में एक २३ वर्षीय संधि का सुझाव रखा परन्तु ६ जुलाई १९४६ को मोस्तो-टोव ने यह कह कर इस संधि प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि यह अपूर्ण है और

इसका उद्देश्य जर्मनी के शक्ति का पुनरुत्थान करना है। इसके ध्येय ही रिच मासोटोव में परिषद में घोषणा की कि जर्मनी के साथ म पि नरन स पूव एक ऐसी प्रतिष्ठित जर्मन सरकार की स्थापना की जानी चाहिए जो विमुक्त रूप से लोकतांत्रिक हो और नाज़ी तत्त्वों को नष्ट करने में तथा मित्र राष्ट्रों के प्रति अपने दायित्वों को—विशेषकर क्षतिपूर्ति के दायित्वों को पूरा करने में समर्थ हो। इस कः इस समय से अमेरिका, जर्मनी की धार्मिक एकता के प्रयत्न में लग गया और उसने घोषणा की कि वह जर्मनी की धार्मिक एकता की दृष्टि से जर्मन अधिकार-क्षेत्रों से सम्बन्धित सरकारों के साथ मित्रमूलक काम करने को तैयार है। २० जुलाई, १९४६ को ब्रिटेन ने स्पष्टतया इस को यह बता दिया कि यदि वह (रूस) जर्मनी की धार्मिक एकता के प्रस्ताव का स्वीकार नहीं करेगा तो ब्रिटेन अमेरिका के प्रस्ताव को मान गया और ब्रिटेन तथा अमेरिका के जर्मन अधिकार-क्षेत्रों को संयुक्त कर दिया गया। इस की वृत्त धासोचनाओं और उसके लक्ष्य विरोध का मित्र राष्ट्रों के निश्चय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और १ जनवरी १९४७ को ब्रिटिश-अमेरिकन अधिकार क्षेत्रों को मिला कर एक द्विराज [Bizonia] का निर्माण किया गया। इस द्विराज के प्राणसम हेतु एक संयुक्त बोर्ड एक संयुक्त धार्मिक नियंत्रण बोर्ड एवं एक जर्मनी कार्यपालिका कमेटी की स्थापना की गयी।

स्पष्टतः उपरोक्त व्यवस्था जर्मन समस्या का कोई समाधान न थी। जनवरी १९४७ से मार्च १९४७ के मध्य जर्मनी और आस्ट्रिया की समस्या को हल करने के लिए विशेष-मंत्रियों की घनेक बैठकें हुईं। १० मार्च, १९४७ से धारम्भ होने वाली भास्को की विशेष-मन्त्री परिषद की बैठक में जर्मन समस्या के सम्बन्ध में ५० दिन तक सम्बा बाद-विवाद होता रहा। जर्मनी की बल और जन सेना की समाप्त करने वहाँ प्रजातन्त्र तान और औद्योगिककरण समाप्त करके जैसे विषयों पर गरमा-गरम बहसें हुईं। परन्तु न तो परिषद जर्मनी के विषय में कोई संधि ही तैयार कर सकी और न ही जर्मनी की धार्मिक तथा राजनीतिक एकता में सहायक हो सकी। इस परिषद में होने वाले उग्र विवादों से केवल दोनों पक्षों में कटुता और बैमनस्य की वृद्धि ही हुई। तत्कालीन अमेरिकन विशेष मन्त्री जॉन फास्टर जैसे के मतानुसार दोनों पक्षों में मतभेद के निम्नलिखित कारण थे—

१ संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और फ्रांस जर्मनी का ऐसा पुनर्निर्माण चाहते थे जिससे अल्पकाल में जर्मनी कमी भी मुक्त न कर सके। इसके विपरीत रूस जर्मनी को पुनः मध्य यूरोप में एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने का चाहता था।

२ शान्ति को सुरक्षित बनाये रखने की दृष्टि से पोट्सडम सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि जर्मनी में धार्मिक शक्ति-सम्पन्न केन्द्रीय सरकार न हो; किन्तु सोवियत रूस सोवियत क्षेत्र में बसिने से संभावित होने वाली शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली राजनीतिक दल और दृढ़ युधिमत स म के निर्माण का पक्षपाती था।

जर्मनी के साथ संधि-वार्ता

[Peace Talks with Germany]

उद्यमि युद्ध काय में ही विभिन्न सम्मेलनों द्वारा विषय राष्ट्रों ने यह तय कर लिया था कि जर्मनी के साथ शांति रचना किन्तु सिद्धांतों के आधार पर होगी किन्तु युद्ध के बाद यह समस्या इतने उग्र रूप में प्रकट हुई और पश्चात्पक्ष अधिकारी व सोवियत संघ के मध्य जर्मनी के प्रश्न पर इतने व्यापक मतभेद प्रकट हुए कि धर्मक प्रयासों के बावजूद भी अब तक इस सम्बन्ध में विश्वपूर्वक कोई संधि सम्पन्न नहीं हो सकी है।

जर्मनी के विघ्न में युद्ध की अन्तिम अवस्था के समय अगस्त १९४४ में हुए पोर्टस्मथ सम्मेलन में सबसे अधिक विस्तृत व्यवस्थाएँ की गयी थीं। इस सम्मेलन में अमेरिका ब्रिटेन और रूस द्वारा बहु विसुय किया गया था कि युद्धपश्चात् जर्मनी का पूरा रूप से धर्मनिराकरण और निःशस्त्रीकरण किया जाय ताकी कानून का सम्मूलन और प्राचीन रूप को संयोजित किया जाय। युद्ध-अपराधियों पर मुकदमा चलाया जाय प्रशासन का केन्द्रीयकरण और मध्य-पूर्वी सिद्धांतों पर स्थानीय उत्तरदायित्व का विकास हो अर्थात् और बाहरों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाया जाय जर्मनी की विदेशों में पड़ी सम्पत्ति और औद्योगिक उत्पादनों से प्राप्त रकम क्षतिपूर्ति पदा करने में व्यय की जाय आदि। इसके अतिरिक्त जर्मनी को अमेरिकन ब्रिटेन रूस और फ्रेंच-ब्रिटेन अधिकार क्षेत्रों में बांटा गया तथा इसके नियन्त्रण के लिए चार महा-शक्तियों के प्रतिनिधियों की एक परिषद स्थापित की गयी।

युद्ध की समाप्ति पर स्थिति यह थी कि चारों महाशक्तियों ने जर्मनी को चार क्षेत्रों में विभक्त कर इन पर अपना अधिकार जमा लिया था और चारों ही क्षेत्रों के प्रभाव सैन्यशक्तियों को अपने प्रदेश में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। जर्मनी की राजधानी बर्लिन को भी चार भागों में विभक्त कर दिया गया था। चारों राष्ट्रों की मिली राष्ट्रीय नियन्त्रण परिषद बर्लिन में फिर स्थापित हुई जो प्रायः सभी मतभेदों के कारण अधिक समय तक काम नहीं कर सकी और १९४८ में समाप्त हो गयी।

युद्ध के बाद १९४९ से जर्मनी से सम्बन्धित प्रत्येक मामले पर रूस एवं अमेरिका में अन्तराष्ट्र वार्तावार्ता होवे लगी। इस की शाय ही कि जर्मनी को अतिरिक्तीय तथीय राज्य बनाया जाय और वह १८ वर्षों के भीतर इस अवधि के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति के रूप में भरा करे। इसके अतिरिक्त रूस का अन्तर्राष्ट्रीय करण किया जाय और पूर्वी सीमाओं का उसे डग से निर्धारण हो। साम्-अन्तरिक्ष गूट चाहता था कि जर्मनी में प्रजातांत्रिक स्थानीय सरकार की स्थापना की जाय सैनिकों का पुनर्निर्धारण किया जाय और जर्मनी की हात-अधिक दृष्टि से स्वयं बना की जाय ताकि वह क्षतिपूर्ति प्राप्तानी से बचा कर सके।

वेरिड बैठक में अमेरिकन विदेशमंत्री बर्नेस (Byrnes) ने सभी मय को मन करने की दृष्टि से अर्थात् निःशस्त्रीकरण और धर्मनिराकरण के सम्बन्ध में एक २२ वर्षीय संधि का सुझाव रखा परन्तु ६ जुलाई १९४९ को मोस्को-टोक ने यह कह कर इस संधि प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि वह अपूर्ण है और

इसका उद्देश्य जर्मनी शैतिक शक्ति का पुनरुत्थान करना है। इसके पहले ही दिन मासोटोव न परिषद में घोषणा की कि जर्मनी के साथ संधि करन से पूर्व एक ऐसी अग्रिम जर्मन सरकार की स्थापना की जानी चाहिए जो किमुद रूप से लोकतांत्रिक हो और नाजी तत्वों को मज्ज करने में तथा मित्र राष्ट्रों के प्रति अपने दायित्वों को—विशेषकर क्षतिपूर्ति के दायित्वों को पूरा करने में समर्थ हो। रूस के इस उद्यम से अमेरिका जर्मनी की प्राबिक एकता क प्रयत्न में लग गया और उसने घोषणा की कि वह जर्मनी की प्राबिक एकता की दृष्टि से अमन अधिकार-क्षेत्रों से सम्बन्धित सरकारों के साथ मित्रभुक्त कर काम करने को तैयार है। २० जुलाई १९४६ को ब्रिटेन न स्पष्टतया रूस को यह बता दिया कि यदि वह (रूस) जर्मनी की प्राबिक एकता के प्रस्ताव का स्वीकार नहीं करेगा तो ब्रिटेन अमेरिका के प्रस्ताव को मान लेगा और ब्रिटेन तथा अमेरिका के जर्मन अधिकार-क्षेत्रों को संयुक्त कर दिया जायगा। रूस की कटु घातोलक्षणाओं और उसके उग्र विरोध का मित्र राष्ट्रों के निश्चय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और १ जनवरी १९४७ को ब्रिटिश-अमेरिकन अधिकार क्षेत्रों को मिला कर एक डिस्ट्रिक्ट [Bizonia] का निर्माण किया गया। इस डिस्ट्रिक्ट के प्रशासन हेतु एक संयुक्त बोर्ड एक संयुक्त प्राबिक नियन्त्रण बोर्ड एवं एक जर्मनी कार्यपालिका कमेटी की स्थापना की गयी।

स्पष्टतः उपरोक्त व्यवस्था जर्मन समस्या का कोई समाधान न थी। जनवरी १९४७ से मार्च १९४७ के मध्य जर्मनी और आस्ट्रिया की समस्या को हल करने के लिए बिरेन-मन्त्रियों की अनेक बैठकें हुईं। १० मार्च १९४७ से आरम्भ होने वाली आस्ट्रिया की बिरेन-मन्त्रो परिषद की बैठक में जर्मन समस्या के सम्बन्ध में १७ दिनों तक सन्नाह बाह-विवाद होता रहा। जर्मनी की बस और जल सेना को समाप्त करने वहाँ प्रजातन्त्र माने और औद्योगिककरण समाप्त करने जैसे विषयों पर मतान्तरम बहस हुई। परन्तु न तो परिवश जर्मनी न विषय में कोई संधि ही तयार कर सकी और न ही जर्मनी की प्राबिक तथा राजनीतिक एकता में सहायक हो सकी। इस परिषद में होने वाले उग्र विवादों से केवल दोनों पक्षों में कटुता और बेमनस्य की वृद्धि ही हुई। अन्तर्गत अमेरिकन बिरेन-मन्त्री जॉन फास्टर डर्सेस के मतानुसार दोनों पक्षों में मतभेद के निम्ननिमित्त कारण ये—

१ संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और फ्रान्स जर्मनी का ऐसा पुनर्निर्माण चाहते थे जिससे अक्षय्य में जर्मनी कमी भी मुक्त न कर सके। इसके विपरीत रूस जर्मनी को पुनः मध्य यूरोप में एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने का आकांक्षी था।

२ शांति को सुरक्षित बनाये रखने की दृष्टि से पोद्सहम सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि जर्मनी में प्राबिक शक्ति-संरक्षण केन्द्रीय सरकार न हो किन्तु सोवियत रूस सोवियत क्षेत्र में अक्षय्य से सञ्चित होने वाली शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार अक्षय्यक्षेत्रीय राजनीतिक दल और ट्रेड यूनियन संघ के निर्माण का पक्षपाती था।

३ जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से निर्बल बनाने के लिए पोट्सडम सम्मेलन ने यह व्यवस्था की थी कि युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने वाले जर्मन कारखानों की मशीनों एवं अन्य सामग्री क्षतिपूर्ति के रूप में रूस आदि को दे दी जायगी। रूस ऐसे बहुत से कारखाने जिनमें अपने देश में से गया लेकिन इन्हें बनाने में सफल नहीं हो सका। अधिकांश मशीनें रूसी स्टेशनों पर पड़ी हुई जंग खाते लगीं। यद्यपि रूस यह चाहने लगा कि क्षति-पूर्ति के रूप में जर्मन कारखाने न उठाये जायें अपितु उन कारखानों में उत्पादित माल लिया जाय और इसके लिए जर्मनी का प्रोत्साहीकरण हो और वह जर्मनी से १० अरब डॉलर का इर्जाना वसूल कर सके।

उपरोक्त मतभेदों के प्रतिरिक्त दोनों ही पक्षों में और भी कुछ मतभेद थे—

(i) पश्चिमी राष्ट्रों की का नया संविधान संघात्मक (Federal) बनाना चाहते थे जबकि रूस वारम्भ में सहमत होने पर भी बाद में इसका विरोध करने लगा।

(ii) पश्चिमी देश राइन प्रदेश को जर्मनी से पृथक करना चाहते थे पर रूस इस बात से सहमत न था।

(iii) मित्र राष्ट्र इस पक्ष में थे कि जर्मनी के औद्योगिक व्यापारिक संघों तथा बड़ी बनीदारियों को नष्ट किया जाय जबकि मास्को रूस पर वार शक्तियों के नियंत्रण का और व्यापारिक संघों (Cartels) तथा बनीदारियों आदि की समाप्ति का पक्षपाती था।

(iv) जर्मनी के पूर्वी सीमाओं के सम्बन्ध में भी वे एक मत नहीं थे। वास्टा में इसे कर्बन रेखा माना गया था और पोट्सडम में पूर्वी प्रतियोगिता को रूस तथा पोलैण्ड के मध्य विभाजित करने का समझौता हुआ था। लेकिन यह निश्चित नहीं किया गया था कि पोलैण्ड द्वारा रूस को दिये जाने वाले प्रदेश की क्षति पूर्ति जर्मनी से किस तरह पूरी की जायेगी। सोवियत रूस पोट्सडम सम्मेलन द्वारा निर्धारित-सीमा को अन्तिम मानता था जबकि पश्चिमी राष्ट्र इसमें संशोधन के पक्षपाती थे।

(v) सोवियत रूस ब्रिज (Bizonia) के निर्माण से बहुत श्रेयित हो गया था क्योंकि एक तो इसका समिन्धाय पश्चिमी जर्मनी को रूस जर्मनी से पृथक करना था और दूसरा रूस के क्षेत्र से जो खनिज संयदा का प्रवाह था और इन्हीं क्षेत्रों में सम्मिलित था—सोवियत रूस को बुर रक्षना चाहता था। वैसे कि कहा जा चुका है रूस की आकांक्षा बड़ी थी कि रूस क्षेत्र पर जारों राष्ट्रों का नियंत्रण रहे।

(vi) पूर्व और पश्चिम की लोक मायताओं में व्यापारभूत अन्तर था क्योंकि पश्चिम के निवासियों को विधेय कर अमेरिकन लोगों को—महामुद्र से उत्पन्न विनाम का उत्तना व्यावहारिक अनुभव नहीं था जितना अक्सियों को था और साथ ही उनके मन-बन की भी इतनी क्षति नहीं हुई थी जितनी रूस वालों की। अक्सियों को नाबियों के हावों से अत्याचार और आर्थिक विनाश सहन करना पड़ा था। इसीलिये मोलोटोव का कहना था कि क्षति

पूर्ति का प्रश्न संयुक्त राज्य अमेरिका के लिये एक भिन्न घष रकता है और सोवियत संघ के लिये दूसरा । समुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति दूसरी ही है । नाज़ी अधिभूत क्षेत्रों में उनके द्वारा किये गये विनाश धार दुष्कर्म और मूट पाट धारि का अनुभव करने के उपरान्त स्त्री नागरिक को महसूस करते हैं संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग बंधा महसूस नहीं करते ।”

उपरोक्त ममी मतभेद इतने व्यापक और उग्र थे कि पूर धोर परिवर्तन में कोई समझौता हा मकमे की सम्भावना भास्वो सम्ममन में नजर नहीं आई और फ्रमता जर्मनी के साथ कोई संधि नहीं की जा सकी । धब मित्र राष्ट्र (ब्रिटेन अमेरिका और फ्रांस) रुस की उपेक्षा करते हुए अपने डाग अधिभूत जर्मन प्रदेशों के बारे में एक कदम और धाग बढ़ । जनवरी १९४७ में ब्रिटेन और अमेरिका डिशोन (Biztonia) का निर्माण कर ही चुके थे ३१ मई १९४८ को फ्रांस के साथ मिल कर उन्होंने अर्धाय अमेरिका ब्रिटेन व फ्रांस सीमाओं में अपने सीमाओं क्षेत्रों (Trizonia) के लिए एक केन्द्राय सरकार बनाना स्वीकार कर लिया । २१ सितम्बर, १९४९ को पश्चिमी जर्मनी में संघीय गणराज्य (Federal Republic of Germany) की स्थापना हुई जो धब तक बना धा रहा है और त्रिमन्त्री राजधानी बोन (Bonn) है । मित्र राष्ट्रों के सैनिक कमीशन में पश्चिमी जर्मनी के इस संघीय गणराज्य को प्रशासनिक अधिकार प्रदान किये । दूसरी ओर पूर्वी क्षेत्र में सोवियत संघ ने ७ अक्टूबर १९४९ को जर्मन जनताधिक गणराज्य (German Democratic Republic) की स्थापना का जिसका राजधानी सोवियत संघ के वर्तमान में स्थित है ।

चूंकि धमी तक जर्मनी के साथ कोई शांति संधि सम्पन्न नहीं हो सकी थी धत बंधानिक दृष्टि से जर्मन और मित्र राष्ट्रों के मध्य मुद्र की धबस्था विद्यमान थी । सप् १९४९ में पार्लामेण्ट राज्यों में अपनी तरफ से जर्मनी के साथ मुद्र की समार्ति की बोरणा कर दी और २६ मई १९४२ को “Contractual Agreements” के द्वारा पश्चिमी जर्मनी की व्यावहारिक स्वासासन प्रदान कर लिया गया । १ मई १९४५ को जर्मन नेताओं की बोन पार्लिया मेंट्री कौंसिल द्वारा “जर्मनी के संघीय गण राज्य का मौलिक कानून” (Basic Law of the Federal Republic of Germany) तैयार किया गया और उसे पश्चिमी क्षेत्रों के मित्र राष्ट्रीय सैनिक गवर्नरों द्वारा स्वीकार कर लिया गया । इस अधिनियम द्वारा पश्चिमी जर्मनी पर से पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने सैनिक अधिकार समाप्त कर लिये और इस प्रकार संघीय गणराज्य की स्वाधीनता तथा सर्वोच्च प्रभुता प्राप्त हो गयी । सोवियत संघ ने भी २०

“This question of reparation has one meaning for the United States and another for the Soviet Union. The United States .. is in a different position. Perhaps there they do not feel what Soviet Citizens feel after having lived through the excruciating atrocities, destruction and plunder perpetrated by the Nazis in the occupied territories. — Molotov

सितम्बर १९३३ को एक संघि द्वारा पूर्वी जर्मनी के अनन्तारिक गणराज्य को पूर्ण स्वाधीनता और प्रमुखता प्रदान कर दी जा वास्तव में मात्र सैद्धान्तिक ही थी क्योंकि व्यावहारिक रूप से पूर्वी जर्मन सरकार पर पूरा नियंत्रण सोवियत संघ का ही है।

जर्मनी की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये अभी तक एक प्रश्न खिड़क बनाया हुआ है क्योंकि इसके सम्बन्ध में वास्तव एवं शक्तिपूर्ण और मोक्षप्रद संघ के मध्य अभी तक कोई समझौता नहीं हो सका है। आज भी जर्मनी में दो सर्वोच्च सत्तावादी राज्य—जर्मन अनन्तारिक गणराज्य तथा जर्मनी का संघीय गणराज्य—मौजूद हैं। इस तरह जर्मनी के एकीकरण की ओर बलिन की समस्या अभी तक हल नहीं हुई है। जर्मनी की एकता के सम्बन्ध में अनेक बार दोनों तरफ से बोधोत्साह की आ चुकी है किन्तु समस्या क्यों की क्यों बरबसूर कायम है।

उपरोक्त प्रश्न में बलिन—जो आज भी चार दों में विभाजित है—के बारे में दोनों पक्षों के मध्य हुए एक कटु विवाद की संक्षिप्त चर्चा उल्लेखनीय है। वैसे तो महायुद्ध के बाद से ही बलिन को लेकर चारों महाशक्तियों के बीच सींच-सात चलती रही लेकिन १९४० की इस सींच-सात ने एक बड़े भारी विवाद का रूप ले लिया। १ मार्च १९४० को स्पानीश युद्ध विपयक एक भ्रमण को धारण बनाकर जर्मन ने पश्चिमी बलिन के स्वतन्त्र और जन के सब मार्ग बन्द कर दिये। जब पश्चिमी शक्तियों के पास बलिन पहुँचने के लिये एक मात्र हवाई मार्ग रह गया। इस बेगम्भी का पश्चिमी शक्तियों द्वारा भारी विरोध किया गया और ४ अक्टूबर १९४० को उन्होंने यह मामला सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत कर दिया। सोवियत संघ ने इसका विरोध करते हुए कहा कि सुरक्षा परिषद को इस विषय पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है। उसने बताया कि पश्चिमी क्षेत्र में जो युद्ध विपयक मुबार किये गये हैं उनका सोवियत क्षेत्र पर विपयक प्रभाव पड़ने वाला या इसी प्रायश्चा से बहु रूपम उठाया गया है। यह कदम जर्मनी के साथ संघि की मूल समस्या से बढ़ होने के कारण संघ द्वारा विचारणीय नहीं है। पश्चिमी शक्तियों ने विरोध-शान्ति के लिये इस घटना को एक जठरा मानते हुए संघ द्वारा इस पर विचार किया जाना आवश्यक बताया। दोनों पक्षों ने बातचीत द्वारा ४ मई १९४१ को एक समझौता किया जिनके परिणाम स्वरूप संघ अपना बेरा तथा पश्चिमी राष्ट्र घेरे की प्रतिक्रिया-स्वरूप लनाई गई पाबन्दियाँ हटाने को तैयार हो गये। यह समझौता विदेश शक्तियों की परिपक्व द्वारा किया गया था। १२ मई १९४१ को दोनों पक्षों की ओर से समायो गये प्रतिबन्ध हटा लिये गये।

जर्मनी के विभाजक रूप का जैसे दो दोनों ही गुट विरोध करते हैं क्योंकि दोनों का विचार है कि जर्मनी का महासम्भव और एकीकरण विश्व शान्ति के लिये उपयुक्त है। पश्चिमी शक्तियों ने पश्चिमी जर्मनी के प्राथमिक एवं औद्योगिक विकास पर भारी ध्यान दिया है तथा वे उसे बराबर का एक साथी बना कर पश्चिमी यूरोप तथा अटलांटिक समुदाय से इसका शक्ति सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं। इसी ओर सोवियत संघ भी जर्मनी के एकीकरण

के पक्ष में है। उन्होंने अपने क्षेत्र को साम्यवादी तरीकों पर संगठित किया है तथा वे हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं कि भविष्य का जमनी राष्ट्र कम द्वारा प्रभावित राष्ट्र रहे। किन्तु पश्चिमी राष्ट्र एकीकृत जमनी को पश्चिमी यूरोप का समर्थक तथा पक्षपाती बनाना चाहते हैं। इन दोनों सत्तों के बीच भारी झगड़ा है। यह झगड़ा जब ठर रहेगा तब तक जमनी का एकीकरण नहीं हो सकता। वहाँ बीच का मार्ग खोजना होगा किन्तु अभी तक इन दिशा में कोई स्पष्ट प्रगति दिखाई नहीं पड़ी।

जापान के साथ संधि (Peace Treaty with Japan)

जमनी की ही भाँति जापान के भविष्य के सम्बन्ध में भी विजेतारष्ट्र काहिरा यास्ता और पाटनम सम्मेलनों में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्घरणों की घोषणा कर चुके थे। १९४३ के काहिरा सम्मेलन में यह निश्चित किया गया था कि जापान द्वारा चीन से छीने गये प्रदेश जैसे मंचूरिया फारमोसा और पेस्काडोरेज़ द्वीप (Pescadores Islands) चीन को वापिस विसाये जायेंगे तथा काँगिया का एक स्वतन्त्र और मजबूत राज्य स्थापित जायगा। फरवरी १९४५ में यास्ता सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि दक्षिणी साक्षात्मीन और उसके समीपवर्ती द्वीप पाटनमर का सीमांतिक बड़ा तथा क्यूराइस द्वीप समूह को भी छोड़कर बाँट दिये जायेंगे और डैरिन (Dairen) के बन्दरगाह का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया जायगा। नूमाई घोषणा १९४५ के पोर्टस्मथ बर्लिन सम्मेलन में जापान के भविष्य के सम्बन्ध में कुछ व्यापक घोषणायें की गई जो मुख्य रूप से इस प्रकार थी—जापान के सैनिक तत्वों का पूर्ण विघ्नस हान तक मित्र राष्ट्रों का जापानी प्रदेश पर सैनिक अधिकार बना रखा जापान की सर्वोच्च प्रभुता केबल होशू (Honshu) होकाइदो (Hokkaido) क्यूशू और शिकोकू (Shikoku) नामक चार बड़े टापुओं तथा निकटवर्ती कुछ प्रमुख छोटे टापुओं तक सीमित रहना जोरिया को स्वतंत्र बनाना जापानी सेनाओं को पूर्ण रूप से विघ्नस कर देना कुदापररामियों को दण्डित करना युद्धोद्योगों को बन्द करना, जापानी सरकार का सोव्हेटग्वारमक संबन्ध करना शक्ति-पूर्ति की बसूनी करना जापानियों को नागरिक स्वतंत्रतायें प्रदान करना, अन्तरराष्ट्रीय शान्तिवादी सरकार की स्थापना होने तक मित्रराष्ट्रों की सेनाओं का जापान में बना रहना और इसकी १९०४ के बाद उससे लिए गए अनेक प्रदेश—साखासिन टापू का दक्षिणी भाग तथा चीन के कुछ प्रदेश वापिस करना।

यण्डम की प्रत्यक्षकारी शक्ति से मयमीठ होकर जब जापान ने मित्र राष्ट्रों के सामने बिना शर्त धारम-समर्पण कर दिया तो उपरोक्त उद्घरणों की पूर्ति के लिए तथा मुरूर पूर्ण का प्रभावकारी नियंत्रण करने के लिए जापान में एक अन्तरिम सैनिक प्रशासन की स्थापना कर दी गई। टोकियो में मित्र-शक्तियों के सर्वोच्च सेना नायक (Supreme Commander for the Allied Power—SCAP) के पद पर जनरल मैकार्बे को १३ अगस्त १९४५ को नियुक्त किया गया। जापान की सम्पूर्ण कार्य-पासिका शक्ति इसी सर्वोच्च सेनानायक के पद में निहित की गई।

नवम्बर १९४३ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने यह प्रस्ताव रखा कि जापान में अमेरिकन सैनिक प्रशासन से परामर्श करने के लिए एक सूक्ष्म पूर्वीय परामर्श दला घायोस (Far Eastern Advisory Commission) की नियुक्ति की जाए जिसमें १० राष्ट्र हों। इस प्रस्ताव का घास्ट्रेलिया चीन और सोवियत संघ ने विरोध किया। परन्तु नवम्बर १९४३ में मास्को में इस प्रश्न पर एक सम्मेलन हो गया और संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन सोवियत संघ तथा चीन के प्रतिनिधियों को निम्नांकित एक मित्रराष्ट्रीय संयुक्त परिषद् का निर्माण कर दिया गया जिसका जनरल मैकार्थर को बनाया गया। इस परिषद् (Allied Council for Japan) का प्रमुख कार्यालय टोकियो में स्थित किया गया। इसके परिचित सर्वोच्च सेनापति की महासभा के लिए ही एक सूक्ष्म पूर्वीय घायोस (Far Eastern Commission) भी बनाया गया जिसमें ११ राज्यों के प्रतिनिधि थे—संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन सोवियत संघ, चीन, फ्रांस हावैल्ड कनाडा, आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड भारत और फिलिपाइन। इस घायोस का कार्य घास्त्र समरपेस की जगहों के बारे में नीतियां बनाना और परामर्श देना था। इसका केन्द्रालय वाशिंगटन में काम किया गया। वास्तव में वे दोनों ही संस्कारों निरर्थक थी क्योंकि उन्हें कोई महत्त्व नहीं प्रदाय की गई थी। श्री. शुमैन (Schuman) ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि “सूक्ष्म पूर्वीय घायोस सदस्यों के न होने के कारण विनाशपूर्वक सर्वोच्च सेनावायक की नीतियों को स्वीकृति प्रदान करके अपने आपको सतुष्ट कर लेता था। मित्रराष्ट्रों की परिषद में बहुधा सोवियत और अमेरिकी प्रवक्ताओं के बीच और न्यूजी-कमी घन्य प्रतिनिधियों के बीच शोरगुमपूर्ण झगड़े हुआ करते थे। किन्तु यहां भी बात सर्वोच्च सेनावायक की ही बसती थी। उसका तरीका अमेरिकी तरीका था।” वास्तव में जापान पूरा रूप से अमेरिका के नियन्त्रण में ही रहा क्योंकि यह अमेरिका ही था जिसने घन बम मिरा कर जापान को जीता था। प्रारम्भ में जापान की भूमि पर ब्रिटिश घास्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की सैनिक टुकड़ियां थीं परन्तु १९४७ के बाद यहां केवल अमेरिकन सेना ही रह गई और जनरल मैकार्थर जापान का एक प्रकार से सर्वोच्च बन गया।

जर्मनी की घरेलू जापान की बुझोतर समस्याएँ बसकि कम बटिन थी और जापान जर्मनी के समान बार बिदेसी सेनाओं से घबिकठ नहीं था, तथापि बिदेसी राष्ट्रों में इसके महत्त्व के बारे में पहले मतभेद के और इसी लिए उसके साथ एक लम्बे समय तक सन्धि-वार्ता नहीं चलाई जा सकी। २२-

* The far Eastern Commission, having no power modestly contended itself with quite approbation of the politics of S.C.A.P. The Allied Council was often the scene of noisy disputes between Soviet and American Spokesman and occasionally between others. But here, too S.C.A.P. had its way Its way was the American way”

ज्यों समय बीतता गया, इन मतभेदों की उग्रता बढ़ती गई। जुलाई १९४७ में सुदूरपूर्व जापान की बैठक में अमेरिका ने जापान के साथ की जाने वाली संधि के सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव रखे परन्तु सोवियत रूस ने उन्हें ठुकरा दिया। उसका कहना था कि अन्य राष्ट्रों के साथ की जाने वाली संधियों के समान ही जापान के साथ संधि करने का दावित्व भी विदेश मंत्रियों की परिषद् को हीप दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत अमेरिका का कथन था कि काहियू, वास्ता अथवा पोर्टस्मथ सम्मेलन में कहीं पर इस प्रकार का समझौता नहीं किया गया था। उसका तर्क था कि यदि विदेश मंत्री परिषद् द्वारा जापान के साथ की जाने वाली संधि तैयार करने का प्रयत्न किया गया तो जर्मनी और आस्ट्रिया के सम्बन्धों के समान ही जापानी सम्बन्धों भी कमी नहीं सुझा सकते। विदेश मंत्री परिषद् में नियम सर्वसम्मति से होने की व्यवस्था थी और इसलिये कोई भी महाशक्ति अपने नियेधाधिकार का प्रयोग करके किसी भी प्रस्ताव को रद्द कर सकती थी।

इस प्रकार पूर्व और पश्चिम में, यहाँ तक कि पश्चिमी देशों में जापान में भी जापानी प्रश्न पर मतभेद बढ़ता गया। मतभेद संधि से संबन्धित प्रत्येक प्रश्न के साथ बढ़े हुए थे और मतभेदों को संतुलन में इस प्रकार बिताया जा सकता है—

(i) रूस जापानी क्षतिपूर्ति में भी हिस्सा लेना चाहता था परन्तु अमेरिका में उसने प्रचुर मात्रा में जो जापानी मात्रा हुमिया लिया था उस मात्रा के मूल्य को वह भुगत हिस्से में सम्मिलित नहीं करना चाहता था।

(ii) सोवियत रूस जापान से निश्चित अर्धसैनिक अमेरिकन सेना को हटाने और जापानी भूमि पर से ७०० अमेरिकन सैनिक बहनों को खाली कराने का समर्थन था। वह वाशिंगटन द्वारा जापान के पुनः अस्त्रीकरण का विरोधी था।

(iii) रूस इस प्रस्ताव का भी विरोधी था कि र्यूक्यू (Ryukyu) तथा बोनिन के टापुओं पर अमेरिकन ट्रस्टीशिप कायम किया जाए।

(iv) रूस संधि जर्मनी में चीन का प्रतिनिधित्व अमेरिका द्वारा सम्मिलित राष्ट्रवादी चीन द्वारा नहीं अपितु साम्यवादी चीन द्वारा चाहता था।

(v) ब्रिटेन और अमेरिका में जापान तथा चीन के सम्बन्धों के बारे में उच्च मतभेद थे। ब्रिटेन चाहता था कि जापान साम्यवादी चीन को माल्यता से है जब कि अमेरिका इनका विरोधी था। अमेरिका प्यांमकाइ सेक के राष्ट्रवादी चीन का पक्ष थापक था।

(vi) भारत की नीति यह थी कि अमेरिका जापान से अपनी सेनाएं हटा ले और जापान के साथ उसके सम्मान योग्य संधि की जाए।

(vii) फ्रांसेलिया यूजीनैण्ड और फिलिपाइन द्वीप समूह जापान से क्षतिपूर्ति की राशि अक्षय बसूल करना चाहते थे किन्तु समुच्च राज्य अमेरिका सामान्य रूप से इसे नहीं लेना चाहता था।

उपरोक्त सम्मिलित मतभेदों के कारण जापान के साथ निबंदाओं की किसी प्रकार की संधि नहीं हो सकी। इसी समय कोरिया का युद्ध छिड़ जाने के कारण मतभेदों में और भी अधिक तीव्रता आ गई। तथा समस्या में और

प्रगति नहीं हो सकी। अमेरिका के जापानी संधि विषयक प्रस्तावों को २० दिसम्बर १९१० को सार्वभौम सरकार ने खूब कर दिया।

कोरिया-युद्ध के कारण अमेरिका की नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये और उसने जापान के साथ संधि करने का बड़ा निश्चय कर लिया। अमेरिकन राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन ने ११ जनवरी १९११ को जापान के साथ संधि संपन्न कराने का कार्य विवेक मंत्री जान फ्रिस्टर बर्नेस को सौंपा। राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन की यह काम सौंपते समय अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि (I) संधि में विल्सन की कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए, (II) उसमें धार्मिक दृष्टि से जापान को समर्थ बनाने और विदेशी धार्मिकों में सुरक्षा प्रदान करने की समता होनी चाहिए, एवं (III) यदि यह संधि रूस के सहयोग से हो तो अच्छा है लेकिन यदि रूस का सहयोग प्राप्त न हो और विराय हो तो भी संधि सम्पन्न होनी चाहिए।

राष्ट्रपति द्वारा जापान से संधि कराने के अंतर्द्वारा उत्तरदायित्व को लेकर अमेरिका का विदेशीय नीतिगत स्वर्गीय वर्तमान काम में बूट गया। उसने जापान के विदेशीय धार्मिकों को सुरक्षा प्रदान करने की समता प्रदान करने के बाद संधि का प्रासंगिक तैयार किया जिसके अनुसार—

(१) जापान की सर्वोच्च सत्ता और प्रभुत्व के अंतर्गत चार बड़े और कुछ छोटे द्वीपों के एक साल १० हजार वर्गमील के क्षेत्र तक ही सीमित कर दी गयी।

(२) जापान ने कोरिया की स्वतंत्रता स्वीकार की और मूमा और कुरा इल साम्राज्य टापुओं पर अपने अधिकार छोड़ दिए और प्रशासन महासागर में कोरिया के टापुओं पर २ अप्रैल, १९४७ से अमेरिका की दृष्टिकोण मान ली। जापान ने प्रशासन महासागर के अन्य टापुओं के अमेरिका द्वारा प्रशासित होने की स्वीकार कर लिया बशर्ते कि इस सम्बन्ध को संयुक्त राष्ट्र संघ सृष्ट करे।

(३) विदेशी सेनाओं को जापान से खींचा गया था परन्तु यदि इनके बारे में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जापान में कोई पृथक समझौता हो जाय तो वे सेनाएं जापान में रह भी सकती हैं।

(४) जापान ने चीन में अपने सब अधिकारों को छोड़ना और कुछ अल्पाधिकारों के सम्बन्ध में मित्र राष्ट्रों के कुछ अल्पाधिकारों के लिए भी मान्यता स्वीकार किया।

(५) मित्र राष्ट्रों को ४ वर्षों के लिए जापान से व्यापारिक मामलों में "परमानुग्रह का व्यवहार" (Most-favoured Treatment) देने का अधिकार दिया गया।

(६) संधि पूर्ति के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया कि जापान को मित्र राष्ट्रों को हानि प्रकट करना चाहिए, परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार किया गया कि वर्तमान समय में उसके पास ऐसे धार्मिक साधन नहीं हैं कि वह हानि प्राप्त कर सके। फिर भी जापान ने युद्ध के पूर्व लिए गये ऋणों की प्रत्यावली का दायित्व स्वीकार किया।

साथि सचि के उपरोक्त प्राक्ष्य में २७ पाराए भी घोर इसमें जापान पर शस्त्रीकरण घपका युद्ध उद्योगों के सम्बन्ध में कोई सीमा नहीं लगायी गयी थी। इसी समय कोरिया, युद्ध ना रोकने के लिए साम्यवादी चीन के विरुद्ध धातुमजदारी कार्यवाही के लिए बिल्द कराने के कारण ७ अप्रैल १९५१ को जनरल मैकमाहॉर को पदच्युत करते उसके स्थान पर ले० जनरल मैथ्यू रिजव को जापान में मित्र राष्ट्रों का सर्वोच्च सनापति नियुक्त कर दिया गया और इसके परिस्थितियों में कुछ अधिक अनुकूलता पा गयी।

२० जुलाई १९५१ को जापान के विरुद्ध सड़ने वाले ५१ राष्ट्रों को जापानी सचि का उपरोक्त प्राक्ष्य भेजा गया और इस सम्बन्ध में ४ सितम्बर को सात-फामिसको में होने वाल सम्मेलन में उन्हें धामित्रित किया गया। यहाँ यह स्मरणीय है कि सचि का प्राक्ष्य वैश्विय घपका फारमोसा में स्थित क्यांगकाइके की सरकार के पास नहीं भेजा गया था। प्रस्तावित सचि का दस्तुन कहीं भी स्वागत नहीं हुआ। स्वयं टोकियो में सचि के समर्थकों की घपेसा विरोधियों की संख्या अधिक थी। ब्रिटेन ने सचि को यदि समर्थन दिया तो इसलिए क्योंकि ब्रिटिश सरकार समझती थी कि इस विषय में वह कुछ करने में असमर्थ है। भारत ने इस प्राक्ष्य को कटोर एवं घप मानवमक बतसाया और १० जुलाई को टूमेन को लिखे गये पत्र में प्रधान मंत्री भी नेहरू ने सचि की व्यवस्थाओं पर निम्नलिखित आपत्तियाँ प्रकट कीं—[i] बोलिन और इयूकू टापुमें पर अमरिजन टुप्टीतिप स्थापित न करके उन्हें जापान को बालित किया जाय [ii] फारमोसा चीनी को मिल, एवं [iii] जापान में सचि के उपरान्त ब्रिटेनी मेलाए न रहें। टूमेन ने जब भारत की आपत्तियों पर कोई ध्यान नहीं दिया तो २३ अगस्त को मयी बिस्नी ने बालिमटन को यह सूचित कर दिया कि वह सात फॉसिमको सम्मेलन में माय नहीं गया प्रस्तुत जापान से एक पृषक समझौता करेगा। भारत का ही अनुकरण करते हुए जर्मा ने भी प्रस्तावित सचि सम्मेलन में बालिम होने से इन्कार कर दिया।

यह पूरी धागा की जाती थी कि सोवियत रूस और उसके साथी देश प्रस्तावित मान फामिसको सम्मेलन का बहुङ्कार कर देने परन्तु १२ अगस्त को जब मास्को में सम्मेलन में शामिल होने की घोषणा कर ही तो बालिमटन और सम्पूर्ण पाश्चात्य शक्तियों को बड़ा ही विस्मित हो जाना पड़ा। उन्हें यही धागा थी कि रूस सचि प्रस्ताव को रद्द करते हुए सम्मेलन में नहीं आयेगा। उधर रूस की योजना सम्मेलन में उपस्थित होकर सचि को रद्द करने की थी। बतुर कूलीतिज इसीन रूस की बात समझ गया। उसे भय लगा कि कहीं सोवियत घप की पाश्चात्य देशों में फून पैदा करने में सफलता प्राप्त न हो जाय। जब रूस के इरादों को विफल बनाने की दृष्टि से जर्मेन ने यह घोषणा की कि यह सम्मेलन केवल सचि पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया जा रहा है इसमें सचि पर न तो विचार-विमर्श होगा और न ही इसके सम्बन्ध में नये प्रस्तावों और प्रति-प्रस्तावों पर बहुत ही शोमी। किन्तु जर्मेन की इस घोषणा के उपरान्त भी सोवियत संघ ने घाने को सहयोगियों कोलङ्क और कैकोसोवाकिया के साथ सम्मेलन में माग लिया।

प्रयत्न नहीं हो सकी। अमेरिका के जापानी सधि विषयक प्रस्तावों को २० रिक्त म्वर १९१० को सोवियत सरकार ने रद्द कर दिया।

कोरिया-युद्ध के कारण अमेरिका की नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन का मये और उसने जापान के साथ संबंध करने का बृहत् निश्चय कर लिया। अमेरिका राष्ट्रपति ट्रूमैन ने ११ जनवरी १९११ को जापान के साथ संबंध संपन्न कराने का काम बिदेस मंत्री जान फास्टर डर्सेन को सौंपा। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने डर्सेन का यह काम सौंपते समय अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि (i) सधि में बंध की कोई व्यवस्था नहीं होनी चाहिए, (ii) उसमें आर्थिक दृष्टि से जापान को समर्थ बन न और बिदेसी आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए, एव (iii) यदि यह सधि स्वतंत्र सहयोग से हो तो अच्छा है लेकिन यदि रूस का सहयोग प्राप्त न हो और विराय हो तो भी सधि सम्भव होनी चाहिए।

गठनपति द्वारा जापान से सधि कराने के ~~संबंधित~~ उद्देश्यावित्त्व को लेकर अमेरिका का विदेशीय कूटनीतिज्ञ स्वर्गीय डर्सेन अपने काम में जुट गया। उसने जापान विनिपाइस्य चास्ट्रेलिया म्यूजीसिम्क-ब्रिटेन और फ्रांस का प्रस्ताव करने के बाद सधि का प्राकल्प तैयार किया ~~जिसके अनुसार~~—

(१) जापान की सर्वोच्च सत्ता और प्रभुता ~~के~~ चार बड़े और कुछ छोटे द्वीपों के एक मात्र स्वामी के अन्तर्गत ही सीमित कर दी गयी।

(२) जापान ने कोरिया की स्वतंत्रता स्वीकार की और मूसा और बयूरान् इस साक्षात्सिम टापुओं पर अपने अधिकार छोड़ और प्रस्ताव महासागर में बोनिन व र्यूकू टापुओं पर २ अप्रैल, १९४७ से अमेरिका की दृष्टीक्षिप मान ली। जापान ने प्रस्ताव महासागर के अन्य टापुओं के अमेरिका द्वारा प्रस्तावित होने को स्वीकार कर लिया, बशर्ते कि इस भूमिस्वा को समुक्त राष्ट्र संघ पुष्ट करे।

(३) बिदेसी सैनिकों को जापान से खींच खड़ा किया जाय परन्तु यदि इनके बारे में संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में कोई पृथक समझौता हो जाय तो वे सैन्य जापान में रह भी सकेंगी।

(४) जापान ने चीन में अपने सब अधिकारों को छोड़ना और कुछ अल्पराशियों के सम्बन्ध में मित्र राष्ट्रों के कुछ अल्पराश्यावासियों के निर्णयों को मानना स्वीकार किया।

(५) मित्र राष्ट्रों को ४ बरों के लिए जापान से व्यापारिक मामलों में 'परमानुग्रह का व्यवहार' (Most-favoured treatment) वाले का अधिकार दिया गया।

(६) सति प्रति के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया कि जापान को मित्र राष्ट्रों को हर्जाना प्रकश्य देना चाहिए, परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार किया गया कि वर्तमान समय में उसके पास ऐसे आर्थिक साधन नहीं हैं कि यह हर्जाना प्राप्त कर सके। फिर भी जापान ने युद्ध के पूर्व लिए गये ऋणों की परदावनी का दायित्व स्वीकार किया।

शान्ति संधि के उपरोक्त प्राक्षेप में २७ धाराएँ थीं और इसमें जापान पर सस्त्रीकरण प्रथम युद्ध उद्योगों के सम्बन्ध में कोई सीमा नहीं लगायी गयी थी। इसी मध्य कोरिया, युद्ध को रोकने के लिए साम्यवादी चीन के विरुद्ध प्राक्रमणकारी कार्यवाही के लिए जिम्मेदार होने के कारण ७ अप्रैल १९५१ को जनरल मैकमार्शर को पदच्युत करके उससे स्थान पर ले० जनरल मैथ्यू रिजके को जापान में मित्र राष्ट्रों का तार्बोच्य सेनापति नियुक्त कर दिया गया और इससे परिस्थितियों में कुछ अधिष्ठान अनुसूचना प्राप्त हुई।

२० जुलाई १९५१ का जापान के विरुद्ध सङ्घर्ष के ११ राष्ट्रों को जापानी संधि का उपरोक्त प्राक्षेप भेजा गया और इस सम्बन्ध में ४ सितम्बर को सान-फ्रान्सिस्को में होना वाला सम्मेलन में उन्हें आमन्त्रित किया गया। यहाँ यह स्पष्ट है कि संधि का प्राक्षेप वैश्व धर्म का फारमाना में स्थित धार्मिक-वैश्विकी की सरकार के पास नहीं भेजा गया था। प्रस्तावित संधि का बलवत् कही भी स्वागत नहीं हुआ। स्वयं टोकियो में संधि के समर्थकों की प्रवेष्टा विरोधियों की संख्या अधिका थी। ब्रिटेन ने संधि को यदि समर्थन दिया तो इसलिए क्योंकि ब्रिटेन सरकार समझती थी कि इस विषय में यह कुछ करने में असमर्थ है। भारत ने इस प्राक्षेप को कठोर रूप से मान्यता देना नहीं चाहा और ३० जुलाई को दूतों को लिखे गये पत्र में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने संधि की व्यवस्थाओं पर निम्नलिखित प्राप्ति का प्रकट की—[i] बोनिन और यूकू टापूओं पर अमरीकन दृष्टीक्षेप स्थापित न करके इन्हें जापान को बरिष्म किया जाय [ii] फारमोसा चीनी को मिल, एव [iii] जापान में संधि के उपरान्त विदेशी सेनाएँ न रहें। दूतों ने जब भारत की प्राप्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया तो २३ अगस्त का नवी दिल्ली ने बालियटन को यह सूचित कर दिया कि यह सान फ्रांसिस्को सम्मेलन में जाय नहीं गया प्रत्युत जापान में एक पुनक सम्मेलन करेगा। भारत का ही अनुकरण करते हुए बर्मा ने भी प्रस्तावित संधि सम्मेलन में शामिल होने से इन्कार कर दिया।

यह पूरी घाटा की जाती थी कि सोवियत रूस और उसके साथी देश प्रस्तावित मान फामिससो सम्मेलन का बहिष्कार कर देंगे परन्तु १२ अगस्त को जब मास्को में सम्मेलन में शामिल होने की घोषणा कर दी तो बालियटन और सम्पूर्ण पारशात्य देशों को बड़ा ही विस्मित हो जाना पड़ा। उन्हें यही घाटा था कि रूस संधि प्रस्ताव को रद्द करते हुए सम्मेलन में नहीं आवेगा। उपर रूस की मोक्षता सम्मेलन में उपस्थित होकर संधि को रद्द करने की थी। चतुर कूटनीतिज्ञ इतना रूस की चाल समझ गया। उसे भय गया कि कहीं सोवियत संधि को पारशात्य देशों में कुछ पैदा करने में सफलता प्राप्त न हो जाय। जब रूस के इरादों को विफल बनाने की दृष्टि से इतना ने यह घोषणा की कि यह सम्मेलन केवल संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया जा रहा है इसमें संधि पर न तो विचार-विमर्श होगा और न ही इसके सम्बन्ध में नये प्रस्तावों और प्रति-प्रस्तावों पर बहस ही होगी। किन्तु इतना ही इस घोषणा के उपरान्त भी सोवियत संधि में घटने दो सहयोगियों पोलण्ड और बेलोस्लोवाकिया के साथ सम्मेलन में भाग लिया।

४ सितम्बर को सम्मेलन शुरू हुआ और ५ सितम्बर को सोवियत प्रतिनिधि मण्डल के नेता प मिर्को ने अपना १३ बुची प्रस्ताव सम्मेलन के समक्ष प्रस्तुत किया जिसकी मुख्य रूप से इस प्रकार थी—जापान द्वारा पैकिंग की साम्यवादी सरकार की स्वीकृति जापान से हजम की बसूली, जापान द्वारा यह बचम हैना कि वह उसके विरुद्ध युद्ध करने वाली किसी महा शक्ति से सैनिक समझौता नहीं करेगा। इस क प्रस्ताव को सम्मेलन में स्वीकार नहीं किया गया। जब ८ सितम्बर को सोवियत प्रतिनिधि ने अपने प्रस्ताव को अन्तिम बार पेश करना चाहा तो सम्मेलन के अध्यक्ष और अमेरिकन विदेश मंत्री बर्नेन ने उसे बोलने नहीं दिया। सम्मेलन में उर्सस की कूटनीति की विजय हुई और ८ सितम्बर १९४१ को ही प्रस्तावित जापानी संधि पर ४८ राज्यों ने हस्ताक्षर कर दिए। सोवियत इस चीज उमके सभी पोलैण्ड तथा रैकोसोवाकिया ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये। ठीक इसी दिन संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान के मध्य एक सुरक्षा संधि भी हो गयी जिसके अनुसार जापान की भूमि पर अमेरिकन सैनिकों के बने रहने की अनुमति दे दी गयी और जापान ने अमेरिका को अपने सैनिक ब्रह्म भी प्रदान किये। जापान के साथ होने वाली संधि [Peace Treaty with Japan] २८ अगस्त १९४२ में त्रियामित हुई। भारत ने ६ जून १९४९ को जापान के साथ एक पूषक संधि पर हस्ताक्षर किये। इनके अनुसार २८ अगस्त १९४२ से चुनी के विषय में परमानु-ग्रह का व्यवहार [Most Fav word Treatment] करने तथा युद्ध के समय बन्धु की गयी एक बुरे की सम्पत्ति को लौटाने का निश्चय हुआ।

अक्टूबर १९४६ में एक समझौते द्वारा रूस और जापान के मध्य भी युद्ध-स्थिति का अन्त हो गया परन्तु इन दोनों राष्ट्रों के मध्य कोई औपचारिक संधि-संधि सम्पन्न नहीं हो सकी और आज भी यह स्थिति बनी हुई है।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत किये गये सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि व्यापक प्रथम तैयारियों के बावजूद १९४३ के बाद सन्धि समझौते का कार्य १९१९ की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन सिद्ध हुआ। द्वितीय महायुद्ध के साथी विजेता राष्ट्रों में युद्ध के उपरान्त महत्त्व अधिकारिक व्यापक और उन्नत होते गये तथा पूष और अन्धिम क मध्य विश्व-सन्धि के लिए संधिगत बुझीयपूर्ण शीत-युद्ध का भी बल्ल हो गया। शुर्मन [Schuman] ने ठीक ही सिद्धा है कि "अटलांटिक चार्टर" "आर स्वतन्त्रतायो तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के विषय में उज्ज्वल आशाएँ विजेताओं के मन्त्रों एवं एशिया क विरोह के कारण अधूर्ण रह गयी।"

"The bright promises of the Atlantic Charter the Four Freedoms and United Nations were unfulfilled in the face of quarrels of the victors and the revolt of Asia

EXERCISES

Compare and contrast the task of peace making in 1945 with peace making in 1919. Mention the causes which rendered more difficult the signing of peace treaties after the Second World War.

१९४५ में शांति निर्माण की कठिनाइयों की १९१९ की शांति निर्माण कठिनाइयों से तुलना कीजिये। उन कारणों का बलन कीजिये जिनके कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शांति संधियों पर हस्ताक्षर न हो सके।

Or

"The bright promises of the Atlantic Charter the Four Freedoms and the United Nations were unfulfilled in the quarrels of Victors and the revolt of Asia"—Schuman)—Discuss.

एटलान्टिक चार्टर चार स्वतंत्रतायें तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की चार आशाएँ विजयियों के पारस्परिक संधयें तथा एशिया विद्रोह के कारण अपूर्ण ही रह गईं।" (शुमान) विवेचन कीजिये।

2. Describe the Allied treatment of Liberated Austria with particular reference to Austrian peace treaty problems

"युक्त राष्ट्र संघे आस्ट्रिया" के साथ मित्र राष्ट्रों के व्यवहार का बलन आस्ट्रियन शांति संधि के विशेष संधयें के साथ कीजिये।

3. Review the Allied treatment of defeated Japan with particular reference to the peace treaty with Japan पराजित जापान के साथ मित्र राष्ट्रों के व्यवहार पर जापानी शांति-संधि के विशेष संधयें के साथ प्रकाश डालिये।

Describe the peace settlements that followed the Second World War

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हुई शांति-सन्धियों का उल्लेख कीजिये। Discuss the future of Germany in the light of the cold war between the Western Powers and the Soviet bloc countries.

पारंपार्य शक्तियों और सोवियत युद्ध के देशों में मध्यवर्ती शीत युद्ध के प्रकाश में जर्मनी के भविष्य की विवेचन कीजिये।

6. "This question of reparation has one meaning for the United States and another for the Soviet Union. (Molotov)—Discuss.

'सतिपूर्ति के प्रश्न का संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए एक संधयें है और सोवियत संघ के लिए दूसरा'। (मोसोटोव) विवेचन कीजिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ का रूपविधान

(THE UNITED NATIONS-STRUCTURE & ORGANISATION)

- १ संघ के विचार का उद्भव और विकास
- २ राष्ट्रत्व द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को हस्तांतरण
- ३ संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य और प्रयोजन
- ४ ईश की सार्वभौमता
- ५ संघोप के साथ आचार
- ६ संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव और संघ का बजट
- ७ संघ का इंचा या अन्य विभाग—
 - (i) महासभा
 - (ii) सुरक्षा परिषद्
 - (iii) आर्थिक और सामाजिक परिषद्
 - (iv) ट्रस्टीशिप परिषद्
 - (v) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
 - (vi) सचिवालय
- ८ संघ के चार्टर का संसोधन
- ९ राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ की तुलना
- १० संघ की कमजोरियों या अपूर्णता
- ११ संघ को सक्षमता प्रदान करने के लिये सुझाव
- १२ संघ के परिवार की विभिन्न ऐजेंसियाँ एवं सहायक

“संगुप्त राष्ट्र संघ का चार्टर, जिस पर आपने भी हस्ताक्षर किये हैं एक ऐसी शक्तिशाली नींव है जिस पर एक सुन्दर बिजली का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिये इतिहास आपका सम्मान करेगा।”

—राष्ट्रपति ड्यूमेनिल

“संगुप्त राष्ट्र संघ बिजली का एक प्रतीक है—यह विश्वास की शक्ति सम्भव है। यह धारा से अनुप्राणित कार्य करने का एक यन्त्र है तथा बिजली के प्रवेश बोगों में यह कन्वर्टरकारी कर्मियों के लिये एक बाँचे का कार्य कर रहा है।

—आप हैं मरखोस

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विचार का उद्भव और विकास

विगत आधी सताब्दी में दो विश्व युद्ध हुए—पहले १९१४ और सन् १९३९ में। इन युद्धों से भूतनी हुई मानव सभ्यता के अन्त में हक उठी कि राष्ट्रों के 'पारस्परिक' विरोधों और मतभेदों को बातचीत से हल किया जाए। इसके लिए सभ्यता के स्थान पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण हो जो विभिन्न देशों की सरकारों के मध्य उठने वाले विरोधों का हल निकाल सके। इसीलिए प्रथम महायुद्ध के उपरान्त अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति विलसन के १४ संकेतों के आधार पर युद्धों को समाप्त करने और शांति कायम करने के लिये "राष्ट्र संघ (League of Nations)" नामक प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की गई जिसके उद्देश्य थे—युद्ध-निरोध, देशों के मध्य व्यापक और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का पालन और राष्ट्रों के बीच होने वाली संधियों की शर्तों को पूरा करवाना। इन अन्तर्राष्ट्रीय संघ की दुर्भाग्यवश विश्व के कुछ शक्ति-शाली देशों ने अपना सहयोग प्रदान नहीं किया जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका प्रमुख था। साथ ही इस संगठन के पास न इतनी शक्त थी और शक्ति ही थी कि वह सभ्यता के द्वारा अपने आदेशों का पालन कराने में समर्थ हो सके। इनका स्पष्ट और स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र संघ के चार्टर बयान चार्टर (Charter) के उद्देश्य की अचूकता होने लगी। इटली ने एबीसीनिया पर हमला किया जापान ने राष्ट्र संघ की विभिन्न समितियों की शक्तों की अचूकता नष्ट की। इनकी पराक्रमिता और उग्रता से स्पष्ट-पक्ष दे दिया। निरस्तरीकरण की योजना भी तख्त हुई और इस प्रकार पूरी बर्तनी उड़ कर राष्ट्र संघ की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था १४ दिसम्बर १९३९ को समाप्त हो गई।

सन् १९३९ में तृतीय महायुद्ध के बादम विर घाये। इस युद्ध में जन-जन की जी प्यार हानि हुई उसके कारण मानवतावादी शान्तिवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीयतावादी विचारकों को ऐसा कोई साधन ढूँढ़ने की प्रेरणा मिली जो युद्ध को पुनरावृत्ति को रोक सके और मानव-सभ्यता एवं संस्कृति को अक्षत की भाषा होने से बचा सके। राष्ट्र संघ के अभाव में यह भी शक्य था कि युद्ध इतने पुनरावृत्ति करना ही पर्याप्त नहीं था। अतः विश्व में स्वयं की शांति की स्थापना करने के लिये राष्ट्र संघ से अधिक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

इस आवश्यकता को मूर्त रूप देने के लिये मिन राष्ट्रों में विचार-विमर्श का प्रारम्भ युद्ध-काल में ही हो गया और सैनिक विजय के उपरान्त बचा हुआ 'आह्वान' का प्रश्न मिन राष्ट्रों के मन को आन्वित करने लगा। वे युद्ध के कारणों को उनके मूल उद्देश्य-स्थान पर ही अलग कर देना चाहते थे। सन् १९४१ के जुलाई माह में ब्रिटेन कनाडा, आस्ट्रेलिया यू.एस.ए. और

दक्षिण अफ्रीका युनियन तथा अपने देशों में सम्मेलन में निर्वाचित पुनः वैश्वियम पैरोसोवाकिया सबजमबग निदरलैंडम [शोमेण्ड] नाबो पॉर्तुगल युमोन्साविया और फ्रंस की सरकारों के प्रतिनिधि प्राचीन सैन्य वैश्विय में एकत्रित हुए। वहाँ उन्होंने अपनी एक संयुक्त-बोपणा द्वारा स्वामी शांति और धार्मिक तथा सामाजिक सुरक्षा की स्थापना करने की प्रतिज्ञा की। इस बोपणा व एक महीने बाद अगस्त १९४१ में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल अटलांटिक महासागर में कही एक बहाल पर मिल। उन्नति युक्ति में स्वामी शांति की समस्या पर बातचीत की और जब सोव-दिएर तथा मन्त के बाद एक आदेश-पत्र प्रकाशित किया जो अटलांटिक चार्टर (Atlantic Charter) के नाम से प्रसिद्ध है। इस आदेश-पत्र अथवा प २७ में उन्होंने अपने देशों की ओर से अपनी नीति और सिद्धान्तों की घोषणा की। उन्होंने कहा कि हम साम्राज्य-विस्तार अथवा किसी नये प्रश्न पर अधिकार करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि जन्म-गत से ही प्रत्येक राष्ट्र का शासन अपने सब राष्ट्रों में पारस्परिक धार्मिक सहयोग हो। युद्ध के बाद एगनित राज्य पुनः प्रतिष्ठित हों और उनको पूरा स्वतन्त्रता प्राप्त हो एवं प्रत्येक राष्ट्र युद्ध सामग्री में कमी करे तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए प्रयत्न करे। १४ अगस्त १९४१ के इस अटलांटिक चार्टर को ही संयुक्त राष्ट्रमण्डल का अन्तर्गत माना जाता है। इस चार्टर पर बाद में २४ सितम्बर का मासिकत कृत ने भी अपने हस्ताक्षर कर दिये। उद्घरण संयुक्त राज्य अमरीका इस ब्रिटेन और चीन आदि २६ मित्र राष्ट्रों ने अटलांटिक चार्टर की अपनी समर्पण प्रदान किया जिसे "संयुक्त राष्ट्र की घोषणा (United Nations Declaration) कहते हैं।

जनवरी १९४१ में चर्चिल तथा रूजवेल्ट ने फ्रेंच प्रतिनिधि के साथ केसाब्लांका [Casablanca] में युद्ध के बाद शांति की स्थापना के सम्बन्ध में बातचीत की। मई-जून १९४१ में ४४ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने लास एंजल्स सम्मेलन में लाखों विस्थापित लोगों की भोजन की समस्या पर विचार किया और इस प्रकार आयाती आद्य एवं कृषि संयोजन की नींव डली।

अक्टूबर १९४१ में मास्को में अमरीका ब्रिटेन इस और चीन के विदेश मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने अटलांटिक चार्टर के सिद्धान्तों के आधार पर विश्व-शांति और सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया। सम्मेलन की एक नवम्बर, १९४१ की घोषणा में आत्मसमर्पण करने वाले अक्षयों के प्रति संयुक्त कार्यवाही करने के निश्चय ने साथ यह भी निश्चय प्रकट किया कि "ये सभी शांति प्रिय देशों की सर्व-प्रमुख सम्पन्नता के आधार पर ही आतिशीघ्र सम्भव तिथि को एक आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय मंच के निर्माण की ओर अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की प्राप्ति के लिये सभी शांतिप्रिय सर्व प्रमुख सम्पन्न छोटे या बड़े राष्ट्रों को उतका सबल बनने का अवसर देने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।"

नवम्बर १९४१ में ही संयुक्त राष्ट्र में एक सम्मेलन हुआ जिसमें चर्चिल रूजवेल्ट तथा स्टालिन ने यह निश्चय किया कि छोटे और बड़े सभी राष्ट्रों

निये मैनिङ्ग स्टाफ कमिटी के निर्माण के भी सुझाव दिये गये। इस समय पहली बार इस सम्बन्ध में पश्चिमी राष्ट्रों और रूस के बीच मतभेद प्रकट हुए। सोवियत रूस का मत था कि संस्था में पूर्वीवासी देशों का बहुमत रहेगा, यद्यत् उसका नियोजन विचार दिया जाना चाहिये। इसका विपरीत समुक्त राज्य अमेरिका नियोजन विचार को सीमित करना चाहता था। इस सम्मेलन में पारित किये गये प्रस्तावों की घोषणा ६ अक्टूबर को की गई। इस अवसर पर एक वक्तव्य देते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा—“प्रस्तावित सामान्य समझौते में सुरक्षा की मुख्य आधारभूत समझौता चाहिये। सुरक्षा और शांति की इमारत के नियोजन का कार्य अच्छे प्रकार से प्रारम्भ होगा। जब यह राष्ट्रों के लिये है कि वे एक-दूसरे के बीच पारस्परिक विश्वास की आवश्यकताओं के साथ इस निर्माण कार्य को पूरा करें।” *

इम्बर्टन घोषण के मतभेदों को फरवरी १९४५ के सम्मेलन में दूर करने का प्रयास किया गया। इस सम्मेलन में सुरक्षा परिषद में मतभेद की क्या पद्धति हो इससे सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण विषय लिया गया जो “यूनिवर्सल बोर्डिंग फॉर्म” के नाम से जाना जाता है। सम्मेलन में रूजवेल्ट और स्टालिन ने यह समझौता किया कि सुरक्षा परिषद प्रक्रिया संबंधी (Procedural) मामलों में ११ सदस्यों में से ७ के बहुमत से तथा अन्य आवश्यक विषयों (Substantive matters) में ७ स्वीकारात्मक मतों (Affirmative Votes) से कार्य करे। इसमें सुरक्षा परिषद के पांचो सदस्यों समुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियत संघ, फ्रांस और चीन की सहमति तथा एक-मती (Unanimity) होनी चाहिये।

समुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर को अंतिम रूप से निश्चित करने के लिए सत्र सत्राक्षिकों (अमेरिका) में विश्व के २० राष्ट्रों के ५१० प्रतिनिधि सम्मेलन में एकत्रित हुए और उन्होंने कुछ सोच-विचार बाद-विचार के बाद विश्व संघटन का एक चार्टर तैयार किया। २६ जून १९४५ के दिन सत्राक्षिकों के बैठक में मोरिसन द्वारा २० राष्ट्रों के ५१० प्रतिनिधियों द्वारा चार्टर पर हस्ताक्षर किये और इस प्रकार समुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ। इस चार्टर में समुक्त राष्ट्र संघ के सर्वोच्च सिद्धान्त और उसका विश्व व्यापक ऋण था। ऐसा माना जाता है कि विश्व में ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौता कभी नहीं हुई थी। अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने सम्मेलन के अंतिम परिषद में भाषण देते हुए कहा “समुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर जिस प भाषने भी हस्ताक्षर किये हैं एक ऐसी सुरक्षा नीति है जिस पर हम एक मुक्त

“The projected general organisation may be regarded as the keystone of the arch. The task of planning the great design of security and peace has been begun. It now remains for the nations to complete the structure in a spirit of constructive purpose and mutual confidence.”

पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कदम उठाना आवश्यक हो। सदस्यों को प्राविधिक जानकारी परामर्श व सहयोग देने का काम यह समिति करती है। वष में कम से कम एक बार इसकी बैठक का। आवश्यक है। इसके सदस्य हैं—विश्व अणु विज्ञान संघ के प्रधान तथा उप प्रधान संघ के अणु विज्ञान सम्बन्धी सौ प्रादेशिक अणु विज्ञान—एमोनियमता के प्रधान एवं छः निर्वाचित सदस्य।

(III) संघ का एक सचिवालय है और प्राविधिक धायोव भी।

छः प्रादेशिक अणु विज्ञान एसोसियेशन कमन कॉमनवेल्थ एशिया दक्षिण अमेरिका उत्तर व मध्य अमेरिका यूरोप एवं दक्षिण-पश्चिम प्रशांत के लिए हैं। संघ का मुखिया एक महासचिव होता है जिसका प्रथम कार्यालय जेनेवा में है।

उद्देश्य एवं काम —विश्व अणु विज्ञान संघ के उद्देश्य एवं कार्य ये हैं—

(1) संसार की अणुविज्ञानीय क्रियाओं के बीच समन्वय स्थापित करना उनका प्रमाणीकरण करना।

(ii) अणु विज्ञान सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्थायों के लिए कदम में कार्य करना और उन्हें ठीक ठाक रखना।

(iii) मौसम की जानकारी के लेखी से आदान-प्रदान के लिए सावधान्य व्यवस्था करना और उसे सुव्यवस्थित रखने में योग देना।

(iv) अणु विज्ञान के क्षेत्र में सम्बन्ध तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहित देना।

(v) विमान संचालन महाब्रह्मी इपि एवं अन्य मानवीय उद्योगों में अणु विज्ञान से लाभ उठाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना।

प्राविधिक सहायता कम में विश्व अणु विज्ञान संघ का सम्बन्ध राष्ट्रीय अणु-सेवाओं और अणु विज्ञान के कृषि स्वास्थ्य तथा यातायात जैसे क्षेत्रों से रहता है।

(१३) अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी

(International Atomic Agency)

अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी एक नवीनतम अन्तर-सरकारी संगठन है। अमेरिका के मृतपूर्व राष्ट्रपति आइजनहोवर द्वारा ८ दिसम्बर १९५१ को संयुक्त राष्ट्र सभिय महासभा के सामने दिये गये एक आक्षेप में इस परमाणु शक्ति एजेंसी का प्रस्ताव सामने आया और अधिकतर वष से २६ जुलाई १९५७ को इसकी स्थापना हुई। इसकी स्थापना समुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्धान में की गयी।

उद्देश्य एवं काम —इस एजेंसी की स्थापना का उद्देश्य परमाणु शक्ति के शांतिमय उपयोग को और आगे बढ़ाना था। यह शांतिमय उपयोग के लिए परमाणु शक्ति सम्बन्धी अनुसंधान में सहायता पहुँचाती है। इस ज्ञान के विकास और उसे काम में लाने में सहायता देती है। एजेंसी वैज्ञानिक तथा प्राविधिक सुचनाओं के आदान-प्रदान में योग देती है और वैज्ञानिकों का प्रतिष्ठित एवं आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करती है। इस रूप में एक मध्यस्थ का काम

महासभा के द्वितीय अधिवेशन में प्रस्तुत की गई थी किन्तु पृष्ठभूमि के रूप में समस्या के पूर्ववर्ती इतिहास की रूप रेखा पर दृष्टि डालना बाध्यम्यता की दृष्टि से उपयोगी होगा।

पृष्ठभूमि—कोरिया द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान के नियंत्रण में था वह इसे १९१० में चीन से जीत चुका था। दिसम्बर १९४३ को काहिरा सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि जापान नियंत्रित कोरिया को युद्ध में विजय के उपरान्त स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाय। काहिरा पावरला की सम्झौता इस प्रकार थी— संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और चीन कोरियाई जनता की दावता से परिचित हैं और उनका यह दृढ़ निश्चय है कि उचित समय पर कोरिया का स्वतंत्रता प्रदान की जाय। फरवरी १९४५ में यह तय हुआ कि कोरिया स्वतंत्र होने के पूर्व कुछ समय तक संयुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षण में रहे। जुलाई १९४५ के पोर्टस्मथ सम्मेलन में भी काहिरा घोषणा को स्वीकार कर लिया गया और इस तरह कोरियाई स्वतंत्रता के प्रश्न को सोवियत संघ की भी मांगपता प्राप्त हो गई। दिसम्बर १९४५ में मास्को में आयोजित ३ बड़े राष्ट्रों के बिसेस मंत्रियों के सम्मेलन में यह फैसला किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्रवाय पर सरदारों की अध्यक्षता बर्य रहे। लेकिन युद्ध समाप्त होने पर स्थिति बिस्तृत बरबस गई। जब बावानी सेनाओं ने कोरिया और मन्चूरिया में प्रारम्भ समपूर्ण किया उस समय सैनिक सुविधा की दृष्टि से ३८ अक्षांश रेखा के उत्तर में सोवियत रूस के तथा इसके दक्षिण में अमेरिकन सेनाओं के धामे इधियार डाले गये। यही रेखा बरबस गई और एक तरह से कोरिया दो भागों में विभक्त हो गया। कई महीनों तक सोवियत रूस और अमेरिका के मध्य कोरिया का एकीकरण करने और उसे ४ राष्ट्रों के संरक्षण में लेने के प्रश्न पर बार्ता होती रही किन्तु कोई समझौता नहीं हो सका। वस्तुतः दोनों ही पक्ष कोरिया में अपनी स्थिति को दृढ़ बनाना चाहते थे अतः इस पृष्ठभूमि में समझौते की कोई सम्भावना ही ही नहीं सकती थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ और कोरिया संकट—१९४० की शीत ऋतु में दोनों पक्षों की बार्ता में पूर्ण सन्तुल्य उत्पन्न हो गया और तब १० सितम्बर १९४० को अमेरिका ने महासभा के द्वितीय अधिवेशन में कोरिया की स्वतंत्रता का प्रश्न प्रस्तुत कर दिया। अपने प्रस्ताव में अमेरिका ने कोरिया का एकीकरण कर उस अधिलम्ब स्वतंत्रता प्रदान करने की सिफारिश की। अमेरिका द्वारा यह भी सुझाव दिया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ एक कमीशन (माइडोव) की स्थापना करे और यह कमीशन अथवा प्रायोग्य अपनी देख-रेख में समस्त कोरिया में स्वतंत्र निर्वाचन कराये तथा बहुमत प्राप्त दल को कोरिया की सत्ता सौंप दी जाय। सोवियत रूस की ओर से अमेरिकन प्रस्ताव का और विरोध हुआ अतः १९ के विच्छेद ३३ के बहुमत से महासभा ने कोरिया में एक सभ्य अन्वेषी प्रायोग्य विजय का निर्णय किया। इस प्रायोग्य को यह भी निर्देश दिया गया कि वह कोरिया में स्वतंत्र निर्वाचन द्वारा एक स्वतंत्र सरकार की स्थापना के कार्य में योग्य प्रदान करे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के कोरिया पर अस्थायी आयोग" [U N Temporary Commission On Korea] को दक्षिणी कोरिया में आवश्यक जांच पड़ताल करने की सभी सुविधाएं सुनिश्चित की गईं। भारत भी इस आयोग का एक सदस्य था। आयोग को तत्काल प्रतिक्रिया उत्तरी कोरिया में प्रवेश नहीं करने दिया गया। अतः इतने दिवसों के बाद अपनी देख-रेख में दक्षिणी कोरिया में १० मई १९४८ को चुनाव करा जिसे जिसके फलस्वरूप २३ अक्टूबर १९४८ को दक्षिणी कोरिया में गणतन्त्र सरकार की स्थापना हो गई। सिगमनरी [Sygman Rhee] को इस गणतन्त्र का राष्ट्रपति चुना गया। १७ दिन पहले अमेरिका में गणतन्त्र का अधिकार दक्षिण कोरिया सरकार को सौंप दिया। इसी मध्य अन्तरिम किम इल-संग की अध्यक्षता में उत्तरी कोरिया में आम चुनाव के बाद लोकतन्त्रीय जन गणराज्य की स्थापना हो गई।

१२ दिसम्बर १९४८ को महासभा में सिगमनरी की सरकार को ही पूरे कोरिया की एक मात्र वैध सरकार घोषित किया उत्तरी कोरिया का 'लोकतन्त्रीय जनगणराज्य' उपेक्षित कर दिया गया। इससे उपरान्त महासभा में अपने प्रस्ताव सं० १९१ के द्वारा अमेरिका और दक्षिण संघ से यह लिखा गया कि वे अपनी सेनाओं को कोरिया से वापिस बुला लें। साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कोरिया के एकीकरण हेतु ७ सदस्यों का एक आयोग बनाया गया जिसके कार्य में साम्यवादी और सिगमनरी दोनों ही सह-कार्यी बनाने लगे। तत्कालीन संघ ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि महासभा कोरिया के सम्बन्ध में कोई पत्र नहीं उठा सकती क्योंकि यह प्रश्न मास्को सम्मेलन के पक्ष में है और उस पर विचार सम्बन्धित मित्र राष्ट्रों द्वारा किया जाना चाहिए। २१ दिसम्बर १९४८ को कम से उत्तरी कोरिया से अपनी सेनाओं की वापसी की घोषणा की। दक्षिण में अमेरिकन सैनिकों को २९ जून १९४९ को वापिस बुला लिया गया जिसकी पुष्टि संयुक्त राष्ट्रीय कोरियाई आयोग द्वारा की गई। इस समय तक दक्षिणी कोरिया की सरकार को अमेरिका के सभी विद्यमान देव और उत्तरी कोरिया की सरकार को सभी साम्यवादी देव मास्यता प्रदान कर चुके थे। २१ अक्टूबर १९४९ को संयुक्त राष्ट्रीय महासभा में अपने कार्यक्रम कार्यक्रम में 'कोरिया पर अस्थायी आयोग' को जारी रखने का निर्णय किया। आयोग विभाजन के फलस्वरूप अस्तित्व में आने वाले दोनों भागों के बीच आधिकारिक आधिकारिक और अन्तः-संबन्धों को दूर कर मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करने लगा।

विभाजित कोरिया के दोनों भागों में वैयक्तिक बंधन बना और दोनों में संघर्ष की स्थिति अनिवार्यतः पैदा हो गयी। दोनों की सीमाओं पर परस्पर घुसपैठ भी होने लगी। उत्तर में अन्तरिम किम-इल-संग की सरकार पराधिक लोकप्रिय थी जबकि दक्षिण में सिगमनरी की सरकार में सामन्तों और कृषि-कारियों का ही शोचनीयता था। १९४८ से लेकर १९५० तक दोनों भागों के बीच घुसपैठ अत्यन्त बढ़ते रहे। संयुक्त राष्ट्र संघीय आयोग ने इन मामलों को निपटारने की कोशिश भी की किन्तु इस काम में उसे कोई सफलता नहीं मिली।

२१ जून १९५० को उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरियायी गणतंत्र पर आक्रमण कर स विश्वास पमान पर आक्रमण कर दिया । यद्यपि उत्तरी कोरिया और सोवियत सरकार ने बार-बार यह दोहराया कि आक्रमण उत्तरी कोरिया की ओर से नहीं बल्कि दक्षिणी कोरिया की ओर से हुआ परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रायोग के अध्यक्षन और बांध पड़ताल से जो प्रकाश्य प्रमाण सामने प्राय उनसे समस्त संसार को यह विश्वास हो गया कि उत्तरी कोरिया ही आक्रमण का गोपी था ।

प्रायोग ने जिसकी अध्यक्षता भारत के श्री बी एम राव कर रहे थे, और जिसमें अमेरिका तथा कम सम्मिलित नहीं थे, संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट ही कि आक्रमण बिना सूचना दिये पूरा प्रायोजित तथा पूरी तैयारी के साथ किया गया था । तुरन्त ही २७ जून १९५० की सुरक्षा परिषद की प्रापत्कामान बैठक बुलाई गयी जिसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि "बहु शक्ति सम हुई है और इसलिये सब न सत्य राज्य कोरिया के प्रजातंत्र का ऐसी सहायता है जो सबसब आक्रमण का नबेड़ने और उस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय शांति एक सुरक्षा के लिए आवश्यक है । सुरक्षा परिषद न सपन्नो की तीव्र समाप्ति तथा ३८ की समानान्तर रेखा से उत्तरी कारियायियों की बापिषी का प्रावण दिया । चूकि इन दिनों चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्यता दिवाने के प्रान पर सावियत रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठकों का बहिष्कार कर रखा था अतः सुरक्षा परिषद न कोरिया को आक्रमणकारी घोषित करने का अमेरिकन प्रस्ताव १ के विरुद्ध ७ मतों से विपेमाधिकार के प्रयोग के बिना स्वीकृत हो गया । अतः संयुक्त राज्य अमेरिका सुरक्षा परिषद के इस निर्णय के पूरा ही उत्तरी कोरिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर चुका था । वस्तुतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि संयुक्त राष्ट्र संघ के नाम पर यह अमेरिका का युद्ध था । अनेक निष्पक्ष देशों ने परिषद के इस निर्णय की प्रासाधना की और युद्ध की अयेना शांति पूर्ण ढंग से समस्या के समाधान का सुझाव दिया । सोवियत रूस ने इस प्रस्ताव की कटु आलोचना करते हुए इसे एक स्वामी सदस्य की अनुपस्थिति में लिया गया निर्णय होने के कारण गलत बतलाया । परन्तु इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । सुरक्षा परिषद ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना करने के लिये जिस सैनिक कार्यवाही करने का निर्णय लिया और सदस्य राष्ट्रों से संघ की पूरी सहायता करने का जो अनुरोध किया उसके प्रत्युत्तर में ३३ राष्ट्रों ने अपना नैतिक समर्थन तथा कुछ राष्ट्रों ने अपना सक्रिय सहयोग देने का वायवा किया ।

७ जुलाई १९५० को सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सभ के प्राथम एक संयुक्त कमान की रचना की और अमेरिका के नेतृत्व में इसे सहयोग प्रदान करने के लिए सभी देशों से प्रार्थना की गयी । अन्तरस मेरु प्रायर् को कोरिया में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं का धीमापति बना दिया गया । इस संयुक्त कमान की सेना में अपनी स्वेच्छा से १६ राष्ट्रों ने प्राय मिया । आस्ट्रेलिया बेल्जियम कनाडा कोलम्बिया, इथोपिया फ्रांस यूनान लक्जम बर्ग नीदरलैण्ड न्यूजीलैण्ड फिनियाइस्य बाईलैण्ड टर्की ब्रिटेन मधीका और इगर्लैण्ड की सैनिक टुकड़ियाँ अमेरिकन सेनाओं के साथ कम्बे से कम्बा

मिसा कर कोरिया में धातुमूल्य का प्रतिरोध करते सभी । भारत केनमार्क नार्बे और स्वीडन ने अपनी विविधता दुरुद्धियां भेजी तथा अन्य २४ राष्ट्रों ने किसी-न-किसी प्रकार की सहायता भेजी ।

धारम्भ में उत्तरी कोरिया को ही सफलता मिली और उस की सेनाओं ने बोक्से ही दिनों में दक्षिण कोरिया की राजधानी सीओन पर अधिकार कर लिया । उत्तरी कोरिया तेजी से दक्षिण कोरिया के भागों पर अधिकार करता गया । परन्तु बाय में युद्ध की स्थिति में परिवर्तन पाया । जब पासा संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना के पास में पसट गया । संघ की सेनाओं में घाये बड़ते हुए पुसान क्षेत्र (Pusan area) से ३८ घण्टा की धोर लड़ना प्रारम्भ किया । अमेरिका का विचार था कि संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं को ३८ घण्टा पार कर साम्यवादी कोरिया में प्रवेश कर जाना चाहिए । महासभा ने ७ अक्टूबर को यह सुझाव मान लिया और साथ ही कोरियायी एकीकरण एवं पुनर्बांध के लिए एक धायोय भी नियुक्त किया । भारत के तरातीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के ३८ घण्टा रस्ता से घाये बड़ने का विरोध किया । भारत का कहना था कि इस प्रकार युद्ध का क्षेत्र बड़ जायगा । परन्तु अमेरिका पर इस विरोध का कोई असर न पड़ा । वह प्रस्ताव महासभार और सम्पूर्ण दुर्बो एशिया में अमेरिकन प्रयुता काम्य करने का प्रश्न था । जनरल मैक आर्थर अपनी सेनाओं को न केवल कोरिया की उत्तरी सीमा पासु नहीं तक किन्तु मन्चूरिया तक से जाना चाहता था क्योंकि उसके सतानुसार यही से उत्तरी कोरिया बातों को सेना तथा अन्य सामग्री की कुमक पहुँच रही थी ।

अपरोक्त युद्ध नीति का परिणाम यह हुआ कि सुवर्णवर्षीय चीनी सैनिक कोरिया के युद्ध में साम्यवादियों की धोर से सड़ाई में डूब पड़े । १ नवम्बर १९५० को जनरल मैक आर्थर ने यह स्वीकार किया कि उसकी सेनाओं पर शक्तिशाली एवं संयुक्त चीनी सैनिकों द्वारा हमला किया जा रहा है । १० नवम्बर को सुरक्षा परिषद् में कई राष्ट्रों द्वारा एक प्रस्ताव रखा गया जिसके अनुसार साम्यवादी कोरिया की सेनाओं को किसी प्रकार की सहायता देने पर रोक लगाने की सिफारिश की गयी तथा उस धारे को स्वीकार किया गया जो चीन के सक्रिय हस्तक्षेप द्वारा पैदा हो गया था । सुरक्षा परिषद् ने चीनी गणतंत्र के प्रतिनिधि को भी विचार में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया । सुरक्षा परिषद् में चीन के प्रतिनिधि ने अमेरिका की कुी तरह मातौचना की और चीन की भूमि पर इस बार हमबारी करने के लिए शोपी ठहूपाया तथा कोरिया युद्ध में हस्तक्षेप को अपनी सुरक्षा का प्रतीक बताया । उसने यह भी कहा कि संघ को फारमोसा के प्रश्न पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है । चीनी प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री चाउ-एन-साई ने कोरिया से सभी संयुक्त राष्ट्रीय सेना बापिस हटाने फारमोसा छोड़ने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान पाने की मांग की । १४ दिसम्बर १९५० को महासभा ने युद्ध विराम के लिए एन० सी० पी० बर्चन (कनाडा) बी० एन० राब (भारत) तथा यू० एन्सजम (ईरान) का एक ग्रप कोरिया में एक सशोपप्रद संपि की स्थापना के लिए नियुक्त किया किन्तु बातिपुर्ण समझौते के सभी प्रयास अक्षर्य रहे ।

राजनीतिक मामलों पर बोलते हुए आजा का उन्मत्त करने पर जनरल मैक धार्मर को १३ अप्रैल १९५१ को वापिस बुला लिया गया और उनके स्थान पर जनरल रिजवे की नियुक्ति हुई। इसके पूर्व फरवरी १९५१ में अमेरिका के प्रभाव से महासभा ने एक प्रस्ताव पारित करके चीन को भी आक्रमणकारी घोषित कर दिया। इस प्रस्ताव का भारत द्वारा भी-जान से विरोध किया गया।

कोरिया युद्ध की समस्या को हल करने में भारत ने विशेष महत्वपूर्ण भूमिका घटा की। भारत की प्रेरणा से ही साम्यवादी चीन ने समस्या के समाधानार्थ संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी प्रतिनिधि भेजा यह बात दूसरी है कि चीन की माँगों को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रेषित समर्थन नहीं मिला और जस्टे फरवरी ११ में अमेरिकन प्रभाव के कारण संघ द्वारा चीन को आक्रांता घोषित करने का बहुद्विगतापूर्ण कार्य कर दिया गया। अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र संघ की इन कार्यवाहियों से चीन का विरोध बहुत ही उग्र हो गया।

एक ओर तो संघ द्वारा कोरिया में शांति स्थापना के प्रश्न पर जितना विचार किया गया समस्या उतनी ही उत्तमती गयी और कोरिया में दोनों पक्षों की तरफ से युद्ध की भीषणता बढ़ती गयी। राष्ट्रपति ट्रूमैन अणुबम तक का प्रयोग करने का विचार करने लगे किन्तु ब्रिटेन के आग्रह पर उन्होंने ऐसा नहीं करने का वायदा किया। २ मई, १९५१ को महासभा ने एक और प्रस्ताव पास करके चीन तथा उत्तरी कोरिया को युद्ध सामग्री भेजने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परन्तु इस समय तक दोनों ही पक्ष युद्ध से तन पा चुके थे। दोनों तरफ से बन बन की प्रपार शक्ति हो रही थी। पठ दोनों ही पक्षों में विराम संधि चलने लगी। जून १९५१ में उत्तरी कोरियायी युद्ध विराम पर विचार-विमर्श के लिए सहमत हो गये। १० जुलाई १९५१ को संयुक्त राष्ट्र संघीय संयुक्त कमान तथा साम्यवादी चीन व कोरिया की संयुक्त कमान के प्रतिनिधियों ने कैसांग (Kaesong) में अपनी बातें प्रारम्भ की। सन्धिकाल विषयों पर दोनों पक्षों में समझौता हो गया, किन्तु कुछ बातों पर बर्मीर मतभेद बने रहे। ये मतभेद मुख्यतः तीन थे—प्रथम हवाई अड्डों का निर्माण द्वितीय तटस्थ राष्ट्रों के नियन्त्रण आयोग (Neutral Nations Supervisory Commission) की रचना और तृतीय युद्ध बन्दियों की वापसी। सबसे बर्मीर समस्या युद्ध-बन्दियों की वापसी ही सिद्ध हुई। समस्या लक्ष्य को साह बन्दियों की वापसी के बारे में थी। संयुक्त राष्ट्र संघ का कहना था कि उसके प्रकीर्ण किसी भी जस बन्दी को वापिस न भेजा जायगा जो अपनी इच्छा से ही साम्यवादी माह में सौटने को न कहे। अमेरिका का यह हक मत था कि अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति को जबर बस्ती उसकी मातृभूमि में सौटाना एक मौलिक मानवीय अधिकार का हनन है। साम्यवादियों का कहना था कि बन्दियों को प्राथमिक रूप से अपने देश को सौटाना जाय। साम्यवादियों के कब्जे में संघ के लक्ष्य १२ हजार बन्दी थे। बन्दियों की वापसी का प्रश्न बुरी तरह उभर गया। इस समस्या को हल करने में भारत ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

३ मार्च १९१३ को मार्सेस स्टामिन की मृत्यु के बाद मोनेनरोव स्त के प्रधान मंत्री बने और उन्होंने कोरिया युद्ध समाप्त करने की इच्छा व्यक्त की। अप्रैल १९१३ में कोरिया में चायस तथा रागी युद्ध बंदियों की घटना बढ़ती का काम शुरू हो गया। बिराम सॉमि की प्रारम्भिक बार्ना पाममूनजाम (Panmunjom) में २६ अप्रैल, १९१३ को पुनः शुरू हुई। वज़न को दोनों कमार्नों ने युद्ध बंदियों के घटना बढ़ती के सम्बन्ध में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अनुसार ३ तटस्थ राष्ट्रा के एक प्रायोग की रचना हुई जिसमें स्वीडन स्विट्ज़रलैण्ड पोलैण्ड फ़ेडोस्साबाविया तथा भारत को स्थान दिया गया। इस प्रायोग के सुपुर्न इन बंदियों को कर दिया गया जिन्होंने अपनी बापसी के अधिकार का प्रयोग नहीं किया था। भारत के अमरस विमैया प्रायोग के अध्यक्ष बने। यह तय किया गया कि प्रायोग के किसी राष्ट्र को निवेधाधिकार प्राप्त नहीं होना और सभी निर्णय बहुमत से किये जायेंगे। २७ जुलाई, १९१३ को अन्ततः कोरिया की युद्ध बिराम-सॉमि पर हस्ताक्षर कर दिए गये। इस तरह १ साल से भी अधिक समय तक चलने वाला कोरिया-युद्ध समाप्त हो गया। ६ सितम्बर १९१३ तक बंदियों की घटना-बढ़ती का कार्य समाप्त हो गया। साम्यवाधियों ने १२०६० बंदियों को संयुक्त राष्ट्र संघीय कमार्न के सुपुर्न किया और इसके विपरीत अपने ७२ ०११ सैनिक उन्हें मित्र राष्ट्रों से बढ़ने में मिले। १० सितम्बर से भारतीय संरक्षक बस्ते को दोनों पक्षों के युद्ध बंदी सौंर यथे जिन्होंने स्वदेग सौंरने से इन्कार कर दिया। संयुक्त राष्ट्र संघीय पक्ष से प्राप्त ऐसे उत्तरी कोरियायी और चीनी सैनिकों की संख्या २३ हजार थी जबकि उत्तरी कोरिया के पास से ऐसे केवल ४०० सैनिक प्राप्त हुए। इन बंदियों से इस सम्बन्ध में इनकी इच्छा जानने के लिए पुच्छास्य करना एक अठरनाक काम था किन्तु भारतीय सैनिक बस्ते ने यह काम अनेक कष्ट भेन कर भी नहीं सूची से निपटाया। २१ जनवरी १९१४ तक बंदियों की सम्पूर्ण समस्या का जगमग समाधान हो गया।

३ साल से भी अधिक समय तक चलने वाले कोरिया-युद्ध में जन-जन की अपार कठि हुई। इस युद्ध में अकेले अमेरिका के १ लाख ४२ हजार सैनिक हताहत हुए।

कोरिया संकट के समाधान से संघ के महत्त्व में वृद्धि—संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से कोरिया का युद्ध बिराम युद्ध बनने से एक गया। इस संकट ने संघ को निहार कर कुम्भन बना दिया। ए ई स्टीवेन्सन के कथनानुसार—

कोरिया के युद्ध की निरर्कता का विचार उसी समय पैसा जब एक बिराम सॉमि के विषय में बातचीत आरम्भ हुई और वास्तव में जब हमने प्राक्मण को रोकने तथा प्राक्मणकारियों की बापिस मगामे के प्रारम्भिक उद्देश्य की सिद्धि कर ली थी। संयुक्त राष्ट्र संघ की इस प्रथम महान् सामूहिक सैनिक आय बाही ने यह सिद्ध कर दिया कि यह सगठन शक्ति तथा शक्ति दोनों से काम लेने के रूपों को प्रहस्य करने के योग्य है। हम

कोरिया ने सामूहिक सुरक्षा के लिए एक मध्यस्थ व्यवस्था की स्थापना की और ऐतिहासिक उन्नति करती है।

क्लार्क एच. ईचेबर्गर (Clark Eicheberger) ने लिखा है—

कोरिया के विवाद ने विश्व का यह भाग बंधा दी जि यदि बड़ी शक्ति के बिना नहीं तो कम से कम एक बड़ी शक्ति के प्रथम राष्ट्र (Sate II) के बिना तो निश्चय ही सामूहिक कार्यवाही कर सकते हैं।¹

कोरिया की घटना न विश्व सस्था के संचालन की कुछ नवीन परम्पराओं का सूत्रपात किया और घनेक महत्वपूर्ण परिणामों की जन्म दिया—

(i) वाटर के अनुसार सैनिक कार्यवाही के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद के नियम की मदद राष्ट्रों के लिए मानना आवश्यक था किन्तु कोरियाई घटना ने इन व्यवस्था में संशोधन करते हुए इसे ऐच्छिक बना दिया प्रथम संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक सहायता देना सदस्य राष्ट्रों की इच्छा पर हो गया। सुरक्षा परिषद ने सैनिक कार्यवाही करने के संप्रथम कार्य में सहायता करने की सदस्यों से सिफररिक्त की भी इच्छा स्पष्ट था कि यह सदस्यों की इच्छा पर था कि वे सभ की सैनिक सहायता दें। जवाहरलाल नेहरू ने सेनाएँ नहीं भेजी कबल थायल सैनिकों की बिक्रिस्ता के लिए वाटररी सहायता भेजा। और भी घनेक देशों ने सैनिक कार्यवाही में भाग नहीं लिया।

(ii) कोरिया कि घटना ने स्पष्ट कर दिया कि सुरक्षा परिषद में पाँचों स्थायी सदस्यों का मत किसी प्रस्ताव को पास कराने के लिए आवश्यक नहीं है। यदि एक या अधिक स्थायी सदस्य अनुपस्थित हैं तथा मत नहीं दे रहा है तो उसकी अनुपस्थिति परिषद की कार्यवाही में बाधा नहीं बरस सकती और उसका वीटो भी लागू नहीं होता। सोवियत रूस की अनुपस्थिति में सुरक्षा परिषद द्वारा लिये गये नियम ने वीटो अधिकार के सम्बन्ध में निश्चय ही एक व्यवधिक महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण कर दिया।

(iii) यदि रूस ने सुरक्षा परिषद का बहिष्कार न किया होता तो संयुक्त राष्ट्र संघ इतनी सीमतापूरक प्रभावकारी कार्यवाही करने में समर्थ न होता। इस कमी को ध्यान में रखते हुए अमेरिका ने १ नवम्बर १९५० को महामन्त्र में शांति के लिए एकता (Uniting for Peace) का प्रस्ताव रखा जिसमें इन बात की व्यवस्था की गयी कि 'सुरक्षा परिषद के कोई सात सदस्य प्रथम संयुक्त राष्ट्र संघ के बहुसंख्यक सदस्य प्रावश्यकता पड़ने पर विशेष रूप से उस समय जबकि सुरक्षा परिषद के सदस्यों में मतभेद होने के कारण प्रतिक्रम कार्यवाही की कोई भाषा न रहे २४ बजे की सूचना पर महामन्त्र

1 Korea gave the World hope that the nations could take the collective action if not against a great power certainly against the setellite of great power"

—Clark M Eicheberger UN The First Years 1965 p. 22

का स कटकालीन परिषदें बना सकते हैं यदि वे यह समझते हैं कि स्थिति इतनी घबराही है कि उनसे बिना ही शांति गठने में पड़ सकती है। इस प्रस्ताव में महासभा को शांति रक्षा के लक्ष्य पर अधिकार देते हुए उनकी प्रतिष्ठा और गौरव में बड़ी महत्त्वपूर्ण वृद्धि की। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रस्ताव कोरिया-सोवियत की सबसे बड़ी देन कहा जा सकती है।

(iv) कोरिया समस्या में संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन में इस नीति धारणा को प्राप्त सिद्ध कर दिया कि सैनिक क्राय बाही केवल तभी प्रभावशाली बन सकती है जबकि पाँचों स्थायी सदस्यों का सहयोग मिले। कोरिया में सैनिक क्राय बाही रूस की सहमति के बिना ही नहीं। पहले सुरक्षा परिषद के एक भी स्थायी सदस्य के सहमत न होने से ऐसी कार्यवाही नहीं हो सकती थी लेकिन अब महासभा इसे दो-तिहाई बहुमत में कर सकती थी।

(v) इस घटना में यह भी सिद्ध किया कि संघ की सैनिक कार्यवाही की सफलता उनक सदस्यों के सक्रिय सहयोग तथा महासक्तियों के उत्साह पर प्रबलम्बित है। संयुक्त राज्य अमेरिका की महासक्ति के उत्साह पर कारण ही कोरिया-युद्ध में संघ सफल हो सका।

यद्यपि कोरिया में शांति स्थापित की जा चुकी है किन्तु कोरिया राजनीतिक एकीकरण की समस्या आज भी पूर्ववत् बनी हुई है।

सीरिया-लेबनान समस्या (Syria Lebanon Issue)

सात फ्रांसिस्को सम्मेलन में सीरिया और लेबनान के प्रतिनिधियों ने यह मांग रखी थी कि उनके देश से फ्रांस और ब्रिटेन अपनी फौजें हटा दें। ऐसा न किये जाने पर ४ फरवरी १९५६ को उन्होंने (सीरिया और लेबनान) सुरक्षा परिषद में यह निवेदन किया। उन्होंने कहा कि उनके प्रदेश में ब्रिटिश तथा फ्रांस बलों की उपस्थिति संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी की मांग के लिये घर्षण है। संयुक्त राज्य अमेरिका सुरक्षा परिषद द्वारा इन सेनापों को घना सम्मेलन भीड़ हटाने की धावा बिलाना चाहता था जबकि सोवियत संघ सेनापों को उत्क्राम हटा देने के पक्ष में था। सीरिया और लेबनान की निवेदन का प्रमेय सीरिया को प्रस्ताव रखा उसमें इस सम्भावना का प्रयोग किया गया— "सुरक्षा परिषद को विश्वास है कि ये फौजें यथासंभव शीघ्र ही हटा ६-कार्येगी। स्पष्ट ही अमेरिका मामले को हल करने के पक्ष में था। लेकिन सीरिया व संघ ने अपने विरोधी प्रस्ताव में इस बात का ध्यान किया कि सेनापों को उत्क्राम हटा ली जाय। पहले प्रस्ताव के पक्ष में सात स्वीकारात्मक वोट तो पाये, लेकिन रूस के वीटो के कारण वह रद्द हो गया। रूस ने इस धावा पर वीटो किया कि प्रस्ताव की सम्भावना पर्याप्त रूप से बहिष्कृत नहीं है। यद्यपि प्रस्ताव पारित होने में असफल हो गया किन्तु फ्रांस और ब्रिटेन ने परिषद के बहुमत का पालन करते हुए यह घोषणा की कि वे अपनी फौजें हटा देंगे। इसमें उन्होंने ऐसा ही किया और ३० अप्रैल, १९५६ तक अपनी सेनाएँ सीरिया तथा लेबनान से हटा लीं।

इस समस्या का महत्व इस बात में निहित है कि सुरक्षा परिषद ने कार्य का रचनात्मक फल बिलगत है यदि वीटो के प्रयोग से बाधित होने पर

करती है कि इनके एक साम्य से दूसरे सदस्य के लिए प्राविधिन और अन्य सहायता प्राप्त की जा सके। इसका एक प्रमुख कार्य स्वास्थ्य एवं समृद्धि की सुरक्षा के लिए सुसह्यमानों को वास्तुस्थिति करना है। इसके लिए यह संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष एजेंसियों से साथ मिलकर काम करनी है। अन्तर्राष्ट्रीय पर्याप्तता एजेंसी यह भी सुनिश्चित करती है कि वी गई सहायता का सैनिक उपयोग के लिए उपयोग न हो। तथा एक नाम आइसबर्ग कुमार माजसामान का एजेंसिज करना तथा विश्वव्यापीय मामलों का एजेंसिज व सप्लाई करने के लिए सुविधाएं स्थापित करना है।

एजेंसी का प्रधान कार्यालय बियना (पारिजिया) में है। इसका सगठन इस प्रकार है—एक सामान्य तथा गवर्नर बाइ तथा कमचारी मण्डल जिसका मुखिया महानिदेशक होता है। सामान्य मण्डल में समस्त एजेंसी के सदस्य होते हैं। इसका अधिबेशन प्रति वर्ष विभिन्न रूप में होता है। मानान्वय मना एजेंसी की नियमानुओं की परिष्कार-परिधि के अन्तर्गत किसी या मामल पर विचार कर सकती है। गवर्नर बोर्ड में २३ साम्य होते हैं जो एजेंसी के काम का पालन है।

(१४) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम

(International Finance Corporation-IFC)

समार के अधिकृत देशों का आर्थिक विकास के लिए अधिक्त मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम का स्थापित करने का विचार सर्व प्रथम विश्व बैंक द्वारा बनायी गयी उस रिपोर्ट में व्यक्त किया गया था जो १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक व सामाजिक परिषद को प्रस्तुत की गयी थी। उत्तरांचाल देशों के विचार के बाव अन्तर्गत कुमार १९४६ में इस वित्त निगम की स्थापना हुई।

सदस्यता और सगठन—अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम विश्व बैंक के सहायक के रूप में कार्य करता है। निगम के चार्टर के अनुसार विश्व बैंक का प्रत्येक सदस्य, जो अपनी सरकार का प्रतिनिधित्व करता है निगम की गवर्नर परिषद का भी सदस्य बन सकेगा। विश्व बैंक का अध्यक्ष जो बैंक की कार्यकारी संस्था का परिषद का समापति होता है वित्त निगम की संस्थापक परिषद का भी समापति होता है।

निगम का अलग अस्तित्व है और इसकी सभी परिसम्पत्ति विश्व बैंक की परिसम्पत्ति से अलग रखी जाती है। यह विश्व बैंक से अलग नहीं से अलग है। इसका अपना अलग अस्तित्व होता है जो इसके सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार होता है।

पूजी उद्देश्य एवं कार्य प्राधि—अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम की अधिकतम पूजी ११० मिलियन डॉलर है।

निगम का उद्देश्य सदस्य देशों में विविध रूप से कम विकसित देशों में अर्थव्यवस्था को अलग प्रदान करके उत्पादक उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देकर आर्थिक विकास के अन्तिम कार्य को सरल बनाता है। इस मूल उद्देश्य को नियम निम्नलिखित प्रकार पूरा करने का प्रयत्न करता है—

(१) उस स्थिति में जब व्यक्तिगत पूंजी पर्याप्त मात्रा में उद्योग को सुचारु रूप से चलाने के लिए उचित शर्तों पर प्राप्त नहीं है अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम सन्ध्य देशों में व्यक्तिगत निवेशकताओं के साथ व्यक्तिगत उत्पादक उद्योगों में सन्ध्य देश की सरकार द्वारा पूंजी व्यवस्था और के मुनठान की किसी भी प्रकार की गारण्टी बिना निवेश (Investment) करता है।

(२) निगम निवेश व्यवहारों ऐसे व्यक्तिगत पूंजी जो निवेश व्यवहारों की शोख में है तथा अनुमती प्रवर्ध के बीच सूचना गृह का कार्य करने पर्य विकसित देशों में पूंजी के निवेश संभव बनाता है।

(३) वैसी तथा विदेशी व्यक्तिगत पूंजी के उत्पादक निवेश को प्रोत्साहित करने में सहायता देकर अन्तर्राष्ट्रीय वित्त नियम अधिकसित देशों के आर्थिक विकास कार्य में उचित सहायता प्रदान करता है।

नियम का प्रधान कार्यालय वाशिंगटन डी सी में है। अपनी स्थापना के समय में लेकर ३१ दिसम्बर १९६५ तक निगम ने ३४ सदस्य देशों में स्थित व्यवसायों की स्थापना और विकास के लिए समग्र १४० मिलियन डॉलर धनराशि के १०९ अल्प तथा निवेश बिये प। भारत में इनमें १ ८६४ मिलियन डॉलर राशि के उद्योगों में निवेश (Investments) किया है।

अन्य संगठन—उपरोक्त संगठनों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के उत्पादकता में अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी अन्तर सरकारी नागरिक समा हकार संगठन आदि अनेक अन्य दूसरे संगठन भी कार्य कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कुछ गैरसभीय संगठनों का मान्यता भी गयी है जो प्रधानत इस प्रकार से हैं—

(i) अमेरिका का अमिक संघ जिसकी संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों व कार्यों में मौलिक रुचि है।

(ii) कई अन्य संगठन जो भी संयुक्त राष्ट्र संघ के कुछ कार्यों से सम्बन्धित हैं जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए कार्नेगी स्थायी दान कोष (Carnegie Endowment for International Peace) अन्तर्राष्ट्रीय चर्च आयोग (Commission of the Churches on International Affairs), अन्तर्राष्ट्रीय रैड क्रॉस समिति सोवियतिय युवक विश्व संघ (World Federation of Democratic Youth) और विश्व यहूदी संगठन (World Jewish Congress)।

(iii) कुछ इस प्रकार के संगठन जिनका सम्बन्ध विश्व में स्वल्प जन मत का निर्माण करने और उसका प्रचार करने से है जैसे—माध्यमिक अध्यापक विश्व संघ अन्तर्राष्ट्रीय रीटरी क्लब आदि।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने राजनीतिक क्षेत्र की ओर ध्यान आधिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अपनी विशिष्ट एजेंसियों द्वारा अनेक सराहनीय कार्य किया है। इन कार्यों के नूतनीकरण में कई नये एन राज्याध्यक्ष के ये शब्द विश्व ही उपयुक्त हैं—

संयुक्त राष्ट्र संघ में निरालस्यीकरण और राजनीतिक कार्यों का अरपोष तो अभी भी ही न रहा है जबकि इसकी विशेष संत्य शों की

नीकी सहायता और सहयोग का कतुभा अपनी धीमी गति से बहुत प्रागे गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के उत्पन्न और विकास इसके विभिन्न भागों चाट्टर संगोचन राष्ट्र मंत्र से इसकी तुलना इसकी कमबोरिया और उन्हें दूर के इसे धरिगामी बनाने क उपायों तथा इसकी विशिष्ट एजेन्सियों एवं आर्थों पर सन्वित्तर विचार करने के जगत्स प्रगते अध्याय में हम संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा अन्तरराष्ट्रीय शांति की विधा में शिघे गये विभिन्न राजनीतिक यों और संघ की सफलताओं तथा असफलत यों और उसके मूल्यांकन प्रादि (आत्मचरितमक प्रकाश करते)।

EXERCISES

- 1 Give an account of the organisation and functions of the United Nations Organisation

43 संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन तथा उसके कार्यों का विवरण दीजिये।

- 2 Describe the Composition and powers of the Security Council of the U N Discuss its Voting procedure.

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के संगठन और उसकी शक्त का वर्णन कीजिए। इसकी महत्त्व प्रमाणी की विवेचना कीजिए।

- 3 Discuss the importance and the working method of the Security Council of the United Nations organisation with special reference to the Veto Would you advocate the abolition of the Veto as a means of making the U N more effective ?

नियेधाधिकार को विरोध स्पष्ट करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के महत्त्व तथा काम प्रणाली की विवेचना कीजिये। क्या आप संयुक्त राष्ट्र संघ को और भी प्रभावशाली बनाने के लिये नियेधाधिकार को समाप्त करने का अनुमोदन करेंगे ?

- 4 'Lack of Unanimity of the five great powers has paralysed the system of collective security established in the charter and has prevented or at least hampered the exercise of other important functions of the U N organisations.' Discuss.

पांच महात् शक्तियों ने एकता क अभाव में चाट्टर में स्थापित संयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था को पशु बना दिया है अथवा कम से कम संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों के प्रयोग को बाधित कर दिया है या रोक दिया है।" विवेचना कीजिए।

- 5 Nothing has done more to lessen public confidence in the United Nations than the frequent use or disabuse, of the Veto in the Security Council" (Palmer and Perkins). Discuss.

"किमी जी बान ने समुक्त राष्ट्र में लोक विश्वास को कम करने में इतना योग नहीं दिया है जितना कि सुरक्षा परिषद में निष्पादिकार के बार-बार उपयोग यथा दुरायोग में।" विवेचना कीजिए।

- 6 How far the Veto power in the Security Council of the U N been exercised so far? Do you favour the retention of this power and if so with what modification?

कब तक सुरक्षा परिषद में विषयानुसार का कहां तक उपयोग किया गया है? क्या आप इस अधिकार को रखे जाने के पक्ष में हैं यदि हाँ तो किन परिस्थितियों के माध्यम?

- 7 Describe the machinery for international supervision over backward areas under the League of Nations and the U N In what respects if any would you regard the Charter provisions as an improvement upon the mandate system?

राष्ट्र सङ्घ एवं संयुक्त राष्ट्रसङ्घ के अन्तर्गत अधिकाधिक प्रदेशों की अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण प्रणाली का विवरण दीजिये। किस दृष्टिकोण से आप चाहेत व्यवस्था को राष्ट्र सङ्घ की व्यवस्था से यदि है तो अर्थ समझते हैं।

- 8 Discuss the statement that "The International Trusteeship is no mere prolongation of the mandate system under the League of Nations. It is a new system of international supervision. Its scope is wider its power broader and its potentialities are greater than those of the mandate system."

इस कथन की विवेचना करिये कि "अन्तर्राष्ट्रीय स्वास पद्धति राष्ट्र सङ्घ की अन्तर्गत प्रणाली का केवल विकास मात्र ही नहीं है यह अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण की एक नवीन पद्धति है। इसका क्षेत्र अधिक विस्तृत है इसकी शक्ति अधिक व्यापक है तथा इसकी सम्भावना अन्तर्गत पद्धति की अपेक्षा अधिक है।"

How far is the U N Trusteeship system an improvement upon the mandate system?

क्या आप संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की स्वास पद्धति को राष्ट्र सङ्घ की अन्तर्गत पद्धति की अपेक्षा अधिक सुबिकरित समझते हैं?

Describe the constitutions, functions and objectives of the Economic and Social Council and assess its contribution to international co-operation.

आर्थिक और सामाजिक परिषद् की रचना कापी चीज सङ्घों का

बर्लिन कीजिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में इसका योगदान को धारित्वे ।

- 11 "It has not only provided a forum but it has shown itself capable of taking decisions. (L.M. Goodrich and L. Hambro) in the light of this statement discuss the role of the General Assembly of the U.N

इसमें न केवल आद विवाद के लिए एक समझ प्रदान किया है बल्कि अपने आप को नियुक्त मन में समझ को सिद्ध किया है। इस कथन के प्रकाश में संयुक्त राष्ट्र मंडल की महासभा की समीक्षा कीजिए ।

12. It is not a policy forming body but rather a special Committee designed to promote and to carry on the practical work of International Economic and Social Co-operation without detracting from the ultimate responsibility to the General Assembly in the matter (Charles G Fenwick) Discuss

"आर्थिक और सामाजिक परिषद् कोई नीति निर्धारण की संस्था नहीं है बल्कि एक विशिष्ट समिति के समान है जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग के व्यावहारिक काम करना है। विवेचना कीजिए ।

- 13 Describe the mechanism for collective Security under the charter of the United Nations and show how it differs from the collective security system under the Covenant of the League of Nations.

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अंतर्गत सामूहिक सुरक्षा का बर्णन कीजिए और बताइये कि राष्ट्र संघ के संविदा या प्रतिज्ञापन के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था से यह कहीं तक भिन्न है ।

14. Describe the composition and powers of the Security Council of U.N To what extent it is better qualified to establish world peace than the Council of the League of Nations ?

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के संगठन और उसकी शक्तियों का बर्णन कीजिए । राष्ट्र संघ की परिषद् की प्रपक्षा विश्व शांति की स्थापना की दिशा में यह कहीं तक अछूतर है ?

Write an essay on International Court of Justice.
अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय पर एक निबन्ध लिखिये ।

10. How is the Charter of United Nations considered an improvement on the Covenant of the League of Nations ?

संयुक्त राष्ट्र मंच का चार्टर राष्ट्र मंच के समझौता का संशोधन कैसा है ?

Or

Compare and contrast the Charter of the U N with that of the Covenant of the League of Nations. In what respect the Charter is an improvement on the Covenant ?

संयुक्त राष्ट्र मंच के चार्टर और राष्ट्र मंच के संविदा या प्रतिज्ञापन की तुलना कीजिए। चार्टर किन दृष्टियों से संविदा पर एक सुधार है ?

17 Give the most important provisions in the Charter of United Nations that need revision.

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के चार्टर की उन मुख्य व्यवस्थाओं का बयान कीजिये जिनमें परिवर्तन होना आवश्यक है।

18 What are the weak points of the United Nations ? Give suggestions for strengthening the U N

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की कमजोरियाँ क्या हैं ? सङ्घ को शक्तिशाली बनाने के सुझाव दीजिये।

19 What is the provision for the amendment of the Charter of the U N ? On what points, in your view is the amendment necessary ?

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के चार्टर में संशोधन का क्या प्रावधान है ? आपकी दृष्टि में किन मुख्य बातों पर संशोधन आवश्यक है ?

20 Describe in brief the objectives, functions and achievements of I L O

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के उद्देश्यों, कार्यों और उपलब्धियों का संक्षेप में बयान कीजिए।

21 Describe in brief the objectives, functions and achievements of UNESCO

यूनेस्को के उद्देश्यों, कार्यों और उपलब्धियों का संक्षेप में बयान कीजिए।

21 Write short notes on any three of the following —
 (a) The Covenant on Human Rights, (b) Technical Assistance, (c) Optional Clause (d) Trusteeship, (e) Little Assembly of the United Nations, (f) Universal Declaration of Human Rights (g) International Court of Justice, (h) Uniting for Peace Resolution, (i) Food and agriculture Organization, (j) International Monetary Fund, (k) The International Bank for

Reconstruction and Development, (l) The International Civil Aviation Organization, (m) The World Health Organization, (n) The International Refugee Organization, (o) The International Maritime Consultative Organization, (p) The Universal Postal Union, (q) The International Tele-communications Union, (r) The World Meteorological Organization.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

- [a] मानव अधिकारों का संविदा [b] तकनीकी सहायता [c] संयुक्त राष्ट्र संघ की संवैधानिक धारा [d] व्यास व्यवस्था [e] संयुक्त राष्ट्र संघ की संघ संस्था [f] मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र [g] जल संधि [h] शांति की एकता का प्रस्ताव [i] साधन और इपि संगठन [j] अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष [k] पुनर्निर्माण और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक [l] अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन [m] विश्व स्वास्थ्य संगठन [n] अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संगठन [o] अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र परामर्श संगठन [p] विश्व डाक संघ [q] अन्तर्राष्ट्रीय दूर-संचार संघ [r] विश्व अन्तरिक्ष श्रम विज्ञान संघ ।

संयुक्त राष्ट्र संघ-विश्व शांति में भूमिका

(कमला)

(THE U.N.O : ITS ROLE IN WORLD PEACE)

१ संघ के सम्मुख प्रस्तुत विवाद

सीरिया-सैबाना फिलस्तीन, इण्डोनेशिया कोरू-बंगल
 डीस्टे, एथो-ईरानियन तेल, बर्मा में चीनी सेनाएँ, अमेरिका
 के इबाबाब, मोरक्को तथा इजिप्त, धर्मिष्ठ अफ्रीका में
 भारतीयों के साथ दुर्घटनाएँ, ¹कार्मीर स्टेन नहर,
²हूबेरी ³अग्नीरिया, ⁴कीयो, ⁵परिष्करी इरियन, ⁶यू-२
 विमान काण्ड; ⁷घाट बी-५७ विमान काण्ड, ⁸स्वेन,
⁹लाओस घमन, ¹⁰भयुबा साइप्रस, ¹¹डोमिनिकन
 प्रजासत्तव ¹²भारत-इजरायल संघर्ष, ¹³सिय में चीन का
 प्रवेश, आदि विवाद ।

२ संघ अन्तर्राष्ट्रीयता की धार

३ संघ-विश्व सरकार की धार एक कदम

४ संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का आदर एवं पंजीकरण

५ संघ द्वारा मानव-अधिकारों की रक्षा

६ संघ-एक नूतनांक

“संयुक्त राष्ट्र संघ की मुख्य बिनायिका यह है कि यह
 राष्ट्रों की बातचीत में व्यस्त रहता है। वे अतिरिक्त
 अधिक देर तक बात करते रहें जतना ही
 अधिक प्रयत्न है क्योंकि इतने समय
 तक कुछ बन जाता है।”

—डा० रायब कुंभ

‘हम
 निश्चित रूप से
 कह सकते हैं कि संयुक्त
 राष्ट्र संघ में कई बार हमारे
 बार-बार उत्पन्न होने वाले संकटों
 का कुछ में परिशुद्ध होने से बचाया है।”

—प० जवाहरलाल नेहरू

संयुक्त राष्ट्र संघ—विश्व शांति में भूमिका (The UNO Its Role in World Peace)

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुए पूरे २५ वर्ष गुजर चुके हैं। इन काम के दौरान इसने जो महत्वपूर्ण काम किये हैं वे यथापि सतों की भीमा में दूर हैं फिर भी उपयोगिता की दृष्टि से उन्हें मान्य नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र संघ मूल रूप से संसार को युद्ध विहीन बनाना चाहता था कि मानवता उन बुरे परिणामों को पुनः मृगतने के लिए मजबूर न हो सके। किंतु दो महायुद्धों द्वारा मृत्युत चुकी है। इसके लिए संघ न सिर्फ भारत और विश्वभारतक दोनों ही रूपों में कार्य किया है। यह मूल मान्यता थी कि संघ राष्ट्रों के समान अधिकारों में विश्वास जामुत करने का प्रयत्न करता है। सचिनों और कानूनों से उत्पन्न होने वाले दावों का न्याय एवं प्रारण क साध पालन कर सके।

प्रत्येक व्यक्ति उसकी स्वतंत्रता को निर्बाध प्रयोग कर सक—मनुष्य लिए संघ समाज-विकास एवं जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने काम करेगा। म हाथ बंटाता है। संघ के इन सभी मकसदों के बीच सामन्वय है। जब तक विश्व से युद्धों का निपटकरण करके शांति एवं सहयोगपूर्ण वातावरण नहीं बनाया जायगा तब तक उन लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा करना और शिक्षित शक्तों का प्राबिक विकास करना सम्भव नहीं हो सकता। यह एक तथ्य है कि गरीबी हीनता समय परमागतां संकुचित दृष्टिकोण धारि प्राय युद्धों का कारण बन जाया करते हैं। जब तक इन मूल कारकों को दूर नहीं किया जाय युद्ध की संभावना बनी ही रहती है। इसीलिए, विश्व शांति के लिए एक उत्तर दायी संस्था होने के नाते संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न प्रकार के प्रतिकार करता है जिनका प्रमुख मकसद होता है—

प्रथम राष्ट्रों के मध्य उत्पन्न होने वाले मीमा सम्बन्धी वा अन्य प्रकार के राजनीतिक विवादों को दूर करना ताकि वे विश्व युद्ध वा अन्तर्राष्ट्रीय अशांति का कारण न बन जायें।

दूसरा युद्ध की प्रेरणा देने वाले तथा युद्ध को निर्धनसक बनाने वाले कारणों को समाप्त करना उदाहरणार्थ निःसस्त्रीकरण की योजना बनाना व क्रियान्वित करना।

तीसरा विश्व से आर्थिक व सामाजिक असमानता को निरा कर विद्युद् देशों के लोगों को भी इतना समर्थ बना देना कि उनकी अर्थिकहीनता संयुक्त देशों को युद्ध एवं साम्राज्यवाद की ओर प्रवृत्त न कर सके।

चौथे विश्व सरकार की स्थापना की ओर रुतम बढ़ाना ताकि संसार में स्थायी रूप से शांति एवं स्वतंत्रता कायम की जा सके।

संयुक्त राष्ट्र सच उपरोक्त सभी सदस्यों की पूर्ति के लिए कार्य करता रहा है। इसमें अधिकाधिक लोगों की राष्ट्रीयता की भावना को गौण बना कर उमम विश्व सम्मुख एक अन्तर्राष्ट्रीयता के भाव करने का उद्धार महत्व प्राप्त किया है। इसमें मिलते वाली महाए लोगों के दिलों को विश्व सहयोग की दिशा में आकर्षक करती है। इसके सबिबालय एवं अन्य धर्मों में कार्य करने वाले सामाजिक सेवाओं के कर्मचारियों से यह आशा की जाती है कि वे किसी दल विरोध के प्रति अपने मन में पसपान व विरोध न रख कर सब स्वाभिमानिक रूप से तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूप से ही सोचेंगे। संयुक्त राष्ट्र सच अपने महाद्वैतीय प्रयागों एवं विविध कार्यों द्वारा कई बार युद्ध को टाला है कई बार उमें कठिन बना दिया है तथा कई बार उसे अनुपयोगी सिद्ध कर दिया है।

संयुक्त राष्ट्र सच द्वारा जो वैर राजनीतिक घर्षात् सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक कार्य किये जाते हैं, उनका सम्पादन यह अपनी विशिष्ट ऐजेन्सियों-अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आद्य एवं कृषि संगठन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अन्तर्राष्ट्रीय विश्व विनाम विश्व स्वास्थ्य सच पूनेस्को आदि के द्वारा करता है। इन सभी ऐजेन्सियों का सच संगठनों या सत्त्वानों के उद्देश्यों एवं कार्यों आदि पर पूर्ववर्ती अध्याय में वर्णन प्रकाश जाता था चुका है। प्रत्येक प्रस्तुत अध्याय में हमारे अध्याय का विषय संयुक्त राष्ट्र सच द्वारा किये जाने वाले राजनीतिक कार्य सबका सच के समक्ष उपस्थित होने वाली राजनीतिक समस्याएँ होंगी।

सच के सम्मुख प्रस्तुत विवाद अनेक राजनीतिक विवाद प्रस्तुत हुए हैं जिनका समाधान करने में वहाँ इसे उत्सेवनीय सफलता मिली है वहाँ महाकृतियों की भङ्गे-बाजियों के फलस्वरूप कुछ विवादों में इसे मनीर रूप से पराजित होना पड़ा है लक्ष्यज्ञान समझाएँ उपस्थित हुई हैं—

१- रूस-ईरान विवाद

२- यूनान विवाद

३- यार्किन समस्या

४- सीरिया का सकट

५- सीरिया-जेबलन समस्या

६- फिमस्वीन का विभाजन

७- इंडोनेशिया का विवाद

८- कोरिया वियत विवाद

९- ट्रीस्टे का विभाजन

१०- एग्जो-वैरानियन लेस विवाद

११- बर्मा में चीनी सैन्य

१२- संयुक्त राज्य अमेरिका के हवाबानों सम्बन्धी विवाद

१३- मोरक्को तथा दूरनिस सम्बन्धी विवाद

- १४- दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुष्प्रवृत्तियों का प्रश्न
- १५- काश्मीर विवाद
- १६- स्वेडन नहर विवाद,
- १७- हंगरी विवाद
- १८- भस्वीरिया विवाद,
- १९- कांगो की समस्या (१९६० में संयुक्त राष्ट्र सत्र के समय उपस्थित सबसे जटिल समस्या थी और राजनीतिक पक्षधरों का कथन था कि इस समस्या के समाधान पर ही संयुक्त राष्ट्र सत्र का ध्यान बहुत कुछ निर्भर करता है।)
- २०- पश्चिमी इरिपान की समस्या
- २१- यू-२ विमान की घटना
- २२- मार. बी-५७ विमान काण्ड
- २३- स्पेन का प्रश्न
- २४- सापास की समस्या
- २५- यमन की समस्या
- २६- क्यूबा की समस्या
- २७- साइप्रस की समस्या
- २८- डोमिनिकन गणराज्य विवाद
- २९- धरम इबरायम संधि
- ३०- संयुक्त राष्ट्र सत्र में चीन के प्रवेश की समस्या।

पर हम एक-एक करके इन सभी विवादों और संयुक्त राष्ट्र सत्र द्वारा इनके समाधानार्थ किमे गये प्रयत्नों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे।

(१) रूस-ईरान विवाद (Soviet-Iran Dispute)

संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत किया जाने वाला यह प्रथम विवाद था। ईरान के एक प्रांत आज़रबाइजान (Azerbaijan) में सोवियत रूस की ओर से बुलाई की १९ जनवरी १९४६ को ईरान की सरकार ने सुरक्षा परिषद में इनके विरुद्ध शिकायत की। उसमें रूसी सरकार पर ईरान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया और परिषद से प्रार्थना की कि ईरानी प्रांत में रूसी सैनिकों की उपस्थिति आन्तरिक मामलों को शांत कर सकती है। मगर परिषद इस पर विचार करे। ईरान की सरकार का कहना था कि पूर्व समझौते के अनुसार युद्ध समाप्त हो जाने पर सोवियत सैनिकों ईरान की भूमि पर से हटकर अपनी सीमाओं के अन्दर आनी चाहते हैं।

सुरक्षा परिषद में पश्चिमी घुट के राज्यों ने ईरान का प्रथम समर्थन किया। ब्रिटिश विदेशमंत्री बेकिन द्वारा ईरान की शिकायत को पूरी तरह से पक्षित बताया गया। ईरानी पक्ष का कहना था कि सोवियत संघ सैनिकों को महायुद्ध के उपरान्त भी ईरान के प्रदेसों पर अधिकार कर रही है और रूस

की यह कार्यवाही २६ जनवरी १९४२ को ब्रिटेन कम एवं ईरान के मध्य हुए ब्रिटेनीय समझौते और प्रन्तराष्ट्रीय कानून का उल्लंघन है। सोवियत प्रतिनिधि मित्र विजिस्की (V. V. Viskitsky) ने ईरान के भारतीयों से इन्कार किया जो कहा कि प्राकरबाइजान में होने वाली घटनाएँ ईरान राज्य की सीमाओं में प्रजातन्त्र राज्य का सौकरप्रिय भागमाघों के कारण हो रही हैं। सोवियत प्रतिनिधि ने समस्या पर विचार-विमर्श करने से इन्कार करते हुए यह मांग की कि यदि सोवियत रुच की सेनाओं को ईरान लानी करने के लिए कहा जाता है तो ब्रिटेन की जो फौजें यूनान में विद्यमान हैं उन्हें निकामन का सम्मान भी सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत किया जाय।

ईरान के विवाद को लेकर स्पष्ट ही समझा दो नुठों का हो क्या-पण्डितान गुट और स्वी गुट। ब्रिटिश विदेश मंत्री बेबिन और सोवियत प्रतिनिधि विजिस्की भी बड़ी जोरदार झड़पें हुईं तुमुसबाम्बुड हुआ और बाता बगल बहुत हा मुझ्य हो मया। सुरक्षा परिषद के कार्य का इस विवाद के साथ भी गगनच होना बस्तुतः चुन नहीं पा।

अब मे यह मरु। दिया कि यह ईरानी सरकार के साथ प्रत्यक्ष वार्ता करना पनन्द करेगा। अतः पण्डित ने भी दोनों सम्बन्धित देशों को सीधी बातचीत का तथा उसमें हुई प्रगति से परिषद की सूचित करने का सुझाव दिया। तबनु तार एक ईरानी प्रतिनिधि-मण्डल मास्को गया और उसने सोवियत संघ से प्रार्थना की कि यह ईरान के आन्तरिक क्षेत्र में हस्तक्षेप न करे और प्राकरबाइजान के टि सोवियत सेनाएँ ईरानी प्रदेश से खींच हटा सी जायेंगी। सोवियत रूप इस प्रार्थना पर सहमत नहीं हुआ और उसने ईरानी मांग के प्रत्यक्ष में निम्नलिखित सुझाव पेश किये—

- १ सोवियत सेनाओं की अनिश्चित काल के लिए ईरान में स्थिति
- २ प्राकरबाइजान की आन्तरिक स्वतंत्रता की स्वीकृति तथा
- ३ सोवियत-ईरानी समुक्त पृथी कम्पनी की स्थापना।

ईरान ने सोवियत तथा की मांगों को अस्वीकार कर दिया और १६ मार्च को सुरक्षा परिषद में पुनः शिकायत की कि सोवियत रुच मेरिबों तथा विजिस्की के नाकाम से ईरान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहा और उसने अपनी एक ईरान की सीमा में अपनी सेनाएँ बना रखी हैं। ईरान 'वार्टर ही भाग ३३ की धोर ध्यान आकर्षित करते हुए सुरक्षा परिषद का विवाद का तुरन्त न्यायपूर्वक निपटारा' कराने जाने की प्रार्थना की। रिषद ने मांग पर बहुत करना स्वीकार कर लिया। स्वी प्रतिनिधि ने वरीष प्राप्त किया कि सम्बन्धित आरोप घटकों के कहने पर सवाया गया। अतः यह बहुत में जाय नहीं गया। रुच के बाक घाउट कर जाने पर रिषद ने ४ अप्रैल १९४६ को अपनी बैठक में यह निर्णय लिया कि विवाद ने ६ मई तक विचाराधीन रखा जाय। सोवियत विदेश मंत्री प्रोमिस्को ने रिषद से मांग की कि इस प्रश्न को परिषद की कार्य-सूची से हटा दिया जाना चाहिए। वेकिन इस मांग को स्वीकार नहीं किया गया। परिषद ने सोवियत संघ से प्रार्थना की कि यह ६ मई, १९४६ तक ईरान से अपनी सेनाएँ खिच बुवा से। इत बीच ईरान और रुच के मध्य सम्मिलित टैल कम्पनी

का समझौता हो गया और महासचिव ने बताया कि परिषद् को अब इस प्रश्न पर विचार करने का अधिकार नहीं रहा है। २१ मई, १९४९ को तेहरान तथा मास्का ने यह घोषणा की कि सोवियत सेनाएँ १ मई को ही ईरान खींची कर चुकी हैं। इस तरह ईरानी समस्या का हल स्वतः ही सफल-पूर्वक हो गया। यद्यपि प्रश्न परिषद् की कार्य-सूची पर बना रहा किन्तु उसे इस विज्ञा में घामे कोई कदम उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

ईरानी संकट का इस सुरक्षा परिषद् की पहली बड़ी सफलता थी। इस प्रश्न को सुलझाने में यद्यपि सुरक्षा परिषद् द्वारा की गई किसी विशेष कार्यवाही का भाग नहीं था किन्तु परिषद् में हुई बहसों ने समस्या पर प्रथम लोकमत का आयोजन कर दिया। इस विवाद से सम्पूर्ण विश्व का यह ज्ञात हो गया कि सोवियत सेनाएँ आज़रबाइजान में तेहरान की इच्छा के विरुद्ध ठहरी हुई हैं जबकि यूनाइटेड किंगडम फोर्से एबेन्स के निमन्त्रण पर गई हैं। दोनों स्थितियों में यह महत्वपूर्ण अन्तर स्पष्ट हो जाने से विश्व लोकमत निश्चित रूप से सोवियत विरोधी हो गया और इस ने अग्निष्वापूर्वक अपनी सेनाएँ ईरानी भूमि से हटा ली थी उचित समझा। डल्लेस (Dulles) के मतानुसार इस अन्तर द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि जैसे बोर को चीनी से डर लगता है वैसे ही आक्रमण करने वाले राज्य को भी संघ में उसके विरुद्ध होने वाली बहसों एवं बचनानी से डर लगता है। * अस्तुतः कई बार लोकमत ऐनिक कार्यवाही से अधिक प्रभावशाली होता है। स्टालिन ने एक बार राष्ट्र संघ के बारे में यह कहा था 'अनेक दुर्बलताओं के होते हुए भी यह एक ऐसे संघ का प्रयोजन अभी भाँति पूरा सकता है जहाँ भाज्यगताओं की पीस खोसी जा सके; इस प्रकार शान्ति स्थापना का बुर्बल साधन होते हुए भी यह कुछ सिद्धन को रोक सकता है। स्टालिन का यह कथन ईरान के संकट में सोमह पात्र सही सिद्ध हुआ।

सुरक्षा परिषद् में ईरान की माँग पर बहस करते समय सोवियत रूस द्वारा वाक घाउट कर जाने सम्बन्धी घटना पर यह प्रश्न स्वभावतः मन में उठता है कि रूस निषेधाधिकार (Veto Power) के प्रयोग द्वारा समस्या को परिषद् में खरम कर सकता था फिर उसने ऐसा क्यों नहीं किया। इसका उत्तर यह है कि बाद-विवाद को रोकने के बारे में उसे निषेधाधिकार को प्रयुक्त करने का अधिकार नहीं था। दूसरे तर्कों में यह प्रश्न पर मतदान देने के समय ही अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। परंतु इसका परिष्कार यह हुआ कि बहसों द्वारा रूस को अपने विरोधी विश्व लोकमत का स्पष्ट ज्ञान हो गया और वह ईरान से हट गया। उस समय रूस ने इतना साहस न था कि वह विश्व के जनमत की खुर कर अपेक्षा कर सकता। रूस ने केवल मात्र जनमत के उदाहरण ही ईरान में अपनी हस्तक्षेप खरम नहीं किया अथवा उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के पास इतनी पर्याप्त ऐनिक शक्ति नहीं थी कि रूस ईरान से हटने के लिए विवश किया जा सकता।

* "Dulles John Foster War or Peace, students edition, p.43

(२) यूनान विवाद
(Greece Dipute)

३ जनवरी १९४६ का मोन्टियत क्लब में सुरक्षा परिषद् के सम्मुख यह शिकायत प्रस्तुत की कि महायुद्ध के समाप्त हो जाने के उपरान्त भी ब्रिटिश फौजों यूनानी भू-प्रदेश पर बिद्यमान हैं और यह उस देश के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करना है तथा इससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव पैदा हो रहा है। क्लब में आरोप लगाया कि ब्रिश्चा तत्वों ने सहायता प्राप्त साम्राज्यवादी फामिस्ट संस्थाओं की हलकतों में यूनान में भाउबवादी राज्य को प्रोत्साहन दिया है।

वस्तुस्थिति यह भी कि यूनान में साम्प्रवादी मुरिस्के बल्गेरिया अस्वाभिमता और मुगोस्लाविया आदि साम्प्रवादी बलों से प्रोत्साहन पाकर अशांति तथा अस्थिरता उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहे थे और ब्रिटिश फौजों वहाँ यूनानी सरकार की सहायता के लिए थीं।

पता जब क्लब द्वारा सुरक्षा परिषद् में ब्रिटिश फौजों की यूनान में अशान्ति उत्पत्ति की शिकायत की गयी तो यूनानी सरकार ने सुरक्षा परिषद् को सूचित किया कि ब्रिटिश सेनाएँ उसका धार्मिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर रही थी और न ही वहाँ कोई किसी प्रकार का तनाव हो पाया। यूनानी प्रतिनिधि ने बताया कि यूनानी अजनता उनके देश में स्थित ब्रिटिश सैनिक बलों की उपस्थिति को जन-अभ्यवस्था तथा सभी के लिए समान अधिकारों की प्राप्ति और सामारण राजनीतिक स्थिति के लिए अतिक्रम समझती है। जिस देश के हितों की रक्षा के लिए मोन्टियत क्लब में शिकायत दर्ज की उस देश के द्वारा ही शिकायत को अनुचित करार देने का परिणाम यह हुआ कि ६ फरवरी १९४६ को सुरक्षा परिषद् ने मामले की सुनवाई समाप्त करने का निर्णय कर लिया।

जबस्त १९४६ में यूक्रेन (Ukraine) के प्रतिनिधि ने मामलों को ल सुरक्षा परिषद् में बढाया और उससे बाल्कन प्रदेश में सट घटी हुई अस्थिरता पर विचार करने को कहा। इस मामले पर अनेक प्रस्ताव (वे गये किन्तु उनके समर्थन में पर्याप्त मत प्राप्त न होने से उनमें से कोई भी गारित न हो सका।

इसी समय यूनान में ब्रिटिश सरकार ने यह अनुभव किया कि साम्प्रवादी अापाभार बलों को कानून में करने का कार्य बढ अक्षम नहीं कर सकता। तब उसने अमेरिका से इस विषय में सहायता मांगते हुए कहा कि यदि अमेरिका सहायता के लिए आगे न आया तो यूनान टर्की और अल्पसूरज से साम्प्रवादी प्रभाव बढ जायगा। दूसरी ओर दिसम्बर १९४६ में यूनान ने सुरक्षा परिषद् से यह शिकायत प्रस्तुत की कि पड़ोसी साम्प्रवादी राज्य अापाभारों को सहयोग दे रहे हैं और इससे यूनान तथा उन राज्यों के बीच तनाव पैदा हो रहा है। इस पर सुरक्षा परिषद् की ओर से एक आंच आयोग नियुक्त किया गया। अमेरिका ने भी यूनान पर साम्प्रवादियों के नियन्त्रण के समाप्ति परिणामों को इच्छित रखते हुए, यूनान में हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। १२ मार्च १९४७ को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने काँग्रेस के एक भाषण में

यूनान और टर्की को सहायता देने की घोषणा की जो संयुक्त राष्ट्र मण के सहायता से ही जानी थी। काँग्रेस का धरने तदिस में ट्रूमैन ने प्रस्तावित किया कि "धरतरीय शांति के आधारभूत तत्वों की उपेक्षा करते हुए एक बर्ग-विभक्तकारी शासनधर्म को स्वतन्त्र जनता पर भारने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से को प्रयत्न किया जा रहा है उससे स्वयं अमेरिका की सुरक्षा के लिए गभीर चिन्ता उत्पन्न हो जाता है। अतएव अमेरिका इस प्रकार के हस्तक्षेप का मुकाबला करने के लिए यूनान और टर्की को भी धातमिक सहायता सुलन करेगा।" ट्रूमैन की यही नीति धाने बसकर 'ट्रूमैन सिद्धांत' (Truman Doctrine) के नाम से विख्यात हुई।

यूनान की शिकायत पर सुरक्षा परिषद द्वारा जो जांच आयोग नियुक्त किया गया उसने २७ मई, १९४७ को यह रिपोर्ट दी कि साम्यवादी धरवा निया अमेरिका और युगोस्लाविया से छापामार दस्तों की सहायता कर रहे हैं। लेकिन जब सुरक्षा परिषद ने इस रिपोर्ट को आधार बना कर और धाने जांच-पड़ताल करने का प्रयत्न किया तो सोवियत रूस ने निषेधकार का प्रयोग करके यह प्रयत्न विफल कर दिया। इस पर १३ सितम्बर, १९४७ को यह प्रश्न सुरक्षा परिषद की कार्य-सूची में शामिल कर दिया गया।

महायुद्ध में सम्मग्य विवाद पर बहुत ही उच्च-बाद-विवाद हुआ और अन्त में २१ अक्टूबर १९४७ को छः के बिन्दु ४० मतों से वास्कोन प्रदेस में त्रिरीक्षण के लिए एक आयोग नेत्रने का निर्णय लिया गया। इस आयोग में सोवियत रूस और पोलैण्ड को भी स्थान दिया गया परन्तु उन्होंने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र मण द्वारा नियत आयोग यूनान गया परन्तु अरशानिया अमेरिका और युगोस्लाविया ने इसे अपनी सीमाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। फिर भी यूनान को उत्तरी सीमा पर रह कर आयोग ने बस्तुस्थिति का अध्ययन किया। कई बार तो आयोग के सवन्ध छापामार सङ्घाटनों में व्यंथ गया। इन जांच में आयोग ने यह मनी प्रकार देखा-युना कि यूनानी साम्यवादी छापामारों को किसी सीमा तक अरशानिया अमेरिका और युगोस्लाविया से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सैनिक सहायता तथा धायम मिलता है कि आयोग का त्रिरीक्षण काम समाप्त नहीं हुआ अत १९४८ की पत्रकङ्क श्रेणु में महाधमा न आ-आन की प्रबन्धि एक बप के लिए और बढ़ा दी। १९४८ में ही महाधमा ने यह प्रस्त-ब स्वीकृत किया कि यूनानी छापामार सैनिकों को किसी प्रकार की बाह्य सहायता नहीं दी जानी चाहिए। १९४९ में आयोग का कार्य काम पुन धाम बढ़ाया गया।

महायुद्ध में हुए बाद-विवाद के दौरान रूस ने इस बात का हर ध मण प्रयास किया कि यूनान को मिलने वाली अमेरिकी धायिक और सैनिक सहायता बन्ध हो जाय लेकिन उसका यह प्रयत्न व्यर्थ गया और महाधमा ने एक प्रकार से 'ट्रूमैन-सिद्धांत' पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी। अन्त में निम्नलिखित तीन कारणों से यूनान की समस्या का समाधान हो गया—

(२) यूनान विवाद (Greece Dipute)

३ जनवरी १९४६ का परिषद इस न सुरक्षा परिषद् के सम्मुख यह शिकायत प्रस्तुत की कि महासुद्ध के गठान्त हा जाने क उदरान्त भी ब्रिटिश फौजों यूनानी भू प्रदेश पर बिद्यमान हैं और यह उस देश क धान्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप करना है तथा इससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव पैदा हो रहा है। कम ने धारण समया कि विरशी उरबो से गहायता प्राप्त साम्राज्यवादी कामिस्ट संस्थाओं की हतबर्तों मे यूनान में घातकबाही राज्य को प्रारणाहन दिया है।

बस्तुस्विति यह भी कि यूनान में साम्यवादी पुरिस्ते बन्नेगिया अस्वानिया और मुयोस्साधिया प्रादि साम्यवादी दलों से प्रोत्साहन पाकर अशांति तथा अस्थिरता उररस करने का प्रयत्न कर रहे से और ब्रिटिश फौजें वहाँ यूनानी सरकार की सहायता के लिए थी।

घातक इस द्वारा सुरक्षा परिषद मे ब्रिटिश फौजों की यूनान में अशांति उपस्थिति की शिकायत की गयी तो यूनानी सरकार ने सुरक्षा परिषद को सूचित किया कि ब्रिटिश सेनाएँ उगक धान्तरिक मामलों मे कोई हस्तक्षेप नहीं कर रही थी और न ही वहाँ कोई किसी प्रकार का तनाव ही था। यूनानी प्रतिनिधि ने बताया कि यूनानी अजनता उनके देश मे स्थित ब्रिटिश सैनिक दलों की उपस्थिति को अस्वीकारबा तथा सभी क लिए समान अधिकारों की प्राप्ति और साधारण राजनीतिक स्थिति क लिए अनिश्चय समझती है। जिस दल के हितों की रक्षा के लिए साक्षियत इस न सिखाएत दल की उस देश के द्वारा ही शिकायत को अनुचित करार देने का परिणाम यह हुआ कि ६ फरवरी १९४६ को सुरक्षा परिषद न मामले की सुनवाई समाप्त करने का निश्चय कर लिया।

अगस्त १९४६ मे यूक्रेन (Ukraine) के प्रतिनिधि ने मामले को पुन सुरक्षा परिषद में उठाया और उससे बास्करन प्रदेश म उठ करी हुई अन्ताराज्य स्थिति पर विचार करने को कहा। इन मामले पर अन्तक प्रस्ताव रखे गये किन्तु उनके समर्पण मे पर्याप्त मत प्राप्त न होने से उनमे से कोई भी पारित न हो सका।

इसी मध्य यूनान में ब्रिटिश सरकार ने यह अनुभव किया कि साम्यवादी सापामार बर्तों को काबू में करने का कार्य वह अकेला नहीं कर सकता। अतः उसने अमेरिका से इस विषय में सहायता माँगते हुए कहा कि यदि अमेरिका सहायता के लिए आगे न आया तो यूनान टर्की और मध्यपूर्व में साम्यवादी प्रभाव बढ़ जायगा। दूसरी ओर दिसम्बर १९४६ म यूनान ने सुरक्षा परिषद से यह शिकायत प्रस्तुत की कि पबीसी साम्यवादी राज्य सापा मारों को उहबोन दे रहे हैं और इससे यूनान तथा उन देशों के बीच तनाव पैदा हो रहा है। इस पर सुरक्षा परिषद की ओर से एक आंच धायोग नियुक्त किया गया। अमेरिका ने भी यूनान पर साम्यवादियों क नियन्त्रण के समाधि परिणामों को दुष्टिगत रखते हुए, यूनान मे हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। १२ मार्च १९४७ को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कांग्रेस के एक मापन में

यूनान और टर्की को सहायता देने की घोषणा की जो संयुक्त राष्ट्र मंच के सहायक सदी जाती थी। कांग्रेस को धारने संवेन में ट्रूमैन ने प्रस्तावित किया कि "अन्तर्राष्ट्रीय शांति के आधारभूत तत्वों की रक्षा करते हुए एन बर्ग-विचारवादी शासनतंत्र को स्वतंत्र बनना पर धारने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वा प्रयत्न किया जा रहा है। उससे स्वयं अमेरिका की सुरक्षा के लिए पंजीर क्षतरा उत्पन्न हो जाता है। अतएव अमेरिका इस प्रकार के हस्तक्षेप का मुकाबला करने के लिए यूनान और टर्की को भी आश्चर्यचक सहायता सुलभ करेगा। ट्रूमैन की यही नीति धारने अक्षर 'ट्रूमैन सिद्धान्त (Truman Doctrine) के नाम से विख्यात हुई।

यूनान की शिकायत पर सुरक्षा परिषद द्वारा जो जांच आयोग नियुक्त किया गया उसने २७ मई, १९४७ को यह रिपोर्ट दी कि साम्यवादी अक्षरानिया अमेरिका और युगोस्लाविया से अत्याचार दस्तों की सहायता कर रहे हैं। लेकिन जब सुरक्षा परिषद ने अत्याचार दस्तों को अक्षरानिया से अक्षरानियता करने का प्रयत्न किया तो सोवियत रूस ने निषेध आधिकार का प्रयोग करके यह प्रयत्न विफल कर दिया। इस पर १२ सितम्बर, १९४७ को यह प्रश्न सुरक्षा परिषद की कार्य-सूची में शामिल कर दिया गया।

महासभा में सम्बन्ध विभाग पर बहुत ही उग्र-वाद-विवाद हुआ और अन्त में २१ अक्टूबर १९४७ को अक्षरानिया के विरुद्ध ४० मतों से अक्षरानिय प्रवेश में निरीक्षण के लिए एक आयोग भेजने का निर्णय लिया गया। इस आयोग में सोवियत रूस और पीपीएस को भी स्थान दिया गया परन्तु उन्होंने इसमें शामिल होने से अक्षरानिया कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र मंच द्वारा नियत आयोग यूनान गया परन्तु अक्षरानिया, बल्गेरिया और युगोस्लाविया ने इसे अपनी सीमाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। फिर भी यूनान की उत्तरी सीमा पर यह कर आयोग ने अक्षरानिय के अक्षरानियन किया। कई बार तो आयोग के सदस्य अत्याचार लड़ाइयों में अक्षरानिया की अक्षरानियों को किसी सीमा तक अक्षरानिया अक्षरानिया और युगोस्लाविया से अक्षरानिय-अक्षरानिय सैनिक सहायता तथा आशय मिलता है कि आयोग का निरीक्षण कार्य समाप्त नहीं हुआ पर १९४८ की पत्ररुद्ध अक्षरानिय में महासभा ने आधान की अक्षरानिय एक अक्षरानिय के लिए और बढ़ा दी। १९४८ में ही महासभा ने यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि यूनानी अक्षरानिय सैनिकों को किसी प्रकार का आक्षेप सहायता नहीं दी जाती चाहिए। १९४९ में आयोग का कार्य काम पुन धारने बढ़ाया गया।

महासभा में हुए आक्षेप-विवाद के दौरान रूस ने इस बात का हर सभ प्रयास किया कि यूनान को मिलने वाली अमेरिकी आर्थिक और सैनिक सहायता अक्षरानिय हो जाय लेकिन उसका यह प्रयत्न अक्षरानिय गया और महासभा ने एक प्रकार से ट्रूमैन सिद्धान्त पर अपनी स्वीकृति की घोषणा सहायता में निम्नलिखित तीन कारणों से यूनान की समस्या का समाधान हो गया—

(1) महासभा द्वारा निम्नलिखित प्रायोग की उपस्थिति में साम्यकारी देशों द्वारा पूर्ववत् भाषा में सापामारों को सहायता नहीं दी जा सकती।

(ii) युगोस्लाविया के मार्शल टीटो और रूस के स्टालिन के मध्य मतभेद बढ़ जाने से यूनानी सापामारों का युगोस्लाविया से मिलन वाली सहायता बन्द हो गयी।

(iii) संयुक्त राष्ट्र सभ के निरीक्षण में अमेरिका द्वारा यूनान का पूर्ण-पूर्ण आर्थिक एवं सैनिक सहायता दी जाने से तथा अपने स्वयं के प्रयासों से यूनानी सरकार ने न केवल साम्यवादी सापामारों पर काबू पा लिया बल्कि अपनी आर्थिक रक्षा भी सुधार ली।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र सभ के सामयिक और सांस्कृतिक इस्तेमाल से दक्षिणी यूरोप का एक महत्वपूर्ण देश साम्यवादी नियंत्रण में जात-जाते बन्द गया। ग्रीस की स्थिति सुधारने पर अमेरिका ने वहाँ से अपनी सेनाएँ भी वापिस बुला लीं।

(१) बर्लिन की समस्या

(Berlin Issue)

पृष्ठभूमि—बर्लिन तथा जर्मनी का सम्बन्ध स जर्मनी के ग्रामसमरण से पूर्व १९४४ व ४५ में अनेक सैनिक समझौते हुए थे। इन समझौतों के द्वारा उन्होंने यह तय किया था कि विजेता शक्तियाँ किन किन क्षेत्रों पर जर्मनी की हार के बाद अपना प्रभुत्व स्थायी अधिकार करेंगे। २९ सितम्बर, १९४४ को प्रकाशित लन्दन प्रोटोकॉल नामक समझौते में बर्लिन की प्रशासन-व्यवस्था के बारे में कहा गया था कि—

१ बर्लिन एक पृथक इकाई के रूप में रहेगा।

२ सभी विजेता राष्ट्रों का बर्लिन-प्रशासन में संयुक्त रूप से हक होगा। यह संयुक्त व्यवस्था तब तक सक्रिय रहेगी जब तक कि य में शांति संधि के अन्तर्गत जर्मनी का अपनी सरकार स्वयं चुनने का हार नहीं मिल जाता। एवं

३ बर्लिन पर प्रभुवादी रूप से अधिकार करने वाली शक्तियों का प्रवेश मार्ग प्राप्त होगा।

समझौते में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि बर्लिन का जर्मनी से अलग-थलग अस्तित्व होना अर्थात् बिना विभिन्न मार्गों में शेषों को विभाजित किया गया था उससे से किनी भी क्षेत्र का नाम बर्लिन को नहीं माना जायगा। २९ जुलाई, १९४२ को फ्रांस द्वारा इस व्यवस्था में सम्मिलित हो जाने पर (पहले ब्रिटेन अमेरिका और रूस से यह व्यवस्था हुई थी) पश्चिमी जर्मनी का एक क्षेत्र उसे मिल गया और इसी तरह बर्लिन के एक अंश पर उसका भी अधिकार हो गया। जुलाई-अक्टूबर १९४२ के पोट्सडम सम्मेलन में जो समझौता हुआ उसमें बर्लिन शहर को चारों महाशक्तियों—अमेरिका ब्रिटेन फ्रांस और सोवियत रूस के नियंत्रण में चार क्षेत्रों में विभाजित करने के पूर्व निश्चय का ब्यौता हुआ गया। इसका पूर्ण माप सोवियत रूस के तथा पश्चिमी भाग तीस टुकड़ों में अर्ध अमेरिका और

ब्रिटेन के नियन्त्रण में रहा। तभी से आज तक यह स्थिति बनी घा रही है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि समूचा बर्लिन जर्मनी के कस घबिहुत क्षेत्र में लौहाबन्द की परिधि के अन्दर १०० मीटर की दूरी पर स्थित है और फ्रेंच ब्रिटेन तथा अमेरिका घबिहुत बर्लिन के पश्चिमी भागों का मार्ग कम के पूर्वी भाग में से होकर ही गुजरता है। बर्लिन जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि कस घबिहुत जर्मन क्षेत्र का भाग नहीं है, अतियु छ पि क यनु सार इसका स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व है।

विवाद का कारण — अद्यपि चारों महाशक्तियों के सैन्य घबधिकार देश सड़क और वायुमार्ग से बर्लिन पहुंचने के अनुमति-सम्बन्धी समझौते कर चुके थे और सचि द्वारा यह तय किया जा चुका था कि बर्लिन पर अस्थायी रूप से घबधिकार करने वाली शक्तियों को बर्लिन-प्रवेश का मार्ग प्राप्त होगा किन्तु एक घबधिकार मण्डल को लेकर इस व्यवस्था में कस की घोर से अविरोध पैदा कर दिया गया। हुआ यह कि चारों देश जर्मनी सम्बन्धी पोट्सडम समझौते को विनियतया बाधक क्षेत्र में पूरा न कर सक। १९४१ से ही मित्र राष्ट्रों ने घबधिकार कमीशन मार्क्स (Marks) छापने (Printing) कारण किया थे और इनका प्रयोग चारों भागों में किया जा रहा था। पश्चिमी देश मार्क्स को मिश्रमयित-पूर्वक छाप करते थे लेकिन कस का व्यवहार अनुमूल न था। उसने पर्याप्त मात्रा में कागजी मुद्रा छाप वाली घोर उस मुद्रा से मतपहाही वस्तुयें लगी कर जर्मनी से लूना सगा। इससे मुद्रा के मूल्यहीन होने का पूरा अंतरा पैदा हो गया। पाश्चात्य शक्तियों ने यह प्रस्ताव किया कि मायात निर्यात का सामान्य कार्यक्रम (Common export import programme) बनाया जाय तथा जर्मनी को एक इकाई समझा जाय। लेकिन लोबियत सच ने इस प्रस्ताव से अक्षमति प्रकट करते हुए यह मत व्यक्त किया कि प्रत्येक क्षेत्र को (Zone) अपने-अपने विदेशी व्यापार का बाहिर स्वयं छठाना चाहिये। इससे पूर्व और पश्चिमी जर्मनी वा पृथक इकाइयों (Two Separate units) बन गये। स मुक्त राज्य अमेरिका न यह प्रस्ताव किया कि जब तक जर्मनी का घबधिक एकीकरण सम्बन्धी समझौता (Agreement on German Economic Unity) न हो जाय तब तक चीनों पश्चिमी क्षेत्रों को मित्रा कर एक बना दिया जाय। इस प्रस्ताव के अनुकूप ब्रिटेन और अमेरिका में एकीकरण समझौता हा गया जिसे १ जनवरी १९४७ से लागू कर दिया गया। चीनों पाश्चात्य शक्तियों अर्थात् समुक्त राज्य अमेरिका व ब्रिटन और फ्रेंच जर्मनी के राजनीतिक एवं बाधिक एकीकरण क लिए निरन्तर प्रयत्न की रही लेकिन कस की इच्छाविता और चारों के कारण उत्तक में प्रयत्न सफल नही हुए। फरवरी माघ १९४८ में ब्रिटेन अमेरिका फ्रेंच और बेनीलक्स देशों (बेल्जियम नीदरलैंड तथा लक्जमबर्ग) का एक सम्मेलन लक्ष्य में हुआ। इस सम्मेलन में बाधिक नीति के सभी प्रमुख पहलुओं घबधवा घनों में सामञ्जस्य करने (To Co-ordinate all major aspects of economic policy) तथा पश्चिमी जर्मनी को यूरोप के पुनरुत्थार कार्यक्रम (European recovery programme) में सम्मिलित करन का निरुध किया गया।

उपरोक्त कार्यक्रम स्वीकृत किये जाने की कस पर बड़ी विपरीत प्रतिक्रिया हुई और जर्मनी के इसी प्रजागण का मुख्य अधिकारी मार्शल सोकोलावस्की (Marshall Sokolovsky) मित्रराष्ट्रीय नियंत्रण परिषद् (The Allied Control Council) से २० मास को हट गया। तत्पश्चात् यह परिषद् अदेहास्पद स्थिति में निमग्नित हो गई।

इस स्थानीय मुद्दा-विषयक मगड की इसी प्रतिक्रिया उपरोक्त क्रम में ही शांत नहीं हुई। इस मगडे का प्रचार मकर कस में जनवरी १९४६ से ही पश्चिम शाक्तियों की यातायात गुणिधायों में आकस्मिक हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। उसने बर्लिन तथा पश्चिमी देशों के आधिपत्य वाले जर्मनी के बीच मगड पर रोक लगाता आरम्भ कर दिया। १५ जून को बर्लिन तथा पश्चिमी देशों के मध्य स्वयं मार्ग बन्द कर दिया गया। १० जून को पश्चिमी देशों ने मुद्दा में सुधार किया (Introduced a currency reform)। लेकिन संशोधित मुद्दा को बर्लिन तक नहीं लाया गया। उन्होंने कहा कि वे बर्लिन में रेकमार्क (Reichsmark) को इस तर्ज पर चालू रखने के लिए तैयार हो सकते हैं कि जो मुद्दा हावी जाय उसमें उन्हें उचित भाग का नियंत्रण प्राप्त हो। जब सोवियत अधिकारियों ने कस इस नियंत्रण का माय देने से इन्कार कर दिया और अपने क्षेत्र में एक नया मुद्दा भी चालू कर दी तो पश्चिमी राष्ट्रों ने भी बर्लिन के अपने क्षेत्रों में पूबक डी-मार्क (D-Mark) चालू कर दिया। इसके इन क्रम से विसुम्भ होकर प्रतिजोष देने की दृष्टि से कस ने बर्लिन की कुम्पात नाके बंदी का पूरा दौर चला दिया। २४ जून १९४८ को पश्चिमी बर्लिन के स्वयं और जल के सब मार्ग बंद कर दिये गये और बहाना यह लिया गया कि वह अपने क्षेत्र में नये मार्क को न पाने देने का उपाय कर रहा है। जब बर्लिन पहुँचने के लिये प्रयोग अमेरिका एवं ब्रिटेन का नाम देयत हुआई माग ही बच गया। कस द्वारा की गई इस नाके बंदी का नाम 'बर्लिन घेरीबन्ध' (Berlin Blockade) पड़ा। जर्मन के शहरों में 'यह इस बात की परीक्षा थी कि पश्चिमी देश बर्लिन से घेरेबन्ध कर बाहर निकाले जा सकते हैं याबया कम-से-कम उन्हें एक पश्चिमी जर्मन राज्य बनाने की योजना त्यागने को विवश भी किया जा सकता है याबया नहीं।'"

नाकेबंदी की इसी काबवाही का प्रत्युत्तर पश्चिमी मित्र राष्ट्रों ने तत्काल दिया। उन्होंने हवाई मार्ग से विमानों द्वारा पश्चिमी बर्लिन के निवासियों के लिये रसद तथा अन्य आवश्यक सामग्रियां पहुँचानी आरम्भ की। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि १९ अप्रैल १९४६ को जर्मनी में अमेरिकन सैनिक राज्यपाल जनरल लुडविग की क्ले (Lucius D. Clay) के जर्मनी

*The Berlin Blockade was "in fact a test to see whether the Western Powers could be pushed out of Berlin or at least be coerced into abandoning their plans for a West German State"

सरकार को किसी भी क्षीमता पर बलित में डटे रहने का परामर्श दिया था। उसने स्पष्ट निष्ठा पा— 'हम बेकारसोवाकिया लो चुके हैं और नावें य क्षतरा विद्यमान हैं। हम बलित भी छोड़ जायें लेकिन जब बलित छिन जायगा तो परिषदी बर्मनी की शारो भा जायगी। यदि हमारा धान्य यूरोप में साम्यवाद के प्रसार को रोकना है तो हमें यहाँ से हिंसना भी नहीं चाहिये— यदि हम हट गये तो यूरोप में हमारी स्थिति लतरे में पड़ जायगी। मेरा विश्वास है कि हमें प्रभाव का अधिक्य बनाने के लिये ठहरना ही होगा। * कमियो द्वारा मातायात के मार्गों को धक्का करने पर जनरल बसे ने तो सैन्यबल के प्रयोग द्वारा मार्ग तोसना का प्रस्ताव किया था लेकिन लदन और बालिगटन ने बस द्वारा उपस्थित किये गये विमर्शों को दूर करने के लिये धायुधानों से विश्वास माता में आयास तथा ई धन पंक्षिनी बलित पहुंचाने की नीति का अनुसरण करना ही उचित समझा।

सुरक्षा परिषद में विवाद का पहुंचलट—२३ सितम्बर, १९४८ को फंस ब्रिटेन और अमेरिका इन तीनों देशों में सुरक्षा परिषद में गोप्यित मध द्वारा समये मने बलित के बेरे के बिच्छु शिकायत की तथा चाटर के अनुच्छेद २ के अधीन इसे शांति के लिये बाठक बताया। सोवियत बस ने पश्चिमी देशों के दापारोपण का निरस्करण करते हुए कहा कि यह कदम बेबस पाश्चात्य राष्ट्रों के पक्षपन से पूर्वी-अर्मेनी के प्राधिक सगठन को स्पष्टित रखने के लिये ठाया गया है। सोवियत प्रतिनिधि ने यह भी कहा कि बलित की समस्या को सम्पूर्ण बर्मनी की समस्या से धसग नहीं किया जा सकता। साब ही चाट्टर की १०७वीं धागा के अनुसार सुरक्षा परिषद को इस विषय पर बिचार करने का ही कोई अधिकार नहीं है। बस का तर्क था कि यास्था और पोद्मडम के निर्णयों के अनुसार इस विषय पर बिचार विमर्श केवल बिदेस मनी परिषद (The Council of Foreign Ministers) में ही होगा। चाहिये जिसकी स्थापना भूतपुन लनु राष्ट्रों से सम्बन्धित मामलों का हल सोझने के लिये की गई थी। अमेरिका ने उत्तर दिया कि उस समय प्रश्न बर्मनी की एक भूतपुन लनु बेस के रूप में समस्या से सम्बन्धित नहीं था बल्कि उस क्षतरा सं सम्बन्धित शांति एवं सुरक्षा के लिये पैदा हो गया था। बू कि-सुरक्षा परिषद में प्रश्न था जो बर्मनी के चार स्वाधियों में वारस्पयिक मतभेद के फलस्वरूप विश्व प्रांति एवं सुरक्षा के लिये पैदा हो गया था। बू कि-सुरक्षा परिषद द्वारा इस विश्व शांति के लिये एक लम्बीर चुनीठी बन कर धाका पठ-परिषद द्वारा इस पर बिचार करना प्रावश्यक समझा गया। बिरोध स्वरूप सोवियत संघ और यूक्रेन के प्रतिनिधियों ने परिषद की बैठकों में नाग न लेने की घोषणा की।

२२ अक्टूबर १९४८ को सुरक्षा परिषद के छ. लिप्यस राष्ट्रों ने बेरा सठाने में सम्बन्धित मतबिदा तैयार किया इस संयुक्त मतबिदे जयवा प्रस्ताव में शारो महानकितयों से प्रारंभता की गई कि वे मुद्रा समस्या के हल और 'बलित

*Cited in Charles B. Robson Berlin—Pivot of German Destiny (University of North Carolina Press U.S.A. 1960), 48.

गतिरोप' के रूप में विद्यमान प्रतिबंधों को दूर करने के लिये तुरन्त बातचीत करें। परिषद के सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया लेकिन इस के बीटा के कारण यह मान्य न हो सका। तत्कालीन सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष महासचिव एवं महा सभा का अध्यक्ष-ये तीनों ही चाहते थे कि दोनों पक्षों को मान्य कोई जाति पूरा समझौता हो जाय। उन्होंने १३ नवम्बर १९४८ को बर्लिन विवाद से सम्बन्धित चारों बड़ी शक्तियों के प्रतिनिधियों के प्रयासों के पास एक सम्मिलित परिषद भेजा। बर्लिन का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख आन पास कुछ बर्मीर प्रश्नों में से एक था। महा शक्तियों के मतभेद के कारण सुरक्षा परिषद इस प्रश्न पर विचार करने के अतिरिक्त और कुछ भी कर सक्ते में असमर्थ थी। परिषद ने चारों बलों से मुद्रा और निष्पक्ष सम्बन्धी प्रश्न पूछे और चारों शक्तियों के निर्वहण में बर्लिन के लिये एक मुद्रा का प्रचलन करने हेतु एक तकनिक समिति की स्थापना भी की। परन्तु इस समिति की सिफारिशों से वांछित फल की अपेक्षा न हो सकी।

इस मध्य चारों महाशक्तियों के मध्य धर्मोपचारिक रूप से समस्या को सुलझाने की बातचीत चलती रही। ४ मई, १९४९ को फ्रांस ब्रिटेन और अमेरिका के प्रतिनिधियों ने सुरक्षा परिषद को यह सूचना दी कि बर्लिन की समस्या पर लोबियात संघ से उनका समझौता हो गया है। इस समझौते में यह निश्चित किया गया कि १ मार्च १९४८ से यातायात और व्यापार के ऊपर दोनों पक्षों की ओर से जो भी प्रतिबंध लगाये गये थे वे उठा लिये जायेंगे और यह काम १२ मई, १९४९ तक सम्पन्न कर लिया जायगा। इसी समझौते में यह भी तय किया गया कि २२ मई १९४९ को जर्मनी से सम्बन्धित समस्याओं तथा बर्लिन की स्थिति पर विचार करने हेतु विशेष मन्त्री परिषद की एक बैठक होगी। इस निष्पक्ष के अनुसार विशेष मन्त्री परिषद की जो बैठकें हुईं उगम यह निष्पक्ष तय किया गया कि वे अपने आधिपत्य-क्षेत्रों में निकटतम प्राधिक सम्बन्ध स्थापित करने। जहाँ तक जर्मनी की प्राधिक और राजनीतिक एतता का प्रश्न था इस सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हो सका।

बर्लिन समस्या के समाधान के विषय में यह निश्चय अनुचित न होगा कि यद्यपि समस्या का हल सुरक्षा-परिषद ने किया तथापि संयुक्त राष्ट्र संघ ने दोनों पक्षों के परस्पर मिसाने के लिये महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रवृत्तियों तैयार की तथा स्वयं और सुविधाएँ उत्पन्न कीं। अमेरिकन विदेशमन्त्री जॉन फोर्स्टर डब्लोस के मतानुसार इस विवाद को हल करने में सुरक्षापरिषद के अस्थायी सदस्यों ने बड़ी उत्सुकनीय भूमिका घटा की।*

(४) कोरिया का संकट

(Korean Crisis)

दुकोत्तर कास की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास में कोरिया का संकट उन सम्भीरतम संकटों में से एक था जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ की सामाजिक सुरक्षा और संघ व्यवस्था की वास्तविक परीक्षा की और जिसके समाधान के लिए संघ को पहली बार सैनिक कार्यवाही का आशय देना पड़ा। यद्यपि कोरिया की समस्या १७ सितम्बर १९४७ में अमेरिका द्वारा

मी सम्पन्न प्रविणता गुरसा परिवर्त के बहुमत के विचार का धार करती है ।

(७) फिलस्तीन (Palestine) विभाजन की समस्या

पृष्ठभूमि—प्रथम महायुद्ध के उपरान्त टर्की का यह प्रदेश 'संरक्षण प्रदेश' (Mandate) के रूप में ब्रिटेन को प्राप्त हुआ । इस प्रदेश में यहूदियों के विश्व शांति के स्थान और जेरुसलम का नगर विद्यमान है । यहूदों इसे अपनी धर्म भूमि मानते थे । प्रथम महायुद्ध के समय में ब्रिटेन ने यह घोषणा की थी कि फिलस्तीन को यहूदियों की राष्ट्रीय गृहभूमि (National Home Land) में परिवर्तित कर दिया जायगा और वहाँ यहूदियों का राज्य स्थापित होगा । लेकिन इस घोषणा को क्रियान्वित करना कोई सरल काम न था । फिलस्तीन उस समय मुख्य रूप से अरबों की बस्ती थी और वे भी इसे अपनी मातृभूमि मानते थे । प्रथम महायुद्ध के समय में अरबों की सहानुभूति के उत्तम समर्थन पाने के लिए ब्रिटेन ने उन्हें भी यह सुझाव प्रस्तावित किया था कि युद्ध की समाप्ति पर टर्की से पृथक् करके एक स्वतंत्र अरब राज्य की स्थापना कर दी जायगी । इन विरोधी प्रसंगों का यह स्वाभाविक परिणाम निकला कि प्रथम युद्ध की समाप्ति के बाद फिलस्तीन में यहूदियों और अरबों के मध्य एक संघर्ष होने लगा और यह स्थिति द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक चली रही ।

द्वितीय महायुद्ध के बाद फिलस्तीन की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शांति के लिए एक समस्या बनकर उभरती चली गयी । इसमें न केवल विश्व के तीन महाशक्तियाँ अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ शामिल हैं बल्कि इनमें 'बड़े पाँच' में से तीन अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ तथा अरबों का समस्त सदस्यों का नाम भी निहित था ।

सच में समस्या का प्रस्तुत होना—फरवरी १९४७ में ब्रिटेन विदेश मंत्री बर्नेट बेकिन ने संसद में यह घोषणा की कि 'यू कि ब्रिटेन के लिए इस सभ्यता के शासन प्रणाली को चलाना सम्भव नहीं है अतः इस समस्या को सच के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाएगा ।' अतः २ अप्रैल १९४७ को फिलस्तीन समस्या सच की महासभा के सामने रखी गई । ब्रिटेन ने महासभा का ध्यान फिलस्तीन पर से 'सैम्बोट हटाने तथा इसकी स्वतंत्रता की घोषणा' के प्रश्न की ओर खिंच दिया । लगभग ४४ माह तक विचार-विमर्श करने के उपरान्त १४ मई १९४७ का महासभा में ११ सदस्यों (आस्ट्रेलिया, कनाडा, बेल्जियम, ब्राजील, क्यूबा, इटली, भारत, पोलैंड, यू.एस.ए., यू.एस.एस.ए. और यू.एस.एस.आर.) की फिलस्तीन पर एक विशेष समिति (UNSCOP) नियुक्त की । इस समिति को सम्बन्धित समस्या पर सभी प्रश्नों की विस्तृत जाँच-पड़ताल के साथ साथ सिफारिश करने को कहा गया । विशेष समिति ने ३१ अगस्त १९४७ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जिसमें यह सिफारिश की गई कि फिलस्तीन को २ भागों में विभाजित कर दिया जाय—एक भाग में अरब राज्य की स्थापना हो और दूसरे में यहूदी राज्य की । इसके बाद जेरुसलम को एक विशेष क्षेत्र की रचना की जाय और इसमें अन्तर्राष्ट्रीय शासन की व्यवस्था हो । सच की महासभा ने समिति द्वारा प्रस्तावित योजना को

स्वीकार कर लिया और इसे क्रियान्वित करने के लिए एक 'फिलस्तीन आयोग' (Palestine Commission) नियुक्त किया। महासभा ने इस प्रकार फिलस्तीन पर से ब्रिटिश मैग्नेट का घट कर बेन और वहाँ से ब्रिटिश फौजों को हटा देने का निर्णय ले लिया। ब्रिटिश ने यह घोषणा की कि वह १५ मई १९४७ को अपने मैग्नेट को बर्बाद रूप में अपनी मंगी और अपने प्रमुख को फिलस्तीन पर से हटा लेगा।

फिलस्तीन आयोग ने जिस ही नियुक्ति १ अगस्त १९४८ तक फिलस्तीन के विभाजन की योजना का क्रियान्वित करने के लिये की गई थी वही कठिन परिस्थिति में अपना कार्य आरम्भ किया। सच द्वारा निश्चय की गई फिलस्तीन विभाजन की योजना अरबिया और यहूदियों दोनों ही के लिए सतोपजनक न थी। अरब इस बात पर दुःख हुए थे कि उनकी मातृभूमि में कोई विदेशी राज्य स्थापित न हो। दूसरी ओर यहूदियों का यह दुःख निश्चय था कि वे अपनी जर्मभूमि में नवीन राज्य की स्थापना प्रयत्न करेंगे। दोनों ही पक्षों के पारस्परिक संघर्ष ने फिलस्तीन में अरबिया और यहूदियों की भी स्थिति पैदा कर दी। अरबों ने विभाजन से मातृभूमि की रक्षा के लिए भीषण कार्यवाही आरम्भ की ता यहूदियों ने अपने इच्छित का गठन बनाने के लिये और हिमायुण उपायों का आशय लिया।

फिलस्तीन की बिगड़ती हुई परिस्थिति को देख कर फरवरी १९४८ में 'फिलस्तीन आयोग' ने सच को यह सूचित किया कि यहूदियों तथा अरबिया के सशस्त्र उपद्रवों से ब्रिटेन के सहयोग के प्रभाव से और आवश्यक मतलब मिला जाता न हान से महासभा के प्रस्ताव को क्रियान्वित करना असम्भव प्राय है। स्थिति वास्तव में बड़ी चिन्ताजनक हो गई और तब मार्च १९४८ में अमेरिका ने यह प्रस्ताव रखा कि सुरक्षा परिषद के लिये महासभा के निर्णय का क्रियान्वित करना अनिवार्य नहीं है पर फिलस्तीन के लिए समुक्त राष्ट्र मध्यस्थता (Trusteeship) के प्रश्न पर विचार करने के लिए महासभा का एक विशेष प्रतिवेदन प्रेषित किया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर महासभा का विशेष प्रतिवेदन १९ अप्रैल १९४८ को समस्त दुनिया से किन कोई निर्णय नहीं लिया जा सका क्योंकि राष्ट्रों में परस्पर मतभेद नहीं था। महासभा के इस प्रतिवेदन में मध्यस्थता से यह प्रार्थना की गई कि वह फिलस्तीन में व्यवस्था स्थापित करने के उपाय खोज कर बताय।

मध्यस्थता (Trusteeship Council) के प्रश्नों से अरबियों और यहूदियों के प्रतिनिधियों के बीच एक समझौता हुआ गया जिसके अनुसार युद्ध बंद कर देना तथा एक विराम संधि किया जाना निश्चित हुआ। इस नये सुझाव परिषद ने अरबियों और यहूदियों के सम्मिलित दलों से इस दृष्टि काय फौज बंद करने के ७ प्रस्ताव पाम किये। २७ अप्रैल १९४८ को फिलस्तीन में शांति स्थापना के कार्य को पूर्ण करने के लिये विराम संधि आयोग (Truce Commission) नियुक्त किया गया। परन्तु इसमें परिस्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

१४ मई १९४८ को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फिमस्तीन में घपना रोकथाम समिति के गठन की विधिवत घोषणा में एक दिन पूर्व महासभा ने मामला सुरक्षा परिषद के समुद्र कर दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास के उपाध्यक्ष स्वाइन के काउण्ट फ्लोके बर्नाडोट (Count Floke Bernadotte) को फिमस्तीन में युद्ध बिराम के प्रबन्ध के लिए संयुक्त राष्ट्रीय अध्यक्ष नियुक्त किया। इसी दिन फिमस्तीन में घपना शासन प्रबन्ध हटा लिया (जिसकी घोषणा १४ मई को की गई) और यहूदियों ने फिमस्तीन में इजरायल राज्य की स्थापना की घोषणा कर दी। इस घोषणा की प्रतिक्रिया में यहूदों ने कहा कि ईराक, लेबनान, सीरिया तथा ट्रांसजोर्डन न घपनों की रक्षा के लिए फिमस्तीन पर हमला बोल दिया। इधर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इजरायल को एकदम मान्यता प्रदान कर दी। यह मान्यता इतने आकस्मिक रूप में दी गई थी कि इसकी प्रदान की गई कि संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका के प्रतिनिधि मण्डल को इसका ज्ञान समाचार पत्रों से ही हुआ। दूसरी ओर इजरायल को संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता भी प्राप्त हो गई।

अरब राज्यों द्वारा नबोवित इजरायल राज्य पर चारों ओर से इतना घोर आक्रमण हुआ कि ऐसा प्रतीत होने लगा मानों नबीन इजरायल की भूगर्भस्था हो जायगी। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और रूस ने सुरक्षा परिषद में इजरायल को सहायता देने का प्रस्ताव रखा किन्तु बेट विलम सीरिया समर्थित कनाडा चीन और बेल्जियम के इस प्रस्ताव पर मतदान से अनुपस्थित रहने के कारण यह पारित नहीं हो सका। नबोवित राष्ट्र इजरायल ने प्रारम्भ में राइसदा कर बाद में अरब राष्ट्रों पर करारी बोट की और उन्हें पीछे खदेड़ दिया। घट में ११ जून को अध्यक्ष बर्नाडोट परबियों और यहूदियों में ४ सप्ताह के मध्य युद्ध-विराम समझौता कराने में सफल हो गये। सुरक्षा परिषद ने १२ जुलाई को फिमस्तीन में युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव पास किया। १८ जुलाई में अर्थात् युद्ध बन्द हुआ गया किन्तु उपद्रव चमकते रहे। १० सितम्बर को काउन्सिल बर्नाडोट उस समय तोली से मार दिये गये जबकि वे यहूदी सैनिक सुरक्षा में बेस्समम में से होते हुए जा रहे थे। उनके इस बलिदान के बाद सुरक्षा परिषद ने डा० राफेल बर्बे को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त किया। २६ दिसम्बर को तीसरी बार युद्ध-विराम स्थापित हुआ। महासभा ने घपने तीसरे प्रतिवेग में इस विषय में अन्तिम समझौता कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका फ्रांस और टर्की के प्रतिनिधियों का एक 'संयुक्त राष्ट्र समझौता भाषा' (U.N. Conciliation Commission) नियुक्त किया। इसके सामने इजरायल से मांगे गये १० लाख परबियों के पुनर्वास तथा अरब अरब राज्यों के साथ इजरायल की सीमाओं के निर्धारण और बेस्समम की समस्या इस करने आदि के अनेक बिन्दु प्रबन्ध थे। घट में, परबियों विचारों और अरबों के बीच सम्बन्ध का काम सुगम हो गया और इजरायल तथा पड़ोसी राज्यों में निम्नलिखित सीमा सम्बन्धी संधियाँ सम्पन्न हुईं।

() २४ फरवरी १९४९ को मध्य तथा इजरायल के रोडस (Rhodes) में बिराम-संधि पर हस्ताक्षर किये, यह रोडस की संधि कहलायी।

(७) इण्डोनेशिया विवाद (Indonesia Issue)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इण्डोनेशिया पर हॉलैण्ड का अधिकार था। युद्ध के समय जापान के पराजित होने पर हॉलैण्ड उन पर पुनः अपना अधिकार बहाल कराया था। लेकिन डच भाग (हॉलैण्ड व मिया) की यह धारणा पूरी नहीं हुई। जब जापान ने इण्डोनेशिया में अधिकार डाले तो महा के राष्ट्र-कारियों ने अपने यहां एक स्वतंत्र गणराज्य की स्थापना कर दी। फलस्वरूप हॉलैण्ड और इण्डोनेशिया में युद्ध छिड़ गया। डा० सुकार्णो के नेतृत्व में स्थापित हुआ इण्डोनेशियाई प्रजातन्त्र राज्य ब्रिटेन द्वारा सहायता प्राप्त हॉलैण्ड की सहायता से सम्मुख पराजित होने लग्य। ३० जुलाई १९४७ को भारत और आस्ट्रेलिया ने हॉलैण्ड तथा इण्डोनेशिया के युद्ध की घोर सुरक्षा परिषद का ध्यान आकषिप्त किया। सुरक्षा परिषद ने तुरन्त युद्ध बिराम की प्रतीति करते हुए अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स विना इन ताना देना की एक सत्यार्थ समिति (Good Offices Committee) की स्थापना की।

समिति के प्रयासों के फलस्वरूप अगस्त १९४७ में युद्ध बन्द हो गया। समिति ने एक बिराम संधि समझौता तयार किया जिस पर १७ जनवरी १९४८ को अमेरिकन अन्वेषण रेडविल (Redville) पर हॉलैण्ड और इण्डोनेशिया गणराज्य के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए। अंततः दोनों ही देशों में सत्यार्थ संधि की पूर्ण समझौता हुआ। परन्तु, विगम-मय विषय समझौते की घोषणा करते हुए १८ नवम्बर १९४८ को हॉलैण्ड ने इण्डोनेशिया गणराज्य के विरुद्ध पुनः युद्ध प्रारम्भ कर दिया। हॉलैण्ड की पीढों ने इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति तथा अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इस पर, तबही परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए सुरक्षा परिषद की सफ्ट कमीशन ईरक बुसायी भयी। पाँच पाँच ने हॉलैण्ड का युद्ध बन्द करने गणराज्य के राष्ट्रपति और अन्य राज्य सदस्यों को आह्वान की आज्ञा दी। साथ ही उसने यह भी सिफारिश की कि इण्डोनेशिया में एक सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न सारतन्त्र गणराज्य की स्थापना की जाय जिसे डच सरकार १ जुलाई १९४९ तक सम्पूर्ण शक्तियों को हस्तांतरित कर दे। इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए सत्यार्थ समिति को इण्डोनेशिया आयोग में परिवर्तित कर दिया गया।

अन्य सत्ताओं तक डच सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का विरोध करते रहे किन्तु बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका के दबाव से वे इस विषय पर हुए में एक गोप्यता सम्मेलन का आयोजन करने को सहमत हो गये। यह सम्मेलन अगस्त में हुआ निश्चित हुआ। इसी मध्य सुरक्षा परिषद ने आयोग को इस बात का अधिकार दिया कि वह दोनों पक्षों का समझौता कराने में सहायता करे। आयोग की पहल कदमी पर बीटाविया में धारमिक विचार विमर्श के लिए आठ पक्षों के मध्य बातचीत हुए जिसके फलस्वरूप डचों ने इण्डोनेशियाई राजधानी में अपनी पीढों हुआ की। इससे बाद पूर्व निश्चित निर्णय के अनुसार हुए में वासदेव सम्मेलन २३ अक्टूबर को प्रारम्भ हुआ जो २ नवम्बर, १९४९ तक चला। इस सम्मेलन में न केवल

इण्डोनेशिया और हॉलैण्ड के प्रतिनिधि बैठे बस्कि आयोग के सदस्यों ने भी भाग लिया। काफी बाद-बिबाध क बाद इस और इण्डोनेशिया सरकार के मध्य एक समझौता हो गया जिसके अनुसार यह तय किया गया कि ३ दिसम्बर १९४१ तक इण्डोनेशिया के गणतन्त्र को सर्वोच्च सत्ता हस्तांतरित कर दी जाय किन्तु इस समझौते को पश्चिमी यूगिनी पर लागू नहीं किया जाना था। सम्मेलन क निर्णय की सूचना बिधिबत् सुरक्षा परिषद को दे दी गयी। मार्च म २७ दिसम्बर १९४१ को ही इण्डोनेशिया को एक स्वतन्त्र संप्रभु गणराज्य मान लिया गया और २८ दिसम्बर १९४० को उसे समुक्त राष्ट्र सच की सम्मेलन में प्रान्त कर दी गई।

इण्डोनेशियाई बिबाध म समयक राष्ट्र सच को पूरी सफलता मिली।

रक्षा परिषद ने इस समस्या क समाधान क लिए अनेक आयोग समितियाँ और समझौते प्रस्तुत करके बड़ा प्रयत्न किया। समुक्त राज्य अमेरिका जैसी महाशक्ति द्वारा हॉलैण्ड को दबाये जाने से सच के लिए अपनी कठिनाइयों को हल करना अपेक्षाकृत अधिक सरल हो गया। अमेरिका न हॉलैण्ड को यह धमकी दी थी कि यदि वह इण्डोनेशिया को स्वतन्त्रता नहीं देगा तो वह उसके पुनरुद्धार के लिए ही जाने वाला आर्सेल योजना की आधिक सहायता बन्द कर देगा। चार्ल्स श्लेचर (Charles Schlichter) का स्पष्ट मत है कि यदि अमेरिका का यह बचाव स होता तो सच को सम्भवत इतनी सफलता न मिलती।* इसके अतिरिक्त अरब-एशियाई राज्यों ने भी समस्या के समाधान हेतु अपने प्रभाव का पूरा उपयोग किया था। उन्होंने यह धमकी भी दी कि यदि प्रश्न का समाधान न किया गया तो उसे महासभा के समक्ष लाया जायगा। इस कारण भी समस्या के समाधान में तीव्रता हुई।

(८) कोरफू चैनल बिबाध

(Corfa Channel Issue)

इस बिबाध का अरम्भ यों हुआ कि अल्बानिया ने प्राबेलिक समुद्र में एक सुरंग बनायी जिससे अक्टूबर १९४६ में दो ब्रिटिश जहाजों को हाता पड़्यो। इस पर ब्रिटेन ने १० जनवरी १९४७ को सुरक्षा परिषद में अपनी निष्ठावत् पेश की कि अल्बानिया द्वारा कोरफू टापू के पास वाले समुद्र में बिछायी गयी सुरंग से ब्रिटिश युद्ध पोत अतिघस्त हुए हैं तथा नौसैनिकों को चोट लगी है अतः अल्बानिया को इसको अतिपूर्ति करनी चाहिए। अल्बानिया ने इसके प्रत्युत्तर में कहा कि ब्रिटेन ने उसके प्राबेलिक समुद्र में उसकी सर्वोच्च सत्ता का उल्लंघन किया है। अल्बानिया के प्रतिनिधि ने धाये कहा कि उसकी सरकार ने सुरंग ही नहीं बिछायी है और वह अपने प्राबेलिक समुद्र क्षेत्र म नौपरिबहन की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं है। यहाँ यह स्मरणीय है कि अल्बानिया समुक्त राष्ट्र सच का सदस्य नहीं था किन्तु उसे परिषद के बिबाध-बिमर्श में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था और उसने क आमंत्रण स्वीकार कर लिया था।

* Charles Schlichter An Introduction to International Relations, p. 734

प्रश्न पर मुरसा परिषद में मरमागम बाद-विवाद हुआ और बिना सूचना के शांतिवास में सुर्य बिछाना अनुचित तथा मानवता के विरुद्ध घप राय है” वाली शब्दावली के ब्रिटिश प्रस्ताव को खोबियत म घ द्वारा बीटो कर दिया गया। तत्पश्चात् १ अप्रैल १९४७ को एक प्रस्ताव पास करके मामल को अन्तर्राष्ट्रीय ग्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करने की सिफारिश की गयी। अन्धानिया म इसका यह कह कर विरोध किया कि मामला ग्यायालय के गानिकार क बाहर है। बरन्तु ग्यायालय ने मामल पर बिचार किया और यह निष्कय दिया कि अन्धानिया को २४ साल डामर लानिपुति क रूप मे दे बाहिए। अन्धानिया ने अन्तर्राष्ट्रीय ग्यायालय क निर्णय को स्वीकार म करते हुए हजनि २० राधि की अयापयी घनी तक महीं की है।

ट्रीस्ट (Treaty) का बिभाजन

द्वितीय महायुद्ध के बाद इटली क साथ १० फरवरी १९४७ को जो शांति-संधि हुई थी उसके अन्तगत ट्रीस्ट क अन्तर्राष्ट्रीयकरण को व्यवस्था की गयी थी। तत्पुनार यह निश्चित हुआ था कि ट्रीस्ट क शासन का मन्ना लन मुरसा परिषद द्वारा नियुक्त एन गवर्नर करेगा। इस गवर्नर की नियुक्ति तक ट्रीस्ट क ५०-६० मील सम्ब स्वतन्त्र प्रदेस को बा लको म बाटा गया- लन ए पर ब्रिटेन अमेरिका एवं फ्रान की सेनाओं का तथा लन बी पर युगोस्लाव सेनाओं का बाबिपत्य रखा गया।

१९४८ में पाण्चायत देशों ने इटली क जुगाबों मे परिषदी गूट का अमर्षन करने नामों की अर्पित बडाने क लिए इटली का ट्रीस्ट देने की याचना नायी। इस पर जुलाई १९४८ में युगोस्लाविया म मुरसा परिषद से निकल २० की कि अमेरिका और ब्रिटेन बिनिपन घन एक बिदसो व्यापार के दुष्टि-धोख म ट्रीस्ट के स्वतन्त्र प्रदेस की स्वाधीनता म बाधा डाल रहे हैं। उसन यह धारोप लगाया कि परिषदी देशों का प्रयास ट्रीस्ट को इटली में मिजाने का है। युगोस्लाविया ने बताया कि मिय राष्ट्रों के तैनिक अधिकारियों द्वारा इटली क साथ घनेक ऐनी संधियों की गयी हैं जा इटालियन शांति संधियों के अनिश्चम हैं और अिनका खोखव ट्रीस्ट का प्राबिक दुष्टिकोष से इटली के साथ बिना देता है। युगोस्लाविया म प्राबिता थी कि परिषदी संधियों की योजना को रोक बाय और इटालियन शांति मधि म की गयी शांति संधि के अन्तुक्षण ट्रीस्ट क स्वतन्त्र प्रदेस के लिए संयुक्त राष्ट्र संघीय गवर्नर की नयुक्ति की जाय।

युगोस्लाविया की शिकायत पर बिचार करन क लिए मुरसा परिषद जी बैठक हुई। लेकिन कुकि प्रस्ताव के पास में ७ बट महीं घा मक घन प्रश्न पर बिचार महीं हो सका और गवर्नर की नियुक्ति भी महीं हुई। परिषद में ब्रिटिश प्रमरेकन और फ्रन्च प्रतिनिधियों ने बताया कि बहुत सी बाधा क कारण—जिनमें गवर्नर की नियुक्ति होना भी शामिल है—शांति संधि को अन्वहार में अला कठिन हो गया है।

८ अक्टूबर, १९४९ को ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपना लन ए इटली को हस्तांतरित करने की घोषणा की। इस पर

के मार्शल न टीटो ने घमकी ही कि यदि शत्रु 'ए' में इटासियन सेना प्रवेश करेगी तो युगास्लाविया भी इस क्षेत्र में घपनी सेना भेज देगा। घब स्थिति प्रत्यन्त घम्भीर हो गयी किन्तु ब्रिटेन और अमेरिकाने समय से काम में ल हुए ट्रीस्ट के घपने क्षेत्र से घपनी में ल नहीं हटायीं। सोवियत रूस ने जो १९४७ की इटासियन शांति । पहले से ही विरोधी का ब्रिटिश-अमेरिकन घोषणा की कठोर निन्दा की। उमन सुरक्षा परिषद में यह प्रस्ताव रखा कि ट्रीस्ट प्रदेश में पबर्नर की नियुक्ति फौरम की जाय। परिषद में बहुत बिनो तक इस प्रश्न पर कटु विवाद होता रहा किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। १४ दिसम्बर १९५३ को अमेरिका ने यह प्रस्ताव पेश किया कि यदि सम्बन्धित पक्ष समस्या का हल करने के लिए भारत में बात चीत कर रहे हैं, अतः समस्या पर परिषद में विचार विमल बन्द कर दिया जाय। परिषद द्वारा अमेरिकन प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

भारत में ट्रीस्ट के प्रश्न पर इटली और युगोस्लाविया में ५ दिसम्बर, १९५३ का एक समझौता हो गया जिसके अनुसार शत्रु 'ए' पर इटली का तथा शत्रु 'बी' पर युगोस्लाविया का प्राधिपत्य मान लिया गया। समझौते के अनुसार युगोस्लाविया और ट्रीस्ट के स्वतन्त्र क्षेत्र की सीमाओं में कुछ हल-फल हुआ। अमेरिका और युगोस्लाविया ने सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष को एक स्मृतिपत्र (Memorandum) द्वारा उल्लेखित समझौते की सूचना दे दी। इस तरह ट्रीस्ट-विभाजन का विवाद समाप्त हो गया।

(१०) एग्जो-ईरानियन तेल विवाद

(Anglo Iranian Oil Dispute)

१ मई, १९५१ को ईरान की सरकार ने 'ईरानी तेल राष्ट्रीयकरण अधिनियम' द्वारा एग्जो ईरानियन तेल कम्पनी का राष्ट्रीयकरण कर दिया। यदि इस कम्पनी में अधिकांश हिस्से ब्रिटिश सरकार के थे अतः उसने प्रन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में ईरान सरकार के इस काम की शिकायत की। ब्रिटेन का दावा था कि 'ईरानी तेल राष्ट्रीयकरण अधिनियम' १९५३ में ईरानी सरकार तथा कम्पनी के बीच हुए समझौते की शर्तों का उल्लंघन करता है। उसका कहना था कि १९३३ के तेल मुक्ति-समझौते के अनुसार विवाद का निणय मध्यस्थता (Arbitration) के माध्यम से होना चाहिये। न्यायालय ने ब्रिटिश सरकार की इस प्रार्थना पर विचार करते हुए ३ जुलाई १९५१ को ईरान का यह आदेश दिया कि अधिष्ठित निर्णय होने तक कम्पनी को काम करने दे। लेकिन ईरान सरकार ने इस आचार पर न्यायालय के आदेश को मानना असवीकार कर दिया कि सम्बन्धित विषय में ईरान उसके अधिकांश क्षेत्र (Jurisdiction) में नहीं है। न्यायालय के आदेश के विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय बन्द कर दी गई तथा ३५० ब्रिटिश टेकनीशियनों को तेल क्षेत्रों से निष्कासित कर दिया गया।

ईरान द्वारा प्रन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय की अवहेलना कर देने पर २९ सितम्बर १९५३ को ब्रिटेन ने सुरक्षा परिषद को 'एग्जो-ईरान तेल विवाद' प्रस्तुत किया। सुरक्षा परिषद ने विवाद को घपनी विचारणीय विषय-सूची में प्रबन्ध ले लिया लेकिन उस पर सक्रिय रूप से विचार करना

यह कहें ८४। १६ अक्टूबर १९५१) स्वयंसेवक कर दिया कि जब तक म्यामा मय क इस निर्णय की घोषणा नहीं हो जायेगी कि यह इस समस्या पर कामभी गीत पर विचार कर सकता है यद्यपि नहीं जब तक यह (परिषद) इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का निर्णय देने में प्रयत्न है। ब्रिटेन ने सुरक्षा परिषद में विवाद को इस आधार पर प्रस्तुत किया था कि ईरान ने अन्तर्राष्ट्रीय म्यामा मय के प्रादेश की व्यवस्था की है और उसने न केवल ब्रिटेन को बल्कि सम्पूर्ण स्वतंत्र विश्व को महान् धार्मिक हानि पहुँचाई है तथा माओ में ऐसी की एक ऐसी स्थिति पैदा कर गी है जो अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुखता के लिए एक संकीर्ण घटना है। ईरान ने ब्रिटेन के आरोप को निराधार करते हुए कहा कि चूंकि यह उसकी पूर्णतया धार्मिक समस्या है अतः परिषद को मामले पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है। अपनी छद्म बैठकों में दोनों पक्षों के दावों को सुनने के बाद ही परिषद ने म्यामा मय द्वारा अपनी क्षेत्राधिकार-क्षमता का निर्णय देने तक समस्या पर विचार करना स्थगित किया।

“२२ जुलाई १९५२ को अन्तर्राष्ट्रीय म्यामा मय ने निर्णय लिया कि तेल-राष्ट्रीयकरण पर पूर्वो ईरानी तेल कम्पनी का विवाद” उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है क्योंकि—

(i) ईरान ने म्यामा मय की वैकल्पिक धारा (Optional Clause) पर हस्ताक्षर करते हुए इनके बाद की मन्त्रियों और समझौतों के लिए ही म्यामा मय का अधिकार क्षेत्र स्वीकार किया था जबकि १९३३ का तेल कम्पनी का समझौता इसके पहले का है।

(ii) तेल-कम्पनी का समझौता दो राज्यों की सन्धि नहीं है अपितु एक वैकल्पिक कम्पनी को रिवायतें प्रदान करने वाला समझौता है।

अन्तर्राष्ट्रीय म्यामा मय ने अपने निर्णय में यह भी कहा कि चूंकि उसे सम्बन्धित प्रश्न पर विचार करने का अधिकार नहीं है अतः उसका पहला आदेश (५ जुलाई, १९५१ का) कार्यान्वित न किया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय म्यामा मय में इस निर्णय के फलस्वरूप ईरान की सरकार के विपक्ष में संयुक्त राष्ट्र संघ में ब्रिटिश सिकायत का अन्त हो गया।

विवाद पर दोनों पक्षों के मध्य बार्ता चलती रही। १४ अक्टूबर १९५२ को ब्रिटेन ने तेल-विवाद के धार्मिक हस्त के लिए ईरान को ४६० लाख पाउंड की मांग को पूर्णतः वास्वीकृत कर दिया तथा अन्तिम समझौते के लिए तेहरान में अपना मिशन बेर्न से इस्कार कर दिया। ब्रिटेन ने ईरान से यह मांग की कि ५० करोड़ के तेल-उद्योग की ईरानी राष्ट्रीयकरण से हुई क्षति की पूर्ति ४० बय के मांग से की जाय। इसके दो दिन बाद ही ईरान ने ब्रिटेन के मांग अपने दृष्टनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिए। अन्त में एक सम्झौता वास्तविक के बाद ईरानी-तेल-विवाद को समस्त पक्षों के सन्तोष के आधार पर तय कर लिया गया। ८ अगस्त १९५४ को ईरान सरकार और पाठ अन्तर्राष्ट्रीय तेल-कम्पनियों की एक संयुक्त इस्सा के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार ईरान के प्रमुख तेल क्षेत्र तथा अबादान के

सैन्य-कारवाजों का नियंत्रण घाठों अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य-कम्पनियों की समुक्त संस्था के हाथ में जमा नया घोर स्वामित्व का कानूनी अधिकार ईरानी सरकार के पास ही रहा ।

इस प्रकार बिना समुक्त राष्ट्र सभ के इस्तलाफ के एम्सो इरानी-सैन्य विवाद स्वतन्त्रता पूर्वक उन्हीं पक्षों द्वारा हल कर लिया गया जो प्रत्यक्ष रूप में इसमें सम्बन्धित थे ।

(११) बर्मा में चीनी सेनाएं

(Chinese Troops in Burma)

सन् १९५३ में महासभा के मामले बर्मा में चीनी सेनाओं के अनधिकृत प्रवेश का प्रश्न उपस्थित हुआ । बर्मा ने बहु विधायक की कि साम्बन्धी चीन की सेनाएं बर्मा प्रदेश में बस आयी हैं और बहुतना पूर्ण कार्य कर रही हैं अतः उन्हें वहाँ से घोरन बाहर निकाला जाना चाहिये । महासभा ने २३ अप्रैल १९५३ को एक प्रस्ताव पारित करके बर्मा में चीनी सेनाओं की उपस्थिति की निन्दा की और कहा कि इन सेनाओं का संधि-वार्ता द्वारा एवं कुछ राष्ट्रों के सत्प्रयत्नों द्वारा बाहर हटा दिया जाना चाहिये । महासभा ने सभी राष्ट्रों से प्रार्थना की कि वे बर्मा प्रदेश से चीनी सेनाओं को हटाने में सहायक बने । सन् १९५३-५४ को महासभा की बैठकों में बर्मा ने इस प्रश्न का उठाते हुए इस बात पर असन्तोष प्रकट किया कि इस विषय में बहुत कम प्रगति हुई है । किन्तु इसी मध्य बर्मा आईसैण्ड समुक्त राष्ट्र अमेरिका और राष्ट्रवादी चीन की 'समुक्त सैनिक समिति' ने बर्मा प्रदेश से चीनी सैनिकों का निकालना शुरू कर दिया और इस तरह यह समस्या जाति पूर्ण तरीके से हल हो गई ।

(१२) समुक्त राष्ट्र अमेरिका के हवाबानों सम्बन्धी विवाद

१० दिसम्बर १९५४ को कोरिया युद्ध में भाग लेने वाले १५ राष्ट्रों ने समुक्त राष्ट्र अमेरिका के चीन द्वारा बंद किया गया ११ हवाबानों की मुक्ति कराने का नियम समुक्त राष्ट्र सभ के महासभों से प्रार्थना की । ये हवाबान चीन द्वारा गिरफ्तार किए गए थे और वास्तुसी के अधिकांश में उन्हें जन्मी सजा दी गई थी । प्रार्थी राष्ट्रों का कहना था कि चीन का यह कार्य कोरियाई विंगम संधि-समझौते का उल्लंघन है । इस पर संघ के तत्कालीन महासभों डाग हैमर बोस्ट ने पांच दस जनवरी १९५५ को पेरिस में चीनी प्रधान मंत्री चाउ-एन-लई से इस विषय पर बातचीत की । इसके बाद उन्होंने इस समस्या से सम्बन्ध प्रथम महासभियों के साथ भी बातचीत की । महासभों के प्रयासों का अनुकूल परिणाम निकला । अप्रैल १९५५ में समुक्त राष्ट्र अमेरिका ने कुछ चीनी जहाजों को विदेश लौटने दिया मई में फारमोसा जलमग्न मध्य में नौसैनिक कार्यवाही बंद कर दी गई और बर्मा में अमेरिका के राष्ट्रवादी हवाई बहनों के परिणाम द्वारा बंदी बन गये ४ नामक मुक्त कर दिये गये । तत्पश्चात् ४ अगस्त १९५५ को चीन ने ११ अमेरिकन हवाबानों को भी मुक्त कर दिया । चूंकि संघ के महासभों के प्रयासों के फलस्वरूप ही प्रधानतः यह समस्या सुलभ गयी । अतः अमेरिकन राष्ट्रपति ने संघ एवं महासभों दोनों को ही विशेष रूप से धन्यवाद दिया ।

(१६) मोरक्को तथा ट्यूनिसिया सम्बन्धी विवाद (The Question of Morocco and Tunisia)

मोरक्को और ट्यूनिसिया दोनों ही उत्तरी अफ्रीका में पूर्व साम्राज्य के घसबे। द्वितीय महायुद्ध के बाद इनमें राष्ट्रीयता की भावना ने जोर पकड़ा और स्वतन्त्रता का प्रथम आन्दोलन हुआ।

१९५१ में छ. अरब राज्यों ने महासभा में यह जिनायत पेश की कि फ्रांस मोरक्को में संघ के चार्टर के उद्देश्यों एवं मानवीय अधिकारों की व्यवस्था कर रहा है। अतः महासभा को मामले की छानबीन करनी चाहिये। १३ अक्टूबर १९५१ के प्रस्ताव पर महासभा ने अपने सालाने अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार किया। इस पर फ्रांस ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा कि वह कि यह प्रश्न उसके आन्तरिक अधिकार क्षेत्र में आता है अतः महासभा को इस पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन फ्रांस की यह आपत्ति स्वीकार नहीं की गई और १९ दिसम्बर १९५२ को पारित किये गये अपने प्रस्ताव में महासभा ने यह आज्ञा व्यक्त की कि "फ्रांस मोरक्को की जनता को मौलिक स्वाधीनता देने का प्रयास करेगा। परन्तु स्थिति बिगड़ती ही गई। तब २१ अगस्त १९५३ को पार्लियामेंट साइबरिया एवं १३ अक्टूबर १९५३ को सुरक्षा परिषद का आपातकालीन अधिवेशन बुलाने का आग्रह किया। परन्तु परिषद् ने इस विषय पर विचार विमल करने से इन्कार कर दिया। फिर भी महासभा इसी निर्णय पर बल देती रही कि फ्रांस और मोरक्को परस्पर वार्ता करके प्रश्न को हल करें। बाद में २ मार्च १९५६ को फ्रांस ने एक संधि द्वारा मोरक्को में अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया और उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी। १२ नवम्बर १९५६ को मोरक्को को संयुक्त राष्ट्र संघ का सन्स्य बना लिया गया।

ट्यूनिसिया का प्रश्न भी मोरक्को के समान ही था। २ अप्रैल १९५२ को ११ एशियाई और अफ्रीकी राज्यों ने तथा ट्यूनिसिया के प्रधानमंत्री ने ट्यूनिसिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित किया। यह कहा गया कि फ्रांस तथा स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये संबंधित ट्यूनिसिया की जनता के बिगड़ते हुए सम्बन्धों पर ध्यान दिया जाय। फ्रांस प्रति कि ने विरोध प्रकटित करत हुए कहा कि परिषद् को किसी देश के परे अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और सुरक्षा परिषद् ने भी १४ अप्रैल १९५२ को ट्यूनिसिया के प्रश्न पर विचार करने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि यह फ्रांस का परेण मामला है। इसके उपरोक्त अरब राज्यों ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये महासभा के विशेष अधिवेशन की मांग की। परन्तु आवश्यक बहुमत न मिल सकने के कारण उनकी मांग स्वीकृत नहीं हुई। तत्पश्चात् महासभा के सातवें अधिवेशन की कार्यसूची में इस समस्या को स्थान दिलाने का प्रयास किया गया। फ्रांस ने उग्र विरोध करते हुए प्रश्न के विवाद में भाग लेने से इन्कार कर दिया। अतः महासभा का निर्णय इस प्रश्न की कार्यसूची में स्थान देने के पक्ष में हुआ।

मोरक्को के प्रश्न को भी इसी अधिवेशन के कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया।

महासभा के साठवें और साठहवां बैठकों ही अधिवेशन में मोरक्को तथा ट्यूनीसिया प्रदेशों में रहने वाले लोगों की स्वतंत्रता के मौखिक परिष्कार का स्वीकार करके हुए सम्बन्धित पक्षा में इस विषय में समझौता करने का प्रावह किया गया। तब अधिवेशन में यह प्रश्न फिर से महासभा के समक्ष प्रस्तुत हुआ। परन्तु यह कि दोनों गलों में अन्तर्गत से वर्तमान प्रारम्भ हो चुकी थी बात; यही उचित समझा गया कि उा पर विचार स्थगित कर दिया जाय।

अन्त में पारस्परिक वार्ता के फलस्वरूप अंत तथा ट्यूनीसिया के मध्य २० मार्च १९५२ का प्रोटाकोल सम्झौता हुआ जिसमें फ्रांस की सरकार ने ट्यूनीसिया की स्वाधीनता को मान्यता प्रदान की। १२ नवम्बर १९५६ का ट्यूनीसिया को भी संयुक्त राष्ट्र सङ्घ का सदस्य बना लिया गया।

(१४) दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार का प्रश्न

संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में जितना विचार इस प्रश्न पर हुआ है संभवतः उतना किसी अन्य प्रश्न पर नहीं हुआ। महासभा के लगभग प्रत्येक अधिवेशन में इस प्रश्न को उठाया गया है उस पर विस्तार से विचार हुआ है लेकिन अन्तिम परिणाम के रूप में दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार की समस्या ब्यो की स्यो पूर्ववत् बनी हुई है। इसका एक मात्र कारण महाशक्तियों की सक्रिय प्रतिवधि का अभाव और दक्षिण अफ्रीकन सरकार की हठवृत्ति है।

सन् १९४६ में महासभा के प्रथम अधिवेशन में ही भारतीय प्रतिनिधि ने दक्षिण अफ्रीकन यूनिवर्सल में वहाँ की सरकार द्वारा भारतीयों के प्रति बरती गयी गंभीर भेदभाव की नीति एवं १९४६ की 'एशिय टिक लैंड टैन्चर एण्ड रिप्रेजेंटेशन एक्ट' (A 1946 Land Tenure and Representation Act) की अन्वय पूर्ण तथा अपमानजनक व्यवस्थाओं की घोर ध्यान आकषित किया। भारत ने कहा कि दक्षिण अफ्रीका की नीति १९२७ और १९३२ के कैपटाउन समझौते * (Capetown Agreements) और सच के चार्टर की

* भारतीय नैटाल के ब्रिटिश उपनिवेश में यूरोपन निवासियों की अर्थात् और एक समझौते के आधार पर जिसमें कहा गया है कि दक्षिण अफ्रीका में जाने वाले भारतीयों का यूरोपियन पर लागू होने वाले कानून से किसी पुष्क कानून द्वारा आश्रित नहीं किया जावेगा एवं प्रथम भारतीय १९०७ में प्रतिज्ञावद्ध भारतीय स्वतंत्र अधिकारों के रूप में दक्षिण अफ्रीका गये थे। लेकिन वे व म उनका साथ भेदभावों की नीति बरती जाने लगी। १९०७ में महासभा गान्धी ने इस अन्वय के विरुद्ध अत्याग्रह आन्दोलन चलाया और १९१३ में भारतीय प्रजातंत्रियों पर लगाय गये विविध प्रतिबंधों का विरोध किया। परिणामस्वरूप

उन व्यवस्थाओं के प्रतिकूल है जिनमें 'मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं की पवित्रता का उल्लेख हुआ है। दक्षिण अफ्रीका की युनियन में यह तक पन किया कि प्रश्न विगुड़ रूप से सच क पाठर की पारा २ (७) के अनुसार उसका बरेखू मानसा है अतः सच इसमें कोई हस्तजन नहीं कर सकता। किन्तु महासभा ने दक्षिण अफ्रीका युनियन के मत से घसहूनत हाथ हुए का वि धुक्ति यह प्रश्न एना है जिनमें सच क २ सदस्यों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विषय मन्त्रों है अतः इस पर सच का विचार करने का अधिकार है। दक्षिण अफ्रीका में प्रश्न का बरेखू मामला बताते समय यह भी कहा जा कि परिषदी मानव स्तर के स्थावर के सिय इवेत और अन्वत का भेदभाव अनिवाय है।

महासभा ने भारतीय सिकापत पर विचार करने का निश्चय कर लेने के उपरान्त ११ नवम्बर १९४६ को एक प्रस्ताव पारित करके दक्षिण अफ्रीका का 'धार्मिक भारतीय धारवाचार तथा भेदभाव का निरूपण समाप्ति' के लिए कहा। दक्षिण अफ्रीका ने इस प्रस्ताव के अ पार पण होने नाम पारम्परिक भारतीयता में भाग लेना अस्वीकार कर दिया था कि इसका अर्थ यह होता कि जमन महासभा के कयनानुसार पाठर का उल्लेखन स्वीकार कर लिया है। १९४१ के तृतीय अधिवेशन में महासभा ने अथवा एक प्रस्ताव के द्वारा यह सिफारिश की कि गतिराज का अतः करने के लिए भारत पाकिस्तान और दक्षिण अफ्रीका इन विषय में एक यावमेत्र सम्मेलन करें और जमन सम्मत्ता पर विचार करते समय पाठर के सिद्ध म्ठों और प्रयोजनों तथा मानवीय अधिकारों की मानवीय बापणा का ध्यान रखें। किन्तु दक्षिण अफ्रीका ने इस प्रस्ताव का पुन 'बरेखू मामले में हस्तक्षेप के धामार पर अस्वीकार कर दिया फरवरी १९१० में इस सम्मेलन के लिए प्रारम्भिक भारतीयता की अर्थात् भी मय हा गई।

जून १९५० में दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री डा० ममान के कुन्वात 'क्षेत्रीय अथ विधेयक' (Group Area Act) पारित कर दिया। अवेत् और अरक्षत् जातियों के शहरी में पूवक क्षेत्रों में रहने के कानून से लुप्त हा कर भारत ने दक्षिण अफ्रीका से अथवा कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। दक्षिण

गंधा—समदूत समझेता हुआ तथा भारतीय सहायता विधेयक बना जिसके फलस्वरूप भारतीयता की कठिनाइयों में उन्नत हो गया और उनका बेहास्तर जाा रुक गया। अरक्षत् केरटावत सम्मत्तियों में उपरान्त व्यवस्थाओं का नवीनाकरण किया गया। किन्तु विभिन्न समझेताओं के बाद भी भारतीयों के साथ दक्षिण अफ्रीका गोरी अरक्षत् की समेद नीति जारी रही। १९४१ में मैत्रिक प्राप्त में नियमन विधेयक' (H. १५५५ Act) द्वारा एसियाइयो के धुमि प्राप्त करने सम्बन्धी अधिकार पर औद्योगिक प्रतिबंध लगा दिया और १९४६ के एसियाई क संघट्ट टैम्पोज एण्ड रि प्रेन्नेशन एण्ड' साहू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापार एक निवास के बारे में भारतीयों का पूर्ण अन्वत् हा गया।

अफीकन सरकार की पुनर्बहालगी की इस नई नीति ने प्रचामी भारतीयों के मत्प्राप्त्युक्त धारणाओं को और भी बढ़ावा दिया। १ नवम्बर १९२१ को महासभा के मातृ-अभिव्यक्ति के सम्मुख धारणा-विज्ञान सचनी परिषद ने कहा—“दक्षिण अफ्रीका की नीति उन सबके लिए सम्पूर्ण नीति है जिनके लिए संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई है। एक जाति का दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए निर्मित जाति भेद भाव की नीति के अनुकरण से दक्षिण अफ्रीका में स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ रही है। अपने सुसंयुक्त अधिकांश और स्वतंत्रता का स्थापित करने का मातृ करने पर भारतीयों को कारावास प्राधिकार दण्ड यहाँ तक कि कोड़े इत्यादि की मार भी सहनी पड़ती है। पर्याप्त विचार विमर्श के बाद महासभा ने अपने इस अधिव्यक्ति में एक प्रस्ताव पारित करके पुनः यह सिफारिश की कि युव एरिया ऐक्ट के मूल का प्रयोग स्वयं-निर्दिष्ट किया जाय और योसमेत सम्मेलन का आयोजन हो। यह भी निश्चय किया गया कि यदि योसमेत सम्मेलन के आयोजन में सफलता नहीं मिले तो युयोस्साबिया क्यूबा और सीरिया के प्रतिनिधियों का संलग्न समारोह (Good offices Commission) समस्या को सुलझाने के लिए नियुक्त किया जाय। दक्षिण अफ्रीका में ज्वलंत एक अखंड जातियों को पुनः स्थापित करने की समस्या का अध्ययन करने के लिए एक समिति भी नियुक्त की गई। इस तीन सदस्यीय समिति में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति जेम्स ए. बुकानेन के पूर्व में जेम्स ए. बुकानेन के नाम टोरेस बोदे (Jaime Torres Bodet) को नियुक्त किया गया।

मातृ अधिव्यक्ति में नियुक्त सल्लाह समारोह को अपनी रिपोर्ट महासभा के मातृ नियमित अधिव्यक्ति में प्रस्तुत करनी थी। तदनुसार १४ सितम्बर, १९२३ को समारोह ने महासभा को सूचित किया कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार की सम्मति में विद्यमान वर्ध का प्रस्ताव अर्थात्क है इसलिए समने समारोह को मान्यता देने से इनकार कर लिया है। इस प्रकार की रिपोर्ट प्राप्त होने पर भी महासभा के मातृ अधिव्यक्ति में यही निश्चय किया गया कि समारोह अपने कार्य जारी रखे। सितम्बर १९२४ में समारोह ने पुनः महासभा को अपनी असफलता की सूचना दी। अपने नव अधिव्यक्ति में महासभा ने यह सुझाव दिया कि भारत पाकिस्तान और दक्षिण अफ्रीका के लिए यही द्विद्वार है कि वे पारस्परिक बातचीत के द्वारा समस्या को सुसंयुक्त की चेष्टा करें। वे अपनी सहायता के लिए किसी व्यक्ति को समारोह को नियुक्त कर लें। यदि इसमें उन्हें सफलता न मिले तो संयुक्त राष्ट्र संघ के महासभा की सहायता के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर लें। यदि दक्षिण अफ्रीका के तीव्र विरोध और दुराग्रह के कारण तीनों सरकारें पारस्परिक बातचीत में आगे बढ़ने में असफल रहें और किसी व्यक्ति को एकमत से नियुक्त न कर सकें तब १९२३ में संघ के महासभा में ब्राजील के लुइ जी फेरो (Luiz de Fero) को इस काम को सम्पादित करने के लिए नियुक्त कर दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ का यह प्रयत्न भी निष्फल हुआ क्योंकि यहाँ भारत और पाकिस्तान ने लुइ जी फेरो के साथ सहयोग करना मान लिया नहीं। दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने उसके साथ सहयोग करने से इनकार कर दिया। इसके बाद महासभा ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार के प्रवृत्त

को अपने दम से अधिवेशन के कार्यक्रम में शामिल करने का वाञ्छित विचार हेतु उसे राजनीतिक समिति को सौंप दिया। परन्तु इसके पहले कि राजनीतिक समिति प्रश्न पर विचार धारण करती बसिए प्रश्न का ने महासभा से अपने प्रतिनिधि को वापिस बुला लिया। विचार होकर महासभा ने १४ दिसम्बर १९५४ को पुनः अपनी बड़ी पुराना रण रण का कि दोनों पक्ष बातचीत के द्वारा प्रश्न को सुमझावे और उगकी सूचना महासभा के प्रथम अधिवेशन में प्रस्तुत करें। अपने ग्यारहवें अधिवेशन में ३ जनवरी १९५७ को महासभा ने राष्ट्रीय प्राधार पर भद्रभाव की नीति की घोषणा करते हुए दक्षिण अफ्रीका सरकार को रोकने पर खेर प्रकट करने मतोप कर लिया। महासभा ने दक्षिण अफ्रीका से अपनी नीतियों का बरतने की प्रार्थना एक बार और दोहराई।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुष्प्रवहार के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ की एक बड़ी मुमम्मा पाया है। संघ ने प्राग्जन के कुछ बयों में इस प्रश्न के प्रति अवश्य सक्रिय विम्वरणी की किन्तु बाद में उसकी नीति प्रबलतात्मक ही बसिक रही है। इसका मुख्य कारण यही है कि पाश्चात्य शक्तियों ने संघ के प्रति दक्षिण अफ्रीका के पक्ष का पहले के समान समर्थन करना छोड़ दिया है। वे दक्षिण अफ्रीका को मास्को के विरुद्ध समर्थन में अपनी साध बनाये रखना चाहते हैं और इसीलिए उसके प्रति सन्तुष्टिकरण की नीति अपनाये हुए हैं। एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशवाद के विरुद्ध फसते हुए व्यापक असंतोष से भी उन्हें प्रयत्नित कर लिया है। वास्तव में इस प्रकार की मन्तवीय प्रवृत्तियों को न सुमम्मा पाया संयुक्त राष्ट्र संघ की एक बहुत बड़ी विफलता है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण मुस है कि समस्त विश्व परसहाम होकर ताकता रहे जबकि दक्षिण अफ्रीका में रणभेद काताय पमण और गोरों की प्रमुता की काम प्रवाह के विपरीत बाराका के मराण समर्थकों द्वारा मानवीय मुस्यो पर धापात किया जा रहा है। इसमें रणमात्र भी संदेह नहीं कि यदि संयुक्त राष्ट्र संघ रणभेद की नीति और कानिवाद को समाप्त करने के प्रति सक्रिय नहीं हुआ तथा पश्चिमी शक्तियों के हाथों का पिनीना बना रहा तो विश्व को मयकर जातीय सक्षप की प्जासा में असा पद ना।

१५ काश्मीर की समस्या (The Dispute of Kashmir)

सन् १९५१ के अगस्त में फँसा भारत का अधिमाध्य प्रग काश्मीर का छोटा सा राज्य भारत के स्वतन्त्रता के प्रयोग से ही प्रस्तरभूय का राजनीतिक शररक का मोहरा बना हुआ है और भारत तथा पाकिस्तान के बीच राजनीतिक विचार और तनाव का एक प्रमुखतम कारण है। पाकिस्तान के क मता पसा फाइ-फाइ कर यह कहत मही यत कि जब तक भारत काश्मीर को पाकिस्तान का नहीं सौंप देता तब तक भारत और पाकिस्तान के पारस रिक्त सम्बन्धों में कमी सुचार नहीं हो सकता। पाकिस्तान हथियारों के बस पर काश्मीर पर कब्जा करने के पयम अनेक समफल प्रयास कर चुका है किन्तु हर बार मुद्द को बाकर भी ससे और उसके मुन्डोमादी नेताओं को यह हीम नहीं

धारा रि अधिक्य में ऐसी की जाने वाली किसी भी हिमाकत का जो परिणाम उन्हें भोगना पड़ेगा वह उपास नहीं प्रबिन् सर्वकर होमा का प्रगप्त सितम्बर १९६२ के भारत-पाक युद्ध में उन्हें भोगना पडा था ।

काश्मीर विवाद का जन्म भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही हुआ गया और तब से लेकर आज तक यह मनीष रूप में विद्यमान है और इस बात का सुमा विद्वोरा पीट रहा है कि अपने प्राय की विश्व-शांति न्याय और मानव अधिकारों का संरक्षण करने वाला मय बड राष्ट्र मय रिम तरह पाश्चात्य एवं पूरबीवासी राष्ट्रों के हाथ का शिमीमा बना हुआ अपने महान उद्देश्यों का स्वयं ही उपहास उडा रहा है तथा एक सुनी मचाई पर राज नीतिक प्रयत्नों और दाव-पेशों की घोट में झूठ का पर्दा डालन का प्रयत्न प्रयास कर रहा है । फिर भी एत विषय मध्या में हमे यही आज्ञा करनी चाहिए कि अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए वह विषयज्ञता की ओर दृष्टि पूर्वक कथम बढ़ायेगी और यह मिड का देमी कि वह जिन महान उद्देश्यों की लेकर बनी है उन्हें पूरा करने को दुब प्रतिज्ञ है तथा उसकी दृष्टि में आक्रमणकारी राष्ट्र, आक्रमण पीडित राष्ट्र नहीं बन सकता—चाहे वह कितने भी झूठनी तिक दाव पेश केले ।

भूष-भूमि—इसके पहले कि हम काश्मीर-समस्या पर विस्तार से विचार करें, यह धर्मशा उचिन हागा कि काश्मीर की ऐतिहासिक भूषभूमि पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल ली जाय । सुलभ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर १८१४ में पन्जाब के प्रतापी सिक्ख तरेल रणबीरसिंह ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया था । फरवरी १८४६ में अंग्रजों द्वारा सिक्खों की पराजय होने पर जम्मू राज्य के सिक्ख गवर्नर गुसाबसिंह ने लहाल व काश्मीर को अपने अधिकार में करके स्वयं को बर्हा का स्वतंत्र शासन घोषित कर दिया । तत्पश्चात् इसी बंश के शासक हरिसिंह ने १९२३ में विमगित को भी विजय करके अपने राज्य में मिला लिया । तभी से इस सम्पूर्ण प्रदेश पर सिख बंश के राजा राज्य करते रहे ।

सन् १९२०-३० में काश्मीर के मुसलमानों द्वारा एक एसोसिएशन का समठन किया गया जिसने तत्कालीन शासक के विरुद्ध आन्दोलन चलाने की विद्यन चेष्टा की । तत्पश्चात् अंग्रजों के हस्तक्षेप से बेमंठी कमीशन की नियुक्ति हुई । इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर शासन सम्बन्धी कुछ सुधार किये गये यद्यपि राजा के निरकुल शासन पर कोई प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका । १९३८ में लेख धम्मन्ना द्वारा 'National Conference of Jammu and Kashmir' नामक एक नवीन राजनीतिक दल गठित किया गया जिसने अखिल भारतीय कांग्रेस से स्वाधीनता-संघान का संभालन करने के लिए पय-प्रवर्तन मांगा । सब मुस्लिम कांग्रेस भी सक्रिय हो उठी और उसने मुस्लिम लीगी नेता मौहम्मद अली जिन्ना की ओर नेतृत्व के लिए निहारा । सन् १९४१ में 'National Conference of Jammu and Kashmir' वाला लेख धम्मन्ना का बल All India States Peoples

Conference का समय बन गया। भारत की सभी देशी रियासतों में स्वतंत्रता सन्नाह का मन्थन करने का उत्तरदायित्व इसी संस्था पर था।

१९४७ में भारत के स्वतंत्र होने पर काश्मीर की स्थिति पूरा स्वतंत्र देशी राज्य की थी।

काश्मीर के महाराजा द्वारा भारत में काश्मीर का विलय और विवाह का आश्वासन—जुन घड़ियों में भारतवाय उपमहाद्वीप को अगस्त १९४७ में दो स्वतंत्र राष्ट्रों—भारत तथा पाकिस्तान—में विभाजित किया तो उन्होंने देशी राज्यों के बारे में कोई स्पष्ट बात नहीं कही। ३ जून १९४७ का इस सम्बन्ध में एक घोषणा करत हुए यह प्रवचन कहा गया कि जब ब्रिटिश सरकार यहाँ से हट जायगी तो अविभाजित का मोप ही जायगा देशी राज्य पूरा स्वतंत्र राज्यों का स्वर प्राप्त कर सेंगे और उन राज्यों को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए अपने माय की केन्द्राय—सत्ता स कोई न कोई समझौता करना पड़ेगा। १२ मई १९४६ को जो केबिनेट मिशन योजना प्रस्तावित की गयी थी उसका भी यही सारांश था।

देशी राज्यों के विषय में अपनी उपरोक्त सभी प्रकार सुविचारित योजना के अनुसार भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल ने देशी रियासतों के समय यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि वे १५ अगस्त १९४७ तक भारत व पाकिस्तान दोनों में से किसी एक में शामिल होना का अन्तिम निर्णय कर सें और प्रवेशपत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर कर दें अथवा जब तक वे अन्तिम निर्णय न कर सें तब तक सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार से 'स्थिति को यथापूर्व रखने का समझौता (Standstill Agreement) कर सें। इसके उत्तर में काश्मीर नरेश श्री हरि सिंह ने भारत और पाकिस्तान दोनों की अन्तर्गम सरकारों को १२ अगस्त १९४७ को निम्न आशय के तार भेजे—

बम्बू और काश्मीर की सरकार आपकी सरकार के साथ 'यथा स्थिति-समझौता' का स्वागत करेगी। इस सरकार का प्रस्ताव है कि जब तक गया समझौता बस्तुस्थिति को अधिक विस्तार से निश्चित करने के लिये न हो जाय तब तक मौजूदा प्रवर्तनों को बान्धू रखा जाय।'

अपने १३ अगस्त के उत्तर में पाकिस्तान ने काश्मीर सरकार के 'यथास्थिति समझौते' को स्वीकार कर लिया और माठापाठ, पूर्ण तार एवं डाक-व्यवस्था को बान्धू रखने का वचन दिया। भारत ने अपने उत्तर में कहा कि बम्बू एवं काश्मीर की सरकार अपने किसी प्रतिनिधि को 'यथास्थिति समझौते' पर बार्ता करने को बीज भेजे।

शेकिन भारत के साथ किसी प्रकार का समझौता किये जाने से पूर्व ही काश्मीर में संघीर स्थिति के लक्षण पैदा हो गये। पाकिस्तान के गवर्नर जनरल श्री मोहम्मद अली जिन्ना ने काश्मीर राज्य-सरकार पर इस बात के लिए पुरा और दामना मुक किया कि वह काश्मीर का पाकिस्तान में विलय करने के लिए राजी हो जाय। अपने वचन को प्रभावकारी बनाने के लिए

पाकिस्तान में अपने प्रयत्न में होकर जाने वाले मार्गों में घना इमरत पैदल घाति भेजना बन्द करके काश्मीर राज्य के लिए विकट प्रायिक कठिनाईयाँ पैदा कर दी। कुछ समय के लिए ऐसा लगा मानों काश्मीर पाकिस्तान में शामिल हो आयगा। काश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरिसिंह ने पाकिस्तान के साथ 'स्मिति को यथापूर्व' बनाये रखने के लिए मर्दाना १२ अगस्त को ही समझौता कर लिया था। लेकिन इसके पहले कि वे पाकिस्तान में काश्मीर के विषय के बारे में किसी घमिष्ठ दिग्गज पर पहुँच पाते थी जिन्ना के आदेश पर कबाइलियों और पाकिस्तानी सेना के एक बड़े भाग में २२ अक्टूबर, १९४७ को काश्मीर पर अपना अमानवीय और नग्न आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण इतना आकस्मिक और तीव्र था कि ४ दिन में ही आक्रान्ता सेना से भागे बढ़ते हुए काश्मीर को राजधानी श्रीनगर से २० मील दूर बारामुसा पहुँच गये। मार्ग में कबाइलियों और पाकिस्तान के नियमित सैनिकों ने आतता का मुँटा सिखों का ब्यहरण किया और ऐसे घने लज्जाजनक कार्य किये जो मनुष्यता के नाम पर घमिष्ठ कमजूर हैं। अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख कर काश्मीर के महाराजा और तत्कालीन कानून का अधिकारकर्ता एण्ड काश्मीर इल के नेता तथा काश्मीर के तत्कालीन प्रधान मंत्री शेख अबदुल्ला ने २६ अक्टूबर १९४७ को (घमिष्ठ आक्रमण होने के चार दिन बाद ही) भारत सरकार से काश्मीर को भारत में शामिल कर घनिष्ठ सैनिक-सहायता देने का अनुरोध किया। महाराजा ने प्रवेश-पत्रक (Instrument of Accession) पर अपने हस्ताक्षर कर अम्मु और काश्मीर राज्य को भारत में सम्मिलित करते हुए लिखा—

“मैं भारत सरकार की सहायता चाहते हुए प्रवेश-पत्रक पर हस्ताक्षर कर स्वीकृति के लिये भेज रहा हूँ। इसके सिवाय मेरे पास दूसरा विकल्प ही हो सकता है कि अपने राज्य और प्रजा को अस्थायी सुरक्षा के लिये न हूँ। इस मुँटा के आधार पर असार का कोई सम्य राष्ट्र जीवित नहीं हो सकता। मैं आपकी सरकार से तीव्र सैनिक सहायता भेजने के लिये निवेदन करता हूँ।”

काश्मीर सरकार के अनुरोध पर भारत की सरकार ने संमीरता पूर्वक विचार किया और २७ अक्टूबर १९४७ का महाराजा की प्रार्थना शीकार करते हुए हवाई बहादुरों से काश्मीर की रक्षा के लिए अपनी सेनाएँ भेजी और साथ ही युद्ध-समाप्ति पर अन-मठ-समझ की शर्त के साथ काश्मीर को भारत का अंग मान लिया। भारत के सर्वोच्च अदालत साईं जस्टिस बेंच ने महाराजा हरिसिंह को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने भारत द्वारा सहायता का आश्वासन और सुरक्षात्मक वायदाही का उल्लेख किया तथा सी के नाथ मांजि और सुरक्षा की स्थापना के पश्चात् अनमठ आतने का भी आश्वासन दिया। परन्तु, ऐसा कि बेन्स (J S Bains, महोदय का कहना कि कदापि इस उष्य से मना नहीं किया जा सकता कि अनता की इच्छा

की ओर इतरा किवा क्या या लेकिन गवर्नर जनरल का पत्र जनमत संग्रह के बारे में कुछ नहीं कहता।"

वस्तुतः जनमत संग्रह की बात भारत की सरकार ने इसलिए कही थी कि भारतीय नेताओं का बहुमत भारत से ही प्राथमिकी दृष्टिकोण का रहा है और काश्मीर की समस्या पर भी वे प्राथमिकी से मुक्त नहीं हो सके। श्री नेहरू ने अपने अनेक भाषणों और पत्रों में जनमत का प्राधान्य किया है, उन्होंने जनता की इच्छा को प्राथमिक माना। २ नवम्बर, १९४७ को अपने एक भाषण में उन्होंने कहा कि जब तक काश्मीर के लोग अपनी इच्छा प्रकट नहीं करते तब तक बिजब घरेबावी है। काश्मीर में शांति स्थापित होने पर ही यह संभव है। इस सन्दर्भ के समय किसी भी प्रकार का निर्णय लेने के लिए वे उत्सुक नहीं हैं। काश्मीर की जनता को अपनी बात कहने का पूर्ण अवसर दिया जायगा। श्री बामोचकों का कहना है कि जनमत संग्रह की बात कहना श्री नेहरू की ओर भारत सरकार की एक संकीर्ण राजनीतिक मसती की नितका समियाया उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाना पड़ा।

भारतीय संघ में काश्मीर के विषय की प्रक्रिया का भारत २९ सप्टेम्बर १९४७ से हुआ और २५ नवम्बर, १९४७ को काश्मीर के मुख्यालय जम्मू में भारतीय संघ के साथ काश्मीर के विषय को और पुष्ट किया। १५ इसी मध्य भारतीय फौजों श्रीनगर से २० मील की दूरी पर बारामूसा पर ही पाकिस्तान की सैनिकों की वधि रोक चुकी थी और उन्हें दूरी तरह पीछे खदेड़ने में सफल रही।

*J S Bhat: India's International Disputes, 1947 p 72.
 "We made a condition that the accession would have to be considered by the people of Kashmir later when peace and order were established. We were anxious not to finalise any thing in a moment of crisis and without the fullest opportunity to the people of Kashmir to have their say."

—2-November 1947—Nehru

+26th October 1947 Maharaja, Jammu and Kashmir to Governor General, India.

"— — — I have accordingly decided to do so and I attach the Instrument of Accession for acceptance by your Government."

25th November 1949 Proclamation—Maharaja J K.
 "The constitution of India shortly to be adopted by the constituent Assembly of India shall in so far as it is applicable to the state of J K. govern the constitutional relationship between this state and contemplated Union of India and shall be enforced by me."

पाकिस्तान ने अपने प्रदेश में होकर जाने वाले मार्गों में अपना नमक पेट्रोल प्रादि भेजना बन्द करके काश्मीर राज्य के लिए बिकर प्रादिक कठिनाइयाँ पैदा कर दी। कुछ समय के लिए ऐसा लगा मानों काश्मीर पाकिस्तान में शामिल हो जायगा। काश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरि सिंह ने पाकिस्तान के साथ 'स्थिति को यथापूर्व' बनाये रखने के लिए यद्यपि १२ अगस्त को ही समझौता कर लिया था लेकिन इसके पहले कि वे पाकिस्तान से काश्मीर के विभय के बारे में किसी प्रसिद्ध निर्णय पर पहुँच पाते श्री जिन्ना के प्रादेश पर कबाइलियों और पाकिस्तानी सेना के एक बड़ा भाग ने २२ अक्टूबर १९४७ को काश्मीर पर अपना अमानवीय और नग्न आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण इतना आक्रामक और तीव्र था कि ४ दिन में ही आक्रमता तेजी से आगे बढ़ते हुए काश्मीर को राजधानी श्रीनगर से २० मील दूर बारामुला पहुँच गये। मार्ग में कबाइलियों और पाकिस्तान के नियमित सैनिकों ने जनता को भूटा स्थियों का अपहरण किया और ऐसे प्रकार लज्जाजनक कार्य किये जो भयुष्यता के नाम पर प्रसिद्ध कसक हैं। अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख कर काश्मीर के महाराजा और मेहनत कामक मस आदि जम्मू एवं काश्मीर इस के नेता तथा काश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री जेल्म अहलुवाल्ला ने २६ अक्टूबर १९४७ को (अर्थात् आक्रमण होने के चार दिन बाद ही) भारत सरकार से काश्मीर को भारत में शामिल कर प्रविष्ट सैनिक-सहायता देने का अनुरोध किया। महाराजा ने प्रवेश-पत्रक (Instrument of Accession) पर अपने हस्ताक्षर कर जम्मू और काश्मीर राज्य को भारत में सम्मिलित करते हुए सिखा—

“मैं भारत सरकार की सहायता चाहते हुए प्रवेश-पत्रक पर हस्ताक्षर कर स्वीकृति के लिये भेज रहा हूँ। इसके सिवाय मेरे पास दूसरा विकल्प नहीं हो सकता है कि अपने राज्य और प्रजा का अतृप्त्य सुट्टेयों के द्वारा बेच दूँ। इस भूट के आधार पर संसार का कोई अन्य राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। मैं आपकी सरकार से शीघ्र सैनिक सहायता भेजने के लिये निवेदन करता हूँ।”

काश्मीर सरकार के अनुरोध पर भारत की सरकार ने गंभीरता पूर्वक विचार किया और २७ अक्टूबर १९४७ का महाराजा की प्राचना स्वीकार करते हुए हवाई वाहनों से काश्मीर की रक्षा के लिए अपनी सनाए सेना से और साथ ही मुद्र-समाप्ति पर जन-मठ-संग्रह की लक्ष्य के साथ काश्मीर को भारत का अंग मान लिया। भारत के सर्वोच्च अंतरिम लार्ड माउण्ट बैटन ने महाराजा हरि सिंह को पत्र लिख जिसमें उन्होंने भारत द्वारा सहायता का आश्वासन और सुरक्षात्मक कार्रवाही का उल्लेख किया तथा इसी के साथ शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के पश्चात् जनमत जानने का भी आश्वासन दिया। परन्तु, जैसा कि जेम्स (J S Bains) महोदय का कहना है कि यद्यपि इस उपाय से मना नहीं किया जा सकता कि जनता की इच्छा

की घोर इजारा किया गया था लेकिन यवनर जनरल का पत्र जनमत सभ के बारे में कुछ नहीं कहता।*

वस्तुतः जनमत सभ की बात भारत की सरकार ने इसलिए नहीं की कि भारतीय नेताओं का बहुमत धारम्भ से ही भादर्नवादी दृष्टिकोण का रहा है और काश्मीर की समस्या पर भी वे भादर्नवाय से मुक्त नहीं हो सके। श्री नेहरू ने अपने घनेक भाषणों और पत्रों में जनमत का भाषण किया है उन्होंने जनता की इच्छा को धारण माना। २ नवम्बर १९४७ को अपने एक भाषण में उन्होंने कहा कि जब तक काश्मीर के लोग अपनी इच्छा प्रकट नहीं करते तब तक विजय प्रस्थापी है। काश्मीर में शान्ति स्थापित होने पर ही यह संभव है। इस सङ्कट के समय किसी भी प्रकार का निर्णय लेने के लिए वे उत्सुक नहीं हैं। काश्मीर की जनता को अपनी बात कहने का पूर्ण अवसर दिया जायगा।[†] जामोबकों का कहना है कि जनमत सभ की बात कहना भी नेहरू की और भारत सरकार की एक गमीर राजनीतिक पसली थी जिसका समियाजा उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाना पड़ा।

भारतीय सभ में काश्मीर के विषय की प्रक्रिया का धारम्भ २१ अक्टूबर १९४७ से हुआ और २५ नवम्बर १९४७ को काश्मीर के मुखराज करसिंह ने भारतीय सभ के साथ काश्मीर के विषय को और पुष्ट किया।[†] इसी मध्य भारतीय डॉबे भीतपर से २० मील की दूरी पर बाउमूना पर ही पाकिस्तान की सेनाओं की प्रति रोक चुकी थी और उन्हें दुरी तरह पीछे लपेटेन सव गई थी।

* J S Bates India's International Disputes, 1947 p 72.
† We made a condition that the accession would have to be considered by the people of Kashmir later when peace and order were established. We were anxious not to finalise any thing in a moment of crisis and with-out the fullest opportunity to the people of Kashmir to have theirsay"

—2-November 1947—Nehru.

+26th October 1947 Maharaja, Jammu and Kashmir to Governor General, India
"— --I have accordingly decided to do so and I attach the Instrument of Accession for acceptance by your Government"

25th November 1949 Proclamation—Maharaja J K.
"The constitution of India shortly to be adopted by the constituent Assembly of India shall in so far as it is applicable to the state of J K. govern the constitutional relationship between this state and contemplated Union of India and shall be enforced by me."

संयुक्त राष्ट्र तब में काश्मीर समस्या का प्रवेश—एक तरफ तो भारतीय सना द्वारा घातमजकागियों का सना कर मानि स्थापित करने का काय जागी । और दूसरी तरफ भारत सरकार राजनानिभ स्तर पर पाकिस्तान से घनुरोप करते हुए उस युद्ध मइकाने कायी कायकाहा न बरम की प्राधना कर रही थी । पाकलाया का पाकिस्तान हाग की ग नह बना क स्पष्ट प्रमाण मिस बुक न । स्वयं सन्धन टाइम्स न अपने ३ दिसम्बर १९४७ न पक मे लिखा था कि—

यह निश्चित है कि पाकिस्तान घातमजों की गैर-सरकारी रूप से सहायता कर रहा है । हमारे सबाददाताया की ताभी कबर क घनुरोप पाकिस्तान सरकार घाबाब काश्मीर का सनायो की प्रत्य गापावाहद न घुमरा सामान दे रही है । कुछ पाकिस्तानी अधिकारी युद्ध का सबासन भी कर रहे हैं । चाहे पाकिस्तान की सरकार कितना ही बयो न इन्कार करे, पर बहु नैतिक और भीतिक बोना हा प्रकार की सहायता स नामकी का दे रही है ।

२२ दिसम्बर का भारतीय प्रधानमन्त्री र्मा न क न पाक प्रधानमन्त्री को कबाइमियों को बी जाने वाली पाकिस्तानी सहायता का विस्तृत विवरण देते हुए इस बन्द करने की प्रार्थना की । काग्ति का हमी हाग के कारण ही भारत इस प्रकार का घनुरोप कर रहा था । घन्यबा १९४७ मे स्थिति इस प्रकार की थी कि भारत सैनिक प्रक्ति क बम पर बुद्ध हा दिनों के भीतर काश्मीर के सम्पूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर सकता था ।

पाकिस्तान की ओर से भारत क कानि-मयासो का कोई प्रत्युत्तर न मिसने पर भारत मे सुरक्षा परिषद् से लिफायत की कि पाकिस्तानी सना और उसक द्वारा प्ररित कबाइमिया ने भारत मे विधीन कश्मीर पर घातमज किया है, घत बहु पाकिस्तान का काश्मीर से अपनी सेनए बापिस घुमाने और कबाइमियों को किसी प्रकार का नैतिक सहायता व रक्षण पाकि न देने के मिय कहे । सुरक्षा परिषद् ने का प्राधना पत्र माखाय प्रतिनिधि की पी बी पिस्सई द्वारा प्रस्तुत किया गया बहु स प्रकार था—

“कबाइमी और पाकिस्तान क लागे ने भारत के घय कश्मीर पर हमला करके ऐसी स्थिति पैदा कर बी है जिसमे अन्तर्राष्ट्रीय काग्ति और सुरक्षा क लिये एक गयीर सतग र्ददा हा गया है । घत भारत सुरक्षा परिषद् स प्रार्थना करता है कि—

- (१) बहु पाकिस्तान को काश्मीर मे आक्रमण करमे या घातमज कारियों का किसी भी प्रकार की सहायता नन स राके ।
- (२) जम्मू और काश्मीर क्षेत्र मे हा रहे युद्ध मे पाकिस्तान के लोयों को किसी भी प्रकार की सहायता देने स राके ।
- (३) घातमजों को पाकिस्तान के सभ में से घुमरम युद्ध-सबासन के लिये पाकिस्तानी क्षेत्र का प्रयोप करने घन्यबा आक्रमण का सैनिक या घसीनिक किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त होने से रोके ।

भारत ने अपनी लिफायत करते समय यह भी स्पष्ट कर

संयुक्त राष्ट्र संघ-विश्व शांति में भूमिका

दिया कि पाकिस्तान का यह प्राक्रमण स्वयं भारत के विरुद्ध किया जा सकता है।

वस्तुतः पाकिस्तान का इस प्रकार का व्यवहार शांति धीरे मान के उपासक श्री नेहरू के लिए अत्यन्त दुःखदायक था। श्री नेहरू ने उस स्थिति पर विचार-विमर्श करते हुए लिखा है कि—

“यही जानता हूँ कि तब मैं कितना परेशान था। एक पार हमारा शांति धीरे प्रहिता की नीति दूसरी ओर प्राजादी के सुरक्षित बाद पाकिस्तानियों द्वारा हमको कुछ भूमि में बनीटना— काश्मीर में मुत्तार-बर्मापार हाँ खाँ था। सीमाय से गांधीजी तब हमारे बीच थे—मैं उनकी तरफ गया—उन्होंने हमें बताया कि काश्मीर की रक्षा करना हमारा धर्म है। काश्मीर में जाकर हमने देखा कि न कबल कबाइली मुठेरे ही बस धामे से बल्कि पाकिस्तानी सेना भी निहत्थ मागों पर प्राक्रमण कर रही थी। पाकिस्तान द्वारा भारत को यह सुल्तमसुल्ता कुछ खर्च में आने की दावत थी—हमने पाकिस्तान के प्रधान मंत्री से तार द्वारा वा प्रेषित की कि वे कबाइली मुठेरों को (जा फटियर प्राप्त के वे धीरे पाकिस्तानी सीमा से होकर घाते थे) रोके धीरे इसका सरलतम उपाय यह है कि उन मुठेरो को हम से पुर्ण पर रोकना जो काश्मीर पाक सीमा पर है। लेकिन पाकिस्तान ने ऐसा नहीं किया। वहाँ के गवर्नर जनरल ने बताया कि यह हमने बम की भाँट नहीं है। मत न छापामार प्राक काश्मीर से धामे से धीरे से काश्मीर का मुक्त कर रहे थे। इतना ही नहीं पाकिस्तान ने इन मुठेरो को आधुनिक अस्त्र-तन्त्रों से नैम किया था।

इसपर पाक की ओर से अफस्तानका बुराप्रहृषण और देकर यह खे से कि—

“हमारे सेनापति का कहना है कि हमने किसी को अस्त्र तन्त्र नहीं दिये हैं धीरे न हम कबाइलियों का नतृत्व कर रहे हैं।

यही इच्छा मेतल मे सुरक्षा परिषद मे सयत बाधी मे कहा—” “यह सब सामने हुए थी हम वहाँ इच्छितिये नहीं धामे कि पाकिस्तान को विश्व राष्ट्रों द्वारा वसपूषक ठिकामे पर समाया भाय वा सम पर धामिक प्राकटियाँ लमाई जावें—... या उसे संयुक्त राष्ट्र सब मे बाहुर निकास जाय हम केवस यह प्राबंता लेकर धामे है कि पाकिस्तानी प्राक्रमण को रोकना जाय।

परन्तु १५ जनवरी १९४८ को पाकिस्तान ने अपने पर प्राक्रमण के धामोप को मानने से इन्कार कर दिया। तब सुरक्षा परिषद में मतदान द्वारा २१ अगस्त १९४८ को यह निष्पत्ति मिया गया कि पाँच राष्ट्रों का एक धामाग मौके पर स्थिति का प्रबसोकल कर समझौते का प्रयत्न करे।

पाकिस्तान ने भारत के सभी धामोपो का लखन करतें हुए भारत पर अनेक प्रयारोप समाए धीरे यह कहा कि काश्मीर का भारत में विमय तबथा पर्वीय है।

मौगों टेभों के प्रतिनिधियों को सुनने के बाद सुरक्षा परिषद ने १७ जनवरी को यह प्रस्ताव पास किया कि दोनों देशों की सरकारें अपनी जनता से

परिस्थितियों में सुधार आने का प्रयास करें। स्वयं उस दिशा में प्रयत्न करें और ऐसी कोई बात पैदा न होने दें जिसमें स्थिति और मज्जीर हो जाय। दोनों ही देशों कि सरकारों ने उक्त प्रस्तावों के पासन की स्वीकारोक्ति तो दे ही पर पाकिस्तान ने कभी भी उनका सही रूप में पासन नहीं किया।

तीन दिन पश्चात् अर्थात् २० जनवरी १९४८ को परिषद् ने ३ सदस्यों के एक प्रायोग की स्थापना करने का फैसला किया जो जम्मू काश्मीर में आकड़े पस्तु-स्थिति के बारे में अपना प्रतिवेदन परिषद् को दे तथा स्थिति में सुधार आने के लिये आवश्यक कार्यवाही भी करे। इस प्रायोग के एक सदस्य की नियुक्ति भारत की सिफारिश पर, दूसरे की नियुक्ति पाकिस्तान की सिफारिश पर और तीसरे की नियुक्ति इन दोनों की सिफारिश पर होनी थी। भारत ने इस प्रायोग के लिए बेकोम्प्लेक्सिमा को और पाकिस्तान ने अर्जेन्टाइना को नामजब किया परन्तु ये दोनों राज्य तीसरे नाम पर राजामन्द न हो सके। इसलिए सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष ने संयुक्त राज्य अमेरिका को तीसरा सदस्य नामजब कर दिया। २१ अगस्त को सुरक्षा परिषद् ने इस प्रायोग में २ सदस्य घीन बढ़ा दिये ये प्रतिरिक्त सदस्य बेस्विचयम और कोलम्बिया थे। इस ५ सदस्यीय प्रायोग (United Nations Commission for India and Pakistan—U. N. C. I. P.) को भारत में कुछ बंद कराने तथा जनमत संग्रह का कठिन कार्य सौंपा गया। सुरक्षा परिषद् ने अपने एक अध्यक्ष प्रस्ताव में इस बात की भी सिफारिश की कि काश्मीर से विदेशी कबाइली पाकिस्तान के नागरिक एक बड़ी मात्रा में भारतीय फौजों भी हटा ली जाय और भारत द्वारा जनमत संग्रह के लिये भाषण सैखन समा आदि के स्वतंत्रता का वातावरण तैयार किया जाय।

दोनों पक्षों से मिलने और उनके विचारों को जानने के बाद ११ अगस्त १९४८ को संयुक्त राष्ट्रीय ५ सदस्यीय प्रायोग ने मौके पर स्थिति का अध्ययन कर दोनों सरकारों से कुछ बंद कर तथा समझौता करने के लिए निम्नलिखित आचार प्रस्तुत किए —

(i) पाकिस्तान अपनी फौजें काश्मीर से हटा ले और विदेशी कबाइलियों तथा काश्मीर में सामान्य रूप से न रहने वाले विदेशियों को वहाँ से हटाने का प्रयत्न करे।

(ii) सेनाओं द्वारा इस प्रकार लानी किये गए प्रदेश का शासन प्रबन्ध स्वामीय अधिकारियों द्वारा प्रायोग के निरीक्षण के अन्तर्गत दिया जाय।

(iii) जब प्रायोग भारत को पाकिस्तान द्वारा उपरोक्त बातों के पूरा करने की सुझना दे तो भारत भी प्रायोग के साथ किये जाने वाले समझौते के अनुसार अपनी सेनाओं का अधिकतम मात्रा वहाँ से वापिस हटा ले।

(iv) अन्तिम समझौता होने तक भारतीय सरकार कुछ विराम की सीमा के भीतर अपनी ही सेनायें रखे जिसकी इस प्रदेश में कानून एवं व्यवस्था बनाने रखने के कार्य में स्वामीय अधिकारियों का सहायता देने के लिये आवश्यक हो।

पहले तो पाकिस्तान ने आयोग की शर्तों को मानने में आनाकानी की और आयोग को सूचित किया कि वह इन्हें कुछ शर्तों के साथ ही स्वीकार कर सकता है परन्तु घटत सम्बन्धी शर्तों के बाव १ जनवरी १९४९ को दोनों देश मुड-बिराम पर सहमत हो गए। इसके अनुसार मुड-बिराम रेखा निश्चित की गई और उसके निरीक्षण के लिए आयोग द्वारा बिभिन्न राष्ट्रों के निरीक्षक नियुक्त कर दिए गये। बनमत बामी नत को पूरा करन के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के फ्लिट एडमिरल श्री मैस्टर निमिद्र नितुक्त हुए। उन्होंने दोनों देशों से बातचीत की परन्तु काफी प्रयास करने के उपरान्त भी वे दोनों देशों को इस प्रश्न पर सहमत नहीं कर सके और घटत में उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

मैकनाटन योजना - इसके बाद पाकिस्तान के आक्रमक इरादों के कारण काश्मीर की समस्या पुन गम्भीर होने लगी। इस परिस्थिति में सुरक्षा परिषद क कनाइटम समापति मैकनाटन में समस्या को मुनम्हने का विफल प्रयास किया। २९ दिसम्बर १९४९ को उन्होंने पाकिस्तान और भारत दोनों को अपनी अपनी योजनाएँ हटाने का प्रस्ताव दिया जिससे काश्मीर का विवेक-करण कर बनमत सग्रह किया जा सके। इस 'मैकनाटन योजना' (Mc Naughton Plan) में पाकिस्तानी आक्रमण को कोई जर्बा नहीं थी और आक्रमण तथा आक्रान्ता को एक ही स्तर पर रखा गया था। अनेक कारणों से भारत को यह प्रस्ताव माग्य नहीं हो सकता था। संयुक्त राष्ट्र सच में भारतीय प्रतिनिधि श्री बेनेगल तरविह राव ने इस योजना पर बोलते हुए कहा था— "आज स्थिति यह है कि पाकिस्तान जिनने कि १९४८ की सम्पूर्ण अवधि में आक्रमण कायों मचना आशय क र्मीर-सेनाओं को किसी प्रकार की मदद देने से इन्कार किया था अब स्वय न केवल एक आक्रमणकारी ही है बल्कि रियासत क लगनय आधे क्षेत्र पर सर्वप्रानिक रूप से अस्तविक कब्जा जमाये बैठा है। यह एक नान आक्रमण है जिसका कोई समर्थन नहीं कर सकता। किन्तु मैकनाटन प्रस्ताव में इस आक्रमण के समर्थन का कोई संकेत नहीं है। भारत ने मुकत इसी कारण योजना को बरीकार कर दिया।

द्विचलन मिसान-मैकनाटन योजना के विरुद्ध होने पर २४ फरवरी १९५० को सुरक्षा परिषद ने एक प्रस्ताव को स्वीकृत किया जिसका आशय र महीने के भीतर काश्मीर से दोनों पक्षों की सेनाएँ हटाने (Demilitarise

"To-day the position is that Pakistan which throughout 1948 denied giving any aid either to the invaders or the Azad Kashmir Forces, is now itself not only an invader but in actual occupation of nearly half the area of the State without any lawful authority from any source. This is naked aggression of which no one can approve but there is no sign of disapproval in Mac-Naughton proposal."

tion) में था। इस कार्य को करने का उत्तरदायित्व धान्टु नियम स्वाबार्थन सर धान्तु डिकसन (Sir Oned Dixon) पर डाला गया। मई १९५० में डिकसन ने अपनी कार्य प्रारम्भ किया जिम्मे धमस्त तक उन्हें यह विश्वास हा गया कि समझा उत्तम नहीं मुमक संझती। डिकसन का इरादा यह था कि पाकिस्तानी सेना द्वारा अधिग्रहण भाग पाकिस्तान क पास रहे और भारत के अधीन भाग भारत म रहे तथा कबल काश्मीर पार्टी का निर्णय, धममत सप्रह द्वारा कर दिया जाय। यह योजना बनो ही राज्यों को मार्ग नहीं हुई। अपनी प्रमफमता स्वीकार करत हुए भी डिकसन ने १३ सितम्बर १९५० को अपनी प्रतिवेदन मुखा परिषद क सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। प्रति वेदन को मुख्य बातें यह थीं—

१ मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जब २० अक्टूबर १९४७ का धान्तुमकी द्वारा बम्बु काश्मीर की सीमा बार को गई तो यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि का स्पष्ट संलक्षण था और जब ३ मई १९४८ का पाकिस्तानी सेना के बल से काश्मीर में प्रवेश किया तो यह भी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध था।

२ भारतनिर्णय के बजाय काश्मीर का बंटवारा अधिक उचित होगा क्योंकि भारतनिर्णय के बाद चाहे किमी राज्य म क्यों न शामिल हो, सर बाबिलो की एक नई समझा पैदा होगी जो अर्थात्कालीन है।

३ पूरे राज्य में भारतनिर्णय को लागू करने क बजाय कुछ ही हिस्सों में इसका प्रयोग करना उचित होगा। इसका प्रयोग कबल उन जगहों में हो, जहाँ मतदान के बिना उम जेन का नाम निश्चित न किया जा सके।

डिकसन योजना भारत को स्वीकार क्यों नहीं हुई—इसके मूल में अनेक आधारभूत एवं व्यापक सगन कारण थे—

(क) पाकिस्तानी सेना ने काश्मीर पर धाकमक किया था जब कि भारतीय सेनाओं काश्मीर सरकार के अनुरोध पर उसकी रक्षा करने के लिए गई थीं। यह दोनों की स्थिति में एक मौखिक अन्तर था। धाकास्ता होने के कारण पाकिस्तानी फौजों का काश्मीर से हटाया जाना आवश्यक था तथा भारत से अपनी फौजें हटाने की बात कहना सर्वथा अनुचित था।

(ख) डिकसन ने स्पष्ट तर्कों में बाधित किया था कि 'काश्मीर में विरोधी कबालियों का तथा मई १९४८ में पाकिस्तान की निर्धारित सेनाओं का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध था'। लेकिन डिकसन योजना में पाकिस्तान को धाकास्ता मानते हुए भी काश्मीर से दोनों पक्षों की सेनाएँ हटाये जाने का धाघह था। इस प्रकार बाकमसकारी पाकिस्तान और रक्त भारत दोनों का बंधन स्तर पर ला पटकना किसी भी रूप में व्यापसपत् न था।

(ग) डिकसन योजना में काश्मीर के विभाजन का सुझाव दिया गया था जो कदापि उचित नहीं था। काश्मीर की वैध सरकार वैधानिक रूप से काश्मीर का भारत में विलय कर चुकी थी। इस तरह काश्मीर एवं भारत का धम का अमके विभाजन की बात कहना भारत के विभाजन की योजना स्वीकार करना था।

बू कि विघ्नन महादय क सिंग काश्मीर समस्या का हल समय नहीं हो सका। अतः उन्होंने अगस्त १९६६ में त्यागपत्र दे दिया और साथ ही दोनों राज्यों को प्रत्यक्ष बार्ता का सुझाव दिया।

राष्ट्रमण्डलीय देशों के सुझाव—नागर्य और पाकिस्तान दोनों राष्ट्र पश्चिम के सदस्य थे अतः राष्ट्रमण्डलीय देशों ने काश्मीर समस्या के समाधान के अन्तर्गत सिंग और अम मन्थन में तीन महत्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किए जो सरकार में इस प्रकार थे—

(क) जनमत-संग्रह से पहले और जनमत-संग्रह के समय काश्मीर में राष्ट्रमण्डल के सन्तुल्य कंपनी सत्तार्यें रहें।

(ख) इस समय में भारत और पाकिस्तान दोनों की सशस्त्र सेना एक कमरे में बसनी रहें।

(ग) इस समय के लिए स्वतंत्र काश्मीरी स्थानियों की एक मेला बरतार्यें जाय।

भारत इस प्रस्तावों से सहमत नहीं हो सका। अतः राष्ट्रमण्डलीय देशों ने काश्मीर समस्या के समाधान में सफल नहीं हो सका। राष्ट्रीयमण्डलीय देशों के प्रस्ताव एकदम अशुभ थे। उनमें अशुभभावना की व धानमण्डलीय देशों में बार्ता अन्तर्गत नहीं किया गया था और अन्तर्गत रूप से वे पाकिस्तान का पक्ष पोषण करते थे।

प्राण मिशन—द्वितीय मध्य काश्मीर सरकार ने यह निश्चय किया कि काश्मीर में नवीन संविधान के निर्माण के लिए विघ्न निर्मात्री परिषद (Constituent Assembly) के चुनाव कराये जायें। इस पर फरवरी १९५१ में पाकिस्तान ने पुनः सुरक्षा परिषद में इस प्रस्ताव को उठाया। तब काश्मीर से दोनों राष्ट्रों की सेना हटा कर जनमत-संग्रह के लिए बाधावरण र्थापन करने हेतु ३० अगस्त १९५१ को सुरक्षा परिषद ने अमेरिका के डा० फ्रैंक ग्राहम (Frank Graham) को अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। डा० ग्राहम ने इस समस्या के समाधान हेतु दो बयों (१९५१-५२) में अनेक सुझाव रखे। उनके अन्तिम प्रस्तावों की मुख्य बातें ये थीं—

(i) दोनों पक्षों द्वारा अपनी सेनायें हटाई जाय और जनमत-संग्रह किया जाय।

(ii) जनमत-संग्रह के काम संचालन हेतु भारत १० हजार और पाकिस्तान ६ हजार सैनिक रहें।

नवम्बर १९५२ को सुरक्षा परिषद ने उपरोक्त विषय में एक प्रस्ताव भी पास किया। लेकिन ग्राहम मिशन की व्यवस्था में सुरक्षा परिषद का प्रस्ताव दोनों ही पक्षों का मान्य नहीं हुआ। तब प्राण मि २७ मार्च, १९५३ को अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें काश्मीर प्रश्न को विघ्नन की भाँति भारत और पाकिस्तान के मध्य सीधी संधि-वार्ता द्वारा सुलझाने का सुझाव रखा गया।

प्रधान मंत्रियों की बार्ता—प्राण के सुझाव के अनुसार भारत और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों ने जून १९५३ में लखनऊ में मुलाक़ा, १९५३ में कराची में और नई दिल्ली में काश्मीर के सम्बन्ध में विस्तार से बातचीत

की। १९५३-५४ में दोनों प्रधान मन्त्रियों में इस विषय में पत्र-व्यवहार चलता रहा बिनक अनुसार सन् १९५४ में जनमत-संग्रह करवाने के सम्बन्ध में प्रायः निष्पत्ति भी हो सा गया परन्तु जनमत-संग्रह हेतु प्रशासक व अन्य व्यवस्था के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता नहीं हुआ।

इसी बीच पाकिस्तान ने सैनिक सहायता प्राप्त करने और सैनिक दृष्टि से सुबल होने की नीति पर तन्विय रूप से धाधरण करना शुरू कर दिया। वह संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा समर्पित मध्यपूर्व और दक्षिणी पूर्वी एशिया के सैनिक सगठनों में सम्मिलित हो गया। नवम्बर १९५३ में पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधान सेनापति और वर्तमान में उसके सर्वोच्च अमरल ध्यूबशी सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए वाशिंगटन गए। संयुक्त राज्य अमेरिका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्ध में २५ फरवरी १९५४ को पाकिस्तानी प्रधानमंत्री माहम्मद अली ने स्वयं यह घोषणा की कि संयुक्त राज्य अमेरिका पाकिस्तान को 'संयुक्त राज्य सैनिक सुरक्षा कानून' के अन्तर्गत सैनिक सहायता देने को तैयार हो गया है। भारत ने पाकिस्तान को अमेरिका द्वारा सैन्य सहायता दिए जाने का तीव्र विरोध किया तथा अमेरिका के नागरिकों को जो काश्मीर में काम कर रहे थे वे ४८ घंटे में निवृत्त होने के आदेश दे दिये। यद्यपि अमेरिका ने अपने स्पष्टीकरण में कहा कि पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने का नहुँस्य भारत को अति पसु खाना नहीं है किन्तु अमेरिका के इस स्पष्टीकरण की पोल उस समय तुरन्त ही खुल गई जब पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने यह घोषणा की कि 'सैनिक सहायता से उन्हें काश्मीर की समस्या को सुलझाने में सहायता मिलेगी। जब भारत ने अमेरिका के प्रति एक जबरजस्त शोम की सङ्घर्ष व्याप्त हो गई। भारत ने अमेरिका की आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया और इसी लिए उसे अमेरिका विरोधी कन्व-समर्बक होने का जितना दिया जाने लगा।

अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को भी खान काशी सैन्य सहायता का काश्मीर की समस्या पर अक्षय ही बड़ा गहुरा प्रभाव पडा। १ मार्च १९५४ को पब्लिशत अन्नाहरसाक नहक ने लोकसभा में इस स्थित पर प्रकाश डालते हुए कहा—

'संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति ने कहा है कि पाकिस्तान को भी गई सैनिक सहायता का यदि बुरूपयोप होता है इससे दुमरी पर हमला किया जाता है तो वह ऐसे धाक्कमय का रोकेगा। परन्तु हमारा पिछला अनुभव यह बतलाता है कि जब धाक्कमय होता है तो उस रोकन का कोई बल नहीं किया जाता है। याद रखें वर्ष पूर्व काश्मीर पर भीपन हमला हुआ था किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका ने आज तक इसकी निन्हा तक नही की और हमें यह कहा जाता रहा है कि हम यान्त्रि बनाय रतन के लिए इस पर धाधरु नहीं कर। अतः यह बात निश्चित है कि संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली सहायता से धाक्कमय को प्राक्ताहित करने व भी परिस्थितियों के उत्पन्न होने की सम्भावना है। -- -- पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने कहा कि यह सैनिक सहायता काश्मीर की समस्या को सुलझाने में सहायक सिद्ध होगी।

यह हम बात की मूकक है कि उनका मन किस प्रकार सोचता है और वह सैनिक सहायता को किस प्रकार प्रयोग करना चाहता है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा समर्थित सैन्य सपठनों में पाकिस्तान के शामिल हो जाने से काश्मीर की समस्या 'हीन युद्ध' के क्षेत्र में आ गई । अमेरिका का पाकिस्तान में हिमशस्त्री सत का कारण यह था कि वह गिमगिन को जो सोवियत रूस की सीमा के पास है अमेरिकन सैनिक धनु के रूप में प्रयोग करना चाहता था । मिलगित क्षेत्र सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वहाँ भरना गतिशाली सैन्य प्रह्ला कायम करके अमेरिका अफ़गानिस्तान से लगनी हुई कसी सीमा पर अपनी प्रहार शक्ति में वृद्धि करने का अभिप्रायो था । अतः यह स्वाभाविक था कि रूस इस स्थिति को बर्दास्त न करे । यों तो पहले से ही साम्प्रदायी अगत की अहानुभूति भारत के प्रति थी परन्तु अब सोवियत संघ ने काश्मीर प्रश्न पर भारत का अुता समर्थन करने का निर्णय किया । १९४९ में श्री कुलगानिन और अरुबेव ने अपनी भारत यात्रा के समय यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि वे काश्मीर को भारत का अविभाज्य अग अग अते हैं । श्री अरुबेव ने तो अीनमग में यहाँ तक कह डाला- आप पहाड़ की षोटी पर अड़े होकर आबाज कीजिये हम आपकी सहायता के लिये आ आयेगि ।

इसी बीच १९४४ में काश्मीर स विधान-सभा ने काश्मीर के भारत में विलय का प्रमुमोदन कर दिया और १९४६ में उसने राज्य के लिए एक नये सविधान को स्वीकृत तथा अ यीकृत किया जिसक द्वारा काश्मीर प्रत्येक दृष्टि कोष से भारत का अग अग बन गया । इस सविधान को २९ अअवरी १९४७ से लागू करने का निर्णय किया । इस तरह अब काश्मीर समस्या का स्वरूप अिन्कुम बदल गया और जनमत सग्रह का कोई मूष्य नहीं रह गया । पाकि-स्तान द्वारा अमेरिकन सैन्य गुट में शामिल हो जाने के कारण जनमत सग्रह की बात पहिले ही निरर्थक हो चुकी थी । १९ अअरिल १९४९ को हमारे तरफा सीन प्रमाण अनी श्री नेहरू ने अपने एक भाषण में इसे स्पष्ट करते हुए ये अक अहे-

"जनमत सग्रह का प्रश्न स्पष्ट रूप से इस अर्थ के साथ सम्बद्ध था कि पाकिस्तान काश्मीर से अपनी सेनायें हटा लेया । पिछले नौ अरों में पाकिस्तान यह अर्थ पूरी करने में अग्रमर्ष रहा है । हम बीच में काश्मीर का स्वरूप अिन्कुम बदल गया है और कई कई अटगमें हुई हैं । पाकिस्तान को ही जाने वाला अमेरिकी सहायता ने इनका स्वरूप अिन्कुम बदल दिया है । क्योंकि अब यदि पाकिस्तानी सेनायें काश्मीर की भूमि में निकल कर सीमा से २०-३० मील के अन्दर अपनी अई किले अनी करती हैं तो भी अई सहायता से उनकी सहायक और मारक शक्ति पहिले से बहुत अधिक बढ़ गई है । पाकिस्तान को मिलने वाली सैनिक सहायता ने और उनकी सैनिक समन्धीये की सशक्तता न काश्मीर में जनमत सग्रह करने के प्रस्ताव के मूस आभार को ही नष्ट कर कर दिया है ।

२ अअवरी १९४७ को पाकिस्तान के अिरेसर्वयी फिरोजअामुन ने काश्मीर का प्रश्न मुरआ परिषद के प्रमाण को सिद्धे गये एक पत्र में पुनः

कार्य निराक—सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव के अनुसार जारिंग १४ मार्च १९४७ को पाकिस्तान और २४ मार्च को भारत पहुँचे। सुरक्षा परिषद में भारतीय प्रतिनिधि यह प्रास्तावक ले चुका था कि यद्यपि काश्मीर भारत में आना स्व से मानिस हो चुका है तथापि भारत जारिंग का स्वागत करेगा।

(दोनों पक्षों से बिनाश पूर्वक वाग्वीर करने के बाद १ अगस्त १९४७ को जारिंग ने सुरक्षा परिषद का यह रिपोर्ट पेश की कि वह ऐस ठोस प्रस्ताव रखने में असमर्थ है कि जिससे इस समस्या का हल निकल सके क्योंकि दोनों पक्षों में १३ अगस्त १९४८ के सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव के सम्बन्ध में सीमित मतभेद है। जारिंग ने काश्मीर समस्या को सुलझाने में असमर्थता प्रकट की और यह भी स्वीकार किया कि पिछले १ वर्षों में काश्मीर की स्थिति बहुत बदल गया है। यह उम्पकनीय है कि जारिंग द्वारा भक्त किये जाने वाले १३ अगस्त १९४८ के सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव (जिसका पहले सम्मेलन किया जा चुका है) के दो मुख्य भाग थे—पहले भाग में कहा गया था कि जम्मू व काश्मीर के दोनों भागों में एक साथ कुछ बन्द हो और इसकी तिथि ४ मिनट के भीतर निर्दिष्ट हो। दोनों देशों से कोई ऐसा काम न करण को कहा गया था जिससे काश्मीर में उनकी सेनाओं में बढ़ि हो जाय। इस भाग के दूसरे पराघाओं में सैनिक निरीक्षकों का तस्मैय वा और दानों देशों की सरकारों में यह अनुरोध किया गया था कि वे विचार विमर्श के लिए समुक्त बातचरण स्थापित करने हेतु अपने-अपने देश क जनता की महायत्न करे। दूसरे भाग में बिनाश यदि सम्बन्धी सम्झौते की बात थी। यह कहा गया था कि पाकिस्तान अपनी फौजों को काश्मीर से हटा सेवा लय। कबाइलियों एव अन्य पाकिस्तानी भागरिकों को पक्ष से हटाने में अपने प्रभाव को प्रयोग में लायेगा। इस प्रकार घासी किये हुए प्रदेश क प्रशासन का सहासन स्थानीय अधिकारियों के द्वारा धायोग की देखरेख में होना। पाकिस्तानी फौजों और कबाइलियों के हट जाने के बाद भारत या कम्पि रूप से अपनी फौजें वहाँ में हटाना धारम्भ कर देगा। इन दो भागों के धतिरिक्त एक तीसरा भाग भी था जिसमें यह प्रास्तावक की गई थी कि जम्मू और काश्मीर के अधिभ्य का निर्णय वहाँ की जन-रञ्जा के अनुसार किया जायगा।

जब जारिंग और भारतीय नेताओं के मध्य बिस्तर से बार्तालाप हुई तो भारत के नेताओं में भी जारिंग को दनजाया कि १३ अगस्त १९४८ के सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव की वाग्वीरिणि में अभी तक तो बिशेष रकावटें रही हैं—प्रथम पाकिस्तान ने न ता काश्मीर में अपनी फौजों को हटाया है और न उस बातचरण को बनाध रतन में ही मत्पयोग दिया है जिससे घासी धायो बनाये जा सके एव द्वितीय सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान द्वारा भारत पर किय गये धाग्मल क बारे में बुली न घ कर उसके साक्षुस हो बढ़ाया है। जारिंग ने सुरक्षा परिषद का जो अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तबमें उन्होंने यह भी कहा कि न ता व की राय में इस प्रश्न पर सुरक्षा परिषद को एक स्पष्ट एवं निर्दिष्ट रक्षया धपनाना चाहिए और पाकिस्तान

को अविच्छिन्न भूमि शीघ्र ही प्राप्त कर लेनी चाहिए। जार्जिंग ने रिपोर्ट में यह भी लिखा कि पाकिस्तान में भारतीय दृष्टिकोण को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है।

जार्जिंग द्वारा दोनों पक्षों के मध्य उपस्थित गतिरोध को तोड़ने के जो प्रयास किये गये उन सम्बन्ध में और भी बात ध्यान देने योग्य है। अपनी बार्ता के दौरान श्री जार्जिंग ने दोनों ही पक्षों से यह आग्रह किया कि वे इस विवाद को किसी मध्यस्थ को सौंपने को तैयार हैं। शर्त यह नहीं। परन्तु पाकिस्तान द्वारा सैद्धान्तिक रूप में मध्यस्थता का सुझाव स्वीकार कर लिया गया लेकिन भारत ने इस सुझाव को इस आधार पर स्वीकार कर देने से इन्कार कर दिया कि मध्यस्थता के प्रस्ताव को मानने का अर्थ होगा जम्मू और कश्मीर की जनता के सम्मुख अधिकारों को और इस प्रदेश के प्रति भारत के उत्तरदायित्वों को न मानना।

जार्जिंग की रिपोर्ट सुरक्षा परिषद के सम्मुख प्रस्तुत होने पर पाकिस्तान ने परिषद् के उभापति को अपना एक पत्र में सूचित किया कि काश्मीर का भारत में और बहराई के साथ मिश्रण का रहा है। इस शिकायत का आधार 'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित एक समाचार था जिसमें यह कहा गया था कि काश्मीर को भारत के उत्तरी क्षेत्रीय परिषद (Northern Zonal Council) का पंजाब राजस्व विस्ती और हिमालय प्रदेश के साथ सदस्य बना लिया गया है। ३ अगस्त १९५७ को पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध और भी निम्नलिखित शिकायतें सुरक्षा परिषद में पेश की—

(क) काश्मीर के विभिन्न प्रदेशों में हिन्दुओं को बसा कर भारत राज्य में हिन्दुओं का बहुमत बढ़ा कर जनमत संग्रह को प्रभावित करने की कोशिश कर रहा है।

(ख) भारत काश्मीर में मुसलमानों पर धरणाचार कर रहा है और उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर रहा है तथा उन्हें काश्मीर से बायने के लिए भी बाध्य कर रहा है।

पाकिस्तान द्वारा शिकायतें की जाने पर समस्या पर विचार के लिए २४ अक्टूबर १९५७ को सुरक्षा परिषद की एक बैठक फिर बुलाई गयी जिसमें विस्मय, १९५७ तक प्रश्न पर विचार किया जाता रहा। इस बैठक में भाषण करते हुए फिरोजखान ने भारत पर पश्मीर धारोप लगाते हुए उपरोक्त बर्णित शिकायतों को दोहराया। भारतीय प्रतिनिधि श्री कृष्णा मेनन ने भी इन के भाषण का जवाब देते हुए कहा कि हमें तक प्रत्यक्ष कानूनों से भरा हुआ बताया और कहा कि हमें पाकिस्तान के कानून तथा संविधान के विषय में भी झूठ बोला गया है। १ अक्टूबर, १९५७ को पाकिस्तानी धारोपों का मुद्दा उठते हुए श्री कृष्णा मेनन ने जोषणा की कि कोई भी प्रस्ताव भारत को अपनी काश्मीर सम्बन्धी नीति को बदलवाने में सफल नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि हम परिषद के सामने यह शिकायत लेकर आये थे कि हम पर धारोप लगा है और उन धारोपों का अन्त होना चाहिए। हम यहाँ मध्यस्थता की बातें नहीं आये परन्तु इसे मध्यस्थ के अन्तर्गत

प्राक्रमण का अन्त कराने के लिए परिषद् की सहायता को प्राप्त करने के लिए धार्य है ।

२ दिसम्बर, १९५७ को सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव पास करके समस्या को सुलझाने के लिए डा. डॉक प्राइड को पुनः नियुक्त करने का निश्चय किया और दोनों देशों से यह प्रार्थना की कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं करें जिससे सन्धि-वार्ता के लिए प्रतिभूत बाधाबन्ध उत्पन्न हो। भारतीय प्रतिनिधि श्री मेनन ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए स्पष्ट शब्दों में यह बतला दिया कि हम अपनी प्राचीन घटित-सत्कार की परम्पराओं के कारण श्री प्राइड का स्वागत प्रसन्न करते हैं किन्तु ऐसे किसी भी प्रस्ताव को भारत द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसमें पाकिस्तान (पाकिस्तान) से अपनी सेनाओं को हटाने के लिए न कहा गया हो। सीधियत सच ने भी सुरक्षा परिषद् के उपरोक्त प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि यह प्रस्ताव पाकिस्तान के हितों का पोषक है ।

प्राइड मिशन का बुलावा प्रयास—सुरक्षा परिषद् के २ दिसम्बर, १९५७ के प्रस्ताव के अनुसन्धान में डा. डॉक प्राइड ने १२ जनवरी १९५८ से १५ फरवरी १९५८ तक दोनों देशों से बातचीत की और तब ३ अप्रैल १९५८ को १३ प्रश्नों का अपना प्रतिबन्धन परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसकी मुख्य सिफारिश इस प्रकार थी—

(i) काश्मीर-समस्या का और अधिक न जटिल करने के लिए भारत तथा पाकिस्तान आपस में बतलव्य न ह,

(ii) भारत और पाकिस्तान युद्ध विराम रेखा का उल्लंघन न करें,

(iii) काश्मीर से पाकिस्तानी सेनाएँ हटानी बाधे और इनके स्वाग पर संयुक्त राष्ट्र सच की सेनाएँ रबी जाए

(iv) दोनों सरकारों एवं संयुक्त राष्ट्र सच के प्रतिनिधि के बीच वनमन-संवाद कराने की संभावना के विषय में वार्ता हो

(v) दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की मन्दी से जल्दी इस विषय में भेंट हो

पश्चिमी देशों से सम्बन्धित होने के कारण प्राइड का बुकिन्गोण स्पष्टतया पाक-समर्थक था। अतः पाकिस्तान में सिद्धांत रूप में इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया परन्तु भारतीय प्रधान मन्त्री ने इन्हें निम्न कारणों के आधार पर अस्वीकार कर दिया—

(j) पाकिस्तान के सुरक्षा परिषद् द्वारा १३ अगस्त १९५८ को स्वीकृत प्रस्ताव पर अभी तक अमल नहीं किया है—पाकिस्तानी सेनाओं का काश्मीर से हटाने की व्यवस्था का पालन नहीं हुआ है,

(h) प्राइड रिपोर्ट में पाकिस्तान पाकिस्तान और पाकिस्तान भारत को एक ही स्तर पर रखा गया है ।

भारत इस बात के लिए भी सहमत नहीं हुआ कि काश्मीर में संयुक्त राष्ट्र संघाव सेनाएँ रबी जाएं। अभी तक वनमन संवाद का प्रश्न वा

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने १९५६ में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि बृत्ति स्थिति में प्रामुख परिवर्तन हुआ गया है अतएव भारत अब इस स्वीकार नहीं कर सकता।

इसके बाद १९६१ के घमन तक काश्मीर का प्रश्न सगमग शास्त रहा। परन्तु २० अप्रैल १९६२ का पाकिस्तान का प्रतिनिधि श्री अफ़्जलुल्लाह को इस प्रश्न का मुरदा परिपद में पुन उठाया। फ़ातव्वान्ना अफ़्जल १९६० में परिपद इस प्रश्न पर विचार करती रही। पाकिस्तान ने यह निराधार शिकायत की कि भारत शक्ति के बल पर काश्मीर प्रश्न को हल करने का प्रयत्न कर रहा है। पाकिस्तान ने जनमत-संग्रह की बात भी पुन वाहरायी। ४ मई १९६२ को सुरक्षा परिषद में भारत की स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए भारतीय प्रतिनिधि ने कहा कि जनमत संग्रह की मांग का मकसद बड़ा आघात समुक्त राष्ट्र संघीय कमीशन ठाग ५ जनवरी १९४९ को बहु स्वीकृत प्रस्ताव का जिसमें दोनों पक्षों से अपने मैथिक बापिस बुझाने के लिए कहा गया था। मैथिक बृत्ति पाकिस्तान ने उस पर धमक नहीं किया और साथ ही अब हम अपना को १२ बप बीत चुके हैं अत भारत कोई ऐसा कदम उठाने के लिए तैयार नहीं जिससे देश की स्थिरता पर्यम्पवस्या और दक्षिण एशिया की शक्ति के लिए अतरा उत्पन्न होता हो।

लेकिन बृत्ति सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान समयक एम्को-अमेरिकन गुट का अधिक प्रभाव था अत २९ जून १९६२ को घायरसैण्ड ने मुरदा परिषद में निम्नलिखित प्राचय का प्रस्ताव रला—

- (क) दोनों देश समुक्त राष्ट्र संघ के १३ अगस्त १९४८ के प्रस्ताव के तीसरे भाग के अनुसार जनमत संग्रह करने का ध्यान रखें तथा
- (घ) वे कोई ऐसा कार्य न करें जिससे पारस्परिक शक्ति का अतरा पैदा हो जाय।

भारत के प्रतिनिधि श्री इम्फा मेनन ने घायरसैण्ड के प्रस्ताव का और विरोध करते हुए एक सभ्यो में भारत की यह आवाज बोहराई कि काश्मीर भारत का अधिमम अग बम बुका है और अब वहाँ जनमत संग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। श्री मेनन ने कहा कि जनमत संग्रह से पहले की शर्त को पूरा करते हुए पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण करने वाली अपनी सेनाओं को नहीं हटाया है अतएव उसने काश्मीर में अपनी सेनाओं में बृद्धि करके और इन्हें वहाँ बनाये रख कर के समुक्त राष्ट्र सङ्घ के उपरोक्त प्रस्ताव का (१३ अगस्त १९४८ का) सम्मंजन किया है। अब भारत के विरोध के बावजूद घायरसैण्ड का प्रस्ताव पारित होयें लगा तो सोवियत रुस ने अपने निषेधाधिकार (Veto Powers) का प्रयोग करके उसे रद्द कर दिया।

अक्टूबर, १९६२ में भारत पर चीनी आक्रमण के प्रारम्भ से काश्मीर की समस्या में एक नयी शरणमी आयी। ऐसी स्थिति में अमेरिका एवं ब्रिटेन की सलाह से पाकिस्तान और भारत में शक्तिशाली के अतर पर बातचीत प्रारम्भ हुई। इस बातचीत के पश्चात् भारतीय प्रधानमन्त्री एवं पाक राष्ट्रपति के मध्य बातचीत

होनी थी। लेकिन इनी बीच फरवरी १९६३ में पाकिस्तान ने चीन से एक समझौता करके पाक अधिकृत काश्मीर का एक बड़ा भूभाग चीन को दे दिया। वास्तव में यह एक ऐसी ही बटना थी कि एक डाकू साहूकार ने मान का कुछ हिस्सा मूट कर उसे धपना बताया हुआ। सर्वमैं से कुछ हिस्सा एक दूसरे डाकू को दे दे। भारत ने पाकिस्तान के इस कदम का विरोध करते हुए कहा कि काश्मीर में पाकिस्तान स्वयं प्राकामक है धतः उसको किसी दूसरे देश के साथ काश्मीर पर किसी तरह का समझौता करने का कोई अधिकार नहीं है। भारत ने इसकी सूचना सुरक्षा परिषद को दे दी किन्तु उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई।

२८ दिसम्बर १९६३ को काश्मीर-समस्या क इतिहास में एक नया अध्याय हुआ। इस दिन श्रीनगर की हजरत बास मसजिद से पैगम्बर मोहम्मद साहब का एक पवित्र बास चोरी चसा गया। इस घटना को लेकर पाकिस्तानी नेताओं ने भारत के विरुद्ध साम्प्रदायिक विष उममना शुरू कर दिया और पूर्वी पाकिस्तान में बहुत बड़ पैमाने पर दंगे शुरू हो गये जिनमें हजारों हिन्दू मारे गये तथा हजारों मर्यादा पश्चिमी बसास जाय कर धाये। इनकी प्रतिश्रियास्वरूप भारत के कुछ मागो ने भी साम्प्रदायिक दंगे हुए। हजरत बास काष्ट क फरमस्वरूप उत्पन्न इस शोम और गड़बड़ी का नाम उठा कर जनवरी १९६४ में पाकिस्तान ने पुन सुरक्षा परिषद् से काश्मीर समस्या पर विचार किये जाने की धपील की। हजरत बास काष्ट को लेकर काश्मीर में जो सरगमीं धायी उसे पाकिस्तान के 'मूठ को सच और सच को मूठ बनाने वाले' नेताओं ने 'काश्मीरियों के विद्रोह' की संज्ञा दी और संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तस प की मांग की। यद्यपि भारत सरकार ने पाकिस्तान की इस मांग का विरोध किया लेकिन सुरक्षा परिषद् ने इस समस्या पर विचार करने का निर्णय कर लिया।

परिषद् में पाकिस्तान का पक्ष वहाँ के विदेश मंत्री श्री कुल्लिफार मयी मुटो तथा भारत का पक्ष भारत सरकार के विज्ञामन्त्री श्री एम सी धागसा ने प्रस्तुत किया। परिषद् में पाकिस्तान का पक्ष प्रस्तुत करते हुए विदेश मंत्री मुटो ने बड़ी पुरानी बसीसे बुहुरायी और यह मांग की कि भारत को काश्मीर की संबधानिक स्थिति बदलने से रोका जाना चाहिए। धमत्यस रूप से उन्होंने भारत के विरुद्ध पुन युद्ध छेड़ देने की भी धमकी दी। श्री मुटो ने पाकिस्तान के धान पहिबाने पुराने स्वर में ही यह भी कहा कि सुरक्षा परिषद् में पारित प्रस्तावों के धनुरूप बन्तु ब काश्मीर की बनता को धाल्यानिर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने धारोप जगाना कि भारत ने परिवद् के फैसलों तथा प्रस्तावों की परवाह न करते हुए बन्तु पूर्ब काश्मीर में धाधिकार निक धधिकार हस्तगत कर लिये हैं। पाकिस्तानी जागोपों का धोरधार उत्तर देते हुए भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री एम सी धापला ने कहा कि काश्मीर में धब जनमत संघ्रह का प्रकन उठाना बेईमानी है, पाकिस्तान परिवद् में एक हमसाधर के रूप में उपस्थित है और भारत को कुनी बमकियां दे रहा है। भारत द्वारा जनमत संघ्रह का प्रस्ताव जिस धर्त पर स्वीकार किया गया था वह धर्त पाकिस्तान द्वारा पुरी नहीं की गयी है। और फिर

समय बीत चुका है कि पिछले प्रस्तावों की उपयोगिता मयाप्त हो गयी है तथा इस विषय में किसी भी नवीन प्रस्ताव को भारत द्वारा स्वीकार नहीं किया जायगा क्योंकि इस मामले में अब वह प्रस्ताव महामय नहीं हुआ। श्री आगला ने पाकिस्तानी तर्कों को बामू के टीने की तरह बहाते हुए कहा कि पाकिस्तान बम्बू और काश्मीर में जनमत संग्रह की मांग इमतिहान नहीं करता कि उनका साकठन में विश्वास है बल्कि जनमत संग्रह पर जार देने में उनका साम्बिक मग्ना यह है कि वह काश्मीर में साम्प्रदायिक भावनायें उभारना चाहता है। श्री आगला ने ब्यय्य कना कि जब से पाकिस्तान बना है तब से अब तक बर्ना बनना को नीचे बुताओं में भाग लेने का प्रबसर तक सुनम नहीं किया गया है। भारतीय प्रतिनिधि न पण्डित के सचस्यो को बनावनी वेते हुए कहा कि भारत हि राट्ट सिद्धातों को स्वीकार नहीं करता और यदि पाकिस्तान का हि राट्ट सिद्धात काश्मीर पर भी माणु कर दिया जाय तो उनका अनिवाय पण्डितान ताति क स्थान पर जून की होनी हायी।

यद्यपि प्रारम्भ में यह आशा थी कि बहुत के दौरान अमेरिका एव ब्रिटन कुछ संयत एक प्रपनायेंगे लेकिन बात एकदम उस्ता सिद्ध हुई। ब्रिटिश प्रतिनिधि श्री पैट्रिक बीन ने अब तक का सबसे उग्रम भारत बिरोधी मापणु किया जिसकी भारतीय नतायों ने अनमास पर चार प्रतिक्रिया हुई। यद्यपि अमेरिकन प्रतिनिधि की माया अपेक्षाकृत कम कट्टु थी लेकिन उनमें भी जनमत संग्रह एक भात्म निर्णय सबकी पाकिस्तान की माा का समर्जन किया। ब्रिटिश एक से झुम्ब होकर मयुक्त राट्ट सचीय भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने उस समारोह का बहिष्कार कर दिया आ ब्रिटिश बिदलमग्नी के सम्मान में धामा बिध किया गया था।

परिषद में काश्मीर बिबाद पर जो भापण हुए उनमें केबम यह एक बात सामने थी कि बीन नार्ने बैकोस्लोवाकिया का सम सोबियत रुस बासि किया तथा अमेरिका ने काश्मीर बिबाद को तातिमय तरीके से हल करने के लिए भारत एवं पाक क मय्य मीची बार्ता का सुझाव दिया। इन बेला में ए अकिकाब ने यह सुझाव दिया कि यदि समब हो तथा बानो बेको को माय्य हो तो किसी देश या ब्यक्ति को पंज बना लिया जाय। इस बात पर भी बल बिबा मया कि काश्मीर-बिबाद सहित भारत-पाक समस्याओं को सुरधा परि हर में कोई प्रस्ताव पारित करके या पुराने प्रस्तावों का बिक करक हल नहीं केजा जा सकता। दोनों देशों की पारम्परिक समस्यायों का समाधान तमी हो सकता है जब कि दोनों देश परस्पर धमभ्रौता करने का बूढ़ संकल्प कर सें।

परिषद की इस बैठक में एक उस्तेखनीय बात यह हुई कि यद्यपि सोबियत कम और बैकोस्लोवाकिया ने भारत के पक्ष का समर्जन किया लेकिन उन्होंने संयत परिषद में बातावरण को मीचीपूरुर्ण बनाय रखने के लिए, अपने पुराने तर्कों एवं बयानों पर बिरोध बल नहीं दिया। सोबियत प्रतिनिधि श्री फेदोरेको अपनी बीमारी की प्रबस्था में भी भारत के पक्ष का समर्जन करने के लिए परिषद में उपस्थित हुए और जब परिषद धवन के बाहर कुछ

भारतामों न उनके स्वास्थ्य का हास पूछा तो उन्होंने हतवै हुए उत्तर दिया— यह हमारी मर्जी का प्रश्न है मैं कम भी चाऊंगा।

काश्मीर प्रश्न पर सुरक्षा परिषद में श्री छायाला के कठोर बह का एक शुभ परिणाम यह निकसा कि पश्चिमी देशों ने सुरक्षा परिषद में कोई भारत-विरोधी प्रस्ताव आने का विचार छोड़ दिया और वे यह प्रयत्न करने लगे कि परिषद के सभी सदस्य जब अपना विचार प्रकट कर चुकें तो अध्यक्ष महोदय बहुमत के विचार को परिषद का धर्मिमत्त बताने शुरू कर दें किन्तु इसमें भी पश्चिमी देशों की एक गूढ़ नीति थी जिसे मांफ कर भारत ने यह स्थिति स्वीकार नहीं की। भारत का तर्क था कि परिषद का धर्मिमत्त बताने का अधिकार नहीं है जिस पर परिषद क समी ११ सदस्य एक मत हों बहुमत को 'धर्मिमत्त' (धामराय) की सजा नहीं दी सकती। भारत के विरोध एवं कुछ अन्य कारणों से परिषद में 'धर्मिमत्त' का फामूला ब्यापक सम्बन्ध प्राप्त न कर सका। यह स्पष्ट था कि यदि पश्चिमी राष्ट्र परिषद का धर्मिमत्त प्राप्त करने में सक्षम हो जाते तो वह निश्चय ही भारत विरोधी होता। अन्त में सुरक्षा परिषद ने १७ फरवरी १९६४ को काश्मीर मामले पर विचार धर्मिमत्तकाम के लिए स्वगित कर दिया।

३ मार्च १९६४ को पाकिस्तान ने अपने समुक्त राष्ट्र संधीय प्रतिनिधि के माध्यम से पुनः सुरक्षा परिषद की बैठक बुलाने की मांग की और वहीँ यह पेश की कि परिषद ने काश्मीर प्रश्न पर विचार धर्मिमत्त के लिए स्वगित करके पाकिस्तान के समुराज को स्वीकार कर लिया था अतः धर्मिमत्त की बैठक बुलाने का उद्यम ही स्वीकार कर लिया था अतः धर्मिमत्त के प्रतिनिधि ने केवल धर्मिमत्त के प्रतिनिधि से कहा गया कि यदि कोई इन धर्मिमत्त के प्रतिनिधि से प्रस्ताव रखे तो पाकिस्तान क समुराज पर विचार किया जा सकता है पर ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं आया। भारतको के प्रतिनिधि ने केवल यह सुझाव दिया कि अध्यक्ष बैठक को यह स्पष्ट करते हुए स्वगित कर दें कि यह मामला विचार-सुची में बना रहेगा और साथ ही जयसी तारीख निर्दिष्ट करने के बारे में सबत्वों से बहो सके तो भारत न पाक से भी विचार विमर्श कर स। अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया कि प्रस्ताव पर कोई धर्मिमत्त न हो तो बैठक स्वगित सामग्री जाय। पू कि प्रस्ताव पर कोई धर्मिमत्त नहीं आया अतः बैठक स्वगित कर दी गयी।

मई, १९६४ के प्रारम्भ में शेख अब्दुल्ला को जेल से मुक्त कर दिया गया। भारत सरकार ने शेख को मुक्त पाकिस्तान के इस झूठे प्रचार का धर्मिमत्त करने के लिए किया था कि काश्मीर के एक मात्र नेता शेख अब्दुल्ला को कारावास में डाल कर भारत सरकार काश्मीरी जनता को कुचले हुए है। जेल से छूटते ही शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर के लिये आत्मनिर्णय के अधिकार और जनमत-संग्रह की मांग करके आतावरन को बिराड़ना शुरू कर दिया। शेख जिस पर पाकिस्तानी नेताओं का मुलम्मा चढ़ चुका था काश्मीर विमर्श के प्रश्न पर अपनी पुणनी स्थिति से बिस्कुत मुक्त गया। इसी आतावरण में ३ मई, १९६४ को पाकिस्तान के प्रतिनिधि भी मुट्टे ने जनमत संग्रह की मांग पुर्य कर सुरक्षा परिषद की बैठक बुलवाई। परिषद में

पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व मुटो ने घोर भारत का भी ध्याता नै किया। भारत के प्रतिनिधि ने काश्मीर में अममल स प्रह की पाकिस्तानी मांग का इट कर विरोध किया। अन्त में अमम अमसरों की तरह इस बार भी सुरक्षा परिषद किसी निश्चय कर नहीं पहुच सकी। परिषद ने दोनों पक्षों द्वारा सीधी बातों से इस समस्या का समाधान करने सम्बन्धी प्रस्ताव पाम करके ही सम्मोप कर लिया।

पाकिस्तान का काश्मीर पर पुन आक्रमण—मुल्ता परिषद में निरन्तर विफल होने पर पाकिस्तान ने काश्मीर को अपने अधिकार क्षेत्र में करने की नियत से मुद्र का सहारा लेने का विचार दिया। ३ अगस्त १९९३ से १ सितम्बर १९९३ तक की लगभग ७७ दिनों की अवधि में ३००० से ३००० पाकिस्तानी हमलावर काश्मीर मुद्र-विराम रेखा को पार करके भारतीय क्षेत्र में घुस गये।

१४ अगस्त १९९३ को 'बालिगटन पोस्ट' ने खबर छापी—'पाकिस्तानी अफसरों के अधीन कम से कम १५०० आधामार ३ अगस्त से मुद्र विराम-रेखा को पार कर काश्मीर में घुस गये हैं।'

नवन 'टाइम्स' के राबिन्सपिडी स्थित सम्पादका द्वारा भेज गये ३१ अगस्त १९९३ की प्रकाशित समाचार में कहा गया है कि 'हमने कोई खब नहीं कि काश्मीर में पाकिस्तान की घोर से घाप लोगों ने अहिम्ना कर बाई की ह और इन अरवामियों की योजना पाकिस्तान सरकार क निहेंशन से की गई है। पत्र में आगे कहा गया है कि पाकिस्तान ने काश्मीर में अपना आलपी काम समा दिया है, और ऐसा लगता है कि वह अन्तिम इव तक के लिए बटिबट है यहाँ तक कि महायुद्ध के लिए भी बाहू इसका नहीं आ लोगो बैस। क करोड़ों लोगों के लिये अितना भी नुकसान बेह नयो न हो।

वास्तव में पाक योजना यह थी कि अर्धनिक क्षेत्र में अममल पाकिस्ता 'नमों की टोमिया अम्नू-काश्मीर में घुस कर रेडियो स्टेशन इबाई घुद्र सवि आलय घावि मुख्य-मुख्य स्थानों पर अधिकार समा लेगी मुद्र काय माय-काट मुद्र कर देये और इस तरह उस प्रदेश में अममल समा आबगी। तब पाकिस्तान की नियमित सेना काश्मीर पर अधिकार समा लेगी और दुनिया को काश्मीर का स्वेच्छा से पाकिस्तान में मिलन का विद्रोह कह कर घुप कर दिया जायेगा। पाकिस्तान को यह भी विश्वास था कि काश्मीर के मुसलमान अरवामियों को सहयोग देने और उन्हें हर प्रकार से सहायता पहुचायेगे। बरन्तु पाकिस्तान की आका निराशा में बदल गयी। पाकिस्तानी आधामारों में से १००० से भी ज्यादा भारतीय सैनिकों द्वारा मार दिये गये और बहुत से पकड़ लिये गये तथा दुनिया को यकीन हो गया कि ये हमलावर पाकिस्तान द्वारा ही द्रुनिय के का भेजे गये न। हमलावर घाय पारों को काश्मीरी जनता की घोर से भी किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिला—पहू बात अनेक विदेशी सम्भारवाणियों ने गुन गीके पर आ कर देन ली। बी.बी. सी के नई दिल्ली स्थित सम्पादका भी पाईवर अंत में २१ अगस्त को अंतपर से खबर भेजत हुए रहा—

धर तुरिस्ता यह आशा से कर धाये थे कि स्थानीय लोग उनका स्वयत करमे या उनका साथ बने तो उगकी धाशा पूरी नही हुई । १५ अगस्त १९६५ के 'न्यूयार्क टाइम्स' मे चीनगर से अपने सम्वाद दाता श्री जैक्स नेबड की भेजी हुई यह खबर छापी—

‘पाकिस्तान से घाने वाली खबरों में जो यह कहा जाता है कि भारत अधिभूत जम्मू-काश्मीर में पड़बड़ हुई है और भारतीय साधन के विरुद्ध एक धाम विद्रोह हुआ है यह निराधार है ।

बास्तीमोरसन’ क सम्वाददाता श्री जेम्स बीट ने १३ अगस्त को चीनगर से भेजी गयी अपनी खबर में कहा— भारतीय काश्मीर सरकार के विरोधी राजनीतिक धून भी इस बात पर सहमत हैं कि स्थानीय लोगों में कोई विद्रोह नही किया । सम्वाददाता ने धामे खस कर कहा है—

‘पाकिस्तान सरकार ने धो यत दावा किया है कि काश्मीर में अति कारी विद्रोह हो रहा है उसके कोई चिह्न नही है ।

‘क्रिश्चियन साइन्स मॉनिटर’ के सम्वाददाता ने अपने पत्र की भेजी गई खबर मे इस तथ्य की धीर अधिभ धम्मे डप से देत किया है । उसने कहा है काश्मीर का कोई भी भारतीय पाकिस्तान में शामिल नही होना चाहता । स्थानीय लोगों द्वारा काश्मीर सरकार और भारतीय अधिकारियों को सूचना दिये जाने के कारण जिस डग से धीर अति तावाब मे भुतपैठियों का धम सफ़या किया जा रहा है उससे इस बात की धीर भी पुष्टि हो जाती है ।

इस सम्बन्ध में बोसते हुए भारत ने तत्स्थानीय प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री नासपी ने कहा—

पाकिस्तान का क्यास या कि उसके इन्धारे पर वहाँ बपावत होगी । उसका धगुमान या कि धारा काश्मीर पाकिस्तान के साथ जाने क सिधे तैयार है । इससिध पाकिस्तान के माननों मे काश्मीर मे अति की क्यास प्रखरवसित करन के सिधे अपने हथियारबड अतिधों को भेबा तो हमें भी अपना सुरक्षा सना क करिय उनपना मुकाबला करना पड़ा । पाकिस्तानी हथियारबड अतिधों का काम तोड़फाड़ की क्याबाही करना धाग सगाना धीर धाये हवाई अड्डों को धति पनु खाना बा । लेकिन पाकिस्तान का क्यास क्यास रहे गया । क्योंकि एक तरफ तो हमारी सुरक्ष सिना उन हथियारबड अतिधियों का मुकाबला कर रही थी तो दूसरी धोर काश्मीर के लोग न उन हथियारबन्ध लोगों को पगाह देते मे भीर न जाता । इध तरफ काश्मीर क बहादुर लोगों मे साबित कर विज्ञान कि काश्मीर भारत का धम है और पाकिस्तान से उसका कोई सम्बाध नही है ।”

गणतन्त्र पुसपैठिये प्राकनण न नाकामयाब होकर धीर यह धान कर कि दुनिया को वर्तान हा गया है कि छापामार हगसाबर काश्मीर में पाकिस्तान द्वारा ही भेजे धम के पाकिस्तानी खौब ले काश्मीर धोर भारत पर पुसतयानस्ता हमला कर दिया । १ सितम्बर १९६५ को हमने की सुधघाठ हुई जय पाकिस्तान की एक वीरल त्रिनेड धीर ७० टैक काश्मीर पर बड़ धाये ।

समझौते का घाबर करने तथा युद्ध विराम रैला के अपने मामों में समस्त चीनियों को बाधित बुला मन का घाबरू करनी है। महागिवाई प्रतिनिधि श्री राधाकृष्ण रमानी ने कहा कि प्रस्ताव इसने प्रतिक बुझ नहीं कर सकता इसमें कबल प्रविसम्ब युद्ध बंद कर देने की मांग है।

यद्यपि सुरक्षा परिषद द्वारा उपरोक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया लेकिन इसका द्वारा परिषद् न तथ्यों की उपस्था करत हुए म्यायामय का समझे घाटन का एक धीर उदाहरण सामन ला दिया। परिषद् का यह प्रस्ताव प्रत्येक पक्षीर बुटियों स मरा पड़ा था—

(i) प्रस्ताव से काश्मीर पर पाकिस्तान के नबीन धाक्रमण की निम्दा न करके पुन उस ऐतिहासिक भूज को दोहराया गया जो १९४७ में पाकिस्तानी धाक्रमण के समय की गई थी।

(ii) समूक्त राष्ट्र संघ क महामन्त्रिब स्वयं पाकिस्तान को वर्तमान हमले के लिए बोधी मान चुके से ऐसी सुरत में सुरक्षा परिषद द्वारा पाकिस्तान को बोधी न ठहराना म्याय को ताक पर उठा कर रख देने के समान था।

(iii) सुरक्षा परिषद की यह बैठक महामन्त्रिब की रिपोर्ट पर विचार करके के लिए धार्यवित की गई थी किन्तु बैठक में इस रिपोर्ट पर कोई विचार ही न किया जाना एक विस्मयजनक बात थी। वास्तव में यह पक्ष पाठ का एक लक्ष प्रदर्शन था। इस पक्षपात की तब धीर भी पराकाष्ठा हो गई जब परिषद में भूम प्रश्न पर विचार न करके धाक्रमणक पाकिस्तान धीर धाक्रमण भारत को समान स्तर पर रखने का प्रयत्न किया गया।

(iv) इस प्रस्ताव में भारत एवं पाकिस्तान दोनों से तत्काल युद्ध विराम करने की अपील की गई। लेकिन परिषद यह भूल गई कि वास्तविकता की ओर उपेक्षा कर केवल धीनचारिक कार्यवाही से कोई साम नहीं हो सकता। परिषद के सवस्यो द्वारा युद्ध विराम का प्रस्ताव स्वीकार करके फर्ज-धरामनी की कामवाही तो कर ही नहीं किन्तु इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया कि धाक्रमणकारी पाकिस्तान को अपनी चीजें प्रविसम्ब ध्यान नहीं दिया गया। परिषद यह भूल गई कि जब तक काश्मीर पीछे हटाने का आदेश दिया जाय। परिषद यह भूल गई कि जब तक काश्मीर पर नया हमला बोलने वाले देश को रोकना नहीं जायगा तब तक काश्मीर युद्ध बन्द कैसे हो सकेगा। सुरक्षा परिषद के धर्यस धीर सवस्यो का इस तथ्य की धीर ध्यान न देना बस्तुतः धर्यस्य खेद बाधक था।

उपरोक्त परिस्थितियों में प्रस्ताव का केवल कायबी कार्यवाही होकर रह जाना प्रस्थानाधिक न था। बस्तुतः शान्ति की रक्षक धीर म्याय की ठेकेदार सुरक्षा परिषद द्वारा आजमनकारी की प्रच्छन्न रूप से इस तरह पीठ ठोकना संघ के महान् बुद्धियों क प्रति विश्व की शक्तिप्रिय धीर निष्पक्ष बनता में घनास्था पैदा करना था। यह एक धनधंकारी बात थी कि पहले तो महासन्धि की प्रथम रिपोर्ट और उसके काश्मीर-सम्बन्धी बलम्य की प्रकाशित नहीं होने दिया गया धीर जब तत्सम्बन्धी गोपनीय रिपोर्ट परिषद् में उपस्थित की गई तब भी उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यह

रिपोर्ट में महासचिव श्री ऊ-वाट ने पाकिस्तान को ही वर्तमान समय के लिए उत्तरदायी ठहराया था तो फिर सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष एवं सदस्यों का पाकिस्तान को दोषी कहने में संकोच करने का कोई कारण नहीं था। वास्तविकता यही थी कि परिषद् एम्बो-अमेरिकन गुट के हाथों का बिलौना बनी हुई थी जिसका उद्देश्य स्वयं को निरुत्सहित करके छाप-कपट और कूटनीतिक शिकार बृत्ति को प्रोत्साहन देना था।

६ सदस्यों के उपरोक्त प्रस्ताव की व्यावहारिक प्रसक्तता के बाद ६ सितम्बर को मुद्र की स्थिति पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद् की दूसरी बैठक हुई। ६ सितम्बर का ही माहौर क्षेत्र में ३० मील लम्बे मोर्चे से सीधे पाकिस्तान की सीमा में भारतीय फौजें फूँच कर जुड़ी थीं और इससे कुछ पश्चिमी देश विस्मयकर ब्रिटेन बौद्धमा उठा। परिषद् की बैठक में महासचिव ने स्पष्ट शर्तों में यह सूचित कर दिया कि भारत और पाकिस्तान दोनों में युद्ध बंद करने से इन्कार कर दिया है और स्थिति ठीकी से बिगड़ती जा रही है। इस पर उसी रात सुरक्षा परिषद् ने सर्व सम्मति से एक संकटकालीन प्रस्ताव पारित किया जिसमें भारत एवं पाकिस्तान से तत्काल युद्ध बंद करने की घोषणा की गई। प्रस्ताव में यह अनुशेष किया गया कि दोनों देश अपने सशस्त्र सैनिकों को उन स्थानों पर लौटा दें जहाँ वे गत १ अगस्त को थे। साथ ही महासचिव से भी यह प्रार्थना की गई कि वे इस प्रस्ताव को एवं ४ सितम्बर के प्रस्ताव को मनमाने के लिए प्रत्येक संभव प्रयत्न करें।

सुरक्षा परिषद् द्वारा यह प्रस्ताव पारित किये जाने के तुरन्त बाद महासचिव ने घोषणा की कि वे बहुत शीघ्र युद्ध बंद कराने के लिए स्वयं भारत और पाकिस्तान जायेंगे।

सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव और अपनी घोषणा के अनुसार अपने 'शान्ति समिन्धान' का धीगलेश करते हुए महासचिव ऊ-वाट सबप्रथम ६ सितम्बर को कराची पहुँचे। तीन दिनों तक वे पाकिस्तानी नेताओं से बातचीत करते रहे। पाकिस्तान ने युद्ध बिराम के प्रस्ताव को मंजूर करने के लिये निम्नलिखित ३ शर्तें रखीं—

१ युद्ध बिराम के बाद पूरे काश्मीर से भारत तथा पाकिस्तान अपनी सेनाओं को पूरी तरह हटा दें।

२ जनमत संग्रह होने तक काश्मीर में शांति-स्थवस्था बनाये रखने के लिए अफ्गे-दखिबाई देहों की सेना रकी जाये।

३ ठोस मशीने के शीठर काश्मीर में सुरक्षा परिषद् के ३ जनवरी, १९४९ के प्रस्ताव के अनुसार जनमत संग्रह के लिए मतदान किया जाय।

उपरोक्त शर्तों से स्पष्ट था कि पैटन टैकों और सैबरबेटों के बल पर भारत को बूटने टिकाने का स्वप्न देखने वाला पाकिस्तान अभी युद्ध बंद करने के लिए तैयार नहीं था। लड़की ये चीनों शर्तें ऐसी थीं जो भारत को किसी हालत में स्वीकार नहीं हो सकती थीं।

पाकिस्तान से बातों करने के बाद १२ सितम्बर को ऊ-वाट भारत की राजधानी देहली पहुँचे जहाँ उन्होंने भारतीय प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्री सास्त्री

२ कोई भी देश स्थिति को लराव करने के लिए किसी तरह की उल्टा बनात्मक कामवाही न करे एव

३ जब सुरक्षा परिषद द्वारा ६ नवम्बर को स्वीकृत प्रस्ताव नम्बर २१० के पैराग्राफ पर प्रमत्त हो जाय तो चीन्नातिनीय इस बात पर बिचा किया जाय कि इस समय में निहित राजनीतिक समस्या के समाधान के दिशा में सहायता करने के लिए क्या कदम उठाये जायें।

२१ नवम्बर को भारत मुठ बिराम के लिए सहमत हो गया। धीरे-धीरे उसके दूसरे दिन पाकिस्तान ने भी अपनी सहमति की सूचना दे दी किन्तु मुठ २३ सितम्बर १९६५ को प्रातः ३॥ बजे बन्द हुआ।

सुरक्षा परिषद् का २० सितम्बर का प्रस्ताव भारत के साथ एक प्रयाय या क्योंकि इसके द्वारा दोनों ही देशों को मुठ बन्द कराने के लिए धारित किया गया था क्योंकि इस तरह का धादेक केवल पाकिस्तान को दिया जाना चाहिए था क्योंकि उसने ही सुरक्षा परिषद के मुठ बन्दी के पहले वाले प्रस्ताव को पस्वीकार किया था। जब भारत ही बिना शर्त मुठ बन्द करने के लिए सहमत हो चुका था तो उसे २० सितम्बर के प्रस्ताव में मुठ बन्दी का धादेक देना सबका अनुचित था। धाकमधकानी और धाकगत दोनों के साथ परिषद का यह एक सा व्यवहार निश्चय ही न्यायसंगत न था। पुनश्चय मुठ बन्द करने का धादेक तो उसे ही दिया जाना चाहिए किन्तु मुठ की बुझपाव की हो धीरे-धीरे पाकिस्तान ही था जिसने केवल मुठ की बुझपाव की बल्कि परिषद के मुठ बन्दी धादेक को भी ठुकराया। भारतीय प्रति तिधि थी धावना ने सुरक्षा परिषद में भारत का उपरोक्त मत स्पष्ट बन्दी में रख भी दिया था परन्तु परिषद द्वारा उस पर ध्यान नहीं दिया गया। इसके प्रतिरिक्त, इस बार भी सुरक्षा परिषद ने पहले ही की प्रति मूल प्रस्त की उपेक्षा कर पाकिस्तान के धाकमधकानी स्वरूप पर पर्याप्त धावने की क्रोधि की। जब मनुक राष्ट्र सब के काश्मीर स्थित प्रयाग पयवेत्तक जग रत निम्नो में स्पष्ट बन्दी में पाकिस्तान को हमलावर बताया धीरे-धीरे प्रयाय था। से परिषद को भी गई अपनी रिपोर्ट में इस बात की मुठि की तो फिर पाकिस्तान को हमलावर भीषित न कराना भारत के साथ सरासर प्रयाय था। धाव ही प्रस्ताव में केवल मुठ बन्दी का धादेक ही न होकर राजनीतिक समास्या के समाधानों की भी बर्चा की गयी थी जिसका प्रस्ताव में उल्लेख होगा एक-दम धावसागिक व धावसागिक था—कारण काश्मीर पर भारत की प्रमुगता के सम्बन्ध में कोई बिवाद नहीं उठाया जा सकता। सुरक्षा परिषद में मुठ बिराम के बाद संघर्ष की मूल समस्या के समाधान की बात कहना सबका निरर्थक था। भारत ने मुठि की मरे पड़ इस प्रस्ताव को केवल इसलिए किया कि जिससे उसको आनिमिगता पर कोई बगुसी न उठा सके, हालांकि धाव की पटनावा ने यह सिध कर दिया कि पाकिस्तान के साथ ईड का बवाल परवर ही देने की नीति ही काम है मकेगी। पाकिस्तान के मुठ-बिराम के बाद हुने वाले 'साकम्ब-ममन्दी' का जिसका उल्लेख भारत की अवेधनीति के सम्बन्ध में किया जायगा निरन्तर धंतावर किया है।

समझौते के किसी भी शर्तों पर अलपन को भारत बर्दाश्त नहीं करेगा। अन्त में इतना सिद्धता ही पर्याप्त है कि २६ सितम्बर का मुझ-विराम प्रकल्प ही था लेकिन यह मुझ विराम केवल शोषणा मात्र ही रहा है क्योंकि पाकिस्तान को भी कुछ विराम देना का उद्देश्य करने तथा काश्मीर को शक्तिपूर्वक विभाजन की नीति से विसंग नहीं हुआ है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि पाकिस्तान द्वारा यदि पुरानी गलती फिर दोहराई गयी तो इस बार भारत के सशक्त हाथों का उसे पूनपिछा अधिक कठु स्वाद चखना पड़ेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ और काश्मीर समस्या के बारे में यही कहा जा सकता है कि परिषदी देशों के प्रयास से अपना पक्षपातपूर्ण नीति और पाकिस्तानी दुराग्रह के कारण काश्मीर समस्या का समाधान बनन में बहुत असफल रहा है लेकिन उसे अगस्त-सितम्बर १९६१ में होने वाले शोषण रत्तरहित मुझ को समाप्त करन में प्रकल्प सफलता मिली है।

(१६) स्वेज नहर विवाद (The Suez Canal Question)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राजनीति में अमापारण महत्व रखन वाली स्वेज नहर की समस्या को सभी नीति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक बिहगम इष्टि डालें।

इस नहर का निर्माण एक फ्रेंच कम्पनी 'The Compagnie Universelle du Canal Maritime de Suez' ने २१ अगस्त, १८५९ में आरम्भ किया और १७ नवम्बर १८६९ को इसका उद्घाटन हुआ। इस प्रकार १० वर्ष के कठिन परिश्रम से प्रथम सागर को एक सागर से जोड़ने वाला एक ऐसा बन्द मार्ग तैयार हुआ जिससे यूरोप से पूरु जाने वाला मार्ग ४००० मील छोटा हो गया। यह अस्सेतनीय है कि इस नहर के निर्माण का प्रयत्न द्वारा विरोध किया गया था किन्तु फिर भी फ्रांस ने इसे पूरा किया और नहर को जो हिस्से बेच गया उसमें से अधिक फन्त में ही करीब १० वर्ष के अस्कासीन सामरु करीब के साथ हुए एक समझौते के अनुसार नहर का पूरु फ्रेंच कम्पनी को १७ अगस्त १९६९ तक के लिए अर्थात् १० वर्ष के लिए ठेके (Lease) पर मिला। ब्रिटेन के विगत साम्राज्य के लिए भी यह नहर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामरिक मार्ग थी अतः सन् १८७१ में इसके समग्र भागें हिस्से उतने लगीं लिये। इस नहर से जो फाय होगी उसका २१ प्रतिशत हिस्सा को तथा ७१ प्रतिशत हिस्सेदारों को लाभ के रूप में दिये जाने की व्यवस्था हुई।

स्वेज नहर के बड़े हुए अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए सन् १८७१ में सर ट्रेवर्स टर्न (Sir Travers Torm) ने इसके 'नैट्रलीकरण' (Neutralisation) का प्रस्ताव रखा। इस पर सन् १८८९ में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में अर्थात् इस प्रकार का प्रस्ताव पारित प्रकल्प ही गया किन्तु यह क्रियान्वित नहीं हो पाया। फरवरी २९ अक्टूबर १८८८ को फ्रेंच कम्पनी ने एक दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें सेंट ब्रिटेन

रुस जमनी फ्रान्स आस्ट्रिया हंगरी इटली स्पेन और टर्की आदि ने भाग लिया। इन विभिन्न राष्ट्रों में एक समझौता (Convention) हुआ जिसके अनुसार मुख्यतः निम्नलिखित बातें तय हुईं—

(i) महार का प्रयोग युद्ध एवं शांति दोनों के समय सब राष्ट्रों द्वारा स्वतंत्र रूप से किया जा सकेगा। महार व्यापारिक और जमीन जमीन जहाजों के लिए खुली रहेगी और हममें कोई स्थायी किलेबन्दी नहीं की जायगी।

(ii) युद्ध काल में टर्की के आक्रमणकारी होने पर भी महार के धन्तर और बन्दरगाह के ३ मील बाहर तक कोई देश शांति भंग करने अपना मुद्दा करने का अधिकारी नहीं होगा।

(iii) युद्ध से सम्बन्धित कोई भी जहाज महार में घरेलू नहीं ले सकेगा। पोर्ट सैंड और स्वेज बन्दरगाहों पर प्रत्येक देश को जहाज रक सकेगा लेकिन युद्ध काल में यह अधिकार बिस्व के किसी भी राष्ट्र को प्राप्त नहीं होगा। महार पर कोई भी देश किलेबन्दी नहीं करेगा।

(iv) युद्ध के बाद जिन राष्ट्रों में सन्धि होगी उन्हें बिस्व के दूसरे राष्ट्रों को इस बारे में सूचना देनी होगी।

प्रथम महायुद्ध में उपरोक्त बातों का पूरी तरह पालन हुआ। महायुद्ध के फलस्वरूप एक विशेष परिवर्तन यह हुआ कि जो मित्र देश तक टर्की के असीन या उस पर १८ दिसम्बर १९१४ से ब्रिटेन का अधिकार हो गया और यद्यपि फरवरी १९२२ में मित्र को स्वतंत्रता दे दी गयी किन्तु फिर भी स्वेज महार की रक्षा का दायित्व ब्रिटिश सेनाओं को ही सौंपा गया। २६ अगस्त १९३६ को ग्रेट ब्रिटेन और मित्र में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन का नहरी क्षेत्र में सेना रखने का अधिकार मित्र ने स्वयं स्वीकार किया यद्यपि इससे महार की मित्र का एक अग्रिम भय होने की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। वृत्ति स्वेज महार ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों तक पहुंचने के लिए यातायात का एक प्रमुख साधन थी अतः यह निश्चित हुआ कि जब तक मित्री सेना उसकी रक्षा करने योग्य न हो जाय तब तक ब्रिटेन अपनी सेनाओं को महार के पास-पास रहेगा। द्वितीय महायुद्ध में इसी सन्धि के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन ने महार की रक्षा की और शत्रु देशों के लिए महार से घाने-बांने की रोक लगा दी। सन् १९४० में ब्रिटेन ने स्वेज महार कम्पनी पर अपना प्राधिपत्य जमा लिया।

युद्ध के बाद १९३६ की उपरोक्त सन्धि में संशोधन की बातचीत जमायी गयी परन्तु उसमें सफलता नहीं मिली। सन् १९४८ के फिनलैंड के युद्ध में मित्र द्वारा यह दावा किया गया कि स्वेज महार से घाने-बांने वाले जहाजों की मित्र आनकारी ले सकता है। २६ नवम्बर १९३० को मित्र के हाथ फारुक ने निम्नलिखित मार्ग प्रस्तुत की—

- (क) १९३६ की एंग्लो-मित्र सन्धि रद्द की जाय
- (ख) स्वेज महार के क्षेत्र से ब्रिटिश सैन्य अधिकार हट जाय तथा
- (ग) मित्र और सुडान की एकता स्थापित हो—यह एकता मित्र के राजबन्ध के नीचे स्थापित हो।

परन्तु ब्रिटेन ने साह फारुक की मांगों को बख्शीकार कर दिया। ब्रिटिश विदेश मंत्री एलिस्ट बेकिन ने कहा कि ब्रिटेन मध्य-पूर्व को सुरक्षित छोड़ कर कहीं नहीं जाना चाहता और सधि में समापन केवल दोनों पक्षों की सहमति के द्वारा ही हो सकता है।

बेकिन के उपरोक्त उत्तर की जपेला करने हुए मिथी प्रधान मंत्री महसुपाशा ने ८ अक्टूबर १९३१ को ब्रिटिश सेना को महरों अत्र से हट जान को कहा। उसने १९३६ को सधि धीर १८९९ के मिथ एव ब्रिटेन द्वारा सूझान व समुक्त आसन (Condominium) के समझौते की निम्ना करते हुए मिथी मसर में मिथ के राबा फारुक को सूझान का शासक बनान की वापस्या की। १६ अक्टूबर १९३१ को संसद द्वारा इस वापस्या को स्वीकार कर लिया गया। इनी वापस्या में यह भी कहा गया कि स्वैत्र नहर में ब्रिटेन को धर्मो तक ब्रितीनी सुविधायें प्राप्त भी उन्हें सब ममापन किया जाता है। इन पर ब्रिटेन न उपरोक्त वापस्या को धर्मैदानिक चोपिन करत हुए कहा कि जब तक १९२६ की एग्ना मिथी सधि का स्थान प्रम्य समझौता नहीं मता है तब तक ब्रिटिश सेना के महर से हटने का प्रमन नहीं उठना है। सुरक्षा परिषद ने भी इसकी पुष्टि करत हुए वापित किया कि मिथ को एनी भाजा देने का अधिकार नहीं है अत उसे अपना धादैय समाप्त कर देना चाहिए। इस अवसर पर ब्रिटेन न मध्य-पूर्व की प्रतिरक्षा के लिए चार महाशक्तिधों (ब्रिटेन अमेरिका फ्रान्स और टर्की) के मम्ममन का प्रस्ताव रखते हुए इममे मिथ का भी फ्रान्स क साम्रीवार को तरह धामिम हान को धामपित किया। परन्तु मिथ न इन प्रस्ताव को यह कह कर ठुकरा दिया कि वह उसकी राष्ट्रीय धानीधायों के धनुरूप नहीं है।

अन्त में काफी बाद-बिवाद धीर मन्त्री सधि-वर्षा के उपरान्त २७ जुलाई १९३४ को काब्रिज में ब्रिटेन तथा मिथ के बीच एक सधि सम्पन हो गयो जिसकी मुख्य-मुख्य धर्ने यह थी—

- (i) २० जून १९३६ तक ब्रिटेन क ८००० सैनिका की फौज स्वैत्र नहर अत्र से हटा ली जायगी।
- (ii) किन्तु मिथ पर टर्की धमवा धम्य किसी रजक का धाक्रमण होने पर ब्रिटिश सेना नहरी अत्र म पुन धा सक्ती है।
- (iii) स्वैत्र नहर मिथ का धामिम धग एव धमतराष्ट्रीय महत्व का धार्य है।
- (iv) १८८८ के समझौते के धनुसार सब राष्ट्रों द्वारा नहर के स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग की स्थिति कायम रखने के लिए दोना पक्ष हक प्रतिज्ञ है।

स्वैत्र नहर का राष्ट्रीयकरण एव सक्क का उदभव—इस समय मिथ में कर्ना नासिर का शासन था जो बारम्भ से ही पश्चिमी साम्राज्यवाद एव प्रमुता के कट्टर विरोधी व धीर धपने देश की गरीबी हूर करने के लिए नीत मरी पर धाम-भात में धाय बनाता चाहत थे। चूकि धाय व लिए धपेक्षित बशास धनराशि उन्हें पश्चिम से प्राप्त हा सक्ती थी अत उन्होंने पश्चिम

राष्ट्रों से भारी धार्मिक सहायता की मांग की। परन्तु उनके सोवियत रूस पक्षपाती रुझान के कारण पश्चिमी देशों ने मिश्र को भारी मात्रा में धार्मिक सहायता देने में इन्कार कर दिया हुआ कि अमेरिका और ब्रिटेन ने प्रमत्त १९५५ व १९५६ करोड़ तथा वित्त बक न २०० करोड़ डॉलर देने का प्राश्वासन प्रबन्ध दिया। इस पर नासिर ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) करके इसमें मिश्र के विकास के लिए आवश्यक धनराशि प्राप्त करने का निश्चय किया। नासिर का कहना था कि स्वेज नहर का लगभग १ अरब डॉलर का मुनाफा प्रति वर्ष कम्पनी के ब्रिटेन फ्रांस और यूरोप के हिस्सदारों में बँटा जाता था जब कि इस विदास धन प्रवाह को रोक कर मिश्र में जाति कारी कस्याण कार्य किये जा सकते थे।

अपने उपरोक्त निश्चय के अनुसार २६ जुलाई १९५६ को सिक्खरिया नगर में प्राण करते हुए मिश्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर ने स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी और कहा कि नहर के संचालन से जो धार्मिक भ्राम्य होनी उसका उपयोग प्राप्त नही पाटी योजना वा किया निश्चित करने के लिए किया जायेगा। श्री नासिर ने यह भी घोषणा की कि 'स्वेज कम्पनी' (श्री पुनिवर्मन स्वेज मेरीटाइम कौन्सिल कम्पनी) की समस्त बस-मचल पूरी और सम्पत्ति पर मिश्र सरकार का अधिकार हो जाने के बाद कम्पनी को उचित हर्षाना दिया जायगा तथा सरकार के बाध्यित्य प्रमाण के प्रवीन नहर का संचालन और देख-रेख करने के लिए एक प्रत्यय स गठन की स्थापना की जायगी। इस प्रबन्ध पर कर्नल नासिर ने पश्चिमी साम्राज्यवाद पर भी कटु धारणा किये।

राष्ट्रीयकरण को प्रतिधिया—कर्नल नासिर की उपरोक्त घोषणा के फलस्वरूप एक गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हो गया। ब्रिटेन और फ्रांस के लिए था यह अत्यन्त बन्धपात था। इन दोनों राष्ट्रों और अमेरिका के विदेशमन्त्रियों के मध्य कई दिनों तक गम्भीर मतभेद होती रही। २ अगस्त को उन्होंने एक संयुक्त बख्श प्रकाशित किया जिसमें स्पष्ट तौर पर यह कहा गया कि मिश्र द्वारा स्वेज कम्पनी का राष्ट्रीयकरण किया जाना पूर्णत एक-तरफा और मनमानी कार्यवाहियों तथा मिश्र के इस कार्य से स्वेज नहर के स्वतन्त्र और निर्बाध प्रयोग के बारे में १८५८ के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का शाक उल्लंघन हुआ है। जब मिश्र ने इन प्रतिबाधों की परवाह में की तो लन्दन में ब्रिटेन ने २४ राष्ट्रों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रामाणित किया। ये राष्ट्र थे—मिश्र फ्रांस इटली नीदरलैंड स्पेन टर्की ब्रिटेन रूस आस्ट्रेलिया श्रीलंका डेनमार्क इण्डोनेशिया पश्चिमी जर्मनी ग्रीस भारत इण्डोनेशिया ईरान जापान ग्वातेमाल नार्वे पाकिस्तान पुर्तगाल स्वीडन और संयुक्त राज्य अमेरिका। यह सम्मेलन १६ अगस्त से २३ अगस्त १९५६ तक हुआ। ग्रीस और मिश्र को छोड़ कर अन्य सभी देशों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेशमन्त्री जॉन फोस्टर डब्लेस ने समस्वा के समाधान हेतु एक योजना प्रस्तावित की जिसमें निम्नलिखित सुझाव थे—

(क) स्वेज नहर के सभी विवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद द्वारा सुलझाये जायें। यह परिषद संघि द्वारा बनना धन्य राष्ट्रों से मिल कर उन विवादों को सुलझा देनी। मित्र भी इस परिषद में अपनी प्रतिनिधि भेजे परन्तु वह प्रतिनिधि किसी सत्ता के धारी न हों।

(ख) नहर का राष्ट्रीयकरण हो जाने पर स्वेज नहर-कम्पनी को भी प्रतिष्ठत के रूप में कुछ दिया जायगा।

(ग) इस प्रश्न से मित्र भी भाग उठा सकेगा लेकिन उसे यह लाभ निष्पक्ष रूप से यथासंभव ही प्राप्त होगा।

(घ) यदि दूसरी और तीसरी बात में मित्र का मतभेद होया तो इसका निरुप एक प्रायोग द्वारा किया जायगा। इस प्रायोग के न्यायाधीश का निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय करेगा।

इसेस योजना में १८८८ के कुस्तुसुनिया सम्झौते की प्रस्तावना की ही भाँति यह कहा गया कि नहर सब देशों के लिये मुक्त एवं शांतिपूर्ण में खुली रहनी चाहिये। इस योजना में यद्यपि नहर पर मित्र की सर्वोच्च सत्ता को मान्यता दी गई किन्तु नहर को बनाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वेज नहर बोर्ड की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया। इन बोर्ड को अपने कार्यों की रिपोर्टें संयुक्त राष्ट्र संघ को देनी थी किन्तु उसे कार्य करने के लिए अधिकार तथा सुविधाएँ मित्र की सरकार से प्राप्त करनी थी।

इसेस योजना के धारितरिक्त सम्मेलन में दो धीर भी योजनाएँ रखी गईं और वे थीं हेपीमोव (रूस) योजना एवं मेनन (भारत) योजनाओं की। हेपीमोव ने अपनी योजना में मित्र के सम्पन्न अधिकारों को मान्यता देते हुए सभी देशों के लिए नहर को सर्वैव स्वतंत्र एवं खुली रखने तथा मित्र द्वारा नहर की सुरक्षा सम्मत धारि की व्यवस्था की माँग की। परन्तु भारतीय प्रतिनिधि भी हृद्य मेनन के प्रमाण से हेपीमोव ने अपनी योजना का विरोध ही की।

भारत के भी हृद्य मेनन ने सम्मेलन में जो योजना प्रस्तुत की वह इसेस योजना से सर्वथा भिन्न थी। इस योजना में नहर पर मित्र सर्वोच्च सत्ता का धीर इसे सर्वैव सुलझा रखने का सिद्धान्त स्वीकार करते हुए औपमिक्तिक प्रतिक्रिया के आधार पर नहर का उपयोग करने वाले देशों को एक परामर्श बोर्ड तैय्य बनाने की बात थी। धी मेनन ने इसेस योजना के विरोध में कहा था—“स्वेज नहर मित्र की है। इस पर अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता की स्थापना का धर्म तय चाहिये बोर्ड के साथ स्वेज नहर कम्पनी का पुनःसंयोजन है।”

परन्तु सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रभाव ही सर्वोपरि था परन्तु १७ दिसंबर २१ अगस्त को इसेस योजना का ही समर्थन किया। सम्मेलन द्वारा यह भी निश्चय किया गया कि इसेस योजना धाट्टे सियाँ के प्रभाव में ही होगी। मेन्जीव स्वयं काहिरा से जायें। परन्तु वह धाट्टे सियाँ प्रभावमूर्त्री ने काहिरा पहुँच कर इसेस योजना राष्ट्रपति नासिर के सामने पैत की ता ठहोले इसे ठुकरा दिया।

नासिर द्वारा संघन सम्मेलन में प्रस्तावित इसेस योजना को ठुकरा दिये जाने पर ११ दिसम्बर को संघन में पुनः १८ राष्ट्रों का एक सम्मेलन

हुया। इस द्वितीय सत्र में सम्मेलन में स्वेज नहर उपमोक्षा संघ (Suez Canal Users Association) का एक कार्यालय खोला गया और डैनमार्क के राजदूत बारम्भ को धनरिखा में इसका प्रकासक भी नियुक्त कर दिया गया। फिर भी ब्रिटेन और फ्रांस को यह स्पष्ट विवक्षित हो गया कि इस उपमोक्षा संघ की स्थापना से स्वेज नहर पर उनका अपवित्र अधिकार फिर से कायम नहीं हो सकता है। अतः उन्होंने स्वेज-विवाद को सुरक्षा परिषद में ये बात का निश्चय किया।

सुरक्षा परिषद में स्वेज-विवाद का प्रवेश—२६ सितम्बर, १९५६ को ब्रिटेन और फ्रांस ने स्वेज नहर सम्बन्धी सम्पूर्ण विवाद सुरक्षा परिषद के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। इसके उपरोक्त अक्टूबर १९५६ के प्रारम्भिक दिनों में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिवी भी डा.प. हैमरस्टोम की अध्यक्षता में फ्रांस ब्रिटेन और मिश्र के विदेश मंत्रियों के मध्य पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ। इस विचार विमर्श में विदेश मंत्री स्वेज नहर के सञ्चालन के सम्बन्ध में छः सिद्धान्तों पर सहमत हो गये और इन्हीं सिद्धान्तों को धारण बना कर फ्रांस व ब्रिटेन ने संयुक्त रूप से सुरक्षा परिषद के समक्ष एक प्रस्ताव रखा। ये छः सिद्धान्त (जो प्रस्ताव में उल्लिखित थे) निम्नानुसार थे—

(i) स्वेज नहर के उपयोग में किसी भी देश के साथ कोई भेद-भाव न करता जाय सबको नहर में बहाव रानी की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

(ii) मिश्र की सार्वभौम प्रकृति सर्वोच्च सत्ता का पूर्ण सम्मान किया जाय। (iii) नहर के सञ्चालन और प्रबन्ध व्यवस्था को सभी प्रकार की राजनीति से पृथक् रखा जाय। (iv) स्वेज नहर से होकर गुजरने वाले जहाजों से किस दर से टैक्स और किराया 'टोल' वसूल किया जाय—इस बात का निर्णय मिश्र एवं नहर का उपयोग करने वाले राष्ट्रों के प्रतिनिधि मिल कर करें। (v) नहर से होने वाली घामदानी का पर्याप्त भाग नहर के विकास एवं सुधार धार्मि कार्यों पर व्यय किया जाय। (vi) स्वेज नहर कम्पनी और मिश्र सरकार के मध्य होने वाले विवादों का निर्णय मध्यस्थता (Arbitration) द्वारा किया जाय।

उपरोक्त प्रस्ताव के दूसरे भाग में स्वेज नहर पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण की संस्था वाली बसेस योजना का वर्णन था।

१६ अक्टूबर का जब प्रस्ताव पर सुरक्षा परिषद में मतदान हुआ तो प्रस्ताव में निहित छः सिद्धान्त तो स्वीकार कर लिये गये किन्तु वेप पर लोबियात रुस ने नियेधाधिकार का प्रयोग कर दिया। दूसरे तर्कों में प्रस्ताव का केवल एक भाग स्वीकृत हो सका और यह भाग उपरोक्त छः सिद्धान्तों पर व्यावहारिक रूप में धमल करने से सम्बन्ध रखता था। इस प्रकार, लोबियात बीटो के प्रयोग से नहर पर अपने अधिकार को फिर से स्थापित करने का एम्नो-वैश्व बहयंत्र विफल हो गया।

मिश्र पर आक्रमण—जब ब्रिटेन और फ्रांस मिश्र में हस्तक्षेप करने का मौका हुआ तो मने ठाकि वे स्वेज नहर पर पुनः स्वतन्त्र स्थापित कर सकें। यह मौका बीस ही उन्हें मिल गया। २९ अक्टूबर, १९५६ को इजिप्ट

ने अपने प्राचीन अनु मित्र पर, सम्भवतः इनकी सलाह प्रथम प्रेरणा से प्रभावित भावनाएँ कर दिया। यह भावनाएँ इतना घातक कि इजरायल सेनाएँ मित्र प्रदेश में सड़ना ही १० मील पर्यन्त तक घुस गयीं और इन प्रकार उन्होंने स्वैज नहर तक की घापी पूरी तय कर ली। इन पर भी तुरी यह कि इजरायल द्वारा घाटोप यह समझा गया कि इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मित्र पर है जिसकी उक्त जमापूरण कार्यवाहियों ने इजरायल को ऐसा कठोर क्षम उठाने को बाध्य किया है।

इजरायली भावना के ठीक दूसरे ही दिन १० अक्टूबर को ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री एन्वोनी इडन ने ब्रिटिश संसद में यह घोषणा की कि फ्रांस व ब्रिटेन की सरकार न मित्र एवं इजरायल से यह मांग की है कि वे परस्पर युद्ध करना बंद करके स्वयं से १० मील परे तक अपनी सेनाएँ हटा दें और इस बात के मित्र सहमति प्रकट करें कि ब्रिटिश तथा फ्रेंच सेनाएँ पोर्ट सैदर इस्ताइसिया एवं स्वैज के महत्वपूर्ण खातों पर अस्थायी तौर पर अपनी नियंत्रण स्थापित कर लें ताकि सुदूरव दलों पक्षों को परस्पर लड़ने से रोका जा सके और स्वैज नहर में जहाजों के स्वतन्त्र आवागमन की गारन्टी भी जा सके। इस मांग का उत्तर देने के लिये मित्र को केवल १२ घण्टों का समय दिया गया और वह चेतावनी दी गई कि यदि इस अवधि में दोनों पक्षों में प्रस्तावित बातों पर समझ नहीं किया तो ब्रिटिश एवं फ्रेंच दोनों राष्ट्रों को सुधारने के लिये हस्तक्षेप करेगी।

स्पष्ट रूप से स्वयं पर कब्जा जमाने की यह एक ब्रिटिश-फ्रेंच बात की। मित्र के राष्ट्रपति गांधि ने ब्रिटेन और फ्रांस के इस संयुक्त भस्तीमत्तम को अस्वीकार कर दिया। इस पर ब्रिटिश एवं फ्रेंच वायु सेना के हवाई हमलों में साहस्य स्थित इवाई बड़े से उद्गम भर कर मित्र के महत्वपूर्ण सैनिक स्थलों पर हमला बोस दिया। इसी दिन सुरक्षा परिषद में सब राष्ट्रों से मित्र में सेना का प्रयोग न करने की प्रार्थना करने वाला प्रस्ताव फ्रांस और ब्रिटेन के वीटो के कारण पास नहीं हो सका। यह प्रस्ताव अमेरिका द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसमें यह मांग ली गई थी कि इजरायल अविनाश्य अपनी सेनाएँ मित्र से वापिस बुला लें और संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य मित्र के क्षेत्र में बलि का प्रयोग न करें प्रथम बलि का प्रयोग करने की वकाली न दें।

उपरोक्त प्रस्ताव रह ही जाने के उपरांत 'शांति के लिये एकता' (Uniting for Peace) नामक प्रस्ताव के अन्तर्गत महा सभा की संकट कालीन बैठक बुलाई गई। १ नवम्बर, १९४६ से आरम्भ होने वाले महा सभा के इस परिषद में स्वैज-विवाद पर बड़ी कटु एवं ज्वलंत बहस हुई। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने अपने देश के कार्य की तुलना कोरिया में अमेरिका द्वारा की गई कार्यवाही से की किन्तु ब्रिटिश विरोध के बावजूद २ नवम्बर १९४६ को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में संयुक्त राज्य अमेरिका का एक प्रस्ताव प्रथम बहुमत से पारित कर दिया। इस प्रस्ताव में स्वैज नहर के प्रदेश में ब्रिटिश एवं इजरायली सैनिक कार्यवाही पर संघीर विन्ता व्यक्त की गई थी तथा अविनाश्य युद्ध-बन्द करने पर बात किया गया।

उत्तरवाह ४ नवम्बर को महासभा ने कनाडा का यह प्रस्ताव पास किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव की डाग हैमरसोल्ड मिश्र में युद्ध बन्द करने और युद्ध विराम की वेसमाल क लिए संघ की एक आपातकालीन सेना (United Nations Emergency Force) की योजना प्रस्तुत करें। इस पर १० देशों की सैनिक टुकड़ियों से बनी ६ हजार सैनियों की अन्तर्राष्ट्रीय सेना शांति स्थापना के लिए भिन्न भेजी गई।

उपरोक्त सचर्म में यह अस्सेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय आपातकालीन सेना के प्रस्ताव को ब्रिटेन एवं फ्रान्स ने मानने से घानाकानी की थी। इन दोनों राष्ट्रों का एक सच को शान्ति कामों में सहयोग न देने का था। इस पर १ नवम्बर को सोवियत सच के प्रधानमन्त्री न आक्रमणकारियों को स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी दी कि यदि एक निश्चित समय तक मिश्र पर हमला बंद नहीं किया गया तो सोवियत सच नवीनतम शस्त्रों के साथ इस संकट में हस्तक्षेप करेगा। ब्रिटिश-फ्रेंच-इजरायली आक्रमण को नष्ट करने के लिए शक्ति प्रयोग करने सम्बन्धी सोवियत नोट ब्रिटेन व फ्रेंस दोनों को असह-असह प्रेषित किया गया। इस चेतावनी से तृतीय महायुद्ध की संभावना एकदम सशक्य दिखाई पड़ने लगी। दूसरी ओर अमेरिका ने भी मिश्र में फ्रेंस व ब्रिटेन की सैनिक कार्यवाही का समर्थन नहीं किया और अपने तौर पर उनके कार्र को बलत प्रेषित किया। सोवियत चेतावनी और अमेरिका के विराध ने ब्रिटेन एवं फ्रेंस को मिश्र में अपनी सैनिक कार्यवाही रोकने के लिए बाध्य कर दिया। इस दिन अर्थात् १ नवम्बर को डी डाग हैमरसोल्ड ने संघ को यह सुम समाचार दिया कि १-७ नवम्बर का मध्य रात्रि में एग्जो-फ्रेंच फौजें युद्ध बन्द कर देंगी। इसके तुरन्त बाद ७ नवम्बर को संयुक्त राष्ट्रीय महासभा ने एशिया-अफ्रीका के देशों का यह प्रस्ताव पास किया कि ब्रिटिश फ्रेंच और इजरायली फौजें मिश्र की भूमि से हट जाने प्रयास स्वैज नहर के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था की जाए। इन प्रस्तावों के फलस्वरूप युद्ध पूरी तरह बन्द हो गया। मिश्र ने इस प्रस्ताव पर कि संयुक्त राष्ट्र सचिवालय का रहने पर उसकी प्रभुसत्ता को कोई बाध नहीं आयी। अफ्रो-एशियाई देशों का प्रस्ताव मान लिया। इन प्रस्ताव के अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय सेना का आयोजन करने के लिए इजिप्शन, कनाडा, श्रीलंका, कोलम्बिया, भारत, पाकिस्तान—इन देशों की एक समिति बनायी गयी। ११ नवम्बर को इस आपातकालीन सेना (U.N.E.F) का पहला बस्ता मिश्र पहुंच गया।

चूंकि अभी तक आक्रमणकारी फौजें मिश्र से नहीं हटी थी, अतः २४ नवम्बर को महासभा ने पुनः एक प्रस्ताव पास करके आक्रमणकारियों (ब्रिटेन फ्रेंस व इजरायल) का यह आदेश दिया कि वे सहायक अपनी सेनाएं मिश्र की भूमि से हटा दें। फलस्वरूप १ दिसम्बर को क्षेत्र ब्रिटिश-फ्रेंच टुकड़ियां यिन से कापिस बुसाने की घोषणा कर दी गयी। २९ दिसम्बर तक ब्रिटेन और फ्रेंस की सम्पूर्ण आक्रमणकारी सेना, भारी कमक कालिमा के द्वारा मिश्र की भूमि को खाली कर ली। इस बीच में इजरायल सेना भी, अने-अने पीछे हटती गयी और ३२ दिसम्बर को केवल 'पावा पट्टी' और 'अरमस-शेख' नामक क्षेत्र में उसकी सेनाएं रह लीं। यह कनाडा खाड़ी में विराजत

लडमरू मध्य के सामने स्थित एक भूखण्ड था। इस क्षेत्र से भी इजरायली उनाबों के बापिस ज्ञान के सम्बन्ध में बाता जासु रही किन्तु इजरायल के द्वारा प्रह के कारण बातचीत में विशेष प्रयति नहीं हुई। तब १९ जनवरी और २ फरवरी १९४७ को महासभा ने इजरायल द्वारा फौजे हटाने तथा महा-सभिय को इस प्रस्ताव को क्रियार्थित करने सम्बन्धी दो प्रस्ताव पारित किये। इजरायल ने इन प्रस्तावों पर भी ध्यान नहीं दिया। इस पर ६ शक्तियों ने महासभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि "सत्र राज्य इजरायल को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देना बन्द कर दें।" महासभा द्वारा यह प्रस्ताव पारित कर दिये जाने पर १ मार्च १९४७ को इजरायल ने कुछ शर्तों के साथ सेनाएं हटाना स्वीकार कर लिया और ७ मार्च १९४७ तक समस्त इजरायली फौजे सम्पूर्ण मिमी क्षेत्र से हटा ली गयीं। इस सम्बन्ध में जो भी समझौता-बाताएं हुई उस सिद्धांतसे में अमेरिका ने भी इस बात को माम्यता प्रदान की कि प्रकाश की जाड़ी अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्ग है और किसी भी राष्ट्र को वहां पर बहाजराती के मार्ग में रुकावट डालने का कोई अधिकार नहीं। बरमुका में तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री मैकमिलन और राष्ट्रपति आइजनहोवर ने संयुक्त रूप से इस बात पर सहमति प्रकट की कि यदि इजरायल मिश्र का कोई स्थायी हल निकालना है तो यह आवश्यक है कि गाबा पट्टी में संयुक्त राष्ट्र संघीय सैनिक टुकड़ी कुछ समय तक तैनात रहने दी जाय।

मिश्र में कुछ बन्द करने और विवही सेनाओं को हटाने में संयुक्त राष्ट्र संघ का पूरी सफलता मिली और स्वेज पर ब्रिटेन व फ्रांस के पुनः आधिपत्य के सपने बुर बुर हो गये। इस बटना ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया कि यदि अमेरिका और रूस जैसी महाशक्तियां सहयोग करें तो संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी कार्यवाही बहुत कुछ सफल हो सकती है।

यद्यपि स्वेज विवाद पर कुछ होने वाला कुछ बन्द हो गया किन्तु स्वेज नहर को आवागमन के लिए बाध करना अभी शेष था। युद्ध के समय अनेक बहाजों को नहर में डूबो कर नौवासन के लिए उसे बेकार कर दिया गया। अतः इसे फिर से परिवहन के योग्य बनाने में भी संयुक्त राष्ट्र ने महत्वपूर्ण सहायता की। संघ द्वारा १५ करोड़ रुपयों की प्राविधिक सहायता (Technical Assistance) दी गयी जिससे नहर को साफ करा कर सैन्य ही नौवासन के योग्य बना दिया गया। संक्षेप में संघ के हस्तक्षेप से स्वेज नहर पर मिश्र का पूर्ण अधिकार कायम हो गया और यह सभी देशों में लिए सोम की पयी।

इस उपर्य में यह उल्लेखनीय है कि मिश्र ने स्वेज नहर को इजरायल के लिये सदैव से बन्द कर रखा है और यह भी लोगों देशों के मध्य तनाव व संघर्ष का एक मुख्य कारण है। अभी इस ही में जून १९६७ में होने वाले 'अरब इजरायल-संघर्ष' में, जिसका उल्लेख 'सी घायल के अन्तर्गत प्रायः यथा-स्थान किया गया है, इजरायल का आधिपत्य व मूल में निहित एक उद्देश्य यही रहा है कि 'स्वेज नहर पर मिश्र का एकसत्र आधिपत्य समाप्त कर दिया जाय। इजरायल इस बात पर तुसा है कि स्वेज उसकी बहाजराती के लिए भी खुली रहे। इजरायली प्रधान मंत्री एटलीन के पेशवर जबबार 'बाबर'

घाजा नहीं मिली किन्तु इसने हंगरी से भाग कर घाये हुए सगमग १०० व्यक्तिओं में न्यूयार्क रोम बियना लन्दन प्रादि में भेंट की। १ महीने तक समिति सागों की गब हियां सेसी घोर स्थिति का अध्ययन करती रही। उत्तरबपायु इमने हंगरी में सोवियत इस्तलप क विरुद्ध १०१ पृष्ठों की ठास और प्रमाधिक तथ्यों पर आधारित रिपोर्ट प्रस्तुत की। २ दून १९१७ को प्रस्तुत घपनी इस रिपोर्ट में सामति ने एकमत से इस बात की पुष्टि की कि सोवियत रूस हंगरी म हुस्तलप का बापी बा और उसो हंगरी के बिद्रोह को जो घसली घषों में एक वा-अन्ति की कुचसने के लिए बड पैमाने पर घपनी सतिक शक्ति का प्रयोग किया। समिति ने घपनी रिपोर्ट में कहा कि सोवियत रूस मे यह बमनकार्य बहुत ही नूबसतायुबक संघामित किया जिसके परिघाम स्वरूप हंगरी की बहुसक्यक जनता को घकरूप ीव कष्ट सहन करने पड। हंगरी की सरकार ने समिति की रिपोर्ट को "देसद्रोही लगनाघियों और घपराघियों की गबाहियों पर आधारित झूठों क पुस्तिया" बताया और कहा कि हंगरी के घरेलू मामले में यह समुक्त तथ का अनुचित हुस्तलप है।

हंगरी और सोवियत रूस के विरोध के बाबबुद सितम्बर १९१७ में महासचिव ने समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए महासभा का अधिवेशन आमन्त्रित किया। महासभा मे १४ सितम्बर, १९१७ को रूस के हुस्तलप की निन्दा का एक घोर प्रस्ताव ६० वोटों क बहुमत से पास किया गया और पुनः यह भाव की गई कि रूस हंगरी से घपनी सेनाएं बाघिस हुला ले तथा हंगरीबासियों को घारमतिरुब का अधिकार प्रदान करे। परन्तु इस प्रकार के प्रस्तावों और निन्दाघो का हंगरी पर कोई कियारमक प्रभाव नहीं पडा। महासभा ने उपरोक्त प्रस्ताव को कियाम्बित करने के लिए एक विधेय मिशन हंगरी सेना परन्तु वहां की कटपुतली सरकार ने उसे हंगरी में प्रवेश करने की अनुमति ही नहीं दी। रूस के विरोध के कारण समुक्त राष्ट्र संघ को हंगरी के मामले में कोई सफलता नहीं मिल पायी।

यद्यपि महासभा और सुरक्षा परिषद सोवियत रूस तथा हंगरी के दुरावह के कारण पंगु बन कर रह गयी किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका बाव में भी संघ में हंगरी के प्रश्न को बार-बार उठाता रहा। १९१९ मे १० के विरुद्ध १४ वोटों के बहुमत में महासभा ने हंगरी के सम्बन्ध में पुन एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें इमरैनेबी जनरल पाठमपेटर और अन्य हुनेरियन देशभक्तों को प्राणबन्ध दिये जाने की निन्दा की गयी क्सी सेनाघों की घपस्थिति में हुनेरियन जनता के मौभिक अधिकारों के बमन की अस्तंता की गयी हंगरी और रूस द्वारा संघ के पहले पास किये हुए प्रस्तावों की घबजा करने पर बेब प्रकट किया गया। महासभा ने हंगरी पर नियुक्त की गयी विधेय समिति की रिपोर्ट का घमर्षन करते हुए न्यूजीर्नैड के सर सिघसी मुनरो को यह कार्य सीपा कि वे संघ के हंगरी सम्बन्धित प्रस्ताव को कियाम्बित करने के सम्बन्ध की बटनाघों पर संघ को रिपोर्ट देते रहे।

बहां पर स्मरणीय है कि यद्यपि हंगरी के मामले पर संयुक्त राष्ट्र संघ में इतनी विकल्पों नुची, लेकिन बसिब घखीका और फान्स की सरकार के विरुद्ध महासभा निष्क्रिय सी रही। बूकि इन देशों में अमेरिका के विघननुबों

का शासन का इसलिए संभवतः वहाँ मानव के मौखिक अधिकारों का दम नहीं हो रहा था। दक्षिण अफ्रीका की रंग भेद नीति तो तायर मौखिक अधिकारों की पोषक है और इसीलिए संयुक्त राष्ट्र संघ इसके विरुद्ध कुछ नहीं कर रहा है?

घन्ट में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि हंगरी में संयुक्त राष्ट्र संघ कोई प्रभावशाली कार्य न कर सकता किन्तु फिर भी वह इरेरियन जनता की पर्याप्त धरमय सहामता करने में समर्थ रहा। हंगरी-वासियों के कष्टों के निवारणार्थ सब के माध्यम से पर्याप्त सहामता प्राप्त हुई। हंगरी भेजी गयी नहीं स धाने नाम सरणार्थियों के भोजन-वस्त्र तथा आवास की समुचित व्यवस्था हुई और सर्वोपरि बात यह हुई कि हंगरी में सोवियत सैनिक हस्तगत के विरुद्ध विश्व जनमत को पूरी तरह जागरूक कर दिया गया। इस जनमत का ही यह प्रभाव हुआ कि अन्ततः इस एक हंगरी की कठपुतली सरकार ने अपने दमन कार्यों पर अंकुश लगाया।

हंगरी की समस्या यद्यपि धनी भी संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष उपस्थित है पर उसका भव कोई ब्यावहारिक महत्व नहीं है।

(१८) अल्जीरिया—विवाद (Algeria Issue)

३ जुलाई १९६२ को स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाला अल्जीरिया सगमय १९४ वर्ष तक उत्तरी अफ्रीका में फ्रांस का एक उपनिवेश बना हुआ पराधीनता की मानमार्थें सहता रहा था। सन् १८३० में फ्रांस ने इस प्रदेश पर अधिकार करके १८४८ में एक कोषणा द्वारा इसे फ्रांस की भूमि का प्रग बना दिया। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हजारों फ्रेंच तथा यूरोपियन इस प्रदेश में आकर बसने लगे और उन्होंने स्वामीय बर्बर (Berber) मुस्लिम धर्म मानने वाली जाति एवं धरम जातियों का आर्थिक शोषण शुरू कर दिया। यूरोपियनों के साथ असम्मानजनक व्यवहार करना फ्रांस्य किया उन्हें द्वितीय श्रेणी का सामरिक समझने हुए अपने से नीचा दर्जा दिया। अपने साथ इस हीन व्यवहार को देख कर उनमें असन्तोष की भावनाएं प्रबल हो उठी और वे फ्रेंच साम्राज्यवाद का नृपा उठार खेचने को व्यग्र हो उठे।

सम्बर गति से बढ़ती हुई विद्रोह की मानमार्थों ने घन्ट में संघर रूप धारण कर लिया और १ नवम्बर, १९६४ को अल्जीरियनों ने फ्रांसीसी शासन के विरुद्ध बगवत का झण्डा खड़ा कर दिया। दूसरी धार फ्रांस ने इन स्वाधीनता प्रेमियों को निर्णयता से कुचम देने की नीति प्रह्व की।

संघ में अल्जीरिया-विवाद का प्रवेश—एक तरफ अल्जीरियाई जनता के स्वातन्त्र्य-सर्वर्ष और दूसरी तरफ फ्रेंच सरकार की 'भुक्तमतापूर्वक सैनिक कार्यवाही द्वारा अल्जीरिया की राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं आर्थिक विशेषताओं को नष्ट करने की नीति' एवं अल्जीरियनों के कुरतापूर्ण दमन ने अन्तरराष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को खतरे में डालने वाली घन्नीर स्थिति पैदा कर दी। १ फरवरी १९६३ का सन्धी धरम ने इस मामले की ओर सुरक्षा-परिषद का ध्यान आकृषित

किया। २६ जुलाई १९५२ को १४ अफ्रीकन एंव एशियाई देशों ने इस प्रश्न को महासभा के सबसे अधिकेशन में उपस्थित किया। अपने एक व्याख्यात्मक परिचय-पत्र में इन राष्ट्रों ने कहा कि अल्जीरिया की वर्तमान स्थिति शान्ति को एक ठोस खतरा है और अन्तर्राष्ट्रीय विवेक का कारण है। इस परिचय-पत्र में की गई शिकायत इस प्रकार की—

“अल्जीरिया की विकृती हुई परिस्थिति औपनिवेशिक विषय का प्रथम परिष्कार है और वह नहीं कहा जा सकता कि अल्जीरिया निवासियों ने समुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में दिए गए मए धारमनिर्णय के अधिकार को प्रयुक्त किया है। अल्जीरिया में बड़े पैमाने पर पकड़-बकड़ करना राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियों को बंद-बानूनी बाधित करना संसदीय प्रणाली और संसद फलक सीनिक दस्तों द्वारा मकानों पर बलम जमा सेना—ये सब अल्जीरिया के लोगों को उनके अधिकृत अधिकारों को हरीकार करन की असफलता के प्रतीक परिचय हैं। ये मामलों इस हर तक पहुँच गये कि स्वयं फ्रांस के प्रधान मंत्री के अनुसार अल्जीरिया में फ्रांस के पैर जमाये रखने के लिये फ्रांस के पास केवल एक ही मार्ग रह गया है कि वह शक्ति का सहारा लें। इस क्षण में लयी १२०००० की विशाल ससस्त्र सेना और उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि-संगठन (NATO) के फौजदारी दस्ते वहाँ की समीर स्थिति को स्पष्टतः प्रभावित करते हैं। ऐसी स्थिति का बना रहना भूमध्यसागरीय क्षेत्र में शान्ति को गम्भीर खतरा उत्पन्न कर रहा है।”

एशियाई अफ्रीकन राष्ट्रों के इस निवेदन ने महासभा के समक्ष एक समीर कानूनी प्रश्न उपस्थित कर दिया। अल्जीरिया क्षेत्र दशराज्य का एक स्वायत्तिक प्रग था। १८४८ में एक घोषणा द्वारा फ्रांस इसे अपनी भूमि का अंग घोषित कर चुका था। परत फ्रांस का कहना था कि चार्टर ५ अनुच्छेद २ (७) के अन्तर्गत यह उसका बरेल मामला है जिसमें सब को हस्तक्षेप नही करना चाहिये। किन्तु अन्त में पर्याप्त विचार विमर्श के उपरान्त महासभा ने इस प्रश्न पर विचार करने का साहसिक निर्णय ले ही लिया। हुगरी और महासभा के इस निर्णय के विरोध में फ्रांस ने महासभा के अधिकेशन का बहिष्कार कर दिया। इतना ही नहीं उमने सभा की प्रमुख समितियों को बैठकों से माय सभा भी बन्द कर दिया। १९५५ के अन्त में फ्रांस तब ही महासभा में सम्मिलित हुआ जब २३ नवम्बर १९५५ को महासभा ने इस प्रश्न पर धागे से विचार न करने का निश्चय किया।

१९ अप्रैल १९५६ को एशिया एंव अफ्रीका के १७ राष्ट्रों ने अल्जीरिया की समीर स्थिति की ओर सुरक्षा परिषद का ध्यान आकषित किया। इस प्रयास का कोई परिचय न निकलने पर १३ जून को उपरोक्त में १० की ११ राष्ट्रों ने अल्जीरिया की नि-पर-विन विकृती हुई स्थिति व अल्जीरिया तथा फ्रांस के बढते हुए तनाव का हब सा देते हुए, मामले पर बहार करन हेतु सुरक्षा परिषद की अधिकतम बैठक बुलाने की मांग पुन रखी। परिषद में अधिकतम देशों के प्रतिनिधियों ने यही विचार प्रकट किया कि चार्टर के अनुच्छेद २ (७) के अनुसार समुक्त राष्ट्र संघ को इस प्रश्न

पर विचार करने का अधिकार नहीं है। ऐसी स्थिति में परिषद ने प्रश्न को अपनी कार्य-सूची में सम्मिलित नहीं किया।

महासभा और सुरक्षा परिषद दोनों ही के द्वारा अल्जीरिया-विवाद को अपनी कार्य सूची में न लेने पर भी एशिया-अफ्रीका के देश इस समस्या को हल करने के लिये संघ में निरन्तर प्रस्ताव आते रहे। ऐस १५ देशों ने महासभा के ग्यारहवें अधिवेशन से अल्जीरिया-प्रश्न पर विचार करने का पुनः आग्रह किया। संघ में समस्या पर विचार हुआ और कई प्राकल्प-प्रस्ताव (Draft resolutions) प्रस्तुत किये गये। काफ़ी वाद-विवाद के बाद १५ फरवरी १९६७ को महासभा ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके पक्ष में ७७ मत पड़े। फ्रांस द्वारा मतदान में भाग नहीं लिया गया। इस प्रस्ताव में यह घोषणा व्यक्त की गई कि समस्या का एक शांतिपूर्ण, स्वायत्तगत एवं अजातन्त्रीय हल ढोब निकाला जायगा तथा फ्रांस एवं अल्जीरिया के सम्बन्धों में समूक्त राष्ट्र संघीय आर्टर के अनुकूप सुधार कर लिया जायगा। इस प्रस्ताव का कोई प्रभाव अथवा परिणाम नहीं निकला।

इसी मध्य अल्जीरिया की समस्या दिन-प्रति-दिन बिगड़ती चली गई। अब मोरक्को के आग्रह एवं ट्यूनीसिया गणराज्य के राष्ट्रपति ने समस्या के समाधानार्थ अपनी सहभाषनापूर्ण मध्यस्थता प्रपित की। १० दिसम्बर, १९६७ को महासभा द्वारा इस पर विचार किया गया और सम्बन्धित पक्षों से इसका मान उठाने का अनुरोध किया। परन्तु फ्रांस द्वारा मध्यस्थता के ऐसे किसी भी प्रस्ताव के प्रति पूर्ण उपेक्षा प्रदर्शित की गई।

१६ जुलाई १९६८ को महासभा के १९वें अधिवेशन में २४ सदस्य-देशों ने इस प्रश्न को पुनः उठाया। उन्होंने इसे महासभा की कार्यसूची में सम्मिलित करने का आग्रह किया जिसे मान लिया गया। तदुपरान्त १० देशों ने अल्जीरिया-समस्या पर एक प्रस्ताव पेश किया जिस पर इस अधिवेशन में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी।

फ्रांस अल्जीरिया सम्बन्धी समूक्त राष्ट्र संघीय प्रत्येक कार्यवाही का अग्रभ्रम बहिष्कार करता रहा या उसके प्रति उपेक्षापूर्ण रहा। किन्तु फ्रांसीसी एशियाई देश भी प्रश्न को बारबार उठाते रहे। १९६० में २१ अक्टूबियाई राष्ट्रों ने १० दिसम्बर को राजनीतिक समिति में यह प्रस्ताव रखा कि समूक्त राष्ट्र संघ की अल्पजला में जनमत-सङ्ग्रह (Referendum) कराकर अल्जीरिया के प्रश्न का समाधान कराने का प्रयास किया जाय। अन्ततः फ्रांस और अल्जीरिया में एक पारस्परिक समझौता हुआ और १ जुलाई १९६२ को अल्जीरिया में मत संग्रह किया गया जिसमें अल्जीरियावासियों ने स्वतन्त्र होने का निर्णय लिया। अब इस निर्णय का आदर करते हुए, १ जुलाई, १९६२ को फ्रांस ने अल्जीरिया को स्वाधीनता प्रदान कर दी। विश्व-जनमत फ्रांसीसी राष्ट्रों के बढते हुए विरोध अल्जीरिया-मुक्त की बर्बादियों और अल्जीरियनों के हठ स्वातन्त्र्य-संरक्षण-इन सबने मिलाकर फ्रांस की दुराग्रही सरकार को बाध्य कर दिया कि वह अल्जीरिया से अपना बोरिया विस्तार सपेट ले।

(१६) कांगो की समस्या (The Question of Congo)

कांगो पर विस्तारपूर्वक चर्चा 'कांगो का वाद' नामक अध्याय के अन्तर्गत यथास्थान की गई है। प्रस्तुत सर्भ में हम केवल 'संयुक्त राष्ट्र संघ और कांगो का ही उल्लेख करेंगे।

बेल्जियम का घुतपूर्व उपनिवेश कांगो एक सम्बन्धित समय तक धन्तर्राष्ट्रीय जाति और सुरक्षा के लिए बम्बीर खतरा बना रहा। १ जून १९६० को बेल्जियम के लगभग ७५ वर्ष तक चलने वाले प्राचिपत्य से मुक्त होना के पश्चात् स्वतन्त्र कांगो गणराज्य की स्थापना हुई लेकिन दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही इस देश पर मुसीबतों के बादल गिर पड़े। देश का शासन और वहाँ की अर्थ-व्यवस्था चलाने वाले हजारों बेल्जियन स्वतन्त्र गणराज्य में अपनी स्थिति असुरक्षित समझ कर स्वदेश लौट गये। परिणाम यह हुआ कि अनुभवशून्य कांगोवासियों के हाथ में शासन बंध गया अर्थ-व्यवस्था एकदम अस्त-व्यस्त हो गई और कांगो के सही प्राप्त स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगे। प्रथम मंत्री जुमुम्बा देश में शासन और व्यवस्था केवल २३ हजार सैनिकों की कांगोली सेना द्वारा ही रख सक्ता था लेकिन सभा स्वयं विद्रोह पर उतरा भी। ९ जुलाई को नियोलोन्ड बिल्डे की सेना में प्रथम विद्रोह हो गया। ७ और ८ जुलाई को १०० मील दूर दक्षिण में बिजबिल नामक स्थान पर भी विद्रोह हो गया। बिद्रोहियों की मांग, बेतन म बृद्धि और सेना के उच्च पदों पर अपनी देशवासियों की नियुक्ति की थी। विद्रोह का एक बड़ा कारण यह भी था कि कांगोली सैनिक अपने बेल्जियन अधिकारियों से उन हथियारों को छीन लेना चाहते थे जो उनके कांगो के सरकारी गोदामों में बचा कराने के स्वाम पर टैजी से अपने अर्थात्मिक देशवासियों में बाँट जा रहे थे। बेल्जियम कांगो में पुन हस्तक्षेप करने के बखतर की टाक में था ही। प्रथम उम्मेद काका के बेल्जियनता की सुरक्षा के बहाने १ जुलाई, १९६० को कांगो में अपनी सेना भेज दी। इसका साथ ही बेल्जियम के पक्षय से ११ जुलाई का काका का एक शीत कटया न शांति के मेतृत्व में नियुक्त एक विशिष्ट विद्रोह करके एक पूरक स्वतन्त्र राज्य बनाने की योजना कर दी और बेल्जियम ने इस सरकार को पूरी तरह सह्यता देना शुरू कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हुए एक सम्झौते के अनुसार कांगो के वृद्ध निश्चित अर्द्धों पर २० बेल्जियन सैनिकों को रखने की व्यवस्था हुई थी परन्तु इस व्यवस्था का उल्लंघन करत हुए बेल्जियम की फौजें कटया में पहुचन लगीं। इस पर जुमुम्बा ने बेल्जियम सरकार से मांग की कि बेल्जियम फौजों को केवल अपने अर्द्धों तक ही सीमित रहना चाहिए। परन्तु बेल्जियम पर इस शिकायत का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसकी फौजों ने रणभारती के यूरोपियन भाग पर भी प्रविष्टार कर लिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ में कांगो-विवाद का प्रवेश—उपरोक्त परिस्थितियों में ११ जुलाई को प्रथम मंत्री जुमुम्बा द्वारा बेल्जियम पर आक्रमण करने तथा 'कटया' को पूरक राज्य बनाने के लिए मझाने का प्रारम्भ जागाया गया। जुमुम्बा ने कहा कि बेल्जियम की साम्राज्यवादी चालों (Colonial

list Machinations) का मुख्य उद्देश्य कांगों पर अपना प्रभुत्व बनाए रखना था। १२ जुलाई को सुमुम्बा ने संयुक्त राष्ट्र संघ से बैल्जियम के माध्यम से विरह सैनिक सहायता की प्रार्थना की।

यह एक ऐसी स्थिति थी जो संयुक्त राष्ट्र संघ के अब तक के इतिहास में उभरना नहीं थी। कांगों में शक्ति-रिक्तता की एक ऐसी स्थिति उदय हो गई थी जिससे साम ठठाने की जेष्टा स्वाभाविक होगी। तथापि यह माध्यम बनकर वात भी कि बड़े राष्ट्रों ने ऐसा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि उनके द्वारा कोई भी सहायता संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से ही दी जाएगी।

प्रधान मंत्री सुमुम्बा की प्रार्थना पर संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रथिमम्ब विचार हुआ क्योंकि कटपा के स्वतन्त्र शासन में बैल्जियम की फौजे ठेकी स पुस रही थी और इस संकटकाल में केवल संयुक्त राष्ट्र संघ से ही कांगों की स्वतन्त्रता एवं प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा की अपेक्षा की जा सकती थी। कांगों को पूर्ण और पश्चिम के संघर्ष का प्रसादा बनने से रोकने के लिए ११ जुलाई, १९६० को राष्ट्रों ने एक जुलाई गई जिससे काबो सरकार को पश्चिमी सुरक्षा परिषद की विशेष बैठक बुलाई गई जिसमें काबो सरकार को पश्चिमी सैनिक सहायता देने की प्रार्थना की गई। परिवर्ष की बैठक में रूसी एक अमेरिकन प्रतिनिधियों में बड़ा उग्र और कटु-विवाद हुआ। इस ने एक प्रस्ताव द्वारा बैल्जियम क सभ्यत माध्यम की निर्या करनी चाही और संयुक्त राज्य अमेरिका पर काबो की स्वतन्त्रता खीनने का बहपन करन का पसीर बोपारोयण किया। अमेरिका ने सोवियत संघ के धारोपों को एकदम बेहूना और सर्वथा प्रसत्य बताया।

काफी बुर विवाद के पश्चात् १४ जुलाई का सुरक्षा परिषद ने दस मीसिया का एक प्रस्ताव पारित किया कि—

(i) बैल्जियम की सेनायें कांगों से वापिस जती जायें (इसके लिए कोई अवधि निर्दिष्ट नहीं की गई)।

(ii) महासचिव को यह अधिकार दिया जाये कि 'जब तक कांगों की रक्षा करने वाली सेना अपने कार्य में समर्थ न हो तब तक आवश्यक समझा जाने वाली सैनिक सहायता दी जाय।

उपरोक्त प्रस्ताव के अनुपासन में संयुक्त राष्ट्र संघी सेना कांगों में देने समझनी आवश्यक कार्यवाही ठेकी से शुरू हो गई। १५ जुलाई को रूसी 'सामंती की दृष्टि' ने यह बोपणा की कि मास्को का विचार कांगों में का ताबूत क इस प्रस्ताव का ठार मिला है कि 'उनके प्राण संकट में हैं' और यदि पश्चिमी राष्ट्रों को गणराज्य की प्रभु-सत्ता के विरह आक्रमण करने से बिरह नहीं होये तो वे सोवियत संघ से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना करने को वाध्य हो जायेंगे। धी धी से ने स्पष्ट शब्दों में यह भी बता दिया कि पश्चिम देशों का आक्रमण जारी रखने पर सोवियत संघ आवश्यक कार्यवाही करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करेगा।

कांगो में संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायताकारी सेना भेजने की कार्यवाही इतनी त्वरित गति से हुई कि २८ जुलाई तक संघ की सेनाओं के १० हज़ार से अधिक सैनिक कांगो पहुँच गए। अधिकतम सैनिक बाना इषोपिया, मिमी घामरिस गबराम्य माइबीरिया मोरको घोर ट्यूनीसिया के थे। इन सैनिकों को हवाई जहाज़ों से पहुँचाने में इन देशों ने सहायता की—मॉन्टाइना, ब्राजील इषोपिया भारत नार्वे स्वीडन घोर—यूगोस्लाविया। संयुक्त राष्ट्र संघीय सैनिकों ने कांगो तथा बेल्जियम के सैनिकों के बीच होने वाले मतर्ष को समाप्त कर दिया। इन्होंने कांगो के हवाई अड्डों पर अधिकार का लिया ताकि विदेशी शक्तियों द्वारा इनका दुरुपयोग न किया जा सके। संघ ने कांगो सरकार को प्राथमिक प्राथमिक सहायता घोर सरकारी कांगोमी सेना को फौजी प्रशिक्षण देना शुरू किया ताकि सरकार विद्रोही तत्वों का सफलतापूर्वक दमन कर सके। जुलाई १९६० के अन्त तक संघ की सेनायें कटंगा को छोड़ कर पूरे कांगो में फैल गयीं।

संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं की इस प्रभावकारी कार्यवाही को देखते हुए बेल्जियम ने यह बचन दिया कि वह एक संधि द्वारा निश्चित किये गये वा सैनिक अड्डों के अतिरिक्त वेप सभी स्थानों से अपने सैनिक हटा लेगा। परन्तु बेल्जियम ने अपने बचनों को पूरा नहीं किया उसके केवल १२०० सैनिक ही इन स्थानों से हटे। अपनी सफाई में बेल्जियम द्वारा यह तर्क देर किया गया कि इषोपिया से घाई हुई संयुक्त राष्ट्र संघीय फौजों ने कांगोमी फौजों के साथ मिल कर यूरोपियनों की कूटनीति की है अतः उनके रक्षा बेलजियम फौजों का बहा रूढ़ना आवश्यक है। इस समय प्रकृति कटंगा प्रान्त में बेल्जियम के २२०० सैनिक थे। प्रधान मंत्री लुमुम्बा के द्वारा निरन्तर यह आग्रह किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघीय फौजों को कटंगा में प्रवेश करके बहा स बेल्जियम सेनाओं को हटा देना चाहिये। हमारी घोर कटंगा का प्रधान मंत्री शोम्बे (Tshombe) इस बात पर कटिबद्ध था कि वह संघ की सेनाओं की अपने प्रवेश में नहीं जाने देगा। ३ अगस्त को अपने एक बक्तव्य में उसने यह घोषणा की कि कटंगा स्वतंत्र राज्य है घोर अब तक यहाँ शांति तथा व्यवस्था है अब तक हमारी इच्छा के विरुद्ध संघ की अपनी सेनायें भेजने का कोई अधिकार नहीं है। शोम्बे की इस घोषणा से स्पष्ट था कि संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनायें रक्षण के बिना कटंगा में प्रवेश नहीं कर सकती थीं। वृ कि हमरालोच्य इस स्थित से बचना चाहते थे अतः उन्होंने घोषणा की कि संघ किसी भी अवस्था में कांगो के 'आन्तरिक अड्डों' में नहीं पड़ना। इसके बाद सुरक्षा परिषद में समस्या पर यन्नीरता से विचार होने लगा। घोर यह तय हुआ कि कटंगा की समस्या को दूर करने के लिए संघ के अन्तर सेक्रेट्री डा राल्ड ब्रुस कटंगा जायें। परन्तु २ अगस्त को जब डाक्टर ब्रुस संघ के प्राथमिक कर्मचारियों के साथ विमान द्वारा कटंगा पहुँचे तो पहले तो विमान को अड्डों पर उतरने की ही अनुमति नहीं दी गई घोर बाद में जब यह अनुमति मिली भी तो संघ के किसी कर्मचारी को कटंगा की भूमि पर नहीं उतरने दिया गया। विवश होकर डा० ब्रुस अपने साथियों सहित लियोनीस्विकिने वापिस लौट घाये।

संयुक्त राष्ट्र संघ—विश्व शांति में भूमिका

स्थिति पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद की बैठक पुन बुलाई गई। इसमें महासचिव ने कहा कि "बेस्विजम सेनाओं की निरन्तर उपस्थिति ही वांगो क संकट को उग्र धीर बटिस बना रही है।" महासचिव ने इस बात पर बस दिया कि बेस्विजमों को कटगा खासी कर देना चाहिये धीर यदि मोम्बे कटगा में संघ की सेनाओं को प्रवेश न करने दे तो बन्धनरथा का संयुक्त उत्तर दायित्व उसके क्षामन व समर्थकों पर होगा। सुरक्षा परिषद में समस्या पर १६ मध्ये गर्पायम्न बहुस हुई। तत्पश्चात् थ्य मीसिमा का एक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया जिसमें कहा गया था कि—

- (i) बेस्विजम फौजें कटगा से भविष्यम्ब निराल जायें।
- (ii) कटगा में समुक्त राष्ट्र संधीय फौजों का प्रवेश आवश्यक है।
- (iii) संयुक्त राष्ट्र संधीय फौजें 'वांगो की केन्द्राय सरकार के साथ कटगा के संघर्ष के परिणाम' को किसी रूप में प्रभावित नहीं करेंगी धीर न ही इस मसद् में हस्तक्षेप करेंगी।

सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव के बाव महासचिव हैमरमोस्ट सघ की स्वी दित सेना क २४० व्यक्तियों के साथ कटगा रवाना हो गया। १२ मगस्त को कटगा क अधिकारिया न इस सेना को अपने प्रवेश में प्रवेश करने दिया इसका मुख्य कारण यही था कि कटगा के खान-मासिकों के मतानुसार उस समय बसुस्त सरकार उनकी सहायता करने में असमर्थ थी धीर अफाकन या कसी फौजों की प्रेक्षा पूरापियन फौजें उनके हितों की सुरक्षा की दृष्टि से अधिक उपयुक्त मिठ हो सक्ती थी। इसके प्रतिष्ठित कटगा में सघ की फौजों के प्रवेश से मोम्बे की स्थिति को भी सुरक्षा ही मिमती थी क्योंकि जब तक कटगा में सघ की फौजें विद्यमान रहतीं तब तक सुमुम्बा काया में सम्मिष्ठ होने के लिए उस पर उतिक बभाव नहीं डाल सक्ता था।

वहाँ मोम्बे में संयुक्त राष्ट्र संधीय सेना को कटगा में प्रवेश की समु मति दी वहाँ सुमुम्बा में १३ मगस्त को हैमरमोस्ट के इस कार्य का विरोध करत हुए कहा कि कटगा में पम्बीकी सेनायें प्रेजी बानी चाहिये क्योंकि जब की बतमान सेना से बेस्विजम की सत्ता सुदुङ्ग हो रही है। १४ मगस्त को सुमुम्बा धीर हैमरमोस्ट के बीच एक कड़ा पत्र-व्यवहार हुआ जिसमें सुमुम्बा न कम रूप में हैमरमोस्ट में अपना अधिकवास प्रकट किया। सुमुम्बा संघ की कार्यवाही को वांगो के लिए बावक समझ रहा था। उसने सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव को क्रियाश्रित करने के लिए निम्नलिखित १४ वैशों के तटस्म प्रेषक भजने की माय की—भारत, संका मोरक्को द्यूनीसिया इथोपिया बाना गिनी समुक्त परब मण्टारग्य मूडान साइबेरिया मासी बर्मा अष्ट- गानिस्तान धीर लेबनान। सुमुम्बा द्वारा वैश किये गये बानावरण स कुष्ठ समय तक व लिए अष्टीका के विभिन्न देशों में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति अधिक- बास की माचना बढ़ती बिखारी थी। मिथ मूडान बाना धीर गिनी न कोपगा की कि यदि संयुक्त राष्ट्र संघ कायो मण्टारग्य की एकता मार प्रादे निक धककठता को बनाये रखने के लिए अपने निर्धारित उद्यम में शास्य प्रयत्नशीलन हुआ तो सब मिस कर सुमुम्बा सरकार का सीधी सैनिक सहायता देंगे। बूसरी धीर सुमुम्बा धीर संयुक्त राष्ट्र संधीय सनिकों में छोटी-मोटी मुठभङ्ग भी होन लयी।

१६ अगस्त १९९० को सुमुम्बा ने काँगो में १ माह के लिए सौची सामान स्थापित करने की बापला की तथा सुरक्षा परिषद को यह प्रस्थीमेन्ट भेजा कि यदि एक सप्ताह के भीतर वह समस्या का पूर्णरूपेण सन्तोषजनक हल नहीं प्रदान कर पड़े तो वह एक धमकी की मित्र-राज्य की सहायता से बटगा पर आक्रमण कर देगा किन्तु सब ने काँगो के इन संकट में निष्पक्षता और तटस्थता का स्वयं भवनाया। अगस्त के अन्त तक स्थिति और भी बिगड़ने लगी तथा कंटंगा का अनुसरण करते हुए काँगो के अन्य प्रांतों में भी पृथक राज्य स्थापित करने की नीति अपनाई। विभिन्न प्रांतों में जियापासह बिले और सुमुम्बा की सरकार के विरुद्ध बिद्रोह होने लगे। कसाई प्रांत में पार्ल्ट कसोंबी ने एक नवीन स्वतन्त्र 'अनिज राज्य' (Mining State) की घोषणा करते हुए स्वयं का उसका राष्ट्रपति घोषित कर दिया। इसी तरह इक्वेटोर (Equator) प्रांत में एक अन्य व्यक्ति जिन बोको काँगो ने इसे स्वतन्त्र घोषित किया। देश के विभिन्न प्रांतों की इन पृथक्करणवादी नीति को रोकने तथा पृथक्तावादी तत्त्वों को कुचल देने के लिये सुमुम्बा ने सैनिक शक्ति का आश्रय लिया। लेकिन जब उसने सोवियत विमानों की सहायता से कंटंगा के उत्तर में किबु और न्याई प्रांतों में बिद्रोह को दबाने का प्रयास किया तो बिद्रोहियों ने बेस्वियम भाँति बेलों से सहायता प्राप्त की। अगस्त के अन्तिम सप्ताह में कसाई प्रांत में भीयल लड़ाई छिड़ गई और सितम्बर के आरम्भ से ही काँगो में अतिक्रमण करने के लिए विभिन्न सेनाओं के बीच कटु संघर्ष आरम्भ हो गया। राष्ट्रपति कासाबुबू और प्रधानमंत्री सुमुम्बा दोनों ही इस बात में बहि मने लगे कि सेना और प्रशासन पर उनका एकाधिकार हो जाय। इसी समय संयुक्त राष्ट्र सचीय सेनाओं ने बिबेही हस्तक्षेप को रोकने के लिए काँगो के सभी हवाई मार्गों पर अपना अधिकार स्थापित करते हुए इस दुहपुड में तटस्थता की नीति स्वीकार की। काँगो की समस्या को सुलझाना सब के लिए एक बड़ा चुफकर काम हो गया। यह स्थिति और भी कठिन बनभिए हो गई क्योंकि रूस एक बेस्वियम द्वारा दोनों पक्षों को तेजी से सहायता प्रदान की जाने लगी। सितम्बर के आरम्भ में रूस के १२ सामान होने जाने हवाई बहाक और १ टुक काँगो का पहुँचे।

४ सितम्बर को काँगो में राष्ट्रपति कासाबुबू की इस घोषणा के साथ बड़ा नाटकीय घटनाक्रम शुरू हुआ कि यह सुमुम्बा को प्रधानमंत्री पद से हटा रहा है। कंटंगा में इस घोषणा का बहुत स्वागत हुआ किन्तु सुमुम्बा आसानी से हार मानने वाला नहीं था। उसने काँगो की संसद के दोनों सभनों की बैठक धामभित की जिससे कामाबुबू पर बेस्वियम का पिटू होने का आरोप लगाया गया। सुमुम्बा ने निम्न सदन (Lower House) में ११ के विरुद्ध ९० वोटों से और उच्च सदन (Upper House) में २ के विरुद्ध ४१ वोटों से अपने पक्ष में विश्वास प्रस्ताव पारित करवाया। तत्पश्चात् उसने तुरन्त ही यह घोषणा की कि राष्ट्रपति कासाबुबू को परमपूत कर के वह स्वयं राज्य के अध्यक्ष और प्रधान सेनापति का कार्य संभाल रहा है। इस समय सुमुम्बा ने संयुक्त राष्ट्र संघ पर भी अपने आक्षेपों की बर्षा की और कहा कि संघ की नीति से काँगो सरकार को नहीं बल्कि बिद्रोहियों को लाभ पहुँच रहा

है। लुमुम्बा ने माँग की कि या तो लियोपोल्डबिसे रेडियो स्टेशन और कांगो के हवाई प्रद्वों की सशाय सेनाओं क नियन्त्रण से मुक्त कर क उसके अधिकार में शाय बिया जाय या एसा न करने पर सब की फौजें कांगो से शौट जायें। इसी तरह कटंगा की राजधानी एलिजाबेथ में भी बिद्रोही सशाय फौजों द्वारा हवाई प्रद्वों पर अधिकार का बिरोध कर रहे थे।

कांगो और कटंगा में संयुक्त राष्ट्र सशाय सेना के प्रति बहुत हुए असहयोग और बिनेमी कस्तियों क हस्तक्षेप ने मिल कर संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने कांगो में बिफट स्थिति पैदा कर दी। ७ सितम्बर को महासचिव डाय हेमरजोल्ड ने बिदेसी कस्तियों के हस्तक्षेप का बिरोध करते हुए संघ के समक्ष यह सुझाव रखा कि गृह युद्ध का शीघ्र बिस्फोट होना से पूर्व ही कांगो की सेनाओं को नि-सस्त्र कर देना चाहिये। ८ सितम्बर को महासचिव ने बेस्त्रियम द्वारा कांगो में सपनी सेना बनाये रखने क हथियार भेजने की प्रकृति की निन्दा की। सुरक्षा परिषद् में महासचिव ने कांगो में रेडियो स्टेशन क हवाई प्रद्वों पर सशाय फौजों के नियन्त्रण को उचित बताते हुए इस बात पर बल दिया कि कासाबुबू और लुमुम्बा के बीच होने वाले कति-संघर्ष में संघ के लिए निष्पक्ष रहना ही उचित है। महामचिव की रिपोर्ट क उनके सुझाव पर सब परिषद ने ११ सितम्बर को बिचार धारम्भ किया ता परिषद में शाय लेने के सिधे कांगो के दोनों पक्षों के दो प्रतिनिधि मंडलों के आ जाने से बिचित्र स्थिति पैदा हो गई। सुरक्षा परिषद के सामने समस्या यह उठ लड़ी हुई कि कासाबुबू के प्रतिनिधि मंडल को माय्यता ही शाय या लुमुम्बा क प्रतिनिधि मंडल को। अन्त में परिषद द्वारा यह निश्चित किया गया कि १७ सितम्बर को कांगो समस्या पर बिचार करने के लिए संघ का एक बिरोध अधिवेशन बुलाया जाय।

सेकिन इसी माध्य घटनाओं ने फिर एक नया मोड़ लिया। १३ सितम्बर को कासाबुबू ने लुमुम्बा को पिरफ्तार करके राजधानी के पास ही एक सैनिक कैम्प में भेज दिया। परन्तु लुमुम्बा अपने पहरेदारों के बीच से किसी प्रकार निकल भागा। उसने उसी रात कांगो की संसद की बैठक बुला कर उसके समर्पण से अपने को राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री दोनों ही शोषित कर लिया ताकि कासाबुबू का ४ सितम्बर को उसे पकच्युठ करने वाला धारेस लागू न हो।

कासाबुबू-लुमुम्बा संघर्ष से कांगोली सेना बहुत परेशान हो चुकी थी पण १४ सितम्बर को दोनों पक्षों के इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए, कर्नल मोबुतू ने सारी शासन-सत्ता अपने हाथों में ले ली और ११ दिसम्बर १९६० तक कांगो में सैनिक-शासन बने रहने की शोपखा कर दी। मोबुतू ने यह भी शोषित किया कि प्रधान मंत्री क राष्ट्रपति उक्त समय तक अपने पद से निवृत्त समझे जायेंगे जब तक देश की समस्याओं का समाधान नहीं हो जायेगा। शासन-सत्ता को हथियाने के बाद ही कर्नल मोबुतू ने शोषित नागरिकों और राजबूत को कांगो से बसे जाने का धारेस दिया। यह कि लुमुम्बा के साथ भी बुरा व्यवहार होने लगा, घत यह संयुक्त राष्ट्र।

की सेनाओं के संरक्षण में जमा गया। यह स्मरणीय है कि मोबूतू को न केवल पार्षक्यवादियों का बल्कि निरुत्थित राष्ट्रपति कासाबुबू का भी समर्थन प्राप्त था।

१ अक्टूबर को लुमुम्बा ने अपने सरसिद्ध रथान से बाहर निकल कर जनता से पर्दास की कि वह उसे अपना समर्थन प्रदान करे तथा खाना और पानी की सेवा को छोड़ कर संयुक्त राष्ट्र सैन्य सेवाओं को वेष्ट से बाहर निकालने की दिशा में तत्पर हो। लुमुम्बा की इस चेष्टा से क्रुपित होकर कमरा मोबूतू ने यह मांग की कि संयुक्त राष्ट्र सैन्य सेवा ११ अक्टूबर को तीन बजे तक लुमुम्बा को उसे समर्पित कर दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाय। संघ ने इस चेतावनी की उपेक्षा करते हुए प्रत्युत्तर दिया कि एक राजनीतिक नेता का नामून की उचित प्रशिक्षा के बिना पकड़ा जाना एक सर्वथा अनैतिक एवं अन्यायपूर्ण कार्य है जिसकी स्वीकृति नहीं की जा सकती। संघ के दूर रख के प्रागे मोबूतू की चेतावनी कोरी गीबड़ ममकी बन कर रह गयी।

कांगो में महासचिव ने ठट्ठस्पता की जो नीति अपनाई उसे सोवियत कम और लुमुम्बा सन्देश की नीति से देखते थे। उनका कहना था कि संघ न लिये न्यायसंयत एवं धौनित्वपूर्ण रख यही हाना चाहिये था कि वह लुमुम्बा की वैध सरकार (Legitimate Govt.) का समर्थन करता इस विरोधियों की धाक्कणकारी कामबाहियों से बचाता तथा काकासी संसद को पुन बुसा कर समस्या के समाधान की दिशा में अग्रसर होता।

किन्तु इन माना प्राक्षेपों और आरोपों की बोझार में महासचिव अपने ही तरीके से समस्या का समाधान करने को प्रयत्नशील थे। उन्होंने बीघ्र ही १८ अक्टूबो की एक "कांगो परामशदात्री समिति" (Congo Advisory Committee) नियुक्त की जिसका कार्य कांगो समस्या पर उन्हें (महासचिव को) परामर्श प्रदान करना था। भारत के श्री राजेश्वरबयाल को कांगो में महासचिव का विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया गया जिन्होंने अपने पर्याप्त निरीक्षण और कार्य के प्राभा पर महासचिव का कांगो पर लगभग १६ हजार शब्दों की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में स्पष्टत बतया गया कि— बेस्त्रियनों में पुबकतावादी कांगोली नेताओं को सज्ज करने में सहायता प्रदान की है बेस्त्रियन प्रबिकारियों द्वारा इन सेनाओं का सञ्चालन किया गया है और कुछ क्षेत्रों में कृतापूर्ण धमानुषिक कार्य करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं का है। कसाई प्रांत में इनका नेतृत्व एक बेस्त्रियन कर्नल द्वारा किया जा रहा है। कांगो में इस समय कोई सरकार नहीं है। केवल दो संस्थाओं का मूलाधार मात्र है और ये संस्थायें हैं— राष्ट्रपति का पद और संसद। कांगो की सेना सुरक्षा और मुहड़ना की स्थापना करना तो दूर रहा उसे पराजयता उत्पन्न कर रही है।

श्री राजेश्वरबयाल द्वारा कांगो का मयाबहू एवं धरपथ मासिक विज्ञ उपस्थित किये जाने के उपरान्त नवम्बर १९६१ में महासमा में कांगो की समस्या पर पुन विचार प्रारम्भ हुआ। सबसे पहला प्रश्न यह पठा कि मय द्वारा कांगो के कौन-से प्रतिनिधि मंडल को मान्यता दी जानी चाहिये—कासाबुबू

के प्रथम सम्मेलन में अल्प में पर्याप्त विचार-विमल एव वाद-विवाद के बाद २३ नवम्बर १९६० को महासभा के बहुमत द्वारा यही निष्पत्ति किया गया कि कासाबुसु का प्रतिनिधि मंडल ही संघ की मान्य है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि महासचिव द्वारा नियुक्त 'कांगो परामर्शदात्री समिति' के प्रमुख मन्त्र्य भी सुमुम्बा विरोधी थे। उनका कहना था कि जब सुमुम्बा सत्ताग्रहण का, तब भी उसने इतनी शक्ति नहीं की कि वह देश में एकता और सुव्यवस्था की व्यवस्था करता प्रथम सत्ताभ्युत्थन-प्रवृत्ति में उसकी शक्तिशालिता में विश्वास करना उचित है। इसके अतिरिक्त उनका यह भी आरोप था कि सुमुम्बा के ही प्रामाण्य पर संघीय सेनाओं कांगा यहाँ और प्रथम बड़ी संघीय सेनाओं तथा कार्यो का प्रथम विरोध कर रहा है, प्रथम उसे संघ का सम्बन्ध नहीं किया जाना चाहिये।

महासभा में कांगो के प्रतिनिधि-मण्डल की मान्यता के प्रश्न पर जो मतदान हुआ उसके इस बात का स्पष्ट पता चल गया कि कांगो वर लक्ष्मीकन राज्यों में मर्यादा नहीं रहा है क्योंकि वहाँ घामा एवं उसके साथी राज्यों ने कासाबुसु-प्रतिनिधि-मण्डल का विरोध किया वहाँ कैमरून आदि अनेक राज्यों ने इसका समर्थन किया। कासाबुसु प्रतिनिधि-मण्डल का संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता मिलने में एक यह कारण भी सहायक हुआ कि स्वयं कासाबुसु ने म्पुयार्क जाकर पश्चिमी राज्यों की सहायता प्रेषित करने के सफल प्रयास किये।

इसके बाद से ही कांगो की राजनीति ने फिर से एक उदरनाक और माटकीय मोड़ लिया। २७ नवम्बर को जब कासाबुसु, लिबोपोस्वबिले-स्वतंत्र अपने महान् विद्रोह-प्रवृत्ति ममाने से व्यस्त था, तभी अन्तर्गत प्रथम मंत्री सुमुम्बा संयुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षण से भाग निकला। थोरियटन प्रवेश में प्रथम भी उसके समर्थकों की शक्तियाँ काफी थीं अतः वह इस प्रदेश की राजधानी स्टीनलीबिले पहुंच कर अपना संघर्ष जारी रखना चाहता था। किन्तु बुर्माण्ड तो सुमुम्बा के मानो हाथ धोकर पीछे पड़ गया था अतएव स्टीनलीबिले के रास्ते में ही अन्तर्गत मोस्तू के सैनिकों द्वारा वह गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार करने के पश्चात् लिबोपोस्वबिले के प्राया तथा और मजबूत कर दिया गया। कहा तो यह जाता है कि उस वर माना प्रकार के प्रत्याहार किये गये वरन्तु उसने अपना हाथ नहीं छोड़ा और किसी भी उपमानजनक समझौते को मानने से इन्कार कर दिया। अन्तर्गत मोस्तू ने यह घोषणा की कि सुमुम्बा पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया जायगा।

सुमुम्बा के पलायन और उसकी मोस्तू द्वारा गिरफ्तारी की कटका से उत्पन्न कांगो की नवीन स्थिति पर ८ दिसम्बर को सुरक्षा-परिषद ने विचार करना प्रारम्भ किया। परिषद में दो प्रस्ताव उपस्थित किये गये—एक तो और पश्चिमी बैसीम। सोवियत संघ ने प्रस्ताव रद्द कर यह मांग की कि—

() सुमुम्बा को सुरक्षित मुक्त किया जाय;

(i) मोस्तू की सेना को निःशस्त्र किया जाय

(ii) मोस्तू को हथियार और बैसा किच सौतों से मिल रहा है—

इसका पता लगाने के लिये इण्डो-एशियन राय्यों का एक प्रायोगिक बर्नामा जाय

- (iv) बेल्जियम का काँग्रेस में प्रतिनिधित्व हटा दिया जाय एवं
(v) काँग्रेस की बैठक बुलाई जाय ।

किन्तु पश्चिमी राष्ट्रों ने सोवियत संघ के इस न्यायोचित प्रस्ताव को बहुमत से रद्द करके प्रत्युत्तर में एक दूसरा प्रस्ताव पेश किया जिसे सोवियत संघ ने अपने बीटो से समाप्त कर लिया । इस प्रस्ताव में कहा गया था कि काँग्रेस में बन्धी व्यक्तियों से मतभेद उनकी जाँच करने के लिये प्रभारतीय रेडक्रॉस के लोगों को पेशा जाय ।

कभी धीरे पश्चिमी देशों के प्रस्तावों के प्रतीकृत हो जाने से मुग़ला परिषद में गतिरोध पैदा हो गया । इस पर समस्वा महासभा में विचारार्थ प्रस्तुत हुई । १७ दिसम्बर १९६० को भारत धाना संयुक्त बरब गणराज्य इण्डोनेशिया ईराक और ब्रुगेस्ताभिया ने महासभा में निम्नलिखित धामत्र का प्रस्ताव रखा

१ संघ की काँग्रेस में शांति और सुरक्षा की र्थग होने से रोक कर कानून तथा व्यवस्था कायम करनी चाहिये

२ संघ काँग्रेस की महत्वपूर्ण धारिक धारक्यकताओं की पूर्ति करे

३ सभी राजनीतिक बन्धियों विशेषकर कन्द्रीय सरकार के धारिकारियों और संसद-सदस्यों को गुरन्त रिहा किया जाय

४ संयुक्त राष्ट्र संघ की संरक्षकता में काँग्रेस की बैठक धारिकम्बे बुलाई जाय

५ औरत ऐसे उपाय किसे जायें कि सत्तम दस देहे के राजनीतिक धौवन में कीई हस्तक्षेप न करे और विवेगियों से कीई सहायता प्राप्त न कर पायें ।

६ बेल्जियम सरकार की ध्यान सभ के प्रस्तावों की धारहेतना को और धारकष्ट किया जाय

७ बेल्जियम सरकार अपनी सना पूरी तरह काँग्रेस से हटा ले ।

इस समय काँग्रेस की सबसे बडिग समस्या सोम्बे के नेतृत्व में कटपा गणत का केन्द्रीय सरकार से पुनक होकर इसके मान सक्थ करना था । कटपा ११ जुलाई १९६१ को धयन स्वाधीन होने की बोधणा कर बी बी धौर (बी) से बन्धिमम सोम्बे को हर प्रकार की सहायता से रूडे वे । कनिबं सम्पति से भरपूर और धौधौमिक हट्टि से भीमूडे प्राप्त कटपा के बिना काँग्रेस एक विधौमिवा देह था । इसीमिये क-पार्टि न पुनोई १९६२ में सन्धन के एक प्रेस सम्मेलन में धयनीय यह मत प्रकट किया धारिक— काँग्रेस की संमध्या कटपा को समरवा है । सन्धन की संमध्या रित्त की संमध्या है । बित्त की संमध्या रूगियन गिनियरे-कम्पनी की संमध्या है । यह कम्पनी काँग्रेस की संमध्या के धीघ्र समाधान करने में महत्वपूर्ण सहायता से सक्नी है । क-पार्टि ने बिस कम्पनी का उस्नेक किया यह बेल्जियम के शासन-काल से ही काँग्रेस में बिलाल कनिबं-सम्पति को निरकासर्ग की कार्य कर रही थी । बिरब की

अत्यन्त सफल अतिथि कम्पनियों में इसकी गणना की जाती थी। कांगो के कुम टैक्सों का ४५ से १० प्रतिशत साम भेजने यही कम्पनी विया करती थी। इस तरह कांगो की धार का यह कम्पनी प्रधान स्रोत है और यदि कटगा प्राप्त हो यह कांगो से पृथक् कर देती है तो कांगो विवाहिया बन जाता है, १९६१ में इस कम्पनी ने अकेले सोम्बे सरकार को टैक्सों तथा डिभिडेण्ड के रूप में ४ करोड़ ५४० मिलियन पीछ प्रदान किये।

१९६१ में कांगो की राजनीति में एक बड़ी तर्जनाक घटना घटी। १३ जनवरी को अधिकृत रूप से कटगा में यह घोषणा की गई कि सुमुम्बा एक दिन पहले कटगा के एक छोटे से भाग के निवासियों द्वारा मार जाये हैं। प्रायः सभी सनार में इस हत्या की तीव्र मर्तन्ता की गई और किनी ने भी यह विश्वास नहीं किया कि सुमुम्बा के प्राण ग्रामवासियों ने लिये हैं। हुआ यही कि कर्नल मोबूतू और राष्ट्रपति कासाबुबू ने सोम्बे का सहयोग प्रकट करने के लिए सुमुम्बा को सोम्बे सरकार को सौंप दिया जिसने यह धारणा बनाया कि सुमुम्बा के प्राणों की पूर्ण रक्षा की जायगी। लेकिन कुछ दिन बाद सोम्बे के आदेश पर एक बैस्त्रियन सैनिक द्वारा सुमुम्बा व उसके छात्री को गोली मार दी गई जिसकी पुष्टि बाद में संयुक्त राष्ट्र संघीय जांच घामोद ने भी कर दी। प्रारम्भ में कटगा सरकार ने यह स्वायत्त कर सत्ता को बोसा देने का प्रयास किया कि सुमुम्बा बेल से जाग पये वे और इसी अवस्था में कुछ कटगा वासियों ने उन्हें गोली मार दी, किन्तु जांच पूरी हो चुकने के बाद जब यह निश्चित हो चुका है कि उनकी हत्या भानबूक्त कर की गई थी और उसके लिए कासाबुबू भी जिम्मेदार था।

भी, सुमुम्बा की हत्या के कमस्वक्य संसार में एक धंवर लूकान उठ उठा हुआ और कुछ समय तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति धारणिक विस्फोटक रही। घोषित रूप में तो सुमुम्बा की मृत्यु का सम्पूर्ण दायित्व महासचिव हैमरलोन्ड पर डाल दिया और कहा कि एक ऐसे पक्षपातपूर्ण व्यक्ति को यह संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था का महासचिव मानने को तैयार नहीं है परन्तु स्वी विरोध के बावजूद भी हैमरलोन्ड ने अपने पक्ष से त्यागपत्र देना स्वीकार नहीं किया। वे कांगो-सम या के न्यायपूर्ण एवं उचित समाधान के लिए कटिबद्ध थे।

सुमुम्बा की मृत्यु के बाद सोम्बे का रूप और अधिक उग्र हो गया। उसका साहस इतना बढ़ गया कि अपने संयुक्त राष्ट्र संघ को ग्रह खमकी देना शुरू कर दिया कि यदि संघीय सेनाएँ कटगा भेजी गईं तो उसके विरुद्ध कोर धाकमर्यादात्मक कार्यवाही की जायगी। कटगा में जो संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाएँ बिजनाम थीं उन पर भी कूटपूठ हमले किये जाने लगे। इतना ही नहीं स्वयं तियोपोम्बुबिसे में मोबूतू के सैनिकों ने संघीय फौजों पर धाकमर्याद करना प्रारम्भ कर दिया और तियोपोम्बुबिसे हवाई धाकें माली करने की संघ को चुनौती भी दे दी गई। इसी छोड़ सुमुम्बा की मृत्यु के बाद भी सुमुम्बा के समर्थक निष्क्रिय नहीं हुए उन्होंने केन्द्रीय सत्ता की अपेक्षा कर अपनी प्रजा सरकार मोरियंट प्राप्त में कायम कर ली।

कांगो की बियड़नी हुई परिस्थिति पर पर्याप्त विचार विमर्श करने के उपरान्त सुरक्षा परिषद ने इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए। २१ फरवरी १९६१ ने प्रथम प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि कांगो में यह युद्ध रोकने के लिए सब उपाय बरत जायें और ऐसे उपाय किये जायें कि वे सब बिदेगी सैनिक और बेतत्तमोगी राजनीतिक परामर्शदाता जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सेवा में न हों कांगो से चले जायें। २४ नवम्बर १९६१ को पारित दूसरे प्रस्ताव में कहा गया कि कांगो से कटंगा के पृथक होने के कार्यों को रोकने का प्रयत्न किया जाय।

उपर्युक्त प्रस्तावों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ कांगो समस्या के समाधान की दिशा में कुछ बड़ कदमों से धाये बढ़ा। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक सैनिक बलान नियत की गई जिसके सेनाध्यक्ष आयरलैंड के जनरल सियल मैक घोबन बनाए गए। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को १००० सैनिक देने का वादा किया। जब यह प्रतीत होने लगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ कटंगा के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करेगा तो संघ के धारकों व प्रस्तावों की पूर्ण ज्येदा करते हुए बेस्वियम में भी एक व्यक्तिवादी सेना कटंगा भेज दी। १२ मार्च १९६१ को कांगो में वहाँ के तीन नेताओं का (जिसमें मोम्बे भी शामिल था) एक घोसनेब सम्मेलन हुआ जिसमें कांगो के विभिन्न राज्यों का एक महासंघ स्थापित करने का निश्चय किया गया। लेकिन २ अप्रैल को मोम्बे ने अपने पूर्व निश्चय को ठुकराते हुए महासंघ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। बुलाई १९६१ में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में कायोगी सस्य का अधिकेशन हुआ गया। इसके दूसरे दिन प्रधानमंत्री जोसेफ इलियो की सरकार ने परत्वाव कर दिया और २ अप्रैल को साइरिल मदीसा कांगो के प्रधानमंत्री बने। इस बटनाक्रम के बाद से ही कांगो की केन्द्रीय सरकार के प्रति लोगों का रुत और भी कठोर हो गया। लाम्बे ने संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ भी किसी भी प्रकार का सहयोग करने से इन्कार कर दिया। कटंगा सरकार के सहयोग को देखते हुए १ दिसम्बर १९६१ को संघ ने उसके साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इसके तुरन्त बाद ही १३ दिसम्बर को कटंगा प्रदेश पर नियन्त्रण रखने के केन्द्रीय कांगोली सरकार के अधिकार में उसे लाने के लिए, एसिवाबैक बिले के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर सशस्त्र फौजों ने कब्जा कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने कटंगा में संघ के इस कार्य की बहुत निन्दा की और इसे अर्थबद्ध बताया। ब्रिटिश समाचार पत्र और बी० बी० सी० ने कटंगा में अस्थित भारतीय सैनिक बल पर निन्दा आरोप लगाये और उनके द्वारा कटंगा के नागरिकों पर किये जाने वाले तत्कालित अत्याचारों की मनगढ़न्त कहानियाँ प्रचारित कीं।

स्वयं पश्चिमी शक्तियों और साथ ही सोवियत रुत धारि की अनुचित धालोषनाओं से व्यथित हो कर, महासंघिब डाक हैमरसोस्ट कांगो की राजनीति में तेजी से कार्यवाही करने में व्यस्त हो गए। उन्होंने कटंगा को केन्द्रीय कांगोली शासन के अन्तर्गत लाने का निश्चय कर लिया। अमेरिका और ब्रिटेन ने उनके इस न्यायसंगत निश्चय को पसन्द नहीं किया। साभ्राज्यवादी शक्तियाँ कड़ हो कर हैमरसोस्ट के विरुद्ध बहमर्शों में लिप्त हो गईं। इस

पड़यंत्र में बेस्त्रियम सेना के उच्च पदाधिकारी कटगा के शोम्बे धीर उत्तरी राबेनिया क प्रधानमंत्री सर राज बेनेन्सको सम्मिलित थे। सितम्बर के महीने में महासचिव कांगो की स्थिति का अध्ययन करने के लिए धीर कांगो के नेताओं से प्रत्यक्ष बातचीत करने के लिए स्वयं कांगो गए। परन्तु अपने इस यात्रि परिषयान में शोम्बे से बाठों के लिए त्रियोयोरडविले से एन्बोसा जाते हुए, मार्ग में ही इनका वायुयान रहस्यपूर्ण ढंग से कुबंटना का शिकार हो गया धीर महासचिव सहित विमान के सभी मुसाफिर बल कर खत्म हो गए। भी हाग हैमरशोम्ड शांति के धीर संघ के उच्च सिद्धान्ती के प्रतीक बन गए थे। उनकी हत्या से सारे संसार में शोक का बाढाबग्गा बन गया। यद्यपि उनकी मृत्यु की परिस्थितियों पर सब नी रहस्य का प्रावरण पड़ा है, फिर भी यह निश्चित है कि कांगो की कुरिस्त कूटनीति धीर शोम्बे का पड़यंत्र ही उनकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी है।

१८ सितम्बर को ही भी हैमरशोम्ड की मृत्यु-वटना पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद को प्रावश्यक बैठक हुई। नये महासचिव की नियुक्ति के प्रश्न को लेकर पश्चिमी देशों और सोवियत रूस के मध्य विबाद बनता रहा धीर घण्ट में बर्मा के भी ऊ-बाट को इस पक्ष पर नियुक्त करने के लिए मन्त्री पक्ष सहमत हो गए।

श्री ऊ-बाट ने प्रारम्भ में ही कांगो की समस्या पर काबू-पाने के लिए दुकतापूर्वक कार्यवाही करने का निश्चय किया। घण्ट १९६२ में उन्होंने कांगो क पुन एकीकरण की योजना (Re-unification Plan) तैयार की जिसका उद्देश्य कांगो के विभिन्न प्रायों को एकता के बुक सूत्र में पिरोना था। किन्तु श्री ऊ-बाट की इस योजना में सबसे बड़ी बाधा कटगा के शोम्बे क युनियन मिनिस्ट्रे कम्पनी की थी। इस बाधा को दूर करने के लिए घण्ट १९६२ में ही श्री ऊ-बाट ने यह सुझाव दिया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को कांगो में एकता स्थापित करने हेतु अपने प्रभाव का प्रयोग करना चाहिए धीर यदि इसके भी काम न बना तो फिर कटगा के विरुद्ध धार्मिक प्रतिबन्ध लगाने होंगे। इन प्रतिबन्धों में सबसे महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध यह होगा कि युनियन कम्पनी द्वारा कटगा को दी जाने वाली बनराशि बन्ध (Freeze) कर भी बाय क्योंकि शोम्बे की सम्पूर्ण कामवाहियों का मुख्य धाधार ही इस कम्पनी द्वारा मिलने वाली वित्तीय सहायता है। महासचिव के इस प्रस्ताव पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को कोई प्राप्ति न थी किन्तु फ्रांस ब्रिटेन क बेस्त्रियम इसके विरोधी थे।

घण्ट में अमेरिका ब्रिटेन क बेस्त्रियम से प्रावश्यक परामश करने के उपरान्त महासचिव द्वारा कांगो के एकीकरण की जो विस्तृत योजना तैयार की गई उसमें घनेक सर्वैवातिक सैनिक क धार्मिक उपायों का निर्देश था कांगो के सभी विधानों की व्यवस्था भी केन्द्रीय तथा प्राय्तीय तत्कारों में राजकीय धाय के विमाजन का नवीन नियम या धीर कांगो की समा के एकीकरण तथा केन्द्रीय सरकार क सभी बर्मा के सम्मिलित बाधार पर बनाने के प्रस्ताव थे। बुकि शोम्बे द्वारा इस योजना को दूर रा दिये जाने की सभावना भी घण्ट महासचिव द्वारा इस बात पर बोर दिया गया कि यदि

शोम्बे १० दिन में योजना को स्वीकार नहीं करे तो कटंगा के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध मगान तथा सैनिक कार्यवाही करने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

१९ नवम्बर १९६२ को काँगो में शंभ के प्रतिनिधि श्री रोबर्ट गाडिनर द्वारा काँगो के एकीकरण हेतु शोम्बे से प्राप्त किया गया कि वह निम्नलिखित ५ बातें पूरी करे—

(i) वह अपने बड़े सैनिक अधिकारियों को यह आदेश दे कि वे राष्ट्रपति कासाबन्गू के प्रति बफ़ादारी की शपथ लें और कटंगा को की धरतल बना दें।

(ii) कटंगा की जातों से होने वाली धान का उपयोग केन्द्रीय सरकार के साथ मिल कर किया जाय।

(iii) केन्द्रीय सरकार के कस्टम व आयातन विभाग (Customs and Immigration) विभाग के कर्मचारी कटंगा के अन्य प्रांतों की भांति ही कार्य करें।

(iv) संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय सेना को जब तक क सभी निषिद्ध स्वार्थों में प्रवेश की सुविधा मिले क्योंकि इन स्वार्थों में काँगो की एकता के बाधक विचारा बतल मोगी सैनिक (White Mercenaries) स्थिते हुए हैं।

(v) वह बेतन भागी विदेशियों को देश से बाहर निकालने में संघ को सहाय्य प्रदान करे।

इसी मध्य महासचिव ने ब्रिटेन बेस्विचम पुर्वपास दक्षिण अफ्रीका प्रादि को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे कटंगा से कोई सामान न खरीयें। काँगो के प्रधान मन्त्री एबीसा ने भी १७ अगस्त १९६२ को अफ्रीका की कि वे कटंगा के माल का बहिष्कार करें। संयुक्त राज्य अमेरिका से इस बात के विरुद्ध प्रभुत्व किया गया कि वह काँगो-सेना को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक कुछ सामग्री भेजे।

यद्यपि इन सभी प्रयत्नों के मूल में संयुक्त राष्ट्रसंघ की इच्छा बुझत न होकर केवल शोम्बे को अंतर्कित करके उसे काँगो की एकता में सहाय्य बनाने के लिए राशी करना या परन्तु जब शोम्बे द्वारा कटंगा में संघ के प्रति न केवल अपेक्षापूर्वक रूप धरनाया गया बल्कि कटंगा की सेना द्वारा संघीय सेना पर हमला भी होने मया तो महासचिव ऊ बात ने संघीय फौजों को व्यापक पैमाने पर सैनिक कार्यवाही करने का आदेश दे दिया। इस कार्यवाही में बागुयारों और बमबर्षकों का उपयोग भी किया गया। इस बार अमेरिका और कस ने भी महासचिव के प्रयासों में सहयोग दिया। वस्तुतः डाम हैमर, बोस्टन की हत्या ने इन महासचिवों को कुछ ठोस कार्यवाही करने के लिए विवश कर दिया और शोम्बे के विरुद्ध उत्पन्न हो गए विरहव्यापी जनमत की अधिक समय तक अपेक्षा करना सम्भव न था। अमेरिका व कस समर्थित संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रभावशाली सैनिक कार्यवाही ने शोम्बे के झुकने पुड़ा दिये। २१ जनवरी १९६३ को कटंगा की सेनाओं के अन्तिम बड़े कोलंबेजी पर संघीय फौजों का अधिकार हो गया। अन्त में शोम्बे ने बूटने टेक दिये और २३ जनवरी, १९६३ को बोचवा की कि कटंगा का काँगो के साथ पुनर्करण

समाप्त होता है और अब बहु महासंघित ठ-बाट द्वारा बनाई हुई एकीकरण की योजना में पूरा सहयोग देगा।

इस प्रकार कांगो में घनत्व, शांति स्थापित कर दी गई संयुक्त राष्ट्रसंघ का शांति स्थापना का प्रधान काम कांगो के एकीकरण के साथ समाप्त हुआ। परन्तु फिर भी कांगो के शासन को स्थिरता प्रदान कर बड़ा प्रौद्योगिक प्राथिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक प्राथिकिक आदि क्षेत्रों में उन्नति साम का काम बाकी था। घन संघ द्वारा इस बिना व विशेष प्रयास किये जाने लगे जो प्राथ भी गूनाधिक रूप में चल रहे हैं। वास्तव में श्री राजेश्वर वराम का यह कहना सही था— 'संयुक्त राष्ट्रसंघ यहाँ सहायता देने के लिए है हस्तक्षेप करने के लिए नहीं परामर्श देने के लिए है किन्तु भाजा देने के लिए नहीं। संघ बीच बचाने करने के लिए है पर किसी का पक्ष मने के लिए नहीं। संघ ने इसी नीति का आचरण करते हुए कांगो के हवाई अड्डों पर अधिकार करके दोनों पक्षों को कम एवं परिष्कृत की सहायता मने से बचि कर दिया। और इस तरह कांगो का कोरिया बनने से बचा दिया। कांगो को बीच युद्ध एवं प्रहयुद्ध की की धाम से बचाने रखने का सर्वाधिक योग्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयासों को ही दिया जा सकता है। यदि संघ की योजनायें यहाँ न गई होती ता कांगो साम्मवादी एवं परिष्कृत शक्तियों के समस्त संघर्ष का स्थल बन गया होता।'

(२०) परिष्कृत इरियम की समस्या
(The Question of West Irian)

युक्तमूनि—पश्चिमी इरियम प्रशांत महासागर में स्थित न्यूगिनी टापू का परिष्कृत भाग है। इरियम इस टापू का स्वाधीन भाग है। टापू का पश्चिमी भाग घर्षण परिष्कृत इरियम प्रवेश बहने हासैण्ड के अधिकार में था और उच्च न्यूगिनी कहलाता था। हासैण्ड से लपभग बारह गुना बड़े और लपभग आठ-दस लाख की जनसंख्या वाले इस विशाल क्षेत्र में हासैण्ड ने बहुत अधिक पूँजी लगा रखी थी। साथ ही यह हासैण्ड की प्रतिरिक्त आबादी के बसने के लिये भी उपयुक्त क्षेत्र था।

जब इण्डोनेशिया स्वतंत्र कर दिया गया तब भी हासैण्ड ने पश्चिमी इरियम पर से अपना अधिकार हटाने में इन्कार कर दिया। उसका तर्क था कि इस टापू के निवासी पपुमन लोग मस्क की दृष्टि से इण्डोनेशिया के लोगों से सर्वथा भिन्न हैं, और इन्हें भारतमिश्रण का अधिकार दिया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया हासैण्ड के पक्ष का जोरदार समर्थक था क्योंकि टापू के पूर्वी भाग पर उसका प्राधिपरय था जो अब तक बना हुआ है। १९४९ में इण्डोनेशिया के स्वाधीन होते समय हासैण्ड ने यह आश्वासन दिया कि १९६० तक पश्चिमी इरियम के अधिकार का निपटारा कर दिया जायगा। परन्तु यह आश्वासन पूरा नहीं किया गया। इस पर इण्डोनेशिया से उसका विवाद इतना बढ़ गया कि दोनों देशों ने अपने दूटनीतिक सम्बन्ध भंग कर दिये। विवाद के इतना बढ़ कर ने लेने पर पश्चिमी इरियम की समस्या पर विचार करने के लिये एक संयुक्त राष्ट्र संघीय आयोग की स्थापना की गई जिसमें उच्च और इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि शामिल किये गये। किन्तु आयोग के उच्च तथा

इण्डोनेशियायी प्रतिनिधियों में मतभेद इतने अधिक रहे कि दोनों ने अपनी धमक धमक रिपोर्ट प्रस्तुत की। २३ दिसम्बर को प्रायोग की बातों विफल होना पर इण्डोनेशिया के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने यह घोषणा कर दी कि अब पश्चिमी इरियन के प्रश्न पर हार्लैण्ड से बातों केवल सत्ता के हस्तान्तरण के प्रश्न पर ही होगी।

संयुक्त राष्ट्र सभ में समस्या का विविधत्व प्रवेश—इण्डोनेशिया ने अब यह दावा कि हार्लैण्ड पश्चिमी इरियन की समस्या का ज्ञातिपूर्ण समाधान के प्रति निष्क्रिय एक उदासीन है तो १७ अगस्त १९५४ को उसने संयुक्त राष्ट्र में यह विचार विधिक प्रस्तुत कर दिया। इण्डोनेशिया ने महासभा से प्राधान्य की कि पश्चिमी इरियन का प्रश्न महासभा के नये अधिकारण की कार्य सूची में में सम्मिलित कर लिया जाय। इण्डोनेशिया ने कहा कि पश्चिमी इरियन महा से इण्डोनेशिया का अधिकार्य प्रग रहा है और प्रमुखता हस्तान्तरण के अनुच्छेद २ के अन्तर्गत जिसके द्वारा हार्लैण्ड ने इण्डोनेशिया की पूर्ण प्रमुखता हस्तान्तरित की है हार्लैण्ड को न्युगिनी के हस्तान्तरण के विषय में बातों करनी चाहिए, परन्तु उद्यने इस प्रकार की बातों करने से इन्कार कर दिया है। इण्डोनेशिया ने प्रमुखता दिया कि संयुक्त राष्ट्र सभ इस मामले में विमर्शपूर्ण सेकुर दोनों पक्षों को उचित हल ढूढने में सहायता करे। इण्डोनेशिया की सिकायत के प्रत्युत्तर में हार्लैण्ड का कहना था कि वह प्रमुखता के उद्देश्य-पत्र के अन्तर्गत (Under the Charter of Sovereignty) अपने अधिकारों (Obligations) से भी अधिक बातों कर चुका है लेकिन उसके सभी प्रस्ताव इण्डोनेशिया द्वारा ठहरा दिये गये हैं। हार्लैण्ड के प्रधानमंत्री ने यह भी तर्क दिया कि १९४२ में हुए में प्राबोधित योम मंत्र सम्मेलन में पश्चिमी इरियन का प्रश्न प्रसंग रखा गया था अतः अब इसको उठाना अनुचित है। यह भी बनीस दी मयी कि न्युगिनी के निवासी मस्त बोसी धर्म प्रादि की दृष्टि से इण्डोनेशिया वालों से संबंध विभक्त हैं।

साम्राज्यवादी हासण्ड के मित्र फ्रास्ट्रेलिया के प्रधान मंत्री के घोषण पर बर्ली के परराष्ट्र मंत्री भी के भी ने संयुक्त राष्ट्र सभ में इण्डोनेशिया के पश्चिमी इरियन सम्बन्धी दावे का खोरखार विरोध किया और हासण्ड का प्रबल समर्थन। यही नहीं ६ नवम्बर १९५० को हार्लैण्ड तथा फ्रास्ट्रेलिया की सरकारों ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में यह घोषणा की कि फ्रास्ट्रेलियाई न्युगिनी एवं न्युगिनी भौगोलिक तथा नृजन की दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः दोनों देशों कि एकता के विकास की दृष्टि से भीति और साधन में दोनों देश परस्पर सहयोग करेंगे --- वे इस भौगोलिक एकता को ध्यान में रखते हुए सहयोग के आधार पर राजनीतिक प्राणिक सामाजिक एवं सैन्यिक सभी क्षेत्रों में कार्यरत होंगे। इस संयुक्त विज्ञप्ति के मूल में यह उद्देश्य निहित था कि संयुक्त राष्ट्र में पश्चिमी इरियन के विषय पर हो रहा विचार-विमर्श किसी न किसी रूप में उनका पक्ष में प्रभावित हो। इस संयुक्त विज्ञप्ति के कारण इण्डोनेशिया अब इगर्दों के प्रति गर्भीर रूप से सन्निकित हो उठा और १९५७ से समस्त इण्डोनेशिया में पश्चिमी इरियन की मुक्ति के लिए एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन की शुरुआत हो गया।

महाममा में पश्चिमी राष्ट्रों का प्रयास होने के फलस्वरूप पश्चिम इरियन सम्बन्धी ११ अक्टोब्रियार्ई राष्ट्रों का पश्चिमी इरियन सम्बन्धी प्रस्ताव व्यापक हो विहाई बहुमत न मिलने से विरयया । अपने व्यापकता दावे को संघ में समर्थन न मिलने क कारण इण्डोनेशिया की जनता म व्यापक क्षम पैदा हुया और उषों के विश्व जनसोम मड़क उठा । जनता ने इण्डो-नेशियाई सरकार और सैनिक अधिकारियों की चेतावनियों के बावजूद इण्डोनेशिया में स्थित उष उषोमों कारखानों व्यापारिक प्रतिष्ठानों कार्यालयों, विमान सम्पत्तियों भावि पर अधिकार करमा शुरू कर दिया परन्तु यह सब होने पर भी उष नागरिकों के जीवन के लिए कहीं खतरा पैदा नहीं हुया । दिसम्बर १९५७ में इण्डोनेशिया सरकार ने भी जनमत के वदाव के कारण, १० दिन के अन्दर ही १० हजार उष नागरिकों को इण्डोनेशिया से निष्कासित कर दिया । हासैण्ड ने अपने सभी राष्ट्रों के साथ इण्डोनेशिया की कार्यवाही पर खूब होर मुन किया और इण्डोनेशिया के विश्व सैनिक कार्यवाही करने का बाताबरण तैयार करन लगा । इससे धुम्क होकर इण्डोनेशियाई राष्ट्रपति सुकार्णो ने हासैण्ड के साथ राजनीतिक सम्बन्ध रम करने की बोरजा कर बी । इसके साथ ही इण्डोनेशिया ने युद्ध की तैयारियाँ भी शुरू कर बी क्योंकि परिस्थितियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि हासैण्ड केवल शक्ति एवं सस्त्र बल की ही माया बागता है ।

दूसरी ओर अमेरिका के राष्ट्रपति कैंनेडी और संयुक्त राष्ट्रसंघ के महा मंत्री ऊ-बाष्ट पश्चिमी इरियन की समस्या के शांतिपूर्वक समाधान के लिए पुनर्पिछा अधिक सक्रिय हो गये । किन्तु राष्ट्रपति कैंनेडी की प्रेरणा से बांडियटन में हासैण्ड के प्रतिनिधि तथा इण्डोनेशिया के राजदूत के मध्य जो बाता हुई नवका कोई मुन परिणाम नहीं निकला । इसी मध्य इण्डोनेशियाई आपामार वस्ते प्रारम्भिक सैनिक कार्यवाही का तन्त्रे बैठे हुए, पश्चिमी इरियन क विभिन्न स्थानों पर उतर कर हासैण्ड की सेना को अस्त करने गये । दिसम्बर १९६१ में राष्ट्रपति सुकार्णो ने हासैण्ड को यह अस्टीमेतम दे दिया कि बा ती ३१ दिसम्बर १९६२ तक पश्चिमी इरियन इण्डोनेशिया को सौन दिया बाव अन्यथा यह इसे शक्ति द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करेगा फलस्वरूप अब दोनों ही देशों में युद्ध की विश्कोक स्थिति उत्पन्न हो गयी ।

स्थिति को नियन्त्रण से बाहर जाने से रोकने के लिए अमेरिका के मारल श्विड कुतपूर्व राजदूत श्री एक्सबर्ब बंकर ने समस्या के समाधानार्थ एक योजना प्रस्तुत की जो 'बंकर योजना' के नाम से विख्यात हुई । संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव के प्रतिनिधि की हैसियत से दोनों पक्षों के दुष्टिकोणों का अध्ययन करने के उपरान्त ही अन्तिम अपनी योजना प्रस्तुत की । यह योजना विश्वश्रीय थी—

१ 'पश्चिमी इरियन की अन्तरिम व्यवधि में एक अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी को सौपना होबा "

२ "पश्चिम इरियन के इस्तम्तरण के प्रथम वर्ष में उष अधिकारियों को बाबना बनाकर कार्य मुक्त कर दिया जायगा और नत्के स्वात पर इण्डो-नेशिया के अधिकारियों को उनकी योग्यतानुसार नियुक्त किया जायगा" तथा

३ "षष्ठः राष्ट्रीय एजन्स" उचित समय पर जनमत संग्रह द्वारा स्वतन्त्रता बचवा इच्छान्विता क साम बिलयन के प्रश्न पर निष्पत्ति प्राप्त करेगी। यह सम्पूर्ण कार्य तीन वर्ष के पञ्चवर्षीय काल में सम्पन्न हो जायगा।"

बकर योजना में पश्चिमी इरियन का प्रशासनिक नियन्त्रण को कई कारणों से इच्छान्विता को सौजन्य की दान करनी पड़ी। महामंत्री ऊ-पाण्ड ने इच्छान्विता का सूचित किया कि हाईकमिशनर योजना को स्वीकार करने को तैयार है जिसके अनुसार कार्यवाही के तुरंत कार्य का अन्त तक किसी निश्चित दिनांक पर पश्चिमी इरियन का सम्पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण इच्छान्विता को हस्तांतरित कर दिया जायगा और इस क्षेत्र की जनता को अपनी इच्छा प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता दी जायगी। अपनी सूचना में श्री ऊ-पाण्ड ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि पश्चिमी इरियन की जनता को स्वतन्त्र इच्छा प्रकट करने की व्यवस्था समुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिवों के सहयोग में इच्छान्विता करेगा।

अपने प्रत्युत्तर में डा० मुबारक ने महासचिव से यह प्रस्ताव किया कि पहले पश्चिमी इरियन का प्रशासन इच्छान्विता को हस्तांतरित किया जाए और वहाँ जनमत संग्रह हो।

अन्ततः ममला सुझाने की स्थिति में डा. गमा और १६ फरवरी १९६२ को पश्चिमी इरियन के प्रश्न पर हाईकमिशनर इच्छान्विता ने एक औपचारिक सम्झौते पर हस्ताक्षर कर लिये जिसके अनुसार हाईकमिशनर द्वारा ३ अक्टूबर १९६२ को पश्चिमी इरियन का शासन संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपा गया और १ मई १९६३ को संघ द्वारा पश्चिमी इरियन अन्तिम रूप से इच्छान्विता का कर दिया गया। अन्तः हस्तांतरण सम्झौते पर इच्छान्विता की धार से उसके परराष्ट्र मंत्री डा० मुबारक ने और हाईकमिशनर की धार से संयुक्त राष्ट्रसंघ में उसके स्थायी प्रतिनिधि स्टुडमान ने वाशिंगटन में हाईकमिशनर के राजदूत श्री रोबीन्सन ने हस्ताक्षर किये। तीर्थावधि से पहले या रहे इस विषय का निपटारा करने वाले ऐतिहासिक सम्झौते पर सुरक्षा परिषद के कमरे में हस्ताक्षर हुए। सम्झौते में इच्छान्विता ने वायदा किया कि वह पश्चिमी इरियन की जनता को अपने अधिकार के विषय में निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता देगा अर्थात् पश्चिमी इरियन के वासी यह निर्णय करने को स्वतन्त्र होंगे। वह एक अन्तः इच्छा के रूप में रहता चाहते हैं या इच्छान्विता की प्रयुक्त स्वीकार करते हैं। अन्तः निर्णय के इस अधिकार की पूर्ण इच्छान्विता को १९६६ की समझौते से पूर्व करनी होगी और इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ इच्छान्विता को परामर्श व सहायता देगा।

(२१) यू-२ विमान-घटना

(The U-2 Incident)

१० मई १९६१ को सोवियत विदेश मंत्री आन्ड्रे ग्रोमिको (Andrei Gromyko) ने सुरक्षा परिषद के उच्च मानक प्रश्न सार्वजनिक कोरिया से संयुक्त राज्य अमेरिका की हवाई सेना के वास्तुकारिक कार्यों पर विचार करते हेतु एक प्राथमिक बैठक अधिसूचना बुलाने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना-पत्र के साथ सोवियत सरकार का एक व्याख्यात्मक पत्र (Exploratory Note) भी बुलाया। इस पत्र में यह कहा गया था कि—

“१ मई, १९६० को प्रातःकाल संयुक्त राज्य अमेरिका के एक वायुयान ने सोवियत सीमा का उल्लंघन किया। जब यह वायुयान सोवियत अफ़मान सीमा के भीतर २००० किलोमीटर तक प्रवेश कर गया और इसके धाक़मसारक इरादों का निश्चय हो गया तो स्वर्द्धमोवस्क के निकट राकेट द्वारा इसे नीचे गिरा दिया गया। बिनाष्ट विमान के निरीक्षण से पता लगा कि इसमें बामुमी करने के अनेक यंत्र एक उपकरण थे। वीरानुट की सहायता से सुरक्षित नीचे उतर जाने वाले बामरु पावर्ष न भी इस बात की पुष्टि की कि लाकहूड यू २ (Lockheed U 2) प्रकार का यह विमान सोवियत सब के आकाश में सैनिक निरीक्षण करने के लिए-बिधेपत सोवियत धीचोगिक कारखानों एवं सैनिक यंत्रों की सुषना प्राप्त करने के लिए भेजा गया था। इसमें इन उद्देश्यों की पूर्ण के लिए विशेष यंत्र लगे हुए थे और सोवियत प्रवेश पर से उड़ते हुए यह विभिन्न स्थानों के फोटो ले रहा था।”

अमेरिकन विदेश विभाग ने सधप्रथम तो उपरोक्त प्रकार की किसी भी उड़ान का लक्ष्यन किया लेकिन बाद में यह कहा गया कि टर्की में सोवियत सीमास्थ के निकट एक विमान शत्रु विज्ञानीय निरीक्षण एक अनुसधान क लिए उड़ रहा था। परन्तु सोवियत सब द्वारा इतने अकाठ्य उमाण देन किये गये कि कि ७ मई को अमेरिकन विदेश विभाग को यह स्वीकार करना पड़ा कि सोवियत सैनिक संस्थानों की जानकारी प्राप्त करने क लिए यह विमान सोवियत आकाश में भेजा गया था। ९ मई को अमेरिकन विदेश मंत्री हूटर् ने और १२ मई को स्वयं राष्ट्रपति आइजन होवर ने इस घटना की सरयता की पुष्टि की।

सोवियत सब ने अपने व्याख्यात्मक पत्र में इस बात पर बल दिया कि संयुक्त राज्य अमेरिका इस प्रकार क अतिक्रमण करने का आरी बन गया है और इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रारम्भिक नियमों का एक संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की व्यवस्थाओं का उल्लंघन करके विश्व शांति को संकट में आनने के लिए प्रयत्नशील है। अपने पत्र में सोवियत संघ ने अमेरिका द्वारा की जाने वाली इस प्रकार की घटनाओं का अन्त करने की बमकी वी और मांग की कि सुरक्षा परिषद् को अमेरिका की इस प्रकार की कार्य बाहियों की निन्दा करनी चाहिए तथा अविष्य के लिए इन पर पूरी टोक लगाने की व्यवस्था हुानी चाहिए। सोवियत पत्र में इन सब बातों का विस्तार से उल्लेख विम्नलिखित रूप में किया गया था—

“अर्धमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में और सैनिक तकनीकियों की प्रगति के बढमान स्तर में यह समझना कठिन नहीं है कि ऐसी घटनायें विश्व शांति के लिए कितनी खतरनाक हो सकती हैं। जब यह बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के बमपक यन्त्र एवं हाइड्रोजन बमों को जाब कर बसत है तो यह कल्पना की जा सकती है कि सोवियत सीमा का अतिक्रमण करने वाले विमानों पर भी ऐसी बातक सामग्री लगी हो। ऐसी अवस्था में संयुक्त राष्ट्र स्वामाधिक रूप से अपनी सुरक्षा के लिए एक धाक़मख के प्रतिरोध के लिए प्रतिभाषात्मक क संवाही कर सकता है। इस सूरत में इसके परिणामों का सम्पूर्ण

उत्तरदायित्व हमारे दलों के विरुद्ध आक्रमण करने वाले राज्यों का होना । इसमें यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सोवियत संघ के प्रदेश में आक्रमणारम्भ प्रयोजनों के लिए विमान भेजते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका छोटे देशों की प्रादेशिक सख्यता और सर्वोच्च अधिकारों (Territorial Integrity & Sovereign Rights) का अधिकरण करता है । १ अग्रेम एच १ मई १९९० को अमेरिकन विमान ने रूस की दक्षिणी सीमा का अधिकरण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी । १९९० में मध्यपूर्व में सैन्य भेजने के लिए भी ठट्ठा देना आस्ट्रिया के आकाश का अधिकरण किया गया था ।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका आतंकवाद को पूरी तैयारी के साथ ऐसे कार्य करता है, जो न केवल अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आरम्भिक नियमों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की व्यवस्थाओं का धोरे उल्लंघन हैं अपितु विश्व की शांति के लिए भीषण संकट हैं ।

सोवियत सरकार को यह धारणा थी कि पेरिस में आसनाइयनों के सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमेरिका का आतंकवादी कार्य करने वाली अपनी वायुसेना की निष्ठा करेगा । इस प्रकार की नीति का परिणाम करेगा । यू २ वायुसेना की वायुसेना उड़ान का उल्लेखारम्भ करने वाली को रद्द होगा । ऐसा आश्वासन देना कि वह भविष्य में ऐसे कार्य नहीं करेगा । हमारे देश के इस प्रकार हुए अपमान के लिए आतंकवादी रूस के आवश्यक कार्यवाही करेगा और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को बिगाड़ने वाली तथा शांति को संकट में डालने वाली घटना का अन्त करेगा । सोवियत सरकार को खेद है कि उसने ऐसा नहीं किया । -- सोवियत सरकार का यह विचार है कि सुरक्षा परिषद का यह कर्तव्य है कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका के शांति भंग करने वाले कार्यों की दृष्टापूर्वक निष्ठा करे और दूसरे राज्यों के आकाश का अधिकरण करने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका के कार्यों को बन्द करे । संयुक्त राष्ट्र संघ बनता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करेगा यदि वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ऐसे अन्यायपूर्ण तथा उल्लेखनापूर्ण कार्यों को बन्द नहीं कराता । अतः सुरक्षा परिषद में विश्व शांति को बनाये रखने के लिए सोवियत संघ के विरुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका की वायुसेना के आतंकवादी कार्यों पर तत्काल विचार होना चाहिए ।

सोवियत संघ द्वारा की गयी दृष्टापूर्वक पर विचार करने के लिए २३ मई, १९९० को सुरक्षा परिषद की बैठक हुई । बैठक में रूस की ओर से जो प्रस्ताव रखा गया वह इस प्रकार था—

परिषद में संयुक्त राज्य अमेरिका की वायुसेना के सोवियत संघ के विरुद्ध आतंकवादी कार्यों के प्रश्न पर विचार किया । यह विश्व शांति के लिए संकट दूसरे राज्यों की सर्वोच्च सत्ता का अधिकरण संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों के प्रतिरुद्ध है । अतः यह संयुक्त राज्य अमेरिका के विमानों का अन्य राज्यों के प्रदेश में आना आतंकवादी कार्य समझा है ।

घौर संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रायता करता है कि ऐसे कार्यों को तुरन्त बन्द कर दे तथा भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न होने दे।”

प्रस्ताव पर दोनों पक्षों की घोर से बड़ा तीखा वाद-विवाद हुआ। सोवियत संघ के प्रतिनिधि ने संयुक्त राज्य अमेरिका पर कठु धाक्षेप किये। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि श्री हेनरी केबट साज ने रूस के आरोपों का मुहठोड़ उत्तर देते हुए निम्नलिखित शब्द कहे—

“शान्तिपथ धाकाश में एक इन्जन वाले एक व्यक्ति की से जाने वाले अस्त्रहीन बामुपाम की जनस्थिति को ‘घाक्रमण’ नहीं कहा जा सकता। सोवियत संघ इसके वेनों के प्रदेश में हजारों बामुम रखता है और जब एक निर्वोष उद्गान का प्रतिपाद कर रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका यदि चाहे तो सोवियत संघ के ऐसे कार्यों के घनेक उदाहरण दे सकता है। सांग द्वीप (Long Island) के पास एक सोवियत बहाज ने संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेनिक कार्यालयों में बाबा डाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रदेश में रूस के घनठ गुप्तचर हैं। मासलन स्टाजिन की मृत्यु के बाद दसरे देशों में पकड़ गये रूसी गुप्तचरों की संख्या ३५ है। सोवियत साज द्वारा संयुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर के धतिक्रमनों ने स्वतन्त्र देशों को बहुत चिन्ता में डाल दिया है। परल हार्बर जैसे धाक्रमिक धाक्रमणों की पुनरावृत्ति रोकने के लिए ऐसी उद्गानों की घयी हैं।

किन्तु घ मिको का यह कथन सरय नहीं है कि सोवियत प्रदेश पर ऐसी उद्गानों निरन्तर करते रहना संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति है। पर तर्पों के सर्वथा विपरीत है। राष्ट्रपति धाइनम होवर ने पेरिस में कहा था कि ऐसी उद्गानों बन्द कर दी गयी हैं। राष्ट्रपति ने यह भी कहा था कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देश निरन्तर रूस की बासुती का धिकार हो रहे हैं। रूसी प्रतिनिधि ने राष्ट्रपति के बक्तभ्य को गसत रूप में रखा है कि धाइनम होवर ने ऐसी उद्गानों को निरन्तर जारी रखने की धमकी दी है। बस्तुतः ऐसी कोई धमकी नहीं दी घयी। केबल इतना कहा गया था कि संयुक्त राज्य अमेरिका धाक्रमिक धाक्रमणों से घपनी रसा करने के उदारबावित्ध में बिलिखता नहीं कर सकता। रूसी प्रदेश पर अमेरिकी उद्गानों स्वकित कर दी घयी हैं और इन्हें घब पुनः धारमम नहीं किया जायगा। उद्गान (Open Skies) की धधि करने का प्रस्ताव रखा था। सोवियत संघ न घण्टरॉप्यम कायम की बहुत दुर्हाई दी है किन्तु उध समय यह कायम कहां गया था जब कम्युनिस्ट चीनों न दक्षिण कोरिया पर चढ़ाघी की थी १९५६ में ह्वरी की स्वतंत्रता का बन्ध किया था। सोवियत संघ ने घारी दुनिया में बासुनों का बाल फैला रखा है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेशी घूताओं में ऐसी बासुती करने वाले १०० घन्त्र पकड़ गये हैं।

सोवियत रूस ने घुरखा परिषद में जो प्रस्ताव पेश किया उनके प्रमुत्तर में प्रकॉन्टाइना लका इन्वेडोर घौर द्यूमीनिया की तरफ से एक नवीन बस्तु-निष्ठ प्रस्ताव (Four Power Resolution) पेश किया गया। इस प्रस्ताव की संभावनी घों की—

प्रार्थना-पत्र में कत ने अमेरिकन वायुसेना के अधिकरण का विश्व शांति के लिए खतरा बताते हुए सुरक्षा परिषद की आवश्यक बैठक बुलाने की मांग की। बहस २२ जुलाई को प्रारम्भ हुई। बहस का समापन करते हुए सोवियत प्रतिनिधि ने कहा कि सुरक्षा परिषद द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्य सरकारों से कहा गया था कि वे एक दूसरे की प्रभुसत्ता का प्रतिरक्षण न करें और तनाव बढ़ाने वाले कार्य न करें, लेकिन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा की गई हाल ही की चटनाओं से यह सिद्ध है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उपरोक्त प्राधारभूत सिद्धान्तों के प्रति अज्ञेयपूर्ण है। सुरक्षा परिषद विश्व शांति का उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाली प्रमुख संस्था है परन्तु उसे सोवियत आक्रान्त का अन्तर्द्वेष करने वाले अमेरिकन आक्रान्तों की निन्दा करनी चाहिए और अन्य देशों के विरुद्ध उसके द्वारा किये जाने वाले ऐसे अन्तर्जनात्मक कार्यों पर प्रभुत्व लगाया चाहिए। अपने इस धूमिका-रूप प्राधान्य के बाद सोवियत प्रतिनिधि ने अमेरिका की निन्दा विषयक निम्न-लिखित प्रस्ताव पेश किया—

“सुरक्षा परिषद ने सोवियत संघ के विरुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका के वायुसेना के नये आक्रमणात्मक कार्यों पर विचार किया। ये कार्य विश्व-शांति के लिए एक संकट है। परिषद यह स्वीकार करती है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने अन्य देशों के संप्रभु-अधिकारों का प्रतिरक्षण करना जारी रखा है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय तनावों में अभिवृद्धि होती है और विश्व शांति को खतरा उपस्थित होता है। अतएव यह परिषद संयुक्त राज्य अमेरिका की वायुसेना के इन अन्तर्जनात्मक कार्यों की निन्दा करती है और उन्हें प्राक-सहकारी कार्य समझती है और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार से यह आग्रह करती है कि वह ऐसे कार्यों को रोकने एवं अविष्य में इनकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए तत्काल कार्यवाही करे।”

सोवियत संघ द्वारा प्रस्तुत निम्ना प्रस्ताव धीरे धीरे का खतरा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि हेनरी कैवट मौन ने दिया। उनके खतरा का सारांश इस प्रकार था—

“पार०बी०-४० को जोशी मार कर नीचे गिराना एक अपराधपूर्ण सामूहिक डकैती वाला (Criminal and Piratical) कार्य है। सोवियत संघ बिना कृप्य विमान का विराया जाना बताता है तब वह सोवियत समुद्र तट की सीमा-से ३० मील दूर या धीरे २० मिनट बाद कत द्वारा कताने गये स्वान से २०० मील दूर या तथा उत्तरपूर्वी दिशा में कतानी सीमा से बाहर की ओर जा रहा था वह कतानी भी सोवियत समुद्र तट से ३० मील से कम दूरी के भीतर नहीं आया। -----विमान तारे समय अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र पर उड़ता रहा। इसमें आक्रमण करने के लिए कोई शस्त्र नहीं थे केवल पीछे की ओर रखा के लिए २० मिसाइलों की टोर्पे थीं। यह विमान अन्तरिक्ष टाइन के अनुसार ३३३ पर मुक्त हो गया-----कतानी मुक्त हुआ इसे अमेरिका के अधिकारी शहर घाटि नवों की सहायता से बच्यो तरह जानते हैं। यह स्वान कोना शमशीप से २०० मील उत्तर-पूर्व में था। विमान मुक्त होने पर इसकी खोज शुरू हुई। पहले कत ने इस खोज कार्य में

सम्माननापूर्वक महामता की धीर १० दिन बाद यह घोषित किया कि उन्होंने उसे सोवियत प्राकृत का प्रतिष्मण करते हुए पोसी धार कर नीचे गिराया है। १० दिन की यह बेरी बड़ी खूबसूरत है— सोवियत सरकार का यह दावा कोरी कल्पना है कि विमान को सोवियत कूट के प्रादेशिक समुद्र में गिराया गया है। यह कल्पना जानबूझ कर अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र में गिराने वाले बहस्य विमानकाष्ठ पर पर्दा डालने के लिए गड़ी गयी है। -- विमान के गिराने वाले का सोवियत सरकार द्वारा बताया जाने वाला समय धीर स्वागत नहीं है। -- --

वास्तविक घटना यह है कि जब विमान स्विसटाई मोस से ५० मील मील उत्तर-पूर्व में पहुँचा तो इसे पूर्व निर्धारित मार्ग के अनुसार उत्तर-पूर्व की ओर मिसना था। इसी समय समुद्र की धोर से एक सोवियत सड़क विमान धारक अमेरिकन वायुयान को बसपूर्वक सोवियत प्रदेश की ओर बकेलने लगा यद्यपि उसका यह प्रयास सफल नहीं हुआ क्योंकि अमेरिकन वायुयान बस्ती ही बूम कर अपने पूर्व निर्धारित मार्ग पर पहुँच गया और ऐसा करते समय वह सोवियत सीमा के निकटतम बिन्दु से ३० मील से अधिक अन्तर धामा— -- सोवियत मोट द्वारा बताया गये इसे गिराने के समय से २० मिनट बाद वह स्विसतोई मोस से २०० मील की दूरी पर उड़ रहा था। यहाँ इसे गिराया गया -- -- इसे अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र में गिरा कर यह कहा गया कि यह प्रादेशिक समुद्र में गिराया गया है। सोवियत वायुसेना वाले अपनी यह कम्बोटी नहीं बताना चाहते थे कि उन्होंने २०० मील दूर इस विमान को गिराया है। मत् उन्होंने खुल्ले से झूठ बोला। -- इन अवस्थाओं में संयुक्त राज्य अमेरिका सुरक्षा परिषद से यह मांग करने का अधिकार रखता है कि वह सोवियत कृणित प्राकृत की निम्बा करे और कूट में इस विमान के निनाश को तथा इसके शालकों की प्राकृतानि की अतिपुति करने की मांग करे। किन्तु फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका इस समय केवल यही चाहता है कि वह सोवियत संघ से इस मामले की निम्बा बाल स्वीकार करने के लिए कहे।”

अपने इस प्रापण के बाद हेनरी केवड लॉन ने अमेरिका की ओर से सुरक्षा परिषद में निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया।

“सुरक्षा परिषद ने १३ जुलाई, १९६० को सोवियत संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये विश्व धर विचार किया संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ के प्रतिनिधियों के बावजुद धीर १ जुलाई, १९६० को सोवियत सेनाओं द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका की वायुसेना के एक विमान को गिराने वाले की घटना धर दोनों सरकारों के मत्बैर विद्यमान होने के एवं इस घटना के कानूनी अन्तराक्षिष के बारे में विचार किया। २७ मई, १९६० में प्रस्ताव को पुनःमण करती हुए सुरक्षा परिषद यह सिफारिश करती है कि सोवियत कृणियन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका १ जुलाई, १९६० को हुई विमान दुर्घटना के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए मतभेद का इस एक बाबोव द्वारा तर्कों का स्वीकरणीय एक ठीकरी सरकार के प्रतिनिधि तुस्य संस्था में हो यह इस

घटना की जांच इसके स्थल पर जाकर वायुयान के असाक्षियों को देख कर तथा इसके बचे हुए भागकों तथा अन्य साक्षियों से प्रश्न पूछ कर करे प्रपचा इस मामले का बिचार घान्तराष्ट्रीय न्यायालय को सौंपा जाय ।

सोवियत प्रतिनिधि और अमेरिकन प्रतिनिधि ने एक दूसरे की सरकारों पर जासूसी के विभिन्न आरोप-प्रत्यारोप लगाए और दोनों ही के मध्य बहुत बहस हुई । अमेरिकन प्रतिनिधि नेबट सैंड ने कहा कि "संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ में यही अन्तर है कि हम सोवियत विमानों को अपने कैमरो से फोटों लीजने का मक्य बनाते हैं जब कि रूसी हमारे विमानों का ठोपों और राकेटों का मक्य बनाते हैं तथा हमारे जासुसों को मार डालते हैं या कैद कर लेते हैं ।

रूसी और अमेरिकन प्रस्तावों के अतिरिक्त इटली द्वारा एक तीसरा प्रस्ताव यह रखा गया कि दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता का मानवीय कार्य अन्तराष्ट्रीय रेडक्रॉस संस्था को सौंपा जाय ।

२६ जुलाई, १९६६ को रूस अमेरिका व इटली के तीनों प्रस्तावों पर बोट मिये गये । सोवियत रूस ने अमेरिकन प्रस्ताव को और इटली के प्रस्ताव को बीटो कर दिया । रूसी प्रस्ताव सुरक्षा परिषद के बहुमत द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया । रूस द्वारा सुरक्षा परिषद में बीटो किये जाने की संख्या इस समय ८१ पठुप गई ।

रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ के १२वें अधिवेशन में पुनः यू-२ और धार० बी०-४७ विमानबाहियों की बीटो घटनाओं का प्रश्न उठाने की चेष्टा की किन्तु उसे अपने प्रयासों में सफलता नहीं मिली ।

(२३) स्पेन का प्रश्न

(The Question of Spain)

द्वितीय महायुद्ध में, यद्यपि स्पेन प्रत्येक रूप से सम्मिलित नहीं हुआ था किन्तु उसने बुरी राष्ट्रों (Axis Powers) को प्रत्येक संभव सहायता प्रदान की थी । स्पेन के इस अन्यायपूर्ण व्यवहार से विश्व राष्ट्र उसके प्रति असन्तुष्ट एवं असहमत हैं । इसीलिए सार्व-प्राप्तिसभों सम्मेलन में यह निश्चित किया जाय कि स्पेन को मात्र संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता से बंचित रखा जाय । बार में प्रोटेस्टान्ट सम्मेलन में इस निश्चय को पुनः उठाना प्रदान की गयी ।

जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो स्पेन द्वारा यह प्रार्थना की गयी कि उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान की जाय । किन्तु उसकी यह प्रार्थना अस्वीकार की गयी । १ फरवरी १९४६ को महासभा द्वारा यह घोषित कर दिया गया कि स्पेन संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए अयोग्य है अतः उसे संयुक्त राष्ट्र संघ नहीं जनाया जा सकता ।

घराने १९४६ से पोर्तूगल की तरफ से सुरक्षा परिषद में एक भावना की गयी । पोर्तूगल द्वारा कहा गया कि स्पेन में अन्धकार, अज्ञान, असाक्षिता है अतः यह प्रोटेस्टान्ट एवं सार्व-प्राप्तिसभों सम्मेलनों के प्रस्तावों के अनुसार अन्तराष्ट्रीय शांति के लिए, अतः १९४६ पर सुरक्षा परिषद ने मामले की जांच करने के उद्देश्य से एक उपसमिति का निर्माण किया जिसने अपनी

पोर्ट में कहा कि यद्यपि स्पेन की सरकार की कार्यवाहियों से संघ के चार्टर का धाराओं के अन्तर्गत विश्व शांति को किसी प्रकार का भंग नहीं है किन्तु मध्य उत्पन्न होने की संभावना परकम हो सकती है। तत्पश्चात् सुरक्षा परिषद् के सभी सदस्यों ने उपसमिति की इस रिपोर्ट पर अपना एकमत प्रकट किया। जो नियत संघ द्वारा तो यहाँ तक कह दिया गया कि स्पेन की सरकार को ही बदल बिना कामवाही करना सहुमत नहीं हुए। इस प्रकार स्पेन सम्बन्धी एक बड़ी कामवाही करण को सहुमत नहीं हुए। सुरक्षा परिषद् ने पाश्चात्य देशों के मायसे न कोई कामवाही हो नहीं पायी। सुरक्षा परिषद् ने पाश्चात्य देशों के कथानामुसार पोलैंड की प्रार्थना में प्रयुक्त किये गए 'सर्वे' शब्द के स्वागत पर 'राजनीतिक खण्ड' (Political Menace) शब्द रखने का मुद्दा रखा गया। ४ नवम्बर १९४९ को स्पेन का प्रश्न यद्यपि सुरक्षा परिषद् की विषय सूची से हटा दिया गया किन्तु १२ दिसम्बर १९४९ को संघ की महासभा ने प्रकृत मह प्रस्ताव स्वीकार किया कि—

“फ्रान्को सरकार को सुरक्षित राष्ट्र संघ से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों प्रकृतानि कार्यों को सहायता से निवास दिया जाना चाहिए सुरक्षा परिषद् को स्पेन में यथासोम ही एक नहीं तथा सर्वमान्य सरकार के स्थापित होने के बिना कार्यवाही करने पर विचार करना चाहिए तथा राष्ट्र मंच के सभी सदस्यों को स्पेन की राजधानी मैड्रिड (Madrid) से अपने राजदूत वापिस बुसा लेने चाहिए।”

परन्तु इसी समय विश्व में शीत युद्ध (Cold War) आरम्भ हो चुका था। जब अमेरिका ने ब्रिटेन एवं फ्रांस के विरोध पर स्पेन न लेते हुए अन्तः फ्रान्को की सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझा। अमेरिका सोवियत विराधी युद्ध तैयार करने के किसी प्रकार को धारणा नहीं चाहता था। अमेरिका उसे अपनी अन्तः फ्रान्को सोवियत संघ का कट्टर शत्रु या घ अमेरिका उसे अपनी घोर मिसा कर उनके द्वारा साम्यवाद के विकास एवं प्रसार का विरोध करने का शत्रुक था। इसीलिए नवम्बर १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने अमेरिका के प्रस्ताव में धारकर स्पेन के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव पास किया कि 'सुरक्षा परिषद् स्पेन की स्थिति को ठीक करने के लिए आवश्यकता होने पर चार्टर के अन्तर्गत अपनी शक्तियों और दायित्वों का प्रयोग करेगा।”

माघ १९४८ में अमेरिकन प्रतिनिधि समा में मार्शल योजना के अन्तर्गत अमेरिकन सहायता प्राप्त करने वाले राज्यों में स्पेन का नाम भी सम्मिलित किया, हालांकि बाद में उसकी समाप्ति कर ही गयी। नवम्बर १९४७ में संयुक्त राष्ट्रिय महासभा ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा १९४९ न अपने पूर्व-जो प्रस्ताव के कुछ ऐसे अंशों को रद्द कर दिया जिसके अन्तर्गत स्पेन को अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों प्रकृतानि कार्यों से अलग/करने एक दूसरे राज्यों को मैड्रिड से अपने राजदूत वापिस बुसा लेने-सिए कहा गया था। १९४७ के इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत स्पेन को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह स्वयं अपने हितों के लिए स्पेन की

सरकार से सम्बन्ध स्थापित करे। महात्मा ने अनेक सदस्य राष्ट्रों ने अमेरिका की स्पेन विषयक नीति की कठोर आलोचना की और उन पर यह आरोप लगाया कि वह अग्रतत्त्व रूप से स्पेन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान कराना चाहता है तथा वह स्पेन को सोवियत संघ के विरुद्ध सैनिक सशस्त्रों के लिए प्रयोग कर रहा है।

अमेरिका और स्पेन एक दूसरे के निकट पाते गये। सन् १९५१ और ५३ के बीच दोनों राष्ट्रों के मध्य काफी बातचीत हुई। अतस्वरूप स्पेन में अमेरिकन सशस्त्रों के निर्माण के लिए अनेक आर्थिक एवं सैनिक सहायता अमेरिकन सहायता से मँडिर भेजे गये। २७ सितम्बर १९५३ को दोनों राष्ट्रों के बीच आधिकारिक सैनिक समझौता भी हो गया। नवम्बर १९५३ में अमेरिकन विदेशमंत्री डब्ल्यू द्वारा स्पेन की यात्रा की गयी। अन्त में अमेरिका के विपुल प्रयासों के अतस्वरूप १४ दिसम्बर १९५३ को स्पेन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य भी बना लिया गया।

(२४) लाओस की समस्या (Laos Problem)

लाओस का क्षेत्रफल २९ हजार वर्गमील और जनसंख्या ३० लाख है। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस देश की सीमा साम्यवादी चीन, साम्यवादी उत्तरी वियतनाम, दक्षिण वियतनाम, कम्बोडिया, थाईलैंड और बर्मा से मिली हुई है। इस देश में तीन बल हैं—(१) साम्यवादियों के नेतृत्व में पाथेट लाओ (Pathet Lao) बल जिसके नेता राजकुमार सुवन्नफीमा हैं (२) राजसत्तावादी (Royalists) जिसके नेता वीणजीम हैं और (३) तटस्थतावादी (Neutralists) बल जिसके नेता राजकुमार सुवन्नफीमा हैं। पिछले १० वर्षों के इन तीनों ही बलों में गृहयुद्ध चल रहा है और यहाँ शांति नहीं है।

सन् १०-१२ वर्षों से इन तीनों बलों के गृह युद्ध में फ्रेंच सहायता पहले फ्रांस के अधीन था। १९ जुलाई १९५९ को फ्रेंच संघ के अन्तर्गत यह वैधानिक रूप से स्वतन्त्र देश माना गया। लेकिन यहाँ के साम्यवादी उग्रवर्ग अल्पसंख्यक बल ने इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। २१ जुलाई १९५४ को वियेना में हुए समझौते के अनुसार लाओस कुछ स्वतन्त्र देश मान लिया गया।

९ अगस्त १९६० को असीवादी सेना के वामपंथी कर्नालर कैप्टीन कीवली ने लाओस सरकार को अग्रतत्त्व कर दिया। पहले देश में तटस्थता की स्थापना एवं साम्यवादियों के साथ शांति संबंध बनाने का संकल्प किया। सुवन्नफीमा सुवन्नफीमा के नेतृत्व में एक तटस्थ सरकार की स्थापना की गई। किन्तु अन्तर्गत भी नासवान के नेतृत्व में अग्रतत्त्व सेनाओं ने दिसम्बर १९६० में सुवन्नफीमा की अग्रतत्त्वता में बने तटस्थ गट को बाहर निकाल दिया और लाओस की प्रजासैनिक राजधानी वियेना वियेना पर अधिकार कर दिया। अग्रतत्त्व अग्रतत्त्व ने राजकुमार वीणजीम को नयी सरकार का प्रधान बनी नियुक्त किया। अन्त राजकुमार सुवन्नफीमा ने साम्यवादी अग्रतत्त्व

सन्तुष्टि क्यूबा में प्रक्षेपणास्त्र अड्डों के विकास व निर्माण को तुरन्त रोक देने का समर्थन किया।

१० अक्टूबर को महासचिव इसी सिससिले में स्वयं क्यूबा गये और सन्तुष्टि क्यूबा सरकार के महत्वपूर्ण सदस्यों व नायक राष्ट्र-सौधीय पर्यवेक्षकों द्वारा निरीक्षण किये जाने के बारे में समाह्व मन्तविरा किया। महासचिव के प्रयत्नों के फलस्वरूप वातावरण में सुधार हुआ और ठनाव कम होने से पुरो-सहायता मिली और १० अक्टूबर को ही की-क्यूबे ने घोषणा की कि वे क्यूबा से सभी प्रक्षेपणास्त्र और आक्रमणात्मक सन्धास्त्र हटाने की सहसत हैं और हीप पर स्थित सभी आक्रामक धनुओं को संपूर्ण राष्ट्र संघ की देखरेख में छोड़ दिया जायगा।

उत्पत्त्यात् संघ के पर्यवेक्षकों की देख-रेख में सोवियत आक्रमणात्मक सन्धास्त्रों को क्यूबा से हटाने का कार्य अन्तःपञ्चमक गति से पूरा हो गया और संघ ने एक बार पुनः विश्व को युद्ध के कमार से बापित छोटा जाने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदा की।

(२७) साइप्रस की समस्या

(The Problem of Cyprus)

पृष्ठभूमि—एशिया-अफ्रीका और यूरोप की सस्कृतियों का संवत्सल साइप्रस टापू पूर्वी भूमध्य सागर में टर्की के समुद्रतट से ४ मील दक्षिण में है। सन् १८१४ से १९०७ तक यह टापू ब्रिटेन का सर्वाधिकार रहा। ब्रिटेन ने भारत की भांति यहाँ भी 'फूट जाने और शासन करो' की नीति से काम लिया। यह टापू के निवासी यूनानी ईसाइयों और तुर्क-मुसलमानों में साम्प्रदायिक बंधे उसी प्रकार होते रहे जैसे भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच होते थे।

१९ अगस्त १९६० को साइप्रस चिटिच प्रमुता से मुक्त हो कर स्वतन्त्र गणराज्य बना किन्तु स्वतन्त्रता प्रदान करते समय इस टापू की सुरक्षा के लिए सचिवालय ब्रिटेन द्वारा ही बनाया गया। इसमें टापू के दोनों विरोधी दलों के बीच साम्प्रदायिक धीरे-धीरे बनावे रखने की व्यवस्था की गई। दोनों जातियों में मैत्री भाव व सौहार्द बनाये रखने के लिये तथा एक जाति द्वारा दूसरी जाति के राजनीतिक एवं मानवीय अधिकारों के अपहरण को रोकने के लिये सचिवालय में कुछ विस्तृत व्यवस्थाएँ एवं गारण्टियाँ की गईं। ये व्यवस्थाएँ एवं गारण्टियाँ १९६१ में दोनों दलों के सन्धन तथा अपूरिष में हुए समझौतों के आधार पर हुईं। इन्हें सचिवालय की मौलिक गारण्टियाँ (Basic Articles) माना गया परन्तु इनमें किसी भी प्रकार का सञ्चोचन या परिवर्तन करना अवैधानिक व अहित ठहराया गया। इन मौलिक गारण्टियों में कुछ प्रमुखतम व्यवस्थाएँ इस प्रकार की गईं।

(1) अपरिवर्तनीय गारण्टियों को छोड़ कर सचिवालय की अन्य गारण्टियों में सञ्चोचन प्रतिनिधि-सदन (House of Representatives) में विद्यमान दोनों जातियों (यूनानी-ईसाइयों व तुर्क-मुसलमानों) के सदस्यों में से प्रत्येक जाति के सदस्यों के प्रतिनिधि बहुमत से ही सम्भव बनाया गया। निर्वाचन

कानूनों पर लगान व नगरपालिका सम्बाधी कानूनों के बारे में भी यही स्थिति रसः गई। इस व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम यह निकसा कि प्रतिनिधि-सदन व १० वोटों में सत्तों के केवल ८ वोट ही किसी कानून को पारित हो सके। (यू कि साइप्रस में लगभग ८० प्रतिशत यूनानी और १८ प्रतिशत तुर्क रहते हैं)।

(ii) सेना में यूनानियों एवं तुर्कों की संख्या क्रमशः १०% व ४०% होना आवश्यक माना गया।

(iii) प्रतिनिधि-सदन और सरकारी नौकरियों में उपरोक्त अनुपात १०% व ३०% का रखा गया।

(iv) किसी भी अन्य क्षेत्र के साथ साइप्रस के सम्मेलन को प्रभाव इसका विभाजन को बहिष्कृत ठहराया गया था।

साइप्रस की स्वतंत्रता के बाद कुछ समय तो संविधान के अनुकूल व्यवस्थाओं को चलने दिया किन्तु बाद में राष्ट्रपति मकारियोस ने संविधान के मनापन के कुछ ऐसे प्रस्ताव रखे जिन्हें दोनों जातियों के मध्य स्थापित किया गया संसुलन व धर्मनिरपेक्ष समाप्त हो जाता। उदाहरण के लिये उसने सेनाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं में यूनानियों और तुर्कों के पहले वाले अनुपात को बदल कर ८० और २० प्रतिशत के अनुपात का प्रस्ताव किया। राष्ट्रपति मकारियोस का विचार था कि राज्य के सामान्य कार्य के द्वारा संविधान के प्रति प्रतिबन्धन आवश्यक है। लेकिन तुर्क नेता राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित संविधानों के उद्योग विरोधी थे। उनका कहना था कि यूनानी लोग के प्रति विभेदकारी नीति बरतने लगे हैं। मकारियोस द्वारा पेश किए गए १३ संघोक्तों में से एक संघोक्त साइप्रस के तुर्क-मुसलमानों से स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप दोनों जातियों में वैमनस्य और विद्वेष की भावनाएँ प्रबल हो गईं और साम्प्रदायिक राजनीतिक संघर्ष तथा बृहत् युद्ध की सुरक्षा हो गई।

विचार का सुरक्षा परिषद में प्रवेश--जब साइप्रस में संघर्ष का सूत्र-बान हो गया और गृहयुद्ध तेजी से बढ़ने लगा तो संघर्षों को प्रशासन अपने हाथ में लेने व पुलिस की भूमिका निभाने का प्रयत्न किया गया जिसकी ताकत में वे लगे थे। ब्रिटिश सरकार को यह भी मिला कि वह साइप्रस में शांति स्थापना के बहाने अपने लक्ष्यों को साइप्रस में प्रवेश करके प्रत्यक्ष रूप से साइप्रस के आन्तरिक प्रशासन को अपने हाथों में ले ले तथा ब्रिटेन चाहता था कि अपनी सैनिकों को साइप्रस में प्रवेश करके प्रत्यक्ष रूप से साइप्रस के आन्तरिक प्रशासन को अपने हाथों में ले ले तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसे अपना पिछला भू बना ले। इसीलिए जब इंग्लैंड में यूनान टर्की व साइप्रस के मध्य शांति सम्मेलन शुरू हुआ तो ब्रिटेन के भी संकलन केवल साइप्रसवासियों को दिए गए अपने आकांक्षों के विरुद्ध साइप्रस में नाटो सेनाएँ भेजने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु राष्ट्रपति मकारियोस नाटो सेनाओं को स्थापित करने का विरोध किया। साथ ही इसके दुष्परिणामों को समझते ही यह उन्होंने जाति-स्थापना की बात में भी कहा कि वे समस्या को सुरक्षा परिषद में ले जाएँगे। इस पर

ब्रिटेन के इकारे से टर्की ने यह धमकी दी कि यदि राष्ट्रपति मकारियोस माममा को सुरक्षा परिषद में उठायेगा तो वह साइप्रस पर पाकमण्ड कर देगा ।

राष्ट्रपति मकारियोस पाकमण्ड की इस धमकी के कारण अपने निरपेक्ष से विरत नहीं हुए । उन्होंने २७ दिसम्बर १९६३ ११ सात गाममा सुरक्षा परिषद के सम्मुख पेश कर दिया तथा संयुक्त राष्ट्र सचिवाय प्रश्नक भेजते व स्थिति को समाप्त करने के लिए माच क हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की । साइप्रस की घपीन पर सुरक्षा परिषद की बैठक पकस्य हुई लेकिन प्रारम्भिक विचार विनिमय के उपरांत वह स्थगित हो गई ताकि सम्बन्धित सरकारों से समरथा के विभिन्न पहलुओं पर परामर्श किया जा सके । साइप्रस के धर्ममन्त्रक तुक मुसममानों के नेता ने भी सुरक्षा परिषद के सम्मुख तुओं को माममा प्रस्तुत करने की इजाजत चाही ।

ब्रिटेन व साइप्रस के धनुरोध पर जब १८ फरवरी १९६४ का सुरक्षा परिषद ने पुन विचार धारम्भ किया तो भी महासचिव ऊन्हाट क सनिक पर्यवेक्षक की इक्षियत से संयुक्त राष्ट्र सच के विज्ञेय प्रश्नक ल० अनरम प्र सनिह स्थिति का धर्मयम व प्रत्यक्ष धवलानन करने के लिए निकामिया पहुच गये । स्थिति के बारे में घपनी रिपोर्ट पेश करने के बाद भी महासचिव के धनुरोध पर, वे कुछ समय तक वही बने रहे ।

साइप्रस के सभी पक्षों के विचार सुनने के उपरान्त सुरक्षा परिषद ने ४ माच १९६४ को शानीशिया शानील प्राइवरी कोस्ट मार्कको धीर माच द्वारा प्रस्तुत पचराष्ट्रीय प्रस्ताव को सबसम्मति से स्वीकार कर लिया । इस प्रस्ताव द्वारा साइप्रस में धानि कायम रखने के लिए एक संयुक्त राष्ट्र सचिवाय जाति सेना भेजने का निर्णय किया गया । परिषद ने जो प्रस्ताव पारित किया उसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित थी—

(i) सबस्य राष्ट्र कोई ऐसा कार्य न करें या कोई ऐसा कयम न उठावें जिससे साइप्रस को स्थिति में धमिक बिगाड़ पैदा शक्य विषय-जाति क लिए सतरा बढ़ ।

(ii) साइप्रस सरकार धेन में त्रिया तथा रक्षपात का रोखने धीर जाति एक ध्यवस्था स्थापित करने के लिए तुग्ग धावश्यक प्रभावजाभी कार्यवाही करे ।

(iii) साइप्रस के सभी माम्नायिक बन्ना के बना धत्यविक सहन बीलता व धैरी से काम ल ।

(iv) एक संयुक्त राष्ट्र सचिवाय जाति सेना का यठा किया जाय । यह सेना साइप्रस में जाति धरै ध्यवस्था स्थापित करने में साइप्रस सरकार की सहायता कर । इस जाति सेना का गञ्ज व स्वक्य पावि निर्धारण का उत्तर धापित्व महासचिव बहन करें । साइप्रस सरकार धीम टर्की धीर इ गार्ड से परामण करते हुए समस्या से सम्बन्धित धावश्यक कामवाही महासचिव करें । संयुक्त राष्ट्र सचिवाय जाति सेना क लिए धिन राष्ट्री द्वारा सनिक धिये जाय उन्हें महासचिव द्वारा स्थिति से पूर्ण ध्यवत रखा जाय ।

ति सेना के काफ़ी के बारे में भी महासचिव समय-समय पर सुरक्षा परिषद रिपोर्ट देते रहें। यह शांति सेना साइप्रस में तीन माह तक रहे।

(v) साइप्रस टर्की और इंग्लैंड की सरकारों की सहमति में सचिव द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की जाय। यह मध्यस्थ साइप्रस के प्रसन्नवादी से और उपरोक्त सरकारों से विचार विमल कर सब के चार्टर में लिखित सिद्धान्तों के अनुकूल समस्या का शांति पूर्ण हल लाज्जत का प्रयास करे। मध्यस्थ अपने प्रयासों के बारे में महासचिव का समय-समय पर सूचित भी करता रहे।

सुरक्षा परिषद द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर घबिसम्ब घमस करते हुए महासचिव भी ऊ-पाष्ट ने कनाडा बार्जिस फिनसब्ड धायरसब्ड प्रीर स्वीडन से संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के लिये मजिक इगते देने का अनुयाय किया। इस प्रस्तावोदीय सेना के पहल सेनापति से के० अगरस ज्ञानी थे। बाद में भी इसका नेतृत्व भारत के ही एक प्रथम सेनापति धतरल धिमैया घमनी मृत्यु-पर्यन्त दिसम्बर १९६५ के मध्य तक करते रहे।

संयुक्त राष्ट्र संघ की इस शांति-सेना ने साइप्रस में कामून व ध्यमस्था बनाये रखन में उत्सखनीय सफलता प्राप्त की है। साइप्रस में इनके धावास काम की धवधि कमक बार बढ़ाई जा चुकी है। सब के महासचिव में महासमा के बीसवें अधिवेशन में सितम्बर १९६५ में यह सिफारिश की थी कि इसका कार्यकाल २९ दिसम्बर १९६५ के बाद भी बढ़ाया जाना चाहिये। साथ ही यह सेना साइप्रस के कसह-प्रसत इलाके में ममाठ है।

(२८) डोमिनिकन गणराज्य का विवाद
(The Question of Dominican Republic)

डोमिनिकन गणराज्य वेस्टइन्डीज के हैती टापू के एक भाग में स्थित है। सैनिक अमेरिका के इस छोट से देश में २३ अप्रैल १९६५ का गृहयुद्ध सिद्ध गया। विद्रोहियों द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा समर्थित सरकार को उखाड़ फेंकने के लिये भीषण युद्ध किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका को यह प्रार्थना हुई कि यह विद्रोह साम्यवादियों के समर्थन से हुआ है और यहाँ क्यूबा की नीति ही साम्यवादी शासन स्थापित होने का डर है। प्रथम उमन अमेरिकन व धम्य बिबेबी नापरिकों के बागमाल की रक्षा तथा अमेरिकन रक्षाबल की सुरक्षा के बढ़ाने २८ अप्रैल को अमेरिकन नौ सैनिक उतार दिये। २ मई का राष्ट्रपति जॉन्सन ने पोपसा की 'साम्यवादी बह्यर्थकारियों से रक्षा करने के लिये भेजे गये अमेरिकन सैनिकों की सख्या १४००० तक पहुंच गई है।' परन्तु इसी समय डोमिनिकन गणराज्य के भूतपूर्व निर्वाचित राष्ट्रपति बास (Bosch) ने ३ मई को स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया कि विद्रोहियों का साम्यवादियों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि अमेरिकन फौजें गणराज्य में न उतारी जाती तो वहाँ की लोकतन्त्रीय नीति धमसय सफल हो जाती।

संयुक्त राज्य अमेरिका की इस सैनिक कार्यवाही की सर्वत्र निम्ना की गई। इस पर अमेरिका ने यह कार्यवाही अमेरिकन राज्यों के संघठन

(Organisation of American States) और सुरक्षा परिषद के माध्यम से की। सोवियत रूस ने अमेरिका की कार्यवाही का विरोध करते हुए १ मई का परिषद से अनुरोध किया कि डोमिनिकन गणराज्य में अमेरिकन आक्रमण बंद करना की दृष्टि से हस्तक्षेप करे। अमेरिका के प्रतिनिधि स्टीवेंसन ने कहा कि गणराज्य में का बिद्रोह और गृहयुद्ध की स्थिति है उसके मूल में सभ्यवादिता की अराकात है और अमेरिका ने अमेरिका में स्थित अपने नागरिका की रक्षा के लिये सहायता है। किन्तु सोवियत संघ ने अमेरिका का प्रतिहार करते हुए कहा कि अमेरिकन नागरिकों की रक्षा का प्रश्न एक निरा बहाना है अथवा वास्तविकता यही है कि वह अमेरिका में आक्रमण का नया नृत्य कर रहा है। इस के अलावा फ्रांस ने भी डोमिनिकन गणराज्य के प्रति अमेरिकन नीति की कटु आलोचना की। अन्त में पर्यन्त द्वार विचार एक धारोपी प्रत्यारोपी को सुनने के बाद १४ मई १९६५ को सुरक्षा परिषद ने समस्या के विषय में सर्व-सम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पार किया—

- (i) संघ-डोमिना (गणराज्य की राजधानी) में युद्ध करने वाले बानों तथा से युद्ध-बिराम का बड़ाई स पालन कराया जाय।
 - (ii) संघ के महासचिव द्वारा इस गणराज्य की स्थिति के बारे में रिपोर्ट देने के लिये एक व्यक्ति अपने प्रतिनिधि की हस्तियन से डोमिनिकन गणराज्य में भेजा जाय।
 - (iii) इस विचार में सामान्य समी पक्ष शक्ति-स्थापना के कार्य में महामन्त्री को सहयोग प्रदान करें।
- एक तरफ तो संयुक्त राष्ट्र संघ डोमिनिकन गणराज्य की समस्या के समाधान हेतु सक्रिय हुआ और दूसरी तरफ अमेरिकन राज्यों के संगठन (O A S) ने भी इस विषय में कुछ ठाम कदम उठाये। २३ मई को संयुक्त राज्य अमेरिका और संघटित अमेरिका के ४ राज्यों ने मिल कर एक अन्त-अमेरिकन शक्ति सेना का गठन किया तथा अमेरिकन राज्यों के संगठन ने इस सेना को यह अधिकार दिया कि वह डोमिनिकन गणराज्य में शक्ति-स्थापना का कार्य करे।
- अन्तर अमेरिकन शक्ति सेना उपरोक्त निम्न के अनुसार अमेरिका पहुँची और वहाँ की राजनीति में हस्तक्षेप करने लगी। सोवियत संघ ने पुनः इसका विरोध किया। और सुरक्षा परिषद ने यह मांग रखी कि तथा कथित शक्ति सेना को गणराज्य से दूरस्थ हटा कर उसके स्वातंत्र्य पर एक राष्ट्र मन्त्रीय सेना कायम की जाय। किन्तु सुरक्षा परिषद को यह कमी प्रस्ताव मान्य नहीं हुआ। अन्ततः अमेरिकन राज्यों के संगठन और संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से ४ मई को एक समझौता (Act of Dominican Reconciliation) हो गया और वहाँ शक्ति स्थापित हो गई। संघ के महासचिव ने महासमा के २०वें अधिवेशन में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में यह बताने का प्रयास किया कि डोमिनिकन गणराज्य में युद्ध बंद कराने के कार्य में संघ ने बड़ा महत्वपूर्ण भूमिका निभाया था।

(२६) अरब-इजरायल संघर्ष (The Arab-Israeli War)

पश्चिमी एशिया में अरब-इजरायल सम्बन्धों के इतिहास में १९ सास के छोटे से अरसे के भीतर एक तीसरी बार अपने का बोहराया जब ५ जून १९६७ को अन्तर्गत ही संयुक्त अरब गणराज्य की राजधानी काहिरा में तयमग साइ ११ बजे अतरे के मोपू बष उठ घौर मुस ही मिनटों के भीतर इजरायली बमबार बिमान काहिरा पर मँडगम मय । इमक पहम हो बार १९४८ घौर १९५९ में अरब देयो व इजरायल क बीच सवस्य सभर्य हो चुके व जिनमें बिजय थी इजरायल ही क ह्राथ संगी थी । १९४८ १९५९ घौर १९६७ के तीनों युड हर पहले युड की अपसा अधिक प्राधुनिक घौर अधिक साहारक हुए घौर संयोगबध या परिस्तितिवम तीनों ही बार संयुक्त राष्ट्र संघ के बीच में पड़ने पर ही युड-विराम की स्थिति प्रा सकी । पहले हो बार युड विराम की स्थिति मित न्ठ धा भर रही घौर अरय इजरायल संघय मुबरने के बजाम बिगडते मय । इस तीसर युड-विराम (जिसे संयुक्त अरब गणराज्य व ८ जून को व इजरायल तथा सारिया में ६ जून का स्वीकार किया) के बाद इन सम्बन्धों की स्थिति में कोई परिवर्तन प्रायेया ऐसा प्रत्यक्ष तो दिखायी नहीं पडता फिर भी खुली का ही मौका है कि पश्चिमी एशिया का यह युड केवल छ दिन में ही समाप्त हो गया । दो युड के पहले बिम के बात-प्रतिबातों से ही मानूम हा गया था कि पसड़ा किमका घारी रहन बासा है । इस युड में इजरायल ने निश्चित रूप से बहुत बड़ी बिजय हासिल की । वह न केवल मिताई को भीतरकर स्वेज के पूर्वी तट के निकट तक प्रा ममका बकि उसने अकाबा की खाड़ी पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया ।

१९५९ क अरब-इजरायल संघर्ष में युड विराम होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना गाजा घौर मिश्र की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर सेनात हो गयी थी ताकि इजरायल घौर अरब में पुनः किसी संघर्ष का सूत्रपात न हो जाय । दोनों पक्षों के पारस्परिक सम्बन्धों का बिस्तृत बरत पश्चिमी एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का बर्तन करते समय की गई है यही हमारा आसय केवल बर्तमान संघर्ष घौर उसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका से है । इजरायल और अरब राष्ट्रों के बीच बढ़ती हुई तनावनी तब बिशय रूप से बिस्फोटक हो गई जब १८ मई १९६७ को संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव ऊ-थांट से गाजा और मिश्र की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा से सभी सौधीय सैनिक हटा देने की मांग की । चू कि यह मिश्र की प्रयुसता का मामला था घत संभावित अतरे को सममते हुए भी १६ मई को महासचिव मिश्र की सीमा से अन्तर्राष्ट्रीय सेना हटाने को सहमत हो गये घौर इस निश्चय के अनुषय सेना के हटाने की कार्यवाही भी शुरू कर दी गयी । संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के हट जाने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अब संयुक्त अरब गणराज्य और इजरायल की सीमा के बीच संघर्ष की कोई रोक नहीं रह गयी घौर दोनों राष्ट्रों की सेनायें आमने-सामने हो गयीं । संघर्ष को टालने के लिए महासचिव के प्रयास

आरो रहे, किन्तु स्थिति ठह घासमिड विषम हो गयी जब २३ मई को राष्ट्रपति मासिर ने इकरायली बहाजों के घकाबा की छाड़ी में प्रवच की मनाही कर दी। घकाबा की छाड़ी इकरायल के लिए रक्तवाहिनी छाड़ी के समान थी बिगके कट जाने पर इकरायल की स्थिति परबने पक्की बँधी हो जाती। घत इकरायल में स्पष्ट मस्यो में बोपणु। कर दी कि भीपणुतम मुठ का कतरा मास सेकर भी घकाबा की दाडा को घपने लिए बुनी रहेगा। दूसरी ओर राष्ट्रपति मासिर ने कहा कि यह बलक्षेप गणराज्य की प्रभुमत्ता के अन्त के अन्तर्गत है जिसका उपयोग वे मबिध्य में इकरायल को कमी नहीं करते बने।

घकाबा की नाकेबन्दी से अतिवार्य संघर्ष का कतरा सिर पर महराने लगा। २३ मई को ही संयुक्त राष्ट्र राष के महासचिव ऊ-पाट बातचीत के लिए काहिरा गय और २४ मई का पबिचनी एजिया की इन बिस्फाटक स्थिति पर बिधा करन के लिए मुरझा परिषद की बैठक हुई। प्रारम्भिक बिचार बिमल के बाद परिषद ने २३ मई का पबिचनी एजिया की स्थिति पर बिचार स्पधित कर दिया ताकि सम्बन्धित पक्ष संकट के बारे में साध बिचार कर सके। २६ मई का अमेरिकन सरकार द्वारा सयुक्त धरब बलराज्य और इकरायल में रहन वाले अमेरिकन को सुरण स्वर्षत नीटने का घाबल दिया गया।

३ जून १९६७ का धरब देणो ब इकरायल के बीच घयासान लड़ाई शुन हो गयी। सुरक्षा परिषद में भारत द्वारा घबिक्तम्ब युद्ध बिराम की माँग की गयी। इसी दिन गाजाबद्धी के पास इकरायल द्वारा बम फेंकने से ५ म रतीम मीनिको की मृत्यु हो गयी। ६ जून को राष्ट्रपति मासिर द्वारा स्वैध नहर बन्द करन का ऐलान किया गया। इसी दिन सयुक्त धरब पणराज्य मीरिया घम्बीरिया और यमन में अमेरिका पर इकरायल को सहायता ब ममबल देने का घारोप लपाते हुए उससे कूटनीतिक सम्बन्ध बिच्छेद कर बिये। ७ जून को इकरायल ने घागे यइते हुए घकाबा की छाड़ी पर स्थित बम ठगल पर बन्दो कर लिया। इस तरह घकाबा की छाड़ी पर उसका नियन्त्रण हो गया। यद्यपि युद्ध प्रारम्भ होते ही अमेरिका और ब्रिटेन ने युद्ध में ठटम्ब रहन की भापणा कर दी थी किन्तु फिर भी अमेरिका का झठा बेटा और कुछ लठकू जहाज पूर्वी भू-मध्य सागर में जा गय। दूसरी ओर साबिधत बीच के बनी बहाज भी दर्रा-दालियालपार के पूर्वी भू-मध्य सागर में पहुच गये। इस तरह पबिचनी एजिया की स्थिति से तीसरे महायुद्ध का कतरा महराने गया। फिर भी बिम्ब के लिए यह सौमाम्य की बात हुई कि बार्दो पक्ष (अमेरिका या कम) युद्ध लिप्य नहीं हुआ।

इकरायली फौजे बहर वरताली हुई बंतकईम और जेरिका में पहुच गयी। सिलाई प्रायद्वीप में अरब सेनाओं ने पीछे हट कर दूसरा मोर्चा सम्बाला। इकर मोबिधत संघ ने इकरायल को बैठाबनी की कि यदि उसने युद्ध बन्द नहीं किया तो उसके साथ राजनीतिक सम्बन्ध टाड़ दिये जायेंगे। जोर्डन युद्ध बिराम के लिये तैयार हो गया किन्तु धरब बीच की सुरक्षा परिषद युद्ध-बिराम का बिरोध कट्टी रही। ८ जून तक इकरायली सेनाएं

तिनाई प्रायद्वीप को पार करनी हुयी स्वेज नहर के पूर्वी किनारे पर था पहुँची। जब यह स्पष्ट हो गया कि इबरायमी सेना शीघ्र बन्दरगाह पर अधिकार कर सकती है काहिरा और सिकन्दरिया को हमबारी से बमोन्दाज कर सकती है तो संयुक्त धरत यजराज्य ने युद्ध-विराम स्वीकार कर लिया। ६ जून को इबरायल और मीरिया में भी युद्ध-विराम हो गया।

युद्ध प्रारम्भ होने के समय पश्चिमी एशिया के मामले के सुरक्षा परिषद में दो प्रस्ताव थे—एक अमेरिका का और दूसरा धरत यजराज्य का। अमेरिकन प्रस्ताव में कहा गया था कि पश्चिमी एशिया में तनावही नहीं बढ़ने देनी चाहिये और राजनयिक इमारतों द्वारा किसी समाधान तक पहुँचने की कोशिश करनी चाहिये। संयुक्त धरत यजराज्य के प्रस्ताव में एंकर का धरत यजराज्य पर मर्दा गया था और संयुक्त धरत यजराज्य तथा इबरायल के संयुक्त युद्ध-विराम घोषण की पुनः नियुक्ति पर जोर दिया गया था। विश्वास किया जाता था कि यदि अमेरिका अपने पक्ष में पर्याप्त मठ एकत्र कर सका तो सोवियत संघ उसके प्रस्ताव पर अपने नितेवाधिकार का प्रयोग करेगा। अतः प्रस्ताव पर मतमसुना का कार्य टाल दिया गया। इबरायली प्रतिनिधि ने परिषद में भाषण देते हुए कहा 'भकाबा की खाड़ी पर अपने अधिकार के बारे में यह हड़ है और उसमें अहाबों के प्रबाध रूप में बेरोक-टोक यात्रा करने की स्थिति के प्रबाबा कोई भी दूसरी शिर्षा इबरायल को मान्य नहीं है।' इबरायली प्रतिनिधि ने धरत यजराज्य के प्रत्याक्रम करते कहा कि 'बि दुनिया की शक्तों के सामने एक ऐसा पक्ष था देना चाहते हैं जिसके पीछे उनकी आक्रमक प्रकृतियाँ छिप जायें वे धरत यजराज्य के कार्यवाहियों के विकार देश को आक्रमणकारी करार देना चाहते हैं और तमाम अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को सम्मोहित करके मवाकत कर दे चाहते हैं ताकि उनकी आक्रमण की तैयारियों में कोई भी देश किसी तरह का हस्तक्षेप न कर सके।' इबरायली प्रतिनिधि के बवाब में धरत यजराज्य के प्रतिनिधियों ने अपने पक्ष की पुष्टि की। सीरियामी प्रतिनिधि ने धरत यजराज्य के मागे मड़ते हुए कहा—'एक नये स्वेज संकट का घाया मंडर गया है। इबरायल दुनिया को एक बार फिर विनाश के विन्दु तक पहुँचाने वाला है और यह भी सिर्फ इसलिए कि उसे विश्वास है कि उसके म्हाय धीर संरक्षक सर्वत्र उसकी सहायता को उत्तर रूँगे।' सोवियत प्रतिनिधि फेरोंको ने 'साम्राज्यवादी शक्तियों' को पश्चिमी एशियायी संघट विम्बेदार ठहराते हुए धरत यजराज्य को हर तरह की सहायता देने कास्वासन दिया।

सुरक्षा परिषद में धरत यजराज्य के प्रत्यारोप होते रहे और उपर इबरायल की स्वेज नहर के पूर्वी तट तक पहुँच गयी और तब सुरक्षा परिषद धरत यजराज्य पर, धरत यजराज्य के सयमठे हुए, संयुक्त धरत यजराज्य ने युद्ध-विराम स्वीकार कर लिया (८ जून)। किन्तु युद्ध-विराम के बाद भी संघट में झड़पें होती रहीं जिनसे युद्ध पुनः मड़क उठने का खतरा पैदा गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने शक्तों पक्षों से युद्ध-विराम का धरत यजराज्य पर पालन करने की धरत यजराज्य की। १० जुलाई को स्वेज के किनारे संयुक्त य

राष्ट्रीय प्रोत्साहन पर संयुक्त धरत गणराज्य सहमत हो गया। १९ जुलाई से स्वेज नहर क्षेत्र में संघ के पर्यवेक्षकों की डेल रल में मुद्र-विरोध मानू हो गया।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों के फलस्वरूप धरतियों और इजरायलियों में मुद्र समाप्त हो चुका है किन्तु स्थायी शांति अभी कोसों दूर है। इजरायल न केवल प्रकाबा की जाड़ी में अपने निर्वासित बाबायन की गारण्टी चाहता है बल्कि स्वेज नहर को भी अपने सिद्ध गुप्त डेलना चाहता है। जीते हुए प्रवेशों का खामी करने की उसकी इच्छा नहीं है क्योंकि वह सामरिक महत्त्व के ऐसे ठिकानों को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहता कि जितने अधिक्य में इजरायल की कोई मांग स्वीकार करन को उरमुक्त नहीं और धरत राज्य इजरायल को धरत से विलेप करत रहे। दूसरी है। संयुक्त धरत गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर इस बात पर मुद्र है कि इजरायल को विजय का कोई साम नहीं दिया जायगा। ऐसी सूत्र में समस्या का कोई न कोई स्थायी समाधान इड निकालना ही काफ़ी नहीं है दोनों पक्षों पर इसे अनिवार्य रूप से मानू भी दिया जाना चाहिए। कुछ पक्षों की राय है कि प्रकाबा की जाड़ी में इजरायल ने बहाजराती के अधिकार और स्वेज के प्रान का सुरत ही विरत म्यापालय में ले जाना चाहिये।

ब्रिटिश पत्र 'गार्जियन' ने अपने सम्पादकीय लेख में सूझाव दिया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को पश्चिमी एशिया में शांति प्रयत्न को सुलमात ठीक उसी ढंग से शुरू करनी चाहिये जित ढंग से उन्होंने भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दिनों में वहाँ शांति कराबी थी। पत्र का कहना है—

“शांति प्रयत्नों का पहला और प्रधान मन्त्रि ऊर्जा की दोनों पक्षों के ऊर्जा में भारत-पाकिस्तान का संघर्ष समाप्त करने के लिये १९६३ में नयी ब्रिस्नी धीर राबसपिन्डी जाकर बातचीत की थी। ऊर्जा को सम्भवतः पहले इजरायल जाना होगा क्योंकि विजयी डेल होने के नाते धीर डूतरे पक्ष का कुछ माय अपने अधिकार में ले लेने के कारण शांति की शर्तें पक्ष बनी बत सकत है। उसके साथ बातचीत करने के बाब ही शांति-प्रयत्न प्राये बायेंवी लेकिन इजरायल को कुछ चाहता है। सभी के प्राचार पर मतार्थे हगले के लिये इजरायल पर धन्तराष्ट्रीय दबाव डाना वा सकता है। इजरायल को कुछ चाहता है वह भी ज्यों का त्यों मान लेने की प्राणा नहीं की वा सकती पर इजरायल की शर्तें जितनी जबर होनी उतनी ही समस्या के स्थायी समाधान की प्राणा बढेगी।

—सवाल यह है कि क्या नयी संयुक्त राष्ट्र प्रापात्कामीन गैला से कुछ मरत मिलेगी? इजरायल अपने पन्नेमी डेलों से शांति सचि करेगा। नयी शांति में संयुक्त राष्ट्र प्रापात्कामीन गैला का फाई

पलक नहीं रह जाता। लेकिन फिर भी जैसा कि ब्रिटिश सरकार और प्रतिपक्ष दल के नेताओं ने अपने भाषणों में कहा है—संयुक्त राष्ट्र प्रायात्वासीन सेना सीमा के बाहरी भाग तैनात होनी चाहिये जिससे कि किसी एक पक्ष के कहने पर शक्ति का प्रयोग करने पर उसे हटाना न जा सके। संयुक्त राष्ट्र प्रायात्वासीन सेना रखने का सबसे बड़ा नाम ता यह होया कि कम उमर के युवकों का नियंत्रण विधियों के हाथ में नहीं रहेगा। शांति वातावरण में सम्भवत एक बात का यह तप हो ही जायेगी कि अफगानिस्तान की आड़ में अन्तर्राष्ट्रीय असमर्थता है।

शांति प्रयत्नों का पहला सिद्धान्त यह होना चाहिये कि जो भी समाधान हो, वह अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए विश्व को स्वीकार्य होना चाहिये। जैसे इजरायल में अरबी की अहम शक्ति बनाना स्वाभाविक ही है क्योंकि वहाँ अब यह भारत और अफगानिस्तान की ही भाँति को विराते का भय प्रकट कर रहा है। इजरायल में अफगानिस्तान से अरबी को अपने लिये बहुत अवसर मिल रहे हैं लेकिन फिर भी विश्व और इजरायल की सीमा पर विद्यमान १० वर्षों से बराबर शांति रही और सीरिया से लाने वाली सीमा पर भी संयुक्त राष्ट्र प्रायात्वासीन सेना के बिना भी इन दो वर्षों तक पूर्ण शांति थी अब तक अरबी सीरिया और विश्व दोनों के ही राष्ट्रपति ने। लेकिन इजरायल ने यह बात कभी ध्यान नहीं की कि यह संयुक्त राष्ट्र अख्यकारण को भंग होते देखना चाहता है और जब यह भय हुआ कि इजरायल की सुरक्षा का कोई ठिकाना भी नहीं रहा। इसके बाद से वे सीमाओं कभी नहीं रहीं और दोनों ही तरफ से कुछ न कुछ होता रहा। वर्तमान प्रत्यक्ष युद्ध उसी का परिणाम था।

गंभीरतम है कि इजरायल में सरकार की बाहरी अरबी भी एम्बोस के हाथ में है। उनके अरबी कार्यवाही रहे हैं। यह बात सभी जानते हैं। अफगानिस्तान की आड़ में अफगानिस्तान के अधिकार की इजरायल की भाँति ध्यानीय है। लेकिन कुछ समय के लिये अरबी अख्यकारण की बुनियादी दृष्टि करने के लिये इजरायल या अरबी अख्यकारण का कोई देश अपनी वर्तमान अदरता को बँटा है तो यह बड़े ही बुद्धिमत्ता की बात होगी। सभी पक्षों को दूरदर्शिता से काम लेकर स्थायी राजनीतिक समाधान की बात सोचनी चाहिये।

अरब-इजरायल समस्या के समाधान के लिये यह नहीं भुलाया जाना चाहिये कि संयुक्त राष्ट्र अख्यकारण का अस्तित्व अरबी के हाथों में ही रहना चाहिये क्योंकि उनमें यह समझ है कि वे अपनी लोकप्रियता तथा राजनीतिक सुझ-बुझ के आधार पर इजरायल के बारे में अरबियों का विचार पलट दें।*

* यद्यपि इजरायल द्वारा स्वयं अहम से अफगानिस्तान जाने-जाने सम्बन्धी विवाद बरसूर कायम है तथापि इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र अख्यकारण के निर्णय से कुछ हीत प्रकट जायी है। इस बात का संकेत अख्यकारण टाइम्स (२५ दिसम्बर १९५७) में प्रकाशित निम्नलिखित समाचार से मिलता है—

जिस प्रकार फ्रांस में जनरल डिमॉन ही मस्जीरिया की स्वाधीनता के प्रश्न पर अपने देशवासियों की धारणा में परिवर्तन ला सके उसी प्रकार भारत में नासिर ही भारत सोवो से इजरायल का प्रतिरूप स्वीकार करा सकते हैं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि इजरायल के नासिर प्रयत्नों की दिशा क्या रहती है? समस्यायों की बात तो यही होगी कि इजरायली नेता बिजय के नाते सिर्फ इतना हाँ बोलें कि इजरायल की सुरक्षा की गारंटी हो और उसके प्रतिरूप को स्वीकार दिया जाय। नासिर प्रयत्नों का सर्वोत्तम तरीका यही हो सकता है कि भारत व इजरायल पापस में बातचीत करके ही कोई रास्ता निकालें।

(३०) चीन में चीन के प्रवेश की समस्या

(The Question of Entrance of Communist China)

चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हो जाने के बाद पैकिंग पर से राष्ट्रवादी सरकार का अधिकार हट गया तथा च्यांग काई शेक भी सरकार को फारमोसा टापू पर अपनी जान बचाने के लिए बामा पड़ा। अनेक दलों ने साम्यवादी चीन को सुरक्षित या कुछ देर में साम्यता दे दी किन्तु दूसरे कुछ राष्ट्र जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका भी शामिल हैं चीन की इस नवीन सरकार की

पता चला है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने राष्ट्र संघ महासचिव ऊ वाश्ट का निष्ठा है कि वह स्वेज नहर को इजरायल के बिकट व्यापारी बहाजों के लिए खोलने की तैयार है लेकिन नरत है कि इजरायल फ्रिन्डली क बरगाणियों का मामला राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के अनुसार हल करना स्वीकार कर स।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने इजरायल के सन्तुष्टापूर्व रबैये के स्वतन्त्र समाप्त हो जाने का घाबरावत भी दिया है। लेकिन यही राष्ट्र को साम्यता पचवा उससे स्वाधीन समझौते पर बातचीत का विरोध दोहराया है।

राष्ट्र संघ ने १९४९ पूर्व प्रस्ताव में मिश्र को कहा था कि वह इजरायल के बहाजों को स्वेज नहर से गुजरने दे लेकिन मिश्र ने इसे मानने को इन्कार कर दिया था और तर्क दिया था कि उनकी इजरायल से सड़ाई है।

चीन के भ्रमण के बाद भी मिश्र नेता बिदेसी प्रतिनिधियों को बताते रहे हैं कि जब तक विश्व महासत्त विराम की खाड़ी पर मिश्र की प्रमुखता के बारे में फैसला नहीं कर देती तब तक वे इजरायली बहाजों व मास को खाड़ी से गुजरने दे सकते हैं लेकिन स्वेज नहर से इजरायल के भ्रष्टे वाला बहाज कभी न गुजरने दिया जायगा।

संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति में यह बदल इजरायल के भारत संघ से जन्मी हट जाने के लिए की यही है। इतक बारे में ऊ-वाश्ट को अंतरराष्ट्रीय धाबडुल के द्वारा सूचना दी गयी। आरतुप सम्मेलन क बात काहिरा जाने वाले कुछ अन्य व्यक्तियों को भी इस बारे में बताया गया।

ऊ-वाश्ट चाहते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश मंत्री एच वेल्ल के बारे में राष्ट्र संघ महासभा में भाषण के दौरान संघट करे ताकि जो लोग पाकिस्ती मुक्ति संघट का स्वाधोचित हल करवाना चाहते हैं उनके हान भवकूल हो सकें।

द्वैत मानने तथा राजनीतिक सम्बन्ध बनाने के लिए राजी न हुए। इसके फलस्वरूप रूस ने जब साम्यवादी चीन को संघ का सदस्य बनाने के लिये सुरक्षा परिषद में प्रस्ताव रखा तो वह खुपे तय्य से असफल हो गया। पश्चिमी शक्तियों ने इसका पूरी शक्ति से विरोध किया। क्योंकि इन शक्तियों को यह खतरा था कि यदि राष्ट्रवादी चीन के स्थान पर साम्यवादी चीन को सुरक्षा परिषद का -वादी सदस्य बना दिया गया तो सोवियत रूस का पक्ष भारी हो जायगा तथा सुरक्षा परिषद की बागडोर अमेरिका के हाथ में चली जायगी। महासभा में तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पक्षवादी महासभा सदस्य तो ही चुका था क्योंकि १९६० में अनेक अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता ग्रहण की जो कि साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध तथा साम्यवादी शाखाओं के प्रति प्राकटित थे। साम्यवादी चीन को मान्यता देना तथा उसे संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना देना न केवल संघ में ही बरख एशिया-अफ्रीका महाद्वीप धीरे इस प्रकार सारे विश्व में साम्यवाद का प्रभाव बढ़ाने में सहायक बन सकता था। यह सोच कर पश्चिमी शक्तियों ने इस खतरे को दूर रखने का हर सम्भव प्रयत्न किया। सन् १९६० के दिनों में साम्यवादी चीन के संघ में प्रवेश के प्रश्न पर मतभेद होने के कारण सोवियत रूस ने सुरक्षा परिषद की बैठकों का बहिष्कार कर रखा था। भारत धीरे धीरे अनेक अग्रगण्य पक्षवा तटस्थ राष्ट्र साम्यवादी चीन को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में रहे हैं यद्यपि अब भारत के नेता इस सम्बन्ध में उठने पश्चिमी धीरे संवेष्ट नहीं हैं जितने पहले थे।

चीन के संघ के प्रवेश के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा अमेरिका ही रहा है। अमेरिका का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद २ में यह स्पष्ट बोधित है कि संघ में उन सभी देशों को प्रवेश दिया जा सकता है जो शांतिप्रिय हों। चार्टर में उल्लिखित शक्तियों को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हों और संघ भी यह समझता हो कि वे यह शक्तियाँ का मुख्य प्राप्ति के लिए तैयार हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति एवं सुरक्षा को बनाये रखना धीरे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा शक्ति के लिए उत्तरण खतरे को दूर करने के लिए अग्रगण्य रोकने के लिए प्रभावशाली सामूहिक कार्यवाही करना प्राकटय होने धीरे किसी अन्य प्रकार से शक्ति भंग होने पर उसको रोकने के लिए प्रभावशाली कार्यवाही करना तथा ऐसे सभी अन्तर्राष्ट्रीय विचारों का ध्यान धीरे अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार शांतिपूर्ण समाधान करना, जितने विश्व शांति भंग होने की सम्भावना हो।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका धीरे उसके समर्थक राष्ट्रों का तर्क है कि साम्यवादी चीन चार्टर द्वारा सदस्यता के लिए प्रस्तुत कमीनी पर किसी प्रकार का नहीं उतरता। १९६० से ही वह निरन्तर हिमालयक तथा प्राग्जाहात्मक कार्यों में संलग्न रहा है। करम-अयम पर उसने संयुक्त राष्ट्र संघ धीरे उसके धारकों की धमकें बनायी हैं। वह संघ पर चीन पक्षराज्य का पक्ष खोदने का आरोप लगाता रहा है। उसने कारमोक्षा पर बनाए शक्ति करके के लिए अनेक बार प्राग्जाहात्मक कार्यवाहियों की हैं धीरे समस्या को शांतिपूर्ण

इंग्रिस सुलभान्ने से साफ इन्कार कर दिया है। चीन ने बसिली एशिया के तबोदित राष्ट्रों के निवासियों को इस बात के लिए उकसाया है कि वे हिंसात्मक उपायों द्वारा अपनी बीच सरकारों को पतल कर साम्यवादी शासन की स्थापना कर दें। इतना ही नहीं उसने इन देशों के साम्यवादी खापामार दस्तों को सक्रिय रूप से सैनिक और धार्मिक सहायता प्रदान की है। चीन के युद्ध-विपासु नेताओं के आदेश से चीनी फौजों ने तिब्बत की स्वतन्त्रता का धनहरण कर लिया है वहाँ के शांतिप्रिय निवासियों को बड़ी संख्या में मौत के बाट उतार दिया है और अपने मित्र देश बाएँ की सौमार्थों का प्रतिश्रमण करके उसके कुछ भागों पर अनाधिकृत कब्जा बना लिया है। साम्यवादी चीन का सम्पूर्ण इतिहास शांति और मैत्रीपूर्ण व्यवस्थाओं से इन्कार करते हुए हिंसा युद्ध और वैमनस्य के प्रसार के प्रयासों से भरा पड़ा है। सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में कोरिया से लेकर हिमालय तक फले समय १००० मील के विशाल बर्षाकार क्षेत्र में उसने दूला और शान्ति के बीच बोये हैं सैनिक कर्मबाली की है और ठोड़-फोड़ व धाकमण की नीति द्वारा अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न किया है। चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून की धनहेतना की है और अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार के नियमों को पठा कर ताक में रक दिया है। उसके द्वारा रोकड़ विवेकियों के साथ और विभिन्न देशों के राजदूतों और कर्मचारियों के साथ अमानवीय बर्बर व्यवहार किया गया है। शांतिप्रिय राष्ट्रों के विरुद्ध भी सबक बूजा का संक फुकने की उसकी नीति है। चीनी साम्यवादी कुले तीर पर-कुड़ की अनिबार्थता की शोपणा करते हैं। उनका कहना है कि शान्ति का अमिप्राय है—अन्तिकारी हिंसा अर्थात् अन्तिकारी युद्ध। स्पष्ट है कि इस प्रकार की मनोवृत्ति और पृष्ठभूमि वाले देश को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान नहीं दिया जाना चाहिये अथवा इसके बीचन परिणाम होंगे।

साम्यवादी चीन को संघ में स्थान देने का विरोध करने के लिए अमेरिका ने और भी अनेक कारण प्रस्तुत किये जिनमें से प्रमुख संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१ यद्यपि चीन की जनसंख्या का अधिकांश भाग साम्यवादियों द्वारा नियंत्रित मुख्य भूमि पर निवास करता है किन्तु इस देश की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि ताइवान में भी इस समय १ करोड़ १० लाख से भी अधिक चीनी रहते हैं जिनकी सरकार उस सरकार का प्रतिनिधित्व करती है जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना करने में प्रमुख और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

२ संयुक्त राष्ट्र संघ के लिये यह सर्वथा अनुचित और अस्वाभावपूर्ण होगा कि यह एक ऐसे राष्ट्र को अपनी सदस्यता से वंचित करके, जिसने सर्वेथ संघ से पूर्ण सहयोग किया हो उसके स्थान पर ऐसी सरकार को प्रतिनिधित्व प्राप्त करे जिसका सम्पूर्ण रिकार्ड ही धाकमणायत्मक व अशहयोगपूर्ण कार्यवाहियों से भरा पड़ा है।

३ अनेक केवल साम्यवादी चीन को संघ में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का नहीं है, अपितु अनेक यह भी उपस्थित है कि अरमोसा (ताइवान) में

रहने वाले १ करोड़ से अधिक निवासियों को क्या साम्यवादियों को सीप दिया जाय और इस तरह उन्हें स्वतन्त्रता व प्राणरक्षित मानवीय अधिकारों से महकम कर दिया जाय ।

४ साम्यवादी चीन को संघ में स्वागत दिये जाने का अर्थप्राम्य यह होता कि संघ ताइवान पर साम्यवादी चीन द्वारा प्राक्रमण किये जाने का मुक्त समर्थक होगा क्योंकि साम्यवादी चीन स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर चुका है कि जब तक ताइवान पर उसका अधिकार नहीं होता तब तक संघ के साथ उसके सहयोग करने का प्रयत्न ही नहीं उठता ।

५ यद्यपि साम्यवादी चीन के ७० करोड़ व्यक्तियों की तुलना में ताइवान की जनसंख्या मात्र करोड़ जनसंख्या बहुत कम है किन्तु फिर भी यह तथ्य स्मरणीय है कि ताइवान की जनसंख्या उन ६१ से भी अधिक देशों की जनसंख्या से कहीं अधिक है जिन्हें संघ की सदस्यता प्राप्त है ।

६ क्या संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए यह श्यायसमय होगा कि सार्कोस लोगों की स्वतन्त्रता और उनकी सरकार के कानूनी अधिकारों को समाप्त कर दिया जाय ?

चाहे अनेक एशियाई और तटस्थ राष्ट्र साम्यवादी चीन के राष्ट्र संघ के सदस्य बनने का पक्ष में किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा चीन के संघ में प्रवेश-विरोधी तर्क अचर्य हैं । किसी भी व्यक्ति या राष्ट्र को किसी संस्था में शामिल करते समय प्रथम उचित वैज्ञानिक सम्बन्ध बनाते समय उसके पिछले इतिहास और कार्यों को नहीं भुलाया जा सकता । भारत स्वयं इस तथ्य की ज्येष्ठा करके इसका मूल्य चुका रहा है और अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डाल चुका है ।

फिर भी इस तर्क में बस है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को विश्व का सर्वोच्च होना चाहिए और इसलिए जब तक चीन को इसका सदस्य नहीं बनाया जाता विश्व के एक बड़े हिस्से का मत अनजान ही रह जायगा । जब संघ को सर्वव्यापी बनना है तो साम्यवादी चीन जैसे बड़े राष्ट्र के बिना इसके निर्णय प्रभावशाली नहीं बन पावेंगे । पुनः संयुक्त राष्ट्र संघ के घनाका ऐसा और कोई स्वागत नहीं है जहाँ चीन में समझौता बाँटा जा सके ।

संघ में प्रवेश सम्बन्धी चीन-विरोधी और चीन-समर्थक धारणाओं का समर्थन करने के लिए शांति बिकट देशों को भी संघ में सम्मिलित किया ही जाना चाहिए ताकि उनकी उच्चकलताओं को मर्यादित किया जा सके और जयन्ती को भी एक सम्म राष्ट्र बनाया जा सके । इतनी विद्वान जनसंख्या वाले घु माग को शांति एवं अनुशासन के नियमों तथा उत्तरदायित्वों से बाहर रखना विश्व-शांति की दृष्टि से उचित नहीं है । महात्म लेन की अनेक समस्याएँ तब तक नहीं सुलझायी जा सकती जब तक कि चीन इन समस्याओं के विचार-विमर्श में भाग न ले । इसके अतिरिक्त अनेक अमेरिकन अधिकारी भी यह स्वीकार कर रहे हैं कि तब तक साम्यवादी चीन को मानीवार न बनाया जाय तब तक किसी भी निराशंकीकरण-सम्बन्ध के निर्णयों को सफल एवं प्रभावपूर्ण नहीं बनाया जा सकता ।

जात्र मुख्य समस्या यही है कि दो चीनों में से किस को सुरक्षा परिषद का सदस्य बनाया जाय। नये बेल राष्ट्रवासी चीन को बाहर नहीं करना चाहते। धर्मिक विचारकों का मत है कि सोवियत रूस भी जिस में यह नहीं चाहता कि चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया जाय और इसी कारण वह अपने प्रस्ताव को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वह दूसरों को मान्य ही नहीं होता। समय के साथ-साथ इस समस्या के मार्ग में नयी-नयी कठिनाइयाँ पैदा होती जा रही हैं। क्लार्क प्राइडबर्गर का कहना है कि बितनी अधिक देर होयी पीकिंग के प्रवेश के लिए सम्मोपजनक प्रयत्न करना पतना ही अधिक कठिन बन जायगा।*

संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष २० वर्षों की प्रवृत्ति में प्रस्तुत किये जाने वाले सभी प्रमुख राजनीतिक विवाहों और उनके समाधान के लिए किये गये संघ के प्रयासों का वर्णन हम कर चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में अपनी प्रमुख सेवाओं द्वारा एक अतिरिक्त चीन के महत्त्व को इतिहास में सर्वत्र स्थायीकरण में लिखा जा रहा है। इनके अतिरिक्त संघ की कुछ विशिष्ट उपयोगिताएँ या विशेषताएँ हैं जिन पर दो तर्क पृथक् से लिख देना उपयुगी रहेगा। ये विशेषताएँ या उपयोगिताएँ निम्न हैं—

- (१) संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रसार,
- (२) संघ विश्व सरकार की ओर एक कदम
- (३) संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का बाहर एवं पंजीकरण
- (४) संघ द्वारा मानव-अधिकारों की रक्षा।

(१) संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर (U.N.O towards Internationalism)—उपरोक्त अन्तर्राष्ट्रीय विवाहों को सुलझाने में संघ द्वारा जो कार्य किया गया वह सफल रहा बर्नना नहीं एवं उचित प्रास्ताविक परिणाम प्राप्त किये जा सके बर्नना नहीं इस प्रश्न पर तर्कों की व्याख्या करते समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विभागों के बीच मतभेद रह सकता है। परन्तु यह मतभेद रहते हुए भी निःसन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि संघ ने विश्व-युद्ध को रोकने विनाश की भीषणता को बर्नना करने न्याय कानून एवं व्यवस्था की स्थापना करने में जो योगदान किया है उसे मानव जाति कभी नहीं भूल सकती। ७ जून १९६३ को संघ की बैठक कमेटी में भाषण देते हुए भारतीय प्रतिनिधि श्री बी० एन बच्चर्गों ने कहा था कि हम संघ से उचित विश्व कल्पना नहीं कर सकते। इसके बिना हम संघर्ष युद्ध और विध्वंस की पुरानी स्थिति में सीट जायेंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विश्व के विभिन्न खूने वाले लोगों की बीच प्रयत्न की जायना का विकास

*"The longer the delay the more difficult it may be to make satisfactory arrangements for Peking's entrance."

करने की चेष्टा की गई है। इसके विधेय प्रतिकरणों द्वारा जिला विज्ञान संस्कृति प्रावि क्षेत्रों में जो कल्याणकारी कार्य किये जाते हैं तथा पिछड़े देशों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को धीमे बढ़ाने के जो प्रयत्न किये जाते हैं उनका प्रमाण यह होता है कि जिन लोगों को इसकी सेवाओं से लाभ प्राप्त हो रहा है उनके दिमाग में इसके प्रति सम्मान के भाव बाधुत होये। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे धारकमण के विश्व सामूहिक प्रयत्नों का पक्षपाती है उसी प्रकार यह एक राष्ट्र की प्रत्येक समस्या में दूसरों राष्ट्रों के सम्माननापूर्वक सहयोग को सम्मन बनाता है। संसार के राष्ट्रों के बीच मिलजुल कर रहने तथा सहयोगपूर्ण सम्बन्धों की परम्पराओं का सूत्रपात होता है। यह कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने आज एक विशेय प्रकार का बातावरण तैयार कर दिया है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र अपने आपको समग्र विश्व का एक घटक मानने लगा है। एक राष्ट्र की सम्प्रभुता मर्यादित हो कर उन्मुखताओं एवं मर्यादा प्रवृत्तियों से हटकर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं से मर्यादित होने लगी है। यह धारकमणकारी विश्वमक तथा विधेयपूर्ण अपने कुरूप बोलों को छोड़ कर विश्व-कल्याण एवं मानव-जीवन के चरम मण्यों की प्राप्ति के मार्गों का सौन्दर्यपूर्ण बना पहल चुकी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में कार्य करने वाले नागरिक सेवा के कर्मचारी हजारों की संख्या में होते हैं। ये धनम-मतम देशों के निवासी होते हुए भी जब हमेशा विश्व की समस्याओं पर विचार करने तथा उनसे संबंधित ही कार्य करते रहते हैं तो यह स्वाभाविक है कि उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीयतावाद की संकुचित परिधियों से ऊपर उठ कर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रोत्प्रेत हो जाये। प्रत्येक विषय पर आते समय उनकी दृष्टि विश्व शांति सुरक्षा एवं कल्याण पर ही टिकी रहती है। सिविल सेवाओं की यह बर्न-बलता बलता एवं ईमानदारी बहुत ऊँचे स्तर की होती है। अनेक राष्ट्रों के बहुत से प्रमादनासी व्यक्तियों का इस बर्न के सदस्यों से अनिष्ट सम्बन्ध रहता है। यह सम्बन्ध जब जब इन राष्ट्रों की नीतियों को प्रभावित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान करता है। दूसरे शब्दों में संघ के सिविल सेवकों का बलता हुआ दृष्टिकोण उनके सम्बन्धियों की धीर इस प्रकार देश के दृष्टिकोण को बदलने में सहायक बनता है। चार्टर की धारा १०० में कहा गया है कि महासचिव धीर कर्मचारी बर्न के लिए यह धारकमण है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय शांति को पूरी तरह से समर्थ तथा संघ के बाहर के किसी राज्य या उसके अधिकारी से परामर्श प्राप्त न करें। उनकी पूरी की पूरी निष्ठा धीर भक्ति संघ के प्रति होनी चाहिये। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्येक सदस्य भी धारकमण रूप से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह महासचिव तथा उसके कर्मचारियों के दाविलों के दूर अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को मानेगा धीर उनके पालन में किसी प्रकार का प्रमाण डालने का प्रयास न करेगा।

(२) संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व सरकार की धीर एक कदम
(U. N. O. : A Step towards World Govt.)

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उन सभी मण्यों की प्राप्ति करने का प्रयास किया जाता है जिसकी साधना के लिए अनेक विश्व सरकार की

स्थापना की सिफारिश करते हैं। डॉग हेमरसोव्ड ने संघ के चार्टर में पाये जाने वाले पाँच मूल सिद्धांतों को परिभाषित किया था वे हैं—(i) समान राजनीतिक अधिकारों की एक व्यवस्था (ii) समान धार्मिक अधिकार (iii) विधि का शासन (iv) सामान्य सुरक्षा के अतिरिक्त कभी भी सैनिक शक्ति का प्रयोग न करना (v) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को तथा मन मुटाबों को तब करना जो कि बाहर में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का कारण बन सकते हैं। ठीक यही उद्देश्य विश्व सरकार के बताये जाते हैं। विश्व सरकार की स्थापना एक साबन मान है जिसके द्वारा अनेक मान्य राजनीतिक एवं विचारक संसार में अशांति असुरक्षा एवं बिनाश को मिटा कर इसके स्थान पर न्याय शान्ति सुरक्षा एवं व्यवस्थापूर्ण विश्व समाज की रचना करना चाहते हैं। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समानता एवं स्वतन्त्रता के अधिकार के साथ साथ व्यक्तिगत के विकास के सभी सम्भव साधन एवं अवसर प्रदान किए जायेंगे। विश्व सरकार की प्राथमिक धारण्यकता होती है अन्तर्राष्ट्रीय समाज जिसके अभाव में विश्व सरकार से सम्बन्धित कोई भी योजना सफलता से पाँच तक दूर ही रहेगी। इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त राष्ट्र सब द्वारा ऐसे समाज के निर्माण की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त विश्व सरकार में राष्ट्रों की सम्प्रभुता शक्ति को पूरी तरह समाप्त करके उसे अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के हाथों में सौंप दिया जायगा। सम्प्रभुता का यह हस्तांतरण विश्व सरकार की स्थापना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। संयुक्त राष्ट्र संघ इस बाधा को दूर करने में भी कुछ काम कर रहा है। संघ द्वारा इसके सबसो का कुछ धार्मिक सीपे लये हैं जिनको पूरा करना विश्व शान्ति एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक होता है। एक राष्ट्र द्वारा किसी विश्व संस्था द्वारा लदये गये इन अंतरतामितियों का पालन कुछ सीमा तक उसकी सम्प्रभुता को मर्यादित करता है और इस प्रकार उसे विश्व सरकार का प्रारम्भिक प्रतिष्ठान प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त साथ तक एक राष्ट्र की सीमित एवं सङ्कुचित समस्याओं पर विचार करने वाले राजनीतिक विश्व सरकार का एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाज का संघासन तथा व्यवस्था किस प्रकार करेंगे यह भी एक समस्या है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय मंच प्रदान किया गया है जहाँ विभिन्न देशों के राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय रूप में विचार विमर्श कर सकें विश्व की समस्याओं का समाधान हो सके। कुछ मिसा कर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ एक प्रतिष्ठान केन्द्र है जहाँ विश्व के निवासियों एवं राष्ट्रों के नेताओं को उन सब बातों की शिक्षा हो जाती है जो विश्व सरकार की स्थापना एवं संघासन के लिए अनिवार्य है। क्लार्क एलचेबर्गर (Clark Elcheberger) के मतानुसार यदि विश्व शांति प्राप्त करना चाहता है तो संयुक्त राष्ट्र संघ को एक सीमित सरकार के रूप में कार्य करना चाहिये इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। *

in fact, the U N must act as a limited govt. if the world is to have peace it has no other choice."

—Clark M. Elcheberger U N., The first twenty years, 1965 p. 128

(२) अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का आखर एवं पंजीकरण
(Codification and respect for International Law)

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को नियमबद्ध (Codified) करने में बहुत कुछ योगदान किया है। इसके चार्टर में इस काम पर विशेष ध्यान दिया गया है। महासभा ने १७ सत्रियों की एक आस्थासीक समिति (Adhoc Committee) नियुक्त की जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास तथा पंजीकरण के कार्य को कर सके। चार्टर के अनुच्छेद १३ के अनुसार महासभा का यह उत्तरदायित्व है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास तथा पंजीकरण को प्रोत्साहन प्रदान करे। इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए इस समिति द्वारा जोब की जाती है। सितम्बर, १९४७ के अपने सत्रों की इस समिति ने एक अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग नियुक्त करने की प्रतिवेदन में समिति ने एक अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग नियुक्त करने की सलाह दी। इस आयोग को दो प्रकार के काम सँपे जाने से। प्रथम तो उस अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विषय का अध्ययन जो कि अभी तक विकसित नहीं हो पाया है। दूसरे उन कानूनों को सन्निवृत्त रूप से देना जिनका कि पहले से ही अधिसूचना परम्पराओं एवं सिद्धान्तों के रूप में प्रचलन है। समिति द्वारा यह भी सिफारिश की गई कि आयोग को प्रचलित अन्तर्राष्ट्रीय कानून (Customary International Law) के विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन करना चाहिये ताकि पंजीकरण के लिए भीषक छाँटे जा सकें। समिति ने बताया कि उसके उत्तरदायित्व से दो कार्य निकलते हैं—(i) नवीन कानून का प्रपत्तिगत विकास (ii) प्रस्तुत कानून का पंजीकरण। इन दोनों कार्यों के बीच भारी अन्तर वर्तमान है। महासभा ने २१ नवम्बर, १९४७ को अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग (ILC) की स्थापना की। इसके ११ सत्रियों को तीन वर्ष के लिये चुना गया।

आयाप ने राज्यों के अधिकार और कर्तव्यों पर एक शोधणा तैयार की तथा न्यूरेम्बर्ग युद्ध अपराधी ट्रायल (Nuremberg War Crimes Trial) के आचारमूल कानूनों के सिद्धान्तों में से कुछ को रचनात्मक रूप प्रदान किया। पंजीकरण (Codification) के क्षेत्र में आयोग ने अपना ध्यान मुख्यतः चार विषयों पर ही केन्द्रित रखा।

- (१) सन्धियों के कानून (Law of Treaties)
- (२) न्यायीकरण प्रक्रिया (Arbitral Procedure)
- (३) ऊँचे समुद्रों की शासन पद्धति (Regime of the high Seas)
- (४) प्रादेशिक जल (Territorial Waters)

महासभा ने आयोग से एक अन्तर्राष्ट्रीय औबकारी न्यायालय स्थापित करने के बारे में राय पूछी। १९४० में आयोग ने रिपोर्ट दी कि इस प्रकार का न्यायालय (Tribunal) अपेक्षित भी है तथा सम्भव भी। महासभा ने १९४१ में आयोग को आक्रमण की परिभाषा का काम सँपाने की सलाह दी। आयोग के बाद आयाप इस निर्णय पर आया कि आक्रमण की कोई भी सँनिवृत्त परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पंजीकरण का कार्य केवल आयोग ही नहीं करता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पंजीकरण का कार्य केवल आयोग ही नहीं करता है।

वर्ष सचिवालय अन्तर्राष्ट्रीय म्यायालय मानवीय अधिकार आयोग (The Human Rights Commission) प्राथि भी इस विभा में कार्य करते हैं। संघ द्वारा देशों के राजनैतिक मतभेद दूर करते समय संघका अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्वोपनी एव रक्षा के लिए कोई भी कबम उठते समय अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का पीसने पूरी तरह किया गया है। इसका हर सम्भव प्रयास यह रहता है कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों का इन कानूनों के प्रति धार-मात्र पैदा किया हो और कहीं भी कभी भी स्थिति में उनका उल्लंघन न किया जाय। युद्ध के कानून व शान्ति के कानून समुदायी सीमा सम्बन्धी कानून व्यापार सम्बन्धी कानून एव अन्य किसी भी प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय कानून यदि किसी भी रूप में ठारा गया तो विश्व को शान्ति एवं व्यवस्था कठोर में पड़ जायेगी इसलिये संघ द्वारा यह पूरा-पूरा स्वास रखा जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही न होनी ही चाह।

(४) संघ द्वारा मानव अधिकारों का रक्षा

(Protection of Human Rights by the U N O)

संयुक्त राष्ट्र संघ व्यक्ति के मानवीय अधिकारों एवं राष्ट्रों के अिष्ठ स्वतन्त्रताओं से पूरी तरह सम्बन्धित है। प्रमूखेद ५५ तथा ५६ में इन विषयों के अपने परीष्टि रूप से विचार किया गया है। जिससे तथा क्वबस्ट का कहना था कि इनका अर्थ यह है कि सभी प्रदेशों के सभी व्यक्ति प्रावस्थाएँ एवं भय से स्वतन्त्र रहकर अपने जीवनकापन कर सकें। महासभा ने पेरिस में १६ दिसम्बर, १९४८ की धार्मी रात की मानव अधिकारों का घोषणा-पत्र दिया। जब यह घोषणा की गई तो महासभा के अध्यक्ष ने कहा कि यह पहला ही प्रयत्न है जबकि राष्ट्रों के संगठित समुदाय में मनुष्यों के अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रताओं की घोषणा की है। इस घोषणा के पीछे समूचे संघ की विश्व के प्रत्येक स्त्री-पुरुषों की शक्ति है जो कि सुरक्षे होने-पर भी इस घोषणा को बेवपूरी बनाने के लिए सहायता प्रस्ता एव मार्ग बनाने प्रदान करेये। महासभा के धर्नेकों प्रस्ताव इस घोषणा के सिद्धांतों पर ही आधारित हैं। इनके बहुत से प्रमूखेद शान्ति सचिबों में संमोहित कर दिए गये हैं तथा गये राष्ट्रों के सचिबानों में भी ई-ई सिफो-यमी हैं। समुदायी राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकारों की कई परम्पराओं स्थापित कर दी गई हैं —

(i) जाति संस्कृति एवं धर्म सम्बन्धी (Genocide Convention)

(ii) महिलाओं के राजनैतिक अधिकार (Political Rights of Women) महासभा द्वारा १९५५ में निर्मित परम्परा

(iii) दासता विरोधी परम्परा (Anti-Slavery Convention)

१९५५

(iv) जबरदस्ती के अर्थ के विरुद्ध परम्परा (Convention Against Forced Labour) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ संघठन द्वारा १९४७ में निर्मित

संघ १९४८ में संयुक्त राष्ट्र परमरीकों द्वारा मानव अधिकारों के सम्बन्ध में जो एक घोषणाया गया था वह इस आन्दोलन के पूरी तरह

से बिकस पा। किन्तु २२ जुलाई १९६१ को जॉन एफ० केनेडी ने इस नियेधालमक नीति को उमट दिया। इन्होंने अमरीकी सीनेट संयुक्त राष्ट्र संघ की उक्त चार परम्पराओं में से तीन को स्वीकार करने को कहा प्रथम परम्परा (Genocide Convention) का उल्लेख नहीं किया गया था। मानव अधिकार आयोग के अमरीकी प्रतिनिधि ने इस विषय में अमरीकन कार्य योजना (American action programme) का प्रस्तुत किया। इसके तीन भाग थे—

(i) मानव अधिकारों पर सामयिक प्रतिवेदनों (Periodic Reports) की योजना।

(ii) मानव अधिकारों पर अध्ययन की एक शृङ्खला (Series)।

(iii) कुछ मानव अधिकारों में तकनीकी सहायता प्रदान करना।

यह सहायता तीन प्रकार से की जा सकती है अर्थात् विशेषज्ञों के उपबन्ध द्वारा असीमित तथा फौजिप के उपबन्ध द्वारा समितियों के संगठन द्वारा। विश्व शांति तथा मार्ग अधिकारों के बीच भारी सम्बन्ध है। एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है तथा ये दोनों परस्पर सहयोगी भी हैं। क्लार्क आइशेबर्गर (Clark M. Eicheberger) का मत है कि राष्ट्र स्वामी मानि की घोर प्रशंसा होते हैं तो यह भी अपरिहार्य है कि मानवीय अधिकारों की भी प्रगति होगी तथा वे संरक्षित होंगे।*

संयुक्त राष्ट्रसंघ—एक मूल्यांकन

संयुक्त राष्ट्र संघ के बौद्ध, उसके विभिन्न संगठनों और कार्यक्रमों के बाद से यह बलीभाति स्पष्ट है कि यह एक परमन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी संस्था है जिसने अनेक प्रश्नों पर युद्धों का निवारण करके और गभीरतम अन्तर्राष्ट्रीय विवाधों का समाधान करके विश्व में तृतीय महायुद्ध के भूषण को अविष्य के लिए टाभा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि महाशक्तियाँ इस संस्था के माध्यम से अपने विवाधों की ईमानदारी से सुलभाने का प्रयत्न करें और इस संस्था के कार्यों में प्रवेक्षित सहयोग दें तो अविष्य में तृतीय महायुद्ध की संभावना की भी यह संस्था बहुत कुछ समाप्त कर सकती है।

आलोचकों का यह कहना कि संघ अपने प्रदान उद्देश्य-युद्धों के निवारण और अन्तर्राष्ट्रीय विवाधों के शांतिपूर्ण रूप करने में विफल हुआ है अनेक समस्याओं का अभी तक समाधान नहीं कर सका है और न ही अक्षीकरण की होड़ को मिटा पाया है निस्संदिह बहुत कुछ सत्य है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मानवीय अधिकारों और अन्तर्राष्ट्रीय शांति की रक्षा करने का उच्चतमवित्त समाजने बासा संयुक्त राष्ट्र संघ प्रायः तक अक्षीकरण संघ में भारतीयों और अन्धे जातियों के साथ दुष्प्रवहार

*"If the nations advance toward permanent peace it is inevitable that human rights will be advanced and safeguarded"

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक वातावरण में सुधार नहीं हुआ है। वियतनाम पर युद्ध के बाद बड़ रहे हैं। काश्मीर प्रश्न पर भारत और पाकिस्तान के बीच जुना युद्ध मछपि संघ के प्रयत्नों से समाप्त हो गया तथापि वहाँ और अन्य स्थाओं में तनावपूर्ण वातावरण कायम है। दक्षिणी अफ्रीका दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका व दक्षिणी रोडेसिया साइप्रस व मध्य पूर्व में सभी जगह मन्त्रे समय से समझौते मौजूद हैं जिनका हल रचनात्मक दृष्टिकोण से नहीं निकाला जा रहा है।**

महासचिव ने बड़े राष्ट्रों पर अप्रत्यक्ष रूप से आरोप लगाते हुए कहा कि वे पारस्परिक तका मय और अविश्वास की भावनाओं से ग्रस्त हैं और प्रत्येक समस्या पर मानवीय हित के दृष्टिकोण से विचार नहीं करते। संघ के संयोजनात्मक दोषों का उल्लेख करते हुए उन्होंने इस बात की सिफारिश की कि जनवादी चीन को संघ का सदस्य बनाया जाना चाहिये ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ संघों में सभी राष्ट्रों का संगठन बना सके। उनके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में स्पष्ट उल्लेख किया गया कि—

“यदि संघ की प्रावश्यकता को बनाये रखना है तो हमें यह तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा कि १९४६ के ५ बड़े राष्ट्र मात्र के विश्व के मामू निर्माता नहीं हैं और न ही वे उद्देश्यों की उपएकता से कार्य कर रहे हैं जो उनके विचारों में १९४६ में थी। मात्र के प्राप्त में विफल हैं जिसके कारण विश्व की समस्याओं में सामूहिक रूप से उपयोगी योगदान करने में असमर्थ हैं। इस स्थिति में उनके बीच कामचलाऊ संतुलन तक ही स्थापित किया जा सकता है जब कि विश्व को सुरक्षित और मनुष्य मात्र के रहने योग्य बनाने में छोटे और बड़े सभी राष्ट्र समान स्तर पर माने जाय। †

**“The international political situation has not improved. The cloud over Vietnam has grown larger and more ominous. The serious open rift between India and Pakistan over Kashmir has, with the help of U.N., been calmed down but tensions have been heightened and violence has erupted elsewhere. Frustrations have been more dominant than constructive change in respect of such long standing problems as the situation in South-Africa, South West Africa and South Rhodesia and such long standing disputes as those in Cyprus and the Middle East.

—Secretary General U—Thant's Report in September 1966

† If the usefulness of the Organization is sought to be maintained, it must be recognised that the big five of 1946 are not longer the arbiters of the fate of this earth. Neither are they working with that unity of purpose

बूलेबमान से विदेशी सेनाएँ हटाने में इण्डोनेशिया में युद्ध बन्द कराने में सुनिश्च के बेग में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने में कांगो के गृह-युद्ध को समाप्त कर उसके एकीकरण को बनाये रखने में और ऐसे ही अनेक विषयों में संघ ने उत्सवनीय सफलता अर्जित की है। संघ के ११ वें अधिवेशन में ३ अक्टूबर १९६० को मापसं करते हुए श्री जवाहरलाल नेहरू ने ठाक ही कहा था—

‘हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई बार हमारे बार-बार उत्पन्न होने वाले संकटों को युद्ध में परिचित होने से बचाया है।’

डॉ० राल्फ बुच ने इसकी विशेषता का बर्णन करते हुए लिखा है—
‘संयुक्त राष्ट्र संघ की मुख्य विशेषता यह है कि राष्ट्रों को बातचीत में व्यस्त रखता है। वे जितनी अधिक देर तक बात करते रहें उतना ही अधिक सम्बन्ध है क्योंकि इन्हें सज्ज वक युद्ध टस जाता है।’

संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व के कारण ही बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों के विरुद्ध अतिक्रमण शक्ति का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। इस तरह युद्ध का मूल कुछ कम हुआ है और इस दृष्टि से छोटे राष्ट्रों की शक्ति में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त महासभा की पर्याप्त अधिकार होने के कारण छोटे-छोटे सुदूर राष्ट्रों को अपनी शक्ति का पूर्ण उपयोग करने के धुनसे प्रोत्साहित हुए हैं और उन्होंने अपने सामर्थ्य इन धनसदों का पूरा उपयोग किया भी है। यह निश्चित रूप से एक गुन लगण है कि संभवतः पहली बार छोटे-छोटे राष्ट्रों द्वारा बड़े राष्ट्रों के प्रयासों को निष्फल कर पाना संभव हो सका है। जवाहरलाल महासभा में एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों के सम्मिलित प्रयास के कारण ही घोषित रूप का ‘त्रियोक्त’ सिद्धान्त कार्यान्वित न हो सका।

संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रभाव राष्ट्रों की सीमाओं से परे व्याप्त तत्वों और शक्तियों पर विशेष रूप से पड़ा है। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रचार में अपने प्रभाव का उत्सवनीय ढंग से उपयोग किया है और अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को अधिक सज्ज व स्पष्ट बनाया है।

यद्यपि सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से संघ एक व्यवस्थित और एकीकृत मर्यादा का अपयुक्त विनाश नहीं कर पाया है किन्तु फिर भी मानव-जाति की समस्याओं, कठिनायियों, विषयताओं को अपने प्रभावशाली ढंग से मुक्तित किया है। यह निश्च ही समस्याओं और वास्तविकताओं का एक सुन्दर दर्पण है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद के उन्मूलन में पर्याप्त सफलता पायी है। एबीसीनिया सिरिया सोमाली बर्मा मोरक्को दक्षिण अफ्रीका टोगो बर्मा जाति की स्वाधीनता इसका प्रमुख प्रमाण है। उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों के अस्तित्वपूर्ण अस्तित्वों की वर्षों जब संघ के संघर्ष पर की जाती है तो अफ्रीका अफ्रीका अफ्रीका संयुक्त देश में हो जाता है और इसका यह प्रभाव पड़ता है कि नैतिक बराबर अनेक बार वैश्विक शक्ति से अधिक प्रभावशाली बन जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पैदा किये गये

नैतिक बल और विश्व जनमत के कारण ही इस की बदनाम होकर ईरान से सेनाएँ हटाती पड़ी फ्रांस का सत्तरी प्रकीका के उपनिवेश छोड़ने पड़े और हाईकोम को इन्डोनेशिया का मौजूदा त्यागना पड़ा।

इस तरह स्पष्ट है कि अपनी दुबलताओं व विफलताओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ मानवीय बुद्धि द्वारा परिकल्पित सब तक का श्रेष्ठतम प्रभारतीय संमेलन है। यही एकमात्र ऐसी संस्था है जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में स्थिरता ला सकती है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सभी क्षेत्रों में संघ की क्षमता और उसके साधनों का उपयोग बुद्धिमत्ता तथा विवेक के साथ किया जाय और संघ के सदस्य विशेषकर महान् राष्ट्र, चार्टर के निष्ठावर्तों के प्रति निष्ठावान रह कर उन पर कियारक बाधरखें करें। संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी प्रभारतीय संस्था सभी क्षेत्रों में सक्रिय रह सकती है व सक्रिय रह सकती है जबकि इसके सभी सदस्य राष्ट्र सह-मस्तित्व के सिद्धान्त पर बने और संगठन के विश्व के सभी राष्ट्रों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए उत्तर रहे। सदस्य राष्ट्रों ने जिस तरह संघ को विश्व में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार करने में विश्व की सामाजिक, वैज्ञानिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने में विश्व क्षेत्र में सामाजिक बुराइयों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने में एक स्वतंत्र स्वयं और सुखद जीवन किस प्रकार विश्व में जन-जन को प्राप्त हो इसका रास्ता ढूँढने के प्रयत्नों में प्रमत्ततम सहयोग दिया है और दे रहे हैं उसी प्रकार के राजनीतिक क्षेत्र में मानव-जन में विश्वास बसाने में संघ के उद्देश्यों में सहयोग दें। इस सम्बन्ध में प्रस्त में यही कहा जा सकता है कि यदि मानव चाहे तो यह संयुक्त राष्ट्र संघ एक विश्व राज्य बन सकता है बशर्ते कि मनुष्य अपनी इस केशता के प्रति पूरी तरह जाग उठे कि संकृषित एकवैधीय भावना से ऊपर उठे बिना समस्त मानव कल्याण की दृष्टि से सोचे बिना उसका भाण नहीं।

जन्म-समाहार के रूप में हम संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वर्गीय महान् राष्ट्रपति कैनेडी द्वारा २०-सितम्बर १९६१ को संयुक्त राष्ट्र सभीय महामन्त्रा के समक्ष दिये भाषण के कुछ प्रसंग उद्धृत करते जो इस महान् संस्था के लिए स्वर्गीय राष्ट्रपति ने कहे थे—

“इस महान् संस्था के काम का मुख्य संकेतों की उपस्थिति या माटकीय विधियों के द्वारा जाति और माने पर ही निर्भर नहीं है। जाति तो एक वैदिक, साम्राजिक तथा मासिक प्रक्रिया है जो जन्म-मौत-परिवर्तन साकर, पुरानी बाधाओं को छोड़ा-छोड़ा हटाती हुई मौन नाव से नया निर्माण करती है। जाति-धर्म का अनुपमन चाहे कितना प्रनाटकीय हो लेकिन उस पर बलना जारी रहना चाहिए। — जाति स्थापना की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ का काम औरपूर्ण रहा है हालांकि उसके काम हमेशा ही बहुत मुश्किल रहे हैं। हमारा लक्ष्य है कि हमें सुयोग्य महासचिव की सेवार्थ सुलभ है तथा उन लोगों के औरतापूर्ण प्रयासों का साथ देना है जिन्होंने कांगो, मध्यपूर्व, कोरिया, काश्मीर, पश्चिमी न्यूगिनी तथा मसोइया में जाति-स्थापना-काम किया है। लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ ने मृतकाल में जो काम

किये हैं वे मविष्य में किये जाने वाले कार्यों से कम महत्वपूर्ण हैं। हम यह नहीं मान सकते कि इसके शांति-स्थापना-कार्य सदा सफल हो जायें। इसके प्रयासनाश के लिए उपयुक्त बन होना ही चाहिए। अगर कुछ सदस्य अपने हिस्से का भन न दें तो इस संस्था की वित्तीय स्थिति कैसे सुबुद्धि होगी। इस प्रकार वे अपना दायित्व पूरा न करके इस संस्था को भी अपना दायित्व पूरा न करने देंगे। जो राष्ट्र इस संस्था में मत देने के अधिकारी हैं, उन सब ने संस्था का बन बढ़ा करना चाहिये। और इसके कार्यकर्ताओं का धार्मिक तत्त्व समर्थन करना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ बड़ा व्यवस्था में जीवित नहीं रह सकता। इसके प्रकार के साम-साथ इसकी विमोचकियाँ बढ़ रही हैं। इसके वापसापन तथा इसकी परम्पराओं में परिवर्तन किया जाना चाहिए। उस शोधनापन के निर्माताओं का यह उद्देश्य कभी नहीं था कि वह अनन्तकाल तक यथावत बना रहेगा। संस्था-विज्ञान तथा गुणों ने अठारह वर्ष पहले सैन्य-संस्थाओं की ध्येयता प्राप्त हमें कहीं अधिक एक विश्व व एक मानव शांति बना दिया है जिसका नाम एक साथ बुद्धि हुआ है। ऐसे विश्व में पूर्ण शांति-संस्था के प्रति आस्था नहीं कर सकती। शांति प्रयत्न घाटे बढ़ें और युद्ध के दायित्वों से भी घाटे निकल जायें। अपनी सफलताओं की सीढ़ियों पर चढ़ते तथा विफलताओं से सबक लेते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को वास्तविक विश्व सुरक्षा-व्यवस्था करनी चाहिए।

किन्तु शांति-शोधनापनों तथा प्रतिज्ञाओं में ही नहीं रहती। वह तो सभी व्यक्तियों के हृदयों में तथा मस्तिष्कों में रहती है और प्रायः के विश्व में कोई भी अधिनियम कोई क़ानून, कोई संधि तथा कोई संगठन शांति को एक एक स्थायी नहीं बना सकता जब तक उसे सभी देशों के लोगों का पूर्ण समर्थन नहीं मिलता तथा वे उसके प्रति पूर्णतः अपने को प्रतिबद्ध नहीं करते। इसलिए हम अपनी आशाओं क़ानून-मनों और कायों पर केन्द्रित न रहें बल्कि हमें शांति की स्थापना के लिए प्रयास करना चाहिए। सभी लोगों के धर्म शांति की इच्छा हो, शांति-स्थापना के काम करने की भावना विलोपित दिमागों में होनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि हम ऐसा कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि मानव-के-मविष्य की समस्या मानव की पृथ्वी के बाहर नहीं है।”

इस वृत्ती-वृद्धि के निवासी करें बन्धुओं। प्रायो हम राष्ट्र संघ की इस महासभा में अपना स्पष्ट शांति-मंथन प्रकट करें और यह देखें कि क्या हम अपने ही नामाने में विश्व को स्वाम्यपूर्ण तथा स्थायी शांति प्रदान करने की दिशा में प्रयत्न कर सकते हैं।”

(कैनेडी के शोखस्वी विचार)

EXERCISES.

- 1 Describe the composition and powers of the Security Council of U N To what extent it is better qualified to establish world peace than the Council of the League of Nations ?

संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के सगठन और उसकी शक्तियों का बर्णन कीजिए । राष्ट्र संघ की परिषद की अपेक्षा विश्व शांति की रक्षा में यह किस सीमा तक अधिक खिंचाई है साधन सम्पन्न है ?

2. Describe the mechanism for Collective Security under the charter of the United Nations and show how it differs from the Collective Security System under the Covenant of the League of Nations

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था का बर्णन कीजिए और बताइये कि राष्ट्र संघ के संविदा के अन्तर्गत स्थापित सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था से यह कहाँ तक भिन्न है ।

3. "U N O is going the way of League of Nations." Discuss.

"संयुक्त राष्ट्र संघ की वही गति होनी चा रही है जो राष्ट्र संघ की हुई थी ।" विवेचना कीजिए ।

Write an essay on working of the U.N. as an instrument for the establishment of world peace

विश्व-शांति की स्थापना के एक यंत्र के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य पर एक निबन्ध लिखिये ।

Discuss the various international problems tackled by the U.N. How far it has been able to solve them ?

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गयी विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं की विवेचना कीजिए । यह उनका समाधान करने में कहाँ तक सफल हुआ है ?

What problems did the U.N. face during 1964-65 and how far it has been able to solve them ?

१९६४-६५ के दौरान संयुक्त राष्ट्र ने किस समस्याओं का समाधान किया और यह उनका समाधान करने में किस सीमा तक सफल हुआ ?

Discuss the Utility of the U N in International Politics.

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में संयुक्त राष्ट्र संघ की उपयोगिता की विवेचना कीजिए ।

Assess the successes or failures of the United Nations in respect of pacific settlements of the international disputes and collective security. Give Illustrations.

अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधानों और सामूहिक सुरक्षा के विषय में संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलताओं या असफलताओं का मूल्यांकन कीजिए ।

- 9 How far has U N O been successful in applying the system of security ? Answer with illustrations.

सामूहिक सुरक्षा पद्धति को कार्यान्वित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ कहां तक सफल रहा है ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए ।

- 10 "Korea gave the world hope that the nations could take collective action if not against, a great power certainly against satellite of great power (Clark M Eicheberger) Discuss.

"कोरिया के विवाद ने विश्व को यह आशा देना थी कि यदि बड़ी शक्ति के विरुद्ध नहीं तो कम से कम एक बड़ी शक्ति के अधीन राज्य (Satellite) के विरुद्ध तो निश्चय ही सामूहिक कार्रवाई कर सकते हैं । विवेचना कीजिए ।

- 11 What is meant by Collective Security and what are its problems ? Is there any alternative to Collective Security ?

सामूहिक सुरक्षा परियोजना से क्या तात्पर्य है तथा उसकी समस्याएँ क्या हैं ? क्या सामूहिक सुरक्षा का कोई अन्य स्थापना उपाय है ?

- 12 "... -- in fact, the U N must act as a limited govt. If the world is to have peace it has no other choice." Discuss.

"यदि विश्व शांति प्राप्त करना चाहता है तो संयुक्त राष्ट्र संघ को एक सीमित सरकार के रूप में कार्य करना चाहिए, इसके प्रतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं ।" विवेचना कीजिए ।

- 13 "Here, then is the U N and international personality clothed by its frams with authority to operate on an international plane and whose members have taken important obligations toward it. But it is neither a state nor a superstate. The dilemma is inherent in the development of world society" (Clark. M Eicheberger), Discuss.

"संयुक्त राष्ट्र संघ एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व है जिसके निर्माताओं ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने की शक्ति का शाना पहनाया है तथा जिसके सदस्यों ने इसके प्रति महत्वपूर्ण दायित्व संभाले हैं । किन्तु वह न तो एक राज्य है और न ही सर्वोच्च राज्य । यह अस्तबिरोध तो विश्व समाज के विकास में निहित ही रहता है ।" विवेचना कीजिए ।

- 14 "In the final analysis it is up to the statesman and the people they represent to make a success of the United Nations." Discuss.

“विश्व-शांति के अन्त में संयुक्त राष्ट्र संघ-को सफल बनाने का काम इसका प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों तथा राजनीतिकों पर ही निर्भर है।” विवेचना कीजिए।

5 “It is fortunate for the peace of the world that the charter has been liberally interpreted, instead of being a straight jacket.” Discuss.

“विश्व-शांति के लिए यह सौभाग्यपूर्ण होना कि चार्टर में कठोरता की अपेक्षा उदारतापूर्वक व्याख्या की जाय।” विवेचन कीजिए।



5

निःशस्त्रीकरण

(DISARMAMENT)

1 पुढोत्तरकालीन निःशस्त्रीकरण बातमिं

(i) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था

(ii) अणु शक्ति आयोग की स्थापना

(iii) बरम्परायत हथियारों का आयोग

(iv) संयुक्त राष्ट्र सभामिं निःशस्त्रीकरण आयोग और उसके विभिन्न सम्मेलन

(v) कस एव अमेरिका द्वारा प्रस्तुत किये गये विभिन्न प्रस्ताव एव प्रति प्रस्ताव सम्बन्धित आकाश योजना, इसके विरोध में प्रस्तुत की अरु शोध की योजना, समस्त सम्मेलन बुस्वार्गिन योजना, राष्ट्रीय योजना, विभिन्न क्षेत्रों पर सम्मेलन, अरु शोध की व्यापक और आम निःशस्त्रीकरण की योजना आदि ।

(vi) कस राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन और कसमें दोनों कसों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न निःशस्त्रीकरण योजनायें

(vii) निःशस्त्रीकरण पर राष्ट्रपति डेवैडी का स्वरुपीय भाषण - -

(viii) अणु-शक्ति-प्रतिबन्ध किये ।

10 निःशस्त्रीकरण की विद्या में 1948 के अन्तर्गत किये गये प्रयास

संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के राष्ट्रपति इस बारे में सहमत हैं कि बिजान और टेकनोलॉजी के क्षेत्रों में पारस्परिक प्रगति में मानव जाति के हाथों में महान् शक्ति प्रदान कर ही है बिजान प्रयोग मानव जाति के हित और विनाश दोनों के लिये किया जा सकता है। परंतु सब सम्बन्धित लोगों के लिये यह प्रावधान है कि वे 'संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में' । । । बात की व्यवस्था कि शांति बनी रह सके और बिजान और टेकनोलॉजी द्वारा प्रदान की गई महान् शक्ति का प्रयोग मानव जाति के हित के लिये किया जायेगा ।"

—राष्ट्रपति डॉ० राबर्ट फ्रॉन्ट और राष्ट्रपति डॉ० एड० कनेडी

"जब पशु इन्हें हो पए तब सिंह ने पशु की ओर देखा और गम्भीरतापूर्वक कहा "हमें चिकारी पक्षियों के लालों (Talons) को समाप्त कर देना चाहिये।" और ने हाथी की ओर देखा और कहा "हमें गजबलों को समाप्त कर देना चाहिये। हाथी ने भीते की ओर फिर कर देखा और कहा "हमें पत्तों, और बकड़ों को समाप्त कर देना चाहिये।"

"इस प्रकार प्रत्येक पशु ने बारी-बारी से उन शिकारियों को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा जो उसके पीछे नहीं थे। बड़े बड़े कि जंगल में जानू नहीं उठ बड़ा हुंदा और उसने मधुर मुक्ति-पुस्तिका के स्वर में कहा, 'कोमरेडों ! हमें सब चीजों को समाप्त कर देने दो-जब चीजों को चिकारों में बदलाने के लिये' ।"

२०११ १५००० ६० १०००० — बाल्मिकी जी० सिद्धिपाथा

निःशस्त्रीकरण

निःशस्त्रीकरण की समस्या इतनी ही पुरानी है जिसनी बिबक शांति की समस्या। प्रायुक्त युग में यह समस्या हमारे जीवन-मरण की समस्या है और इसके उचित समाधान पर ही सारा का सम्पूर्ण भविष्य निर्भर करता है। जापान के गालासाकी और हिरोशिमा धाज भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि मनुष्य को बच जाना चाहिए, उस अपने प्रसयकारी सस्त्रों का निर्माण बन्द कर देना चाहिए, अन्यथा उसके द्वारा पैदा किए हुए ये शस्त्र जन्म जन्म में उमा की भर्षी का सारा सामान तैयार कर देंगे। इसीलिए तो अमेरिका के स्वर्गीय राष्ट्रपति कैनेडी ने कहा था—

‘मानव का मस्तिष्क मानव के हृदय और मानव की धार्मिकता प्राकृतिक गमी की यही कामना है कि हमारे इतिहास की चारा सलट जाए, बिनाश का मनबल बढ़ते हुए सग्रह का स्थान मानव की सफलताओं के लिए उन्मुक्त गिरलर बढ़ते हुए अवसर से हैं। यह कार्य मानवता की विरम-सूची की सबसे पहली मद होनी चाहिए।’

निःशस्त्रीकरण की समस्या इतनी महत्वपूर्ण इतनी निर्णयात्मक और इतनी तात्कामिक पहले कभी नहीं थी जिसनी धाज है। प्रायुक्त शस्त्रास्त्रों की सहारक शक्ति प्रथम महायुद्ध काल में ही इतनी बढ़ गई थी कि विश्व के राजनीतिज्ञ उससे चिन्तित हो उठे थे परन्तु द्वितीय महायुद्ध में अणुबम के विकास और उसके पश्चात् हाइड्रोजन बमों अन्तर महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों (Inter Continental Ballistic Missiles) तथा स्पूतनिक धादि के विकास में युद्ध की एक मयाबह कल्पना बना दिया है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि यदि तृतीय महायुद्ध हुआ तो सम्पूर्ण मानवता का ही विनाश हो जायगा किन्तु और विवेका का कोई अन्तर अक्षिप्त नहीं रहेगा। महाद्वैतक धाद्वसटील । यही धाद्वय था जब नन्तने यह पूछे जाने पर कि तृतीय महायुद्ध कैसा होया बजाब दिया था “तृतीय महायुद्ध के बारे में तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु चौथा विश्वयुद्ध पापाय अस्त्रों से होया।” धाज विश्व के सभी विवेकशील व्यक्ति इस विषय में एकमत हैं कि शस्त्रास्त्रों की प्रतिस्पर्धा का रुकना जैसा मानव-सम्पत्ता की रक्षा के लिए आवश्यक है। लॉर्ड ग्रे (Lord Grey) का यह कहना अत-अतिवक्त ठीक है कि—“यदि सम्पत्ता अस्त्रों का नाम नहीं कर सकती है तो शस्त्रास्त्र सम्पत्ता का नाम कर देंगे।” किन्तु इस अनुमृति के बावजूद निःशस्त्रीकरण की विद्या में अविनाश प्रभावशाली कदम उठाने में डर होती जा रही है। यह डर भी बातक सिद्ध हो सकती है यह शायद विश्व-नेताओं की समझ में अभी नहीं आ रहा है।

यूरोप-रकासीन निःशस्त्रीकरण-वार्तायें

(The Post World War Disarmament Talks)

द्वितीय महायुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में जो वार्तायें सम्पन्न हुई हैं उनका इतिहास मोटे रूप में जो भागों में विभाजित हो सकता

है—प्रथम भाग के अन्तर्गत उस समय तक की बातोंमें सम्मिलित हैं जब केवल अमेरिका ही अणुबम का स्वामी या द्वितीय भाग का आरम्भ तक स माना जा सकता है जब सोवियत संघ ने भी अणुबम का निर्माण कर लिया। निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में पूज्यवादी व साम्यवादी दोनों ही शक्तियों में विरोधी दृष्टिकोण मिलता है और इस क्षेत्र में किये जाने वाले प्रयासों का क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र संघ भी है तथा निम्नी बातोंमें भी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था—यद्यपि राष्ट्र संघ के अन्तर्गत निःशस्त्रीकरण के प्रयास अक्षर्य रहे थे किन्तु विश्व के राजनीतिको ने निःशस्त्रीकरण की धारणा न त्यागते हुए संयुक्त राष्ट्र द्वारा निःशस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखे। और तो और, नाभी आन्ताराष्ट्रीय सङ्घर्षों के समय भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व ब्रिटेन ने १९४९ के अटलांटिक चार्टर में स्पष्ट रूप से घोषित किया—

उनका विश्वास है कि संसार के राष्ट्रों को अस्त्रधारी और माय ही आध्यात्मिक कारखानों से भी शक्ति-प्रयोग के त्याग के निष्पत्ति पर पहुँच जाना चाहिए क्योंकि कोई भी भावी शांति सुरक्षित नहीं रखी जा सकती है यदि बल-बल और शत्रु के अस्त्र अस्त्र उन राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त किये जाते रहे हैं जो अपनी सीमाओं के बाहर आक्रमण की धमकी देते हैं या दे सकते हैं। इसीलिए उनका विश्वास है कि सामान्य सुरक्षा की एक व्यापकतर और स्वामी पद्धति की स्थापना नहीं होने तक ऐसे राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार वे उन अस्त्र-रही व्यावहारिक उपायों को उद्घाटित और प्राप्त चाहते हैं जो अतिप्रिय लोगों के लिए अस्त्र-वस्तु के अत्यधिक भार (Crushing Burden) को कम कर देंगे।”

१९४३ में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हो गई तो उसके चार्टर में निःशस्त्रीकरण की समस्या को एक नवीन दृष्टि से देखा गया और इसे एक वैश्विक कर्तव्य की प्रतीति आधिकारिक बरताने अधिक माना गया। १९४३ में इसी दिशा में प्रयत्न हुए अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन का उद्घाटन हुआ—“प्रत्येक बलुक जिसे बनाया जाता है, प्रत्येक पद्धति जिसे असाधारण किया जाता है, प्रत्येक रिकेट जिसे छोड़ा जाता है, अल्पमत में लेने भागों के प्रांत— जो मुझे रूठे हैं और जिन्हें जाना नहीं किया जाता, जो छिड़ते हैं किन्तु जिन्हें वस्त्र नहीं दिये जाते—एक चोरी का सूचक होता है।”

संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर निःशस्त्रीकरण को महामत्ता तथा सुरक्षा परिवर्धन दोनों ही की कर्तव्य-सूची में सम्मिलित करता है। अनुच्छेद ११ में कहा गया है—“महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने में सहयोग के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार कर सकती है। इनमें निःशस्त्रीकरण और अस्त्र-नियंत्रण के सिद्धान्त भी शामिल हैं। अनुच्छेद २६ में उल्लिखित है—“अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की ऐसे ढंग से स्थापना करने और ऐसे ढंग से उसे बनाये रखने के लिए कि जिसमें संसार की जन-शक्ति और आर्थिक साधनों की कम से कम मात्रा अस्त्रों पर खर्च हो सुरक्षा परिवर्धन पर यह भार होया कि वह अनुच्छेद ४७ में बताई गई

धमला समिति का महायत्ना से एसी योजनाओं का संयुक्त राष्ट्र न मरस्यों के सामने रखे जिनसे अस्त्र नियन्त्रण की एक पद्धति स्थापित हो सके।

प्राग पत्र कर चार्टर का अनुच्छेद १७ इस बात की व्यवस्था करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना और प्रमिद्धि के लिए सुरक्षा परिषद मना-स्टाफ समिति की महायत्ना से ऐसी नैतार्थ बनाम के लिए उत्तरदायी होगी जिनमें संसार के मनुष्यों के प्राणिक साधनों का उपयोग अस्त्रीकरण के लिए कम से कम हो। ये योजनाएँ संयुक्त राष्ट्र संघ के मरस्यों के सामने पेश की जावेंगी जिससे कि वे अस्त्रों के नियमन की समुचित व्यवस्था स्थापित कर सकें।

अणुशक्ति प्रायोग की स्थापना (जनवरी १९४६)—U N O ने प्रारम्भ से ही निःसस्त्रीकरण की समस्या पर ध्यान देना शुरू कर दिया। कि हिरोशिमा और नागासाकी पर बमबर्षों के बिस्फोट ने विश्व के सभी राष्ट्रों को स्तब्ध कर दिया था और वे अणुशक्ति की मरंकरता से काँप उठे थे अतः अणुशक्ति के नियन्त्रण का ध्यास सबसे पहले उनके मनमानस को उद्देमित करने लगा। युद्ध काल में संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और कनाडा ने तथा अन्य राष्ट्रों ने यह मभी भाँति समझ लिया था कि अणुशक्ति का नियन्त्रण राष्ट्रीय स्तर पर नहीं किया जा सकता। अतः नवम्बर १९४५ में ही संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन और कनाडा के प्रधान मन्त्रियों ने संयुक्त रूप से यह घोषणा की कि संयुक्त राष्ट्र संघ अणुशक्ति का नियन्त्रण अपने हाथ में ल ले। सोवियत संघ ने भी इस घोषणा का समर्थन किया। फलस्वरूप संघ द्वारा परमाणु शक्ति प्रायोग (Atomic Energy Commission) की स्थापना २४ जनवरी, १९४६ को कर दी गयी जिसका प्रधान उद्देश्य था—

“एक एसी योजना का निर्माण जिसके अन्तर्गत राष्ट्र परमाणु शक्ति के उत्पादन का अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के अन्तर्गत रखने का तैयार हो जाय ताकि केवल शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए इसके उपयोग की निश्चित व्यवस्था की जा सके और सामाजिक तथा सामूहिक विनाश के अन्य सभी अस्त्रों का पूर्ण निर्णय किया जा सके।”

अणु शक्ति प्रायोग में सुरक्षा परिषद् के सदस्यों के एक-एक प्रतिनिधि के प्रतिरिक्त कनाडा का भी एक प्रतिनिधि मिया गया। धायोग से यह अपेक्षा की गयी कि वह सुरक्षा परिषद् के नियन्त्रण में कार्य करेगा। परिषद् ने धायोग को आदेश दिया कि वह तेजी से कार्य करेते हुए निम्नलिखित विषयों पर निश्चित प्रस्ताव तैयार करे —

१ शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए बुनियादी वैज्ञानिक ज्ञान को समस्त राष्ट्रों के मध्य विनिमय करना,

२ अणुशक्ति का इस प्रकार नियमन करना कि अस्त्रका प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण प्रयोजनों के लिए ही हो सके एवं

३ अणु अस्त्रों और ऐसे दूसरे अस्त्र-स्त्रों को राष्ट्रीय अस्त्रागारों से विकसलना जिनसे मानव-जाति का व्यापक संहार किया जा सकता हो।

है—प्रथम भाग के अन्तर्गत उस समय तक की वार्तव्य सम्मिलित है जब केवल अमेरिका ही अणुबम का स्वामी था द्वितीय भाग का अन्तर्गत उस संमान का संकटा है जब सोवियत संघ ने भी अणुबम का निर्माण कर लिया। निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में पूंजीवादी व साम्यवादी दोनों ही खेमों में विरोधी दृष्टिकोण मिलता है और इन क्षेत्र में जब ज्ञान व संप्रयासों का क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र संघ भी है तथा निजी वार्तव्य भी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था—दृष्टि राष्ट्र संघ के अन्तर्गत निःशस्त्रीकरण के प्रयास असफल रहे वे किन्तु विश्व के राजनीतिज्ञों ने निःशस्त्रीकरण की धामा न त्यागते हुए संयुक्त राष्ट्र द्वारा निःशस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखे। और तो और, नाकी धामान्तापी संकल्पित समय भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व ब्रिटिश वियेन में १९४९ के अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर में स्पष्ट रूप से घोषित किया—

“उनका विश्वास है कि संसार के राष्ट्रों को वषार्जवादी और माप ही धाम्यात्मिक कारणों से भी अस्त्र-प्रयोग के त्याग के निष्पत्ति पर पहुँच जाना चाहिए क्योंकि कोई भी नाकी शक्ति सुरक्षित नहीं रखी जा सकती है यदि अस्त्र-प्रयोग और वायु के अस्त्र-अस्त्र उन राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त किए जाते रहे हैं जो अपनी सीमाओं के बाहर आक्रमण की धमकी देते हैं या दे सकते हैं। इसीलिए उनका विश्वास है कि समान्य सुरक्षा की एक व्यापक और स्थायी पद्धति की स्थापना नहीं होने तक ऐसे राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार व उन धम्मे सभी व्यावहारिक उपायों को सहायता और प्रोत्साहन देंगे जो शक्तिप्रिय लोगों के लिए अस्त्र अस्त्रा के प्रचलन को कम (Crushing Burden) को कम कर देंगे।”

१९४५ में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई गई तो उसके चार्टर में निःशस्त्रीकरण की समस्या को एक नवीन दृष्टि से देखा गया और इसे एक नैतिक कर्तव्य की अपेक्षा धार्मिक वरदान अधिक माना गया। १९४९ में इसी विचार पर धम्मे देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय धाम्यात्मिकता ने कहा था—“प्रत्येक अणुबम जिसे बनाया जाता है, प्रत्येक युद्धपोत जिसे अस्त्रावतरण किया जाता है, प्रत्येक रॉकेट जिसे छोड़ा जाता है, अन्तिम धम्मे में उन नामों के प्रति— जो मुझे छूते हैं और जिन्हें खामा नहीं किया जाता, जो छिड़ते हैं किन्तु जिन्हें अस्त्र नहीं दिए जाते—एक बोरी का मुचक होता है।”

संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर निःशस्त्रीकरण को महासभा तथा सुरक्षा परिषद दोनों ही की कर्तव्य-सूची में सम्मिलित करता है। अनुच्छेद ११ में कहा गया है—“महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने में सहयोग के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार कर सकती है इनमें निःशस्त्रीकरण और अस्त्र-निबन्धन के सिद्धान्त भी शामिल होंगे।” अनुच्छेद २६ में सम्मिलित है—“अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की ऐसे ढंग से स्थापना करने और ऐसे ढंग से उसे बनाये रखने के लिए कि जिसमें संसार की जन शक्ति और धार्मिक साधनों की कम से कम मात्रा अस्त्रों पर लक्ष्य हो सुरक्षा परिषद पर यह भार होया कि वह अनुच्छेद ४७ में बताई शक्ति

धमना ममिति की महायता से ऐसी योजनाओं का संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के सामने रख जिनमें शस्त्र निषेधन की एक पद्धति स्थापित हो सके।

आधे शतक बाद का अनुच्छेद ६७ हम बात को व्यवस्था करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना और धमिवृद्धि के लिए सुरक्षा परिषद में मा-स्टाफ ममिति की महायता से ऐसी योजना बनाने के लिए उत्तरदायी हामी जिनमें संसार के समुप्यो के धार्मिक माधनों का उपयोग सम्भीकरण के लिए कम से कम हो। ये योजनायें संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों के सामने रख की जायेंगी जिससे कि वे शस्त्रों के नियमन की समुचित व्यवस्था स्थापित कर सकें।

धरुशक्ति धायोग की स्थापना (जनवरी १९५६)—U N O में प्रारम्भ से ही नि सम्भीकरसु का समस्या पर ध्यान देना शुरू कर दिया। कि हिरोशिमा और नागासाकी पर बमबर्षों के बिस्फोट ने विश्व के सभी राष्ट्रों को शक्य कर दिया था और वे धरुशक्ति की मयकरता से बाँप उठते थे धत धरुशक्ति के नियन्त्रण का ध्याम सबसे पहले उनके मनमानस को उद्देशित करने मया। युद्ध काम में संयुक्त राज्य अमरिका ब्रिटेन और कनाडा न तथा अन्य राष्ट्रों ने यह मसी मति समझ लिया था कि धरुशक्ति का नियन्त्रण राष्ट्रीय स्तर पर नहीं किया जा सकता। धत नवम्बर १९५५ में ही संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन और कनाडा के प्रधान मन्त्रियों ने समुक्त रूप से यह घोषणा की कि संयुक्त राष्ट्र संघ धरुशक्ति का नियन्त्रण धपने हाथ में ले ले। मोबिधत सब में भी इस घोषणा का समर्थन किया। फमस्वरूप संघ द्वारा परमाणु शक्ति धायोग (Atomic Energy Commission) की स्थापना २४ जनवरी, १९५६ को कर दी गयी जिसका प्रधान उद्देश्य था—

“एक ऐसा धानना का निर्माण जिसके धस्तमंत राष्ट्र परमाणु शक्ति के उत्पादन का अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के धस्तमंत रखने की तैयार हो जाय ताकि केवल शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए इसके उपयोग की निश्चित व्यवस्था की जा सके और धाखक तथा सामूहिक बिनाश के धम्य सभी शस्त्रों का पूर्ण निषेध किया जा सके।”

धरु शक्ति धायोग में सुरक्षा परिषद् के सदस्यों के एक-एक प्रतिनिधि के धतिरिक्त कनाडा का भी एक प्रतिनिधि मिया गया। धायोग से यह मनेसा की गयी कि बहु सुरक्षा परिषद् के नियन्त्रण में कार्य करेया। परिषद् ने धायोग को आदेश दिया कि बहु ठेकी से कार्य करते हुए निम्नलिखित धिययों पर निश्चित प्रस्ताव तैयार करे —

१ शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए बुनिमायी बैधानिक ज्ञान को समस्त राष्ट्रों के मध्य विनिमय करना

२ धरुशक्ति का इस प्रकार नियमन करना कि उसका प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण प्रयोजनों के लिए ही हो सके एवं

३ प्रस शस्त्रों और ऐसे दूसरे शस्त्रास्त्रों को राष्ट्रीय शस्त्रागारों में निकासना जिनसे मानव-जाति का ध्यापक संहार किया जा सकता हो।

धरा शक्ति प्रायोग के प्रादेशों का पालन करने वाले राज्यों की स्वसंबन्धकारी राज्यों से रक्षा करने हेतु निरीक्षण प्रावि की ठीक व्यवस्था करने के लिए १४ जून १९४६ को न्यूयार्क में प्रायोग की पहली बैठक हुई। इस बैठक में संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से वर्नाडि इरुच न घोर सोवियत संघ की ओर से ग्रामिको ने धरा शक्ति नियन्त्रण के प्रस्ताव रखे। संयुक्त राज्य अमेरिका चाहता था कि—

(i) एक अन्तर्राष्ट्रीय आणविक विकास सत्ता (International Atomic Development Authority) का निर्माण किया जाय जो कच्चे माल से लेकर धरा शक्ति के विकास एवं प्रयोग के प्रत्येक पहलू पर नियंत्रण करे।

(ii) पहले अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण की स्थापना हो और उत्पादक धरा शक्ति के उत्पादन पर रोक लगा दी जाय।

(iii) धरा शक्ति के उत्पादन के साधन और उन पर नियन्त्रण की सत्ता केवल संयुक्त राष्ट्र संघ के हाथों में रहे।

(iv) जब सुरक्षा परिषद् किसी अथवा उत्पादन पर किसी राज्य के विरुद्ध कार्रवाई करने पर विचार करे तो परिषद् के स्थायी सदस्यों को निरोधकार के प्रयोग की शक्ति प्राप्त न हो।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने न केवल उपरोक्त प्रस्ताव ही पेश किये बल्कि साथ ही यह भी घोषणा की कि यदि विश्व के सब देशों में धरा शक्ति पर संयुक्त राष्ट्र संघ का नियन्त्रण स्थापित हो जाय तो वह धराशक्ति के निर्माण का रहस्य बतला देगा और अपने सभी धराशक्ति को नष्ट भी कर देगा।

सोवियत संघ ने अमेरिकन प्रस्ताव के विरोध में अपने विश्व प्रस्ताव रखे। सोवियत प्रस्ताव में निरोधकार के प्रयोग और राज्यों द्वारा धरा शक्ति के उत्पादन की व्यवस्था की परन्तु साथ ही यह भी चाहता था कि धरा शक्ति के उत्पादकों को सुरक्षा नष्ट कर दिया जाय।

परिषद के प्रादेश के अनुसार कार्रवाई करते हुए प्रायोग ने एक-एक करके अपने तीन प्रतिवेदन परिषद के सम्मुख रखे। प्रायोग के प्रथम प्रतिवेदन पर परिषद द्वारा ३ फरवरी से १० मार्च १९४७ तक होने वाले सत्र (Session) में विचार किया गया। अमेरिकन मुट ने सामान्यतः प्रतिवेदन का समर्थन किया जबकि सोवियत संघ की ओर से कुछ सहायक रहे। ये संशोधन ११ जून १९४७ का धरा शक्ति प्रायोग के पास भेज दिये गये। प्रायोग का दूसरा प्रतिवेदन ११ दिसम्बर १९४७ को परिषद के सामने आया। १६ जनवरी से ६ मार्च १९४८ तक प्रायोग ने सोवियत संघों पर विचार किया और अन्त में ३ अप्रैल को उन्हें सम्झौता कर दिया। १७ मई १९४८ को अन्त और पोसीण्ड की अंतर्गत कि आणविक प्रायोग ने तीसरा प्रतिवेदन पेश करते हुए परिषद में प्रार्थना की कि उनके तीनों प्रतिवेदन महासभा के सम्मुख रखे जायें। इस तीसरे प्रतिवेदन का प्रांतय यह था कि "किसी भी राज्य को चाहे जनता चाकार-उतही शक्ति

घौर स्मिति कुछ भी हो जब तक प्राणविक-हस्त्रों के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि एक प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण की स्थापना नहीं हो जाती। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय प्रभुता से उत्पन्न होने वाले परम्परागत विशेष अधिकारों पर आयोग की योजना से जो प्रभाव पड़ता है उससे आयोग अपरिचित नहीं है, तथापि आयोग यह अनुभव करता है कि प्राण विनाश इसके कोई धारा नहीं रह गया है कि संसार के राष्ट्र इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता को बंट दें।

आयोग की इच्छानुसार उसके तीन प्रतिवेदन महासभा के समक्ष प्रस्तुत कर दिये गये। महासभा ने आयोग की योजना का व्यावहारिक मानते हुए उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना कह कर पुकारा। सभा ने आयोग की मपना कार्य जारी रखने के लिए कहा।

परम्परागत हथियारों का आयोग—संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अणु शक्ति आयोग की स्थापना के कुछ मास उपरान्त २१ अक्टूबर १९४६ को सोवियत विदेश मंत्री वी वी एम मोलोटोव (V M Molotov) ने महासभा के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा जिसमें यह कहा गया कि संसार के चारों राष्ट्रों के हथियार कम किये जायें और सैनिक प्रयोग के लिए अणु शक्ति का न तो उत्पादन किया जाय और न प्रयोग ही। यह प्रस्ताव महासभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं कर सका। साम्यवादी क्षेत्र के आभावको ने कहा कि प्रस्तुत प्रस्ताव उसी प्रकार सोवियत संघ की प्रजागत्मक भाति का परिचायक है जिस प्रकार नवम्बर १९२७ में सोवियत प्रतिनिधि लिटविनोव (Litvinov) का यह प्रस्ताव था जिसमें सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण और विसौम्यीकरण की बात कही गयी थी। इसी प्रस्ताव के उपरान्त महासभा के मामले एक दूसरा प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका की धोर से आया। इसके आधार पर १४ दिसम्बर १९४६ को महासभा में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें अणुशक्ति आयोग के कार्य को बढ़ाने तथा सुरक्षा परिषद को हस्त्रों को सीमित एवं मर्यादित करने की सिफारिश की गयी। दूसरे शब्दों में इस प्रस्ताव का आशय था कि अणु शक्ति आयोग अपने कार्य में तीव्रता लाये तथा सुरक्षा परिषद अणुशक्ति हस्त्रों के घटाने और उनका नियमन करने की व्यावहारिक योजनायें बनाये। इस प्रस्ताव के पारित होने के लगभग तीन मास बाद सुरक्षा परिषद ने 'परम्परागत हथियारों के आयोग' (The Commission for Conventional Armaments) की रचना की। इस आयोग में सुरक्षा परिषद के सभी सदस्य थे। इस आयोग का कार्य केवल परम्परागत हस्त्रों को सीमित एवं नियमित करने के प्रस्ताव रखना ही था अणु हस्त्रों एवं बिनाश के व्यापक साधनों से इसका सम्बन्ध न था। इस कार्य के लिए परिषद द्वारा अणु शक्ति आयोग की स्थापना पहले ही की जा चुकी थी जिसका उद्देश्य अलग किया जा चुका है।

संयुक्त राष्ट्र संघीय निःशस्त्रीकरण आयोग—निःशस्त्रीकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उपरोक्त दो आयोगों की स्थापना भी हो गई और महासभियों द्वारा विभिन्न प्रस्ताव भी रखे गये लेकिन इन सब प्रयासों का

पनीचा कुम मिला कर न्यून रहा। जापान की विज्ञान में बढ़ने के विपरीत ठस्टे इन प्रयामों में शीत-युद्ध को प्रशसाहन दिया। वास्तव में सच्ची बात यह थी कि बुनिया के दोनों शक्तिशाली बेमे (अमेरिकन तथा रूसी) अपनी कूटनीतिक पनरिवासी की कला का प्ररसन मान करने में लगे हुए थे। अमेरिका बरावर बेमे प्रस्ताव प्रस्तुत करता रहा जिनको वह जानता था कि रूस रूसी स्वीकार नहीं करेगा। उमी तरह रूस भी बेमे ही प्रस्ताव रखता रहा जिनके बारे में वह धारण न था कि अमेरिका उन्हें रूसी भी हासत में नहीं मानेगा। ऐसी परिस्थिति में यह स्वामाधिक का कि निःशस्त्रीकरण-वार्तालाप में कोई प्रगति नहीं हो सकती बिना जापान का प्रविष्य फिर पम्बकार में झुकने लगा। संयुक्त राष्ट्र सब के नरकासीन महामन्त्रि ट्रिम्बेसी ने १ जुन १९५० को स्वयं यह स्वीकार किया कि अब तक इस मामले में (निःशस्त्रीकरण में) बस्तुतः पूरा प्रसफमता रही है।

✓ नवम्बर १९५१ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने निःशस्त्रीकरण के कये को एक समुक्त घायोण के सुपुर्न करने की योजना रकी। नवम्बर १९५१ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस में एक बरकथ्य द्वारा यह सिफारिश की कि शनैः शनैः प्रत्येक राज्य अपने अस्त्रास्त्रों की मात्रा की बोपणा करे और मात्र ही निःशस्त्रीकरण की योजनाओं के क्रिया न्ययन की बांध के लिये अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण की व्यवस्था हो। सोवियत रूस ने इन प्रस्तावों का मन्नाक बनाया। उसने यह सुझाव रखा कि एक सम्मेलन बुसा कर घाणुबिक अस्त्रों पर बिना किभी शर्त के प्रतिबन्ध लगाया जाय और एक कठोर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण की स्थापना की जाय। रूस ने धारो यह प्रस्ताव किया कि घाणुबिक अस्त्रों पर प्रतिबन्ध लग जाने के पम्बानु महाशक्तियाँ एक बर्य के भीतर अपने अस्त्रास्त्र का एक तिहाई कम कर दें जिसके निरीक्षण की समुचित व्यवस्था हो। किन्तु रूसी प्रस्ताव पश्चिमी देशों को स्वीकार न हो सका।

रूसी प्रस्ताव के १ दिन बाद १२ नवम्बर १९५१ को पश्चिमी देशों ने राष्ट्रपति ट्रूमैन के इस सुझाव को अपने प्रस्ताव द्वारा समर्थन दिया कि 'घाणुबिक आयोण' और 'परम्परागत हथियारों के आयोण' को मिला कर उनके स्थान पर संयुक्त निःशस्त्रीकरण आयोण' (Disarmament Commission) की स्थापना की जाय और उसे यह काम सौना जाय कि वह एक ऐसी सधि का प्रारूप तैयार करे जिसमें समस्त महाशक्त सैनारों और अस्त्रास्त्रों के इस दृष्टि से नियमन परिमीयन और संतुमित प्रबकरण (Balanced Reduction) की व्यवस्था हो जिससे प्रत्येक देश के पास सुरक्षा के लिये तो पर्याप्त साधन रह जाय परन्तु वे साधन घाणुबिक की दृष्टि से पर्याप्त न हों। इस प्रस्ताव में वह भी उल्लिखित था कि घाणुबिक विभिन्न देशों के पास अस्त्रास्त्रों का पता लगाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण की व्यवस्था की योजना बनाये। १२ दिसम्बर १९५१ को महासभा की राजनीतिक और सुरक्षा समिति ने पश्चिमी देशों के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। यद्यपि घाणुबिक आयोण और परम्परागत अस्त्रास्त्र आयोण के स्थान पर एक निःशस्त्रीकरण

घायोम की स्थापना हा गई किन्तु सोवियत विरोध के कारण घायोम द्वारा पक्ष किय जाने वाले प्रस्तावों को त्रिभान्वित नहीं किया जा सका ।

1952-53 के मध्य समुक्त राष्ट्र संघीय निःशस्त्रीकरण घायोम की धनेक बैठकें हुयी । 1952 मे समुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ वाना मे घपना प्रतिरक्षा ब्यय एकदम बढ़ा दिया । 26 मई, 1952 को अमेरिका ब्रिटन और फ्रांस ने सभी देशों की सशस्त्र सेनाओं की संख्या सीमित करन के लिए एक व्यापक योजना प्रस्तुत की जिसमे यह सुझाव रखा गया कि बड़ी सैन्य शक्ति वाले सभी राष्ट्र अपनी सैन्य शक्ति की उच्चतम संख्या निर्धारित करें और इस संख्या का निर्धारण करते समय पाँचो बड़ राष्ट्रों के लिए निर्धारित उच्चतम सैन्य-संख्या को ध्यान मे रखा जाय । परन्तु इन सभी योजनाओं या प्रस्तावों का कोई परिणाम नहीं निकला और निःशस्त्रीकरण घायोम की बैठकें में निःशस्त्रीकरण की विद्या मे कोई प्रवृत्ति नहीं हा सकी ।

2 दिसम्बर 1953 को समुक्त राष्ट्र संघीय महासभा के समक्ष अमेरिका क तत्कालीन राष्ट्रपति अनरस घाइजनहोवर का भाषण हुआ । घपन भाषण में राष्ट्रपति महोदय ने कस्यारुकारी कार्यों के लिये अणु-सामग्री का अन्तर्राष्ट्रीय संग्रह स्थापित करने की धपीस की । उनकी इस धपीस के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी (International Atomic Energy Agency) अस्तित्व में आई ।

तरवारतः अम्बन में 13 जून 1954 से 25 जून 1954 तक निःशस्त्रीकरण घायोम की पंचराष्ट्रीय उपसमिति की बैठकें हुयी । इन बैठकों में ब्रिटिश और फ्रांस प्रतिनिधियों ने नियन्त्रण-संगठन की स्थापना सैन्य-शक्ति और धनिक ब्यय को घागे न बढ़ने देन सामान्य शस्त्रास्त्रों और सेनाओं में संतुलित कमी (Balanced Reduction) आणविक शस्त्रास्त्रों के निर्माण के नियंत्रण और अणु-सामग्री क कस्यारुकारी उपयोग घादि के बारे मे कुछ नये प्रस्ताव पेश किये । परन्तु इन सभी प्रस्तावों का कोई नतीजा नहीं निकल पाया क्योंकि सोवियत संघ की तरफ से इन प्रस्तावों पर कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई ।

मार्च 1953 में कनाडा फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका ने संयुक्त रूप से एक नये प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया जिसे महासभा के सगक्ष प्रस्तुत किया जा सके । इस प्रस्ताव में सामूहिक विनाश के शस्त्रास्त्रों के निर्माण और उपयोग पर रोक लगाने की तथा सशस्त्र सेनाओं व सामान्य शस्त्रास्त्रों में भी कटौती करने की बात कही गई थी । परन्तु जब निःशस्त्रीकरण उपसमिति की बैठक में इस प्रस्ताव पर बिकार हुआ तो समिति के शक्तिशाली सदस्य सोवियत संघ ने इसे माये नहीं बड़ने दिया ।

इसके बाद मई, 1954 में निःशस्त्रीकरण-उपसमिति में सोवियत संघ ने स्बाई निरीक्षकों की नियुक्ति करने के सम्बन्ध में धपनी योजना प्रस्तुत की । इस योजना में शस्त्रास्त्रों की बाँध-पड़ताल का कार्य करने वाले निरीक्षकों का अधिकार क्षेत्र बहुत संकुचित कर दिया गया था । अठ पश्चिमी राष्ट्रों ने इस कसी योजना को मानने से इन्कार कर दिया ।

इस प्रकार १९५५ तक पूरी तरह यह स्थिति ही बरतती रही कि एक पक्ष की ओर से निष्ठाकोरण के जो प्रस्ताव आते दूसरे पक्ष की ओर से उन्हें ठुकरा दिया जाता।

राष्ट्रपति माओत्सेतान साब हिन खोर फाम क प्रधानमंत्रियों का एक विश्व सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में राष्ट्रपति चार-नहोबर ने खुले आकाशों की योजना (Open Skies Plan) रखी। इस योजना का अभिप्राय था कि अमेरिका और इस घपती सैनिक नर्निबन्धियों से एक दूसरे का अभिप्राय था कि तथा एक एक को दूसरे इस क आकाश पर निरीक्षण करने का प्रयत्न करे। इस योजना के अन्तर्गत दोनों पक्षों के मध्य बिन सूचनाओं के पारस्परिक विनिमय का सुझाव रखा गया था इस प्रकार की—

- (क) सैनिक टुकड़ियों की संख्या ठिकानों और निशानों तथा नज्बागारों के सम्बन्ध में पूर्ण और विस्तृत विवरण
- (ख) शीघ्र-सामग्री तयार करने वाले कारखानों और सैनिक घरों की क्षमता संख्या तथा स्थिति आदि के बारे में पूर्ण और विस्तृत विवरण एवं
- (ग) विद्युत उपकरणों और फोटोग्राफी के बाधुनिकतम उपकरणों की संख्याओं से और सामान्य ढंग से आकाश से हवाई चौक-नइतास तथा निरीक्षण आदि की पूर्ण सुविधाएं।

अमेरिकन प्रस्ताव पर सोवियत रूस की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं हुई। रूस को अमेरिका की योजना इसलिये मान्य नहीं हुई क्योंकि अमेरिका ने घपतीना घतमंत्र का बर्बरक रूस का सैन्य राष्ट्रन घपते ही देता में था। घत इस योजना से अमेरिका रूस का सारा भेद जान जाता।

अमेरिका योजना के विरोध में रूसी प्रधानमंत्री भी एडुस्चेव ने एक तबीत योजना प्रस्तुत की जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार की—

- (क) एक अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण एजेंसी की स्थापना हो जिसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर निरीक्षणों की नियुक्ति की जाय।
- (ख) सभी देशों से बिदेसी सैनिक भण्डे समाप्त किये जायें।
- (ग) प्राणविक हत्यों में कमी की जाय।
- (घ) परम्परागत शस्त्रों में कमी की जाय।

रूस की यह योजना अमेरिका को मान्य नहीं हुई। अक्टूबर १९५५ में इस समस्या का हल करने के लिए इन्हीं चार बड़े देशों के विदेशमंत्रियों की बैठक हुई पर समय भी यह मतभेद दूर नहीं हो सका।

नवम्बर १९५५ में भारत ने सुझाव दिया कि प्राणविक हत्यों के परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाया जाय शस्त्रों के सम्बन्ध में अत्यन्त ही समझौता किया जाय किन्तु अमेरिका ने भारतीय सुझाव को अमान्य ठहरा दिया जबकि इस इसे स्वीकार करने के पक्ष में था। दिसम्बर १९५५ में ही संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने यह सिफारिश की कि प्राचीनक ति-बर्सी करण समझौता-वार्ता में राष्ट्रपति चार-नहोबर की 'अनुकूल आकाश'

योजना जैसे एक-दूसरे के प्रति विश्वास की भावना को सबल बनाने वाले बंदों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये ।

✓ **सन्धन-सम्मेलन**— उसके बाद १९२६ की फरवरी तक निःशस्त्रीकरण उपसमिति की कई बैठकें हुईं । किन्तु इस समय तक दोनों मुद्दों में मतभेद बहुत महत्त्व हो चुका था और पूर्ण गतिरोध की स्थिति पैदा हो गयी थी । इन क्षणों में १४ जून १९२७ को सन्धन में निःशस्त्रीकरण आयोग की एक उपसमिति की बैठक शुरू हुई जिसमें सोवियत संघ में निम्नलिखित तीन मूखी कार्यक्रम प्रस्तुत किया—

(i) दो वर्षों के लिए आणविक परीक्षण बन्द कर दिये जायें

(ii) परीक्षण की बन्धी नों कार्यान्वित करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाय एव

(iii) उपर्युक्त वैज्ञानिक यंत्रों सहित अमेरिका, रूस व ब्रिटेन को मिला कर प्रभावशाली महासामरीय क्षेत्र में नियंत्रण चौकियाँ स्थापित की जायें ताकि इन समझौते के कार्यकारण पर निगरानी रखी जा सके ।

सोवियत संघ का यह प्रस्ताव एक ठोस प्रस्ताव था, किन्तु फिर भी पश्चिमी राष्ट्रों ने इसे अमान्य कर दिया और बचने में अपने मुद्दाबंदे रहे । लगभग १७ महीनों तक उपसमिति इन विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करती रही । इस विचार विमल के दौरान आइज़नहोवर ने अपने "उत्कृष्ट आकाशों" के प्रस्ताव को पुनः पेश किया जिसे सोवियत संघ ने किसी भी रूप में मानने से इन्कार कर दिया । २९ अगस्त १९२७ को अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन और फ्रांस ने मिल कर एक व्यापक निःशस्त्रीकरण की योजना प्रस्तुत की जिसमें दो वर्षों की अवधि के लिए आणविक परीक्षणों को स्थगित करने के समाना यह भी कहा गया कि शस्त्रास्त्रों के निर्माण हेतु विश्वव्यापी सामग्री के उत्पादन पर भी रोक लगायी जाय । इस योजना में अस्वाभाविकी कार्यों के लिए वर्तमान अणु-सामग्री भण्डार को प्रयुक्त करने का अस्मिक कार्यक्रम की समाप्ति रोकने के लिए इमारतों का-व्यवस्थापन की व्यवस्था करने शस्त्रास्त्रों में कमी करने और बाह्य अन्तरिक्ष को अस्वाभाविकी कार्यों के हेतु प्रयुक्त करने का प्रस्ताव भी किया गया । परन्तु यह योजना भी पहले की अनेक योजनाओं के समान ही असफल हो कर रह गयी । साम्यवादी संघ ने इसे स्वीकार नहीं किया ।

निःशस्त्रीकरण आयोग का विस्तार— अगस्त में ६ सितम्बर १९२७ को निःशस्त्रीकरण उपसमिति की बैठक स्वगित हो गयी । उपसमिति ने निःशस्त्रीकरण बार्ता की असफलता को ध्यान में रखा और महासभा के १२वें अधिवेशन में उसने अब तक के कार्यकारणों की रिपोर्ट भी पेश कर दी ।

महासभा के अधिवेशन में संयुक्त राज्य अमेरिका ने निःशस्त्रीकरण की दिशा में सीमित परन्तु स्पष्ट कदम उठाने पर अतिशय बल दिया । इन्कर सोवियत संघ निःशस्त्रीकरण आयोग की अत्यन्त संख्या बढ़ाने पर जोर दे रहा था । उसका कहना था कि महासभा के सभी सदस्य राष्ट्रों को उसमें स्थान दिया जाय । २६ सितम्बर, १९२७ को भारत द्वारा महासभा में एक

प्रस्ताव पेश करके यह मास की गयी कि निःशस्त्रीकरण आयोग और उसकी उपसमिति में सबस्य का सह्य बढ़ाया जाय। इस प्रस्ताव में घोर मा कई सुझाव दिये गये हैं जिनमें आणविक सन्त्राता को खत्म करने पर अधिक जोर दिया गया है। साक्षियता संघ ने भारत का समर्थन करते हुए आयोग के सदस्यों को बढ़ाने का आग्रह किया। कभी इस बात का लेकर निःशस्त्रीकरण बार्न ही में टूट जाय इसलिए आयोग के सदस्य ही मजबूत न हुआ। उसने स्पष्ट कह दिया कि जब तक निःशस्त्रीकरण आयोग में उसकी माँग के अनुसार किन्नार नहीं किया जायगा वह आयोग की किसी बैठक में शामिल नहीं होगा। वास्तव में साक्षियता संघ की इन हठक गति को उस समय उसकी न्यूनतम कूटनीति काम कर रहा थी। २६ अगस्त १९५७ को उस ने यह बाधा करके पश्चिमी राष्ट्रों में मध्य और सन्देश जातुन कर दिया था कि उसने अन्तर-महाद्वीपीय प्रक्षेपणान्त्र (Inter-Continental Ballistic Missile-ICBM) का सफल परीक्षण कर लिया है और इसमें विध्वंसक बम के गोले को दुनिया के किसी भी हिस्से में एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में फेंका जा सकता है। पश्चिम को पहचाना जा सका इस बोजबा पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन जब ४ अक्टूबर, १९५७ को रूस ने पूर्वी के चारों घोर पूनत नामा एक कृत्रिम उपग्रह (Sputnik) छोड़ दिया तो सम्पूर्ण पश्चिमी जगत् इस की इस वैज्ञानिक प्रगति से स्तब्ध रह गये और निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता तादाता से अनुभव की जाने लगी। यह कि इस समय अन्तर्को दौड़ में साक्षियता संघ का पलड़ा मारी हा हुआ था यह निःशस्त्रीकरण के प्रति बहुत बड़े रकबा परबन्धन करत मया। भारत में पाये हुए प्रत्येक प्रस्ताव को पश्चिमी मुक्त घोर भी इच्छित है। अन्तर्गत १९५८ का रूसी प्रकाशमात्री कुल्मानिन ने राष्ट्रपति माइकल हुआर के सम्मुख निःशस्त्रीकरण की एक विस्तृत योजना रखी जिसमें निम्नलिखित बातों पर विशेष बल दिया गया—

- (i) अणु-बमों और उन्नत बमों के परीक्षणों को बन्द किया जाय
- (ii) संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन घोर इस आणविक प्रस्ताव का परित्याग कर दें
- (iii) ताटी तथा बारसा पैक के देशों में घनाकमन समझौता हा
- (iv) बमनी घोर अन्य यूरोपियन देशों में बिदेनी सनाधों को रूकवाया जाय एवं
- (v) आकस्मिक आणविकों को रोकने का समझौता।

१९ मास १९५८ को साक्षियता संघ ने इसी प्रस्तावों के आधार पर कुछ अन्य प्रस्ताव रखे जा इस प्रकार—**भौतिक प्रयोगों के लिए बाह्य आकाश (Outer Space) के प्रयोग का नियम तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की अध्यक्षता में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा इस नियम के पालन**

का निरीक्षण। अमेरिकन गूट की धोर में इस अर्धित प्रस्ताव का कोई सौपबन्क प्रत्युत्तर नहीं दिया गया।

रापाकी योजना— वी समय (१४ फरवरी १९६८) पोलेण्ड के बिनेशमरी रापाकी (Rapaki) द्वारा भी निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में अपनी एक योजना प्रस्तुत की गयी। इस योजना में यूरोप में सुरक्षा धोर प्रति बनाये रखन के लिए पोलेण्ड रेकोम्सोवाकिया पश्चिमी धोरपूर्वी अर्ध-नी को अणुविहीन क्षेत्र (Atom Free Zone) बनाने का सुझाव दिया गया अर्थात् यह कहा गया कि इन प्रदेशों का धरतु आयुधों के निर्माण अथवा धोर उपयोग न शुरु बनाने पर बस दिया जाय ताकि निःशस्त्रीकरण का प्रोत्साहन मिस सके। सोवियत संघ ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया पर अमेरिका की तरफ से कोई सौपबन्क उत्तर नहीं दिया गया।

जब सोवियत संघ के विविध प्रस्तावों की इस तरह सबहेमना होती रही तो ३१ मार्च १९६८ को उसने एकतरफा काम किया जो बस्तुतः अत्यन्त ही मराहनीय था। उस दिन सुप्रीम सोवियत में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया था कि सोवियत संघ में समस्त धातुबिक एव उद्योग कर्षों के परीक्षण इस धारा से बन्द किये जाते हैं कि धरतु वेत भी इसका अनुकरण करेंगे। किन्तु धरतु वेतों ने ऐसे परीक्षण बन्द न किये तो कस उन्हें पुनः शुरू कर देगा।

पाइजनहोबर द्वारा कसी प्रस्तावों का अबाध—अमेरिकन प्रशासन सोवियत संघ की स्पूननिक कूटनीति से संतप्त था गया था। अतः २ अगस्त १९६८ को राष्ट्रपति पाइजनहोबर ने कसी प्रस्तावों का करारा अबाध देते हुए कहा कि सोवियत संघ के ये सारे प्रस्ताव धोर धातुबिक परीक्षण का अथयन प्रचारात्मक कार्य हैं। उन्होंने कस द्वारा अमेरिका की पिछली निःशस्त्रीकरण योजनाओं को जून १९६६, जुलाई, १९६६ धोर अगस्त १९६७ में विफल बनाने की कार्यवाहियों के इतिहास पर प्रकाश डाला धोर ६ अगस्त को यह बोधला की कि एनीवीटोक (Envytok) में चल रहे धातुबिक परीक्षण समाप्त होने पर अमेरिका को यदि यह निश्चय हो गया कि कस में बस्तुतः ऐसे परीक्षण बन्द कर दिये हैं तो अमेरिका भी उन्हें बन्द करने के विषय पर संमीरतापूर्वक विचार करेगा। किन्तु सितम्बर १९६८ के अन्त में सोवियत संघ ने अपने धातुबिक परीक्षण पुनः इस धाधार पर शुरू कर दिये कि ३१ मार्च से संयुक्त राज्य अमेरिका धोर अट ब्रिटेन ने कस द्वारा परीक्षण बन्द करने की अवधि से "अधिकतम सीनिक काम उठाया है।"

जेनेवा सम्मेलन १९६८—३१ अक्टूबर १९६८ से जेनेवा में निःशस्त्रीकरण पर अर्धक प्रस्ताव पास किये गये। सम्मेलन में कस ने यह प्रस्ताव किया कि सब प्रकार का धातुबिक परीक्षण सदा के लिये बन्द करने का समझौता हो अर्थात् अट ब्रिटेन व अमेरिका का कहना था कि प्रभावशाली निरीक्षण पद्धति के साथ यह पहले एक-एक वर्ष के लिये बन्द किये जायें। अन्त में दोनों पक्ष इस इस बात पर सहमत हो गये कि—

(i) आणविक परीक्षणों के नियंत्रण के लिये स्थापित किये जा जाने सम्मेलन में सात सदस्य हों जिनमें से तीन आणविक परीक्षण कर जाने देश अर्थात् कम अमेरिका एवं ब्रिटेन इनके स्थायी सदस्य हों और दो बार दो वर्ष के लिये चुने जायें

(ii) सम्मेलन का एक प्रशासक तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्टाफ हो

(iii) परीक्षणों की जांच और पहिचान की पद्धति निश्चित न जाय ।

परन्तु इस प्रश्न पर समझौता नहीं हो सका कि (क) नियंत्रण सम्मेलन में मतदान की क्या प्रणाली हो और (ख) नियंत्रण करने वाले व्यक्तियों को तथा निरीक्षण मण्डलों को किस प्रकार नियुक्त किया जाय ।

संयुक्त राष्ट्र संघ में अखण्डता का प्रस्ताव—संयुक्त राष्ट्र संघ के १९. अधिवेशन में १६ सितम्बर से १३ दिसम्बर १९४६ तक निःशस्त्रीकरण प्रश्न पर अनेक सम्मेलन और प्रस्ताव पास हुए । ४ नवम्बर को महासभा ने अनेक सम्मेलन (उपरोक्त बर्षित) की अवधि तक सब प्रकार के आणविक परीक्षण बंद करने का प्रस्ताव पास किया ।

सितम्बर १९४६ में सोवियत प्रधानमंत्री पी. ए. स्लॉवोव अमेरिका की यात्रा पर आये आइजोन होवर-ए. स्लॉवोव बार्ता में निःशस्त्रीकरण एक प्रमुख विषय रहा । बार बड़े राष्ट्रों द्वारा निःशस्त्रीकरण सम्मेलनी समझौते के तथा आचार बूझने के लिये बस राष्ट्रों की एक समिति नियुक्त की गई जिसमें पांच सदस्य अखण्डता देशों के और पांच सदस्य साम्यवादी गुट के रहे मध्य अफ्रीकी अमेरिका यात्रा के दौरान भी अखण्डता में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासभा में साधारण करण हुए निःशस्त्रीकरण के लिये एक प्रस्ताव रखा जिसमें निम्नलिखित बातें सुझाई गयी ।

(i) व्यापक और पूर्ण निःशस्त्रीकरण

(ii) सम्पूर्ण अखण्डता बार वर्ष की अवधि में तीन बारों में पूरी की जाय

(iii) प्रथम बारण—अमेरिका एवं चीन ब्रिटेन, फ्रांस की सलाहों की कमी (यह कार्य १८ माह में पूरा हो)

(iv) द्वितीय बारण—राष्ट्रीय अस्त्र मैत्रा में पूरी तरह बंद हों, विदेशी सैनिक अस्त्रें खत्म हों बिदेसी से सैन्यायें वापिस लुगनी जायें (यह कार्य दो वर्ष की अवधि में पूरा हो) तथा

(v) तृतीय बारण—सब प्रकार के आणविक अस्त्रास्त्र और एकेट-अस्त्रों को नष्ट कर दिया जाय और समस्त सैनिक सयन तोड़ दिये जायें (एक वर्ष की अवधि में) ।

पी. ए. स्लॉवोव ने कहा "बार वर्ष की अवधि में सब राष्ट्रों को ऐसा निःशस्त्रीकरण कर देना चाहिये कि इनके बाह्र समक पास लड़ाई करने के लिये कोई साधन ही न रहे ?" अपनी दैर्घनीयता सिद्ध करने के लिये सोवियत संघ ने निःशस्त्रीकरण के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के लिये एक बिना

ही अपनी सैनिक शक्ति में १२ लाख गिपाहियों को कटौती कर दो। सोवियत सरकार के इस कदम का सम्पूर्ण संसार की शक्तिप्रिय समता ने एकमत से स्वागत किया।

श्री स्टालिन ने "पूर्ण एवं सामान्य निःशस्त्रीकरण" (Complete and General Disarmament) के प्रस्ताव का प्राथम्य सब राज्यों द्वारा बिना किसी अपवाद के सब प्रकार की सशस्त्र सेनाओं का परित्याग करना था। वे केवल प्रान्तरिक सुरक्षा के लिये चाही सी आवश्यक पुलिस और सेना (Military) रख सकते थे। बू कि श्री स्टालिन को यह सन्देह था कि पश्चिमी राज्य इस पूर्ण निःशस्त्रीकरण की योजना से सहमत न होंगे अतः उन्होंने इसके साथ ही एक आंशिक निःशस्त्रीकरण (Partial Disarmament) की योजना भी प्रस्तुत की जिसमें निम्नलिखित बातें रखी गयीं—

- (i) एक विशेष क्षेत्र में नियंत्रण और निरीक्षण की व्यवस्था स्थापित का जाय
- (ii) मध्य यूरोप में प्राणविक धातुओं से रहित क्षेत्र (Denuclearized Zone) की स्थापना की जाय मुरापियत राज्या से सब विदेशी सेनाएँ हटा ली जायें
- (iii) विदेशी प्रवेष्टों के सब सैनिक बाह्य समाप्त कर दिय जाय
- (iv) नाटो संघटन के सदस्यों तथा पश्चिमी राज्यों के साथ नारवा पैक्ट के राज्यों की एक अनाक्रमण संधि हो एव
- (v) एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर आक्रामिक आक्रमण रोकने के बारे में समझौता हो।

नियंत्रण के सम्बन्ध में श्री स्टालिन ने कहा—

पश्चिमी राष्ट्र ऐसे प्रस्ताव रखत हैं जिनमें न घाम निःशस्त्रीकरण की बात रहती है और न पूर्ण निःशस्त्रीकरण की बल्कि जिनमें बस्तुतः किसी प्रकार के निःशस्त्रीकरण की बात ही नहीं रहती है। उनमें केवल शस्त्रों पर नियंत्रण सम्बन्धी कार्यवाहियों की अर्थात् निःशस्त्रीकरण के बिना नियंत्रण की ही बात रहती है। किन्तु यह बात हर कोई स्वीकार करेगा कि निःशस्त्रीकरण के बिना नियंत्रण स्थापित करना अन्तर्राष्ट्रीय आधुनी प्रभावी का स्थापित करना हाया जिससे जाति को मुमुक्षु करने में मदद मिलनी तो दूर रही संभावित आक्रमण से जनपण के लिए अतःनाक योजनाएँ कियावित करना सुमम हो जायगा। निःशस्त्रीकरण का समझौता ही बाल के बाद हम उस कियावित करने के लिए कठोर नियंत्रण के पक्ष में हैं किन्तु हम निःशस्त्रीकरण के बिना नियंत्रण को नहीं चाहते।"

श्री स्टालिन की योजना का संसार में सब से स्वागत हुआ केवल नीत्यूट के महारणियों को यह बात समझ में नहीं आयी। स्टालिन के प्रस्ताव की बली ही बिस्सी उड़ाई गई जैसी १९३२ के अनेका निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में कसी प्रतिनिधि लिटविनोव के कुछ निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव को उड़ाई गई थी।

इस राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन—१९९० में जेनेवा में फिर निःशस्त्रीकरण समस्या पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन शुरू हुआ।

इस बार एक ही साब हो सम्मेलन चल रहे थे—१५ मार्च १९९० से आरम्भ होना वाला दस राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा आणविक क्लब (Atom Club) के तीन सदस्यों की आणविक परीक्षाओं को नियंत्रण करने के सम्बन्ध में वार्ता। इस राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने वाले अमेरिका ब्रिटेन फ्रांस जर्मनी इन्डोनी आदिवायन सब बल्गेरिया चेकोस्लावाकिया पाकिस्तान श्रीलंका इत्यादि थे। निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी निम्न राष्ट्रीय योजना में यह प्रस्ताव किया गया कि निम्नलिखित उपाय तत्काल लागू किये जायें—

(i) एक अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण संगठन के स्वरूप के सम्बन्ध में संयुक्त रूप से परामर्श करके जीए सयुक्त राष्ट्र सभ के माध्यम से उसके सम्बन्ध का निर्धारण करके उसकी स्थापना।

(ii) अन्तरिक्ष बाह्यो के प्रस्तावित प्रक्षेपणों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण समझौते को पूर्ण रूप से स्वीकार करके इस समझौते को उपलब्ध सकेत प्रावृत्तियों द्वारा उनका सम्बन्ध में प्राप्त प्रावृत्तियों से सम्बन्धित करना।

(iii) सशस्त्र पैनाघों को सम्बन्धित रूप में से प्रत्येक अपनी सेना को बड़ा कर २५ लाख शीतलों तक सीमित कर देना स्वीकार करे और समझौते द्वारा अन्य देशों की सैन्य शक्ति के अधिकतम स्तरों को निर्दिष्ट किया जाए।

(iv) समझौते के अन्तर्गत सम्बन्धित प्रत्येक राष्ट्र में अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण समझौते की देखरेख में ऐसे उपग्रहों की स्थापना जिनमें समझौते द्वारा निर्धारित किन्हीं और मात्रा में परम्परागत अस्त्रास्त्र संयुक्त हो। अस्त्रों की यह मात्रा समझौते द्वारा निर्धारित सैन्य शक्ति से सम्बन्धित होगी।

(v) विभिन्न राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण समझौते के समान अपनी सूचनाओं प्रस्तुत करें जिनका सम्बन्ध सैन्य-व्यय पर सभी जितनी प्रणाली के प्रभाव तथा सैन्य-शक्ति पर व्यय होने वाली राष्ट्रीय धन्य के प्रतिपत्त से हो।

इनके अतिरिक्त निम्न राष्ट्रीय नीति-पत्र में यह सुझाव दिया गया कि कुछ विषयों के सम्बन्ध में और संयुक्त रूप से परामर्श किया जाए।

१. ऐसे उपाय जिनके द्वारा यह निर्दिष्ट व्यवस्था हो सके कि कोई भी राष्ट्र सर्वनाशक अस्त्रों को कक्षा धरणा अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित करने पर नियन्त्रण लगाने सम्बन्धी समझौते को बंधन न करे। इस परामर्श के अन्तर्गत अन्तरिक्ष पर निरीक्षण सम्बन्धी व्यवस्था भी शामिल होगी।

२. ऐसे उपाय जिनके द्वारा यह निर्दिष्ट हो सके कि अन्तरिक्ष अस्त्रों के बारे में पूर्ण सूचना देने और इनके धोड़ने व निर्मित होने के स्थान सम्बन्धी समझौते का पूर्ण रूप से पालन हो रहा है।

३. ऐसे उपाय जिनसे इस बात की निर्दिष्ट व्यवस्था हो सके कि अस्त्रास्त्रों के लिए निर्दिष्ट सामग्रियों के निर्यात का बन्ध करके सम्बन्धी समझौते का पूरी तरह पालन हो रहा है।

४ ऐसी व्यवस्थाएँ जो अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण के अन्तर्गत पूर्वोक्तान्त विद्यमान सामग्रियों का अस्त्रास्त्रों के निर्माण के असावा अन्य कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए अस्त्रान्तरित करने बिना एक समझौता कार्यान्वित करने के उद्देश्य से आवश्यक हों।

५ ऐसे उपाय बिना समझौता करने वाले देशों के लिए हवाई निरीक्षणों निश्चित स्थानों पर स्थानीय निरीक्षण सक्षम भूमि टोन्नियो राडार, बिमान-उड़ान सम्बन्धी सूचना और उचित संज्ञार व्यवस्था द्वारा प्राकृतिक प्राकृतिक के बिना अधिक सुरक्षा प्रदान की जा सके।

६ संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्ध या उसके अङ्ग के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय संघटन का निर्माण करके प्राकृतिक रोकने के लिए साधन।

७ निःशस्त्रीकरण सम्मेलन करने के उद्देश्य से निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी समझौते को इस प्रकार बिलुप्त करने का समय और अंग बिना उन अन्य राष्ट्रों को भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सके बिनाकी सौम्य क्षमता बहुत अधिक हो।

निम्न राष्ट्रों के नीस-यत्र में उन उपायों की सूची दी गई थी। जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण विषयक अध्ययन पूर्ण हो जाने पर ही अतिशय प्रमाण्य करना पड़ेगी होना।

निम्न राष्ट्रों ने "सुरक्षित स्वतंत्र और शांतिपूर्ण विश्व" के निर्माण का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ अन्य उपायों को आवश्यक बताया जो मुख्यतः ये थे—

१ सशस्त्र सेनाओं को कम करके एसी सीमाओं पर पहुँचा देना जो अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा व संयुक्त राष्ट्र संघीय पार्टी के अन्तर्गत निहित उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए आवश्यक हों।

२ इस उद्देश्य को पाने के लिए साधु होने वाले उपायों के साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय कायूना लागू करने के लिए आवश्यक क्षमता का निर्माण हो ताकि विश्व शांति को सुरक्षित रखा जा सके।

३ अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण संघटन का विस्तार किया जावे ताकि निम्नलिखित बातों पर आवश्यक निरीक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था हो सके—(अ) सर्वनाशक प्राणिक रासायनिक तथा अन्य प्रकार के अस्त्रास्त्रों का उत्पादन (आ) अन्त में उन्हें पूर्ण रूप से नष्ट करने या शांतिपूर्ण कार्यों में प्रयुक्त करने के उद्देश्य से इन अस्त्रास्त्रों के वर्तमान अस्त्रास्त्रों को कम करने जाना। (इ) अन्तरिक्ष का उपयोग केवल शांतिपूर्ण कार्यों के लिए ही करना। (ई) सैनिक प्रयोगास्त्रों के उत्पादन पर रोक लगाता और अन्त में उन्हें नष्ट करना। (उ) सैनिक बजट पर प्रभावकारी प्रयुक्त। (ऊ) विश्व शांति को सुरक्षित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करना। (ए) अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आवश्यक स्तर तक सौम्य शक्ति पटा देना। (ऐ) लेव सभी प्रकार के अस्त्रास्त्रों के उत्पादन को अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आवश्यक मात्रा तक ही सीमित करने के उद्देश्य से। (एर) रोक लगाता।

विश्व राष्ट्रों की उपरोक्त विस्तृत योजना को सोवियत इस न कोई समर्थन प्रदान नहीं किया। इसी प्रतिनिधि भी बारिश ने कहा कि पश्चिम की यह योजना निष्पत्ताकरण की दिशा में काफी धीरे नहीं जाती। भी जोरित ने सम्पूर्ण धीरे धाम निष्पत्ताकरण की योजना पर जोर दिया जो दिवस १९६० में महासभा के सामने पेश की थी।

इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति से लेकर १९६० तक निष्पत्ताकरण का बोध न कोई प्रमाण नहीं हो सकी धीरे पश्चिमी व साम्यवादी क्षेत्रों में पूरे मतभेद बने रहे। यदि १९४५ से १९६० तक के निष्पत्ताकरण के प्रयासों के इतिहास का विस्तृत विवरण दिया जाय तो पता चलता है कि दोनों पक्षों में पाए जाने वाले उच्च मतभेद प्रमुख निम्नलिखित थे—

(१) प्राणविक परीक्षण—इस सम्बन्ध में अमेरिकन गुरु का दृष्टिकोण यह था कि पहले निरीक्षण की उपयुक्त व्यवस्था पर समझौता हो और तत्पश्चात् प्राणविक परीक्षण दो वर्ष के लिये बंद किये जाय। जब प्राणविक प्रायुधों का उत्पादन बंद हो जाय तो ऐसे परीक्षण विस्तृत बंद कर दिये जायें।

रूस का विचार था कि ऐसे सभी प्राणविक परीक्षणों को बंद कर दिया जाय जिनका वर्तमान साधना से पता लगाया जाना संभव है। जब तक इनके पता लगाने का विश्वस्तरीय साधन न निकल जाय तब तक सभी प्राणविक व्यक्तियों स्वेच्छा व ईमानदारी पूर्वक सब प्राणविक परीक्षण बंद कर दें।

(२) नियंत्रण अमेरिकन गुरु का दृष्टिकोण था कि पहले निरीक्षण की व्यवस्था निश्चित की जाय और तब निष्पत्ताकरण पर समझौता हो जायियत संभव न कहेना या कि पहले निष्पत्ताकरण पर समझौता हो जाय और तब बाद में कठोर नियंत्रण कायम करके उसके कार्यान्वित किया जाय।

(३) प्राणविक प्रायुध—इस विषय में अमेरिका और उसके समर्थक का यह मत था कि प्राणविक विस्फोट होने वाले सामग्री के उत्पादन पर एक अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण पद्धति की व्यवस्था होनी चाहिये और इस पद्धति के कार्यान्वित होते ही सब प्राणविक प्रायुधों का उत्पादन बंद हो जाना चाहिये। अमेरिकन गुरु का यह भी कहना था कि प्राणविक विस्फोट की क्षमता का ज्ञानपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिये। सोवियत गुरु का दृष्टिकोण था कि प्राणविक प्रायुधों का प्रयोग नश्वर बंद होना चाहिये और जब दोनों पक्ष अपनी सेनाओं को बटा दें तो उन्हें सर्वथा नष्ट कर देना चाहिये।

(४) सेनाओं की संख्या—अमेरिका चाहता था कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व इस की सेनाओं २१ लाख तक सीमित होनी चाहिये। यह मा देकों की सेनाओं के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कहता। रूस चाहता था कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका चीन (साम्यवादी) और सोवियत संघ में से प्रत्येक १७ लाख सेना तक रखे और ब्रिटिश तथा फ्रांस सेना की अधिकतम संख्या साढ़े नौ लाख हो।

(५) संयुक्त घाकाश—धमेरिका के मतानुसार उत्तरी धमेरिका सोवियत रूस और उत्तरी महासागर के बड़े भाग के आकाश दोषों रोकने के लिए खुले रहने चाहिए। इसमें हवाई निरीक्षण राडार पद्धति तथा उड़ानों की पूर्व-सूचना द्वारा निगरान स्थापित होना चाहिए।

रूस का मत था कि सन्धन रीया एयेन्स और मैड्रिड से निरे हुए यूरोपियन क्षेत्र तथा संयुक्त राज्य धमेरिका के पश्चिमी भाग से ब रूस के पूर्वी भाग से सगे हुए प्रचान्त महासागरीय क्षेत्र के आकाश को उन्मुक्त रखा जाय जबकि इन क्षेत्रों पर निर्बाध हवाई निरीक्षण का अधिकार हुआ चाहिए।

(६) बाह्य घन्तरिक्ष—धमेरिका का मत था कि बाह्य घन्तरिक्ष में राकेट छोड़ने वाले देशों को अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण-संस्था (International Control Agency) को इनकी सूचना देनी चाहिए। बाह्य घन्तरिक्ष में सैनिक प्रयोग की दृष्टि से रॉकेट नहीं भेजने चाहिए।

इसके विपरीत रूसी दृष्टिकोण था कि सब सैनिक रॉकेटों को मण्ट कर देना चाहिए और उनका उत्पादन एकदम बंद होना चाहिए।

दोनों महाशक्तियों के ये मतभेद इतने मौलिक थे कि जिससे उनमें १९६० तक निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में कोई समझौता न हो सका और उसके बाद से घाब तक भी सिवाम मामूली प्रगति के और कुछ नहीं किया जा सका है। अपने मूलरूप में निःशस्त्रीकरण की समस्या पहले से भी अधिक अमानक रूप में विद्यमान है।

दिसम्बर १९६० में सोवियत रूस ने इस राष्ट्रों के निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का बहिष्कार कर दिया। उसका कहना था कि निःशस्त्रीकरण पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों का एक प्रायोग बनना चाहिए। यह सुझाव पश्चिमी देशों को मान्य नहीं हुआ। १९६१ में सोवियत संघ और धमेरिका के बीच द्विपक्षीय चर्चा हुई जिसके परिणाम-स्वरूप ८ और राष्ट्रों को बढ़ा कर १८ राष्ट्रों के निःशस्त्रीकरण प्रायोग की स्थापना की गई। जब निःशस्त्रीकरण की समस्या पर यही संस्था विचार करती है। इस प्रायोग के १८ सदस्य निम्नलिखित हैं—संयुक्त राज्य धमेरिका ब्रिटेन फ्रान्स कनाडा इटली सोवियत रूस बल्गेरिया रूमानिया पार्सिफ्थ बेल्गेस्तोवाकिया जर्मनी भारत मिय मेक्सिको एबीसीनिया स्वीडन और नाइजीरिया। इस प्रायोग अथवा समिति को परिष्कृत रूप में १८ राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण प्रायोग या समिति कहा जाता है, यद्यपि वास्तव में यह एक १७ राष्ट्रीय प्रायोग ही है क्योंकि फ्रान्स ने वारम्भ में ही कह दिया था कि वह उसकी बैठकों में घाम नहीं लेगा।

निःशस्त्रीकरण पर धमेरिकन स्वर्णश राष्ट्रपति कनेडी का बहुत्वपूर्ण वाचण—१९६१ में निःशस्त्रीकरण की दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं नहीं उठाया जा सका। किन्तु धमेरिका के युवा राष्ट्रपति कनेडी प्राणवच से निःशस्त्रीकरण के प्रयासों को सफल बनाने की चेष्टा करते रहे। राष्ट्रपति कनेडी को इस बात का बड़ा विश्वास था कि निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में प्रगति हो सकती है। उनकी यह बड़ वास्तवा १९६१ के मध्य में कांग्रेस की स्वीकृति

से एक नई अमेरिकन सङ्घ-निष्पन्न एवं निःशस्त्रीकरण एजेन्सी की स्थापना करने से प्रकट हुई। निःशस्त्रीकरण के लिए राष्ट्रपति कनेडी कितने उत्सुक थे और इस बारे में उनके विचार किन्ते संतुलित तर्क सम्मत तथा ठोस थे—इसका आभास हमें "निःशस्त्रीकरण के लिए उनके तर्कात्मक स्मरबीज पर भाषण" से मिलता है जो २५ सितम्बर १९६१ को उन्होंने तब दिया जब वे संयुक्त राष्ट्र सच क महासचिव डाग हैमरहोल्ड को भर्षाजमि देने के लिए महासभा में उपस्थित हुए। श्री डाग हैमरहोल्ड इत-युद्ध की जपटों से पीड़ित कोंवों में युद्ध बन्द करने के प्रयास में बिमान दुर्घटना में लहीर हुए थे। स्वर्गीय राष्ट्रपति कनेडी का यह अविस्मरणीय भाषण इस प्रकार था—

"हम इस समय युद्ध तथा जुतीली मरी बड़ी में मिल रहे हैं। डाग हैमरहोल्ड का निश्चय हो चुका है लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ अभी वीकिल है। उनके युद्ध निवृत्त से हमारे दिलों में पहला शक हुआ है लेकिन बिस उरोय की बातिर अन्वैनि अपने प्राय पंचाए वह हमारी कार्य-सूची में सबसे ऊपर है। शांति का एक सच्चा सेवक बना गया लेकिन शान्ति की दस्ताव अभी हमारे पास बारी है।

समस्या एक व्यक्ति के मरने की नहीं समस्या इस संस्था के बीबन की है। या तो यह संस्था इतनी शक्तिशाली हो जायगी कि हमारे युग की जुतीलियों का सामना कर सके अथवा इतनी हसकी हो कर निष्प्राण शक्तिहीन तथा धारहीन हो कर खरम हो जायगी। अगर हम इसे मरने से इसकी शक्ति को कम होने से इसके अधिकारों को छीनने से तो हम अपने अधिक्य को ही नष्ट करते।

इस संस्था के विकास में ही युद्ध का सच्चा विरुद्ध समाहित है और उरुकेने की धीरे-धीरे धब सम्यक विकल्प नहीं रहे पया है। बिना बर्त के बना पया युद्ध धब बिना बर्त भीठा नहीं का सकता। धब युद्ध के डारा अमनों का निपटारा नहीं हो सकता। जब युद्ध केबल बड़े राष्ट्रों तक ही सीमित नहीं है क्योंकि धब परमालु बम की विनीपिका हुआ पानी तथा धप के साथ छोटे और बड़े गरीब तथा धमीर, नुटबंदी म फसे तथा नुटबंदी से धमय सभी को समान रूप से घरेपी। अत मानव को युद्ध समाप्त कर देने बाहिए धबका युद्ध मानव को समाप्त कर देने।

अत हम संकल्प करें कि डाग हैमरहोल्ड अपने ही नहीं लिए या अपने ही नहीं मरे। हमें शान्ति की समाप्ति करनी बाहिए। हमें शान्ति की गुनाहीयों को धारमिल करवा बाहिए और जब हम शान्ति बनाए रखने की अन्तरराष्ट्रीय समता प्राप्त कर रहे हैं तो हमें युद्ध छेड़ने की राष्ट्रीय समता समाप्त करने के लिए विश्व कर प्रयास करना बाहिये।

इतके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को नई शक्ति की आवश्यकता होयी तथा नई सुविधाओं का निर्वाह करना होगा। क्योंकि बिना शान्ति के निःशस्त्रीकरण करना अप्रामाण है और कानून के बिना समाज मान एक डोल है। संयुक्त राष्ट्र संघ मानव की परम उदार मानवताओं का मापक तथा

बाहक बन चुका है। यह मध्यपूर्व एशिया तथा अफ्रीका में इस वर्ष कांगो में हिंसा को सीमाओं के अन्दर रखने के साधन प्रस्तुत कर सका है।

लेकिन इस महान संस्था के सामने १९४२ में जो प्रश्न उपस्थित था वह आज भी उपस्थित है क्या प्रपति तथा सान्ति की मानव की विरपेवित आशयों धातक तथा तोड़-फोड़ द्वारा नष्ट कर दी जायेंगी क्या 'युद्ध के दूषित अंश' को समझ रखते रोकना जा सकेगा ताकि समझदारी की शीतल वायु उससे मुक्त रह सके क्या बोबना-यब में की गई उन प्रतिज्ञाओं का परिपालन किया जाएगा अथवा उल्लंघन बिना शर्त, प्रपति मानव-अधिकार तथा विश्व कानून प्राप्त करने की बात कही गई थी।

आज इस ग्रह के प्रत्येक निवासी को उस दिन की कल्पना करनी चाहिए कि जब इस ग्रह पर मानव के रहने के लिए जगह नहीं रह जाएगी। प्रत्येक पुरुष स्त्री तथा बच्चे के सिर पर आज परमाणु बम की तलवार अत्यन्त पतले धागे से बंधी लटक रही है और यह बाधा किसी भी समझ बुद्धिमानव गलतफहमी या पागलपन की अवस्था में टूट सकता है। युद्ध के अन्तस्त्र हमें नष्ट करें, उससे पहले ही हमें उनको ही नष्ट कर देना चाहिए।

आज मनुष्य इस बहुस में नहीं पड़ता कि शस्त्रीकरण तनाव का सहायक है या तनाव का कारण। आधुनिक शस्त्रास्त्रों का होना ही जो विश्व में पहले कभी भी मौजूद शस्त्रों से एक करोड़ गुना अधिक शक्तिशाली है, और पृथ्वी-भर में किसी भी लक्ष्य पर मिनटों के अन्दर पहुँच सकते हैं, मयानकता असंतोष तथा अविश्वास का कारण है। आज मानव-समाज यह नहीं मानता कि सभी अन्तर्गत जाने के बाद ही निःशस्त्रीकरण किया जाए क्योंकि स्वयं निःशस्त्रीकरण ही उस स्वामी सान्ति-अवस्था का अङ्ग होना चाहिए। आज मनुष्य यह नहीं कह सकता कि निःशस्त्रीकरण की इच्छा कमबोरी की निशानी है क्योंकि होड़ के कारण बढ़ रही अस्त्र-प्रतियोगिता में किसी राष्ट्र की सुरक्षा उसके अस्त्र शक्तों के परिमाण में हुई वृद्धि के अनुपात में बढ़ भी सकती है।

जब पन्द्रह वर्षों से यह संस्था अस्त्रास्त्रों में कमी करने तथा उनका विनाश करने का प्रयास करती रही है। जब यह लक्ष्य एक स्वयंसाधक नहीं रह गया है वह जीवन या मरण का एक व्यावहारिक प्रश्न बन गया है। निःशस्त्रीकरण में अन्तर्निहित अतरे असीमित अस्त्रास्त्र-प्रतियोगिता में अन्तर्निहित अतरों की तुलना में कुछ भी नहीं है।

इसी भावना के अनुसार हाल के बेलग्रेड सम्मेलन ने यह मानते हुए कि जब यह न तो सोवियत समस्या है और न अमेरिकी समस्या बल्कि मानव जाति की समस्या है। 'सार्वजनिक पूर्ण तथा सर्वथा अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में निःशस्त्रीकरण' के एक कार्यक्रम को स्वीकार किया था। इसी भावना के बसीभूत हो कर संयुक्त राज्य अमेरिका के लोगों ने इस वर्ष प्रयास किये थे जिससे नई आबन्धकतानुभूति भी तथा कार्यस द्वारा पूर्णतः अनुमोदित नई, कानून के अनुसार बनी संस्था ने निःशस्त्रीकरण समस्या का ऐसा हल

बोबने के प्रयास किये जिससे निःसस्त्रीकरण शीघ्रकालिक फिर भी यथार्थता पूर्ण तथा परस्पर इतना संतुलित एवं मानववाक्यक है कि जितने प्रत्येक राष्ट्र स्वीकार कर सके। इसी भावना के अनुसार इसने सोवियत संघ के करार किया है जिसमें दोनों राष्ट्रों ने 'घाम तथा पूर्ण निःसस्त्रीकरण' के लिए मार्ग के नये स्वीकृत सिद्धान्तों के नये बक्तव्य को स्वीकार किया है।

किन्तु हमें यह बली भांति विदित है कि सभी संवैधानिक समस्याएँ हल नहीं हो पाई हैं और सिद्धान्तों पर सहमत होना ही काफी नहीं है। इसलिए हमारा इरादा सोवियत संघ को सस्त्र-प्रतिबन्धिता के लिए नहीं बल्कि प्रतिबन्धिता के लिए, कबम-कबम तथा एक चरण से दूसरे चरण में पहुँचने के लिए तब तक ससकारण का है जब तक घाम और पूर्ण निःसस्त्रीकरण सम्भव नहीं हो जाता। इन सब उनको सिद्धान्त सहमत होने से मंजूर कर वास्तविक योजनकों पर कठोर करने के लिए समन्वित करते हैं।

ब्रह्मपूर्ण धन्तराष्ट्रीय नियंत्रण के धन्तराष्ट्र घाम एवं पूर्ण निःसस्त्रीकरण के लिए इस महासभा में प्रस्तुत किया जाने वाला कार्यक्रम उल हो विचारचाराओं का अन्तर दूर करने का प्रयास करेगा जिसमें एक तो बीरे-बीरे घावे बढ़ने का सनर्पक है और दूसरा धर्मितम तथा पूरा सफलता की बात कहता है। इससे एक ऐसी व्यवस्था का बन्ध होगा जिसके अनुसार ज्यों-ज्यों युद्धवर्धन गष्ट होता चलेगा त्यों-त्यों बालि का सिक्का बमता चलेगा। यह व्यवस्था संतुलित तथा सुरक्षित चरखों के पुनरेयी को इस प्रकार बनाई जायगी कि किसी एक राज्य को दूसरे राज्य पर सैनिक लाभ न हो। इसके अनुसार निःसस्त्रीकरण की बांध तथा नियंत्रण का धर्मितम धन्तराष्ट्रिय न हो बल्कि राष्ट्रों पर, न किसी एक राष्ट्र का उसके विरोधी राष्ट्र पर बला लागेगी बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ के बांध के धन्तर एक धन्तराष्ट्रीय संस्था को सौंपा जायगा।

इसके निःसस्त्रीकरण की एक धर्मितम धन्तराष्ट्रिय बांध पूरी हो सकेगी तथा जिस प्रकार बीरे-बीरे निःसस्त्रीकरण होता चलेगा उसी मात्रा में निरीक्षण कार्य होता रहेगा। यह बांध सन्धियों के बांध उन्हें विरति बांधे बांधकों की भी की जायगी। इसके अनुसार अन्ततः इनके उलाहान परीक्षण उनके इस्तान्तरण तथा उन्हें धरने पाठ रखने बांधि सभी पर रोक लगा दी जायगी। इससे धन्तराष्ट्रीय निःसस्त्रीकरण संस्था की सैनिक में परमाणु धर्मों तथा परम्परागत धर्मों से लैस सभी सैनिकों को बीरे-बीरे लतावार कम किया जायगा जब तक कि बाल्तिक शांति बनाए रखने तथा नई संयुक्त राष्ट्रीय बालि सेना के लिए धाबक टुकड़ियाँ ही रोप न रहें और उस विद्या में घाम धमी जैसे बाधनीत शुरू हो, उसी के साथ कार्यवाही शुरू कर दी जाय।

संक्षेप में, घाम तथा पूर्ण निःसस्त्रीकरण सब एक मात्रा-मात्र नहीं रहे जाना चाहिए को धार्मिक धर्म उठाना रोकने के धर्म हैं दिया जाना है। यह एक ऐसा बन्ध नहीं रहे जाना चाहिए जिसे प्राप्त करने के बाधन न हों,

जिसकी प्रगति बाँकने की कोई तरकीब न हो तथा जिससे शांति बनाए रखना सम्भव न हो। यह एक समार्थतावादी योजना है एक परीक्षा है। उन लोगों की परीक्षा है जो शांति बाँटें करना चाहते हैं तथा उन लोगों की परीक्षा है जो काम करने के लिए भी तैयार हैं।

इस तरह की योजना से विश्व केवल स्वयं प्रयत्न या भाग्य से ही मुक्त नहीं होगा बल्कि इससे सामूहिक विनाश से भी विश्व को मुक्ति मिल सकेगी। इससे किसी 'महासंघर्ष' का शुरुआत न होया बल्कि इसके एक ऐसे युग का भीगल्लेन होगा जिसमें एक राज्य दूसरे का न तो समूह नाम कर सकेया और न कोई अन्य उसे विनष्ट कर सकेया।

१९४६ में ही अमेरिका ने बरुण योजना का प्रस्ताव रखा था जिसके अन्तर्गत अनेक राष्ट्रों के पास परमाणु बम होने से पहले ही उसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने तथा विनैश्वीकरण करने का प्रस्ताव रखा जायक जोरिया में कुछ बन रहा था। यद्यपि बर्लिन में हम अपनी रक्षा-अभ्यवस्था की तैयारी कर रहे हैं तथा भी हम आज अपने प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं इसलिए नहीं कि हमारा मत स्थिर नहीं है या हमारी नीयत नफ नहीं है या हम किसी से डर भये हैं, बल्कि इसलिए कि हम जानते हैं कि स्वतंत्र लोगों के अधिकार ही अन्ततः विजयी होंगे इसलिए कि हम अपनी इच्छा के अनिश्चित अन्ततः होने के लिए बाध्य किसे था रहे हैं फिर भी हम विश्वास पूर्वक बर्लिन से आगे उस निश्चय विश्व की बाट जोह रहे हैं जिसे हम पसन्द करते हैं।

इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस योजना के आधार पर निःशस्त्रीकरण बाँटें और शुरु हो और तब तक बिना इसके चलती रह जाय तक काम एवं पूर्ण निःशस्त्रीकरण के समूचे कार्यक्रम पर सहमति ही नहीं हो जाए बल्कि ऐसा निःशस्त्रीकरण वास्तव में अपना लिया जाए।

इसकी तर्कसमय शुरुआत एक ऐसी सन्धि होगी जिसके अनुसार सभी स्थितियों में सभी प्रकार के परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाया तथा ध्वाजहारिक नियन्त्रण सुनिश्चित हो। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन ने इस प्रकार की सन्धि का प्रस्ताव किया है जो अधिष्ठापूर्वक तथा प्रभावकारी है तथा हस्ताक्षरों के लिए तैयार है। हम आज भी उस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हैं।

हमने आनुमन्तीय परीक्षणों पर आपसी प्रतिबन्ध समझने का प्रस्ताव भी रखा है जिसके लिए निरीक्षण या नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है। इसका अर्थ यह मानव-जाति को वैश्विक नहीं बल से बचाना है। हमें डर है कि हमारा यह प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया गया।

यह पन्द्रह वर्षों से हम चल कर रहे हैं कि परम एणु को युद्ध की अपेक्षा शांतिपूर्वक विकास का साधन बनायें। लेकिन यह पन्द्रह वर्षों में हमारी रियायतों का प्रत्युत्तर बाधाओं से मिला है तथा हमारे धर्म का बर्सा अधिष्ठापन से बिना गया है। शांति के लिए मानवता के तर्कों का उत्तर उनकी अपेक्षा करके दिया गया है।

सन्त में जब अन्य देशों के विस्फोटों से आकाश में बादल उठ रहे थे तो हमारे देश के सामने इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रह गया था कि वह भी अपनी तथा विश्व की सुरक्षा के लिए कार्यवाही करे। जब घोर सोवियत सैनिकों को सुधारने में लगे हों तब हम परीक्षणों से बिरत होकर सुरक्षा को बतारे में नहीं बाध सकते। यह तीन वर्षों से हमने अपने मुक्त समाज में वैश्विकता भी उठाये हैं और दूसरी तरफ हम परीक्षणों की जांच पड़ताल पर समझौता करने के लिए भी प्रयत्नशील हैं। लेकिन इस रूप में हम जेनेवा में ईमानदारी के साथ बातचीत कर रहे थे तो दूसरे सोवियत समाज के बिना नये परीक्षण करने की तैयारियां कर रहे थे।

हमारे परीक्षण वायुमण्डल को दूषित नहीं करते हैं। दूसरे पक्ष को हतब उठाये से रोकने वाले हमारे सैनिकों का आक्रामक दुष्प्रभाव विस्फोट का प्रयोग न हो, इसकी पूरी शकती है। हमारे डाक्टर तथा वैज्ञानिक ऐसे प्रत्येक राष्ट्र की महायत्ना करने को तैयार हैं तथा स्वास्थ्य के लिए बातचीत परीक्षणों के प्रतिबन्धन परिलाम होते हैं।

लेकिन इन संयुक्त सत्तों के विस्तार वायुमण्डल को दूषित होने से तथा दिन डुनी रात चौगुनी बढ़ने वाली अस्वास्थ्य प्रतियोगिता को रोकने के लिए हम समझौते के नये मार्ग खोजने को तैयार रहे हैं। इस प्रकार हमारे नये निःशस्त्रीकरण-कार्यक्रम में निम्नलिखित प्रस्ताव सम्मिलित हैं :—

प्रथम सभी राष्ट्रों द्वारा परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करना। यह तो शकती किया जा सकता है। परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लागू नहीं है न करनी ही चाहिए।

दूसरे अस्वास्थ्य में प्रयोग होने वाले विस्फोटक पदार्थों का उत्पादन रोकना तथा इस समय जिन राष्ट्रों के पास परमाणु सस्त्र नहीं हैं उन्हें इन विस्फोटक पदार्थों का हस्तांतरण रोकना।

तीसरे, परमाणु सस्त्रों पर उन राष्ट्रों को नियन्त्रण हस्तांतरित करने से रोकना जिनके पास परमाणु सस्त्र नहीं हैं।

चौथे परमाणु सस्त्रों को अन्तरिक्ष में नये मुक्त क्षेत्रों के बीच बोलने से रोकना।

पांचवां इस समय जब दुके परमाणु सस्त्रों को बीरे-बीरे नष्ट करना तथा उनमें लगी सामग्री को शान्तिपूर्ण कामों में प्रयोग करना, और

अन्त में परमाणु सस्त्रों को से जाने वाले सामरिक महत्व के वाहन के उत्पादन तथा असीमित परीक्षण रोकना तथा बीरे-बीरे उन सबको नष्ट करना।

लेकिन अस्वास्थ्य को नष्ट कर देना ही पर्याप्त नहीं है। बीरे-बीरे हम अस्वास्थ्य नष्ट करें हमें विश्व-मर में न्याय-व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए और बीरे-बीरे हम विश्व मर में दुर्घटनाओं को अन्तर्राष्ट्रीय बनाये,

उनके साथ ही विश्व में न्याय-व्यवस्था लागू करना सम्भव बनायें। हम जिस विश्व के निर्माण की बात कह रहे हैं उसमें अस्त्री-वस्त्री जुटाई गई संयुक्त राष्ट्र संघीय संकटकालीन सेनाओं पर्याप्त नहीं होंगी जिनके पास रसद की सुनिश्चित व्यवस्था तथा जिनके सर्जों की समुचित व्यवस्था नहीं है।

बत संयुक्त राज्य अमेरिका की मिफारिस है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी सेनाओं में विशेष शांति-स्वायत्त बस्ते बना कर रखे जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ बच चाहे तमी बुला सके। ये बस्ते विशेष रूप से प्रशिक्षित हों और उन उपलब्ध हो सकते हों तथा उनके सर्ज एवं परिवहन की पहलू में व्यवस्था हो।

इसके प्रतिरिक्त अमेरिकी प्रतिनिधि मण्डल का सुझाव है कि ऐसे अनेक करम उठाए जायें जिससे अगुओं को शान्तिपूर्वक निपटाने बटभास्वत पर बस्तुस्थिति की जांच करने मध्यस्थता तथा पक्षनिर्णय करने तथा कानून व्यवस्था का विस्तार करने की संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य-प्रणाली में सुधार हो। क्योंकि शान्ति केवल सैनिक प्रवृत्ति अनीकस समस्था ही नहीं है यह तो मूस-भूत रूप में राजनीतिक तथा जनता की समस्या है। जब तक मानव व्यव-निर्माण एवं टेक्नालाजी में की गई प्रगति के समान ही सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में प्रगति नहीं करता तब तक हमारी शक्ति का समुचित नियन्त्रण न होना और हम इस पृथ्वी पर मिट जायेंगे।

आगामी इस महीनों की बटनायें तथा निर्णय आगामी इस हजार वर्षों तक के लिए मानव के भाग्य का निर्णय कर देंगे। इन बटनायों को टाला नहीं जा सकता। इन निर्णय के विरुद्ध कहीं भी अनीक नहीं की जा सकेगी। इस हाल में बैठे हम लोगों को या तो उस पीढ़ी का अङ्ग मित्त जायेगा जिसने इस ग्रह को जननी बित्त में परिणित किया या वह पीढ़ी समझ जायगा जिसने अपने बाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचने की अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह किया।

उस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के प्रयास-स्वरूप मैं इस राष्ट्र द्वारा शक्ति भर हर सम्भव कोशिश करने का बचन देता हूँ। मैं बचन देता हूँ कि यह राष्ट्र न तो आक्रमण करेगा और न आक्रमण के लिए उकसाएगा यह राष्ट्र न तो शक्ति को बमकी देगा और न बमकी के आगे भागेगा तथा यह राष्ट्र न तो बर कर बातचीत करेगा और न बातचीत करने से डरेगा।

शान्ति तथा स्वतन्त्रता में विश्वास रखने वाले किसी राष्ट्र को निराश होने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह अकेला नहीं है। अगर हम सब आत्म नियन्त्रण रख सकते हैं अगर हम सब जाहे जिस देन या जिस पद पर हों अपनी सीमाओं तथा आकांक्षाओं से धाने देख सकते हैं तो निश्चय ही उस युग का सम्मुख होगा जिसमें शक्तिशाली न्यायपूर्ण कमजोर संरक्षित तथा शान्ति सुरक्षित रहेंगी।

इस महाकाल में उपस्थित महिमाओं तथा सम्बन्धों निर्णय करना हमारे ऊपर है। विश्व के राष्ट्रों को आस बित्तना आना या पाना है उठना पहले कभी नहीं पा। आज मित्त कर हम अपने पृथ्वी ग्रह को बचा सकते हैं अथवा प्राण की सपटों में भस्महात् कर सकते हैं। इसे हम बचा सकते

हमें इसे प्रथम बचाना चाहिये और तभी हम मानवता के शाश्वत
सम्बन्ध तथा शांति स्थापक के रूप में परमात्मा के शाश्वत बरदान के
बिकारी होंगे।"

रुस्सासुन कम करने के भी कैंनेडी के प्रस्तावों को विस्तार के साथ
अमेरिकन प्रतिनिधि न मार्च १९६२ में १८ राष्ट्रीय डेनेवा नि-अल्सीकरण
सम्मेलन में प्रस्तुत किया। यह प्रस्ताव किसी भी राष्ट्र द्वारा प्रस्तुत सर्वाधिक
व्यापक और विविष्ट सुझाव थे। इसके साथ ही स्विट्स नगर में पूर्वक
से ही रहे अमेरिकन-ब्रिटिश सोवियत सम्मेलन में परमाणु परीक्षणों पर
प्रतिबन्ध के नये अमेरिकन प्रस्ताव भी उपस्थित किये गये। नि-अल्सीकरण
सम्बन्धी यह सम्मेलन सारे रूप भर चलते और स्थित होते रहे। इस बीच
सोवियत संघ न संसार के उस समय तक के सर्वाधिक कतिनाली ३०
मेबाटन बम का विरफोट करके विश्व में तहलका मचा दिया। इस बम का
परीक्षण उस प्रकरता में किया गया कि संयुक्त राष्ट्रीय महासभा एक प्रस्ताव
पाठित करके सोवियत रुस से अपील कर चुकी थी कि वह यह परीक्षण न
करे। यही नहीं बरबुदर १९६२ में रुस न न्यूबा को प्रसेप्रचारकों के अग्रिम
पहुँचे के रूप में परिवर्तित करके विश्व-शांति के लिए सकट उपस्थित कर दिया
यद्यपि बाद में भी कैंनेडी की दृढ़ता और भी क श्रेय के विवेक और धैर्य ने
मिल कर इस संकट को किसी तरह टाल दिया। न्यूबा सकट के बाद
बरबुदर १९६१ के अन्त में भी अ-श्रेय ने भी कैंनेडी को लिखा—

"हमको परणु तथा परमाणु बरबासनों पर प्रतिबन्ध लगाने आम
नि-अल्सीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने सम्बन्धी अन्य समस्यकों
पर विचार-विमर्श जारी रखना चाहिए।"

राष्ट्रपति कैंनेडी ने तत्काल इसके उत्तर में सोवियत प्रधानमंत्री को
लिखा—

"हमें नि-अल्सीकरण समस्या पर औरत ध्यान देना चाहिए क्योंकि
इसका घारे संसार से तथा सकटपुर्ण क्षेत्रों से सम्बन्ध है। चाकर सब जब
हम बहते से एक करम पीछे हट घामे है हम मिल कर इस महत्वपूर्ण क्षेत्र
में कुछ वास्तविक प्रगति कर सकें। मैं समझता हूँ कि हमें पृथ्वी पर तथा
बाह्य अन्तरिक्ष में परमाणु बरबासनों पर रोक लगाने सम्बन्धी प्रश्नों को
प्राथमिकता देनी चाहिए। लेकिन हमें इस बात के लिए कठोर परिश्रम करना
चाहिए कि नि-अल्सीकरण के व्यापक मसलों पर भी सहमति हो जाय और
तीव्र ही उन समस्यों पर भी रचनात्मक कार्य के साथ डेनेवा में वा प्रथम
सरकार इन प्रश्नों पर औरत ही रचनात्मक भावना के साथ डेनेवा में वा प्रथम
कहीं भी विचार करने को तैयार होनी।"

इतके बाद के महीने नि-अल्सीकरण बार्ता के मुठोत्तर इतिहास में
सबसे अधिक परिणामदायक सिद्ध हुआ। २ अगस्त १९६१ को डेनेवा में
सोवियत प्रतिनिधि, मन्बल ने अमेरिका का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि
कार्यागटन और अ-अग्रिम के बीच धीमी टैमीटाइप साइन, बाबु की बाप।
संकट के समय अमेरिकन राष्ट्रपति न सोवियत प्रधानमंत्री के बीच तीव्रता-
पूर्वक बार्ता करने का साधन सुलभ होने से वाकस्मिक रुपसे टला है। य अग्रिम;

का खतरा कम हो सकेगा—इसी दृष्टि में हेमन्त ऋतु में यह 'हाट नाइन' धातु की गमी।

परमाणु-परीक्षण प्रतिबन्ध संधि (Nuclear Test Ban Treaty, 1963)—कैनेडी और क्लुबेक के प्रयत्नों से निःसस्त्रीकरण बार्ता में और प्रगति हुई। १४ जुलाई १९६३ को मास्को में ब्रिटेन रूस और अमेरिका के प्रति निधियों का एक सम्मेलन हुआ और २३ जुलाई, १९६३ का तीनों देशों ने "सीमित परमाणु प्रतिबन्ध सन्धि" पर हस्ताक्षर कर दिये। राष्ट्रपति कैनेडी इस संधि की मीमांसा अपने प्रशासन काल के प्रारम्भ से करते जा रहे थे। इस संधि के सम्पन्न होने के प्रथम ही दिन उन्होंने अपने कार्यकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण माननीय शोषणा में से एक शोषणा की और सविधान के अन्तर्गत अमेरिकन सीनेट से इस संधि की संघुष्टि का आग्रह किया। श्री कैनेडी ने अमेरिकन राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा—

"आज रात में आप सोमों के सामने प्राक्षापूर्ण भावना के साथ सोच रहा हूँ। पछाछ वर्ष पहले परमाणु शस्त्रों के अन्वय से विश्व तथा मनुष्य की धमका हो बढा गई थी। उसी समय से समस्त मानवता पृथ्वी पर सामूहिक विनाश की धमकारपूर्ण सम्भावना में बचने के लिये संघर्ष करती चली आ रही है। ऐसे युग में जब दोनों पक्षों के पास इतनी परमाणु शक्ति हो कि वे समस्त मानव जाति को कई बार विध्वंस कर सकते हैं, साम्यवादी तथा स्वतन्त्र विचारों के विश्व परस्पर विरोधी सिद्धान्तवाद तथा परस्पर विरोधी हितों के दुष्प्रकाश में फँस पड़े हैं। तनाव की हर बुद्धि के साथ शस्त्रास्त्रों की वृद्धि हुई है और तस्त्रास्त्रों की हर बुद्धि के साथ तनाव बढ़ा है।"

कम धमकार की सचनता थीरनी हुई प्रकार की एक किरल उदित हुई है। मास्को में वातपीन के फलस्वरूप एक संधि हुई है जिसके अनुसार पृथ्वी का एक अन्तरिक्ष अथवा बस के धमर सभी तरह के परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जायेगा। पृथ्वी वार परमाणु विनाश की शक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण में लाने का सन्धि के लिये एक सम्झौता हुआ है। यह ऐसा सन्धि है जिसे बर्नार्ड बरुन २१४६ में ही संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने एक व्यापक नियंत्रण वाजना के धमीन प्रस्तुत किया था।

इस योजना तथा बाद की अनेक छात्री बड़ी योजनाओं को उन लोगों ने अवकाश कर दिया जो अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण के विरोधी थे। अकिन परमाणु परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था के अन्तर्गत निरीक्षण की आवश्यकता अभी तक भी जब भूगर्भीय परीक्षण किये जायें। इस राष्ट्र के पास ऐसी बहुत सी तकनीकें सुभम हैं जिनसे धमर राष्ट्रों द्वारा वायु मण्डल या पानी के भीतर क्रिय लिये परमाणु परीक्षणों का पता प्राप्तानी से कम सकता है क्योंकि इस प्रकार के परीक्षणों से वे स्पष्ट सिद्ध प्रकट होते हैं जिन्हें प्राथमिक संज्ञादि से पकड़ा जा सकता है।

अतः कम को संधि हुई है वह एक सीमित संधि है जिनके अनुसार भूगर्भीय परमाणु-परीक्षण किये जा सकते हैं। इनके धमीन अन्ही परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है, जिन्हें हम स्वयं भी पकड़ सकते हैं। इसके लिये

किसी नियन्त्रण नीति बटनास्पस पर बाहर किसी प्रकार के निरीक्षण करने या बा कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संयोजन बनाने की आवश्यकता नहीं।

हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि इसकी धम्य सीमाएँ भी हैं। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाला कोई राष्ट्र उस प्रबन्ध में इस संधि से बाहर जा सकता है जब यह समझे कि संधि के विषय से सम्बन्धित प्रभावपूर्ण बटनाओं के कारण उसके सर्वोच्च हित अतरे में पड़ गये हैं और किसी भी राष्ट्र का आत्मरक्षा का अधिकार किसी भी प्रबन्ध में इससे बाधित नहीं होना। इस संधि का यह धर्म भी नहीं है कि इससे परमाणु-युद्ध का अन्त समाप्त हो गया। इससे परमाणु अस्त्रों का संग्रह भी कम नहीं होगा। इससे परमाणु अस्त्रों का उत्पादन भी न रुकेगा और युद्ध छिड़ने पर इनका प्रयोग भी न रोका जा सकेगा।

फिर भी इस संधि से परमाणु-परीक्षणों में जबर्जस्त कमी या बायबी को धम्यना दोनों तरफ से चलते रहते। यह संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन तथा सोवियत संघ को बाबुमध्यस्थीय परीक्षण करने से रोकेगी ब्रिटेन मानवता को इतना अधिक विन्यास कर दिया है और इससे समूचे विश्व को स्वागत योग्य भावा बिल्लू मिस गया है।

यह कोई एकपक्षीय रोक नहीं है बल्कि एक निश्चित तथा पवित्र कानूनी बाधित है। हालांकि इस राष्ट्र को यह संधि मूलभूत परीक्षण करने तथा धम्य राष्ट्रों को कार्यबाहियों से बाधक हो जाने के कारण बाबुमध्यस्थीय परीक्षण करने से रोक न सकेगी फिर भी यह एक ऐसा ठोस सुझावर उपस्थित करती है कि इससे धम्य राष्ट्र बनें तथा बाह में धम्य प्रकार के परमाणु-परीक्षण रोके जा सकें।

यह संधि एक तरह से पश्चिमी राष्ट्रों के बीच तथा अन्तर्-संयुक्त का परिणाम है। हमने स्पष्ट कर दिया सबसे हाल में बर्लिन तथा मद्रास में कि हम अपनी सुरक्षा तथा अपनी स्वतन्त्रता की किसी भी प्रकार के बाधक से रक्षा करने के लिये अन्तर्-संयुक्त हैं। साथ ही हमने अस्त्र-प्रति योगिता सीमित करने का अपना बड़ा निश्चय भी स्पष्ट कर दिया।

यह संधि ही सब कुछ नहीं है। इससे सभी समस्याएँ हल नहीं हो सकेंगी जबकि इससे कम्युनिस्ट अपनी महत्वाकांक्षाएँ नहीं त्यागेंगे या युद्ध का अन्त नहीं टल जायगा। इससे अस्त्रास्त्रों या मिश्रों की आवश्यकता या धम्य राष्ट्रों की सहायता देने के कार्यक्रम की बकरत कम नहीं होगी। लेकिन यह एक महत्वपूर्ण पहला कदम है—बाति की तरफ समझदारी की तरफ उठाया गया तथा युद्ध से हट कर एक कदम है।

इतिहास तथा हमारी धात्मा हमें कुछ कहेंगी अगर हम जब अपनी धात्माओं को कार्य की कठौटी पर करने का हर सम्भव प्रयत्न नहीं करते हैं और यह स्थान उस प्रयत्न को शुरू करने का है। प्राचीन चीनी कहावत है "हजार मील की यात्रा का प्रारम्भ एक कदम उठाने के साथ होना चाहिये।"

मेरे अमेरिकी बन्धुओं हों यह पहला कदम उठाना चाहिये। अगर हम बच सकें तो हमें युद्ध की काली छायाओं से बच जाना चाहिये और शांति का रास्ता खोजना चाहिये और वह यात्रा एक हजार मील या इससे भी अधिक सम्भी है तो इतिहास को लिखने बीजिये कि इस राष्ट्र के रहने वाले हम साथों ने इस प्रबन्ध पर पहला कदम उठाया।

राष्ट्रपति व्हेनेडी ने अपने संदेश में इस संधि के सीनेट द्वारा स्वीकार किये जाने के पक्ष में जो युक्तियाँ दीं वे संक्षेप में यह थी—

(i) यह संधि विश्व-शांति को बढ़ाने वाली और आधुनिक सन्न-प्रतिस्पर्धा को रोकने वाली है।

(ii) यह पृथ्वी के वायुमण्डल का आणविक विस्फोटकमय दूषित और हानिप्रद तत्वों से बचाव देगी।

(iii) यह संधि अमेरिकन हितों को सुरक्षित करने वाली है क्योंकि जब कभी यह इसे अपने लिए हानिप्रद समझे तभी यह इससे पूंजक हो सकता है।

(iv) इससे अमेरिका के आणविक आयुधों की प्रगति में कोई बाधा नहीं पहुँचती क्योंकि यह भूमिगत परीक्षणों द्वारा इनका विकास कर सकता है।

(v) अमेरिका के लिए यह संधि इसलिए भी सामवायक है क्योंकि यह इस समय आणविक आयुधों की दृष्टि से रूस से घाबे है और अब अणु-परीक्षणों पर रोक लग जाने के कारण घाबे भी इस विषय में उसकी अकेलता बनी रहेगी।

अणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि पर सीनेट का अनुमोदन सितम्बर में प्राप्त हुआ। वाशिंगटन सन्धम तथा मास्को में संपुष्टि-पत्रों के आदान-प्रदान के साथ १० अक्टूबर १९६३ का यह संधि लागू हो गयी। उस समय तक लगभग १०० राष्ट्र इस संधि पर हस्ताक्षर कर चुके थे।

इस संधि के द्वारा भूमि परीक्षणों को छोड़ कर बाह्य आकाश वन और वायु मण्डल में अणु-परीक्षण करने पर रोक लग गयी। १९६३ की वास्कुया की संधि-संधि के बाद पूर्व और पश्चिम का यह सबसे बड़ा समझौता था। इसका विश्व में सर्वत्र स्वागत हुआ। भारत ने इस संधि पर अगले राष्ट्रों में प्रथम हस्ताक्षर किये। फ्रांस ने अब तक इस पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं और साम्यवादी चीन इस संधि का विरोधी रहा है।

अणु-परीक्षण प्रतिबन्ध संधि ३ धाराओं की छोटी सी किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असाधारण महत्व रखने वाली संधि है। इसकी प्रस्तावना में तीनों देशों (ब्रिटेन, रूस व अमेरिका) ने यह घोषणा की है कि उनका प्रभाव अज्ञेय—

“संयुक्त राष्ट्र संधि के सदस्यों के अनुसार कठोर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में एक सामान्य और पूर्ण निःशस्त्रीकरण का समझौता यथासंभव शीघ्र ही कराना है ताकि वस्त्रों के उत्पादन और निर्माण की प्रतिस्पर्धा बन्द हो सके।”

संधि की पाँचों धाराओं का संक्षेप रूप में इस प्रकार है—

पहली धारा में हीनों देशों द्वारा यह मिश्रण किया गया है कि वे अपने अधिकार क्षेत्र और नियन्त्रण में विद्यमान किसी भी प्रदेश के वास्तुसंज्ञक में, इसकी सीमाओं में बाह्य प्रत्यक्ष में प्राथमिक प्रथवा मद्रासमूर्तों के जल में कोई भी प्राणविक विस्फोट नहीं करेंगे और इन प्रकार के प्राणविक विस्फोटों को रोक देंगे।

दूसरी धारा में संधि के संशोधन की व्यवस्था है। संधि में संशोधन का प्रस्ताव किसी भी सरकार द्वारा रखा जा सकता है और हस्ताक्षरकर्ता राज्यों में से यदि एक-तिहाई प्रस्ताव के पक्ष में हो तो संशोधनों पर विचार हो सकता है।

तीसरी धारा के अनुसार इन संधि पर सब देश हस्ताक्षर कर सकते हैं। यह व्यवस्था है कि हस्ताक्षरकर्ता देश इस पर अपनी संसद प्रथवा राष्ट्रीय परिषद से इसकी पुष्टि प्राप्त करने और इन पुष्टियों या संपुष्टियों को उन्हें रूस, अमेरिका एवं ग्रेट ब्रिटेन के पास जमा कराता रहेगा।

चौथी धारा में उल्लिखित है कि यह संधि प्रसीमित अवधि (Unlimited duration) के लिए है। हालांकि हस्ताक्षरकर्ता प्रथम देश को यह अधिकार होगा कि वह अपनी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता का प्रयोग करते हुए उस समय स्वयं को इस संधि की बाध्यताओं से मुक्त करने का यह यह निर्णय करे कि इस संधि से सम्बन्धित ऐसी प्रसामान्य बातें चर्चित हुई हैं कि उससे उस देश का सर्वोच्च हित संकट में पड़ गया है। इस बात में कहा गया है कि अपरोक्त व्यवस्था में संधि से हटने की इच्छा करने वाले देश संधि पर हस्ताक्षर करने वाले अन्य देशों को ३ महीने पहले अपने पृथक होने का नोटिस दे देगा। यही इसकी पृथक होने वाले धारा (Escapo Clause) कहलाती है। संधि की इस पृथककरण की धारा में स्पष्ट है कि यदि प्रथम और और अपने अणु-परीक्षण जारी रखते हैं और भारत को या अन्य किसी राष्ट्र को ऐसा अनुभव होता है कि उनकी राष्ट्रीय सुरक्षा को संकट है, तो वे इस संधि पर हस्ताक्षर करने पर भी इससे प्रत्यक्ष होकर अपने प्रतिरक्षात्मक कामों को बढ़ाने के लिए तैयार हो सकते हैं।

पांचवीं धारा में यह कहा गया है कि इस संधि के सभी भागों के तथा धाराओं के दोनों रूप समान रूप से प्रामाणिक समझे जायेंगे।

इस संधि में स्पष्ट रूप से और प्राकाश में किये जाने वाले धर्म-परीक्षणों पर ही प्रतिबन्ध लगाया गया है। यह स्वभावतः यह प्रश्न पैदा होता है कि भूमिगत (Underground) परीक्षण पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं लगाया गया। ऐसा इसलिए नहीं हुआ कि भूमिगत परीक्षणों का पकड़ने के लिए इनकी जांच करने की कोई संतोषजनक और संवेगमय विधि नहीं निकल सकी तथा कतने इस बात का जोर विरोध किया कि ऐसे परीक्षणों की जांच विस्फोट के स्थान पर अन्तर्गत की जाय। कतने को यह धर्मोपनयन था कि अमेरिका किसी प्रदेश में जाकर अणु परीक्षणों के स्थानों का निरीक्षण करे। कतने इसका विरोध करत हुए कहा कि वे निरीक्षण बेकार है क्योंकि धर्म ऐसे धर्म-अन्य बुके हैं या दूरदर्शी स्थानों की भूमि के नीचे होने वाले विस्फोटों

की हसचम धकित करते रहते हैं। कसी दृष्टिकोण के विपरीत अमेरिका का विचार था कि मुमि के अन्तर किये जाने वाले धाणविक विस्कोनों को भूचास के घकके (Earth tremors) से पूबक करना संभव नहीं है।

श्री लुइसेव ने इस संधि पर हस्ताक्षर करते समय कुछ धय प्रस्ताव भी रहे। पहला प्रस्ताव सेना पर किये जाने वाले विनाश धय में कटौती का था। दूसरा प्रस्ताव पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के दोनों ओर सेनाधों की सख्या में कमी करना था। तीउरा प्रस्ताव नाटो तथा बार्ता पैक्ट के देशों के मध्य धनाक्रमण समझौते का था। किन्तु इन तीनों ही प्रस्तावों को स्वीकार करने की दिशा में कोई सफलता नहीं मिली।

अधु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि का संसार के अधिकांशत सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों ने पूर्ण स्वागत किया। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मैकमिलन ने कहा "धार्थिक अणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है और यह पहला अवसर है कि इस मयानक शक्ति को नियन्त्रण करने की दिशा में हम लोग एक बाध पर राजी हुए हैं।" लुइसेव ने इसे एक अन्वी शुक्रपाठ और युगान्तकारी घटना कहा। सका की प्रधानमन्त्री श्रीमती मन्डारनायक ने कहा "यह संधि अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास के नये मुम का अधिगणन करेगी तथा सामान्य और पूर्ण निःशस्त्रीकरण का मार्ग खोल बनी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि धाणविक परीक्षण पर रोक लगाने से सम्बन्धित यह संधि केवल निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में ही एक महान् घटना नहीं थी बरन् यह भीठ युद्ध की समाप्ति की दिशा में भी एव प्रभावशाली शुक्रपाठ थी जिसके कारण विश्व इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

निःशस्त्रीकरण की दिशा में १९६३ के उपरान्त किये गये प्रयास — १९६३ में राष्ट्रपति कनेडी की सहसा हत्या हो जाने के उपरान्त जब उपराष्ट्रपति मिन्डन की आजसन ने राष्ट्रपति पद का धार संभाला तब नये बर्ष के अवसर पर अमेरिका के नये राष्ट्रपति की शुभ कामना संकेत देते हुए कमी प्रधानमन्त्री ने इस बाध पर बस दिया कि निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी प्रयासों के साथ-साथ संधियों के कारणों को दूर करने के और सीमा संधियों के कारणों का मिटाने के तथा सीमा विवादों को हल करने के लिए बस-प्रयोग न करने की प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय ध्यवस्था की जाय। यही लुइसेव ने सुझाया कि एक ऐसी संधि की जानी चाहिये जिसके अन्तगत सीमा संधियों के समाधान के लिए बस प्रयोग करना बन्धित कर दिया जाय।

राष्ट्रपति जॉनसन ने निःशस्त्रीकरण और शांति की रक्षा के लिए अमेरिका द्वारा अन्तर्गत बस से प्रयत्नयोग्य रहने के संकल्प का ठोस प्रमाण देने के लिए प्रधानमन्त्री श्री लुइसेव को एक पत्र लिखा और माघ १९६४ में जेनेवा में पुन प्रारम्भ होने वाले सम्मेलन में अमेरिका की ओर से नवी पहल करते हुए ५ नये और ठोस प्रस्ताव रहे। निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में अमेरिका के जो ये नये प्रस्ताव थे उनका उत्प्रेक्ष राष्ट्रपति जॉनसन के उस विशेष संदेश में किया गया था उन्होंने जेनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन को भेजा था। य प्रस्ताव संक्षेप में इस प्रकार थे—

१ प्राथमिक सजाओं को तय करने के लिए सचिब्य में बस-अयोग न किया जाय ।

२ सामरिक महत्व के सन्देशों में वृद्धि की आवश्यकता रोका जाय ।

३ एक समझौता किया जाय जिसके अन्तर्गत सन्देशों के लिए विश्वव्यापीय पर्याप्तों का सारा उत्पादन रोक दिया जाय और यह मामूली किया जाय कि सम्बन्ध पक्ष उस समझौते का पालन कर रहे हैं या नहीं ।

४ आकस्मिक घटना यन्त्र अनुमान यथा आकस्मिक आक्रमण के कारण युद्ध के छिड़ने का खतरा कम किया जाय ।

५ जिन देशों के पास आणविक अस्त्र नहीं हैं उन तक इन अस्त्रों को पहुँचाने से रोका जाय ।

अमेरिकन प्रस्तावों के उत्तर में सोवियत रूस की ६ सूची निम्नलिखित-करण योजना सामने आयी । १८ राष्ट्रीय निम्नस्वीकरण सम्मेलन में रूस द्वारा यह प्रस्ताव किया गया कि आणविक हथियारबाहक सभी विभागों को नष्ट कर दिया जाय । रूसी ६ सूची योजना में यही मुख्य बात थी । इस योजना को रूसी प्रतिनिधि श्री काराचकिन ने प्रस्तुत किया । यह इस प्रकार थी—

१ विदेशों से सभी विदेशी सेनाएँ हटायी जायें ।

२ सभी राष्ट्र अपनी घाम सेनाओं में कटौती करें (सबसेप सेना के अन्तराष्ट्रीय निरीक्षण के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया) ।

३ सभी राष्ट्र अपने सैनिक बजट में भी कटौती करें ।

४ यूरोप व अन्य क्षेत्रों में अणु-रहित क्षेत्रों की स्थापना हो ।

५ नाटो व बारसा सहि राष्ट्रों में अनाक्रमण संधि हो ।

६ आणविक सन्देशों का और दूसरे देशों में प्रसार न करने के सम्बन्ध में समझौता हो ।

७ अनाबास आक्रमण की संभावना को खत्म करने परबिधक शौकियों सेनाओं में कटौती तथा सैन्यीय यूरोप में (अणु-रहित क्षेत्र सहित) का समझौता हो ।

८ अणुअर्पक विभागों को नष्ट किया जाय ।

९. भूमिगत परमाणु परीक्षणों पर भी प्रतिबन्ध लागू हो ।

सोवियत रूस ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि अमेरिका वास्तव में आणविक सन्देशों के प्रसार को रोकने का इच्छुक है तो उसे यूरोप में बहुपक्षीय आणविक सेना खटित करने का विचार छोड़ना पड़ेगा क्योंकि ऐसी सेना के मौजूद रहते हुए किसी भी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता । रूसी प्रतिनिधि ने कहा कि अमेरिका द्वारा यह कदम उठाये जाने पर ही सोवियत रूस राष्ट्रपति बॉनितन के प्रस्तावों पर मंत्रीरत्नापूर्वक विचार करेगा ।

जून १९६४ में कैम्बेज सम्मेलन में अमेरिका के आणविक सन्देशों के प्रसार को रोकने तथा अणुशक्ति के कल्याणकारी उपयोगों को प्रोत्साहन देने के लिए ३ परस्पर सम्बन्ध प्रस्ताव प्रस्तुत किये । इनमें निम्नलिखित प्रमुख मुद्दाव दिये गये—

(i) प्राणविक शस्त्रास्त्रों में प्रयुक्त करने के लिए आवश्यक व्यावहारिक सामग्री के उत्पादन को प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण की व्यवस्था के साथ प्रतिबन्ध पूरी तरह से रोक दिया जाय।

(ii) आक्रमणायुक्त और प्रतिरक्षात्मक प्राणविक शस्त्रास्त्रों की संख्या निर्धारित की जाय। इसके लिए परीक्षण की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हो और इसी प्रकार के प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण के अन्तर्गत निर्धारित संख्या के प्रतिरिक्त सभी प्राणविक शस्त्रास्त्र नष्ट किये जायें।

(iii) अमेरिका और रूस दोनों ही बराबर संख्या में अपने इन बमबर्षकों को नष्ट कर दें जो अणुबम से बाने और दूर तक प्रहार करने में समर्थ हैं। इनमें बी०—४० और टी० यू०—१९ को शामिल किया गया है।

(iv) प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत ही कल्याणकारी कार्यों के लिए प्राणविक सामग्री का हस्तांतरण हो।

(v) प्रमुख अणुशक्ति सम्पन्न राष्ट्र अणुशक्ति के कल्याणकारी उपयोगों के विकास में संलग्न अपनी और अणु शक्ति सुविधाओं और कारखानों को अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण और जांच-पड़ताल के लिए खोलें।

१९६४ में ही इंग्लैंड की लेबर पार्टी के नेता और वर्तमान प्रधानमंत्री हेरोल्ड विंस्टन ने निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में ये प्रस्ताव रखे—

१. दैनिक व्यय में कमी हो पूर्व जर्मनी पीसैंड और चेकोस्लोवाकिया में सभी अणुविक शस्त्र नष्ट कर लिए जायें।

२. प्रधानक आक्रमण के लिए निरीक्षण पोस्ट स्थापित किये जायें।

३. सभी प्रकार के परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाये जायें।

जेनेवा में बसने वाले इन निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों का और उसमें दोनों पक्षों की ओर से रहे जाने वाले प्रस्तावों—प्रति-प्रस्तावों का कोई मजबूत पक्ष नहीं निकला। सितम्बर में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया गया और इसी के कुछ दिनों बाद १ अक्टूबर, १९६४ को काहिरा में तटस्थ राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें भारतीय प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री सातबहादुर सास्त्री और मिश्र के राष्ट्रपति कनम नासिर ने संयुक्त विज्ञापित में पूर्ण निःशस्त्रीकरण पर बस दिया। श्री सास्त्री ने चीन में एक मिशन भेज कर उसे अणु-परीक्षण बन्द करवाने की प्रतीति करने का सुझाव भी दिया। इस विषय में भारत के पूर्व निरक्षय को दोहराते हुए श्री सास्त्री ने एक बार फिर बोधया की कि भारत अणुशक्ति का नातिमय उपयोग करने के अपने विश्वास पर अटल है।

कुछ ही दिनों बाद चीन ने अपने प्रथम अणुबम का परीक्षण कर लिया। १९६३ के जेनेवा सम्मेलन का यह प्रथम उत्सवण था। सारे संसार में इसकी बड़ी आलोचना हुई। २९ नवम्बर, १९६४ को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने एक प्रस्ताव पास करके निःशस्त्रीकरण आयोग से आग्रह किया कि परमाणुविक घामुओं के सम्बन्ध में हीअतापूर्वक किसी प्रकार का

समझौता घबराव होना चाहिए। सब के सामने प्रस्ताव का सोवियत संघ ने विरोध किया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि एक बार दोनों महाशक्तियाँ (अमेरिका तथा रूस) इस बात पर सहमत जायेंगे।

७ दिसम्बर १९६४ को उस समय ११५ सदस्यों वाली महासभा में रूसी विदेशमंत्री की घोषिका के एक ११ सूत्री निराश्रमीकरण कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य विश्व-तनाव को कम करना और निराश्रमीकरण की दिशा में तेजी से अग्रसर होना था। यह प्रस्ताव संक्षेप में इस प्रकार था—

- १ सैनिक बजट में कमी
- २ दूसरे देशों में स्थित सैनिकों को हटाना व उनमें कमी करना
- ३ अन्य देशों में विदेशी सैनिक प्रहृओं की समाप्ति
- ४ अणु-मायुधों के विस्तार पर रोक
- ५ अणु-मायुधों के प्रयोग पर रोक
- ६ अणु विहीन क्षेत्रों का निर्माण
- ७ बमबर्षक विमानों की समाप्ति
- ८ भूमिगत आणविक मायुधों के परीक्षण पर प्रतिबन्ध
- ९ 'नाटो' और 'वार्सा' देशों में अनाक्रमण संधि
- १० आक्रामिक आक्रमण पर रोक तथा
- ११ सैनिकों की कुल संख्या में कमी।

रूस का यह प्रस्ताव अमेरिकन युट को स्वीकार्य नहीं हुआ। रूसों पक्षों के मतभेदों को दूर करने के उद्देश्य से २७ जुलाई, १९६४ को जेनेवा में निराश्रमीकरण आयोग की बैठक फिर बुलाई गयी। इस सम्मेलन में अपने-आप एक-दूसरे के विरुद्ध नये कार्यों की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की परन्तु सम्मेलन के धारणा होने के समय ही रूसी और अमेरिकन मतभेद तेजी से उभर आये। दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने ऐसे-ऐसे आपसु दिये कि सम्मेलन के माध्य का फलना ही गया। यद्यपि दोनों ही पक्षों में आणविक मायुधों की मर्यादना के सम्बन्ध में कोई मतभेद न था लेकिन इन मायुधों को नियमित करने की तरिकों के बीच स्पष्ट तीव्र मौलिक मतभेद थे। निराश्रमीकरण सम्मेलन में अपनी असफलता के कारण में रिपोर्ट का प्रकाशन भी किया जिसमें उसने स्वीकार किया कि वह इस परिषद में किसी भी विषय सम्मेलन पर नहीं पहुँच सका है। मतो घाम और पूर्ण निराश्रमीकरण के प्रश्नों पर और न ही अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के उपायों पर ही किसी तरह की कोई सफलता मिली है। आयोग अपने समिति ने यह विश्वास प्रकट किया कि परिषद में हुए बाब-बिबा-धौर विचारों के आदान-प्रदान आयोग के प्राची समझौता प्रयासों में अग्रव्य सामनायक हो सकती है। *

*As at past sessions the question before the Committee were in general discussed in a thorough manner All the participants in the Committee took an active part

१६ नवम्बर, १९६१ को भारत सहित ११ अन्य सदस्य राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की राजनीतिक समिति में यह प्रस्ताव रखा कि जनवरी १९६४ के काहिरा सम्मेलन के निर्णयों को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्वीकार किया जाय और उन पर बिस्वार से विचार करने के लिए साम्यवादी भीत सहित १८ राष्ट्रों का एक निःस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवा में १९६७ के पहले बुलाया जाय। यह प्रस्ताव ११२ मतों से बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया गया किन्तु साम्यवादी भीत ने सम्मेलन में शामिल होना मन्कूर नहीं किया। इस वर १७ राष्ट्रों का (भारत सहित) निःस्त्रीकरण सम्मेलन

In this discussion and a number of interesting suggestions were put forward. The Soviet Union stated its readiness to meet the position taken by the United Arab Republic and to agree to its proposal that the implementation of the Moscow Treaty relating to the banning of tests of nuclear weapons in the atmosphere, in outer space and under water should be extended to cover underground nuclear test above a seismic magnitude of 4.75 and that, as an additional measure, the nuclear Powers should agree to moratorium on all other forms of underground nuclear testing until such time as agreement had been reached on an overall ban on nuclear weapon tests.

"The United States reiterated its readiness to conclude an adequately verified comprehensive test ban treaty and in this regard emphasized the desirability of an exchange of scientific information among nuclear Powers, as suggested by the eight non-aligned States

"The Committee did not reach any specific agreement at this session either on questions of general and complete disarmament, or on measures aimed at the lessening of international tension. However the members of the Committee believe that the extensive discussion on major problems relating to certain collateral measures were particularly valuable in clarifying the respective points of view of member Governments. The Committee believes that these discussions and exchanges of views may facilitate agreement in the further work of the Committee"

—Extracts from the Report.

युन-जेनेवा में प्रारम्भ हुआ जो जनवरी १९६६ से अगस्त तक पूरे ७ महीने चलता रहा। सम्मेलन के प्रारम्भ में महासचिव ड-बॉट ने एक सम्मेलन मेजा जिसमें कहा गया कि परमाणुबिक मायुधों के सम्बन्ध में इस बार जापान को अवश्य ही कुछ करना चाहिए। पोप पास छोड़े, राष्ट्रपति बॉनसन और स्वी प्रबाममन्त्री कोमीगिन ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये। दोनों ही घोर से प्रस्ताव प्रतिप्रस्ताव भाये किन्तु दोनों ने एक दूसरे के मसबिरे को बोधपूर्वक बचाते हुए धरतीकार कर दिया। १९ अगस्त १९६६ को संयुक्त राज्य अमेरिका की अणु-मायुधों की नीति की घोषणा करने हुए घोषित राज्य प्रतिनिधि रोचिन (Rochchin) ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका एक तरह से सम्मेलनों में अणु-मायुधों के नियन्त्रण की बात कह कर संसार को घुमराह कर रहा है और दूसरी तरह 'नाटो' (NATO) के माध्यम से पश्चिमी जर्मनी व गैर अणु-मायुधों वाले अन्य राष्ट्रों में भी अणु-बाबुधों का बिस्तार कर रहा है वैसे कि चुलाई १९६६ में इस बारे में नाटो संवहन के राष्ट्रों का मिश्रण ही हुआ है।

इसी सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस से बाधह किया कि वह अपने 'अन्तरमहादीपीय प्रसेप्रखारुधों के द्वारा सुरक्षा-अवस्थाधों' (Anti-Ballistic Missiles Defence Systems) का सुरत परित्याग करे। सम्मेलन में नाम लेने वाले भारत बाबिल बर्मा इयोपिया, मेक्सिको, नाइजीरिया स्वीडन और संयुक्त अरब अखराज्य के ८ सदस्य राष्ट्रों ने इस बात की मांग की कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत इस मूयर्क अणु-वरीखणों को भी बन्द करने की बात सुरत स्वीकार करें, परन्तु सम्मेलन में दोनों ही शक्तियाँ अपनी हठवादी प्रवृत्ति का प्रदर्शन करती रहीं जिसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि यह सम्मेलन भी बिना किसी प्रकार के अन्तर्गुल निर्णय के ही समाप्त हो गया।

अगस्त १९६७ का परमाणु-अस्त्र-सन्धि प्राश्य

परमाणु-अस्त्रों पर रोक लगाने के लिये इसके बाद भी प्रयास चलते रहे और जेनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन भी ड-बॉट-उंवाते लगनप सो ही बना था कि अगस्त के प्रतिन सप्ताह में अमेरिकन प्रतिनिधि फास्टर और सोवियत प्रतिनिधि राखिन ने यह पैमान किया कि परमाणु-अस्त्र सन्धि के मसबिरे के बारे में सोवियत संघ और अमेरिका में सटे तौर पर समझौता हो गया है और उस समझौते के अनुसार संधि का एक मसबिदा हम विचारार्थ बड़ा पैठ कर रहे हैं। दो बड़े राष्ट्रों में रबामन्त्री होने की यह खबर मिलते ही इस मामले से सम्बन्ध छोटे राष्ट्रों के प्रतिनिधि भीकले होकर बैठ गये। संधि का मसबिदा बड़ा मन्दा-बौद्धा वा और उसकी शकधों और उनके सम्बेहों का कोई समाधान नहीं हो सका।

मसबिरे के पहले अगुन्वेर में यह कहा गया है कि परमाणु-अस्त्र सम्पन्न राष्ट्र परमाणु-अस्त्र-बिहीन राष्ट्रों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने में किसी प्रकार की सहायता नहीं देंगे।

दूसरे अनुच्छेद में कहा गया है कि हस्ताक्षर करने वाले परमाणु प्रस्त्र बिहीन राष्ट्र परमाणु अस्त्र बनाने की कोई कोशिश नहीं करेंगे।

तीसरा अनुच्छेद परमाणु प्रस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सम्बन्ध में है। इस अनुच्छेद में कुछ एक पंक्ति है। सभी इस विषय में कोई समझौता नहीं हो सका है।

चौथा अनुच्छेद उन राष्ट्रों को प्रोत्साहित करने के लिए रखा गया है जिन्होंने अपने महा आणविक उपयोग का काफी विकास कर लिया है। इसमें कहा गया है कि हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों को प्रौद्योगिक कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास करने में पूरी छूट रहेगी।

पाँचवें छठे और सातवें अनुच्छेद में नार्वेविधि-सम्बन्धी व्यवस्थाएँ हैं।

लेकिन सन्धि में कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि अगर किसी परमाणु प्रस्त्र-बिहीन राष्ट्र पर कोई परमाणु-अस्त्रधारी राष्ट्र हमला करता है तो हस्ताक्षर करने वाले देश उसके बचाव की क्या-व्यवस्था करेंगे? तीसरे अनुच्छेद के बारे में कोई समझौता न हो सकने के कारण फिलहाल किसी है जो किसी परमाणु-अस्त्र बिहीन राष्ट्र को परमाणु-अस्त्र भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की परिकल्पना भी नहीं हो सकी है जो किसी परमाणु-अस्त्र बिहीन राष्ट्र को परमाणु प्रस्त्र बनाने से रोक सके जो विभिन्न देशों के परमाणु-शक्ति के विकास के कार्यक्रमों का निरीक्षण और नियन्त्रण करके यह पारखी है सके कि प्रौद्योगिक उपयोग के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सैनिक उपयोग में नहीं आवेगा और जो हस्ताक्षर करने वाले परमाणु शक्ति-बिहीन राष्ट्रों को आन्तिकपूर्ण उपयोगों के लिए परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों में परमाणु शक्ति के बारे में आवश्यक जानकारी और सामग्री दिला सके।

स्पष्ट है कि इस तरह की व्यवस्थाओं के अभाव में सन्धि का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। इसलिए नहीं कि परमाणु प्रस्त्र बिहीन राष्ट्रों ने मसबिदे की काम कर आलोचना की। फ्रांस और चीन बिरादरी से बाहर रहने वाले इन दो परमाणु प्रस्त्र-सम्पन्न देशों ने भी मसबिदे का विरोध किया। चीन की सरकारी समाचार एजेंसी ने इस सन्धि को सोवियत संघोपमबाद और अमेरिकी साम्राज्यवाद की सन्धि ठहराया और कहा कि इसका मुख्य उद्देश्य चीन के विरुद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त तैयार करना है।

पेरिस में कांसीची सरकार ने पहले इस मसबिदे पर कोई भी टिप्पणी करने से इन्कार कर दिया क्योंकि फ्रांस वर्तमान बेरेवा पार्टी से सम्बद्ध नहीं है। बाद में एक सरकारी प्रवक्ता ने कहा कि हम यह मानते हैं कि परमाणु-अस्त्रों के प्रसार पर रोक लगनी चाहिए, हम यह भी स्वीकार करते हैं कि सभी राष्ट्र परमाणु-अस्त्र बनाने लगे तो सम्पत्ता का सर्वनाश हो जायेगा। लेकिन साथ में हम यह भी कहना चाहते हैं कि फिलहाल सबसे बड़ा खतरा अमेरिका और सोवियत संघ जैसे उन बड़े राष्ट्रों से है जिन्होंने बड़े पैमाने पर परमाणु-अस्त्र बना कर रख लिए हैं। दूसरों को मसीहत देने

से पहले के अपनी फौजीय दूर करें। परमाणु-बलों के परीक्षण पर रोक लगाई जाये तो इस समय उनके पास जितने परमाणु-बल हैं उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि में नष्ट करवा दें। पश्चिम जर्मन के एक सरकारी प्रबन्धक ने कहा कि सब कुछ मसजिदों के सींटर प्रमुख पर निर्भर है और इसी प्रमुख के बारे में जब तक कोई समझौता नहीं हो सका है। स्पेन के समाचार पत्रों में लिखा है कि प्रस्तावित सन्धि और कुछ नहीं। परमाणु-बल के क्षेत्र में सोवियत संघ और अमेरिका की बपीती बताये रखने की सन्धि है।

सन्धि पर सबसे ज्यादा ध्यान पश्चिम जर्मनी इटली और माउंट को है। पश्चिम जर्मन और इटली यह महसूस करते हैं कि परमाणु-बल सम्पन्न सोवियत संघ फ्रांस और ब्रिटेन के सामने ब यूरोप में बौन होकर खामोशे। भारत को परमाणु-बल सम्पन्न चीन से बबरबल खतरा है और प्रस्तावित सन्धि इस खतरों को दूर नहीं कर सकती।

कुम मिला कर प्रस्तावित सन्धि का महत्व मात्र इतना रह जाता है कि सोवियत संघ और अमेरिका अपने किसी एक राष्ट्र को परमाणु बल न देने के विषय में सहमत हो गये हैं और यह इस बात का प्रमाण है कि वे यह मानते मने हैं कि मछों और बेलों को युवा कर सीधे आपत में बाँट कर बा लेना ज्यादा सुविधाजनक रहेगा और सामप्रय भी। अगर प्रस्तावित सन्धि पर सम्बद्ध राष्ट्रों ने हस्ताक्षर कर दिये तो परमाणु-बल-सम्पन्न होने के नाते सोवियत संघ और अमेरिका दो बड़े राष्ट्र पर परमाणु-बल सम्पन्न हो से प्रतिष्ठित हो जायेंगे। निरीक्षण और नियन्त्रण सम्बन्धी व्यवस्था होने पर वे वैज्ञानिक और औद्योगिक दृष्टि से विकसित किन्तु परमाणु-बल-विहीन राष्ट्रों के परमाणु बल-कारकों की बापूरी खुशे प्राप्त है कि परमाणु-बल के शक्तिपूर्व उपयोग के लिए स्थापित परमाणु-बलियों में जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है वह किस काम में लाया जा रहा है। इस समय भी विश्वी-बलों के लिए परमाणु-बल विहीन राष्ट्रों में अतिनी परमाणु बलियाँ जाती हुई हैं जतनी से ही १९८० तक ही मीट्रिक टन प्लूटोनियम प्राप्त हो सकेगा और इतना प्लूटोनियम १२ हजार परमाणु बम बनाने के लिए काफी है। (साप्ताहिक दिनमान १० सितम्बर, १९६०)

भारत में यह कहा जा सकता है कि जब से सामूहिक रूप से युद्ध होने प्रारम्भ हुए हैं तभी से निःशस्त्रीकरण की बातों में बल रही है। परन्तु इस विषय में जब तक ऐसी कोई सफलता प्रकृत नहीं हुई है जिसे सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण की तरह एक बुनियादी कदम कहा जा सके। इसका कारण यही है कि कोई भी देश इस कार्य में निष्कण्ट नाब सं कार्य नहीं कर रहा है अपितु निःशस्त्रीकरण के नाम पर-युद्धी बातें बेली जा रही हैं। हर पक्ष का आशय यही होता है कि यदि बिपक्षी निःशस्त्रीकरण की योजना स्वीकार कर लेगा तो सामरिक दृष्टि से कमजोर हो जायगा और यदि अस्वीकार करेगा तो इस बात के प्रचार का सबल बन जायगा कि समुक्त देश ने निःशस्त्रीकरण योजना को स्वीकार नहीं किया है मत-यह मानवता का कर्तु है और युद्ध का प्राकर्मि। इस और अमेरिका प्रायः परमाणुबल सत्ताओं प

प्रतिद्वन्द्व की बात करते हैं लेकिन उनके हृदय में यही भावना है कि यदि इस क्षेत्र में कोई संघि सम्पन्न हुई भी तो इससे विपक्षी के मुकाबले उसकी सम्पन्नता में कमबोरी नहीं आ पायेगी दोनों ही महाशक्तियों के पास प्रसेप्रस्थास्त्रों, परमाणु बमों व उद्बलन बमों आदि का इतना विशाल भण्डार है कि वे चाहें तो सम्पूर्ण दुनिया को कुछ बंटों मात्र में विनष्ट कर सकते हैं। दोनों ही महाशक्तियाँ यह समझने लगी हैं कि युद्ध की अवस्था में एक दूसरे के प्रहार से बचने की क्षमता दोनों में से किसी की नहीं है, अतः उन्हें यदि जीवित रहना है तो धर्म: धर्म: सम्मानपूर्ण रूप से एक दूसरे के निष्कट भाग्य चाहिए। दोनों राष्ट्रों की यह धनुभूति विश्व-अस्वास्थ्य की दृष्टि से उचित है। परन्तु निःशस्त्रीकरण की समस्या और विश्व-शांति का प्रश्न केवल दो या कुछ राष्ट्रों की परी पर नहीं अपितु सभी राष्ट्रों की दृष्टा पर निर्भर है क्योंकि हिटलर के कब्रों पर बलने वाला एक भी युद्धोन्मत्त राष्ट्र बाक्य के डर पर बैठी हुई दुनिया को विनाश की ज्वालामुखी में बदल सकता है। यह किसी से छिपा नहीं है कि चीन (साम्यवादी) जैसा युद्धोन्मत्त राष्ट्र तेजी से परमाणु प्रस्त्रों का विकास कर रहा है और अभी से उसकी यह मनोरथा है कि वह देखा कोई अबसर हाथ से नहीं जाने देता जब विश्व-शांति को यह कोई धाकात लगा सके। यदि चीन की युद्ध पिपासा और हिंसात्मक प्रवृत्ति पर समय रहते हुए प्रकृष्ट नहीं जपाया गया तो निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में किये जाने वाले किसी भी समझौते का कोई महत्त्व स्थायी रह सकेगा इसमें सन्देह है। इतना ही नहीं कम्युनिस्ट प्रवृत्ति सम्पन्न राष्ट्रों की अग्रिम पक्ति में जाने के लिए साम्यवाद में प्रणु-परीक्षण करने की कटिबद्ध है। १९६९ में अपने प्रसन्न महासम्मेलन में कुछ प्रणु-विस्फोट किये भी वे। वास्तव में यह एक विचित्र बात है कि विश्व में एक और निःशस्त्रीकरण के प्रयत्न हो रहे हैं तो दूसरी ओर कुछ राष्ट्र शस्त्रीकरण के लिए पागलों की भी लौक लपा रहे हैं। निःशस्त्रीकरण के स्वप्न की पूर्ति तक तक संभव नहीं दिखायी देती जब तक विश्व के राष्ट्र राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धान्त को त्याग कर एक विश्व-सरकार की सत्ता की स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत न हो जायें। एस्. डी मेडरीयागा (Salvador de Medariga) ने ठीक ही कहा है 'निःशस्त्रीकरण की समस्या निःशस्त्रीकरण की नहीं है, यह वास्तव में विश्व-समाज के संघर्ष की समस्या है।' "

EXERCISES

- 1 Discuss the attitude of Great Powers towards disarmament since the close of Second World War
द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद निःशस्त्रीकरण के प्रति महाशक्तियों के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
- 2 Discuss the 'progress of disarmament under the U.N O pointing out specially the basic differences in the points of view of Western Powers and U.S.S.R.
पारश्चात्य शक्तियों और सोवियत संघ के मध्यवर्ती मौलिक मतभेदों को बताते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापन में निःशस्त्रीकरण की दिशा में की गई प्रगति की विवेचना कीजिए।
Give an account of the attempts made after 1945 to tackle the problem of disarmament.
निःशस्त्रीकरण की समस्या के समाधान के लिए १९४५ के बाद किये गये प्रयासों का विवरण दीजिए।
- 4 Account for the failure of the attempts so far made to tackle the problem of disarmament.
निःशस्त्रीकरण की समस्या का समाधान करने के लिये अब तक किये गये प्रयासों की असफलता के कारण बताइये।
- 5 Discuss the main provisions and significance of the nuclear test ban treaty of August 1963.
अगस्त १९६३ की परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि के प्रावधानों और महत्व की विवेचना कीजिए।
6. Write short notes on—
[a] Open Skies Plan [U.S.A.]
[b] Complete and General Disarmament Plan [U.S.S.R.]
[c] Disarmament Committee of the U.N O [d] Various Disarmament Conferences held in Geneva from time to time after 1946.
संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये— (अ) उन्मुक्त आकाश योजना (अमेरिका) (ब) पूर्ण और सामान्य निःशस्त्रीकरण योजना (सोवियत कंस) (स) संयुक्त राष्ट्र की निःशस्त्रीकरण समिति (द) १९४६ के बाद जेनेवा में समय-समय पर होने वाले निःशस्त्रीकरण सम्मेलन।

6

4/10/2020

प्रादेशिक संगठन और समझौते

1. 1/10/20
2. 5/10/20

(REGIONAL ORGANIZATION & PACTS)

प्रादेशिक संघटनों की महत्ता मानवीय इतिहास में परम्परगत रही है।
विभिन्न प्रमुख प्रादेशिक संघटन एवं समझौते —

1. अमेरिकन राज्यों का संघटन
2. ब्रिटेन संघ
3. ब्रिटेन संघ संघटन
4. नाटो
5. अफ्रीका की संघ
6. भारत वीक ✓
7. विश्वीय पुरोच का एकीकरण
 - (i) यूरोपियन आर्थिक सहयोग संघटन
 - (ii) यूरोपियन आर्थिक संघ
 - (iii) यूरोपियन परिषद्
 - (iv) यूरोपियन कोयला-इस्पात समुदाय
 - (v) यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय
 - (vi) यूरोपियन आर्थिक शक्ति समुदाय
 - (vii) यूरोपियन साम्य बाजार
 - (viii) यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ
 - (ix) विश्वीय यूरोपियन संघ
8. बाल्कन-पूर्वी एशिया सन्धि-संघटन (सीटो)
9. अरब लीग
10. अफ्रीका वीक
11. क्षेत्रीय सन्धि संघटन (सिन्धो)
12. अफ्रीका की एकता का संघटन
13. एशियाई विकास बैंक
14. प्रादेशिक संघटनों का सूचीकरण

“यह हमारा बूढ़ विरवास है
 कि सैनिक संघियों की पड़तियां
 शक्ति के मार्ग में बाधा बन कर आती हैं,
 मय घोर शका को बढ़ाती हैं सुरक्षा के तजबीक
 नहीं ले जाती बित उद्देश्य के लिये उनकी रचना हुई
 है और वास्तव में शस्त्रीकरण की बीड़ को सहायता देती हैं।”
 —बवाहरलाल मेहता

‘अविध्य के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक-संबंध के वास्तविक
 सबसे प्राथमिक राज्य-संगठन होंगे।’
 —बास्कर तिलक

एक प्राथमिक संगठन या संघि
 ऐसे प्रभुता सम्पन्न राज्यों का स्वेच्छिक
 समुदाय है जो एक ही क्षेत्र के भीतर हो या
 जिनका उस क्षेत्र में ऐसे समान उद्देश्यों के
 लिये सम्मिलन। हित हो जिनका प्रयोजन उस
 क्षेत्र के सम्बन्ध में प्राथमिक कार्यवाही न हो।”
 —डा० ई० एन० बाल क्लेप्पेनस

प्रादेशिक संगठन और समझौते

प्रादेशिक संगठनों की महत्ता मानवीय इतिहास में परम्परागत रही है—नपठित सम्मिलित जीवन के लिए शांति और सुरक्षा की स्थापना अनिवार्य है और मनुष्यों ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न आचारों पर अपने संगठन बनाये हैं। सदा से ही राष्ट्र अपने कुछ उद्देश्यों को पाने के लिये विभिन्न प्रकार के संघटन समय-समय पर निर्मित करते रहे हैं। प्रादेशिक व्यवस्थाओं के उदाहरण प्राचीन यूनान से लेकर वर्तमान काल तक के इतिहास में हमें निरन्तर और समय-समय सर्वत्र मिलते हैं।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व राष्ट्रपति बिस्मार्क की यह धारणा थी कि समस्त राष्ट्रों का एक संघटन होना चाहिये और प्रादेशिक संघटनों को कोई स्थान नहीं दिया जाना चाहिये क्योंकि इनके कारण शांति और सुरक्षा की स्थापना नहीं होती बल्कि ये युद्ध की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित ही करते हैं। परन्तु बिस्मार्क को भी बाद में प्रादेशिक संघटनों (Regional Organisations) को माय्यता प्रदान करनी पड़ी और राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र या संधि (Covenant) में इनको स्थान दिया गया। द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्ती काल में इस प्रकार के संघटनों को बड़ी सख्या में निर्मित किया गया। बहुत कुछ इनके कारण राष्ट्र संघ सामूहिक सुरक्षा की स्थापना में असफल हुआ और वह उन राज्यों के विरुद्ध कोई एक कार्यवाही न कर सका बिना ही धाकड़ता का रूप धारण किया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में प्रादेशिक प्रवृत्त—जब द्वितीय महायुद्ध के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा संघटन के मौखिक सिद्धान्तों का निर्माण हो रहा था तो अमेरिकन विदेश सचिव हल (Hall) और राष्ट्रपति ह्यूवेस्ट एक अन्तर्राष्ट्रीय मींग के पक्ष में थे और प्रादेशिक संघटन के विरोधी थे परन्तु अन्ततः प्रादेशिक संघटनों की स्थापना करने में सफल हुए। अखिलांड अमेरिकन एवं पश्चिमी राजनीतिज्ञ तथा सैन्य विचारकों के लिये यह बिन्ता का विषय था कि 'कसी बालन' यूरोप में 'लोह पावर' (Iron Curtain) के पूर्व में उद्भवशीलपूर्वक विचार रहा था और उसका प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ रहा था। पावर और परकिन्स ने लिखा है कि 'यह तो घटकल सगाने की बात थी कि कसी सेनायें कुछ ही दिनों में लम्बाई घबरा महीनों में इज्जतिब बैनक तथा घटनाष्टिक सापर तक पहुच सकती हैं घबरा नहीं परन्तु यह निश्चित था कि 'पूर्व' (अर्थात् पूर्व) की ओर से हवाई धाकड़ण के मार्ग में कोई मौपोजिक घबरा सैनिक बाबायें नहीं थी।'¹⁷⁰

यू कि राजनीतिकों का बहुमत और अधिकांश राज्य यह नहीं चाहते वे कि प्राकमण के समय संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद (Security Council) के ३ स्थायी सदस्यों के हाथ में ही कार्यवाही करने का अधिकार रहे और उन्होंने अपनी मांगी सुरक्षा के नियम प्रादेशिक संगठनों का बनने के विद्यमान का समर्थन किया और इसी बात को सामने रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के २१वें अनुच्छेद में यह उल्लिखित किया गया कि—

“यदि संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी सदस्य पर कोई अस्वस्थ प्राकमण होता है तो वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से धारण करने वाले का अधिकार है वर्तमान चार्टर के अनुसार उम पर उम समय तक कोई रोक नहीं होगी जब तक सुरक्षा परिषद प्रस्तावना जारी करे और सुरक्षा के लिये प्राप ही कोई कार्यवाही न करे। धारण करने के लिये सदस्य का भी कार्यवाही करने उसकी सूचना सुरक्षा परिषद ही सुरक्षा परिषद को देने। पर इस चार्टर के अनुसार इससे सुरक्षा परिषद के अधिकारों और शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।”

इसके साथ ही चार्टर के २१वें अनुच्छेद में प्रादेशिक संगठनों के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख कर दिया गया कि—

इस चार्टर की कोई धारा प्रस्तावना जारी कर सुरक्षा के लिये स्थापित अथवा निर्मित क्षेत्रीय संस्थाओं और व्यवस्थाओं के विषय नहीं है किन्तु ऐसी संस्थाओं के धनुष्य होनी चाहिये। उनकी प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के धनुष्य होनी चाहिये।

“यदि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य ऐसी संस्थाओं के सदस्य हों या उन्होंने ऐसे प्रबन्ध किये हों तो वे स्थायी संस्थाओं के सदस्य हों या शांतिपूर्ण ढंग से सम्झने की कतिपय करेंगे।”

“यदि राष्ट्र अपनी इच्छा प्रकट करे या सुरक्षा परिषद की धारा में कोई संकेत मिले ता स्थायी समझ इन्हीं प्रादेशिक संस्थाओं या प्रबन्धों के द्वारा मूलभूत कार्यें। सुरक्षा परिषद इन प्रकार के प्रयत्न को बढ़ावा देनी।”

चार्टर की धाराओं से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की प्रादेशिक व्यवस्थाओं अथवा एजेंसियों का प्रयोग करने के लिये उल्लिखित किया गया। इतना ही नहीं बल्कि यह धारा में यह भी स्पष्ट कर दिया कि सुरक्षा परिषद को यह अधिकार होगा कि वह चार्टर के प्रादेशिक संगठनों को अपने अंतर्गत कार्यवाही करने का आदेश दे सकती है। प्रादेशिक संगठन सुरक्षा परिषद का आदेश प्राप्त किया बिना किसी प्रकार की कार्यवाही करने का अधिकार नहीं रखते हैं उन्हें यह अधिकार केवल उन्हीं समय प्राप्त होगा जब वे इस प्रकार की कार्यवाही किसी ऐसे राज्य के विषय करें जो द्वितीय महायुद्ध में जन्म राज्य थे। यह अनुच्छेद २१ अधिकार रूप से इस प्रकार है—

जहाँ उचित हावा सूरक्षा परिवर्धन अपने अधिकार में इन प्रादेशिक संस्थाओं या प्रबन्धों से अपनी प्रमत्त कराने की कार्यवाही का काम सेगो लेकिन इन प्रादेशिक संस्थाओं या प्रबन्धों के अधीन प्रमत्त कराने की कार्यवाही तब तक न की जाएगी जब तक सुरक्षा परिवर्धन ऐसा करने का अधिकार न रहे। परन्तु यदि इस अनुच्छेद के पैरा २* में बताये गये किसी शब्द राष्ट्र न लिखाफ अनुच्छेद १०७+ के अनुसार कार्यवाही की जा रही हो तो इस प्रकार का अधिकार पाने की आवश्यकता तब तक न होगी जब तक उस मामले में सम्बन्ध रखने वाली सरकारों की प्रार्थना पर संयुक्त राष्ट्र सभ को उन राष्ट्रों को प्राये कार्यक्रम करने से रोकने का जिम्मेवारी न दे दी जाए।

प्रादेशिक प्रबन्धों की ही गई विभिन्न-व्यवस्थाओं के पूरक के रूप में और संघ को संबंधित सूचनाओं से सदैव अवगत किये रखने कि दृष्टि से चार्टर के अनुच्छेद ३४ में लिखा गया कि- इन प्रादेशिक संस्थाओं और प्रबन्धों के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाये रखने की जो भी कार्यवाही होगी उसकी सूचना सुरक्षा परिवर्धन को हर समय दी जाएगी।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ की चार्टर की उपरोक्त सभी व्यवस्थाएँ यही धोषणा करता है कि प्रादेशिक संगठन विश्व संगठन के उद्देश्यों का परित्याग न करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होंगे परन्तु बिस्व की महाशक्तियों ने इस व्यवस्था की बाड़ में अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों का खेल खेला। परिणामतः गत १०-१२ वर्षों में ऐसे प्रादेशिक संगठनों की बाड़ घा चुकी है जिनसे बिस्व-शांति की समस्या सुलझने के स्थान पर जलज्वर रही है। इन संगठनों और समझौतों ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को उत्पन्न किया है, तथाक को बढ़ाया है संयुक्त राष्ट्र संघ के महत्त्व को घटाया है।

प्रमुख प्रादेशिक संगठन एवं समझौते

इस पृष्ठभूमि के उपरान्त जब हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख प्रादेशिक समझौतों एवं संगठनों का वर्णन करेंगे तो इस प्रकार है—

*अनुच्छेद २३ का पैरा २ शब्द राष्ट्र की व्याख्या करता है। इसमें लिखा गया है कि 'शब्द राष्ट्र वह उस राष्ट्र के लिये लागू होता है जो द्वितीय महायुद्ध में संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाले किसी राष्ट्र का शब्द रहा हो।'

+अनुच्छेद १०७ में लिखा गया है कि 'द्वितीय महायुद्ध में यदि कोई राष्ट्र किसी हस्ताक्षरकर्ता सदस्य का शब्द रहा हो और जिन सरकारों के ऊपर इसके खिलाफ कार्यवाही करने की जिम्मेवारी सीपी गई हो अगर उन्होंने उसके खिलाफ कोई कार्यवाही की हो या करने के अधिकारी हों तो वर्तमान चार्टर के अनुसार उस कार्यवाही को किसी प्रकार नहीं रोका जा सकेगा और न रद्द ही किया जा सकेगा।'

१. अमेरिकन राज्यों का संघटन
[Organisation of American States-OAS]
२. दडक संधि
[Dunkirk Treaty]
३. ब्रसेल्स संधि संघटन
[Brussels Treaty Organisation]
४. नाटो
[The North Atlantic Treaty Organisation-NATO]
५. अण्डुस की संधि
[Andus Treaty]
६. वारसा पॅक्ट की पूर्वी युरोपियन संधि संघटन
[Warsa Pact or Organisation of Eastern European Countries]
७. पश्चिमी यूरोप की एकीकरण
[Integration of Western Countries]
 - (i) यूरोपियन आर्थिक सहयोग संघटन
[The Organisation for European Economic Co-operation-OEEC]
 - (ii) यूरोपियन भुक्तान या सहायनी
[European Payment Union-EPU]
 - (iii) यूरोप की परिषद
[Council of Europe]
 - (iv) यूरोपियन कोयला इस्पात समुदाय
[European Coal and Steel Community-ESSC]
 - (v) यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय
[European Defence Community-EDC]
 - (vi) यूरोपियन आणविक शक्ति समुदाय
[European Atomic Energy Community-EUROTOM]
 - (vii) यूरोपियन सामान्य बाड़ी या साम्रा बाजार
[The European Common Market-ECM]
 - (viii) यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ
[European Free Trade Association-EFTA]
 - (ix) पश्चिमी यूरोपियन संघ
[Western European Union-WEU]
८. दक्षिण पूर्वी एशिया संधि संघटन
[South East Asian Treaty Organisation-SEATO]
९. अरब लीग
[Arab League]
१०. बग़दाद पॅक्ट
[Bagdad Pact]

- ११ केन्द्रीय संधि तथा संगठन
[Central Treaty Organisation—CENTO]
- १२ अफ्रीका की एकता का संघन
[Organization of African Unity]
- १३ एशिया विकास बैंक
[Asia Development Bank]

(१) अमेरिकन राज्यों का संगठन

(Organisation of American States—OAS)

उद्भव विकास एवं उद्देश्य—असिस अमेरिकनवाद (Pan Americanism) वर्तमान प्रादेशिक आंदोलनों में सर्वाधिक पुराना है। इसका प्रारम्भ १८८१ के वाशिंगटन अन्तर अमेरिकन सम्मेलन (Inter American Congress) से माना जाता है। इसका उद्देश्य यह था कि अमेरिकन महाद्वीप के दो मी राज्य हों उनके बीच राजनीतिक और आर्थिक सहयोग की भावनाओं का विकास हो। यद्यपि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न समय तथा स्थानों पर इन राज्यों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन नियमित रूप से होते रहे किन्तु प्रथम महायुद्ध तक आंदोलन को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। किन्तु जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसका उपयोग अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये करना चाहा जिससे सेंटिन अमेरिका के देश परभावित हो उठे। परन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद चीरे-धीरे संयुक्त राज्य अमेरिका और सेंटिन अमेरिका के देशों के सम्बन्धों में सुधार हुए तथा अखिल अमेरिकनवादी आन्दोलन एक सहकारिता आन्दोलन का रूप धारण करने लगा।

अमेरिकन राज्यों के संगठन के सर्वाधिक ठोस प्रयास द्वितीय महायुद्ध में १९४१ के प्रारम्भ में मैक्सिको शहर में हुए। इस नगर में युद्ध एवं शांति की समस्याओं पर विचारण एक अन्तर अमेरिकन सम्मेलन हुआ जिसने निम्नलिखित उपाय प्रकटीकृत किये—

(i) युद्ध के समय के लिये एक सुरक्षात्मक संधि की गई जिसका प्रयोग केवल आतंक के बाहर के घातकों के विरुद्ध ही नहीं बल्कि आन्तरिक घातकों के लिये भी किया गया। इसके साथ ही इस बात की व्यवस्था की योजना की गई कि युद्ध-समाप्ति के बाद इसी प्रकार की एक स्थायी संधि करने हेतु विचार-विमर्श किया जाए। यह सब बाद में रियो-डी-जनीरो में १९४७ में हुआ।

(ii) युद्ध की समाप्ति पर एक स्थायी संविधान के अन्तर्गत अन्तर अमेरिकन प्रशासकीय को मार्यता दी जाए, उसका एकीकरण किया जाए और उसकी सम्पूर्णता ही। यह व्यवस्था १९४८ में बोगोटा (Bogota) में की गई।

(iii) एक ऐसा समझौता हो जो वर्तमान अन्तर अमेरिकन शांति संधियों के लिये इसी प्रकार की व्यवस्था करे।

(iv) पॅनेलार्इला को घन्तरीण्ड्रीय सम्मेलन सवस्यता पुनः प्रहूय करन का उद्ये इय सम्मेलन से पृथक कर दिया गया था।

१९४७ को रियो-डी-जेनेरो के घन्तरीण्ड्रीय-अमेरिकन सम्मेलन के बाद १९ घन्तरीण्ड्रीय (Petrol-Poliz) नामक स्थान पर एक अतिम अमेरिकन सम्मेलन हुआ जो अमेरिकन गणराज्यों न 'पारस्परिक सम्बन्धों की पालन-अमेरिकन संधि' (Inter American Treaty of Reciprocal Societies) को कि 'रियो की संधि' (Rio Treaty) के नाम से भी प्रसिद्ध है। को सर्वसम्मति से स्वीकार किया। इस संधि के तीसरे अनुच्छेद में यह निर्दिष्ट किया गया कि—

“हस्ताक्षरकर्ता देश यह समझते हैं कि यदि किसी भी अमेरिकन राज्य पर सत्त्व शासन होता है तो उसे सभी अमेरिकन राज्यों के विरुद्ध शासनक समझा जायगा और उक्त शासनक द्वारा स्वीकृत शासनक और सामूहिक शासनक के अधिकार का प्रयोग करते हुए शासनक का सामना करने में सहायता करने का बन्धन होता है।”

स्पष्ट है कि इसका अर्थ पश्चिमी योनाटों में सैनिक शासनक होने या अतिम मग का सब होन की दिशा में सामूहिक कार्यवाही की व्यवस्था करता है। इसमें उतरी पूर्व से दक्षिणी पूर्व तक अमेरिकन महाद्वीप और चीन-सैड के बाटों और एक पुराना क्षेत्र निर्दिष्ट किया गया है। इसके नीचे से या इस पर बाहर से होने वाला कोई भी शासनक सब राज्यों पर शासनक समझ बायपास प्रदान करेगा।

सम्मेलन में पारिष की गई रियो संधि में २६ अनुच्छेदों में विनये प्रतिस्था की पद्धति का सामान्य बांधा बताया गया था। अनुच्छेद २ इस संधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण किन्दु था। संधि के अतिरिक्त 'पेट्रो पारिष सम्मेलन में कुछ अन्य प्रस्ताव बायपास की निर्धारित किन्दे थे।

सन् १९४८ में बोगोटा (Bogota) में की कोलोम्बिया में अमेरिकन राज्यों का एका घन्तरीण्ड्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 'अमेरिकन राज्यों का संयुक्त' (OAS) बताया गया जो संयुक्त राष्ट्र संघ के बाटों के अनुद्धत था। इसी सम्मेलन में इस संयुक्त की कमेटी का प्रभावी धारि निर्मित की गई। इसके अतिरिक्त अथवा बाटों में स्पष्ट रूप से समस्त अनिमित्त राज्यों के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख किया गया और इसके छात्र ही विचारों का बांतिपूर्ण उपानों द्वारा मुनश्चना, सामूहिक सुरक्षा बांधिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक सहयोग करता धारि बाटों का भी उल्लेख किया गया।

संगठन के ध्येय—उपरोक्त कारणों से स्पष्ट है कि अमेरिकन राज्यों का संगठन तीन क्षेत्र-युग्मों पर आधारित है। ये क्षेत्र-युग्म हैं—

- १ संगठन का चार्टर
- २ रियो की संधि एवं
- ३ बोगटा समझौता।

संगठन के चार्टर में एक व्यापक प्रादेशिक संगठन की व्यवस्था की गई है जिसके निम्नलिखित प्रधान ध्येय हैं—

(i) अन्तर अमेरिकन सम्मेलन—यह संगठन की सर्वोच्च संस्था है। इसमें संगठन के २१ सदस्य राज्यों (अर्जेन्टाइना बोलीविया ब्राजील चिली कोलम्बिया कोस्टारिका इक्वेडोर एससास्वेडर प्वाटेमासा हैटी होगंडरस मैक्सिको निकारगुआ, पेरू पनामा परागुये संयुक्त राज्य अमेरिका यूराग्वे बनेजुएसा, डोमिनिकन रिपब्लिक तथा क्यूबा) में से प्रत्येक का एक प्रतिनिधि होता है। यह सम्मेलन संगठन के धन्य ध्येयों के स्वरूप तथा कार्यों और संगठनों की नीति का निर्धारण करती है। इसका अधिवेशन प्रत्येक १ वर्ष के पश्चात् होता है।

(ii) विदेश मंत्रियों की बैठक (Meeting of Foreign Ministers)—यह बैठक प्राथमिक विषयों पर विचार करती है। सभ्यता प्रक्रमण की दृष्टि में इसे आमन्त्रित किया जाता है और इसकी सहायता के लिये एक परामर्शदात्री प्रतिरक्षा समिति भी होती है।

(iii) परिषद (Council)—संगठन की परिषद का निर्माण प्रत्येक सदस्य राज्य के एक प्रतिनिधि से होता है। इसका ध्येय यह है कि परिषद में प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि होता है। इसका प्रमुख कार्यालय संयुक्त अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में है। परिषद का प्रधान कार्य शांति सुरक्षा के कार्यों की देखभाल करना तथा धन्य ध्येयों के कार्यों को भी देखना है। यह सभा स्थायी रूप से कार्य करती है।

(iv) पान अमेरिकन यूनियन (Pan American Union)—यह इसका केन्द्रीय एवं स्थायी संगठन और इसका सचिवालय है।

(v) अमेरिकन राज्यों के संगठन में उपरोक्त के अतिरिक्त और भी कुछ विशेष ध्येय हैं जिनमें से प्रमुख यह हैं—परामर्शदात्री सुरक्षा समिति बिलिप्ट सम्मेलन तथा समितियाँ अन्तर-अमेरिकन प्रायिक और सामाजिक परिषद अन्तर-अमेरिकन विधि वेत्ताओं की परिषद तथा अन्तर अमेरिकन सांस्कृतिक परिषद।

अमेरिकन राज्यों के संगठन (OAS) को संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत प्रादेशिक संगठन घोषित किया गया है। कनाडा सहित सभी अमेरिकन राज्य इसके सदस्य हो सकते हैं। इस संगठन के किसी भी सदस्य को निकामा नहीं जा सकता किन्तु दो वर्ष का नोटिस दे कर कोई भी राज्य इससे पृथक हो सकता है।

पामर और परकिंस (Palmer and Perkins)—के अनुसार अमेरिकन राज्यों का संगठन "जब अपने सर्वाधिक उपरती रूप में अन्तर्राष्ट्रीय

प्रादेशिकतावाद है। * इस संगठन के सदस्य राज्यों की सम्मिलित जनसंख्या लगभग १८ करोड़ है और इसके सदस्य न केवल आक्रमण का सामूहिक प्रतिरोध करने के लिये बूढ़ प्रतिज्ञ हैं बल्कि धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति तथा विचारों के शक्तिपूर्ण समाधान के लिये भी परस्पर सहयोग करने के प्रतिसाया हैं।

(२) डंकर्क संधि (Dunkirk Treaty)

यह संधि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के मध्य ४ मार्च १९४० को २० वर्ष के लिये की गई। इसका प्रयोजन सम्भावित वर्तमान आक्रमण के विरुद्ध पारस्परिक सैनिक सहायता है। संधि की धारा २ में यह निर्दिष्ट है कि—

“यदि दोनों में से किसी भी एक पक्ष को उस पक्ष पर जर्मनी द्वारा पूर्ण आक्रमण किया जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के १९३३ बयुन्डोव के प्राथमिक अंतर्गत पक्षवा संधि की प्रथम धारा के अंतर्गत जर्मनी के विरुद्ध सहमतिपूर्ण कार्यवाही के कलत्स्वक्य पक्षवा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद द्वारा जर्मनी के विरुद्ध बल प्रयोग का आदेश दिये जाने पर, जर्मनी से युद्ध-रत होना पड़े तो ऐसी सुरत में दूसरा पक्ष इस प्रकार युद्ध में फसे हुए पक्ष को पक्षा-सम्बन्ध सभी प्रकार की सैन्य एवम् अन्य सहायता प्रदान करेगा।

इसका स्पष्ट आशय है कि ब्रिटेन तथा फ्रांस ने यह निश्चय किया कि (क) जर्मनी के आक्रमण करने पर (ख) जर्मनी द्वारा आक्रमण को प्रोत्साहित करने की नीति स्वीकार करने पर, एवम् (ग) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जर्मनी के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने पर दोनों देश एक दूसरे को सैनिक तथा अन्य प्रकार की सहायता प्रदान करेंगे। इस संधि के द्वारा दोनों ही देशों ने एक दूसरे को यह भी आश्वासन दिया कि वे दोनों एक दूसरे को निरन्तर आधिक सहयोग तथा सहायता प्रदान करेंगे।

(३) ब्रुसेल्स की संधि (Brussels Treaty)

१७ मार्च १९४८ को ग्रेट ब्रिटेन बेल्जियम फ्रांस लक्जमबर्ग और हासैन्ड ने धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक सहयोग एवम् सामूहिक सुरक्षा के उद्देश्य से २० वर्ष के लिये यह संधि की। यह संधि बेल्जियम के ब्रुसेल्स नगर में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि यदि अल्पोक्त राष्ट्रों में से किसी पर भी आक्रमण होगा तो सदस्य देश संयुक्त राष्ट्र संघ के आदेशों की धारा २१ के अनुसार उसकी सैनिक सहायता करेंगे। इस संधि के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं—मूलभूत अधिकारों में बिनाह की पूर्णता तथा संघ के आदेशों में उल्लिखित प्रावधानों की पूर्णता जन-संघ एवम् स्वतंत्रता का स्वायत्त, धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों की स्थापना यूरोपियन धार्मिक पुनर्गठन में सहयोग अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति एवम् सुरक्षा में सहयोग पुनर्गठन के विरुद्ध मोर्चा बाध।

ब्रुसेल्स की इस संधि में १० धारारों हैं—

पहली धारा के अनुसार सब राष्ट्र मिल कर इस प्रकार का प्रायिक संगठन बनायेंगे कि जिससे प्रायिक संकट दूर हो और उत्पादन तथा विनिमय में समानता प्राप्त हो।

दूसरी धारा के अनुसार सब मिल कर जीवन स्तर को ऊँचा उठाते हुए सामाजिक क्षेत्र में विकास करेंगे।

तीसरी धारा के अनुसार सब मिल कर सांस्कृतिक उन्नति करेंगे और एक दूसरे के सिद्धान्तों का समझेंगे।

चौथी धारा के अनुसार यह निर्दिष्ट किया गया कि "यदि हस्ताक्षरकर्ता में से किसी एक पक्ष पर भी यूरोप का सशस्त्र आक्रमण हो तो वेप समी हस्ताक्षरकर्ता देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की ११वीं धारा के अनुसार आक्रमण पीड़ित देश का यथा शक्ति सभी सैनिक सहायता एवम् अन्य सहयोग देंगे।

पाँचवीं धारा के अनुसार चौथी धारा के अन्तर्गत किये गये प्रयत्नों की सुरक्षा समिति (संयुक्त राष्ट्र संघ) को रिपोर्ट की जाएगी।

छठी धारा के अनुसार सब सदस्य राष्ट्र यह घोषणा करेंगे कि यह संधि किसी अन्य राष्ट्र के विरुद्ध नहीं है और साथ ही वे किसी भी राष्ट्र से इन राष्ट्रों के विरुद्ध कोई संधि नहीं करेंगे।

सातवीं धारा के अनुसार यह निर्णय किया गया कि सभी समस्याओं के विचारार्थ सब हस्ताक्षरकर्ता देश मिल कर परामर्शदात्री समिति का निर्माण करेंगे जिसे प्राबल्यकृतानुसार व इच्छानुसार बुलाया जा सकेगा।

आठवीं धारा के अनुसार सब अपने विवादों का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से करने और स्थायी न्य यामय के द्वारा उन्हें निपटारा जाएगा।

नववीं धारा के अनुसार यह तय हुआ कि हस्ताक्षरकर्ता देश मिल कर अन्य देश को इस संधि में शामिल कर सकते हैं बशर्ते कि संधि की सब शर्तें उस देश के हाथ मान ली जाएँ। ऐसे देश को वैशिष्ट्यमय सरकार को संधि पत्र देना होगा।

दसवीं धारा के अनुसार यह निर्णय किया गया कि इस संधि में संशोधन किया जा सकता है।

ब्रुसेल्स संधि (Brussels Treaty Organisation-BRUTO) नामक संस्था को जन्म दिया। इस ब्रुसेल्स संधि संगठन का सर्वोच्च पक्ष एक परामर्शदात्री परिषद (Consultative Council) थी जो पाँचों सदस्य राष्ट्रों के विदेश मंत्रियों से मिल कर बनी थी। इसके मुख्या संघटन के दो पक्ष थे (१) हायर डायरेक्शन (Higher Direction) तथा (२) कमाण्ड ऑर्गनाइजेशन (Command Organisation)। प्रायिक कार्यों के संचालन के लिये एक वित्तीय तथा अर्थ समिति (Financial & Economic Committee) थी। इस प्रकार सामाजिक एवम् सांस्कृतिक कार्यों के लिये भी अनेक समितियाँ थीं।

उल्लेखनीय है कि १९५४ में वेरिस के समझौते से पश्चिमी जर्मनी और इटली भी ब्रुसेल्स संधि संगठन में सम्मिलित हो गये हैं और अब इस

संघटन का नया नाम पश्चिमी यूरोपियन संघ (Western European Union) रखा गया है।

(४) नाटो-उत्तरी अटलाण्टिक संधि संगठन (North Atlantic Treaty Organisation-NATO)

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त विद्येय समझौतों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझौता-नाटो (NATO) अर्थात् 'उत्तरी अटलाण्टिक संधि संगठन' है। यह संधि प्रमुखतः दो शक्तियों के वारण की गई

(१) सोवियत साम्राज्यवाद के भय से तथा

(२) सोवियत आक्रमण के समय संयुक्त राष्ट्र संघ से पर्याप्त सहायता प्राप्त न होने की सम्भावना से।

ब्रसेल्स संधि (Brussels Treaty) भी इसी उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिये की गई थी। अस्तुतः साम्यवादी विरोधी दमके नेता अमेरिका एवम् विभिन्न पश्चिमी यूरोपियन राष्ट्रों का यह विश्वास हो सका था कि वर्तमान व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे का सामना करने के लिये पर्याप्त नहीं है। यह अनुभव किया गया कि सुरक्षा और प्रगति को अलग अलग नहीं रखा जा सकता। यदि सुरक्षा नहीं तो तरक्की असम्भव है। इस विचार का उदय एकाएक ही नहीं हुआ था अपितु वास्टर सिपमैक के अनुसार मासिक अटलाण्टिक समुदाय कायम करने के बाद १० वर्ष से भी अधिक काल से सोची जा रही थी।

इस संगठन की रचना के मार्ग को प्रकाश करने के लिये और संयुक्त राष्ट्र संघ व वास्टर के प्रादेशिक प्रभाव की बाराधो से अकेले पाकर अमेरिकन सीमेट ने ११ जून १९४८ को आयर ईश्टनबर्ग द्वारा प्रेषित एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि नाटो के स्थापित करने के लिये अमेरिका को अन्य कार्यों के असावा 'सर्वोच्च प्राथमिकता' द्वारा स्वयं को इन क्षेत्रों तथा उसी प्रकार की अन्य सामूहिक व्यवस्थाओं से भी सम्बद्ध करना चाहिये जो स्वतंत्र तथा प्रभावशाली सामूहिक स्वयं सेवा एवम् पारस्परिक सहायता पर आधारित हैं और अमेरिकन सुरक्षा पर अक्षणा प्रभाव डाल सकती हैं।" प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि अमेरिका को यह स्पष्ट बोधित कर देना चाहिये कि यदि उसको सुरक्षा को अंतरा पड़वाना वांछनीय भी सम्भव था तो वह वास्टर के ५१वें अनुच्छेद के अन्तर्गत स्थित एवम् सामूहिक धारणा के अधिकार का प्रयोग करेगा।

अपने उपरान्त बहनों के द्वारा अमेरिकन सरकार ने अस्तुतः पश्चिमी यूरोप की प्रतिरक्षा पद्धति को रियो संधि (Rio Treaty) की उपरान्त के अनुसार संगठित करने का बीड़ा उठा लिया। १८ मार्च १९४८ को उत्तर अटलाण्टिक संधि का मूल रूप (Text) प्रकाशित किया गया और ४ अप्रैल १९४८ को वाशिंगटन में-अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रान्स, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, आइसलैंड, नीदरलैंड्स, लिक्टेनस्टीन (डार्निड) नामों और पुर्तगाल-इन १० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। २४ अगस्त १९४९ को सर्वप्रथम सम्बन्धित राज्यों द्वारा इस संगठन का अनुसमर्थन कर देने

पर इस समझ की विविध स्थापना की गई। फरवरी, १९२२ का सम्मेलन में हुए सम्मेलन के बखतर पर यूनायन और टर्की की संघि संगठन में शामिल कर सिय गये। २ मई, १९२२ को पश्चिमी जर्मनी को भी संघि संगठन का सदस्य बना लिया गया। इस तरह संगठन में कुल १२ सदस्य हो गये।

संघि संगठन के उद्देश्य एवं उसकी व्यवस्था में नाटो बखबा उत्तरी घटकाटिक संघि संगठन के साद्विमान या चार्टर में अधिक विस्तृत नहीं है। इसमें केवल १४ अनुच्छेद हैं। चार्टर की प्रस्तावना तथा उसके कुछ प्रमुख अनुच्छेद इस प्रकार हैं—

प्रस्तावना—‘इस संघि से सम्बन्धित दस संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को अपने विश्वास तथा सब सोचों और सभी सरकारों के साथ शांतिपूर्ण रहने की इच्छा को दुहराते हैं।

वे सोच प्रजातन्त्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं कानून के सिद्धान्तों पर आधारित अपने लोगों की स्वतन्त्रता सामान्य दायभाग एवं सम्पत्ता की सुरक्षा के लिये कृतप्रतिज्ञ हैं।

वे उत्तरी घटकाटिक क्षेत्र में स्थायित्व एवं कल्याण की अभिवृद्धि करने के चाकांशी हैं।

उन्होंने सामूहिक सुरक्षा तथा शांति एवं सुरक्षा को अत्युच्च रखने के लिये अपनी बेच्छाओं को सुवर्धित करने का बृद्ध निश्चय कर लिया है।’

अनुच्छेद १—‘संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निर्धारित नीति के अनुसार इस संघि से सम्बन्धित दस किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ को जिसमें वे फंड जायेंगे शांति पूर्ण उपायों से इस प्रकार निपटाने का बचन देते हैं कि जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा तथा क्यम को किसी भी प्रकार का खतरा न पहुँचे। माय ही वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी ऐसे तरीके से जो संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के विरुद्ध हो शक्ति की बमकी बखबा शक्ति के प्रयोग से दूर रहने का भी बचन देते हैं।

अनुच्छेद २—‘इस संघि के उद्देश्यों को और भी अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से प्राप्त करने के लिये दस धन्य-अमन्य तथा मिल कर निरन्तर एवं प्रभावपूर्ण आत्मनिर्भरता तथा पारस्परिक सहायता से सदस्य आक्रमण का विरोध करने के लिये व्यक्तिगत एवं सामूहिक योग्यता का बिकास करेंगे।’

अनुच्छेद ४—‘जब कभी उनमें से किसी एक की भी राम में किसी भी दस की प्राबलिक एकता राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के लिये भय पैदा हो गया हो तो दस आपस में बिचार-बिनिमय करेंगे।’

अनुच्छेद ११—‘जब इस बात में एकमत है कि यूरोप अथवा उत्तरी अमेरिका में उनमें से किसी एक अथवा अधिक के विरुद्ध आक्रमण सभी के विरुद्ध आक्रमण समझा जाएगा। इसीलिये वे इस बात पर सहमत होते हैं कि यदि किसी प्रकार सदस्य आक्रमण होता है तो उनमें से प्रत्येक संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के ११वें अनुच्छेद द्वारा प्ररत व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार के अनुसार कार्य करते हुए, शीघ्र ही व्यक्तिगत रूप में

अपनी ने उसकी निबंशता को स्पष्ट कर दिया। तब से नाटो की सभा को प्राथमिक अन्त-जसों से सुसज्जित किये जाने के प्रयत्न जारी हैं।

नाटो के प्रभाव — नाटो अपना उत्तरी घटमाटिक संधि संगठन के वास्तव इतने स्पष्ट हैं कि आक्रमण की दशा में प्रत्येक सदस्य को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता है।" तथापि इस संधि के तीन मनोवैज्ञानिक प्रभाव हैं—

(i) यह सोवियत संघ को एक अतावनी है कि यदि उसने संधि पर स्तावरकर्ता किसी देश पर आक्रमण करने का साहस किया तो संयुक्त राज्य अमेरिका तुरन्त ही आक्रमण पीडित देश की सहायता करेगा। ११ सितम्बर १९४९ को अमेरिकन विदेश मंत्री जेम्स डोस्टर डमेघ ने १२ राष्ट्रों वाले इस संगठन में भाषण करते हुए कहा था—

विश्व महान संकट में स गुजर रहा है। इस संगठन को अपनी पूरी सैनिक शक्ति बनाये रखनी चाहिये और इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं रहने देना चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर इस सैनिक शक्ति का उपयोग भी किया जा सकता है और तब ही इस बात का पूरा विश्वास होगा कि साम्र सेना के जो टैक बुडापेस्ट में बंद धाये हैं वे पश्चिमी यूरोप में आगे नहीं बढ़ेंगे।

(ii) इस संगठन का दूसरा प्रभाव यूरोपियन देशों को एक ऐसा सुरक्षा आश्रय प्रदान करना है जिससे वे अपने आर्थिक तथा सैनिक विकास के कार्गवर्कों को निर्मम होकर पूरा कर सकें।

(iii) इसका तीसरा प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका को किसी भी साम्रबाही युद्ध के लिये सर्वत्र सज्जद रकना है। इस संगठन की व्यवस्था से यह स्पष्ट हो जाता है कि सोवियत आक्रमण की दशा में अमेरिका किसी भी भावी युद्ध में तुरन्त ही फुल पडेगा पिछले दो महायुद्धों की शक्ति युद्ध में सम्मिलित होय में में देरी न करेगा।

नाटो के पक्ष विपक्ष में प्रतिबिधा घांस का पूर्वजसों एक मूल्यांकन— नाटो प्रतिजसोक्तियुग प्रमंसा और दायम्भ कट्टु धामोचना दोनों ही का पात्र रहा है। नाटो के सम्बन्ध में विभिन्न राजनीतिज्ञों ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें से कुछ प्रमुख जो यहाँ उद्धृत करना उचयोमी रहेगा—

'घटमाटिक संधि— स्वतन्त्रता और शक्ति को बनाय रखने की एक प्रत्याभूति (Guarantee) रही है और बनी हुई है।"

—जे० मोरर फॉय के प्रधानमंत्री (४ अप्रैल १९५६)
'साम्रिक सुरक्षा के लिये नाटो एक संगठन के रूप में अत्यधिक महत्व की वस्तु है। ... विश्व समस्याओं के एक सामग्र्य राजनीतिक एवं आर्थिक इतिकोम को सुसज्जित करने के एक सामन के रूप में यह महत्वपूख है।

—सिस्टर पियर्सन कनाडा के विदेश सचिव (२४ अप्रैल १९५६)

आक्रमणकारी से रक्षा करने के लिये यह संगठन कुछ कर सकता है धन्यभा नहीं।

१ इस संविधान के बारे में यह भी कहा गया है कि अमेरिका में साम्यवाद का अल्पविक विरोध है और यह उसकी स्वतंत्रता का ही विरोध है।

७ फ्रांस का यह दृष्टिकोण भी रहा है कि इसके द्वारा जर्मनी अपनी सैनिक शक्ति का विकास करेगा और शीघ्र ही अस्वीकरण की शक्ति में माय लेने लगेगा। फ्रांस का यह दृष्टिकोण किस प्रकार बना—इसका उत्तर देना कठिन है।

८ इस संघ को प्रादेशिक संगठनों में स्थान नहीं दिया जाना चाहिये क्योंकि इसके अन्तर्गत एक और तो अमेरिका का संयुक्त राज्य है और दूसरी और टर्की तथा यूनाइटेड किंगडम एक प्रदेश में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

वास्तव में यह प्रमुख रूप से स्वतंत्रता के विरोध रखा गया एक सैनिक संगठन है। स्वतंत्रता की और से इसकी अल्पविक आलोचना की गई है। उसने इसके विरोध में अनेक विरोध-ग्रह भेजे हैं और संयुक्त राष्ट्र सभ में भी इसके विरोध का उद्घोष किया है। हालांकि इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस संघ के कारण स्वतंत्रता के देशों के बीच सम्बन्धों की अत्यन्त वृद्धि में ही महत्त्व मिली है और इसीलिए अनेक सम्बन्ध निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं।

फ्रांस का परिवर्तित स्वतंत्रता—नाटो प्रथम उत्तरी अटलांटिक संघ संगठन के सम्मेलनों में मजबूत मता से रहे हैं। वैसे कि कहा जा चुका है अक्टूबर १९४६ में स्वेडन अक्टूबर के सम्बन्ध में और बाद में १९४७ के हंगरी की हत्याकांड के समय में इस संघ संगठन के सदस्य देशों में तांत्रिक मतभेद उठ खड़े हुए थे किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के महान प्रभाव के फलस्वरूप किसी प्रकार के मतभेद काट लिए। इस संगठन के प्रति अमेरिका का दृष्टिकोण प्रथम पक्ष पर देशों की अपेक्षा कुछ घटता है। फ्रांस के राष्ट्रपति विमाल १ मार्च १९६६ में यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि उनका देश १ जुलाई १९६६ से नाटो का सदस्य नहीं रहेगा। श्री विमाल ने यह भी मांग की कि १ अप्रैल १९६७ तक संयुक्त राज्य अमेरिका फ्रांस के नाटो सदस्यों को जामी कर दे तथा सुप्राम हेइलबार्टर्स तथा अन्य यूरोप कमान का हेइलबार्टर्स कार्यालय भी जामी कर दे। विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी फ्रांस अपनी मांग से टसा नहीं और अमेरिका को अपने सैनिक अड्डे फ्रांस के प्रदेश से हटाने पड़े। हालांकि फ्रांस की महत्त्वता नाटो संगठन में अभी तक किसी भी प्रकार नहीं हुई है। तथापि यह स्पष्ट है कि ७ अप्रैल १९६६ को नाटो सम्मेलन की २ वर्ष की निर्धारित अवधि समाप्त हो रही है।

९ फ्रांस द्वारा फ्रांस की मांग को धनुष १ जुलाई १९६६ को फ्रांसीसी अधिकारी और कर्मचारी नाटो संयुक्त से गीते गए अनेक अपने जामों पर नहीं पड़े और मांग ही फ्रांसीसी अड्डे से अमेरिकन विमानों का

हटाना मुक्त हो गया तो मंगठन के लिये १४ सदस्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उन्होंने बेल्ट्रियम में एक सम्मेलन करके यह निश्चय किया कि नाटो संस्था पूर्ववत् बनी रहनी चाहिये व उसका इन्फ्रान्टर बेल्ट्रियम में स्थापित कर दिया जाना चाहिये। उन्होंने इस संमठन की उपयोगिता बताते हुए कहा कि—

(क) हम सीधे के लिये होने से पश्चिमी जर्मनी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में स्वस्थ हो जाएगा जिसके परिणामस्वरूप मध्ययुग में प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के समान ही मजदूर स्थिति पैदा हो सकती है।

(ख) हम सीधे के अभाव में पश्चिमी राष्ट्रों का शक्ति संतुलन जाएगा जिससे लये संघर्ष का भय उठना स्वाभाविक है।

(ग) पूर्व घोर पश्चिम की सद्भावना भी बहुत कुछ नाटो की सैनिक शक्ति के कारण ही उत्पन्न हुई है। लेकिन इसका न रहने पर यह सम्भव बना मष्ट हो जाएगी।

(घ) नाटो साम्यवाद के विस्तार का रोकने में बड़ा सहायक हुआ है। यदि वह संमठन न होता तो अब तक साम्यवाद यूरोप में ही नहीं बल्कि एशिया अफ्रीका तथा अमेरिका के भी कई देशों में फैल जाता।

फ्रांस का नाटो मंगठन के निकट आयेप यह है कि (i) अमेरिका नाटो के लिये अपना योगदान देगी जो उसे मान्य नहीं हो सकता एवं (ii) सोवियत संघ पर अत्यन्त राष्ट्रों के होने निकट था गया है कि अब नाटो विधि बनाये रखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।

किसके परिणामित रूप से अनेक राजनीतिज्ञ यह भी अनुमान लगाते हैं कि फ्रांस जो महायुद्ध के बाद से ही व्यावहारिक रूप से पश्चिमी देशों द्वारा उपेक्षा का पात्र रहा है अब अतिजाती बनते हुए पुनः यूरोप का नेता बनना चाहता है। फ्रांस का यह विचार है कि बिटेम को यूरोप से पृथक् समझा जाए क्योंकि यह यूरोपियन देशों की उपेक्षा अमेरिका के अधिक निकट है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि फ्रांस अमेरिका के राजनीतिज्ञ मंत्रालय का प्रतिद्वंद्वी बन गया है। डिमास का विद्यतमान के प्रश्न पर उत्तरी विद्यतमान का समर्थन और चीन के साथ मैत्री का सब अमाना फ्रांस की इसी नीति का अंशक है।

कुछ भी हो हममें संदेह नहीं कि नाटो की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। प्रथम इसने लयनप सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप को एक सुरक्षा संमठन के अन्तर्गत ला दिया है। द्वितीय हमने अपने सदस्यों के बीच अत्यन्त शक्तिशाली सहयोग की स्थापना की है। तिसरथा सत्कार के इतिहास में पहली बार पश्चिमी यूरोप की अखिलता अपना कुल नेताओं को स्थायी रूप से अति राष्ट्रीय सैनिक संमठन की अखिलता में रखने का विचार हुई है। तृतीय ची नाटो (Crouley) का मत है कि "सबसे बड़ा राज्य अमेरिका का नाटो में सम्मिलित होना स्पष्ट अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक बड़ी शक्ति का सूचक है। इसके द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी परम्परागत बुद्धिमान नीति को सिलाजिने के ही है। राष्ट्रपति फ्रांज़िस हार्वर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि नाटो "विश्व

की खातिर एवं सुरक्षा के प्रति अभिहितन सोचियत साम्यवादी बमकी के बिबद्ध अमेरिकन सुरक्षा-मैत्रियों का एक आभारभूत एवं अपरिहार्य तत्व है।”

(६) अनुसुप्त की संधि (ANZUS)

सन् १९४६ में अमेरिका इस पक्ष में नहीं था कि प्रचलित महासागरीय क्षेत्र की सुरक्षा के लिये नाटो के समान किसी अन्य संगठन की स्थापना की जाए। उस समय अमेरिकन राजनीतिज्ञों की दृष्टि में यूरोप एवं नाटो का अधिक महत्व था और इसीलिये अमेरिका ने अपना सम्पूर्ण ध्यान इसी तरफ केन्द्रित कर रखा था। १५ मई, १९४६ को तत्कालीन अमेरिकन विदेश मंत्री अमेरिकन विदेश सचिव एथेसन (Acheson) ने भी कहा था कि जब तक एशिया के आन्तरिक झगड़ों का निपटारा नहीं हो पाता तब तक प्रचलित समझौता अपना अस्तित्व प्रहण नहीं कर सकता।

अमेरिका की उदासीनता के बावजूद भी आस्ट्रेलिया ने इस प्रकार के समझौते पर अत्यधिक बल दिया। इसी मध्य अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तेजी से बदलती गयीं। १९५० में एशिया की बढतायीं ने एक अन्य मोड़ लिया। जब अमेरिका का अपना पूर्वबर्ती विचार बदल गया और वह प्रचलित क्षेत्र की महत्ता तथा सुरक्षा की एक आवश्यकता अनुभव करने लगा। १५ अगस्त १९५१ को तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड के साथ एक त्रि-देशीय रक्षा समझौता करने का सुझाव दिया। जून १९५१ में इस संधि के प्रारूप पर समझौता हो गया और तब जुलाई १९५१ में इसे प्रकाशित कर दिया गया और १ सितम्बर १९५१ को सान फ्रांसिस्को में इस संधि पर हस्ताक्षर हुए गये। अमेरिका आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के मध्य हुई यह त्रि-पक्षीय संधि (ANZUS) कहलाई। (A का तात्पर्य आस्ट्रेलिया से NZ का न्यूजीलैंड से तथा US का संयुक्त राज्य अमेरिका से है।)

अनुसुप्त संधि अपना समझौता किसी निश्चित अवधि के लिये न होकर अनिश्चित काल के लिये है। इस संधि के अनुच्छेद २ में कहा गया है—
“इस संधि के उद्देश्यों को अधिक प्रभावपूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिये हस्ताक्षरकर्ता पक्ष निरन्तर आत्मनिर्भरता एवम् पारस्परिक सहायता के द्वारा अलग-अलग एवम् मिल कर सशस्त्र आक्रमण का विरोध करने के लिये अपनी व्यक्तिगत एवम् सामूहिक योग्यता का विकास करेंगे।”

संधि के अनुच्छेद ३ में उल्लिखित है कि—

“जब कभी किसी बल अथवा पक्ष की राय में प्रचलित में उसके किसी भी बल की प्रादेशिक एकता राजनीतिक स्वतंत्रता अथवा सुरक्षा के लिये खतरा उत्पन्न हो गयी तो वे आत्म में मिल कर मत्ताह करेंगे।”

(७) वारसा पैक्ट या पूर्वी यूरोपियन संधि संघटन (WARSAW PACT)

पश्चात्त्य राष्ट्रों ने जब पश्चिमी जर्मनी का उन्नीकरण करने का निश्चय कर लिया और उसे नाटो संधि संघटन तथा पश्चिमी यूरोपियन नंग

का सर्वस्य बना बिबा तो सोवियत वल मे ११ से १४ मई १९४५ तक बारसा में "यूरोप मे शांति एवम् रक्षा की सुरक्षा के लिये यूरोपियन देशों का एक सम्मेलन" आयोजित किया। इस सम्मेलन में सोवियत संघ के प्रतिरिक्त अन्य ७ साम्यवादी देश-पीनण्ड कमानिया हंगरी पूर्वी जर्मनी प्लातानिया बल्गेरिया और बैकान्तोवाकिया सम्मिलित हुए। साम्यवादी चीन का एक प्रेषक भी संघि में सम्मिलित था।

१४ मई को सोवियत रूस सहित उपरोक्त राष्ट्रों देल इस बात पर सहमत हो गये कि उनकी सेनाओं की एक संयुक्त कमान बनाई जाए और वे जापस में मीची सहयोग एवम् पारस्परिक सहायता की संघिया करें। इस निश्चय के फलस्वरूप १४ मई १९४५ को ही उपरोक्त सभी राष्ट्रों ने 'सुरक्षा और शांति' के इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये।

यह संघि जिसे बारसा संघि या पूर्वी यूरोपियन संघि समझ के नाम से सम्बोधित किया जाता है २० वर्ष के लिये बनी गई। इसका उद्देश्य पारस्परिक शक्ति के प्रयोग से बच रहना तथा अन्तर्राष्ट्रीय बिबाओं का शान्तिपूर्ण उपायों से निपटारा करना है परन्तु साथ ही इसमें सर्वस्य राष्ट्रों को बाह्य आक्रमण के समय सामूहिक सुरक्षा की गारंटी भी गई है।

संघि की प्रस्तावना एवम् कृत्र प्रमुख चारों इसके प्रधान स्वरूप व इसकी शक्ति को व्यक्त करती है। संघि की श्रुतिका में यूरोप में सामूहिक सुरक्षा पद्धति स्थापित करने पर बल देते हुए कहा गया है कि पश्चिमी यूरोप के संघ एवम् पश्चिमी जर्मनी के पुन शान्तीकरण से यह आवश्यक हो गया है कि हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र अपनी सुरक्षा सुदृढ करें तथा यूरोप में शांति कायम रखें। इस दृष्टि से इसमें प्राथिक सामाजिक शान्तिगत विषयों में बलित सहयोग का बलान है।

संघि की चारा १ में कहा गया है कि इसके सर्वस्य "शक्ति का प्रयोग करने से बचे रहने का प्रयत्न करेंगे और वे यह कोषणा भी करते हैं कि वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय बिबाओं का निपटारा शान्तिपूर्ण उपायों से करेंगे। परन्तु यह सम्भवनीय है कि हंगरी के मामले में १९४९ के इस सिद्धान्त की उल्लेख की गई।

चारा ३ के अनुसार यह स्पष्टता की गई है कि यदि किसी सदस्य पर सशस्त्र सैनिक आक्रमण होता है तो अन्य देश उसकी सैनिक सहायता करेंगे।

चारा ४ के अनुसार "यदि यूरोप में शक्ति करान वाले एक घबरा घनेक राष्ट्रों के बिच कोई सैनिक आक्रमण एक या अनेक राष्ट्रों के द्वारा हो तो संघि करने वाला प्रत्येक सदस्य राज मे सम्मिलित सभी राज्य घबरा राज्यों के लिये शीघ्र ही स्वयं ही सहायता करेगा घबरा सदस्य राज्यों के समझौते उन सभी प्रकार के साधना का जो आवश्यक हों और आवश्यकता के समय वह सैनिक शक्ति को प्रयोग करने के लिये तैयार रहेगा।

चारा ५ के अनुसार संपिकर्ता शक्तियों ने एक सामूहिक शक्ति का निर्माण करने का जिसका प्रयोग सामूहिक समझौते के अनुसार किया जाएगा निश्चय किया। इस प्रकार चारा ५ में एक संयुक्त सैनिक कमान (United

Military Command) बनाई गई है जिसके अधीन सब देशों की सेनाएँ होंगी और जिसका एक सर्वोच्च मैनापॉन होगा या महामंत्री तथा मोबियठ बन स स्टाफ के साथ परामर्श करके सेनाओं का संगठन और इसका विभिन्न प्रदेशों में बितरण करेगा। यूरोप में इसकी उत्तरी मध्य तथा दक्षिणी यूरोप की तीन कमानों और मुख्यपूर्व की एक कमान रखी गई है।”

भारत ६ में ८ शक्ति की “राजनीतिक परामर्शदात्री समिति” (Political Consultative Committee) द्वारा सब सामान्य प्रश्नों पर विचार करने की सहायक संस्थाएँ स्थापित करने की और वर्ष में दो बार बैठक करने की व्यवस्था है। इस समिति के महामंत्री का कार्यालय मास्को में है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का अध्ययन करने तथा विदेश नीतियों के बारे में प्रासंगिक सिफारिशें करने के लिये सन् १९३६ में एक स्थायी प्रायोग भी काममें किया गया था।

भारता संधि ने अपनी उदारता व्यक्त करने के लिये भारत ९ में यह व्यवस्था की है कि यह संधि सामाजिक भ्रष्टा राज्य संगठन के प्रकार की और ध्यान न देकर उन घम्य राज्यों के लिये भी खुली हुई है जो इस संधि की शर्तों के अनुसार अन्य राष्ट्रों की शांति और सुरक्षा के लिये तैयार हैं।

इस प्रकार भारत संधि माटो का पूरा एवम् सचयत बचाव है। इस सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि संधि करने वाले सभी राज्य केवल इस के अनुयायी मात्र हैं। यूरोस्लाविया ने साम्यवादी होते हुए भी इस संधि में भय नहीं लिया और इससे पूर्वक यह कर ही अपनी जातिक स्थिति को उज्ज्वल बनावा।

अन्त में यह बात और उल्लेखनीय है कि भारत संधि के प्रतिरिक्त भी समस्त साम्यवादी देशों—यूगोस्लाविया पोलेण्ड रूमानिया ब्रैकोस्लाविया हंगरी बल्गेरिया और फिनलैण्ड ने पारस्परिक सहायता की २० संधियाँ कर रखी हैं। मास्को ने साम्यवादी चीन के साथ उस वापान द्वारा भ्रष्टा जापान के साथ सम्बन्ध किसी शक्ति द्वारा सैनिक प्राक्रमण होने की शूरत में पूरी सैनिक सहायता देने की ३० वर्षीय संधि १४ फरवरी १९३० को की थी।

(८) पश्चिमी यूरोप का एकीकरण (Integration of Western Europe)

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र ब्रिटन फ्रांस और जर्मनी ही विश्व की प्रथम श्रेणी की महाशक्तियों में गिने जाते थे, किन्तु युद्ध के बाद वास्तु पसट गया और यह स्थान संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस ने ले लिया। युद्धोत्तर विश्व में न केवल यूरोप का प्राचीन महत्त्व एवं प्रभुत्व क्षीण हो गया प्रत्युत युद्ध के मोक्ष विनाश ने उसको जातिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी एकदम निर्बल तथा पंगु बना दिया। उसके पूर्व में सोवियत रूस अपनी विस्तारवादी नीति का प्रातंक पैदा करने लगा तथा पश्चिम में प्राणविक शक्ति मन्गल और धन कुबेर संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्कर्ष उसे व्यथित करने तथा। इन दो महीन महाशक्तियों

के बीच में पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों का यही वास्तविक विचार है कि उनका आत्मरक्षा और उन्नति का सर्वोत्तम उपाय यही है कि यूरोपियन एकता में सुलभ किया जाए तथा इसके लिये विविध प्राथमिक और राजनीतिक संघ की स्थापना हो।

सबसे संयुक्त राज्य अमेरिका भी साम्यवादी इस के विरुद्ध संघर्षों को आत्मरक्षा के लिये बड़ा उपयोगी और प्राथमिक समझता है। इसीलिये १९४९ के पारस्परिक सुरक्षा का प्रणु (The Mutual Security Act) में 'यूरोप का प्राथमिक और राजनीतिक संघ बनाने के लिये' अमेरिका द्वारा प्राथमिक सहायता की व्यवस्था की गई। १९४९ में जिनके के बर्लिन में यूरोप की एकता के आन्दोलन का सूत्रपात किया। यूरोप के अनेक राष्ट्रों ने इस आन्दोलन का समर्थन साम्यवाद के विरोध की दृष्टि से किया और कुछ राष्ट्रों ने इसे विधेय संघ की दिशा में प्रथम पम समझा। इन सब विचारों और आन्दोलनों के परिणामस्वरूप यूरोप में प्राथमिक एवं राजनीतिक एकीकरण के लिये अनेक संघर्षों का निर्माण हुआ जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

(1) यूरोपियन प्राथमिक सहयोग का संघटन [The Organisation for European Economic Co-operation-OEEC]—जैसा कि कहा जा चुका है कि द्वितीय महायुद्ध में यूरोप में जो प्राथमिक परत-व्यस्तता उत्पन्न कर दी थी और साम्यवादी इस को एक महाशक्ति के रूप में उपस्थित कर दिया या इसने न केवल यूरोपियन देश को बल्कि समुक्त राज्य अमेरिका को चिन्तित बना दिया। परंतु अमेरिका के तत्कालीन विदेश मंत्री ने वृत्त १९४७ में एक 'यूरोपियन रिकवरी प्रोग्राम' (European Recovery Programme) को मार्गदर्शन योजना के नाम से प्रसिद्ध किया। इस योजना के द्वारा अमेरिका ने यूरोपियन देश के प्राथमिक पुनर्निर्माण के कार्य में पूरी सहायता देने का बचन दिया बशर्ते कि यूरोपियन देश स्वयं इस कार्य में हल करें। प्राथमिक यूरोप के देशों ने मार्गदर्शन योजना का बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया और इस योजना से सम्बन्धित अपनी-अपनी प्रतिबद्धियों के समन्वय के लिये १९४८ में 'यूरोपियन प्राथमिक सहयोग का संघटन-OEEC' की स्थापना की।

इस संघटन के हीरे और अर्धसदस्य (Associated Members) सहित १८ सदस्य हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका भी कनाडा इसके साथी में है। इसका प्रभाव कार्यालय पेरिस में है।

इस संघटन का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों को ऐसी सहायता करना था, जिससे कि असाधारण बाह्य सहायता के बिना ही वे अपने प्राथमिक विकासकार्यों को सर्वोत्तम स्तर तक पहुंचा सकें, अपने उत्पादन में वृद्धि करें, अपने प्राथमिक स्वतंत्रता तथा कृषि व्यवस्था का विकास और आधुनिकीकरण करें, व्यापार का विस्तार करें, व्यापारिक प्रतिस्पर्धियों को हरा कर कम करें, पूंजी-व्यवस्था में सुधार करें तथा अपनी प्राथमिक व्यवस्था एवं मुद्रा पद्धति में

सुदृढ़ बनाये। इस संगठन के निर्माण के उद्देश्य में मूल भावना यही निहित है कि मार्शल योजना प्रपत्रा यूरोपियन पुनर्निर्माण कार्यक्रम (European Recovery Programme) के अन्तर्गत या कुछ भी प्राथिक सहायता मिले उस व्यवस्थित और उपयोगी बनाया जाए। इस संगठन से प्रभावकारी ढंग से कार्य करते हुए पश्चिमी यूरोप के जीवन स्तर को निःसंदेह काफी ऊँचा उठाना।

संगठन का परिवर्तित रूप—प्राथिक सहयोग और विकास का संगठन (O E C D)—यूरोपियन प्राथिक सहयोग के संगठन ने १४ वर्ष तक प्रभावकारी रूप से कार्य किया। किन्तु तत्पश्चात् ३० मितम्बर १९६१ को इस संगठन का स्थान एक नवीन संस्था 'प्राथिक सहयोग और विकास के संगठन' (The Organisation for Economic Co-operation and Development-OECD) ने ले लिया। यह नाम परिवर्तन निश्चित रूप से पहले वाले संगठन की स्थिति घोर कार्यों में परिवर्तन का परिचायक है।

व्यवस्था—इस नवीन संस्था 'प्राथिक सहयोग और विकास के संगठन' में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा पुरुष संरक्षक मान लिये गये हैं। इन प्रकार अब यह केवल मात्र विशुद्ध यूरोपियन संगठन ही नहीं रहा है। इस संगठन में कुल मिला कर २० सदस्य देश हैं—

१ आस्ट्रिया	२ बेल्जियम	३ कनाडा
४ डेनमार्क	५ फ्रांस	६ पश्चिमी जर्मनी
७ ग्रीस	८ आइसलैंड	९ आइरिश गणराज्य
१० इटली	११ लक्जमबर्ग	१२ नीदरलैंड
१३ नार्वे	१४ पुर्तगाल	१५ स्पेन
१६ स्वीडन	१७ स्विटजरलैंड	१८ टर्की
१९ ग्रेट ब्रिटेन	२० संयुक्त राज्य अमेरिका	

फिनलैंड यूगोस्लाविया और जापान इसके विशेष कार्यों में भाग लेते हैं।

उद्देश्य एवं कार्य—१४ दिसम्बर, १९६० का इस संगठन के सम्बन्ध में स्वीकार किया गये एक-एक अभिमतय शब्दा समझौते (Conventions) इसके निम्नलिखित उद्देश्य एवं कार्य बताये गये हैं—

(क) सदस्य देशों को उच्चतम प्राथिक विकास और रोजगार प्रदान करना तथा जीवन मापन के स्तर को उत्कृष्ट बनाना

(ख) प्राथिक स्थिरता बनाये रखते हुए विश्व की अर्थ व्यवस्था के विकास में सहायक होना,

(ग) सदस्य देशों को और अन्य देशों में स्वास्थ्य प्राथिक विस्तार और विकास में सहयोग प्रदान करना

(घ) विश्व व्यापार के ऐसे विस्तार में सहयोग देना जो बहु पक्षीय हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्राथिकों के अनुसार और कोई विशेष भेदभाव न करने वाला (Non-discriminatory) हो।

उपरोक्त उद्देश्यों और कार्यों की पूर्ति के लिये इस समूह के अन्तर्गत वार्षिक नीति समिति विकास सहायता समिति और व्यापार समिति प्रायः का गठन किया गया है। दिसम्बर १९६१ में संघ की पहली परिषद में यह मन्त्र निर्धारित किया गया कि संघ के २० सदस्य राष्ट्रों के वार्षिक कुल राष्ट्रीय उत्पादन में १९६०-७० की इस अवधि में १० प्रतिशत वृद्धि की जाए।

(ii) यूरोपियन वित्तीय संघ (The European Payments Union—EPU)—इस संघ की स्थापना दिसम्बर १९५० में की गई थी। यह संघ वस्तुतः यूरोपियन वार्षिक सहयोग का समूह (OECE) की ही एक शाखा थी। इसका कार्य विभिन्न मुद्राभाषियों की व्यवस्था करना और व्यापार को विशेष सुविधाजनक बनाना था। दिसम्बर १९५८ में इसके स्वातंत्र्य पर 'यूरोपियन मॉनेटरी एरॉमेन्ट' (European Monetary Agreement) की स्थापना की गई।

(iii) यूरोपियन परिषद (Council of Europe)—इस संस्था का गठन ५ मई १९४९ को किया गया था। इसके उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार किया जा कि—

यह वार्षिक और सामाजिक प्रगति के लिये तथा अपनी सामान्य विरासत के धारकों और निदानों में पहिले से अधिक एकता लाने का प्रयत्न करेगी।

यूरोपियन परिषद का प्रधान कार्यालय स्ट्रसबर्ग (Strasbourg) में है। इस परिषद के दो भाग हैं—विमर्ज सभा (Consultative Assembly) और मंत्री समिति (Committee of Ministers)। विमर्ज सभा में १२३ सदस्य होते हैं जिसका निर्वाचन विभिन्न सदस्य देशों की पारलियामेंटों में विभिन्न रूपों के प्रतिनिधियों की बहुपक्षीय संस्था के आधार पर होता है। सामान्यतया देशों का इसमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता। विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों की संख्या अन्य सम्वत्सरीय संघों की भांति समान नहीं है प्रत्युत सदस्य देशों के महत्त्व को देखते हुए निर्धारित की गई है। उदाहरणार्थ फ्रांस, ब्रिटेन और डेनमार्क के प्रतिनिधि हैं। विमर्ज सभा प्रतिरक्षा के विषयों के प्रतिरिक्त यूरोप में सम्बन्ध रखने वाले सभी वार्षिक और सामाजिक प्रश्नों पर विचार करती है। धारात्मक विचार विमर्ज करने के उपरान्त यह कोई निर्णय नहीं ले सकती परन्तु केवल मंत्री समिति को इन विचारों को अपनी सरकारों तक पहुँचाने की पूर्ण स्वतंत्रता है। मंत्री समिति का निर्माण विभिन्न देशों के मंत्रिमंडलों के एक सदस्य प्रायः विदेश मंत्री—से होता है।

अभी तक के इतिहास से यही अनुभव है कि विमर्ज सभा और मंत्री समिति में सामान्यतः मतभेद नहीं रहा है। ब्रिटेन ने इस संघ के बनने का विरोध किया है तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि यह परिषद यूरोप की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में परोक्ष सहायक बन सकती है।

यूरोपियन परिषद के सदस्य देश में हैं—बल्जियम नीदरलैंड्स लक्जमबर्ग फ्रांस आयरलैंड इटली नार्वे स्वीडन डेनमार्क ब्रिटेन ग्रीस टर्की आइसलैण्ड बर्मा फेडरल रिपब्लिकन और सार प्रदेय ।

(iv) यूरोपियन कोयला इस्पात समुदाय (European Coal & Steel Community)—इस संघटन की योजना प्रथम के विदेश मंत्री शूमन (Shuman) द्वारा १९५० में तैयार की गई थी । इसके आधार पर इस संघटन की स्थापना ११ अगस्त १९५२ को हुई ।

उद्देश्य व कार्य—यूरोपियन कोयला इस्पात समुदाय का उद्देश्य कोयले और इस्पात के लिये एक मंडी बनाना है । इसके सम्बन्ध में आयात और निर्यात करों को तथा राजकीय सहायता को बन्द करना तथा इस बारे में प्रजासत्ताकीय बातों का विरोध करना व्यापारिक बाधाओं और एकाधिकारवादी तथा भेदभाव करने वाले मूस्यों को हटा कर उच्च सत्ता (High authority) द्वारा निर्धारित मूस्यों पर विज्ञा की व्यवस्था करना है ।

संघटन—यूरोपियन कोयला इस्पात समुदाय में ६ सदस्यों की उच्च सत्ता (High Authority) और ७८ सदस्यों की सामान्य सभा (Common Assembly) है । सामान्य सभा के नियम २।३ बहुमत से लिये जाते हैं । यह २।३ बहुमत से उच्च सत्ता की आलोचना करती है और उस पर नियन्त्रण स्थापित करती है इसके प्रतिरिक्त एक विभिन्न देशों के मंत्रियों की परिषद (Council of Ministers) है जो उच्च सत्ता का सलाहकों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है । राष्ट्रीय धर्म व्यवस्था सामान्य मंडी (Common Market) सम्बन्धी विषयों में कार्य करने के लिये उच्च सत्ता मन्त्री परिषद की पूर्ण स्वीकृति लेती है । विवादास्पद मामलों को निपटाने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Court of Justice) की स्थापना की गई है ।

उच्च सत्ता को परामर्श देने के लिये उत्पादकों मजदूरों और उपभोक्ताओं के प्रतिनिधियों की एक विमर्श समिति (Consultative Committee) भी है जिसकी नियुक्ति मन्त्री परिषद द्वारा की जाती है ।

समुदाय का प्रधान कार्यालय लक्जमबर्ग में रखा गया है और यह सन्धि ५० वर्ष के लिये है । १९५३ से कोयले और इस्पात की एकज मंडियाँ (Single Markets) क्रिया रूप में परिचलित हो गई हैं ।

एक व्यवस्था —यूरोपियन कोयला इस्पात समुदाय में सर्वोच्च महत्वपूर्ण स्थान उच्च सत्ता (High Authority) का है । विभिन्न राज्यों द्वारा विशेष उत्पादन मुख्य मजदूरी और अधिको के पुनर्वास सम्बन्धी अपने कृष्ण सर्वोच्च अधिकार (Sovereign Rights) इस उच्च सत्ता को प्रदान किये गये हैं । उच्च सत्ता के बहुमत से क्रिय गये सब नियमों का पालन करना सदस्य के लिये अनिवार्य है । यह भी व्यवस्था है कि इन नियमों का पालन न करने पर अपना उन्मथन करने पर समुदाय के सदस्यों को हट दिया जा सके । इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समन से भू-विज्ञा कायदा द्वारा समुदाय इन दृष्टि से पहला अन्तर्राष्ट्रीय तथा अधिराष्ट्रीय (Super-national) संघटन

है, जिसके सामने कुछ देशों ने अपने सर्वोच्च अधिकारों का परित्याग किया है और इस तरह अपने राष्ट्र से बाहर की किसी शक्ति के प्रादेशों का प्रतिनियमित पालन करने का निश्चय किया है। इस संगठन के प्रत्यर्पित जर्मनी और फ्रांस की धर्मस्यबन्धा का एकीकरण होने से पारस्परिक सन्तुष्टता समाप्त हुई है। यह दावा किया जाता है कि इसने न केवल इन दोनों देशों के मुद्दों का असाध्य बनाना है प्रत्युत इसे सर्वथा असम्भव बना दिया है।* 2) मसिच्य इस बात का मही रूप में निरूप्य करेगा कि यह दावा कहां तक सत्य सिद्ध होता है।

ग्रैंट ब्रिटेन न समुदाय की सदस्यता प्राप्त करने के लिये आवेदन किया था लेकिन २१ जनवरी १९६३ में फ्रांस के मिला जाने के कारण ब्रिटिश प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकी।

इस समुदाय ने इस्पात के उत्पादन में निःसर्विह विशेष सफलता प्राप्त की है। इसका प्रमाण यही है कि जहाँ १९३२ में इस्पात का उत्पादन ४२० लाख मीट्रिक टन था वहाँ १९६२ में यह बढ़ कर ७२० लाख टन हो गया। इसके बाद भी यह उत्पादन निरन्तर संशोधनक प्रति है बढ़ता रहा है।

(१) यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय (The European Defence Community E. D. C.)—१९४६ के उत्तरार्ध से प्रत्यर्पणीय समय में एक प्राकृतिक घटनाय बटी। सितम्बर १९४६ में इस में सफलतापूर्वक धरु वम का विस्फोट किया म टूबरक आरम्भ में चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई और १९३० में उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया तथा अमेरिका इस संघ में बुरी तरह चलक गया। अब अमेरिका व अन्य पश्चिमी राष्ट्रों के लिए क्ती खतरा बहुत कुछ वास्तविक हो गया। अमेरिकन राजनीतिज्ञ विशेष रूप से यह महसूस करने लगे कि यूरोप की प्रतिरक्षा-योजना में जर्मनी की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी। अतः उसका विरोधीकरण बहुत समय तक जारी रखना व्यावहारिक नहीं। लेकिन साथ ही उनक सामने यह प्रश्न भी था कि जर्मनी की स्वतंत्र सेना का निर्माण अनेक दृष्टियों से जिनमें फ्रांस का बहुरा विरोध भी सम्मिलित था सम्भव नहीं है। बेसीनेस डेवों (बेस्विचम नीबरलैण्ड, मन्त्रमन्त्र) का भी विचार था कि एकदलीय कस की अपेक्षा पुन सत्व-सन्धित जर्मनी अधिक सतर्क हो सकता था।

अन्त में निश्चय यह हुआ कि सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप की प्रतिरक्षा के लिए एक संगठन का निर्माण किया जाय। सर्वप्रथम, १९३० में ब्रिटेन के सर बिस्मटन बचिन ने ऐसे संगठन के निर्माण का प्रस्ताव 'यूरोप की परिषद्' (Council of Europe) की विमर्श या परामर्शवादी सभा (Consultative Assembly) के सम्मुख रखा। इसके स्वीकृत होने पर डॉन प्रभावमयी प्लेन (Plevin) ने इसकी विस्तृत योजना बनाई। बड़ी लम्बी

* Charles Sticher An introduction to International Relations Page 684-87

और ब्रिटिश संघि बर्बा के बाद २० मई १९२२ को 'यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय का संघि' पर पेरिस में हस्ताक्षर हुआ। इस संघि के द्वारा ही 'यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय' का जन्म हुआ। इस २० बर्षीय संघि पर अक्सर विश्वभा जर्मनी इटली नीदरलैंड, बेल्जियम और लक्जमबर्ग इन ६ देशों में हस्ताक्षर किये।

'यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय' का उद्देश्य एक ऐसे संघटन की स्थापना करना है जिसमें हस्ताक्षरकों राष्ट्र मिल कर अपने सैन्य बल सैन्य संस्थाओं और सैन्य बजट का एकीकरण कर सकें। इसके अतिरिक्त यह व्यवस्था की गई कि नाटो के सैन्य-संगठन में उपरोक्त ६ राज्य अपनी सेनाओं को एक इकाई की तरह ही शामिल करेंगे। दूसरे अर्थों में इस संघि के अनुसार संघिकर्ता राज्यों की सब सेनाओं को संयुक्त होकर नाटो की कमान में एक यूरोपियन सेना का अङ्ग बनाना था। सबस्य राज्य अपने समूह पार के प्रदेशों की रक्षा के लिए और कोरिया-युद्ध जैसे अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं में संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता के लिए पृथक समारोह कर सकेंगे। इस समुदाय को सबस्य राज्यों के मुद्द उद्योगों पर भी नियंत्रण का अधिकार दिया गया था।

इस समुदाय के चार ध्येयों की व्यवस्था की गई थी—(i) परिपद—इसमें प्रत्येक सबस्य राज्य का एक मंत्री होना था जिसका नाम समुदाय के विभिन्न कार्यों के बीच समन्वय कायम करना था (ii) बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स इसका कार्य परिपद को देखरेख में समुदाय में संगठन प्रशासन-मूर्तों और अन्तर्गत-उत्पादन के कार्यक्रम का संचालन करना था (iii) असेम्बली—यह सर्वोच्च इस असेम्बली का कार्य समुदाय के सैन्य बजट को निर्धारित करना तथा बाड ऑफ कमिश्नर्स की रिपोर्ट पर विचार करना था एवं (iv) स्यावासय—इसको सैनिक विधायी और संगठनात्मक विचारों को समझाने का अधिकार दिया गया था।

यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय यूरोप के राजनीतिक एकीकरण के लिए एक बड़ी महत्वपूर्ण योजना थी और इसे वास्तविक सभ का पूर्णतः समझा जा रहा था। अमेरिका ने इस योजना का पूर्ण स्वागत किया। यह समुदाय यूरोप में अमेरिकन नीति का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया। पहली बार पश्चिमी यूरोप की प्रतिरक्षा को एक स्पष्ट और बुद्धिपूर्ण उचित आधार पर स्थिर किया गया। बार्डिंग्टन से यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय-संघि के हस्ताक्षरकर्ताओं पर इसके पुष्टीकरण के लिए दबाव आना मया। परन्तु राजनीतिक अज्ञानता इस ठेकी से ज़ुमा कि समुदाय की व्यावहारिक स्थापना और सफलता संदिग्ध हो गई। इस संघि के संयुक्त होने से पहले ही स्थापित की गयी थी और इस प्रकार उस के अङ्गण का अर्थक अट मया। अट बिनेन ने इस प्रतिरक्षा समुदाय के साथ सहयोग करना अस्वीकार कर दिया। सार तथा अन्य समस्याओं को लेकर फ्रांस का लोकायत इस प्रतिरक्षा समुदाय के विच्छ हो गया और वहाँ एक के बाद एक सरकारें अस्वी-अस्वी टूटने लगी। अमेरिकन विदेशमंत्री हसेस ने अज्ञानता की कि ड डी. सी के अक्षय होने पर अमेरिका को 'यूरोप के प्रति अपनी नीति का अङ्गणपूर्वक पुनः स्थापन करना पड़ेगा।' इन अज्ञानता का अर्थ यह भी हो सकता था कि

अमेरिकन सहायता बंद कर दी जायगी। परन्तु यह भयभीत बेकार मित्र हुई। फ्रांस के प्रभावशाली लोकप्रिय नेताओं ने अपनी सरकार का अमेरिका की प्रभावशालक बौद्ध-पट्टी सड़न के लिए बुरी तरह मताड़ा। अतः स्थिति यहाँ एक बिगड़ गई कि १० अगस्त १९५४ का फ्रांस की राष्ट्रीय परिषद ने यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदायों का महत्व घटन तथा घोर अर्थनी के नय धामुषों के कारण स्वतः सेनाओं का महत्व घटन तथा घोर अर्थनी के नय की धारणा अधिक घट रूप में उपस्थित की जान लगी। इ ही सी योजना की सफलता के बावजूद इसमिये घोर सी कम हा मये कि यद्यपि नई हर्जों ने संघि पर हस्ताक्षर तो कर दिये थे परन्तु उनके पारस्परिक संदेह और इ प विषयमान न। प्रत्येक पश्चिमी यूरोपियन वेग राष्ट्रीय धाधार पर कुछ कर पाने की स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करना चाहता था और कोई भी देश ऐसा कोई काय करन वा इच्छुक न था जिससे इस के साथ अध्ये सम्बन्ध विकसित कर सकने का माय ही बंद हो जाय।

यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय क इस धन्तव्यपर्याय माय से अमेरिकन सरकार को घोर निराशा हुई यह एक विनाशजनक स्थिति थी। घट १९५४ में यूरोपियन प्रतिरक्षा संघि पर हस्ताक्षर करने बात दोनों के धार्तरिक कनाया घोर संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेशमन्त्री सग्नन में एक सम्मेलन के लिए एकत्रित हुए। वहाँ तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सर एन्थोनी एडन के इस आश्वासन से गहरी आशा का संचार हुआ कि ब्रिटेन की इस सहमति रक्षा के लिए वहाँ अपनी सेनायें रखने को तैयार है। ब्रिटेन की इस सहमति के फलस्वरूप पश्चिमी यूरोप के संघ (Western European Union—W. E. U.) का निर्माण हुआ जिसका उल्लेख माने किया गया है। सग्नन सम्मेलन में भी देशों के प्रतिनिधियों ने ३ अक्टूबर को एक संघि पर हस्ताक्षर करके इस संघ का निर्माण किया। मंच हांग पश्चिमी अर्थनी को धम्य पश्चिमी यूरोपियन देशों के साथ राजनीतिक घोर धार्थिक स्तर पर सम्बन्ध करने का सिद्धांत स्वीकार किया गया।

(vi) यूरोपियन धार्थिक शक्ति समुदाय (European Atomic Energy Community : EURATOM)—२५ मार्च १९५७ का राम में हुई संघि के अनुसार इस समुदाय की स्थापना १ जनवरी १९५८ का हुई। इसका उद्देश्य यूरोप के ६. राज्यो—नीदरलैंड (हॉलैंड) बेल्जियम सक्षमबर्न फ्रांस सर्बीय जर्मनी घोर इटली में नाभिकीय प्रयोजनों के लिए धार्थिक शक्ति के विकास हेतु सामान्य प्रयत्न करना है। घट ब्रिटेन ने जुलाई १९६३ में इसे धार्थिकर कर दिया गया।

(vii) यूरोपियन धार्थिक समुदाय अथवा यूरोपियन साम्य बाजार (The European Economic Community EEC or The European Common Market E.C.M.)—यूरोपियन धार्थिक समुदाय की स्थापना प्रथम जनवरी १९५८ का हुई थी। इसका धार्थिक लोकप्रिय हमरा नाम यूरोपियन सामान्य बाजार (European Common Market) है। यह एक क्षेत्रीय योजना है जिसका उद्देश्य यूरोप के ६ देशों का धार्थिक एकीकरण

करना है। ये ६ देश हैं :— बल्कियम फ्रांस पश्चिमी जर्मनी इटली, नीदरलैंड एवं लक्जमबर्ग। घड़ीका क सोसह राह इसके साथी सदस्य (Associate Members) हैं। यह समुदाय रोम की सन्धि जिस पर मार्च १९५७ में हस्ताक्षर किये गये थे का परिचालन है।

यूरोप के देशों की भौगोलिक स्थिति अमेरिका रूस चीन और भारत के समान विशाल देशों से निम्न है। अधिकतर युरोपियन देशों का क्षेत्रफल इतना कम है कि इन देशों की आन्तरिक मांग के आधार पर बड़े पैमाने की उत्पादन प्रणाली की किफायती को प्राप्त करना कठिन है। इन देशों के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के आधार पर इन देशों में आर्थिक योग्यता (Economic Viability) का भारी प्रभाव है। इन देशों का आन्तरिक बाजार भी इतना अधिक छोटा है कि इच्छित पैमाने के उद्योगों का सुचारु रूप से चलाया कठिन है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण योजना निर्माताओं के दिमाग में यह विचार आया कि पश्चिमी यूरोप के ६ देशों का आर्थिक दृष्टि से एकीकरण किया जाय ताकि बाजार के क्षेत्र का विस्तार हो जाय बड़े पैमाने के उद्योगों को सुचारु रूप से चलाया जा सके बड़े पैमाने की किफायती के लाभ प्राप्त किये जा सकें और इस तरह सम्पूर्ण क्षेत्र में उच्च वाले निवासियों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सके।

उद्देश्य—यद्यपि युरोपियन आर्थिक समुदाय का अन्तिम अथवा दीर्घकालिक लक्ष्य यूरोप के देशों का राजसह बनाना है, परन्तु योजना का तात्कालिक मुख्य आर्थिक है। आर्थिक लक्ष्य के रूप में समुदाय बनाने का एकमात्र उद्देश्य उत्पादन के क्षेत्र में बड़े पैमाने की उत्पादन प्रणाली के द्वारा उत्पादन करके बिछिटीकरण तथा अम में विभाजन के लाभों को प्राप्त करना है। यह योजना इस आशा का परिचालन है कि ६ देशों के व्यापक क्षेत्रफल में फैले विस्तृत बाजार में बड़े पैमाने के उद्योगों को अधिक कुशल ढंग से चलाया जाकर सम्पूर्ण क्षेत्र को आर्थिक दृष्टि से एकतावादी बनाया जा सकेगा।

इस योजना में जो प्रमुख व्यवस्थायें की गयी हैं वे संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

- (i) आयात और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर लगाये जाने वाले प्रतिशतों और करों की समाप्ति।
- (ii) एक सामान्य टट कर नीति तथा व्यापार नीति को स्वीकार करना।
- (iii) व्यक्तियों सेवाओं तथा पूंजी के स्वतन्त्र संचरण की बाधाओं को दूर करना।
- (iv) आर्थिक विकास की सुविधा के लिए एक युरोपियन निवेश निधि (Investment Fund) का निर्माण।
- (v) अन्य देशों के प्रति एक सामान्य टट-कर की तथा व्यापार की नीति का अनुसरण।
- (vi) कृषि एवं परिवहन की सामान्य नीति का अनुसरण करना।
- (vii) यूरोप का राजनीतिक एकीकरण।

संगठन—यूरोपियन आर्थिक समुदाय आर्थिक मामलों में एक प्रकार की सरकार के रूप में कार्य करता है। किसी भी देश की सरकार के समान कार्य करने नियम बनाते तथा कानूनों को तय करने के लिए इसके विभिन्न अंग हैं—

- (i) आर्थिक आयोग (Economic Commission)
- (ii) मंत्रियों की एक परिषद (Council of Ministers),
- (iii) एक सामान्य सभा (Assembly)
- (iv) एक न्यायालय (Court of Justice)

आर्थिक आयोग समुदाय का प्रमुख प्रशासकीय अंग है। यह दैनिक प्रशासन का संचालन और नीति सम्बन्धी मुख्य प्रस्तुत करता है। 9 सदस्य देशों का एक प्रतिनिधि इस आयोग का सदस्य होता है।

परिषद में 9 सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। यह नीति का निर्धारण करती है सदस्यों के सम्बन्ध में आचारसूत्र के नियम और विधान आदि बनाती है। परिषद सदस्यों को समुदाय की मुख्य नीति का पालन करने के लिए भी प्रेरित करती है। परिषद को अपने कार्य में सहायता देने के लिए एक यूरोपियन आयोग है जिसमें 9 सदस्य होते हैं। आयोग का मुख्य कार्य समुदाय की विद्येय समस्याओं का अध्ययन करना यह देखना कि सदस्य संधि के निर्धारों का पालन करते हैं या नहीं तथा परिषद को सहाय देना है। इसके प्रतिरिक्त सलाह देने के लिए एक यूरोपियन आर्थिक व सामाजिक समिति भी है जिसमें बीजक के सभी क्षेत्रों (उद्योग व व व्यापार, कृषि आदि) से सम्बन्धित सदस्य हैं।

सामान्य सभा समुदाय के लिए एक संसद के रूप में कार्य करती है। इसमें 172 सदस्य हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—इटली पचास और पश्चिमी जर्मनी में से प्रत्येक देश के 36 सदस्य बेल्जियम तथा नीदरलैंड्स से प्रत्येक के 14 सदस्य तथा लक्जमबर्ग के 9 सदस्य। सभा (Assembly) परिषद द्वारा की गयी सिफारिशों पर अन्तिम निर्णय करती है।

न्यायालय का कार्य समुदाय के सदस्यों की शिकायतों को तय करना है। यह सर्वोच्च सम्बन्धित नैदानिक विवादों का निणय करती है।

महत्व एवं सफलता—यूरोपियन आर्थिक समुदाय अथवा सामान्य या साम्य बाजार की स्थापना न केवल यूरोप प्रत्युत विश्व के इतिहास को एक महत्वपूर्ण अंग बनाता है। क्रिश्चियन ए. हेटर (Christian A. Herter) के शब्दों में "सामान्य बाजार वह केन्द्र (Nucleus) है जिससे यूरोप के एक संघीय बाजार का विकास हो सकता है। इससे प्रथम तथा जर्मनी की परम्परागत शक्ति का अन्त कर उन्हें एक सामान्य आर्थिक इकाई के अन्तर्गत ला दिया। इसके सदस्य 9 देशों की सामान्य मन्त्री का बैठकन 4 68,000

बर्नमीन और जनसंख्या १० करोड़ से भी अधिक है। इसका क्षेत्र बाल्टिक तथा उत्तरी सागर से अटलांटिक और मध्य सागर तक फैला हुआ है। इस सम्पूर्ण युरोपियन क्षेत्र में इस समुदाय को कार्य-कसौती के कारण बड़ी समृद्धि हुई है। पश्चिमी बर्नमी और फ्रांस की डासरो की सुरक्षित निर्धि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

समुदाय के सदस्य राज्यों के मध्य यात्रा रोजगार निवास और वित्त आदि के सम्बन्ध में पारस्परिक तथा अन्य नियमों की बाधाओं दूर हो गयी हैं। यह पूरी मात्रा की जाती है कि प्रथम जनवरी १९७० से सदस्यों के मध्य सीमा शुल्कों का भी पूर्णतः अन्त हो जायगा और औद्योगिक वस्तुओं में सदस्यों के मध्य पूर्ण मुक्त व्यापार संभव हो सकेगा। इस तरह १९७० तक ये क्षेत्र आन्तरिक सीमा-कर शुल्कों से रहित एक सुवृद्ध आर्थिक इकाई बन जायेगी।

समुदायों के सदस्यों के मध्य कुछ कृषि वस्तुओं के मध्य में भी एक सामान्य कृषि नीति पर सहमति हो पायी है और इन कृषि वस्तुओं पर सीमा करों का समाप्त कर दिया गया है। इस समुदाय से यूरोप को बहुत ही लाभ हुआ है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अमेरिका और रूस के बाद यह समुदाय विश्व की तीसरी महानतम आर्थिक शक्ति है। समुदाय के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में ३३ से ४० प्रतिशत तक की औद्योगिक उत्पादन में ४० से ५० प्रतिशत तक की और ६ दशकों के पारस्परिक व्यापार में ३० से १० प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है।

आर्थिक विकास के प्रयत्न के रूप में युरोपियन आर्थिक समुदाय साम्प्रदाय के प्रसार में एक बड़ी भाषा बनता जा रहा है। इसीलिए रूस इनका विरोधी है। मूलतः किसी प्रधानमंत्री का श्रेष्ठ ने इसे 'दो पुरुषों की भारी-प्रकृति के विषय एक शारी' * कहा था।

यद्यपि युरोपियन आर्थिक समुदाय में प्रजननीय प्रगति की है और बड़े पैमाने के विकास आर्थिक लाभ सदस्य राष्ट्रों को प्राप्त हुए हैं किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि इस प्रकार की यात्राओं सम्बन्धी अन्तराष्ट्रीय मित्रता तथा मुक्त व्यापार के हितों के लिए बातक सिद्ध होती है क्योंकि इनके कारण संसार मिस्र युद्धों में विभाजित हो जाता है जो कुछ समय पश्चात् एक दूसरे का शत्रु हो जाते हैं।

युरोपियन आर्थिक समुदाय और ब्रिटेन—यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन इस समुदाय प्रथम सामान्य या साम्राज्यवादी का अभी तक सदस्य नहीं बन सका है। इस समुदाय की स्थापना से पूर्व ब्रिटेन ने 'युरोपियन आर्थिक सहयोग-संयुक्त (The Organisation for European Economic Co-operation—O. E. E. C.) के १८ सदस्य राज्यों से मिल कर बने एक मुक्त व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area) की स्थापना का सुझाव रखा था। युरोपियन आर्थिक सहयोग-संयुक्त की स्थापना के बाद ब्रिटेन और आस्ट्रिया स्वेनमार्क मार्च स्वीडन पूर्वमान तथा स्विट्जरलैंड ने मार्च १९५९ में

यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ (European Free Trade Association-E. F. T. A.) की स्थापना का निश्चय किया और तदनुसार २६ जून १९६१ को इसकी स्थापना कर दी गयी। बाद में फिनलैंड और डीनमार्क की इस एसोसियेशन में सम्मिलित हो गये।

परन्तु वहाँ यूरोपियन धार्मिक समुदाय एक सफल संस्था के रूप में प्रगति और समृद्धि की सीढ़ियाँ बढ़ता गया वहाँ यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ एक झूठा दिखावा सिद्ध हुआ। परत बीम ही ब्रिटेन यह अनुभव करने लग गया की उसे यूरोपियन धार्मिक समुदाय या साम्राज्य बाजार का सदस्य बन जाना चाहिए। दूसरी ओर समुदाय के सदस्यों ने भी यह अनुभव किया कि ब्रिटेन के पुनर्कट रहे हुए यूरोप के किसी राजनीतिक राज्य मण्डल की स्थापना नहीं की जा सकेगी। अन्तस्वस्व फरवरी १९६१ के उपरान्त गिरल्टर बोर्नो ही ओर से इस बात के प्रयास होने लगे कि ब्रिटेन भी समुदाय में प्रविष्ट हो जाय। ब्रिटेन के समुदाय में प्रवेश के मार्ग में सर्वाधिक प्रतिरोध फ्रांस की तरफ से हुआ और जनवरी १९६१ में ब्रिटेन के समुदाय में प्रविष्ट होने के प्रयास को विफलता मिली।

ब्रिटेन इसके बाद भी यूरोपियन धार्मिक समुदाय या साम्राज्य बाजार में शामिल होने का प्रयास करता रहा और अब वह दिन दूर नहीं है जब उसे यूरोपियन साम्राज्य बाजार के परिवार में विभिन्न सम्मिलित कर लिया जायगा। इस विषय में मतभेदों की लाई करीब-करीब पट चुकी है और ६ मई १९६० को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विस्सन ने यूरोपियन साम्राज्य बाजार में ब्रिटेन के शामिल होने के फैसले की सूचना भी दे दी थी। ब्रिटेन के इस निश्चय और साम्राज्य बाजार में उसके प्रवेश की कठिनाइयों व परिस्थानों धारि पर 'साप्ताहिक हिममान दिनांक १४ मई १९६० में एक बड़ा समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया था जो इस प्रकार है—

हम कोई इनाम नहीं चाहते, बुटने नहीं देखते। हमारी बातचीत हमारी आवश्यकताओं पर आधारित नहीं होगी बल्कि इस बाजार पर होगी कि हम क्या भोग दे सकते हैं'—ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विस्सन ने दिल्ली मंत्रालय पर ६ मई १९६० को संसद में यूरोपीय साम्राज्य बाजार में शामिल होने का फैसला सुनाते हुए कहा हमने जो निर्णय किया है, उसके ऐतिहासिक महत्त्व को हम एक देश के सिद्धे भी कम करके नहीं पाँक रहे हैं। यह एक ऐसा निर्णय है जो ब्रिटेन का महत्वपूर्ण तय करेगा। और सम्भवतः यूरोप का भी।

ब्रिटेन और यूरोप की सबसे बड़ी मजबूती यह है कि धार्मिक और औद्योगिक दृष्टि से अमेरिका पश्चिमी यूरोप पर इस ऊपर हावी होता जा रहा है। कि उसका प्रतिस्पर्धक-राजनीतिक और धार्मिक बोर्नो-बोर्नो में पड़ता जा रहा है। यूरोपीय देश राष्ट्रीयता का मोह छोड़ कर कम-से-कम धार्मिक दृष्टि से नज़दीक जा जायें तो अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम रख सकते हैं। अमेरिका की करीब पाँच सौ करोड़ डॉलर की पूंजी यूरोप में सगी हुई है, जिसमें से साढ़े ६ करोड़ डॉलर ब्रिटेन में इस तरह लगे हैं कि प्रमुख उद्योगों में अमेरिका का वर्चस्व बल्लस है। अमेरिका की उन्नत औद्योगिकी

यूरोप से न केवल एक करोड़ डालर हर मास जीवित में जाती है बल्कि वैज्ञानिकों और तकनीकी जानकारों को भी अपना और बाह्यष्ट करती है। साम्राज्यवादी धारणा के उपाध्यक्ष मार्बोनिन की सरकारसु धारणा यह है कि 'यदि साम्राज्यवादी के देश प्राविष्टकारों के सबसे बड़े आयातक और तकनीकी जानकारों के सबसे बड़े निर्यातक बन गये तो वे निश्चय ही विकास के मामले में पिछड़ जायेंगे और जीवित ही स्थिति बेकाबू हो जायेगी। उन्नत तकनीकी और बड़े स्थानीय बाजार के कारण अमेरिका की कम्पनियों का प्रकार-प्रकार इतना बढ़ा और उनके उत्पादन की मात्रा इतनी कम हो गई है कि इनकी प्रतिद्वन्द्विता में ब्रिटेन भी यूरोप की औद्योगिक कम्पनियों का उद्वरण कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। ब्रिटेन की प्रयत्ना उन्नत तकनीक और बड़ा सम्मिश्रित बाजार साम्राज्यवादी को सामान्यित करके हारती बाधी बिता सकता है। यही वह मुद्दा है जिसने ब्रिटेन को यूरोप की तरफ मुखातिब किया है और यही साम्प्रदायी को भी सम्भव बना सकता है।

यह ब्रिटेन की पहली धर्मो नामद्वार कर वी गई थी उस से स्थिति कुछ बदली है और मुमकिन है कि विस्तार और विभाजन के मोम मास के बाव सीधा पटा जाये। यदि नहीं पटा तो यह ब्रिटेन के लिए बहुत घातक सिद्ध होगा। सुठपूर्व प्रतिरक्षाधर्मी चिन्तक के धर्मों में विस्तार का फसला 'बोधिम से भरा हुआ सपुखं काम' और बहुत बड़ा जुबा है। जहाँ तक बीजता है वहाँ तक उम्मीद है कि साल-बेड़ साल की प्रबल सीदेबाजी के बाव १९६९ या १९७० से ब्रिटेन को यूरोपीय साम्राज्यवादी में साम्प्रदायी की अनुमति से भी जायेगी।

'विभाजन अभी तक चुप्पी साधे हुए हैं, लेकिन यह भी यह नहीं गुना सकते कि ब्रिटेन की प्रयत्ना उन्नत तकनीक और सबस्यता साम्राज्यवादी को अमेरिका या रूस के मुकाबल में बढ़ा कर सकती है। ब्रिटेन भी उनकी तरह प्राधिक एकीकरण के बावबूद राजनीतिक एकीकरण के पक्ष में नहीं है। जमनी की बढ़ती हुई ताकत के मुकाबल में ब्रिटेन को इस्तेमाल किया जा सकता है; यूरोपीय प्रागातिक प्रतिरक्षा-व्यवस्था में ब्रिटेन का सहयोग अनिवार्य है और ब्रिटेन को अमेरिका के प्रभाव से सीधने की आवश्यकता और उपयोगिता भी कम नहीं है। इन सब बातों के बावबूद सीदेबाज विभाजन उतने ही सीदेबाज विस्तार से सीदेबाजी करना चाहिये। उनका पहला मवाल होगा कि गाबड अपने पैरों पर खड़ा होने की स्थिति में नहीं है। इसलिए उतका धममूस्यन क्यों न कर दिया जाये। दूसरे विभाजन की इच्छा है कि ब्रिटेन न केवल अमेरिका की छत्र-छाया से नाता तोड़ कर सही माने में यूरोपीय बन जाये बल्कि यह भी कि पाठ्य को सुरक्षित मुद्रा बनाये रखने का माह त्पाव है। ये दोनों सठें बड़ी टेडी हैं। ब्रिटेन के लिए वादस स्थिति यही हो सकती है कि इन दोनों बातों पर उसे झुकने को बाध्य न किया जाये और उसे साम्राज्यवादी में शामिल भी कर लिया जाय।

ब्रिटेन इन मुद्दों पर झुकना नहीं चाहेगा क्योंकि साम्प्रदायी की कीमत धर्म धर्मों में प्राधिक हानि के रूप में चुकानी पड़ेगी। यह हानि उसे

कीमत पर भी साम्राज्य बाजार में शामिल होने का निश्चय कर डाला है। इस विषय में भारत की भी काफी प्राथमिक हानि व प्रमुखिया होने की संभावना है। इस सम्बन्ध में ४ जून १९६७ के साप्ताहिक विनमान में पृष्ठ ७ पर भारत की चिन्ता ब्रिटेन की जवासीनता नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह लिखा गया कि—

‘ब्रिटेन के साम्राज्य बाजार में शामिल होने के उद्देश्यों पर भारतीय भावनाओं को ब्रितानी पत्र इवनिंग स्टैंडर्ड ने व्यक्त किया है। पत्र ने इस प्रश्न पर अपनी टिप्पणी में कहा है—

ब्रितानी सरकार के साम्राज्य बाजार में शामिल होने के अस्ववामी के फँसले पर भारत न चिन्ता व्यक्त की है।

भारत को बेर इस बात पर है कि प्रधानमंत्री श्री विस्सन ने साम्राज्य बाजार की संधि पर प्रशिक्षित रूप से दस्तकृत करने से पहले की शर्तों में स्पृजीरक्ष्य और राष्ट्र मण्डल देशों में शीनी का उत्पादन करने वालों की समस्याओं का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इसका मतलब यह भगाया जा रहा है कि भारत की चिन्ता को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया उस पर ब्रिटेन के प्रशिक्षित रूप से दस्तकृत हो जाने के बाद विचार होना रहेगा।

विस्नी में विचार यह पाया जा रहा है कि श्री विस्सन राष्ट्र मण्डल के मिन देशों के साथ बोझा करने जा रहे हैं और ब्रिटेन की परम्पराओं को भी वह छोड़ रहे हैं।

ब्रिटेन की राष्ट्र मण्डल देशों के मान पर सीमा मुक्त में रियायत देने की परम्परा रही है। भारत को प्राथमिक यह है कि साम्राज्य बाजार में शामिल होने के बाद ब्रिटेन को भारतीय मान के प्रायात पर इस्तेस कमीशन की सिफारिश के अनुसार भीमा मुक्त भगाना ही पड़ेगा।

ब्रिटेन के साम्राज्य बाजार में सम्मिलित होने की वर्यपि पुर्ख संभावना और पुठभूमि बन चुकी है तथापि फ्रांस के लिए यह बात स्वागत योग्य नहीं है बीमा कि २३ जुलाई १९६७ के साप्ताहिक विनमान में पृष्ठ ३३ पर अपने इस समाचार से विवित होता है—

‘पश्चिम एशिया के मामले में पाँचवाँ सवार बन जाने की विफल कोलिब-के बाद दिवास ने यूरोपीय साम्राज्य बाजार में ब्रिटेन की सदस्यता को एक झटका दिया—१० जुलाई को साम्राज्य बाजार-भावीग की एक बैठक में बिदेसमन्त्री से कहसवाया कि पहले ब्रिटेन सुरक्षित भूदा का मोह छोड़ें और बाजार की कपि-नीति का बिना शर्त अपनाते तब यूरोप की ओर चल करे। (इसके पहले फ्रांस बड़ी सफाई से फ्रान्सीसी-ब्रितानी-विमान विकास कार्य से नाता तोड़ कर जता चुका था कि प्रेसीडेंट दिवास ब्रिटेन को प्राय बड़ने देने से रोकने के लिए ऐसे ही हमेशा कुछ न कुछ करते रहेंगे)। प्रेसीडेंट दिवास जब १२ जुलाई को पश्चिम जर्मनी की राजधानी बाम बर्लिन, तो जनका पहना लक्ष्य था ब्रिटेन की सदस्यता के मामले पर प्रातिवेय का समर्थन प्राप्त करना। पत्र उर्हूनि प्रधानमंत्री डॉ कीशिंगर की तमज्जामा मुक किया कि ब्रिटेन पनी साम्राज्य मंडो की सदस्यता न योग्य नहीं है। न सदस्य देशों का पूराप धमग है बिममें ‘एन-सी’ की शामिल नरन

यूरोपीय एकता को कमजोर नहीं बनाया जाहिये। यद्यपि ब्रिगल ने साफ घोषणा में नहीं कहा कि वह ब्रिटेन की सदस्यता के खिलाफ हैं लेकिन उनकी मंशा बिस्कुल साफ़ थी और वह चाहते थे कि कीटिगर यूरोप के सदस्य की बचीबच मेरे नाम कर दी जाये।”

(iii) यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ (European Free Trade Association—EFTA)— इसकी स्थापना ३ मई १९६० को की गयी। यूरोपियन सामान्य मण्डी व्यवस्था साम्राज्य बाजार (European Common Market) के ग्रेट ब्रिटेन और अन्य देशों को पर्याप्त आर्थिक हानि पहुँची, यद्यपि उनके दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए इस व्यापार संघ का निर्माण हुआ। इस संघ का सदस्य ७ राज्यों हैं— ग्रेट ब्रिटेन आस्ट्रिया डेनमार्क नार्वे पुर्तगाल स्वीडन और स्विट्जरलैंड। फिनलैंड २ मार्च १९६९ से ही इसका साथी सदस्य है। यह यूरोपियन मुक्त-व्यापार संघ के आर्थिक विकास के बाहरी छोर पर व्यवस्थित है यद्यपि इसे यूरोपियन सामान्य मण्डी व्यवस्था यूरोपियन आर्थिक समुदाय या साम्राज्य बाजार के आन्तरिक ६ (Inner Six) देशों की तुलना में बाहरी छोर (Outer Seven) भी कहा जाता है।

यूरोपियन मुक्त-व्यापार संघ यूरोपियन आर्थिक समुदाय की प्रयोजनात्मक आर्थिक संगठन है। इस संघ के अन्तर्गत सदस्य राज्यों द्वारा कर्तव्य करने वाले कर-बट्टाओं की व्यवस्था है। उसे सदस्य देशों से मिलने वाले देशों के माल पर शुल्की लगाने का अधिकार है। परन्तु ब्रिटेन को राष्ट्र मण्डल के सदस्य-देशों का खुली में दूध देने तथा उनके साथ विशेष व्यवहार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

ग्रेट ब्रिटेन पहले यूरोपियन सामान्य मण्डी व्यवस्था साम्राज्य बाजार में सम्मिलित होने को इसलिए विरोध उत्पन्न नहीं था क्योंकि उसे प्रथम ही उसकी सफलता में बड़ा समर्थन था और दूसरे वह राष्ट्र मण्डल के देशों के साथ अपना सम्बन्ध बनाम रखना चाहता था। किन्तु में अपनी स्थिति ठीकी बनाये रखने के लिए वह किसी ऐसे संगठन में सम्मिलित नहीं होना चाहता था जिससे वह अपना पूरा प्रभाव न खाल सके। लेकिन १९६२ तक ब्रिटेन का यूरोप के साथ नियमित व्यापार घट जाय से और उसकी कृषि की वस्तुओं की मण्डी लयमय समाप्त हो जाने से वह घबराकर हुई कि यूरोप के साथ अपना व्यापार व्यवस्था समाप्त हो जाय। इस अवयव निमित्त संवहन के लिए ब्रिटेन ने अपनी नीति में परिवर्तन किया और वह यूरोपियन साम्राज्य बाजार का सदस्य बनने का प्रयत्न करने लगा। ब्रिटेन के इस प्रयास से राष्ट्र मण्डलीय देशों में चिन्ता की स्वाभाविक लहर दौड़ गयी क्योंकि ब्रिटेन का यह कथन उनके व्यापार को बहुरी हानि पहुँचाने वाला था। उदाहरणार्थ इस समय भारतीय बाजार पर ग्रेट ब्रिटेन में कोई शुल्की नहीं है लेकिन ब्रिटेन के यूरोपियन साम्राज्य बाजार का सदस्य बन जाने पर भारतीय बाजार पर लगभग ३२ प्रतिशत शुल्की लय लागू की जायेगी और इस तरह भारतीय बाजार की मांग बड़ी लयमय समाप्त हो जायगी। १९६३ में ब्रिटेन के साम्राज्य बाजार प्रवेश के प्रयास को फ्रांस के विरोध के कारण विफलता मिली किन्तु अब जैसा कि पहले कहा जा चुका

है, उसका साम्राज्य बाजार का सम्बन्ध बन जाना सम्भव निश्चित सा हो गया। २९ अप्रैल १९१७ को यूरोपियन मुक्त व्यापार संधि द्वारा उसे यूरोपियन साम्राज्य में सम्मिलित होने की अनुमति मिल गयी है और ब्रिटिश प्रधान मंत्री साम्राज्य बाजार में प्रवेश के ब्रिटिश निश्चय की घोषणा अपने बेल की भोक्समा में ९ मई १९१७ का कर चुके हैं। यह स्पष्टजनीव है कि जब तक फ्रांस के जनरल डिवांग न ब्रिटेन के साम्राज्य बाजार प्रवेश का विरोध प्रधानतः निम्नलिखित कारणों से व्यापार पर किया जा—

(i) ग्रेट ब्रिटेन का एक वृषक टापू है, जहाँ यूरोप में उसका कोई स्थान नहीं है।

(ii) वह राष्ट्र मध्यम के साथ सम्बन्ध को बड़ा महत्त्व देता है अतः उसे इसके साथ ही सम्बन्ध बनाये रखना चाहिये।

(iii) ग्रेट ब्रिटेन सामान्य मन्त्रों में इसलिये प्रवेश चाहता है कि वह समुक्त राज्य अमेरिका के हितों को सुरक्षित रख सके।

(ix) पश्चिमी यूरोपियन संघ (Western European Union—WEU)—यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय की अस्तित्वा के परिणामस्वरूप २८ सितम्बर से ३ अक्टूबर १९२४ तक लन्दन में होने वाले एक सम्मेलन में पश्चिमी यूरोपियन संघ की स्थापना की गयी। ब्रिटेन फ्रांस पश्चिमी जर्मनी इटली और डैनीशैक्स देल (हालैन्ड बेल्जियम और लक्जमबर्ग) कम से कम १९९० तक के लिए परस्पर प्रतिरक्षा और अन्य उद्देश्यों को लेकर संगठित हो गये। इस संघ का एक अन्य उद्देश्य 'यूरोप के एक अन्य संगठन को प्रोत्साहन देना' भी था। इस संघ का निर्माण करते समय पर निश्चय किया गया कि पश्चिमी जर्मनी को मित्र राष्ट्रों का सैनिक अधिकार संपादन कर दिया जाय उसे नाटो में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया जाय। इसके पहले में पश्चिमी जर्मनी द्वारा यह स्वीकार किया गया कि वह अपने अस्त्रास्त्रों के उत्पादन पर स्वेच्छापूर्वक नियंत्रण करेगा। पश्चिमी जर्मनी ने प्रमुखता पुनः प्राप्त कर भी और उसे पुनः लक्ष्य धारण करने की अनुमति भी मिल गयी परन्तु उसने आन्तरिक आसायनिक और अस्त्री-अस्त्रों का निर्माण न करने की शपथ ली। यह भी निश्चित हुआ कि जब तक पश्चिमी जर्मनी की सरकार स्वयं अपनी प्रतिरक्षात्मक क्षमताएँ तैयार न कर ले तब तक अमेरिका ब्रिटेन और फ्रांस की क्षमताएँ पश्चिमी जर्मनी व उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र को रक्षा के लिए बर्हा रहें।

पश्चिमी-यूरोपियन संघ की सभी सदस्य क्षमताओं नाटो के सर्वोच्च क्षमतापति (Supreme Allied Commander of Europe—SACEUR) के अधीन रखी गयीं। पुनः लक्ष्यीकृत जर्मनी से फ्रांस के मय का निराकरण करने के लिए ब्रिटेन द्वारा यह बचन दिया गया कि वह अपनी क्षमता के ४ द्वितीयक और एक प्रभावशाली वायुसेना यूरोप की मुख्य भूमि पर बनाये रखेगा। समुक्त राज्य अमेरिका ने भी यूरोप में 'उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र की प्रतिरक्षा में अपनी समुचित योगदान प्रदान करने हेतु पर्याप्त क्षमताएँ' बनाये रखना स्वीकार किया।

पश्चिमी जर्मनी के पुनः संघीकरण की समाप्ति से प्रभावित होकर ११ जनवरी, १९४२ को सोवियत सरकार ने पश्चिमी जर्मनी के प्रतिरिक्त संघ के अन्य सभी सदस्य राष्ट्रों को विरोध-पत्र भेजे। इसके चार दिन बाद ही कठ ने पश्चिमी जर्मनी के साथ सामान्य सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। तत्पश्चात् एक प्रपत्र जारी करके सुप्रसिद्ध गोबियस के प्रेसीडियम ने जर्मनी के विरुद्ध 'बुद्ध' स्थिति का समाप्त कर दिया। यह 'बुद्ध स्थिति' २२ जून १९४१ को कठ पर जर्मन प्राक्रमण के समय से चली आ रही थी।

सोवियत संघ के विरोध-पत्रों को पश्चिमी यूरोपियन संघ के सदस्य राष्ट्रों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। २७ मार्च १९४२ को फ्रांस और तुर्की के बीच के बीच में जर्मन-स्वायत्तता संधि की संघुष्टि की कार्यवाही पूर्ण कर दी।

संगठन—पश्चिमी यूरोपियन संघ के कार्य का संचालन करने वाले अङ्ग हैं—(i) परिषद (ii) समिति (iii) सचिवालय (iv) अन्तर-राष्ट्रीय नियंत्रण एजेंसी एवं (v) स्थायी अन्तराष्ट्र समिति। परिषद में सदस्य देशों के विदेश मंत्री नियुक्त होते हैं। यह संघ के प्रमुख नीति निर्धारक अङ्ग है। यह संगठन की परिषद में प्रत्येक सदस्य के अधिकारों पर विचार करते हैं। इनके द्वारा अपने कार्य-कलापों का वार्षिक विवरण सत्रा को दिया जाता है।

समा में परिषद की परामर्शदात्री समिति के सदस्यों के प्रतिनिधि नियुक्त होते हैं। इसका मुख्य कार्यालय स्ट्रसबर्ग में है। वहाँ इनके वार्षिक बैठक में अपने-अपने देशों के विदेश मंत्रियों की भाँति ही कार्य संचालन में सहायता देने के लिए अनेक स्थायी समितियाँ हैं जैसे—प्रतिरिक्ता प्रयोग व अन्तराष्ट्रीय समिति, विरोधाधिकार नियम सम्बन्धी समिति और बजट नियंत्रण प्रयोग तथा प्रशासन सम्बन्धी समिति।

पश्चिमी यूरोपीय संघ का सचिवालय लक्जमबर्ग में है। इसका एक मुख्य अधिकारी है। सचिवालय का वार्षिक वार्षिक भाग है। अन्तराष्ट्रीय नियंत्रण एजेंसी पेरिस में स्थापित है और 'नाटो' के संघर्षाधीन जर्मन-कारियों के साथ निकट सहयोग के कार्य करती है।

स्थायी अन्तराष्ट्रीय समिति में सदस्य देशों के प्रतिनिधि हैं। इन समिति की स्थापना अन्तराष्ट्रीय व सामाजिक भाग है। इस संघ के उद्देश्य से की गई है। इस समिति के प्रयासों से दो कार्य हैं—(क) पश्चिमी यूरोपियन संघ के देशों की सैनिकों की कुशलता में वृद्धि और उनके प्रशासकों को सन्तुष्टि प्रदान करना एवं (ख) इन देशों की सैनिकों को अन्तर्गत सामग्री पुनः व वृद्धि करने के लिए उपायों का आश्वासन। यह स्मरणीय है कि पश्चिमी यूरोपियन संघ (WEU) यूरोपियन परिषद् (Council of Europe) के

साथ मर्यादा सहयोगपूर्वक कार्य करता है और इसके सदस्य यूरोपियन परिषद् की परामर्शदात्री या विमर्श सभा (Consultative Assembly of the Council of Europe) के भी सदस्य हैं।

घपती स्थापना के समय से लगभग 1 1/4 वर्ष तक पश्चिमी यूरोपियन संघ उचित ढंग से काम करता रहा लेकिन बीप्र ही इसके सदस्य देशों में मतभेद प्रकट होने लगे। फरवरी १९५७ में ब्रिटेन ने 'उत्तरी अटलांटिक परिषद्' और पश्चिमी यूरोपियन संघ की परिषद् को सूचित किया कि जर्मनी स्थित घपती सेनाओं में भारी कटौती करने का निश्चय किया है। ब्रिटेन ने इस कदम से 'संघ' के अन्य सदस्य राष्ट्र बड़ चिन्तित हो गये। ब्रिटेन के इस कदम पर घपती के अन्य सदस्य राष्ट्र बड़ चिन्तित हो गये। ब्रिटेन के इस कदम से 'संघ' के अन्य सदस्य राष्ट्र बड़ चिन्तित हो गये। ब्रिटेन के इस कदम से 'संघ' के अन्य सदस्य राष्ट्र बड़ चिन्तित हो गये।

१९५८ से ही पश्चिमी यूरोपियन संघ ने घपती को मुहड़ करने के विभिन्न प्रयास किये किन्तु सदस्य राष्ट्रों के मतभेद पूरी तरह मिट नहीं। फिर भी यह संघ कठिनाइयों और प्रम्पबन्धित परिस्थितियों में से गुजरता हुआ विद्यमान है।

(८) दक्षिणी-पूर्वी एशिया सन्धि-संगठन (South East Asia Treaty Organization—SEATO)

नाटो सन्धि संगठन द्वारा अटलांटिक क्षेत्र में साम्यवाद के प्रसार को रोकने की चेष्टा के बाद दूसरा क्षेत्र जिसकी सुरक्षा में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की प्रधान रण से रुचि हुई प्रशांत महासागर का 19५४ में चीन में साम्यवादी की विजय और सुदूरपूर्व में पुर्बपिका अर्थात् साम्यवादी प्रसार की सम्भावना ने अमेरिका को चिन्तित बना दिया। उसने सुदूरपूर्व में साम्यवादी प्रसार पर प्रभावशाली अ क्रम समान के लिए चीन के पारो और मित्र राष्ट्रों का एक बेरा स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न का पहला चरण ३० अगस्त १९५१ का अमेरिका फिलीपाइन्स समझौता था। इसके द्वारा दोनों ही देशों ने एक दूसरे को यह बताना दिया कि उनमें से किसी पर भी सशस्त्र आक्रमण होने की दशा में वे एक-दूसरे को सहायता देंगे। तत्पश्चात् दूसरा चरण अक्टूबर १९५१ के द्वारा पूरा हुआ जिसका उद्देश्य पूर्ववर्ती पूर्ण में किया जा चुका है। तृतीय चरण के रूप में कुछ और भी समझौते किए गए जिनमें से उल्लेखनीय में है अमेरिका जापान सुरक्षा सन्धि ८ सितम्बर १९५१ पाकिस्तान के साथ सैनिक सहायता सन्धि १९५४ तथा

राष्ट्रवादी चीन के साथ की गई संधि जिसके द्वारा फारमोसा और पीस्काडोर्स द्वीपों की साम्यवादी चीन के प्राक्रमण के विरुद्ध रक्षा का भार अमेरिका ने अपने ऊपर ले लिया।

किन्तु इन सब मुद्दों-संधियों मात्र में संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात के प्रति आश्चर्य नहीं हुआ कि वह साम्यवादी चीन के प्रसार का सफलतापूर्वक प्रतिकार कर सके। कोरिया में साम्यवादी चीन के प्रसार का हिन्द चीन में फ्रांस की पराजय ने उसे साम्यवादी शक्ति के प्रति बड़ा प्रतिकार कर दिया। १९५३ में ही जबिल ने संयुक्त राज्य अमेरिका के घाते यह प्रस्ताव रखा कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के लिए 'नाटो' जैसे एक संघटन का निर्माण किया जाए। डॉ. व. हिन्दू चीन में हो रहे स्वातंत्र्य युद्ध में होशी-निम्बू को साम्यवादियों द्वारा हाथ में बाने वाली सहायता रोकने के लिए यह प्रस्ताव समर्थक था। भारत ने साम्यवाद को अपने लिए घातक समझे है। हिन्द महासागर में साम्यवाद का प्रसार को अपने पर उत्तरी विपत्तनाम साम्यवादियों चीन का प्रश्न पर 'बिनेवा समझौता' हो जाने पर उत्तरी विपत्तनाम साम्यवादियों के पास बने जाने पर भारत को सिया का प्रदानमंत्री में जीव में कहा— 'मैं म्यांमारियों का प्रश्न व हिन्दू चीन में दक्षिणी ओर तक पहुँच गया है।' स्वाम और फिलीपाइन्स भी साम्यवादी प्रसार से भयभीत थे।

'सीडो की स्थापना— इस तरह दक्षिण-पूर्वी एशिया में साम्यवाद के प्रसार का विरोध करने की आवश्यकता समझ सभी सम्बन्धित छोटे-बड़े राष्ट्रों में की जाने लगी थी। इन परिस्थितियों में अप्रैल १९५४ में तत्कालीन अमेरिकन विदेश सचिव थी डेविस लन्दन गये और उन्होंने इस अवसर के लिए ब्रिटेन के सम्मुख नाटो जैसी एक सामूहिक सुरक्षा-योजना की योजना रखी। तत्पश्चात् दक्षिण-पूर्वी एशिया के लिए नाटो के समूह पर एक सुरक्षा संघटन की स्थापना के उद्देश्य से १ से ८ नवम्बर १९५४ तक फिलीपाइन्स की उपमहाद्वीप के बान्को (Baguio) नामक स्थान पर एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में दक्षिण-पूर्वी एशिया के बर्मा इण्डोनेशिया भारत पाकिस्तान तथा थाई को भी आमन्त्रित किया गया लेकिन इनमें से पाकिस्तान के प्रति रिक्त क्विती भी देना में सम्मेलन में जाय नहीं लिया। इस सम्मेलन में हुए विचार विमर्श और निबन्धों के फलस्वरूप ८ राष्ट्रों (संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन फ्रांस भारत, दक्षिण-पूर्वी एशिया सामूहिक सुरक्षा संधि' (South East Asia Collective Defence Treaty) पर हस्ताक्षर करके दक्षिण पूर्वी एशिया संधि संमेलन (South East Asia Treaty Organisation— SEATO) की स्थापना की। भारत बर्मा तथा चीन हिन्दोशिया में अपनी 'उपमहाद्वीप' नीति के कारण ही सम्मेलन में भाग नहीं लिया था।

संधि की प्रमुख धारों में इसके उद्देश्य— इस संधि की प्रस्तावना में लिखा गया है कि संधि-कर्ताओं का 'संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों और मानित स्वाधीनता जननन अखण्ड-स्वातंत्र्य तथा कानूनी व्यवस्था में' विश्वास है।

पहली धारा में लिखा है कि संविधानों राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय विचारों शान्तिपूर्ण नियंटारे की धीर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी भी रूप में शक्ति-प्रयोग की धमकी का मार्ग न धरने की प्रतिज्ञा करते हैं।

तीसरी धारा में हस्ताक्षर कर्ता राष्ट्रों न 'स्वतन्त्र संस्थाओं को सुदृढ़ रने शान्ति उन्नति एक सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और प्राविधिक सहायता देने' का वचन दिया है।

चौथी धारा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें लिखा है कि "यदि शान्ति करने वाले किसी देश के मतानुसार राज्य की स्थिरता अजेयता (सुसत्ता और राजनीतिक स्वतन्त्रता) को संविधान में सनिध मुठ या धम्य कभी कारण से मय उत्पन्न होया या बहु धम्य किसी कारण से प्रभावित होयी जिससे शान्ति-क्षेत्र में मय उत्पन्न हो तो शान्ति करने वाले राज्य सामान्य सुरक्षा की दृष्टि से विचार विमल करेग और सब देश अपनी अध्यात्मिक जिम्माओं के अनुसार संयुक्त रूप से कार्यवाहा करेंग तथा इसकी सूचना संयुक्त राष्ट्रसभ को देंगे। इस धारा में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किसी अत्यन्त-राष्ट्र के सीमा-क्षेत्र में उक्त समय तक कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती जब तक वहाँ की सरकार का निमन्त्रण प्रथम महमति प्राप्त नहीं हो जाती। इस धारा में शान्ति 'आक्रमण' के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का स्पष्टीकरण है 'साम्यवाहियों द्वारा आक्रमण'। साम्यवादी आक्रमण की स्थिति में ही अमेरिका सहायता देगा धन्यथा बहु धापी विवाद में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

पाँचवी धारा में शान्ति-सम्बन्धी सभी विषयों पर विचार करने के लिए तथा "सैनिक एवं किसी दूसरी यात्रना के लिए सलाह देने के लिए" प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के एक-एक प्रतिनिधि से निर्मित होने वाली परिषद का वर्णन है।

षाठवी धारा में इस शान्ति के क्षेत्र का स्पष्ट करके हुए कहा गया है कि बहु इसमें सम्मिलित होने वाले राष्ट्रों की सीमाओं तथा २१ डिग्री ३० मिनट की उत्तरी अक्षांश रेखा (हिन्द चीन की उत्तरी सीमा) है।

यह शान्ति अनिश्चित नाम के शान्ति की गई है किन्तु कोई भी देश एक धर्म का नाटिम दे कर इससे पूरक हा सकता है। सीटो का प्रधान कार्यालय चाईनीय की राजधानी बीजांग म है। यह शान्ति १६ फरवरी १९४५ से कार्यान्वित कर दी गई है।

सीटो का धूर्त्वाङ्कन—यद्यपि सीटो धीर नाटो की स्थापना एक धीर ही उद्देश्यों के लिए की गई थी किन्तु फिर भी सीटो नाटो की प्रपेक्षा एक दुर्बल संस्था है जिसमें न तो हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों में से किसी पर आक्रमण माना गया है धीर न ही किसी संयुक्त धना का निर्माण किया गया है। पामर (Palmer) के शब्दों में—“नाटो स्वाभाविक मित्रों का एक सुदृढ़ संग है—” जो कुछ वचनों धीर एक विलुप्त संगठन के द्वारा परस्पर बाधक है। —“दूसरे धीर सीटो एक सुदृढ़ संग है। मित्रता अत्यन्त बड़ा संगठन है, कोई स्वीकृत कमान नहीं है धीर कथनय कोई भी एकीकृत धीनिक

कार्यवाहियां नहीं हैं और जिसमें मार्च घटनात्मक ट्रेडी के स्वयंचालित उपबन्धों जैसा कोई उपबन्ध नहीं है।'

सीटों की अनेक प्रकार से आलोचना की गई है—

प्रथम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सीटो-संधि पर विचार करने से पता चलता है कि उसके संविधान में प्रयुक्त भाषा और और उसके वास्तविक उद्देश्य में विरोधाभास है। संधि की प्रस्तावना और बाराघों में बड़े उच्च धारकों की स्थापना की गई है किन्तु संधि के वास्तविक उद्देश्यों से इन धारकों का कोई मेल नहीं बैठता। प्रस्तावना घोषित करती है कि एक-दूसरे की सम्मसुता को मायता देने हुए इस्तामरकर्ता राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सम्मिलित उद्देश्यों और सिद्धान्तों के प्रति अपना विश्वास प्रकट करते हैं सभी सरकारों के साथ आतिथ्यपूर्ण रहने की इच्छा व्यक्त करते हैं तथा सभी लोगों के लिए समान अधिकार एवं आरम्भिकीय क सिद्धान्तों में विश्वास करते हुए आतिथ्य और स्वतन्त्रता के हानि को मजबूत बनाता चाहते हैं। सक्रिय वास्तव में संधि में निहित उद्देश्य इन धारकों के अनुकूल नहीं है। इस संधि संगठन की रचना में अमेरिका का कबल एक ही धमीष्ट था कि बहिष्की नियतनाम कगाहिया और आघोस को साम्यवादी प्रभाव में आने से रोका जाय।

जब मई १९२४ में डीन-ब्लेन-फ्लु (Dien-Bleu-Phu) का पतन हुआ तो पश्चिमी राष्ट्र समीरत प्रकक यह महसूस करने लगे कि "जिस व्यक्ति के पास हिन्द चीन का राजनीतिक नियन्त्रण होगा उस व्यक्ति की कपा पर ही आर्यभूत का प्रोस्तित्व कायम रह सकता है उसका वर्मा पर अवरदस्त प्रभाव रहेगा और अन्ततागत्वा वह मन्नायन प्रायद्वीप को दूसरे देशों से अलग करने में सफलता प्राप्त कर सभा।" इस अनुमति की अतिव्यक्ति भूतपूर्व अमेरिका राष्ट्रपति आइजकहोवर के इस कथन से होती है जिसमें उन्होंने यह प्रकट किया कि बहिष्की-भूरी एशिया में राज्यों की एक ऐसी कठार लगी है जिसमें यदि एक राज्य का पतन हुआ तो सब राज्यों का सम्पूर्ण हांवा ही फिर कर अरम हो जायगा। संयुक्त राज्य अमेरिका असा इस स्थिति की अवरुधना करने कर सकता था। यद्यपि उसका न इस क्षेत्र में अधिनिबन्धित साम्राज्य था और न इस क्षेत्र से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही था तो भी उसके लिए इनके अतिरिक्त कोई चारा न था कि साम्यवाद व राष्ट्रवाद की वैभवती चारा को द्रुस अत्र में अवरुध करने की प्रत्येक कोशिश की जाय। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही यह संधि की लगी। इसीलिए अमेरिका ने जुलाई १९२४ के वेनवा संधि-पत्र पर इस्तामर नहीं किये। उसी की प्रेरणा पर बहिष्की नियतनाम न भी इस संधि को मायता नहीं की। अमेरिकन टोड़ फोड़ (Sabotage) के कारण ही हिन्द-चीन आघोस (Indo-China Commission) को अपना कार्य स्वमित कर देना पड़ा इसीलिए वेनवा निर्णय के बावजूद भी नियतनाम के एकीकरण और संयुक्त निर्वाचन का मसला आज भी अवर में लटका पड़ा है।

दूसरे, ब्रिटेन और फ्रांस ने बकिंगी-पूर्वी एशियाई संघि संगठन में बधि इसलिये प्रवृत्त की कि वे इसके माध्यम से इस क्षेत्र में प्रवृत्त अपने पुराने उपनिवेशों पर अपना नियन्त्रण कायम रखना चाहते थे। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और फिलीपाइन्स की राय में जापान प्रबन्ध किरी प्रत्य एशियाई राज्य के उद्भव को रोकने के लिए इस संघटन की सदस्यता आवश्यक है।

तीसरे, पाकिस्तान ने इस संघि को इसलिये स्वीकार किया है क्योंकि उसका विचार है कि पाकिस्तान देशों की सहायता से उसकी शक्ति में वृद्धि होती रहेगी और वह बलि भारत के साथ उसके विचारों को व्यक्त करने में तथा विशेषकर कारनीर की समस्या को सुसम्भल में उसकी सहायता करेगी।

चौथे इस संघि का उद्देश्य न केवल साम्यवाद का विरोध करना है बल्कि यह भी है कि बकिंगी-पूर्वी एशियाई देशों में इस बात के लिए दबाव डाला जाय कि वे प्रसंलभता की नीति का परिष्कार कर अमेरिकन मैलिक संघटना की सदस्यता स्वीकार कर लें। इस उद्देश्य के कारण बकिंगी-पूर्वी एशियाई क्षेत्र में तनाव बढ़ा और प्रब भी बढ़ रहा है।

पांचवें, यह संघटन संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर से विस्तृत मेल नहीं जाता। चार्टर भौगोलिक क्षेत्रों में सामूहिक सुरक्षा-पद्धति की स्थापना के लिए प्रादेशिक संघटनों के निर्माण की अनुमति प्रदान करता है। परन्तु यह समझ पाना मुश्किल है कि ब्रिटेन फ्रांस संयुक्त राज्य अमेरिका, फिलीपाइन्स, आस्ट्रेलिया और पाकिस्तान मिल कर एक भौगोलिक क्षेत्र की रचना किस प्रकार करते हैं।

छठे न केवल इस और चीन की दृष्टि में यह संघि संगठन बिल्कुल शांति के लिए पाठक है बल्कि भारत बर्मा मंका और इण्डोनेशिया जैसे सटस्वतावादी देशों ने भी इसे अन्तर्राष्ट्रीय शांति के मार्ग में बाधक माना है। स्वर्गीय श्री नेहरू ने लोकसभा में भाषण बते हुए कहा था 'यह संयुक्त राष्ट्र संघ की भावना के विरुद्ध है इससे बिल्कुल-शांति में वृद्धि के स्थान पर तनाव और अमुरता बढ़ेगी। यह एक प्रकार का मुनरो सिद्धान्त है जिसे बकिंगी-पूर्वी देशों पर अबरबस्ती पाप दिया गया है।' भारत के भूतपूर्व रक्षामंत्री श्री कृष्णामेनन ने इस संघि संगठन पर प्रहार करत हुए कहा था, 'सुरक्षा का क्षेत्रीय संगठन नहीं है अपितु ऐसे विदेशी लोगों का संगठन है जिन्हें इस क्षेत्र में अपने हितों की सुरक्षा करनी है।' जनवादी चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-साई के शब्दों में 'यह आक्रमण का एक साधन है जिससे सामूहिक सुरक्षा का नवादा (पावरण) पोक रहा है।'^{१०}

† "It is not a Regional Organization for Security but it is an Organization of such foreigners who have to safeguard their interests in this area."

—V. K. Krishna Menon

* "It is a device of aggression under the disguise of Collective Security"

—Chou En Lai Chinese Prime Minister

सातवें, संयुक्त राष्ट्रों में इसके उद्देश्यों पर मतभेद नहीं है। बर्हि अमेरिका इसे साम्यवाद का रोकने का साधन मानता है बर्हि पाकिस्तान इस एक भारत विरोधी साधन के रूप में लेता है।

आठवें, यह कहा जाता है कि चीन पिछलग्गू राज्यों की सहाय में युद्ध करने वाला है और उपनिवेशवाद का प्रोत्साहन देता है। श्री नेहरू के शब्दों में सीटो एक गलत गमन-मार्ग है एक खतरनाक गमन-मार्ग है और एक अतिरिक्त हमें अनिष्टतापूर्वक प्रभावित करता है तथा एक प्रकार से होने के या चीन विचारों में बने हुए चीन प्रभुत्व का प्रमाण है। २७ अगस्त १९४२ को भारतीय राज्य सभा में मापन करते हुए श्री कृष्णामेहन ने इस बचन को "प्रोटेक्टोरेट का आधुनिक रूप" (Modern Version of a Protectorate) बताया था जिसमें साम्राज्यवादी शक्तियाँ किसी भी देश की रक्षा का उत्तरदायित्व, उसके विरोध के होते हुए भी अपने ऊपर ले लिया करती थीं। सितम्बर १९४४ में श्री नेहरू ने इस संधि का इत्तमा देते हुए कहा था कि यह "दुहरी बात और दुहरे विचार" का एक उदाहरण है।

स्पष्ट है कि सीटो के लिए बसिली-पूर्वी एशिया के देशों में (जिनके लिए सीटो बनाया गया है) कोई व्यापक जन-समर्पण नहीं पाया जाता। एशिया के देश इस संधि को पुराने उपनिवेशवाद का ही आधुनिक संस्करण मानते हैं। चैस्टर बॉवल्स (Chester Bowles) ने लिखा है कि—

“पीढ़ियों से एशिया के लोगों ने पश्चिम के रहने वालों की उदात्त बाली धोखे को घुमता है उनसे यह कहा गया था कि वे प्रारम्भ में अल्पमत के लिए एशिया में नहीं आये थे परन्तु उनके घाने का उद्देश्य यहाँ के निवासियों को ऊपर उठाना है और उन्हें पश्चिमी सभ्यता का बरबानी से परिचित कराना था। अब जब पश्चिम के लोग यह कहते हैं कि वे एशिया की साम्यवाद से रक्षा करने के लिए आये हैं तो स्वेड से वापस आकर क समी बगह कड़वी याद की एक तरह कीड़ जाती है।”

(९) अरब लीग

(Arab League)

अरब लीग अरब राज्यों का मध्य-पूर्व का एक प्रादेशिक संयुक्त है। तुर्की से लेकर अरब तक और मध्य से लेकर पाकिस्तान के प्रदेश को मध्य

“For generations Asians have seethed under the weary superiority of Western civilization explaining that they came originally to Asia not for personal profit but to uplift the natives and to introduce them to the blessings of Western civilizations. When Westerners now say that they have come to save Asia from Communism, a wave of bitter memory surges from Suez to the Sea of Japan.”

—Chester Bowles

पूर्व कहा जाता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें समान मापा समान ऐतिहासिक प्रयासों समान धर्म और पश्चिमी उपनिवेशवाद व इबरायल के विरुद्ध घुसापूर्व मानवधर्मों धार्मिक के बनेक एकताकारी तत्व दीर्घकाल से विद्यमान रहे हैं। धरब भागों ने इन एकताकारी तत्वों से प्रेरित हो कर ही घनेक बार सपठित होने का प्रयास किया और अन्त में धरब लीग जैसे प्रादेशिक संगठन की स्थापना के रूप में उनके प्रयासों का अन्त देखने को मिला। १९४४ में धरब एकता के लिए सिकन्दरिया में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें मिश्र ईराक सीरिया सेबानान जोर्डन सऊदी अरब और मयम न भाग मिया। इस सम्मेलन में धरब राज्यों का एकीकरण करने के लिए एक प्रतिज्ञापत्र (Covenant) बनाने का निर्णय लिया गया जिस पर इन सभी राज्यों के २९ मार्च १९४३ को हस्ताक्षर किये। इस प्रकार धरब लीग (League of Arab States) की स्थापना हुई। मार्च १९३३ में सीरिया जनवरी १९३६ में सुडान अक्टूबर १९३८ में ट्यूनीशिया और मोरक्को जुलाई १९६१ में कुवैत और अक्टूबर १९६२ में अरबीरिया में शामिल हो गया।

उद्देश्य—धरब लीग जिस उद्देश्य के लिए स्थापित की गयी वे प्रमुखतः इस प्रकार हैं—सदस्य अरब राज्यों में पारस्परिक बनिष्ठ सम्बन्ध बनाना राजनीतिक कार्यवाहियों में सामञ्जस्य स्थापित करना अरब राज्यों की स्वतंत्रता और प्रभुता की रक्षा करना पराधीन अरबियों को स्वतन्त्र करवाना फिलस्तीन पर अरबियों के शर्तों को मलबाते हुए उसे यहूदियों से मुक्त करवाना, पारस्परिक विवादों का शांतिपूर्ण निपटारा करना धार्मिक धार्मिक।

संगठन—धरब लीग के संगठन में एक परिषद (मजलिस Council) कुछ विदेश समितियाँ और एक सचिवालय है। सचिवालय काहिरा में स्थित है और इसका एक महासचिव होता है। इस लीग के प्रथम महासचिव मिश्र के प्रमुख रहमान जाबम पारा थे

सदस्य राज्यों से निर्मित मजलिस की बैठकें वर्ष में दो बार होती हैं। मजलिस के नियुक्त सदस्यसभित से लेने का प्रयत्न किया जाता है और किसी भी सदस्य को बहुमत का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं किया जाता। मजलिस की एक महत्वपूर्ण समिति 'राजनीतिक समिति' है। इस समिति में सदस्य राज्यों के विदेशमंत्री होते हैं। मजलिस के कार्यों को महासचिव द्वारा निष्पादित किया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि धरब लीग के निर्माण का एक सर्वाधिक प्रमुख कारण यही था कि फिलस्तीन की भूमि पर से यहूदियों को नष्ट कर दिया जाय। किन्तु लीग इबरायल के निर्माण को नहीं रोक सकी—फिलस्तीन की भूमि यहूदियों को मिला गयी। १९ मार्च, १९४७ को अरब राज्यों ने एक सामूहिक सुरक्षा-संधि मान्य की जिसे सम्मिलित प्रतिरक्षा और धार्मिक सहयोग संधि के नाम से पुकारा गया। संधि के अन्तर्गत एक सम्मिलित प्रतिरक्षा परिषद बनायी गयी जिसमें सदस्य देशों के विद्वत मंत्रियों और प्रतिरक्षा मंत्रियों को सदस्य बनाया गया। यह परिषद मजलिस के निवन्धन में रही और इसकी महापता के लिए एक स्थायी सैनिक-आयोग का निर्माण किया गया जिसमें सम्मिलित देशों के सेनाध्यक्ष रहे गये।

घरब सीधे भारत में काफी मजबूत रही क्योंकि प्रथम तो घरब राज्य सीरिया और लेबनान से फ्रेंच मैना में हटवाना चाहते थे और दूसरे वे इजरायल राज्य को समाप्त करना चाहते थे। परन्तु बाद के वर्षों में घरब राज्यों में कुछ बढ़ गयी उनके मठभेद प्रतिक्रिया हो गयी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में घरब नीति का महत्व घटता गया। घरब देशों में द्वितीय महायुद्ध के बाद से घरब तक विभिन्न बातियाँ हुई हैं जो बताती हैं कि घरब नीति अपने क्षेत्र में न तो राजनीतिक स्थिरता ही ला सकी है और न ही घरब देशों को कुशल नेतृत्व प्रदान कर सकी है। यदि देखा जाय तो घरब राज्यों में एकता के अभाव का मुख्य कारण ही उनके नेतृत्व का प्रश्न है और पश्चिमी शक्तियाँ अपने स्वार्थ के लिए इनमें निरन्तर पूरा दखलाना प्रयत्न करती हैं। यद्यपि वर्तमान काल में विगत कुछ वर्षों से मित्र घरब-एकता का प्रतीक बन गया था और एकतावादी एवं कर्जल नासिर के मध्ये के नीचे एकत्रित होने का प्रयत्न कर रहे थे लेकिन इजरायल के सम्मुख संयुक्त अरब गणराज्य की करारी हार ने एकतावादी तत्वों को एक बार फिर पीछे धकेल दिया प्रताप होता है। अरब क्षेत्र में सऊदी अरब के साथ, दमोनीशिया के राष्ट्रपति अम्बीरिया के प्रधानमंत्री और मोरक्को के राजा हुसैन नेतृत्व के लिए नासिर के अवरुद्ध प्रतिद्वन्द्वी हैं। सऊदी अरब व मोरक्को निरंकुश गणतन्त्रीय देश हैं तथा पश्चिम के समर्थक हैं जबकि नासिर पश्चिम के शत्रु हैं। अरब देशों में वृत्त १९६७ के अरब-इजरायल युद्ध में एकता की जो सी रेखा का निती थी वह कुछ के बाद फिर से बुझने लगी है और अरब एक प्रचण्ड व प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अंतराष्ट्र के मोहरे बनाते हुए अपना अपना सम्बन्ध सीधा करने की दिशा में हैं। अरब देशों की परिवार सरकार और अस्थिर नीतियाँ अरब-एकता के स्वप्न को साकार नहीं होने देती। इसमें कोई संशय नहीं कि अरब नीति अत्यन्त दुर्बल एवं अस्थिर सिद्ध हुई है और अरब एकता के प्रयासों में निराशा प्रकट हो रही है। हाँ वह प्रबन्ध कहा जा सकता है कि अरब राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई लहर की और विश्व का ध्यान आकर्षित करने में यह प्रबन्ध सफल हुई है। यदि मित्र सीरिया ईराक यमन आदि मुझल लेबनान मोरक्को अम्बीरिया और सीरिया आदि राष्ट्र अपने मठभेदों को भुला कर एक मुझल और विशाल अरब सच का निमण कर सकें तो यह अरब सच निश्चित रूप से अंतराष्ट्र का एक बहुत महत्वपूर्ण राज्य होगा।

(११) अरब-एकता

(Bagdad Pact)

नाटो और सीटो व अग्नि-समझौता बना लेने के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन सम्म अग्नि की ओर मुड़। वे चाहते थे कि सीरिया को अग्नि एवं अग्नि सम्मन्वयवादी देशों के चारों ओर वैश्व शक्ति का एक मुझल बना कर सम्मन्वय के प्रसार को रोक दिया जाय। नाटो के द्वारा वे पश्चिमी यूरोप में निश्चित हो गये और सीटो के द्वारा उन्होंने बालक-पूर्वी एशिया में एक लक्ष्य-रक्षा सीटो की। उनके इस प्रयास के अन्त में भारत, जर्मनी, अग्नि, अग्नि-समझौता मित्र और युगास्लाविया आदि मित्रों की मुट में शामिल न होने

की नीति अपना कर बाधक बन रहे थे। इसमें भारत सबसे प्रमुख था। अतः भारत की पूर्ण उपेक्षा करके उन्होंने मध्य एशिया के मुस्लिम देशों को संगठित करने की चेष्टा की। इससे अरबों में अपने प्रयोजनों की सफलता के लिए उन्होंने एक प्रकार से मुस्लिम एकता का भाव पैदा किया।

इस बार मध्य एशिया का संगठन बढ़ा करने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान को अपनी अंतरिम शासक का मोहरा बनाया। उसके सामने प्राथमिक व वैश्विक सहायता का कृपा डाला गया और प्रेरित किया गया कि वह टर्की के साथ मित्रता और पारस्परिक सहयोग की संधि कर ले। परिष्कारस्वरूप २३ फरवरी १९५४ को टर्की और पाकिस्तान के मध्य एक संधि हो गयी। टर्की-पाकिस्तान संधि को मध्य मध्य-एशियाई देशों के लिए सुला रखा गया और अमेरिका ने यह अभियान आरम्भ कर दिया कि वे देख इस संधि में सम्मिलित हो जायें। किन्तु पाकिस्तान के माध्य में यह काम बड़ा न था कि वह मध्य-एशियाई संधि संगठन का केन्द्र बनता। इराक ने इस बारे में मित्र एवं टर्की से बातचीत की जिसमें निम्न ले तो ऐसी किसी संधि में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया परन्तु टर्की ने अपनी सहमति प्रकट की। फलस्वरूप टर्की-इराक पारस्परिक सहयोग-संधि सम्पन्न हो गयी। इस संधि पर २४ फरवरी १९५५ को बगदाद में दोनों पक्षों की ओर से हस्ताक्षर कर दिये गये।

यह टर्की-इराक संधि ही बगदाद पन्थ का आधार बनी। इस पन्थकी संधि में यह कहा गया था कि सीप के द्वारा मध्य-पूर्व का सुरक्षा के लिए सक्रिय रूप से चिन्तित सभी राष्ट्रों के लिए सुते है। वह भी कहा गया कि ६ राष्ट्रों के इसमें सम्मिलित होने पर इस संधि संगठन की एक स्थायी परिषद बनायी जायगी जिसके सदस्य इन राष्ट्रों के मन्त्रिमण्डलों के सदस्य होंगे। इसमें दोनों देशों (टर्की व इराक) की सुरक्षा सम्बन्धी प्रत्येक व्यवस्थाओं तथा इराक के रास्ते टर्की को बिना कुञ्जी के अस्त्रास्त्र भेजने का सम्बन्ध था। टर्की-इराक संधि ने मित्र को बहुत स्पष्ट कर दिया क्योंकि इसके द्वारा अरब-एकता पर कुठागवात किया गया था और फरस की काड़ी की सुरक्षा को बढ़ा महत्व दिया गया था। इस संधि का ही एक परिणाम यह हुआ कि अरब देशों ने अमेरिका से चिड़ कर सीधियत संधि के साथ प्राथमिक मंत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

४ फरवरी १९५५ को सेंट ब्रिटेन टर्की की संधि में सम्मिलित हो गया और उसने १९५२ की संधि के स्वाभ पर एक नया समझौता किया जिसके अनुसार इराक पर सतस्य आक्रमण होने या आक्रमण की आशंका मात्र पर उसके (ब्रिटेन के) द्वारा उसे पूरी सहायता देने का वचन दिया गया। २३ सितम्बर १९५५ को पाकिस्तान इस बगदाद संधि का चौथा और १९ फरवरी १९५५ को इराक इसका पांचवां सदस्य बन गया। अब बगदाद में हुई टर्की-इराक संधि इस प्रकार पूर्णतः बगदाद पन्थ बन गई। ब्रिटेन को भी इस संधि संगठन का सदस्य बनाने का प्रयत्न किया परन्तु उसने मरम्य बनने से इन्कार कर दिया। यद्यपि इस संधि अरबों पन्थ का प्रमुख प्रेरक संघटक राज्य अमेरिका था परन्तु वह इसका पूरा सदस्य नहीं बना क्योंकि उसे मध्य

या कि ऐसा करने से उसके धीरे धीरे के सम्बन्धों में पर्याप्त कटुता उत्पन्न हो जायगी। फिर भी उसने इसकी प्राथमिक धीरे धीरे काङ्ग्रेस विरोधी (Counter Subversion) समितियों में नाम लेना स्वीकार कर लिया। वह इसम अपने प्रतिनिधि भेजने लगा। स्वेज शहर के संकट के बाव से तो १९२६ को एक विज्ञापित म राष्ट्रपति घाइबनहोवर धीरे धीरे प्रजातन्त्री ईजप बीनों ही बगबाद समझौते की प्रस्ताविका कर्तव्य में प्रशंसा कर चुके थे। २८ जुलाई १९२८ को संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात पर भी सहमत हो गया कि वह सहयोग देने की दृष्टि से समझौता करेगा। वह वह बोपला पहले ही घर हुआ कि प्रत्यक्षीय साम्यवाद के ध्येयों में कोई प्रभुता नहीं हुआ है परंतु वह मध्य एशिया के देशों को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता देता रहेगा तथा वह केप्टा करेगा कि इन देशों की आत्मरक्षा की क्षमता में वृद्धि हो। जुलाई १९२८ की प्रथमी सहमति के अनुसार प्रभु में अमेरिका ने टर्की ईरान और पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर ५ मार्च १९२९ को हस्ताक्षर कर दिए और इन प्रकार इनके द्वारा यह प्रत्यक्ष रूप से बगबाद-समझौते का संरक्षक बन गया।

बगबाद समझौते में एक प्रस्तावना धीरे व धनुष्येय थे। समझौते में कहा गया था कि हस्ताक्षरकर्ता राज्य अपनी सुरक्षा और प्रतिरक्षा के लिए परस्पर सहयोग करेंगे। वे एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने धीरे न ही ऐसे प्रत्यक्षीय धार्मिकों को स्वीकार करेंगे जो इस समझौते से असंगत हों। यह भी उल्लिखित था कि धरत नीच का कोई भी सदस्य प्रथम मध्यपूर्व की सुरक्षा से सक्रिय रूप से सम्बन्धित कोई भी प्रथम राज्य इस समझौते प्रथम लेख का सदस्य बन सकेगा। यह व्यवस्था धरत के धनुष्येय ३ में भी मयी थी धीरे धनी के बहुत ब्रिटेन मध्य-पूर्व के साथ कोई भी धार्मिक सम्बन्ध न रखते हुए भी इस समझौते में शामिल हो सका। धरत की धरत धारा में इसकी धरत ३ वर्षे निश्चित की गयी किन्तु साथ में यह भी कहा गया कि उसे ५ ५ वर्ष के लिए धरत धीरे बढ़ाया जा सकता है।

बगबाद वोट का संगठन काफी सरल है। सर्वोच्च संस्था विदेश मंत्रियों की एक परिषद थी जिसकी सहायता के लिए एक सैनिक तथा एक धार्मिक समिति थी। बगबाद में इसका स्थायी सचिवालय था। यह उल्लेखनीय है कि इस संगठन की पहली बैठक २१-२२ नवम्बर १९२३ को बगबाद में ईरानी प्रधानमंत्री दूर प्रसम्बर के समापित्व में हुई थी जिसमें यह बोपला की धरत थी कि यह धरत संयुक्त राष्ट्र संघ की धारा २१ के अन्तर्गत मध्य-पूर्व में शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए की गई है। १९२६ में तेहरान में इसकी दूसरी बैठक हुई थी जिसमें अमेरिकन प्रतिनिधि ह्यूबर्टन ने स्पष्ट रूप से यह बोपला की धरत कि यह धरत साम्यवादी आक्रमण का प्रतिरोध करेगी।

बगबाद पण्ड ने जो कि घोषित रूप की धरत की सीमा से नगे राज्यों में उत्तक विरुद्ध मुठबन्धी का तथा इस देशों में अमेरिकन सैनिक धीरे नवाई धरत की स्थापना का संयुक्त था अपने रूप से ही तीव्र राजनीतिक

बिबाद को खत्म दिया। मध्य-पूर्वीय प्रदेश के ही धनक नताओं ने इस समझौते की खोजबीन कर रहे हुए इसे मध्य-पूर्व के धान्तरिक मामलों में ब्रिटेन और अमेरिका का खुला हस्तक्षेप बताया। राष्ट्रपति नासिर क शब्दा में मध्य-पूर्व की प्रतिरक्षा का केवल इस प्रदेश के देशों के साथ सम्बन्ध है और हम किसी भी देश धनका देशों के समूह के संरक्षण को धत्वीकार करते हैं। हमारा यह बड़ा निश्चय है कि हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा अपने अन्य बल के साथ करेंगे।”* सोवियत संघ की दृष्टि में बगदाद पैक्ट ‘आक्रमक सैनिक तथा राजनीतिक गठबन्धन ही नहीं अपितु मुसलम बनाने के साधनों में से एक साधन तथा उपनिवेशवाद बीसा ही एक नये प्रकार के शोषण का साधन है।” मार्शल टीटो ने इस पैक्ट पर कठोर प्रहार करते हुए जोषित किया ‘मेरे विचार से बगदाद पैक्ट सत्तार के इस क्षेत्र के देशों और उनकी जनता का हित साधन नहीं करता क्योंकि यह उनकी एकता को नष्ट करता है। उसने किसी के भी विरुद्ध प्रतिरक्षा की दीवार नहीं खड़ी होती।”+

भारत तो इस प्रकार के सैनिक गठबन्धनों का सर्वत्र ही कठोरतम आलोचक रहा है। उसके दृष्टिकोण से सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि पाकिस्तान ने इसे स्वीकार कर लिया। इस पैक्ट में उसके शामिल होने के कारण उसे संकुच राज्य अमेरिका द्वारा प्रभूतमान में सैनिक सहायता दी गई और यह भारत के लिए अत्यधिक चिन्ता का विषय बन गया। पाकिस्तान का इसमें सम्मिलित होना निश्चित रूप से एक भारत-विरोधी कदम था। पिछले वर्षों में पाकिस्तान ने जिस नीति का अनुसरण किया उससे भारत का दृष्टिकोण सदा ही पुष्ट हो जाता है। बगदाद पैक्ट के साथ पाकिस्तान का काश्मीर का बाधा जुड़ा हुआ है। यह इस तथ्य से प्रमाणित हो गया है कि इस पैक्ट के सम्बन्धों में काश्मीर के प्रश्न पर विचार-विनिमय किया जाता रहा। पाकिस्तान की हर तरह यह कोशिश रही कि वह बगदाद पैक्ट के सदस्यों से प्रत्येक संभव सहायता प्राप्त करे ताकि भारत के विरुद्ध उसका उपयोग किया जा सके। इन तथ्यों के माध्यम से उसने विभिन्न देशों से सैनिक सामग्री प्राप्त करने का सफल प्रयास किया। भारत का यह दृष्टिकोण एतन्म सही था कि टीटो के साथ बगदाद पैक्ट भारत को सब तरफ से घेरने की और उसे हर प्रकार से दबाने की एक बहुरी कूटनीतिक व सैनिक साजिश है।

*“The defence of the Middle East concerns only the countries of the region and we reject the guardianship of any country or group of countries. We are fully resolved to defend our freedom with our armed forces.”

—Nasser

+“I consider that the Bagdad Pact does not serve the interests of the people because it disunites them—it constitutes no kind of wall of defence, whatever against anyone.”

—Tito

बयदाह पैक ने भारत में सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया में शान्ति के लिए एक
 सहाय्य बतारा पैक किया। इसमें स्वतन्त्र ईराक को ब्रिटिश का उपनिवेश
 बना दिया। यह संगठन अरबों की एकता तथा राष्ट्रीयता को प्रबलित करने
 लिए पश्चिमी शक्तियों का परबल सिद्ध हुआ।

बयदाह संधि संगठन १४ जुलाई, १९५८ की ईराकी शान्ति के कारण
 संकट में पड़ गया है। ईराक की नयी सरकार ने जिसके नेता अरब
 प्रमुख कमीम कासेम थे २४ मार्च १९५९ को बयदाह-संधि-संगठन की
 सदस्यता का परित्याग की घोषणा कर दी जिसके परिणामस्वरूप उसका प्रभाव
 कार्योन्मुख बयदाह से हटा कर बाह्य से जाया गया। इस प्रकार ईराक के
 संगठन से निकल जाने के कारण यह संधि-संगठन बुरी तरह बायस हो गया
 और यह समस्या उत्पन्न हो गई कि उसे अब किस प्रकार जीवित रखा जाए
 तथा किस नाम से पुकारा जाय। अस्त में २१ अगस्त १९५९ को इसका
 नाम बदल कर केन्द्रीय संधि-संगठन (CENTO) कर दिया गया।

(११) केन्द्रीय संधि-संगठन
 (Central Treaty Organization-CENTO)

बयदाह संधि के रूप सम्मेलनों ने अपने नये स्वरूप और नाम पर
 विचार-विमर्श किया और तब जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है २१ अगस्त
 १९५९ को उसे केन्द्रीय संधि संगठन या सेण्टो (CENTO) का नया नाम
 दिया। इसके वर्तमान सदस्य टर्की ईरान पाकिस्तान और ब्रिटेन हैं। इनके
 प्रतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका इसका अर्ध-सदस्य (Half Member) है
 और उनका सदस्यों में से अपने प्रतिनिधि प्रेषक भेजता है।

सेण्टो का संगठन बयदाह संधि के आधार पर ही हुआ है अतः
 उसका लक्ष्य मध्य एशिया में सामूहिक सुरक्षा की पारस्परिक व्यवस्था को
 बनाय रखना है। सेण्टो की परिपत्र की गारंटीबी बैठक १ मई १९६३ को
 कराची में हुई थी। उसमें चारों पूर्ण सदस्यों के विशेषमन्त्री और संयुक्त राज्य
 अमेरिका के विशेष सचिव भी डीन रस्क के नेतृत्व में एक प्रेषक दल ने भाग
 लिया था। इस बैठक में परिपत्र ने यह निश्चय किया कि वह अपनी सामूहिक
 सुरक्षा को बिना किसी प्रकार की बाधा पहुँचाने प्राथमिक सहयोग पर अधिक
 बल देगी। परिपत्र द्वारा जो निम्नलिखित शर्तों की गई थी उसमें कहा गया था
 कि-सन्धियों की परिपत्र में शान्ति और सुरक्षा का विकास करने के लिए
 संभव साधन जोड़ने के बारे में अपनी-अपनी सरकारों के बीच निश्चय की
 घोषणा की है। अन्तिम ध्येय विश्व-निष्पत्तीकरण है परन्तु उसके साथ
 स्पष्ट, मुनिष्ठ और पर्याप्त संरक्षण होना चाहिए। यह निश्चय किया गया
 कि संधि का द्वारा अपने ध्येय की प्राप्ति के बारे में निरन्तर जागरूक
 रखी जाए।

यह उल्लेखनीय है कि कराची सम्मेलन में पाकिस्तान में यह विचार
 प्रस्तुत किया कि साम्यवादी देशों की धमकी उसे भारत की ओर से अधिक
 संकट है। चीन द्वारा भारत पर आक्रमण के बाद उसे जो सैनिक सहायता
 मिली है उसके द्वारा वह पूर्णतया अधिक मुदुह हो गया है और अब संयुक्त

राज्य अमेरिका को भारत को सहायता देना बन्द करके पाकिस्तान को घोर भी प्रतिकूल सैन्य सामग्री देनी चाहिये ताकि वह विघ्न रूप से सक्रियताही हो जाय ।

सेण्टो जो कि बमदाह पैक का ही दूसरा नाम है मर्यादा 'नई बोलचाल में पुरानी शरारत है सोवियत संघ के विरुद्ध नाटो राष्ट्रों की रणनीति का पुरक है । यह नहीं मूलमा चाहिए कि इस एक फौजी प्रहार करके एक पश्चिमी एशिया के सैन्य-साजनों के घोषण की नीति को कायम रखने के उद्देश्य से ही सामूहिक सुरक्षा के नाम पर अमेरिका के संकेत से १९५३ में बमदाह फौजी-संगि हुई थी । इस फौजी-सहि-योजना के पीछे अमेरिका की जो वास्तविक मनोबुद्धि थी वह एक अमेरिकन पत्रिका में प्रकाशित लेख के इस अक्षरतरण में स्पष्ट हो जायगी— 'पश्चिमी एशिया में अमेरिकन पाह्य साइन की रक्षा के लिए यह धनिकार्य है कि इस क्षेत्र में अमेरिका का राजनीतिक अधिकार स्थापित हो । स्वयं पर अमेरिकन फौजी बलों के साथ ही हवाई और मौसैनिक बड़े भी कायम हों और किसी भी देश की चुनौती स्वीकार करने की पूरी तैयारी हो । इसके बिना पाह्य साइन की रक्षा अत्यावहारिक सिद्ध होगी ।'

(१२) अफ्रीका की एकता का संगठन (Organization of African Unity)

प्रादेशिक संघटनों के वर्णन के क्रम में दो राज्य 'अफ्रीका की एकता के संगठन' के बारे में भी लिख देना उपयुक्त होगा । यह एक तथ्य है कि अखिल अमेरिकनवाद के समान ही अफ्रीका भी द्वितीय महायुद्ध के बाद से 'अखिल अफ्रीका वाद का प्राबल प्रबल होता जा रहा है । इस प्राबलता की प्रबलता इतनी बड़ी गई कि मई १९६३ में अखिल अफ्रीका में हुए अफ्रीकन राज्यों के विश्व सम्मेलन में आना के मूलपूर्व राष्ट्रपति नक्रुमा (Nkrumah) ने यह मांग देश की कि अफ्रीकन राज्यों का एक समुक्त राज्य स्थापित किया जाय । यद्यपि अफ्रीकन अफ्रीकन राज्य इस सीमा तक जाय करने को सक्षम नहीं थे किन्तु फिर भी अफ्रीकनवाद की सहज ने सभी अफ्रीकन देशों के मानम को इतना उठे लित कर रखा था कि सम्मेलन ने २५ मई १९६३ को अफ्रीकन-एकता की घोर प्रथम चरण के रूप में अफ्रीका की एकता के संघटन का चार्टर स्वीकार कर लिया ।

चार्टर में यह व्यवस्था दी गई कि संघटन के ३ चक्र होंगे—

१. संघटन की सर्वोच्च मस्था राज्यों और आसनाध्यक्षों की एक सभा होगी । इस सभा की बैठक वर्ष में एक बार प्रथम की जायगी ।

२. संघटन की एक परिषद होगी जो सदस्य राज्यों के विदेश मन्त्रियों से मिल कर बनेगी । इसकी वर्ष में कम से कम दो बार बैठक होगी । परिषद अखिल अफ्रीकन महायोग की कार्यवाहियों का समन्वय करेगी तथा अध्यक्षों की ममा के प्रति उत्तरदायी होगी ।

३. संघटन का एक सचिव सचिवालय होगा जिसका अध्यक्ष एक महासचिव होगा । सचिवालय प्रधानता प्रशासकीय कार्यों के लिए जिम्मेदार होगा और संघटन की कार्यवाहियों को निपटायेगा ।

४ एक मध्यस्थता, समझौता और पंच-निर्णय बाबत होया। इसके द्वारा सर-राज्यों के पारस्परिक विवादों का फैसला किया जायगा।

५ संघन के अन्तर्गत अनेक विशेषज्ञ आयोगों की स्थापना की जायेगी जैसे प्राथमिक एवं सामाजिक आयोग, शिक्षा और संस्कृति आयोग, स्वास्थ्य-सफाई व खाद्य आयोग, मुरसा आयोग तथा वैज्ञानिक प्राथमिक एवं शोध सम्बन्धी आयोग।

संघन का बजट महासचिव द्वारा तैयार किये जाने की व्यवस्था है जिसके लिये आवश्यक धन सरसर्वा के अनुदानों द्वारा प्राप्त किया जायगा। ये अनुदान संयुक्त राष्ट्रीय-कर-निर्धारण मापक पर आधारित होंगे।

इस संघन की स्थापना तब की जायगी जब अफ्रीका के दो-तिहाई राज्य इसके चार्टर का अनुमोदन कर देंगे। जब तक ऐसे अनुमोदन प्राप्त न हों तब तक क लिए प्राथमिक अभाव में एक अन्तरिम सचिवालय (Provisional Secretariat) की स्थापना की जायेगी।

एशिया विकास बैंक

(Asian Development Bank 1965)

एशिया विकास बैंक की स्थापना का निर्णय ४ दिसम्बर १९६२ को किया गया था। यह निर्दिष्ट हुआ था कि इसके कोषागार पर इस्ताम्बुल करके बास १२ देरों में स १० एशियायी देश हो जायेंगे तो यह बैंक अपना कार्य विधिवत् प्रारम्भ करेगा। कोषागार में यह भी स्वीकार किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बैंक कोष के ट्रस्टी होंगे। एशियायी बैंक की स्थापना का प्रस्ताव सबसे पहले एशिया और सुदूरपूर सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघीय प्राथमिक आयोग (इकाफे) में रखा था। यह बैंक मूलतः एशियायी होगा क्योंकि निर्दिष्ट व्यवस्था के अनुसार बैंक की पूंजी का ९३% एशियायी देशों पर ही रहेगा।

कार्य—इस बैंक का प्रधान कार्यालय फिलीपाइन की राजधानी मनीला में होगा। इस बैंक का भी संविधान अपना चार्टर है उसके अनुसार बैंक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित होंगे—

(I) तात्कालिक एवं निजी विकासगत-पूंजी के विनियोजन को प्रोत्साहन देना।

(II) क्षेत्रीय, उपक्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय विकास-योजना के लिये धन की व्यवस्था करना।

(III) राष्ट्रीय विकास की नीतियों और योजनाओं के समन्वय में सहाम्यता देना।

(IV) विकास योजनाओं के लिये तकनीकी सहायता प्रदान करना।

(V) विनियोजन पूंजी की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं और निजी स्रोतों के साथ सहयोग करना।

एशियायी विकास बैंक अपने सदस्य देशों के बीच व्यापार की बढ़ोतरी में सहायक होगा क्योंकि इससे सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्रों पर होने वाले का प्रतिबंध समाप्त किया गया है कि इससे प्राप्त वित्तीय सहायता से इस

बामी प्राय का उपयोग केवल सदस्य देशों में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति हेतु किया जायगा। बैंक के विधान में यह व्यवस्था भी दी गई है कि जब तक बैंक के निदेशक मण्डल का २/३ बहुमत इस प्रकार की छूट नहीं दे वे विकसित देश बैंक से कोई वार्षिक सहायता नहीं पायेंगे।

सदस्यता—इस बैंक की सदस्यता उन्हीं राष्ट्रों को प्राप्त होगी जो एशिया एवं सुदूरपूरु सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघीय वार्षिक आयोग (इकाफे) के सदस्य हों या सारी सदस्य हों। इसके साथ ही वे सशोध और गैर सशोध देश भी बैंक के सदस्य बन सकेंगे जो संयुक्त राष्ट्र संघ अपना उसकी किसी विशिष्ट एजेंसी के सदस्य हों। अभी तक ३१ राष्ट्रों ने बैंक की सदस्यता के लिये प्रार्थनापत्र दिये हैं जिनमें से १६ एशियायी देश हैं।

पूँजी—एशियायी विकास बैंक की कुल पूँजी १०० करोड़ डॉलर होगी यद्यपि बैंक अपना कार्य १० करोड़ डॉलर की पूँजी से ही प्रारम्भ करेगा। इस १० करोड़ डॉलर में आधा सोना बिदेसी मुद्रा में परिवर्तनीय होना और शेष आधा सदस्य राष्ट्रों की स्थानीय मुद्रा के रूप में होना।

संकल्पित पूँजी—सदस्यता के लिये प्रापनापत्र देने वाले देशों की संकल्पित पूँजी इस प्रकार है—

(क) एशियाई देश—

१ अफ़ग़ानिस्तान	३ ३६	लाख	डॉलर
२ बांग्लादेश	८५	लाख	डॉलर
३ कम्बोडिया	१ ००	लाख	डॉलर
४ ची संघ	८ ५२	लाख	डॉलर
५ भारत	६१ ००	लाख	डॉलर
६ ईरान	६० ००	लाख	डॉलर
७ जापान	२०० ००	लाख	डॉलर
८ कोरिया	१ ०	लाख	डॉलर
९ लाओस	० ४२	लाख	डॉलर
१० मलेजिया	२० ००	लाख	डॉलर
११ नेपाल	२ १६	लाख	डॉलर
१२ न्यूजीलैंड	२२ ५३	लाख	डॉलर
१३ पाकिस्तान	३१ ३०	लाख	डॉलर
१४ फिलीपाइन्स	३५ ०	लाख	डॉलर
१५ सिङ्गापुर	१६ ००	लाख	डॉलर
१६ सिंगापुर	४ ०	लाख	डॉलर
१७ थाइलैंड	७ ००	लाख	डॉलर
१८ थाइलैंड	२० ००	लाख	डॉलर
१९. परिषदी समानता	० ६६	लाख	डॉलर

(ख) गैर एशियाई देश—गैर एशियाई देशों में से १२ ने इसकी सदस्यता के लिये प्रार्थनापत्र दिया है उनमें से ७ देशों की संकल्पित पूँजी नीचे लिखे (पृष्ठ ४०४) अनुसार है—

१. बेल्जियम
२. डेनमार्क
३. जर्मन गणराज्य संघ
४. नीदरलैंड
५. ब्रिटेन
६. अमेरिका
७. कनाडा

५	फ्रांस	इटली
५	जर्मनी	इटली
३०	नाथ	इटली
११	साल	इटली
१०	साल	इटली
२००	साल	इटली
२५	साल	इटली

बैंक की वास्तविक स्थापना का प्रबन्ध करने के लिये एक संघामन समिति की व्यवस्था है। इसके प्रतिरिक्त एक सलाहकार समिति की व्यवस्था भी की गई है जिसके मूल सन्स्य होंगे भारत भी सका ईरान जापान मशेकिया फिलीपाइन्स थाईलैंड पश्चिम बियतनाम और पाकिस्तान।

बैंक में मतदान व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि लघु राष्ट्रों की भाषाएँ एवं भी नहीं प्रथमिक पूंजी लगाने वाले देशों का सम्मान भी बना रहे। इसीमिसे २० प्रतिशत मौलिक मत रहे घरे हैं और ८० प्रतिशत मत बैंक की पूंजी में सदस्य राष्ट्रों के योगदान के अनुपात के आधार पर रहे गये हैं।

यह बैंक निश्चित रूप से एशियायी देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका भरा कर सकेगा। इसके सम्बन्ध में अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन्सन का लिखना है कि 'यह एशिया की विविधतापूर्ण भूमि के लिये एक प्राथिक बोधला पत्र है।' -- 'इससे स्मूथों और प्रसवताओं का निर्माण किया जा सकता है नदियों को नियंत्रित किया जा सकता है तथा नई फसलों और नई जाति के पशुओं का विकास हो सकता है। इसमें उद्योग प्रकाश प्रदीपित भावनाएँ निहित हैं जिस प्रकार हमारे स्वयं प्रदीपित हैं। सीमित इस की ही माय्यता है कि एशियायी विकास बैंक लघु राष्ट्रों के लिये प्राथिक-प्रगति की दृष्टि से बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रादेशिक संघटनों का मूल्यांकन

प्रादेशिक संगठन प्राथिक सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग के संगठन भी हो सकते हैं तथा विमुक्त सैनिक या सुरक्षा संगठन भी। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत जिन प्रादेशिक संगठनों का बर्णन किया गया है उनमें से कुछ तो व्यापारिक एवं प्राथिक विकास से सम्बन्धित संगठन हैं और अन्य मुख्य रूप से सैनिक संगठन हैं। प्राथिक व व्यापारिक सहयोग के संगठनों को सामान्यतः उपयोगी और हितकर माना जा सकता है लेकिन सैनिक संगठन सुरक्षा संगठन कुछ आलोचना के पात्र हैं—

प्रथम इन सैनिक संगठनों के प्रोत्थित्य को स्थापित करते समय सर्वत्र संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की २१वीं धारा का हवाला दिया जाता है और आयरला के अधिकार की पुष्टि की जाती है। परन्तु चार्टर की प्रादेशिक संगठनों सम्बन्धी इस धारा की गतत और मतमानी व्याख्या करके इन संगठनों को उचित निन्द करने का प्रयास किया जाता है। आयरला का प्रथम तो कर्त्तव्य ही तब होता है जब किसी देश पर कोई देश अतन्त्र आक्रमण आरम्भ

र दे। वस्तुस्थिति यही है कि इन संगठनों के द्वारा शक्ति-संतुलन की उस प्राचीन पद्धति को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है जिसका संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर हमेशा के लिए प्रगट करता आया था। ९ दिसम्बर १९४२ को संयुक्त राष्ट्र संघ की राजनीतिक समिति में श्री बी. के. मेनन ने स्पष्ट रूप से कहा था—

‘हमारा कहना है कि वे (सुरक्षा संघ) २१वीं घाट के प्रत्यक्ष नहीं पावे क्योंकि प्रतिरक्षा की व्यवस्था का प्राथम्य अभी समय है जबकि अभी सशस्त्र आक्रमण का प्रारम्भ हो जाय।

दूसरे, चार्टर की २४वीं धारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखने का मुख्य उद्देश्यवाचित्व सुरक्षा परिषद को सौंपती है ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ की तरफ से आक्रमण का प्रतिबन्ध निरोध किया जा सके। परन्तु वे प्रतिरक्षा संगठन इस माय्यता पर आधारित हैं कि आक्रमण निरोध की कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र संघ की देख-रेक में न होकर इनके द्वारा सम्पादित होनी चाहिये। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन प्रतिरक्षात्मक संगठनों में कार्य सम्पादन के लिए परिषदों (Councils) की व्यवस्था की गई है जिनकी बैठकें किसी भी समय प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही पर विचार करने के लिए बुलाई जा सकती हैं। सुरक्षा परिषद को भी इसी प्रकार की व्यवस्था है। यह इस तरह रही गई है कि निरन्तर काम कर सके और आक्रमण प्रारम्भ होने या आक्रमण की संभावना प्रस्तुत होने पर उसे रोकने के लिए आवश्यक कार्यवाही पर प्रतिबन्ध विचार कर सके। इस तरह स्पष्ट है कि प्रादेशिक प्रतिरक्षात्मक संगठन मूलतः इस विचार पर आधारित हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ सामूहिक सुरक्षा की एक प्रभावशाली व्यवस्था का विकास करने में सफल नहीं हुआ है और विश्व के राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए उस पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। अन्य जगहों में वे सुरक्षा व्यवस्था प्रतिरक्षा संगठन स्वयं को एक प्रकार से संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रतिद्वन्द्वी बनाने में मग्ये हुए हैं और नवविषय में संघ की घसकता के प्रतीक बन सकते हैं। हैमिल्टन फिश आर्मस्ट्रांग (Hamilton Fish Armstrong) का स्पष्ट मत है कि—

“प्रादेशिक समझौतों की एक शृङ्खला कुछ समय में संघ की विश्व व्यापी प्रकृति और उद्देश्यों को हक सकती है।”

इसी प्रकार हंस केल्सन (Hans Kelson) का विचार है कि—

‘इस प्रकार की स्थापना व्यवस्थायें उस राजनीतिक और वैधानिक व्यवस्था का विघ्नोत्पन्न हैं जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र की रचना की गई है।’⁺

इस सम्बन्ध में प्रो० ग्रेसन किर्क (Greyson Kirk) का यह कथन उल्लेखनीय है जो उम्होंने नाटो मंच के बारे में व्यक्त किया था—

*Dean Vera M Main Trends in Post War American Foreign Policy p. 84

+Ibid p. 84

प्रश्न में उसके प्रभाव में संयुक्त राष्ट्र सब के प्रभाव के कम होने की
 धारणा है। यदि उसने संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत सब के प्रभाव का
 विश्व के पैमाने पर बिभाजन कर दिया तो उसके परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र
 संघ के विकास की समस्त सम्भावनाएँ लुप्त हो जायेंगी। उसमें संयुक्त राष्ट्र संघ
 की जनरल असेम्बली में गुट के आधार पर मतदान करने की प्रणाली का
 बल मिलेगा।

तीसरे अनेक प्रांतीय संगठनों की प्रेरक शक्तियाँ और प्रादेशिक
 अमेरिका ब्रिटेन हैं। इन मध्य सयुक्तों के कारण राष्ट्रों के मध्य सहयोग
 नहीं बढ़िते हैं। इन मध्य सयुक्तों के कारण राष्ट्रों के मध्य सहयोग
 और पाकिस्तान के सम्बन्ध और भी बुराब हो गये तो बगदाद पैक्ट में प्रारंभ
 राष्ट्रों के बीच फूट डाल दी। था कल्ल मैतन का यह बहना सही है कि पैर
 प्रादेशिक शक्तियों के कारण प्रादेशिक सुरक्षा संगठन 'स्युनाधिक मात्रा में
 उपनिवेशवादी शासन की धार प्रतिगमन' हो गए हैं। यी नहक न मी बहा
 बा—'फोबी संधियाँ उपनिवेशों पर प्रमुख कायम रखने का जरिया बन रही
 हैं।' यी सका की फोबी संधियाँ एशिया और अफ्रीका की स्वतंत्रता की नई
 भावना के विरुद्ध साम्राज्यवादी राष्ट्रों की मात्रिज की प्रतीक हैं।"

बीच यदि यह मान लिया जाय कि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की
 २१वीं धारा प्रादेशिक संगठनों के लिए अनुमति प्रदान करती है ना प्रश्न
 उठता है कि टर्की जिम प्रकार नाटो संधि में शामिल है जबकि जिन का
 सम्पूर्ण के साथ किधर में भौगोलिक सम्बन्ध है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका,
 सोवियत संघ का कर्बोकर सम्बन्ध है। ६ दिसम्बर १९४६ को प्रधानमंत्री भी
 नेहरू ने भारतीय राज्य सभा को संबोधित करते हुए कहा था—

"मेरी विमर्श राय में इनमें से अधिकतर संधियाँ चार्टर के प्रतिफल
 हैं। यू. एन. चार्टर में प्रादेशिक संगठनों की व्यवस्था की गयी है परन्तु उन
 किन्हीं के संगठनों की नही बिमका निर्माण हुआ है। क्षेत्र की घोर दक्षिण।
 में अटलांटिक क्षेत्र का समन्वय नहीं है। बहा भी एक सदस्य ऐसा है जिसका
 मीडिटरेनियन क्षेत्र के साथ सम्बन्ध है ? उसके अटलांटिक का विस्तार होगा
 है। टर्की का अटलांटिक से क्या सम्बन्ध है ? परन्तु मेरा विचार है कि चार्टर
 की व्यवस्थाओं से मत नहीं लने और उसका परिचालन यह है कि प्रश्न में जहाँ
 तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध है सुरक्षा में कोई बृद्धि नहीं होती अतः उसके स्थान
 पर जीव युद्ध तथा घम में ही बृद्धि होती जाती है।"

"It is my humble opinion that many of these facts are
 against the Charter of the UN. The UN Charter
 provides for regional organizations but not of the type
 which have taken place. Look at the region I can
 understand the Atlantic region. Even there a member
 of Mediterranean countries comes in. That extends

भारत के भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री श्री कृष्ण मेनन ने स्पष्ट शब्दों में यह बता दिया था कि सीटो एक क्षेत्रीय संघटन नहीं कहा जा सकता। उन्हीं के शब्दों में—

‘सीटो एक क्षेत्रीय संघटन नहीं है, बल्कि एक क्षेत्र के संरक्षण के लिए यह कुछ देशों का संगठन है। यह राज्यों की संरक्षण प्रणाली का प्राथमिक रूप है। यह कुछ साम्राज्यवादी देशों तथा कुछ ऐसे देशों का संगठन है जो एक क्षेत्र की सतहों में बसा कर उसके संरक्षण के लिए एक साथ मिल कर उसके संरक्षण के हामी हैं। हम भी उस क्षेत्र के पक्ष में हैं और हम कहना चाहते हैं कि हमें इस प्रकार के संगठन की आवश्यकता नहीं है। एक क्षेत्रीय संघटन के रूप में भी संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के अन्तर्गत इस प्रकार के फौजी युद्ध के लिए कोई स्थान नहीं है।’

इस तरह स्पष्ट है कि प्राथमिक एवं व्यापारिक विकास के लिए बनाए गए प्रादेशिक संघटनों की खोज कर सैनिक व सुरक्षा सक्षमों पर आधारित सभी प्रकार के प्रादेशिक एवं अन्य सैनिक संघटन अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के लिए बाधक हैं, यद्यपि इनका परिचयाग किया जाना चाहिए। विगत १ वर्षों का इतिहास यह बताता है कि इन सैन्य संघटनों का व्यावहारिक महत्व मरिहास्य है। १० वर्ष पहले रूस और अमेरिका एक दूसरे के उग्रतम विरोधी थे जबकि आज इन प्रतिरक्षा संगठनों के होते हुए भी एक-दूसरे के कुछ अधिक निकट पाए हैं। पाकिस्तान चीन के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके सीटो और संघटो संघटनों में वरार बाल चुका है। अमेरिका ने इन संघटनों को बनाया या साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए और पाकिस्तान ने साम्यवादी चीन से अपनी साठगाँठ खोज कर अमेरिका के संयुक्तों को बबरवस्त घावात पहुँचा दिया है। अमेरिका ने पाकिस्तान को साम्यवाद का प्रतिरोध करने के लिए जो हथियार दिये थे उनका पाकिस्तान द्वारा सितम्बर १९६५ में भारत के विरुद्ध कुत्समकुत्सा प्रयोग किया गया। यह घटना बताती है कि सैनिक संघटनों के अग्रस्य सैनिक कार्यवाही के समय और बेसे भी संघटन के उद्देश्यों के प्रति निष्ठावान रहें इसकी प्राप्ति करना सपनों की दुनिया में रहना है। प्रत्येक देश के अपने राष्ट्रीय हित होते हैं और कुछ राष्ट्र ऐसे होते हैं जो स्वयं के राष्ट्रीय हितों को भी परबाह न करते हुए अस्त्र और सैन्य बल का लंग नाच करने में ही कुली का अनुभव करते हैं। आज समय की पुकार है कि सैन्य संघटनों के स्थान पर निःशस्त्रीकरण की विद्या में धागे बढ़ते हुए शिष्यो और जीने दो के सिद्धान्त का सभी राष्ट्र अनुसरण करें। यदि

the Atlantic what has Turkey got to do with the Atlantic? But I think they are not in tune with the Charter... the result is, in the balance you don't have greater security so far as armaments are concerned but you have cold war and fear.”

—Jawahar Lal Nehru, Speech in Rajya Sabha on Dec. 9 1956.

"सोहा बजाने की नीति पर ही बसते रहा जायगा ता यह निश्चित है कि मानवता सुलीय महायुद्ध के विस्फोट से नष्ट हो जायगी। 'संघर्ष मृत्यु-पथ है सहयोग जीवन पथ'—यह विषय बतायों राजनीतियों और सैन्य विचारकों पर निर्भर है कि वे सत्ता का किस पथ पर से जाना चाहते हैं।

EXERCISES

1 Can Regionalism promote world peace ? Illustrate with reference to NATO and SEATO

क्या क्षेत्रीयवाद विश्व-शांति को उन्नत बना सकता है ? नाटो और सीटो के संदर्भ में बताइय।

2 Describe the main provisions of the North Atlantic Treaty of 1949 and examine its compatibility with the United Nations Charter and its effects on Collective Security

१९४९ की उत्तरी अटलांटिक संधि की मुख्य व्यवस्थाओं का बखुल कीजिए तथा स्पष्ट कीजिए कि मयुक्त राष्ट्र के चार्टर से इस संधि का औचित्य क्या है। इसका मार्श्विक सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा

3. What is Pan Americanism ? What has been its effect on world politics since 1920 ?
प्रजिस अमेरिकनवाद क्या है ? १९२० से विश्व राजनीति पर इसका प्रभाव रहा है ?

4. What do you know about European Common Market. Examine its effects on world politics.
यूरोपियन साम्राज्य के बारे में क्या जानते हैं ? विश्व राजनीति पर इसका प्रभाव की परीक्षा कीजिय।

5 Write short notes on the following — [a] Organization of American States (O.A.S.), [b] Dunkirk Treaty [c] The Brussels Treaty 1948 [d] European Defence Community [E.D.C.] [e] U.S. Japanese Defence Pact [f] Warsaw Pact [g] Different Organizations of European Integration, [h] Bagdad Pact [i] South East Asian Treaty Organization—S.E.A.T.O [j] Balkan Pact [k] The ANZUS Pact, [l] Arab League [m] Organization of African Unity [n] The Soviet System of Collective Security [o] CENTO

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

- (a) अमेरिकन राज्यों का समूह (b) इंग्लैंड संधि (c) बुल्गेरिया संधि १९४८ (d) यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय (e) अमेरिका जापानी प्रतिरक्षा समझौता (f) आरसा पैक्ट (g) यूरोपियन एकीकरण के विभिन्न संगठन (h) बगदाद समझौता (i) सीटो

(j) बाल्कन समझौता (k) दक्खिण समझौता (l) अरब सीय (m) अफ्रीका की एकता का संगठन (n) सामूहिक सुरक्षा की सोवियत व्यवस्था (o) सीटो ।

6. Article 52 of the Charter of the United Nations provides for the creation of regional agreements for the maintenance of international peace and security. Mention the regional agreements that have been created under this Article and examine briefly the nature of the work that is being done by them in the cause of international peace.

अनुच्छेद 52 के अन्तर्गत के क्षेत्रीय संधि और सुरक्षा कायम रखने के लिए प्रादेशिक संधि क्षेत्रीय संगठनों के निर्माण का प्रावधान है । उन क्षेत्रीय संगठनों का वर्णन कीजिए जिनकी रचना इस अनुच्छेद के अन्तर्गत हुई है और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय शांति के नाम पर किए जाने वाले इनके कार्यों की प्रकृति की भी परीक्षा कीजिए ।

- 7 "I am to say one thing with reference to SEATO or SEADO. It is hardly a correct designation for an organization which has not much to do with Asia at all." (Nehru) Discuss.

"मुझे सीटो या सीडो के सम्बन्ध में एक बात कहनी है । वह एक संगठन के लिए, जिसे एशिया से कोई लेना-देना नहीं है एक उपयुक्त नाम नहीं है । (नेहरू) विवेचना कीजिए ।

- 8 Do you agree that regional agreements for international peace and security are, at best, a "necessary evil" ?

क्या आप इन बात से सहमत हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय संगठन एक आवश्यक बुराई है ?

- 9 Give a critical estimate of any one of the military alliances (NATO SEATO or Warsaw Pact) and its Warlike and peaceful possibilities

नाटो सीटो या वारसा पैक्ट में से किसी एक सैनिक संधि का आगा-बनात्मक मूल्यांकन कीजिये और इसकी युद्ध-पैसी-प्रपचा शांतिपूर्व सम्भावनाओं को बताइये ।

7

राष्ट्रमंडल और भारत

(THE COMMONWEALTH OF NATIONS
AND INDIA)

- 1 राष्ट्रमंडल की प्रकृति
- 2 राष्ट्रमंडल का ऐतिहासिक स्वरूप
प्रारम्भिक स्वरूप द्वितीय महायुद्धोत्तर स्वरूप एवं वर्तमान स्वरूप
- 3 राष्ट्रमंडल का संगठन
- 4 राष्ट्रमंडल के उद्देश्य
- 5 राष्ट्रमंडल के सदस्य राज्य
- 6 कोलम्बो योजना
- 7 भारत और राष्ट्रमंडल
- 8 राष्ट्रमंडल का भविष्य

'राष्ट्रमण्डल किसी कठोर व अभ्यावहारिक कानूनी सिद्धान्त पर आधारित
 नहीं है। यह एक प्रकार के व्याप्यात्मिक समूह का प्रतीक है इसका
 तब कुछ स्वतन्त्र राज्यों का ऐसा समूह है जो पारस्परिक
 विश्वास, मित्रता तथा समान प्रादुर्भाव के कारण प्राप्त में
 मित्रता के सूत्र द्वारा बंधे हुए हैं। यह ऐसे राज्यों
 का एक समुदाय है कि जो यह जानते हैं
 कि किस प्रकार शांति व मैत्री के
 माताभारत में रह कर अपने तथा मानव
 समाज के हित व कल्याण के लिए
 सहयोग किया जा सकता है और
 जिनकी जीवन पद्धति
 अनिर्धार्य विधि शासन
 एवं मानव के मूल
 अधिकारों के प्रति
 भारत की भावनाओं
 पर आधारित है।

—वी. प्रार्थर ह्यूंडरसन

विश्व राष्ट्रमण्डल
 राज्यों के व्यवस्थित
 संग्रह से अधिक कुछ नहीं
 है। इसमें विश्व के मामलों में
 परस्पर संघर्ष रद्द की कोई कार्य
 पद्धति नहीं है और न कोई सामान्य
 जिम्मेदारियाँ हैं, और इनमें से कई राष्ट्र
 एक दूसरे से भयङ्क भी करते रहते हैं। ये
 राष्ट्र मिल कर एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति
 उपस्थित करते हैं जिसे राष्ट्रमण्डल कहना
 इस शब्द का उपहास करना होगा।

—इकोनोमिस्ट

राष्ट्रमण्डल और भारत

(The Commonwealth of Nations and India)

राष्ट्रमण्डल की प्रकृति—राष्ट्रमण्डल (Commonwealth of Nations) का पुराना नाम ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nations) है। यह एक विशिष्ट प्रकार का संगठन है जिसे न तो प्रादेशिक संधि घषवा संगठन कहा जा सकता है और न एक राज्य की संज्ञा ही दी जा सकती है। यह न राष्ट्र है न मैत्री-संधि और न ही एक संघ।

राष्ट्रमण्डल एक प्रादेशिक संगठन घषवा संधि इसलिए नहीं है क्योंकि वह "घत्यधिक विस्तार हुआ है और इसकी सामक्य शक्ति कमी-कमी व्यावहारिक कम सेकम मानना मक अधिक होती है। जो सूत्र इसके सदस्यों को बांधते हैं वे एक साथ ही घत्यधिक बहद और अनीपचारिक तथा घत्यधिक गहरी अड़ों बासे और परम्परागत हैं।"

राष्ट्रमण्डल के बारे में १० जनवरी १९५१ को अपने एक भाषण में कनाडा के उत्कामीन प्रधानमन्त्री सरिन ने कहा था—

"राष्ट्रमण्डल को एक राजनीतिक इकाई नहीं माना जा सकता है। यह एक संधि-व्यवस्था नहीं है। इसकी कोई सामान्य नीति नहीं है। विश्व-राजनीति की समस्याओं के बारे में राष्ट्रमण्डल के राष्ट्र पृथक-पृथक निर्णय करते हैं, और उसका कोई भी सदस्य स्वतन्त्र निर्णय के अपने अधिकार का परित्याग करने को तैयार नहीं है।

श्री सरिन के विचार से बहुत कुछ मिलते-जुलते हुए विचार संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्कामीन भारतीय राजदूत श्री भी एस० मेहता ने ७ अगस्त १९५४ को न्यूयार्क में किये गये एक भाषण में अभिव्यक्त किये थे—

"The Commonwealth is too scattered and its driving force is at times less practical than sentimental. The ties that bind its members are at once too loose and informal and too deep-rooted and traditional. While its members consult with each other regularly on many matters, they have deliberately avoided setting up elaborate machinery for commonwealth co-operation.

'यह सब विदित है कि राष्ट्रमण्डल कोई वैधानिक संगठन नहीं है। यह कोई राजयोपरि संस्था भी नहीं है। यह एक ऐसा समुदाय है जिसके भीतर देशों का एक समूह अनुभव और कौशल के एक मञ्चार में भाग लेता है। ऐसा नहीं है कि ये देश सदा एक दूसरे के साथ सहमत ही हों तथा साथ-साथ जानना मन है अनेक घबसतों पर उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने मतभेदों का परिचय दिया है। स्वतन्त्र और प्रगुता सम्पन्न राष्ट्रों के स्वतन्त्र समुदाय में सहज ही यह भावना की जा सकती है। उनमें से कोई भी देश इस बात के लिए तैयार नहीं है कि वह एक शिबिर का अनुयायी या उपग्रह मात्र रह जाये। राष्ट्रमण्डल का एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग का रूप देने वाले दो तत्व हैं—उसके राष्ट्रों के बीच पारस्परिक प्रारंभ की भावना और ममानता।

इकोनोमिस्ट (Economist) के अनुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल राष्ट्रों के एक परस्पर-निश्चित समूह से अधिक कुछ नहीं है। इसमें विश्व के मामलों में परस्पर संगति रखने की कोई कार्य-पद्धति नहीं है और न ही किसी प्रकार के सामान्य अन्तरात्मिक है। इसमें कई राष्ट्र एक दूसरे से अलग-गूनी करते रहते हैं। ये राष्ट्र मिल कर एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति उत्पन्न करते हैं जिसे राष्ट्रमण्डल कहना इस शब्द का उपहास करना होगा।^१

परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी अर्थात् एक राष्ट्र या मंत्री संघि या सब घबसा प्राबलिक संगठन भादि के समान कोई भी सुबुद्ध प्रकार न रखते हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि राष्ट्र मण्डल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मंच है जिसके मिलों तथा प्रस्तावों और निकट महयोग का विश्व की समग्र राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। राष्ट्र मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय अमन की एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली पयापेठा है। यह एक 'नाममात्र' नहीं है प्रत्युत स्वेच्छापूर्ण सहयोग का प्रतीक है। यह एक ऐसा मंच है जिस पर विश्व के कुछ देश समय-समय पर एकत्रित होते हैं एक दूसरे के बिचारों को जानने व बमाने की चेष्टा करते हैं और जिन क्षेत्रों में निश्चिन्ता सहमति हो उनमें पारस्परिक सहयोग के लिए कार्यक्रम बनाते तथा उन्हे क्रियामित करते हैं। इस तरह यह कहना चाहिए कि राष्ट्र मण्डल के सदस्य कुछ समान भावनों में विश्वास करते हैं और संसदीय प्रजातन्त्र की समान बपीनी के मापौदार हैं। वा अण्णारोपण (Appadoral) के शब्दों में—

इन राष्ट्रों में एक प्रकार की मानसिक एकता (Like Mindedness) मिलती है। यह मानसिक एकता एक एसी उदार परम्परा पर आधारित है जिसमें स्वतन्त्रतापूर्ण आत्मिक सहिष्णुता और विश्व की सर्वोच्चता में पूर्ण विश्वास सम्मिलित है और जिसमें प्रभासन का सैनिक अण्ण नागरिक प्राधिकारी (Civil Authority) के अधीन रहता है।^२

^१Hass, Ernst B and Whiting, A.S. Dynamics of International Relations, p. 500.
^२The Leader 9th July 1957

राष्ट्रमण्डल धनेक मठमेदों के बाधनूर मी सहयोग का प्रतीक रूहा है। पामर तथा परकिनस (Palmer and Perkins) का यह निखाना प्रतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल संभवतः प्रसारण्डीय समूहों में सर्वाधिक सफल रहा है।'

राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास

प्रारम्भिक स्वरूप—राष्ट्रमण्डल धन बेनों का संगठन है जो कमी प्रधेनों के गुलाम रहे वे और स्वतन्त्रता प्राप्ति पर जिम्होंने ब्रिटेन से बराबरी का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। प्रथम धनजी साम्राज्य 'धर्षी राष्ट्र मण्डल' तथा 'राष्ट्र मण्डल' एक ही सत्ता के नाम हैं जो प्रावश्यक्यानुसार परिवर्तन के परिचायक हैं।

वर्तमान राष्ट्रमण्डल के बीज १६वीं शताब्दी तक में बोधे जा सकते हैं। संसार के इतिहास में एक ऐसा युग रहा था जब ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था धनत् संसार का ऐसा कोई महाद्वीप न था—ऐसा कोई मोलाड न था जहाँ ब्रिटेन की सत्ता फैली हुई न हा। ब्रिटेन के धनीत धारम्भ से ही वो प्रकार के प्रवेश रहे थे—

(I) वे उपनिवेश धनवा प्रवेश धनमें ब्रिटिश नामरिक एवं धन्य यूरोपियन जा कर बत धये थे और जो स्वयं को माया धर्म संस्कृति नत्म तथा धन्य सब प्रकार से ब्रिटेन के साथ सम्बद्ध मानते थे। इनमें कनाडा, धास्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और धनारसैण्ड की गणना की जा सकती है। दक्षिणी धन्यका संघ के गोरे सासक भी ब्रिटेन के साथ इसी एकारमकता का धननुभव करते थे।

(II) वे धराधीन देश जो ब्रिटेन के साथ न तो किसी प्रकार की एकता का धननुभव ही करते थे और न स्वयं को ब्रिटेन के साथ माया धर्म संस्कृति प्राप्ति से सम्बद्ध ही मानते थे। इन राष्ट्रों के मन में स्वतन्त्रता की धनित प्रज्ज्वलित थी और वे ब्रिटेन की धनीतता से मुक्त होने की चाह रखते थे। ऐसे देशों में भारत, चीनोन धनौ मलाया सिंगापुर, उत्तरी बोनियो धाराबाक नाइजीरिया युगांडा टांगानिका गांस्डकोस्ट कीनिया रोडेशिया न्यासासैण्ड साइप्रस धनन मास्टा धियरा धियोन धादि का उल्लेख किया जा सकता है।

राष्ट्रमण्डल का प्रारम्भ १८८७ में महाराणी विक्टोरिया की हीरक-जयन्ती के धनसर पर ब्रिटिश साम्राज्यधनियों क प्रतिनिधियों की

"Although vast changes are occurring within it and its future is certain, the British Commonwealth of Nations has been probably the most successful of all international groupings. It will undoubtedly continue to exert a major influence in world affairs

घनीयभारिक बैंक से हुआ और कालान्तर में उसी बैंक ने बाब स्वतन्त्र पण्यों की साम्यकारी का रूप धारण कर लिया। १८८७ के समान ही एक दूसरा घनीयभारिक सम्मेलन प्रोटाका में हुआ। इन सम्मेलनों में विन प्रमुख बातों पर विचार किया गया वे इस प्रकार थीं—

(क) सुरक्षा एवं संचार-व्यवस्था पर विचार हुआ क्योंकि यह व्यवस्था राष्ट्रमण्डल को एक सूत्र में बांधने में सहायक थी।

(ख) ब्रिटेन के साथ व्यापार सम्बन्धी समस्या पर भी विचार हुआ।

(ग) यह भी निश्चय किया गया कि भविष्य में इस प्रकार के सम्मेलन समय-समय पर किये जाते रहें।

१८२४ के बाद प्रथमा सम्मेलन एडवर्ड घण्टम के राजमारोहण के अवसर पर सन् १९०२ में हुआ। इन सम्मेलनों से धीरे-धीरे एक ऐसी पारिवारिक भावना उत्पन्न होने लगी कि जिससे राष्ट्रमण्डल का स्वरूप साकार होने लगा। १९०२ के बाद १९०७ में होने वाले सम्मेलन में (जो इम्पीरियल कॉन्फे्रेंस कहा गया) निम्नलिखित निर्णय लिये गये—

(i) यह सम्मेलन इम्पीरियल कॉन्फे्रेंस कहा जायेगा और प्रति चारों वर्ष हुआ करेगा।

(ii) इन प्रकार के सम्मेलनों में ब्रिटिश सरकार एवं स्वशासी उपनिवेश समान हितों के प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया करेगा।

(iii) इसके काम-संभार के लिए एक स्थायी सचिवालय की स्थापना की जायगी (यह निर्णय कार्यान्वित नहीं हुआ और सम्बन्धित कार्य उपनिवेश कार्यालय द्वारा होता रहा)।

(iv) इम्पीरियल कॉन्फे्रेंस का एक उल्लेखनीय प्रभाव यह हुआ कि ब्रिटिश शासन में उपनिवेश मंत्री का एक पृथक विभाग स्थापित हो गया।

प्रथमा सम्मेलन १९११ में सम्पन्न हुआ जिसमें बहु मान लिया गया कि वैश्विक मामलों में उपनिवेशों की सम्मति पर ध्यान दिया जाना चाहिए। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेश-अनाइड आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड म्यूकाइलैंड आयरलैंड और दक्षिणी अफ्रीका का इस समय तक लगे-लगे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया और उनमें उत्तरदायी शासन की स्थापना भी कर दी। फिर भी १९११ तक उन्हें ब्रिटेन नीति सचि कराने पुरा प्रारम्भ करने या बन्द करने के क्षेत्र में कोई शक्तियाँ नहीं दी गयी थीं।

प्रथम १९१४ में ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों से बिना परामर्श किए बर्षनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। हालांकि युद्ध के दौरान इनसे समय-समय पर परामर्श किया जाता रहा। १९१६ के सम्मेलन में प्रायः हुए प्रजातन्त्री इम्पीरियल युद्ध परिषद की बैठक में शामिल हुए और यह निर्णय लिया गया कि इसकी बैठक प्रति वर्ष हो। इस बैठक में भारत सरकार का बुला हुआ प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुआ और इस तरह भारत की औपनिवेशिक स्थिति बनाने की पहली बार स्वीकृति मिली। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर

अनेक उपनिवेशों को राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया गया जिससे उनके पृथक अस्तित्व की पुष्टि हो गयी।

१९२६ में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का स्वरूप निश्चयने लगा। इस वर्ष की इम्पीरियल कॉन्फ्रेंस में यह स्वीकार कर लिया गया कि ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत उपनिवेशों को बराबर का दर्जा होगा अर्थात् उपनिवेशों की स्वतंत्र रूप से अपने वैशेषिक मामलों का संचालन करने का अधिकार होगा परन्तु प्रत्येक संघि पर ब्रिटिश सम्राट या सम्राज्ञी की मुहर लगनी अनिवार्य होगी। वाशिंगटन शीपिंग में कहा गया कि "बोमिनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्र हैं जो अपनी स्थिति में पूर्णतया समान तथा बरेक या विदेश नीति में किसी भी तरह भंगीन नहीं हैं। सम्राट के प्रति सामूहिक बंधनकारी के आधार पर वे संयुक्त हैं और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के नाते एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।" इसी सम्मेलन में गवर्नर जनरल की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया कि "उपनिवेशों में गवर्नर जनरल सम्राट का प्रतिनिधि है जिसे उपनिवेशों के आसन्निय मामलों के प्रशासन में सभी महत्वपूर्ण चुर्तों के सम्बन्ध में वैसी स्थिति प्राप्त है वैसी कि ग्रेट ब्रिटेन में सम्राट को प्राप्त है और यह कि वह ग्रेट ब्रिटेन की सरकार का या उस सरकार के किसी विभाग का प्रतिनिधि या एजेंट नहीं है।"

१९३० की इम्पीरियल कॉन्फ्रेंस में यह बात स्वीकार की गयी कि उपनिवेशों के गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की सलाह से नहीं प्रत्युत उपनिवेश के मंत्रिमण्डल की सलाह पर की जानी चाहिए। इसके बाद ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के संबंध में एक प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण विधान १९३१ में पारित हुआ जिसे 'वेस्टमिनिस्टर विधान' (Statute of Westminster) कहा जाता है। वास्तव में राष्ट्रमण्डल का वैधानिक रूप से वास्तविक अर्थ इसी वेस्टमिनिस्टर अधिनियम के द्वारा ही हुआ क्योंकि इसमें उन देशों के स्वायत्त के अधिकार को स्वीकार किया गया जो राष्ट्रमण्डलीय देशों के नाम से जाने जाते थे। कनाडा राष्ट्र लिया और दक्षिणी अफ्रीका प्रायि ऐसे ही देश थे। वेस्टमिनिस्टर अधिनियम में इन देशों के सम्बन्ध में कहा गया था कि वे राष्ट्र "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त जन समुदाय (Autonomous Communities) हैं जिसपर में बराबर हैं किसी भी प्रकार कोई एक सदस्य अपने आन्तरिक या विदेशी मामलों में अपने सदस्य के अधीन नहीं हैं यद्यपि वे सब मुकुट के प्रति समान निष्ठा से आबद्ध और स्वेच्छा से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित हैं।" यह स्मरणीय है कि वेस्टमिनिस्टर विधान की स्वीकृति से पूर्व ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की व्यवस्था 'धौनिकीय विषय अधिनियम विधान' (Colonial Laws Validity Act 1865) के अनुसार की जाती थी जिसमें उपनिवेशों पर विभिन्न वैधानिक प्रतिबन्ध लग गए थे। उदाहरणार्थ १८६३ के इस अधिनियम के अनुसार उपनिवेशों द्वारा बनाया जाने वाला ऐसा प्रत्येक नियम वैधानिक माना जाता था जो कि ब्रिटिश संसद द्वारा पारित नियमों के विरुद्ध हो। ब्रिटिश सम्राट किसी भी धौनिकीय विधान को रद्द कर सकता था। दूसरे शब्दों में उपनिवेशों की संसदें ब्रिटिश संसद के अधीनस्थ मानी जाती थीं। १९३१ के वेस्टमिनिस्टर

घबिनियम के अन्तर्गत उपनिवेशों की संघर्षें ब्रिटिश संघ के अधीन नहीं थीं। इस संघर्ष में यह उल्लेखनीय है कि "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल" (British Commonwealth of Nations) नाम का सर्वप्रथम आधिकारिक प्रयोग १९ अगस्त १९१७ को जनरल स्मट्स द्वारा किया गया था।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने पर यह बात घसी प्रकार स्पष्ट हो गयी कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राज्यों को स्वतंत्र रूप से यह निर्णय करने का अधिकार है कि वे युद्ध में भाग लेना चाहते हैं या नहीं। परन्तु स्मरणीय है कि यह अधिकार राष्ट्र मण्डल के केवल स्वतंत्र राज्यों को ही दिया गया था भारत और बर्मा जैसे पराधीन राष्ट्रों को नहीं। फिर भी बिना किसी वैधानिक बन्धन के यह बात स्पष्ट थी कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्य परस्पर मित्र हैं और वे एक दूसरे के साथ बंधे हुए हैं।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात्—द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल प्रधानतः कुछ स्वतंत्र देशों का समूह था लेकिन द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद राष्ट्रमण्डल के इतिहास में एक नया युग का आरम्भ हुआ। महायुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न एगिवाई और अफ्रीकी भाग स्वतंत्र हुए और उनमें से अधिकांश ने ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल का सदस्य बने रहना पसन्द किया। १९४६ में जब भारत में एक गणतन्त्र बनाने का निश्चय किया और ब्रिटिश राज्यवंश के प्रति निष्ठा से स्वयं को मुक्त रखते हुए भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में बने रहने की सहमति दे दी तब 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' के स्थान पर केवल 'राष्ट्रमण्डल' नाम कर देने का निश्चय किया गया। यह बात उल्लेखनीय है कि वहाँ १९४७-४८ में भारत पाकिस्तान धीरंका आदि में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहना स्वीकार कर लिया वहाँ बर्मा और दक्षिणी आयरलैण्ड इसकी सदस्यता से घसग हो गये। १९४७ में 'बर्मा स्वतन्त्रता विधेयक' पर मातंग करते हुए तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री भी एटली ने कहा 'हमारी दृष्टि से राष्ट्र अपनी आसन प्रणाली निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र हैं। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल राष्ट्रों का ध्वज-मुक्त संघ है न कि अधीनस्थ राष्ट्रों का संकलन मात्र। अतएव जब बर्मा जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि स्वतन्त्र रहने का निश्चय करें तो मैं समझता हू कि सम्राट के आसन का करार्य है कि उनके निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए कार्यवाही की जाए।"

भारत पाकिस्तान धीरंका आदि के राष्ट्र मण्डल में बने रहने से इसके स्वरूप में मामूल परिवर्तन हो गया क्योंकि अब तक इसके सदस्य धीरे राष्ट्र (White Nations) और सभी उपनिवेश थे जबकि ये नये राष्ट्र इस प्रकार के नहीं थे। इस बटना को सर पाइवर जेनिंग्स (Sir Ivor Jennings) ने "The Commonwealth in Asia" के नाम से उल्लेखित किया है। इन राष्ट्रों के राष्ट्र मण्डल के प्रवेश के बाद नवीन स्वतन्त्रता प्राप्त अन्य अफ्रीकन और एगिवाई राष्ट्रों ने भी राष्ट्रमण्डल में बने रहने का निर्णय किया जिसके फलस्वरूप आज इसमें गौरी राष्ट्रों का

प्रत्यय यह मया है और प्रतीक तथा एशिया के समेत राष्ट्र (Non-white Nations) इसके निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका भवा करते हैं।

वर्तमान स्वरूप—राष्ट्रमण्डल के ऐतिहासिक विकास की इस क्रमिक पृष्ठभूमि के उपरान्त यह स्पष्ट है कि प्रायः राष्ट्रमण्डल ब्रिटिश संविधान की भाँति ही एक विशिष्ट संगठन है जिसके सदस्य जगजग के समस्त राष्ट्र हैं जो प्रतीक में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन थे। केवल बर्मा और इण्डो-चीन प्रायद्वीप ही इसके अपवाद हैं। जहाँ इस संगठन का नाम पहले 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' था वहाँ इसे अब केवल 'राष्ट्रमण्डल' के नाम से सम्बोधित किया जाता है और बफ़ावारी सम्बन्धी इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। ब्रिटिश सम्राट अब स्वतन्त्र सदस्य राज्यों के इस मुक्त समूह (Free Association of Free Member Nations) का प्रतीक (Symbol) मात्र है। अन्य शर्तों में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्यों का आचार समानता व स्वतन्त्रता है और इस संगठन की सदस्यता उनकी सार्वभौमिकता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाती। राष्ट्रमण्डल के सदस्य हुए स्वरूप की व्याख्या तत्कालीन भारत उपसचिव श्री आर्थर हेल्डरसन ने १० जुलाई को 'हाउस ऑफ़ कामन्स' में इस प्रकार की थी— 'राष्ट्रमण्डल किसी कठोर व प्रत्यावहारिक कानूनी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। यह एक प्रकार के धार्मिक संगठन का प्रतीक है इसका उद्देश्य स्वतन्त्र राज्यों का ऐसा संगठन है जो पारस्परिक विश्वास निष्ठा तथा समान भावनों के कारण आपस में मित्रता के सूत्र द्वारा बंधे हुए हैं। यह ऐसे राष्ट्रों का एक समुदाय है जो यह जानते हैं कि किस प्रकार शान्ति व मैत्री के वातावरण में रह कर अपने तथा मानव समाज के हित व कल्याण के लिए सहयोग किया जा सकता है और जिनकी जीवन पद्धति अधिवायत 'बिनि-लाउन (Rule of Law) एक मानव के मूल अधिकारों के प्रति धारण की भावनाओं पर आधारित है।'

यह एक ऐसा संगठन है जिसकी स्थापना किसी संविधान संवि या समझौते द्वारा नहीं हुई है। इसका अपना कोई निश्चित नियम-कानून याद भी नहीं है। इसकी सदस्यता में न तो किसी प्रकार के अधिकार हैं और न ही किसी प्रकार के उत्तरदायित्वों की बात है। एक वैश्व संघटन व समान इसके सदस्यों के लिए मुक्त बाजार में एक दूसरे की सहायता करना आवश्यक नहीं है। स्वतन्त्रता और आर्थिक नीति इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्पा का उदाहरण इतिहास में प्राप्त नहीं होता। इसमें सभी सदस्यों को समान सम्मान जाता है तथा सभी निर्णय सामान्य हित को ध्यान में रख कर सामान्य मत के आधार पर ही लिए जाते हैं। ब्रिटेन को इस संस्था में कोई प्राथमिकता नहीं दी गयी है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन ने राष्ट्रमण्डल के सहारे अपने हितों को सुरक्षित बनाये रखने का एक सफल एवं कुशल प्रयास किया है। साम्राज्य के समय जिन देशों से ब्रिटेन के धार्मिक राजनीतिक सामाजिक एवं अन्य हित सम्बद्ध हो गये थे उनको एकाएक ही छोड़ देना

न तो सम्भव था और न उपयोगी ही। अतः राष्ट्र सम्बन्ध के विटेन तथा उसके अतीत साम्राज्य के बीच एक कड़ी का काम किया है।

राष्ट्रसम्बन्ध की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसके सदस्य राष्ट्रों में श्रेय नस्ल भाषा और संस्कृति सम्बन्धी किसी प्रकार की सादृश्यता का लक्ष्य है। इसीलिए राष्ट्रसम्बन्ध के बारे में यह कहा जाता है कि "विभिन्नताओं में ही इसकी एकता निहित है" (Its Unity Lies in Diversities) और यह भी कि इसकी शक्ति इसकी कमजोरियों में ही निहित है" (Its Strength Lies in its Essential Weakness)। राष्ट्र सम्बन्ध के राज्यों की एक बड़ी पहचान यह है कि इनके राजदूत एक दूसरे के देश में उच्चायुक्त (High Commissioner) कहे जाते हैं। साथ ही राष्ट्र सम्बन्धीय वेद एक दूसरे के नागरिकों को अपने यहाँ विशेष प्रकार की सुविधाओं (Preferential Treatment) प्रदान करते हैं।

राष्ट्रसम्बन्ध राजनीतिक एकता के सूत्र में बंधा हुआ नहीं है। इसके सभी राष्ट्र स्वतन्त्र और समान हैं। इनमें सम्राट् पक्ष या साम्राज्य के प्रति किसी प्रकार की बकायारी होता बकरी नहीं है। हालाँकि ब्रिटिश सम्राट् या साम्राज्य ही राष्ट्रसम्बन्ध का अध्यक्ष (Head) होता या होना है और इसके इच्छानुसार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करता है। ये सदस्य राष्ट्र एक दूसरे के साथ अपने पारस्परिक सम्बन्धों में पूर्णतः सावधीन व स्वतंत्र होते हैं। बंधन बाता नहीं की जाती है कि जिनमें मिस्री-यूरोप सम्बन्ध बने रहें। राष्ट्रसम्बन्ध के परिष्कार राज्य प्रजातन्त्रात्मक हैं किन्तु साथ ही पाकिस्तान जैसा तानाशाही प्रवृत्ति का राष्ट्र भी है जहाँ स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं है और धर्म के नाम पर वृत्त की होनी जेलना सिद्धाया जाता है।

राष्ट्रसम्बन्ध में किसी प्रकार के प्रस्ताव नहीं पारित किये जाते। न इसका कोई महासचिव है और न ही केन्द्रीय कार्यालय। प्रत्येक सदस्य राज्य अपने यहाँ उसके सम्बन्धित एक विभाग रखता है। जिसका काम दूसरे सदस्य राज्यों के साथ सम्पर्क बनाये रखना है। वस्तुतः यह कहना उपयुक्त होगा कि राष्ट्रसम्बन्ध एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन है जिसका प्रथम सम्पर्क और जानकारी प्राप्त करना है। इस विषय में २५ जुलाई १९४० को लन्डन में ब्रिटिश प्रजातन्त्रीयी धी एटनी ने कहा था—

"जो विषय राष्ट्रसम्बन्ध के समस्त सदस्य राज्यों के हित की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं उन पर पूर्णतया सम्पर्क स्थापित किया जाता है तथा परामर्श होता है और यह केन्द्र की जाती है कि किसी सर्वसम्मति नीति का अनुसरण किया जा सके। बहुत से मामलों में राष्ट्रसम्बन्ध के देशों को बराबर जानकारी दी जाती रहती है परन्तु बहुत से ऐसे विषय हैं जिनके बारे में किसी प्रकार की समन्वयात्मक नीति की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार यह भ्रम नहीं है कि प्रत्येक विषय में राष्ट्रसम्बन्ध के देशों की एक

ही नीति हो यह राष्ट्रमण्डल की उस प्रकृति के विरुद्ध है जो क्रमान्तर में उसके विकास के परिणामस्वरूप सहज ही विकसित हुई है।”

राष्ट्रमण्डल का संघटन—राष्ट्र मण्डल के तीन प्रमुख अङ्ग हैं—

- (i) मुकुट (Crown)
- (ii) राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन (Commonwealth Premiers Conference) एवं
- (iii) राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय (Commonwealth Relations Office)

ब्रिटिश मुकुट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख अङ्ग है जिसे सभी सदस्य राष्ट्र राष्ट्रमण्डल के प्रधान के रूप में स्वीकार करते हैं यद्यपि इससे मुकुट को सदस्य राष्ट्रों के सम्बन्ध में कोई वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है। मुकुट प्रवक्ता संघट्ट या साम्राज्ञी केवल प्रतीक के रूप में राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष माना जाता है।

राष्ट्र मण्डल का दूसरा और सर्वाधिक प्रभावशाली अङ्ग राष्ट्र मण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन है। इसका परिचयन समय-समय पर अंतर में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में होता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद पहला राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन १९४६ में हुआ था। उसके बाद १९४८, १९४९, १९५१, १९५३, १९५६, १९५७, १९६०, १९६२ और १९६४ में ये सम्मेलन हुए। १९६४ के सम्मेलन में भारत की ओर से तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भाग लेने से किन्तु बीमारी के कारण ब नही जा सका। अतः उनकी अनुपस्थिति में भारत का प्रतिनिधित्व तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री टी. टी. कृष्णामाचारी और सूचनामन्त्री श्री इन्दिरा गांधी ने किया। इस सम्मेलन में भारत के दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए कहा गया—“भारत कुछ अफ्रीकी देशों के सम विचार में सहमत नहीं है कि राष्ट्र मण्डल को एक औपचारिक संस्था का रूप दे दिया जाय और इसके लिए एक स्थायी सचिवालय की स्थापना हो। राष्ट्रमण्डल का वर्तमान औपचारिक रूप ही पूर्ण विचार विनिमय के लिए उपयुक्त है। भारत यह नहीं चाहता है कि राष्ट्रमण्डल बैठक और प्रवक्ता दो युगों में विभाजित हो जाय। भारत की राय में इन प्रकार के विभाजन से राष्ट्रमण्डल की उपयोक्तता बिस्मृत नष्ट हो जायगी।”

इसके बाद १७ से २५ जून १९६१ में राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन हुआ जिसमें तीन नये सदस्यों यास्टा पाकिस्तान और जर्मिया ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन के द्वारा किन नये मुख्य कार्य तीन थे—प्रथम, वियतनाम में शांति स्थापना की दृष्टि से एक शांति समिति बनायी गई जिसके अध्यक्ष ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री हेराल्ड विस्मन बन। इस समिति का प्रथम कार्य यह रखा गया कि यह वियतनाम-समस्या से सम्बन्धित राष्ट्रों से विचार विनिमय करके वियतनाम में शांति-स्थापना के प्रयास करे। दूसरे, रोडेसिया में उत्पन्न एक सार्वजनिक संकट पर विचार किया गया। इस बात को बढ़ा गम्भीर समझ गया कि वहाँ स्थित सरकार में एकतरफा अपनी

घोर से ही अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता को बचाना कर दी जो प्रत्येक व्यक्ति से एक गैर-कानूनी कार्य था। तीसरे, पुनः स्वयं से ब्रिटेन में एक राष्ट्र-मण्डलीय सचिवालय की स्थापना की गई और इसका अध्यक्ष एक कनाडिय राजनीतिज्ञ को नियुक्त किया गया।

१९६२ के बाद रोडेसियायी प्रश्न पर पुनः विचार के निम्ने सितम्बर १९६६ में पुनः राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन हुआ जिसमें सरदार स्वर्णसिंह ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि ब्रिटेन द्वारा रोडेसिया की स्वतन्त्रता को मान्यता नहीं बढ़ाने की सरकार बनने पर ही की जानी चाहिये और वर्तमान प्रथम श्रेणी की सरकार को विफल करने के लिये उसके विरुद्ध सभी प्रावश्यक प्रतिबन्ध लगाने चाहिये।

राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन कार्यालय को कि राष्ट्रमण्डल का तीसरा अङ्ग है मान्यता में स्थित है और विशिष्ट राष्ट्रमण्डलीय देशों में निरन्तर सम्मेलन स्थापित किये जाने का कार्य करता है।

यह बात समझनीय है कि राष्ट्रमण्डल के अन्य प्रकार के घोर से प्रत्येक सम्मेलन सदस्य राष्ट्रों में विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग स्थापित करने में दृष्टि से होते रहते हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत शिक्षा एवं विज्ञान विद्यार्थियों के अधिक सम्मेलन हुए हैं। इसके अतिरिक्त विगत पंद्रह वर्षों में राष्ट्रमण्डलीय देशों के वित्तमन्त्रियों के भी पाँच सम्मेलन हो चुके हैं। सितम्बर १९६४ में कुमावतपुर में होने वाले अंतिम सम्मेलन में भारत के तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री कृष्णामाचारी ने यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखा कि घनी एवं परीच देशों की जाई पाठ्य की विद्या में अगले वर्ष के लिए बड़ा हुआ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष केवल स्वर्ण में लेना बंदी नहीं होना चाहिये। परीच देशों के प्रतिनिधियों द्वारा भी आर्थिक सहायता बढ़ाने में सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव रखे गये।

राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत-राष्ट्रमण्डल के स्वयं उसकी प्रकृति प्रादि। बर्लिन से यह सभी प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रमण्डल एक विश्वी हुई सरकार का एक ऐसा समूह है जो ब्रिटिश मुद्रा की स्वेच्छापूर्वक सहयोग के प्रतीक। स्वयं में राष्ट्रमण्डल का प्रधान भवना प्रत्यक्ष मानते हैं कुछ समान भावों में विश्वास करते हैं और इन भावों को पाले के लिये तथा पारस्परिक सहयोग को बढ़ाने के लिये नियमित विचार-विमर्श के तरीके अपनाते के लिए तैयार हैं। राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों के बीच परस्पर कोई एकता नहीं और न ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने हेतु इसके कोई निश्चित लक्ष्य। ध्येय हैं। फिर भी सामान्यतः यह माना और कहा जाता है कि इसके सदस्य राज्यों में कुछ विषयों पर प्रायः सहमति ही जाती है। जिसमें इसके निम्नलिखित अङ्ग प्रकट होते हैं—

(1) राष्ट्रमण्डल के प्रायः सभी सदस्य राज्य प्रजातंत्र के धारण एवं मौलिक मानवीय अधिकारों की प्राप्ति (Defence of Democracy and Basic Human Rights) का अङ्ग स्वीकार करते हैं। अतः राष्ट्रमण्डल में नाकिस्लान जैसा तातावाही प्रकृति वाला राष्ट्र नहीं है तथापि अनेक ही भारत के साथ मिल कर मानवी अधिकारों की रक्षा के लिए

शिष्टी धाकीकन सरकार की रणधेद-नीति (Apartheid Policy) का तीव्र वेरोध किया है।

(ii) बाहरी धाकमणु के विरुध सामान्य मुरझा (Common Defence against External Threats) में इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य धमबा बाधर्स माना जा सकता है यद्यपि इस बारे में इसके संग्रमु तबस्व राष्ट्रों के धमने पुबक विचार और व्यवहार है। धाणा यही की जाती है कि सबस्व राष्ट्र किसी प्रकार की धमतकृपी उत्पन्न न करते हुए परस्पर सहयोग की विधा में प्रयत्न जारी रखेंगे।

(iii) सबस्व राष्ट्रों का एक बहू भी उद्देश्य धमबा धाधर्स है कि राष्ट्रमण्डल-परिवार का होने के कारण वे सभी धाधिक कस्याणु एवं सामान्य हित (Economic Wellbeing and Common Welfare) के लिए धमसर हयि। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रमण्डल परिवार के सबस्व राष्ट्र विभिन्न प्रकार के सम्मेषन करते हैं और सामान्य हितों की नीतियों का निर्माण करने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति से प्रेरित हुकर सबस्व राष्ट्रों के प्रधानमन्त्री विधमन्त्री विधामन्त्री व्यापारमन्त्री धादि समय-समय पर मिलते रहते हैं। ब्रिटेन द्वारा युरोपीय साम्हा बाजार (European Common Market) में सम्मिलित होने की इच्छा पर सभी राष्ट्रों से मंत्रणा की गई थी ताकि राष्ट्रमण्डल के सबस्व राष्ट्रों के सामान्य हितों की रक्षा की जा सके। कोलम्बो-योजना (Colombo-Plan) राष्ट्र मण्डलीय राष्ट्रों के धाधिक कस्याणु की एक महत्वपूर्ण योजना है जिसे सफल ष्य से कार्यान्वित किया जा रहा है।

राष्ट्रमण्डल के सबस्व राष्ट्र—२६ मई १९६६ तक राष्ट्रमण्डल के सबस्व राष्ट्रों की संख्या २३ थी। यह उत्सलनीय है कि इन सबस्व राष्ट्रों में एशिया और धाकीका के राष्ट्रों का प्रबल बहुमण है और इनके रणधेद नीति की उग्र धानोधना से धुष्ण हुकर ३१ मई १९६१ को दक्षिण धमध्रेका की बोरी सरकार ने राष्ट्रमण्डल का परिव्याप कर दिया था। राष्ट्रमण्डल के बतमान सबस्व इस प्रकार हैं—

१ कनाडा	२ धास्ट्रेलिया	३ न्यूजीलैण्ड
४ उत्तरी धाधरसैण्ड	५ भारत	६ पाकिस्तान
७ श्रीलंका	८ मसेलिया	९ सिंगापुर
१० बाना	११ बम्बीया	१२ मलावी
१३ केनिया	१४ नाईजीरिया	१५ तनजानिया
१६ सिपरस लीयोन	१७ सेम्बीया	१८ युगाण्डा
१९ जंबीबार	२० साध्रम	२१ मास्टा

२२ बमईका और ट्रिनीडाड और २३ टीबागो।

उपरोक्त २३ सबस्वों के धतिरिक्त घेट ब्रिटेन तो स्वतः ही राष्ट्र मण्डल का सबस्व है ही।

राष्ट्रमण्डल की संस्थाधे—राष्ट्रमण्डलीय देशों क समय-समय पर विभिन्न प्रकार के सम्मेषन तो हावे ही रहते हैं इनक धतिरिक्त सबस्व राष्ट्रों

में पारस्परिक सहयोग के लिये, इसके अन्तर्गत कुछ स्थायी संस्थाओं की कार्य कर रही है। इनमें से इन संस्थाओं के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

- १ राष्ट्रमण्डलीय संसदीय संघ—इसके उद्घाटन में राष्ट्रमण्डल के सबस्य राष्ट्रों के संसद सदस्यों के सम्मेलन हुए हैं।
- २ राष्ट्रमण्डलीय इपि ब्यूरो—इसके द्वारा सबस्य राष्ट्रों को उन्नत कवि सम्बन्धी सूचना व परामर्श दिया जाता है।
- ३ राष्ट्रमण्डलीय धार्मिक उल्लाहकार परिषद्—इसके द्वारा सबस्य राष्ट्रों को धार्मिक उन्नति सम्बन्धी विषयों पर महत्वपूर्ण सलाह उपलब्ध होती है।

कोलम्बो योजना (Colombo Plan)—यह कहा जा चुका है कि राष्ट्रमण्डल में विश्वास स्वतंत्र इच्छा तथा शान्ति की बाधना वरिष्ठ प्राथमिक एक ऐसा मानवीय संयोजन है जिसका प्रमुख मकसद सबस्य राष्ट्रों के धार्मिक विकास को प्रोत्साहित करना है। १९५१ के बाद से ही राष्ट्रमण्डल द्वारा भारत एवं अन्य सबस्य राष्ट्रों के धार्मिक विकास की विद्या में जो प्रयत्न किये गये हैं उनमें कोलम्बो योजना सबसे धार्मिक महत्वपूर्ण है। इस योजना का प्रारम्भ १९५० में किया गया था। जनवरी १९५० में थाइलैंड बनावा, चीनका भारत सूचीबद्ध, पाकिस्तान और ब्रिटन के विदेशमन्त्री दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विज्ञान क्षेत्र में रहने वाले करोड़ों व्यक्तियों के राजनीतिक धार्मिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर विचार करने के लिए कोलम्बो में एकत्रित हुए। उन्होंने इस बात पर सहमति प्रकट की कि यदि इन क्षेत्रों में राजनीतिक स्वायत्तता लाना है और विश्व-धर्म-व्यवस्था में संतुलन स्थापित करना है तो इन क्षेत्रों का धार्मिक विकास करना ही होगा। इस निश्चय के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के धार्मिक विकास की योजनाओं पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई जिसने इस क्षेत्र के धार्मिक विकास के लिए जुलाई १९५१ से प्रारम्भ होने वाले ६ वर्षीय कार्यक्रम का मुद्दाब दिया और इस सम्बन्ध में राष्ट्रमण्डलीय और राष्ट्रीय स्तर के बाह्य के विभिन्न देशों के मुद्दाब धार्मिक विकास की योजना को अग्रिम रूप से दिया गया और २८ नवम्बर को 'कोलम्बो योजना' के नाम से इसे प्रसारित किया गया। यह १ जुलाई, १९५१ से प्रारम्भ होने वाली एक ६ वर्षीय योजना थी जिसे बाद में बढ़ाया जाता रहा।

कोलम्बो योजना में इस बात पर बल दिया गया कि योजना में भाग लेने वाले देशों के द्वारा अपनी धर्म से परिष्कृत योगदान दिया जाना चाहिये और बाहरी सहायता अतिरिक्त धार्मिक होने पर ही ही जारी चाहिये। योजना का मूल उद्देश्य पूरबी एवं उत्तरीय भाग की ऐसी सुविधायें उपलब्ध कराना है जिनके आधार पर निजी माहस के अन्तर्गत धार्मिक विकास किया जा सके। इसके अन्तर्गत कवि-कार्यक्रमों की प्राथमिकता दी जाती है।

कोसम्बो योजना को प्रारम्भ में राष्‍ट्रमण्डलीय योजना के रूप में प्रारम्भ किया गया था लेकिन शीघ्र ही इस योजना का उसके मौलिक भौगोलिक क्षेत्र से विस्तार हो गया। १९५९ तक उत्तरी विद्यतनाम को छोड़ कर दक्षिण-पूर्वी एशिया के सभी देश इसके सदस्य हो गये। जापान और अमेरिका भी इस योजना में शामिल हो गए। इस योजना से सम्बन्धित १७ देशों का विवरण नीचे सिद्धे अनुसार है—

सम्	कोसम्बो योजना के सदस्य देश	क्षेत्र के भीतर के देश (Inside Area)	क्षेत्र के बाहर के देश (Out-side Area)
१९५०	भारत पाकिस्तान श्रीलंका मलाया सिंगापुर सारावाक उत्तरी बार्मियो		ग्रेट ब्रिटेन ऑस्ट्रेलिया कनाडा न्यूज सैन्ड
१९५१	दक्षिणी विद्यतनाम कम्बोडिया लाओस		अमेरिका
१९५२	बर्मा नेपाल		
१९५३	इन्डोनेशिया		
१९५४	पाईनेय फिलीपाइन		जापान

कोसम्बो योजना के सदस्य देशों की प्रति बंध होने वाली बैठकों में परस्पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस योजना के प्रत्यक्ष न केवल राष्ट्रों को आर्थिक एवं प्राथमिक सहायता ही जाती है बल्कि कमी-कमी पूरणी तथा कर भी सदस्य देशों के कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। उदाहरणार्थ पाकिस्तान में बाँक की सहायता से कनाडा ने ६९,२००,००० डॉलर पूरणी लवाई। भारत में गुर्गापुर के इस्पात कारखाने के लिए ब्रिटेन द्वारा १२,०००,००० डॉलर की सहायता इसी योजना के अन्तर्गत ही लयी। कोसम्बो योजना में सम् १९५० से १९६० तक कुल ८०० करोड़ डॉलर का सहायता कार्यक्रम अपनाया गया।

कोसम्बो योजना वास्तव में अन्तर्राष्‍ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से सहयोग की प्रतीक है। इसके अन्तर्गत प्रायः सभी सहायता प्राप्त देशों में सामर्थ्यों की उपज में वृद्धि हुई है। प्राथमिक राष्ट्रों का ऋण व भौगोलिक सामर्थी की उपलब्धि हुई है और वहाँ के विद्यार्थियों को विदेशों में अध्ययन हेतु सामर्थ्य प्राप्त किया गया है। इस योजना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके

द्वारा पारस्परिक सह्यता-वृत्ति का बहुत प्रोत्साहन मिला है। भारत द्वारा इसी के अन्तर्गत नेपास प्रादि छोटे पड़ोसी राष्ट्रों को सहायता देना स्वीकार किया गया है जबकि यह स्वयं अन्य राष्ट्रों से सहायता प्राप्त करता है।

भारत और राष्ट्रमण्डल

(India and the Commonwealth of Nations) :-

राष्ट्रमण्डल में भारत के प्रवेश पर उठायी गई आपत्तियाँ— १९४७ में जब भारत स्वतंत्र हुआ तब यह प्रश्न उठा कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने या नहीं। अनेक नेताओं द्वारा भारत के राष्ट्रमण्डल में प्रवेश का विभिन्न मायारों पर तीव्र विरोध किया गया—

प्रथम, यह कहा गया कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य बसना भारत के धार्मिक सम्मान के लिए एक कर्त्तिक का टीका होगा क्योंकि ब्रिज देज में हमें सैकड़ों वर्षों तक दास बनाये रखा उससे सम्बन्ध बनाने रखना और उनका सम्राट (British Crown) को अध्यक्ष स्वीकार करना (चाहे नाममात्र के लिए ही) दास मनोवृत्ति का परिचायक है। आलोचकों ने कहा कि ब्रिटिश राष्ट्र में सैकड़ों वर्षों तक भारत का शोषण किया और उसके साथ भारतीयों को एक सच्चा स्वातन्त्र्य संघर्ष करना पड़ा तथा उस राष्ट्र में भारतीयों पर धरबाजार करने में एवं निबन्धतापूर्ण एवं बर्बरतापूर्ण व्यवहार करने में कोई कसर न छोड़ी। यह उसकी ही सभ्यता में स्थापित राष्ट्रमण्डल की सभ्यता प्रकृत्य पर पर्यवेष्टा की अपेक्षा कड़ी है।

दूसरे, राष्ट्रमण्डल के अधिकतर सदस्य-राज्यों की सभ्यता व संस्कृति ब्रिटेन से मेल खाती है (१९४७ तक राष्ट्रमण्डल के अधिकांश सदस्य राज्य के ही के अन्तर्गत गोरी जातियों निवास करती थी। एशिया और अफ्रीका राष्ट्रों की बहुलता का वें हुई थी)। ऐसी स्थिति में भारत का राष्ट्रमण्डल में रहना एक आस्वाभाविक सम्बन्ध कायम रखना होगा।

तीसरे यह कहा गया कि आर्थिक दृष्टि से भी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत पर अपेक्षित पुञ्जीपतियों का बकाब बना रहेगा। यह एक दिया गया कि राष्ट्रमण्डल से प्राप्त होने वाला लाभ बिना उसकी सदस्यता के भी प्राप्त हो सकते हैं, जबकि इसकी सदस्यता के कारण भारत को एशिया और यूरोप के स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ अपने व्यापारिक सम्बन्धों के विकास में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

चौथे यह तर्क उपस्थापित किया गया कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत की स्वतंत्र विदेश नीति के विकास में बाधा पड़ सकती है और प्रत्यक्ष न सही अप्रत्यक्ष रूप में भारत की प्रभुसत्ता सीमित होती है।

भारत सरकार का राष्ट्रमण्डल में प्रवेश का विरोध—जबकि भारतीय सरकार ने इन तर्कों को स्वीकार नहीं किया और राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहना ही एक सम्भव। कारण है राष्ट्रमण्डल के प्रति अपने नवीन दृष्टिकोण की और संकेत करते हुए १९४७ के जयपुर अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव में कहा—

“पूर्व स्वतंत्रता के प्रोत्ति और भारत में गणतंत्र की स्थापना को वृद्धि में रखते हुए जो कि विश्व के राष्ट्रों में भारत को उचित स्थान प्रदान करते हैं ब्रिटिश साम्राज्य और राष्ट्रमण्डल के साथ उसके वर्तमान सम्बन्धों में परिवर्तन करना होगा— “भारत फिर भी दूसरे देशों के साथ के सब सम्बन्ध बनाये रखने की इच्छा रखता है जो उसकी स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता का भी ये बाधक सिद्ध नहीं होंगे और कांग्रेस राष्ट्रमण्डल के स्थापित राष्ट्रों के साथ अपने समान हित तथा विश्व-शांति के विकास के लिए स्वतंत्र सहयोग करने की याचना-का स्वागत-करेगी।”

इस प्रस्ताव के पारित होने के उपरान्त प्रधानमंत्री श्री नेहरू १९४६ में राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेने के लिए गये। इस सम्मेलन में राष्ट्रमण्डल के प्रागे जुड़े हुए ‘ब्रिटिश’ शब्द को हटाने का निश्चय किया गया और इस तरह इस संघटन का नाम ‘ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल’ के स्थान पर केवल ‘राष्ट्रमण्डल’ हो गया। सम्मेलन में राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत भारतीय गणतंत्र की स्थिति सुनिश्चित करने के लिए एक विशेष घोषणा की गयी कि—

“भारत सरकार ने राष्ट्रमण्डल की दूसरी सरकारों को भारतीय जनता के इस इरादे की सूचना दी है निराला भविष्य में मानू किये जाने वाले नवीन संविधान के अनुसार भारत एक सार्वभौम सत्ता सम्पन्न गणतंत्रीय गणराज्य होगा। तथापि भारत सरकार ने राष्ट्रमण्डल की पूर्ण सदस्यता को बनाये रखने की इच्छा प्रकट की है और राज्या की राष्ट्रमण्डल के प्रमुख की स्थिति में स्वीकार किया है जो कि केवल इसके स्वतंत्र सदस्य राज्यों के संघटन का प्रतीक है। राष्ट्रमण्डल के दूसरे देशों की सरकारें जिनकी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के माध्यम में कोई परिवर्तन नहीं होगा भारत की सदस्यता को इस घोषणा की शर्तों के अनुसार स्वीकार करते हैं वे यह घोषणा करते हैं कि वे राष्ट्रमण्डल के स्वतंत्र और समान सदस्यों की तरह से एक रहेंगे और शांति स्वतंत्रता तथा सन्नति की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रतापूर्वक सहयोग करेंगे।

इस घोषणा के बाद प्रामोदकों के इस तर्क में कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत की प्रभुता में कोई कमी पाती है, कोई बल नहीं रह गया। १८ अगस्त १९४६ को स्वर्गीय सरदार पटेल ने एक प्रेस सम्मेलन में स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—

“भारत की एक सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न गणराज्य की स्थिति किसी प्रकार भी इन सदस्यता से प्रभावित नहीं होती है। क्योंकि हमें महामहिम राज्य के प्रति निष्ठा रखने का कोई प्रबल ही नहीं पाता क्योंकि राजा तो केवल हमारे उन्मुक्त सम्पर्क का अन्य सदस्यों की तरह केवल प्रतीक रहेगा— जहाँ तक हमारे संविधान का सम्बन्ध है वह सभी आन्तरिक और बाह्य क्षेत्रों में गणराज्य के रूप में ही रहेगा। साथ देखते कि राजा की राष्ट्रमण्डल की प्रधानता केवल उसके स्वतंत्र राष्ट्रों के उन्मुक्त सम्पर्क का प्रतीक होने तक ही सीमित रहेगी।”

‘राष्ट्रीय संविधान समिति’ से राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी अपने निर्णय का पुष्टीकरण करने की प्रार्थना करते हुए श्री नेहरू ने इस पत्र में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये—

(१) यह समझौता स्वतंत्र इच्छा पर आधारित है और स्वतंत्र इच्छा हाथ ही रह भी सकता है।

(२) परस्पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार व सहयोग की इच्छा के प्रतिरिक्त किसी सदस्य पर किसी तरह का कोई दायित्व या बन्धन नहीं है, और इसमें भी यह तर्क है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने इस व्यवहार व सहयोग की मात्रा का निश्चय स्वयं अपनी नीति के आधार पर करेगा।

(३) ब्रिटिश सम्राट को राष्ट्रमण्डल का प्रतीक माना गया है परन्तु व्यवहार में यह निराल्प प्रभावहीन है।

(४) भारत की स्वाधीनता व स्वतंत्रता इस निर्णय से बराबरी सीमित या प्रभावित नहीं हुई है।

(५) भारत राष्ट्रमण्डल को न तो किसी ऐसी उच्चतर संस्था का स्वामि होने को ही तैयार है कि वह राष्ट्रों की संयुक्तता को सीमित करने वाली बने और न ही भारत इस बात के लिए कभी सहमत होगा कि सदस्य-राष्ट्रों के पारस्परिक विवादों को राष्ट्रमण्डल के सम्मुख पेश किया जाय। यह एक प्रत्यक्ष बात है कि भारत सदस्य राष्ट्रों के पारस्परिक विवादों पर मैत्रीपूर्ण हस्तों में भाग लेने के लिए तैयार हो जाय।

(६) भारत वास्तविक और उपनिवेशवाद पर अपने दृष्टिकोण को बतलाने के लिए और ऐसे इन प्रश्नों पर स्वतंत्र निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

(७) राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भारत के और सम्पूर्ण विश्व के हित के लिए आवश्यक है। इससे भारत के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग मिलेगा। अन्य देश भी पारस्परिक लाभ के सिद्धान्त के आधार पर ही भारत की राष्ट्रमण्डल की सदस्यता प्रदान करना चाहते हैं। आज एक दूसरे पर निर्भरता का युग है। भारत अपने व्यापार वाणिज्य और अपनी अनेक वस्तुओं के लिए दूसरों पर निर्भर है। ब्रिटेन से हमारे प्राचीन सम्बन्ध हैं और इन कुछ वस्तुओं के लिए बहुत कुछ उस पर निर्भर है। अतः उनके साथ पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर देने से हमारी अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिभूत प्रभाव पड़ेगा।

(८) सम्पूर्ण विश्व महा-बात देखेगा और समझेगा कि भारत उनके साथ भी सहयोग स्थापित कर सकता है बिनाके विच्छेद जब तक उसने तर्क प्रस्तुत किया है।

(९) राष्ट्रमण्डल की सदस्यता अन्य देशों के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण व सहयोगी सम्बन्धों की स्थापना के मार्ग में बाधक नहीं।

(१०) राष्ट्रमण्डल से पूरकता का अर्थ होगा भारत को कुछ समय के लिए विश्व से पूर्णतः पूरक ही माना। यह एक अर्धमरु शक्ति होगी और वास्तविक के प्रभाव से हमारा जुड़ाव किसी न किसी और सदस्य द्वारा।

संविधान सभा में राष्ट्रमण्डल में भारत के सदस्य बने रहने के प्रस्ताव को रद्द करते हुए १६ मई १९४६ को भी नेहरू ने कहा—

“वर्तमान विश्व में जबकि अनेक विघ्नसकारी शक्तियाँ सक्रिय हैं और हम प्रायः युद्ध की कगार पर खड़े हैं, मैं सोचता हूँ कि किसी समुदाय से सम्बन्ध बंधोड़ करना अच्छी बात नहीं है। उस समुदाय के दुरे धक्के को नष्ट कर दो आपके विकास में जो कुछ भी बाधक हो उसे नष्ट कर दो क्योंकि कोई भी व्यक्ति उस चीज से समझौते का साहम नहीं कर सकता या राष्ट्र के विकास में बाधक हो। अथवा समुदाय के दुरे धक्के को नष्ट करने के प्रतिरिक्त एक ऐसे सहकारी समुदाय को नष्ट करने की अपेक्षा जीवित रहना ही अच्छा है जो वर्तमान विश्व में कुछ हितकारी काम कर सकता है।”*

भारतीय संविधान परिवर्तन ने हम मिलावट का स्वागत किया और जब ब्रिटिश साम्राज्य के अन्त एतियाई और अकीकन देशों ने जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनना स्वीकार किया तो सामान्यतः यह माना जाने लगा कि भारतीय नेताओं का राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने का निश्चय बुद्धिमत्तापूर्ण था। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता में भारत को होने वाले लाभों की एक मंजूरी देते हुए भारत के स्वर्गीय भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था—

“भारत को राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से अनेक लाभ हैं। भारत ने अपने व्यापार को बहुत उत्तमिती दी है। भारत का सबसे अधिक व्यापार राष्ट्रमण्डलीय देशों के साथ ही होता है। भारत लगभग ४३ प्रतिशत वस्तुओं राष्ट्रमण्डलीय देशों में निर्यात करता है और स्वयं ३३ प्रतिशत वस्तुओं राष्ट्रमण्डलीय देशों को निर्यात करता है। इङ्ग्लैण्ड के साथ तो भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत अपना आया व्यापार इङ्ग्लैण्ड से करता है।”

*“In the world to-day where there are so many disruptive forces at work, where we are often on the verge of war I think it is not a safe thing to encourage the breaking up of any association that one has. Break up the evil part of it break up any thing that may come in the way of our growth, because nobody dare agree to anything which comes in the way of a Nation's growth. Otherwise, apart from breaking the evil parts of association it is better to keep going a Co-operative association which may do good in this world than to break it”

—Nehru's speech in Constituent Assembly on
May 16 1949

राष्ट्रमण्डल में भारत के बने रहने का निर्णय ले लिये जाने के उपरान्त भी इस सम्बन्ध में घासी-पतासों की जाती रही। स्वतंत्र भारत के इतिहास में घनेक ऐसी बटनायें हुईं जिसने भारत के विभिन्न भागों में इस घासी-पतास को प्रबलना प्रदान की कि भारत राष्ट्रमण्डल से पृथक् हो जाय। जब ब्रिटेन बर्लिन घोषणा में एग्नेट की नीति अपनाते का पक्ष लेता रहा और काश्मीर प्रान्त पर भारत के ग्यायसंपत्त पक्ष की उल्लेखा करते हुए पाकिस्तान का समर्थन करता रहा तो बिरोधियों ने भारत सरकार से घासी की कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता छोड़ ही जाय। इस पर उत्तर देते हुए स्वर्गीय पंडित नेहरू ने निम्नलिखित संयमपूर्ण और संतुलित जवाब कहे—

“मानव सत्ता में पहले से ही घनक बिपटनकारी शक्तियाँ हैं। भारत की यह बिपटनकारी नीति ही घनक बिपटनकारी शक्तियों का बाय कर न कि पहले से ही बन हुए बतमान पुलों को तोड़े। हम घनक, दोषों के साथ जो भी सम्पर्क रखते हैं चाहे वे राष्ट्रमण्डल के देश हो या घनक देश हों उनसे शक्ति के उद्देश्य में सहायता मिलती है। मैं ऐसी प्रत्येक बस्तु के पक्ष में हूँ जो हमें बाये बिना एक दूसरे के निकट लाती है। किसी भी चीज को तोड़ना तो घासान है, लेकिन बनाना मुश्किल।”

कुछ राजनीतिज्ञों ने यह मत प्रकट किया कि भारत मानवतात्मक कारखों से राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना हुआ है। इसका भी उत्तर देते हुए पंडित नेहरू ने ये जवाब कहे—

“भारत के लिए यह दिन दुर्भाग्यपूर्ण होया कि इसकी सरकार की नीति बनना की मानवताओं परया प्राकृतिक शक्ति उत बनानों के घाबार पर घामित होयी। मैं जानता हूँ कि इन्डोनेश में और राष्ट्रमण्डल के घनक देशों में ऐसा बहुत कुछ किया जा रहा है जो हमारी शक्ति के प्रतिफल है और जिसके बिबद्ध हमने घूतकास में संघर्ष किया है। लेकिन यह एक घनक मामला है जिससे हम एक प्रमुता सम्पन्न राष्ट्र के नाते निपटने।

स्वर्गीय श्री नेहरू ही के समान घनेक बिरोधियों ने भी भारत द्वारा राष्ट्रमण्डल की सदस्यता बनाय रखने का समर्थन किया। उदाहरणार्थ बनबरी १९५० में ब्रिटेन के बिबद्ध बिबघात बार्मनिक साईं बट्टेण्ड टेलम ने अपने एक सम्वेद में कहा—

“भारत राष्ट्रमण्डल का सबसे सक्रियतायी सदस्य है। इस नाते ब संसार की बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठान्नी शक्तियों के संघर्ष के कुपरिकाम को दूर कर मानव जाति की घनर्ष लेबा कर सकता है। मिय में इन्डोनेश और फ्रांस कार्यवाही की भारत सरकार ने जो निर्या की है मैं उनसे महमत हूँ। इस बजह से भारत ने राष्ट्रमण्डल से अपना सम्बन्ध बिच्छेद नहीं किया यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है।”

इसी प्रकार मार्च १९५० में ब्रिटेन के घामिक नेता श्री बंकिम ने घनके भारत भ्रमण के दौरान यह मत व्यक्त किया कि—

“राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध बिच्छेद भारत और इन्डोनेश दोनों के लिए न केबस मुर्बातापूर्ण ही होया प्रत्युत एक घनर्षकर घून होगी। यदि हम मिय

पुनः कर सहयोग नहीं करते तो हम प्रसंग-प्रसंग मर जायेंगे। राष्ट्रमण्डल का स्वल्प लेखी से बदल रहा है। इसका सही बिना में पत्र प्रदर्शन करने के लिए भारत के प्रभाव की आवश्यकता है।”

इनमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत की न तो प्रमुखता पर ही ध्यान घाटी है न उसकी स्वतन्त्र इच्छा ही कम होती है और उन्हे उसे कुछ न कुछ आर्थिक साम ही होता है परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्रमण्डल की सद्यता भारत के लिए एकदम विपुल रूप से उपयोगी है, उसमें किसी तरह का दाव नहीं। बल्कि भारत ब्रिटेन को प्रारम्भ से ही मित्र मान कर चला रहा है वहाँ ब्रिटेन न प्रतिकारित भारत के प्रति प्रवृत्तियों का ही अपनाया है और भारत के विरुद्ध पाकिस्तान को हमेशा बह रही है। १९६२ में पाकिस्तान ने भारतीय क्षेत्र कश्मीर पर हमला बोला। उस, समझ भी ब्रिटेन ने पाकिस्तान का पक्ष लिया लेकिन स्वर्गीय श्री शास्त्री ने ब्रिटेन से भारत के विस्तृत सम्बन्धों का ब्यास रखते हुए प्रधानमंत्री विस्मय के परामर्शों को स्वीकार करने कश्मीर समझौता किया। कश्मीर समझौते के लिए उन्होंने बिराधी राजनीतिक दलों घोर भारतीय जनता के एक बड़े भाग की ताराबनी भी सही। परन्तु कश्मीर घटना के कुछ ही समय बाद सितम्बर १९६२ में भारत-पाक संघर्ष में ब्रिटेन ने सत्य घोर स्याम को मित्रतापूर्वक तिसांजनि देते हुए, भारत को आक्रामक घोषित किया और साथ ही मुसीबत की घड़ियों में भारत को सैनिक सहायता देने से इन्कार किया। श्री मोरारजी देसाई ने स्पष्ट कहा कि ब्रिटेन के लिए भारत न पाकिस्तान दोनों ही देश समान थे क्योंकि दोनों ही राष्ट्रमण्डल के सन्त्य हैं किन्तु ब्रिटिश सरकार ने पहल तो एक सशस्त्र निरीक्षण की मांगि अपनी घाँस पाकिस्तानी घुसपैठियों की घोर से बन्द रखी और साथ में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की जो घोषणा एवं प्रतिक्रिया हुई वह आशानुकूल न थी। प्रधानमंत्री सामबहादुर शास्त्री तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्रीमती इन्दिरा पात्री ने अपने विभिन्न बक्तव्यों में ब्रिटेन के एकपक्षीय दृष्टिकोण का उल्लेख किया जो उगने भारत-पाक संघर्ष के समय भारत के विरुद्ध अपनाया था। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन कचनों पर कोई प्रत्युत्तर न दिया गया। २७ सितम्बर का आक्रामकवाणी से बोधत हुए मोरारजी देसाई ने बताया कि पिछले कुछ वर्षों से हम ऐल रहे हैं ब्रिटेन की पाकिस्तान के साथ मित्रता भारत के हितों के विरुद्ध बढ़नी जा रही है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री के पथपाठपूर्ण रहने को बन्द कर आशा नहीं की जा सकती कि भारत के स्वामपूर्ण बाँधों के प्रति ब्रिटेन कोई सह मुद्रति रख सकेगा। इन सब कारणों से यह अनुचित न हाया कि भारत को राष्ट्रमण्डल की सद्यता छोड़ लेनी चाहिए।

२४ सितम्बर १९६२ को संसद में कांग्रेस कम्युनिस्ट तथा पी एस पी के कई सदस्यों द्वारा यह माँग की गया कि भारत को राष्ट्रमण्डल छोड़ देना चाहिए। इस प्रसंग में प्रसवेरिस (Alvarez) ने बताया कि जब भारत के सामने दो ही रास्ते हैं, एक तो यह कि वह राष्ट्रमण्डल को छोड़ दे दूसरे यह कि ब्रिटेन को कामनवेल्थ का नेतृत्व करने से रोक लें। कांग्रेस दल के भयवत आजाद ने राष्ट्रमण्डल-छोड़ने के अपने प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा कि इनक

प्रस्ताव का विकल्प (Alternative) यही हो सकता है कि ब्रिटेन राष्ट्रमन्त्रमण्डल से अपना सम्बन्ध हटा ले। श्री आग्राह ने बताया कि ब्रिटिश नेता चाहे वे किसी भी बल के बलों न रहें हों भारत के हितों का सदा विरोध करते रहे हैं। बतमान संकट के समय ब्रिटिश प्रपालमन्त्री प्रथम ब्रिटिश सेना ने पाकिस्तान की आलोचना में एक शब्द भी न कहा। जब पाकिस्तान की सशस्त्र सेना सेना अख्तार उल्ला खान के नेतृत्व में सत्ताधार इमाने कण्ठी रही तो ब्रिटेन ने बुली साथ ही किन्तु ६ फिलम्बर को पश्चिमी पाकिस्तान के कुछ क्षेत्रों में भारतीय सेना ने सुरक्षात्मक कार्रवाही शुरू की तो किन्तु तत्काल ही नीच कुत्ती और भारत को पाकिस्तान पर आक्रमण करने का बोली ठहरा दिया। दूसरे, ब्रिटेन न केवल बुले रूप से पाकिस्तान के समर्थन में आया बल्कि अपने कुछ सामग्री के निर्माण पर रोक लगा दी जिसकी कि भारत को आवश्यकता थी।^{१०} ब्रिटेन का उस प्रसंग में सबसे अधिक समर्थनीय कार्य यह था कि उसने भारत पर चीनी आक्रमण के खतरे को अमेरिका की दृष्टि में सुझाव बना दिया।

भारत के साम्यवादी बल ने अपनी 'राष्ट्रमन्त्रमण्डल छोड़ो' की मांग बुझाए हुए कहा कि राष्ट्रमन्त्रमण्डल में भाग लेना भारत के लिए न केवल महत्वहीन है बल्कि यह एक मार भी है। प्रकृत भारतीय जाति परिपक्व ने ३ अक्टूबर को 'राष्ट्रमन्त्रमण्डल छोड़ो' दिवस मगाने की बात कही। परिपक्व ने बताया कि ब्रिटेन भारत के विकल्प पाक का समर्थन करने को बूढ़ निम्न है। १९६२ के चीनी आक्रमण के समय यह भारत को इस बर्त पर सैनिक सहायता देने को तैयार था कि भारत काश्मीर को पाकिस्तान का छोड़ दे तथा अपनी निर्विक्रम भीति को छोड़ दे।^{११} राष्ट्रमन्त्रमण्डल छोड़ने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी ने कई कारण बताये—(i) ब्रिटिश सरकार साम्राज्यवादी न उपनिवेशवादी अत्याचार कर रही है। (ii) पश्चिमी रोबेनिमा न ब्रिटीश अर्थीका में यह भारतीय सेना भाव की भीति न साक्षात्कार की तानाशाही का समर्थन कर रही है।

भारत को राष्ट्रमन्त्रमण्डल की सदस्यता के घोषित्य की सीमासेवर करने वाले इन उपरोक्त तर्कों में पर्याप्त बल है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन यदि सम्पूर्ण आलोचना-प्रत्यालोचना और आत्म-हानि की समीक्षा के अन्तर्गत निष्कर्ष का में देखा जाय तो यह उचित प्रतीत नहीं होता कि भारत राष्ट्रमन्त्रमण्डल की सदस्यता का परिचय कर दे। राष्ट्रमन्त्रमण्डल एक क्लब के समान है जहाँ सदस्य बात करने के लिए मिलते हैं। उनमें सहमतिवादी भी हो सकती हैं और उल्लेख मतभेद भी रह सकते हैं। एक क्लब के दो या अधिक सदस्य मौके-मौके संघर्ष की स्थिति में भी जा सकते हैं। लेकिन इसका परिणाम यह नहीं निकलना चाहिए कि प्रमुख सदस्य क्लब का परिचय कर दे। भारत राष्ट्रमन्त्रमण्डल में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सदस्य है और अपनी प्रभावपूर्ण स्थिति के कारण एशिया तथा अफ्रीका राष्ट्रों को अपने साथ लेकर

^{१०}"They stabbed us in the back. History will bitterly condemn this naked partiality"

ब्रिटेन को इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि वह भारत के प्रति प्रमैत्रीपूर्ण स्वभाव को त्याग दे या फिर राष्ट्रमण्डल का जगजा निकलवाने को तैयार हो जाय। इसके प्रतिरिक्त यह भी अनुचित ही है कि ब्रिटेन के पापों के लिए राष्ट्रमण्डल जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समूह से पूवक होने का निश्चय नै लिया जाय। यह बात ठीक वैसे ही होगी जैसे इंग्लैंडनेशिया द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को छोड़ने की बात या पाकिस्तान द्वारा संघ के परित्याग की घमकी। ब्रिटेन पाकिस्तान अमेरिका आदि राष्ट्रों का खैया संयुक्त राष्ट्र संघ में भी पूर्णतः भारत विरोधी रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ में उन राष्ट्रों की अमैत्रीपूर्ण कार्यवाहियों में भारत को अकल्पनीय मुकदान पहुंचाया है। ऐसी सूरत में यदि राष्ट्रमण्डल की सख्यता अवाञ्छनीय है तो संयुक्त राष्ट्र संघ की सख्यता और भी अधिक अवाञ्छनीय कही जा सकती है। पुनश्च राष्ट्रमण्डल एक स्वेच्छा पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है और अन्य देशों से सम्बन्ध बढ़ाने या तोड़ने में किसी प्रकार भी बाधक नहीं होती।

हर्म यह नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रमण्डल की सख्यता छोड़ देने पर भारत विश्व में अकेला दिक्कामी पड़ सकता है जबकि इसकी सख्यता के कारण वह एक हाँकन में है और सर्वोपरि बात यह है कि राष्ट्रमण्डल का परिधाम काश्मीर के प्रश्न को हमारे पक्ष में नहीं कर सकता है और न ही बखिली अफ्रीका में रणभेद की नीति को समाप्त कर सकता है। तब फिर राष्ट्रमण्डल में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में बने रहना अभी भारत के लिए हितकर ही होया। इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें बीरज व बुद्धि से काम लेना चाहिए। राष्ट्रमण्डल के प्रति हमारे सम्बन्धों के विषय में कम से कम वर्तमान संदर्भ में निश्चित रूप से स्वर्णीय भी नेहरू के ये शब्द ही हमें आज भी मार्ग होने चाहिए कि—

“नया राष्ट्रमण्डल न तो आन्तरिक और न बाहरी क्षत्र में ही भारत की स्वतंत्रता को मर्यादित करता है। उसने भारत के ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया है। भारत अपनी इच्छा के विषय एक मिनट भी राष्ट्रमण्डल में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यह समझौता काँग्रस की प्रतिज्ञाओं और किसी भी पुत्र में शामिल न होने की भारत की विशेष नीति के अनुकूल है। वह भारत को स्वतंत्रता और आधिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में सुरक्षा प्रदान करता है। भारत ने किसी भी चीज का बसिदान नहीं किया है। उसकी मूल नीति भव भी यथावत् है। यदि कोई परिवर्तन हुआ भी है तो केवल राष्ट्रमण्डल में ही हुआ है।”

श्री एस के पाटिल ने २८ सितम्बर १९६५ को इस सम्बन्ध में रोटेरी क्लब बाम्बे के सम्मुख बोलते हुए ठीक ही कहा था कि—

“हमें नाराजगी के बोध में ऐसा कोई काम न करना चाहिए जो एक उत्तरदायी देश को नहीं करना चाहिए।”

राष्ट्रमण्डल का जन्म—यद्यपि राष्ट्रमण्डल अन्तर्राष्ट्रीय जगत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली समूहों में से एक है तथापि यह धीरे-धीरे दुर्बल होता जा रहा है। १९१२ में पारित ‘Commonwealth Immb-ration Act’ द्वारा ब्रिटेन ने राष्ट्रमण्डलीय देशों के नागरिकों की विविध स्थिति को समाप्त कर उन्हें समान सामान्य विवेकियों के स्थिति में ला दिया है। ब्रिटेन के यूरोपियन साम्राज्य बाजार में सम्मिलित होने के निश्चय से राष्ट्रमण्डल की स्थिति को बांबाबोल कर दिया है। २६ अक्टूबर, १९१४ से ही ब्रिटिश सरकार ने साथ पचासों धारि को छोड़ कर समान सभी आयातित वस्तुओं पर आठे के राष्ट्रमण्डलीय देशों से आयातित होने पर बाध्य देशों से—उनके मूल्य का पन्द्रह प्रतिशत शुल्क लगा दिया है जिससे राष्ट्रमण्डलीय देशों को मिलने वाला व्यापारिक लाभ एक बड़ी सीमा तक नष्ट हो गया। अब ब्रिटेन द्वारा साम्राज्य बाजार में सम्मिलित हो जाने पर तो राष्ट्रमण्डलीय देशों की धोर भी अधिक व्यापारिक हानि उठानी पड़ेगी। ब्रिटेन के इस प्रकार के कदमों से अनेक राष्ट्रमण्डलीय देशों को जिनमें भारत भी है राष्ट्रमण्डल मानो उपयोगिता के विषय में सन्नेह होने लगा है और कुछ देश इसके प्रलय हो जाने के बारे में भी सोचने लगे हैं। ब्रिटेन के साम्राज्य बाजार में शामिल होने के अंशने से राष्ट्रमण्डल पर कितना बाधक प्रभाव पड़ सकता है उसका पता बहुत कुछ इसी बात से चल जाता है कि भारत में इस विचार को चल मित्र पड़ा है कि ब्रिटिश प्रभानमन्त्री बिलसन ‘राष्ट्रमण्डल के मित्र देशों के साथ दोषा करते जा रहे हैं और ब्रिटेन की परम्परा को भी यह छोड़ रहे हैं। ब्रिटेन की परम्परा देशों के माल पर सीमा शुल्क में रिघायत देने की परम्परा रही है। भारत को भारतीय माल के आयात पर ५० प्रतिशत की दर देने के बाव ब्रिटेन को भारतीय माल के आयात पर ५० प्रतिशत की दर देने के अनुसार सीमा शुल्क लगाना ही पड़ेगा।

भारत ही के समान अन्य राष्ट्र भी राष्ट्रमण्डल की सद्यता के बारे में पचका इसकी उपयोगिता पर पुनर्विचार करने लगे हैं। पामर वीर परकिंस (Palmer and Perkins) का यह निष्कर्ष सचबा बुद्धिसमय है कि “निरन्तर सहकार्यता के बावजूद राष्ट्रमण्डल में सभी कुछ ठीक नहीं है।

“Although sentiments do sometimes rise this war is not the be all and end all. Let us not in a moment of anger act in a manner that a responsible country should not.”

—S.K. Patil

इसके सम्बन्ध सून निश्चित रूप से बुझल हो गये हैं और इसका मबिष्य अनिश्चित है।”*

EXERCISES

- 1 “The Commonwealth is not a Political Unit. It is not an alliance. It has no common policy. The nations of the Commonwealth make their own separate decision in world affairs and none of them is prepared to give up that right.” Comment.

“राष्ट्रमण्डल एक राजनीतिक इकाई नहीं है। यह एक संघठन या संधि भी नहीं है। इसकी कोई सामान्य नीति नहीं है। विश्व राजनीति की समस्याओं के बारे में राष्ट्रमण्डल के राज्य पृथक-पृथक निर्णय करते हैं और इसका कोई भी सत्य स्वतंत्र निर्णय के अपने अधिकार का परित्याग करने को तैयार नहीं है।” विवेचना कीजिए।

- 2 “How a nation can become Republic by abolishing allegiance to the Crown and at the same time retain full membership of United Commonwealth, which is and must be basically a Crown Commonwealth, is a complete mystery.” (R.G. Menzies) Discuss the correctness of this statement with reference to India as a member of the Commonwealth of nations.

‘यह एक रहस्यपूर्ण बात है कि एक राष्ट्र गणराज्य बने बन सकता है जबकि वह एक राज ही एक तरफ तो राज से सम्बन्ध समाप्त कर ले और दूसरी तरफ राष्ट्रमण्डल की पूर्ण सदस्यता भी बनाये रखे जो कि बाजारपूज रूप से राज का राष्ट्रमण्डल ही है।’ राष्ट्रमण्डल के सदस्य के रूप में भारत के सदस्य में इस कथन की व्याख्या कीजिए।

*“In spite of continued collaboration however all is not well within the commonwealth. Its bonds have definitely weakened and its future is uncertain.”

3. Write an essay on the Commonwealth of Nations.

राष्ट्रमण्डल पर एक निबन्ध लिखिये।

4. Should India quit the Commonwealth of Nations ?
Discuss.

क्या भारत को राष्ट्रमण्डल छोड़ देना चाहिए? विवेचना कीजिए।

5 Describe structure and functions of the British Commonwealth of Nations and examine it

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के निर्माण व अधिकारों का वर्णन करो।

8

शीत-युद्ध

[COLD WAR]

- १ शीत-युद्ध का अर्थ
- २ कस एक परिष्मि वैत-इतिहास की पुच्छनूमि में
- ३ द्वितीय महायुद्ध के बीरान परिष्मि शक्तिष्मि धीर सोवियत कस
- ५ शीत-युद्ध का प्रारम्भ धीर इतिहास
 - (क) 'परिष्मि' की 'पूरुष' के बिच्छुड सिक्कायते
 - (क) 'पूरुष' की परिष्मि के बिच्छुड सिक्कायते
- ५ १९५७ में वर्तमान समय तक शीत-युद्ध पर एक वृष्मि
 - (i) १९५७ से १९५९ तक का शीत-युद्ध
 - (ii) १९५९ से १९५८ तक का शीत-युद्ध
 - (iii) १९५८ से सितम्बर १९६७ तक का शीत-युद्ध
६. सङ्घात्मिक संघर्ष बनाम शक्ति-राजनीति

“आजकल विश्व में दो महान् राष्ट्र हैं, जिन्होंने विभिन्न स्वतंत्रों से
 जलना प्रारम्भ किया परन्तु एक ही समय की घोर प्रवृत्त
 प्रतीत होते हैं। मेरा सकेत यह घोर अमेरिका की घोर
 है । अमेरिका का प्रमुख साधन है स्वतन्त्रता और
 स्वतन्त्रता का दासता। उनके प्रारम्भिक स्वतन्त्रता और
 और यद्यपि उनके मार्ग भी एक नहीं हैं फिर भी
 प्रत्येक विश्व के गोलाइड का भाग्य-विधाता बनेगा
 ऐसी ईश्वरीय इच्छा प्रतीत होती है।”

—अमेरिसस डी. टोकवि

“आधुनिक
 विश्व के दो भीमाकार
 राज्यों के मध्य संपर्क ही समकालीन
 विश्व-राजनीति की विशेषता है।”

Kuldeep

शीत-युद्ध (COLD WAR)

शीत-युद्ध का सम्म—द्वितीय महायुद्ध का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि विश्व में प्रथम शक्ति की दो ही महाशक्तियाँ रह गयीं—सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका। युद्ध काल में यूरोप में हिटलरवाद और सुदूरपूर्व में जापानी युद्ध राष्ट्रियता में जो सहयोग विद्यमान था वह समाप्त हो गया। एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि जहाँ महायुद्ध के दौरान अमेरिका रूस और ब्रिटेन प्रादि न परस्पर कधे से कंधा मिला कर 'बुरी राष्ट्रों' (जमनी जापान व इटली) के विरुद्ध संघर्ष किया था उनके राजनीतिज्ञों और कू नीतिज्ञों ने सम्मेलनों व पत्र-व्यवहार प्रादि में एक दूसरे से सहयोग किया था उनके अनुरोध और कमाण्डर विभिन्न युद्ध मोर्चों पर सहयोग करते हुए बुद्धिमत् से कूटनीति और परिणामस्वरूप अपने सहयोग के फल पर ही अत्यन्त शक्तिवान व प्रबल शत्रु का हलक कर सके जहाँ युद्ध के बाद इन राष्ट्रों में सहयोग के सभी आचार समाप्त हो गये। युद्ध के समय के दोस्तों में युद्ध के बाद बल्कि युद्ध समाप्त होने के कुछ समय पूर्व से ही तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गये। जी. डी. इ. एन. मतभेदों ने इतने तनाव, असंतुष्टि और मनीमानीय की स्थिति उत्पन्न कर दी कि पश्चिमी और पूर्वी भेदों के राज्यों में वाक्य के मोसे-गोस्तिपो से लड़े जाने वाले समस्त वैश्व संघर्ष के न होते हुए भी कागज के मोर्चों मजबूतियों में लड़ा जाने वाला परस्पर विरोधी राजनीतिक प्रचार का तुल्य सभाम छिड़ गया।" इसी संघर्ष को 'शीत-युद्ध' (Cold War) की संज्ञा दी गई, जिसमें प्रायः का सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय जगत बुरी तरह पाड़िन है। अमेरिका ब्रिटेन तथा प्रायः पश्चिमी यूरोपियन शक्तियाँ मिला कर पश्चिमी (West) भेदा कहलाते हैं और सोवियत संघ व उसके पूर्वी यूरोपियन मित्र राज्य संयुक्त रूप से 'पूर्वी' (East) भेदा कहलाते हैं। पहले भेदे प्रचलान विधिर या गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका है और दूसरे भेद का प्रगुधा सोवियत संघ है।

शत्रु को परास्त करने का युद्धकाल का सामान्य हित पूरा होते ही दोनों पक्षों की फूट में इतना सम्मोह रूप चारण कर लिया कि वे प्रायः एक दूसरे को अविश्वास और संशय की दृष्टि से देखते हैं तथा विश्व राजनीति के जगमग प्रत्येक प्रश्न पर उनके बुद्धिकोणों में फर्क है। समय-समय पर संसार इन दोनों पक्ष या गुटों में विभक्त है और सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रसवकर आणविक प्रायुर्धों से सम्पन्न रूस व अमेरिका जैसे मीमाकार दानवों के संघर्ष का प्रकाश बना हुआ है। इन 'शीत-युद्ध' में विश्व की एक तृतीय महायुद्ध के बिस्फोट के निकट ला दिया है और यदि समय रहते इस पर नियंत्रण न हुआ तो यह एक एक दिन 'प्यावहारिक युद्ध' का जन्म दे जानेवाला क्योंकि यह (शीत-युद्ध) एक ऐसी स्थिति है जिसमें दोनों पक्ष परस्पर शान्तिवादीन कूटनीतिक सम्बन्ध बनाय रखते हुए भी परस्पर शत्रुभाव रखते

हैं और सशस्त्र युद्ध के प्रतिरिक्त अन्य सभी उपायों से एक दूसरे की स्थिति को सुबंभ बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह एक कूटनीतिक युद्ध है जो व्यावहारिक युद्ध का जनक हो सकता है। "शीत-युद्ध की युद्ध-नीति कूटनीति के समस्त शस्त्राधार के नस-र सर्वाधिक क्रूर पलों में, एक प्रभावशाली प्रयोग पर आधारित है।"

इस 'शीत-युद्ध' में अमेरिका साम्यवाद को स्वतन्त्रता और विश्व-शांति का शत्रु बताता हुए रूस के प्रभाव के विस्तार को रोकन का प्रयत्न करता है और हंगरी आदि पूर्वी यूरोपीय देशों में हुए राष्ट्रीय विद्रोहों के आधार पर रूस को एक साम्राज्यवादी शक्ति बताता है तो रूस पश्चिमी शक्तियों को उपनिवेशवादी धारित करते हुए साम्यवाद को एशिया और अफ्रीका के प्राथमिक कक्ष में प्रस्तुत करता है। बामा ही पक्ष अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि करने के लिए अपनी-अपनी सैद्धान्तिक मान्यताओं पर बस दत है तथा प्राथमिक सहायता प्रचार, सामूही नैतिक हस्तक्षेप सैनिक गुटबंदियों प्राथमिक संमन्त्रों संयुक्त राष्ट्र संघ जन्मीकरण सैद्धान्तिक और प्राथमिक प्रवृत्ति का प्रदर्शन आदि सभी समग्र साधनों का प्रयोग करते हैं। अपने प्रभाव-क्षेत्र की वृद्धि करने के लक्ष्य को पूरा करने के लिए वे जाति और वर्णगत द्वेष को मड़काने राष्ट्रीय भावनाओं का दुरुपयोग करते, धौंसोणिक असंतोह व स्थानीय संघर्षों को प्रोत्साहन देने आदि के सभी हीन उपायों का प्राथम्य लेते हैं। वे बहिष्कृत मुखमरी आदि मानवीय दुर्भावों का नाम चठाने में भी नई विचकियाते।

रूस एवं पश्चिमी देश

इतिहास की दृष्टिसे—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास से पता चलता है कि शीत-युद्ध के वर्तमान महारथियों—अमेरिका ब्रिटेन और सोवियत रूस—का युद्धकालीन सहयोग पूर्णतः अस्थायी प्रकृति का था क्योंकि उनके पारस्परिक मतभेद और संघर्ष तो मूलमूल व ऐतिहासिक हैं। १९वीं शताब्दी और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में यूरोप के सब संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्बन्ध 'मुनरो सिद्धान्त' पर आधारित थे। इस सिद्धान्त पर चलने के कारण उक्त समय अमेरिका यूरोपियन समस्याओं के प्रति अनजब उदासीन था। परंतु उस काल में प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अथवा प्रतिस्पर्धी ब्रिटेन अंतर्गत और रूस ही थे। इन देशों के पारस्परिक संघर्ष के मुख्य अंशों का लक्ष्य प्रायः प्रायः (मध्य पूर्व) और एशिया थे। १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में इन क्षेत्रों में इनके अधिकारों और प्रभावों को संकट पीडा हो गया। जर्मनी और इटली ने जो भूमि-विस्तार के आकांक्षी थे विश्व के एंग्लो-फ्रेंच रक्षित स्वामित्व को चुनौती दी। १८८२ में जर्मनी इटली और आस्ट्रिया-हंगरी ने 'त्रिगुट संघ' (Triple Alliance) का निर्माण किया। इस त्रिगुट शक्ति के सब बिल कठरे से अयभीत हा कर ब्रिटेन फ्रान्स और रूस ने अपने मतभेदों को मुना कर १९०७ में (Triple Entente) की रचना की। १९१४ में जर्मनी द्वारा प्रथम महायुद्ध की शुरुआत कर देने पर (Triple Entente) की शक्तियां उसके विश्व संगठित हो गए। परन्तु जब जर्मनी की बढ़ती हुई

शक्ति नै कहूर डा दिया और व्हिटेन फ्रांस घादि की बिजय को अनिश्चित बना दिया तो बिजय हो कर घमसे १९१७ में संयुक्त राज्य अमेरिका उनकी सहायता के लिए आये आया ।

नवम्बर १९१७ में रूस में बाल्सेविक आति हुई जिसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में आचारमूत परिवर्तन हुए । पाश्चात्य पूरबीवासी राष्ट्रों ने इस आति का स्वागत नहीं किया । उन्होंने अपने साकत्यों के लिये साम्बवासी आति को एक कुनीती और बबरवस्त कतरे के रूप में प्रक्रीकार करते हुए इसे असफल बनाने हेतु कधी राजनीति में समस्त हस्तक्षेप किया तथा आति-विरोधी तर्कों को प्रत्येक प्रकार की सहायता पहुचाने की चेष्टा की परन्तु आति क तत्त्व इतन मौलिक और सुदृढ़ थे कि पश्चिमी शक्तियों की इस सुरमि संधि को मुह की आनी पड़ी । समर्प से उबरते ही कमी राजनीतियों नेताओं और जनता ने अपनी 'नई सम्रता (साम्यवाद) को सुरक्षित एव सुदृढ़ करने का बृह संकल्प किया ।

श्री 'सम' परिस्थितियों और स्वार्थों के बशीजन हो कर पाश्चात्य राष्ट्रों ने यद्यपि मोबियत संघ के साथ व्यापार एव वाणिज्य सम्बन्ध स्थापित किये तथा कूमीतिक सम्बन्धों की प्रस्थापना भी की किन्तु उनका उसके प्रति अनुता का भाव कम नहीं हुआ और उनकी सदैव यह चेष्टा रही कि साम्यवासी रूस किसी न किसी रूप में एक क्षीण एव दुबल राष्ट्र बन जाय ताकि अक्षर पाकर वे उनका मत्ता मोट सकें । संयुक्त राज्य अमेरिका का रुख ता इतना कठोर रहा कि उसने १९१३ क अन्त में आकर कहीं रूप को कूटनीतिक मायता प्रदान की । इस साम्यवासी राष्ट्र को उनके अल्प काम से ही पश्चिमी शक्तियों एव पूरबीवासी तर्कों द्वारा 'अन्तर्राष्ट्रीय अष्ट' समझा जाता रहा और उसके 'विश्व-परिवार' अर्थात् राष्ट्र संघ (League of Nations) का महस्य बनने के मार्ग में सन् १९१४ तक हर प्रकार की बाधा बानी जाती रही ।

अमनी में व्हिटेन के उद्यम के बाद भी पश्चिमी शक्तियों ने स्थिति का समत मूल्यांकन करते हुए मोबियत संघ की मंत्री की कोई नीमत नहीं समझी । उन्होंने यह सोच कर अमनी आपान और इटली के कुचक्रों का समपन किया कि वे मोबियत संघ को निगल जायेंगे । नात्री दल क अमनी में सत्ताद्व होने पर जब व्हिटेन न बार-बार रूस के विरुद्ध विपक्षमन किया तो पश्चिमी राष्ट्र यही समझ बैठ कि अमनी को समुष्ट करके रूप क विरुद्ध एक अन्तिवासी हथियार के रूप में उसका उपयोग उठाया जा सकेगा और नात्री कम-अभयन अक्षर्य में जब दोनों शक्तियाँ क्षीण हो जायेंगी तो वे इस अवसर का लाभ उठा कर दोनों को कुचक्र कर गये बग । उनकी यही विचारधारा सन् १९३० क बाद एनो फ्रेंच 'कूटनीतिक-नीति का आधार बनी । द्वितीय महायुद्ध क प्रारम्भ तक रूप न जब भी दोन्ना का हाथ बढ़ाया उसे ठररा दिया गया । यही तर्क कि १९३९ म अर्थात् व्हिटेन को आश्रमक आगलाखें पूरी तरह सप्ट हो चुकी थीं अन्त न मास्का के साथ एक मंत्री-संधि करने से इन्कार कर दिया ।

सन्ध में पश्चिमी राष्ट्र अपनी इस स्वार्थपरता से परिपूर्ण नीति के स्वयं शिकार हुए। द्वितीय की महत्वाकांक्षाओं की कोई सीमा न थी और २० वर्ष की प्रत्यक्षात्मक शान्ति के बाव बिच पुन एक दूसरे महायुद्ध की प्वासाओं में झुलस गया। यदि पश्चिमी राष्ट्र शक्तिशाली रूस की प्रबलता न करते हुए उसके साथ सहयोग करते तो सम्भवतः द्वितीय की महत्वाकांक्षाओं पर प्रभावकारी प्र कुल लग सकता था।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान पश्चिमी शक्तियों और साम्यवादी रूस—द्वितीय महायुद्ध कास न परिस्थितियों ने पश्चिमी शक्तियों और साम्यवादी रूस में सहयोग को बन्ध दिया यद्यपि बहु एक प्रस्थापी घटना ही रही। जून १९४० में जर्मनी ने फ्रांस जैसे शक्ति सम्बल राष्ट्र को पूल बटा दी और ब्रिटेन को अपनी मयकर बमबर्षा का शिकार बनाया। प्रपल १९३९ में द्वितीय न स्थापित के साथ दोस्ती का नाटक बना और जर्मनी ब रूस दोनों परस्पर कट्टर शत्रुओं में मैत्री और तटस्थता के समझौते हो गये। जनवरी १९४१ में एक नये व्यापार-समझौते द्वारा सोवियत-जर्मन तटस्थता को सुदृढ़ बनाया गया। ब्रिटेन को बूटने टिका पाना एक प्रति कठिन काय समझ कर २१-२२ जून १९४१ को वास्ती के बावों के बीच द्वितीय ने सहसा ही यह धाकमछल द्द्वन्द्वराष्ट्रीय सम्बन्धों के जगत में एक अशान्तिकारी विकास था। ही मार्च सेप छोड़ दिया और तटस्थता के साथ समान जहश्यों की बाधना कर दी। रूस में स्वागत करते हुए स्थापित के साथ समान जहश्यों की बाधना कर दी। रूस और पश्चिमी राष्ट्र को सब तक एक-दूसरे के नाटक शत्रु के सामने एक ब्रिद्ध प्रगाड़ मैत्री के प्रतिनिधियों ने ब्रिटेन के साथ एक 'बनोसे राष्ट्रपति रूबिस्ट ने भी सोवियत वंश को Land Lease Act के द्द्वन्द्वराष्ट्रीय सम्बन्धों पर जावानी बमबर्षा के उपरांत बहु स्वय युद्ध में कूब पड़ा। बयों तक सफलतापूर्वक कार्य करता रहा। जनवरी १९४२ में 'बुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध रत २३ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के साथ रूबिस्ट, बलिज और मिटविनोव ने 'संयुक्त राष्ट्र-सोवियत-यंत्र' (U.N Declaration) पर हस्ताक्षर किये और 'घटनाशिकघाट' में निहित सिद्धान्तों का पालन करने तथा बलिज राम टोकियो के विनाश के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं साधनों का प्रयोग करने की प्रतिज्ञा की। यह सोवियत-यंत्र बीली (Balle) के शब्दों में 'अमेरिकन इन्नीतिक इतिहास में युग परिवर्तनकारी महत्व का' (An epochal significance in American diplomatic history) का जिसने "न बिच-रागठन की साधार शिला भी रही। यह बस्तुतः एक स्वायी वैश्विक यठबन्धन-यंत्र या और अमेरिका की प्रबलता की शक्तियों युगमी परिपाटियों

के सर्वथा विपरीत था।”* मई १९४२ में सोवियत संघ और ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध पारस्परिक सहायता-सन्धि पर हस्ताक्षर किये। मई १९४४ में सोवियत संघ ने पश्चिम विरोधी प्रचार की एक प्रमुख संस्था ‘कॉमिन्टर्न’ (Comintern) के विघटन की घोषणा की। वाशिंगटन सम्मेलन व मास्को के गठबन्धन ने नाभी सैन्य बलों को पराजित करके दोनों पक्षों के मध्य विवाद की भावनायें यद्यपि बे-अस्थायी थीं तथापि परक सिद्ध हुईं जायत प्रबन्ध की। फरवरी १९४५ में वास्टा सम्मेलन में इस ‘बनोके गठ-बन्धन’ की सफलता की प्रतीक भावनायें अभिव्यक्त हुईं। २७ फरवरी १९४५ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री की अतिशय लोकप्रियता व घोषणा को ‘सोवियत संघ के नेतागण पश्चिमी लोकतंत्रों के साथ समान तथा सम्मानपूर्णा मंत्री की जिवन्गी बसर करना चाहते हैं। उनके लक्ष्य ही उनकी प्रतिज्ञायें हैं। चार दिन बाद ही अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रुमैन ने यह घोषणा व्यक्त की—‘मुझे विश्वास है कि वास्टा-सम्मेलनों के फलस्वरूप यूरोप की राजनीतिक स्थिति पहले से कहीं ज्यादा स्थिर होगी।”

वास्तव में यह कहना उपयुक्त होगा कि १९४४-४५ में ब्रिटेन और अमेरिका को कुछ-कुछ यह विश्वास हो चला था बुद्धोत्तर काल की समस्याओं के निपटारे में भी सोवियत संघ का सहयोग मिल सकेगा। लेकिन विजय अनिष्ट स्वार्थों और हितों को अधिकाधिक प्राप्त करने की होड़ दोनों धोर से ही ऐसी चली कि युद्धकालीन सहयोग व मैत्री का बालुई महसूस एकदम बह गया। ‘पूब-पश्चिम’ सम्बन्ध इतना गति से बिगड़ने लगे हो गये और ‘बनोका गठबन्धन’ (Strategic Alliance) अपनी मूल्य-सैम्या पर कराहने लगा। अन्त में इस ‘गठबन्धन’ की अर्थी निकल ही गई और युद्ध काल के साथी बुद्धोपरान्त एक-दूसरे के सिधे अजनबी बन गये। इतना ही नहीं वे एक-दूसरे के प्यासे भी हो गये।

शीत-युद्ध का प्रारम्भ और इतिहास

महाबुद्धोत्तर स्थिति ने दोनों महाशक्तियों के मध्य जिस शीत युद्ध को जन्म दिया उसने वास्टा-सम्मेलन से सौटने वाले प्रतिनिधियों के विचारों को व्यक्त करने वाले हैरी हॉपकिंस (Harry Hopkins) के इन शब्दों को झुठला दिया कि “हमें बन्धुतः अपने हृदय में यह विश्वास था कि यह एक नूतन विश्व का उपाकाल था जिसके सिधे हम इतने ज्यों से प्रार्थना कर रहे

*This Declaration was of epochal significance in American diplomatic History. It not only insured unity for war but provided the nucleus of a new world organisation for peace. It was in effect a binding military alliance and as such a significant departure from America's centuries old non entanglement tradition.

के। हमें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि हमने जालि की प्रथम विजय प्राप्त कर ली है। इस शान्तियों में यह सिद्ध कर दिया था कि वे युक्तियुक्त और दूरदर्शी हो सकते हैं तथा हम विश्व में जहाँ तक सोच सकते हैं वहाँ तक उनके साथ शान्तिपूर्ण रह सकते हैं और बल सकते हैं।" + अब अमेरिका के नेतृत्व में पारबाल्य राष्ट्रों ने इस पर शान्तियों और आरोपों की बोझार करना शुरू किया और उभर इस ने उन पर आमाचना एवं प्रत्यारोपण की गयी सया थी। वाशिंग्टन ही पक्षों में एक-दूसरे को नञ्जुतापूर्ण मनोभावना और संदेहपूर्ण प्रवृत्तियों से भरा छिद्र करने के लिए धपन-धपने तक वेष्ट किए। यहाँ हम, शीत युद्ध के कारणों को बढाते हुए, दोनों ही पक्षों द्वारा किए गए तर्कों का पुनः-पुनः रूप से वर्णन करेंगे।

(क) 'पश्चिम' की 'पूर्व' के विच्छिन्न शिकायतें—अमेरिका के नेतृत्व में पारबाल्य शक्तियों ने सावित संघ के विच्छिन्न महत्वपूर्ण शिकायतें प्रस्तुत कीं जिनका उल्लेख उस पर जो विभिन्न प्रमुख धाराएं लगाए, है इस प्रकार है—

(१) इस द्वारा पास्ता समझौतों की प्रवृत्तिसूचना—ब्रिटेन और अमेरिका की इस के विच्छिन्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिकायत यह थी कि अन्तर्-पास्ता-समझौतों का पूरा उल्लंघन किया है। फरवरी १९४५ में ब्रिटेन और अमेरिका के बीच 'आधिपत्य क्षेत्रों' (Occupation Zones) में विभाजित किया जायगा जोसेब में घोषित संघ द्वारा संरक्षित 'सुवर्णित सरकार' और पश्चिमी देशों द्वारा संरक्षित 'नन्दन सरकार' के स्थान पर स्वतंत्र चुनाव किये जाकर एक प्रतिनिधिक सरकार की स्थापना की जायगी जसे जोसेब से उसके पूर्व में स्थित इसी भाषा-भाषी प्रदेश कर्जन-रैना के आधार पर पुनः कर दिये जायेंगे परन्तु पश्चिम में जसे युपावले के रूप में कुछ जर्मन भूमि की जायगी। तोषित रूप द्वारा यह भी बचन दिया गया था कि बहु-बाह्य मनोभिया में 'पूर्व स्थिति' (Status quo) बसिणी सरकार तथा कुराइस हीनों पर इसी स्वाभित्त बरदेन का मन्तराष्ट्रीयकरण (Internationalization of Dairen) पोर्टे पार्बर में एक इसी नीतिमिक यहाँ की स्थापना तथा एक चीनी-असि कम्पनी द्वारा मञ्चुरियन रेलवे के संयुक्त संभारम की शर्तों के साथ जमनी के आत्म-समर्पण के दो तीन महीने बाद आधान के विच्छिन्न युद्ध में शामिल हो जायगा। स्टालिन ने यह भी कहा था कि बहु-शीत की 'राष्ट्रवासी' सरकार को ही बच सरकार के रूप में मान्यता प्रदान करेगा।

लेकिन इस द्वारा पास्ता-समझौतों की ज्येष्ठा की गई। राष्ट्रपति ब्रिटेन की मृत्यु के बाद फरवरी १९४५ में राष्ट्रपति ट्रुमैन ने हीरी होप किम्स को मास्को यह सूचित करने के लिए भेजा कि उसका राष्ट्र (अमेरिका) ब्रिटेन की नीतियों को किन्नाभित्त करने पर कटिबद्ध है। प्रस्तुत में स्टालिन

+Sherwood, Robert : Roosevelt and Hopkins Vol. II, p 516.

द्वारा यह प्राश्वासन दिया गया कि सोवियत संघ भी याता-ममझीनों के पामन से पीछे नहीं हटेगा ।

रूस ने उररोक्त प्राश्वासन मसे ही दे दिया परन्तु उसकी नीति यास्ता समझीतों का पामन करने की न थी । उसन धनक ऐसी कार्यवाहियाँ कीं जिनसे पश्चिमी राष्ट्रों को यह स्पष्ट हो गया कि रूसी दृष्टिकोण म यास्ता समझीता रही कागझों के डेर के धनाया कुछ नहीं है—

(1) रूस ने पोसैण्ड म स्वतन्त्र बुनाबा पर प्राचारित एक प्रतिनिधिक सरकार की स्थापना करने की प्रपेक्षा पोलिश जनता पर धपने द्वारा संरसित 'सुबनिन-सरकार' (Lubian Government) को मानने का प्रयत्न किया । इस कठमुठपी 'सुबनिन सरकार' प्रबन्ध (Polish Committee of National Liberation) की स्थापना दिसम्बर १९४१ म रूसी भूमि पर की गई थी धौर २१ प्रब्रस १९४१ को रूस ने प्रबासी पोलिश सरकार से सम्बन्ध तोड़ कर २९ बुनाई, १९४४ की सुबनिन सरकार से जोड़ दिये थे ।

रूस ने म केवल सुबनिन सरकार का पामित बनता पर माना ही बल्कि देस के धन्य प्रजासंतीय दर्भों को गिरफ्तार भी कर लिया । पोसैण्ड के कैटिन (Katyn) बन-हत्याकांड म ४ हजार गैर साम्यवादी पामों का नाम सेना द्वारा सत्ताया कर दिया गया । यह घासंका भी न थी जानी है की संभवत ११ हजार धन्य भापता पामों के मान भी ऐसा ही व्यवहार किया गया होया ।* जब अमेरिकन धौर ब्रिटिश प्रेक्षकों ने पोसैण्ड म प्रवेश करना चाहा तो इसकी सन्ने अनुमति नहीं थी गई ।

रूस की मान सेना द्वारा पूर्वी यूरोप म साम्यवादी दर्भों के प्रोत्साहन धौर विरोधी दर्भों के विध्वंस ने मित्र राष्ट्रों को बड़ा चिन्तित बना दिया धौर रूस के प्रति यहूदी घासंका व सन्नेह का बातावरण उनके मन-मानस म पुष्ट हो गया ।

(II) इंगरी बलोरिया रमानिया धौर चेकोस्लोवाकिया म भी रूस द्वारा सुब-बिराम समझीतों तथा यास्ता व पादमदन सधियों का इस्तेमाल किया गया । रूस द्वारा मित्र राष्ट्रों के साथ पहले यह निश्चय किया गया था कि— मानियों से मुक्त किए गए राष्ट्र धपनी इच्छानुसार लोकसंतीय संस्था बुनेगे धौर इसके लिए मित्र राष्ट्रों के बीच सम्मिकित विचार-विमिमय किया जाएगा । परन्तु रूस ने इस पूर्व निश्चय को ठुकरात हुए पूर्वी यूरोप के इन धमी दर्भों म प्रजातन्त्र की पुनर्स्थापना म मित्र राष्ट्रों के साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया धौर इन दर्भों के जनमत तथा पश्चिमी राष्ट्रों के विरोध की पूर्ण अनहेमना करते हुए बड़ी रूस-समबक सरकारें स्थापित कर दीं ।

रूस द्वारा यास्ता धौर पोदसहम समझीतों की इन बुनी धबहेतना धौर इसके बड़ते हुए प्रभाव ने पश्चिमी राष्ट्रों म रूस के प्रति संदेह मानना को धौर भी बड़ाया ।

(iii) सन् १९४४ के मध्य साम्यवादी सेना वास्तविक प्रदेश में प्रविष्ट हो गई। इस पर बर्लिन को घासका हुई कि इस सामरिक महत्व के इस सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लेना। सन् १९४४ में हा उसने स्टालिन के साथ पूर्वी यूरोप के विभाजन के प्रश्न पर यह निर्णय किया कि रूस को बल्गारिया व रमानिया पर छाये रहने की अनुमति होगी और ग्रेट ब्रिटेन को यूनान में इसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे। यह निर्णय किया गया कि हमारी और यूगोस्लाविया में दोनों ही देशों का समान प्रभाव माना जायगा। बाद में स्वीडन के कब्जा अनुसार बर्लिन के मध्य में यह व्यवस्था तत्कालीन युद्ध-समय की परिस्थिति का नियोजन की थी। * पश्चिमी देशों के लिए समझौते की कोई बात उन्हीं प्रतीत नहीं होती थी। * पश्चिमी देशों के लिए यह समझौते की कोई बात उन्हीं बनाने और मध्य तथा आसपास के क्षेत्रों में यूनान के उत्तर में अधिकतर पूर्वी समर्पण करने वाले से पूर्व ही कभी फीजों में यूनान के उत्तर में अधिकतर पूर्वी और दक्षिण पूर्वी यूरोप पर अपना नियंत्रण बना लिया जाता पर साम्यवादी सरकारों को भी और कुछ ही वर्षों में यूनान और बाल्टिकसागर के बीच कुछ अधिक साम्राज्यही राज्य स्थापित हो गये।

(iv) सोवियत रूस की आपात के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होने की प्रतिवद्धता और उसके द्वारा मित्रराष्ट्रों का साइबेरियाई राष्ट्रों की सुविधा प्रदान करने में विफलताओं का साइबेरियाई राष्ट्रों की सुविधा तथा को बढ़ाया। रूस ने आपात के विरुद्ध युद्ध कोपना तथा की जब अमेरिकन द्वारा प्रथम प्रयत्न करने के प्रहार से आपात की पूर्ण पराजय एकदम सुनिश्चित सम्पन्न हो गई। साइबेरियाई राष्ट्रों की सुविधा मित्रराष्ट्रों में इतनी-बाहरी की कि इससे प्रस्ताव सागरीय युद्ध हीन समाप्त हो जाने में सहायता मिलती।

(v) पश्चिमी देश रूस की इस बात से भी बड़े दुःख हुए कि जर्मन-अमेरिकन अधिकारी इटली में जर्मन सेनाओं के भारतसमर्पण के बारे में एक जर्मन सेना में बातें कर रहे थे तथा स्टालिन ने कबडस्ट को एक निष्ठा जिसमें उन पर भी बर्लिन पर इस प्रकार का आरोप लगाया ब्रिटिश अमेरिकन अधिकारियों की जर्मन सेनापति से बातों का यह है कि रूसी सेनाओं के बर्लिन पहुँचने से पूर्व ही भारत समर्थनी सेनाओं उन पर कब्जा कर लें।

(vi) मासिक रूस द्वारा चीन में भी वास्तविकताओं की समीक्षा बढ़ेसता की गई। मजूरिया स्थित मासिक फीजों में सन् १९४६ के प्रारम्भ में राष्ट्रीय सेनाओं को तो वहाँ प्रवेश तक नहीं करने दिया जबकि मासिक सेनाओं को प्रवेश-सम्बन्धी सभी सुविधाएँ देते हुए वह सम्पूर्ण युद्ध मामलों की सौंप दी, जो आपाती मता मानने समय छोड़ गई थी।

* Charles Schlicher Relations, p. 421

(२) रूसी सेनाओं का ईरान से न हटाया जाना—१९४२ में एक समझौते द्वारा यह निश्चित हुआ था कि युद्ध के दौरान जिन विदेशी सेनाओं ने ईरानी प्रदेशों में प्रवेश किया था उन्हें जर्मनी द्वारा धारमसमर्पण के अधिकतम ६ माह बाद वहाँ से हटा लिया जायगा। युद्ध के उपरान्त एङ्ग्लो-अमेरिकन फौजें दक्षिणी ईरान से हटा ली गयीं लेकिन वही फौजें उत्तरी ईरान में ज्यों की त्यों जमी रही। इतना ही नहीं रूस ने इस उत्तरी क्षेत्र में साम्यवादी पार्टी को समर्थन देकर अस्तित्व देना का प्रयत्न भी किया। यद्यपि बाद में काफी प्रयासों और समूह राष्ट्र मधीय हस्तक्षेप के बावजूद वही फौजें ईरान से हटा ली गयीं किन्तु यह घटना पारशात्य राष्ट्रों के सम्बन्धों और अविश्वास का पनपाने में सहायक हुई।

(३) टर्की पर रूसी दबाव—युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद रूस ने टर्की से कुछ सू-प्रान्त एव बाल्फोरस (Bosphorus) में सैनिक बल भेजने के अधिकार की मांग की। इन प्रदेशों पर प्रमुख पामे के लिए यह टर्की पर प्रभाव डालने और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगा। पश्चिमी राष्ट्रों ने रूस के इस कदम को सबका अनुचित बताते हुए अपनी नाराजगी प्रकट की और समूह राष्ट्र अमेरिका ने उस यह चेतावनी दी कि यदि उसने टर्की पर आक्रमण किया तो यह विषय सुरक्षा परिषद् में पेश किया जायगा। ईरान यूनान वही टर्की की बटनाओं के कारण ही अमेरिका ने इन देशों का अपनी सुरक्षा हेतु धार्मिक सहायता देना प्रारम्भ किया।

(४) रूस का अमेरिका विरोधी प्रचार अभियान—साम्यवादी पत्रों ने युद्ध समाप्त होने के कुछ समय पूर्व से ही अमेरिकन नीतियों और नीति निर्माताओं के विरुद्ध विष-बमन करना शुरू कर दिया। साम्यवादी पत्रों 'प्राबवा' और 'इन्वेस्टिया' में अमेरिका के प्रति घोर आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होने लगे। इस प्रचार-अभियान से अमेरिका के सरकारी और अर्ध-सरकारी क्षेत्रों में बड़ा विद्रोह फैला। यद्यपि यह प्रमाणित नहीं हो सका कि इस आलोचना को प्रोत्साहन देने के पीछे कमनिन का हाथ था किन्तु हमने भी इनकार नहीं किया जा सकता था कि यदि रूसी अधिकारी चाहते तो एसी प्रबलित आलोचनाओं का रचना सकते थे। अमेरिकन राष्ट्र इस बात को मनी भाँति समझता था कि इस प्रचार का उद्देश्य एशिया एव अफ्रीका की जनता की दृष्टि में अमेरिका को बरताना करना था।

(५) रूस द्वारा जर्मनी पर बॉम्ब लानना—युद्ध काल में जर्मनी के हाथों सर्वाधिक जन घन की हानि बग का उठानी पड़ी। मास्को-मस्कोवा में स्टासिन ने मांग की कि जर्मनी से अग्नि-पूर्ति स्वरूप रूस को १० मिलियन डालर दिलाये जायें। अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने रूस की मांग को "अधिम बार्ता के आचार के रूप में" स्वीकार कर लिया। परन्तु स्टासिन ने इसका अर्थ यह लगाया कि जर्मनी मांग अन्तिम रूप में स्वीकार कर ली गई है। अतः यद्योपरांत उत्तरे जर्मन उद्योगों का लक्षित-विलक्षित करते हुए यूरोपियन

मशीनों का स्वामित्वरूप इस में करना शुरू कर दिया। इस के इस कार्य से पहले ही से अस्त-व्यस्त अर्मेन आर्थिक व्यवस्था पर प्रतिरिक्त रूप से भारी बोझ पड़ा। ब्रिटेन और अमेरिका में इस कायबाही से काफ़ी विद्योब फैल गया और साथ ही उन्हें विवश होकर अर्मेन अर्थ-व्यवस्था की सहायता के पर्याप्त धन व्यय करना पड़ा।

इस ने अर्मेनी सम्बन्धी समन्तरीष्ट्रीय समझौते के भी अनेक गम्भीर उत्सर्जन किये—

(i) १ अगस्त १९४५ के पोद्सुब्रम समझौते तथा मित्रराष्ट्रीय निर्बंध परिषद (Allied Control Council) के बार के निर्णयों में यह निश्चित हुआ था कि अमन जनता को कुछ आभारसुख व्यक्तिगत राजनीतिक स्वतंत्रताओं से वंचित नहीं किया जायगा। लेकिन सोवियत संघ ने अपने द्वारा प्रविष्ट अर्मेन क्षेत्र के हजारों व्यक्तियों को कैद करके इस श्रेय दिया था बंदी-निश्वरों में डाल दिया।

(ii) पूर्वी अर्मेनी की जनता को पश्चिमी अर्मेनी की जनता से एकदम पुषक कर दिया गया।

(iii) अग्रेज १९४६ में कसियों ने अमन समाजवादी दल को बसपूर्वक साम्यवादी दल में इयनिये मिला दिया कि बर्लिन और पूर्वी क्षेत्र के समाजवादी मतवाताओं को अपने कानू में रखा जा सके।

(iv) पोद्सुब्रम-संधि में यह निश्चय हुआ था कि अमनी को एक पुषक आर्थिक इकाई माना जायगा और सभी आवश्यक पदार्थों का विविध क्षेत्रों में समान वितरण किया जायगा। लेकिन इस ने अग्रेज १९४६ में स्पष्ट रूप से यह कह दिया कि प्रत्येक क्षेत्र अपना व्यापार स्वयं करे। इसके प्रतिरिक्त फिनलैंड पूर्वी आस्ट्रिया हंगरी बस्तेरिया और रूमानिया में अर्मेनी की जो सम्पत्ति (German External Property Commission) के अधिकार में रखी व भी उसका रूप में स्वयं उपयोग किया।

(v) २६ नितम्बर १९४४ को प्रकाशित अंगन प्रोटोकॉल नामक समझौते में मुद्रांतर बलित की प्रकाशन व्यवस्था के बारे में कहा गया था कि बलित पर अम्बार्ड रूप में अधिकार करने वाली शक्तियों को बलित-प्रवेश का माग प्राप्त होगा। परन्तु अग्रेज १९४८ में सोवियत संघ ने बलित की कुत्सात शक्तिबंदी का वीर जमाया और पश्चिमी बलित तथा पश्चिमी अर्मेनी के बीच सभी रैस मडक और अम यातायात को बंद कर दिया। यही नहीं बस हजारों अर्मेन-मुद्र बरियों और नागरिकों का स्वदेश लौटने की अनुमति देने इन्कार कर दिया।

(vi) आन्टा समझौते और पोद्सुब्रम-प्रोटोकॉल बलों में ही यह तय किया गया था कि अमन-वाशिंग सीमा का निर्णय अर्मेनी के साथ पूरे निपटारे तक उठा गया जाये। मडिन इस ने इन समझौते की कोई परबाह न करते हुए पौडर-नीये (Oder Ni-330) रेखा का अर्मेन-पोलिश-सीमा के रूप में मान लिया और मुबलित सरकार को यह अनुमति प्रदान कर दी गई कि वह उन भूमि पर कब्जा करके वहाँ बस अमन नामरिका को बाह

निकास है। ६ जुलाई, १९५० को पौलैण्ड और पूर्वी जर्मनी (रूस-संरक्षित) में एक समझौते पर भी हस्ताक्षर कर दिये जिसके अनुसार घोड़र नीचे रखा को मान्यता प्रदान कर दी गई।

(१) रूस द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में निषेधाधिकार का बारम्बार प्रयोग—पश्चिमी राष्ट्र और विधेयकर संयुक्त राज्य अमेरिका को यह बात बहुत डरती कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना काम ठीक प्रकार से शुरू भी नहीं किया था कि सोवियत रूस ने अपने निषेधाधिकार के अनियमित प्रयोग द्वारा उसके मार्ग में बाधाएँ डालना प्रारम्भ कर दी। सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र संघ को अमेरिका और पश्चिमी जर्मनियों की विदेश नीति का एक प्रमुख समझ कर निषेधाधिकार के बस पर सुरक्षा परिषद में उनके (पश्चिमी राष्ट्रों व अमेरिका के) जगमग प्रत्येक प्रस्ताव को निरस्त करने की नीति अपना ली। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि पश्चिम ने यह बारम्बार बना ली कि सोवियत रूस एक ऐसे संघटन को नष्ट करने का प्रयास कर रहा है जिसकी स्थापना विश्व-शांति और सुरक्षा का बनाये रखने के लिए हुई है। इस सर्वम में वह उल्लेखनीय है कि जहाँ पर्यन्त १९६१ तक अमेरिका ने एक बार भी निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं किया था वहाँ रूस १३ बार इसका प्रयोग कर चुका था। इंग्लैंड ने दो बार फ्रांस ने बार बार और चीन (राष्ट्रवादी) ने एक बार इस अधिकार का प्रयोग किया था।

(७) रूस द्वारा शांति-व्यवस्था में बिम्ब—महायुद्ध की समाप्ति के उपरान्त शांति-व्यवस्था की पुनर्स्थापना के मार्ग में रूस द्वारा इतनी प्रवृत्तिवादी की गई कि उससे पश्चिमी शक्तियों के हृदय में रूस के प्रति बेहद डरकार्य पैदा हो गयीं। इतनी के साथ शांति-संधि ठग करने के लिए समय में जो विदेश मंत्रियों की परिषद बुलाई गई उसमें रूसी विदेश मंत्री मोलोटोव ने अपनी ऐसी मार्ग प्रस्तुत की कि पश्चिमी राष्ट्र स्तब्ध हो गये। परिणाम यह निकला कि विदेश मंत्री परिषद की बैठकें शांति की समस्याएँ सुलझाने के स्थान पर उन्हें उत्सन्न कर गये विवाद घटाने करते लगीं।

(८) अमेरिका में साम्यवादी प्रतिबिम्बियाँ—सोवियत रूस ने न केवल अन्य देशों में बल्कि स्वयं संयुक्त राज्य अमेरिका में भी साम्यवादियों को विभिन्न प्रकार से प्रेरित किया। सन् १९४३ के प्रारम्भ में 'स्ट्रेटेजिक सर्विस' (Strategic Services) के अधिकारियों को पता चला कि उनकी संस्था के बहुत से गुप्त दस्तावेज (Secret Documents) साम्यवादी संरक्षण में चले गये अमेरिका (America) नामक मासिक पत्र के सम्पादक के हाथ में पहुँच गए हैं। इसके अतिरिक्त १९४६ में 'कनाडियन रॉयल आयोग' (Canadian Royal Commission) की रिपोर्ट ने यह प्रमाणित किया कि अनाडा का साम्यवादी दल 'सोवियत संघ की एक भुजा' (An arm of the Soviet Government) है। इस प्रयोग ने अनेक सोवियत आगुसी गिराहों का पता लगाया और यह रहस्योद्घाटन किया कि विश्वसनीय पत्रों पर फासीन अनेक कनाडी व्यक्ति (Canadians) जिनमें एक संसद सदस्य व एक प्रमुख धनु वैज्ञानिक भी शामिल हैं, साम्यवादी गुट के एजेंट हैं और

उन्होंने मास्को को आणविक भेद तथा युरेनियम धातु के नमून भेजे हैं। इस रिपोर्ट से अमेरिकन सरकार साम्यवादियों के प्रति पूरी तरह संतुष्ट हो गई और सम्पूर्ण अमेरिकन राष्ट्र तथा अन्य पश्चिमी शक्तियों में इस के प्रति विक्रोम की यहूरी सहर फैल गई। दूसरी ओर मास्को रेडियों ने प्रजातन्त्रात्मक सरकारों के विरुद्ध अपना प्रचार-अभियान तेजी से चालू रखा।

पश्चिमी राष्ट्रों ने उपरोक्त शिकायतें करते हुए और विभिन्न धारोप लगातार हुए सोवियत संघ के प्रति अपना पूर्ण अविश्वास व्यक्त कर दिया। अगस्त १९४१ में अमेरिका के राज्य सचिव बर्नेस और ब्रिटिश विदेश मंत्री बेबिन ने इस बात पर अत्यन्त शोक प्रकट किया कि सोवियत संघ ने किसी भी रूप में अपने पश्चिम बचन का पालन नहीं किया है। पूर्वी यूरोप के सोवियत नियन्त्रण को चुनौती देते हुए उन्होंने घोषणा की—

“हमें ठानासाही के एक स्वरूप के स्थापन पर उसके दूसरे स्वरूप के संस्थापन को रोकना चाहिए।”

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री कीर्चिबिन ने अमेरिकन राष्ट्रपति ड्रूमैन की उपस्थिति में साम्यवाद के विरोध की एक नई नीति का निर्देश ५ मार्च १९४१ को अपनी सुप्रसिद्ध “फुल्टन वक्तृता” (फुल्टन नामक स्थान पर पश्चिम में यह वक्तव्य दिया था) में किया। इस भाषण में किरचिबिन ने यूरोप के धार-वार सोवियत “भेड़ धारण” (Iron Curtain) की निन्दा की तथा ‘स्वतन्त्रता की दीपतिका प्रज्वलित रखने एवं ईसाई सभ्यता की सुरक्षा के लिए’ एक एन्को-अमेरिकन गठबन्धन की मांग की। एवं १९४१ के अगस्त मास के बाद से ही दोनों पक्षों (पश्चिमी व पूर्वी युट) ने अपने मतभेदों को सुनेधाम उपलगा शुरू कर दिया। १२ मार्च १९४० को बुनानी यहू युट के सम्बन्ध में कापस से युनान एवं टर्की को ४० मिलियन डालर की सहायता देने का अनुरोध करते हुए राष्ट्रपति ड्रूमैन ने विख्यात ‘ट्रुमैन सिद्धान्त’ (Truman Doctrine) का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उन्होंने उन सभी स्वतन्त्र देशों की सहायता देने की नीति पर बस दिया जो सत्त्व अस्पसंभ्यकों धरबा बाह्य शक्तियों के द्वारा धाकियत्व स्थापित करने के प्रयत्नों का विरोध कर रहे थे। २ जून १९४० को ‘मार्शल योजना’ की घोषणा की गई जिसका अर्थव्य यूरोप की अस्त-व्यस्त आर्थिक दशा को सुधारने का था। जहाँ पार्ल्यात्म यूरोपियन राष्ट्रों ने इस योजना का उत्साह पूर्वक स्वागत किया वहाँ इस ने इसे अपने लिए पन्मीर चुनौती समझा। १ जुलाई, १९४० को ब्रिटेन और फ्रांस ने यूरोपियन आर्थिक पुनरुत्थान की समस्या पर विचार करने के लिए पेरिस में २२ देशों के एक सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें प्रारम्भ में तो पार्लेण्ट और ब्रिक्कोस्तोवाकिया ने भाग लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु बाद में सोवियत संघ के विरोध के कारण इस निमन्त्रण को ठुकरा दिया। एटली (Attlee) क शब्दों में— ‘जब पार्लेण्ट और ब्रिक्कोस्तोवाकिया ने माहम सहायता के विचार को स्वीकार कर लिया तब पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के एकीकरण की उसकी (बेबिन की) धारार्थे

की छत गयी। परन्तु कमलिन के आदेश पर इन स्वीकृतियों के पराबतन में इस भाषा को नष्ट कर दिया। बस्तुतः यह 'चीत युद्ध' का एक चोपला भी।

(ख) युद्ध की (एक ही) परिधि के विपक्ष शिकायतें—पश्चिमा राज्या द्वारा इस के विरुद्ध या आरोप लगाए गए, उनसे यह नहीं समझना चाहिए कि चीत-युद्ध के नाटक का एकमात्र सतनायक सोवियत रूस ही था। वहाँ पश्चिमी शक्तियों ने अपने विभिन्न आरोपों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पूरी तरह से मुस्मात केवल सोवियत सब न ही की है और उसी न सारे पूर्ववर्ती समझौतों व शिखियों का उल्लंघन किया है वहाँ 'पूर्व न प्रवर्ति सोवियत सब और उसके समर्पक राष्ट्रों ने अपने आरोपों में यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि मुझोत्तर काल के तमान और प्रशान्ति का सारा दोष पश्चिमी राष्ट्रों का है। वहाँ पश्चिमी शक्तियों ने साम्यवाधियों का 'मुष्को का निहृष्टतम गिरोह' (Worst scoundrels) कहा वहाँ रूसियों ने उन्हें 'मुठेरों तथा डाकुषो के पुट' (A den of robbers) की सजा दी। रूस और उसके समर्पक राष्ट्रों द्वारा पश्चिमी शक्तियों के विरुद्ध जो शिकायतें की गयी—वे इस प्रकार थीं—

(1) युद्धकाल में पश्चिम द्वारा 'द्वितीय मोर्चा' खोले जाने में देरी—रूस की पश्चिमी शक्तियों के विरुद्ध एक सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि जर्मनी द्वारा पूरी तरह से घबे रहने की स्थिति में स्थापित ने मित्र राष्ट्रों से बार-बार अनुरोध किया था कि पश्चिमी यूरोप में जर्मनी के विरुद्ध द्रुसरा मोर्चा खाला जाय ताकि सोवियत रूस पर किए जाने वाले जर्मन आक्रमण में कमी या सके। परन्तु रूबवेस्ट और चर्चिस ने रूस की इस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा रूसी मुस्मान को यह कह कर प्रस्वीकार कर दिया गया कि उनकी तैयारी अभी अधूरी है। दूसरा मोर्चा खोले जाने में पर्याप्त विमम्ब किये जाने का परिणाम यह हुआ कि सोवियत रूस को जर्मनी के हाथों जन-जन की मर्यंकर क्षति उठानी पड़ी। इस हानि की घोर मंकेत करते हुए स्वयं आइजनहोवर न मिला है— १९४३ में जब हम हवाई अहाज से रुत गये तो हमने इसकी पश्चिमी सीमा से मास्को तक के विशाल प्रदेश में एक भी मकान सड़ा नहीं देखा।" मैगसम के सेनासुमार "विष्मंस और चिनास के इस ताण्डव में रूस द्वारा उठाई गई जर्मनी जन-जन की क्षति का सही अनुमान लयामा बहुत कठिन है फिर भी यह कहा जा सकता है कि रयचण्डी क. डम्पर डेड करोड़ रूसियों क नसिदान स प्रदश्य भग होगा।" इतनी अधिक मात्रा में जन-जन की हानि के कारण रूस में मित्र राष्ट्रों की नेकनियर्था पर लका उत्पन्न हो गई। सोवियत नेताओं और इतिहासकारों ने यह मान्यता प्रकट की कि अमेरिका और ब्रिटेन ने जब सोव-ममम्ब कर तथा जान-बूम्ब कर दूसरा मोर्चा खोलने में देर की थी ताकि जर्मनी द्विती तरह रुत की साम्यवादी व्यवस्था का नाश कर दे। बास्तब न रूस क मन में सबेह के बीज तो तभी पड़ गये थे जब मित्र राष्ट्रों ने अधूरी तैयारी के बहाने पर दूसरे मोर्चे को खोलने की सोवियत प्रार्थना शान दी थी। बैली (Bailey) क

दक्षिणों में इससे क्रोमलिन म यह सन्देश बड़े पकड़ गया कि पश्चिमी राष्ट्र जो गड़ोतर बरों में एक उल्लिखनी सोवियत संघ क उद्बान की संभावना से भयभीत हैं युद्ध के प्रभाव में दुवने स पूर्व रूप को पूर्णतया प्राप्त तथा बलिदान' इति बेचना चाहते हैं।

(ii) पश्चिमी देशों की फासिस्ट देशों से सॉट-पॉट—रूस ने इस बात पर बड़ा विरोध प्रकट किया कि सीनिक व्यावहारिकता की भाँड में अमेरिका ने इटली और फ्रांस के फासिस्ट तत्वों से सम्पर्क स्थापित किया है और फिनलैंड द्वारा रूस के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होने तथा मेनिनग्राड पर आक्रमण करने के जाड़ी समय बार तक वाशिंगटन से उससे अपने दृष्टनीतिक सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया।

(iii) युद्धकाल में पश्चिम की अक्षर्याप्त सहायता—सोवियत संघ ने यह आशय सगाया कि युद्धकाल में अर्जनी द्वारा रूस पर आक्रमण होने पर पश्चिमी देशों ने जा भी सैनिक सहायता सोवियत रूस का ही वह रूस द्वारा उत्पन्न की गई युद्ध सामग्री का अत्यल्प मात्र केवल ५ प्रतिशत था। वास्तव में मित्र राष्ट्रों की आन्तरिक इच्छा यही थी कि रूस अर्जनी के साथ संघर्ष में विस्तृत सीमा हो जाय। इसीसिये उन्होंने प्रथम तो बहुत बिलम्ब से और दुसरे अत्यल्प मात्रा में केवल दिनामे के लिए सहायता दी। फिर जो कुछ भी सहायता दी गई वह भी इसीसिये कि पश्चिमी राष्ट्र समझ गए कि अर्जनी द्वारा रूस को पूर्ण रूप से तष्ट किया जाना उसके संसार के लिए घात सिद्ध होगा।

(iv) अमेरिका द्वारा अखण्ड के रहस्य को रूस से गुप्त रखना—अमेरिका ने अखण्ड के आधिकार को सोवियत रूस से सर्वथा गुप्त रखा कि वह किनेन और कनाडा को इस बात का पता था। जब इस घात का प्रयोग जापान पर किया गया तो उससे केवल हिरोशिमा का ही विनाश हुआ अपितु मित्र राष्ट्रों की सैन्य भी टूट गई। स्टालिन ने घात द्वारा अखण्ड के रहस्य को रूस से गुप्त रखने की बात को परस्पर विरोधाभास माना इससे उसे व्यक्तिगत रूप से भी बड़ा दुःख हुआ। परिणामस्वरूप रूस और अमेरिका में परस्पर तनाव उत्पन्न हो गया और दोनों ही देश युद्ध के स वैज्ञानिक अस्त्र-सन्त्रों के आधिकार की होड़ में लग गए। रूस ने युद्ध-समाप्ति के बाद ५ वर्षों में ही अखण्ड के रहस्य का पता लगा लिया और अक्टूबर १९४७ में तो स्तुतनिक घोष कर वैज्ञानिक क्षेत्र में अमेरिका को मात दे दी।

(v) सोवियत संघ को 'लैंड-लीज सहायता बिल' (Land Lease Act) के अन्तर्गत अमेरिका द्वारा 'लैंड-लीज अधिनियम' (Land Lease Act) के अन्तर्गत सोवियत संघ को जो आंशिक सहायता दी जा रही थी उससे वह (रूस) पहले से ही असंतुष्ट था क्योंकि सहायता एकत्र ना-माफी थी। किन्तु यूरोप में विजय के उपरान्त राष्ट्रपति ट्रूमैन ने जब यह आंशिक सहायता भी

एक-एक बंद कर दी तो सोवियत इस इत्से नडक उठा । अमेरिका द्वारा इस सह-यता का रोकने और पश्चिमी शक्तियों द्वारा स्टालिन की अति-वृत्ति की मांगों के विरोध ने मास्को का यह संदेह विश्वास में परिणित कर दिया कि पाश्चात्य राष्ट्र साम्यवादी इस के शत्रु हैं और उसे फलते-फूलते नहीं देखना चाहते ।

(vi) सोवियत विरोधी प्रचार अभियान—इस पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति इस बात से भी बहुत असंतुष्ट था कि युद्धकाल में ब्रिटिश सरकार अपनी सेनाओं में निरन्तर सोवियत-विरोधी साक्ष्य का प्रचार करती थी । युद्धो-परान्त वहाँ पश्चिमी शक्तियों ने इस पर पश्चिम के विद्वत् विच-वमन का धारोप लगाया वहाँ इस ने भी पश्चिमी राष्ट्रों के विरुद्ध यही शिकायत की । पश्चिमी प्रेस जैसे आम साम्यवादी वक्त के प्रति पुष्पा-प्रचार में संभान हो गए । साम्यवादी शत्रु को कुछ बड़ा-भड़ा कर पेस किया जाने लगा और ऐसा वातावरण पैदा करने की भरसक चेष्टा की जान लगी कि जनता में मास्को के भावी इरादों के प्रति भय और आशंका की भावनायें व्याप्त हो जायें । सोवियत सेनाओं के बर्तन के निकट पहुँचते ही अमेरिकन समाचार पत्रों में इस प्रकार के भाषक छपने लगे— 'साम्यवादी प्रचार से ईसाई सभ्यता के डूबने का खतरा' 'सोवियत संघ विश्व का एकमात्र आक्रामक राज्य' आदि । जिस सोवियत संघ पर हानि सह कर धूमिल शौर्य व साथ दुष्मनीय नाभी शत्रु को पछाड़ा या धीरे जिसके बलिदानों से मित्र राष्ट्रों की विजय को सरल बना दिया था उसी के विरुद्ध इस प्रकार का धमकाने प्रचार मास्को को एकदम कुछ कर देने वाला था ।

(vii) ५ मार्च १९४६ की शक्ति के विख्यात 'फ्रुटन बस्तुता' ने सोवियत शक्ति को एकदम बौद्धिमाना दिया । इसमें इस बात का स्पष्ट निवेदन था कि 'हमें तानाशाही के एक स्वरूप के स्थान पर उसके दूसरे स्वरूप के स्थापन को रोकना चाहिए ।' यह दूसरा स्वरूप साम्यवादी साम्राज्यवाद के प्रतिरिक्त धीरे क्या हो सकता था ? शक्ति का विचार था कि साम्यवाद के प्रसार को सीमित रखने के लिए प्रत्येक संभव उपाय का ध्वस्त-ध्वस्त किया जाना चाहिए ।

(viii) 'पश्चिम' के प्रति विधेयकर संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध श्मी संदेहों धीरे आशंकाओं में तब आकाशीत बृद्धि हो गई जब २० सितम्बर १९४६ को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने धुनपूर्व उपराष्ट्रपति तथा अन्तराष्ट्रीय शक्ति होने ए. बेनेस की कैबिनेट इस अध्याय पर स्वापपद देने को कहा कि उसने १२ सितम्बर को न्यूयार्क में अपने एक सार्वजनिक भाषण में सोवियत संघ तथा अमेरिका के बीच मैत्री-स्वापना की प्रतीति को की । इसके कुछ ही माह बाद राज्य सचिव डीन एचीसन ने १० फरवरी १९४७ को 'तीने' के सम्मुख राष्ट्र का संघोषणा की कि 'किस की विदेश नीति आक्रमण तथा विस्तारवादी है ।' उसके बाद ही साम्यवाद के विरोध के नाम पर धीरे सोवियत-विस्तार को रोकने के लिए 'ट्रूमैन सिद्धान्त' 'मादाव-यात्रा' आदि का सूत्रपात हुआ । सोवियत संघ ने इन सब कार्यवाहियों को अपने प्रतिरिक्त के लिए एक-चुतीर्ती माना । २१ अक्टूबर को मार्शल योजना के अन्तर्गत में यूरोप के भी

साम्यवादी देशों का कामिज फार्म स्थापित किया गया। अब बात-बात पर झगड़ा होन गया और एक-दूसरे के विरुद्ध पासी-मनोब और धारोपों-प्रत्यारोपों के पोसे बरसाये जाने लये।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण से यह तथ्य मनी मति स्पष्ट हो जाता कि बुद्धोत्तर काल में पूर्व और 'पश्चिम' के मध्य एक गहरी खाई खुल चुकी थी जिसके बीच १९१७ की सोवियत क्रांति से लेकर द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक के इतिहास में प्रखरी तरह बोये जा चुके थे। इस पश्चिमी देशों पर शीतयुद्ध की धारणा करने का आरोप लगाया जा तो संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में संयुक्त अमेरिकन युद्ध शीतयुद्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सोवियत कस पर डालता था। इस सम्बन्ध में दोनों पक्षों हांग दिये गये तर्कों के कुछ और उदाहरण उल्लेखनीय हैं—

१= सितम्बर १९४० को संयुक्त राज्य संघीय महामन्त्रा में सोवियत प्रतिनिधि विशिस्की (Vyablosky) ने कहा—

“कुछ देशों जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रमुख स्थान है के बुद्धप्रिय और विस्तारवादी प्रयत्नों से जो युद्ध साबना उत्पन्न हुई है वह फैसली जा रही है। और अधिकाधिक विकराल रूप धारण कर रही है।”

२ अक्टूबर १९४० को यूरोप के एक प्रमुख साम्यवादी प्रतिनिधियों (जिनमें कस के मोलैन्कोव तथा बुवागोव भी शामिल थे) ने मास्को घोर बारसा (पोलीश) में एक साथ जो घोषणापत्र जारी किया उसके कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं—

जो विरोधी राजनीतिक विचारधारायें स्पष्ट हो गई हैं। एक घोर सोवियत संघ तथा अन्य लोकतांत्रिक राज्यों का सर्वोच्च साम्राज्यवाद का विनाश करना तथा जनतंत्र को मजबूत बनाना है। दूसरी घोर इज्जत तथा अमेरिका का उद्देश्य साम्राज्यवाद को मजबूत बनाना तथा जनतंत्र का नशा बोटना है। बुकि सोवियत संघ तथा लोकतांत्रिक देश विश्व प्रमुख एवं लोकतांत्रिक मान्यताओं के समन की साम्राज्यवादी धार्कशास्यों की पूर्ति में बाधक हैं, इसलिए इज्जत तथा अमेरिका के सभी साम्राज्यवादियों ने सोवियत संघ तथा नये जनतंत्र के प्रतीक अथवा देशों के विरुद्ध एक अनियमित युद्ध कर दिया है और इस अनियमित युद्ध की धमकी द्वारा तीव्र बनाया जा रहा है। घोर इन परिस्थितियों में साम्राज्यवाद-विरोधी लोकतांत्रिक समुदाय के लिये संगठित होना तथा साम्राज्यवादी समुदाय की प्रमुख धारणों के विरुद्ध अपनी धारणें ठग करके हेतु एक सम्मिलित मजबूत (Common Platform) का निर्माण आवश्यक है।

पश्चिमी विद्वानों ने पा तर्क दिए हैं कि इस की नींव बुद्ध के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। है और व्हिटिंग (Hass and Whiting) के मतानुसार 'विस्तारवाद इस (कच्ची) नींव का एक अत्यन्त हीतलु बद्ध है। वास्तविकता का सिखना है कि अनेक कारणों से द्वितीय महायुद्ध के बाद

स के लिए शीत-युद्ध का दृष्टिकोण अपनाया प्रतिबन्ध हो गया—पहला कारण था पूंजीवादी विश्व की साम्यवादी के प्रति जड़ता कम पर जर्मन साम्यवादी दूसरे मोर्चे को जोसमे में देरी जर्मन साम्य-समर्थन के बाद अमेरिका का उधार पट्टे (Land Lease) को एकाएक समाप्त कर देना अमेरिका का इस को खण्ड देने से इनकार करना प्रादि। दूसरा कारण था कि पिछले युद्ध के समय इस पर निरन्तर इस बात के लिए बचाव दास रहे थे कि यह एक आस्तिकारी वैदेशिक नीति अपनाये। तीसरे सोवियत अधिकारियों के सम्मान और विशेषाधिकारों को शीत-युद्ध की नीति के आधार पर ही बनाए रखा जा सकता था। चौथे सोवियत व्यवस्था में कड़ी जनता को कठोर अनुशासन और अनुशासन का जीवन स्वीकृत करना पड़ रहा था। ऐसे जीवन-यापन के शोचित्य को शीत युद्ध की रख नीति के आधार पर ही सिद्ध किया जा सकता था।

अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद शीत युद्ध के कारण कुछ भी क्यों न रहे हों १९४७ के मध्य तक यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक बहुत बड़ा प्रभाव बन गया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास में 'शीत-युद्ध' का जन्म एक इतना महत्वपूर्ण और असाधारण विकास था कि इसमें सम्पूर्ण विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समाहित किया गया कि इसके प्रधान केन्द्र कुछ दश ही थे।

१९४७ से वर्तमान समय तक के शीत-युद्ध पर एक दृष्टि—१९४२ से १९४७ तक का नाम 'शीत-युद्ध' का प्रारम्भ का नाम था जिस पर पूर्ववर्ती विश्वयुद्ध में प्रकाश डाला था चुका है। अब हम १९४७ के बाद के 'शीत युद्ध' के इतिहास की प्रमुख बातों की खोज करेंगे। द्वितीय महायुद्ध के बाद की सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ही 'शीत युद्ध' की उत्पत्ति है और इस अर्थ में यह एक ही घटनाएँ बटी हैं उनका प्रधान कारण अन्तर्राष्ट्रीय 'शीत युद्ध' ही रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के जिन इतिहास का अध्ययन हम प्रस्तुत पुस्तक में कर रहे हैं वह सम्पूर्ण इतिहास ही अपने आप में इस 'शीत युद्ध' का इतिहास है। इसलिए प्रस्तुत संदर्भ में कुछ प्रमुख घटनाओं का संक्षिप्त विवरण करते हुए 'शीत युद्ध' के उद्धार-चक्र को बताया जायगा।

(i) १९४७ से १९४९ तक शीत युद्ध—१९४२ से १९४९ तक पश्चिमी देशों और इस में संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर और बाहर अणुशक्ति के नियंत्रण का नियमीकरण निःशस्त्रीकरण पराजित राष्ट्रों के साथ शांति संधियों जर्मनी बर्लिन यूरोपियन सुरक्षा समस्याओं एगिया एगो घटने का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अन्तर्गत प्रादि अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के समय ममी प्रश्नों पर तीव्र वाद-विवाद तथा कूटनीतिक संघर्ष चला। इन द्वारा माध्यम योजना के प्रत्युत्तर में अक्टूबर १९४७ में यूरोप के नौ-साम्यवादी देशों के 'कॉमिन्फ़ॉर्म (Cominform or Communist Information Bureau) की स्थापना के बाद से ही शीत युद्ध की उद्यता बढ़ती गई। कम ने पूर्ण यूरोप पर अपने नियंत्रण को और भी अधिक कठोर बना दिया। शक्ति के दो बड़े घबरा गये या केने बन गये और उनमें अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों के विस्तार के लिए जी ताड़ सर्वा होने लगी। कड़ी दबाव के कारण किन्तु को मार्शल योजना के प्रस्ताव को अस्वीकार करना पड़ा। परन्तु एक साम्यवादी देश

यूगोस्लाविया ने ही अपने नेता मार्शल टिटो के नेतृत्व में स्टाविन के प्रमुख को स्वीकार करने में इन्कार कर दिया। मार्शल टिटो का यह काम 'शीत युद्ध' की एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि वहाँ इसने एक तरफ़ दूर साम्यवादी देशों को मर्जीत बम प्रदान किया वहाँ दूसरी तरफ़ रूस के बुटिकोव्स को भी अधिक कठोर बना दिया। १९४८ में रूस ने बर्लिन की नाकेबंदी करके एक नया संकट उत्पन्न कर दिया। इस घटना ने 'शीत युद्ध' को एक नया मोड़ दिया। बर्लिन के घेरे के समय ही दोनों पक्षों को ताकत प्राप्त करने का पहले-पहल वास्तविक मौका मिला और शीत युद्ध में इस बार अमेरिका का रूस पहली बार अत्यधिक कठोर हो गया। यद्यपि रूस की बर्लिन नाकेबंदी असफल सिद्ध हो गई और मई १९४८ में इस नाके-बंदी को समाप्त कर दिया गया परन्तु इस घटना का एक गम्भीर परिणाम यह निकला कि अब सोवियत संघ का विरोध करने के लिए अमेरिका तरङ्ग-तरङ्ग के सैनिक-संगठनों की स्थापना करने की दिशा में सक्रिय हो गया।* दूसरी ओर पहले से ही विभक्त जर्मनी 'शीत-युद्ध' का एक प्रबल केन्द्र बना रहा। ब्रिटेन फ्रांस और अमेरिका ने अपने द्वारा अधिकृत जर्मनी के तीनों पश्चिमी क्षेत्रों का एकीकरण कर दिया और इस तरह २१ सितम्बर १९४९ को 'जर्मनी के संघीय गणराज्य' (Federal Republic of Germany) अथवा पश्चिमी जर्मनी का उदय हुआ। निम्न राष्ट्रों अर्थात् उपरोक्त तीनों शक्तियों के इस कार्य के प्रत्युत्तर में ७ अक्टूबर १९४९ को जर्मनी के उत्तरी क्षेत्र में 'जर्मन प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य' (German Democratic Republic) अथवा 'पूर्वी जर्मनी' की स्थापना कर दी गई। इस तरह पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी के दो जर्मन राष्ट्र अस्तित्व में आये और इनके एकीकरण का प्रश्न अभी तक शीत-युद्ध की बर्लिन पर खड़ा हुआ है तथा निकट भविष्य में जर्मनी के संयुक्त होने की कोई आशा नहीं दिखाई देती।

रूस के कठोर होते पर रूस और साम्यवाद के प्रसार की नीति का उत्तर पश्चिमी शक्तियों ने ४ अप्रैल १९४९ को 'नाटो' (NATO) की स्थापना करके दिया। शीत युद्ध का क्षेत्र केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि एशिया भी इसकी लपेट में आ गया। रूस ने टर्की और ईरान में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा परन्तु पाश्चात्य शक्तियों की सहायता से ये दोनों देश रूसी बहाल का सफलतापूर्वक प्रतिरोध करते रहे। १ अक्टूबर १९४९ को पीकिंग में साम्यवादियों का जन-गणराज्य स्थापित हो जाने से

*The Berlin blockade, from early 1948 until May 1949 was the first open test in the Cold War. It was a struggle fought with weapons of blockade and air lift and not only this test did harden American resolution to carry containment through to completion it also helped to bring about the birth of the North Atlantic Treaty Organisation in April 1949"

'नीत युद्ध' में बढ़ी गर्मी छा गई। साम्यवादियों की इस विषय में कम करसाह का बहुत बड़ा बिदा। संयुक्त राष्ट्र तम क चाटर क समुह धान सुरक्षा परिषद का एक स्थाई संस्य है। परन्तु जब आगकई श की राष्ट्रवर्दी सरकार भाग क फारमोसा बर्ती गई तो चीन क। साम्यवादी सरकार न महासभा एव सुरक्षा परिषद म धपना स्थान प्राप्त की भाग की। परन्तु पश्चिमी गुट यह नहीं चाहता था कि सुरक्षा परिषद म साबितम भाग का एक धीर समर्थक हो जाय। परिषद कः ५ स्थाई सदस्य म ४ साम्यवादी हा जाने के डर से संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीन को नई सरकार का मान्यता नहीं दी धीर साम्यवादी प्रतिनिधि क संघ में बिठाने का धीर बिरोध किया। साम्यवादी चीन की सबस्यता की भाग का इस प्रकार ठुकरा दिया जाने का इस द्वारा तीव्र बिरोध किया गया और एक बार तो उसने परिषद की बैठक तक का बहिष्कार कर दिया। वास्तव में साम्यवादी चीन की सब म सबस्यता क प्रश्न को सं कर नीत युद्ध म बिम कटुता धीर गम्भीर वमनस्य का समावेश हुआ उसने जाने जाने बयों में नीत युद्ध की अर्थकरता धीर पारस्परिक मतभेदों की तीव्रता को हर प्रकार से यकाया। भारत न भी चीन की सबस्यता के प्रश्न पर सबैव सोबियत गुट का समर्थन किया यद्यपि यह यह समर्थन उतना सक्रिय प्रतीत नहीं होना जितना कि पहले या संयुक्त राज्य अमेरिका के बिरोध के कारण ही साम्यवादी चीन धात्र तक संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बन पाया है धीर यह प्रश्न धात्र भी नीत युद्ध का एक प्रधान प्रकृ बनना हुआ है। इस विषय में अमेरिका क स्वर्गीय बिदेश सचिव थी डेलस का २८ जून १९५७ का भाषण उत्प्रेक्षनीय है क्योंकि उसस संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति पर बड़ा प्रकाश पडना है। थी डेलस क भाषण की उत्प्रेक्षनीय बातें इस प्रकार थी—

"चीनी साम्यवादी बल में हिस्सा द्वारा सत्ता प्राप्त की है। वह हिस्सा द्वारा जीवित है उसे चीनी जनता की इच्छा से नहीं किन्तु व्यापक धीर भीषण वमन से ही सत्ता हस्तगत हुई है। उसने कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ म युद्ध किया है, इण्डोचीन के युद्ध में साम्यवादियों की सहायता की है तिब्बत को वसपूर्वक हस्तगत किया है। इसने फिजीपाइन्ड म हुए बिद्रोह को तथा मलाया में साम्यवादियों के उपद्रव को प्रोत्साहित किया है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका का धार शत्रु है मान्यता एक बिरोध धधिकार है वह उत्तम व्यवहार के अन्तराष्ट्रीय मापदण्डों के द्वारा ही उपाहित की जानी चाहिए। ब्रिटेनिको (British vics) में कर्मचारी से १९१७ में सत्ता छीनी थी फिर भी हम १९ बयों तक इस सरकार के बस से बाहर रहन काम प्रतिनिधियों को बीच सरकार मानते रहे। १९३३ तक यह प्रतीत हुआ कि लूस के साम्यवादी शासन को समाप्त का घाति प्रिम सदस्य माना ना सकता है। उनमें पिछले १० बयों में कोई राज्य का धाकमण नहीं किया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में तोड़ तोड़ की कार्यवाही बन्द करने का बचन किया था। यहि हमें १९३३ में यह मामूम होता कि हम अपने बचन को मंग करेगा तो हम उसे भी मान्यता नहीं देते। साम्यवादी चीन का सत इतिहास धरात्र भागमण का इतिहास है। हम उसे मान्यता नहीं दे सकते।

साम्यवादी नीम को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने के विषय में इसेम के मध्य के 'नया मान बर्ष' में कोरिया इण्डोचीन तिब्बत किमियाइयम तथा मलाया में पांच बिदेसी घपका एह-मुद्द करने वाले को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आक्रमणकारी घोषित किये जाने वाले तथा उससे मरुने वाले का कोरिया के एकीकरण के संघ के विषय में घाबेहों की प्रबुहेतना करने वाले को उस समय राष्ट्र संघ में स्थाई सीट तथा बीटो का अधिकार प्रदान किया जाय, जिसका मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा स्थापित करना है।"

वसिम—प्रश्न पर धीर समुक्त राष्ट्र संघ में साम्यवादी नीम के प्रवेश की समस्या पर नीतयुद्ध की बड़ी हुई कुमारी घभी कम भी न हा पाई की कि जून १९५० में उत्तरी कोरिया द्वारा वसिम कोरिया पर आक्रमण कर दिया गया जिससे 'नीतयुद्ध' ने कुछ समय के लिए उष्ण घपका सहाय वृद्ध का रूप धारण कर लिया। प्रत्यक्ष में यह युद्ध दो कोरियाई क्षेत्रों में था परन्तु वास्तव में यह दोनों बलिष्ठ-मुटो के मतायो कम एक अमेरिका के बीच था। संयुक्त राष्ट्र संघ ने उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर दिया धीर उत्तर मध्य के नीच घनेक देहों की बिबेपत अमेरिका की सेनाओं में बलिष्ठी कोरिया की सहायता की। पर तु कियी भी पथ का मिर्णयामक विजय प्राप्त में हो सकी धीर ८ जून १९५१ को अमदन कोरिया में युद्ध बिराम हो गया। अमेरिका ब्रिटेन धीर ५ की सरकारों ने युद्ध बरह हो जाने का स्वागत किया किन्तु इन देहों के वास्तविक मन-मुटाव का हूरयों में चलने वाला युद्ध समाप्त नहीं हुआ कलत नीत पथ जारी रखा। इसमें कोई संदिह नहीं कि कोरिया युद्ध नीतयुद्ध की ही एक महत्वपूर्ण घटना थी। वेस्टर ब्रावस (Chester Bowles) के शब्दों में "कोरिया युद्ध ने क्ली धीर नीमी नीतियों को एक ही धकके में एकत्र कर दिया।" नीम के लिए सीवियन सहायता की प्रावणपच्छा स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गई धीर नीम धीर परिचयी राष्ट्रों के सम्बन्ध धीर भी घमीनीपूर्ण हो गये।

बिन समय कोरिया-युद्ध चल रहा था तभी सितम्बर १९५१ में अमेरिका धीर कई अन्य देहों ने जापान के साथ एक शान्ति संधि पर हस्ताक्षर किये। इस को यह बात बहुत धुरी लगी धीर उसने इस एकपक्षीय कार्यवाही की कुल क घाताचना की।

(ii) १९५३ से १९५८ तक का 'नीतयुद्ध'—मार्च १९५३ में स्टालिन की मृत्यु के बाद नीतयुद्ध का इतिहास में एक नया मोड़ आया। स्टालिन उग्रवादी था धीर पश्चिम के पनि कटार नीति का पक्षधारी थी। उसका मक १९५३ के प्रारम्भ तक नीतयुद्ध का एक प्रधान कारण बना था। मर गणवनी मैस-कीमन के धनुसार "१९५७ के बाद यद्यपि स्टालिन ने पश्चिमी राष्ट्रों में कुर्नातिक सम्बन्ध स्थापित रहे परन्तु वह इतना घड्डकाबाज धीर दु नाथ्य हो गया कि उसके साथ कार्य करना गहक नहीं था। जो मुझक की गामने

रखा जाय उसको ही बहु प्रसंजीकार कर देता था। मौराग्यबल स्टासित के वाद के उत्तराधिकारी विनेपत ट्रुडेन ने समझौताबाजी नीति को प्रपनाने की श्रेष्ठा की यद्यपि शीतयुद्ध निरस्त नारी रहा और आज भी यह प्रस्तार्प्ट्रीय सम्बन्धों का एक निर्वायक गण्य बना हुआ है। अमेरिका के नेतृत्व में भी एक परिवर्तन आया और शीतयुद्ध के उन्नाक राष्ट्रपति ट्रुमैन के स्वात पर बनरस प्राइजनहाजर अमेरिका के राष्ट्रपति बन। अगस्त १९४३ में सोवियन मन्त्र का प्रथम आधिक्य परीक्षण हुआ और हथियारों के क्षेत्र में विद्यमान बाईं ओर धीरे-धीरे कम करने की आवश्यकता दोनों ओर से महसूस की जाने लगी।

परन्तु शीतयुद्ध की यह स्थितिता एकदम अस्यकामीन ही रही क्योंकि रूस के विदेश मंत्री मोमोटाव और अमेरिका के विदेश सचिव डलेस दोनों ही शीतयुद्ध के बाँके सझाके थे। एक तरफ तो हिन्द चीन के प्रश्न पर शीतयुद्ध में पुन लेबी या गई क्योंकि फ्रेंच साम्राज्यवाद के विरुद्ध बहो चलने वाले युद्ध में दोनों ही गुटों में अलग-अलग पक्षों का घूर-ओर समर्थन किया और दूसरी तरफ अमेरिका ने साम्यवाद के विस्तार को रोकने के लिए सैनिक समझौतों तथा सैन्य संगठनों की स्थापना करने की नीति प्रपना कर शीतयुद्ध को बड़ाबा विवा। अमेरिका ने किस तरह नाटो सीटो और वगवाय पैक्ट बनाए और इसके अलावा में किस प्रकार रूस में बारसा पैक्ट कायम किया—इन सबका उत्प्रेरक हम प्रादेशिक संघटनों के अध्ययन में कर चुके हैं। वास्तव में दोनों ही पक्षों ने अपनी-अपनी कार्यवाहियों से एक-दूसरे के प्रति संदेह और संकापो को बूढ़ बनाया तथा अपनी प्रत्येक कार्यवाही से म्यूनाधिक मात्रा में शीतयुद्ध का प्रागे बढ़ाया। जवाहरलाल यदि सितम्बर १९४३ में रूस ने उसके धीरे पश्चिमी देशों के मध्य के एक अनाक्रमण प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो मार्च १९४४ में जब रूसी विदेश मंत्री मोमोटाव ने रूस के उत्तर अटलांटिक संघ में सम्मिलित होने के प्रश्न पर विचार करने की अपनी तत्परता जताई तो नाटो देशों ने इस सद्भावना को पुणत अवास्तविक और पश्चिमी देशों की प्रतिरक्षा व्यवस्था में सुरक्षा के आमारमूठ सिद्धांतों के प्रतिभूत बता कर इसका तिरस्कार कर दिया। जनवरी १९४६ में रूसी प्रधानमंत्री बुखनागिन ने राष्ट्रपति आइजन होवर के सम्मुख एक रूसी-अमेरिकन मैत्री व सहयोग संधि का प्रस्ताव रखा परन्तु वह भी फलीमूठ नहीं हुआ। ऐसे प्रस्ताव समय-समय पर किए जाते रहे किन्तु पारस्परिक मतभेद व संदेह इतने गहरे थे कि कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। संयुक्त राष्ट्र संघ यूरोप अफ्रीका मध्यपूज सुदूरपूर्व आदि सभी स्थलों में पूर्व और पश्चिम का संघर्ष बराबर जारी रहा। जापान और जर्मनी के पुन अस्त्रीकरण ने दोनों ही गुटों में कांक्षी तनाव उत्पन्न कर दिया। जर्मनी के अविध्य और बर्लिन के स्तर पर भी मतभेद न मिट सके। अणुशक्ति का निर्माण और नियंत्रण पर कोई समझौते न हो सके। उत्तर के सबसे प्रमुख प्रश्न निःअस्त्रीकरण पर दोनों ही गुटों में घोर मतभेद बना—प्रस्ताव व प्रति-प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते रहे किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। वास्तव में प्रस्तार्प्ट्रीय राजनीति के प्रत्येक प्रश्न पर शीत युद्ध के पृष्ठभार में दोनों गुटों के दृष्टिकोण निर्धारित होने लगे।

१९२६ में हुगरी के प्रश्न में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव घोर शीतयुद्ध में पर्याप्त प्रतिबन्धि की। पश्चिमी देशों ने कम-से-कम 'जनाधार की बन्दु निम्ना की घोर उद्यम इस न स्वयं महान् अ राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप मिस्र पर १९२८ में ही होने वाले एङ्ग्लो फ्रेंच अङ्गणस्य आक्रमण को तीव्र सर्वसा की। पून १९५७ में आइजन्होवर सिद्धान्त की घोषणा की गई जिसके अनुसार अमेरिकन कार्यक्रम ने राष्ट्रपति को मध्य-पूर्व के किसी भी देश में अपनी विदेश बुद्धि के अनुसार साम्यवादी आक्रमण को रोकने के लिए फौजें भेजने तथा गैरिन कार्यवाही करने का अधिकार दिया। 'आइजन्होवर सिद्धान्त की घोषणा के बाद मध्यपूर्व में 'शीतयुद्ध' में काफी तीव्रता आ गई। इस में पश्चिमी एशिया के लिए इस सिद्धान्त को एकदम अनुचित बनाया तो अमेरिका घोर 'सुरक्षा' में उस क्षेत्र में बड़ी प्रुमैठ व तीव्र फौज की कार्यवाहियों की निम्ना की। कहने का अर्थ यह है कि १९५२ से १९५८ तक पश्चिमी एशिया में युद्ध का संयंकर प्रकाश बना रहा। वास्तविकता यही थी कि उस क्षेत्र के सामरिक महत्त्व और तेल कुणों पर प्रभुता कायम रखने के लिए दो तो पक्षों में बोर मयप होता रहा। फरस के तेल-बिहार स्वैज महार के सकट क्षेत्रों में अमेरिका फौजों को उतारने ईरान की क्रांति आदि प्रवसरो पर दोनों ही पक्ष तान ठोकर कर मैदान में उट गय। इस क्षेत्र में कोई भी ऐसी घटना रही बती जो आन्त-युद्ध का परिणाम न हो या उससे प्रभावित न रही हो।

(iii) १९२८ से सितम्बर १९६७ तक का शीतयुद्ध — १९२९ के अरब में कुछ कारणों से शीतयुद्ध में जोड़ो कमी आई। इस दिन बीनयी बटावनी का सबसे महान् कूटनीतिक अंतरकार हुआ। इस दिन मास्को में विदेश मन्त्रालय के प्रबन्ध और वासियटन में स्वयं राष्ट्रपति आइजन्होवर एक ही समय में यह घोषणा करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक जगत् को स्तब्ध कर दिया कि कुछ ही दिनों में सोवियत रूस के प्रधानमन्त्री निकिता ख्रुश्चेव मयुक्त राज्य अमेरिका का घोर उनके बाद राष्ट्रपति आइजन्होवर सोवियत अरब का प्रमण करेंगे। मसूरे तयार में इस अवसर का स्वागत हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा माना शीत-युद्ध या तो अरब के लिए समाप्त हो जायगा या उनका प्रभाव नगण्य हो जायगा क्योंकि दोनों ही देश मित्र कर संसार में स्थाई शांति ही नींव डालने के लिए कोई न कोई ठोस कान प्रवश्य करेंगे। इसके पूर्व रूस के निराशासन अमेरिका की घोर अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रिय नियन्त्रण रूस की मात्रा करने इस अन्तर-सम्बन्ध के लिए उपयुक्त आधारभूमि तैयार कर चुके थे।

दोनों देशों में बढ़ते हुए तनाव में कमी लाने के लिए भी ख्रुश्चेव ने १५ सितम्बर, १९६२ से २८ सितम्बर १९६२ तक अमेरिका की यात्रा की। यात्रा में उस समय अन्तर्राष्ट्रीय मित् अ तन्त्रीकरण की डोढ़ के कारण, बड़ी नयानर बन चुकी थी। इसका अनुमान स्वर्गीय भी नेहरू के इन शब्दों में लगाया जा सकता है कि 'यदि अगले ७८ वर्षों में नि तन्त्रीकरण का अन्त्य में सम्भोगा न हुआ तो कोई भी शक्ति अन्तर को बिच्छत से नहीं बचा सकेगी।

शीत-युद्ध का प्रधान कारण अस्वीकरण थी यह स्थिति ही बनी हुई थी। श्री क्लूश्वेब की यात्रा स वातावरण में एक निबिधत, किन्तु दुर्भाग्यवश घस्पाई सुधार हुआ। श्री क्लूश्वेब ने तीन दिन (२५-२७ सितम्बर) तक अमेरिकन राष्ट्रपति फ्राइजलहोवर के मरीभण्ड पहाड़ियों में अवस्थित निवास फम्म डेविड में मीथीपूर्ण वार्तालाप करत हुए शीत-युद्ध की समाप्ति पर बहुत बस दिया। उन्होंने यह मत प्रकट किया कि प्रत्येक पक्ष को शान्ति की शोख में आभा रास्ता धागे बढ़ कर दूसरे पक्ष के साथ मिस जाना चाहिए। प्रथम विश्व युद्ध और समाप्तियों से डक आया।" श्री क्लूश्वेब की यात्रा पर प्रकाशित संयुक्त वक्तव्य न पत्रा गया — श्री क्लूश्वेब तथा श्री फ्राइजलहोवर इस बात पर सहमत हैं कि सभी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्ना का निर्णय शान्तिपूर्ण साधनों तथा वार्तालाप और चर्चा के माध्यम से किया जाना चाहिए।" क्लूश्वेब ने इस बात का समर्पन करत हुए कहा हमें सब महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान में युद्ध के साधन के प्रयोग का निवारण करना चाहिए। हम सर्व विश्वसक युद्धों न बिरानी रहे हैं। मन्त म हम यात्रा के सम्बन्ध में श्री क्लूश्वेब ने सिखा "राष्ट्रपति फ्राइजलहोवर से मरी बढ़ी मधुर बार्ता हुई है। हमने दिन प्रभों पर विचार किया है उन सबक बारे म यह पाया गया कि स्थिति न भुन्यांकन की दृष्टि न तथा दोनों में सम्बन्ध सुधारन की आवश्यकता की दृष्टि स जाना पडा का दृष्टिकोन तथा विचार एक जैसे हैं।"

शीतयुद्ध के तनाव को कम करने और पारस्परिक मतभेदों को समाप्त करने के लिए ४ बड़ देशों (संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत संघ ब्रिटेन और फ्रांस) के आसनाम्पसों का एक शिखर सम्मेलन बुलाया जाना आवश्यक समझा गया। श्री क्लूश्वेब न अपने एक पत्र में पश्चिमी देशों को सिखा— "बार्से देशों के अध्यक्षों का बीच-बीच में एक दूसरे के देश म शान्ति और मित्रता बनाये रखने वाली प्रमुख समस्याओं पर विचार विमल करने के लिए उच्च स्तर पर मिसना चाहिए।" श्री क्लूश्वेब का यह भी कहना था— "शीतयुद्ध को बर्ष में पड़नी बरारें बीखने लगी हैं।"

परन्तु शिखर-सम्मेलन धारम्भ होने से ठीक १३ दिवस पूर्व १ मई १९६० को मूर विमान-काण्ड हो गया जिसने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में दृष्टि कर अत्यन्त शिखर सम्मेलन को अमफल बना दिया। बात तब बूना अधिक बढ़ गई जब अमेरिकन राष्ट्रपति फ्राइजलहोवर न स्पष्ट शर्तों में यह कह दिया कि सावियत रूस में सामरिक बतिविधियाँ अत्यन्त मुष्ट रहती हैं आ पस हावर के समान आकस्मिक आक्रमण को रोकने के लिए अमेरिका आग-बूम कर ऐसी कार्यवाहियाँ करता है और मविष्य में भी करता होगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय कानून में इसकी मनाही नहीं है। अमेरिकन राष्ट्रपति की इस धारणा से सावियत रूस अत्यन्त माराज हो गया और क्लूश्वेब न ऐसी कार्यवाहियों को सोचियत राष्ट्र के लिए परमातजनक मानते हुए अमेरिका को चेतावनी दी कि वह इस प्रकार की आसूनी गतिविधियों को मुग्त रोक दे। इतना ही नहीं श्री क्लूश्वेब ने यह माँग भी की कि अमेरिका अपने इस

कागनाम के लिए सोवियत सरकार से माफी मंगी। इन परिस्थितियों में दोनों
 पक्षों में बसने वाला नीत-युद्ध धाका झूठे लगा। संयुक्त राष्ट्र संघ पूरे
 बिमानकाष्ठ के मामल में घोर नीत-युद्ध का प्रजाडा बन गया। स्वी
 धाराया घोर प्रमाणों के प्रत्युत्तर में अमेरिकन प्रतिनिधि भी हेनरी
 केबटसाँच न इस द्वारा जासूसी करने के अनेक उपायगुण देत किये। श्रीसाँच
 न परिषद की मेज पर एक बस्तु रखी। यह अमेरिका की सरकारी राजमुद्रा
 की एक काष्ठ प्रतिकृति थी जिसका स्वी सरकार न मास्को में अमेरिकन
 दूतावास में लगाने के लिए उपहार रूप में दिया था। इस काष्ठ प्रतिकृति में
 अमेरिकन दूतावास में होने वाले सभी वार्तालापों को प्रकृत करने तथा बाहर
 सबाब भेजने के प्रति सूक्ष्म अन्व लने हुए थे। यह मुद्रा काफ़ी दिनों तक
 दूतावास के कार्यालय में सजी रखी थी और इससे राजभूत के वार्तालाप
 सूचना सोवियत अधिकारियों को मिलती रही। इस में भी अपनी धार
 अमेरिकन कार्यवाहियों का अंडाफोड़ करने में कोई कसर न रखी। संयुक्त
 संघ में चलत वाले इस नीत-युद्ध में अपने प्रभाव घोर बहुमत के का
 संयुक्त राज्य अमरिका का पलड़ा मारी रहा और सुरक्षा परिषद में
 द्वारा रखा गया अमेरिका की निन्दा का प्रस्ताव पास नहीं हो सका।
 श्री यू-२ काष्ठ में नीत-युद्ध में जो तुफान बड़ा कर दिया उससे इस ने
 काम उठाया। टुन्बेक ने यह सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी कि इस
 शान्ति का सबसे बड़ा प्रमी और अमरिका सबसे बड़ा दुश्मन है तथा
 अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के लिये यही एकमात्र जिम्मेवार है।

१६ मई, १९६० को होने वाले निखर-सम्मेलन की असफलता से
 नकार में बड़ी निराशा छा गई। परन्तु इससे नबिष्य में हानि बाल निखर
 सम्मेलन की भांति प्रबन्ध समाप्त नहीं हुई क्योंकि भी टुन्बेक बार बार यह
 घोषणा करते रहे कि इस अथल निखर-सम्मेलन को सफल बनाने का प्रयत्न
 करेगा। १० अक्टूबर १९६० को टुन्बेक ने ये आसाजनक शब्द कहे—
 "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सब प्रकार के तनाव उत्पन्न होते हैं किन्तु ममन
 नीतने के साथ ऐसे सम्बन्धों की कटुता दूर हो जाती है। इसकी परबाह न
 कीजिए कि समुद्र किण्वता दुष्कनी है। दुष्कान के बाद सर्वत्र शान्ति माती है।
 अन्तःराष्ट्रीयता यही पूरे बिमान की बटना के सम्बन्ध में होना। इसकी जासूसी
 बदान एक शत्रुतापूर्ण कार्य था किन्तु कुछ समय बाद यह तुफान शान्त हो
 जावेगा।"

११ नवम्बर १९६० को अमेरिकन राष्ट्रपति के निर्वाचन में मीनेटर
 जॉन फिट जैरल्ड क्नेडी की सफलता के बाद नीत-युद्ध की समाप्ति की
 आशा कुछ बढ़ गई। इस अवसर पर राष्ट्रपति क्नेडी को बयान देते हुए
 श्री टुन्बेक ने निन्दा— "हमें आशा है कि जब तक आप नस उबध पर पर
 हैं बार्ना देश पुनः उस नीति का अनुसरण करने को राष्ट्रपति जर्जेन्ट के
 समय में विकसित हो रही थी। यह नीति न केवल सोवियत संघ और
 अमेरिका के मौलिक हितों की पूर्ति करती है किन्तु नये युद्ध की धारणा से
 मुक्ति की आकांक्षा रखने वाली सभी मानव जाति ही इसी नीति को बाहरी
 है। हमें पूरा विश्वास है कि शान्ति को बनाये रखने और उसे सुरक्षित

करन में कोई दुर्संघ्य बाधाएँ नहीं हैं। इस सत्य की प्राप्ति के लिये हम तयार हैं। हम अपनी ओर से ऐसा प्रयत्न जारी रखेंगे जिससे निःशस्त्रीकरण की समस्या का हल निकले शान्ति संधि द्वारा जर्मनी की समस्या का समाधान हो और समूची अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में सुधार हो।' सोवियत प्रधानमंत्री की बर्बाई का भी कैंनेडी ने बड़ा ही धासनावादी जवाब दिया कि राष्ट्रपति का पद समाप्तने के बाद उनका मुख्य कार्य 'न्यायपूर्ण और स्थाई शान्ति' की स्थापना करना होगा।

कैंनेडी और कुश्चेव की उपरान्त धामार्थों और धाम्नामनों का कुछ समय तक प्रभाव दिखाई दिया और शात-युद्ध में कुछ कमी आई। परन्तु सन् १९६२ में क्यूबा के संकट ने पुनः एक बिम्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी। क्यूबा के प्रश्न पर एक बार फिर बिम्ब-युद्ध की संभावना उत्पन्न हो गई। परन्तु कैंनेडी की हड़ता व भी कुश्चेव के बीच और सङ्गनमीयता ने स्थिति को संभाल लिया क्यूबा का संकट समाप्त हो गया और तृतीय विश्व युद्ध होने से टम गया। इसमें कोई संदिह नहीं कि इसी प्रधानमंत्री ने क्यूबा संकट पर सतर्प-क्षेत्र से हट जाने का निर्णय करके अत्यन्त बुद्धिमत्ता और महनशीलता परिचय दिया।

क्यूबा संकट अन्तिम अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को सुधारन की दिशा में और शीत-युद्ध में शिथिलता आने की दृष्टि से एक युक्त बरवान सा सिद्ध हुआ। भी कुश्चेव और भी कैंनेडी-ये दोनों ही विवेकशील नेता निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रगति के लिए सहायनीय प्रयास करने में परिणामरूप शीतयुद्ध में काफी समय तक कोई बाड़ नहीं आई। शातयुद्ध की इस नवीन अवस्था का अत्यन्त अग्रगण्य रूप १ अगस्त १९६३ को सम्मुख आया जबकि रूस अमेरिका और इङ्ग्लैण्ड ने मास्को में धातुविक परीक्षणों पर रोक सम्बन्धी संधि पर हस्ताक्षर किये और बाद में सपमग ११ अगस्त १९६४ को इस संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। अब तो इस संधि पर हस्ताक्षरकर्ता देशों की संख्या लगभग १०२ तक पहुँच गयी है।

भी कुश्चेव और कैंनेडी दोनों ही के प्रयत्नों से शीत-युद्ध में शिथिलता आई और शान्ति प्रिय देशों की जनता यह अनुभव करने लगी कि ये दोनों महात्मा नेता आगर में जीव ही विश्वास और शान्ति के बीज बो रहे। परन्तु ईस्वर को यह मंजूर न था अतः २२ नवम्बर १९६३ को राष्ट्रपति कनेडी एक मदाध्य हत्यारे को गोली के शिकार बन गये और इसके बाद ही १५ अक्टूबर १९६४ को रूस के समाचार देन वाली तास एडेम्मी ने यह बापना की कि- धर्मिक धायु और स्वास्थ्य खराब होने के कारण कुश्चेव का कम्युनिस्ट पार्टी के सभी तथा प्रधानमंत्री के पद से मुक्त किया गया है।

भी कनेडी और कुश्चेव के उत्तराधिकारियों ने यद्यपि उन्हीं की नीति का अनुसरण करने का आश्वासन दिया परन्तु विभिन्न कारणोंवश शीतयुद्ध की आभाओं से संसार को मुक्ति नहीं मिल गयी। समय-समय पर ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती रहीं जिनसे शीतयुद्ध में उतार चढ़ाव

समता रहा। १९६४ में कमरुद्दीन खानों के नेतृत्व में मुमुक्षु राष्ट्र के नामि
 स्थापक कार्यो के अन्तर्गत की प्रयासों से इनकार करने और
 प्रतिकार की इन मांग ने कि यदि कमरुद्दीन खानों के अन्तर्गत
 के १९६६ में मुमुक्षु के अनुसार महासम्मेलन में महाभिकार से बचि
 नये भीतयुद्ध को अत्यधिक सफल करके एक बड़ी मकसदपूर्ण स्थिति उत्पन्न क
 दी। अक्टूबर १९६३ में अफगानिस्तान को लेकर भारत तक मध्य में अफगानि
 ताना में युद्ध की और पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत के विरुद्ध अपना कूटनीति
 युद्ध चलाने में कोई कसर नहीं रखा यद्यपि उनकी भीतयुद्ध कुशलता और
 कूटनीतिक पँतरेबाजी थी शास्त्री की बुद्धता व स्पष्टता के मामले विवेक सफल
 नहीं हो सकी। अक्टूबर १९६७ में अरब इजरायल संघर्ष के सम
 भीतयुद्ध और अरब युद्ध का अफगानिस्तान के संसार की देखने को मिला
 पहले अरब और इजरायल नेताओं द्वारा अत्यन्त कूटनीतिक एवं साम्य
 सहा गया और दोनों की पुष्ट-शोचक महाशक्तियों ने भीतयुद्ध को हर प्रका
 ने प्रोत्साहन दिया और बाद में यही भीतयुद्ध कोरियाई युद्ध के समान 'ए
 मकसद युद्ध' में परिणत हो गया जिसकी समाप्ति संयुक्त राष्ट्र संघी
 हस्तक्षेप तथा अरब राष्ट्रों की आन्तरिक पराजय में हुई। अरब राष्ट्रों की
 इजरायल का यह संघर्ष आज भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बढ़ा रहा है और
 भीतयुद्ध में अन्तिम में भी बीसा काम कर रहा है। इस भीतयुद्ध
 विमलताम में अन्तिम अन्तिम संघर्ष भी उत्तरोत्तर बुद्धि किये जा रहा है
 विमलताम के अन्तिम को लेकर 'पश्चिम और पूर्व' एक-दूसरे पर आरोपों प्रत्यारो
 की ऋणी लपेटे रहते हैं और किसी को भी इस बात की सच्ची विमला सत न
 प्रतीत नहीं जाती कि विमलताम की अन्तिम को कितने समानक विमला व
 सामता करना पड़ रहा है।

जो भी हो यह कहना अनुचित न होगा कि विभिन्न मतधरों की
 अन्त-अन्त के बीच-बीच में अन्तिम की मूल्य के अन्तर्गत पूर्व और 'पश्चिम'
 भीतयुद्ध की तीव्रता में निश्चित रूप से कमी आई। अब दोनों ही युद्ध व
 स्पष्ट रूप से महसूस करने लगे हैं कि बिना एक सहायक महायुद्ध के इस
 युद्ध का अन्तिम अन्तिम नहीं है और यदि ऐसा कोई महायुद्ध हुआ तो दोनों।
 पक्ष अन्तिम पूर्ण विनाश को प्राप्त हो जायेंगे जिसमें विवेक और विवेक न
 बराबर होंगे। इस अनुमति ने दोनों ही पक्षों को सह-अस्तित्व व
 अन्तिमार्थता में विश्वास दिया गया जिससे भीतयुद्ध (Cold War) व
 गर्मी एक बड़ी सीमा तक शान्त हो गयी और अन्तिम एक प्रकार के 'ठंडे सा
 अस्तित्व' (Cool co-existence) का रूप धारण कर लिया है। अन्तिम
 पश्चिम के अस्तित्व को मिटाने का संकल्प स्वयं अन्तिम मिला है और अन्तिम
 में भी यह एकाग्र विश्वास फल रहा कि अन्तिम कुछ विवादों को सुलझा
 है तो अन्तिम ही निष्पत्ति इच्छित होता है। फिर भी कुछ निराशा
 भावियों का यही कहना है कि अन्तिम का विश्वास करना पश्चिमी देशों व
 अन्तिम है। यह अन्तिम संघर्ष अन्तिम के अन्तिम बुद्धिवादी अन्तिम को
 अन्तिम अन्तिम को अन्तिम नहीं होगा।

शीतयुद्ध के १९४३ के बाद के इतिहास से और विशेषकर क्यूबा-संकट की समाप्ति के बाद से निष्कर्ष यही निकसता है कि यद्यपि समय-समय पर ऐसी घटनाएँ होती रही हैं जिनसे मीके-बेमौक काफ़ी अस्तरिप्ट्रीय तनाव उत्पन्न हो जाता है फिर भी जैसा कि एडवर्ड श्रेकसा का मत है कि—“क्यूबा के बाद से ज़ार एक ही दिशा में बह रहा है। चायिगटन के साथ एक सपातार और गुप्त कवापकयन के साथ उल्लेख स्वयं का एक क्रमिक शीतसीकरण (Damping down) हुआ है।”

शीत युद्ध केवल ‘पूर्व’ और ‘पश्चिम’ की विशेषता ही नहीं रही है बल्कि स्वयं साम्यवादी दुनियाँ में भी इसने अपना प्रभाव दिखाया है। साम्यवादी दुनियाँ में शीत युद्ध के नेता सोवियत रूस और साम्यबाधो चीन हैं। जहाँ कमी स्टालिन की मृत्यु के बाद से ही यह अस्तित्व के प्रति पूरुषिष्ठा अधिक आस्वस्त हुए हैं वहाँ चीनी साम्यवादियों का कहना है कि पूरुषीबाध के साथ समाजवाद का अस्तित्व एक बेतुकी बात है। स्वयं तो सत्तार का सबसे बुद्धिमान और विवेकशील तथा युद्ध-अनुभव समझने वाले माघासेतुङ्ग का मत है कि शैवता और शान्त एक साथ अगल-बगल में नहीं रह सकते। शान्त रूपी पूरुषीबाध का विनाश करना प्रत्येक साम्यवादी का परम पुनीत कर्तव्य है। उनका मत है कि जो साम्यवादी शान्तिपूर्ण सहजोवन की बात करते हैं वे असली मार्क्सवादी नहीं हो सकते। इस प्रकार साम्यवादी दुनियाँ में चलने वाला यह अर्थकर सैवधानिक मतभेद ‘एक ही घर में शीत युद्ध’ वाली बात है। स्वयं रूस में इस सैवधानिक मतभेद के कारण अन्दर ही अन्दर दो गुट हैं— स्टालिनवादी गुट जो पहले से ही विद्यमान है और कुश्चेववादी गुट जो सह-अस्तित्व का पक्ष करते हैं। यद्यपि श्री कुश्चेव का लगभग राजनीतिक मन्पास हो चुका है, किन्तु वर्तमान रूसी नेतृत्व अपनी विचारधारा में बहुत कुछ कुश्चेववादी ही है।

साम्यवादी संसार के इस संघर्ष का प्रभाव पश्चिम द्वारा बताया जाने वाले शीत युद्ध पर निश्चित रूप से पड़ा है। पश्चिमी गुट सपासंभव ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहते कि जिसमें कमिनि में स्टालिनवादी पक्ष को सहारा मिले। स्वयं संयुक्त अमेरिका को अधिकाधिक विश्वास होता जा रहा है कि पूरुषीबाधो विवाद के लिए जब साम्यवादी कम संभवत इतना बढ़ा खतरा नहीं है जितना कि साम्यवादी चीन निकट भविष्य में हो सकता है। चीन की आक्रामक नीति से न केवल पश्चिमी राष्ट्र बल्कि स्वयं कम सहित विश्व के अन्य जातिप्रिय राष्ट्र अस्त हैं। सभी इस बात में अपना और विश्व का हित समझने लगे हैं कि या तो चीन को सहयोग का हाथ बढ़ाने के लिये विचार कर दिया जाय या फिर उसे अकला बना लिया जाय। “मक साथ ही जब यह नवीन वर्षा भी चल पड़ी है कि एक ऐसा दिन भी आ सकता है जब चीन के विरुद्ध अमेरिका और चायिगटन रूप का एक संयुक्त मार्चा बन

बाप ।^१ इस धीरे धीरे का वैधानिक मतभेद शीत युद्ध में निश्चित रूप से तिब्बतता लावा है और यह वेकना यह है कि ऐसी स्थिति अब तक कायम रहती है । जहाँ तक शीत युद्ध की पूर्ण समाप्ति का प्रश्न है इस बात की प्राप्ति निकट भविष्य में नहीं की जा सकती । क्योंकि युद्ध का दृष्टिमातावरुद्ध अमेरिकन आर्थिक व्यवस्था को बिन्दा रखने के लिए आवश्यक है और इस हानत में शीत युद्ध की स्थिति कायम रहना भी बकरी है ।

घण्ट में शीत युद्ध के सम्बन्ध में यह बात बर रही जाती चाहिए कि 'शीत युद्ध' के परस्पर विरोधी क्षेत्रों में यथा-कथा सेतुबंध (Bridge) का काम भारत सहित कुछ उदत्त राष्ट्रों ने किया है । सम्पत्ता 'शीत युद्ध' में संलग्न राष्ट्रों के बीच कमी भी उग्र महायुद्ध हो सकता था । भारत ने 'शीत युद्ध' वाले राष्ट्रों के मध्य सह-मस्तिष्क स्थापित करने पर हुंमेबा बम दिया है और विश्व के शैमिक संगठनों को सर्वत्र निरस्तसाहित किया है ताकि मानवता के हित में विश्व को महायुद्ध की घमि से बचाया जा सके ।

सैद्धान्तिक संघर्ष बनाम शक्ति-राजनीति

(Ideological conflict or Power Politics)

घब हमे 'शीत-युद्ध' के एक दूसरे पक्ष पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए । प्रायः यह कहा जाता है कि 'शीत युद्ध' एक सैद्धान्तिक संघर्ष (Ideological Conflict) है जिसमें दो विरोधी बीजम-पद्धतियाँ—समाजवादी, सोशलिस्ट तथा सर्वाधिकारवादी साम्यवाद—सर्वोच्चता के लिए संघर्ष रत हैं— प्रो० विलियम जी० कार्लेटन (William G. Carlton) के कथानानुसार

“... राष्ट्रीय राष्ट्रों के संघर्ष से संगमय घब तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रधान तत्व राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय शक्ति-संतुलन रहा है । परन्तु उसे प्रान्तकर्ता को इस ऐतिहासिक तथ्य से पक्षपात न हो जाने की चेतावनी दे देनी चाहिए— क्योंकि २०वीं शताब्दी का यह मध्यकाल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शीव में राष्ट्रवादी शक्ति-संतुलन से सैद्धान्तिकता की धीरे एक युग प्रवर्तक माइ का छावी हो सकता है - 1”+

धी कार्लेटन की यह धारणा वास्तव में एक असाधारण तथ्य की घोषण करती है । इससे इन्कार करना भ्रामक होगा कि कल्पित राजनीति के इस युग में सोवियत संघ धीरे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मध्य को एक विशेष प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता है वह सचमुच सैद्धान्तिक है । इसके पीछे एक वृत्त

*S M International Scene Hindustan

+“... any one called upon to answer the crucial question in international relations today would be, I think, on safe ground in saying that, from the rise of national states and up to about now the chief”

उपरोक्त विरोध के बावजूद स्पष्ट यह निष्कर्ष निकलता है कि शीत युद्ध को एक वैज्ञानिक संघर्ष की संज्ञा दी जाना गलत नहीं है। हीराजनीति में मजबूत भ्रमक है कि १९वीं शताब्दी की शक्ति-सम्पन्नता का भाव्य यह हुआ कि शीत युद्ध और वैज्ञानिक संघर्ष मात्र है। कहते नहीं हैं कि वैज्ञानिक संघर्ष शीत युद्ध के एक प्रमाण कारण के रूप में स्वीकार्य है। इस बात के अनेक प्रमाण हमारे सामने हैं कि वैज्ञानिक संघर्षों पर बल दिये जाने के बावजूद शीत युद्ध शक्ति-राजनीति का २०वीं शताब्दी का संस्करण है। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति-राजनीति की द्वि-ध्रुवीय प्रकृति (Bi-polar interpretation) पूर्णतया सही नहीं है। भारत तथा एशिया और अफ्रीका के अनेक राष्ट्र ऐसे हैं जहाँ पाश्चात्य प्रजातन्त्र प्रथा मानियत या चीनी साम्यवाद में से किसी एक को भी पूर्णतः स्वीकार न करत हुए तटस्थता प्रथा परिलक्षता की नीति का अनुसरण कर रहे हैं। यूरोप, दोनों ही घुटों (अर्थात् अमेरिका) द्वारा कुछ ऐसे देशों को सहायता दी जा रही है जो उन विद्वानों में विश्वास नहीं करत, जिनका संरक्षण होने का वे मुटु बाबा करत हैं। उदाहरणार्थ सोवियत अमेरिका के अभिक्रान्त देशों में प्रसोवतानिक और फासिस्ट प्रवृत्ति की सरकारें पाई जाती हैं किन्तु फिर भी संयुक्त राष्ट्र में अमेरिका स्वयं को उनका प्रधान सारलक मानता है। तीसरे अर्थ में प्रत्येक मुटु में तमान विद्वानों के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय शक्ति-राजनीति का अन्तर्गत विद्यमान है। इसी प्रथा अमेरिकन कोई भी मुटु मजबूत तथा नेतृत्व की होड़ से परे नहीं है। साम्यवादी मुटु में अक्सर अपने मुटु के विरुद्ध विरोध के मार्ग पर चल रहा है ठा पश्चिमी मुटु में अक्सर अमेरिका के मध्य का तनाव यह बताता है कि शीत युद्ध है। जैसे हम और अमेरिका के मध्य का तनाव यह बताता है कि शीत युद्ध शक्ति-राजनीति (Power Politics) का ही एक रूप है। इन दोनों विश्व की में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा का तीव्र विकास इसीलिए हुआ क्योंकि द्वितीय महायुद्ध के विजय से बचे हुए संसार में यह दोनों ही राष्ट्र विश्व की महाशक्तियों के रूप में उभरित हुए और अन्य किसी भी शक्ति से चुनौती के बावजूद विश्व नेतृत्व के लिए संघर्ष हो गए और जब तो साम्यवादी चीन के रूप में एक तृतीय महाशक्ति का उदय हो रहा है तब तो इन दोनों कट्टर शक्तियों को वैज्ञानिक संघर्ष के बावजूद परस्पर मैत्री और सहयोग की दिशा में प्रवृत्त होने को प्रेरित कर दिया है। पुनर्जाई १९६४ में एडवर्ड क्रान्हाउ (Edward Crankshaw) ने ठीक ही लिखा था—

Platform to work out its tactics against the chief forces of the imperialist Camp”
 —For full text of the Manifesto see the Strategy and Tactics of World Communism—Report of Sub-committee No 5 of the Committee on Foreign Affairs of the U.S. House of Representatives (House Document No. 619 Washington 1949) pp. 209-230.

गत नहीनों की संभ्रान्ति से एक नवीन सोवियत नीति उदय हो रही है। संयुक्त राज्य के साथ पुनः मैत्री की नीति को निःपक्ष विचार को गई किसी भी वस्तु से अधिक घामूल परिवर्तनवादी है, तथा जो बलों महाशक्तियों के मध्य विश्व के संयुक्त नाभिकीय पुलिसमैन (Joint nuclear policemen) के रूप में कार्य करते हुए, एक सशोषित मैत्री की ओर ले जा सकती है।^{१*}

EXERCISES

- 1 What do you know about so-called Cold War? Give its short resume from 1946 to 1967

तथाकथित शीतयुद्ध के बारे में प्राप क्या जानते हैं? १९४६ से १९६७ के मध्य के शीत युद्ध को संक्षेप में बताइये।

- 2 What are the causes of the so-called 'Cold War'? Indicate main fronts on which it is being fought and the main episodes it has witnessed since 1946

तथाकथित 'शीतयुद्ध' के क्या कारण हैं? जिन मुख्य बाधों को लेकर यह लड़ा जा रहा है और १९४६ से जिन मुख्य घटनाओं के दर्शन हमने किये हैं—उनका बखाना कीजिए।

- 3 "The Conflict between two monolithic giants of the modern world is the dominant reality of the contemporary world politics." Discuss the principal causes of friction between U.S.A. and the U.S.S.R. and suggest remedies or solution if any

"प्राकृतिक विश्व के दो भीमाकार बानधों के मध्य संघर्ष ही ममकालीन विश्व-राजनीति की विशेषता है।" संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य विश्व व मत्तमरी के मूला कारणों की विशेषता कीजिए और सम्भाव्य हल बताइये।

- 4 Trace the origin and growth of the conflict between the United States of America and the U.S.S.R. after the Second World War. How far is it proper to explain the conflict in terms of the ideological differences between the two great powers?

*The Hindustan Times, 25th July 1964

द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य जो संघर्ष रहा है उसकी उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालिए। यह कहना कहां तक उचित है कि इन दो महान् शक्तियों के मध्य यह संघर्ष वैश्वान्तरिक मतभेदों का है ?

- 5 Examine the role of ideological as a prime factor in International Relations. Illustrate your answer by one or two examples.

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सिद्धान्तों की भूमिका की एक प्रमुख पहलू के रूप में परीक्षा कीजिए। एक घटना को उदाहरणों द्वारा अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

9

अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस की विदेश नीति

(THE FOREIGN POLICIES OF U.S.A. U.K.
& FRANCE)

- १ अमेरिकन विदेश नीति के सिद्धान्त एवं मूल्य
 - २ १९४२ से पूर्व तक की अमेरिकन विदेश नीति
 - ३ अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति
 - (१) मनु रात्रि का काल (मई १९४२ से अगस्त १९४६ तक)
 - (२) नवीन रिचार्डसन का काल (अगस्त १९४६ से जून १९५० तक)
 - ३) क्लेमेनट का काल (जून १९५० से जुलाई १९५३ तक)
 - (४) नवीन बुष्टि का काल (जुलाई १९५३ से जनवरी १९६१ तक)
 - (५) सहस्रतितय का काल (जनवरी १९६१ से)
 - (i) कॅनेडी-युग
 - ✓ (ii) कारसन युग
- रेम की विदेश नीति
स की विदेश नीति

‘सयुक्त राज्य अमेरिका निरंतर एवं नियमित रूप से शक्ति-स्थापना का समर्थन करता है। हम इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि संसार के समस्त राष्ट्रों की नीतियों के क्रियान्वयन में बल प्रयोग से तथा दूसरे राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप से बचना चाहिये। हम चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में समस्याओं का समाधान शान्तिपूर्ण बर्बातों तथा समझौतों के द्वारा किया जाए। हम अन्तर्राष्ट्रीय-संघियों का ईमानदारी के साथ पालन किये जाने में विश्वास रखते हैं। हमारा विश्वास है कि समस्त राष्ट्रों को दूसरे राष्ट्रों के अधिकारों का सम्मान तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में प्राप्त रूप से स्वीकृत व प्रचलित शक्तियों का परिपालन करना चाहिये।’

—कार्डिनल

‘मेरी धारणा है कि किसी भी देश को शाश्वत रूप से यशु प्रदान मात्र मात्र मात्र एक संकीर्ण नीति है। केवल हमारे हित ही शाश्वत तथा विश्वव्यापी हैं, तथा हमारा कर्तव्य है कि हम इन हितों का अनुसरण करें।’

—लार्ड वावर्सिंग

‘यह बात बहुत स्पष्ट है कि इस संकटपस्त विश्व में शांति को पहले की प्रेरणा नहीं प्रेषित महत्त्वपूर्ण कार्य करना है यह अनुत्तम और शक्ति स्थापित करने का कार्य है।’

—राष्ट्रपति किर्की

संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति

(The Foreign Policy of the United States)

संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का एक महान्तरम जनतन्त्र है और यहाँ की विदेश नीति लोकतन्त्र के सुझावों से बहुत प्रभावित रहती है। इन बातों के बिना ही अपने देश को स्वतन्त्रता की बेटी मानते हैं और संसार में स्वतन्त्रता का प्रकाश करना अपना उत्तरदायित्व समझते हैं। प्रकृति से अमेरिकन जवाबदेह होते हैं सभी प्रश्नों का सीधा उत्तर मांगते हैं तथा सभी समस्याओं को सीधे-सीधे से सुलझाना चाहते हैं। अमेरिकन जनता के इस स्वभाव के कारण यहाँ की विदेश नीति के कर्णधारों को कभी-कभी बड़े उलझे हुए समझौते करने को राजी होना पड़ता है। यहाँ के लोग भावुक हैं। वे किसी से प्रेम करते हैं तो पूरी तरह और बूझा भी करते हैं तो पूरी तरह। उनकी इस प्रकृति का विदेश नीति पर भारी प्रभाव है।

अमेरिकन विदेश नीति को प्रभावित करने वाला एक प्रबल तत्व उसकी ऐतिहासिक परम्पराएँ और भौगोलिक स्थिति है। यह कहा जा सकता है कि सम्बन्धित समुद्रों से बिरा तथा यूरोप आदि महाद्वीपों से दूर स्थित हान के कारण ही यह राज्य द्वितीय महायुद्ध तक अपनी पार्ष्वक्यवादी नीति का पालन करने में मगर्ष ह्रा सका था। यह द्वितीय महायुद्ध ही था जिनने अमेरिका को इस तथ्य से घसी नीति परिचित करा दिया कि यदि विश्व की बड़ी शक्तियाँ लड़ने को उद्यत हो जायें तो उसे भी उस उद्यम में चाहे या अगच्छे पड़ना ही पड़ेगा और नये युग की नूतन धान्यकलाओं एवं परिस्थितियों से परिचित होने के बाद ही अमेरिकन विदेश नीति की चार प्रमुख धूलों का तिरस्कार किया गया—ये थी कल्पनावाद (Utopianism) वैधानिकता (Legalism) भावुकता (Sentimentalism) और पार्ष्वक्यवाद (Isolationism)।

अमेरिकन विदेश नीति को प्रभावित करने वाला एक अन्य प्रमुख तत्व यहाँ की बृह नीति एवं राष्ट्रीय चरित्र है यहाँ की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था है। एक विशेष परिस्थिति में अमेरिकन किस प्रकार का व्यवहार करेगा यह बात बहुत कुछ उन तत्वों पर निर्भर करती है जिनके द्वारा यहाँ के समाज का वर्तमान एवं भावी रूप का निर्धारण होता है। समाज का स्वभाव और लोगों का चरित्र बृह और विदेश शाना ही नीतियों पर अपनी छाप छोड़ता है।⁺

⁺In foreign affairs as well as in domestic affairs "some clue as to how the American people will behave and should behave must be sought in the total complex of conditions and factors which make American Society

बल्तुन अमेरिका बहुत नी बानियों और लोगों का एक समुक्त देश है जिनकी परम्परायें एक बहानुयन चरित्र धर्मधान हैं। अथवा आदर्शवादी कल्पनावादी एक आत्मिकारी स्वभाव क कारण यहाँ क लोग विरम युद्ध के बाद की परिस्थितिमा का यथासंभारी रूप म अग्रयवत नहीं कर पाये। साथ ही इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समस्या की और वैधानिक-नैतिक (Legalistic Morals) दृष्टि से देखा है। आर्से एक केमन (George F Kennan) के मतानुसार पिछली नीतियों का सबसे अधिक यनीर दोष यह दृष्टिकोण ही रहा है।

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि अमेरिका की विदेश नीति पर गृह नीतियों एवं दबावों का जो प्रभाव पड़ता है कई बार तो उसकी अचहेतना करना असंभव बन जाता है। गृह नीति एवं विदेश नीति दोनों एक दूसरे पर प्रभाव डालती हैं। कुछ अवसर ऐसे आते हैं जबकि विदेश नीति में किये जाने वाले परिवर्तनों का इस कारण विरोध किया जाता है क्योंकि ऐसा करने में गृह नीति में जिन परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ती है लोगों के हितों को धाबात पहुँचाते हैं। इस प्रकार व्यापारिक संस्थानों, धार्मिक एवं अन्य प्रकार के सब तथा दूसरे सामाजिक संगठन विदेश नीति को अपने हितों के अनुकूल प्रभावित करते रहते हैं। एक संघात्मक प्रजातन्त्र होने के कारण विभिन्न सर्वसाधारण बल्बन अमेरिकन विदेश नीति के प्रवाह को एक दिशा प्रदान करते हैं। विदेश नीति का संचालन उस समय बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है जबकि राष्ट्रपति विश्व रस का होता है उसका कार्यस में बहुमत नहीं होता।

अमेरिकन विदेश नीति के सिद्धान्त एवं लक्ष्य (The principles and objectives of United States Foreign Policy)—संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति के सध्यों का स्रोत यहाँ के समाज के मुख्य हित तथा मान्यतायें हैं। अमेरिकन लोगों के जीवन का अथना एक तरीका है जिसमें गुलु तथा दोष दोनों का अस्तित्व है फिर भी वे उस बनाये रखने चाहित एवं प्रसार प्रदान करने में प्रयत्नशील रहते हैं। यहाँ की राजनीतिक क्रिया एवं विदेश नीति में इस प्रयत्न की स्पष्ट छलक परिलक्षित होती है जो इनके भाषान पर विदेश नीति के लक्ष्य एवं साधनों का निर्धारण किया जाता है। यहाँ की विदेश नीति के सामाज्य रूप से दो प्रधान लक्ष्य माने जाते हैं—पहला है 'राष्ट्रीय सुरक्षा' तथा दूसरा है धार्मिक सद्बोधन (Economic Well-being)। इन दोनों लक्ष्यों के मार्ग में अनेक पीलु लक्ष्य भी जा सकते हैं जिनके बारे में यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि वे विदेश नीति के आध्य हैं अथवा साधन। कुछ लोग साम्यवाद की बेदेखनी (Containment of Communism) का अमेरिकन विदेश नीति का प्रमुख प्रेरक मानते हैं जबकि दूसरों का मत है कि वह तो एक साधन है जिसका लक्ष्य है 'राष्ट्रीय

what it is or what it is becoming "

—Robert K. Carr and others American democracy
In theory and practice The Nation Govt
page 951

सुरक्षा'। इसी प्रकार अर्धविकसित देशों के लोगों को 'महायुद्धा प्रदान करना' मानवता की दृष्टि से एक लक्ष्य भी हो सकता है तथा साम्यवाद के प्रसार को रोकने का भी एक साधन भी। कुछ लोगों को इनमें भी संदेह है कि विश्व शांति अमेरिकन विदेश नीति का लक्ष्य है अथवा अन्य लक्ष्यों का प्राप्ति करने का एक साधन है। इनीशर महादय का कहना है कि किसी भी क्षण पर शांति की प्राप्ति अमेरिकन विदेश नीति का लक्ष्य नहीं है।^{१०} कुछ विचारकों का तो यहाँ तक कहना है कि अमेरिकन विदेश नीति जैसी कोई चीज है ही नहीं। यह मठ तथ्यों के विपरीत है और इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि कुछ ऐसे आधारभूत सिद्धान्त एक साम्यवाद के सिद्धान्त अमेरिका के पुरे अथवा अन्तिम इतिहास में यहाँ की विदेश नीति में महत्वपूर्ण भाग धरा दिया है। वान आल्स्येन (Van Alstyne) के मतानुसार इनमें सबसे प्रमुख है— सुरक्षा विस्तार (क तटस्थता)। नाथनील पीफर (Nathaniel Peffer) का मत है कि अमेरिका सम्बन्धों के निश्चित विन्दु हैं—पाषाणवाद (Isolationism) मुक्त सिद्धान्त सन्तुष्टि की स्वतन्त्रता तथा खुला द्वार (Open Door) बेहमिस (Behms) का विचार है कि निम्न सिद्धान्त अमेरिकी विदेश नीति की नींव हैं—

- १ संप्रभु स्वतन्त्रता
(Sovereign independence)
- २ द्वीपीय प्रसार
(Continental expansion)
- ३ यूरोप की राजनीति के साधारण संचि-विच्छेदों की उपेक्षा करना
(Avoidance of the Ordinary vicissitudes and Ordinary Combinations and Collisions of European Politics).
- ४ अन्तर्विदेशकारी सिद्धान्त
(The non-colonization principle)
- ५ अस्तान्तरण का सिद्धान्त
(The no-transfer principle)
- ६ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्वतन्त्रता
(Freedom of international trade)
- ७ लोगों का आत्मनिर्णय
(Self-determination of Peoples)

^{१०} 'Peace at any price is certainly not an objective of American Foreign Policy'

- ८ बुद्ध काल में लटख राष्ट्रों को समुद्र की स्वतंत्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीय नदियों में मौसंबाजन की स्वतंत्रता
(Freedom of seas for neutral ships in time of war, and freedom of navigation of international rivers)
- ९ स्वायत्ता का घौषित्य एव कारावास का घनौषित्य
(The right of expatriation and the wrong imprisonment)
- १० अहस्तक्षेप
(Non-intervention)
- ११ माझाम्यवाद विरोधी भावना
(A feeling of anti-imperialism)

अपनेक सिद्धान्तों के प्रतिष्ठि अमेरिकन विदेश नीति के कुछ सामान्य सिद्धान्त भी बताये जाते हैं। अवाहृणार्थ मानव मात्र का कस्याण प्रजातन्त्र का विकास एव स्वयम्भता की रक्षा प्राणि : अमेरिकन विदेश नीति के लक्ष्यों का अध्यापन करत समय कभी-कभी उसनी वस्तु-स्थिति को बनाये रखने (Maintenance of Statusquo) की नीति पर बहुत जोर दिया जाता है। यह कहा जाता है कि अमेरिका परिवर्तन नहीं चाहता। यहाँ क लोम समुद्र है तथा परिवर्तनशील विश्व के परिवर्तनों के प्रति अशांति प्रवृत्ति विरोधी दृष्टिकोष रखते हैं। इस विचार का विरोध करते हुए अमेरिकी विद्वान यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अमेरिका उन हिंसात्मक एव अशान्तिकारी परिवर्तनों का विरोध करता है जो कि अध्येवस्था पैदाते हैं। किन्तु प्रातिपुर्ण परिवर्तनों का यह पक्षपाती है।

अमेरिकन विदेश नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्वों सबसे सिद्धान्तों और लक्ष्य प्राणि पर सामान्य चर्चा करत के उपरान्त अब हम संक्षेप में यह देखने का प्रयाः करेंगे कि द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति से पूर्व तक अमेरिका की विदेश नीति व्यावहारिक दृष्टि से किन सिद्धान्तों पर स्थिर रही। अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति का वर्णन करने से पूर्व वृष्टमूमि के रूप में यह जान लेना आवश्यक भी है।

१९४१ से पूर्व तक की अमेरिकन विदेश नीति (U.S. Foreign Policy before 1945)—संयुक्त राज्य अमेरिका जो क्रमशः प्रगति करत हुए प्राण संसार का एक प्रमुपतम राष्ट्र है उसकी वैदेशिक नीति के आधार लक्ष्य कार्यक्रम में लोम सिद्धान्तों पर स्थिर रहे—एक तो यह कि अमेरिका यूरोप के साथ व्यापार करे किन्तु यूरोप की शक्ति-राजनीति में दूर रहे। दूसरा यह कि यूरोप के देश भी अमेरिका के साथ व्यापार करें किन्तु वे अमेरिकन महाद्वीप की शक्ति राजनीति का भाग पेंच न करें। तीसरा यह कि

† Samuel Flagg Bemis "The shifting strategy of American defence and diplomacy"

—The Virginia Quarterly Review XXIV (Summer 1948) p. 321-335

अमेरिका और यूरोप के देश एशियाई देशों के साथ व्यापार करें किन्तु सम्मिलित रूप से एशिया की सक्रिय राजनीति से अलग रहें। पहले सिद्धान्त की अधिकारी व्याख्या प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन के बिनाई भाषण एवं जेफरसन के उद्घाटन भाषण में मिलती है। दूसरा सिद्धान्त राष्ट्रपति मुनरो के प्रसिद्ध 'मुनरो सिद्धान्त' में प्रतिपादित हुआ है। तीसरे सिद्धान्त की रूपरेखा अमेरिका की 'मुक्त-द्वार नीति' में मिलती है।

इन सिद्धान्तों से अमेरिका को १९वीं शताब्दी में विजय प्राप्त हुए और एक सम्पूर्ण राष्ट्र के रूप में अपने अधिकारों पर बल देना ही इस काम की अन्तर्गत नीति की प्रधान विशेषता रही। १९वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में अमेरिका का जो पद पकड़ सका, उस नाम में उमने अपने घर को संभारा और अपना क्षेत्र विस्तार करके अमेरिकन महाद्वीपीय अधिकृत क्षेत्रों का प्राधिकार साधना किया। २०वीं शती के आरम्भ में परिस्थिति बदल गई संयुक्त राज्य अमेरिका के पृथक निवास की नीति का बड़ा प्रभाव पड़ा। अपने व्यापारिक एवं प्राधिकार क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए अमेरिका ने विश्व-राजनीति में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ किया तथा अपने सीमाओं से बाहर मुख्य रूप से मद्रास एवं मैडिन अमेरिका के साथ सम्बन्धों के पास में बह बचने लगा। एडमिरल महान (Admiral Mahan) ने २०वीं शताब्दी की प्रथम दशक में अमेरिकन विदेश-नीति के बारे में लिखा है कि इस काम में यह एशिया के साथ सम्बन्ध बढ़ाने लगी केरीबियन में अपने प्रभाव का विस्तार करने लगी हालांकि यूरोप के मामले में यह अब भी भाग नहीं ले रही थी। किन्तु प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर परिस्थितियों ने मजबूर करके संयुक्त राज्य को इसमें भाग लेने के लिए तैयार कर दिया।

युद्ध के बाद अमेरिका की पृथकतावाद से हटती हुई प्रकृति पर पुनः प्रकृत सम गया। राष्ट्रपति विलसन ने मानव कल्याण एवं राष्ट्रों के परस्पर सहयोग के लिए जो रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया उसे अमेरिकन कांग्रेस द्वारा मुख्य रूप से इस कारण अंगीकृत कर दिया गया क्योंकि अमेरिका की विश्व राजनीति में बढ़ती हुई सक्रियता को पालन न थी। अमेरिकन विदेश-नीति युद्ध के बाद पुनः अपनी अतीत की परम्पराओं का पालन करने लगी। वॉटर बोस्स के शब्दों में प्रथम विश्व युद्ध के बाद संतुलित देश प्राप्त करने की सोच में हमने पृथकत्व ही महती राष्ट्रीय नीति अपनाई। + बोस्स का विश्वास है कि इस नीति के कारण ही यूरोप का सीमाओं के पार टिटर का दहाड़ का आवाज छाया और इसी कारण पक्ष हाथ पर जापान की मृत्यु जैसी समस्या हुई। इन सभी घटनाओं में हमें यह गहरा संकेत चाहिए कि हम अतिष्ठ रूप से परस्पर सम्बन्ध सीमा में रहने वाली कोई भी बड़ी सक्रिय इच्छा पृथक नहीं रह सकती। अपने पृथक जाद का इसे हमने ने लिए त्याग देना चाहिए। राष्ट्रपति विलसन का कहना है कि 'अमेरिका के समस्त महान उद्देश्य हैं जो केवल अमेरिकन महाद्वीप का ही

+ वॉटर बोस्स, शांति के युग सिद्धि, पृष्ठ—१३

घोषित नहीं है। वे स्वयं अमेरिका की विस्व-शान्ति मातृ-विकास एवं राष्ट्रों के पारस्परिक मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की स्थापना में सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भागीदार रहना चाहते थे। एवं १९२० के बाद अमेरिका की विदेश नीति वास्तविकता से अविच्छिन्न बुर होनी चली गई। वीमिस (Hoover) ने इस काल को अमेरिकन विदेश नीति का मूर्खों का स्वर्ग (Fool's Paradise) कहा है जबकि यह पांच मास्यताया टांग संघातित हो रहा था। वे वे— पार्थक्यवाद साम्राज्यवाद का विरोध विश्वस्वीकृत्य तटस्थता एवं शान्तिवाद। युद्ध के बाद जिस पार्थक्यवाद की नीति का अनुसरण किया गया वह प्रारम्भिक समय की नीति में मिश्र थी। मार्वेन्सो ने इस बाद के पार्थक्यवाद को विदेश नीति का अभाव बताया है। १९३० में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने पर संयुक्त राज्य अमेरिका को पुनः अपने इस दृष्टिकोण को जोड़ना पड़ा तथा विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद अपने प्रतीत के अनुभवों से सामं उठा कर फिर इस नीति का अनुसरण न किया।

अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति

(The Second Post World War Foreign Policy of the U.S.A.)

पार्थक्यवाद नीति का परिवर्तन होने से द्वितीय महायुद्धोत्तर अमेरिका को वैदेशिक नीति में वस्तुतः एक बड़ा क्रान्तिकारी सुधार हुआ और जब संयुक्त राज्य अमेरिका साम्यवाद के प्रसार का अन्वय करने के लिए सब देशों से सैनिक समझौते करने और उन्हें लगभग सभी प्रकार के सैनिक एवं आर्थिक सहायता देने की नीति का अनुसरण करने लगा। तथापि माइकल डोनेलन (Michael Donelan) के अनुसार युद्धोपरान्त अमेरिकन वैदेशिक नीति की धारणा सुरक्षात्मक ही बनी रही और इसके कारणवश जहाँ जहाँ अनेक सामं हुए वहाँ अनेक हानियाँ भी उठानी पड़ी। किन्तु यह सुरक्षात्मक नीति सैनिक गण कौमम (Military Strategy) से कहीं अधिक विस्तृत थी और केवल अमेरिका की सुरक्षा से इसका लेख नहीं अधिक चौड़ा था। युद्धोपरान्त अमेरिकन विदेश नीति मानव क्रमिक की भावना संघातित भी गई थी, यह केवल अमेरिका की सुरक्षा के लिए एक नये प्रकार की अवसरवादिता नहीं थी। १४

वास्तव में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद की अमेरिकन विदेश नीति मुख्य रूप से साम्यवादी देशों के साथ उसके विरोध समझौते प्रतिवृत्तिता एवं संघर्ष की बहानी है जिसमें कभी के पुनः अपनी पार्थक्यवादी नीति पर आ गए और कभी अपने विचार के आधार समझ की रचना में भी बुर पड़े। आखिर उन्होंने बीच का रास्ता अपनाया था कि अस्तोद्यमक परिस्थितियों में रहना था। यह धारणा थी कि समय के साथ-साथ या तो वे समयस्वार्थ

“... — it was the very negation of foreign policy”

—Morgenthau, *Hans J*

+Michael Donelan, *The Ideas of American Foreign Policy* 1963, p.10-11

मुलान्त आर्योवी पक्षवा स्वत ही मिट आर्योवी घोर इस प्रकार सम्पूर्ण युद्ध के सतरी को टासा जा सकेगा । युद्धोपरान्त बर्षों में अमेरिकन विदेश नीति ने विश्व के आकारको कल्पनातीत एवं तीव्र गति से विस्तृत कर लिया । पश्चिमी यूरोप की साम्राज्यवादी एवं व्यापारिक शक्तियाँ अन्तर्द्वारों से विश्व में अपनी क्रियाओं को बढ़ाती जा रही थीं किन्तु संयुक्त राज्य ने दो दशकियों में ही अपने साम्रिकामीन उत्तरराज्यात्तों को यूरोप मध्यपूर्व दक्षिणी एशिया तथा अफ्रीका में बड़ा किया । माइकेल डोनेलन (Michael Donelan) के शब्दों में युद्धोपरान्त अमेरिकन विदेश नीति का विषय गोलाार्ध सम्बन्धी मायताया का समग्र विश्व के रूप में विस्तार कर देना था ।¹ युद्ध के बाद अमेरिका ने न केवल यूरोप के मामलों में रुचि ली है वरन् सुदूरपूर्व मध्यपूर्व और अफ्रीका के मामलों में भी सक्रिय भाग लिया है ।

महायुद्धोपरान्त से लेकर अब तक अमेरिकन विदेश नीति पश्चिम परिवर्तनों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर प्रकट हुई है । इन परिवर्तनों का कारण एवं प्रौचित्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न परिवर्तनों राष्ट्रीय दबावों मैतुल्य एवं लोकमत के विवेक दृष्टिकोणों को माना जाता है । बर्हा पार्स स्लीचर (Charles Schleicher) ने इस युद्धोपरान्त अमेरिकन विदेश-नीति को तीन परस्पर सम्बन्धित एवं उत्तरोत्तर कालों में विभाजित किया है बर्हा पामर और परकिंस ने इसे मुख्यतः चार भागों में बाँटा है । स्लीचर द्वारा किया गया विभाजन इस प्रकार है—

- (i) सहयोग तथा अनुकूलन की नीति
(Co-operation & accommodation 1945 Aug to 46)
- (ii) सौम्यता संघ के साथ धैर्य एवं कठोरता की नीति
(Patience and firmness with the Soviet Union—
Aug. 1946 to March 1947)
- (iii) शीत युद्ध एवं साम्यवाद को सीमित करने की नीति
(Cold War Containment—1947 to onward)

पामर और परकिंस (Palmer and Perkins) द्वारा विभाजित ४ भाग इस प्रकार है—

- (i) प्रथम युग बी० जे० दिग्बस से प्रारम्भ होकर समयम डेड साल तक चलता है । इस युग को वे हेनीमून काल (Honeymoon) कहते हैं । जब संयुक्त राज्य अमेरिका अर्थों की श्रुद्धता में विश्वास कर रहा था और उसे बड़ी शक्तियों के सहयोग की आशा थी ।
- (ii) द्वितीय काल है नवीन यात्रा (New departure) का अवधि:

1 "The course of American postwar foreign policy relied heavily on the extension of hemispheric conceptions of the world at large."

सीमित नहीं है। वे स्वयं अमेरिका को विश्व-शान्ति मानव-विकास एवं राष्ट्रों के पारस्परिक मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की स्थापना में सक्रिय एक महत्वपूर्ण भागीदार देखना चाहते थे। सन् १९२० के बाद अमेरिका की विदेश नीति वास्तविकता से अधिकारिक दूर होती चली गई। बोमिड (Bemis) ने इस काल को अमेरिकन विदेश नीति का मूलों का स्वर्ण (Fool's Paradise) कहा है जबकि यह पांच साम्यतावादी शाखा संघामित हो गयी थी वे वे— पार्थक्यवाद साम्राज्यवाद का विरोध निःसम्भीकृत्य ठट्ठकता एवं धातिवाद। युद्ध के बाद जिस पार्थक्यवाद की नीति का अनुसरण किया गया वह प्रारम्भिक समय की नीति से भिन्न थी। मार्शबो ने इस बाद के पार्थक्यवाद को विदेश नीति का प्रभाव बताया है। "१९१० में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने पर संयुक्त राज्य अमेरिका को पुनः अपने इस घुटिकाय की ओटना पड़ा तथा विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद अपने पृथीय के अनुभवों से साम ठठा कर फिर इस नीति का अनुसरण न किया।

अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति

(The Second Post World War Foreign Policy of the U.S.A.)

पार्थक्यवाद नीति का परिवर्तन होने से द्वितीय महायुद्धोत्तर अमेरिका को वैदेशिक नीति में बस्तुतः एक बड़ा क्रांतिकारी सूत्रपात हुआ और जब संयुक्त राज्य अमेरिका साम्यवाद के प्रचलन का अवरुद्ध करने के लिए तब देशों से सैनिक समझौते कराने और उन्हें भंगमग सभी प्रकार के सैनिक एवं धातक सहायता देने की नीति का अनुसरण करने लगा। तथापि माइकेल डोनेलन (Michael Donelan) के अनुसार युद्धोत्तर अमेरिकन वैदेशिक नीति की प्रारम्भ सुरक्षात्मक ही बनी रही और इसका कारणत बड़ा उच्च डोनेलन (Military Strategy) से नहीं अधिक विस्तृत धनेक नाम हुए वहाँ धनेक हातिया भी उठानी पड़ी। किन्तु यह सुरक्षात्मक नीति सैनिक रण कौशल (Military Strategy) से नहीं अधिक विस्तृत की और केवल अमेरिका की सुरक्षा से इसका लेख नहीं अधिक चौड़ा था। युद्धोत्तर अमेरिकन विदेश नीति मानव कल्याण की भावना संघामित की गई थी यह केवल अमेरिका की सुरक्षा के लिए एक नये प्रकार की प्रवर्तकविता नहीं थी।+

वास्तव में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद की अमेरिकन विदेश नीति मुख्य रूप से साम्यवादी देशों के साथ उसके विरोध समझौते प्रतिष्ठितता एवं संपर्क की बहाली है जिसमें कभी के पुनः अपनी पार्थक्यवादी नीति पर धा धर और कभी अपने विचार के प्रदर्शन समाज की रचना में भी ऊँच पड़े। धाधिर उन्हीने बीच का रास्ता अपनाया जो कि धरातोपजनक परिस्थितियों में रहना था। वह धाधा की यदि कि समय के साथ-साथ मा ठो से समझाये

... — it was the very negation of foreign policy
—Morgenthau Hans J
+Michael Donelan, The Ideas of American Foreign Policy 1963 p.10-11

मुलम्ब जायेंगी घबना स्वत ही भिट जायेंगी और इस प्रकार सम्पूर्ण युद्ध के खतरे को टाक्षा जा सकेगा। युद्धोपरान्त ज्यों में अमेरिकन विदेश नीति ने विश्व के आकार को कल्पनातीत एवं तीव्र गति से बिस्तृत कर दिया। पश्चिमी यूरोप की साम्राज्यवादी एव व्यापारिक शक्तियां शताब्दियों से विश्व में अपनी क्रियाओं का बड़ाती जा रही थी किन्तु संयुक्त राज्य ने जो दशाब्दियों में ही अपने शाक्तिकालीन उत्तरदायित्वों को यूरोप मध्यपूब दक्षिणी एशिया तथा अफ्रीका में बड़ा दिया। माइकेल डोन्लान (Michael Donelan) के शब्दों में युद्धोपरान्त अमेरिकन विदेश नीति का विषय गीलार्ड सम्बन्धी माध्यताओं का समग्र विश्व के रूप में बिस्तार कर लेना था।¹ युद्ध के बाद अमेरिका ने न केवल यूरोप के मामलों में शक्ति ली है वरन् सुदूरपूर्व मध्यपूर्व और अफ्रीका के मामलों में भी सक्रिय भाग लिया है।

महायुद्धोपरान्त से लेकर अब तक अमेरिकन वैदेशिक नीति घनक परिवर्तनों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संगमंज पर प्रकट हुई है। इन परिवर्तनों का कारण एवं प्रीक्षित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न परिवर्तनों राष्ट्रीय दबावों नेतृत्व एवं लोकमत के विभेय दृष्टिकोणों को माना जाता है। जहाँ चार्ल्स श्लीचर (Charles Schlicher) ने इस युद्धोपरान्त अमेरिकन विदेश-नीति को तीन परस्पर सम्बन्धित एवं सतरोत्तर कालों में विभाजित किया है जहाँ पामर और परकिन्स ने इसे मुख्यतः चार भागों में बांटा है। श्लीचर द्वारा किया गया विभाजन इस प्रकार है—

- (i) सहयोग तथा अनुकूलन की नीति
(Co-operation & accommodation 1945 Aug to 46)
- (ii) शोचियत संज के साथ धैर्य एवं कठोरता की नीति
(Patience and firmness with the Soviet Union—
Aug 1946 to March 1947)
- (iii) शीत युद्ध एवं साम्यवाद को सीमित करने की नीति
(Cold War Containment—1947 to onward)

पामर और परकिन्स (Palmer and Perkins) द्वारा विभाजित ४ भाग इस प्रकार हैं—

- (i) प्रथम युग बी. जे. डिविस से प्रारम्भ होकर तदमय डेड सात तक चलता है। इस युग को बे हेनीमून काल (Honeymoon) कहते हैं। जब संयुक्त राज्य अमेरिका जर्मनों की शूरुदा में निवास कर रहा था और उसे बड़ी शक्तियों के सहयोग की आशा थी।
- (ii) द्वितीय काल है नवीन यात्रा (New departure) का जबकि

1 "The course of American postwar foreign policy relied heavily on the extension of hemispheric conceptions of the world at large."

- विभाजित विश्व की सघर्षता से वे परिचित होने लगे और नीतियों के निर्माण में नेतृत्व प्रदान करने लगे।
- (iii) मीगरा का साम्यवादी कार्यक्रमों का है जो जून १९४० के अन्तिम दिनों से प्रारम्भ होता है। इस काल में कोरिया में युद्ध हुआ। जापिक पुनर्निर्माण को शैतिक शैकारियों से रोकना दिया गया। पश्चिमी यूरोप तथा सूदूर पूर्व में अमेरिका की नीतियों पर पुनर्निर्धार करने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी तथा इसकी धारणा की गई।
- (iv) चौथा काल उस समय से प्रारम्भ होता है जबकि व्हाइट हाउस (White House) में डेमोक्रेटिक प्रभुत्व तथा सोवियत रूस से स्टालिन की ठानावाही समाप्त हुई गई। नवीन सोवियत नेताओं ने जापिक सोव्यतीस एवं समझौतेपूर्ण नीतियाँ प्रदान की इच्छा प्रकट की। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय मतभेदों का दूर होने की धारणा बढ़ने लगी तथा युद्धों का युग समाप्त होने के आसार दिखाई देने लगे।

- प्रस्तुत धारणा में सुविधा की दृष्टि से अमेरिका की बुद्धोत्तर नीति का अध्ययन हम निम्नलिखित पाँच भागों में करेंगे—
- १ मधु-रात्रि का काल (The Honeymoon Period)—मई १९४५ से अगस्त १९४६ तक
 - २ नवीन विज्ञान्येषक का काल (Period of New Departure)—अगस्त १९४६ से जून १९४७ तक
 - ३ खुले संघर्ष का काल (Period of Open Conflict)—जून १९४७ से जुलाई १९४९ तक
 - ४ नवीन दृष्टि का काल (Period of New Look)—जुलाई १९४९ से जनवरी १९६१ तक
 - ५ सह-अस्तित्व का काल (Period of Co-existence)—जनवरी १९६१ से उपरान्त।

(१) मधु-रात्रि का काल (मई १९४५ से अगस्त १९४६ तक)

द्वितीय महायुद्ध सभी मित्र राष्ट्रों और सोवियत संघ के सहयोग से जीता गया था पर अमेरिका ने युद्ध के बाद भी यही समझा कि उसे अपने देशों से सभी प्रकार का सहयोग मिलना चाहिए और विवादग्रस्त मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा सन्धानों के आधार पर स्वतः ही नहीं बनीं हूँ हूँ कि युद्ध काल में अमेरिका को न्यूनतम एक डेढ़ वर्ष तक बहु विश्वास बना रहा कि युद्ध काल में अमेरिका और रूस की त्रिज्य मिलना का विकास हुआ है वह बुद्धोत्तर सांत्विकता में भी बनीं रहेगी। दरम्यान में अमेरिका और रूस का मुख्यांशनीय शीतल काल १९४५ के मास्य सम्मेलन में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था और अभी से मानास्यतः बहु विश्वास किया जाने लगा था कि युद्ध की भावना बुद्धोत्तर काल की अनुपस्थिति करती

रहेगी। इसी बिस्वास के आधार पर अग्रेसून १९४५ के साम-संश्लिषको सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र सभ का क्वार्टर ठीयान किया गया तथा बुसाई-अगस्त में पोद्सबम सम्मेलन में जर्मनी व जापान से शांति-संश्लिषों एवं युद्धोत्तर व्यवस्थाओं के बारे में बिभिन्न समझौते किये गये। सहयोग की इसी भावना का प्रदर्शनात्मक बिचार यह रहा कि बिस्व से सैनिक शक्ति का बहिष्कार कर देना चाहिए क्योंकि यह अनावश्यक होने के साथ-साथ बिबेयात्मक रूप से अय्यकर भी है।

युद्धकालीन सहयोग धीर मैत्री की युद्ध के बाद इतनी सुमारी छापी रही कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'सहयोग धीर अनुकूल्य की नीति' (Policy of Co-operation and Accommodation) का अनुसरण करते हुए युद्ध से बिध्यस्त देशों के पुनर्बास धीर पुनर्निर्माण का कार्य आरम्भ किया अणु शक्ति के नियंत्रण की योजनामें यतायी यूरोप से अपनी सेनाओं को हटाया चीन में साम्यवादियों धीर राष्ट्रवादियों के मध्य समझौता कराने के प्रयास किये जर्मनी धीर उसके साथ राष्ट्रों के साथ यथासमय शीघ्रातिशीघ्र शांति संश्लिषों करने का आग्रह किया धीर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझन की स्थापना का प्रस्ताव रखा। २८ अक्टूबर, १९४५ को तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने सहयोग धीर अनुकूलन की तत्कालीन अमेरिकन बिबेस नीति के बारेमें सूची (Truman's List) उद्देश्यों का भाषणा का। ये उद्देश्य धार रूप में इस प्रकार थे—

- (i) अमेरिका प्रादेशिक बिस्तार अथवा स्वार्थपूर्ण साम नहीं चाहता वह किसी छोटे या बड़े देश पर आक्रमण नहीं करेगा।
- (ii) अमेरिका का मत है कि बिन देशों से सर्वोच्च प्रभुसत्ता के अयिकार अतपूर्वक छीने गये थे वे उन्हें वापिस किये जाने चाहिए।
- (iii) अमेरिका किसी मित्र देश में स्वतंत्रतापूर्वक अयिक की गयी अनता की सहमति के बिना किये गये किसी प्रादेशिक परिवर्तन को स्वीकार नहीं करेगा।
- (iv) अमेरिका का यह बिबवास है कि स्वशासन के लिए समर्थ धीर उद्यत देशों का बिबेसी हस्तक्षेप के बिना अथवा शासन का स्वरूप चुनन में स्वाधीनता होनी चाहिए। यह मित्रास्त यूरोप एशिया अफी का धीर पश्चिमी पोमार्श में समान रूप से लागू होना है।
- (v) अमेरिका का मक्य अपने शांति के साथ सहयोग करते हुए पराजित देशों में शांतिपूर्ण लोकतंत्रीय शासन स्थापित करना है।
- (vi) संयुक्त राज्य अमेरिका बिबेसी शक्ति द्वारा किसी देश में अतपूर्वक अथवा अत सरकार को आग्रता प्रदान नहीं करेगा।
- (vii) अनेक देशों में से होकर गुजरन वाली नदियों में तथा समुद्रों में आवागमन की निर्बाध स्वतंत्रता सब देशों को होनी चाहिए।
- (viii) बिस्व में अन्धे मान की प्राप्ति तथा व्यापार में सब देशों को स्वतंत्रता होनी चाहिए।

(ix) अमेरिका का यह मत है कि पश्चिमी मोलाय के राष्ट्रों को इस मोनार्च के बाहर से किसी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना उत्तम पड़ोसियों की भाँति अपनी सामान्य समस्याओं का समाधान करना चाहिए।

(x) अमेरिका चाहता है कि समूह विश्व में दरिद्रता के समापन को पूरा करने तथा जीवन के स्तर को ऊँचा करने के लिए सब देशों में पूर्ण आर्थिक सहयोग होना चाहिए।

(xi) समूह राज्य अमेरिका विश्व में अस्थिरता तथा वर्म की स्वतंत्रता को बढ़ाने के लिए प्रयत्न करेगा।

(xii) अमेरिका का यह बड़ा विश्वास है कि राष्ट्रों में शांति बनाने रखने के लिए ऐसे समूह राष्ट्र संघ की प्रावश्यकता है जिसके सदस्य शांति प्रेमी हों तथा शांति बनाये रखने के लिए प्रावश्यकता पड़ने पर सैनिक कार्यवाही करने के लिए भी तैयार हों।

युद्धोत्तरकाल में युद्धकाम की भाँति ही स्वी सहयोग के प्राप्त होते रहने की अमेरिकन भाषा इतनी बड़ी नहीं थी कि अमेरिका ने अपनी सभ्यता सेनायें समय-समय दो वर्ष के भीतर १ करोड़ २० लाख सैनिकों से घटा कर १५ लाख सैनिक कर दिये। परन्तु चीन ही इस भाषा का लोकमानस निरूद्ध होने लगा। पहले चीनों ने उस्तेकनीय प्रयत्न करते हुए भी अमेरिका विश्व राजनीति के दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं के प्रति डूब कर बैठे—सोवियत संघ की प्राकमणकारी भाँति और एशिया महाद्वीप में स्थिति। सभ्यता सभी क्षेत्रों में शीघ्र ही यह प्रयत्न हो गया कि इस एवं अमेरिका परस्पर एक दूसरे के पूर्ण विरोधी हैं और विश्व के प्रत्येक भाग की प्रत्येक संभव समस्या पर उन दोनों में मतभेद है। क्या समूह राष्ट्र संघ में क्या पूर्वी यूरोप में या जर्मनी अथवा बड़े-बड़े सैनिकों की प्रत्येक परिपक्व में दोनों के बीच मूलभूत से असहमति पट हो गयी। स्पष्टता की दृष्टि से यह कहना होया कि विभिन्न ५ क्षेत्रों उनके मतभेद विभिन्न रूप से उभर हाँ गये—

(i) जर्मनी के समीकरण का प्रश्न

(ii) पोलैण्ड में रूस द्वारा वास्ता सम्मेलन में दिये गये बचनों के अंगन की अमेरिकी शिकायत

(iii) इटली इंग्लैंड की क्वांटिटा अमेरिका तथा फ्रान्सेज के साथ शांति संधियों का प्रश्न

(iv) समूह राष्ट्र संघ तथा उत्तमों रूस द्वारा निवन्धाधिकार के प्रयोग का प्रश्न तथा

(v) ईरान टर्की और यूनान में रूसी महत्वाकांक्षाओं का प्रश्न।

इन सभी मतभेदों के कारण और अन्य विभिन्न घनत्वधर्मियों के फलस्वरूप जर्मनी सन 'पश्चिम' और 'पूर्व' की मुख्यकासीन 'घनाशी शक्ति' (Strategic Alliance) एवं 'शीतयुद्ध' (Cold War) में परिवर्तित हो गयी। रूस के असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण से अमेरिका के आकाशवादी नेताओं को बड़ा परेशान

सगा। एशिया महादीप में जो क्रांति हो रही थी उसका साम्यवादी देशों में भाव उत्पन्न तथा पश्चिम विरोधी उपनिवेश विरोधी और साम्राज्य विरोधी भावनाओं का प्रसार कर यहाँ के देशों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया तथा विश्व की नज़रों में अमेरिका को प्रतिभियावादी तथा पूँजीवादी बना दिया।

(२) लचील दिशामुखता का काल (अगस्त १९४६ से जून १९५०)

१९४६ के मध्य तक 'खनोखी मैत्री' की असफलता अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक कटु यथार्थता बन गयी। साम्यवादी देशों के उद्वेग को रोक कर राष्ट्रपति ट्रुमैन और टू मैन के प्रधान परामर्शदाता एचरिस हेगमैन तथा विदेश विभाग के इसी विशेषज्ञ जार्ज केनन (Kennan) ने कमिनिन के साथ सहयोग की नीति में संशय प्रकट किया। इस के साथ सहयोग करने की नीति को अविश्वसनीय बताया गया यह मत प्रकट किया गया कि कमिनिन केवल हड़ताल की नीति का ही समर्थक नहीं है और उसी का सम्मान भी कर सकता है, किसी दूसरी नीति का तो वह पूर्णतया और निश्चिन्ता ही नहीं मानता है। दिसम्बर १९४६ में विदेश मंत्री बर्ज एच प्रगल रूप उसका उत्तराधिकारी विदेश मंत्री मानस भी मास्को के विदेश मंत्री-सम्मेलन से एस ही विचार लेकर लौटे। दोनों का यह विश्वास हो गया कि इस के साथ सहयोग की नीति सफल होने की कोई सम्भावना नहीं है।

उपरोक्त अनुभूति होने के फलस्वरूप अमेरिकन विदेश नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और उसे सहयोग की अपनी प्रारम्भिक नीति का परित्याग करना पड़ा। यह समझ जाने लगा कि रूस चीन एवं पूर्वी यूरोप में साम्यवाद के प्रसार ने अमेरिका की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा कर दिया है और अमेरिका को तुरन्त ही ऐसी नीति अपनानी चाहिए जिससे साम्यवादी प्रसार को प्रभावशाली रूप से अविश्वसनीय 'थबकड' कर दिया जाय। इस प्रकार अमेरिका 'सहयोग और आनुकूल्य' (Co-operation and Accommodation) की नीति के स्थान पर "थबकड की नीति" (Policy of Containment) पर आया। सोवियत कुत्तानी के प्रति जागरूक होकर अमेरिका ने कठोर नीति को अपनाया आरम्भ किया। जार्ज एफ. केनन ने इस नीति को अधिक लोकप्रिय व्याख्याएँ प्रदान कीं और साम्यवाद को सीमित करने के लिए विस्तृत योजनाएँ बनाने का प्रयत्न समर्पण किया। उसने ऐसा करना इसलिए आवश्यक बताया कि सोवियत मध्य भी योजनाबद्ध रूप से आगे बढ़ रहा था। किन्तु फिर भी राष्ट्रपति ट्रुमैन इस बात में विश्वास व्यक्त कर चुके थे कि न्यूनतम राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच कोई कितनी मा कठिनाइयाँ क्यों न हों यह तथ्य विस्मृत नहीं किया जा सकता कि दोनों राष्ट्रों के मध्य हित इसी बात में निहित हैं कि शांति बनायी रखी जाय ताकि विश्व के सभी देश उत्पादन और पुनर्निर्माण के अपने मूल कार्यों की ओर लौट सकें। उपराष्ट्रपति हेनरी वॉलस (Henry Wallace) का विश्वास था कि सोवियत संघ अत्यन्त ही और पश्चिमी आक्रमण के विरुद्ध आत्मानुभवावहता है।

यद्यपि हम साम्यवाद के प्रसार को रोकने में रुचि लेते हैं किन्तु ऐसा करने के बहुत महान कारण हैं न केवल यह कि रूस तथा अमेरिका के बीच झगड़े हैं।”¹

अमेरिकन प्रवक्तारों का कुछ भी विचार रहा हा इसमें सन्देह करने की गुंजाइश प्रतीत नहीं होती कि साम्यवाद को सीमित या बन्द रख करने की नीति राष्ट्रपति ट्रूमैन के युग में आरम्भ हो गयी और इसकी निश्चित अभिव्यक्ति ‘ट्रूमैन सिद्धान्त’ (Truman Doctrine) में हुई जिसकी प्रथम मुख्य प्राधिकारिक व्याख्या स्वयं राष्ट्रपति ट्रूमैन ने १२ मार्च १९४७ को अपने एक भाषण में कॉर्पोरेट के समक्ष की।

ट्रूमैन सिद्धान्त का विवरण देने से पूर्व हमें उन मुख्य कारणों धबका बटनाओं या समस्याओं को मसौप में जान लेना चाहिए जिनके बड़ीभूत होकर अमेरिकन प्रवक्तारों के अनुसार इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। अमेरिका द्वारा प्रयत्न-अप्रयत्न रूप से यही प्रतिपादित किया गया कि यूनान, टर्की और ईरान पर बढ़ते हुए साम्यवादी दबाव के कारण “विपुल आर्थिक महापता द्वारा मार्क्सवाद के प्रसार को रोकने की नीति” कार्यान्वित की गयी। इन तीनों देशों की समस्याएँ इस प्रकार थीं—

(क) यूनान की समस्या—यूनान में दो राजनीतिक दल थे—एक साम्यवादी समर्थक (E. A. M.) और दूसरा राजतन्त्रवादी (E. D. E. S.)। द्वितीय महायुद्ध के दौरान यूनान पर इटली और जर्मनी का आक्रमण होने पर इन दोनों ही दलों ने इसका विरोध किया। बाद में १९४४ में जर्मन फौजों के यहाँ से हटने पर ब्रिटिश फौजों ने प्रवेश किया और वृत्ति ब्रिटेन यूनान पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहता था परंतु अक्टूबर १९४४ में एक समझौते के अनुसार सोवियत रूस ने यूनान को ब्रिटेन का प्रभाव-क्षेत्र स्वीकार कर लिया। ब्रिटेन यूनान को अपने प्रभाव-क्षेत्र में इसलिये रखना चाहता था ताकि इसके साम्राज्य के पूर्वी हिस्स को खाने वाला मार्ग सुरक्षित रह सके। ब्रिटेन इस बात को यकीन-माति जानता था कि इस प्रवेश में साम्यवादियों का नियंत्रण होने पर रूस यूनान से इटली और टर्की में घाबे बढ़ कर ब्रिटिश हितों को बड़ी हानि पहुँचा सकता था।

ब्रिटेन की उन्नत नीति का यह स्वाभाविक परिणाम था कि उसने यूनान में प्रवेश के बाद यूनान के साम्यवादी दल (E. A. M.) का विरोध

1 “I hear almost every day someone say that the real interest of the United States is to stop the spread of Communism. Nothing seems to me to put the cart before the horse more completely than that. Of course we are interested in stopping the spread of communism. But we are interested for a far deeper reason than any conflict between the Soviet Union and the U.S.”

और राज पक्षपाती बन (E. D. E. S.) का समर्थन किया। फसत मार्च १९४५ में जो चुनाव हुए, उनमें ब्रिटेन द्वारा समर्थित राज्य सत्तावाधियों के समर्थन से चुनाव में राजतन्त्र की स्थापना हो गई।

राजतन्त्रवादियों का पक्षपाती हो जाने के फलस्वरूप चुनाव के साम्यवादी उत्तर की पहाड़ियों पर चले गये और उन्होंने वहाँ से यूनानी सरकार के विरुद्ध मुस्लिम मूख प्रारम्भ कर दिया। पड़ोसी साम्यवादी देश भी इनकी सहायता करने लगे। दिसम्बर १९४६ में सुरक्षा परिषद् में चुनाव ने "बिद्रोही देशों को बिदेसी से सहायता दिए जाने की" शिकायत पेश की। १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघोय आंध्र धायोय ने रिपोर्ट दी कि "बिद्रोहियों को हथियारों की सैनिक प्रशिक्षण तथा आतायात की सहायता यूगोस्लाविया से तथा कुछ अल्बानिया तथा बल्गेरिया से मिल रही है।" कम इस मामले में यही बिलचस्वी ने रहा था।

जुंकि इस समय ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति ऐसी न थी कि वह अपनी सेना बढ़ा कर अकेला बिद्रोही साम्यवादियों का मुकाबला करता। इसलिए उसने ब्राउडिगटन को यह सूचित किया कि ब्रिटिस सरकार आर्थिक कारणों से विपन्न होकर वर्तमान बिलीय वर्ष की समाप्ति तक ३ सप्ताह के भीतर अपनी सेनायें चुनाव से हटा सगी। ब्रिटेन के इस निश्चय ने संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका को चिन्तित कर दिया क्योंकि ब्रिटिस फौजों के हटते ही उस क्षेत्र में स्थिति से साम्यवादी प्रभाव छा जाता। जब राष्ट्रपति ट्रुमैन ने इस विषय में अपने सहायकों से परामर्श किया तो एकमत और मार्शल ने स्पष्ट शब्दों में मद्दत किया कि "यदि चुनाव हाथ से निकल गया तो साम्यवाद के समुद्र में टर्की के टापू की रक्षा असंभव हो जायगी (२६ फरवरी १९४७)। परिस्थितिमें ट्रुमैन को यह निश्चय करना पड़ा कि अमेरिका को इन स्वतंत्र देशों की सहायता अवश्य करनी चाहिए। इसी निश्चय के फलस्वरूप उन्होंने चुनाव को आर्थिक सहायता देने का कार्यक्रम बनाया।

(ख) टर्की की समस्या—महापुरुष के बाद सुमर्यादापर और क्यूबा नागर को जोड़ने वाले वास्कोरस और इरी ब्राउडिगटन जलजमक मध्यों पर जो टर्की के अधिकार में थे सोवियत संघ अधिकार प्राप्त करना चाहता था क्योंकि इससे वह कण्ड नागर के तटवर्ती देशों का व्यापार बन्द कर सकता था और क्यूबासामर तथा सुमर्यादापरों से भी सैनिक आक्रमण भी कर सकता था। टर्की के साथ जून १९४६ में किये गये मांट्रु मन्त्रीले (Montreux Convention) के इस बात का निर्णय किया गया था कि जल जमकमध्यों में जालिन एवं युद्धजाल में व्यापारिक तथा रजपोनों को स्वनवतापूर्वक गुजरने दिया जाएगा और दोनों पार्सों में किसी प्रकार की लिसेन्सही नहीं की जाएगी। इस क्लिनवन्दी रचित प्रवेश को सुरक्षा की और इसमें जहाजों के स्वतंत्र आवागमन की गारन्टी ब्रिटेन और फ्रांस दोनों ने दी थी।

जुंकि सोवियत संघ इस महत्त्वपूर्ण सामरिक क्षेत्र पर अधिकार करने

का इच्छुक था घट महायुद्ध समाप्त होने से पूर्व ही उसने २० मार्च १९४५ को टर्की के साथ १९२५ में किये गये अनाक्रमण-समझौते को अंग बरतने की घोषणा कर दी और कारण यह प्रस्तुत किया कि १९२५ के बाद से अब तक परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं। पोट्सडम सम्मेलन में इस ने मोस्टे समझौते के संशोधन का आग्रह किया परन्तु ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली और अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने इस को इस भांग के प्रति पूर्णतः सहमति प्रकट कर दी।

इसके बाद ७ अगस्त १९४६ को मास्को में अपने एक पत्र द्वारा टर्की के समक्ष बस अक्रमणों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव रखा कि—

- (i) वे युद्ध एव सन्धि काल में सब देशों के व्यापारिक जहाजों के लिए खुले रहेंगे।
- (ii) कृष्णसागर (Black Sea) की शक्तियों के युद्ध पोतों के लिए वे सदैव खुले रहेंगे।
- (iii) विशेष अवस्थाओं को छोड़कर कृष्णसागर से भिन्न शक्तियों के युद्धपोतों का इनमें से गुजरना निषिद्ध होना चाहिए।
- (iv) बस अक्रमणों का शासन प्रबन्ध टर्की तथा कृष्णसागर की अन्य सभी शक्तियों के हाथ में हो।
- (v) अनाक्रमणों की रक्षा टर्की तथा सोवियत संघ दोनों के सामान्य साधनों से हो।

इस ने टर्की पर यह भी धारण सपाया कि महायुद्ध के दौरान उसने पूरी राष्ट्रों के अनेक रणपोतों को इस भाग से गुजरने दिया था। सोवियत इस का कहना था कि इस तरह की कोई भी बात सोवियत सुरक्षा के लिए अभिव्य में भी बहुत खतरनाक हो सकती थी। टर्की ने सोवियत आरोपों का खण्डन करते हुए प्रथम तीन प्रस्तावों को मानने के प्रति तो अपनी सहमति प्रकट कर दी किन्तु चौथे और पाँचवें प्रस्ताव को रद्द कर दिया। क्योंकि इनको मानने का अर्थ होता अनाक्रमणों पर इस की सत्ता का स्थापित हो जाना टर्की की सर्वोच्च सत्ता का हानन होना और कृष्णसागर की तटवर्ती शक्तियों से निम्न देशों के अधिकारों का उत्सर्जन होना।

टर्की के बचाव के प्रयत्न में २४ सितम्बर, को मास्को में इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करने से पहले दोनों देशों में वातावरण का सुधार दिया। परन्तु टर्की को इस बात की पूरी आशंका थी कि संभवतः उस पर सोवियत इस का अक्रमण हो जायगा। अतः उसने वाशिंगटन में मास्को के प्रस्तावों के बारे में समझ भोगी और उसके अनुसार अक्रमण मास्को के सभी प्रस्तावों को पूर्ण रूप में अस्वीकार कर दिया। इस अमरीका ने इस को यह चेतावनी भी दे दी कि यदि टर्की पर कहीं हमला हुआ तो इस मामले को गुरदा परिषद में उठवाया जाएगा। टर्की ने भी अपनी सुरक्षात्मक व्यवस्था

कार्यक्रम कर दी। १९४६ में उसका लगभग आधा बजट केवल प्रतिरक्षा और सैनिक कार्यों के लिए रखा गया। परन्तु इतना प्रतिरक्षा व्यय टर्की जैसा छोटा या राष्ट्र सहाय नहीं कर सकता था और साथ ही यह व्यय करके भी कुछ बड़ी महाशक्ति का प्रतिरोध करने के लिए आवश्यक सैन्य-शक्ति या सामर्थ्य नहीं जुटाई नहीं जा सकती थी। अतः उसने अमेरिका से सहायता की प्रार्थना की और राष्ट्रपति ट्रूमैन ने यूनान की भाँति टर्की को भी सहायता देने का निश्चय कर लिया। दूसरी ओर मास्को में अमेरिकन राजदूत ने ६ जनवरी १९४७ को अपनी सरकार को सूचित किया कि जब स्वी अक्षमण होने का बहुत कम आशा है।

(घ) ईरान की समस्या—द्वितीय महा युद्ध में तेल का एक प्रधान उत्पादक और रूस को पश्चिमी सहायता पहुँचाने का मार्ग होने के कारण ईरान का सामरिक महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया था। अतः युद्ध काल में अगस्त १९४१ में रूसी सेनाओं ने उत्तरी ईरान पर ब्रिटिश सेनाओं ने अधिष्ठी ईरान पर अधिकार कर लिया। १९४२ में ईरान के साथ ब्रिटेन और रूस की एक संधि हुई जिसमें उत्तरी और पश्चिमी ईरान में सोवियत एवं ब्रिटिश सेनाओं के अधिकार को स्वीकार करते हुए यह व्यवस्था की गई कि युद्ध समाप्ति के बाद इन महाने के नीचे विदेशी सेनाएँ ईरान से हटा ली जायेंगी।

१९४५ में अयंती के परास्त होने पर २ माघ १९४६ की तिथि ईरान से ब्रिटिश और अन्य सभी सेनाओं के हटाने की निश्चित हुई। परन्तु इसी समय यह घटना घटी कि नवम्बर, १९४५ में रूसी अधिष्ठी प्रदेश आखर बादशान में मुवेह पार्टी ने ईरान की राजधानी तेहरान के विरुद्ध विद्रोह करते हुए अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की जब तेहरान ने इस विद्रोह को दबाने के लिए अपनी सेनाएँ वहाँ भेजी तो रूसी सेनाओं ने उन्हें बड़ा प्रतिकूल नहीं होने दिया। इस समस्या के हल के लिए रूस पर दबाव डालने की दृष्टि से अमेरिका ने कहा कि यदि सब विदेशी सेनाएँ ईरान से हटें तो यह १ जनवरी १९४६ तक अपनी सेनाएँ वहाँ से हटा लेगा। ३ दिसम्बर को रूसियों द्वारा अमेरिका का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये जाने पर १६ जनवरी, १९४६ को ईरान में यह प्रश्न सुरक्षा परिषद में उठाया। रूस ने विरोध करते हुए कहा कि यह विषय संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। परिषद ने दोनों ही पक्षों की प्रत्यक्ष बातों द्वारा इस प्रश्न का समाधान करने को कहा। अगस्त में अगस्त १९४६ में रूस का तेहरान के साथ एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निर्णय किया गया कि १ मई, १९४६ तक रूसी सेना ईरान छोड़ कर दे और २१ प्रतिशत रूसी हिस्से वाली एक सोवियत ईरानी तेल कम्पनी स्थापित की जाय। समझौते के अनुसार मई में रूसी कौर्से ईरान से हट गई और जून में सम्पूर्ण आखर बादशान तेहरान के अधिकार में आ गया लेकिन इसके बाद ही ईरान की पार्लियामेंट (मजलिस) ने संयुक्त तेल कम्पनी स्थापित करने वाला समझौता अस्वीकार कर दिया।

ईरान, टर्की और यूनान की उपरांत बटनाओं से संयुक्त राज्य

धमरीका की सरकार को सोवियत संघ की मध्यपूर्व में प्रभुता बढ़ान की महत्वानासाधों के बारे में कोई संदिग्ध नहीं रहा। जब राष्ट्रपति ट्रुमैन ने यह निश्चय कर लिया कि मध्यपूर्वीय क्षेत्र में रुस को अधिकृत होने के लिए इन देशों की सहायता देने की नीति पर बसा जाए। यही नीति, उस समय के राष्ट्रपति ट्रुमैन के नाम पर 'ट्रुमैन सिद्धान्त' (Truman Doctrine)

✓ ✓ *Truman Doctrine*
or *Truman Doctrine*
or *Truman Doctrine*

ट्रुमैन सिद्धान्त

(Truman Doctrine)

मार्च, १९४७ को राष्ट्रपति ट्रुमैन ने अपने संसिमावर्षण की बैठक में बताया कि संयुक्त राष्ट्र से वह सिफारिश की है कि यूनान को २५ करोड़ डालर की सहायता देनी चाहिए। १२ मार्च, १९४७ को संयुक्त राष्ट्र के सचिवों की संयुक्त बैठक में अपने ऐतिहासिक भाषण में राष्ट्रपति ट्रुमैन ने घोषित की कि साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिए यूनान और टर्की की धार्मिक सहायता स्वीकार की जाए। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र में यह घोषणा की कि स्वतंत्र देशों की बाह्य प्रभाव से रक्षा करना संयुक्त राष्ट्र की नीति होनी चाहिए। यही ट्रुमैन की इस ऐतिहासिक भाषण की, जिसमें 'ट्रुमैन सिद्धान्त' की व्याख्या निहित है, मुख्य बातें इस प्रकार की—

“यूनानी राज्य की सत्ता संकट में है। इसका कारण कम्युनिस्टों ने सरकार को चुनौती देने वाले कई हजार सशस्त्र व्यक्तियों के घातककारी कार्य हैं। यूनानी सरकार इस स्थिति का सामना करने में असमर्थ है। उसको सहायता की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र धमरीका को उसे सहायता देनी चाहिए। टर्की की भी यही स्थिति है। धमरीका में दुनिया के कई देशों में सर्वाधिकारवादी शासन बहानों की जनता की इच्छा के विरुद्ध स्थापित कर दिये गये हैं। संयुक्त राष्ट्र धमरीका ने याहटा समझौते को भंग करते हुए पोलैण्ड रमानिया बल्गेरिया में धमकी और दबाव से स्थापित शासनों के विरुद्ध प्रतिबाध किया है।

मेरा विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र धमरीका की यह नीति होनी चाहिए कि वह बाह्य दबाव से या सशस्त्र अल्पसंख्या द्वारा स्थापित किये जाने वाले शासनों का प्रतिरोध करने वाली स्वतंत्र जनताओं का समर्थन करे। मेरा विश्वास है कि हमें स्वतंत्र जनताओं को अपने तरीके से अपना भाग्य निर्माण करने में सहायता देनी चाहिए। मेरा विश्वास है कि हमारी सहायता प्रदानत धार्मिक और वित्तीय सहायता के द्वारा होनी चाहिए, जो कि धार्मिक स्थापित और गुप्तस्थित राजनीतिक प्रतिस्पर्धाओं के लिए धनियत है। यदि यूनान समस्त अल्पसंख्या के हाथ में आ जाता है तो इसका राजनीतिक और भौतिक प्रभाव इसके पड़ोसी पर पड़ेगा। समस्त मध्य पूर्व में गड़बड़ और अल्पसंख्या का शासन हो जायगा। इसका प्रभाव यूरोप में राजनीतिक और भौतिक प्रभाव पड़ेगा। स्वतंत्र संस्थाओं का निरुपेय और स्थापितता का अतिकरण न केवल उनके लिए बल्कि समस्त विश्व के लिए बाधक होगा।

सर्वाधिकारकारी शासनों के बीच कुछ घोर दखिना में पनपते हैं। उनका विकास और वृद्धि निर्बलता तथा संयम में होता है। जब जनता में उत्कृष्ट जीवन के लिए प्रयास हो जाती है तो इसका पूर्ण विकास होता है। हमें यह प्रयास करना चाहिए।

जनता की स्वतन्त्र जनता अपनी स्वाधीनता बनाये रखने के लिए हमारी घोर निहार रही है। यदि हमने नेतृत्व में कुछ भी तो समस्त विश्व की धारि संकट में पड़ जायगी। हम अपने राष्ट्र के अस्वास्थ्य को संकटपूर्ण बना देंगे। समय तथा परिस्थिति के परिवर्तन के कारण हमारे अन्दर बड़ा भारी उत्तरदायित्व भा गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि काँग्रेस उन समस्त उत्तरदायित्वों को पूर्ण रूप से निभायेगी।^{११}

1 "The United States has received from the Greek Government an urgent appeal for financial and economic assistance. Preliminary reports from the American Economic Mission now in Greece and reports from the American Ambassador in Greece corroborates the statement of the Greek Government that assistance is imperative if Greece is to survive as a free nation. . . . The very existence of the Greek state is today threatened by the terrorist activities of several thousand armed men led by the communists, who defy the Government's authority. . . . A Commission appointed by the United Nations Security Council is at present investigating disturbed conditions in northern Greece and alleged border violations along the frontier between Greece on the one hand and Albania, Bulgaria and Yugoslavia on the other. Meanwhile the Greek Government is unable to cope with the situation. The Greek army is small and poorly equipped. It needs supplies and equipment if it is to restore authority to the Government throughout Greek territory. Greece must have assistance if it is to become a self-supporting and self-respecting democracy. The United States must supply that assistance. . . .

Since the war Turkey has sought additional financial assistance from Great Britain and the United States for the purpose of effecting that modernisation necessary for the maintenance of its national integrity. That integrity is essential to the preservation of order in the Middle East. . . . As in the case of Greece, if Turkey is to have the assistance it needs, the United States must supply it. . . . We shall not realise our objectives unless we are willing to help free peoples to maintain their free institutions and their national integrity against aggressive movements that seek to impose upon them by totalitarian regimes.

The peoples of a number of countries of the world have

मई के प्रारम्भ में अमेरिकन कांग्रेस ने यूनान और टर्की को ४० करोड़ डॉलर की सहायता देने का राष्ट्रपति ट्रूमैन का विम स्वीकार कर लिया और इस पर २२ मई, १९४८ को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए।

'ट्रूमैन सिद्धान्त' के अन्तर्गत प्राप्त विपुल सहायता के बस पर १९५० के अन्त तक यूनान और टर्की ने साम्यवादी दबाव से सफलतापूर्वक मुक्ति प्राप्त कर ली। वास्तव में ट्रूमैन सिद्धान्त ने अमेरिकन वैदेशिक नीति के इतिहास में असाधारण महत्व के नीति-संगम की स्थापना की। बिन दृष्टियों अथवा कारणों से इसका इतना महत्व है वे सक्षिप में निम्नलिखित हैं—

(१) यह अमेरिकन विदेश नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन और अमेरिकन परम्पराओं में मौलिक स्थिति का प्रणेत था। इस सिद्धान्त के मान्य होने के समय से ही विश्व को यह ज्ञात हो गया कि संयुक्त राज्य अमेरिका अब पृथक्तावादी नीति का परित्याग करके संपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय अजय की समस्याओं के सम्बन्ध में सक्रिय बन जा रहे हैं। ट्रूमैन के शब्दों में— यह

recently had totalitarian regimes forced upon them against their will — I believe that it must be the policy of the United States to support free peoples who are resisting attempted subjugation by armed minorities or by outside pressures. I believe that our help should be primarily through economic and financial aid which is essential to economic stability and orderly political processes.

"If Greece should fall under the control of an armed minority the effect upon its neighbour Turkey would be immediate and serious. Confusion and disorder might well spread throughout the entire Middle East. It would be unspeakable tragedy if these countries which have struggled so long against overwhelming odds, should be their victory for which they sacrificed so much. Should we fail to aid Greece and Turkey in this fateful hour the effect will be far reaching to the West as well as to the East.

"The seeds of totalitarian regimes are nurtured by misery and want. They spread and grow in evil soil of poverty and strife. They reach their full growth when the hope of a people for a better life has died. We must keep hope alive."

"The free peoples of the world look to us for support in maintaining their freedoms. If we falter in our leadership we may endanger the peace of the world and we shall surely endanger the welfare of our nation. Great responsibilities have been placed upon us by the swift movements of events. I am confident that the Congress will face these responsibilities squarely."

अमेरिका की विदेश नीति में नया मोड़ था। इसने यह घोषणा की कि जहाँ कहीं शांति भंग करके बाला प्रत्यक्ष या परोक्ष आक्रमणकारक काम होना वहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका भी सुरक्षा संकट में होगी और वह इसे रोकने का पूरा प्रयत्न करेगा। जहाँ पहले अमेरिका की नीति यूरोपियन संघर्षों से महासंभव घुसक खड़े की थी वहाँ इस सिद्धान्त में निश्चित रूप से उसका कार्य क्षेत्र अमेरिकन बोमार्ड से बढ़ाकर विश्व-व्यापी कर दिया।

(ii) यद्यपि ट्रूमैन के मापण में इस के नाम का जहाँ उल्लेख नहीं किया गया था और उन्होंने केवल 'सर्वाधिकारवादी' और 'स्वतन्त्रता का प्रपहरण करने वाला राज्य' आदि शब्द ही कहे थे परन्तु उनके ये शब्द निःसंशय रूप में इस को एक स्पष्ट 'बेला'पनी की उसके साथ हीत मुद्द की घोषणा की और क्वर्बैस्ट की मास्को के साथ सहयोग करने वाली नीति का परिष्कार था।

(iii) ट्रूमैन सिद्धान्त 'प्रबरोब' की नीति के विकास का प्रथम और सर्वाधिकार महत्वपूर्ण चरण था। यह इस विश्वास पर आधारित था कि 'प्रबरोब' की नीति के फलस्वरूप प्रथम में सोवियत शक्ति विघटित हो जायगी।¹ यह सोवियत इस को स्पष्ट संकेत था कि उसकी अपने प्रभाव का विस्तार करने की महत्वाकांक्षाओं को सहन नहीं किया जायगा।

(iv) ट्रूमैन सिद्धान्त से अमेरिकी की यह धारणा पुष्ट हो गई कि विश्व की विचारधारा का मार्ग म फिन्क है—एक तो स्वतन्त्रता का प्रपहरण करने वाले राष्ट्रों की विचारधारा और दूसरी 'उसकी रक्षा करने वाली विचारधारा'। ट्रूमैन के अनुसार इन पहली विचारधारा का प्रवर्तक था जबकि अमेरिका दूसरी का।

(v) यह सिद्धांत 'मुनरो सिद्धांत' का बृहत् और विश्व-व्यापी रूप था। मुनरो सिद्धांत में बालिगटन ने घोषणा की थी कि पश्चिमी योसाई के किसी राज्य में अमेरिका से बाहर की कोई शक्ति हस्तक्षेप न करे। इसी नीति को व्यापक बनाते हुए 'ट्रूमैन सिद्धांत' में कहा गया था कि अमेरिका द्वारा पूर्वी और पश्चिमी योसाई में स्वतन्त्रता की आकांक्षी बनता को उसके स्वाधीनता संघर्ष में सहायता भी जायगी।

माइकेल डोनेलस के शब्दों में 'ट्रूमैन सिद्धांत' निश्चय ही सम्पूर्ण स्वतन्त्र विश्व के लिए मुनरो सिद्धांत है। अपने पुराने सिद्धांत का नवीन परिष्कारियों के साथ आवश्यक रूप से समायोजित कर दिया तथा पश्चिमी योसाई की सीमाओं का स्वतन्त्र विश्व की सीमाओं तक विस्तार कर दिया।²

1. Schuman International Politics, Page 613

2. "... The Truman Doctrine was indeed a Monroe Doctrine for the entire free world. The Truman Doctrine made the necessary adjustment of the old doctrine to new conditions, the necessary extension of the borders of the

(vi) 'ट्रूमैन सिद्धांत' इस तथ्य को स्पष्ट स्वीकृति भी कि ब्रिटेन अपनी आर्थिक दुर्बलता के कारण पूर्वी समुद्रमार्गों और मध्य-पूर्व में अपना प्रभाव बनाए रखने में असमर्थ है परंतु ऐसी स्थिति में उत्पन्न हुए 'रुद्धिबन्ध' का साम्यवादी रूप द्वारा लाभ उठाए जाने से पूर्व अमेरिका द्वारा लाभ उठा लिया जाना चाहिए। सरत ढंगों में ट्रूमैन सिद्धांत ने यह स्पष्ट कर दिया कि मध्यपूर्व में ब्रिटिश प्रभाव को द्वितीय महायुद्ध ने समाप्त कर दिया है परंतु उसकी जगह साम्यवाद के देने से पहले ही अमेरिका वहां जम जाना चाहता है।

(vii) टर्की और यूनान को 'स्वतंत्रता की रक्षा' के नाम पर सहायता देना अमेरिकन वास्तविक उद्देश्यों को मनमोहक ढंगों के ढाल में छिपाना था। उस समय यूनान प्रथम टर्की में ऐसा कोई सच्चा लोकतन्त्र या स्वातन्त्र्य वातावरण न था जिसकी रक्षा के लिए ट्रूमैन उन्हें सहायता देता। ट्रूमैन सिद्धांत का मूल उद्देश्य था यूनान एवं टर्की को वास्तविक प्रायद्वीप में कभी अधिकार का राकने के लिए और साथ ही कम को बरने के लिए, महारण्य सैनिक शक्ति के रूप में सुरक्षित रखना तथा मध्य पूर्व के विशाल तेल भंडार को अपने अधिकार में बनाए रखना था। राष्ट्रपति ट्रूमैन इस सिद्धांत को जाह में स्वतंत्रता या लोकतन्त्र की रक्षा नहीं बल्कि तेल की रक्षा करना चाहते थे। उसी के शब्दों में— "यदि रुसियों का ईराक के तेल पर अधिकार हो गया तो विश्व में इसका संतुलन बहुत बिगड़ जायगा और पश्चिमी जगत की प्रथम व्यवस्था से इसको भारी क्षति पहुंचेगी।"

(viii) ट्रूमैन सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस सिद्धांत का प्रतिपादन कम के प्रति अपने मन-मुटाब बूणा बेमनस्य धमिक्वास आदि के परिणामस्वरूप ही किया गया था। कम के प्रति इस प्रकार का तीव्र विद्रोह कुछ कारणों का परिणाम था। उदाहरणार्थ—यूजीआर को समूल उखाड़ फेंकने का कभी संकल्प कम की तानाशाही व्यवस्था कम द्वारा पैदा किया गया राजनीतिक घातक कमिश्नर स्वतंत्रतापक्षों का प्रचरण कम द्वारा अमेरिकन शक्तों की सहायता से इनकार कोमिश्नर की प्रतिनिधिमता और कार्य, पोर्षण के प्रति कम का व्यवहार आदि। ट्रूमैन सिद्धांत कम के प्रति अमेरिकन बेमनस्य की स्पष्ट परिभाषित थी।

ट्रूमैन सिद्धांत को वही इतना असाधारण महत्व मिला है वहां अनेक दिशाओं से इसे कटु धारोपनाओं का सामना भी करना पड़ा—

प्रथम साम्यवादियों ने अमेरिका की आर्थिक और सामरिक सहायता देने की नीति को साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का एक नवीन रूप बताया।

Western Hemisphere to the borders of the free world.

—Michael Donslan, The Ideas of American Foreign Policy p 749

मोकियत संघ ने धाराप सपाया कि अमेरिका मध्य-पूर्व के पस्य विकसित
 देशों की प्राथिक कठिनाइयों का अपने स्वार्थ के लिए साम उठाता है,
 "सह-यता के नाम पर इन देशों के साथ ऐसे समझौते होते हैं जिनसे
 अमेरिकन सर्वभ्यवस्था इन पर हावी हो जाती है। वह इन देशों के कच्चे
 मास पर अधिकार कर लेता है, वैनिक पद्धि और सामरिक महत्व के मामलों
 को अपने काबू में कर लेता है।

दूसरे, इस सिद्धान्त का सर्वाधिकारवाह के बिना लोकतन्त्र का रखक
 कहना विश्व को भ्रम में डालना है क्योंकि यूनान फरवा टर्की को इस
 सिद्धांत की धाड़ में बन् सह-यता की गयी तो दोनों में से एक का ही शासन
 लोकतांत्रिक नहीं था। इस सिद्धांत का उद्देश्य ही पश्चिमी और मध्य एशिया
 के ठेस मन्धारों को कच्ची प्रभाव से बचाना था।

तीसरे, इस सिद्धान्त से संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थिति दुबल हो गई
 क्योंकि यूनान और टर्की को संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से नहीं बरद बुझक
 रूप से सहायता प्रदान की गयी।
 चौथे स्वयं अमेरिकनों की दृष्टि में द्रव्य सिद्धांत मुनरो सिद्धान्त का
 ही विकसित रूप है।

युद्धोपरान्त की प्रारम्भिक नीतिया में महत्वपूर्ण परिवर्तना क फलस्वरु
 जब यह नीति-यांति स्पष्ट हो गया कि अमेरिकन विदेश नीति का नीति
 उद्देश्य साम्यवाद और सोवियत प्रसार का रोकना बन गया। इस उद्देश्य के
 प्राप्ति के लिए उसने अपनी विदेश नीति में तीन तत्वों को स्थान दिया—
 प्रथम प्राथिक द्वितीय राजनीतिक एव तृतीय सैनिक। धारित तत्व में
 प्राथिक सहायता और प्राथिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम अपनाये गये राज
 नीतिक नीति का सम्पादित करने के लिए पश्चिमी यूरोपियन संघ की स्थापना
 की बिना में धाय बढ़ा गया और सैनिक नीति के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्रों की
 स्थापना पर बल दिया जाने लगा।

mp show note of full question मार्शल योजना
 (Marshall Plan)

मार्शल योजना की नीति (Policy of Containment) का दूसरा नाम
 मार्शल योजना युद्ध-विघ्नस्त यूरोप का पुनरोद्धार करके उसे
 साम्यवाद से बचाने की थी। यह इतने विश्वास पर आधारित थी कि यदि
 यूरोप द्वितीय महायुद्ध के कारण पैदा हो गयी अस्त-व्यस्त अर्थशा में ही रहा
 और अपनी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण नहीं कर सका तो वह साम्यवादी
 प्रभाव से आ जायगा। उसे भी अमेरिका द्वारा यूरोप को सहायता देने की
 वाय फौद सर्वथा नहीं थी। द्वितीय महायुद्ध काल में वह उपार युद्ध-
 कार्यक्रम (Lend Lease Programme) के अन्तर्गत तथा १९४५ में इस
 कार्यक्रम की समाप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्र महासभा और पुनर्वास प्रशासन
 (UNRRA) के माध्यम से यूरोप को प्राथिक सहायता देना रहा था।
 १९४७ में चीनयुद्ध प्रारम्भ हो जाने पर अमेरिका और ब्रिटेन ने संयुक्त राष्ट्र

सहायता व पुनर्वास प्रशासन' की मुख्य पतिविधियों में इसलिये भाग लेना बन्द कर दिया क्योंकि उन्हें यह कदापि पसन्द न था कि उनके भाग में पूर्वी यूरोप के साम्यवादी समर्थक शासकों को भी सहयोग प्राप्त हो। यह उन्हेमि किसी दूसरे ही माध्यम से यूरोपीय प्रायिक पुनर्निर्माण में सहायता देने का निश्चय किया और इसका माध्यम 'मार्शल योजना' बनी।

अमेरिका के विदेश मंत्री मार्शल ने मास्को के शांति सम्मेलनों में देखा कि वही हर बात में झड़नेवाला करके शांति संधियाँ करने में विलम्ब कर रहे हैं उसने स्टालिन को यह कहना हुए सुना, 'समय हमारे पक्ष में है, वह समझौता करा देगा।' मार्शल को ज्ञात ही समझ में था कि किसियों के संधि के बाद मर भगाने का परिणाम यूरोप में अस्थिरता द्वारा साम्यवाद की स्थापना हो जायगी है ताकि फिर समझौता करने में कठिनाई न हो। अतः २६ अप्रैल १९४७ को ब्रांसिंगटन सत्र के पर मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि यदि इस समय अखिलम्ब यूरोप के प्रायिक पुनरुद्धार के प्रयास न किया जाये तो यह साम्यवादी हो जायगा। अपने सहकारियों व साथ परामर्शी करने के उपरान्त राष्ट्रपति ट्रूमैन ने भी इस प्रकार की सहायता देने का निश्चय कर लिया।

और तब १ जून १९४७ को विदेश मंत्री मार्शल ने हार्वर्ड विश्व-विद्यालय में अपने सुप्रसिद्ध भाषण में कहा—

"हमारी नीति किसी देश या सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। यह कुछ बरिष्ठता निराशा और अर्थव्यवस्था के विरुद्ध है। इसका उद्देश्य विश्व में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धान करना है जिसमें स्वतन्त्र संस्थाओं को विकसित करने वाली राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकें। यह स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार द्वारा यूरोप को सहायता दिये जाने से पहले यह धारण्यक है कि यूरोपियन देशों की इस सहायता की आवश्यकताओं के विषय में समझौता हो जाये। इस सरकार के लिए न तो यह अच्छा होगा और न प्रभावशाली होगा कि यूरोप का अपने पैरों पर खड़ा करने वाले प्रायिक कार्यक्रम का निर्माण करे। यह यूरोपियनों का कार्य है। इसकी पहल यूरोप से होनी चाहिए। हमारा कार्य सहायता देना है।"

यह उन्हेसुखनोव है कि मार्शल ने अपने भाषण में साम्यवादी और गैरसाम्यवादी देशों में कोई भेद नहीं किया बल्कि प्रबल रूप में यही कहा कि उमरुं देश की नीति किसी देश धरणा सिद्धान्त विशेष से मड़न की नहीं बल्कि धून नियतता साधनहीनता और अर्थव्यवस्था का सामना करने की है। परिणाम स्वरूप सोवियत मण को भी पुनर्निर्माण के इस कार्यक्रम में हिस्सा लेना। लिए धामनित किया गया परन्तु मार्शल ने इस प्रस्ताव को अमेरिकन साम्राज्य का एक नया हत्य बन्ना कर ठकरा दिया। सोवियत संघ के प्रभाव में जितन अन्य राज्य से उन्हेने भी केर्मान के निश्चय का अनुकरण किया। पोर्सब और थैडोस्सोवाकिया जहाँ साम्यवादी शक्त उस समय तक पूरी

संयुक्त राष्ट्रों में स्थापित नहीं हो पायी थी, इस योजना में भाग लेना चाहते थे परन्तु कभी दबारा के कारण अन्त में उन्होंने भी इस योजना को पसन्दीकार कर दिया।

साम्यवादी और उनके प्रभाव से घनिष्ठ देशों के सबसे विपरीत पश्चिमी देशों के राष्ट्रों ने मार्शल योजना का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। ब्रिटेन और फ्रांस की पहल पर जुलाई १९४७ में पेरिस में १ यूरोपियन देशों (इंग्लैण्ड, फ्रांस, ब्रासिलिया, बेल्जियम, डेनमार्क, ग्रीस, आइसलैण्ड, इटली, लक्जमबर्ग, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, पुर्तगाल, नीदरलैण्ड और टर्की) के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें एक यूरोपियन आर्थिक सहयोग समिति (Committee of European Economic Co-operation) की स्थापना की गयी और यूरोपियन पुनरुद्धार का चार वर्षीय सहयोगात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया।

यूरोपियन आर्थिक सहयोग समिति ने संयुक्त राज्य अमेरिका को एक रिपोर्ट प्रेषित की जिसमें कहा गया कि अमेरिका यदि १९ बिलियन डॉलर का राशि खर्च करने को तैयार हो तो सन् १९५१ तक एक सामर्थ्यपूर्ण यूरोपियन अर्थव्यवस्था (Economy) की प्राप्ति की जा सकती है। यह रिपोर्ट 'मार्शल योजना' के नाम से प्रसिद्ध हुई। दिसम्बर १९४७ में राष्ट्रपति ट्रुमैन ने 'मार्शल योजना' से सम्बन्धित अर्थ का अनुमान कार्यसूची के समक्ष प्रस्तुत किया जिसमें कहा चार वर्ष की अवधि के लिए १७ अरब डॉलर और १३ महीनों के लिए ६ अरब ८० करोड़ डॉलर के खर्च का अनुमान लगाया गया। इस प्रस्ताव के उद्देश्य (Motivo) की व्याख्या करते हुए ट्रुमैन ने कहा— 'मेरा प्रस्ताव यह है कि अमेरिका उन १९ देशों को जो अभी भी अर्थ-स्वतंत्रता, संस्थाओं की सुदृष्टता एवं राष्ट्रों के बीच स्थायी शांति के लिए कुछ संघर्ष हैं, उनके वृत्तव्यव्यय-कार्यों में सहायता देकर दिव्य शांति एवं अपनी सुरक्षा में योगदान करें।'

'मार्शल योजना' को, जो प्रथम बार में यूरोपियन रिपीक प्रोग्राम (European Relief Programme) कहा जा रहा था, कार्यसूची में प्राप्त कर दिया। १ अप्रैल १९४८ को कार्यसूची में विशेषी स्थापना 'यूरोपियन आर्थिक सहयोग समिति' की स्थापना की गयी। इस योजना के अन्तर्गत 'यूरोपियन आर्थिक सहयोग संयुक्त' (Organization for European Economic Co-operation) की स्थापना की गयी।

मार्शल योजना "साम्यवादी कूटनीतिक विद्रोह की सर्वाधिक निम्नतर और पुनः प्रवर्तक घटनाओं में से एक थी" जिसमें कम और पश्चिम का विरोध पहले भी योजना और भी अधिक उग्र हुआ। इस योजना के अन्तर्गत चार वर्षों (१९४७-१९५१) में अमेरिका ने यूरोप को लगभग १९ बिलियन डॉलर की सहायता दी। इस योजना के अन्तर्गत चार और तीसरी यूरोप आर्थिक पुनरुद्धार की स्थापना में बच गया तथा

दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका पाश्चात्य जगत का सर्वमान्य नेता बन गया। अमेरिका ने बुरापियत देशों को धार्मिक सहायता देने हुए यह शर्त लगायी कि वे अपनी सरकारों में साम्यवादी तत्वों का सम्मूहण करेंगे। १९४६-४७ तक फ्रेंच शासन में साम्यवाद ने परन्तु १९४६ में जब ज्युम फ्रांस के लिए प्रमाण उपलब्ध करने हेतु बर्ज़िगटन गया तो उस पर यह एकाग्रता जासा गया कि इसे पान के लिए फ्रेंच सरकार से साम्यवादियों का निकाला जाना आवश्यक है। इसी प्रकार इटली में मार्शल सहायता पाने वाली सरकार को मंत्रिमण्डल से साम्यवादियों को निकालना पड़ा।

मार्शल योजना एक प्रकार से ट्रूमैन सिद्धान्त का ही विकसित रूप थी जिसने ट्रूमैन सिद्धान्त में प्रतिपादित 'अबरोध की नीति' को तीन प्रकार से आगे बढ़ाया—

(i) जहाँ ट्रूमैन सिद्धान्त में अज्ञान-अज्ञान राज्यों को सहायता देने की व्यवस्था की गयी थी, वहाँ मार्शल योजना में यूरोप को समग्र रूप में सहायता देने की व्यवस्था की गयी।

(ii) मार्शल योजना ने 'अबरोध की नीति' में धार्मिक तत्वों के महत्त्व को अभी प्रकार स्पष्ट कर दिया।

(iii) इसके द्वारा पहली बार अमेरिकन धार्मिक सहायता को एक महयोधी एवं योजनाबद्ध रूप दिया गया।

मार्शल योजना की भी काफी प्रशंसा और आलोचना की गयी। जहाँ प्रोफेसर एडवर्ड मीड ईर्ले (Edward Mead Earle) के अनुसार यह राज-कार्य पद्धति के एक मूलभूत एगो-अमेरिकन सिद्धान्त-प्रबुद्ध स्वार्थ-का एक अमलकारिक उदाहरण था वहाँ साम्यवादी रूप में इसे एक विद्युत् साम्यवाद विरोधी योजना के रूप में ग्रहण करते हुए इसका प्रत्युत्तर सितम्बर १९४७ में 'कॉमिन्फोर्म' की स्थापना के रूप में दिया। बी सी स्मिथ ने ठीक ही कहा है कि—“इसका उद्देश्य राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा पहले ही घोषित अबरोध नीति के अनुसार अमेरिकन पत्र प्रकाशन में एशियन यूरोप की अर्थ व्यवस्थाओं को सुदृढ़ करना था और पुनरुत्थान के अन्त का प्रतीक कहा जा सकता है इसने संपुञ्ज राज्य को यूरोप में अन्तर्बद्ध कर दिया।”

यह उल्लेखनीय है कि धार्मिक स्तर पर साम्यवाद के अबरोध की नीति के अनुसार अमेरिका ने जर्मन धर्मव्यवस्था की भी पुनर्गठित करने का प्रयास किया। जून, १९४८ में पश्चिमी लक्ष्मों डाटा जर्मनी के अपने क्षेत्रों में उन्होंने कुछ मुझ सम्बन्धी सुधार किये त्रिमते विरोध में इस द्वारा अन्तिम की 'अन्तर्गत मार्केटरी' की गयी तो अन्तः प्रसटन तिष्ठ हुई। पश्चिमी-शक्ति के मीट्रिक सुधारों और अन्तिम संकट पर उतकी दाता में अन्तः

जनता को यह विश्वास दिला दिया कि पश्चिमी शक्तियाँ उनके हितों की रक्षा करने के लिए उत्सुक और समर्थ हैं।

चार-सूत्री कार्यक्रम

[Four Point Programme]

मार्शल योजना का उद्देश्य केवल यूरोप की प्राथमिक अर्थ-व्यवस्था को पुनः बूझ करना था लेकिन चीन में साम्यवादियों की महान् विजय ने इस बात का भय पैदा कर दिया कि उपनिवेशों या नवजात राष्ट्रों में बसने वाली प्राथमिक जनता चीन का अनुकरण करके पश्चिमी लोकतंत्र की प्रेरणा कहीं साम्यवादी व्यवस्था को ही पसन्द न कर से। अमेरिकन और अन्य पश्चिमी राजमैता इस बात से चिन्तित हो गये कि विश्व के अन्य विकसित देश साम्यवादी प्रसार के लिए उत्तम क्षेत्र सिद्ध हो सकते हैं। यह राष्ट्रपति ट्रुमैन ने ऐसे प्रदेशों में साम्यवादी प्रसार के अवरोध के लिए, अमेरिकन विदेश नीति की 'चार सूत्री कार्यक्रम' (Four Point Programme) की घोषणा करते हुए २ जनवरी १९४९ को कहा कि—

“आगामी वर्षों में शांति और स्वतंत्रता के कार्यक्रम में चार प्रधान बातों पर बल दिया जायेगा—

- (i) संयुक्त राष्ट्र सभ का पूर्ण समर्थन
- (ii) विश्व के प्राथमिक पुनर्गठन के कार्य का कठोर रहना
- (iii) आक्रमण के विरुद्ध स्वतंत्रता प्रथी राष्ट्रों को सुदृढ़ बनाना एवं
- (iv) प्राथमिक विकसित देशों के उत्पादन के लिए प्राथमिक (Technical) सहायता देना।

कान्ग्रेस ने १९४० के 'अन्तर्राष्ट्रीय विकास अधिनियम' (Act for International Development) के द्वारा इस कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। रिचर्ड स्टेबिन्स (Richard P. Stobbins) के शब्दों में यह कानून अमेरिकी विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था।¹ इस योजना द्वारा प्रथम बार तकनीकी सहायता प्रदान करने की आवश्यकता धीरे-धीरे बुझे गया क्योंकि धर्म विकसित देशों की आवश्यकताएँ बहुत प्राथमिक थी तथा अमेरिका के राष्ट्रीय हित की दृष्टि से द्वारा सामना होती थी। आसोषकों द्वारा चार सूत्री कार्यक्रम को मीलपथ का ही एक प्रसंग माना गया और कहा गया कि यह धर्म-विकसित देशों का समर्थन प्राप्त करने तथा उनमें आवश्यक राष्ट्रनीति का सामान प्राप्त करने का एक तरीका है न कि धर्म विकसित देशों का प्राथमिक सहायता प्रदान कर देने का।² परन्तु इन देशों पर चढ़े होने तथा अन्य स्वतन्त्र देशों के साथ अपना समान सम्बन्ध बनाने की मुविधा देने का प्रयत्न।

1 The act was "a significant milestone in the evolution of American world policy

—Richard P. Stobbins The U S in World Affairs, 1950 p 96.

नाटो घबरोब की ररु-बिधि

(NATO : The Strategy of Containment)

राजनीतिक तथा धाधिक स्तर के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका ने सैनिक स्तर पर भी साम्यवादी प्रसार के घबरोब का प्रयत्न किया । उसने दूसरे देशों के साथ सैनिक संधियों और पारस्परिक प्रतिरक्षा सहायता कार्यक्रम (Mutual Defence Assistance Programme) का तरीका प्रारम्भ किया जो अमेरिकन बिदेस नीति का एक महीन प्रयोग था । बिसे इस दिशा में प्रथम पम १७ मार्च १९४८ की ब्रुसेल्स संधि की बिसके द्वारा ब्रिटेन फ्रान्स बेल्जियम नीदरलैंड्स और लक्जमबर्ग ने यूरोप में सशस्त्र घातमज होने की बिधा में पारस्पर सहायता देने का बचन किया । किन्तु यह संधि बस्तु स्थिति की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा की बचनबद्ध सशस्त्र सहायता के घभाव में कुछ भी प्रभावशाली नहीं थी । घट- सैनिक घबरोब की ब्यवस्था को बिबेध प्रभावशाली बनाने के बिधे अमेरिका द्वारा नाटो का घायोजन किया गया और ४ घप्रस १९४९ को यह प्रथम सैनिक संधि संयुक्त राज्य कनाडा इटली घाइटसर्बेण्ड नार्वे डेनमार्क और पुर्तगास के बीच हो गई । यह उत्तरी घटलानिक संधि अनेक तरह से एक नवाचार (Innovation) थी । यह प्रथम संधि थी बिसके प्रति अमेरिका ने स्वयं को बचनबद्ध किया । इसी के साथ यूरोपियन देशों की ररुशक्ति बढाने के बिधे पारस्परिक प्रतिरक्षा कार्यक्रम भी घपनाया गया ।

संयुक्त राज्य अमेरिका को तेजी से सैनिक संधियों के माग पर घाने बढाने के बिधे उत्तरवादी एक घोर महत्वपूर्ण बटना यह थी कि सोवियत रूस ने १९४९ में ही एटम बम (Atom Bomb) के ररुस्यों को खोज निकाला था बिगैरे कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने सोवियत रूस से सर्वथा गुप्त रखा था । रूस की इस खोज से घरुबम पर संयुक्त राज्य अमेरिका का अरुजकनि पर एकाधिकार (Monopoly) का घन्त हो पया और उसकी सर्वोच्च शक्ति को बतरा पैदा हो गया । इस बटना के परिणामस्वरूप अमेरिका के बिधे साम्यवाद का घातक बढ गया । इसबिधे संयुक्त राज्य अमेरिका ने कोरिया (Korea) में साम्यवाद के बिरुद्ध सैनिक कार्यवाही का भी नेतृत्व किया ।

(३) सुले संघर्ष का काल (जून १९५० से जुलाई १९५३)

बास्तब में साम्यवाद का बतरा र्यों-र्यों बढता था रद्दा था अमेरिकन प्रतिबिधा उसी के अनुरूप हो रही थी और इसी प्रतिबिधा का एक स्वरूप यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका महत्वपूर्ण सैनिक संधियों के प्रतिरक्षा संगठनों की स्थापना की बिधा में जुटा । जून १९५० में बशिाणी कोरिया पर उत्तरी कोरिया का घातमज हो जाने से बिसमें संयुक्त राष्ट्र मज के घन्तगत अमेरिकन सेनाओं के लयमज पूर्ण युद्ध किया अमेरिकन बिदेस नीति में सैनिक शक्ति का महत्व द्विगुणित हा गया । शिलकर (Schleicher) महोरय के शर्यों में "अमेरिकी सैनिक शक्ति बिधे बिबिधाग निगुने में भी

जात में बहु नीति सफल न हो सकी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अमरीकी सैनिक नीति के मुख्यतः तीन निष्कर्ष निकलते हैं—

(i) आक्रमण कई प्रकार के होते हैं अथ उनका प्रतिरोध भी कई प्रकार से किया जाना चाहिये। सामरिक महत्त्व की बायु सेना की शक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सम्पदायुक्त सेनाओं में बहुत आवश्यक है।

(ii) अणु बस्तुओं के विकास में एक ऐसा समय या बायना जबकि 'थ्रेश' नहीं किन्तु 'पर्याप्त' अणुबस्तुओं की सुरक्षा के लिये उपयुक्त माना जायगा। परम्परागत सेना के प्रयोग एक प्रतिस्पर्धा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

(iii) अमेरिका को चाहिये कि साक्षिण्ड इस अथवा साम्यवादी चीन के साथी आक्रमणों को रोकने के लिए एक ऐसा सीध देनी चाहिए। किन्तु ऐसा करने से पहले काफी सोच-विचार सेना आवश्यक है। बिना साक्षियों के तथा बिना पर्याप्त साधन-विचार के लिये नये पर्याप्त और मनमाने बायवे जिनके पालन करने का कोई सम्मिलित इरादा नहीं है वगैरे ही अन्तर्गत है जैसे कि बायवों का विस्तार न करना। इस प्रकार की रक्षा सीधने पर बाहरी इन के आक्रमण को रोकना या सफल है किन्तु इन नीति का पालन करते हुए ऐसा न हो कि विश्व अमेरिका को सैन्यवादी अथवा आक्रमणकारी समझ बैठे। बाउल्ल के मतानुसार अमरीकी सैनिक नीति की प्रमुख आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं—

(i) सैनिकवादी हुए बिना सैनिक शक्ति में प्रबल होना।

(ii) विरोधक अथवा सामाजिक युद्ध की पूर्ण समाप्ति को अस्वीकार करना।

(iii) विभिन्न सैनिक आकस्मिक आवश्यकताओं के लिए व्यवस्था करना।

(iv) बिना उद्बुद्धता दिखाये सामरिक शक्तियों को प्राप्त करने में अथय मित्रों के साथ कार्य करना सीधता।

(v) अथकी लिये बिना राजनैतिक दृष्टि से व्यावहारिक रक्षा की अनिश्चय के लिये अथने बुद्ध निश्चय वा स्पष्ट करना।

वर्तमान विश्व या नीति के प्रायः से सैनिक शक्ति का उद्बोध प्रायः पूर्ण युद्ध के रूप में ही किया जा सकता है। जैसे प्रत्येक घटना पर निरायिक प्रभाव अन्तर्गत में यह अथसम्बन्ध रहती है। बाउल्ल के शब्दों में "बोर्ड की सैनिक अनिश्चय प्रणाली चाहे बहु शक्तिनी भी विशाल और अथसम्बन्धों न हो अथने ही शक्ति और अथसम्बन्धित प्रणति वा अथसम्बन्ध नहीं है सचठी जिसे अथसम्बन्ध को अथि युद्ध और अथने के दोहरे अथसम्बन्धों से उथ अथना है, तो अथसम्बन्ध प्राप्त करना चाहिये।" अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध वा अथना है कि "सैन्य शक्ति वा अथसम्बन्ध सैनिक अथसम्बन्धों का अथसम्बन्ध के लिये अथसम्बन्ध प्रदान करना है।" मिस्टर बाउल्ल की अथसम्बन्ध है कि "अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध की अथसम्बन्धिता का अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध किया है और अथसम्बन्ध तथा अथसम्बन्धों की अथसम्बन्ध का अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध है।" अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध है कि अथसम्बन्ध के अथसम्बन्ध अथसम्बन्ध

प्रतिरक्षा की अधिक महत्वपूर्ण अग्रिम पंक्तियों के पीछे और इस निम्ता से मुक्त कि मास्को क्या करता है और क्या नहीं हमें एक विश्व व्यापी कार्यक्रम तैयार करना चाहिये जो युव-प्राचीन वर्ग और युद्ध की समस्याओं का समाधान कर सके।

(क) आर्थिक सहायता के उपयोग एवं सीमाओं पर वाइल्स के विचार
 [Charter Bowles on the use and limitations of Economic Aid]

यदि हम विश्व से युद्ध को दूर करना चाहते हैं तो आर्थिक प्रगति की विश्व व्यापी माम पर यथोचित ध्यान देना पड़ेगा। वर्तमान विश्व में किसी देश की सरकार, चाहे वह जितनी ही ईमानदार प्रयत्न स्वतन्त्रता की पोषक हो तब तक काममें नहीं रह सकती जब तक कि वह जनता की यह विश्वास न दिसा दें कि वह उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ सुदृढ़ और अमलकार पूर्ण आर्थिक विकास भी प्रस्तुत कर सकती है। अठ विकसित देशों में अठ्ठमूकी विकास की मार्ग रैलागणित की प्रगति से घात बढ़ रही है जबकि इन मार्गों को पूरा करने की प्रगति अकुशलित के अनुसार रही है। आर्थिक विकास को तीव्र गति से अज्ञान के मार्ग में इन देशों के सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं जैसे यहाँ पूँजी सम्बन्धी समस्याओं का अभाव है। इन देशों की सरकारें उच्चस्तर बैठकों के सिधे संगठित मागों से डबी हुई हैं। भारत भर में मंहयान् मत्तें बढ़ाने की मांगें उच रूप में देनी या सकती हैं। ये अणु या अनुदान क रूप में भारी पैमाने पर बाहरी पूँजी प्राप्त नहीं कर सकते। इनके पान शोषण के सिधे उपमिबेध नहीं है। करों की मात्रा बढ़ा कर जनता क कर्मों पर भार बढ़ाने की भी एक सीमा है जो कि पर्याप्त नहीं है।

आर्थिक सहायता के कारण

मिस्टर वाइल्स का कहना है कि इन अठ विकसित देशों के विकास के सिधे अमेरिका द्वारा आर्थिक सहायता दिया जाना अनेक कारणों से आवश्यक है जैसे—

(i) इन देशों के लोगों में प्रगति की भावना द्वारा उत शक्ति एवं विश्वास का विकास करना जिसके द्वारा ये साम्यवाद के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा क सिधे बृह प्रतिज्ञ हो सकें।

(ii) औद्योगिक बुद्धि से कम विकसित देशों की 'प्रगति का भूमी' जनता नीध ही अनेक बैठकों के प्रसोमनों का अिचार बन जानी है।

(iii) अमार बड़ी उन्मुक्ततापूर्वक यह देख रहा है कि सोवियतशासनक भारत एक एक-अशासन कीन के बीच आर्थिक अग्रिपर्याम कीन कम समय में अविध आर्थिक विकास करेगा।

(iv) इस अवन हुए अिध में अमरिका समुद्रिज्ञानी बन कर तब तक नहीं रह सकता जब तक कि विश्व के अग्र्य देशों से भारी परीची एवं अरिहता न अिट जाय।

(v) छोट मुद्र के विभिन्न हो जाने व- प्राथमिक विकास के साम्यवादी एवं प्रजातन्त्रात्मक ढंग के बीच प्रतिस्पर्धा और भी अधिक बढ़ती हुई गई है।

(vi) विश्व के औद्योगिक उत्पादन का आधा अंश अमेरिका के पास है मत केवल वही इस स्थिति में है कि साम्यवादी वर्ग विभिन्न राष्ट्रों को सहायता प्रदान कर सके।

उक्त कारणों से प्राथमिक सहायता योजना का क्रियान्वयन आवश्यक बन जाता है। फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस सहायता के प्राचार पर किसी स्वतन्त्र राष्ट्र की निष्ठा को नहीं खरीदा जा सकता। यह भी आवश्यक नहीं कि एशिया अफ्रीका अथवा ब्रिटीश अमेरिका का कोई राष्ट्र अमेरिकन प्राथमिक सहयोग से प्रति हताशता प्रदर्शित करे। इसके प्रतिरिक्त जिन राष्ट्रों में साम्यवाद का प्रभाव नहीं है वहाँ भी अमेरिका को प्राथमिक विकास में सहयोग देना चाहिए ताकि साम्यवाद के प्राचीन हस्तक्षेप को दूर रखा जा सके। लोपो की भूख आवश्यकताओं को पूरा कर देना ही उनको साम्यवाद विरोधी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि एशियाई क्रांतियों का नेतृत्व प्रायः भूखे किसानों ने नहीं बरन हताश मध्यमवर्गीय बुद्धि शीवियों ने किया है। इन वर्गों का साम्यवादी विकास भी उतना ही जरूरी है जितना कि औद्योगिक विकास। उन राष्ट्र का कोई नहीं बना सकता जो स्वयं अपनी रक्षा के लिए हत-सकल्प नहीं है और इस प्रक्रिया में ठोस उत्सव करने के लिए तैयार नहीं है।

बर्लिन विधित्त देशों को प्राथमिक सहायता देने के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ भी आती हैं जैसे अमेरिका में विदेशी सहायता बजट बहुत भारी हो गया है। हमारे ज्यों ज्यों वर्ग विधित्त देश विकास के माग पर बढ़ते जायेंगे उनमें आत्म-विश्वास का प्रसार होता जाएगा तथा उनकी प्रतिक्रिया भी अमेरिका की प्राणा के विरुद्ध होती चली जायेगी। इन देशों की प्रतिक्रिया का स्वागत करने के लिए अमेरिका को काफी परिपक्व होना पड़ेगा। उसे यह समझना पड़ेगा कि यह बड़ी धूमधमा है जो उनकी बढ़ती हुई छस स्वदेशी शक्ति में उत्पन्न होती है जो उन्हें साम्यवाद के वा किमी भी धम्य बाहरी शक्ति के लिए चुनौत बनाने देती है। अमेरिका अन्य राष्ट्रों को अपना उत्पादन बचाना जितना सामान बना देगा उतना ही उस उद्यम वर्गों एवं समुदायों की उन्हें आवश्यकता पड़ेगी। इसके प्रतिरिक्त उनका जीवन स्तर जितना ऊँचा उठेगा उतनी ही प्राथमिक शीवों के अमेरिकन उत्पादनों से उनकी मांग बढ़ेगी। मिस्टर जोन्स का मुझप है कि अमेरिकन सरकार को उन अमेरिकन वर्गों को सभी व्यावहारिक प्रोत्साहन प्रदान करने चाहिए जो समुद्र पार पुरुषों बनाने के लिए तैयार हैं। विशेष कर एशिया अफ्रीका अमेरिका और अफ्रीका के जहाँ कि पुरुषों की बहुत आवश्यकता है, वह नीति अपनाई जानी चाहिए।

(४) लबीन बुद्धि का कास (जुलाई १९५३ से जनवरी १९६१ तक)

जनवरी १९५३ में २४ वर्षों में प्रथम बार एक रिपब्लिकन राष्ट्रपति

के रूप में अमरस याइजन होवर ने ब्याइट हाउस में प्रवेश किया। उन्होंने घण्टा निर्वाचन कमियात में कोरिया युद्ध को समाप्त करने का बचन दिया था और जुलाई १९५३ में कोरिया युद्ध समाप्त हो गया। इसके पुरु ही मार्च १९५३ में रूस के कठोर और लीह पुरुष स्टालिन की मृत्यु हो चुकी थी। १९५२ के वर्ष की इन सब बटनाओं के सम्मिलित परिणामस्वरूप शीत युद्ध की शर्तों में कुछ समय के लिए कमी आई अमेरिकन विदेश-नीति में इस स्थिति से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

कई कारणों से अमेरिका की इस नवीन सरकार नवीन राष्ट्राध्यक्ष और नवीन सचिव के प्रति लोग संदेह मरी दृष्टि से देखते हुए यह धारणा कर रहे थे कि संभवतः वे अपने पहले नामों से अधिक सैनिकवादी एवं युद्ध प्रिय रहेंगे। किन्तु जैसा कि पामर तथा परकिंस (Palmer and Perkins) का कहना है कि माइजन होवर ने किसी विशेष विदेश नीति की कल्पना नहीं रखी बरन् 'कुछ निश्चित सिद्धांत' रहे जो उनके प्रशासन का सरक्षण करने को थे।¹ विदेश नीति के ये सिद्धांत मुख्य रूप से इस प्रकार थे—युद्ध का बहिष्कार अमेरिकन शक्ति का विकास दूसरे देशों के साथ सहयोग की इच्छा सुष्टीकरण का अभाव अमेरिकन शक्ति का दुस्प्रयोग नहीं दूसरे देशों की सुरक्षा के लिए समर्थन विश्व के उत्पादन तथा साम प्रगत्यापार का प्रोत्साहन बना संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति शक्ति भावना पश्चिमी मोसार्ड के देशों के साथ सहयोग यूरोपीय एकता को बढ़ावा देना सभी शोषों एवं शक्तियों की समानता तथा संयुक्त राज्य की शक्ति के लिए एक प्रभावशाली शक्ति बना देना।

वास्तव में रूस द्वारा परमाणु बम के निर्माण विपुल अमेरिकन सहायता के बावजूद चीन में साम्यवाद की विजय और सबसे बाद में कोरिया के युद्ध में संयुक्त राज्य अमरीका को अपनी विदेश नीति पर एक नई दृष्टि (New look) डालने पर विवश कर दिया। कोरिया-युद्ध में किसी भी पक्ष को तिरणिक विजय प्राप्त न होने से माइजनहोवर-प्रशासन ने इस बात का जर्मा प्रकार समझ लिया कि एक महाविनाशकारी युद्ध के बिना जिनमें विजेता और विजित दोनों ही नष्ट हो जायेंगे साम्यवादी रूस को पराजित नहीं किया जा सकता। इस अनुभूति के फलस्वरूप रूस के साथ महाप्रस्थित को इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना आवश्यक हो गया। इसके धतिरिक्त साम्यवादी चीन को बढ़ती हुई शक्ति ने यह धना दिया कि रूस का अघरोध न केवल यूरोप में बल्कि सुदूर पूर्व में भी किया जाया आवश्यक है। फिर कोरिया युद्ध से यह धारणा और भी दृढ़ हो गई कि यूरोप और पूर्वी एशिया में अघरु हो जाने के बाद रूस मध्यपूर्व में बढ़ने का राल करेगा।

1 "He outlined no specific foreign policies but he asserted "certain fixed principles" that would guide his Administration

इस धाराका के फलस्वरूप मध्यपूर्व का प्रवेश संयुक्त राज्य अमेरिका की विनयवली का प्रभाव केन्द्र बन गया।

राष्ट्रपति ड्राइजनहोवर के शासन काल में बटना बन्द कुछ ऐसा हुआ कि जिससे नीत कुछ में कुछ समय के लिए स्थिति का भाव ही और अन्तर्राष्ट्रीय मतमुटाब के मिटने की आशा की जाने लगी। मार्च १९५३ में स्थापित की गयी के बाद सोवियत नेतृत्व जिन लोगों के हाथों में था उन्होंने भी पूर्वापेक्षा कुछ लचीली थीर समझौतापूर्ण नीतियाँ अपनायीं। १९ मज्ज १९५३ को राष्ट्रपति ड्राइजनहोवर ने जाति के पक्ष में ही हमीसे ही अ मूल कर सोची का यह भ्रम बहुत कुछ हट गया कि यह ऐतिक जनर अमेरिका की पूरी तरह ऐतिकवाद की ओर उकेल देगा। ११ मई को अति हाग फॉम ब्रिटेन कस और अमेरिका का मित्र-सम्बन्ध बनाया गया। १९५३ में ३ साल से भी अधिक समय से चलने वाला कोरियाई युद्ध बन्द हो परिषदी यूरोप को अधिकारिक एकीकृत करने के प्रयत्न किये गये। जुलाई १९५३ में ३ साल से भी अधिक समय से चलने वाला कोरियाई युद्ध बन्द हो गया। अगस्त में सोवियत कस ने घोषणा की कि उनसे हाइड्रोजन बम का विपटन कर लिया है। इसके तुरन्त बाद विश्वभर में मनुक राष्ट्र सब की महामामा में ड्राइजनहोवर ने अगुा अति पर नियन्त्रण रखने और उसका जाति के लिये प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा। सन् १९५४ में इतने अधिक सम्बन्ध हुए कि जॉन फोस्टर डेलेस को यात्री-राज्य-अधिक की संज्ञा ही मात्र लबी। पश्चिमी यूरोप को एकीकृत करने के प्रयत्नों के फलस्वरूप इसी वर्ष पश्चिमी यूरोपियन संघ (Western European Union) की स्थापना की गई और जर्मनी को नाटो का सदस्य बना लिया गया। १९५४ में ही साम्यवादी चीन की सहायता में साम्यवादी छापामारों द्वारा हिन्द चीन में नन्दीर स्थिति उत्पन्न कर दा गई जिसके फलस्वरूप जुलाई में हिन्द चीन में फ्रान साम्यवादी चीन कस और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने बेनेवा सम्बन्ध में हिन्द चीन को विभाजित करने का निर्णय किया। इसके उत्तरी भाग में बियन मिन् (बाद में उत्तरी बियतनाम) का साम्यवादी राज्य स्थापित किया गया और दक्षिणी भाग को नाचोम कम्बोडिया तथा दक्षिणी बियतनाम के नाम से संयुक्त राज्य अमेरिका को विभाजित कर दिया गया। इस घट 1-बक में संयुक्त राज्य अमेरिका को साम्यवादी चीनी प्रचार को दबड़ करने के लिए इन संस्य बना दिया और इस उद्देश्य की निधि के लिए अक्टूबर १९५४ में वाशिंगटन फ्रिनिपाइन्स पाटिन्नात ब्रिटेन फॉम फाल-मिया और यूजोरीय के साथ 'दक्षिणी-पूर्वी एशिया सामूहिक सुरक्षा संघ' (South East Asia Collective Defence Treaty) पर हस्ताक्षर करके सीटो (SEATO) की स्थापना की।

मध्यपूर्व ड्राइजनहोवर सिद्धान्त -

(Middle East Eisenhower Doctrine)

यूरोप और मध्यपूर्व में साम्यवादी प्रचार के बन्दोप के लिए अग्य संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना के बाद मनुक राज्य अमेरिका

मध्य-पूर्व की ओर मुड़ा। इस क्षेत्र में साम्यवाद के प्रसार पर अक्षुण्ण सगाने के लिए आइज़नहोवर-प्रशासन ने टर्की, ईरान, पाकिस्तान और ब्रिटेन आदि को प्रेरित कर के १९५१ में बगदाद पैक्ट (जिसे १९५६ में सप्टो कहा जाने लगा) की रचना कराई। यद्यपि मध्यपूर्व में अमेरिका का यह प्रयास प्रभावकारी सिद्ध नहीं हुआ परन्तु इस क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाने का उसे एक ध्रुव सुप्रबल मिल गया। हुआ यह कि १९५६ में स्वेज नहर के प्रश्न को लेकर ब्रिटेन, फ्रान्स और इजरायल ने संयुक्त रूप से मिस्र पर आक्रमण कर दिया। सामान्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका ने ब्रिटेन और फ्रान्स की इस कार्यवाही को अपना समर्थन प्रदान नहीं किया प्रत्युत् उन्हें यही सद्-निरास दिया कि वे अपना आक्रमण खत्म कर दें। फ्रान्स में अमेरिका सहित विश्व-जनमत के विरोध पर विदेशी आक्रामकों को स्वेज से पड़ा। स्वेज काँट में पराजय का परिणाम यह निकसा कि एक समये समय से मध्यपूर्व की राजनीति पर नियंत्रण करने वाले ब्रिटेन और फ्रान्स इस क्षेत्र में अपना प्रभाव खो बैठे और मध्यपूर्व में इस शक्ति शून्यता से यह पार्श्वका हो गई कि कस इम क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित करेगा। इस सम्भावना को रोकने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका इम क्षेत्र में कूट पड़ा। उसने यहाँ शान्ति बनाये रखने तथा साम्यवादियों का प्रसार रोकने के लिए सुप्रसिद्ध आइज़नहोवर सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

“आइज़नहोवर सिद्धान्त” की घोषणा १ जनवरी १९५७ को राष्ट्रपति आइज़नहोवर द्वारा कांग्रेस को भेजे गये एक संदेश में की गयी। यह संदेश मध्यपूर्व के सम्बन्ध में अमेरिका की नीति की घोषणा थी। इस संदेश के अनुसार कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप में पारित किये गये कानून पर राष्ट्रपति ने ६ मार्च १९५७ को हस्ताक्षर कर दिये। इस कानून के अन्तर्गत राष्ट्रपति को मध्यपूर्व के किसी भी देश में अपनी विशेष बुद्धि से साम्यवादी आक्रमण को रोकने के लिए फौजें भेजने तथा सैनिक कार्यवाही करने का अधिकार मिल गया। इस कानून की मुख्य व्यवस्थायें इस प्रकार हैं—

(क) इसके प्रथम भाग में मध्यपूर्व में शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह “मध्यपूर्व के सामान्य क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वाधीनता बनाये रखने वाले” किसी भी देश को आर्थिक सहायता दे सकता है।

(ख) इस अधिनियम के दूसरे भाग के अनुसार राष्ट्रपति को ‘मध्य पूर्व के राष्ट्रों की अखण्डता और स्वतंत्रता तथा विश्व शान्ति की सुरक्षा के लिए उन देशों के द्वारा चाहने पर सैनिक सहायता देने के अधिकार दिये गये। साथ ही उसे अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद द्वारा निर्वाहित किसी देश से समस्त आक्रमण होने की स्थिति में मुसजिबत भेदा भेजने का भी अधिकार दिया गया।

(ग) अधिनियम के तीसरे भाग में इस सहायता की व्यवस्था संबंधी बातों का उल्लेख है और पाँचवें भाग में इस कार्य की प्रति वर्ष जनवरी और पुनर्दिने के बीच को रिपोर्ट देने की व्यवस्था है।

कांग्रेस ने आइज़नहोवर सिद्धान्त के अन्तर्गत अमेरिकन सहायता के

इसके माध्यम से देशों की सहायता के लिए २०० मिलियन डॉलर की धन राशि की स्वीकृति दी।

साइमनहोवर सिद्धान्त की प्रतिक्रियाएँ और सिद्धान्त का विश्लेषण

साइमनहोवर सिद्धान्त और कानून की प्रतिक्रियाएँ मिश्रित हुईं। मध्यपूर्व में बार्डेन लेबनाम ईरान ईराक सऊदी अरब और पाकिस्तान धारि ने इसका स्वागत किया। परन्तु मिस्र और सीरिया धारि ने इसे एक साम्राज्यवादी आस बताया। सोवियत रूस ने इसका बोर विरोध करते हुए इसे संयुक्त राज्य अमेरिका की साम्यवादी नीति की श्रुतता की एक और कड़ी कहा। स्वर्गीय श्री नेहरू ने मल्लि शुभ्य के सिद्धान्त की प्रामोचना करते हुए कहा— यदि पश्चिमी एशिया में एक शुभ्य है तो यह स्वयं उस क्षेत्र के देशों के द्वारा मरा जाना चाहिए। यदि दूसरे लोग मरने का प्रयत्न करते हैं तो विपत्ति प्रारम्भ हो जाती है और मरणा के स्वाम पर हम उत्तका उत्ता बात है। ब्रिटिश राष्ट्र के एक बड़े मन ने श्री साइमनहोवर सिद्धान्त के प्रति अपनी गाराजगी प्रकट की। जनक बड़े की द्वारा यह कह कर इन सिद्धान्त की प्रामोचना की गयी कि अमेरिका का वास्तविक उद्देश्य मध्यपूर्व में साम्यवादी प्रसार के विरुद्ध रक्षा कवच तैयार करना न होकर ब्रिटिश और फ्रान्स प्रभाव का समाप्त कर के उसके स्थान पर अपना प्रभाव स्थापित करना है। प्रसिद्ध विद्वान डी एफ फ्लेमिंग (D F Fleming) का यह है कि साइमनहोवर सिद्धान्त में नीतियुद्ध का प्रस्तावित करने में बड़ी सहायता दी।¹ मिस्र और सीरिया ने आरोप लगाया कि अमेरिका का यह कवच ब्रिटिश उद्देश्य साम्राज्यवाद का जुमा उतार फेंकने वाली अरब राष्ट्रीयता को कुचलने की और इजरायल को अरबों के विरुद्ध आक्रमण के लिए प्रोत्साहित करने की शक्ति है।

साइमनहोवर सिद्धान्त का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह सिद्धान्त स्पष्ट दृष्टि सिद्धान्त का एक विकसित रूप था—

प्रथम दृष्टि सिद्धान्त में सहायता का क्षेत्र बिल्कुल सुनिश्चित—एकीकृत और युक्त या जबकि साइमनहोवर सिद्धान्त के अन्तर्गत अमेरिकन राष्ट्रपति मध्यपूर्व के विभिन्न प्रोक्त में किसी भी देश की सहायता दे सकता था।

दूसरे, इनके अन्तर्गत ही जाने वाली सहायता का क्षेत्र भी अधिक व्यापक था। जहां दृष्टि सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रभावित आर्थिक सहायता ही व्यवस्था की गई था वहीं साइमनहोवर सिद्धान्त के अन्तर्गत आर्थिक और नैतिक दोनों प्रकार की सहायता की व्यवस्था थी।

तीसरे, इन सिद्धान्त ने राष्ट्रपति को दृष्टि सिद्धान्त की अपेक्षा सेनायें प्रेषित न सहाई धर्मों के अधिक विस्तृत अधिकार प्रदान किये।

चौथे इन सिद्धान्त में आक्रमण का प्रवृत्ति की भी अधिक स्पष्ट व्याख्या की गई है। यह स्पष्ट कर दिया गया कि सहायता राज्य साम्यवादी

1 D F Fleming The Cold War and its Origins p. 848

आक्रमण घबरा उसकी धार्ष्टिका पर सम्बन्धित दलों की प्रार्थना और इच्छा पर ही भेजी जायगी ।

पाँचवें, ट्रूमैन सिद्धान्त की भाँति इस सिद्धान्त का घोषित मध्य मी मध्यपूर्व के देशों में स्थिरता और स्वतन्त्रता की रक्षा करना था जबकि इसका बाह्यदिक मध्य मध्यपूर्व के ऐत मण्डारों को पश्चिमी गुट के लिए सुरक्षित रखना था । दूसरे शब्दों में यह कहना उचित होगा कि ट्रूमैन सिद्धान्त की भाँति आइज़नहोवर सिद्धान्त भी अमेरिका के महीन साम्राज्यवाद का सूचक था ।

आइज़नहोवर सिद्धान्त का प्रयोग

इस सिद्धान्त के प्रचार और प्रसार के लिए अमेरिका के विभिन्न राजदूत जम्स पी रिचर्ड्स को मध्यपूर्व के देशों का दौरा करने के लिए भेजा गया । इन समय इन देशों में जो बड़ा बय ये—पश्चिम के समर्थक एक पश्चिमी विरोधी किन्तु सोवियत पक्षपाती । पश्चिम टर्म— टर्की ईरान ईराक और पाकिस्तान (बमबाद पैक्ट के सदस्य राज्य) ने २१ जनवरी को इस सिद्धान्त का समर्थन कर दिया । इन राज्यों के प्रस्ताव सेबनान मीडिया और ईबरायम ने भी इसके प्रति अपनी सहमति प्रकट की । किन्तु पश्चिम गिरावी सीरिया और यमन ने इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया सुडान ने कोई निश्चित जवाब नहीं दिया और मिस्र न मीन माथ सेना उचित समझा ।

शीघ्र ही ऐसा प्रचार भी उपस्थित हुआ गया जबकि दो देशों में अमेरिका का 'आइज़नहोवर सिद्धान्त' का प्रयोग करने का मौका मिला । ये देश ये—सेबनान और ओडन । सेबनान में अमेरिका ने स्वयमेव इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जबकि ओडन में ब्रिटेन की महायत्ना थे । परन्तु इन दोनों देशों में भी यह सिद्धान्त व्यावहारिक दृष्टि से सफल न हो सका ।

(1) सेबनान में अमेरिकन सेना का प्रवेश

ईसाई और मुसलमानों के प्रवेश सेबनान के उत्कामीन राष्ट्रपति चार्लो और प्रधानमंत्री सामी सोमह न दिस १ मई १९५८ को बित्राह हो गया । यह सरकार अमेरिका समर्थक थी जिसने आइज़नहोवर सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था । सेबनानी विदेश मंत्री ने मिस्र और सीरिया पर आरोप लगाया कि वे विद्रोह को बढ़ाने और विद्रोशियों का महायत्ना देने का कार्य कर रहे हैं । सेबनान ने सुरक्षा परिषद से त्रिकायन करत हुए मामन पर पिचार करने के लिए परिषद की प्रकिलम्ब बँटन बुलाने की माँग की । परिषद द्वारा यह मामला धरब सीग का सौदा गया किन्तु जब सीग ने यह मामला नहीं विमता तो परिषद ने मानस के जाँच के लिए एक समुक्त राष्ट्र मधोय प्रेक्षक दल की व्यवस्था का विमन ३ जुलाई १९५८ को घोषणा की कि "प्रेक्षक दल के पास समुक्त धरब मल्लराज्य (मिस्र) के नागरिकों घबरा हथियारों के बड़ी मात्रा में सेबनान में प्रवेश के आरोप की पुष्टि में पर्याप्त धार्य नहीं है ।"

(ii) जोर्डन से ब्रिटिश पौडों की वापसी

जोर्डन एक पिछड़ा हुआ राजतन्त्र था जो १९२७ तक ब्रिटिश सरकार से प्राप्त होने वाली ६२ लाख पौंड की सहायता पर जीवित होने के कारण पश्चिमी शक्तियों का पृष्ठ पोषक था। जब मिस्र एवं अन्य पश्चिम दिगोधी अरब राज्यों ने इसे अपने साथ मिलाता चाहा तो इसने उनसे ब्रिटिश सरकार से मिलने वाले ६२ लाख पौंड देने की मांग की। १९७ के अक्टूबर में मिस्र सहूदी अरब एवं सीरिया ने जोर्डन को यह बचन दिया कि उसे ब्रिटेन द्वारा मिलने वाली उक्त राशि में पाँच मिल कर उपसर्ग करायेंगे।

इस समय जोर्डन के प्रशासन में जो विरोधी विचारधारायें विद्यमान थीं। जोर्डन का राजा हुसैन पश्चिमी शक्तियाँ का समर्थक था जब कि उसका प्रधान मन्त्री नाबुस्सी पश्चिमी शक्तियों का विरोधी। अक्टूबर नाबुस्सी ने एक तरफ़ जो अहमदन हाबर सिद्धान्त को स्वीकार किया और दूसरी तरफ़ मिस्र सहूदी अरब तथा सीरिया के साथ अरब-एकता सुझा कर न के लिए समझौते पर हस्ताक्षर किये। ११ फरवरी १९२७ को उसने यह घोषणा की कि १ अगस्त १९२७ से १९४८ में की गयी उस एगो-जोर्डन से सबि को रद्द समझौता वापस जिसके अनुसार ब्रिटेन को जोर्डन में सैनिक भेजे प्राप्त थे।

नाबुस्सी के इस कथ से जोर्डन के पश्चिम पक्षपाती तत्व असन्तुष्ट हो गये। परन्तु जब अगस्त में जोर्डन सरकार ने सावियत संघ से साठ बूटनातिक सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय कर लिया तो पश्चिमी पक्षपातियों अथवा कस विरोधी तत्वों का असन्तोष मद्धक उठा। इसी समय संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा जोर्डन को आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव रखा गया। इससे बाहू हुसैन के प्रभाव में वृद्धि हुई और परिणामतः ब्रिटेन की अग्रगण्य सहायता से नाबुस्सी सरकार को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य कर दिया गया। इस पर १० अगस्त १९२७ को पश्चिम और कस समर्थक तत्वों के बीच व्यापक रूप से गे प्रारम्भ हो गये। बाहू हुसैन ने जो अमरीकन सहायता लेने के पक्ष में था अपने सग्य अधिकारियों के सहयोग से जनता के विद्रोह को दबा दिया। उसने कसी साम्यवाद को इन उपद्रवों के लिए उत्तरदायी बताया हुए पश्चिम-पक्षपाती इब्राहिम हाकिम को मन्त्रीमण्डल बनाने का कार्य लाया।

बाहू हुसैन को प्राप्तता पर अमरीका ने उसे पहले एक करोड़ डॉलर की और बाद में ८ लाख डॉलर की सहायता दी। संयुक्त राज्य अमरीका का इस प्रकार की सहायता देने का मुख्य लक्ष्य जोर्डन का मिस्र और सीरिया से बिल्कुल अलग करना अथवा एकता को नष्ट करना एवं अरब राष्ट्रवाद के धनुषा बणों के विरोध के लिए मध्य-पूर्व में एक सुदृढ़ घेरा स्थापित करना था। अमरीका के प्रभाव से जोर्डन ने एक अन्य अमरीका समर्थक राज्य ईराक के साथ मिल कर मिस्र और सीरिया के संयुक्त अरब अमराज्य (United Arab Republic) के मुकाबल में १४ फरवरी १९२८ का अरब राष्ट्रीय राज्य (Arab Federal State) का भी निर्माण किया।

१८ जुलाई १९४८ को ईराक की परिश्रम पक्षपाती सरकार के विरुद्ध सैनिक विद्रोह हुआ तथा यहाँ घाबराहट का जने लगी कि नहीं जोर्डन भी एसी अति का शिकार न हो जाय। घना १७ जुलाई को ताह हुरीन ने रेडियो से यह वापणा की कि ईराक की अति से उत्पन्न स्थिति से रक्षा के लिए हमने मित्र राज्यों से प्रभावशाली सैनिक सहायता मांगने का निश्चय किया है ताकि चारों पार के शत्रुओं से जोर्डन की सीमाओं की रक्षा की जा सके। ताह हुरीन ने ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका से अतिशय सैनिक सहायता देने की प्रार्थना की। इस पर एक तरफ तो ब्रिटेन द्वारा वायुवानों के अरिये तेजी से अपने सैनिक जोर्डन में उतार दिये गये १७ बूसरी तरफ अमरीका की वायुबल ने ईराक तथा सेबनामी सीमानों के बाह होने से जोर्डन में उत्पन्न हुई पैट्रोल की कमी दूर करने के लिए, बहरीन से तेल की बुसाई प्रारम्भ कर दी। २ जुलाई को उसने जोर्डन को ७१ लाख डालर की नयी सहायता देने की भी घोषणा की।

१७ जुलाई १९४८ को जोर्डन न सुरक्षा परिषद में यह प्रस्ताव की कि संयुक्त राज्य अमरीका उससे आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। २१ अगस्त को महासभा के विषय अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के अनुसार ब्रिटेन ने २ नवम्बर १९४८ तक अपनी सैनिकी जोर्डन की राजधानी से वापिस बुला ली। इस प्रकार ब्रिटेन की सहायता से पाइजन्सहोवर सिद्धान्त का वा सैनिक प्रयाग जोर्डन में किया गया वह अन्त में निष्फल हुआ।

पाइजन्सहोवर सिद्धान्त का सुस्पष्टीकरण सेबनाम पीर जोर्डन इन दोनों देशों में पाइजन्सहोवर सिद्धान्त का जो प्रस्ताव न अग्रस्त प्रयोग किया गया उससे इन सिद्धान्त के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण परिचय निकलते हैं—

(i) पाइजन्सहोवर सिद्धान्त को मध्य-पूर्व में साम्यवादी एवं सोवियत प्रभाव को रोकने में लक्ष्यता नहीं मिली थीर न ही वह इस क्षेत्र में शक्ति स्थापित करने अथवा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव दूर करने में सफल हुआ। इसके विपरीत नेज्जान और जोर्डन में सैनिक हस्तक्षेप का उद्देश्य प्रभाव यह हुआ कि इन देशों में परिश्रम विरोधी एवं साम्यवादी तत्वों को पुष्टि मिली तथा दोनों राज्यों में परिश्रमी प्रभाव का प्रतिरोध करने वाली सरकारों की स्थापना हुई। ईराक की अति के कारण अगस्त वीकट से उनका एक महत्वपूर्ण सैन्य निकल गया जिना कब्जकरता मध्य-पूर्वीय क्षेत्र में जहाँ अमरीकन प्रभाव की कमी हुई वहाँ मानको का प्रभाव देन बढ़ा।

(ii) महत्वपूर्ण हो गया कि दृष्टि सिद्धान्त की तरह पाइजन्सहोवर सिद्धान्त का संयुक्त राष्ट्र संघ की निर्बल बनाने वाला वा कौनो हिस्से के कारण अल्प संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के काम को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया गया था। अनेक राज्य अमरीका ने संयुक्त राष्ट्रीय प्रस्ताव लिपि के विरुद्ध सैनिकान के अरानी मतों के भी जो अनुचित पा।

माआज्जहाद

और धुंन में अविश्राम का परिचापक

या। सब के प्रोत्साहन वम की रिपोर्ट के बाद भी धमरीका की इस प्रणार की कार्यवाही करना यह निश्च करता था कि वह इस सामरिक तथा आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र में अपने नियन्त्रण और प्रभाव का भूला वा।

(iii) संयुक्त राज्य धमरीका क राष्ट्रपति फ्राइजलहोवर ने मध्य-पूर्व में मजान राष्ट्रीयता के जागरण की उद्देशा की। वह भूस मय कि सरब देन प्रब बिन्नी हस्तक्षेप के विरुद्ध था। इस सिद्धान्त की प्रसफुतता का एक प्रम्य कारण मध्य-पूर्व में कलस नासिर का व्यक्तित्व भी था जिनकी धमरीका द्वारा प्राय उद्देशा ही कर बी गयी थी। परिधामस्वरुप फ्राइजलहोवर को धानी नीति में पूरी सफुलता नहीं मिल सकी। इसके प्रतिरिक्त ईजरायम व विरुद्ध प्ररबों के तीव्र विरोध और इस प्रवेध की शाशनीय आर्थिक एवं सामाजिक दशा ने भी फ्राइजलहोवर सिद्धान्त की सफुलता के मार्ग में गभीर रोड पटकामे।

निष्कर्ष रूप में यही कहना चाहिए कि ब्यावहारिक दृष्टि में फ्राइजलहोवर सिद्धान्त एक साधारण सफुलता रही। इसके अन्तर्गत १९६० में लेबनान में भेजी गयी धमेरीकन सेनाओं क द्वारा गति प्रबन्धन ब्यापिन की यदी किन्तु पश्चिम क कट्टर समर्थक राष्ट्रपति फामा पुनर्निर्वाचित नहीं हा सक और बाब में धमेरिकन फ्रीडो को लेबनान म डटना पडा। इसी प्रकार जोर्डन में भी धमेरिकन सहायता में शाह हुसैन क विरुद्ध विद्रोह को दबा दिया गया, परन्तु इसके बावजूद सीरिया ईराक और मिस्र में साम्यवादी प्रभाव में वृद्धि हुई तथा ईराक बागदाद समन्वित म प्रसग हा गया।

शांति युद्ध में तिपिलता (१९६६-६०)

फ्राइजल होवर सिद्धान्त क कारण मद्यपि शीत युद्ध की पाग वैमजान बनी और फ्राइजलहोवर प्रभावस विरुद्ध क एा बड़ भाग में कटु आलोचना का पात्र बना परन्तु सितम्बर १९५६ में जब राष्ट्रपति के निर्मरण पर गोबिपत प्रधानमन्त्री की लुम्बेब ने अपने सम्पूर्ण परिवार और प्रम्य राजनीतिक सहयोगियों के विज्ञान बस-बस सहित धमेरिका की राजनीय यात्रा की तो इसके परिणामस्वरुप दोनों प्दों के मध्य पारस्परिक तनावपूर्ण बागावण में बड़ी कमी आयी। १७ सितम्बर को न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र मंध के १४ वे अधिवेशन म मापण करते हुए भी लुम्बेब ने सामान्य एवं पूर्ण निःशस्त्रीकरण क प्रस्तावों का एगन के साथ "नीनयड की एवं शम्भान्त्रों की प्रतिम्बर्ची" सम्राप्त करने की धार सब देशों द्वारा "शानिपूर्ण महप्रस्तिरत और मत्री पूर्ण महयोग" क सिद्धान्तों के पासत पर बिजय बल दिया। गोबिपत प्रधानमन्त्री ने प्रायह किया कि कम एवं धमेरिका को शीत युद्ध क बागावण का प्रम्य करना चाहिए। गोबिपत प्रधानमन्त्री की गण्यनीय फ्राइजलहोवर ने मेरीलैण्ड ग्वाइल (Maryland bills) के मध्य बत उनक निवास स्थान कैम्प डेविड (Camp David) में शानिपूर्ण बागावण में बातचीत हुई तथा दोनों नेताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को दूर करने के बारे में विचार-नीमर्क करते हुए यह निर्णय किया कि पारस्परिक

मतभेदों के प्रश्नों पर बातचीत करने हेतु संयुक्त राज्य अमेरिका मोबिलियन क्रम विहित धोरणों इन बातें बड़े राष्ट्रों का एक विश्व-सम्मेलन आयोजित किया जाय। अमेरिकन राष्ट्रपति ने १९६० के बसन्तकाल में इस की आज्ञा के नियन्त्रण को भी स्वीकार किया।

मोबिलियन प्रधानमन्त्री ने २४ मितम्बर को स्वदेश लौटते समय अपने व्यक्तिगत टेलिग्राम माध्यम में कहा— 'राष्ट्रपति आइजनाहोवर से मेरी बड़ी मधुर बातें हुई हैं। हमने दिन-प्र-दिन प्रश्नों पर विचार किया है। हम सबसे बड़े बारे में यह पाया गया है कि स्थिति के सुसंवादन की दृष्टि से तथा दोनों देशों में सम्बन्ध सुधारने की आवश्यकता की दृष्टि से दोनों पक्षों का दृष्टि कोल गया विचार एक जैसे है।' श्री बुशनेन ने स्वदेश लौटकर भी 'कैम्प डेविड की आज्ञा' को दोहराया और साम्यवादी चीन को भी यह सलाह दी कि उन्हें महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान हेतु युद्ध के साधनों का परिष्कार करना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का निर्यात वार्तालाप और बर्षा क पाठ्यक्रम से सानिपूर्वक सम्बन्धों द्वारा करना चाहिए। स्वदेश और विदेश में व्यक्त किये गये मोबिलियन प्रधानमन्त्री के इन विचारों से यह बात दिखाई पड़ती है कि वार्ता पूर्व और पश्चिम का संघर्ष बीज ही दूर हो जायगा।

श्री बुशनेन ने इस लौट जाने के उपरान्त दिसम्बर १९६६ में पेरिस में राष्ट्रपति आइजनाहोवर फ्रेंच राष्ट्रपति रिचार्ड शिट्टिन प्रधानमन्त्री रॉबर्ट स्काउट और पश्चिमी जर्मनी के चांसलर कोनार्ड आडेनौर (Konard Adenauer) ने सीतयुद्ध एवं पूर्व-पश्चिम की समस्याओं पर विचार-विनिमय करके यह निश्चय किया कि २३ अगस्त १९६० को ४ बड़े राष्ट्रों के आसनाध्यक्षों का विश्व-सम्मेलन आयोजित होना चाहिए। किन्तु श्री बुशनेन को जब निश्चय दिया गया तो उन्होंने इस तारीख को बदलने (११ अगस्त या ४ मई करने) का सुझाव दिया। अंत में १६ मई १९६० को इस सम्मेलन का किंवा आना निश्चित हुआ।

विश्व सम्मेलन के अयत्न

दुर्भाग्यवश घटना यह कुछ इस प्रकार का हुआ कि विश्व-सम्मेलन के पूर्व ही कुछ अयत्न हो गये जिन्होंने पहले तो सम्मेलन के होने में ही तन्निष्ठ उत्पन्न कर दिया और बाद में यह सम्मेलन हुआ भी तो उसे अयत्न कर दिया। मुख्य रूप से ये अयत्न हुए—(i) जर्मनी से सम्बन्धित विचार एवं (ii) यू-२ विमान घटना।

(i) जर्मनी से सम्बन्धित विवाद

पहला अयत्न जर्मनी पर हुआ। १४ जनवरी १९६० को पश्चिमी जर्मनी ने चांसलर आडेनौर ने बुशनेन को जेजे गैबे एक पत्र में यह आगे बढ़ाया कि इसी बतिल पर हमला कर रहे हैं और विश्व सम्मेलन का मुख्य विषय जर्मनी नहीं बल्कि निःशस्त्रीकरण की समस्या होनी चाहिए। श्री बुशनेन ने जर्मन चांसलर को समझीपूछी यह उत्तर देते हुए कहा कि

परि पूर्व पश्चिम की बांटा ने बर्लिन की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया तो वह पूर्वी जर्मनी से पूरक संबंध बन जाएगा। पोर्लैंड और बर्लिन को रोकना के साथ उसकी सीमा का निर्धारण करेगा।”

फरवरी १९६० में बर्लिन में रुस द्वारा एक नया संकट उत्पन्न कर दिया गया। हुआ यह कि पूर्वी जर्मनी में विद्यमान पश्चिमी देशों के सैनिक सशस्त्रों को दिये जाने वाले पास पूर्वी जर्मन सरकार के नाम से जारी क्रिये के बजाय जब तक ये पूर्वी जर्मनी के सोवियत अधिकारियों द्वारा जारी किये जाते थे। इस नयी व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि रुस इस प्रकार पश्चिमी देशों से पूर्वी जर्मनी की सरकार को तथ्यानुसार मान्यता (De facto recognition) दिसवाना चाहता था। रुस की इस कार्यवाही के विरोध में स्वभावतः अमेरिका ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा १९ फरवरी १९६० को सोवियत सैनिक अधिकारियों को विरोध पत्र प्रेषित किये गये। फरवरी में १४ मार्च को सोवियत रुस इस बात पर राजी हुआ गया कि पश्चिमी देशों के सैनिक अधिकारियों को पूर्वी जर्मनी में यात्रा के लिए जो पास दिये जायेंगे उन पर सोवियत अधिकार का क्षेत्र (Zone of Soviet Occupation) लिखा जाएगा। १६ मार्च को अपनी अमेरिका की यात्रा में जर्मन चांसलर आडेनर द्वारा यह घोषणा की गई कि १६ मई को शिखर-सम्मेलन होने से पूर्व पश्चिमी बर्लिन में इस बात पर जनमत संग्रह किया जाय कि लोग बर्लिन वर्तमान स्थिति बनाये रखने के पक्ष में हैं अथवा नहीं। आडेनर की इस घोषणा की प्रतिक्रिया रुस में दूसरे पक्ष की ओर से यह कहा गया कि “संसार का जनमत संग्रह बर्लिन के दोनों भागों में हो।

स्पष्ट ही ऐसे बाधाकरण में, दोनों पक्षों में एक दूसरे के प्रति संशय बढ़ना ही की वृद्धि हुई और वह भी ऐसे समय जबकि एकदम निकट बिन्दु में शिखर-सम्मेलन होने वाला था।

(B) यू-२ विमान काण्ड

शिखर सम्मेलन के मार्ग में दूसरा और सबसे मुख्य अड़थक यू-२ विमानकाण्ड का हुआ जिसका विस्तार से उल्लेख संयुक्त राष्ट्र सच के पत्र में किया जा चुका है। १ मई १९६० को सोवियत प्रधानमंत्री क्रेमलिन रोपपुर्खे हॉलों में घोषणा की कि १ मई १९६० को सोवियत रुस द्वारा पाई गई थी बाबुसी करते हुए एक यू-२ अमेरिकन विमान को राकेट द्वारा नीचे गिरा दिया है। यह एक उड़ती का कार्य है और इसके हुसे भी ९ घण्टे को एक अमेरिकन बाबुसान ने सोवियत प्राकार का अतिक्रमण किया था। अमेरिका ने पहले तो अग्नी घातकों का प्रतिबन्ध किया किन्तु जब सवे विमान आसक पास की जीविउ व्यवस्था में रुस में गिरपठारी का पता चला तो अमेरिकन विदेश विभाग के एक बकनब्य ने स्पष्ट रूप से यह चेतावनीपूर्ण घोषणा की गई कि प्राकृतिक घातकों की सम्भावना कम करने के लिए ही विमान चार बयों से स्वतन्त्र अवत की सीमाओं पर यू-२ विमान उड़ान करते रहे हैं।” बार में ११ मई को स्वयं

घरनी घोर से ऐसा प्रबल जारी रखये जिससे मि "सन्धीकरण" की समस्या का समाधान संभव करके जर्मनी की समस्या का समाधान हो और समूची पन्तराष्ट्रीय स्थिति में सुधार हो ।

वी सुन्नेब की बर्षाई के प्रत्युत्तर में १० नवम्बर को श्री कैनेडी ने लिखा कि राष्ट्रपति का पद समालने के बाद उनका मुख्य कार्य "श्यायपूर्वक और स्वाधीनता" की स्थापना करना होगा ।

कैनेडी अमेरिका के सबसे अधिक युवा राष्ट्रपति और अप्सुत साहस तथा सुम्भुम्भ के व्यक्ति थे । उनका मूल्य में अमेरिका में घरनी विरोध नीति में अत्यन्त साहसपूर्वक दूरवामी परिवर्तन किया । अमेरिका के महात्तार इतिहास में १९९० का वर्ष अमरकालीन का वर्ष रहा था जिसमें बर्लिन का उतरा हुआ म्युक्का पर्य के निवारण सम्मेलन की विफलता कुन में जापान में सुरक्षा सन्धि के निरस्त किये गये उपद्रव और राष्ट्रपति के दौरे का रद्द कर दिया जाना वसुवा में अमेरिकन सम्पति का क्षिन जाना घटनाएँ सन्धि में बीलापन का जाना घाति समस्याएँ एक साथ उतर घायी थी । १५ जुलाई १९९१ को राष्ट्रपति कैनेडी ने स्वयं कहा कि "हम आज एक नये सीमा प्रदेश की धार पर खड़े हैं—यह १९९० का सीमा प्रदेश है । उन्होंने तत्कालीन उत्तरी चीन समस्याओं पर जोर डालते हुए यह विचार व्यक्त किया कि ये कठरे काफ़ी समय तक बने रहेंगे । ऐसा नहीं है कि निरस्त अधिक्य में ही पुण और अतिव सफलता की प्राप्ति हो जाय । श्री कैनेडी का मत था कि ये समस्याएँ न प्रथम ही दिनों में न प्रथम हजार दिनों में न इन प्रयासन के जीवन काल में और न इस बहू पर हमारे जीवन काल में ही पूरी तरह समाप्त हो जायेंगी लेकिन इसे प्रारम्भ ठा करना ही चाहिए ।

श्री कैनेडी के शासन के आधीन नीति-निर्माणाघो ने वैश्विक नीति के मूल सिद्धांतों का तबतम अपरिवर्तनीय ही रखा लेकिन उन्हें इतना समीक और लक्ष्यम चकस्य बना दिया कि ऐसा नये नया कि मानों अमेरिका की विरोध नीति में नयी जान घा यमी हा । बीते जीवन के दो विभिन्न तरीकों के बीच नये नये बह भी चस रहा था—एक चीन तो स्वतन्त्रता और प्रशासन तो बुद्धी घोर की साम्यवादी । राष्ट्रपति कैनेडी का विस्वास था कि समझौते और वास्तविक के द्वारा पूर्व एक परिचय के मेरों को मिटाया जा सकता है किन्तु आज ही किन्ती भी अन्य उपाय से ये साम्यवाद के विरुद्ध प्रस्थित विजय के बारे में भी आशङ्क्य न थे । उनका कहना था कि सबत बड़े दुनोनी तो विरुध के उत भाय द्वारा ही जा रही है जो कि चीन युद्ध के पर है । इस प्रकार बचौन प्रशासन का यह बुद्धिकोण कि विश्व में साम्यवाद के परिनिष्ठ नरीबी और अन्य सामाजिकिया भी गन्तु हैं, अमेरिकन विरोध नीति का एक मात्रबुल्ले माङ्क था । विश्व की सारी बरेमानियों का कारण केवल साम्यवादी ही नहीं है—यह सोच कर ही अधिक घोर नास्तिक ठोवा प्रसों की घोर अतिर घ्यात किया गया । अमेरिका की विरोध नीति में कैनेडी प्रशासन के अत्यन्त भैतिक नीमाओं को बनाये रखने किन्तु बुनरे प्रकार की

सीमाओं को पार करने पर जोर दिया। सितम्बर, १९५१ में कैम्प डेविड (Camp David) में आइज़नहावर तथा एड्डीशेन के बीच होत वाली बार्ता की माबना को केनेडी प्रशासन ने मान लिया और कहा कि जब महाशक्तियों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि उनके हित स्पष्ट हैं और वे प्रबिक दिन तक अपने पारस्परिक सम्बन्धों को ठीका और बिपदा भुषा नहीं रज सकत। जून १९५१ में राष्ट्रपति केनेडी बियना में श्री एड्डीशेन से मिलन के बाद जब धमरीका लौटे तो उन्होंने कहा कि— केवल इस प्रकार के विचार विमर्श के द्वारा ही मैं इस बारे में निश्चित हो सका कि कुत्थय यह जानते हैं कि हम वर्तमान तथा भविष्य को किस प्रकार मिन रूप में सोचते हैं। हमारा दृष्टिकोण पूरी तरह परस्पर विरामी है किन्तु घन्त में प्राश्निर हम यह तो जान पये कि हम कहाँ लड़े हैं।” श्री केनेडी का मत था कि दोनों दुर्तों ने बीच घम्पटता संघेह ब गसन प्ठमी के कारण घनेक परैलानिया एब संकट उत्पन्न हो बाते हैं किन्तु विचारो क स्पष्ट आधान-आधान के द्वारा इन्हे मिटाया जा सकता है।

केनेडी प्रशासन ने विदेश नीति मे एक बड़ा महत्वपूर्ण विकास यह किया कि साम्यवाद को सीमित करने के लिए पूरे विश्व को यद्वा तक कि सोव्-बीवार क पीछे के प्रदेसों को भी राजनीतिक एब प्राबिक क्रियामों का सेव बना लिया। इससे पूर्व दोनों दुर्तों की र्णिक बलित किसे बन्दी के कारस यह सेव केवल साम्यवादी देशों तक ही सीमित था।

उपरोक्त मन्त्रिण विज्ञापण से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति केनेडी ने धमरीकन विदेश नीति को एक नया निकार दिया। बिस्तार से उनकी विदेश नीति का बिज्ञपण निम्नलिखित सन्दर्भों मे किया जाता उपमुक्त होगा।

(क) मानवीय अधिकारों के लक्ष्य में केनेडी की विदेश नीति

राष्ट्रपति केनेडी ने समय-समय पर जो प्रेरणाप्रब और प्राणवान मापण दिये उनक प्रशों को पढ़ कर ही हम मानवीय अधिकारों के प्रति उनकी बूढ़ निष्ठा का अनुमान लगा सकते हैं और साथ ही इनसे ही केनेडी की विदेश नीति को प्ररक बलितियों का भी बहुत कुछ अनुमान लग जाता है।

घने एक मापण में श्री केनेडी ने कहा— ‘मानव अधिकार के नातिकारी बिचारों की महाम जो इस सदी में जन्मी है पुढ काम मे परती है बटोर एब बटुनाति के अनुशासन म रही है जिसे अपने प्राचीन बिरामत का परिमाण है जो हम कदापि छीनने नहीं दे सकते हैं।’

उन्होंने घये कहा— हमारे प्रति गन्माबना या कुर्माबना रजत बाने प्रत्येक राष्ट्र को जान लेना चाहिए कि हम स्वतन्त्रता की सुरसा और सक्रमता को प्राचरसत बनाने के लिए कई श्री मुख्य देन कोई भी नर बहन करने किसी भी कठिनाई का मुनाबला करने छिमी भी मिन की सहायता करने घपबा किसी भी बन् का बिरोध करने के लिए र्णियार हैं।

की केनेडी ने फिर अपने इन दावों बचनों का गामने रखा— जिन मने राष्ट्रों का हम स्वतन्त्र देशों की भाँती में स्वागत करते हैं उन्हें हम इस बात का बचन देते हैं कि हम इन पर एक प्रकार के धौपनिवेशिक नियंत्रण की समाप्ति होने से कर उसके भी अधिक सौह मंत्रणा में उन्हें नहीं धमने देंगे। हम उनसे यह भी वादा नहीं करते कि वे सर्वेस हमारे पुष्टिकाय का समर्थन करें लेकिन हम बह सर्वेस प्राणा करते हैं कि वे अपनी स्वाधीनता का दुहाता से समर्थन करें और माय रखें कि धरीठ में जिन लोगों ने मुर्खापुर्बक बेग की पीठ पर चढ़ कर साधन किया, वे भीतर से ही समाप्त हो बने।”

२० दिसम्बर १९६३ को राष्ट्रपति ने नागरिक अधिकारों के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ में विचार-विमर्श किया और अपना यह विचार स्पष्ट करने में प्रोपित किया कि वह समस्या ऐसी है जो संयुक्त राज्य अमरीका की सीमा में भी प्राये निष्पन्न गयी है। उन्होंने कहा—

“ संयुक्त राष्ट्र सभ धोबजा पत्र के अधीन इस संस्था के सदस्यों पर मानव-अधिकार बहाने तथा उनका समावर करने का उत्तरदायित्व है। अगर किसी बौद्ध पूजारी को बगोडा से निकाल दिया जाता है यदि एक गहरी पूजास्थल बन्द कर दिया जाता है अगर एक प्रोटेस्टेंट चर्च अपना निजतन नहीं लोस सकता या एक पादरी को बलत् क्षिपता पड़ता है या गिरजा घर में पूजा के लिए धाई मीठ पर बम बर्षों की जाती है तो उन अधिकारों का समावर नहीं होता। संयुक्त राज्य अमरीका संसार में कहीं भी स्वयं अपने देश में भी—जाति या धर्म के आधार पर भिन्नता या अत्याचार किये जाने का विरोधी है। इन सबों को अपने देश में सुधारने के लिए हम प्रयास कर रहे हैं।

काबुल बना कर तथा प्रगतिशील करने उठा कर निजतन तथा बाहुली बंधनों के द्वारा मेरी सरकार ने अपने राष्ट्र को उस भेदभाव से मुक्त करने का मोहलपुर्ल प्रयास शुरू किया है जो दिया पाबान परिवहन मोहरी पान तरकारी मेबायो बायोह उमार तथा उठने बैठने के ताबजनिष्ठ स्वाभों पर एक सभ्ये परसे बना आ रहा है। और इपीलिए इस स्थान का धन्य किसी माध्यम से हम राष्ट्रीय या धार्मिक धन्याय से निष्का करने में नहीं भिन्नबते चाहे वह हमारे निज द्वारा किया जा रहा हो चाहे तन द्वारा।

“ मुक्त प्राणा है कि न केवल हमारा ही राष्ट्र धनियु बन्ध बहुजातीय समाजों में भी धीधित्य तथा श्याय का यह सावरण माध्य होया। हम बाएँ भेद तथा जिन्ही भी का में मानव-परिहार के विरोधी हैं। हम बाएँ धरीधियों का अधिकार देने का समर्थन एनलिए नहीं करते कि धेत धरीधियों को निकाल दिया जाय। हमारी चिन्ता तो यही है कि तथा धरीधियों को बाहुल के समय समय नृच्छा प्राप्त हो और धौक मानव धरिहार अधिकार है। एनलिए यह संस्था भी उन समय बाएँ मुँहे राही नहीं

रह सकती जब किसी सदस्य राष्ट्र द्वारा उन अधिकारों का दुस्नोप या हनन किया जा रहा हो।

संयुक्त राष्ट्र सब शांति एवं पुनः तथा सहप्रस्थित्य के प्रति केनेडी की विवेक नीति

राष्ट्रपति के पद पर मासीन होते ही भी केनेडी ने संयुक्त राष्ट्र संघ के समर्पण में जोबसा की—

‘जिस युग में युद्ध के साधनों ने शांति के साधनों का दौड़ में पीछे छोड़ दिया है संयुक्त राष्ट्र सब ही हमारी अन्तिम अवेष्टतम धारा है। सार्वाभिम सत्ता मग्न्य राष्ट्रों की इस विश्व महासभा का समर्पण करने की हम नये गिरे स प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इसे केवल बाक-युद्ध का घडाका न बनने दये नये तथा दुर्बल राष्ट्रों की रक्षा करने वाली इसका काम को मजबूत बतावेंगे और उस क्षेत्र का विस्तार करेंगे जिसमें इसके बाधनों का पामन हो।

उन्होंने आगे कहा—

‘किसु शांति जोषया-पनों तथा प्रतिज्ञा-पनों में ही नहीं रहता अपितु वह सभी व्यक्तियों के हृदयों तथा मस्तिष्कों में रहनी है और धाम न विश्व में कोई भी धमनियम कोई समझौता मधि अथवा ममलन शांति की तक तक स्थायी नहीं बना सकता जब तक कि उसे सभी देशों के लोगों का पूर्ण समर्पण नहीं मिलता तथा वे इनके प्रति अपने को पूर्णतः अर्पित नहीं करते। “मन्निह हम अपने धामावे जोषया पनों और कगों पर किमिन्न न रये बरन् हमें शांति की स्थापना के लिए प्रयास करना चाहिए। सभी लोगों न अन्तर शांति की इच्छा हो शांति स्थापनार्थ काम करने की मागना दिसो तथा विभागों में होनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि हम ऐसा कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि मानव के मधिम्य की समस्या मानव की पहुँच से बाहर नहीं।”

शांति के लिए भी केनेडी की धारा उनके मापनों में निरन्तर प्रदर्शित होती थी। १० दून १९६३ को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बताया कि पुष्की का सबसे महत्वपूर्ण विषय है ‘विश्व शांति’। उन्होंने कहा—

‘किस प्रकार की शांति से मेरा धाम्य है ? किस प्रकार की शांति हम प्राप्त करना चाहते हैं ? वह अमेरिकन युद्ध प्रश्नों के विश्व पर खोपी हुई धमरीकी शांति नहीं होगी। न वह कप्र की शांति या दाम की सुरक्षा होगी। मैं अमली शांति की बात कह रहा हूँ। इस प्रकार की शांति जिनसे पुष्की पर जीवन जीने योग्य बनता है ऐसी शांति जिनसे राष्ट्रों तथा व्यक्तियों को विकास का अवसर मिलता है धामावे पूरी हानी है और जिनमें वे अपने बच्चों के लिए अच्छे शिक्षण का निर्माण कर सकते हैं—वह शांति केवल अमेरिकी के लिए नहीं बरन् ममस्त्र स्त्रा-पुष्कों के लिए होगी—यह शांति हमारे पुन के लिए ही नहीं बरन् सार्वाभिमिक शांति होगी।”

शांति के पक्ष में युद्ध के भयानक विजय को भीचते हुए, लिफ्टन के बाद सम्भवतः अमेरिका के सबसे महान मानवतावादी राष्ट्रपति न कहा—

“यदि शांति की बात युद्ध के नये स्वरूप के कारण नर रहा है। आज के युग में समस्त युद्ध का कोई धर्म नहीं अब बड़ी शक्तियाँ अपनी-अपनी विनाश तथा अघोराङ्कत घमोच परमाणु शक्ति बनाये हैं और इस परमाणु शक्ति का प्रयोग किम बिना आत्मसमर्पण करने से इस्कार कर रहे हैं। पाष के युग में युद्ध का कोई धर्म नहीं अब एक परमाणु प्रश्न की शक्ति द्वितीय विश्व युद्ध में विश्व राष्ट्रों की राष्ट्र सेनाओं द्वारा प्रयुक्त समस्त बमों की शक्ति से बल चुती होती है। इस युग में युद्ध का कोई धर्म नहीं जबकि दोनों पक्षों द्वारा प्रयुक्त परमाणु बमों से उत्पन्न आतंक विश्व की राष्ट्र व पानी और मिट्टी तथा जीव ममलन भूमण्डल में फैला देने तथा शिकार बमर उन पर नौ पड़े या शिकार घनी बम नहीं हुआ है।

डी कनेडी ने सोवियत रूस को शांति और निःशस्त्रीकरण के प्रति घम्य घमरीकनों के समान कौसा नहीं बल्कि उनके रबीने की विचारपूर्ण बताते हुए शांति के लिए उसके माबों का उमाड़ा। उन्होंने कहा—

“कुछ लोग कहते हैं कि विश्व-शांति विश्व-कानून अथवा विश्व में निःशस्त्रीकरण की बात करना बेकार ही है और यह एक एक बेकार ही रहेगा जब तक सोवियत सरकार बल्कि विचारपूर्ण रबीना नहीं अपनाती। मुझे प्रामा है सोवियत सरकार का रबीना विचारपूर्ण है। मुझे विश्वास है कि हम उन्हें यह रबीना अपनाते में मरर कर सकते हैं। लेकिन मेरा यह विश्वास भी है कि हमें एक शक्ति तथा एक राष्ट्र के रूप में अपने रबीने पर नौ फिर से गौर करना चाहिए, क्योंकि उनके रबीने की तरह हमारा रबीना भी आवश्यक है।”

राष्ट्रपति डेनेडी शांति के व्यावहारिक अनुयायी थे। उनही विदेश नीति को समझने के लिए उनका यह दृष्टिकोण बका महत्व रखता है कि “सामाजिक शांति के समान विश्व शांति के लिए यह जरूरी नहीं है कि हर व्यक्ति अपने पड़ोसी का प्यार करे। इसके लिए सिर्फ इतना ही आवश्यक है कि न एक दूसरे को बर्हान करते हुए रहें और अगर कोई भयाने उठ नद हों तो उनके उपयुक्त और बांठिपूर्ण निगदारे के लिए प्रस्तुत रहें।

राष्ट्रपति को बड़ विश्वास था कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सोवियत राष्ट्र के प्रति अपने दृष्टिकोण नर नये सिरे से विचार करना चाहिए क्योंकि उनही दृष्टि में बड़ सोचना निरामापूर्ण था कि कभी नैना भी बड़ी मोचने या विनाश करते हैं वैसा ही उनका प्रचारकर्ता सिचते हैं। सोवियत रूस और साम्यवाद की प्रणाली के प्रति घमरीकनों में घुला के प्रसार को डेनेडी उचिन नहीं समझते थे। उनका कहना था कि दूसरे पक्ष का विनाश तथा निरामापूर्ण शिकार नहीं देना चाहिए और न ही संघर्ष को घमरीकनी मानना चाहिए।

सहप्रतिष्ठित्व की राष्ट्रपति केनेडी की कामना बस्तुतः एकदम हार्दिक और उत्कृष्ट थी। इस सम्बन्ध में उनके ये शब्द पठनीय हैं—

“कोई भी सरकार या सामंजस प्रणाली इतनी दृढ़ नहीं है कि उसकी जनता को सबपुछों से हीन ही समझा जाय। हम अमेरिकियों के लिए साम्यवाद वैयक्तिक स्वाधीनता एवं सम्मान का पूरा प्रतिष्ठित्व का बोधक है। लेकिन हम इसके बाहर भी कभी भोगों की विज्ञान तथा अन्तरिक्ष-विद्या आर्थिक एवं औद्योगिक विकास तथा संस्कृति एवं साहस पूछा जायों के लिए प्रसन्न करते हैं।

हमारे दोनों देशों की जनता का बीच जो बहुत सी बातें मिलती जुगती हैं उनमें कोई भी इतनी गतिमान नहीं है जितनी हम दोनों के लिए युद्ध के प्रति बुझा है। प्रमुख विस्मयकारियों में एक तरह से यह प्रपूर्व बात ही है कि हमारा एक दूसरे से कभी युद्ध नहीं हुआ।” पुनश्च

“अगर अब फिर कभी महायुद्ध छिड़ा तो चाहे जैसे हो हमारे दोनों देश ही उस युद्ध के केन्द्र बन जायेंगे। विविध संयोग ही नहीं किन्तु बस्तु स्थिति यही है कि दो सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र ही विनाश का सर्वाधिक अतरे में हैं। युद्ध छिड़ने पर पहले बीबीस बरों के अन्तर ही जो कुछ हमने बनाया है या जिसके लिए हम प्रयत्नशील रहे हैं, वह सारा भष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

और जीत युद्ध तक में जिसका मार और लहरा बहुत से देशों को जिनमें इस राष्ट्र के अतिष्ठित मित्र राष्ट्र भी शामिल हैं—उठाना पड़ता है हमारे दोनों देशों को सबसे अधिक मार उठाना पड़ता है क्योंकि दोनों ही विशाल जनराशी अस्त्रास्त्र बनाने पर लक्ष्य करते हैं जबकि हम राशि को प्रज्ञान गरीबी और बीमारी दूर करने पर लगा कर बेहतर ढंग में लक्ष्य किया जा सकता है। हम दोनों ही एक अंतरनाक युद्धक में पड़ गये हैं जिसमें एक देश के मरिह से दूसरे देश को नष्ट होता है और इस नये नये अस्त्रास्त्रों के कारण दूसरी तरफ जवाबी हथियार बनने लगते हैं।

“संयोग में संयुक्त राज्य अमेरिका और उनके मित्र राष्ट्र तथा सोवियत संघ दोनों का ही स्थायपूर्ण और वास्तविक शांति स्थापित होने प्रबन्ध अस्त्रास्त्र प्रतियोगिता रोकने में गहरी दिलचस्पी है। इस उद्देश्य के लिए मैं समझौते सोवियत शब्द के लिए जितने मने हैं उतने हमारे लिए भी और उन संबंधों के बिदे गये बचनों को पालने तथा संधि वायित्वों को स्वीकार करने के लिए जोरतम विरोधी राष्ट्र पर भी विश्वास किया जा सकता है। हाँ के उन्हीं संधि वायित्वों को मान्ये जो उनके अपने हित में हैं।

इसलिए हमें अपने मतभेदों की तरफ से बाँटें नहीं कर लेनी चाहिए पर इसके साथ ही हमें अपने समान हितों की तरफ भी ध्यान देना चाहिए जिनमें उन मतभेदों को दूर किया जा सकता है और अगर अब हम आपसी मतभेद दूर नहीं कर सकते तो हम कम से कम विश्व को विविधनाशियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं यद्यपि तो कर सकते हैं क्योंकि अगर विवेकपूर्ण करके

होके ठाँ हम अन्त में पाठ है कि हम जापो का सबसे आभार मुठ ममान तत्व यही है कि हम सब इसी ग्रह के निवासी हैं। हम एक ही वायुमण्डल में साँस लेते हैं। हमारी सभी की कामना है कि हमारे बच्चों का अधिक्य उजबल बनने और हम सब मस्तर घरीरभारी हैं।

(घ) पुराने मित्रों के प्रति बकायारी का बयान

राष्ट्रपति कनेडी ने बड़ा सोवियत रुठ एवं साम्यवादी व्यवस्था के प्रति सह्युपस्थितत्व का नारा बुलन्द किया और उनके प्रति सहयोग की नीति अपनाते हुए भी उनसे अलेश रहने व विश्व में आर्थिक गरीबी को मिटा कर साम्यवाद का सामित या अवरुद्ध करन के प्रति सक्रियता बनाये रखने की नीति का अनुसरण किया बहाँ बकायार मित्रों के प्रति निष्ठा देने का वायदा भी किया और उसे निभाया भी। उन्होंने नाटो (NATO) का आर्थिक एवं राजनीतिक आभार मबबूठ करने की ओर महत्त्वपूर्ण क्यम उठाये और जर्मनी के प्रश्न पर झुकते से इन्कार कर दिया। जून १९६१ में कुबेक ने पूर्वी जर्मनी के साथ एक पुनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने की धमकी दी और कहा कि इससे अमेरिका ब्रिटेन तथा फ्रांस के विने पश्चिमी बलिन में आने के अधिकारों की प्रत्याभूमि (Guarantee) करने वाले चतु मलि समझौते समाप्त हो जायेंगे। किन्तु कनेडी ने जो सतिष्णुता मंत्री और सहयोग का आभार करने के साथ ही हड़ता व धैर्य व प्रो 'क भी व सोवियत आगकी का बचाव बिबक मुक्त अस्वीहृति में दिया। पश्चिमी शक्तिवा ने रुठ को स्पष्ट शब्दा में बठा बिबा कि रुठ की एक पशोय कार्यवाही जगूँ टिरी भी व्यवस्था में माग्य नहीं होपी। अमेरिका और उत्तर माची राष्ट्रों की इस हड़ता का परिणाम यह हुआ कि रुठ न अपनी धमकी को कार्यान्वित नहीं किया।

(च) क्यूबा का रुठ और कनेडी की विदेश नीति

राष्ट्रपति कनेडी के कार्यकाल में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं न केवल सम्पूर्ण अमेरिकन राष्ट्र बल्कि सम्पूर्ण विश्व को झकझोर देने वाली घटना क्यूबा की हुई और इस घटना में कनेडी की विदेशनीति और बुद्धता में अपनी सफलता की दुन्दुभि बजाई।

क्यूबा का टापू सम्पूर्ण राज्य अमेरिका के इतिहासपूर्व में वेस्टइण्डीज का सबसे बड़ा टापू है जो प्रारम्भ में राष्ट्री समय तक अमेरिका का नीति का सबबक था। परन्तु २ जून १९६२ का पिदेल वास्तु (Fidel Castro) के नेतृत्व में एक आति हुई जिसके परिणामस्वरूप स्थापित सातक साम्यवादी रुठ का समर्थक और अमेरिका विरुध) बन गया। यद्यपि कान्तो ने साम्यवाद उ अपना रिमी प्रचार का सम्बन्ध होने से इन्कार किया और क्यूबा की जनता का राजनीतिक स्वाधीनता तथा सामाजिक न्याय प्रदान करने का बयान दिया किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया वास्तु सरकार का साम्यवादी रुठ की धार मुक्रान स्पष्ट हाता गया।

अक्टूबर, १९६२ में क्यूबा पर एक ऐसा अंकुश उलभ हुआ जिससे

रूस एवं अमेरिका के मध्य बूझे संबंध की सम्भावना प्रतीत होने लगी। इस संकट के कारण यह बना कि ३ सितम्बर १८९२ को सोवियत रूस द्वारा यह घोषणा की गई कि वह क्यूबा को साम्राज्यवादियों से छपनी रक्षा हेतु अस्त्रास्त्रों की पूर्ण सहानुता प्रदान करे। इसके अन्तर्गत में सितम्बर, को ही अमेरिकन राष्ट्रपति ने एक बल्लभ्य प्रकाशित किया कि उनकी सरकार को यह सूचना मिली है कि सोवियत रूस ने क्यूबा को २५०० मील तक मार करने वाले विमान मरी प्रक्षेपणास्त्र इन्हें संचालित करने वाले राइफल १००० मील तक प्रक्षेपणास्त्र फेंकने वाली पनडुब्बियाँ तथा रॉकेट बादि प्रदान किये हैं जिनसे अमेरिका की सुरक्षा को भारी खतरा पैदा हो गया है। ७ सितम्बर को संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दे दिया कि आवश्यकता पड़ने पर बड़ बड़े सैन्य रिजर्व ठीकियों को मैजिक मेंबा के लिए बुला सकते हैं।

अमेरिका की बेठावनी के बावजूद क्यूबा में कभी अस्त्रास्त्र पहुंचते रहे। १९ अक्टूबर, १८९२ को श्री कनेडी ने क्यूबा की पूरी तरह हवाई जांच पड़ताल का आदेश दे दिया। इस जांच-पड़ताल से पुष्टि हो गई कि क्यूबा में प्रक्षेपणास्त्रों का भारी संचय हो रहा है। १८ अक्टूबर को स्वयं राष्ट्रपति मोरिस ब्रिसेल मरी प्रोमिषो से मिले। उन्होंने प्रोमिषो से हुई छपनी बार्ता में क्यूबा में प्रक्षेपणास्त्र घड़ों का सीधा उल्लेख न करके १३ सितम्बर को पत्रकार-सम्मेलन में दिया गया छपना यह बल्लभ्य यह कर सुनाया कि— 'अगर क्यूबा में कभी भी साम्राज्यवादियों का अस्त्र भण्डार इतना हो जाय कि वह किसी प्रकार भी हमारी (अमेरिका की) सुरक्षा के लिये खतरा या बाध बन जाय या क्यूबा कभी भी सोवियत संघ के आक्रमण का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया तो उस अवस्था में यह देख छपनी सुरक्षा तथा अपने मित्रराष्ट्रों की सुरक्षा के लिए यह सब कार्यवाही करेगा जो उसे करना चाहिए।' सोवियत विदेश मंत्री ने प्रत्युत्तर में राष्ट्रपति को बताया कि क्यूबा में श्री कनेडी के संबंधों का जसकी छपनी रक्षा के लिए है। परन्तु राष्ट्रपति कनेडी खतरे से धनमिन्न न थे। २२ अक्टूबर को उन्होंने क्यूबा के इस संकट पर अपने काय फाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भावण अमेरिकन अन्तता के नाम रैडियो पर किया। भाषण राष्ट्रपति कनेडी की सोवियत रूस के और अन्य देशों के प्रति विदेश नीति को इंगित करने वाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण था। छपन इस यह भाषण में उन्होंने क्यूबा में की जा रही सोवियत कार्यवाही को अत्यन्त लुभे और निश्चित शब्दों में प्रकट किया और मान ही इस बात को जनी प्रकार जता दिया कि अमेरिका की विदेश नीति में सुरक्षा का तत्त्व इतना अग्रदस्त है और मंत्री तथा सहयोग का हाथ बढ़ाते हुए भी अमेरिका विदेश नीति में किस हद तक सैनिक कार्यवाही का प्रथम से मानता है। श्री कनेडी का यह भाषण इतना ऐतिहासिक महत्वपूर्ण और क्यूबा संकट पर पूर्ण प्रकाश डालने वाला था कि उसे हम अविच्छेद में ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं—

“... इस सरकार ने अपने अन्त के अनुसार क्यूबा द्वीप में अविच्छेद सैनिक ठीकारा पर बड़ी निगरानी रखा है। पिछले मप्ताह में इस बाग के अचूक प्रमाण देखने से पाये हैं कि उस छोटी द्वीप में बहुत से आवासक

प्रक्षेपणास्त्र-केन्द्र इस समय बनाये जा रहे हैं। इन धड़ों की स्थापना का उद्देश्य पश्चिमी गोलाखण्ड पर चोट करने के लिये परमाणु प्रहार की शक्ति प्राप्त करने के समाना कुछ और नहीं हो सकता।

यद्यपि मगसवार (१६ अक्टूबर) को प्राप्त गो बजने तक इस प्रायश्च की पक्की प्रारम्भिक सूचना मिली ताँ मैंने सर्वोत्तम एक निगरानी करने वाले दलों को काम ठेक करने का आदेश दिया। इसके फलस्वरूप प्रारम्भिक सूचना की पुष्टि होने तथा प्राप्त प्रमाणों को तोलने और अपनी भाषी कार्यवाही के विषय में निश्चय कर लेने के बाद मेरी सरकार यह प्रायश्चक समझती है कि माप लोगों को इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बताया जाये।

इस प्रक्षेपणास्त्र धड़ो पर दो प्रकार की टीयारी है। इनमें से कुछ धड़ो पर मध्यम दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपणास्त्र हैं या एक हजार समुद्री मील (१८२० किमीमीटर) तक परमाणु घातक फेंक सकते हैं। संक्षेप में कहें तो इनमें से प्रत्येक प्रक्षेपणास्त्र वाणिज्यतन को ही पनामा नहर, केपईर्नैरस (यस नय कौनैडी) मैक्सिको शहर या समुद्रत राज्य घमरीका के बसिस माग मध्य घमरीका या कैरीबियन सागर के किसी अन्य नहर पर प्रहार कर सकता है।

अन्य धड़ो घमरी बन कर टीयार नहीं हुए हैं जो इस प्रकार के बनाये जा रहे हैं कि उनसे मध्यम दूरी के धड़ो की अपेक्षा दूनी दूरी तक मार की जा सके और इस प्रकार इन धड़ो से पश्चिमी गोलाखण्ड के सभी प्रमुख बहरोँ पर हड़सन की साडी बनाया से मगर बखिन से सीमा देरु तक प्रहार किया जा सकता है। इनके पठिरिगत देश जीट बमबर्षन पेटियो घ निकाले तथा न्यूबा से समोजित किए जा रहे हैं जो परमाणु-घातक से जाकर कहीं भी गिरा सकते हैं। इनक लिए आवश्यक हवाई धड़ो भी टीयार किये जा रहे हैं।

न्यूबा को इस लेजी के माप महत्वपूर्ण सामरिक धड़ो बनाये जाने बडाँ बडीँ सख्या में दूर तक मार करने वाले बाकस्मिक रूप से सामुद्रिक बिनाम से सन्त्रास्त्रों के होने के कारण उत्तरी न बडिख घमरीका को माग्नि तथा सुरक्षा को स्पष्ट धातता देहा हो गया है। यह कार्यवाही सोवियत प्रबन्धनामा के द्वारा सार्वजनिक ठौर पर तथा बैसे बाग-बाग दिये इन प्रायश्चासो के प्रतिबन्ध है कि न्यूबा म सन्त्रास्त्र-संग्रह सखता रक्षात्मक दुष्टि से हो किया जायगा और सोवियत सप को अन्य राष्ट्र की भूमि पर सामरिक महत्त्व के से प्रक्षेपणास्त्र रखने की न तो आवश्यकता है और न लेगी इच्छा।

इस समय बाये का धाकार इतना बडाँ है कि उसी से यह स्पष्ट है कि इसकी प्रायश्चा कुछ महिनों से बमाई गई है। फिर भी यद्यपि माग ही जब भी न्यूबी म न्यूबी पर बस ये जाने वाले प्रघाणास्त्रों तथा विमान विप्लसक प्रघाणास्त्रों का अन्तर स्पष्ट कर दिया तो सोवियत सरकार ने ११ सितम्बर को सार्वजनिक रूप से, जहाँ जहाँ में कहा कि—'न्यूबा को जो सन्त्रास्त्र

तथा सैनिक सामग्री बेची गई है, वह विजुद्ध रक्षात्मक है।" यही नहीं सोवियत सरकार ने कहा— 'सोवियत सरकार को अपने स्वास्थ्य किसी भी प्रतिशोभात्मक कार्यवाही के लिए किसी भी अन्य देश की भूमि उदाहरणतः क्यूबा में बेचने की आवश्यकता नहीं है।' म फिर सोवियत सरकार क सब्यों को उद्भूत करूगा जिनमें उन्होंने कहा था कि— सोवियत संघ के पास इन परमाणु-अस्त्रों के से जाने के लिए इतने शक्तिशाली राइट हैं कि उसे सोवियत संघ की सीमाओं से बाहर किसी भी स्वान की ओर करने की आवश्यकता ही नहीं है।" ये बलव्य सर्वथा झूठे थे।

गठ मुखार का ही जब मेरे हाप में इस भाषामक बहू को सेबी से बड़ा करने के प्रमाण था चुके थे सोवियत विदेश मंत्री प्रोमिको ने मुझे बताया ने उनकी सरकार ने उन्हें एक बार फिर स्पष्ट करने के लिए निर्देश दिया है और उनकी सरकार ऐसा कह भी चुकी है कि क्यूबा का सोवियत सहायता उन्ही के जन्मों में क्यूबा की रक्षात्मक समता बनाने के हा एक मात्र उद्देश्य से ही जा रही है।" और फिर उन्ही के जन्मों में सोवियत विरोधक क्यूबा के राष्ट्रजनों को रक्षात्मक उपकरणों के उपयोग का भी प्रशिक्षण दे रहे हैं वह भी किसी रूप में सम्भव नहीं है और अगर इसके विपरीत कभी हुआ" थी प्रोमिको ने आगे कहा 'त। सोवियत सरकार बीसी सहायता कभी नहीं देगी।' उनका यह कथन भी सत्य नहीं था।

न तो संयुक्त राज्य अमेरिका और न विश्व का राष्ट्र-समुदाय किसी राष्ट्र द्वारा चाहे वह राष्ट्र बड़ा हो चाहे छोटा इस प्रकार आत्म-वृद्धि करेगा। जब हम उस विश्व में नहीं रहते जहाँ शस्त्रास्त्रों से आत्मरक्षा प्रदान की उस राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अधिकतम प्रयत्न उपस्थित करता है। जब परमाणु शस्त्रास्त्र इतने विश्वसनीय हैं तथा प्रक्षेपास्त्र इतनी तीव्रता से काम करने पाये होते हैं कि उनके उपयोग की सम्भावना बढ़ने या उनका स्वान बढ़ाने के साथ ही शक्ति को निश्चय प्रतीत उपस्थित हो सकता है।

इस तथ्य को समझने हुए सोवियत संघ तथा समूह राष्ट्र अमरीका न अंतराल परमाणु शस्त्रास्त्रों की बड़ी मायघानी से रखा हुआ है तथा अभी-कभी क्या-किसी को बढ़ाने नहीं दिया है जिनमें यह निश्चय है कि जिन सम्पूर्ण कुलीनी बर तक न मिले तक उनका उपयोग न होगा। हमारे अन्त अंतराल प्रक्षेपास्त्र गुप्त रूप में या थोका दूर किसी अन्य राष्ट्र, व भूमि पर नहीं भेज सके हैं और द्वितीय महायुद्ध के बाद से सोवियत संघ में विश्व हमारा विज्ञान व रक्षा के जिनो राष्ट्र का अपने कृत्य में अन्त में अन्य तीन समया में प्रोमिको कहा की जनता पर भावने की हमारी प्रतीति क्या नहीं देती है। फिर गा अमरीकी सामरिक सामर्थ्य के अन्तर्गत अन्त अन्तर्द्वियों से स्थापित कभी प्रक्षेपास्त्रों की आन गुमने के सम्भव है। कुछ हैं।

सगाये जा रहे हैं। किसी भी देश का अहास हो सपूबा जा रहा हो उसमें अगर आक्रमण में प्रयास हो सकने वाले शस्त्रास्त्र होंगे तो उसे सपूबा न माने दिया जायेगा बापस जाने पर विवक्ष किया जायगा। अगर आक्रमण होया तो यह प्रतिबन्ध अन्य प्रकार के मास तथा अन्य प्रकार के बाहूकों पर भी लागू कर दिया जायगा। लेकिन इस समय हम जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओं जाना नहीं रोठ रहे जैसे कि सोवियत रूस में १९४८ में बर्मिन के घेरे के समय किया था।

मैंने सपूबा तथा उसकी सैनिक तैयारी पर कड़ी तथा और अधिक निग रानी के धारेण दे दिये हैं। प्रो० ए० एम (अमरीका राज्य संमठन) के विदेश मंत्रियों ने ३ सप्टेम्बर की विज्ञप्ति में इस घोषण क इस प्रकार के मामलों पर सोपनीयता बरतना स्वीकार न किया था। अगर यह आक्रमण मन्त्रि तैयारियां जारी रही और इस प्रकार घोषण को कतरा बढ़ गया तो और कबल उठाना शोचित्यपूर्ण हो जायगा। मैंने सेनाओं को किसी भी स्थिति का सामना करने क लिए तैयार रहने का कह दिया है और मुझे विश्वास है कि सपूबा की जनता तथा बहो काम कर रहे सोवियत टैक्नीशियनों की सलाह को दृष्टि में हम अपने को बनाए रखने से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को समझ जायगा।

-----इस राष्ट्र की यह नीति हागी कि सपूबा से पश्चिमी घोषण के किसी भी राष्ट्र क विरुध परमाणुबिक मिमाइल का छोड़ा जाना स्वर्ग अमरीका पर सोवियत संघ का आक्रमण माना जायगा और सोवियत संघ का उसकी बचाबी कार्यवाह। सुगतनी पड़ थी।

प्राय राठ अमरीकी राज्य संघठन के परामशपरत को एक आवश्यक बैठक हम बुला रहे हैं ताकि इस घोषण की रसा क लिए उपस्थित इस घंटे पर विचार किया जा सके। --विरुध घर में अपने अन्य मित्र राष्ट्रों को भी सावधान कर दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ बोपशा-सत्र के अधीन हम प्राय राठ सुरक्षा परिषद की प्राणकारीन बैठक अधिसम्भ बुमाने क लिए कह रहे हैं ताकि विरुध-शांति के लिए सोवियत रूस के इस नये कतरे क विरुध कार्यवाही की जा सके। हमारा प्रस्ताव यह होया कि संयुक्त राष्ट्र के प्रेसकों की देखरेख में सभी प्राणकारी हथियार फौरन समाप्त कर दिया जाय या बापस ले जाया जाए तभी सपूबा पर हमारा प्रतिबन्ध हटाया जायगा।

मैं प्रपान मंत्री भी सुझाव क अनुरोप करता हूं कि के विरुध-शांति तथा अपने दोनों देशों के बीच सपूबा के लिए उपस्थित किए इस सुझाव की बेमसले मुझे सपूबा के कतरे को रोठे गया समाप्त करें। मैं उ न य अनुरोप भी करता हूं कि क विरुध को अपने अधीन करन क इस मार्ग का अनुसरण करना बन्द कर दें तथा पाठक शस्त्रास्त्र छोड़ करने एवं मानव के इतिहास की पाग पर करने के ऐतिहासिक प्रयास में हमारे साथ

मित जाए । इस समय उनको यह मौका है कि वे विश्व को विनाश के कारगर से वापस ले जाए । ऐसा वे अपनी सरकार के इस बचन का पालन करके कर सकते हैं कि उसे अपने देश के भूमाप से बाहर कहीं भी प्रत्येकसारण समाने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा वे क्यूबा से इन हथियारों को वापस लेकर, ऐसी कोई कारवाई न करके जिससे बल मान संकट पैदे या बुझता बड़े और फिर अतिपूर्व तथा स्थायी समाधानों की ओर से हमारा साथ देकर कर सकते हैं ।

अन्त में वे क्यूबा के हाथ बनें लोगों से कुछ शब्द कहना चाहता हूँ जिसके लिए इस मापस को विशेष श्रेष्ठियो सुविधाओं द्वारा उच्च और प्रेषित किया जा रहा है । मैं आपके मित्र के रूप में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में बोल रहा हूँ जिसे आपकी पितृभूमि से आपके प्रपूर्ण स्नेह का पता है तथा जो सभी के लिए स्वतंत्रता तथा श्वास प्राप्त करने के लिए आपकी तरह ही आकांक्षा रखता है । मैंने तथा घमरीकी बगल में अत्यन्त बुरे के साथ ऐसा है कि किस प्रकार आपकी राष्ट्रीय जाति को बोझ दिया गया है तथा किस प्रकार आपकी पितृभूमि विदेशी बन्पनों में अकड़ ही गई है । जब आपके नेता के क्यूबाई नेता नहीं है जो क्यूबा के धारकों से अनुप्राणित हों । वे तो उस अन्तर्राष्ट्रीय पद्धतय की कठपुतली तथा एन्-ट बन गये हैं जिसने क्यूबा को उत्तरी-दक्षिणी घमरीका के आपके मित्रों तथा पड़ोसियों का दुश्मन बना दिया है तथा जिसने क्यूबा को पहला ऐसा मैटिन घमरीकी देश बना दिया है जो परमाणु-मुक्त का लक्ष्य बनेगा । क्यूबा ऐसा प्रथम मैटिन घमरीकी देश बन गया है जिसकी भूमि पर वे अत्यास्र धा गये हैं ।

ये गये हथियार आपकी बलाई के लिए नहीं है । इनसे आपकी जाति या हित नहीं होया । इनसे उनको अतरा ही पैदा होया । लेकिन यह बात नहीं चाहता है कि आपके अन्त उठाने पड़े और न ही आपके अन्तर कोई प्रत्यासी भावना चाहता है । हम जानते हैं कि आपके जीवन तथा आपकी भूमि को वे लोग बन्पक की तरह प्रयोग कर रहे हैं जिन्होंने आपकी स्वाधीनता छीन ली है ।

विमहाम हमने जो मार्च चुना है वह बहुत संकटपूर्ण है जैसे कि सभी मार्च हुआ करते हैं लेकिन यह मार्च एक राष्ट्र के रूप में हमारे अरि तथा साहस और विश्व भर में हमारे दायित्वों के अनुकूल है । स्वाधीनता की सर्व्व ऊँची कीमत देनी होती है—लेकिन घमरीकियों ने सर्व्व यह कीमत चुकाई है ।

२२ अक्टूबर के अपने उपरोक्त बेगामनी पूर्ण मापस के बाद २३ अक्टूबर को ही क्यूबा की सीमा रही लोकियत सैनिक अत्यास्रों की महायत्ना की निम्ना करते हुए क्यूबा की नाकेबन्दी (Quarantine) की बाँधला की निम्ना राष्ट्र घामस यही बा कि अमेरिका के सैनिक अत्यास्र क्यूबा के अत्यास्रों को बेर छेने और बड़ी लोकियत शरतों से मुसगिन

बहाब उतरने नहीं देंगे। राष्ट्रपति केनेडी की इस घोषणा ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में महान संकट उत्पन्न कर दिया क्योंकि इनका यह कार्य सोवियत रूस को स्पष्ट बतावनी था कि वह क्यूबा को सैनिक सहायता देना बंद कर दे सम्मत्ता मुझ हेतु तैयार हो जाय।

यह सीमास्य की बात हुई कि सोवियत प्रधानमंत्री ने केनेडी की बुझा और निश्चय को धमकते हुए दुरबलता से काम लिया। तृतीय महा युद्ध को रोकने की दृष्टि से अमेरिकन राष्ट्रपति की बतावनी का बहाब कुनौती से नहीं बल्कि विवेक से दिया गया और २८ अक्टूबर को अक्षय द्वारा यह घोषणा की गई कि रूस क्यूबा में अपने प्रत्येकाल्पनापित मंत्रालय की आज्ञा दे रहा है और वह उस द्वीप पर स्थित सभी प्रत्येकाल्पनापित बलों का समूह राष्ट्र संघ की देख रेख में तुड़वा देने को सहमत है। सोवियत प्रधान मंत्री ने यह भी कहा कि भविष्य में इस प्रकार की सामग्री बहाब नहीं भेजने का भी रूस वास्वासन होता है। राष्ट्रपति केनेडी ने भी अक्षय की घोषणा का तुरन्त उत्तर दिया कि "यह एक सच्चे नेता के तरीका निर्णय है।"

इस प्रकार क्यूबा का संकट समाप्त हो गया और भणुयुद्ध की आशंका से संतुष्ट मानव जाति में सन्तोष की सांभ ली। क्यूबा के इस अन्तर्राष्ट्रीय संकट के बड़े व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम हुए—

(i) यह परिणाम यह निकला कि रूस और चीन के वैधानिक मठ-भेदों की खाई और भी चौड़ी हुई। चीन के मुद्दाम्बारी नेता माओसेतु म ने अक्षय की जातिपूर्ण सहस्यस्थित्व की नीति की निन्दा करते हुए आरोप लगाया कि क्यूबा संकट पर सोवियत रूस अमेरिका से डर कर पीछे हटा है और इस तरह उसने विश्व में साम्यवाद के प्रसार को एक बबरदस्त आघात पहुंचाया है। इस और चीन के मध्य का यह वैधानिक मठभेद आज एक लम्बे बन चुका है। रूसी नेता अक्षयबादी नीति में विश्वास करते हुए यह मानते हैं कि इस भणुयुद्ध में युद्ध की चर्चा करना मानवता के विनाश का आह्वान करना है अतः अमेरिका के गुजीबादी देश और हमारे साम्यबादी होते हुए भी तबीन परिस्थितियों में हमें जातिपूर्ण रीति से रहना चाहिये। इसके विपरीत चीन युद्ध और जाति द्वारा पूजीवाद के सम्मूलन के पुराने साम्यबादी सिद्धान्त का ही बेसुरा राय धमापता है। अपनी विकास बनसंख्या के कारण उसका विश्वास है कि भणुयुद्ध में जहाँ रूस और अमेरिका की अधिकांश बनसंख्या लष्ट हो जायगी वहाँ चीन के २०-३० करोड़ व्यक्ति मरने के बाद भी ४०-५० करोड़ चीनी बचे रह जायेंगे।

(ii) क्यूबा के संकट का एक दुसरा परिणाम चीन का भारत पर आक्रमण के रूप में निकला। भारतीय साम्यबादी दल के नेता श्री डाने ने भारत पर चीनी आक्रमण के कारणों की प्रति मुठम मीमांसा करते हुए यह बताया कि क्यूबा का अन्तर्राष्ट्रीय संकट सितम्बर १९६२ में शुरू हुआ और ८ सितम्बर से ही चीन ने भारतीय प्रदेश में घुसना शुरू किया। क्यूबा का संकट अक्टूबर में अपनी अरम सीमा पर पहुंच गया और चीन ने इन संकट

का साम जठाने के लिये २० फरवरी को भारत पर आक्रमण शुरू कर दिया। श्री बर्म के अनुसार सम्भवतः चीन का इरादा यह था कि क्यूबा के प्रश्न पर अमेरिका और रूस संघर्ष में जमने होंगे और इस तरह भारत को पश्चिम से कोई महायत्ना नहीं मिल सकेगी तथा वह भारत का एक बड़े भू-भाग को अपने अधिकार में कर लेगा। किन्तु चीन के दुर्भाग्य से क्यूबा संकट का शांतिपूर्ण हल निकल आया। पश्चिम की भारत को ठीकी सहायता मिली और वह उसने अपने प्रायः मुक्त बिराम कर दिया। इस प्रकार क्यूबा के संकट में बड़ा-उतार में चीन की भारतीय नीति को प्रभावित किया।

क्यूबा-संकट के निवारण का भय एक ओर केनेडी की नीतिगतपूर्ण बुद्धि एवं अद्भुत धैर्य साहस को दिया जाता है तो दूसरी ओर कुरुक्षेत्र के शांतिपूर्ण सहस्रस्थित एवं शक्ति में विश्वास की नीति को। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री ह्यूम का मत था कि बस्तुतः कुरुक्षेत्र का संकट संयुक्त राज्य अमेरिका पर आक्रमण का न होकर अपनी शक्ति को बढ़ाना और उनका प्रदर्शन करना मात्र था ताकि सोवियत रूस अमेरिका से जर्मनी बलिन प्रायः के प्रश्नों पर शक्ति की स्थिति (Position of Strength) सहायता कर सकता। रूस को यह विश्वास था कि अमेरिका को क्यूबा के सोवियत पहुँच से घेर कर और अमेरिकन नगरों का अपनी प्रेषणात्मक का सुगम लक्ष्य बनाने के बाद वह अमेरिका से मनमानी रिमायटें प्राप्त कर सकेगा। यह बस्तुतः स्वतन्त्र संसार की और विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका की कठोर परिपरीक्षा थी। सीमाव्यवह रूस की यह योजना दो कारणों से विफल हुई—प्रथम तो मात्रापूर्ण होने से पहा ही उठका भ्रम कम था जिससे रूस तथा अमेरिका के शक्ति सम्बन्ध में कोई अन्तर न था तथा और दूसरे अमेरिकन राष्ट्रपति न बुद्धि संकल्प तथा लक्ष्य का प्रदर्शन किया।

मास्को ने क्यूबा संकट को चाहे किसी भी कारण से उत्पन्न किया हो किन्तु यह निश्चित है कि इस संकट की समाप्ति केनेडी की बुद्धि व कुरुक्षेत्र के विवेक दोनों से हुई। १९६२ में इसने दोनों देशों के विरोध को घटाया और १९६३ में अल्पसंख्यक प्रतिबन्ध सन्धि ने मास्को एवं वाशिंगटन के मध्य सौहार्दपूर्ण वातावरण पैदा किया।

(क) निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में प्रगति—अल्पसंख्यक प्रतिबंध सन्धि

केनेडी-ब्रिज्जन्तन ने निःशस्त्रीकरण के लिए मरतक प्रयास किया। श्री केनेडी का विचार था—

“मानव का मूल्यमान के द्वारा तथा मानव की प्राथमिक धार्मिकार्थों मभी को पड़ी जानना है कि हत्या के इतिहास की धारा उभट आए, रिश्वत के धनकरत बढ़ते हुए लक्ष्य का रचना मानव की सफलताओं के लिए अल्पसंख्यक निरन्तर बढ़ते हुए धनकर में हैं। “मह काय मानवता की विपद-भूषी की लक्ष्य बढ़ती सब होनी चाहिए।”

घट: निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति केनेडी ने निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किए—

(i) सभी राष्ट्रों द्वारा परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने की संधि पर हस्ताक्षर करना जो तुरन्त किया जा सकता है। परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने की बाधा शुरू करने के लिए घाम निःशस्त्रीकरण होने की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है और न करनी चाहिए।

(ii) हस्ताक्षरों में प्रयुक्त होने वाले विस्फोटक पदार्थों का उत्पादन बंद किया जाए और इस समय बिना राष्ट्रों के पास परमाणु अस्त्र नहीं हैं उन्हें इन विस्फोटक पदार्थों को हस्तांतरण न किया जाए।

(iii) परमाणु अस्त्रों पर उन राष्ट्रों को नियंत्रण हस्तांतरित करने से रोकना, जिनके पास परमाणु अस्त्र नहीं हैं।

(iv) परमाणु अस्त्रों को अन्तरिक्ष में नये युद्ध-सैध्यों के बीज बोने से रोकना।

(v) इस समय तक जो परमाणु अस्त्र बन चुके हैं उन्हें धीरे-धीरे नष्ट करना और उनमें लगी सामग्री को शांतिपूर्ण कामों में प्रयुक्त करना।

(vi) परमाणु अस्त्रों को सेवाने वाले सामरिक महत्व के वाहनों से उत्पादन और प्रतीमित परीक्षण पर रोक लगाना व धीरे-धीरे उन्हें भी नष्ट करना।

राष्ट्रपति केनेडी और प्रधानमंत्री बूरनेस इन दोनों दूरदर्शी नेताओं के सहयोगपूर्ण रक्त के कारण अन्त में २३ जुलाई, १९६३ को तीन प्रमुख परमाणु शक्तियों—संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और सोवियत संघ के बीच एक परमाणु-परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। बाद में फ्रांस और जनवादी चीन को छोड़कर विश्व के लगभग अन्य सभी राष्ट्रों द्वारा इस संधि पर हस्ताक्षर कर दिए गए। इस संधि का विस्तार से बर्लिन 'निःशस्त्रीकरण' नाम अध्याय में किया जा चुका है। इस संधि से कुछ ही दिन पूर्व १५ अगस्त १९६३ को संयुक्त राज्य अमेरिका व सोवियत संघ ने सीबा टेल्मीफोन और रेडियो सम्पर्क स्थापित करने का समझौता (U S-Soviet Hot line Agreement) हुआ जिसका उद्देश्य न्यूवा बीसे संकटों के समय दोनों देशों में सीबा सम्पर्क स्थापित करके मस्ती से या आकस्मिक घटना से सिद्धने वाले युद्ध के संकट का निवारण करना था।

राष्ट्रपति केनेडी के समय उपरोक्त दोनों ही महत्त्वपूर्ण समझौतों से शीतयुद्ध के तनाव में बड़ी कमी हुई। दुर्भाग्यवत् इस प्रतिमाधान नेता की २२ नवम्बर, १९६३ को हत्या हो जाने से विश्व की भावी शान्ति की प्रागापों को बड़ा आघात पहुंचा।

(ब) केनेडी की शक्ति अमेरिका के प्रति नीति—

अप्यति के लिए देशों

शक्ति अमेरिका के प्रति राष्ट्रपति केनेडी ने अत्यन्त उदार और मैत्री

पूर्ण नीति अपनाई। वैसे द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका और लैटिन अमेरिका के देशों के पारस्परिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए १९४८ में 'अमेरिकन राज्यों के संघटन' (O.A.S.) की स्थापना की जा चुकी थी परन्तु वहाँ केनेडी से पूर्व इस संघटन में सैनिक तथा कूटनीतिक सहयोग पर अधिक बल दिया जाता था वहाँ केनेडी ने प्राथिक सहयोग पर अधिक बल दना पुरु किया। १३ मार्च १९६१ में उन्होंने धीवर्धकारिक रूप से अमेरिकन गणराज्यों के राजनयिक प्रतिनिधियों के समक्ष 'प्रगति के लिए संधि' (Alliance for Progress) का प्रस्ताव रखा। इसके अन्तर्गत कहा गया कि अन्य स्वतंत्र देशों विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं और व्यक्तिगत पुरुष्बीषितियों के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका लैटिन अमेरिका के प्राथिक विकास एवं जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए २० हजार मिलियन डॉलर की सहायता तथा ध्यान देना। अपने उद्घाटन भाषण में राष्ट्रपति केनेडी ने पश्चिमी सोसाइटी के राष्ट्रों के प्रति एक विश्वास प्रकटित किया कि वे संयुक्त राज्य अमेरिका के 'अन्धे लक्ष्यों को प्रगति के लिए संधि के रूप में अन्धे कामों में परिणत करके जिससे स्वतंत्र लोगों तथा स्वतंत्र सरकारों को निर्धनता की लुत्तरी तोड़ फेंकने में सहायता दी जा सके।"

बी केनेडी ने 'प्रगति के लिए संधि' प्रस्ताव रखते हुए अपने भाषण में लैटिन अमेरिका के प्रति संयुक्त राज्य की नीति पर विशेष प्रकाश डाला। उनका यह भाषण निम्नलिखित रूप में था—

'हमारा काम समस्त विश्व को यह दिखाना है कि प्राथिक प्रगति और सामाजिक न्याय की मनुष्य की अपुन आकांक्षाओं की पूर्ति प्रजातांत्रिक पद्धतियों के समुच्च स्वतन्त्रतापूर्वक बन कर ले हो सकती है। अगर हम अपने मोताब्द में अपनी जनता के साथ ऐसा कर लिये हैं तो भी हमें महान वैश्वीयन दक्षिण अमेरिका केनेडी ने यह सन्धिवाणी पूरी करनी है कि प्रजातन्त्र प्राची मानवता की करम गाँव है।

इसलिए भीत इस मोताब्द क सभी लोगों को प्रगति के लिए इस सभी संधि-सन्धियायक, पाराएन प्रोग्राम-में शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया है। यह एक विशाल सहकारी प्रयास है जो विकासता तथा सन्धिशयता में अपनी शक्ति मही रचना विगत २५ अमेरिकी लोगों की पर काम तथा नुमि हन' य तथा स्तुत की इतिहासी प्राथम्यतायें पूरी करना है।

अने प्रस्ताव है कि अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति अमेरिकी लोगों के लिए एक नया नई इस संधि-प्राथम्यतायें प्रारम्भ कर। यह योजना ऐसी है कि बीसवीं शती का यह मानवी अन्धे अन्धकारिक दशक बन जाए।

यह एक शान स्थापित कर है कि अन्य अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रों के दृष्ट निश्चय के साथ किए गए प्रयास हैं। इस प्रयास को सफल बना लयें। वे अन्त में ही, अन्त मानवी संधि कर सफल * अपनी जनता का सन्धिया का जुटा कर * और अपनी समाज-व्यवस्था में परिवर्तन कर सकते हैं जिससे मनी, न

की बाह्य सौभाग्यशाली विकास के सुफलों को बल सके। अगर ये प्रयत्न किये गए तो बाहरी सहायता भी प्रगति के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न प्रदान कर सकेगी। इसके बिना बाह्य की कठिनी ही बड़ी सहायता मिले जनता का सम्मान नहीं हो सकेगा।

अगर हमारी मैत्री सफल होती है, तो प्रत्येक दक्षिण अमरीकी यात्रा ऐसी हो जिसमें लक्ष्य तथा प्राथमिकताएँ निर्धारित की गईं हो जिनसे मुझ सम्बन्धी स्थिरता आए, महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनों के लिए तंत्र की स्थापना हो गैर सरकारी गतिविधि तथा पहल करने की भावना को प्रोत्साहन मिले तथा अधिकतम राष्ट्रीय प्रवास सम्भव हो। ये योजनाएँ हमारे विकास प्रवास की नींव होंगी तथा बाहरी साधनों के उपयोग का आधार होंगी।

हमें प्राथमिक एकीकरण के सभी प्रयासों का समर्थन करना चाहिए जो कि प्राथमिक बहू-बाजारों तथा प्राथमिक प्रतिव्योपिता के प्रवर्धन की दिशा में अग्रणी कदम होगा। दक्षिण अमरीका की प्रवर्धनस्थापना का टुकड़ों में बटा रहना प्राथमिक प्रगति के लिए बहुत बड़ी बाधा है। मध्य अमरीका साम्राज्य तथा दक्षिण अमरीका के स्वतंत्र व्यापार-तंत्र सटीक योजनाएँ इन बाधाओं को दूर करने में सहायक हो सकती हैं।

हम उत्कलन जालि के लिए 'साक्षात्' का प्रावधानीत कार्यक्रम बढ़ा सकते हैं जिससे बार-बार सूखा पड़ने वाले इलाकों के लिए अन्वेषण बनाए जा सकें अथवा का स्तूपों में दोपहर का जाला देने में सहायता, बी जा सके तथा आम सुधार के लिए जाल को अन्न दिया जा सकें क्योंकि सूखे स्थिति तथा स्थिर प्राथमिक विचार-विमर्श अथवा कूटनीतिक बैठकों की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते। उनकी आवश्यकता तार्किक है तथा उनकी पूरकता उन लोगों की भावना पर बड़ा कुप्रभाव पड़ता है।

इस गोसाईं के सभी देशों को विज्ञान के दिन होने बढ़ने वाले अमलकारों में भागीदार बनने दिया जाय। ये अमलकार ऐसे हैं कि ये मानव के कल्पना शक्ति पर छा गये हैं उसकी असाध्यता की अन्वेषण श्रुती की है तथा धीरे प्रगति के उपकरण प्रदान किये हैं। मैं दक्षिण अमरीका के अन्वेषकों को अन्वेषण जालि नीति की एक असाध्य विज्ञान तथा असाध्य करण के उद्योगों में कई परिभाषाओं पर काम करने के लिए और इन तथा अन्य उद्योगों के लिए प्राथमिक प्रयोगशालाओं की योजनाएँ बनाये तथा अमरीकी अन्वेषणशालाओं एवं प्रयोगशालाओं के मध्य सहयोग को सुदृढ़ बनाने के लिए प्राथमिक करता हूँ।

विज्ञान के अन्वेषकों का प्रतिफल हम के अपने कार्यक्रमों का बहाकर हम दक्षिण अमरीकी अन्वेषकों का ही प्रतिफल देना चाहत है जिससे अन्य अमरीकी देशों में इस प्रकार के कार्यक्रम स्थापित करने में सहायता मिले और नीतिकी, स्थापनास्थल तथा अन्वेषणस्थल के मिलान की जो नहीं

नायिका की बस्तुयें गुप्त हैं वे उन्हें भी प्राप्त हो सकें और सभी राष्ट्रों के मुचकों को विज्ञान की प्रगति में अपने दोषों को दूर का योगदान करने का अवसर मिले ।

हमें उन लोगों के प्रतिक्षण की व्यवस्था में तेजी से विस्तार करना चाहिए जिन्हें तेजी से विकसित हो रही धर्म व्यवस्थाओं का काम सम्हालना है । इसका धर्म होना ऐकीकृत दृष्टि के कार्यक्रमों का विस्तार, जिसके लिए, बड़ा आवश्यकता हो शक्ति देना के स्वयंसेवकों की सेवाएँ सुलभ होंगी । इसका धर्म दक्षिण अमरीका के विश्व विद्यालयों महा विद्यालयों तथा मरीयणा-नस्वाओं को महायुवा देना भी है ।

इस दक्षिण अमरीका के अपने मित्रों को संगठन राज्य अमरीका के जीवन तथा संस्कृति को समृद्ध करने में योगदान देने को प्रामत्नित करते हैं । हमें आवश्यकता है कि आपके साहित्य तथा इतिहास और परम्पराओं की मिठा देने वाले अध्यापक हमारे यहाँ धार्य और हमारे मुचकों को आपके विश्वविद्यालयों में पढ़ने आपके संगीत आपकी कला तथा आपके महान धार्मिकों के विचार बनाने समझने का अवसर मिले ।

इस अमरीकी महाद्वीपों की शक्ति को पूर्ण करने तथा इस योजना के ऐसा बनाने का काम पूर्ण करना चाहते हैं बड़ा सभी व्यक्तियों को उपरुत जीवनस्तर प्राप्त हो तथा सभी सम्मान तथा स्वतंत्रता के साथ रह सकें ।

इस राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी घाने चाहिए क्योंकि जब तक आवश्यक सामाजिक सुधार, जिनमें भूमि तथा कर-सुधार भी सम्मिलित हैं स्वतंत्रता के साथ न किए गये जब तक हम अपने सभी लोगों के लिए अवसरों का विस्तार नहीं करते जब तक विज्ञान अमरीकी जनता वृद्धिमान समृद्धि में भागीदार नहीं बनती जब तक हमारी सेनी हमारी शक्ति हमारा स्वल्प और हमारा स्वतंत्रता निष्कल ही रहेगी । लेकिन हम में सामाजिक परिवर्तन स्वतन्त्र व्यक्ति की भाँति करना चाहते हैं बार्न शानियटन और ईकरसन को निरार तथा सान माडिन एवं माटिन की मानना के समुक्त परिवर्तन करना चाहते हैं ऐसा परिवर्तन नहीं करना चाहते जिससे व्यक्ति प्रायाचार के मुद्दे के नीचे सब जाए जिसे कि हमने देह सदी पहले जगार ईका या । हमारा धार्मिक सर्व्व की भाँति प्रगति हो प्रायाचार नहीं हो रहेगा ।

घर १७ अक्टूबर १९६१ को श्री कॅनेडी राजनयिक प्रतिनिधियों के समल यह रिपोर्ट प्रस्तुत कर गये-

प्रगति के लिए ग्रीनी को इन सुगरी वर्गबान पर मैं इन पला अन्वय में की गई प्रगति से बड़ा इतिहास हुआ है । दक्षिण अमरीका के देशों में एक सामान्यपूर्ण शक्ति का रही है जिसमें इन योजनाओं में हमारे कराओं अमरीकी मादियों को अन्वय जीवन घाने की धाना शीघ्र ही ।

पहले दो वर्षों में हुई प्रगति तो नुक़्सात-मात्र है। लेकिन यह बहुत ही ज़ानवार है। लगभग एक लाख बालीस हजार नये मकान बना दिये गये हैं, गन्ती बस्तियाँ साफ़ करने की परियोजनायें शुरू की गई हैं, घाट हजारों नयी कक्षाओं की इमारतें बन गई हैं, साठ सौ अधिक नई जल प्रभावियाँ बना दी गई हैं जहाँ पानी में मच्छरी के कारण बिमारियाँ व्यापक रूप से फैलने का खतरा था अनेक देशों में भूमि-सुधार तथा ऊर-सुधार के काम शुरू किये गये हैं, एक लाख साठ हजार से अधिक कृषि मजदूर विदेश गये हैं तथा बालीस लाख से अधिक स्कूल-पुस्तकें वितरित की गई हैं। दो सप्ताह बाजार करारों का नई प्रस्ताव मिला रही है। विश्व के बाजार में कच्ची के भाव स्थिर करने के लिए अन्तिकारी कदम उठाया गया है। जर्मनी के लिए 'बाघ' कार्यक्रम के अधीन घठारह देशों में नये जाल से अधिक बच्चों को साना दिया जा रहा है तथा सड़क-निर्माण-कार्य खासकर कुछ कृषि-क्षेत्रों में तेजी के साथ चल रहा है।

प्रारम्भ के दो वर्षों तो नुक़्सात मात्र है। लेकिन मेरी ये भाषा है कि मेरे देश के लोग तथा हम योसाय के अन्य देशों के लोग इस महाद्वीप को इस मोसाय को यहाँ क रखने वाले हम सब लोगों के लिए स्रोत का तथा समस्त विश्व के लिए प्रेरणा-स्रोत बनाने के इस महान अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास के लिए मिलकर काम करते रहेंगे।"

यह मैं यही कहना होगा कि राष्ट्रपति केनेडी के प्रयासन काल में यद्यपि अमेरिका की विदेश नीति के आधारभूत सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं हुए, किन्तु उन सिद्धान्तों में केनेडी के मानव-वी पीर ज्ञान्तिप्रिय विचारों का नया रचनात्मक रंग भरने आने से उन्हें एक नया निज़ार अर्थव्यय मिल गया।

अमेरिका की वर्तमान विदेश नीति

(१९६३ के बाद राष्ट्रपति जॉनसन के काल में)

२२ नवम्बर, १९६३ को राष्ट्रपति केनेडी की हत्या के बाद तत्कालीन उपराष्ट्रपति लिण्डन बॉनसन संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बने और बाद में १९६४ के निर्वाचन में विजयी होकर पुनः इस पद पर नियुक्त हुए। राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के तुरन्त बाद ही श्री जॉनसन ने घोषणा की कि वे विदेश नीति के क्षेत्र में विरुद्ध राष्ट्रपति केनेडी के पद चिह्नों पर ही चलेगे और अमेरिकन विदेश नीति के मूल में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

राष्ट्रपति जॉनसन की घोषणा प्रारम्भ में तो बहुत कुछ यथार्थ ही प्रतीत होती थी किन्तु जब तक कि उनका कार्यकाल के इतिहास में उनकी घोषणा की यथार्थता का जयजय नहीं किया है। अमेरिका के वर्तमान प्रशासन के विदेश नीति की निम्नलिखित प्रमुख पहलुओं का संदर्भ में देखा जा सकता है—

(क) जर्मनी और बर्लिन के एकीकरण का प्रश्न

जर्मनी और बर्लिन के प्रश्न पर अभी तक दोनों पक्षों (अमेरिका एवं रूस) के मध्य में सन्तुष्टि नहीं हुई। यह बताया जा चुका है कि युद्ध के बाद से ही जर्मनी दो राज्यों में तथा बर्लिन चार भागों में बंटा हुआ बना आ रहा है। तब से लेकर अब तक जर्मनी के बर्लिन के एकीकरण के सम्बन्ध में अनेक बार अमेरिका व सोवियत संघ के बीच बातचीत हो चुकी है। समस्या का निराकरण करने के लिए दोनों पक्षों ने अपने अपने तुल्यक देय किये हैं परन्तु इसके बावजूद भी समस्या अभी तक इस गहरी ही पामी है। इस समय बर्लिन से ८०-१०० मील पश्चिम में उत्तर से बर्लिन की ओर सीधी जाने वाली एक रैला से दोनों जर्मन राज्य बियक्त होठे हैं। इस रैला के पश्चिम में पश्चिमी जर्मनी का 'जर्मन संघीय गणराज्य' (German Federal Republic) है और पूर्व में पूर्वी जर्मनी का 'जर्मन लोकतंत्रीय गणराज्य' (German Democratic Republic)। पश्चिमी जर्मनी पश्चिम का प्रथम पक्षपाती है जबकि पूर्वी जर्मनी सोवियत संघ का प्रभाव क्षेत्र है। दोनों ही राज्यों में धार्मिक अल्पसंख्यकों की सम्पत्तियाँ तथा जन संख्या की दृष्टि से पश्चिमी राज्य बड़ा बड़ा है।

१९५४ में २३ जनवरी से १५ फरवरी तक दोनों भागों के एकीकरण के लिए बर्लिन में विदेश मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ। यहाँ विदेशी शक्तियों ने निम्न बातों पर बस किया—

(i) जर्मनी के दोनों भागों में तथा बर्लिन में स्वतंत्र संसदान्तरण द्वारा सन्विधान परिषद का निर्वाचन किया जाय।

(ii) यह परिषद् एक केन्द्रीय जर्मन सरकार की स्थापना करे।

(iii) यह सरकार विजेता शक्तियों के साथ सीधे करे और यह पीसबन्द तथा रूस द्वारा हथियारों के जर्मनी प्रदेशों का सन्विधान संशोधन करे।

(iv) यह सरकार सीधे सीधे में सन्विहित शक्तों के अनुसार अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्वयं निश्चित करे।

पश्चिम शक्तियों के प्रस्तावों से प्रभावित होते हुए सोवियत संघ के एकीकरण के लिए इन बातों पर बस किया—

(i) पश्चिमी देश पूर्वी जर्मनी के 'जर्मन लोकतंत्रीय गणराज्य' को सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न राज्य स्वीकार कर लें।

(ii) पश्चिमी देश सोवियत संघ की यह बात मान लें कि जर्मनी पर अधिकार करने वाले देश यह जर्मनी के एकीकरण के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

(iii) पूर्वी और पश्चिमी दोनों गणराज्य एकीकरण के लिए आपस में सीधी बातचीत करें।

(iv) यह बातचीत हुए निश्चित अर्थों या मान्यताओं के आधार पर हो जो इन प्रकार होंगी—दोनों राज्यों की सरकारों का बना रहना

सोवियत क्षेत्र में कम्युनिस्ट संस्थाओं की सुरक्षा वान के संघीय जर्मन गणराज्य का नाटो से पुनर्क होना तथा पश्चिमी देशों की सेनाओं का जर्मनी के प्रवेश से हट जाना ।

दोनों पक्षों की शक्तों की तुलना से स्पष्ट है कि पश्चिमी शक्तियों का बल दोनों देशों के सम्मिलित चुनाव कराने पर था क्योंकि पश्चिमी राज्य की आबादी पूर्वी क्षेत्र से तिगुनी होने के कारण उन्हें वांछित परिणाम निकालने के विषय में जगमग कोई सन्देह नहीं है । पश्चिमी शक्तियों का विश्वास है कि संयुक्त जर्मनी निश्चित रूप से पश्चिम का समर्थक होगा और इसका अर्थ होगा यूरोप में सोवियत सीमान्त का २०० मील पूर्व में बसा जाना पूर्वी जर्मनी में विद्यमान रूस के २ डिविजनों का पूर्वी पोसीष्क में हट जाना पश्चिम पर धाकधण के लिए प्रत्येक राष्ट्र फेंकने के प्रयत्नों का पीछे हटना और साथ ही पूर्वी यूरोप में कभी समर्थक राज्यो पर बुरा प्रभाव पड़ना । साफ जाहिर है कि ऐसे परिणामों को जन्म देने वाले पश्चिमी प्रस्ताव को मास्को स्वीकार नहीं कर सकता । दूसरी ओर रूस की एरीकरण की शर्तें पश्चिम को इसलिए मान्य नहीं हुई क्योंकि यदि इसके धा १२ पर संधि हो जाय तो जर्मनी का एकीकरण करने पर सारा रूस साम्यवादी हो जायगा पश्चिमी देशों की नीमा राइन नदी पर धा जायगी पश्चिमी जर्मनी क प्रमुख पौखोगिक केन्द्र सोवियत रूस क हाथ में चले जायेंगे और सोवियत सब क तैतुल्य में उसकी शक्तिशाली सेना हिंसर की भांती सेना की भांति पश्चिम के लिए संकट बन जायगी ।

रूस और पश्चिमी शक्तियों दोनों ही के प्रस्तावों के परस्पर टकराने के कारण जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सका । जहाँ तक बर्लिन का प्रश्न है पश्चिमी शक्तियाँ यथास्थिति को कायम रखने के पक्ष में रही हैं जबकि सोवियत रूस का मुझाव रहा है कि जब तक जर्मन समस्या का हल नहीं हो जाता तब तक उसे स्वतन्त्र मर सोवियत करके उसका विघ्नीकरण कर दिया जाय । बू कि दोनों पक्ष एक दूसरे की शक्तों को मानने की तयार नहीं हैं यत यह प्रमस्या भी अभी तक सटकी हुई है ।

जर्मनी के प्रश्न पर सोवियत रूस और अमेरिका के मौलिक मतभेद तब अधिक उग्र हो गये जब मई, १९३३ में पश्चिमी जर्मनी का नाटो का सदस्य बना लिया गया और मार्च १९३८ में अमेरिका ने पश्चिमी जर्मनी को आणविक धातुओं तथा प्रक्षेपणास्त्रों से मुसस्त्रित करने का फैसला किया । क्रुपित होकर मई, १९३८ में श्री एडवेंड ने घोषणा की कि—“पश्चिमी जर्मनी क आणविक सस्त्रों से मुसस्त्रित होने से जर्मन राष्ट्रीय एकता सम्पन्न करने का बचा हुआ एकमात्र सुला दरजाजा भी कस कर बन्द कर दिया गया है ।

१० नवम्बर, १९३८ का श्री एडवेंड ने यह घोषणा की कि— संयुक्त बर्लिन जर्मन मोठतन्त्रीय गणराज्य के प्रदेश है इस क्षेत्र पर इस गणराज्य की सर्वोच्च प्रमुदा है । इसके पश्चिमा भाग पर पश्चिमी शक्तियों के अधिकार का कोई कानूनी आधार नहीं है । धनएव सोवियत सरकार ने यह दिशारे दिया

है कि बलिन में बिदेसी शासन को समाप्त कर दिया जाय। साम्यवादी सरकार पश्चिम के साथ इस विषय पर बातलाप करने को तैयार है। साम्यवादी संघ चाहता है कि पश्चिमी बलिन को निस्सैन्य (Demilitarized) स्वतन्त्र नगर बना दिया जाय और यह परिवर्तन ६ महीने के भीतर सम्पन्न हो जाय ताकि इस नगर का साम्यवादी विरोधी वायुमयी के लिए प्रबोध बहुत अधिक बिना के लिए न किया जा सके।" सोवियत रूस ने यह भी बोधसा की कि यदि पश्चिमी देशों ने पश्चिमी बलिन में बने रहने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग किया तो साम्यवादी संघ को भी कुछ करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। २७ नवम्बर को रूस ने इस विषय में अपने निस्तुत प्रस्ताव पश्चिमी देशों के सामने रखा किन्तु सोवियत संघको से सर्वथा अप्रभावित रहते हुए उन्होंने कहा कि बलिन में उनकी वर्तमान स्थिति ३ जून १९४३ के पोर्टस्मथ के तथा ४ मई, १९४६ को बलिन-बेरे को समाप्त पर हुए समझौते के अनुसार है।

३१ दिसम्बर, १९३८ को पश्चिमी देशों (संयुक्त ब्रिटेन व अमेरिका) में बलिन के प्रश्न पर बर्नो और ब्रुसीलस सुरक्षा की व्यापक पृष्ठभूमि में विचार करना स्वीकार कर लिया। १ जनवरी १९३९ को सोवियत रूस द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि समस्या पर विचारार्थ बातलापियों का एक विश्व सम्मेलन आयोजित हो। किन्तु पश्चिमी देशों ने प्राग्रह किया कि विश्व सम्मेलन से पूर्व बरराट्टमन्त्रियों का सम्मेलन होगा चाहिए। १९ मार्च १९३९ को सोवियत संघ ने इन पश्चिमी प्रस्ताव के प्रति अपनी सहमति दे दी।

११ मई १९३९ को संयुक्त राष्ट्र लघु के तत्वावधान में चारों देशों के बिदेस मन्त्रियों का सम्मेलन आरम्भ हुआ। अमेरिका की तरफ से क्रिश्चियन ह्यूट, रूस की तरफ से माइकल मोमिको ब्रिटेन की तरफ से सेल्विन वायड तथा फ्रांस की ओर से कुवेक मरवील (Covede Marville) इस जैसे सम्मेलन में शामिल हुए। सम्मेलन के प्रारम्भ में पश्चिमी देशों ने संयुक्त रूप से बर्नो एकीकरण के लिए कुछ प्रस्ताव रखे जिन्हें अस्वीकार करते हुए मोमिको ने कहा कि पहले शांति संधि की ज़रूरत है क्योंकि ऐसी संधि के अभाव में ही पश्चिमी वर्मनी प्राणविक घातकों से मुसजित होकर और उत्तरी पटलाटिक बंधि संबन्धन का तदर्थ बन कर यूरोप में तबाह उत्पन्न कर रहा है। ६ जून को बलिन विषयक कर्ती प्रस्तावों पर बार्ता में पठितोच पैदा हो गया। वे प्रस्ताव इस प्रकार थे—

(i) एक वर्ष के बाद पश्चिमी बलिन से पश्चिमी देशों का सम्बन्ध समाप्त हो जाना चाहिए। एक वर्ष की अवधि तक के कुछ सीमित अधिकारों का सम्मोच वच लभते हैं।

(ii) इन बीच में (इस एक वर्ष की अवधि में) पश्चिमी देश वहाँ अपनी सैन्य कम करें, कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार पर प्रतिबन्ध सपायें और कम्युनिस्ट विरोधी वायुमयी और छोड़-छोड़ करने वाली तत्प्रायों को समाप्त कर दें तथा वहाँ प्राणविक घबरा राकेट छोड़े नहीं बनायें।

(iii) एक वर्ष के भीतर पश्चिमी और पूर्वी बालन की एक बलित जर्मन समिति बनायी जाए, इसमें दोनों जर्मन राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या समान हो यह दोनों राज्यों में सम्पर्क बढ़ाये तथा एकीकरण एवं शांति के प्रस्ताव तैयार करे। श्री थोमिस्को ने कहा कि यदि पश्चिम दो वर्ष के भीतर इन शर्तों के आधार पर समझौता करने में सफल होगा तो सोवियत रूस पूर्वी जर्मनी के साथ खाति-संधि कर लेगा।

पश्चिमी राष्ट्रों ने सोवियत प्रस्तावों को ठुकराते हुए उन्हें (प्रस्तावों को) पस्टीमेटम की संज्ञा दी। अमेरिका ने प्रस्तावों को 'पूर्णतया बस्वीकार्य' कहा। सोवियत प्रस्तावों के प्रस्तुतार में पश्चिमी देशों ने बलित के सम्बन्ध में ये प्रस्ताव रखे—

(i) पश्चिमी देश बलित में बिद्यमान अपनी ११ हजार सेना में कटि नहीं करेंगे। यदि स्थिति अनुकूल रही तो इसमें कमी करने का विचार किया जा सकता है। इन सेनाओं को साधारण हस्त्र ही दिये जायेंगे।

(ii) रूस द्वारा पश्चिमी बलित को जाने वाले स्वधीय जर्मनीय और आकासीय मार्गों का नुसा रकने की गारण्टी दी जाय।

(iii) पश्चिमी देश पारस्परिक आधार पर इस बात के प्रति सहमत हैं कि वे विरोधी प्रचार यथा ठोड़फोड़ की कार्यवाहियों की भाँव करेंगे।

चूँकि दोनों ही पक्षों को जर्मनी व बलित के सम्बन्ध में रखे गये एन यूसर के प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुए अतः ११ जुन को यह सम्मेलन १३ जुलाई १९४६ तक के लिए स्थगित हो गया। १३ जुलाई से ३ अगस्त १९४६ तक विदेश मंत्रियों का पुनः सम्मेलन हुआ किन्तु बलित समस्या का कोई समाधान नहीं निकल सका और अन्तस्वरूप सम्मेलन विफल हो गया। अत्यन्तार्थ मई १९४० के तिलर सम्मेलन में इस समस्या पर विचार किया जाना निश्चित हुआ किन्तु यू-२ विमानकाण्ड हो जाने के अन्तस्वरूप तिलर सम्मेलन की प्रेरण हट्या हो गयी और उसमें किसी प्रकार का विचार-विमर्श नहीं हो सका।

तब से लेकर अभी तक जर्मनी और बलित का प्रश्न समाधान के लिए घटका हुआ है। राष्ट्रपति जॉनसन के प्रजासत्त ताम में श्री मंयुक्त राज्य अमेरिका की नीति लगभग वही है जो पहले थी। अमेरिका चाहता है कि जर्मनी के दोनों भागों में और बलित में स्वतन्त्र मतदान द्वारा विधान निर्मात्री सभा चुनी जाए और यह सभा एच केन्द्रीय जर्मन सरकार की स्थापना करे। यही सरकार विदेशी बलितियों के साथ संधि करे और इसमें वोलकण्ड एव रूस द्वारा हथियाये गये प्रेणों का अग्रिम बटवारा हो। इसके विपरीत सोवियत रूस भी पहले ही के समान यही है कि पश्चिमी देश पूर्वी जर्मनी को एक प्रमुख सम्पन्न राज्य स्वीकार कर लें और फिर पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी के दोनों अणुराज्य बनने एकीकरण के लिए परस्पर प्रत्यक्ष बातों करे। दोनों ही

पक्षों की ओर से बर्तन एकीकरण के लिए रचनात्मक उपाय अपनाए जाने की अपेक्षा कूटनीतिक दावपेंचों से उलझे हुए सुझाव पेश किये जाते हैं जिनसे समस्या का समाधान निकट भविष्य में हाता दिखायी नहीं पड़ता ।

(क) साम्यवादी चीन की मान्यता का प्रश्न

पहले ही क समान धारा की अमेरिका और रूस की तनावनी का एक बड़ा कारण साम्यवादी चीन की मान्यता को लेकर है । अमेरिका और मोल्डा को कम्युनिस्ट-ब्लॉक की अगुआई राष्ट्रवादी सरकार को ही सम्पूर्ण चीन की संघ सरकार मानता है और उसे ही समूचे राष्ट्र संघ में सर्वस्यता मिली हुई है । वह सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य । इसके विपरीत सोवियत रूस की मान्यता है कि माओ चीन को जिसके नियंत्रण में चीन की मुख्य भूमि है, संघ की सदस्यता प्रप्तनी चाहिए और अमेरिका को उसे मान्यता देनी चाहिए । औनसम प्रकाशन की विदेश नीति पहले ही ५ समान इस प्रश्न पर धट्टिय है और यह मानती है कि जिस माओ चीन न मात्र एक हिस्सा और युद्ध का यह रा लिया है, समूचे राष्ट्र संघ से युद्ध किया है, विपक्ष का स्वतन्त्रता का अर्थ ही किया है और जो अमेरिका के विनाश की बात करता है उस सब में प्रवेश क योग्य एक अतिविध राष्ट्र नहीं माना जा सकता तथा अमेरिका उसे मान्यता नहीं दे सकता ।

(ख) निःसस्त्रीकरण

इस क्षेत्र में कनेडी के प्रस्तावत काल में जो प्रवृत्ति हुई थी उसके बाद से कुछ समय पूर्व तक किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं की जा सकी थी । पर माओ अस्त्रों के प्रकार पर रोक लगाने के लिए जेनेवा में एक सम्मेलन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन चल रहा था वह ऊपरी २ सम्मेलन सो ही बला था कि अगस्त १९६० के अन्तिम सप्ताह में अमेरिकन प्रतिनिधि फ्रास्टर एवं सोवियत प्रतिनिधि राफिन न यह एतल किया कि सचि के मसविदे के बारे में सोवियत संघ और अमेरिका में सीधे तौर पर एक सम्मेलन हो गया है जिसके अनुसार होने वाली सचि का मसविदा (Draft) इस प्रकार का है कि परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्र परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्रों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने न किसी प्रकार की महायता नहीं हों सचि पर हस्ताक्षर करने वाले परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्र परमाणु अस्त्र बनाने की कोशिश नहीं करेंगे किन्तु उन्हें धार्मिक कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास करने की पूरी छूट रहेगी । जोरणा में यह बताया गया कि परमाणु अस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सम्बन्ध में अभी सम्मेलन हाता बानी है । यद्यपि इन योग्यता से निःसस्त्रीकरण के धर्म में कुछ प्रवृत्ति का संकेत अद्यत्य मिलता है किन्तु अब तक सचि के प्रारूप को अन्तिम रूप दिया जाकर उध पर हस्ताक्षर नहीं हो जाते तब तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । फिर सचि का प्रस्तावित प्रारूप कुछ व्यवस्थाओं ५ धारा में विनियम मरुतपूर्ण नहीं है क्योंकि सचि प्रारूप में नहीं थी यह नहीं बताया गया है कि यदि किसी देश को परमाणु अस्त्रविहीन राष्ट्र पर कोई परमाणु अस्त्रवादी राष्ट्र हस्ताक्षरता है तो हस्ताक्षर करने वाले देश उससे अस्त्र की क्या व्यवस्था करेंगे ? फिर

परमाणु प्रसूतों के परीक्षण पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई समझौता न होने की बात कही गई है। इस तरह स्पष्ट है कि फ्रान्स किसी ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की परिकल्पना भी नहीं कर सकी है जो किसी परमाणु प्रसूत बिहिन राष्ट्र का परमाणु प्रसूत बनाने से रोक सके जो विभिन्न देशों के परमाणु शक्ति के विकास के कार्यक्रमों का निरीक्षण और नियंत्रण करके यह गारंटी दे सके कि घसैनिक उपयोग के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सैनिक उपयोग में नहीं धामया और जो इस्ताखर करने वाले परमाणु शक्ति बिहिन राष्ट्रों को शक्तिपूर्ण उपयोगों के लिए परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों से परमाणु शक्ति के बारे में प्रासवक जानकारी और सामग्री बिता सक।

इसके अतिरिक्त किसी भी निःसस्त्रीकरण व्यवस्था परमाणु प्रतिबंध संधि का व्यावहारिक महत्व जब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कि फ्रान्स और चीन उसने सम्मिलित न हों। चीन की बढ़ती हुई परमाणु शक्ति तो स्वयं स्वयं और अमेरिका के लिए भी सिरबढ़ हो रही है।

(ब) बियतनाम के सम्बन्ध में जानसत प्रशासन की नीति

बियतनाम की समस्या पर बिस्तार से विचार 'दक्षिण पूर्वी एशिया' के अध्याय में व्याख्यान किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि बियतनाम पर जानसत की विदेश नीति आजामक एवं प्रासवकता की पात्र रही है। अगस्त १९६४ से ही अमेरिका दक्षिणी बियतनाम की ओर स इतने बिज्ञान सैन्यबल को भेज कर उत्तरी बियतनाम के विरुद्ध संघर्षरत हुआ है कि आज यह युद्ध हगोई और वासिगटन का युद्ध बन गया है। इस युद्ध का अर्थ है कि हगोई को भी चीन और रूस से पर्याप्त मात्रा में अस्त्रास्त्र उपलब्ध हो रहे हैं। परन्तु संघर्ष में धामने धामने कुछ दक्षिण बियतनामी व अमेरिकन सैनिक और उत्तरी बियतनामी ही रहे हैं। बियतनाम युद्ध के प्रति जानसत प्रशासन का इस स्वयं अमेरिका में धामनी धामनी का पात्र बना हुआ है। यदि अमेरिका उत्तरी बियतनाम पर अपनी बिनाशकारी बमबर्षा बन्द करके सहयोग का रचनात्मक बातावरण पैदा करे तो युद्ध-बिराम होकर समझौते का मार्ग सिद्धित रूप से प्रसन्न हो सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने उत्तरी बियतनाम पर भी जाने वाली बमबर्षा को बन्द करने की संयुक्त राष्ट्र संघीय महासभिय की अनेक धमनीयों पर भी ध्यान न देते हुए अपने बुराबह का ही परिचय दिया है। जो वर्ष से अमेरिका ने प्रबल बमबर्षा द्वारा हगोई को संधि बाता के लिए बाध्य करने की कोशिश की है किन्तु इसका प्रभाव उस्ता ही पड़ा है। इन बमबर्षा ने उत्तरी बियतनाम को निरन्तर संघर्ष धामने के लिए धामनक माहग बढ़ता और संकल का ही उपहार दिया है। बियतनाम का यह युद्ध क्षेत्रीय तबो तक है जब तक कि सोवियत रूस धामना चीनी सैनिक स्वयं रगाधर में नहीं धा जाते। एक बार अमेरिकन सैनिकों की ही तरह उनसे धा जाने पर इस बात की संभव प्रत्येक धामना निराशा में बल धामनी कि तृतीय महायुद्ध का बिस्फोट न हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि जातमन प्रशासन ने विपतनाम युद्ध को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है और नाम्यकारी प्रसार के विरुद्ध यह इसे एक विद्युत् युद्ध मानता है। किन्तु मानवतावादी केमेडी के उत्तराधिकारी जातमन की यह नीति गलत है और विश्व को इसकी घोर बकसने वाली है। उनकी इस नीति में उन्हें स्वयं को अमेरिका में ही उत्तरांतर अन्तर्कषिय बनाया है और हो सकता है कि राष्ट्रपति क आगामी निर्वाचन में उन्हें इसका बड़ा मुद्दा बना चुकता पड़े।

फिर भी अब ऐसे संकेत मिलने लगे हैं कि राष्ट्रपति जातमन अपने विरुद्ध बढ़ते हुए विप्लव व अमेरिकन लोकमत को देखकर तथा विपतनाम युद्ध में लम्बे समय तक फसे रहने से अमेरिकन व्यवस्था पर पड़ने वाले कुप्रभावों की गम्भीरता को समझकर निकट भविष्य में ही विपतनाम युद्ध को बन्द करने हेतु रचनात्मक कदम उठाने को प्रेरित होंगे। यही जातमन के स्वयं के भावना से हम प्रकार की धांसा बनने लगी है।

(3) सैनिक अमेरिका और जातमन प्रशासन

जातमन प्रशासन के अस्तित्व सैनिक अमेरिका अपनी आर्थिक और आनाजिक स्थिति बरकरार रखने की विपणन व परिभाषण से प्रसन्न है। वर्गीय राष्ट्रपति केमेडी ने इस क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि के लिए मार्च 1991 में 'प्रगति के लिए पैंती' (Alliance for progress) का कार्यक्रम प्रारम्भ किया था किन्तु जातमन प्रशासन इस कार्यक्रम की प्रभावकारी रूप में कार्यन्वित करने में असफल रहा है और उसकी मौलिक नीति यही है कि राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों की मौलिक दूरी का साम उठाते हुए सैनिक अमेरिका को दूर तरह से अमेरिकन प्रभाव क्षेत्र में रखा जाए। यह वास्तव में एक बुलन्द उष्ण है कि आकार में भारत से शीघ्रता यह महाद्वीप उन सभी विपतनामों से पीड़ित है जिनसे कि अफ्रीका या बसिली एशिया के देश लयमग 25 करोड़ की आबादी वाले इस महाद्वीप के देशों की आर्थिक प्रगति के लिए अमेरिका के अवाकमान में समर्थित किया गया 'प्रगति के लिए पैंती कार्यक्रम' अपने उद्देश्य को पान में असफल ही रहा है। कई अरब डॉलर की आर्थिक सहायता इन रूप में प्रदान की गई है या इस सहायता कार्यक्रम को एक तरह का प्रिया गया है कि इन महाद्वीप की आर्थिक समृद्धि बढ़ने की बजाय घटी ही है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उसका हिस्सा लयमग 3% पर कर 1.5% बढ़ गया है। अमेरिका के साथ में पसली गरीबी का ह्रास यह है कि इस महाद्वीप के 2-6 देशों में आम-पैंती व्यापार गतिशील रहने हैं। हालांकि सैनिक अमेरिका कम और चीन से हजारों मील दूर है। जपर अमेरिका आता है कि इन देशों के आकार तो उने मिले लेकिन उनकी कम से कम कीमत चुकानी पड़े। इसके लिए राष्ट्रपति जातमन सैनिक प्रशासनों को भी उताता है और मार देते हैं जिनका कि अनुसार सैनिक प्रशासनों को भी भी उने ही अनुशा ने बोट गाजर नहीं चाहते थे कि सैनिक अमेरिका में सामान्यतः अपने सैनिक उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जातमन ने उदार नीति

झोड़कर सगठ रबैया धपताया है। उन पर हस्तक्षेप साम्यवाद के नाम से ही बहूतियामा बिड, धाधिक सुधारों का बिरोध और दक्षिण-पूर्वी ताना नाही सरकारों के प्रति पक्षपात के धारण कुने नाम बचाये जा रहे हैं। सैटिन अमेरिका के प्रति बानसन प्रशासन की नीति 'कषनी धोर करनी' क धन्तर की है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति का मूल्यांकन

संयुक्त राज्य अमेरिका की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति का उपरोक्त बिस्तृत बर्णन हमारे समक्ष अमेरिकन विदेश नीति क मूख्य तत्त्वों का स्पष्टीकरण देता है। इस बिबेचना से कुछ स्पष्ट निष्कष निकलते हैं। प्रमुख बात ता यही है कि अमेरिकन विदेश नीति में उपनिबध बिगेषी धबबा साम्राज्य बिरोधी तत्त्वों को कभी बिबेध रह्य नही दिया गया इ बहिक स्वयं अमेरिका न आधिक न सैनिक महायुता की नीति धारा। धपन प्रभाव सेन का बिस्तार कान का प्रयास किया है। सैटिन अमेरिकन सेन धीर सुदूरपूर्व स्पष्टतः ऐसे ही खेज है जहाँ अमेरिकन से आरजवादी धाकासाधों न धपना सेन तना। यही कारण है कि स्वयंसेवक पंडित महक अमेरिकन बिदत नीति का अदुधन साम्राज्य बनाने की नीति क धर उसन धा धपना धर्य। यह ठाक है कि संयुक्त राज्य अमेरिका क बिबध में कही कोई उपनिबध नही है धीर उनसे मुद्धपरालय धपन उपनिबध फिमिपाइयन को भी मुक्त कर दिया है किन्तु बिबध धर में सेने हुए अमेरिका क सैनिक धरु धीर उमक धमगत ध्यातारिक सम्बन्ध के प्रबल साधन है जिनके माध्यम से उदने पिन्धित सेनो की आधिक अरबन्धा को धपने नियन्त्रण न धर गया है। अमेरिका से धसमान आधिक धीर सैनिक धपिया होने क कारण मन्वा रन गों का यही काम करनः पड़ता है जो अमेरिकन प्रशासन का मधुर हाता है।

मध्यपूर्व क सेन को धपने अधिकार में रखने के लिए ही अमेरिका ने यहाँ का राजनीति में कुलकर हस्तक्षेप किया है। दुसरे सिद्धांत आइजनहोपर सिद्धांत धादि ता इस हस्तक्षेप को उचित ठहराने के धाबन्ध या प्रयास माध है। सुदूरपूर्व धीर दक्षिणी-पूर्वी एशिया में धपने प्रभाव को बनाने रखने लिए ही उमने चीन में क्वांगकाई सेक दक्षिणी कोरिया में मिचमन-री धीर दक्षिणी बिपतनाम में बाओशाई के अष्ट शासन को सुमा मधधन दिया है। सैटिन अमेरिका क फामिस्ट धीर अष्ट फामिस्ट भासनतंत्र उती क मधधन से धाज मक कथप है। बिबध में स्वतन्त्रता धीर प्रजातन्त्र की रला करन का धतर आधिक मक बाने अमेरिका ने स्पेन में फ्राँसी धपन पाकिस्तान में अयूब के तानाशाही शासन के साथ पूर्ण सह-सुमति बर्मादी है जबकि स्वतन्त्रता धीर जार्जि जेमी भारत के प्रति अठुना बालबाजी धीर पञ्जनापुण रबैया रया है। बाबनीर पर उमका रण धीर पाकिस्तान को धिये जाने का धेन टैंक धीर सबा नष्ट धके उदाहरण है। मक धतिरिक्त दक्षिणी अर्बेनी का धधोकरण करन धीर उसे आनुबिक धायुधों से सुमजिबत करके अमेरिका ने पाटमडन निगमों के प्रतिबन्ध धाधरण रिया है। बिपतनाम पट में धपनी धानधी गलि का प्रयोग कर के बिबध गानि को उमने ठंठ में धाज रया है। सवार

क विभिन्न सत्रों में प्रादेशिक मैनिक संगठनों की स्थापना उद्योगे यह कह कर की है कि इनसे अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के प्रसार को रोकना जा सकेगा। परन्तु इन मैनिक संगठनों की स्थापना के कारण साम्यवाद की लोकप्रियता को तो कोई विशेष घाघात नहीं पहुँचा उल्टे प्रमरिका की प्रतिष्ठा ही मनुष्ये तसार में घौर विशेषकर एशिया तथा अफ्रीका के महाद्वीपों में प्रबलित कड़ी धार्मिक कम हुई है। घौर ना घौर उनके पुराने साथी भी उसकी नीति से उब क उनके बपुस से निकलने का प्रयास कर रहे हैं। फाम्य इसका ज्वलत प्रमाण है। एशिया में अमेरिका की प्रतिष्ठा को क्लिना घाघात लगा है इसका अनुमान इमी बात से लगाया जा सकता है कि बून १९६० में राष्ट्रपति घाइनमहोबर को घपनी जापान जाता इसलिए स्वगित करनी पड़ी थी कि जापानी सरकार के निर्मंत्रण के बाबजूद जापानी जनता अमेरिका के राष्ट्रपति का स्वागत करने को तैयार न थी। स्वय एक अमेरिकन सेवक ने लिखा है कि मात्र एशिया में समुक्त राज्य अमेरिका की पहचान स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में नहीं बपितु बन्कूका से होती है।

अस्त में अमेरिकन शैक्षिक नीति घौर कल्नीति की मान्यताओं का मूल्याकन सुविस्मात अमेरिकन सेवक वास्टर लिप मीम के इन सत्रों में किया जाता अनुपयुक्त न हाया कि—

‘यह एक परलभ दुपनुछं तव्य है। क पुराप घौर एशिया दोनों ही बगह कूटनीतिक पहल कम्युनिस्ट अक्तिमो के हाथ में है। इमापी पर राष्ट्र नीति की एक बाधारमूत मान्यता कि कम्युनिस्ट किरोपी राज्यों क एक शैक्षिक बरा तैयार किया जाय बाबुनिक बग से भेस नहीं लाती। इ योजना को १९४९ ई० टू मीन घौर उसके विरुद्ध अक्षिब एक्सेसन के समय क नस समय बताया गया था जब कि हमे यह मान्य न था कि मोबियत सब ने हमारे एटमबम क एकअधिकार को तोड़ दिया है। १९४७ ई के बाव से तमाम लड़कीने मड़कीने तमझीतों क बाबजूद भी ममस्त वीर-एटमी अक्तिमा जिनमें जर्मनी घौर जापान भी शामिल हैं—अन्दर अन्दर इस लिष्क्य पर पहुँच रहे हैं कि अग्य राज्य भी मम्मिलिन हैं—अन्दर अन्दर इस लिष्क्य पर पहुँच रहे हैं कि उन्हें एक ऐसी मध्य की स्थिति ग्रहण करनी चाहिये जहा उन्हें बूसरे बुद्ध में न कलने की घाता बनी रहे। हमारी यह नीति—कि बुद्ध की स्थिति में प्रत्येक कम्युनिस्ट किरोपी घौर वर-कम्युनिस्ट बेन हमारा साथ दे—घाषकिक बाबुधो की बास्तबिकता की वृष्टमूनि मे असंगत प्रतीत होती है। यह कूटनीति घब काये निछड़ चुकी है।’

1 "It is only too painfully obvious that both in Europe and in Asia, the Communist Power have the diplomatic initiative. One basic conception of our foreign Policy in that it envisages a containing military ring of anti-Communist States-is out of date. It was worked out under Mr Truman and his Secretary of State Mr Acheson in 1949 that is to say before we knew that the Soviet Union was breaking our monopoly of the Atomic bomb. Since 1947

ब्रिटेन की बिदेस नीति

(The Foreign Policy of Britain)

अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रस्तुत एव पिछले अध्यायो म ब्रिटेन और फ्रांस के क्रियाकलापो पर बिस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है अतः अब दोनों देशों की बिदेस नीति पयबा उनके बौदेदिक सम्बन्धों पर पयासम्भव संक्षेप में ही चर्चा की जायगी । ब्रिटेन और फ्रांस दोनों को ही द्वितीय महायुद्ध में प्रबल धाबात सहने पड़े और उनक हितों को कस्पनातीन नुकसान पहुंचा । द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ब्रिटेन बिस्व की महाशक्तियों मे शीर्षस्थ स्वाम रकता था । उनक साम्राज्य मे सूर्य कभी घस्त नहीं होला था परन्तु द्वितीय महायुद्ध उसके लिए बिनाशकारी सिद्ध हुआ । युद्ध के पूर्व जो शक्ति और प्रतिष्ठा उसकी बिस्व में थी वह सुप्त हो गई और वह एक तृतीय दर्जे की राष्ट्र रह गया । द्वितीय महायुद्ध के बाद बिस्व मे महाशक्तिया केवल दो ही रह गई—संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ । ब्रिटेन राजनीतिज्ञ इस बात को मसी भांति समझ गये कि उनक राष्ट्र को अविष्य में एक लम्बे घसे तक संयुक्त राज्य अमेरिका का नेतृत्व पोज या प्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करना पड़ेगा । पहले अमेरिका और फिर रूस के आणविक अस्त्रों के आबिष्कार से ब्रिटेन की स्थिति और भी निर्बल हा गई । अब समुद्र की सहरो पर भी उसका हासन नहीं रहा और बिस्व की सर्वोच्च शी-शक्ति का स्वाम संबुक्त राज्य अमेरिका ने ले लिया । धौद्योगिक क्षेत्र में उसकी प्रगति रुक गई, व्यापार बिबिध हो गया आयात-निर्यात कम हो गया और अणुमार धत्पथिक बढ़ गया । इस सब तत्वों क कारण वह इतना निर्बल हो गया कि एक-एक करके एशिया और अफ्रीका के उसके उपनिवेश देशों से मुक्त होने सये और आब हो स्थिति यह है कि ब्रिटेन का साम्राज्य प्रधानत उसकी अपनी ही मूमि तक सीमित रह गया । उसकी निर्बलता १९४६ में स्वीड सकट के समय तक स्पष्टतया सिद्ध हो गयी जबकि कुछ दिनों के आघारहा युद्ध मे ही वह कांप गया । द्वितीय महायुद्ध के पुब बिभिन्न बिदेस नीति को सिद्धांतों पर आघारित की—प्रथम पुरान में मतुमन की शक्ति (Balance of Power) को कायम रबना तथा दूसरे, अपनी बन्धियों (Colonies) में घपना प्रमुत्त्व बनाये रबना । परन्तु इस दुमन महा समर ने तो उसका बिब ही परिवर्तित कर दिया । किमी ने लिखा है

dispite all the grandiose pacts floating on the surface of events, there has been a deep and steady under tone which has been dragging the non-atomic powers which include not only West Germany and Japan but all the little border states & others too, into somekind of middle position where they have a hope a chance is to expect every anti-Communist or non Communist nation to line up with us in a position of defiance, is incompatible with the realities of nuclear weapons. It has become a diplomacy of Col. Blimp (out-dated)."

—Halter Lippman

इङ्ग्लैण्ड या दूसरों को जीतने के लिए या उसने स्वयं को विजित कर लिया (That England that was want to conquer others hath made a shameful conquest of itself)।" जब कि ब्रिटेन में अब इतना शक्ति नहीं रही कि वह यूरोप में संतुलनकारी सत्ता बना रह सके पर उसने शांतिकाल में ही सुरक्षा संधियों की व्यवस्था निर्माण करनी धारण कर दी। परन्तु इन संधि व्यवस्था में भी उसके मस्तिष्क में शक्ति-संतुलन का मूल समाया हुआ रहा। वह तो यूरोप की शक्तियों को संतुलित रखने में ही अत्यधिक विन्यास रहे रहा ताकि वह तो घापस में नबे और ब्रिटेन प्रभुता रह सके।

ब्रिटेन और पश्चिम

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर जुलाई १९४५ में ब्रिटेन की नयी सत्ता का निर्वाचन हुआ और अधिक इस के पी एटली (Atlee) प्रधान मंत्री बने। श्री एटली ने ब्रिटेन मंत्री पर सम्मामा। समाजवादी सरकार की स्थापना के कारण ब्रिटेन की विदेश नीति ने नया माड़ लिया और भी वह शक्ति परिवर्तनियों के कारण अधिक डेर-कर नहीं हो सका। इस यह अवश्य हुआ कि युवातरकासीन ब्रिटेन विदेश नीति प्रकटिया बहुत अधिक धरा-धराई हो गई। श्री बेकिन कम विरोधी थे पर उन्होंने अपनी विदेश नीति का मुख्य आधार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का समर्थन करना बना लिया। वास्तव में इसके कुछ कारण भी थे अपनी निरव स्थिति के कारण ब्रिटेन को पश्चिमी शक्तियों के सहयोग की बहुत अधिक जरूरत थी। ब्रिटेन आर्थिक विपन्नता की अवस्था में वह और उसे अपने पुनर्निर्माण के लिए तथा आर्थिक स्थिरता के लिए नया न मात्रा में आर्थिक सहायता चाहिये थी। ब्रिटेन को समय-समय पर अमेरिका से ऋण मिलता रहा था और धारा मिलने की प्राप्ति भी थी पर अमेरिका का समर्थन करने में ही ब्रिटेन का हित था। परन्तु इङ्ग्लैण्ड की जनता बेकिन की इस नीति से नसुट नहीं थी पर देश में उसका भारी विरोध हुआ और श्री बेकिन को पारस शक्ति सम्मेलन में यह ऐमान करना पड़ा कि हम किसी भी युद्ध में मिलना नहीं चाहते (We are not engaging up with anybody either with side or the other) परन्तु जोपना और कार्य में उर्ल था। बेकिन ने अर्जन्टी के निर्णय पर अमेरिका का ही समर्थन किया। अधिक इस के समर्थन ३० सत्र सत्रों में सरकार से अपनी नीति बदलने की पुन प्राप्ति की और अन्तुरोप क्रिया कि सोवियत रुठ के साथ प्रथम सम्मन्ध बनाने का प्रयास किया जाय। परन्तु इङ्ग्लैण्ड की दक्षिणी आर्थिक व्यवस्था के उनको अमेरिका का समर्थन करने को मजबूर कर दिया था। अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए उसने मार्शल योजना (Marshall Aid Plan) का प्रयोग किया और उसके अंतर्गत अल्प आर्थिक सहायता प्राप्त की। बेकिन ने इसका उपयोग दुर्लभ सिद्धांत को ही मान लिया। यद्यपि ब्रिटेन अमेरिका-युद्ध में एक सहायक के रूप में ही रहा किन्तु फिर भी विश्व को वह तो स्पष्ट हो ही गया कि वास्तव में अन्तुलन का नेतृत्व अब ब्रिटेन के नहीं अमेरिका के हाथ में है। पर अमेरिका के साथ रहने से अब ब्रिटेन प्रति

बढ़ने के स्थान पर बटी है। उसका साम्राज्य विभिन्न होता गया और प्रान्त क्षेत्रों में तो संयुक्त राज्य अमेरिका ने उसका स्थान से लिया। यूरोपीय और आस्ट्रेलिया जैसे पुराने इमिनियनों ने राष्ट्रमण्डल से बाहर सुरक्षा प्राप्त करने के लिए 'अनुसंधान पैक्ट' (Anzus Pact) बनाना उचित समझा। मध्य पूर्व में चीम फिजसहीन टर्की और अन्य क्षेत्रों में ब्रिटेन के जैसे जाने से जा शक्ति शून्यता पैदा हो गई उसे अमेरिका ने मरा।

अमरीका के साथ अपने सम्बन्धों को दृढ़ करने के असावा ब्रिटेन ने अन्य पश्चिमी देशों को भी साथ लेने की कोशिश की और अपनी सुरक्षा की दृष्टि से उसने क्षेत्रीय योजनाओं (Regional Schemes) का विकास किया। ब्रिटेन इस बात को मनी मानि समझ गया कि अपनी सुरक्षा और प्राधिक समृद्धि के लिए उसे पश्चिमी शक्तियों का सहयोग धरित करना पड़ेगा। प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र शक्ति की सुरक्षा योजना में उसे पूरा विश्वास पैदा हुआ किन्तु शीघ्र ही उसकी धारणाएँ धूमिल हो गई और अपने इन विश्वास का अन्त एक निर्बाह उसे कठिन गया। सोवियत संघ के इराजों पर उसे कभी विश्वास न हो सका। बेहोम्सोबाकिया के मोक्षियत घट में सम्मिलित हो जाने से परिस्थिति की अकार्यनाशियों के प्रति उसकी प्राण क्षुभ गई। ४ मार्च १९४७ को ब्रिटेन ने फ्रांस के साथ डन्किर्क संधि (Dunkirk Treaty) सम्मान की जो मारी अर्धन कार्यक्रमों के विरुद्ध एक-दूसरे की सहायता करने के उद्देश्य से हुई। इसके बाद १७ मार्च १९४८ को ब्रिटेन ने बेल्जियम और डचमण्डल सम्बन्धनों और फ्रांस के साथ मिल कर ब्रिटेन संधि की जिसके परिणामस्वरूप पश्चिमी युरोपियन मण्डल (Western European Union) का निर्माण हुआ। इस संधि संगठन के सदस्यों में यह विश्वास हुआ कि हस्ताधारकर्ता देशों में से किसी देश पर यदि यूरोप में सैनिक कार्यक्रम होता है तो अन्य देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा २१ के अनुसार अपनी सम्पूर्ण सैनिक तथा अन्य सहायता कार्यक्रम का विकास बने देश का प्रदान करेंगी। इससे पश्चात् नाटो (NATO) की रचना हुई जिसका ब्रिटेन एक प्रभावशाली सदस्य बना। नाटो में सम्मिलित होकर ब्रिटेन ने मण्डल राज्य समूहों के साथ सुभा सैनिक गठबंधन कर लिया और यह स्पष्ट कर दिया कि साम्यवाद के विरुद्ध जिहाद में वह पूरी तरह अमरीका के साथ है। इतना ही नहीं ब्रिटेन ने साम्यवाद की फट्टु धारणा भी की और रूस को साम्राज्यवादी देश कह कर सम्बोधित किया।

दरमध्य में ब्रिटेन की शक्ति प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए और ब्रिटेन की सुरक्षा के लिए १९४९ में ही अखिल में युरोप की एकता के धारणात्मक का भीषण कर दिया जा और इसी के फलस्वरूप इस विश्वासपारा के विकसित होने के साथ-साथ ब्रिटेन क्षेत्रीय प्रतिष्ठा गणधनों और विभिन्न प्राधिक सहयोग गणधनों के निर्माण की िधा में अग्रसर हुआ। डनर्क डेमेस और नाटो संधियों का मध्यम इन जाने के बाद ब्रिटेन ने युरोपीय परिषद (Council of Europe) के निर्माण में संधि की। २ मई, १९४९ को 'न बरियर की स्थापना हुई

ब्रिटेन का उद्देश्य यह बताया गया कि यह धार्मिक और सामाजिक प्रवृत्ति के लिए तथा अपनी सामान्य विरासत के प्रायशः और विहायता में पहले से अधिक प्रकृता मानने का प्रयत्न करेगी। ब्रिटेन ने यूरोपियन कोषका इस्पात समुदाय के साथ भी सहयोग करने की नीति अपनाई। उसने इसका सदस्य बनने के लिए प्रावेदन-पत्र भी दिया किन्तु फ्रांस के साथ इससे यह प्रावेदन-पत्र स्वीकार नहीं हो सका। ब्रिटेन ने १९५८ में स्थापित यूरोपियन सांख्यिक मंडल समुदाय का सदस्य बनने के लिए भी १९६२ में आवेदन पत्र दिया किन्तु जनवरी १९६३ में यह प्रावेदन पत्र भी अस्वीकार कर दिया गया।

जनवरी १९६८ में यूरोपियन सामान्य मंडली या साम्य बाजार की स्थापना हुई ब्रिटेन बेल्जियम फ्रांस पश्चिमी जर्मनी इटली नीदरलैंड्स और लक्जमबर्ग सम्मिलित हुए। ब्रिटेन इस मंडल में सम्मिलित नहीं हुआ क्योंकि उसे इसकी सहमतता में बड़ा संदेह था तथा जिस में अपनी स्थिति अच्छी बनाने के लिए किसी ऐसे संघटन में सम्मिलित नहीं होना चाहता था जिसमें बड़े रूपना पूरा प्रभाव न प्राप्त सके। परन्तु जब यूरोपियन सामान्य मंडली से ब्रिटेन और अन्य देशों को बाझी हानि पहुँचने लगी तो इसके बुध्दयाचों को दूर करने के लिए ब्रिटेन ने यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ (European Free Trade Association) का निर्माण किया। यह संघ यूरोपियन सामान्य मंडली का मुकाबला न कर सका। १९६१ तक ब्रिटेन का यूरोप के साथ नियति व्यापार बंद गया उसकी द्विपक्षीयों की मंडली सम्पन्न ही हो गई और उसे यह भावना हुई कि यूरोप के साथ उसका व्यापार संबंधों समाप्त हो जायगा। पर इस समयकह स्थिति घ बचने के लिए उसने यूरोपियन सामान्य मंडली का सदस्य बनने का प्रयत्न किया। किन्तु फ्रांस के इतने उच्चका महस्य बनन का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया। ब्रिटेन यूरोपियन सामान्य मंडली का सदस्य बनने का निरंतर प्रयास करता रहा और जब उसका महस्य बन जाया समय निकलत सा हो गया है। ब्रिटिश प्रवासमन्त्री भी ब्रिटेन गई १९६७ में ब्रिटिश संसद में इस बात की घोषणा भी कर चुके हैं तथापि भी विमान का यह इस निश्चय को एक बार फिर पनिश्चय में बहन है तो कोई धातुर्धर्म नहीं होगा। जैसे यह समाचार मिलने भी लगा है कि यूरोपियन धार्मिक समुदाय थापाय के सामान्य मंडली की ब्रिटिश सदस्यता के संघर्ष में पीछे की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर धारणा की है।

पश्चिमी यूरोप विशेष कर अमरीका के साथ सहयोग और वैश्विक गठबंधन की नीति ब्रिटेन ने निरन्तर जारी रखी। निरन्तरकरक सहस्रकी वर्षी बार्ताओं में ब्रिटेन और अमरीका की नीति में सामान्यता सामान्यत्व रहा और न्यूनतम को पूर्ण समर्थन दिया। नवम्बर १९६८ में ब्रिटेन ने संयुक्त राष्ट्र समुदाय का सदस्यत्व प्राप्त किया, प्रायः सुसोतैय्य वाकिरवाण क्रिस्तात्म्य पार्लियमन्ट काट के साथ पारस्परिक सहायता और सांख्यिक सुरक्षा की वर इत्यादि करके दक्षिण पूर्वी एशिया संघ संघटन 1971

को जन्म दिया। ब्रिटेन ने १९३७ में प्रतिपादित फ्राइजलहोवर सिद्धान्त के प्रयोग में पूर्ण निष्ठा प्रदर्शित की और जोर्डन में तो इस सिद्धान्त के प्रयोग की जिम्मा में उसका व्यावहारिक व सक्रिय सहयोग रहा। अर्मेनी के प्रश्न पर भी ब्रिटेन का अन्य सम्बन्धित पश्चिमी शक्तिशाली के साथ पूर्ण सहयोगी रुक है। १९१३ में अमरीका रूस और ब्रिटेन द्वारा मास्को में प्रथम परीक्षण प्रतिबन्ध मंच पर हस्ताक्षर किये गये और फिर १९१७ में परमाणु परस्त्री के प्रसार पर रोक लगाने के सम्बन्ध में जो लॉस अलामोस-प्रस्ताव में सम्मिलित हुई उस पर भी ब्रिटेन प्रमुख हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र था।

उपरोक्त विवरण से यही ध्वनिता हाता है कि युद्धोत्तर काल में संयुक्त राष्ट्र संघ और ब्रिटेन के सम्बन्ध निरन्तर अनिच्छित रहे हैं और उनमें विरोध की कोई बात पैदा नहीं हुई। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। दोनों देशों के बीच इनका अनिच्छित सम्बन्ध रहने पर भी दोनों कुछ प्रश्नों पर एक दूसरे की आलोचना करते हैं और अपने तीव्र मतभेदों का व्यक्त करते हैं यद्यपि यह आलोचना और मतभेद-अभिप्रेति तथ्यों पर प्रदर्शित होती है न कि विरोध की भावना पर। विरोध करते समय दोनों यह मान कर बसते हैं कि एक व्यक्ति को अपने मित्र की आलोचना करने का अधिकार है। जब तक का इतिहास बताता है कि ऐसे कुछ प्रमुख मुद्दे रहे हैं और हैं जिन पर दोनों राष्ट्रों में मतभेद पाये जाते हैं। प्रथम १९४२ में ब्रिटेन का ठा नाराजगी हुई जब अमरीका द्वारा एडवर्ड लैंड-सीज (Land Lease) को बन्द कर दिया जाने से ब्रिटिश अर्थ-नीति पर विपरीत प्रभाव पड़ा। युद्धोत्तर काल में ब्रिटेन में आत्मशाहीरी आन्दोलन चलने लगा और धर्मिक सरकार द्वारा जो नीतियाँ अपनाई गईं उनका प्रति अमरीका में अविश्वस्युक्तता का कारण बना। साम्यवादी रुक के प्रति अमरीका की कठोर नीति का ब्रिटेन में विरोध नहीं मराहा। कतिपय मामलों में अमरीका के कठोर रुक का समर्थन करते हुए भी सामान्यतः ब्रिटेन की यही धारणा रही कि रूस एवं अन्य साम्यवादी देशों के साथ अधिकारिक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए और रूस तथा चीन को समझौतेपूर्ण संबंधों द्वारा अपने निकट मानने का प्रयत्न करना चाहिए। ब्रिटेन ने अमरीका की नाराजगी की परवाह न करते हुए जनवरी १९० में ही चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता देने के विचार की घोषणा कर दी। उनविषयबाद के सम्बन्ध में भी अमरीकन रुक के प्रति ब्रिटेन में अंतर्दोष रहा। उसका यही मत है कि द्वितीय चीन उत्तरी अफ्रीका पश्चिमी एशिया आदि प्रदेशों में ब्रिटिश सत्तों और हितों के प्रति अमरीका का रुक विरोध महानुभूतिपूर्ण नहीं रहा है। स्वेड का १९१६ में नासिक द्वारा रूसीकरण किये जाने पर ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा जो आक्रामक नीति अपनाई गई उसका अमरीका ने समर्थन नहीं किया। अमरीका ने मिस्र की मृत्ति में ब्रिटिश व फ्रेंच सैनिकों के प्रवेश का खोर विरोध किया। अमरीकाका यह रुक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के विरोध का प्रतीक बना। प्रथम जगत्पत्त के १९१७ के उत्तमाम संघर्ष में भी ब्रिटिश और अमरीकन नीतियाँ अविश्वस्युक्तता साम्य नहीं हैं। परन्तु विभिन्न मतभेदों के बावजूद भी दोनों देशों के मौलिक हित परस्पर अनिच्छित का ने सम्बन्ध है और वे अन्त के बड़े गये वे खोर धार भी पूर्ण महान् रखते हैं।

बने हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में बखिला अफ्रीका की रंग भेद नीति के प्रति ब्रिटेन ने कोरा प्रदर्शनात्मक विरोध ही किया है और इस बारे में सक्रिय कार्यवाही का बहू विरोधी रहा है। अफ्रीका में रोडेशिया की गोरी सरकार का नीतियों को भी बहू नहीं रोक पाया है। कतिपय क्षेत्रों में सम्बन्ध मही स्याप्त है कि रोडेशिया की अस्य सक्षयक विभव सरकार को ब्रिटेन की बुद्ध एवं प्रत्यक्ष सहू प्राप्त है। बखिला रोडेशिया की गोरी सरकार की एक तरफ स्वतन्त्रता की घोषणा से और ब्रिटेन की स्याबहारिक रूप से निष्पिष्यता न अफ्रीका महादीप के विभिन्न राज्य बड़े सुबुध और सशक्ति हैं। ईरान ईराक इण्डोनेशिया बर्मा मनेशिया साइप्रस मेबनान जोर्डन आदि विभिन्न राज्यों से ब्रिटेन के जो सम्बन्ध रहे हैं उन पर पूर्ववर्ती अध्यायो में यथा स्थान पयाप्य प्रकाश डाला जा चुका है। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों क साथ ब्रिटिश सम्बन्धों का काफ़ी परिचय एशिया और अफ्रीका सम्बन्धी अध्यायों में दिया गया है।

फ्रांस की विदेश नीति

यूरोप महादीप के पश्चिम में स्थित यह देश उत्तर पश्चिम को बखिला में क्रमशः उत्तरी सागर ब इ गसित बनन पार्माणिक महासागर तथा भूमध्यसागर से बिरा हुआ है। इसके पूर्व में जर्मनी है पूर्वोत्तर में होलण्ड-बेल्जियम, दक्षिण पूर्व में इटली और दक्षिण-पश्चिम में स्पेन यद्यपि फ्रांस की विदेश नीति अपने पड़ोसियों के प्रति परिशर्तनशील रही है तथापि यह कहा जा सकता है कि बखिल मित्रता क बावजूद भी फ्रांस ब्रिटेन की ओर से सदा सञ्चकित रहा है। ब्रिटेन ने कभी भी फ्रांस को यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य नहीं बनने दिया। प्रथम महायुद्ध के बाद फ्रांस ने जो कुछ भी शक्ति और स्याति अर्जित की बहू द्वितीय महायुद्ध में धूलि धूसरित हो गई। युद्ध की समाप्ति के बाद फ्रांस की नई सरकार बनी तो उसकी अध्यसाता बनरस दिवाल के हाथों में आ गई। परन्तु फ्रांस क सविधान से उच्च कर तथा मधीमण्डलों की अस्थिरता से परेशान होकर डिगाम ने त्यागपत्र दे दिया और राजनीति से अलग हा गया। अब फ्रांस की अस्थिरता का बही पुराना बरु फिर से पारम्भ हो गया। १९४६ के १९५८ तक २२ मंत्रिमण्डल बनें युद्ध और अस्थिर आसन न फ्रांस को इतना मनुसक बना दिया कि बहू किसी प्रकार की प्रभावशाली विदेश नीति नहीं अपना सका। माघ १९४७ में उसने ब्रिटेन के साथ बंडरक की संधि की तदनुषात् संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ पार्शल योजना में भागीदार बन कर अपने अमरिका से पर्याप्त सहायता प्राप्त की। अपने पश्चिम यूरोप के राजनीतिक एकीकरण की विभिन्न योजनाओं में सहयोग किया। बहू इन्वेल्ल पेश और माटो का सदस्य बना। अग्य ५ राष्ट्रों के साथ मिल कर फ्रांस ने यूरोपियन साम्राज्यार की रचना की और अगम ब्रिटेन के प्रवेश को बंद रखने का सक्य प्रयास किया। आज भी साम्राज्यार में ब्रिटिश प्रवेश मुख्यत भी डिगाम के विरोधी रख के कारण ही बना हुआ है।

फ्रांस अमेरिका और ब्रिटेन के विदेश मंत्रियों ने मितम्बर १९५० में जर्मनी के प्रश्न पर विचार करते हुए जर्मन लोगों की एकीकरण की मागना

का सम्बन्ध किया। इस के प्रयुक्त क कारण जर्मनी का एकीकरण संभव न हो सका। अठ ही तीनों राष्ट्रों में जर्मन के संघीय गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी) को ही जर्मन जनता का वास्तविक प्रतिनिधि मानने का निश्चय किया। एशियाई विभाजन में फ्रांस ने अधिक मांग नहीं लिया क्योंकि हिन्द चीन की समस्या में फ्रांस को निरालर पीछे हटना पड़ा तथा बुलाई १९४५ के जेनेवा शिखर सम्मेलन में विषयनाम के विभाजन को मान्यता मिल गई। फ्रांस कोरिया युद्ध में भी कोई मांग इसीलिए नहीं ले सका या क्योंकि वह उस समय हिन्द चीन में साम्यवादियों के युद्ध में उसका हुआ था। १९४६ में फ्रांस पीएच ज़िटेन ने इतराजस के प्राय मिल कर मिल पर प्राक्रमण किया किन्तु उनके साम्राज्यवादी द्वारा नाकामयाब हो गए। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका तक के कठोर विरोध का उन्हें सामना करना पड़ा।

१९४८ के मध्य तक फ्रांस अपनी राजनीतिक परिवर्तता के कारण अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठा सका किन्तु इसके बाद स्थिति में परिवर्तन आने लगा। मई १९५० में पियरे फिलमिन की सरकार का पतन हो जाने के बाद डियाम के प्रधानमन्त्रित्व में फ्रांस के पाँचवें गणराज्य का उदय हुआ। अठेम्बता में डियाम को ६ मास के लिए शंभरीय हस्तक्षेप से गठित गणराज्य पश्चिम र सोय दिये। उन्होंने ४ जून १९४९ का एक सर्वपानिक कानून बन या जिसके समक्ष बुधारा को राष्ट्रीय अठेम्बता में पेश न करके सीब इलेक्टोरेट में पेश किया जासकता था। ५ अक्टूबर १९४९ को पाँचवें गणराज्य का महीन सन्विधान प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार संघ की अनेक सन्विधान राष्ट्रपति को इस्त्ाम्भरित कर ही गयी। दिसम्बर १९५० का राष्ट्रपति के चुनाव में डियाम पहले ही बहुमत से राष्ट्रपति चुन लिये गये थे।

फ्रांस के नवीन सन्विधान के अनुसार २ अक्टूबर, १९४८ को गिमी का राज्य स्वतन्त्र मान लिया गया। २३ नवम्बर को बहु संयुक्त राष्ट्र सभ का सदस्य भी बन गया। राष्ट्रपति डियाम ने आसन की बागडोर हान में सेठे ही अपना ध्यान अरबीरिया की तरफ कर्षित किया। डियाम के पूर्ववर्ती सभी फ्रांस नेता बहु बुझे थे कि फ्रांस अरबीरिया में अपने अधिकारों की कमी ममान्य नहीं करेगा। अपने साम्राज्यवादी अधिकारों की रक्षा के लिए फ्रांस अरबीरिया के स्वाधीनता आन्दोलन का बुढ़ी तरह बुधसता रहा किन्तु इससे अरबीरिया बागियों के स्वाधेय सार्पन में कोई कमी नहीं आई। राष्ट्रपति डियाम बागियों को मान्य करने और अरबीरियन युद्ध को रोकने के लिए समझौते करने का निश्चय किया। अरबीरियों की मान्य करने में तो बहु सफल हो गये किन्तु दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति में उन्हें सफलता नहीं मिली। डियाम ने अरबीरिया बागियों को फ्रांस नागरिकता का आलोचन किया किन्तु वे तो अरबीरिया की नागरिकता चाहते थे फ्रांस की नहीं। तब अक्टूबर १९४९ में डियाम ने घोषणा की कि यदि अरबीरिया निजामी शक्ति का मार्ग स्वीकार कर लेवे जो ४ वर्षों के अन्दर ही बड़ा इन मुद्दों पर जनमत लिया जायगा—

(१) फ्रांस अरबीरिया पर अपने समस्त अधिकारों को त्याग देगा।

(२) फ्रांस के साथ घस्नीरिया का एकीकरण कर दिया जायेगा और घस्नीरिया निवासियों की मेट्रोपोलिटन फ्रांस के नागरिकों को प्राप्त सभी सुविधाओं प्रदान की जायेगी ।

(३) घस्नीरिया निवासी ही वहाँ का शासन करें किन्तु इसके पीछे फ्रांस का भी प्राथमिक शैक्षिक सम्बन्धी तथा वैज्ञानिक सहयोग रहे ।

परन्तु ये सुझाव उपयोगी सिद्ध नहीं हुए । प्रथम तो ये सुझाव शान्ति स्थापना के बाद ही काम में लाये जा सकते थे और शान्ति की स्थापना तभी हो सकती थी जब कि घस्नीरिया को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाये । दूसरे सुझाव के परिणामों को फ्रेंच सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हामी भी जो वहाँ के लोगों की राष्ट्रीय भावना के लिए एक अपमानजनक बात थी । घस्नीरियन गणतंत्र की अन्तःक्रासीन सरकार ने इस विषय पर फ्रेंच सरकार से बातचीत करना स्वीकार किया परन्तु डिगाम ने उसे घस्नीरिया के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया । जनवरी १९६० में घस्नीरिया में डिगाम विरोधियों ने एक प्रथम विद्रोह कर दिया जिससे समस्या का समाधान और भी सुन्दर हो गया । फरवरी १९६० में फ्रेंच-प्रेस द्वारा राष्ट्रपति डिगाम को घस्नीरिया विवाद के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गये । उन्होंने घस्नीरिया तथा फ्रांस में जनमत संग्रह करने का इस्तेाव किया । यद्यपि यह जनमत संग्रह 'घस्नीरिया घस्नीरिया वालों के लिए' विषय पर होता था किन्तु घस्नीरिया की अन्तःक्रासीन सरकार (स्वातन्त्र घोषण की संघासक) के अध्यक्ष फ्लोरास ने इस प्रस्ताव का स्वागत नहीं किया और अपने अनुयायियों को बोट न देने का आदेश दिया । फिर भी जनवरी १९६१ में जनमत संग्रह हुआ जिसमें समय-समय डेड करौड लोगों ने घस्नीरिया में स्थायत शासन स्थापित होने के पक्ष में और ५० लाख लोगों ने इसके विपक्ष में मत दिया । परन्तु समस्या यह थी कि स्थायत शासन प्राप्त करने पर भी घस्नीरिया कुछ स्वतंत्र नहीं होता था क्योंकि किसी न किसी रूप में उस पर फ्रांस का अधिकार बना ही रहता । फिर भी पारस्परिक बातचीत द्वारा कोई समाधान निकल जाने की संभावना अशक्य बह गई । किन्तु फरवरी १९६१ में डिगाम विरोधी कुछ जनकाल प्राप्त फ्रेंच सैनिक अधिकारियों ने सहमा पात्रमण करके घस्नीरिया पर पात्रिमण कायम कर लिया । डिगाम ने इन सैनिक विद्रोह को दबा दिया और घस्नीरियन राष्ट्रवादियों के साथ बातचीत शुरू कर दी । अंत में १ जुलाई १९६२ को घस्नीरिया का स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई और इस प्रकार राष्ट्रपति डिगाम ने घस्नीरिया फ्रांस संघर्ष का अंत कर दिया ।

राष्ट्रपति देगाम की प्रमुख विधा सैन्य यही रही कि फ्रांस किसी न किसी तरह अपने विमुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान को फिर से प्राप्त करे । इसीलिए सैन्य-सैन्य बल घटने राष्ट्र को अमेरिकन प्रभाव से मुक्त करने भये और दूसरी ओर ब्रिटेन के बढ़ते हुए प्रभाव को भी रोकने की चेष्टा में लगे रहे । इसी लिए साम्यवादी देशों के साथ उन्होंने बहुत सम्बन्ध स्थापित किये । साम्यवादी

चीन के साथ फ्रांस के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों में विकास हुआ। मास्को की प्रभु परिषद निरोध संधि पर हस्ताक्षर न करने वाले केबल को ही बड़े देश रहे चीन और फ्रांस और रोमों ही ने यह तर्क दिया कि इस संधि का ध्येय यह है कि सोवियत संघ संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन प्रभु वर्गों के क्षेत्र में अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते हैं एवं उनका प्रयोजन यह है कि अग्र्य देश इस शक्ति का विकास न करने वाले।

फ्रांस ने वियतनाम में संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यवाही की निन्दा जिन शब्दों में की है उनमें चीनी आलोचना की पंख आती है। युरोपियन साम्राज्यवाद में ब्रिटेन के प्रवेश को रोकने की दिशा में नीति पश्चिमी क्षेत्र में फूट का संकेत देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत चाहता है कि ब्रिटेन को युरोपियन साम्राज्यवाद की सबस्यता भिन्न जाये। इसके लिये उसने फ्रांस पर बहाल भी दामा किन्तु विनाश अपने हठ पर पसी बूझ प्रतीत होता है। इतना ही नहीं कुछ और बातों को लेकर भी फ्रांस तथा ब्रिटेन और अमेरिका के मध्य बहुरे मठमेव पैदा हो गए। निःसस्त्रीकरण के प्रश्न पर इनमें मतभेद नहीं है। जब फ्रांस को संयुक्त राष्ट्र निःसस्त्रीकरण प्रयास का सबस्य बताया गया तो उसने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया। इससे भी बढ़कर घटना नाटो को पोपलिस यन्त्रों से मुक्त करने के प्रस्ताव को लेकर बटी। १९५२ में अमेरिका और ब्रिटेन ने एक समझौते द्वारा यह तय हुआ कि नाटो राष्ट्रों की सेनाओं को पोपलिस प्रक्षेपणास्त्रों से सज किया जाय। परन्तु फ्रांस ने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया और निर्णय लिया कि वह इस कार्य में भाग नहीं लेगा। १९५३ में फ्रेंच सरकार द्वारा चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता प्रदान कर देना और चीन राष्ट्रों के बीच राजदूतों का आदान प्रदान हो जाना की घटना से यह और भी स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रपति विनाश का अपना अपना ही रास्ता है जो नाने राष्ट्रों से भिन्न है।

चीन को कूटनीतिक मान्यता प्रदान करने के अतिरिक्त राष्ट्रपति विनाश ने संसार के समस्त एक और सुझाव रखा। उन्होंने कहा कि दक्षिण पूर्वी एशिया की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त अवाञ्छित है अतः इस क्षेत्र का अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करके तटस्थीकरण (Neutralization of S. E. Asia Region) कर दिया जाय। संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके साथी राष्ट्रों ने विनाश के सुझाव का कटु विरोध किया। वास्तव में फ्रांस की ये सभी कार्यवाहियाँ घटनात्मक समुदाय की एकता को मंग करन वाली हैं। इस एकता को कठोरतम आघात तो १२ मार्च १९५५ की विनाश की इन घोषणा से पहुंचा है कि फ्रांस नाटो संपटन से ही घलप जाना चाहता है। फ्रांस द्वारा यह निश्चय व्यक्त किया गया है कि चीन वच के अन्तर्गत वह अपने सभी अफसरों को नाटो की सेवा से बाधित हुआ होगा और उसके साथ ही नाटो के साथ अपने सारे सम्बन्धों को समाप्त कर लेगा। फ्रांस की मांग पर ही संयुक्त राज्य अमेरिका को फ्रेंच भूमि पर स्थित नाटो प्रहृषों को नाली कर देना पड़ा। वास्तव में फ्रांस के नाटो के परिवर्तन के निर्णय से पश्चिमी घुट पर एक महान संकट घा पया है और इसके अग्र्यकर परिणाम हो सकते

हैं। नाटो में पश्चिमी जर्मन को इस शर्त पर १९५२ में शामिल किया गया था कि वह स्वतन्त्र रूप से अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि नहीं करेगा। इस शर्त के लिए स्वयं फ्रांस बहुत बड़ था। परन्तु जब फ्रांस ही नाटो से निकल जायगा तो पश्चिमी जर्मनी भी इस शर्त से मुक्त हो जायगा और तब वहाँ संयुक्त शक्ति में वृद्धि करने का कार्यक्रम और-और से चल सकता है। पश्चिमी जर्मनी द्वारा सैनिक शक्ति बढ़ाने के प्रयास की प्रतिक्रिया सोवियत गृह के बेलों में होनी और इस तरह हथियार बंदी की होड़ का कुछ फिरो औरों से बनना शुरू होना। राष्ट्रपति बिमान का यह निरुपम कई समयकर परिणामो से मुक्त है। इसके कारण यूरान की कूटनीतिक स्थिति बराबर हो सकती है और पश्चिमी जर्मनी को लेकर युद्ध की सम्भावना बढ सकती है।

वस्तुतः जनरल बिमान कई वर्षों से ठगर से विभिन्न बीजने वाले अपने व्यवहार से राजनीतिक समय को बीकाते रहें हैं। कुछ लोग इसे 'यूरोपस्या की समक' नाम देते हैं। मगर जो लोग इन कार्यवाहियों के पीछे उद्देश्य खोजने के पक्ष में हैं उनके अनुसार यूरान और सम्पूर्ण विश्व के प्रति जनरल बिमान का अपना विभिन्न दृष्टिकोण है। हाज ही में उन्होंने कहा है 'अमेरिका विश्व में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है और स्वाभाविक रूप से वह अपनी शक्ति को बढ़ाने पर तुला हुआ है। इस शक्ति विस्तार से अपने के लिए जनरल के अनुसार वो ही रास्ते हैं। पहला मार्ग यह है कि बड़ी गुट का एक सदस्य बन जाइये जहाँ अमेरिकन शक्ति सर्वोपरि है और यह रास्ता बराबर है। दूसरा रास्ता है अपने व्यक्तिगत की सुरक्षा। इसके लिए वह जरूरी है कि फ्रांस और जर्मनी एक-दूसरे के निकट आये अन्यथा अमेरिकन प्रभाव से नहीं बचा जा सकता। इसीलिए फ्रांस और जर्मनी में राजनीतिक अनिच्छता के प्रति सक्रिय कदम उठाने जा रहे हैं। जनरल बिमान ने विश्वास है कि फ्रांस ने जिस आर्थिक ढांचे को पिछले ८ वर्षों में सजा किया है उसे नष्ट न होने दें ताकि उसे अमेरिकन पद्धति द्वारा प्राप्तपाठ न किया जा सके। अपने व्यक्तिगत को बनाये रखने के लिए ही उनकी तीसरी शर्त यह है कि विश्व में इस बहम को समाप्त कर दिया जाय कि शक्ति के कुस को ही गुट है उसके बाहर कुछ नहीं है। तीसरे गुट की रचना के लिए फ्रांस पूर्वी यूरोपीय बेलों के निकट घाना चाहता है ताकि विश्व राजनीति में वो गुटों की पद्धति के अतिरिक्त भी कुछ हो। इसी नीति की अन्तर्गत वह ब्रिटेन के यूरोपीय साम्राज्य में सम्मिलित होने का विरोध करते हैं। कुछ राजनीतिक विशेषज्ञों का मत है कि विश्व का राज नीति को अपने विचारों के अनुसार परिवर्तित करना और अपनी इच्छानुसार गुटों का निर्माण और बिना करना फ्रांस के बूते की बात नहीं। फ्रांस या बिमान विश्व की राजनीतिक घटनाओं को नियंत्रित करने की शक्ति नहीं रखते। इसलिए जनरल की ऊंची राजनीतिक उद्देश्यों संभवतया बाई फ्ल नहीं होंगी। जब तक विश्व की जनता यह महसूस नहीं करती कि अमेरिकन और जर्मनी गुटों के अतिरिक्त भी कोई और शक्ति का अस्तित्व है तब तक अमरीकन अन्तर्गत बनने परम्परागत मित्रों को नाराज करना एक गतलाक बात है। मगर जनरल बिमान इसी प्रकार की संदिग्ध और बिमानात्मक

परिस्थितियों में विकसित हुए हैं। १९६२ में वास्सीरियाई स्वतन्त्रता के समय उन्होंने अपने मनीमन्डल से कहा था कि मैं फ्रांस का जहाज बहुत ही सूझनी यात्रा पर चल पाया है जिन्हें यात्रा की बकान महसूस होती है वे जहाज से उतर जाये और दूसरों को लहरों के बोध जाने दें।

EXERCISES

- 1. Critically examine the foreign policy of the U.S.A. since the termination of Second World War

Or

Give a critical sketch of post-war American foreign policy
द्वितीय महायुद्ध की उत्तरकालीन अमेरिकन विदेश नीति का प्रामोक्षमात्मक विवरण दीजिये।

- 2. Sketch briefly the part played by the U.S.A. in International affairs since 1939. What are the international aims of the U.S.A. at present time?

१९३९ के बाद से अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में संयुक्त राज्य अमेरिका ने जा धूमिक प्रया की उनका मन्त्र में विभाग कीजिए। वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य क्या हैं?

- 3. Estimate the strength and influence of the imperialist motive in the policy of the United States today

संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति में साम्राज्यवादी उद्देश्य के प्रभाव और शक्ति का मूल्यांकन कीजिये।

- 4. What was the Truman Doctrine? When and under what circumstances was it enunciated? Would you agree with the view that the Truman Doctrine is the modern version of the Monroe Doctrine?

ट्रुमैन सिद्धान्त क्या था? कब और किस परिस्थितियों में इसे कार्यान्वित किया गया था? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि ट्रुमैन सिद्धान्त बुनरो सिद्धान्त का धातुनिक रूप है?

- 5. "The Truman Doctrine marks a revolutionary departure in the American tradition policy and political thinking." Elucidate

ट्रुमैन सिद्धान्त अमेरिकन परम्परा नीति और राजनीतिक चिन्तन में एक शामिलकारी बिदाई का संकेत है।' विवेचना कीजिए।

- 6. "The Truman Doctrine was indeeds Monroe Doctrine for the entire free world. The Truman Doctrine made the necessary adjustment of the old Doctrine to new conditions, the necessary extension of the borders of the Western Hemisphere to the borders of the free World." (Michael Donelan)

ट्रुमैन सिद्धान्त विश्व ही समूहों स्वतन्त्र विश्व के लिए बुनरो

ने जन्म दिया। ब्रिटेन ने १९५७ में प्रतिपादित आइज़नहावर सिद्धान्त के प्रयोग में पूर्ण निष्ठा प्रदर्शित की और जॉर्डन में तो इस सिद्धान्त के प्रयोग की दिशा में इसका व्यावहारिक व सचित्र सहयोग रहा। जर्मनी के प्रश्न पर भी ब्रिटेन का जन्म सम्बन्धित पश्चिमी शक्तियों के साथ पूर्ण सहयोगी रुक है। १९६१ में अमेरिका इस घोर ब्रिटेन द्वारा मास्को में धरतु परीक्षण प्रतिबन्ध विधि पर हस्ताक्षर किये गये और फिर १९६७ में परमाणु घसनों के प्रसार पर रोक लगाने के सम्बन्ध में जो संघि मितम्बर-मकदूर में सम्पन्न हुई सम्मेलन में ब्रिटेन प्रमुख हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र था।

उपरोक्त विवरण से यही स्पष्ट होता है कि पुढोत्तर काम में संयुक्त राष्ट्र संघ और ब्रिटेन के सम्बन्ध निरन्तर अनिच्छित रहे हैं और उनमें विरोध की कोई बात पैदा नहीं हुई। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। दोनों देशों के बीच इतना अनिच्छित सम्बन्ध रहने पर भी दोनों कुछ प्रश्नों पर एक-दूसरे की आलोचना करते हैं और अपने-अपने तीव्र मतभेदों को व्यक्त करते हैं। यद्यपि यह आलोचना और मतभेद-प्रतिस्पर्धा कठोरता पर प्रभावित होती है कि विरोध की भावना पर। विरोध करते समय दोनों यह मान कर समत हैं कि एक-दूसरे को अपने मित्र की आलोचना करने का अधिकार है। जब तक कि इतिहास बताता है कि ऐसे कुछ प्रमुख मुद्दे रहे हैं और हैं जिन पर दोनों राष्ट्रों में मतभेद पाये जाते हैं। प्रथम १९४५ में ब्रिटेन को जब माराजगी हुई जब अमेरिका द्वारा एकदम सैन्ड-सीज (Land Lease) का बन्द कर दिये जाने से ब्रिटिश जन-नीति पर विपरीत प्रभाव पड़ा। पुढोत्तर काम में ब्रिटेन ने आलोचनाकारी आलोचना करने लगा और धर्मिक सरकार द्वारा जो नीतियाँ अपनाई गईं उनके प्रति अमेरिका में अतिशय आलोचना बनी। साम्यवादी रूप के प्रति अमेरिका की कठोर नीति को ब्रिटेन ने विरोध नहीं मराहा। कतिपय मामलों में अमेरिका के कठोर रणनीति समर्थन करते हुए भी सामान्यतः ब्रिटेन की यही धारणा रही कि कम-एक अन्य साम्यवादी देशों के साथ अधिकारिक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए और इस तथा चीन को समझौतेपूर्ण रीति से द्वारा अपने निकट लाने का प्रयत्न करना चाहिये। ब्रिटेन ने अमेरिका की माराजगी की परवाह न करते हुए जनवरी १९५० में ही चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता देने के विचार की घोषणा कर दी। उपनिवेशवाद के सम्बन्ध में भी अमेरिकन रणनीति के प्रति ब्रिटेन में असंतोष रहा। उसका यही मत है कि हिन्दू चीन उत्तरी अफ्रीका पश्चिमी एशिया आदि प्रदेशों में ब्रिटिश सबलों और हितों के प्रति अमेरिका का रणनीतिक नुकसानपूर्ण नहीं रहा है। स्वेज का १९५६ में नाविर द्वारा राष्ट्रीयकरण किये जाने पर ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा जो आलोचना नीति अपनाई गई उसका अमेरिका ने समर्थन नहीं किया। अमेरिका ने मिस्र की भूमि में ब्रिटिश बसों के सैनिकों के प्रवेश का पार विरोध किया। अमेरिका का यह रुक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के विरुद्ध आलोचना था। अन्त-अन्ततः के १९६७ के वर्षमास मई में भी ब्रिटिश और अमेरिकन नीतियों में विरोध नाभिम्य नहीं है। परन्तु विभिन्न मतभेदों के बावजूद भी दोनों देशों के मितम्बर हिन्दू परस्पर अनिच्छित का है।

कि—“हमारे प्रतिष्ठा की सम्मुख नीब नयुक्त राज्य अमेरिका माय तर्क मित्रता तथा बढ़नी हुई भाई भाई की भावना पर आधारित है।”¹

ब्रिटेन एवं विरम के सम्बन्ध

अमेरिका के गूट म रहते हुए और विभिन्न बहसों पर साम्यवादी देशों की कटु आलोचना करने पर भी ब्रिटेन का स्व सामान्यता नहीं रही है कि साम्यवादी देशों विरोध कर इस एवं अमेरिका के प्रति पश्चिमी देशों की आस कर अमेरिका को नरम एवं सहयोगी रूप अपनाता चाहिये। ब्रिटेन के अनुसार इस और अधिक इस दोनों ही इस विषय में एकमत है। अपनी इसी नीति के कारण युद्धोत्तर काल में ब्रिटेन ने साम्यवादी गूट क देशों के साथ राजनीतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित किये। वास्तव में साम्यवादी देशों—प्रमुखतः रूस और चीन के प्रति ब्रिटेन ने विमुक्ति नीति का अनुसरण किया। एक ओर तो यूरोप में बढ़ते हुए सोवियत प्रभाव को तथा विश्व के अन्य भागों में साम्यवादी प्रसार को बाधक करने के लिए वह 'चीन युद्ध' में सम्मिलित हो गया और प्रादेशिक संघर्षों द्वारा साम्यवादी प्रभाव का विस्तार रोकने में तत्पर होने लगा और दूसरी ओर अपने साम्यवादी देशों के साथ अपने व्यावसायिक सम्बन्ध बढ़ाने की चेष्टा की। नयुक्त राज्य अमेरिका के पक्ष पर जमत हुए भी ब्रिटेन ने चीन से विरोध नहीं किया क्योंकि चीन में उसकी अपार सम्पत्ति है और बृहत् व्यवसाय। उसने चीन की अमेरिकन विरोध के बावजूद कटनीतिक भावना भी प्रदान की। चीन के व्यापारिक प्रतिनिधि मण्डलों ने ब्रिटेन का प्रभाव किया और ब्रिटेन द्वारा चीन से विभिन्न क्षेत्रों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये गये। ब्रिटेन द्वारा चीन को अनुमान भी किये गये। सोवियत रूस के प्रति भी ब्रिटिश रुत सराहनीय रही। दोनों देशों के प्रदान मित्रियों ने एक दूसरे के देशों की भावना की। दोनों के मध्य समय-समय पर प्रतिनिधि मण्डलों के जाने-जाने का सम्बन्ध भी जारी है।

नयुक्त राष्ट्र संघ में ब्रिटेन पश्चिमी गूट का उपनेता है और अधिकांश उसके नयुक्त राज्य अमेरिका के साथ मिल कर कार्य किया है। संघ में ब्रिटेन को अतिरिक्ततः एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों का विरोध सहना पड़ा है। इस विरोध का प्रमुख कारण एशियाई और अफ्रीकन राष्ट्रों के प्रति अनायास जाने वाली उनकी विरोधी नीति रही है। भारत के साथ आतमीर के मामले में और मिस्र अरब संघर्ष अरब गणराज्य के साथ स्पेन एवं इजरायल के मामले पर ब्रिटेन ने व्यापक पक्ष छोड़ने की कोशिश की। १९१६ म स्पेन विवाद पर ब्रिटेन और फ्रान्स ने मिस्र के विरुद्ध जो आक्रामक कार्यवाही की उसने मिस्र और ब्रिटेन के सम्बन्ध अरब लड़कनापूर्ण

1 The whole foundation of our existence stands on the alliance and friendship and, if I may say so an increasing sense of brotherhood with the United States.”

बन हुए हैं। समुक्त राष्ट्र संघ में बखिला अफ्रीका की रंग भेद नीति के प्रति ब्रिटेन ने कोरा प्रदर्शनात्मक विरोध ही किया है और इस बारे में सक्रिय कार्यवाही का वह विरोधी रहा है। अफ्रीका में रोडेसिया की गोरी सरकार का नीतियों को भी वह नहीं रोक पाया है। कतिपय देशों में सम्येह यही व्याप्त है कि रोडेसिया की अल्प संख्यात्मक स्मिथ सरकार को ब्रिटेन की पुष्ट एक प्रत्यक्ष सह प्राप्त है। बखिला रोडेसिया की गोरी सरकार की एक तरफा स्वतन्त्रता की घोषणा से पौर ब्रिटेन की स्वाभाविक रूप से निष्पत्तियाँ न अफ्रीका महाद्वीप के विभिन्न राज्य बड़े अल्प और संतुष्टि है। ईरान ईराक ईण्डोनेसिया बर्मा मलेशिया मालद्वीप सबदान बोर्डन आदि विभिन्न राज्यों से ब्रिटेन के जो सम्बन्ध रहे हैं उन पर पूर्ववर्ती अध्यायों में यथा स्थान पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। एजिया और अफ्रीका के राष्ट्रों के साथ ब्रिटिश सम्बन्धों का काफी परिचय एजिया और अफ्रीका सम्बन्धी अध्यायों में बिना गया है।

फ्रांस की विदेश नीति

यूरोप महाद्वीप के पश्चिम में स्थित यह देश उत्तर पश्चिम की दक्षिण में क्रमशः उत्तरी मायूर ब्रिटेन पश्चिम पश्चिम पश्चिम महासागर तथा भूमध्यसागर से घिरा हुआ है। इसके पूर्व में जर्मनी है पूर्वोत्तर में हॉलैण्ड-बेल्जियम, दक्षिण-पूर्व में इटली और दक्षिण-पश्चिम में स्पेन। अद्यपि फ्रांस की विदेश नीति अपने पड़ोसियों के प्रति परिवर्तनशील रही है तथापि यह कहा जा सकता है कि पश्चिम मित्रता के बावजूद भी फ्रांस ब्रिटेन की धोर से सदा संतुष्ट रहा है। ब्रिटेन में कभी भी फ्रांस को पुराने का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य नहीं समझे दिया। प्रथम महायुद्ध के बाद फ्रांस ने जो वृद्धि भी शक्ति और स्वाधि प्राप्त की वह द्वितीय महायुद्ध में क्षति भूकरित हो गई। युद्ध की समाप्ति के बाद फ्रांस की नई सरकार बनी तो उसकी अध्यक्षता अमरत डिगाल के हाथों में आ गई। परन्तु फ्रांस के संविधान से उठ कर तथा मंत्रीमण्डलों की अस्थिरता से परेशान होकर डिगाल ने त्यागपत्र दे दिया और राजनीति से अलग हो गया। अब फ्रांस की अस्थिरता का वही पुराना चक्र फिर से घारम्भ हो गया। १९४६ के १९५० तक २२ मंत्रीमण्डल बने। युद्ध और अस्थिर शासन ने फ्रांस को इतना गंभीर बना दिया कि वह किसी प्रकार की प्रभावशाली विदेश नीति नहीं अपना सका। मार्च १९४७ में उसने ब्रिटेन के साथ इकरार की संधि की। तत्पश्चात् समुक्त राष्ट्र संघ के साथ मार्शल योजना में भागीदार बन कर उसने अमरिका से पर्याप्त सहायता प्राप्त की। उसने पश्चिम यूरोप के राजनीतिक एकीकरण की विभिन्न योजनाओं में सहयोग किया। वह ब्रिटेन के साथ आटो का सदस्य बना। अन्य १२ राष्ट्रों के साथ मिल कर फ्रांस ने यूरॉपियन साम्राज्यवाद की रचना की और इनमें ब्रिटेन के प्रवेश को बाध करने का सकल प्रयास किया। फ्रांस भी साम्राज्यवाद में ब्रिटिश प्रवेश मुख्यतः भी डिगाल के विरोधी रण के कारण ही रखा हुआ है।

फ्रांस अमेरिका और ब्रिटेन के विशेष संधियों ने नवम्बर १९५० में जर्मनी के प्रथम बार विचार करते हुए जर्मन संधियों की एकीकरण की मांग

का सम्बन्ध किया। इस के प्रसङ्गयोग के कारण जर्मनी का एकीकरण संभव न हो सका। अतः ही तीनों राष्ट्रों में जर्मन के राष्ट्रीय गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी) को ही जर्मन जनता का वास्तविक प्रतिनिधि मानने का निश्चय किया। एमिग्राई विचारों में फ्रांस के अधिकांश भाग नहीं लिया क्योंकि हिन्द चीन की समस्या में फ्रांस को निरन्तर पीछे हटना पड़ा तथा जुलाई १९४८ के जेनेवा शिष्टर सम्मेलन में वियतनाम के विभाजन को मान्यता मिल गई। फ्रांस कोरिया युद्ध में भी कोई लाभ इसीलिए नहीं ले सका था क्योंकि वह जब समय हिन्द चीन में साम्यवादिबो से युद्ध में उलझ चुका था। १९४९ में फ्रांस प्रौद्योगिकी में इजरायल के साथ मिल कर मिल पर प्राथमिक शिमा किन्तु उनके साम्राज्यवादी इरादे नाकामयाब हो गए। यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तक के कठोर विरोध का उन्हें सामना करना पड़ा।

१९४८ के मध्य तक फ्रांस अपनी राजनीतिक प्रतिष्ठा के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठा सका किन्तु इसके बाद स्थिति में परिवर्तन आने लगा। मई, १९४८ में पियरे क्लेमिनत की सरकार का पतन हो जाने के बाद डिगाल के प्रधानमन्त्रित्व में फ्रांस को पाँचवें पल्लव का उदय हुआ। असेम्बली ने डिगाल को ६ मास के लिए संसदीय हस्तक्षेप में गठित समस्त अधिकार सौंप दिये। उन्होंने ४ जून १९४९ का एक संवैधानिक कानून बनवा जिसके संसदीय चुनावों को राष्ट्रीय प्रोत्सवों में रूपांतर करके सीने इन्फेस्टोरेट में पैठ किया जा सकता था। ४ सितम्बर १९४९ का पाँचवें बचत का नवीन संविधान प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार संसद को अनेक शक्तियाँ राष्ट्रपति को हस्तांतरित कर दी गयीं। सितम्बर, १९८० को राष्ट्रपति के चुनाव में डिगाल पहले ही बहुमत से राष्ट्रपति चुन लिये गये थे।

फ्रांस के नवीन संविधान के अनुसार ९ अक्टूबर १९४९ को सिने का उदय स्वतंत्र भाग दिया गया। २३ नवम्बर को वह संयुक्त राष्ट्र सभ का सदस्य भी बन गया। राष्ट्रपति डिगाल ने पापन की बागडार हाथ में लेते ही अपना ध्यान अल्जीरिया की तरफ केंद्रित किया। डिगाल के पूर्ववर्ती सभी डॉक्टरों का यह दृष्टिकोण कि फ्रांस अल्जीरिया में अपने अधिकारों की कमी समाप्त नहीं करेगा। अपने साम्राज्यवादी अधिकारों की रक्षा के लिए फ्रांस अल्जीरिया की स्वाधीनता मान्यता का कुरी तरह कुचलता रहा किन्तु अन्त में अल्जीरिया वामियों के स्वातंत्र्य संपर्क में कोई कमी नहीं आई। राष्ट्रपति डिगाल ने विद्रोहियों को शांत करने और अल्जीरियन युद्ध को रोकने के लिए समझौता करने का निश्चय किया। विद्रोहियों को शांत करने में तो वह सफल हो गये किन्तु दुगरे उद्देश्य की प्राप्ति में उन्हें सफलता नहीं मिली। डिगाल ने अल्जीरिया वामियों को डॉक्टरों की भाँति का आलोचना किया किन्तु वे ही अल्जीरिया की नागरिकता चाहते थे फ्रांस की नहीं। तब सितम्बर १९४९ में डिगाल ने घोषणा की कि यदि अल्जीरिया निवासी जानते हैं कि मार्ग स्वीकार कर लेंगे तो ४ वर्षों के बाद ही वहाँ इन्हें मुक्तियों पर जनमत लिया जावेगा—

(१) फ्रांस अल्जीरिया पर अपने समस्त अधिकारों को त्याग देगा।

(२) फ्रांस के साथ अल्जीरिया का एकीकरण कर दिया जायगा और अल्जीरिया निवासियों की मेट्रोपोलिटन फ्रांस के नागरिकों का प्राप्त सभी सुविधाएँ प्रदान की जायँगी।

(३) अल्जीरिया निवासी ही वहाँ का शासन करें किन्तु इसके पीछे फ्रांस का भी प्राथमिक वैश्विक सम्बन्धी तथा वैदेशिक महत्वाग रहे।

परन्तु ये सुझाव उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। प्रथम तो ये सुझाव शांति स्थापना के बाद ही काम में लाये जा सकते थे और शांति की स्थापना तभी हो सकती थी जब कि अल्जीरिया को स्वतंत्रता प्राप्त हो जाये। दूसरे चुनाव के परिणामों को फ्रेंच सरकार द्वारा माध्यता प्राप्त इच्छा की जो वहाँ के लोगों की राष्ट्रीय भावना के लिए एक अपमानजनक बात थी। अल्जीरियन गणतंत्र की अन्तःकासीन सरकार ने इस विषय पर फ्रेंच सरकार से बार्तालाप करना स्वीकार किया परन्तु विमान ने उसे अल्जीरिया के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। जनवरी १९६० में अल्जीरिया में विद्रोह विरोधियों ने एक प्रबल विद्रोह कर दिया जिससे समस्या का समाधान और भी दुष्कर हो गया। फरवरी १९६० में फ्रेंच-समूह द्वारा राष्ट्रपति विद्रोह को अल्जीरिया विद्रोह के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गये। उन्होंने अल्जीरिया तथा फ्रांस में जनमत संग्रह करने का प्रस्ताव किया। यद्यपि यह जनमत संग्रह 'अल्जीरिया अल्जीरिया वालों के लिए' विषय पर होना था किन्तु अल्जीरिया की अन्तःकासीन सरकार (स्वातन्त्र्य आंदोलन की संचालक) के अध्यक्ष अलबास ने इस प्रस्ताव का स्वागत नहीं किया और अपने अनुयायियों को बोट न डेने का आदेश दिया। फिर भी जनवरी १९६१ में जनमत संग्रह हुआ जिसमें लगभग डेढ़ करोड़ लोगों ने अल्जीरिया में स्वायत्त शासन स्थापित होने के पक्ष में और ५० लाख लोगों ने इसके विपक्ष में मत दिया। परन्तु समस्या यह थी कि स्थायित्व जमान प्राप्त करने पर भी अल्जीरिया पूर्ण स्वतंत्र नहीं होता था क्योंकि किसी न किसी रूप में उस पर फ्रांस का प्रभिकार बना ही रहता। फिर भी पारस्परिक बार्तालाप द्वारा कोई समाधान निकलवाने की संभावना अस्सल बन गई। किन्तु अगस्त १९६१ में विद्रोह विरोधी कुछ अवकाश प्राप्त फ्रेंच सैनिक अधिकारियों ने महत्त्वा धारण करके अल्जीरिया पर प्राथमिक क़ायम कर लिया। विद्रोह ने इस सैनिक विद्रोह को दबा दिया और अल्जीरियन राष्ट्रवादियों के साथ बार्ता शुरू कर दी। अंत में १ जुलाई, १९६२ को अल्जीरिया का स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई और इस प्रकार राष्ट्रपति विद्रोह ने अल्जीरिया प्रांग संघर्ष का अंत कर दिया।

राष्ट्रपति वामन की प्रमुख धिंता सदब यही रही कि प्रायः किसी न किसी तरह अपने विमुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान को फिर से प्राप्त करें। अभीमान धर्म-धर्म वह अपने राष्ट्र को अमेरिजन प्रभाव से मुक्त करने में और दुसरी ओर ब्रिटेन के बढ़ते हुए प्रभाव को भी रोकने की चेष्टा में लगे रहे। इसी लिए साम्यवादी देशों के साथ उन्होंने मधुर सम्बन्ध स्थापित किये। साम्यवादी

चीन के साथ फ्रांस के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों में विक्रम हुआ। मास्को की धम्य परिलक्षण निरोध शक्ति पर हस्ताक्षर न करने वाले केमन को ही बड़े रोध रहे- चीन और फ्रांस और दोनों ही ने यह ठरक दिया कि इस शक्ति का ध्येय यह है कि सोवियत संघ संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन धम्य हस्तों के क्षेत्र में अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते हैं एवं उनका प्रयोजन यह है कि, धम्य देश इस शक्ति का विक्रम न करने पाये।

फ्रांस न विद्यमान में संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यवाह्य की निन्दा त्रिम शब्दों में की है। उनमें चीनी आलोचना की पंथ जाती है। यूरोपियन साम्राज्यवादी में ब्रिटेन के प्रवेश को रोकने की विद्या की नीति पश्चिमी क्षेत्र में कूट का संकेत देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत चाहता है कि ब्रिटेन को यूरोपियन साम्राज्यवादी की सचस्यता मिल जाये। इसके लिये उसने फ्रांस पर दबाव भी डाला किन्तु विद्यालय अपने हठ पर धमी बूढ़ प्रतीत होता है। इतना ही नहीं कुछ और बातों की सेकर भी फ्रांस तथा ब्रिटेन और अमेरिका के मध्य पहरे मतभेद पैदा हो गए। नि हस्तकीकरण के प्रश्न पर इनमें मतभेद नहीं है। जब फ्रांस को संयुक्त राष्ट्र नि हस्तकीकरण ध्याय का सचस्य बनाया गया तो उसने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया। इससे भी बचकर घटना नाटो को पोसर्सि धमो से बुरक करने के प्रस्ताव को सेकर बटी। १९५२ में अमेरिका और ब्रिटेन में एक समझौते डाला। यह तम हुआ कि नाटो राज्यों की सेनाओं को पोसर्सि प्रत्येकशास्त्रो से मंस किया जाय। परन्तु फ्रांस ने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया और निर्णय लिया कि वह इस कार्य में भाग नहीं देगा। १९५३ में फ्रांस सरकार द्वारा चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता प्रदान कर देना और दोनो राष्ट्रों के बीच राजदूतों का आदान प्रदान हो जाना की घटना से यह धीरे धीरे स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रपति विद्यालय का अपना धमय ही रास्ता है जो नाटो राज्यों से भिन्न है।

चीन को कूटनीतिक मान्यता प्रदान करने के धतिरिक्त राष्ट्रपति विद्यालय न संसार के समस्त एक धीरे सुभाष्य रखा। धरुने कहा कि पश्चिम-पूर्वी एशिया की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त अवाडोल है मत् इस क्षेत्र का धन्द्वराष्ट्रीय सम्बन्धिता करके तटस्थीकरण (Neutralisation of S. E. Asian Region) कर दिया जाय। संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके नापी राज्यों ने विद्यालय के सुभाष्य का कटु विरोध किया। वास्तव में फ्रांस की ये सभी कार्यवाहियां घटनातिक समुदाय की एकता को मन् करन वाली हैं। इस एवता को बढोरतम ध्यापत तो १२ मार्च १९५५ की विद्यालय की धम बीयरुा से बहुत है कि फ्रांस नाटो बंधन से ही धमय होना चाहता है। फ्रांस द्वारा यह निश्चय व्यक्त किया गया है कि तीन वर्ष के धन्द्वर बहु धमने लम्बी अफसरों को नाटो की सेवा से बाधित हुआ गया और उनके साथ ही नाटो के साथ अपने धारे सम्बन्धों की समाप्त कर दिया। फ्रांस की भाव धर ही संयुक्त राज्य अमेरिका को फ्रांस भूमि पर स्थित नाटो धमों की लाली कर देना पड़ा। वास्तव में फ्रांस के नाटो के धरित्याय के निर्णय से पश्चिमी कूट का एक नूतन संघट धा गया है और इसके धर्यकर धरिल्याय हो सकतै

है। नाटो में पश्चिमी जर्मन को इस शर्त पर १९३३ में शामिल किया गया था कि वह स्वतन्त्र रूप से अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि नहीं करेगा। इन शर्तों के लिए फ्रांस बहुत बड़का। परन्तु जब फ्रांस ही नाटो से निकल जायगा तो पश्चिमी जर्मनी भी इस शर्त से मुक्त हो जायगा और तब बड़ा संयोजन में वृद्धि करने का कार्यक्रम बोर बोर से चल सकता है। पश्चिमी जर्मनी द्वारा सैनिक शक्ति बढ़ाने के प्रयास की प्रतिक्रिया सोवियत युट के देशों में होनी और इस तरह हथियार बंदी की होड़ का कुछक फिर जोरों से चलता शुरू होगा। राष्ट्रपति डिगाल का यह निष्पत्ति कई समयकर परिणामों से युक्त है। इसके कारण यूरोप की राजनीतिक स्थिति लम्बा हो सकती है और पश्चिमी जर्मनी को लेकर युट की समाधान बड़ सकती है।

वस्तुतः जनरल डिगाल कई वर्षों से अल्पसंख्यक स विभिन्न दौड़ने वाले अपने व्यवहार से राजनीतिक समय को चौकात रहे हैं। कुछ लोग इसे वृद्धावस्था की समक नाम देते हैं। मगर जो लोग इन कामवाहियों के पीछे उद्देश्य खोजने के पक्ष में हैं उनके अनुसार यूरोप और सम्पूर्ण विश्व के प्रति जनरल डिगाल का अपना विभिन्न दृष्टिकोण है। ज्ञात ही मैं उन्होंने कहा है 'अमेरिका विश्व में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है और स्वाभाविक रूप से यह अपनी शक्ति को बढ़ाने पर तुला हुआ है। इस शक्ति विस्तार में बचन के लिए जनरल के अनुसार दो ही रास्ते हैं। पहला मार्ग यह है कि जर्मनी युट का एक सदस्य बन जाये जहाँ अमेरिकन शक्ति संचारित है और यह रास्ता आसान है। दूसरा रास्ता है अपने व्यक्तिगत की सुरक्षा। इसके लिए यह बकरो है कि फ्रांस और जर्मनी एक-दूसरे के निकट भाग्य धरण्या अमेरिकन प्रभाव से नहीं बचा जा सकता। इसीलिए फ्रांस और जर्मनी में राजनीतिक अनिच्छता के प्रति सक्रिय कदम उठाये जा रहे हैं। जनरल डिगाल का विश्वास है कि फ्रांस ने जिस धार्मिक शक्ति का विद्यमान वर्षों में बढ़ा किया है उसे नष्ट न होने दें ताकि उसे अमेरिकन पद्धति द्वारा धारणसात न किया जा सके। अपने व्यक्तिगत को बनाये रखने के लिए ही उनकी सीमायें शर्त यह है कि विश्व में इन बहम को समाप्त कर दिया जाये कि अन्तिम के युट दो ही युट हैं। उनके बाहर कुछ नहीं है। तीसरे युट की रचना के लिए फ्रांस पूर्ण यूरोपीय देशों के निकट भागना चाहता है ताकि विश्व राजनीति में दो युटों की पद्धति के अतिरिक्त ही कुछ ही। इसी नीति की धारणाकर वह ब्रिटेन के यूरोपीय साम्राज्यवाद में सम्मिलित होने का विरोध करते हैं। कुछ राजनीतिक विशेषज्ञों का मत है कि विश्व को राजनीति की धारण विचारों के अनुकूल परिवर्तित करना और अपनी इच्छानुसार युटों का निर्माण और विनाश करना फ्रांस के युटों की बात नहीं। फ्रांस या डिगाल विश्व की राजनीतिक घटनाओं को नियंत्रित करने की शक्ति नहीं रखता। इसलिए जनरल की ऊंची राजनीतिक उद्देश्यें समझना कोई कठिन नहीं है। जब तक विश्व की जनता यह अनुभव नहीं करती कि अमेरिकन और सभी युटों के अतिरिक्त ही कीर्त और शक्ति का ध्यान है तब तक उनकी वरुणा करके आगे वरुणरामत मित्रों का नाराज करना एक जनरलक बात है। मगर जनरल डिगाल इसी प्रकार की संविन्य और विनाशक

परिस्थितियों में विकसित हुए हैं। १९१२ में प्रस्थीरियाई स्वतन्त्रता के समय उन्होंने अपने मंत्रीमण्डल से कहा था कि यहाँ संसद का जहाँ बहुत ही चुपकनी भाषा पर काम पड़ा है जिन्हें भाषा की बकान महसूस होती है वे पहाड़ से उतर जायें और दूसरों को सहरोँ क बने दे साने दें।

EXERCISES

1. Critically examine the foreign policy of the U.S.A. since the termination of Second World War

Or

Give a critical sketch of post-war American foreign policy

द्वितीय महायुद्ध की उत्तरकालीन अमेरिकन विदेश नीति का प्रालोचनात्मक विश्लेषण कीजिये।

2. Sketch briefly the part played by the U.S.A. in International affairs since 1939. What are the international aims of the U.S.A. at present time?

१९३९ के बाद से प्रत्यर्थाष्ट्रीय मामलों में समुक्त राज्य अमेरिका ने जो भूमिका पदा की उनका मूलेन में विचार कीजिए। वर्तमान समय में समुक्त राज्य अमेरिका के प्रत्यर्थाष्ट्रीय उद्देश्य क्या हैं?

3. Estimate the strength and influence of the imperialist motive in the policy of the United States today

समुक्त राज्य अमेरिका की नीति में साम्राज्यवादी उद्देश्य के प्रभाव और शक्ति का मूलांकन कीजिये।

4. What was the Truman Doctrine? When and under what circumstances was it enunciated? Would you agree with the view that the Truman Doctrine is the modern version of the Monroe Doctrine?

ट्रूमैन सिद्धान्त क्या था? जब और किस परिस्थितियों में इसे कायमिष्ठ किया गया था? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि ट्रूमैन सिद्धान्त मुनरो सिद्धान्त का आधुनिक रूप है?

5. "The Truman Doctrine marks a revolutionary departure in the American tradition policy and political thinking." Elucidate

ट्रूमैन सिद्धान्त अमेरिकन परम्परा नीति और राजनीतिक विस्तार में एक आन्विकारी विदाई का मकेत है।" विवेचना कीजिए।

6. "The Truman Doctrine was indeed a Monroe Doctrine for the entire free world. The Truman Doctrine made the necessary adjustment of the old Doctrine to new conditions the necessary extension of the borders of the Western Hemisphere to the borders of the free World." (Michael Danclan) Discuss

ट्रूमैन सिद्धान्त विश्व ही समूले स्वतन्त्र विश्व के लिए मुनरो

सिद्धांत है। इसने पुराने सिद्धान्त को नवीन परिस्थितियों के साथ प्रावश्यक रूप से सुनायोजित कर दिया तथा पश्चिमी गोमार्ड की सीमाओं का स्वतन्त्र विश्व की सीमाओं तक विस्तार कर दिया।” विवेचना कीजिए।

7. What do you mean by the Eisenhower Doctrine? Discuss its working and the causes of its failure.
 आइज़नहोवर सिद्धान्त से भावका क्या प्रथिप्राय है? इसकी कार्य प्रणाली और असफलता के कारणों का विवेचन कीजिए।
8. “The act (for International Development, 1950) was a significant milestone in the evolution of American world policy (Richard P. Stebbins) Discuss.
 ‘यह कानून (अन्तर्राष्ट्रीय विकास कानून १९५०) अमेरिकन विश्व नीति के विकास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था।” विवेचना कीजिए।
9. “The post war Korean problem was inevitably cast in the mould of the United States—Soviet Relations.” Discuss
 ‘युद्धोत्तर कोरियन समस्या अनिवार्य रूप से संयुक्त राज्य—सोवियत सम्बन्धों के ढाँचे में इसी थी। विवेचना कीजिए।
10. Secretary Dulles's passion for ‘pactomania led to innumerable compacts, some of which had no operational utility and others of which alienated neutrals and aided enemies more than they strengthened ties with friends. (F. L. Schuman)
 Do you subscribe to this view? Cite illustrations in support of your answer
 विदेश सचिव डलैस की ‘पटवन्धन की मनोवृत्ति ने अनेक संघटनों या गठबन्धनों को जन्म दिया जिनमें से कुछ की कोई व्यावहारिक या व्यावहारिक उपयोगिता नहीं थी और वे दूसरों के मित्रों के साथ सम्बन्ध दुर्बल करने की प्रयत्ना ‘शत्रुओं’ को सहायता पहुँचायी और ‘दुश्मनों’ का मन फेर दिया। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में उदाहरण दीजिए।
11. Examine the trends of U.S. policy towards the Latin American States since 1945
 (१९४५ के बाद से लैटिन अमेरिकन राज्यों के प्रति संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति की समीक्षा कीजिए।
12. “It was evident before 1960 that America was faced with the inescapable necessity of an ‘agonising reappraisal of the course in foreign affairs it had pursued during the preceding two decades.”
 Discuss in the light of this statement the main trends of the U.S. foreign policy during the regimes of Roosevelt Truman and Eisenhower. What changes

do you envisage in the Kennedy regime ?

“१९६० से पहले यह स्पष्ट हो गया कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सामने घानी वैदेशिक नीति के उम मार्ग पर ‘खेदपूर्ण पुनर्संश्लेषण’ का पुराना पुनर्स्थापन करने की अनिवार्य आवश्यकता था। बड़ी हुई है जिसका विगत । बहासियों से अनुसरण कर रहा था।”
 उपरोक्त कथन के प्रकाश में क्लेमेट, ट्रूमैन और आइजनाहोवर के प्रशासन काल के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति की मुख्य प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए । केनेडी के शासन काल में आपको कौन से परिवर्तन स्पष्ट प्रतीत होते हैं ?

13. “The post war World possessed a number of important characteristics but above all it was overshadowed by the rivalry of the United States and the Soviet Union”

(Cordon Council-Smith)
 Discuss this rivalry and its effects on World Politics.

‘महायुद्धोत्तर विश्व की घनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ थीं—किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ की लड़ाई या प्रतिद्वन्द्विता इन सबसे ऊपर गिरी हुई । प्रतिद्वन्द्विता और विश्व राजनीति पर पहले वाले प्रभावों की विवेचना कीजिए ।

14. Write short notes on the following—

(a) Marshall Plan.

(b) Point Four Programme.

(c) Eisenhower Doctrine.

(d) Containment Doctrine

(e) Containment to Liberation and finally to Accommodation.

(f) Summit Conference of Geneva (1960).

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(घ) मार्शल योजना

(ब) चतुर्थ सूची कार्यक्रम

(क) आइजनाहोवर सिद्धान्त

(ख) ‘सीमितता’ का सिद्धान्त

(ग) ‘सीमितता’ से स्वतन्त्रता तथा अन्त में सुसह की नीति

(घ) जिनैवा सम्मेलन (१९६०)

15. Discuss in brief the problem of the reunification of Germany

जर्मनी के एकीकरण की समस्या का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

10

सोवियत संघ की विदेश नीति

[THE FOREIGN POLICY OF U S S R.]

१ सोवियत विदेश नीति के प्रमुख आधार

२ सोवियत विदेश नीति के लक्ष्य

३ सोवियत संघ की विदेश नीति (१९४५-१९६०)

(A) जर्मतावादी नीति का स्टालिन काल (१९४५-१९५३)

(B) शांतिपूर्ण प्रतिव्योक्ति का स्टालिनोत्तर काल (१९५३-१९६०)

(i) मालेन्कोव-बुस्सालिन सुझाव प्रकाशन काल

(ii) कुरेवोत्तर कोसीगिन-ब्रेज्नेव काल पूर्व सोवियत नीति की नयी दिशाएँ

'कृत की नीति अपरिवर्तनीय है --- --
 उसके साधनों उसकी बातों तथा
 कृतनीति में परिवर्तन हो सकता है,
 परन्तु उसकी नीति का नाम बदलकर
 बहु-विराट-प्रभुता एक
 अविचल धीर प्रभु
 यह है ।"

—डॉ. माकर्स

'हम केवल एक राज्य हैं नहीं बल्कि राज्यों की एक व्यवस्था के अन्तर्गत
 भी रहे हैं। एक बीई-कास तक साम्राज्यवादी राज्यों के सम-संग
 सोवियत गणराज्य का अस्तित्व बना रहना असम्भव है। अन्ततः
 दोनों में से एक की विजय निश्चित है, एवं उस अन्तिम
 व्यवस्था के अन्तर्गत के पूर्व सोवियत-गणराज्य
 तथा पूंजीवादी राज्यों के मध्य संघर्ष
 होना अपरिहार्य है ।"

—डॉ. मिचमिर सूतियानोव्स्की

"यदि कोई यह सोचता है कि हम अपने धर्मों को छोड़ दें
 धीरे-धीरे अविश्वास का भी घन्टा बज रहे कि मूलतः एंग्लिकन
 सैनिक धीरे-धीरे अविश्वास के सिद्धांत ठीक हैं; तो वह बड़ी भूल
 करता है। जो लोग इसकी भ्रष्टाचार करते हैं हम उन्हें
 अविश्वास दिलाते हैं कि उन्हें तब तक प्रतीक्षा करनी
 बड़े ही बुरा तक कि ईस्टर (Easter) धीरे-धीरे व्हाइटसन
 (Whitson) एक ही दिन बड़े ।"

—मिडिल्टन एरब

परम्परागत सद्यों के बारे में यह कहा जाता है कि इवान का टे (Ivan the Terrible) का प्रमुख मक्य था कि मंगोलों को बोलगा के पहुँचा देना तथा पोलिश विस्तार के गतरे को मास्को के लिए कम देना। पीटर महान का मक्य था स्वीडन की शक्ति को कम कर देना एनिजाबेन तथा केथेरिन महान पोलिश तथा लिथुयानियन राज्यों पर कर देना चाहते थे। उनके उत्तराधिकारी भी इन दिशाओं में विस्तार करते रहे। १६१४ में मास्को जारों की विस्तारवादी नीति कुछ बीसी हो किन्तु प्रभाप्य नहीं हुई। इसके पूर्व पर्सिया एवं अफगानिस्तान भी इन विस्तार के लिकार बन चुके थे। तुर्किस्तान में रूस का विस्तार उधे अफगानिस्तान तथा भारत की सीमाओं के निकट से था। जैसे ही रूस ने साइबेरिया में धीरे बढ़ना शुरू किया तो ही चीन के विरुद्ध उसके हिट टकराने मने सुदूर पूर्व में अपनी कूटनीति का बढ़ाने के लिए जारशाही रूस ने मार्क्स दरबार को बूस देने में भी संकोच न किया। १६१८ से १६२६ तक रूस साम्यवादीयों ने चीनी साम्यवादीयों को चीबा ममर्शन किया किन्तु चीनकारों के शक्ति में घाते ही उन्होंने अपना हाथ लीच दिया। इस प्रकार वर्तमान रूस की विदेश नीति ने जो कुछ भी अपनी परम्पराओं से अपनाया उनमें प्रथम तथा महत्वपूर्ण तत्व है 'विस्तारवादी नीति'।

जारशाही से पहले कभी विदेश नीति की दूसरी विशेषता रूस के सोवो का बहु गहरा एवं रहस्यमयी विभाग है जिसके आचार पर विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण कार्य करना से अपना उत्तरदायित्व मानते हैं। रूस मार्क्स से ही बास सोवो का नेता तथा प्रस्था का प्रभाव प्राप्त रहा है। रूसों का आतृत्व (Pan-Slavism) मात्र भी कभी विदेश नीति में महत्वपूर्ण भाग ले रहा है तथा पोलैण्ड केकोस्लाविया यूरोस्लाविया और अस्तोरिया रूसों का इसने प्रभावित किया है। मास्को विश्व साम्यवाद का प्राथमिक केंद्र बना दिया गया है और विश्व में सभी साम्यवादी यहाँ से प्रेरणा एवं मार्ग-निर्देश प्राप्त करते हैं। और साम्यवादी देश भी यह स्वीकार करते हैं कि किसी भी सैद्धांतिक विवाद एवं संघर्ष पर कमलिन का निर्णय अन्तिम होगा। यह धारणा है कि चीनी साम्यवाद के उदय से रूस स्थिति में अब बहुत कुछ परिवर्तन या गया है।

(२) सैद्धांतिक बुद्धिजीवि

किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न एवं परिस्थिति पर विचार करते समय रूस के कर्णधारों द्वारा जिस दिशा में अस्तित्व की संरक्षा तथा विकास की जाती है यह है साम्यवाद की स्थापना तथा मार्क्स और लेनिन के मंत्रों की मार्गदर्शिका। इस दृष्टि से सोवियत नीति स्वेच्छाकारी प्रवृत्तिक

friendship between the two camps would be possible or even profitable from its points of view
—R. S. Tarn "Continuity in Russian Foreign Policy" -
International Journal, Canadian Institute of International
Affairs Autumn, 1950.

धीरे-धीरे गुंजावट बन जाती है। जैसे समय-समय व्यक्तियों के फयन इसरी दिशा का परिचय देते रहते हैं। घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करने के कारण प्रायः रूस की विदेश नीति भारत निर्णयों पर भी पशु बन जाती है। इन्दिराजी एक ऐतिहासिक मौलिकवाद मार्क्स-लनिन के सिद्धांतों की मूलधारमा है। स्टालिन तथा अन्य सोवियत नेताओं की नीतियों एक सामान्य दृष्टिकोण में तथा इन सिद्धांत में एक गहरा सम्बन्ध दिखायी देता है। वे पूंजीवादी शक्तियों को वर्तमान समाज की पतनोन्मुख तथा असंगठित शक्ति मानते हैं। स्टालिन का कहना था कि पूंजीवाद शक्ति का विराधी है जिनके द्वारा पूंजीवाद स्थापित हो समाजवादी स्वामित्व के रूप में बदल दिया जायगा। स्टालिन तथा लेनिन समाजवादी विकासवादी शक्ति एवं प्रजातन्त्र-समक-तरोहों की तीव्र प्रालोचना करते थे क्योंकि वे पूंजीवाद को स्मरण प्रदान करते हैं। इस आधार पर सोवियत रूस ने पूंजीवादी देशों के साम्यवादी धान्दासनों को बुला मसा कहा। सोवियत सिद्धान्त की इसरी विशेषता व भी सोवियत विचारों पर भारी प्रभाव डाला है।

सनित यह मानते थे कि साम्राज्यवाद पूंजीवाद की अन्तिम सीढ़ी है। पूंजीवाद के प्रसार से व साम्राज्यवादी युद्ध का जन्म होता है उपनिवेश बनते हैं तथा प्रतिनिधि-संघर्ष इन उपनिवेशों व पूंजीवाद के विरुद्ध सघन का उभय हुआ। फरवरी १९४६ में स्टालिन ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए बताया कि उसके मतानुसार युद्धों का तब तक अन्तिम रहेगा जब तक कि पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी। इन सिद्धांतों की कठोरता व लागू करने के कारण रूसी विदेश नीति ने कई बार बहुत प्रसाधारण सन्नियों को है। उदाहरण के लिए जर्मनी धीरे-धीरे यूरोप के देशों के अन्तिम भाग के बारे में हमने यह अनुमान लगा लिया कि या तो ये रूस ममयक नहीं हैं अथवा इनके पास सामान्य शक्ति नहीं है। पूर्वी यूरोप व राष्ट्रवाद के उदय की संभावनाओं पर भी यह इसी कारण विचार नहीं कर सका था। साम्यवादी विचारवादा से प्रभावित रहने के कारण ही सोवियत रूस की यह पक्षी धारणा बनी कि पश्चिमी देशों के साथ उभय सम्बन्ध बनी की वैश्वपूर्ण नहीं है। सचते क्योंकि वहाँ का समाज राज्य व संस्कृति एवं धर्मोपस्था आदि सभी कुछ पूंजीवादी आधारों पर स्थित है। साम्यवादी एवं समाजवादी समुदायों के बीच संबंध वा होना स्वाभाविक तथा अपरिहार्य है। प्रारम्भ में जर्मन देशों के प्रति रूस का रण बड़ा धर्मधीपूर्ण था। यह समझा जाता था कि जो हम का मित्र नहीं है अपना उभय मुट में नहीं है वह अन्ततः ही शक्ति विराधी तथा पूंजीवाद का ममयक है। पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ मजबूत इतना मौलिक रहेगा कि वह हिंसात्मक एवं विध्वनात्मक रूप भी धारण कर सकता है। स्टालिन का कहना था कि पूंजीवाद के ऊपर शक्तिपूर्ण शक्तियों से विजय नहीं की जा सकती। जर्मन शक्तिधतियों में पूंजीवाद को सबसे शक्तिधारी शक्तियों में ही उगाना जा सकता है। यह शक्ति हिंसात्मक रूप धारण कर मौल का भी कारण बन सकती है। १९२१ में इन मत के ठीक विपरीत उभते कहा था कि पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ हमारे वर्तमान सम्बन्धों के आधार हैं दो रितीधी सम्बन्धों

का नातिपूर्ण सहअस्तित्व । इस प्रकार सोवियत रूस पूंजीवादी राष्ट्रों पर कभी आक्रमण नहीं करेगा और धाता है कि पूंजीवादी राष्ट्र भी रूस पर आक्रमण नहीं करेंगे क्योंकि उसका परिग्राम होना विश्व स पूंजीवाद की पूर्ण तरह समाप्ति । जनवरी १९३४ में साम्यवादी दल की १७ वीं कांग्रेस में स्टालिन ने कहा था कि हमारी विदेश नीति स्पष्ट है । हम प्रत्येक के साथ नाति एवं मित्रतापूर्ण सम्बन्ध चाहते हैं । हम किसी पर आक्रमण करने की ती क्या आक्रमण की धमकी देने की भी नहीं सोचते । किन्तु हम व्यक्तियों से नहीं बचराते और जो कुछ देशों का प्रयास करते हैं उनको पूंजे का बचना पूंजे से ही देने को तैयार हैं ।

इस प्रकार सोवियत विदेश नीति सिद्धान्तों से पूरी तरह प्रमाणित है यहाँ व्यवहार को हमेशा सैद्धांतिक रूप में ही समझा जाता है तथा किसी कार्य को व्यापोजित करने के लिए विचारधारा का सहारा लिया जाता है । मार्क्स के द्रवी सिद्धान्तों को लेनिन ने अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में लागू किया तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल बनाया । लेनिन ने एक बार कहा था कि हम कैबल राज्य में नहीं बरन् राज्यों की व्यवस्था में रह रहे हैं और अधिक समय तक पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ-साथ सोवियत गणराज्य का अस्तित्व विचार से परे की बात है । अन्त में एक को या दूसरे को समाप्त होना पड़ना और जब तक यह अन्त प्राये तब तक सोवियत गणराज्य एवं बुर्जुआ राज्यों के बीच संघर्षपूर्ण बिगटनों की एक शृङ्खला का धाना अपरिहार्य है ।

वर्तमान समय में लुखचेव के प्रमाणयुक्तत्व में आकर रूस का इति-कोण स्वासिगवादी तानाशाही प्रवृत्तियों से बड़ा गरम हुआ । शक्ति एवं बाध्यता का महारा छोड़ कर रूसी नेता यह मानने लगे कि एक देश की साम्राजिक व्यवस्था में परिवर्तन उस देश के लोगों का सामरिक मामला है इनको उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये । लुखचेव ने कहा था कि निश्चय ही कैबल को मार्ग दिए हैं या ता नातिपूर्ण सहअस्तित्व और वा इतिहास का सबसे यथार्थ व विघ्नरक युद्ध तीव्रता रहता है ही नहीं ।²² कुछ सेलकों का मत है कि सोवियत रूस ने अपनी जारशाही की विस्तारवादी नीति को सैद्धांतिक आना बहाना दिया है और यह धात की पहले की तरह ने विश्व साम्राज्य के स्वप्न देग रहा है ।

(३) आर्थिक नीतियों

सोवियत रूस की सबसे प्रमुख विजयता जो उसे विश्व के अध्यात्मवादी राज्यों से पृथक करती है वह है बड़ी की समाजवादी धर्मव्यवस्था एवं

1 " ... Indeed, there are only two ways either peaceful co-existence or the most destructive war in history There is no third way "

—N S Khrushchev in Report of the Central Committee of the CPSU to the 20th Party Cong. Feb. 1956

उत्पादन का साम्यवादी तरीका। कहने की आवश्यकता नहीं कि बर्ता की धर्मब्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सामाजिक स्वामित्व है व्यक्तिगत लाभ के लिए उत्पादन के स्थान पर सामाजिक आवश्यकता के आधार पर उत्पादन होता है धर्मवा हम वा जर्मों में कह सकते हैं कि यह धर्मब्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था के ठीक विपरीत है। सोवियत रुस की विदेश नीति का रूप निश्चित करते समय यह सब ध्यान रखा जाता है कि इससे बिना में समाजवादी धर्मब्यवस्था को प्रोत्साहन मिले और पूंजीवादी धर्मब्यवस्था नष्ट हो जाय। अपने उत्पादन के तरीको एब व्यवहारों में क्रांतिकारी परिवर्तन करके हम बहुत हीघ्र ही एक समर्थ राष्ट्र बन गया है तथा इसने अपने कृषि प्रदान रूप को शीघ्रोपीकृत बना लिया है। विश्व के धर्मबिधमित एब धर्मिकासकीत राष्ट्रों के लिए यहाँ की धर्मब्यवस्था एक आदर्श है। इस आदर्श का प्रसार करने के लिए सोवियत रुस पूंजीपति राष्ट्रों के साथ गहरे धर्मिक सम्बन्धों की स्थापना करता है। साम्यवादी रुस की १३ की कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा दिसम्बर १९२७ को धर्मिक महामय की नीति के इस सिद्धांत को स्पष्ट करत हुए कहा था कि हमें हमारी नीति को दूसरे देशों के साथ धर्मिक में धर्मिक धर्मिक सम्बन्धों का विकास करने के बिचार पर धर्मारिष्ठ करना चाहिए जहाँ तक कि ऐसे सम्बन्ध सब की धर्मिक शक्ति का बढ़ाते हैं। हम इस पूंजीपति बिना में धर्मिक स्वतन्त्र बनाना चाहिए तथा हम के धर्मिक धर्मिक बिस्तार के लिए समाजवादी नीति को बढ़ाना चाहिए। अब्दुक्रमन अब्दुलमिन्ब के लक्ष्यों में 'सोवियत विदेश नीति स्थापित के राष्ट्रीय सत्त्यों की पूर्ति के लिए बनायी गयी है'। ये सब ये—धर्मोपीकृतण समष्टिकरण तथा एब गसती तथा धर्मारिष्ठवादी यत्र का निर्माण।¹

सोवियत विदेश नीति के लक्ष्य (Goals of Soviet Foreign Policy)

साम्यवादी बिचार धारा सोवियत विदेश नीति के लिए केवल आधार ही प्रदान नहीं करनी बरन् यह उनके लक्ष्यों की धार भी स्पष्ट रूप से संकेत करती है। रुस की विदेश नीति धर्म्य देशों की विदेश नीति की मानि उनके राष्ट्रीय हित की पूर्ति करती है उसे विश्व की महान शक्ति बनाने का प्रयत्न करती है उसके मित्रों की संख्या को बढ़ान में महामय बनती है। इससे धर्मारिष्ठन यह साम्यवाद के प्रसार, साम्यवादी देशों के संयोजन तथा उनके हितों में एकरूपता की स्थापना पूंजीवादी व्यवस्था का धर्म एतिया धर्मोपीकृतण धर्म्य देशों में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना साम्राज्यवाद एब

1 Soviet foreign policy was made to serve Stalin's domestic goals of industrialisation, collectivisation and the creation of a gigantic terror machine."

—Abdulkhman Avtorkhanov Problems of Soviet Foreign Policy A Symposium edited by Oliver J Frederiksen Munich, 1959

अपवित्रता" की समाप्ति चाहि सभ्यों की पूर्ण के लिए संघामित हाठी है ।
मावियन विरत नीति के मुख्य-मुख्य सधम निम्न प्रकार :-

विश्व में साम्यवाद की स्थापना

साम्यवादी शोषणा-युग मे विश्व के मजदूरों को एक होन का मावाहन किया गया है तथा विश्व स पूंजीवाद के एकदम समाप्त होन की मविष्य वाशी की गयी है तथा इनका स्थान साम्यवादी समाज से लेगा ऐसी धाजा ललाई गई है । यही कारण है कि सोवियत रूस की विदेश नीति भी विश्व भर में साम्यवादी प्रभावोमर्तो को प्रस्ताहन देने एवं अन्तिमा को मरुप्त बगाने में सचिय सहयोग प्रदान करती है । साम्यवादी शोष सोवियत रूस का उठना ही महत्वपूर्ण मानते है जितना कि कामिक विश्वास धारों के लिए ठीक स्पान महत्वपूर्ण हावा है । इसके भी पश्चि के विश्व ब्यापी साम्यवादी ब्यवस्था क अन्तिम राजनीतिक सधम की प्राप्ति के लिए मास्को से संनिक एष सभ्य प्रकार की महायता धान की पूरी धाया लगत है । सोवियत संघ की विदेश नीति क प्रमुख एवं प्रथम निर्माता मेनिन का मुकाबल द्द्वन्द्वराष्ट्रीयता का ही धार पश्चि का इसके सिधे के राष्ट्रीय स्वाधों का बमिदान करने को मा तैयार थे । उन्होंने रूस के राष्ट्रीय हितों को बिना किनी संशोध के धरने इन की विचारधारा से गीण बना दिया बा । उनका मत बा नि वर्तमान राष्ट्रीय युद्धो का पृष्ठ-युद्धो से बरन दिया बाय धर्पाउ प जागति राष्ट्र धायग से मरुं इसके स्थान पर एक ही दृष में सर्वहारा वर्म बुजुर्गा वर्म क विश्व युद्ध छेड़ के धीर इस प्रकार सारे सधार में इन दोनों वर्गों के बीच युद्ध छिड़ जाय । राष्ट्रीयता के विचार का यहाँ कोई स्थान नही बा बरन् बग हिन प्रधान बा । मेनिन का कहना बा कि विदेश नीति के प्रश्नों पर वो प्रधार से विचार किया जाता है । सर्वहारा के मत से समाजवादी अंति महाशक्तिवान राज्य की राष्ट्र की स्वतन्त्रता धेठ है तथा इसे सब चीजों से अधिक प्रापिकता ही जानी बाहिए । मेनिन के ही जग्दों में—हमने न तो महाशक्ति की धोर न ही राष्ट्रीय हितों की रक्षा की है । हम यह मानते है कि साम्राज्यवाद का विश्व समाजवाद क हिन राष्ट्रीय हितों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है । साम्यवाद को विश्व ब्यापी बनाने के लिए अनेक प्रकार के तरीके धाग साम्यवाद को विश्व ब्यापी बनाने के लिए अनेक प्रकार के तरीके प्रपनाये जाठे है । समाजिक के समय में रूस की विदेश नीति ने साम्यवाद के विश्व में प्रचार को गीण बना दिया बा किन्तु तुलना नही पा ।

(2) राष्ट्रीय हित की साधना

सोवियत रूस में साम्यवाद की स्थापना के बा" त्रिध विदेश नीति का विकास हुआ समने राष्ट्रीय हित को एक प्रकार से ध्वन्द्वराष्ट्रीय हित के साथ लघार कर लिया । यह समझा जाने लगा कि विश्व में पूंजीवाद की समाप्ति एवं समाजवादी समाज की स्थापना ही सोवियत संघ का सधये बधा नि है । एक धार मेनिन न रूस कि हमें प्रसनी विचारों को इन धंग से धराने न बनना सीधता बाहिए कि हम सर्वहारा की मानासाधना के

सम्बन्धित समय तक धनायुक्त रहने में समर्थ बन सकें। साम्यवादी व्यवस्था के अनुसार यहाँ देश की विदेश नीति केवल रूस के हार्थों में रहनी है। यहाँ प्रतिष्ठा का बन्धीकरण पहले रूस में उसके बाद नौकरागृही में तथा उसके बाद एक तानाशाह में हो जाता है। इस हिसाब से यह कहना सच ही है कि सोवियत रूस का विदेश नीति एक राष्ट्रीय राज्य की नीति नहीं है बल्कि यह सत्तावादी वर्ग की सैद्धांतिक एवं दलील नीति है। रूस का हित स्वाभाविक रूप से विश्व में अपना प्रसार करना ही है। विदेशी विचारधारा धन-व्यवस्था एवं भाग्यताओं से पूर्ण पूँजीवादी प्रणालियों से घिरा हुआ सोवियत संघ निश्चय ही अपने किमी भी हित का प्राप्त नहीं कर सकता है। यह उचित ही नहीं बल्कि प्राच्यवादी भी है कि सोवियत रूस साम्यवाद का प्रसार करे तथा पूँजीवादी राष्ट्रों से अपने हितों की एवं स्वतंत्रता तथा प्रजासत्ता की रक्षा करने के लिए समाजवाद में विश्वास करने वाले राष्ट्रों का एक संघ में गुट बना सके।

(३) एक नवीन साम्राज्य की स्थापना

पश्चिमी आलोचकों द्वारा सोवियत रूस की साम्यवाद के प्रसार की नीतियों को प्रायः उसकी साम्राज्यवाद की पुरानी परम्परा की प्रथम शान का एक दूसरा तरीका बताया जाता है। एब्दुराख्मन अवरखानोव (Abdurakhman Avtorakhanov) का कहना है कि जारशाही रूस का लक्ष्य था। ऐसी प्रसार का जो कबल युद्धोत्पन्न देश की घोर ही निर्देशित था था यह स्थायीय प्रवृत्ति का था। किन्तु सोवियत रूस का मुख्य सैद्धांतिक है और इसलिए यह विश्वव्यापी है। विश्व समाजवादी क्रान्ति के मान पर सोवियत रूस एक नवीन प्रकार के साम्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विकास कर रहा है। यह पुनर्ने तरीके के साम्यवाद की पुनरावृत्ति नहीं है। यह राष्ट्रवाद से ऊपर है और इस प्रकार एक क्रान्तिवादी विकास है। यह धार्मिक साम्राज्यवाद नहीं है बल्कि विश्वों के साम्राज्यवाद है। प्रारम्भ में यह बल्कि मास बाजारों मुक्त के धर्म या पूँजी संपत्ति के स्वार्थों में रुचि नहीं लेता ताकि उन देशों पर यह एक निश्चित राजनैतिक तथा सैद्धांतिक शासन बना सके। पूँजीवादी साम्राज्यवाद अपने उपनिवेशों तथा धर्मनिरपेक्ष लोगों पर उसकी अपनी व्यवस्था विचारधारा को नहीं धारण करता किन्तु साम्यवादी साम्राज्यवाद मुख्यतः इन्हीं लोगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है अन्य बातें तो बटलावग हो सकती हैं। इस प्रकार घाटावर्तना के शार्थों में यह कहा जा सकता है कि "सोवियत साम्राज्यवाद साम्राज्यवाद का एक नया प्रकार है यह अधिक गतिशील तथा अधिक मजबूत है। यह एक ब्रह्मणीय साम्राज्यवाद है जो कि एक ऐसे साम्यवादी वर्ग की स्थापना कर देता है या उन उपनिवेशों की जनता का सोवियत नीतियों के लिए मजबूत या सके और स्वयं उच्च निरीक्षण का कार्य सम्हाल लेता है।" 1

1 "Thus Soviet imperialism is a new typical imperialism—more insidious, more dynamic and ultimately more successful. It is a non-racial imperialism, which is oriented towards the creation of new

रूसी साम्राज्यवाद का मही प्रकार से समझने के लिए आवश्यक है कि हम अपने आरक्षित कम बानों की स्थिति में रूस को जहाँ की पालों से विश्व की ओर देखें। सोवियत साम्राज्यवाद स्टालिन के समय में ही उत्पन्न के लिए एक बुलंदी बन गया था। कुम्बेब के घाने पर स्टालिनवाद की बुरी तरह घोषणा की गई किन्तु उसे साम्राज्यवादी नहीं बताया गया था क्योंकि ये नीतियाँ स्वयं कुम्बेब की ही धरनाती थीं। क्रैकशा (Edward Crankshaw) का तो यहाँ तक कहना है कि "सोवियत रूस एक देश नहीं है बल्कि यह तो एक साम्राज्य है।"² रूस की विदेश नीति जिस साम्राज्य की धारणा का एक स्पष्ट देखाती है उसका उदाहरण विश्व के इतिहास में प्राप्त नहीं है। यह अपने प्रकार का प्रभुता ही है। विश्व भर में मजबूर वर्ग का प्रभुत्व हो जाये तथा सारा पधार मान्को के मेलुत्व के धारण रहे यह रूसी साम्राज्यवाद का अन्तिम लक्ष्य है।

(४) साम्राज्यवादी युद्धों को रोकना

वर्तमान विश्व के परिघात अन्तर्राष्ट्रीय विवाद एक मजड़े बाड़े के बालघात तक सीमित हो घबका मसुओं का महारा के रहे हो मुख्य रूप से पूँजीपतियों द्वारा ही पैदा किये जाते हैं। ये अन्तर्राष्ट्रीय मजड़े तब पैदा होते हैं जबकि या पूँजीपति देशों के द्वि परस्पर टकराते हैं। इन युद्धों के मुख्य हिस्सदार भी पूँजीपति ही होते हैं। साम्यवाद का मयबंक होने के नाते सोवियत रूस का यह विचार है कि इन मजड़ों से विश्व की सर्वहारा वर्ग के लिए उत्पत्ती ही अनुभवोपी एवं हानिकारक है जिससे कि उत्तरे के लिए हार हानिकारक हो सकती है। इसलिए किमी भी कीमत पर मजबूर को इन युद्धों में सहयोग नहीं देना चाहिए। सोवियत रूस की विदेश नीति यह प्रयास करती है कि इन प्रकार के युद्धों के स्थान पर नये युद्ध या जाय ताकि पूँजीवाद का समाप्त करके सर्वहारा वर्ग शासन को अपने हाथ में ले सक।

(५) शान्तिपुरु सहमन्त्रित्व

स्टालिन के समय में रूस की विदेश नीति पश्चिमी युद्ध का पुरो मह में विरोध करती थी तथा यह माना जाता था कि पूँजीवादी तथा साम्यवादी देशों के बीच सम्पर्क तथा युद्ध का होना अनिवार्य है। युद्ध के बिना कोई भी पूँजीवादी देश शक्ति का स्वाग नहीं करेगा। स्टालिन का विचार था कि जो सोवियत घासामी विश्व युद्ध के उत्तरे को टालने की वृष्टि से

governing classes to support its policy among the colonial peoples while retaining for its empire an overall supervisory role."

—Abdurkhan Avtorokhov, op cit. p 2-3

1 "The Soviet Union is an empire not a country"

—Edward Crankshaw "Russia's Imperial design" in the Atlantic Monthly November 1957

लेनिन के इस विचार को कि 'साम्राज्यवाद' युद्ध को जन्म देता है गलत बताते हैं वे स्वयं ही प्रसन्न हैं। शक्ति की स्थापना के लिए चाहे कितने ही प्रयत्न किये जाय वे सभी युद्ध को तब तक नहीं रोक सकते जब तक कि पूँजीवाद दुनियाँ में कायम है।

लुत्खेव ने स्टालिन द्वारा अपनायी गयी कठोर द्विपक्षीय विरोधी नीति को बड़ा नरम बनाया। साम्यवादी दल की २०वीं कांग्रेस में वास्तव में उल्लेख किया जा कि १९३३ की कांग्रेस में प्रायः तब का जो समय गुजरा है उसमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं। जैसे हीटलर युद्ध का छिड़ना, कोरिया तथा इंडोचाइना में हिंस्रतापूर्ण वारदातें दोनों गुटों में अंतर्गत मताभेद के कारण सैनिक सपठनों का सूत्रपात जैसे नाटो की स्थापना आदि। ये सम्बन्धी विश्व में पूँजीवादी प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए की गयी हैं। इस समय विश्व स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित हो गया था तथा दोनों ही गुटों के बीच एक अपूर्व संतुलन भी था। लुत्खेव ने मत्थानुसार इस संतुलन के रहते हुए विश्व युद्ध असंभव बन गया है। एक युद्ध छुड़ने का शक्ति की मात्रा तथा प्रतिक्रिया की संभावनाओं को देख कर उस पर आक्रमण करने का दुस्सह्य कदापि न करेगा। शक्तियों की दौड़ प्रायः अपनी पूरी गति पर है। इन परिघटनों के अतिरिक्त एक दूसरा मुख्य विचार यह हुआ है कि पूँजीवादियों के साम्राज्य एवं उपनिवेश जब तक एक-एक करके स्वतंत्र राष्ट्र बनत जा रहे हैं। इस महीन समय में लेनिन की यह सविस्तर विचारणा सच हो गयी है कि विश्व का भाग्य का निर्णय करने में पूर्व के लोग महत्वपूर्ण एवं सक्रिय भाग ले रहे हैं। एशिया और अफ्रीका के विकसित एवं अर्ध विकसित देशों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए बड़ी शक्तियों द्वारा सहायता योजनाएँ प्रारम्भ की जा रही हैं। यह विदेशी सहायता किसी शर्त पर ही जाती है। लुत्खेव के मत्थानुसार यह शर्त है कि वे देश उस युद्ध के सैनिक सपठन में बंध जायँ तथा अमरीका की विश्व विजय से पूर्व विदेश नीति का समर्थन करें। युद्ध से अलग रहने की पूर्वी देशों की नीति उनकी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को बनाये रखने का प्रयास है। एक तीसरा मुख्य परिवर्तन यह है कि अर्ध विकसित देशों तथा साम्यवादी देशों के बीच मैत्री सम्बन्ध दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इन सब परिवर्तनों के कारण विश्व में अिस प्रकार की स्थिति पैदा हो गयी है उसमें सोवियत संघ द्वारा यह सोचा गया कि विदेश नीति को शक्ति एवं हिंसा पर आधारित न रख कर विश्वीय देशों के साथ शक्तिपूर्ण सहप्रस्तित्व की नीति अपनायी जाय। हाइड्रोजन बम के कारण 'विश्व युद्ध' विश्व विनाश का प्रतीक बन चुका है। पूँजीवाद को समाप्त करने तथा साम्यवाद का प्रसार करने के लिए सब शक्तिपूर्ण माथनों का सहारा लिया जाना चाहिए। लुत्खेव ने शब्दों में लेनिन का विभिन्न समाज व्यवस्थाओं के साथ शक्तिपूर्ण-सहप्रस्तित्व का सिद्धांत हमेशा ही हमारी विदेश नीति का भाग रहा है। यह कोई आनवादी नहीं है बरन् सोवियत विदेश नीति का मौलिक सिद्धांत है।

विदेश नीति का यह विश्वास है कि घाटिपूर्ण सहमतिरत्न की प्रतिबोधिता निश्चित रूप से समाजवाद को विजयी बना दगी ।

(१) अमरीका को नीचा दिखाना

विश्व की एक महान् शक्ति हान के माते सोवियत रूस के हित अन्वेषकों के साथ भी टकरा सकते हैं किन्तु उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वि वो रही हो सकता है जो उसे विश्व की एक मात्र महान् शक्ति हाने के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर सके । इस दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वि है । यद्यपि राजनीतिक नीतिक तथा अन्य सभी क्षेत्रों में उसे नीचे दिखाना सोवियत संघ की विदेश नीति का प्रमुख लक्ष्य बन गया है । समाजवाद के अनुभवों को यह दिखाने के लिए कि कमिज्म वर्ग में अपना नवीन समाज बनाने की पूरी योजना है और निचा क्षेत्र में व्यक्तिगत लाभ तथा प्राप्ति के तथाकथित लाभों से संबंधित रहित हुए भी वे अपने देश का उत्पादन बहुत कम समय में प्रास्ताविक स्तर पर ला सकते हैं, सोवियत रूस हर नामक प्रयास करता है । इसका कारण यह है कि अपनी उन्नत एवं सफल कार्य व्यवस्था के प्रति एशिया और अफ्रीका के नवाहित राष्ट्रों को वह अमेरिका के प्रभाव से धींचकर साम्यवादी छत्र छाया में ला सकता है । सोवियत रूस द्वारा स्टील का उत्पादन तथा उपयोग संयुक्त राज्य अमेरिका से दुपुना किया जाता है तथा हथियार रूप उद्योग आदि क्षेत्रों में भी वह तीव्र प्रति से बढ़ता जा रहा है । उद्योग विज्ञान कृषि की ज्ञान आदि क्षेत्रों में प्राप्त की गयी नारी सफलतायें पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता की प्रमावहीत प्रमाण हैं । सोवियत रूस में विज्ञान में जो प्रगति की है वह भी दर्शनीय है । लुना-दे का अग्रगण्य पर बिना छटके उतर जाना तथा कृषि उत्पाद का बढ़ती से इके शुद्ध रूप पर उतर जाना यहाँ के विज्ञान के उन्नत विभाग के प्रति अंतर के ध्यान को बरबस ही प्राकृत्य कर लेते हैं । वर्ष १९३७ में यूरुबेव ने कहा था कि हमारे देश की छाठी सफलतायें सोवियत संघ के साम्यवादी पक्ष की नीति की नीतियों को क्रियाश्रित करने का परिणाम है । इस प्रकार अपने अनुपूर्व विकास के परिणामों तथा प्रगति की समाजवादों को दिया कर सोवियत रूस पूंजीवादी व्यवस्था की सारहीनता तथा समाजवादी समाज की उत्कृष्टता का सिद्धयन्त कराना चाहता है । इसी प्रकार प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर सोवियत विदेश नीति इस बारे में सर्वत्र जागरूक रहती है कि किसी देश विरुद्ध अथवा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव बढ़ने नहीं पाये ।

गृह युद्ध के रूप में सोवियत संघ की विदेश नीति के आधारों और

with different social systems has always been and remains the general line of our country's foreign policy—it is not a tactical move but a fundamental principle of Soviet foreign policy—

—N. S. Khrushchey 20th Party Congress

सदस्यों की सामान्य विवेचना करने के उपरान्त अब हम मूल विषय पर अर्थात् सोवियत संघ की द्वितीय महायुद्धोत्तर विदेश नीति पर आते हैं।

सोवियत संघ की विदेश नीति (१९४५-१९६७) (The Foreign Policy of Soviet Russia 1945-1967)

द्वितीय महायुद्ध के बाद की सोवियत संघ की विदेश नीति के इतिहास को मुख्यतः दो कालों में विभाजित किया जा सकता है—

- (१) उपद्रवावादी नीति का स्टालिन काल (१९४५-१९५३) एवं
- (२) शांति पूर्ण प्रतिपत्ति का स्टालिनोत्तर काल (१९५३-१९६७)

चूँकि सोवियत संघ की बदलती नीति प्रमुखतः अमेरिकन विदेश नीति के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थी और उसकी प्रतिपत्ति घटनाओं का निस्तृप्त बर्तन विद्यमान प्रभाव में ही चुना है अतः यहाँ उपरान्त दोनों कालों में संघ की नीति का प्रमुख उद्देश्यों और विशेषताओं पर संक्षेप में ही प्रकाश डाला जायगा।

उपद्रवावादी नीति का काल (१९४५-१९५३)

सोवियत संघ का इस काल में सोवियत नीति का नियामक माकलम स्टालिन था। यहाँ द्वितीय महायुद्ध के समय स्टालिन ने मित्र राष्ट्रों को पूर्ण सहयोग दिया था और पोट्सडम यास्ता साल प्रतिपत्तिको घाति सम्मेलनों में भाग लेकर सहयोग एवं सहकारिता का परिचय दिया था यहाँ युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उसकी नीति उपद्रवादी कठोर एवं अकारुणिक हुई। यद्धोत्तर उसकी नीति ने उसके इस विश्वास का प्रकट कर दिया कि पूरबीवादी पश्चिमी अथवा सोवियत संघ का विश्वास का पर्यन्त रक्षक रहा है और उसके साथ शत्रुता प्रसम्भव है। पूर्वी यूरोप में स्टालिन की रीतिगत एक राजनीतिक साम्राज्यवादी नीतियाँ और देश-विदेश में मार्क्स-लनिन के सिद्धान्तों का पूर्ण पालन पर आर देना तथा कभी समझौता न होने योग्य मत मुठारों का बनावे रखना यानि स्टालिन के बाद भी युद्ध का संस्थापक रूप देने का कारण बन गये।

परन्तु इस प्रकार का बलात्करण एवं शीत युद्ध का विकास के नियम बनना कदा ही सम्भव था यह कहना अनुभव्य है। यह स्पष्ट है कि सोवियत संघ के हृदय में १९७ की शान्ति का बान में ही पश्चिम के प्रति अनेक कारणों से विश्वास बढ़ना गया था और यह भी स्पष्ट है कि द्वितीय महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों को सहयोग दत्त हुए भी सोवियत संघ पश्चिम का प्रति अपने सम्बन्ध और अविश्वास का भिटा नहीं गया था किन्तु समग्र यथा भी कहा है कि महायुद्ध के बाद सोवियत संघ शान्ति चाहता था। यदि वह अपना सामरिक स्थिति सुधार कर और अन्तर्गत को सुदृढ़ बना सकता था। यद्यपि यह ही विश्वास-युक्त स्टालिन तक पूर्ण नहीं था। अतः युद्ध के पश्चिम का प्रति संघ प्रकार प्रतिपत्ति होने के पीछे अन्तर्गत एक नया सामरिक

प्रवृत्तियों सोवियत प्रभाव क्षेत्र के दृष्टीकरण तथा सामान्य हठधर्मिता की विशेषताओं से युक्त रही है।¹

स्टालिन द्वारा पश्चिम के प्रति मन्त्रीपूर्ण रुझान की उपेक्षा करके सुराग्रही मतावृत्ति एवं व्यवहार पर काम बढ़ते काम का एक प्रधान कारण यह था कि युद्ध समाप्त होने पर सोवियत संघ की स्थिति कई दृष्टियों से पुनर्पिछा अधिक प्रबन्धी थी। पश्चिम में उसकी साम्रज्य सत्ताएं मध्य यूरोप तक के प्रदेश पर अधिकार जमाए बैठी थीं। पश्चिम और पूर्व में उसका दो बड़े शत्रु, जर्मनी और जापान पुरातन धराशाही हों चुके थे। पश्चिमी यूरोप की भांगरु घाटिक दुर्बला से प्रसन्न जनता साम्यवाद को घामग्रहण दे रही थी। यहाँ सरकारें अस्थिर थीं और साम्यवाद के प्रचार की बड़ी सम्भावनाएं विद्यमान थीं। एशिया और अफ्रीका में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रबल विद्रोह की प्रसन्नता का मामल सहसा रहा था। ब्रिटिश फीच और एक साम्राज्य अपने विनाश की घण्टी बजाती सुनाने को था। इसी साम्यवाद के दौर में, पाश्चात्य पूर्वापति राष्ट्र युद्ध से विघ्नित और घाटिक दृष्टि से प्रसन्न-व्यस्त अवस्था में थे और भी माना प्रकार की घरेलू समस्याएं उन्हें निर्बल एवं शीघ्र बनाये हुई थीं। इस तरह द्वितीय महायुद्धोत्तर स्थिति समयमय सब कारण इस प्रकार की थी कि जहाँ साम्यवाद अपने दौर रोपमें म हर दिना में न्यूनार्थिक रूप से सफल हो सकें। विश्व का यह बातावरण साम्यवाद के प्रचार के अनुकूल था और रुझान के लिये अपना प्रभाव बढ़ाने का यह स्वर्ण अवसर था। स्टाविन जैसा घाब राजनीतिज्ञ नम अवसर का प्रयोजन साम्र प्रत्येक तरीके से उठाता चाहता था और इसमें लिये सबके उपयुक्त मार्ग यहाँ था कि पश्चिम की घण्टी की कहानी को सुरेखा प्रायः घाटोपा-त्यारोपा की गार्मी-वर्षा में जीत-युद्ध को बढ़ावा दिया जाय और पश्चिम के प्रत्येक प्रस्ताव के प्रति अडम्बरानी की नीति अपनाई जाय। चारों ओर के साम्यवाद के लिये अनुकूल बातावरण से साम्र उठाने का सोच संबरण कर पाना स्टाविन के लिये मुश्किल था और स्थिति ऐसी थी कि यदि पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति अज्ञान के कुछ आयतन कारण बास्तव में न हो तो भी सोवियत रुझान द्वारा उन्हें पैदा किया जाता। मोसोटोव म ६ नवम्बर १९४७ को रुझान की उपरोक्त भावना का व्यक्त करत हुए ही ये शब्द कहे थे—“हम एम युम में रह रहे हैं जिसमें सब सबके साम्यवाद की ओर म आम जाती है।”

स्टालिन का विश्वास था कि इस समय पश्चिमी देशों पर अपना मया प्रभाव दबाव साम्यवाद के प्रचार में सहायक होगा और इसीलिए उनमें सर्वत्र

1 For at least eight years—Until 1953—post war Soviet foreign policy was characterized by growing hostility to the West by increasing tendencies toward noncooperation and isolation, by consolidation of the Soviet orbit and by general intransigence.”

उस ध्यानमगलक तब अष्टमामी नीति का अनुसरण किया। उसके खानम
 काल में मध्यपूर्व में टर्की और ईरान पर दबाव डालने की घटनाएँ हुईं। यूनाय
 के महासुद में माग सेने का मिनिफोम वराम वरिन्त का बेग डालने समुक्त
 राष्ट्र मय अमेरिका के साथ संघर्ष करन साम्यवादी चीन ने ममझोता
 करने और कारिया के पक्ष में उलझने पाहि की दूसरी महत्वपूर्ण बातें हुईं
 जिन सब पर पहले यथास्थान प्रकाश डाला जा चुका है। स्थापित काल में
 रूस को विद्रोह पीणि की जो प्रवृत्ति रही उसे किन्नातुसार प्रकट करना
 सुविधाजनक होया—

(१) पूर्वी यूरोप में सोवियत प्रभुता का विस्तार

पूर्वी यूरोप का वही प्रभुता की स्थापना पीटर महासु के काल से ही
 रूसी विदेश नीति का एक प्रधान मध्य रहा है। द्वितीय महासुद ने मोवियत
 रूस को अपने इस प्राचीन स्वप्न को पूरा करने का एक स्वर्ण अवसर प्रदान
 कर दिया। सुद के अनुभव से सामान्यित होकर रूस ने यह कुछ निश्चय कर
 लिया कि उसकी विदेश नीति का संचालन इस प्रकार होना चाहिये जिससे कि
 उसका परिधम में स्थित पड़ोसी राज्य उनके साथ हमेशा दोस्तपूर्ण सम्बन्ध
 रखें। रूस की साम्यवादी पूर्वी यूरोप में सभी देशों को जर्मनी की वाशता से
 काम सेन न ही मुक्ति दिखाई थी घट उन देशों में मोवियत सप के प्रति
 ध्यान महासुदुनि थी। रूसी प्रभाव इन देशों में पहले ही से -वलिए भी व्याप्त
 था कि सुदकाल में इन देशों की साम्यवादी पार्टियों ने ही जर्मनी के विरुद्ध
 सुरु जाने के छापामार संघर्षों का नेतृत्व किया था। इन परिस्थितियों में
 सुडोवराण इन देशों की साम्यवादियों के हाथ में ही राजनीतिक सत्ता आयी।
 इस सत्ता स्थापना में रूसियों की सहायता लेनी ही राजनीतिक सत्ता आयी।
 जिनने अस्वास्थ्य से सुदकाल में ही मध्य पीर पूर्वी यूरोप के बड़े भाग पर
 अधिकार कर रखा था। १९१६ से सोवियत रूस ने अपने क्षेत्रफल में २७
 करोड़ ४० लाख वर्गमील की वृद्धि कर ली थी और सब अंकोस्तोवाकिया
 हर्नरी अलबानिया बल्गेरिया तथा यूगोस्लाविया के मध्यम ३६ करोड़
 वर्गमील के क्षेत्र के ७ राज्य मास्को के वृष्टपोयक बन गये मध्यि युगोस्ल विद्या
 कुछ समय तक मोवियत सुद में रहने के बाद धार्तियत प्रभाव से काफी दूर
 हट गया। इन देशों के प्रतिगिष्ठ अधिगत पूर्वी जर्मनी की वही सन्धाय में
 ही था और यहाँ जिस कामन प्रणामी को कायम किया गया वह समाजवाद
 के सिद्धान्तों के ऊपर आधारित थी।

रूस की वास्तव में यह एक आश्चर्यजनक सफलता थी कि उसने
 यूरोपगण्ड १९४० तक की तीन वर्ष की अस्वास्थि में पूर्वी यूरोप के साथ
 देशों को पूरी तरह तास बाग दिया था। स्वभावतः परिधयी देश सोवियत-
 रूस ने प्रभाव को हम एक बढ़ता हुआ नहीं देण सकते थे। फरवरी १९४५
 के मास्को सम्मेलन में परिधयी शक्तियों ने पूर्वी यूरोप में मोवियत प्रभुता के
 विनाम को रोकने का जो प्रयास किया था उसकी यह पूर्ण हत्या थी। इस
 सम्मेलन में क्लैरिस्ट स्थापित पीर अरिन्त के 'सुक्त यूरोप सम्बन्धी घोषणा'
 (Declaration on Liberated Europe) पर हस्ताक्षर किये थे जिनमें पूर्वी

यूरोप के देशों के लिए यह बचन दिया गया था कि उनमें से प्रत्येक में जनता के लोकतांत्रिक तत्त्वों का विस्तृत रूप से प्रतिनिधित्व करने वाली एक एकीकृत सरकार स्थापित की जायेगी जो यथासंभव स्वतंत्र युवावा के जरिये जनता की इच्छा के अनुसार एक नयी सरकार स्थापित करने के लिए कटिबद्ध है। परन्तु पूर्वी यूरोप में साम्यवादी सरकारों की स्थापना करने सम्बन्धी कार्य 'मास्टा मावना' का परित्याग था। स्टालिन द्वारा अपने बचन का पूरा नहीं किया गया था और यह स्थिति पश्चिमी देशों को क्रुद्ध करने वाली थी।

स्टालिन फ्लिनसीड का भी अपने बतौमूत करम से नहीं चुका। फरवरी १९४७ में फ्लिनसीड के साथ उलने शांत संधि की धीरे धीरे १९४८ में मैत्री की संधि। इस सन्धि द्वारा स्टालिन ने फ्लिनसीड की स्वतंत्रता को बन रहन दिया परन्तु फ्लिनसीड से यह बचन भी तो लिया कि वह कम बिोपी विदेश नीति नहीं अपनायेगा।

सोवियत संघ ने पूर्वी यूरोप में साम्यवादी सरकारों का स्थापना करके अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने के समय में निश्चित रूप में उस्ताहृष्य सफलता प्राप्त की। सोवियत संघ ने इन देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु बहुत से समझौते किए। इनके अन्तर्गत उनमें इन्हे निश्चित अर्थिक के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री देना स्वीकार किया। १९४७ की मीलाटोव योजना ने इन देशों के व्यापिक पुनर्निर्माण के लिए इनके पीछाया कारण पर बन दिया। नाक पणतको की स्थापना अजरा हुमरे तका में साम्यवादी शाका सत्ता की स्थापना के बाद इन देशों के पश्चिम के साथ व्यापार पुनर्गता बहुत कम हो गया। जहाँ १९१८ में पश्चिमी देश पूर्वी यूरोप को ३४ करोड़ डॉलर का सामान भेजते थे वहाँ १९२० में यह राशि गिरकर केवल १४ करोड़ डॉलर पर धा गयी। इसके विपरीत जहाँ १९३८ में सोवियत संघ का इन देशों के साथ व्यापार कुल २ प्रतिशत था वहाँ १९३२ में यह बढ़कर ८०% हो गया।

६ मार्च १९४१ को सोवियत संघ और पोलैंड के मध्य हुए एक समझौते के अन्तर्गत इस में पोलैंड को ३ ७८ ७२,००० डॉलर विदेशों से वापस मशीनरी और कच्चा माल लौटाने के लिए उधार दिये। १२ जुलाई १९४७ को बौकोस्लाविया के साथ एक व्यापारिक संधि की गयी जिसके अनुसार सोवियत संघ में बौकोस्लाविया एवं मॉन्टो द्वारा उत्पादित सामग्री के बदले में बौकोस्लाविया को पाषाण कई तरह की धातुएं देना स्वीकार किया। बौकोस्लाविया के साथ ही १९४८ में एक अन्य समझौता हुआ जिसके द्वारा कम से कम अन्न के रूप में एक बड़ी राशि देना संभव किया। १९४८ में हुंगरी के साथ भी दो व्यापारिक संधियाँ की गयीं जिनमें अनुमान रूपका तैम और बाबाइल के अन्तर्गत कम से कम न के रूप में सामान देना स्वीकार किया। इस क्षेत्र के अन्य देशों के साथ भी सन्धि ४। में सोवियत संघ द्वारा इसी प्रकार की संधियाँ मध्यम की गयीं।

सावियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों में आर्थिक क्षेत्र में सहयोग को और भी बलिष्ठ बनाने के लिए १९४६ में 'आर्थिक क्षेत्र में पारस्परिक सहायता के लिए कोमिन्स' (Council for Economic Mutual Assistance Com. Con.) की स्थापना की गयी। इस 'कोम कोन को पश्चिम द्वारा स्थापित 'यूरोपियन पुनर्निर्माण कार्यक्रम' (European Recovery Programme E. R. P.) का प्रयुक्त कहा जा सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में पूर्वी यूरोप पर सोवियत प्रभाव स्थापित होने का आभास तो पश्चिमी शक्तियों को लगा ही था आर्थिक क्षेत्र में भी रूस के व्यापक प्रभुत्व से पश्चिमी देशों और रूस के तनावों में परिष्कृत हुई। पूर्वी यूरोप परम्परा से पश्चिमी देशों को आघात एवं कच्चे माल का निर्यात करना था। पश्चिम के कुछ देश जो अपनी अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं के लिए पूर्वी यूरोप पर आश्रित थे उदाहरणार्थ इमारती लकड़ी और निकेल (Nickel) पश्चिम को परिष्कारण पूर्वी यूरोपियन देशों से ही प्राप्त होती थी। ये देश के सोवियत प्रभाव क्षेत्र में चम जाने से पश्चिम के लिए 'निर्यात' देश नहीं रहे जिससे पश्चिम के कुछ देशों की आर्थिक व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा। साथ ही पूर्वी यूरोप में बैकों, कारखानों और उद्योग धर्मों के राष्ट्रीयकरण हो जाने से पश्चिमी देशों की जो पूंजी इन देशों में सर्गी हुई थी उसमें भी इन्हें ह्रास भोगा पड़ा। इन सब बातों का परिणाम यही निकला कि पश्चिमी देशों में सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के साम्यवादी शासन तन्त्रों के प्रति पूर्ण श्रद्धा पैदा हो गयी। स्टालिन की नीति ने भीत मुठ की ठेक किया।

सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों के बीच मंत्री और पारस्परिक सहायता की अनेक सैनिक संधियां भी हुईं। पोर्सण्ड बैकोम्प्लीवाकिया तथा युगोस्लाविया के साथ तो सैनिक संधियां बुद्धकास में ही की जा चुकी थीं। इसका बाद १५ मार्च १९४५ में १६ अप्रैल १९४६ तक १७ द्विपक्षीय संधियां (Bilateral Treaties) की गयीं। इन संधियों को किन्हीं भी ममाबिध अर्थात् आक्रमणों को रोकने के लिए किया गया। बाद में १४ मई १९४६ को इन संधियों के आरम्भ पर हुताहार करके सोवियत संघ के साथ करने को और भी बलिष्ठ मन्त्रों में आबद्ध कर लिया।

स्टालिन काल में सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के पारस्परिक सम्बन्धों में यहाँ हर प्रकार से सफलता का पसड़ा रूस के पक्ष में भारी रहा। यहाँ रूस को इस क्षेत्र में कुछ सफलताओं का सामना भी निश्चित रूप से करना पड़ा। युनायटेड एंड साम्यवादी शासन की स्थापना के इसी प्रयास बमकन रहे। दुर्भाग्यवश के कारण रूस काले मागर म टर्की से मनाशास्त्रिय रियासतों और परिष्कार पामे में सफल नहीं हो सका। परन्तु इन सबमें अधिक मायाधिक सफलता रूस की युगोस्लाविया के मामले में हास लगी क्योंकि कुछ समय तक इसी गुट में बन रहने के बाद युगोस्लावियन राष्ट्रपति टीटो ने रूस के प्रभुत्व को स्वीकार करने से मना कर दिया और अन्त

१९४८ में युगोस्लाविया रूसी घुट से घुसक हा गया। मार्शल टीटो ने जो कि स्वतन्त्र विचारों वाले एक कट्टर राष्ट्रवादी है, स्टालिन की इस नीति को पसन्द नहीं किया कि सोवियत रूस पूर्वी यूरोप के साम्यवादी शासन तंत्रों पर या युगोस्लाविया पर अपनी कठोर निगरानी रखे और उन्हें भीड़ घाबरण (Iron Curtain) के भीतर छिपाये रखे। मार्शल टीटो ने जर्मन दायता से अपने राष्ट्र को मुक्त करने के लिए घोर छापामार संघर्ष किया था रूसी सहायता तो उन्हें बहुत बाध से बाकर मिल पायी। घत टीटो की लोक प्रियता युगोस्लाविया में प्राकाश रूनी की घौर वह इस बात को पसन्द नहीं करते थे कि उन्हें 'स्टालिन का अनुचर' माना जाय घषबा उनके राष्ट्र को 'सोवियत रूस का पिछलसम्' कह जाय। घत युद्ध समाप्त होने के उपरान्त जब जर्म शर्तें मार्शल टीटो ने स्टालिन के शिर्का से बचने का प्रयास किया घौर मास्को के नियन्त्रण में रहने के प्रति प्रतिबन्धा जाहिर की तो रूस की साम्यवादी पार्टी ने मार्शल टीटो को इस विरोधी एवं रूस-विरोधी नीतियों को गारसबाध एवं सैनिकबाध के विरुद्ध बताया घौर कहा कि यह राष्ट्रवादी से प्रभावित एवं पूजोबाध की घोर मुका हुआ हृष्य है जिससे विश्व के मजदूर आन्दोलन पर गहरा एवं बिपरीत प्रभाव पड़ गा। मार्शल टीटो पर स्टालिन ने हर प्रकार से दबाव डालने की बेप्टा की किन्तु वह टीटो ने अपने कब्जे में नहीं सा सका। टीटो को यह कठई सहन न था कि युगोस्लाविया स्थित मास सेना युगोस्लाविया के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे, घत उसने सोवियत नागरिक घौर सैनिक घफ़्तारों पर बड़ी निगरानी रखते हुए स्टालिन से स्पष्ट शब्दों में मांग की कि रूसी फौजें युगोस्लावियन सेन ने हटा सी जाय।

स्टालिन घौर टीटो के मतभेद बढ़ने गये। फरवरी २८ जून १९४८ को 'कॉमिन्फोर्म' (Communist Information Bureau, Cominform) ने युगोस्लाव साम्यवादी पार्टी पर यह घारोप लगाकर उसे अपनी सदस्यता से निष्कासित कर दिया कि उसकी नीतियाँ मार्क्सवाद एवं सैनिकबाध के सिद्धांतों के प्रतिकूल हैं। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि युगोस्लाविया की सरकार सावियत संघ के प्रति घर्मशी की नीति का अनुसरण कर रही है घौर हृषकों के प्रति अपनी नीति को निर्बाध करते गमय वह वर्ग विभेदों की घबहेसना करके मार्क्सवाद के मुन्धापित भाव से हट गयी है। प्रस्ताव में यह घारोप भी सपाया गया कि युगोस्लाविया की साम्यवादी पार्टी ने उसके विरुद्ध की गयी धाओचनाओं को धारणनामानना वा कमीटी पर नहीं कसा है घौर इस प्रकार साम्यवादी पार्टी ने सघटनात्मक सिद्धांतों के बिपरीत घावरण करने की यह शोपी है। २९ जून को युगोस्लाव नेताघा ने कॉमिन्फोर्म द्वारा सपाये गये घारोपों को पसन्दकार कर लिया। दगद बाद सावियत संघ घौर युगोस्लाविया के बीच नीतियुद्ध की स्थिति पैदा हा गयी तो स्टालिन की मृत्यु पयन्त (मार्च १९५१) गपती रही। बात्प में स्टालिन ने टीटो को जर्मन गमजस मानन से इन्कार कर दिया घौर उसके प्रति पूर्ण विरोध की नीति पर बाबरस किया। रोबिन्स्टीन (Alvin Y. Rubinstein) के जर्नों में "टीटोवाद" सावियत प्रभाव की प्रतिक्रिया ने

कुछ पब्लिक या। इसमें राष्ट्रवाद तथा साम्यवाद का एक एसी विचारधारा व साम्योपन में मिला दिया गया जिसके विभिन्न रूप में स्वतंत्रता की लू भी जो मास्को को स्वीकार नहीं थी। १

सम्वर्तीय साम्यवादी आन्दोलन के माईचारे के विरुद्ध किये गये टीटा के हम विद्रोह का पश्चिमी देशों में स्वभावतः मुक्त कंठ से स्वागत किया। इस विद्रोह को नोबियल साभ्राज्यवाद के विरुद्ध पूर्वी यूरोप व विद्रोह का सूचक बताया गया हुआ है १९४० में संयुक्त राज्य अमेरिका ने कम्युनिज्म की १ करोड़ डॉलर की सहायता उठे लौटा वा। यूगोस्लाविया में भी अमेरिका को १ करोड़ ७० लाख डॉलर का भुगतान किया। अन्य पश्चिमी देशों के साथ भी इसी तरह के सहायतापूर्ण धोरणों की योजना के समझौते किये गये। मार्शल टीटा ने गावियन हम से मुख्य शोर, पूर्वी यूरोप के बंका के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा पश्चिमी देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध कायम करना शुरू कर दिया किन्तु यह सबैव इमान रखा कि उनका राष्ट्र पूर्णतः एक स्वतंत्र राष्ट्र रहे जो नोबियन या पश्चिमी प्रभाव से उन्मुक्त सम्बन्ध का प्राप्तोपभोग करे।

(२) विरुद्ध में साम्यवादी क्रांति का प्रसार

साम्यवाद का एक मौलिक सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में साम्यवादी सिद्धान्त का प्रसार व पूर्वीवाद का उन्मूलन है। द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व की परिस्थितियों का सोवियत संघ के अनुकूल पाकर मास्को ने साम्यवादी क्रांति के प्रसार की गति पर चलना शुरू किया। यह उद्देश्य था कि जिस स्टालिन ने प्रथम महायुद्ध के बाद ट्रांस्वी के विश्व क्रांति के विचार का विरोध किया था वही स्वयं द्वितीय महायुद्ध के बाद इस नीति के प्रबल पाक बन गया। साम्यवादी क्रांति का दूसरे देशों में फैलाने के लिए स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ द्वारा सभी प्रकार के उपायों का प्रयत्न किया गया। यूनान में युद्ध में यूनानी साम्यवादियों की पराजय के बाद अल्बानिया अल्बानिया और यूगोस्लाविया द्वारा सहायता पहुंचाई गई। तृतीय सम्वर्तीय (Third International) के विश्वव्यापी क्रांति के कार्यों का करने के लिए १९४० में बार्ना में एकत्रित युगस्य विश्व जनपरिया समानिया हुगरी पोर्तुगल इन छोटे-छोटे देशों की साम्यवादी परिषदों के नेताओं ने बैसग्रड में साम्यवादी युक्तता संस्थान या कोमिन्फार्म

1 Titollism signifies more than a reaction against Soviet domination it represents a fusion of nationalism and communism into an ideology and a movement having a variety of forms and connoting a measure of independence not acceptable to Moscow"

-Alvin Z. Rubinsten The Foreign Policy of the Soviet Union p. 245

(Communist Information Bureau Cominform) की स्थापना की। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था में विभिन्न देशों की केंद्रीय मार्क्सवादी दलों की केन्द्रीय समिति के दो प्रतिनिधि होते थे। कोमिन्फोर्म का कार्य पारस्परिक सहमति के आधार पर साम्यवादी दलों के बीच में सहमति स्थापित करना था। इस संस्था की स्थापना के घोषणा-पत्र में कहा गया था कि समुक्त राज्य अमेरिका द्वारा पिछला युद्ध 'विश्व की परिस्थितियों में प्रतिबोधिता की समाप्ति के लिए सड़ा गया था।' लेकिन कम से कम कुछ यूरोप में मार्क्सवाद के पुनर्निर्माण और उसे मजबूत बनाने के लिए सड़ा था। कोमिन्फोर्म का उद्देश्य विश्वव्यापी साम्यवादी आन्दोलन का नेतृत्व करना था। संसार भर के देशों के साम्यवादी दल कोमिन्फोर्म का दम मजबूत के और इसके द्वारा प्रशस्त की गई कार्यविधि का अनुसरण करते थे। प्रत्येक मार्क्सवादी दल का उद्देश्य युद्धोत्तर युद्ध का अनुसरण करना था और इसे प्राप्त करने के लिए मार्क्सवादी हिंसा तोड़ फाड़ इसत घाति सभी मापने का प्रयोग में लाते थे। साक्षरतामय संस्थाओं और पद्धतियों में उन्नत कोई विश्वास न था। मार्क्सवाद द्वारा का अनुशासन बहुत कुछ एक ही न सगठन के समान होता है।

विश्व में साम्यवादी घाति के प्रकार के मौखिक गिद्गान की पूर्ति के हेतु द्वितीय महायुद्ध के बाद कम से लेगी नीति का अनुसरण किया कि जिसमें पूर्व और पश्चिम में कभी साम्राज्य का विस्तार हुआ कभी साम्राज्य पर उस समर्थक राज्यों की सरकारें स्थापित हो पुराने बुरा साम्राज्यों का विध्वंस हुआ और इस सम्पूर्ण नवान सोवियत साम्राज्य का साम्यवादी विचारधारा के आधार पर निर्माण हो। अपने इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त के लिए स्टालिन ने युद्धोत्तर विश्व समस्याओं का समाधान करने में सोवियत प्रदर्शित नहीं की। वह अडगवाजा करके जाति व्यवस्था में बिस्मय करना चाहता था ताकि संसार की स्थिति सोवियत संघ के लिए और भी अनुकूल हुआ जाय। वास्तव में विश्व मंत्री सम्मेलन में अमेरिकन विदेश मंत्री मार्शल अब सोवियत नीति से व्याकुल हो गया था स्टालिन ने उस कहा 'अब हमें ही कोई बात नहीं है। समय हमारे पक्ष में है, वह स्वयं समझीता करा देगा।'

(३) पश्चिम का विरोध और शीत युद्ध की उत्पत्ति

समुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति के संदर्भ में और पिछले पृष्ठों में धन्य बातों के संदर्भ में लिये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि सोवियत संघ की पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवादी शासनों की स्थापना के प्रयत्नों और पश्चिमी पक्षियों द्वारा कभी प्रभाव के प्रकार का रोड़ने की चेष्टाओं के कारण सोवियत संघ और पश्चिम की पक्षोपकी मैत्री का घन्टा हो गया तथा युद्ध समाप्त होने के तीन वर्ष के अन्दर ही दोनों गुटों में अन्तःगत गान युद्ध प्रारम्भ हो गया। जर्मनी घास्ट्रिया इटली घादि अन्य राज्यों के साथ परिषदों की उन्नत इटली के उन्नतियों का तथा राष्ट्र संघ के मेम्ब्रेट वाले प्रेशों का विभाजन, जर्मनी के निःशस्त्रीकरण और एडीकरण की समस्या पश्चिमी देशों तथा कम के स्थापना और गोर्बतन मन्वन्धी विचारों का मौखिक चरण उत्पत्ति

मध्यपूर्व में प्रयुक्त जाने के लिये तीव्र प्रतियोगिता का कि ऐसी बटनाएँ या कार्रवाई उपस्थित हुई कि जिन पर दोनों पक्षों में उग्र मतभेद प्रकट हुए और अतस्तत्काल ही युद्ध की संभावना बढ़ी। जहाँ पश्चिमी राष्ट्र कामिनिष्टोर्म की नीति विधियों और कड़ी प्रभाव व ब्रिगों व स्टालिन की प्रयुक्त कूटनीतिक कार्यों व हठधर्मों का कि सै धातकित और बलन हो गये वहाँ सीमित संघ क इस विश्वास को सम्बल मिला कि पश्चिमी राष्ट्र उसके उद्गमन का पक्षधर करने में सक्षम हुए हैं। कम की दृष्टि में दुर्बल सिद्धांत मार्शल-योजना बलिन के क्षेत्र के समय हो गई वहाँ सहायता जापान एवं जर्मनी का पुनः दृष्टीकरण दुर्बल एवं प्लेवन योजनाएँ कोरिया युद्ध आदि पश्चिमी राष्ट्रों के ऐसे कार्य व जो कम के प्रति पश्चिम के विशेष कर अमेरिका के बाहर विशेष और उनकी उग्र बलता व प्रभाव बढ़े जा सकते थे। सामरिक शक्ति में सम्पन्न समुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी युद्ध की इन कार्यवाहियों से स्टालिन की आशंकाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती गई और वह पश्चिम की प्रत्येक कार्यवाही तथा गतिविधि का विरोध करने लगा।

अपनि स्टालिन पश्चिम के प्रति अपनी नीति को 'शांतिपूर्ण सहस्रितत्व' (Peaceful Coexistence) का नामा पहनाया था, परन्तु उनके कार्य कलाओं से यह स्पष्ट हो गया कि 'शांतिपूर्ण सहस्रितत्व' की इन नीति से उसका अन्तिम अर्थ इतना था कि दोनों पक्षा में सतत युद्ध नहीं होगा चाहिए। एक प्रकारसक बाक युद्ध और रारिया जैसे स्वानीय युद्धों को वह इस नीति क विरुद्ध नहीं समझता था। टालिन की इसी नीति का एक धनिकर्षण परिणाम यह हुआ कि चीन और पश्चिम और साम्यवादी शक्ति की का नीति यह उत्तर इलाका बना गया। स्टालिन ने अपने समय में ही चीन को दिये और उनके फलस्वरूप पश्चिम राष्ट्रों की का प्रतिश्रियाएँ हुई तथा उक्त प्रतिश्रियाओं के कारण कम में का धम्म प्रतिश्रियाएँ हुई और इस प्रकार श्रियाओं प्रतिश्रियाओं का का अर्थ बनता उक्त फलस्वरूप जर्मनी से यह तक और आस्ट्रिया से १९५५ तक शान्ति संधि नहीं हो सकी। कम और उसके नाभी देशों ने जापानी शान्ति संधि पर हस्ताक्षर करने से भी इन्कार कर दिया। अस्तुन स्टालिन समय में का ही कार्य किये गये उन सभी में श्रुतिविकल्प में नीति युद्ध की धमिकुति ही हुई।

(४) लौह घाबरण की नीति

द्वितीय महायुद्ध के उत्तरार्ध सोवियत संघ ने एक घातक विश्व में साम्यवादी शक्ति के प्रसार के उद्देश्य से एक उग्र शक्तिशालि नीति को अपनाया तथा १९४७ में कामिनिष्टोर्म की स्थापना की तथा दूसरी ओर पूर्वी यूराल में स्थापित साम्यवादी अ्यरशाओं और स्वयं शांतिवत कम को सभी प्रकार क पश्चिमी प्रभावों से अलग करने के उद्देश्य से लौह घाबरण (Iron Curtain) की नीति का प्रयोग किया। महायुद्ध के उत्तरार्ध बाद ही समुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्र साम्यवादी प्रचार को सीमित करने की नीति (Policy & Containment of Communism) की नीति का अनुसरण करने लगे किन्तु अन्तर्गत साम्यवादी देशों की जनता को साम्यवादी अ्यरशा

के विरुद्ध भड़का कर विद्रोह करने का कार्यक्रम भी रखा गया। साम्यवादी देशों के इक-गिक अज्ञात रेडियो स्टेशन स्थापित किये गये जिनका नाम 'आजा' हुआ। रेडियो 'आजा' पोलण्ड रेडियो धारि रखा गया और इसका माध्यम से साम्यवाद के विरुद्ध जनधार जहरीला प्रचार कार्य शुरू हो गया। स्टालिन का यह समझत हैरत न लगी कि पश्चिमी राज्य साम्यवादी व्यवस्था का उखाड़ फेंकने का प्रयत्न बोरो-बोरो से शुरू कर चुके हैं। उसे भय लगा कि वही पश्चिमी शक्तियाँ कम या पूर्वी यूरोप में साम्यवादी शासन को दुबसा न बना दें। इस भय से बहुत कुछ मुक्ति का प्रयत्न पश्चिमी शक्तियों के उद्देश्य से विफल बनाने का एक ही उपाय था कि साम्यवादी जनतक के चरणों पर एसी शोषण लड़ी कर दी जाय कि उसके भीतर अमेरिका एवं अन्य पश्चिमी राष्ट्रों का प्रचार प्रवक्त न कर सकें। स्टालिन ने इसी उपाय को अपनाते हुए यह निर्णय कर लिया कि वह इस एक पूर्वी यूरोप के साम्यवादी समाज का और साम्यवादी देशों के सम्पर्क से पृथक् रखेगा ताकि यह क्षेत्र पश्चिमी प्रभाव से अछूता रह सके। स्टालिन इस बात को समझता था कि शक्तियों तथा विदेशियों के पारस्परिक सम्पर्क साम्यवादी व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने में विफल हो सकते हैं।

पश्चिम के प्रचार का निरस्त करने और साम्यवाद को उत्तम रूपित हान से बचाने के लिए १९४५ से ही ऐसे कानून बनाये गये कि जिससे बाह्य जनतक के साथ शक्तियों के सम्पर्क रक जाय। ऐसे ही एक कानून के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि युद्ध के समय रण में घायल हुए विदेशी सैनिकों के साथ जिन कर्तव्यों ने विवाह किया था वे अपने परिवारों के पास विदेश नहीं जा सकते। मोसाटाव ने इनका फारण स्पष्ट करते हुए कहा कि शक्तियाँ बहुत अधिक बात करती हैं और कभी शक्तियाँ का कसम्य माध्यम सरकार के नियम मन्त्रालय उत्पन्न करना है। स कि विदेशों सरकारों के लिए। एक अन्य कानून के द्वारा विदेशियों के साथ साक्ष्यित मार्गिकों के विवाहों को अग्रिम बना लिया गया। इतना ही नहीं विदेशी राजदूतों तथा पत्र-प्रतिनिधियों के साथ भी बड़ी बड़ाई का व्यवहार किया गया। मास्को स्थित विदेशी राजदूतों के साक्ष्यित संघ में स्पष्टतः भ्रमण पर कठोर प्रतिबंध लगा दिये गये। निश्चित स्थानों पर निश्चित अधिकारियों के साथ ही बातचीत कर सकते थे। अन्य साम्यवादी देशों का विदेशी राजदूतों ने साथ लेना ही व्यवहार करत थे। विदेशी पत्र प्रतिनिधियों पर तो और भी बड़ा प्रतिबंध था। प्रथम तो उन्हें साक्ष्यित संघ में प्रवेश ही नहीं मिलता था और यदि किसी तरह प्रवेश पत्र मिल भी जाता था तो उन्हें निश्चित स्थानों पर ही रहना पड़ता था। १९४९ में चेकास्लोवाकिया में अमेरिकी-संवादात्मक विनियम आदिन धोरण १९४० में अंगरी में अमेरिकन अगारी राजतक बागसत की नियंत्रणारी ने इस बात को मसल मानि स्पष्ट कर दिया कि स्टालिन और उनके साथी साम्यवादी और और साम्यवादी जनतक के बीच एक ऐसा गौह व्यवहार बनाय गगना चाहत है किग भर कर बुनु था राष्ट्रों में सामाज्यन को व्यक्ति सोवियत संघ में प्रविष्ट न हो सके।

विदेशों में स्थित सोवियत राजदूतों पर भी कठोर अनुशासनारमक

प्रतिबंध थे। जो सोवियत राजपूत पर्याप्त समय तक हमारे देशों में रहते हुए विदेशों के साथ मेलीपूर्ण सम्बन्ध बना सता या उसे बाधित नुकाकर अन्य किसी कार्य में सहा दिया जाता या और विदेशियों से अनिच्छता बढ़ाने के अपराध में उसकी मर्त्सना की जाती थी। स्टालिन स्वयं किसी न मिलता जुलता या और न अधिक बाधें करता था। युद्ध के बाद वह अपनी मूल्य पर्याप्त भारतीय राजपूत का राधाकृष्ण के प्रतिरिक्त हाथ किसी अन्य और साम्यवादी देशों के राजपूत से नहीं मिला था। इसी प्रेम पर भी कठोर नियंत्रण सहा दिया गया था। बलिन को विभाजित करने वाली प्रतिष्ठ बीवार सोवियत रूस के लोह धारण का एक प्रभावपूर्ण प्रतीक है।

अफीका तथा एशिया के प्रति सोवियत नीति एवं शांतिवादी धारणा

अफीका एवं एशिया के प्रति स्टालिन की नीति कीर्तनपूर्ण किन्तु अनुदायी थी। उक्त मध्यपूर्व में साम्यवादी प्रभाव को बढ़ाने की चेष्टा की और दक्षिण कोरिया को साम्यवादी बनाने के लिए कोरिया-युद्ध की प्रेरणा दी। यद्यपि इन दोनों ही प्रयासों में उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई तथापि कोरिया युद्ध ने चीन की सोवियत मंच पर निर्भरता को स्पष्ट कर इस बात का मन्तव्य दिया कि तत्कालीन समय में मन्तव्य साम्यवादी जगत् पर सोवियत नियन्त्रण जमी प्रकार स्थापित करने में स्टालिन को पर्याप्त सफलता मिली है।

इसके प्रतिरिक्त प्राथमिक आयुधों एवं जलयुधों के घातक से पीड़ित मानवता के परिनाम के लिए सोवियत संघ ने "शांत-आन्दोलन" (Peace-Offensive) धार न किया और पुम्बीवादी परिचय का युद्ध-सोनुप (War-monger) धार न करके बलनाम करने की प्रत्येक चेष्टा की। स्टालिन का "शांतिवादी आन्दोलन" एक पर्याप्त चातुर्व्य पूरा और सफल काम मित हुई। इस आन्दोलन की सर्वाधिक मन्तव्यपूर्ण बटना मार्च १९२० तक स्टारहात्म में हुई विश्वशांति समिति की आन्विक धारणों पर विना मत प्रतिबन्ध सहाय की धरिप्त थी। इस धरिप्त में कहा गया था कि—'हम इन बात की मांग करते हैं कि मानव जाति के सामूहिक अनुभव धार घातक के अ न के रूप में आन्विक धारणों पर विना किसी अर्थ के प्रतिबंध सहाय चातुर्व्य। हम इनकी मांग करते हैं कि इन पर कठोर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित किया जाए। हम उन सरकार को युद्ध अपराधी समझते हैं जो किसी देश के विरुद्ध पहली बार इस तरह का प्रयोग करती हैं।' इस धरिप्त पर कुछ समय ही में समय २ करोड़ व्यक्तियों के इस्ताखर प्राप्त किये गये। इस शांति-आन्दोलन ने एशिया और अफीका की विनाम जगम्ब्या को बढ़ा प्रभावित किया। व साम्यवाद की धार आन्वित हुए तथा सोवियत रूस का परिचय की धरिप्ता अन्विक आन्विय धार आन्वितवाक विराधी मानने लगे। साम्यवादियों ने इस आन्दोलन में सब देशों के मन्तव्यों धरिप्तों धार बन्धों में लक्ष्योप मांवा। इन्होंने जहाज में सामान उतारने वाले समितियों में

बहु प्रचार किया कि अमेरिका से वास्तविकताओं का सामना करने वाले महायोधे माल न उतारा जाए और हड़ताल कर दी जाए।

प्रचार की दृष्टि से नातिवादी आन्दोलन को प्रारम्भ में बड़ी सफलता मिली और न केवल एशिया तथा अफ्रीका बल्कि पश्चिमी राष्ट्रों की सामान्य जनता ने भी इसका स्वागत किया। परन्तु स्टालिन के अनुशार दृष्टिकोण के कारण इस आन्दोलन से प्राप्त लोकप्रियता का पूरा लाभ नहीं उठ सका। बहु तटस्थ राष्ट्रों की भावनाओं को ठीक प्रकार से न समझकर उन्हें अपना शत्रु मानता रहा। अबाहरखार्ब १९२२ में बिबिसिटी ने श्री कृष्ण मेनन से कहा था कि "अच्छे से अच्छे रूप में तुम स्वप्नदर्शी और आश्चर्यादा हो। बुरे से बुरे रूप में तुम अपनी स्थिति नहीं जानते और भयङ्कर अमेरिकन नीति के प्रच्छन्न समर्थक हो। पश्चिम राष्ट्रों ने इस के इस नातिवादी आन्दोलन को एक 'निरे शौन' की संज्ञा दी और कहा कि यह तटस्थ एवं और साम्यवादी देशों को अपनी ओर घाट्ट करने तथा अपना समर्थक बनाने का नातिवादी दृष्टीकोण का एक हिस्सा है। इस केवल अपने बच्चों से मौलिक रूप से नातिवाद का हामी है जिसके लिए यह कुछ मरी करता। स्टालिन की मृत्यु पर्यन्त इसी दृष्टियों की यह धारणा बना रही उपयुक्त थी परन्तु स्टालिनोत्तर युग में इसी धारणाओं न जिस नातिवादी नीति पर चरमा शुरू किया वह निश्चित रूप से नाति के प्रति इस की सच्ची निष्ठा की परिचायक है।

(६) संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति सोवियत नीति

स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ न संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण में सक्रिय भाग लिया। अस्तुन संयुक्त राष्ट्र इसी विश्वास पर आधारित था (और है) कि महाशक्तियाँ विद्यमान सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका सहयोगपूर्वक कार्य करते हुए संघ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक बनेगी। परन्तु दुर्भाग्यवश यह धारणा पूरी न हो सकी और अपने अन्त का क कुछ ही समय उपरान्त संघ कीतयुद्ध का प्रधान प्रपाड़ा बन गया। सगमन प्रत्येक समस्या पर दोनों राष्ट्र अपना दोनों दृष्टि को विरोधी दृष्टिकोण सब संघ के मंच पर उपस्थित हुए। यू कि संघ में पश्चिमी शक्तियों और उनका समर्थकों का दृष्टि बहुमत का घत सोवियत रूप ने अपने का एक स्पार्ड एवं निरंतर पक्षमत में पाया। ऐसी स्थिति में अपनी इच्छा के प्रतिबन्ध होने वाले निर्णयों को रोकने के लिए उत्तक पास इसने धतिरिक्त कोई उपाय न था कि वह सुरक्षा परिषद में घुस कर अपने नियमाधिकार का प्रयोग करे बिना संयुक्त राष्ट्र संघ पश्चिम शक्तियों के इतारों पर नाचता हुआ उनक पक्ष में कोई प्रभावशाली कार्य न कर सके। कोरिया-युद्ध क समय अन्वकाल के लिए इस ने संयुक्त राष्ट्र संघ को बैठकों क बहिष्कार कर दिया। लेकिन यह बहिष्कार उमके लिए बाटे का मोटा मिठ हुआ क्योंकि इस बहिष्कार क कारण ही संयुक्त राष्ट्रीय सेनावे बशिणो कागिया की सहायता के लिए भरी जा सका। इन घटना से रूप ने यह समझ लिया कि बहु संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाहियों में भाग लेकर, परिषद की बैठकों न उपस्थित होकर पश्चिमी

राष्ट्रों के इगलों को गबिह प्रणवी तरह रोऊ सजा है बनिहगत इनके कि
 यह संघ मे बाहर रहे भी ऐसी चेला करे। इन प्रनुभू के बाद से ही कि
 कमी रूग मे संघ की बैठकों का बनिहगत नहीं किया। इस बात मे
 नहीं किया जा सकता कि गोबियत संघ न मुरसा परिषद में जाने
 निवेगबिहार के प्रयोग से पबिचम के घनेक प्रत्यायपूर्व प्रस्तावों को जिनम
 बाग्मीर प्रन्थाय की गानिम है बरासादी किया फिर भी यह एक लघ्व है कि
 महाभक्तिजों द्वारा संघ के उद्देश्यों के प्रति यदि वास्तविक मिच्छा न रही यदि
 तो संघ का भविष्य उज्ज्वल नहीं रह सकेगा। पबिचमी घामोषकों का कहना
 है कि कम गमुक्त राष्ट्र को अपनी बिरेल नीति मे उद्देश्यों की प्राप्ति का एक
 प्रभावशासी बहुर मातता है। ई पी चेर (E.P. Chas) का मत है कि
 गंमुक्त राष्ट्र की घनेक गनिधिधियों के प्रति गोबियत संघ का नकारात्मक
 बृष्टिकाण गमुक्त राष्ट्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रबल है। परन्तु
 पबिचमी घामोषक यह घूम जाते हैं कि वे भी अपने बिगाम बहुमत के बल
 पर गंमुक्त राष्ट्र संघ को अपने मनुबे पूरे करने के लिए प्रयोग में जाने के किसी
 भी बबसर को हाथ से नहीं जाने देते।

स्टालिन की बिरेल नीति का मून्यांकन

यद्यपि स्टालिन न १९४१ से १९४८ तक बीच पूर्वी यूरोप पर साबियन
 प्रभुत्व स्थापित करके एक बड़ी सीमा तक पीटर महात् के काल से बनी
 था रही क्वी महत्वाकालाघों को पूरा कर लिया परन्तु उनके बाद स्टालिन
 के गर्बे बहुकार घोर हठधर्मिता से घरी हुई उग्र नीति गोबियत संघ के लिए
 घामाकारी ही सिद्ध हुई। बरघसल मे स्टालिन ने मूल्य पर्यन्त एक
 घामाध्यकारी यतिकीस घहमेबाजी की कीह घाजगण की तथा समझीना
 बिरोपी नीति का प्रनुसरण किया। पूर्वी यूरोप में अपने बबनों को मुठमा कर
 मोबियत प्रमुक्त का बिस्तार किया गया यूनान के गृह युद्ध में साम्यबाधियों
 को महायना की गई, टर्की पर बास्कारा तथा इरे बानियाल के बमबमक
 मघ्यों क सम्बन्ध में माण्ट्रुक् (Montreux) के ममझीने को बरसन के
 लिए बबाब बासा गया मांसल योजना की सहायता लेना घस्वीकार कर दिया
 गया ईरान में मोबियत सेनाघों के हटान में देर सगार्ई गई टीटो की मास्का
 क गुट में मिच्छा-गित किया गया कोरिया ब हि-ब चीन में युद्ध हुए। स्टालिन
 को इस घामाध्यम नीति से पबिचमी शक्तियां सर्बभिन हा गई घोर उन्कीने
 बहन हुए मोबियत प्रमाब को रोऊने तथा साम्यबाध के प्रचार क बिरोप के
 लिए घनेक उचाय मिए। टू-सीन मिच्छालन मांसल योजना ब-कं बरोस
 शक्तियां नाटो पबिचम यूरोप की लयता के लिये बनाए गए बिनिघ्न गगठन
 घानि स्टालिन कि कटोर नीति के प्रभावशाती प्रयत्न से। १९४५-४७ तक
 यूरोप की स्थिति स्टालिन के लिए बड़ी बनुदून थी लेकिन १९४१ तक यह
 स्थिति लसी नहीं रही। १९४९ में चीन में साम्यशाही बिचम तथा १९५० में
 कोरिया युद्ध के प्रारम्भ में पबिचमी शक्तियों को कोरिया, जागत कारमीसा
 घोर रनिटी-यूनी स्थितिया में साम्यशाही प्रचार को रोऊने के लिए बृष्टिबद्ध
 कर दिया। मध्यपूर्व में टर्की और यूनान में हनघेन क बालन शक्तियां कम

का बैसी ही बकनामी मिली वैसे दाब में धाड़जन होकर मित्राण्ड के प्रयाग स
 अमेरिका का मिली । एतिया और अफ्रीका के लबोरित राष्ट्रों के प्रति भी
 स्टालिन की नीति समुदाय रही । अपनी हठ धमिका के कारण वह इन राष्ट्रों
 की स्वयं का दोनों शक्ति-गुटा के प्रभाव से बचाने की "बधा योग" नीति को
 नहीं समझ सका उन्हे साम्यवाद का लभ मानने लगा । इससे उसने एक बड़ी
 सीमा तक इन राष्ट्रों का समर्थन नो दिया । तटस्थ देशों के प्रति स्टालिन ने
 विरोध नीति का अनुसरण किया । उदाहरणार्थ भारत को उमड़ी तटस्थता के
 कारण ही स्टालिन इस विरोधी समनता रहा था । इसीलिए स्टालिन काम के
 बड़ी विश्वकोप में भारत के स्वधीनता सङ्घम को और महात्मा गांधी का
 पञ्जीवाद का समर्थन बताया गया था ।

स्टालिन की उपरधी बठोर नीति ने स्वयं साम्यवादी गुट में काफी
 खोम उत्पन्न कर दिया । जब यूगास्तानिया में माघम टीटो ने सोवियत संघ
 का प्रामुख्यण करने से इन्कार कर दिया तो स्टालिन के निकडे से निबन्ध
 पढ़ने के लिए प्रथम साम्यवादी देशों में भी राष्ट्रवादी साम्यवाद की प्रकृतियों
 का अधिक समर्थन मिलने लगा । इसी परिस्थिति बाद में १९५६ में
 पोलैण्ड तथा हंगरी के उपद्रवों में हुई । स्टालिन की लोह पाकण की नीति
 ने प्रथम देशों में जस के प्रति तरह और अविश्वास की धारणाओं का बम
 मिला । जार्ज एफ. केनन (George F. Kennan) का मत है कि १९५२ तक
 सोवियत नीति "अनुबंध हो गई थी" और १९५३ में स्टालिन ने उत्तरध्वारिया
 के लिए उसमें परिवर्तन करना प्रतिबन्ध हो गया ।

कुछ लोग स्टालिन की विदेश नीति में रूढ़िवाद (Conservatism)
 की भ्रमक पाते हैं । उनके अनुसार वह पश्चिम पर शक्ति के बम पर हावी
 नहीं होता चाहता । उसने पश्चिमी शक्ति एवं सम्मान को नीचे गिराने तथा
 अपने साम्राज्य को शक्ति एवं स्वायत्त देने के प्रयास किये । अधिराज्यों में
 स्वायत्त प्रसंताप के प्रति वह सजग था ता भी सोवियत शक्ति के विस्तार के
 प्रत्येक अवसर का उमने लाभ उठाया । सन १९५३ को पश्चिमी विचारकों
 द्वारा सौभाग्यशील माना जाता है जबकि स्टालिन अपने नाम को दान कर
 इन विचार से विचार मये । कहा जाता है कि स्टालिन ने कम जैसे गिराव
 अधिराज्य देश को दुनिया की महान सौभाग्य एवं सशक्त शक्ति बना दिया
 तथा अवेज्जान और तमूरसग वैसा साम्राज्य स्थापित कर दिया । रिदल
 नीति के मध्य साधन एक दामतायें निर्धारित करने में स्टालिन अद्वितीय था ।
 कर्त्रीय समिति के कार्य पर दल को १८ वीं कांग्रेस की रिपोर्ट में १० मार्च
 १९६६ को स्टालिन ने साक्षियत विदेश नीति की विरोधता उमके साधन तथा
 तत्पम्बन्धी दल के कार्यों का समनन दिया था ।

(क) सङ्घ—स्टालिन ने सोवियत विदेश नीति के निम्न मन्त्र तथा
 विरोधताओं का बर्णन किया था—

(i) हम स्वतन्त्रता चाहते हैं तथा सभी देशों के साथ स्वायत्त
 सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं । यह हमारी निम्न है और हमारा हम मय लक्ष

सामन करोगे जब तक बुधरे बेल ऐसा करोगे और जब तक वे सोवियत हित को प्राथम्य न पहुँचायेंगे ।

(ii) हम सभी पड़ोसी देशों के साथ जो सोवियत संघ के साथ समान शीमाओं रखते हैं नातिपूर्वक बनिष्ठ तथा मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाना चाहते हैं । हम इस स्थिति को जब तक बनाये रहेंगे जब तक की पड़ोसी देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सोवियत संघ की सीमाओं की एकता एवं अखण्डता को चुनौती नहीं देते ।

(iii) हम उन देशों का समर्थन करेंगे जो कि आक्रमण का विचार बने हैं या बने हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं ।

(iv) हम आक्रमणकारियों की घमभी से नहीं डरते तथा युद्ध छेड़ने वाले के प्रत्येक मुन्के का जवाब दाने मुक्कों से देने को तैयार रहते हैं ।

ऐसी सोवियत सभ की विदेश नीति है ।

(क) आचार—स्टालिन का कहना था कि सोवियत सभ अपनी विदेश नीति के मंचामन के लिए निम्न आचारों पर अरोमा करता है—

(i) इसकी बढ़ती हुई धार्मिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक शक्ति ।

(ii) हमारे सोवियत समाज की नैतिक एवं राजनीतिक एकता ।

(iii) हमारे देश के राष्ट्रों की आपसी मित्रता ।

(iv) इसकी माल सेना और साम जहाजराही ।

(v) इसकी शक्ति की नीति ।

(vi) सभी देशों के मजदूर लोगों का नैतिक समर्थन जो कि शक्ति की सुरक्षा के लिए मुख्यतः सम्बन्धित है ।

(vii) उन देशों की सहायता जो किसी भी आरक्ष से शक्ति का उत्सर्जन करने में कोई रुचि नहीं लेते ।

(ग) इस के कार्य—विदेश नीति के क्षेत्र में इस के कार्य निम्न निम्नित बतलाये गये —

(i) शक्ति की नीति को जारी रखना तथा सभी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूत बनाना ।

(ii) सर्वत्र जागरूक रहना तथा अपने देश की कुछ श्रेणियों (War moods) के प्रयासों में संघर्ष में पड़ने से रोकना ।

(iii) साम सेना एवं माल जहाजराही की शक्ति की माला के उच्च गिराव तक पहुँचा देना ।

(iv) सभी देशों के मजदूर लोगों के मित्रता के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को दृढ़ करना जो शक्ति में तथा राष्ट्रों की मित्रता में रुचि लेते हैं ।

स्टालिन की इन नीतियों का दखल कर ही हिम्सदीन ने लिया है कि उन्होंने पीटर महात्त की रेष्यकारी परम्पराओं से आधुनिक और सोवियत संघ की अखण्डता का प्राथम्यपूर्ण दखल कर दिया । विदेश नीति के क्षेत्र में अपने मुख्यतः विचारकारी शक्तों के पर-विश्वों का मजबूत

दिया। उसके उत्तराधिकारियों द्वारा उसकी परम्परा को निराना पड़ गा।^१
५ मार्च १९५३ को स्टालिन की मृत्यु के साथ एक युग समाप्त हो गया।

शांतिपूर्ण प्रतियोगिता का स्टालिनोत्तर काल (१९५३-१९६७)

स्टालिन की मृत्यु तक सोवियत विदेश नीति में गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी किन्तु बाद में उसकी नीधि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और वह फिर से विकासोन्मुखी बनी। स्टालिन के बाद तीन मुख्य विकासों ने सोवियत संघ की शक्ति को बढ़ा दिया। पहला विकास यह था कि पूर्वी यूरोप में सोवियत साम्राज्य में स्थायित्व आ गया। दूसरे, सोवियत संघ की घाषिक तथा सैनिक शक्ति दोनों के साथ बढ़ने लगी। तीसरे कम के बलिणी क्षेत्र में उसका प्रभाव बढ़न लगा। मध्यपूर्व बलिणी एशिया और अफ्रीका के विकासशील देश उमक प्रभाव के क्षेत्र बन गये। विश्व का संतुलन एक प्रकार से साम्यवाद की ओर झुन गया। स्टालिन के बाद यद्यपि सोवियत साम्राज्य नहीं बढ़ा किन्तु सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति इतनी बढ़ गयी जितनी कि यह पहले कर्मा नहीं थी। स्टालिन के उत्तराधिकारियों को जिन चुनौतियों का सामना करना था वही—सोवियत साम्राज्य की रक्षा करना पूर्वी यूरोप में सोवियत धामन के स्थायित्व पर पाश्चात्य स्वीकृति प्राप्त करना तथा जहाँ सम्भव हो सके वहाँ बिना सोवियत सुरक्षा को अन्दरे में डाले देश की शक्ति का विस्तार करना। साम्राज्य की रक्षा करना। उसे प्राप्त करने से घषिक कठिन हाता है इसलिए उन्होंने इनको स्वामीय स्वायत्तता प्रदान की घाषिक सम्बन्धों को कम शोषणयुक्त बनाया तथा जीवन स्तर के आधुनिक विकास को प्रोत्साहन दिया। स्टालिन के बाद सोवियत रूस को बलिन समस्या का धामना करना पड़ा, साम्यवादी चीन के साथ इसका सैद्धांतिक विवाद बढ़ा मार्शल टीटो के साथ मतभेदों का उतार-चढ़ाव धाया पोलैण्ड और हंगरी में क्रांतियाँ हुईं तथा एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों में बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन एवं सघष हुए और इन सब कारण सोवियत संघ की विदेश नीति के चक्र की घनि काफी तेज हो गई।

स्टालिन की उत्तरावादी कठोर बदेनिक नीति के जो परिणाम निकसे और पाश्चात्य देशों एवं तटस्थ देशों में उसकी जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उनके फलस्वरूप घष सोवियत नीति का एक नवीन दिशा में उन्मुख हुाना स्वाना विक्र तथा परिधाय था। इसीलिए स्टालिन के अविनम्ब उत्तराधिकारी मातेम्कोव ने द्विबंगत नेता के अन्वेषि-संस्कार में ही पापणा की कि—

1 He ruled in the autocratic tradition of Peter the Great and westernized the economy of the Soviet Union; in the realm of Foreign Policy he followed in the foot steps of the most expansionist of czars. His successors have sought to maintain his tradition."

—Alvin Z. Rubinstein The Foreign Policy of Soviet Union, p. 253

“नेतिन और स्टालिन की शिखार्षों के अनुसार साम्यवादी तथा पूंजीपति देशों में शांतिपूर्ण यह प्रकृतत्व स्थापित करने के लिए प्रथम प्रयत्न किया जायेगा।” मागेन्कोव का यह प्राश्नासन स्पष्टतः इस बात का संकेत था कि स्टालिन के उत्तराधिकारी परिवर्तनी एवं और साम्यवादी देशों के प्रति स्टालिन कासीन विरोध की उग्रता और अडोरेता में कभी काना चाहते थे। इसके तुरन्त बाद ही १५ मार्च १९५३ का सुप्रीम सोवियत में अपने देश की बैरेनिक नीति का उल्लेख करते हुए साक्षियत प्रधानमंत्री ने जारदार बंधों में कहा— ‘यह सोवियत विरोध नीति का संघासन स्वापार की वृष्टि थीर शान्ति को सुदृढ़ बनाने कि दृष्टि से किया जायेगा। कोई ऐसा विचार नहीं है जिसे शांति पुनक हम न किया जा सकता हो। यह निश्चाल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका महिष्ठ विश्व के सब देशों के सम्बन्ध में शान्त रूप से लागू होता है।’ सोवियत कम का नीति में परिवर्तन न प्रकृत करने वाली इन विभिन्न घोषणामो के कारण अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्रों में कम के विरुद्ध प्रचार में कमी घायी। इसी के परिणामस्वरूप अब तब पश्चिम न विरुद्ध प्रचार करने वाले कसी विदेश मंत्री बिनिस्की ने संयुक्त राष्ट्र सचिव महासभा की एक बैठक में भाषण देते हुए पश्चिम को निमन्त्रण किया कि ‘आप मित्रता की सुरत में आये रास्ते तक आगे बढ़कर हमसे मिलें।’ इसका ताप ही पश्चिमी देशों के विरुद्ध कम द्वारा दिये जाने वाले विरोधी प्रचार की उग्रता न भी कपी या गई।

रूस की इस नई विदेश नीति के शुरु प्रारम्भ में शीघ्र ही विकसने प्रारम्भ हो गए। अक्टूबर १९५२ से जन जन वाले कोरियाई युद्ध का शान्ति रोज प्रारंभ हो गया और १० अप्रैल १९५३ का पात्रमुनजोम में बल्ल एक बाल्ल युद्ध बंदियों का समझौता होने पर युद्ध भी समाप्त हो गया। कम द्वारा टर्की और जर्मनी के प्रति मनु नीति अपनाई गई। १५ मई, १९५३ को आस्ट्रिया के सम्बन्ध में शांति साप हो गई। फिनलैण्ड के सैनिक मरुटे साक्षियत सनिकों द्वारा लाती कर दिये गये। साक्षियत रूस में १ लाख न हजार सैनिकों की कमी की गई। १९५४ में जनेवा सम्मेलन द्वारा हिन्दचीन की समस्या का शांतिपूर्ण हल निबाला गया। साक्षियत मध्य में युनान और इजरायल के साथ युन. कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये। यूगोस्लाविया के साथ अतथेसों की दूर करके जने युन. साम्यवादी परिवार के शान्ति की पेटा की गई। २६ अप्रैल १९५३ को मोमोटोव ने यूगोस्लाव प्रतिनिधि में कूटनीतिक सम्बन्धों की पुन स्थापना के सम्बन्ध में बातचीत की और मई, १९५३ में बोर्नो देशों के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से स्थापित हो गए। इसका उपरान्त साक्षियत नेताओं ने यूगोस्लाव साम्यवादी पार्टी के साथ भी अपने सैन्याधिक सम्बन्धों को दूर करने के प्रयत्न किए।

मागेन्कोव के मृत्यु में सोवियत कम की जोड़ पाषारण की नीति में भी शिथिलता नः बर्तित किया जाने गया। बाह्य युनिया के निकट सम्बन्ध कायम करने का प्रयास किया गया ताकि सोवियत मध्य मोहों की शिखार में बन्द मरी समझे पायें। स्टालिन विरोध को दो विरोधी युगों में विभाजित

मानता था लेकिन नई नीति के अनुसार इसका सति-संतुलन ही किया जाना था और इसको अपने पक्ष में करने के लिए ठोस राष्ट्रों की सन्धि प्राप्त करने की चेष्टा की गई।

सू श्चेव युग

इस समय सोवियत संघ में भीतर ही भीतर नेतृत्व के लिए मध्य पक्ष रहा था। श्री मास्कोव इम संघर्ष में पराजित हुए, फलतः ८ फरवरी १९५२ को उन्हें प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। अब मास्को बुम्बा निम नये सोवियत प्रधानमंत्री बने तथा श्री स्कुल्लेव पार्टी के महा सचिव नियुक्त हुए।

१९५२ से १९६० तक का सोवियत विदेश नीति का युग स्कुल्लेव युग है क्योंकि फरवरी २२ से मार्च १९५८ तक के बुम्बानिक के प्रधानमंत्रीत्व कास में ही वास्तविक प्रभाव एवं प्रकाश से श्री स्कुल्लेव का ही था। इस युग में सोवियत विदेश नीति में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और उसका जिस प्रकार संशासन हुआ इन सबका अध्ययन पूर्वक-पूर्वक नीर्यकों के अन्तर्गत निम्न रूप से किया जा सकता है—

(१) लौह आवरण में शिथिलता यात्राओं की कूटनीति

इस युग में सोवियत लौह आवरण की नीति में पर्याप्त शिथिलता आई और यात्रा-कूटनीति का महत्व बढ़ा। सोवियत संघ के विभिन्न साम्यवादी संघीय गणराज्य सभ्यता विदेशों में आनन्द प्राप्त करने के लिए ही शिथिल सभ्यतावादी अन्तर्गत में आनन्द प्राप्त किए जाने लगे। स्थापित बाह्य नेता के साथ सम्पर्क का घोर विरोधी का घोर सम्भवतः बहा एक बार तेहरान सम्मेलन के समय अपने हल से बाहर गया था अथवा मृत सम्मेलनों में ही शक्ति और सम्बन्ध से उसकी मुलाकात हुई। लेकिन अब श्री स्कुल्लेव बुम्बानिक शक्ति सम्बन्ध के सोवियत नेता दूसरे देशों का सम्पर्क पाने और उनकी नीति अज्ञान करने के लिए विभिन्न देशों की यात्राएँ करने लगे और उन देशों के नेताओं को अपने महा निर्मात्र करने लगे।

युग १९५२ में भारतीय प्रधानमंत्री श्री नेहरू सोवियत संघ द्वारा आमंत्रित किए गए और दिसम्बर १९५२ में श्री स्कुल्लेव तथा बुम्बानिक ने भारत यात्रा की। उनके दोनों देशों में सम्पर्क और मैत्री की कृति हुई तथा सोवियत नेताओं को भारत की अत्यन्तता की नीति के प्रति स्थापितता के जो सम्बन्ध बना हुआ था वह दूर हो गया। अगस्त १९५६ में दोनों नेता घेत ब्रिटेन गए। १९५६ - भारत में ये प्रथम सोवियत उपप्रधानमंत्री श्री निकोलाय ने १५ दिन तक अपने प्रथम विरोधी सम्पर्क करने अमेरिका की यात्रा की और १७ जनवरी को राष्ट्रपति आइज़रहोवर द्वारा अमेरिका में १९५२ में मोनोपक्ष के बाद पहली बार ग्राइड हाउस में निजी स्वी गार्डिज का स्वागत किया। सोवियत उपप्रधानमंत्री ने दोनों देशों में स्वाभाविकी कृति को धारण बताना और हम बात पर हम दिया कि 'शीत-युद्ध' (Cold War) का स्वात

नेविन और स्टालिन की सिझार्थों के अनुसार साम्यवादी तथा पूँजीवादी देशों में सन्धिपूर्ण सह-अस्तित्व स्थापित करने के लिए प्रबल प्रयत्न किया जायेगा।" वाशिंगटन का यह वाक्यांशम स्पष्टतः इस बात का संकेत था कि स्टालिन के उत्तराधिकारी पश्चिमी एवं वीर साम्यवादी देशों के प्रति न्यायिन कामीन विरोध की उग्रता और छठोरता में बनी माना जाहूँगे थे। इससे सुरक्षित बाद ही १३ मार्च १९५३ को सुप्रीम सोवियत में घरेलू वेश की वैशेषिक नीति का उन्मेष करते हुए सोवियत प्रधानमंत्री ने बारदात जल्दी में कहा— अब सोवियत विदेश नीति का सञ्चालन व्यापार की वृद्धि और शांति का सुदृढ़ बनाने कि दृष्टि से किया जायेगा। कोई ऐसा विचार नहीं है जिसे शक्ति बूझक हनन किया जा सकता हो। यह मित्रास्त समुक्त राष्ट्र अमेरिका सहित विश्व के सब देशों के सम्बन्ध में समान रूप से लागू होता है।" सोवियत रूप का नीति में परिवर्तन — प्रकृत करते बानी इन विभिन्न घोषणाओं के कारण अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्रों में रूप के विच्छेद प्रचार में बनी घायी। इसी के परिणामस्वरूप अब तक पश्चिम व विच्छेद धाग बरसाने वाले कमी विदेश मन्त्री बिजिन्स्की ने समुक्त राष्ट्र संघीय महासभा की एक बैठक में भाषण देते हुए पश्चिम को निम्नलिखित विद्या कि 'धाय मित्रता की सुरंग में घासे रास्ते तक घासे बढकर हमसे मिलें। इनके साथ ही पश्चिमी देशों के विच्छेद रूप द्वारा किये जाने वाले विनोर्षा प्रचार की उग्रता में भी कमी आ गई।

कत की इस नई विदेश नीति व सुगव परिचाम की शीघ्र ही निकलने प्रारम्भ हो गए। अक्टूबर १९५२ से बन व मे वाले कोरियाई युद्ध का शक्ति गण करण हा गया और १० अप्रैल १९५३ को पाकयुद्धों में रूप एक घायल युद्ध बंदियों व। समझौता होने पर युद्ध भी समाप्त हो गया। रूप द्वारा टर्की और जर्मनी के प्रति सुदु नीति अपनाई गई। १३ मई, १९५३ को धारिद्वारा व सम्बन्ध में शक्ति साथ हो गई। वित्तसंबन्ध के संनिध बढते सोवियत संघिकों द्वारा ताती कर बिय गये। सोवियत सेना में १ लाख ८० हजार सैनिकों की कमी की गई। १९५४ में बेनेवा सम्मेलन द्वारा हिन्दुचीन की समस्या का शक्तिपूर्ण हल निकाला गया। सोवियत रूप ने कूलान और इजरायल के साथ पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये। यूगोस्लाविया के साथ मतभेदों को दूर करके उसे पुनः साम्यवादी परिचार में लाने की कपटा की गई। २९ अप्रैल १९५४ को माओटोय व पुमान्साव प्रतिनिधि ने कूट-निध सम्बन्धों व। पुन स्थापना के सम्बन्ध में बातचीत की और मई, १९५३ में बो-१ देशों के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से कायम हा गए इनके उपरान्त सोवियत नेताओं ने पुमान्साव साम्यवादी पार्टी के साथ भी अपने सद्भासितक मतभेदों को दूर करने के प्रबल लिए।

साम्यवाद के मूल्य में सोवियत रूप की जोह पाबान की नीति में की विविधता व। बर्नार किया जाने लगा। साथ दुनिया में निरुद्ध सम्बन्ध कायम करने का प्रयास किया गया ताकि सोवियत रूप मोहू की बीचार में बन् नहीं समझे जायें। स्तालिन बिगर को दो विरोधी युगों में विभाजित

माभता का सेक्रेन गई नीति के अनुसार इसको शक्ति-मंतुलन का प्रभिया माना गया और इसको अपने पक्ष में करने के लिए तटस्थ राष्ट्रों की मदद प्राप्त करने की चेष्टा की गई।

सु श्वेव युग

इस समय सोवियत संघ में भीतर की भीतर में तृत्व के लिए समय चल रहा था। श्री मासेम्कोव इन संघर्ष में पराजित हुए, फरवरी १९३३ का उन्हें प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। जब मार्सेल बुस्या निग नये सोवियत प्रधानमन्त्री बने तथा श्री स्टुइचेव पार्टी के महा सचिव नियुक्त हुए।

१९३३ से १९६३ तक का सोवियत विदेश नीति का युग सु श्वेव युग है क्योंकि फरवरी १३ से मार्च १९३८ तक के बुस्यानिग के प्रधानमन्त्रीत्व कास में ही वास्तविक प्रभाव एक प्रकार से श्री सु श्वेव का ही था। इस युग में साक्षियता विदेश नीति में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और उसका किस प्रकार संभावना हुआ इन सबका अध्ययन पूर्वक-पृथक नीचे के चर्चार्थक निम्न रूप से किया जा सकता है—

(१) लौह छावरण में सिपिलता यात्राओं की शुरुआत

इस युग में साक्षियता लौह छावरण की नीति में पर्याप्त सिपिलता आई और यात्रा-शुरुआत का महत्व बढ़ा। साक्षियता संघ के विभिन्न सामूहिक संवर्धीय शिष्ट मन्त्रस विदेशों - जिन में दो बार विश्वों के ऐम ही शिष्ट मन्त्रस गान्धादी जगत में प्रामाणिक किए जिन में स्पामिन बाह्य शक्तों के साथ संघर्ष का पौर विराधी था और सम्भवतः सबसे एक बार तेहरान सम्मेलन के समय अपने दम से बाहर पद था प्रथम युद्ध सम्मेलनों में ही शक्ति और कब्रिस्त से उसकी मुसाफिर हुई। मंत्रिण संघ श्री सु श्वेव बुस्यानिग प्रादि उच्चतम स्तर के साक्षियता नेता बूमे रेहों का सद्भाव पाने और उनकी शैत्री शक्ति करने के लिए विभिन्न देशों की यात्राएँ करने लगे और उन देशों के नेताओं को अपने महा नियंत्रित करने लगे।

इस १९३३ में भारतीय प्रधानमन्त्री श्री नेहरू सोवियत संघ द्वारा आमंत्रित किए गए और नवम्बर १९३३ में श्री सु श्वेव तथा बुस्यानिग से भारत यात्रा की। लगे दोनों देशों में सद्भाव और शैत्री की बुद्धि हुई तथा सोवियत मन्त्रियों की साक्ष्यता नीति के प्रति स्पामिनकाल व जो मन्त्रेह बना हुआ था वह दूर हो गया। फरवरी १९३९ में दोनों नेता वेट ब्रिटेन गए। १९३९ - फरवरी में वे प्रथम सोवियत उपप्रधानमन्त्री श्री मिशोवत ने १४ दिन तक अपने प्रधान विराधी मन्त्र जिन बाय अमेरिका की यात्रा की और १७ जनवरी को राष्ट्रपति फ्राइडरिख द्वारा अमेरिका में १९४३ में मानोराव के बाद पहली बार हाइट हाउस में निजी कमी गजरीतित्र का स्वागत किया। सोवियत उपप्रधानमन्त्री ने दोनों देशों में स्वागत की बुद्धि की साक्ष्यता बढ़ाया और उन बात पर बल दिया कि 'शीत-युद्ध' (Cold War) का स्वागत

'शांतिपूर्ण-प्रतियोगिता' (Peaceful competition) की मांगें वांछित। मन्थेन वापस लौटने पर डॉ. मिन्कोवान ने ३१ जनवरी १९५६ को सोवियत माध्यमवादी पक्षों के २१ वें सम्मेलन में मास्को में कहा कि उन्होंने अमेरिकन राजनीतिज्ञों और नेताओं के साथ जो भी वार्तालाप किया उसमें उन्हें कहीं सोवियत साम्यवाद के 'निरोध' (Containment) पीछे बनेसने (Roll back) तथा 'साम्यवाद की दासता से मुक्ति' (Liberation) की कोई चर्चा नहीं सुनाई थी। मिन्कोवान द्वारा अमेरिका की घासी यात्रा से उपयुक्त बानाबान तैयार कर दिए जाने के उपरान्त सितम्बर १९५६ में सोवियत प्रधानमन्त्री नी ख्रुश्चेव ने अमेरिका की यात्रा की। २० सितम्बर को उन्होंने कहा "राष्ट्रपति घाईजनहोबर से पैरी बड़ी मधुर वार्ता हुई है। हमने जिन जिन प्रश्नों पर विचार किया है उस सब के बारे में यह पाया है कि दोनों पक्षों के दृष्टिकोण घोर विचार एक ही हैं। हम दोनों इन बातों पर सहमत हो गए हैं कि सभी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का निष्पक्ष शांतिपूर्ण मापनों द्वारा वार्तालाप घोर चर्चा के माध्यम से किया जाना चाहिए।" अक्टूबर-मार्च १९६० में नी ख्रुश्चेव ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों—मालद्वीप, बर्मा, इण्डोनेशिया, अफगानिस्तान आदि की यात्रा की।

सोवियत नेताओं द्वारा भीड़ बाबरण में विविधता किए जाने और विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा करने से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में निश्चित कमी हुई और दोनों विरोधी पक्ष एक दूसरे के प्रति अपने अवरदस्त संदिग्धीन न रहे जितने स्थापित काल में थे। सोवियत नेताओं द्वारा इस प्रकार की विदेशी यात्राओं की सराहना करते हुए एक ब्रिटिश समाचार पत्र में इस प्रकार का लेख दिया था—

'इन बातों देशों के राजनीतियों की यात्राओं के आदान-बदान के फलस्वरूप बहुत दिन दूर नहीं कि अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ हो जायेगा। इस युग में अकेल संसार की अतिम समस्याओं—विश्वस्तरीय परमाणु-सुरीयण और-युद्ध प्रत्यादि का ही समाधान होगा बल्कि दोनों देशों के बीच एक अनाक्रमण संधि हा जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। बहुत दिन दूर नहीं अब माघाने तुम अमेरिका की यात्रा और अमेरिकन राष्ट्रपति नीन की यात्रा करके घोर फिर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में एक नये युग का श्रीगणेश होगा।"

घासी इन यात्राओं में कभी नेताओं ने मासमाध्यमों के जितने सम्मेलन बुलाने पर आरम्भ बन्द दिया। ऐसा एक सम्मेलन बुलाई १९५२ में वेनेज़ा में हुआ जिनके हिन्दुओं की समस्या को बल दिया। दूसरा सम्मेलन कई १९६० में हुआ जो दुर्भाग्यवश यू-२ विमानकीड में उत्पन्न आघातबल का शिकार बनकर अमकल ही गया।

- (२) शांतिपूर्ण सहपस्थितिक की घोर विचारों का शांतिपूर्ण रूप से निपटारा करने की नीति स्थापित की मृत्यु के बाद शांतिपूर्ण सहपस्थितिक की नीति का गुनारंग

माम्बोद के प्रधानमन्त्रित्व-काम में ही हो चुका था किन्तु इसे निवार सुश्रेष्ठ युग और बार में वर्तमान कोसीगन युग में मिला। फरवरी १९५६ में लक्षा साम्यवादी हम की जो २० की कांफ्रेंस हुई उसमें स्टालिन तथा उसकी नीतियों की कटु आलोचना की गई और साम्राज्यवादी देशों ने युद्ध की प्रतिवार्थता के सैनिक सिद्धान्त को संशोधित कर शांतिपूर्ण-सहप्रतिस्व को सोवियत विदेश नीति का आधार बना दिया। कांफ्रेंस की विशेष रिपोर्ट में श्री कुशनेव ने स्टालिन युग में किए गए अपराधों का उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि स्टालिन इस प्रकार से व्यवहार करता था मार्गों पर सब कुछ जानता है सब कुछ देखता है सब के सिधे साबना है सब कुछ कर सकता है और मन्त्री कभी भी नहीं करता है। वह अपने आपको ईश्वर मान कर चलता था। उसका व्यवहार अमानवीय एवं हिमात्मक था। श्री कुशनेव ने कहा कि यदि नम्बू और बुस्यानिन को कभी स्टालिन बुलाता था या उन्हें यह विश्वास नहीं होता था कि वे मजबूत अपने घर मोट सकेंगे। "स्टालिन कभी भी ममका-बुझकर काम नहीं लेता था किन्तु वह अपनी माम्बताओं को साबता था तथा अपने मतों पर पूर्ण समपत्त की मान करता था। स्टालिन ने एक बार कुशनेव से मार्शल टोटो के प्रति रोष प्रकट करते हुए कहा था कि— "मैं अपनी छोटी पशुनी उठा दूंगा और टोटो नहीं रहेगा वह फिर चायेगा।"

श्री कुशनेव की प्रेरणा से उनके समय जो विदेश नीति प्रग्रीकन की गई उसकी ३ प्रमुख विशेषतायें थीं—

प्रथम वहाँ स्टालिन के शांतिपूर्ण सहप्रतिस्व का धर्म केवल युद्ध का न जाना मात्र था वहाँ श्री कुशनेव ने इसका धर्म यह माना कि सभी वैर माम्बवादी राष्ट्र (विशेषतः एशिया और अफ्रीका के गटस्य राष्ट्र) सोवियत उध के अनु नहीं हैं।

दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय विवाहों के शांतिपूर्ण समाधान पर बल दिया गया।

तीसरे, आक्रामकों की कटनीति स्वीकार की गई और यह माना गया कि दूसरे देशों से अशुद्ध सम्बन्धों की स्थापना करने के लिए सोवियत नेताओं को धर्म देशों की आक्रामक करनी चाहिए तथा मोह आबरण को निमित्त कर। अम्बानी एवं वैर-माम्बवादी देशों के मध्य सम्पर्क की स्थापना का प्रोत्साहन देना चाहिए।

चौथे सोवियत संघ द्वारा विश्व के अल्पविकसित देशों को आर्थिक सहायता देने की आवश्यकता अनुभव की गई।

आखिरी परिवर्तनी शक्तियों को साम्राज्यवादी तथा अन्तिवैधवादी बना कर उनकी निम्न करते हुए भी उनके साथ युद्ध संपर्क की नीति का

1 "I will shake my little finger and there will be no more Tito. He will fall"

में आकर खड़े। इसीलिए कुछ विचारकों द्वारा यह अर्थ ही किया जात है कि जब खोपित संघ साम्यवाद के सिधे लड़ रहा है तो उसके साथ शक्तिपूर्वक संघे रहा जा सकता है। परन्तु इस प्रकार की भाषोचना का सक्रम साम्यवाधियों की दृष्टि में केवल बुद्धि का प्रकार है। वे इस तथ्य को मानते हुए भी सुमा देते हैं कि यह लड़ाई बलुकों व बलों की नहीं बल् सिद्धान्तों की है। एसा वे इसलिये कात हैं ताकि खोपित संघ को धाकामट देत खोपित कर सकें। समाजवाद की विजय का अर्थ तो यह है कि उत्पादन का समाजवादी तरीका पूंजीवादी उत्पादन के तरीके से अधिक लाभदायक है यह सिद्ध हो जाये। जब विजय के मजदूरों की साम्यवाद के पुलों का परिचय प्राप्त हो जायता तब विजय ही वे समाजवादी समाज की स्थापना कर सेंगे। शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व का अर्थ यही है कि पूंजीवादी तथा साम्यवादी दोनों व्यवस्थाएँ साथ-साथ रहें तथा अपने-अपने बुद्धि से प्रभावित करके साम्यवादी व्यवस्था विजय का में स्थापत हो जाय। वे शक्ति एवं युद्ध का सहारा लिए बिना हा यह मानते हैं कि एक देश में समाजवाद की स्थापना उसका अयता धातुनिक विषय है जिसके बारे में कत कोई हस्तछेन नहीं करना चाहता। शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व का अर्थ तो मित्र समाज व्यवस्थाओं के साथ-साथ रहने में कुछ अर्थ है। प्राये बड़ने के लिए तथा मन्त्रियों को अर्थ बमाने के लिए यह आवश्यक है कि देशों के बीच विश्वास को मजबूत किया जाय और उनके बीच सहयोग की स्थापना की जाय। एतु जरतों के विकास के युद्ध को एक अयममय पाषन बना दिया है। पाणुषम मारी मानव जाति के लिए ही एक बुद्धि बन गये हैं। पूर्व और अन्तिम त इस विरोध का एक साथ मुझा है शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व। एतु इस मान्यता का अर्थ यह क्वापि नहीं समझ लेता चाहिये कि पर साम्यवादी देश विजय के साथ मित्रता कर सेंगे। अयम म जाति को भी साम्यवादी एक सपर्यं पावते हैं। युद्ध और शक्ति में केवल मानकों का अन्तर है दोनों का धातु तो एक ही है। दूसरे अर्थों में शक्ति का अर्थ केवल सैनिक सभ्य का अयम है। इसे मानते समय साम्यवादी लोग विजय शक्ति के विचार को छोड़ नहीं देते बल् कुछ समय के लिए हास देत हैं ता भी समान लक्ष्यों के लिए सैद्धान्तिक अगाड़ा चलता ही रहेगा।

अयममय में कत के शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व को पूरी तरह से समझने के लिए शेरिपोव (Shepilov) के अर्थों को अद्भुत किया जा सकता है। वे कहते हैं— शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व अयमं विहीन जीवन नहीं है। जब तक विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ अयम रहेंगी उनके बीच अमजबूत होना अवरिहार्य है। शक्तिपूर्व सह-अस्तित्व एक राजनीतिक धातुनिक एवं सैद्धान्तिक सपर्यं है। सह-अस्तित्व का अर्थ एक दुसरे के साथ लड़ना नहीं है अन्तर्राष्ट्रीय अर्थों की द्विधियों में सुनझने का प्रयत्न नहीं करना है एतु वह शक्तिपूर्व अर्थों तथा धातुनिक और सांस्कृतिक अर्थों द्वारा अतिव्यक्ति करता है। हम यदि जीवन के मजबूत नियमों का अर्थ लक्षण के नियमों को बुझा देते ना हम पाषनवादी व अतिव्यक्तिवादी नहीं रह जायेंगे।¹

1 "Peaceful Co-existence is not a conflictless life. As long

यह उल्लेखनीय है कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति ने सोवियत संघ में किसी प्रकार का बरेकू परिवर्तन नहीं किया है। हाँ इस सिद्धांत के प्राचीन क्वी विदेश नीति में एक विशिष्ट संचोभावन (Flexibility) अवश्य प्रविष्ट कर सकी है। इन्टरनेशनल म्यूज सर्विस एजेंसी के मुख्य सम्पादक डब्लू थार हस्ट (WR Hearst) को एक इन्टरव्यू में श्री लुरचेव ने स्पष्ट किया था कि यदि संयुक्त राज्य अमरीका का शासक वर्ग इस प्रसंदिग्ध तथ्य को स्वीकार कर ले कि विश्व में एक समाजवाद की दुनियाँ कायम है जो अपने प्राबलियों के प्रमुख उन्नति के मार्ग पर प्रगसर है एवं इन समाजवादी दुनियाँ के प्रतिरिक्त एक पूँजीवाद का संसार भी है तो वह (सोवियत संघ) इन दो विशिष्ट सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच सह-अस्तित्व की सम्भावनाओं को स्वीकार कर ले। अपने इसी इन्टरव्यू में श्री लुरचेव ने दृढ़ ज़रूरी में यह स्पष्ट कर दिया कि हम इस बात को किसी सूरत में स्वीकार नहीं कर सकते कि संसार के प्रत्येक दश पर संयुक्त राज्य अमरीका हावी हान की बिष्टा करे। यदि अमरीका पूँजीवादी इच्छिकोण से विश्व का सर्वाधिक विवर्धित और शक्तिप्राप्ती देश है तो सोवियत संघ भी सबसे अधिक शक्तिप्राप्ती समाजवादी देश है। अत उचित यही है कि दोनों दश अपने विचारों का हिस हसवीकरण की बीड़ में आम लेकर के घी? एड सामकी एकत्रित करके नहीं करें बल्कि इन्हें हल करने के लिये अपने देश की प्राथिक व्यवस्था का समुन्नत बनाने और अपनी जनता के सांस्कृतिक विकास व कल्याण को प्राथे बढ़ाने का प्रयास करें। श्री लुरचेव ने तत्पपूर्ण शर्तों में बताया कि कीर्तनी व्यवस्था अक्षी है—इसका निरुप हथियारों द्वारा नहीं किया जा सकता इसके लिए तो विवेक की आवश्यकता है। लुरचेव के जो शब्दों में—

“हम कहते हैं कि समाज का विकास उसके नियमों के अनुसार होता है और प्रायः वह युग धा पया है जबकि पूँजीवाद का अपने से अधिक विवर्धित सामाजिक प्रणाली-समाजवाद के लिए माय करना पड़ेगा। यह बात मूक कम्युनिस्ट पर प्राधित नहीं है और न तुम—एक पूँजीवादी पर प्राधित है। यही यह एक वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इस बात को मानने और एजिस्स में अक्षी प्रकार से प्रमाणित कर दिया है और इसे मेनिन न मनी शक्ति विकसित किया है। मिस्टर हस्ट में आपसे कहना चाहता हूँ कि सोवियत संघ शांति तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व चाहता है। यदि हमारे देश

as different Social-Political Systems continue to exist, the antagonisms between them are unavoidable. Peaceful coexistence is a struggle political economic and ideological. Co-existence means that one does not fight the other does not attempt to solve international disputes by arms, but that one competes through peaceful work and economic and cultural activities. But we would cease to be Marxist Leninist if we forget the elementary laws of social life the laws of class struggle.”

—Shepilov Pravda 13th February 1957

पर धाकनछ नहा किया गया तो हमारा देश कभी युद्ध नहीं करेय । हम न तो संयुक्त राज्य अमरीका के विरुद्ध युद्ध करने की बात मांगते हैं और न किसी दूसरे देश के खिलाफ हमारा ऐसा इरादा है—चाहे वह देश सोवियत संघ के विरुद्ध हो अथवा दूर क्योंकि ऐसा करना हमारे सिद्धान्त का उल्लंघन करता है । हम जातिपुर्ण निर्मल्य धार रचनात्मक काम में प्रतियोगिता करना चाहते हैं ।¹

स्टालिन की मृत्यु के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय विवादा को जातिपुर्ण ढंग से हल करने और जातिपुर्ण सहमन्त्रित्व व सिद्धान्त को मानने के निश्चित प्रमाण भी सोवियत कम ने प्रस्तुत किये । उदाहरणार्थ जुलाई १९५३ को कारिया युद्ध की समाप्ति में कमी सहयोग मित्रा पत्रकारी—फरवरी १९५४ में बार बटो के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ जिसमें किये गये निश्चय के अनुसार पर्यन्त में जा जैनका सम्मेलन हुआ उक्तमें विद्यमान की समझा की जातिपुर्ण ढंग से सुलझया गया । १५ मई १९५३ को जातिपुर्ण के साथ जाति लपि हुई । जुलाई १९५३ में बार बटो का शिपर सम्मेलन हुआ जो १९५३ के गोल्डनव सम्मेलन के बाद बार उक्तो की पहली बैठक थी । इसमें शिपरकीन के प्रश्न का जातिपुर्ण निबटारा हुआ । इसी मध्य —न १९५३ का जातिपुर्ण मध्य ने कामेगानीय प्रश्न में टर्की के विरुद्ध अपनी प्रवेधिक माँगों का परित्याग करने की घोषणा की ।

सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्रसंघ व महासंघिष की नियुक्ति पर अपने कहने क दुराचारी रण की छोड़ कर जो शाय हैमरनास्ब को महासंघिष के रूप में स्थापित कर दिया । जुलाई १९५२ में भारत के प्रथम और कम के सम्बन्ध में साम्यवादी धार में ११ बर्ष अमेरिकन विमान बाजारो ला दिया कर दिया । कम इन घणनायी गयी इस गठबन्धनपुर्ण और उदार नीति का संयुक्त राष्ट्र संघ पर भी अनुकूल प्रभाव पडा । कमी सद्गोचर पाकर सब बात

1 We say Society develops in accordance with its laws, and so the era has come when capitalism has to make way for Socialism, as a higher social system than Capitalism. This does not depend upon me a Communist, neither does it depend upon you a capitalist. No it is an objective historical process. This has been proved very well by Marx and Engels, developed and continued by Lenin. I should like to tell you, Mr Hearst, and through you the people of the United States of America that the Soviet Union stands for peace and peaceful co-existence. Our country will never begin war if it is not attacked. We are not thinking of war either against the United States of America, or against any other country irrespective of whether that country is near to the Soviet Union or far from it, for that is contrary to the spirit of our ideology. We want to compete in peaceful construction in constructive work."

प्रारम्भिक प्रस्तावशाही रूप में कार्य करते सगा। नवम्बर-दिसम्बर १९५३ में एक तरफ सोवियत संघ ने और दूसरी तरफ सॉस ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका ने यह निश्चय किया कि वे एक दूसरे के द्वारा प्रस्थापित राज्यों को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने के प्रस्तावों का विरोध नहीं करेंगे। इस निश्चय के परिष्कारस्वरूप ८ दिसम्बर १९५३ को १८ राज्यों को संयुक्त राष्ट्र संघ की सन्म्यता प्रदान की गई। सोवियत नेताओं ने दूसरे देशों की सम्मानना बहाल करना शुरू किया। १८ अप्रैल १९५६ को कार्यालयों को मग कर दिया गया। जुलाई-अगस्त १९६३ में मसू परीक्षण प्रतिबंध संधि सम्पन्न की गई जिस १९२७ की वाशिंगटन संधियों के पश्चात् निःशस्त्रीकरण के प्रयत्नों की प्रथम सफलता कहा जा सकता है। अगस्त में ही मास्को और वाशिंगटन के मध्य सीधा टेलीफोन तथा रेडियो सम्पर्क स्थापित करने का समझौता (U S-Soviet Hot Line Agreement) किया गया। जिसका उद्देश्य यह था कि किसी भी साफ्टकालीन स्थिति में दोनों राष्ट्रों के प्रत्यक्ष एक-दूसरे से सीधी बातों के द्वारा विश्व को प्राणदाक भिन्न होना न पड़े।

सुरक्षित काल में 'पूर्व' और 'पश्चिम' के सम्बन्धों में निश्चित रूप से सुधार हुआ। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शीत युद्ध समाप्त हो गया अथवा कम और पश्चिमी शक्तियाँ परस्पर मित्र बन गयीं। इनके विपरीत राजनीतिक शक्तियों के रूप में दोनों ही स्थिति यथा पूर्व रही और कटनीतिक बाँध पेशों के अन्तर्गत अन्त-अन्त प्रमाण क्षेत्र बढ़ाने में दोनों ही पक्ष अग्रसर रहे। मूल अन्तर केवल यही हुआ कि स्टालिनसाही उपनायो नीति का स्वागत आनुपूर्वक और गहन कटनीतिक उद्धार नीति ने ले लिया जिसमें प्रत्येक अनुकूल अवसर से प्रत्येक लाभ उठाने की चेष्टा जारी रही। मौके-बमौके ऐसे अवसर उपस्थित होते रहे और ऐसी घटनाएँ बटीं जिनसे समय-समय पर शीत युद्ध को तीव्रता मिली और दोनों पक्षों में कटुता का व्यापक प्रसार हुआ। उदाहरणार्थ १९५६ में स्वेज नहर और हंगरी के प्रश्न को लेकर दोनों पक्षों में अत्यधिक कटुता उत्पन्न हो गई, मई १९६० में यू-२ विमान की घटना ने दोनों पक्षों में शीत युद्ध का अन्त ला दिया और १९६२ में क्यूबा के संकट ने दोनों महाशक्तियों का संघर्ष के इतने निकट ला दिया कि मृत्तिय महायुद्ध के विस्फोट की सम्भावना से विश्व की सम्पूर्ण शांतिवासी जनता बल्ल हा उठी। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि संकट के प्रत्यक्ष अवसर को टालने में द्यूनाधिक रूप से दोनों ही पक्षों ने विवेक और धैर्य का महान प्रयोग किया तथा रस्नी को इतना नहीं लिखने दिया कि यह टूट जाय। सबुद्ध राज्य अमेरिका और सोवियत संघ-इन दोनों ही महाशक्तियों में इस अनुमूर्ति को बल मिला कि सैनिक शक्ति अथवा युद्ध के द्वारा एक-दूसरे को समाप्त करने की नीति न केवल प्रामाण्यवहारिक बल्कि आरम्भानी होवी और यदि महाशक्तियों को नहीं चरनाया जायता तो अन्त एक मात्र विश्व लक्ष्य विनाश होया।

(३) अधिकतम राष्ट्रों को आर्थिक सहयोग

जैसा कि कहा जा चुका है मास्कोव और गुरेव के युग में सोवियत

संय म नी प्रत्यक्षिकरित्तन देशों का आर्थिक प्राविधिक और सैमिक सहायता देन का नीति प्रपनापी जो आज तक सोवियत विदेश नीति का एक प्रमुख घय बनी हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा १९४८ से ही दुर्गम सिद्धांत और मार्शल योजना के अन्तर्गत प्रत्यक्षिकरित्तन देशों के निचे प्राविधिक सहायता का कार्यक्रम बननाया गया था ताकि उन देशों में बडते हुए साम्यवादी प्रयास को रोक जा सके। इसके प्रत्युत्तर में स्टालिन युग में सोवियत कस ने प्रत्यक्षिकरित्तन देशों का विकसित करके की प्रयेसा उनमें साम्यवाद के प्रचार और लोड़ कोड़ के सिद्धांत को प्रपनाया। परन्तु स्टालिनोत्तर युग में नवौन नीति का समारम्भ हुआ जिसक अनुसार कस द्वारा प्रत्यक्षिकरित्तन देशों के प्राविधिक विकास पर बल दिया जान सगा। इसके परिणामस्वरूप जनवरी १९६४ से जनवरी ६६ तक राजों सी देशों द्वारा प्रत्यक्षिकरित्तन एवं अर्थिकरित्तन राष्ट्रों को प्राविधिक सहायता देने की एक प्रतिबोधिता सी प्रारम्भ ही गई जिस का सुमनात्मक घण्ययन दोनों देशों द्वारा दी गई प्राविधिक सहायता के निम्नसिद्धित प्रांकड़ों में किया जा सकता है—

१९१० साल	डायर	अध्यायिका	१९८० साल	डायर
१०४०		अजय्यामना	४६१०	"
७४०	"	अमीत	११०२०	"
६१०	"	कम्बोडिया	५१२०	"
९६०	"	की लंका	७६०	"
४७००	"	कपुरा	२६०	"
१९४०	"	इथियोपिया	११६०	"
१०००	"	माना	१२७०	"
१०८०	"	तिनी	११०	"
४०	"	पाउमनेड	७६०	"
६८२०	"	माल	१२७३०	"
६४००	"	इ रोनेलिया	३६४०	"
२१८०	"	ईराक	१८०	"
१०००	"	मास्या	१०	"
२४०	"	नेपाल	४६०	"
३३०	"	पाकिस्तान	१३४१	"
६६०	"	नेपोलिया	९६०	"
२४०	"	नूदान	६२०	"
१६३०	"	सीरिया	६४०	"
४६०	"	टूरुनिगिया	२६३०	"
१००	"	टर्की	१३११०	"
७१२०	"	विय	६१७०	"
४४०	"	यमन	५१०	"

तालिका से स्पष्ट है कि सोवियत संघ ने प्राथमिक सहायता की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ उन्मेषनीय प्रतिस्पर्धा की यद्यपि कुसराशि की दृष्टि से वह अमेरिका से कम रही। परन्तु हम सम्बन्ध में यह तथ्य स्मरणीय है कि सोवियत संघ द्वारा दी जाने वाली प्राथमिक सहायता अमेरिका से कम होते हुए भी अधिक स्पष्ट प्रभावी और स्थायी रूप से निम्न वाली प्रमाणित हुई। उदाहरणार्थ बड़ा भारत को अमेरिका का अग्र मुख्य रूप से भारत की सामुदायिक विकास योजनाओं और आद्यान्तों की प्रावश्यकताओं को पूरा करने के लिये मिला बड़ा कम का अग्र स्पष्ट रूप में तथा स्थायी रूप से दिखाई देने वाले निर्मात्र के कारणाने मारी मशीनों के कारणानों और उद्योगों बनाने के कारणानों के लिये दिया गया। स्पष्ट है कि सोवियत सहायता अमेरिका सहायता की अपेक्षा स्पष्ट है। अतीत में अतीत की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण और प्रचारार्थक मित्र हुई। इसी तरह पश्चिम के इस्कार करने पर कम द्वारा मिस को आस्वान बांध हेतु बड़ी मात्रा में प्राथमिक सहायता प्रदान की गई।

सोवियत संघ द्वारा अधिकसिद्ध तथा अस्विकृत राष्ट्रों का प्राथमिक सहायता प्रदान करने की संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति का प्रभावकारी रूप में अनुकरण करने में ही वॉल्टर लिपमैन (Walter Lippmann) का यह निष्कर्ष पर विचार कर दिया कि "यह कम न प्राथमिक प्रायुक्तों पर पश्चिम के एकाधिकार को भंग किया और यह बहुत अस्विकृत देशों का प्राथमिक नेतृत्व प्रदान करने में पश्चिम के प्राथमिक एकाधिकार का नाश करने लगा है।"

अधिकसिद्ध देशों को प्राथमिक सहायता देने की नीति का प्रभावमान करने के साथ सोवियत संघ ने उत्पादन और सैनिक शक्ति में अग्रणी देशों से अग्रणी शक्ति करने का पूरा प्रयास किया। श्री लुत्सेव का स्पष्ट मत था कि "यह सबसे महत्वपूर्ण समस्या क्या है? यह है पूरबीबाद का पराजित करना। जो बड़े पैमाने पर उत्पादन के द्वारा अधिक पैदा करेगा वह विजयी होगा।" इस नीति के फलस्वरूप संघ के उत्पादन में मारी वृद्धि हुई। सैनिक शक्ति में भी सोवियत संघ तेजी से आगे बढ़ा। १९३७ में स्पूतनिक और १९६१ में २० मेगाटन बम का निर्माण करके वह राकेट तथा आणविक शक्तों की दृष्टि में संयुक्त राज्य में भी आगे निकल गया।

(५) उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध

श्री लुत्सेव ने एशिया और अफ्रीका के देशों तथा अग्रणी विश्व (Uncommitted World) की महानुभूति प्राप्त करने के लिए उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद विरोधी प्रचार को और भी तीव्र कर दिया। मद्रासराष्ट्र मंत्र मंत्री प्रथम बहु साम्राज्यवादी शक्तियों की ओर निर्णय करने लगा और उपनिवेशवाद तथा मुसलमान राष्ट्रों को स्वतंत्र बनाने के सभी प्रस्तावों पर आशावादी को प्रबल समर्थन देने लगा। सभी नेताओं की मान्यता थी कि इस नीति से उन्हें दोहरा लाभ मिलता है। पहला तो यह कि एशिया और अफ्रीका

की साम्राज्यवाद से पीड़ित जनता की सहानुभूति उसे प्राप्त होती है और दूसरे साम्राज्यवाद के बिचलन से कस क प्रबल एवं कट्टर जन्म पूंजापति पश्चिम की प्रभुता सीखे होती है ।

वास्तव में स्टालिन की मृत्यु के बाद से ही विशेषकर ची कोरिया के प्रभाव में आने के उपरान्त से एशिया और प्रशोक के अल्पविकसित या अशुभिकसित देशों और उपनिवेशों के प्रति सोवियत नीति के निम्नलिखित प्रमुख लक्ष्य रहे—

(i) श्रुतपूर्व उपनिवेशी घणना अर्ध-उपनिवेशी देशों के संरक्ष एवं राष्ट्रीय सम्मान का प्रशोधी प्रकार ध्यान रखते हुए इनके प्रति पूरी तरह मित्रता एवं सौहार्द बिरताना

(ii) इन देशों के पश्चिम क साथ अतीत के कट्ट सम्बन्धों का फायदा उठते हुए उन्हें पश्चिम से और भी विमुक्त बना देना

(iii) न केवल उपनिवेशवाद विरोधी बरन् आतिवाद विरोधी प्रवृत्तियों को भी उमादना

(iv) राजनीतिक तटस्थता की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना

(v) औद्योगिकरण के द्वारा जनकी अपनी अर्ध व्यवस्था को विकसित करने की महत्वाकांक्षा को सहारा देना हो तट ता सोवियत सहायता एवं वारस्विक व्यापारों के सम्बन्धों की ओर उनको मुक्ताना

(vi) प्रत्येक भयङ्गे को उकताना जो कि वे पश्चिम के साथ रक्ष सकते हैं ।

(vii) विदेशी पूंजी या सहायता को उनकी स्वतंत्रता एवं सम्मान के विरुद्ध बता कर सरह की मावना कृताना

(viii) उनकी धर्मों के मामले सोवियत कस के तीव्र औद्योगिकरण को आदर के रूप में प्रस्तुत करना ताकि स्थानीय लोग यह समझ सकें कि केवल साम्यवाद ही बहुत कम समय में ऐसी उपलब्धियों को साकार कर सकता है ।

सोवियत संघ के शक्ति एवं प्रभाव के विस्तार के मुख्य धारणतु केन्द्र नीत है अरुका एशिया एवं मेडिन अमेरिका । सोवियत (Shepilov) ने पूर्व के सम्मेलन में कहा था कि सोवियत जनता पूर्वी राष्ट्रों के समाप्त होते हुए उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वार्थहीन लक्ष्य को प्रेम तथा सहानुभूति से महत्तान प्रदान करती है । उन्होंने एक बार कहा था कि हमारा विश्वास है कि प्रत्येक जनता (People) को अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता स्वतंत्रता तथा आराम निर्णय का कमी न दीना जाने वाला अधिकार है ।

सुरक्ष का बतन उनकी नीति का अन्त्यांकन

सुरक्ष के समय लाबियन नीति में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में बहु शक्ति नई शिगाणों की ओर उन्मुख हुई उनका समीक्षात्मक वर्णन हम कर चुके हैं । हम यह भी बतना चुके हैं

सम्पन्न बना कर निकाल फेंका गया और उसके बाद स्टालिन ही की तरह कम पर छ। जाने वाले थी कुश्नेव तक को अक्टूबर १९६४ में अपदस्त कर दिया गया और १५ अक्टूबर १९६४ को ताल एजेन्सी ने घोषणा की कि 'संपिण्ड प्रायु तथा स्वास्थ्य कारण होने के कारण थी कुश्नेव को साम्यवादी पार्टी के सभी तथा प्रबानमन्त्री के पद से मुक्त किया गया है।' केंद्रीय समिति ने १४ तारीख को इन दोनों परों से कुश्नेव का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया है तथा कासीपिन को प्रबानमन्त्री और इ. बनेव को साम्यवादी पार्टी का सचिव बनाया गया है। कस के मामलों में बिदेव कस में सिद्धहस्त वास्तव्य कूटनीतिज्ञ की वायवता है कि कमी बिदेव नीति का प्रमुख ध्येय बुझाबादा समाज और ताताबरस का उन्मूलन है इन्होंने कई परिवर्तन माने की समाधान नहीं है।

प्रस्तुत तदर्थ में यह जानना रोचक होया कि १० अक्टूबर १९६४ को बिदेवनी इत्थो के सम्बन्धवाताओं को यह पता चला कि श्री कुश्नेव पर पार्टी की ओर से यह और बिदेव नीति तथा व्यक्तिगत भ्रूसा के लक्षण २० आरोप लगाये गये थे।

बिदेव नीति-सम्बन्धी मुख्य धारणों में से—

(i) उसकी नीति से सोवियत सप का जगवाही चीन के साथ मैटान्त्रिक मतभेद पैदा हो गया है जो साम्यवादी राष्ट्रों की एकता के लिए बाधक है तथा उसके संयुक्त राज्य अमेरिकन के उसके महावागियों को कम मिला है। चीन की बैजान्त्रिक उन्नति का भी कम सहारा किया गया है।

(ii) उसने बयूबा के प्रति बिल नीति को अपनाया वह अथक रूप से प्रतिपुष्ट है। बयूबा में प्रवेशाचार्य भेज कर बार में उन्हें बाविस मयाने की नीति पूर्ण चलन की।

(iii) हाबियन बिदेव मन्त्रालय में स्वयमेव नियुक्त कर के उगत इन के कार्य को बिगाड़ा है।

(iv) इनने अपने हमारा को तापियों में बिना पूछे बुलाई, १९६४ में परिचयी वर्षों में होय कार्य के लिए भेजा है।

(v) उसने प्रायिक महायोग के पूर्ण यूरोपियन संगठन (COME COM) के काम को बिगाड़ा है।

(vi) अपन हाबियों से बिना परामर्श किए १९६४ में तपुत धरक बधराय के राष्ट्रपति कर्नल ताविर को कस में सम्मान की सर्वोच्च सोवियत उपाधि 'सोवियत युनियन का वीर' प्रदान करना और संयुक्त धरक बधराय का १० करोड़ पीपल का कूण देने का बचन देना उसकी मन्त्रीर पत्नी है।

इस नीति के बिषय में श्री कुश्नेव पर निम्न सिद्धांत दोष लगाए गए—

(1) बिजनेसों के परामर्श की बचहूतना करते हुए कुश्नेव ने 'अनीक'ियों को उपहास बनाने की नीति पर बग रकन सोवियत टूटि में नोट न किया।

(h) अर्थ-व्यवस्था में आयोजन के क्षेत्र में पहले केन्द्रीकरण से विकेन्द्रीकरण करके तथा पुनः विकेन्द्रीकरण से केन्द्रीकरण करके गड़बड़ी उत्पन्न की।

(iii) भारी उद्योगों की उपेक्षा करते हुए-हफ्ते तथा उपमाध्य वस्तुओं के उद्योगों पर बल दिया।

(iv) पार्टी के तथा सरकार के अधिकारियों को मनमाने ढंग से परच्युत किया।

श्री कुश्नेव पर व्यक्तिगत शोक इस प्रकार समायें गए—

(i) उसने पार्टी के सामूहिक नेतृत्व को गिरा किया और स्वयं का महत्त्व बेने वाली 'व्यक्ति पूजा' को प्राप्ताहित किया। उसने साधियों से परामर्श किये बिना अल्पबाजी में निर्णय किये और मनमाने भाषण दिए।

(ii) अष्टाचार तथा माई मतीजाबाद को प्रोत्साहन देते हुए उसक द्वारा परिवार के सदस्यों को उच्च पद दिये गए। उसने अपने पतिन नीना को सोवियत महिला समाज का अध्यक्ष चुनवाया अपने पुत्र को अयोग्य होना पर भी इ बनीयर का पद दिसवाया अपनी पुत्री रेडा को विज्ञान की एक पत्रिका का सहायक सम्पादक बनवाया तथा अपने बामान को शौर्य कार्य पर पश्चिमी जर्मनी भेजा।

(iii) उसने क्रीमटापूर्वक बिना सोचे समझे ऐसे भाषण दिए जा बाद में वापस लेन पड़े और जिससे रूस को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी।

कुश्नेव के पतन के बाद सोवियत विदेश नीति

कुश्नेव के पतन के बाद फरवरी १९६४ में सोवियत संघ का नेतृत्व दो नये व्यक्तियों—कोसीगिन और ब्रेज्नेव के हाथों में आया। इस समय बहुत से लोगों में यह धारणा हुई कि नया नेतृत्व स्तालिनवादी होगा और इसलिये सोवियत संघ की विदेश नीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आयेगा। लेकिन शीघ्र ही यह धारणा जानी रही क्योंकि सोवियत संघ के नये नेताओं ने घोषणा की कि वे भूतपूर्व प्रधान मंत्री कुश्नेव की विदेश नीति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं करेंगे। नये नेतृत्व की ओर से कहा गया कि सोवियत संघ शांतिपूर्ण सहव्यस्तित्व के सिद्धान्त में विश्वास करता रहेगा परमाणुबिक परीक्षण का बंद कराने तथा निःशस्त्रीकरण के लिये प्रयास करेगा शीत युद्ध में हीयता नहीं घाने देगा और संसार के अविश्वसित राज्यों की विकास-योजनाओं का उत्थन बनाने के लिये सहायता देता रहेगा।

हममें कोई संदेह नहीं कि पिछले दो वर्षों में सोवियत विदेश नीति में कुश्नेववादी परम्परा का ही अक्षयत्वन किया है और शांतिपूर्ण सहव्यस्तित्व की सम्पादनार्थों का पुनर्पिता अधिक महत्त्व बनाया है। संयुक्त राज्य अमरीका के बारे में रूस के नये माध्यविधाताओं का विश्वास है कि उससे उन्हें कोई तात्कालिक सैनिक या राजनीतिक सतरा नहीं है। पश्चिमी यूरोप में यद्यपि विश्वास की स्वतन्त्र नीति वागिगटन की प्रयुना के विरोधी

घोर माटा संवि-समझ में बरार बामन बासी है परन्तु साविपठ सप को प्रार्थना है कि यह उसके लिये महान् मकट बनन बाधे बामनो क पुन शस्त्री करस को प्रोत्साहित करने बासी होगी ।²

युष्नेष के बाब की सोविपठ बिदेस भीति में पश्चिम के प्रति किरी बिषय परिकरन का उचित नही मिला है । युष्नेष कालीन माभाषी की कूटनीति बासी है । मरदुबर १९९६ म सोविपठ बिदेस मकी प्रोमिको ने धमरीकन राष्ट्रपति से मुमाकाठ कर नि मस्त्रीकरण और बिमतनाम क प्रसू पर बातचीत की यद्यपि उनमें किरी प्रकार का मरकप प्रकट नही हो पाया । धमरीकन राष्ट्रपति बॉनसन द्वारा सोविपठ प्रबान मन्त्री कासीगिन को धपन देस घाने का निमन्त्रण बिवा गया और यह भी उचित किया गया कि बधने में यह कस की माभा के निमन्त्रण का स्वागत करेगे । सीमाग्यबरा बिषय के दो महा शक्तिवासी राष्ट्रों क सर्वोच्च नेताओं का सिद्धर सम्मेलन जून १९९७ में सम्भव हो सका । जून १९९७ में हुए मरद-इबरायम सवर्ष के पत्रस्वकप बल्पन हुए पश्चिमी एशियायी मकट पर संयुक्त राष्ट्र महासभा का दो अधिवेशन जून १९९७ में हुआ उनमें माय लेने के लिये सोविपठ प्रबानमन्त्री कोमीगिन स्वय उपस्थित हुए । प्रारम्भ म ऐसा प्रतीत हुआ कि घानो बिनी स्वाहित होने के बाबजूब बॉनसन तथा कोमीगिन में सु काई भी शिलर बाती के लिये बल्पुकता नही बिधाना बाहूता था । किन्तु बाब में धपानक ही ग्लासबरो में दोनों नेताओं म पष्टो एकजुट म मन्त्रना की और फिर धपने परामर्श हाताघो ठ साब उपयोगी बातचीत धपने बिन रबिघार २३ जून १९९७) भी बामू रखी । बिमतनाम और पश्चिमी एशिया पर मुख्य रूप से बैचारिक भाषा-प्रदान हुआ तथा नि-मस्त्रीकरण और परमाणु शक्ति क बिस्तार क सवाम भी धपुने नही रहे । मुमाकाठ के बाद परमाणु मस्त्री के बिस्तार पर रोब लगाने के बारे में दोनों पक्षों की और से धनुकूम बाताबरण बन सफने की बात नही गई ।

सोविपठ कूटनीति की नवीन बिशाषे

दोनों नेताओं की पारस्परिक बाती और दोनों राष्ट्रों की एक दूसरे के प्रति मदद करतने की कूटनीति से बाहिरा ठौर पर सगता नही है कि घानु कि बिषय की रात्रनीति में सोविपठ कस और साम्यवादी चीन की पयेधा सोविपठ कस और संयुक्त राज्य धमरीका एक दूसरे के धपिठ नजरीद घाने लगे हैं तथा बिचार-बिनिमय द्वारा समरवाषी के हुन का प्रयास करने लये हैं । किन्तु यह स्थिति घाने कब तक बनी रहेगी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता क्योंकि क्रैमलिन में यूरोप के साम्यवादी देशों के प्रतिनिधियों की जून १९९७ में हुई बैठक में सोविपठ नेताओं की इस बात क लिय कट्ट घानोबनर की गई थी कि ने धमरीका और धनेक पश्चिमी राष्ट्रों

के प्रति उदार नीति अपना रहे हैं। इस सम्बन्ध में २ जुलाई, १९६७ के साप्ताहिक दिनमान में उल्लिखित शब्द इस प्रकार हैं—

“अमरीका से कुछ-कुछ बात कराने की आपकी नीति में लक्ष्यता की कल्पना को ही संसार से मिटा दिया है। यह आपकी नीति का ही नतीजा है कि एन्कूमा मुकाबलों और अब नासिर जैसे तीसरी दुनिया के नेताओं का प्रभाव कम हो गया। भारत पर अमरीकी शिकवा कम हो गई और अब या कम भारत निश्चय ही अमरीका गुट में बना जायेगा। आप ही की वजह से तीसरी दुनिया के नेता अमरीकी आर्थिक और राजनैतिक दबाव को राकम में घटायें रहे हैं—इन शब्दों में युगोस्लाविया के मार्शल टीटो के मसिन में सोवियत नेताओं का फटकार यह है सोवियत नेताओं को अपना ही घर में यह बात पड़ रही थी। यह सब के मसिन में यूरोप के कम्युनिस्ट देशों के प्रतिनिधियों की एक बैठक में हुआ जिसमें अल्बानिया की छोड़ यूरोप की कम्युनिस्ट विराधियों के सारे लोग मौजूद थे और टीटो ब्याचीमीर पोपोविच को साथ लेकर यह फटकार देने के लिये ही शायद के मसिन भाये थे। बैठक के अन्त में एक प्रस्ताव सामने आया जिस पर अल्बानिया ने दृढ़ता नहीं किये। इस प्रस्ताव में स्पष्ट यह भाव है कि अमरीका के खिलाफ सैन्य से सख्त रवैया अपना कर ही पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट गुट को मुक्ति दनाया जा सकता है।

स्पष्ट है कि सोवियत रुम पर साम्यवादी अगठ का यह दबाव बढ़ता जा रहा है कि वह समूह राज्य अमरीका के प्रति पुनः कठोर नीति अङ्गीकार करे। साम्यवादी चीन तो इस बात को लेकर रुम के प्रति पहले से ही आग जगल रहा है परन्तु सेव साम्यवादी राष्ट्र भी सोवियत कूटनीति की नई दिशाओं के लिये इच्छुक हैं।

अमरीका के साथ और भारत पाकिस्तान ईरान पश्चिमी जर्मनी विपत्तनाम आदि के साथ कुश्नेव के बाद से लेकर अब तक सोवियत रुम के सम्बन्धों पर यदि कुछ मिला कर दृष्टि डाली जाय तो वहाँ एक ओर अभी तक कुश्नेव वाली नीति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है वहाँ तीसरी ओर इस बात के भी संकेत हैं कि कठिन मामलों में सोवियत कूटनीति ने नई दिशाएँ अङ्गीकार की हैं। जर्मनी के प्रश्न पर यद्यपि रुस और अमरीका में मतभेद अपायपूर्व कायम है किन्तु के मसिन में साम्यवादी देशों के प्रतिनिधियों की जून १९६७ में हुई बैठक के बाद जारी की गई समूह विज्ञप्ति से इस बात की पुष्टि होती है कि सोवियत संघ पश्चिमी जर्मनी से अपने सम्बन्ध सुधारना चाहता है। पर इसके लिये उन्हें बड़ी होरायी गई है जर्मनी रत सोवियत संघ शुरू से ही पगाये हुए है। इनमें दो प्रमुख तर्कों में हैं कि पश्चिमी जर्मनी समूह जर्मनी का प्रतिनिधित्व करने का अपना दावा छोड़ दे और पूर्वी जर्मनी को अपनी माग्यता प्रदान करे। सोवियत रुम का कुछ इस प्रकार का विश्वास हो जाता है कि पश्चिमी जर्मनी में ऐसे तर्कों का विकास हो रहा है जो ठसही नीति में बुनियादी परिवर्तन ला सकते हैं

चीन साम्रियत रूप को इन तत्वों के विकसित होने में सहायक बनना चाहिये।

कुम्बेश्वर क पठन के बाद यद्यपि भारत के प्रति सोवियत मूस पहले ही के समान मैत्रीपूर्ण रहा है और उसने भारत की बीबी योजना में तृतीय योजना की धरोहरा सुपुत्री बायिक सहायता का प्रास्तावना दिया है और निमाई जैसा ही दूसरा इनात कारखाना बोकारो में कोमने का भी बचन दिया है तथापि कतिपय राजनीतिक क्षेत्रों में यह अनुभव किया जाने लगा है कि काश्मीर के प्रश्न पर सोवियत इस में धनस्य ही पाकिस्तान के पक्ष में कुछ मर्माई आई है। 1955 में भारत पर पाकिस्तान के धारक्रमण के समय संयुक्त राष्ट्र संघ में चीर उनके बाहर सोवियत रूस ने भारत तथा पाकिस्तान का समान स्तर पर माना चीर दोनों ही को युद्ध बन्दी व वार्ता द्वारा समझौता करने को कहा है। इसके उपरान्त उनसे अपनी भूमि पर दोनों देशों के नेताओं—भी हात्सी चीर धम्मूब—को धामन्त्रित कर बराबरी के स्तर पर वायव्य समझौता करवाया। कुछ राजनीतिक क्षेत्रों का मत है कि रूस के प्रधानमन्त्री क्रोसीगिन ने भारत को बहु समर्पन देने से इन्कार कर दिया जिसका प्रास्तावना कुम्बेश्वर ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान काश्मीर की भूमि पर गड़े होकर इन तत्वों व दिया था—“पाप इमें यहां बड़े होकर धाराज वीरिण हम धानकी परर का बड़े धार्ये।” सोवियत नेताओं का मन चीर मस्तिष्क भारत राष्ट्र के प्रति कितना निष्कपट, पदार चीर पहले ही के समान मैत्रीपूर्ण है इसे तो यदिय ही सिद्ध करेगा लेकिन यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तात्काल्य समझौता सोवियत कूटनीति की एक महान् विजय थी। मनी तक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में सोवियत संघ ने मध्यस्थ के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया था। लेकिन व। राष्ट्रों क बीच मध्यस्थ बन कर उनके आपसी झगड़ों को सुमझाने का प्रयास सोवियत संघ का एक नया शान्तिकारी कदम था। कुछ उदार राजनीतिक क्षेत्रों का कहना है कि भारत-पाक संघर्ष पर तात्काल्य में सोवियत कूटनीति ईमानदारी चीर निरासना की थी तथा उसने भारत को प्रमित नहीं होना चाहिए। सोवियत नेताओं की दिसी इच्छा थी चिर शत्रुओं को निष्क माने की थी। सोवियत म्यूर एजेन्सी 'टास' ने कहा भी था—“यह बात सत्री मनी भांति जानते हैं कि भारत चीर पाकिस्तान में शत्रुता का बीच उपनिवेशवाधियों द्वारा बोया गया है जो दोनों देशों की जनता को भांति चीर मैत्रीपूर्ण बाठाबरण में रूने देने के इच्छुक नहीं है।” यदि रूप पाकिस्तान के प्रति पहले ही क समान हवा उठता तो यह दोनों राज्यों को समझौते से यह बाण दिखाई पड़ती है कि सोवियत नीति का उद्देश्य पाकिस्तान के प्रति मित्रता को बढ़ाना है ता भारत के लिए तो यह एक नुम बात ही मफती है क्योंकि तब रूप इस बात में समर्प हो मफेगा कि यह पाक नेताओं के हृदय से भारत के प्रति वैमनस्य की बातों को निवारण है।

उपरोक्त प्रकार की धाना धारण ही मुनकारी व उल्लाहय हो मफत

है लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राजनीतिक क्षेत्र में बहुधा स्वाई मैत्री को कोई स्थान नहीं मिलता। पाकिस्तान की तरफ सोवियत नीति में मैत्रीपूर्ण रुख अपनाये जाने के मूस में यह उद्देश्य मिहित प्रतीत होता है कि पाकिस्तान को अपना मित्र बना कर वह उस पर चीन और अमरीका के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव पर प्रभावशाली रूप से प्रभुत्व लगा सकेगा। परन्तु रूस की यह नीति भारत के लिए हितकारी सिद्ध होगी और पाकिस्तान का भारत के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार के लिये बाध्य कर सकेगी, इसमें सन्देह है।

तामकंद समझौते के बाद से ही पाकिस्तान और रूस का सहयोग जिस ढंग से बढ़ा है वह भारत के लिए चिन्ताजनक है। सोवियत कूटनीति की यह नई दिशा भारत के हितों पर विपरीत प्रभाव डाल सकती है। ऐसे स्पष्ट संकेत मिले हैं कि सोवियत संघ न केवल पाकिस्तान को आर्थिक सहायता देने का इच्छुक है बल्कि अब वह उसे सैनिक सहायता देने को भी कुछ-कुछ महमत हो गया है। पाकिस्तान के विदेश मंत्री पीरजादा ने जून १९६७ में आ ६ दिन की सोवियत यात्रा की जो उस समय सुम्नबन सोवियत नेताओं द्वारा सैनिक सहायता का आश्वासन पाकिस्तान को दिया गया। इन दिवस में २ जुलाई १९६७ के साप्ताहिक दिनमान में प्रकाशित समाचार इस प्रकार है—

“जैसे पीरजादा ने सोवियत संघ से हथियार आदि लेने के बारे में संवाददाताओं के प्रश्नों को टाल दिया पर यह स्पष्ट संकेत मिल चुका है कि सोवियत संघ पाकिस्तान के हाथ कुछ आस बरस के ऐसे हथियार उसी आधार पर बेचने को तैयार है जिस आधार पर भारत को बच गये हैं। पाकिस्तान का एक सैनिक मिशन भी वायु सेनाध्यक्ष एयर मार्शल नूर खा के नेतृत्व में मास्को गया था और उसके सौदने के बाद यह संकेत मिला था कि पाकिस्तान रूस से हथियार खरीद रहा है। इन सब घटनाओं से स्पष्ट है कि सोवियत कूटनीति नई दिशा में सर रही है।”

ईरान के प्रति सोवियत नीति

जिस प्रकार सोवियत संघ द्वारा अमेरिका से सैनिक संधियों के टूट में बचे पाकिस्तान को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अगस्त १९६५ में आर्थिक सहायता कार्यक्रम प्रारम्भ किया उसी प्रकार अक्टूबर-नवम्बर १९६६ में पाकिस्तान की मारफन सेप्टो पीकट के एक अन्य सदस्य ईरान को भी अपनी ओर आकर्षित करने के लिए आर्थिक सहायता कार्यक्रम शुरू किया जिसके अन्तर्गत सोवियत संघ ने ईरान को २॥ कराड़ डाक्टर का वर्ज २॥ प्रतिशत व्याज पर १२ वर्षों के लिए दिया जो वहाँ एक इस्पात कारखाना की स्थापना में सहायक होगा। रूस द्वारा ईरान को यह सुविधा भी प्रदान की गई है कि वह रूस के बन्दरगाहों के मारफन मुरोप को माल निर्यात कर सकेगा। ईरान ने इसके बजट में अपने बंध से सोवियत संघ का एक सौ मारन देना स्वीकार किया है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह बात कही जा सकती है कि

यद्यपि मोरियन मंच की वर्तमान विदेश नीति विशेष के शासन काल की शान्तिपूर्ण सहस्रमिन्नत्व की नीति में विरहास रखती है तथापि उसका प्रयत्न पश्चिम के समर्थक राज्यों को अपनी घोर मिसान का है जिसके दो उदाहरण पाकिस्तान और ईरान के स्पष्ट ही हैं। मोरियन मंच ने ऐसा ही एक सफल प्रयास काम के सम्बन्ध में किया था। फ्रान्स ने उत्तरी एटलांटिक संधि (नाटो) में अपने को प्रसंग करने की घोषणा करके पश्चिमी युट में एक सर्वकर दरार डाल दी है और उसकी यह नीति मोरियन मंच के हित के अनुकूल है।

वियतनाम के सम्बन्ध में पहले सोवियत नीति प्रायः नटस्पृहा की थी क्योंकि १९६२ के बाद से ही विशेष ने वियतनाम के प्रान पर दिलचस्पी लेना बंद कर दिया था हालांकि वह वियतनाम का समर्थक और अमेरिकन हस्तक्षेप का विरोधी था। परन्तु १९६४ से अमेरिका द्वारा वियतनाम में नूतने सैनिक हस्तक्षेप के बड़े जाने से मोरियन मंच वियतनाम के प्रति अपनी नीति में पूरी तरह सक्रिय हो उठा। जनवरी १९६२ में मोरियन प्रयास मंच की कोसोवित्त स्वयं हगरी गया। वृ कि उन्ही दिनों समूह राज्य अमेरिका द्वारा उत्तरी वियतनाम के सैनिक प्रहों पर बम बर्षा करने की घोषणा की गई थी सोवियत प्रयास मंच ने भी उत्तरी वियतनाम का प्राबन्धक सहायता देने की घोषणा की थी साथ ही कमी डेट विनाम तथा भूमि से आकाश में उड़के जाने वाले प्रक्षेपणास्त्र वियतनाम पहुंचाने लगे। इसी हाल ही में उत्तरी वियतनाम को सहायता देने के बारे में १३ अप्रैल १९६७ को एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं। यह स्पष्ट हो चुका है कि यदि वियतनाम में अमेरिकन सैनिक कार्यवाही बढ़ती रही और अमेरिका द्वारा बम बर्षा बन्द न की गई तो कमी पैनाओं के लिए यह बर्तमान हो जायगा कि वे वियतनाम में एक अत्यन्त बड़े रक्षक न बनाने में सफल हो जायेंगे। अमेरिका के मुकिया विनाम को इस बात की तबत तक चुकी है कि उस की सहायता में उत्तरी वियतनाम में अत्यन्त नरकों को बंधने वाले 'भूतल-ने भूतल प्रक्षेपणास्त्र' छोड़ने के बेम्ह बनाए जा रहे हैं। पर यह सगमय स्पष्ट हो चुका है कि उस उत्तरी वियतनाम को विनाम सैनिक सहायता देकर उस पर से चीन के प्रभाव का मिटाकर या कम करते स्वयं के प्रभाव को बढ़ाने का इच्छुक है।

अन्त में मोरियन विदेश नीति के मबिध्य के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि उसके बारे में न तो कोई सक्रियता की ही की जा सकती है और न कोई निश्चित अनुमान ही लगाया जा सकता है। सोवियत विदेश नीति के कुछ नीति हिन हैं जो संभवतः निम्नी समय में बंधे हुए नहीं हैं। सोवियत शासकानी एक इसके हविष्यार भी बरसते रहने हैं। इन प्रकार यहाँ की विदेश नीति में एक प्रकार का सर्वानागत रजता है और इसके व्यवहार पर कोई अमान कठोर व्याख्या नहीं की जा सकती। जॉन रेशेत्तर (John Reshetar) के शर्कों में जबकि हम उस सामाज्य रूपरेखा को जानते हैं तिममें कि सोवियत नेना व्यवहार करते हैं ताब ही उनके सामाज्य इतिहास एवं पूर्वो को भी जानते हैं ना भी हम निश्चित सक्रियताशी नहीं कर सकते कि एक निश्च

परिस्थिति में वे क्या करेंगे। हम केवल यह कह सकते हैं कि वे अपने मामा को अधिक से अधिक बताना चाहेंगे तथा उसके लिए वे कम से कम जोखिम (Risk) उठाना पसन्द करेंगे।² एलेक्स इन्केल्स (Alex Inkeles) का मत है कि सोवियत विदेश नीति में यदि कोई परिवर्तन आया तो वह तीन मुख्य स्रोतों से आ सकता है। पहली संभावना तो यह है कि सोवियत संघ में उत्तराधिकारी के संकट की समस्या कभी भी नहीं सुलभ्यगी जा सकती। जब भी कभी भीय पर शक्ति के लिए तुल्य रूप में संघर्ष होता है तो बाद में यह स्वाभाविक है कि नये शासक द्वारा पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाय। इस संघर्ष के परिणाम से भ्रष्टा की जाती है कि वह स्वयं को कुछ प्रजातन्त्र की विधा में बढाय। दूसरी संभावना यह है कि सोवियत अधिकारियों का साम्राज्य उखड़ जायगा। इसी में अति हाँ पयी यूमास्ताबिया निकल रहा है इस दृष्टि से यह आशा की जाती है कि सोवियत संघ प्रजातन्त्र की दिशा में जाने की अपेक्षा अधिकारिक संपूर्णतावाद की ओर अग्रसर होगा। तीसरी संभावना यह है कि सोवियत संघ अब प्रौद्योगिक दृष्टि से परिपक्व हो गया है अब वहाँ का सामाजिक ढाँचा तानाशाही में नहीं रह सकेगा सामाजिक जीवन में परिवर्तन होंगे जो सोवियत समाज के प्रजातन्त्रीकरण एवं सोवियत विदेश नीति में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करेंगे। यह कहा जाता है कि महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हो जाने पर भी स्वयं में तानाशाही बना हुई है इसका कारण यह है कि वहाँ के नेता वर्तमान परिस्थितियों से पुराने तरीकों का सामंजस्य कर लेते हैं। तो भी एक स्थिति ऐसी आ जायगी जबकि इस प्रकार का सामंजस्य पूरी तरह से असंभव बन जायगा। सोवियत संघ में एक ऐसा बर्ष भी है जो कि पश्चिमी प्रजातन्त्र का समर्थक है किन्तु यह बहुत घट्ट संख्या में है। इन तीनों ही तर्कों एवं संभावनाओं पर ही सोवियत संघ की विदेश नीति का मापी रूप अवलम्बित है।

2 I "While we know the general framework within which the Soviet leaders operate as well as their general attitudes and values, we can not predict with very much accuracy what they may do in a given situation except to say that they will attempt to maximise their gains with a minimum of risk."

—John S. Rishetar in the Foreign Policy of the Soviet Union by Rubinstein page 411

EXERCISES

1. Give a critical sketch of the foreign policy of Russia since 1945

१९४५ से रूस की विदेश नीति का आलोचनात्मक विवरण कीजिए ।

2. In what respects has the foreign policy of the U.S.S.R. modified in recent years? Give concrete instances to illustrate your answer

आधुनिक वर्षों में सोवियत रूस की विदेश नीति किस रूप में परिवर्तित हुई या सुधरी है? उत्तर की पुष्टि में ठाम उदाहरण कीजिये ।

3. Every manifestation of the Soviet policy during the post war period has made it clear that the Soviet Government of Stalin is pursuing precisely the same aims that were envisaged by Nicholas I and Alexander II." Do you agree? Give reasons in support of your answer

"युद्धोत्तर काल में सोवियत नीति की प्रत्येक घोषणा या उभय प्रत्येक प्रकाशन से यह स्पष्ट हो गया है कि स्टालिन की सोवियत सरकार उन्हीं उद्देश्यों का अनुसरण कर रही है जो निकोलस प्रथम और अलेक्जेंडर द्वितीय द्वारा अपनाये गये थे ।" क्या आप सहमत हैं? अपने पक्ष के तर्कों में कारण कीजिए ।

4. "Thus Soviet imperialism is a new typical imperialism—more insidious, more dynamic, and ultimately more successful. It is a non racial imperialism, which is oriented towards the creation of new governing classes to support its policy among the colonial peoples while retaining for its satraps an overall supervisory role" (Abdurakhman Avtorokhanov) Discuss.

"सोवियत साम्राज्यवाद साम्राज्यवाद का एक नया प्रकार है, यह अधिक चतुराई से तथा अधिक सफल है। यह एक अजातीय साम्राज्यवाद है जो कि एक ऐसे शासकीय वर्ग की स्थापना कर देता है जो उस उपनिवेश की जनता का सोवियत नीतियों के लिए समर्थन या सके धीरे-धीरे उसका निरीक्षण का कार्य संभाल लेता है।

(अदोरखानोव)

विवेचना कीजिए ।

- 5 'He (Stalin) ruled in the autocratic tradition of Peter the Great and westernized the economy of the Soviet Union. In the realm of Foreign Policy he followed in the foot steps of the most expansionist of czars. His successors have sought to maintain his tradition' (Alvin Z. Rubinstein) Discuss.

“उसने (स्टालिन ने) पीटर महान की स्वच्छाकारी परम्पराओं में शासन किया और सोवियत संघ की जर्प-व्यवस्था का पारिवर्तन करण कर दिया। विदेश नीति के क्षेत्र में उसने मुख्यतः विस्तारवादी चारों के पद-चिह्नों का अनुसरण किया। उसके उत्तराधिकारियों द्वारा उसकी परम्परा का निमाना पड़ेगा।” (आल्विन रुबिन्स्टीन) विवेचना कीजिए।

6. Give a brief account of the achievements and failures of post Stalin diplomacy of the Soviet Union.

सोवियत संघ की स्तालिनान्तर कूटनीति की सफलताओं एवं असफलताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

- 7 Discuss in brief Soviet Union's relations with other Communist countries of the World.

संसार के अन्य साम्यवादी देशों के साथ सोवियत संघ के सम्बन्धों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

8. Do you think that foreign policy of Soviet Union under Khrushchev was fundamentally different from that of his predecessor ?

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि सोवियत संघ की कुरुचेव के समय की विदेश नीति उसके पूर्ववर्ती नेता (स्टालिन) से मौलिक या आधारभूत रूप से भिन्न थी ?

- 9 What do you mean by the term "peaceful co-existence"? Discuss it in the context of the U S S R. diplomacy

“शांतिपूर्व सह अस्तित्व” से आपका क्या आशय है ? सोवियत कूटनीति के संदर्भ में इसकी विवेचना कीजिए।

- 10 "The conflict between the two monolithic giants of the

modern world is the dominant reality of the contemporary world politics." Discuss the main causes of the friction between United States of America and Union of Soviet Socialist Republics in the light of the above statement. How can this friction be made up ?

आधुनिक काल की दो भीषाकार शक्तियों के मध्य संघर्ष ही आधुनिक विश्व राजनीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है।" इस कथन के प्रकाश में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य पारस्परिक तनाव के कारणों की विवेचना करिये। इस तनाव को कैसे कम किया जा सकता है ?



भारत की विदेश नीति

(THE FOREIGN POLICY OF INDIA)

- १ भारत में स्वतन्त्रता का सूर्योदय
- २ स्वतन्त्रता से पूर्व तक के भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के विकास की कहानी
- ३ स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति
 - (i) स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति के आधार
 - (ii) भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व या शक्ति
 - (iii) भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ
(असंलग्नता की नीति शान्तिवाद की नीति सैन्यी नीति सेतुबन्ध की नीति साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद विरोधी नीति जाति एवं वर्ण भेद विरोधी नीति सहस्रव्यस्तित्व में विश्वास पंचशील के सिद्धान्त पंचशील का मूल्यांकन)
- ४ विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और समुक्त राष्ट्र संघ में भारत का योगदान
५. भारत-पाक सम्बन्ध
- ६ भारत-चीन सीमा विवाद और भारतीय विदेश नीति
- ७ भारत और समुक्त राज्य अमेरिका
८. भारत और सोवियत संघ
- ९ भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन
- १० भारतीय विदेश नीति और अखु-आपुओं के निर्माण का प्रश्न

'माघो के सिवायत अधिपान का नीतिक महत्व चीन की सीमाओं को सीधे
 भारत तक बढ़ाने और वहाँ तक ठीक सख्त पर ठीक रख बिमि के द्वारा
 प्रहार करने के लिए तमय सब रूने में निहित है जब तक कि भारत
 प्रवृत्ता से अपने को साम्यवादी गुट का तापी घोषित न कर दे।
 परन्तु माघो और स्वातिन के बीच से बचने के लिए उनके बरसों
 पर नुक जाना किसी भी प्रकार से एक व्यावृत्त इ गित (a
 sharp edge) नहीं है; यह एक ऐसा इ गित है जिसका ध- है
 हमारे संतुर्ल घावसों और महत्वाकांक्षाओं का विनाश। जो
 इ गित हमें बचा सकता है वह है—चीन के प्रति एक बुद्धि
 नीति का अनुसरण उसके दुन्द इरादों का प्रयास्यान
 करना (detour) बिना किसी प्रारम्भ के
 (Without reserailon) संयुक्त राज्य अमेरिका के
 साथ बढ़े होना और अपने साम्य सम्मान की रक्षा
 करने हुए प्रत्येक ऐसा प्रवृत्त करना जिससे हमारी
 ओर से अमेरिकन हुस्तलेप और भारत पर
 चीन की कुदृष्टि से अमेरिकन प्रतिरोध का
 मार्ग प्रसास्त हो सके। संनिक रूप से चीन
 हम से लगभग दस गुना परिहतामी है
 परन्तु प्रजातन्त्र की अमेरिकन रक्षा
 व्यक्त्या से शूनाठ (Spear-head)
 क रूप में भारत सरजता से
 माघो की सग्नसिद्धि घसो
 हरिणों को रोक सकता है।"

—वी अरविन्द घोष

यदि भारत में लोकतन्त्रीय शासन घसकन होता
 है तो सम्पूर्ण एशिया में सम्बुध स्वतन्त्र
 अयन की भीषण घरका लगेगा।
 बेरी सम्पति में साम्यवादियों द्वारा
 चीन कोने जाने से लगने वाले
 बरद की अयेला यह अधिद
 बकर होगा।"

—बेटर बोस

भारत में स्वतंत्रता का सुर्खौल

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में एक अग्रिमकारी ऐतिहासिक मोड़ आया जब २६ जनवरी, १९३० को कांग्रेस ने यह घोषणा कर दी कि—

— हमारा बूढ़ बिरबाम है कि स्वतंत्रता हम भारतवासियों का अनुपहरणीय अधिकार है — यदि कोई सरकार किसी देश की जनता का इन अधिकारों से वंचित करती है अथवा उन पर अत्याचार करती है तो जनता को अधिकार है कि उसे बदल दे या पदच्युत कर दे ।

इसके बाद ही एक तरह का भारत का स्वाधीनता सत्रय गिरलर उभरलर हुलर गलर धीर दूररी धीर विदेशी शक्ति भी अपने सीमित क्षेत्रों में भारत की स्वतंत्रता के प्रति सरलहनीय प्रयत्न करने लगी । द्वितीय महायुद्ध में अमेरिका के प्रबल होने पर वहाँ के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भारत की स्वतंत्रता का पूरा समर्थन लिया धीर ब्रिटिश प्रधानमन्त्री भी अन्तिम से अनेक बार इस बात का आग्रह किया कि ब्रिटिश शासन भारत समस्या का शीघ्रातिशीघ्र समाधान करे । २३ जुलाई, १९४२ की राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने एक सम्बोध में चीन के अन्तर्ल अ्यांगवाई सेक से यह अनुरोध किया कि भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए हुललसेन करें । १ अगस्त १९४२ को भी रूजवेल्ट ने अ्यांगवाई सेक को भेजे गये अपने उत्तर में लिखा—

‘यह उलमलनपूरुण समस्या समा के लिए एक दुर्लमलनपूरुण बात है अेग धीर आपका कार्य ब्रिटिश सरकार भी गोर्धी धीर उलर अनुयायियों को यह स्पल कर देता है कि हुमें ब्रिटिश सरकार अथवा कांग्रेस की निर्णय के लिए बाध्य करने का नैतिक अधिकार नहीं है अेकिन इसल मात्र ही हुमें दोनों पक्षों को यह भी स्पल कर देना चाहिए कि हम उनके मित्र हैं धीर यदि हमारी सहायता को अपेक्षा हुई तो हम सहर्ष उसके लिए प्रस्तुत हैं ।’

भारत की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में अमेरिकन शासन ने जो महरी रचि ली उलरका बिल्लुत वर्णन हम उन कागज पत्रों को पढ़ने से अली प्रकार मिलता है जो अमेरिकन विदेश-विभाग द्वारा १९९० में ‘Foreign Relations Series for the year 1942’ नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई है । अन्ततोगत्या युद्ध समाप्त होने के उपरान्त मोरी फिलिपी सरकार को तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों धीर दल की राजनीतिक स्थिति के दबाव से मात समुन्धर पार अपने देश लौट जाना पड़ा अथवि अलतै-अलतै उनलने अन्ध भारत को दो गण्डों (भारत धीर पाकिस्तान) में बाँट दिया । परिस्थितियों-अन भारतीय नेताओं ने भी इस विभाजन का स्वीकार कर लिया ।

भारत को दो नये राष्ट्रों (भारत धीर पाकिस्तान) में विभाजित कर अ अग १३ अगस्त १९४७ को भारत से बिना ही गये धीर हम प्रकार

महायुद्ध के बिस्फोट से कम्पित हो गया। भारत ने महायुद्ध में दन-धन व ब्रिटेन की पूरी सहायता की और इसी तरह की सहायता ब्रिटेन को धर्म-स्व-शासित उपनिवेशों से भी मिली। युद्ध के बाद भारत एक धर्म सदी उपनिवेश यह मांग करने लम कि ब्रिटिश विदेश-नीति के निर्धारण में भाग लेने का उन्हें अधिकार मिलना चाहिए। इस मांग पर विचार करने के लिए सन् १९१७ में पुनः एक धौपनिवेशिक सम्मेलन का आयोजन हुआ। भारत ने कुछ शर्तों में यह मांग प्रस्तुत की कि युद्ध काम में ब्रिटिश मामल के लिये किए गये उसके बलिदानों का संकलन हुए भारत के विचारों को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं रखा जाना चाहिए और सम्मेलन में भाग लेने का उसे अधिकार मिलना चाहिए। अस्त १९७ के इस धौपनिवेशिक सम्मेलन में भारत क शामिल होने की बात मान ली गई। इस तरह १९१७ में सबप्रथम भारत एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन का सदस्य बना। धौपनिवेशिक सम्मेलन का नाम बदल कर Imperial Conference रख दिया गया जो बाद में बसकर 'British Commonwealth' कहलाया।

१९१७ के "इम्पीरियल सम्मेलन" ने यह निश्चय किया कि युद्धांतर शांति सम्मेलन में भाग लेने के लिये इम्पीरियल सम्मेलन के सभी सदस्य राष्ट्रों को प्रवृत्त रिया जाना चाहिये। अमेरिका और फ्रांस ने इस निश्चय का विरोध किया और यह तक प्रस्तुत किया कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में शामिल होने के लिये एक राज्य को पूर्ण स्वतंत्र होना चाहिये। किन्तु कनाडा का आग्रह था कि यदि कम युद्ध प्रयास करने वाले बेनिद्रियम और मरिया घाति देश शांति सम्मेलन में प्रतिनिधित्व कर सकते हैं तो उनस अनेक गुणा अधिक बुद्ध प्रयास करने वाले कनाडा घास्टु लिया भारत घाति देशों को प्रतिनिधित्व न्याय संगत होगा। ब्रिटिश सरकार ने कनाडा क प्रस्ताव का समर्थन किया और तब १९१९ के वीरिस शांति सम्मेलन में धर्म-स्व-शासित ब्रिटिश उपनिवेशों के साथ भारत को भी भाग लेने का अधिकार मिल गया। भारत के लिये यह पहला मौका था कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में स्वतंत्र रूप से शामिल हुआ। यह कहना प्रतिपाद्योक्ति पूर्ण न होगा कि वीरिस का शांति सम्मेलन भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व क विकास में एक महत्वपूर्ण मील-स्तम्भ था।^१

वीरिस के शांति सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि ने बबल शामिल हुए बसिक उनक द्वारा स्वतंत्र रूप से बरसाय की संधि एबम् धर्म शांति संधियों पर इस्ताघर भी लिये गये। बुकि राष्ट्र संघ का विधान (Covenant of the League of Nations) बरसाय संधि एबम् धर्म शांति संधियों का अमिल अथवा, अत यह स्वामाबिक परिणाम निकला कि इन संधियों के

1 International Status of India Memorandum presented to the Indian Statutory Commission by the Indian office Report of the Indian Statutory Commission (1930) Vol V p. 1632 36.

हस्ताक्षरकर्ता हान के नाथ भारत स्वतः ही राष्ट्र संघ का मौलिक सदस्य हो गया।¹ यह अपने आप से संसदीयता की शक्ति थी कि राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों में केवल मात्र भारत ही एक ऐसा देश था जो पूर्ण स्वतन्त्र राज्य नहीं था। जो भी हो राष्ट्र संघ की सदस्यता के कारण यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत एक 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति' बन गया।

पुनोत्तर काल के प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत को मान लेने का अधिकार मिला और स्वतन्त्र रूप में अपने प्रत्येक सधि सम्झौतों पर हस्ताक्षर भी किया। सीमित अर्थ में विदेशों में भारत का कानूनी प्रतिनिधित्व होने लगा।²

स्पष्ट है कि बराबर होये हुए भी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत ने अपने एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व का विकास कर लिया और इसीलिए जब १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो स्वतन्त्रता प्राप्त करने से जो रूप दुर्लभ ही भारत ने मान लिया। सम्मेलन में जब मेजर सब के चार्टर पर स्वतन्त्र रूप से हस्ताक्षर किए और स्वयं को संघ का एक प्रारम्भिक सदस्य बना लिया।

स्वतन्त्र भारत की बहिर्देश नीति धारण (Foreign Policy of Free India Ideals)

भारत के स्वतन्त्र होने और उसके अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के विकसित होने की उपरान्त पृष्ठभूमि के उपरान्त यह हम स्वतन्त्र भारत की बहिर्देश-नीति पर विचार से चर्चा करेंगे। वास्तव में भारत के नागरिक हमारे के नाते हमारा यह महत्वपूर्ण कथन है कि हम अपने देश की बहिर्देश-नीति का पूर्ण प्रकार समझे और देखें कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हमारे देश का क्या स्थान है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लक्ष में अपने क्या महत्वपूर्ण भूमिका क्या की है क्या भूमिका वह वर्तमान में धरा कर रहा है और उसकी बहिर्देश नीति अविष्य में प्रभाव और युद्ध के समय ही अन्त मानवता को महारा देने में क्या एक महत्वपूर्ण होगी।

भारत की बहिर्देश नीति का समुचित और स्पष्ट अध्ययन करने के लिये प्रस्तुत अध्याय में हमारा यह होगा कि सर्वप्रथम हम भारत की बहिर्देश नीति के प्राचीन की अतिष्ठ उपरान्त प्रस्तुत करेंगे। उपरान्त भारत की बहिर्देश नीति के निर्माणक लक्ष्य पर विचार किया जाएगा और फिर हमारी विशेषताओं एक साथ ही विभिन्न देशों से इसके सम्बन्धों धारि पर प्रकाश डाला जाएगा।

1. D.H. Miller / The drafting of the covenant; Vol. I, page 164

2. J. C. Coyajec India and the League of Nations, p.p 23-26.

स्वतन्त्र भारत की विदेश-नीति के आधार

यद्यपि स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति का आरम्भ तो १५ अगस्त १९४७ से ही माना जा सकता है किन्तु इसकी आधारजिमा दश के स्वार्थान्तरण होने के बहुत पूर्व ही देश के कर्णधारों-विशेषतया श्री नेहरू द्वारा रनी जा चुका था। और इस नीति निर्धारण पर तत्कालीन राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। उदाहरणार्थ घातु-शक्ति का आधिपत्य हो चुका था। शीत-युद्ध का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था तथा विश्व की भाँति एवम् सुरक्षा के साथ साथ उसका अस्तित्व भी घटने में पड़ गया था। बाकी युद्ध को टालने के लिए संयुक्त राष्ट्र सभ का जन्म हो गया था। पश्चिमी और साम्यवादी शक्तों ही बढ़ावा की गतिविधियाँ बढ़ी गीतना से रूप बदल रहा था। एशिया और अफ्रीका महाद्वीप कण्ठ बदल रहा था। वहाँ सदियों से स्थिर दासता की बँधीरें एक के बाद एक टूटना प्रारम्भ हो चुकी थीं। अनेक कारणों से विश्व राजनीति में एशिया महाद्वीप का महत्व बढ़ गया था। इन सभी अन्तर्राष्ट्रीय विकासा के साथ-साथ देश के आन्तरिक रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन चिय जा रहे थे। अनेक मजधानिक एवम् राजनीतिक विकासों के साथ-साथ देश की अर्थ व्यवस्था तथा सामाजिक एव सांस्कृतिक जीवन में भी उल्लेखनीय क्रांतिकारी विकास हो रहे थे। इसी आन्तरिक एवम् बाह्य परिस्थितियों के नाते म भारतीय राजनीतिज्ञ और नेताओं ने इस की वैदेशिक-नीति के रूप को ढाला। उन्होंने समझ लिया कि पूँजीवादी व्यवस्था साम्यवादी किसी भी गुट को अपनाते हैं भारत अपनी स्वतन्त्रता की रक्षणार्थता में ही नैतिक शक्ति म परिणत हो जाएगा और सब प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा करने तथा भारत की करोड़ों जनता को आर्थिक युसामी म मुक्ति विमाने के भागीरूप प्रयासों को सफल बनाने के महती उद्देश्यों म बन्धित हो जाने का अंतरा पंदा हो जाएगा। सम्भवतः यही सब कुछ सोच कर भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के महान् सेनानी और भारत के नीति निर्माता स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अक्टूबर १९४९ में नई दिल्ली में घोषित एक प्रस सम्मेलन में स्वतन्त्र भारत की आधी वैदेशिक-नीति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि—

वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत एक स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटों की धींचतान से दूर रहते हुए समार के समस्त पराधान शक्तों की आधिपत्य का आधिकार प्रदान कराने तथा आनीय अहंभाव की भाँति का अहंतापूर्वक अभ्युत्थन करेगा। साथ ही यह समार के अग्य स्वतन्त्रता प्रेमी और आन्तप्रिय राष्ट्रों के साथ मित बर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सहकारिता के प्रसार के लिए भी निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा।

श्री नेहरू ने भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र सभ में पूर्ण सहयोग करने का आश्वासन दिया और अपनी नीति तथा हेतुओं के अनुसार विश्व भाँति के लिए मन्थिय रूप में कार्य करने हेतु भारत की सेवाएँ धरिय की। अगुनि स्पष्ट शर्तों में यह बता दिया कि संयुक्त राष्ट्र सभ में स्वतन्त्र भाग्य के प्रतिनिधि की गन्ध यह नीति रहेगी कि सभी आन्तर्वैश्विक तथा परापीन

सोनों का स्वतन्त्रता प्राप्त हो और अपने अधिकार का स्वयं निर्धारण करने का उन्हें पूरा अधिकार मिले।

स्वतन्त्र भारत की वैदेशिक-नीति की उपरोक्त स्वरूपा बानुत एक संक्षिप्ततम और स्पष्टतम व्याख्या की और आज भी भारत की आचारसूत्र वैदेशिक-नीति के यही मूल स्तम्भ हैं।

भारतीय राजनीति का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद धारि के उन्मूलन के पूर्ण पक्षधारी के तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के प्रत्येक सम्बन्ध प्रयत्न करने में विश्वास रखत हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटारे जाने की नीति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और राष्ट्रीय व राष्ट्रीय में परस्पर सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने चाहिए। इन सभी बातों को भारत के कार्य में इन द्वारा सन् १९४७ के अपने जयपुर अधिवेशन के प्रस्तावों में स्पष्ट कर दिया गया था। इनमें कहा गया था कि— 'ये विद्वान् विश्व शान्ति की बुद्धि राष्ट्रीय की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय धनमत्तता और साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए हैं। काय व कई पीढ़ियों से उपनिवेशवाद के विभिन्न रूपों में पीड़ित होने वाले एशिया और अफ्रीका के देशों की स्वतन्त्रता के लिये विशेष रूप से प्रयत्न हैं। विश्व धारि और सहयोग के कार्य को बढ़ाने के उद्देश्य से भारत एक राष्ट्र संघ में सम्मिलित हुआ है। भारत की वैदेशिक नीति का यह मूल्य होना चाहिए कि वह सभी देशों के मित्रतापूर्ण और सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करे तथा विश्व शान्ति की सफ़लता के लिये भारत को प्रतिबन्धी मुद्दों में विचार करने वाले देशों के साथ सैनिक एवं इसी प्रकार के अन्य समझौते करने में सहायता रहे।'

जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो उसकी वैदेशिक नीति की इन आचारसूत्र बातों को संविधान की धारा २१ में समाविष्ट कर दिया गया। संविधान की इस धारा में भारत की वैदेशिक नीति की इस प्रकार बताया गया है—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिये प्रत्येक सम्बन्ध प्रयत्न करना।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता (Arbitration) द्वारा निपटारे जाने की नीति को प्रत्येक सम्बन्ध तरीके से प्रोत्साहन देना।

(३) सभी राष्ट्रों और राष्ट्रों के मध्य परस्पर सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय बानुत के प्रति और विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में अशान्ति के घातक के प्रति धारणा बनावे रखना।

भारत की विदेश नीति के बारे में यह कहा जाय कि यह एक सीमा तक १९वीं सदी के उत्तरार्ध में स्थापित संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रारम्भिक नीति के पैर साठी है ही यद्यपि न होया। अमेरिका की प्रारम्भिक

नीति को स्पष्ट करते हुए १७ सितम्बर १७७६ का जार्ज वाशिंगटन ने कहा था कि—

“विदेशी राष्ट्रों के सम्बन्ध हमारे लिये प्राथम्य का महान नियम यह है कि अपने व्यापारिक सम्बन्धों का बढ़ाते हुए हम उनसे जहाँ तक सम्भव हो कम से कम राजनीतिक सम्बन्ध रखें। हमारी मूल्य नीति यह है कि विदेशी विश्व के किसी भी भाग से स्थायी मैत्री संबंधों में बंधे रहें।”

अमेरिका की उपरोक्त प्रारम्भिक नीति के समान ही उदाहरित स्वतन्त्र भारत भी असम्बन्धता (Non-alignment) की नीति पर प्राथम्य दे रहा है। इस बात का समर्थन में १७ मार्च १९५० का मोरमना में बड़े गव्य भारतीय प्रजासमन्धी भी नेहरू के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

१९५० वर्ष पहिले पश्चिमी जगत् नव प्रकार के साम्राज्यवादी घोर आक्रान्तिगुप्तों के फासु विघटित हो गइल था। ब्रिटिश साम्राज्य में पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र प्रायः करीब ५० संयुक्त राज्य अमेरिकी स्वाभाविक रूप में परिवर्तनों में प्रभावित हुआ। फिर भी विदेशी देशों के साथ सहानुभूति होने पर भी “मन पुणे” की अराजक परिस्थिति में लिप्त होने से घबरेल का बचाये गइल बर्षों में उमर-उमर के समय यही स्वाभाविक था। यह उदाहरण यद्यपि प्रायः ही परिस्थितियाँ में सबका उपयुक्त नहीं है किन्तु फिर भी इसका बड़ा महत्त्व है। अर्थात् स्वतन्त्रता और स्वाधीनता प्राप्त होने के लिये अनुसरण की जान वाली यही स्वाभाविक नीति है।

आज की वैश्विक नीति के घादों के उपरोक्त व्याख्यात्मक बरण के बाद यदि निष्कर्ष रूप में हम इन्हें प्रकट करना चाहें तो कह सकते हैं कि भारतीय वैश्विक नीति का प्रमुख घाद निम्नलिखित है—

१ अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के प्रति आस्था।

२ अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान में विश्वास और उसको हर सम्भव उपायों में बनाय रचना।

३ सभी राष्ट्रों में पारस्परिक मैत्री सम्बन्धों की स्थापना करना।

४ नैतिक गुणवत्तियों और नैतिक सम्बन्धों के अपने घादों में प्रकट रचना।

५ नैतिक गुणवत्तियों और नैतिक संगठनों या बड़े-बड़ियों को निष्पत्ति बनाना।

६ उपनिवेशवाद का चाहे वह कहीं भी किसी भी रूप में हो उन्निवेशवाद का विनाश करना।

७ प्रत्येक प्रकार की साम्राज्यवादी भावना को निष्पत्ति करना।

८ सन-सनों की अनन्तता की सक्रिय महापता करना जो आनिवेशवाद आतिवाद और साम्राज्यवाद से पीड़ित था।

(ii) भारत का अधिकार विदेशी व्यापार हिन्द महासागर के ही द्वारा होगा है। यदि इस समुद्र पर भारत के किसी विरोधी राज्य का नियंत्रण स्थापित हो जाए तो वह इस व्यापारिक मार्ग को बन्द करके भारत का सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को तहस नहस कर सकता है। अतः भारत की विदेश नीति के लिए यह परमावश्यक है कि हिन्द महासागर पर प्रमुख रखने वाली शक्ति के साथ उसके सम्बन्ध मित्रतापूर्ण हों। महा की शक्ति मात्र ही अट ब्रिटेन की शक्ति का ही साम्राज्य हिन्द महासागर पर कायम है। अतः चाहे ब्रिटिश युग में अंग्रेजों के साथ हमारा कितना ही समय और विरोध बना हो लेकिन भारत के हित में यही उचित है कि वह तब तक ब्रिटेन से अपने सम्बन्धों में बिगाड़ न लाने के प्रति सावधान रहे जब तक कि उसकी शक्ति ब्रिटिश शक्ति के समकक्ष नहीं हो जाती। भारत के ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में बने रहने का यही एक मुख्य कारण है।

(iii) हिन्द महासागर का नीमग महत्व रक्षात्मक है। इस विशाल समुद्र तट की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत प्रबल शक्ति का विकास करे। भारत के लिए यह एक मूल्यपूर्ण नीति होगी कि वह शक्ति की उपस्था करते हुए पूरी तरह भविष्यवासी स्पष्ट नेता पर निर्भर रहे।

स्थलीय सीमा—भारत का ८२०० मील सम्बन्धीय सीमाना दा तरफ से पाकिस्तान चीन नेपाल अफगानिस्तान और बर्मा के साथ मिला हुआ है। उत्तरी काश्मीर अफगानिस्तान से जुड़ा हुआ है और सोवियत संघ की सीमाओं से वह कुछ ही मील दूर है। भारत के उत्तर में सहार की सर्वोच्च शिखर अत्यन्त दुर्गम हिमालय की पर्वत श्रृंखलाएँ हैं जो १५०० मील लम्बी हैं। यद्यपि यह दूरगामी पर्वतमाला अतीत में भारत की सुरक्षा के लिए समय-समय पर शक्ति का काम करती रही है किन्तु वायुयानों और प्रक्षेपणास्त्रों आदि के इस युग में यह सोचना कि हिमालय देश को उत्तर की दिशा से होने वाले आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान कर सकेगा सर्वथा अतिमूल्य है। चीन का आक्रमण इस निम्न में भारत की आर्थिक हानि के लिए पर्याप्त है। इन परिस्थितियों में रणनीतिक नीति की दृष्टि से भारत के लिए यह स्पष्ट उचित है कि वह दक्षिण में समुद्री सीमा सुरक्षित बनाये रखने के लिए ब्रिटेन से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उत्तर में अपनी स्थिति सुरक्षित करने के लिए साम्प्रदायी देशों से अनुकूल सम्बन्ध रखने को चेष्टा करे। यही कारण है कि भारत की विदेश नीति का यह एक प्रमुख सत्य है कि वह पूर्व और पश्चिम के समय में दोनों ही दिशाओं में संतुलित रचना अपना समझता है। भारत की विदेश नीति-निर्धारण यह बात अती प्रकार समझ चुके हैं कि किसी एक पक्ष के साथ मैत्रीक सम्बन्धों में सम्मिलित होना दूसरे पक्ष को घट कराना और अतिसंरक्षण इस पक्ष को सीमा का अक्षय बनाना होगा। बर्मा नेपाल चीन अफगानिस्तान सोवियत संघ और पाकिस्तान आदि के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को हमें इसी आधार पर समझना चाहिए।

भारत की रणनीतिक नीति में भौतिक परिस्थितियों की दृष्टि

महत्वपूर्ण भूमिका है—इसका एक स्पष्ट घामास हम १८ मार्च १९६० को भारतीय मसह में कहे गये प्रबानम भी भी मैत्रक के इन शब्दों से हावा है 'हम एशिया के सामरिक दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण भूमि हिन्द महासागर क मध्य है। अतीत एवं वर्तमान कासो में हमारा सम्बन्ध पश्चिमी एशिया दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा सुदूरपूर्वी एशिया में साथ रहे हैं। यदि हम चाहे तो भी इन तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते।'^१

डा० जे० सी० कुन्द्रा (Dr J. C. Kundra) ने लिखा है—

'भारत की भौगोलिक स्थिति से जो महत्वपूर्ण तथ्य निकलता है वह यह है कि पश्चिमी बृट क मुख्य साम्प्रदायों की उपेक्षा वह साम्प्रदायी संसार व्यवस्था उनके मुख्य गाम्भारों (बस और चीन) के अधिक निकट है। परिणाम स्वरूप करने पड़ोसियों के साथ रहने में ठीक तरीके की जोड़ करना उनके लिए उनकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है या उनसे दूरी पर स्थित है। यह बात बखरूप दूसरी है कि उने यह विश्वास हो जाए कि उनके पड़ोसी उन पर आक्रमण करने की इच्छा रखते हैं। दूसरी तरफ भारत इस तथ्य की भी अज्ञेयता नहीं कर सकता कि पश्चिमी बृट की नी-सेना हिन्द महासागर एवं समार में अधिकतम नमुदों पर हावी है। यदि भारत दोनों मुदों के बीच तटस्थता की नीति का अनुसरण करना चाहता है तो एसा करने में उनकी इच्छा सम्भवत यह है कि निष्ठाटकारी सम्भावना के बन्धों को घटा-नाम्न घटाने कीमाओं से दूर रखा जाए। स्पष्टतः ऐसी नीति उनके राष्ट्रीय हितों स्वाधीनता और सम्प्रभुता से तब ही मैत्र का सकती है जब घने यह विश्वास हो कि दोनों मुदों में से उने किसी से भी अतरा नहीं है।'^२

1 "We are in a strategic part of Asia set in the centre of the Indian Ocean with intimate past and present connections with Western Asia, South East Asia and Far Eastern Asia. Even if we could, we could not want to ignore this fact.

—Jawahar Lal Nehru.

2. "The important fact that emerges from the geographical position of India is that she is much more close to the communist world or to put it more precisely to the principal partners in the communist block [China and Russia] than she is the corresponding principals in the Western block. The necessity of India therefore to find a *modus vivendi* with her neighbours is greater than those who are at a distance unless, of course she is convinced that the neighbours have aggressive intentions against her. On the other hand India cannot ignore the fact that the natives of the Western block dominate the Indian Ocean and most of the water surface of the world. In India chooses to pursue a policy of neutrality between the two blocks her desire would, probably be to keep the centres of

गार्डर विन्ट (Guy Wint) ने सन् १९४७ में यह सिद्ध किया था कि ब्रिटिश सत्ता के समाप्त होने पर भी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भारत की विदेश नीति में कोई अन्तर नहीं आयेगा किन्तु भौगोलिक परिस्थितियों के सुनिश्चित एवं असाध्य यम रहने के कारण इसके बाह्यार्थिक हित (Essential interests) बैसे हो बने रहेंगे। ये हित मुख्यतः हैं—(i) भारत पर अजिन साम्राज्यों एवं अन्य दमन से आक्रमण हो सकता है उन सबको भाग्य टटस्यता या मित्रता। ये देश ईरान ईराक अफगानिस्तान चीन लद्दाख मलाया हिन्द चीन स्याम इन्डो इण्डोनेशिया आदि हैं। (ii) मध्य पूर्व जर्माइन्ड तथा ईस्ट इण्डोनेशिया से तेल की प्राप्ति (iii) भारत के सीमावर्ती राज्यों में बसने वाले भारतीयों का कल्याण और भारतीय व्यापार की वृद्धि (iv) हिन्द महासागर में भारत की सुरक्षा और व्यापार के आचारभूत समुद्रों तथा हवाई मार्गों की सुरक्षा एवं (v) बाह्य जगत में और सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न राष्ट्रों के मामलों में अपने अतीत के इतिहास और संस्कृति के अनुरूप महत्वपूर्ण भाग लेने की आकांक्षा।”

(२) आर्थिक और सैनिक तत्त्व
(Economic and Military factors)

विदेश नीति के निर्माण में आर्थिक तत्त्वों का भी हाथ होता है। भारत की विदेश नीति के निर्माण में आर्थिक तत्त्वों का विशेष रूप से स्थान है जो इन तत्त्वों से प्रकट होता है—

(1) आर्थिक दृष्टि से भारत का अधिकांश व्यापार पारिचात्य देशों के साथ ही जाने में समुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन तथा राष्ट्र मण्डल के अन्य देश प्रमुख हैं। कुसुमबन्ध भारत आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ देश है। यह उसे अपनी उन्नति के लिए अधिकांशतः पारिचात्य पूंजीवादी देशों की आर्थिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। तात्कालिक के मामले में भारत की दमन और भी बुरी है। तात्कालिकों की प्राप्ति हेतु वह बिहनों पर मुख्यतः समुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि हमारी विदेश नीति में पश्चिमी देशों के प्रति प्रसन्न और प्रत्यक्ष सहानुभूति हो। परन्तु इस सहानुभूति के होते हुए भी भारत में पश्चिमी देशों का पूर्णतः पिछलम्पु होने की नीति नहीं अपनाई और न ही पश्चिम की पूंजीवादी व्यवस्था को पूर्णतः स्वीकार किया है। भारत में सोवियत रूस द्वारा आदिष्ट नियोजित आर्थिक विकास (Planned Economic development) के कार्यक्रम को लागू किया है और समाजवादी ढाँचे का समाज स्थापित करने

explosive possibilities as distant from her frontiers as possible. Evidently such a policy could be consistent with her national interests, independence and sovereignty only if she believed that she was not threatened by one or the other blocks.”

—Dr T C. Kundra India Foreign Policy 1947

का प्रतिष्ठा की है। फलस्वरूप समाजवादी श्रेणियों के साथ भी हमारे सम्बन्धों का घर्षण होना तर्कसङ्गत प्रतीत होता है। वास्तव में यह भी सत्य है कि भारत के औद्योगिक विकास के लिए दोनों ही गुटों से प्राथमिक एवं तकनीकी सहायता मिल रही है। कोई भी गुट यह नहीं चाहता कि भारत दूसरे गुट के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। अतः हमारे देश के लिए यह एक स्वाभाविक और अत्यावश्यक नीति है कि वह गुटबन्दी से घसम रह कर अपनी सक्रिय तटस्थता का नीति के आधार पर दोनों ही गुटों का मित्र बना रहना चाहता है।

(ii) भारत औद्योगिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ देश है और इसी लिए अपने विकास हेतु नाति की प्राथमिक समझता है। १९१६ के स्वैज संकट के छोटे से कुछ न हमारे व्यापार को बहुत बड़ी हानि पहुंचाई और बाद में साम्यवादी चीन के पाकिस्तान के प्राक्रमणों से तो हमारी संपूर्ण धर्म-अर्थव्यवस्था को ही झुकसा दिया। इन बातों की ध्यान में रखते हुए भारत के लिए यह पर्यावश्यक है कि वह शान्तिपूर्ण शैक्षिक नीति अपनाये। खोमली विद्रोहपनदी पद्धति में एक बार यह ठीक ही कहा था कि भारत के लिये कुछ साम्यवाद से भी अधिक बड़ा संकट है।

इन तथ्यों स्पष्ट है कि भारत प्रायः या तटस्थता प्रकृत्य अंतर्गतता और नाति मित्रता की शैक्षिक नीति अपनाये हुए है। उसके मूल में प्राथमिक तत्वों में एक विशेष भूमिका प्रकाश की है।

अन्य दृष्टि से भारत विद्यमान महत्वपूर्ण राष्ट्र नहीं है क्योंकि वह अपने देश के लिए अनेक दृष्टियों से विदेशों पर निर्भर है। अपनी तक हमारे अपने देश में विभिन्न युद्ध सामग्री और वायुयानों आदि का निर्माण करने में धारम निष्पत्ता नहीं आ पाई है। और इसीलिए इनकी प्राप्ति हेतु हमें पश्चिमी देशों से और साम्यवादी राष्ट्रों का मुह टाकना पड़ता है। प्राथमिक राष्ट्रों के तटस्थता का सामना करने में तो हम बिल्कुल ही असमर्थ हैं और इसीलिए विदेशों द्वारा प्राथमिक प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। हमारी धीरे धीरे पूर्ण सैनिक स्थिति हमें इस बात के लिए बाध्य करती है कि विश्व की सभी महत्वपूर्ण शक्तियों के साथ हर कीमत पर मित्रतापूर्ण वातावरण बनाये रखें।

(१) ऐतिहासिक परम्परायें (Historical Traditions)

विदेश नीति के निर्धारण में ऐतिहासिक परम्परायाँ का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जवाहरलाल नेहरू भारत के अतीत काशीन इतिहास का अध्ययन करने में इन बातों का अती प्रभाव पड़ा था। उनका मत था कि भारत में बिना भी देश को पराजित करके और उस पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व साधने के अर्थ से कभी प्राक्रमण नहीं किया। विदेशों में अती भी उतने विजय

पाई वह मुख्यतः सांस्कृतिक क्षेत्र में थी और उसकी प्राप्ति का साधन पशु-बन्ध नहीं था। भारत के लोग ने तो पशु-बन्ध और शस्त्र-बन्ध को तिलांजलि देकर भगवान बुद्ध के उपदेश और शान्तिपूर्व मित्रान्त का प्रचार बिना मर में करवाया। भारत की संस्कृति व परम्परा मदैव ही जाति की सम्पर्क रही है और आज के भारत की विदेश नीति अपनी इसी परम्परा को कायम रखे हुए है। ब्रिटिश शासन कास में भारत की वैदेशिक नीति का निर्धारण ब्रिटेन की पूरी सरकार के हाथ में रहा तथापि भारत के स्वातंत्र्य संग्राम के संतानियों ने अपने देश की ऐतिहासिक परम्पराओं का परित्याग नहीं किया अपितु समस्त देशों के साथ और विशेष कर अपने पड़ोसियों के साथ सहयोग करने की औपनिवेशिक एजम् पौद्धित जन गण के स्वाधीनता संघर्षों का समर्थन करने की आनीय पसपाठ की नीति का विरोध करने की विदेशों के कूटनीतिक प्रयत्नों से अपने को दूर रखने का प्रयास करने की और साम्राज्यवाद के प्रत्येक स्वरूप का विरोध करते हुए जाति को बन पशु बाने की नीति का समर्थन करने के अपने ऐतिहासिक गौरव को बढ़ाए रखा। इसी मित्रान्तों के अनुरूप राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने विभिन्न प्रस्तावों में आभ्रमणकारियों की सबसे तीव्र आलोचना की। जब बंगाल में चीन पर हमला किया तो हमने न बचता इस आक्रमण का मौलिक विरोध किया अपितु चीन के प्रति अपनी सहानुभूति और मददायता प्रकट करने के लिए एक डाक्टरी मिशन भी भेजा। जब स्पेन के फ्रांसिस्ट और नाजी शक्तियों की सहायता से जनरल फ्रान्को की पशुतात्मक सरकार के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया तो कांग्रेस ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि भारतीय जनमत की सहानुभूति स्पेनिश गणतन्त्र के साथ है। इसी तरह जब स्पेन में फ्रांसिस्ट शक्तियों ने हिटलर की दास्यी भुज को जन्त करने के लिए बेकोस्मोवाकिया की स्वतन्त्रता की बलि ब दी तो राष्ट्रीय कांग्रेस ने फरवरी १९३८ के अपने एक प्रस्ताव में यह बतना के प्रति इन सहानुभूति पूर्ण शब्दों को व्यक्त किया—“कार्यकारिणी बेकोस्मोवाकिया की बहादुर बतना के अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखने के संघर्ष के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। भारत स्वयं संसार की एक महानतम साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध युद्ध रत है। यह युद्ध अहिंसात्मक होते हुए भी बमामान है। इसलिए बेकोस्मोवाकिया की स्वतन्त्रता की रक्षा में भारत की दिसखम्पी होना अत्यन्त स्वाभाविक है।” बन्तुतः भारतीय नेताओं ने साम्राज्यवाद परासिस्टवाद और शीनिवाद के प्रति कभी अपनी प्रेम व समर्थन प्रदर्शित नहीं किया। भारत की बहसिक नीति-सम्बन्धी पृष्ठभूमि मरबस साम्राज्यवाद और शीनिवाद-विरोधी रही है। अपनी में भी भारत ने हमला परराष्ट्रीय जाति एवं सहयोग बनाये रखने पर बल दिया और बममान में भी यही उमकी वैदेशिक नीति का मूल मन्त्र है। स्पष्ट है कि भारत की ऐतिहासिक परम्परा उसकी विदेश-नीति का एक प्रमुख निर्धारक तत्व रही है।

हमारी विदेश नीति के निर्धारण में इतिहास का मुख्य विमल अणिक है हमला उदाहरण ब्रिटेन और भारत के पण्डित सम्बन्धी ने कभी प्रार गप्ट होता है। अपनी में ब्रिटेन के साथ हमारा शीनों बनों का प्रयास

सम्बन्ध रहा बत यह स्वाभाविक है कि उसका विच्छेद सम्भवा ये न हो सकना। यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हमारी प्रशासनिक, सामाजिक, सांख्यिक, औद्योगिक, विज्ञान सम्बन्धी नीतिक एवं राजनीतिक संस्कारों में भी यथावत् ब्रिटिश पद्धति पर विद्यमान है। ब्रिटेन के साथ हमारे ऐतिहासिक सम्बन्धों का ही यह परिणाम है कि स्वतन्त्रता के बाद हमने राष्ट्र मंडल में रहना स्वीकार करके ब्रिटेन के प्रति अपनी मंत्री प्रवृत्ति की है। अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं व प्रतीक के सम्बन्धों में प्रभावित हो कर ही भारत ने साम्यवादी चीन के साथ भी अपनी घोर से अन्त सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया था क्योंकि चीन में साम्यवाद, न्यायता व समय हमारे राष्ट्रकुल सरदार पाकिस्तान का यह मत था कि भारत और चीन का हवाई बंधों का सम्पर्क एशिया के इतिहास के प्रमुख तत्वों में से एक है। वर इस्लाम एशिया को प्राथमिक एवं सांस्कृतिक एकता भारत तथा चीन के इसी पुराने सम्पर्क द्वारा प्राप्त हुई थी। समय एक हजार वर्ष तक किसी भी प्रकार के सम्बन्धों के न होने के बावजूद यह बहु एशिया के इतिहास का एक मुख्य तत्व है। यह एक दुर्भाग्य की ही बात है कि चीन ने अपनी परम्परा की सर्वथा तिलांजलि देते हुए विश्वासघात और हिंसा का माय बननाया है और इस तरह भारत को इस बात के निराश्रय पर लिया है कि बहु चीन के प्रति 'रिड का बवाब ईट और पत्थर का बवाब परचर' से देश की नीति अपनाय। कि भी भारत जानि था हमारी ही चीन के साथ कोई भी सम्मानजनक सम्झौता करने को उद्योग है।

यहाँ तक इण्डोनेशिया नेताम घाटि के साथ भी अतीत काल से ही हमारे सांख्यिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं और इसीलिए उनके प्रति भारत के हृदय में आज भी पर्याप्त महाकुवृत्ति एवं भेद-भाव है। पाकिस्तान द्वारा पाकिस्तान के प्रति निरन्तर अभिभवापूर्ण रुख अपनाये जाने के कारण भी के ऐतिहासिक घटनाएँ हैं जिनमें पाकिस्तान का अन्त हुआ है कि भी भारत ने अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुकूल पाकिस्तान के प्रति तबसे एक अन्धे पड़ोसी की नीति पर चलने की ईमानदारी से देखा की है।

दुसरे इतिहास में भारत की अर्थियों की परतन्त्रता का अनुभव कराया है। इसीलिए स्वतन्त्र भारत की वैदेशिक नीति भी साम्राज्यवाद एवं अतिवादावाद विरोधी है। अपने ऐतिहासिक अनुभव के कारण भारत पराधीन देशों की स्वतन्त्रता का और उनकी सामर्थ्य महायुगा का मन्त्रा जानी है।

(४) वैचारिक तत्व (Ideological factors)

विचारक एवं सामाजिक आधार की किसी देश की विदेश नीति के निर्धारण में अत्यन्तनीय भूमिका निभाते हैं। राष्ट्रीय विदेश नीति का एक बड़ा आधार प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक की विभिन्न विचारणाएँ एवं सांख्यिक विचार हैं।

(क) प्रायः कहा जाता है कि भारतीय वैदिक नीति का निर्धारण म भारत के परम्परागत दशन का प्रभाव स्पष्ट रहा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारतीय दशन में महिष्मत्स्य उदाहरण और ग्रहणा पर सख्त बल दिया गया है और यही विचारधारा भारत का प्रसंगगतता तथा नातिव द की नीति का मूल आधार है। महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक समस्त प्रत्येक भारतीय दशनिक ने यही शिक्षा ली है कि हमें अतिगो (Extremes) से बच कर मध्यम प्रतिपदा (Middleway) का अनुसरण करना चाहिये। मानवीयवाद भारतीय दर्शन का सबियों से मूल तत्व रहा है। भारतीय संस्कृति की ता यह धारणात्मक है। यत यदि आधुनिक भारत की परराष्ट्र नीति का प्रमुख सिद्धांत यह है कि वह साम्यवादी और वैर साम्यवादी देशों के साथ संधी बनाये रखे और ससार के म दोनों ही विरोधी मुट एक दूसरे के प्रति मेतत्राम रखे ता इस नीति को भारत की दार्शनिक परम्पराओं के अनुकूल ही कहा जाएगा।

(ख) यह कहा जाता है कि बुद्ध और महावीर की धर्मशास्त्रों के बाद गांधीवाद की धर्मशास्त्रों का भारत की नातिवादा नीति पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। प्रा० जी० एफ० हटसन (Prof G F Hudson) ने लिखा है 'गांधी के नातिवाद ने दश को वह विश्वास दिलाया है कि विश्व म नाति समझौतों द्वारा ही स्थापित हो सकती है न कि रक्षात्मक समझौतों से। अनुभव भारत का यह पतम्प है कि वह वा विराधा बसों से पुपक रहे और इनमें मध्यस्थता का काम करे। परन्तु यदि महाराई से देखा जाय तो स्पष्ट विदित होता है कि भारत की दार्शनिक नीति के मंदम में गांधीवादी प्रभाव को बहुत बड़ा बड़ा कर बताया जाता है। और ता और गांधीवादी दशन के प्रति भारतीय विदेश नीति के प्रमुख निर्माता स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू तक का कोई सैद्धांतिक लगाव नहीं रहा था। इस सम्बन्ध में कर्णकार गुप्त (Karnakar Gupta) ने लिखा है कि—

यह बात संदेहास्पद है कि मध्य और धर्मशास्त्रों के गांधीवादी सिद्धांतों का भारत की यह अथवा विदेश नीति पर बिभी बड़ी सीमा तक प्रभाव पड़ा है। गांधीवादी का मृत्यु के तुम्हें बाद मधीन भारत ने साम्यवादी और मध्प्रदायवादी विरोध का दमन करने के लिये सर्वाधिकारवादी उपायों का प्रयास किया। काश्मीर और हैदराबाद में मशरूफ हिंसा का प्रयुक्त किया गया तो मेवास के पालनिक मधर्म म भी हिंसा की नीति का अनुसरण हुआ। ब्रिट का यह स्वकल्प जितमें कि सतिव ध्यव के लिए ३ प्रतिशत से अधिक की अर्थव्यवस्था की गई है यह प्रकट करना है कि भारत की प्रजासत्तवीय नीति में पुनिम उपायों पर बन दिया जाना है। इन परिस्थितियों में यह बात विद्वान्मणीय नहीं है कि भारतीय दार्शनिक नाति पर गांधीवादी धर्मशास्त्रों का कोई निर्णायक प्रभाव पड़ा है।¹

1 It is doubtful how far Gandhian principles of Truth and Non-Violence have influenced the policy of the Indian Govt. either in internal or external affairsSoom

(ग) यदि सम्मिलितता से दया जान तो विचारधारामो के दृष्टिकोण से लेबीवाद की अपेक्षा भारत की परराष्ट्र नीति पर मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक निश्चित होता है। प्राथमिक नीति युद्ध में समाजवादी केमे के प्रति हमारा तो कुछ भी सहानुभूति है वह मानसंवादा प्रभाव का ही परिणाम है। पश्चिम की हम प्रायः स्पष्ट शब्दों में प्रामोचना एवं निन्दा करते हैं लेकिन साम्यवादी मोक्षियत लक्ष्य और धीन के प्रति सबेह का मात्र रेंन की प्रवृत्ति हममें पाई जाती है।

(घ) पश्चिम के उदारवाद का भी भारत की विदेश नीति पर निर्णायक प्रभाव पड़ा है। भारतीय विदेश नीति के प्रमुख सूत्रधार पंडित नेहरू का सम्पूर्ण विचार पश्चिम की लोकतंत्रीय परम्पराओं से ही हुआ था। हालांकि उन पर मोक्षियत कस का भी पड़ता घमर था। वे पाश्चात्य लोकतंत्रीयवाद तथा साम्यवाद दोनों की कुछ धारणाओं को पसन्द करते थे और उनकी कुराहों से बचना चाहते थे। इसीलिये वे अपने को पूरी तरह से किसी पक्ष से सम्बद्ध नहीं कर पाये। उन्होंने एक बार जायद कहा था हम यह देखते हैं कि लोकतंत्रीय उपनिवेशवाद और आतियुद्धोपाय के प्रवत पर हमारी समझौता का मेता है। यदि हम पश्चिम से समझौता कर लेंगे तो हमें उन युद्धों को भी स्वीकार करना पडगा। इसका विपरीत कस में सामाजिक न्याय और समानता पर बहुत बल दिया जाता है किन्तु बड़ा इस समय बहुत बड़ी मात्रा में विचारो की स्वतंत्रता का घमाव (Rejuvenation) तथा राजनीति में घातक (Terror) के उपायों का अवलम्बन है। भारत को यह सोचो चाते पसन्द नहीं है घत विचारधारा के जेट के कागस उसकी नीति दोनों पक्षों से घमर घमर रहने की है।¹

ऐसा कहा जाता है कि पंडित नेहरू पर हेरोन्ड साहसी का प्रभाव बड़ी गीमा तक पड़ा था और चूंकि साहसी की विचारधारा उदारवाद तथा मानसंवादा के समन्वयवाद पर आधारित है घन इसी का एक सीमा तक यह परिणाम है कि भारत की राष्ट्रीय एवं वैदेशिक नीति में भी हमें विरोधाभास के दर्शन होते हैं। इसा ना लक्ष्ययन परिणाम हमारी तटस्वता जपका घमरगतता का नाति है।

after his death, new India took totalitarian measures to fight Communist and Communal opposition. In dealing with Kashmir and Hyderabad armed violence was resorted to as also recently in the inter-caste conflict in Nepal. The character of the budget which provides more than 50% in military expenditure reveals the stress on police measures in State policy in India today. Under these circumstances, any talk about the Gandhian principle of non violence exercising a decisive influence on the Foreign Policy of India, can not be accepted at its face value."

—Karunakar Gupta Indian Foreign Policy p. p. 13-14

श्री नेहरू पर पाश्चात्य लोकतन्त्रवादी प्रवृत्ति समाजवाद या अन्य किसी भी विचारधारा का चाहे कुछ भी प्रभाव रहा हो किन्तु निर्विवाद रूप में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति की धारणागतता रूढ़न में और उसे पुष्पित तथा पल्लवित करने में उनका सम्भवतः अन्य किसी भी विचारधारा प्रवृत्ति विचारकों व समूह से अधिक निर्णायक हाथ रहा था। वे न केवल स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और १७ वर्ष तक विदेश मंत्री रहे बल्कि उनसे पूर्व भी लगभग २५ वर्षों तक सक्रिय भारतीय कांग्रेस के विदेशी मामलों में प्रमुख प्रवक्ता की भूमिका भी निभाते रहे थे। प्रथम वे अन्तर्राष्ट्रीयता और अग्रिम एशियावाद व समर्थक थे। हमारे व साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद और फासिस्टवादी व विरोधी थे। तीसरे सभी अन्तर्राष्ट्रीय विचारों को मानिपूर्ण उपायों से मुक्त करने व वे हमारे व किन्तु गाय ही साम्राज्यवादी और फासिस्टवादी धारणाओं को रोखने के लिए शक्ति व प्रयाग को भी अनुचित नहीं समझते थे। चौथे इस और चीन के प्रति उनकी विचार सहानुभूति इसीलिए थी क्योंकि उनका विश्वास था कि वे हम साम्राज्यवाद व धनु हैं। पाँचवें वे महा शक्तियों के सम्पर्क में भारत के लिए असहमतता एवं सटम्पना की नीति को सर्वोत्तम समझते थे। प्रथम इही विचारों के अनुसरण उन्होंने भारत की विदेश नीति को बनाया और आज भारत की नीति का जो कुछ भी रूप है, श्री नेहरू के उपरोक्त विचारों का ही प्रति रूप है।

(५) राष्ट्रीय संपर्क

(National Movement)

भारत की विदेश नीति को निर्धारित करने वाले तत्वों में एक महत्वपूर्ण तत्व हमारा राष्ट्रीय संपर्क भी रहा है क्योंकि प्रथम तो इसने भारत को महा शक्तियों के सम्पर्क का मोहरा बनाने से बचाना का दृढ़ संकल्प उत्पन्न किया और हमारे विश्व की राजनीति में एक निर्णायक कार्य प्राप्त करने की महत्वकांक्षा का विकास किया। पहली प्रवृत्ति से अंततः अन्त और हमारी में अनुसरण की नीति का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय संपर्क के फलस्वरूप भारत में विश्व के अनेक मामलों में विद्यमान अष्टीक और एशिया में होने वाले उपनिवेशवाद विरोधी स्वातन्त्र्य आन्दोलनों व प्रति सहानुभूति जागृत हुई। राष्ट्रीय संपर्क ने भारतीयों के हृदय में पाश्चात्य शक्तियों के प्रति अविश्वास की जड़ जमा दी जबकि कम एवं चीन व प्रति वैश्वीपूर्ण व्यवहार को विकसित किया क्योंकि उन्हें लगा कि ये देश उपनिवेशवाद व समर्थक नहीं थे। राष्ट्रीय संपर्क के द्वारा ही भारत की विदेश नीति में पहिल्यात्मक शैतिक और आध्यात्मिक उन्नति का तत्वों को अधिक महारा मिला। इस संपर्क ने यह विश्वास पैदा किया कि संसार में शक्ति और शैली की स्थापना का विकास कार्य भारत को करना है और उस विश्व राजनीति में शक्ति का मसीहा बनना है।

(६) व्यक्तिगत और राजनीतिक तत्व

(Personal and Political Factors)

भारत की विदेश नीति व अतिरिक्त तत्वों का, विशेषकर श्री नेहरू का

विना प्रभाव रहा है इसका बहुत कुछ सामान हमें पूर्ववर्ती बलों से मिल जाता है। घन उमे पुन न सुहगते हुए हमें यह जोड़ना है कि भारत की विदेश नीति के निर्माण में पंडित नेहरू पर भी कुछ विविष्ट व्यक्तियों और कुछ विशेष परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा था। इन विशेष व्यक्तियों में डा० रामाहृष्णन श्री हृष्णमैनन व श्री पण्डित के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। डा० रामाहृष्णन को हम बात का यह है कि मोक्षियत कस में भारत के राजदूत के रूप में उन्होंने स्थापित का प्रभावित कर कस और भारत व सम्बन्धी को मजबूत बनाया है। श्री हृष्णमैनन पंडित नेहरू के जन पुराने विश्वसनीय मित्रों में से थे जिन्होंने कोरिया क्षेत्र घाटि के उभरते हुए प्रश्नों पर भारत सरकार की विदेश नीति के निर्धारण को प्रतिपक्ष प्रभावित किया। हृष्णमैनन ने संयुक्त राष्ट्र संघ में और विश्व के प्रमुख देशों में भारत की विदेश नीति का एक प्रभावशाली राजदूत के रूप में सहायनीय प्रचार किया। श्री पण्डित ने साम्यवादी चीन के प्रति भारत की प्रारम्भिक नीति को प्रत्यक्ष प्रभावित किया। चीन के प्रति भारत की प्रारम्भिक नीति की प्रस्ताव और वृत्त का उत्तरदायित्व बहुत कुछ श्री पण्डित पर ही पड़ने से क्योंकि तब चीन में से भारतीय राजदूत से और चीन के प्रति भारत की विदेश नीति का निर्धारण जहाँ के द्वारा श्रेष्ठी हुई रिपोर्टों का आधार पर किया जाता था। प्रत्येक राजनीतिक प्रश्नों का मत है कि पण्डित चीन में राजदूत होने के समय चीन की नीति व नीतिक लक्ष्यों को पधार्य रूप में न समझ सके और परिणामतः भारत सरकार को चीन के बारे में प्रारम्भिक सुचना मिलती रही। पण्डित के कारण ही स्थिति और चीन के सम्बन्ध में भारत की विदेश नीति मार्ग प्रष्ट हो गई। जोर्ज पेटर्सन का कथन है कि इसमें कोई शक नहीं कि पण्डित की पण्डित रूप से चीन प्रश्न के प्रति व्यक्तिगत सहानुभूति रमता था। किन्तु वह भारत के जिनो का प्रतिनिधित्व करने वाला राजदूत था और इसलिए उम्मा यह धारणा अस्वीकार या कि पण्डित के मासक द्वारा नहीं जाने वाली बातों को धारण मूव कर स्वीकार करना पता गया। इस बात से भारत का न केवल उस समय बल्कि उसके बाद भी अत्यधिक हानि पहुँचा।

किन्तु श्री दल की विदेश नीति को निश्चित करने में विशेष महत्त्व को भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके विविष्ट परिणामों का सामान्यतः नीति का विकास करते हैं। भारत की विदेश नीति के निर्माण में श्री गणेशदास के प्रभावशाली सपरकों का हाथ रहा है। भारत की वैदेशिक नीति के निर्धारण में संघ की भूमिका बहुत अधिक स्पष्ट नहीं रही है क्योंकि उसमें बांध ग पार्टी संघ के विनाक बहुमत में रहती नहीं पाई है और शासन के मूख्य बांध ग पार्टी के सदस्य ही रहे हैं। फिर भी मोक्षयता में वैदेशिक विचारों की परामर्श गतिविधि से जिसमें सब दलों के प्रतिनिधि होते हैं उन्नेगनीय भाग बना गया है। वैदेशिक मामलों पर महासभा में हुई बैठकें भी बहुत महत्त्वपूर्ण रही हैं जैसा १९२६ में इंदौर के सम्बन्ध में तथा मितम्बर १९२८ में पार्लियामेंट की प्रश्न देने के सम्बन्ध में और मई १९३६ में विदेश के प्रति चीन की नीति के सम्बन्ध में हुई बैठकें। कई बार मोक्षयता

क महत्त्व अपनी अपनी ओर के द्वारा नी विदेश नीति पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ १९५५-५६ में मासूमना के ८० मन्त्रियों ने मजबूत राज्य अमेरिका से आच्छाद करने की और जुलाई १९५६ में अनेक सम्मेलन को मजबूत बनाने के लिये विदेश मंत्रियों में प्रयोग की गई थी।

यद्यपि भारतीय विदेश नीति का निर्माण में भारतीय जनता का भाग बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा है तथापि हमारे यहाँ के प्रेम तथा समाचार पत्रों ने विदेश नीति पर यदि प्रभाव डाल स नहीं तो कम से कम परोक्ष रूप से प्रत्यक्ष प्रभाव डाला है। यहाँ यह प्रकट रहता होगा कि भारतीय समाचार पत्रों लिप्यधर रूप प्रकाशने में प्रयत्न ही रहे हैं। उन पर प्रमुख देश के बड़े बड़े पत्रकारियों का नियंत्रण है अतः स्वाभाविक रूप से वे पश्चिम के समर्थक और समाजवादी या साम्यवादी श्रेणियों के विरोधी हैं। ऐसी रणनीति पर परिणाम अविनाशक यही निश्चयता है कि हमारे देश में समाजवादी लोगों के जाने में या ता अहितक समाचार प्रकाशित किये जाते रहे हैं या उन्हें ठोड़ मरोड़ कर छुपा जाता रहा है। यह रूप का विषय है कि यह समाजवादी स्थिति में सुधार होना लगा है और अतः भारतीय समाचार पत्र स्वतंत्र रूप से सुधारित होने लगे हैं।

७ राष्ट्रीय हित (National Interests)

विदेश नीति का निर्धारण सभी देशों में सर्वोपरि स्थान राष्ट्रीय हित का है। राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति की मूल्य आधारभूत है। विदेश नीति का निर्धारण मित्रात्मक के आधार पर होना इतना आवश्यक नहीं है अतः कि राष्ट्रीय हितों के आधार पर ही अनेक बार यह देखा जाता है कि राष्ट्रीय हितों का सामर्थ्य छोटे-बड़े मित्रात्मक के विनाशक दे दी जाती है। अमेरिका के विदेश मंत्री चार्ल्स एच. ह्यूग्लेस (C. E. Hughes) के ये शब्द स्मरणीय हैं कि "विदेश नीतियों का निर्माण मूल्य मित्रात्मक के आधार पर नहीं होना किन्तु ये राष्ट्रीय हितों के अन्तर्गत विचारों का परिणाम होनी है।" १९४७ में भारत की संविधान सभा में पंडित नेहरू ने स्वयं कहा था कि "जिसी भी देश की विदेश नीति को आधारभूतता अपने राष्ट्रीय हित की सुरक्षा डालनी है और भारत की विदेश नीति का ध्येय भी यही है।"

परन्तु यह स्मरणीय है कि जिसी भी देश के राष्ट्रीय हित का स्वरूप बड़ा विस्तृत और जटिल होना है। हम राष्ट्रीय हित का निर्धारण अनेक विरोधी एक-दूसरे विभिन्न प्रकार की शक्तियों के संघर्ष में होना है। राष्ट्रीय हित का स्वरूप एक समान रह कर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होना रहता है। इसीलिए एक देश की विदेश नीति में कभी कभी परस्पर विरोधी बातें दिखाई देनी हैं। भारत की विदेश नीति या अभी ही स्थिति में है। उदाहरण के लिये यह सामर्थ्य का मे अन्तिमकार विरोधी है लेकिन समाधान में यहाँ की जनता के स्वातंत्र्य आन्दोलन का बुचकाने के लिये यह विदेश सरकार ने देश में ही अनेक संगठनों को भारत के अनेक

दल से बुझरने दिया। वह वस्तुतः भारत की उपनिवेशवाद विरोधी नीति में एक स्पष्ट विरोधामास था। साम्यवादियों ने इस पर आरोप लगाते हुए कहा कि भारत ब्रिटिश राष्ट्र गणतन्त्र के प्रति अयोग्यनीय मति रखता है। किन्तु वस्तुस्थिति यही थी कि भारत न किती मझा सन्तुष्ट के बावजूद से नहीं प्रत्युत 'राष्ट्रीय हित' की दृष्टि से प्रेरित होकर ही ऐसा किया और साम्राज्यवाद के विरोध के उच्च प्राबल्य पर बटे रहने की अपेक्षा वास्तविक राजनीति की ठोस परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश लोगों को अपने देश से बुझरने दिया। नेपाल भारत की उत्तरी सीमा से जपा हुआ एक सीमांत राज्य है जिसकी अर्थ-व्यवस्था का एक मुख्य आधार इसकी जनता का सेना में भर्ती होना है। इसमें बाधा डालने का अर्थ नेपाल की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का क्षिन्न सिन्न करना और नेपाली जनता में व्यापक असंतोष तथा क्रान्ति पैदा करना है। इससे भारत की सुरक्षा संकट में पड़ सकती है। इसी पुण्य भूमि में भारत ने उपरोक्त कदम उठाया। पुन १९६६ में स्वैज के मामलों में पश्चिम गैरुक ने ब्रिटिश सैन्य प्रभुत्व की तीव्र निन्दा करते हुए भी राष्ट्रपति शांति की मुझु और शांतिपूर्ण नीति अपनाने की अज्ञात ही अपेक्षा भारत का राष्ट्रीय हित इसी में था कि स्वैज नहर लुप्त रहे। यही हाल ही में पुन १९६७ में हुए भारत-इजराइल संबंधों में भी भारत ने भारत को इसीमिसे समर्थन दिया ताकि स्वैज नहर का प्रयोग करने में अविष्य में भारत के सामने किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो सके।

स्वैज नहर के कुछ माह तक बन्द रहने मात्र में ही भारत का करोड़ों रुपयों की वार्षिक हानि बहुत बड़ी है।

भारत का 'राष्ट्रीयहित' क्या है, यह निर्धारण करना कोई तरल कार्य नहीं है तथापि विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि निम्नलिखित तत्वों का ध्यान में रखकर ही भारत की अर्थ-नीति का निर्धारण होना चाहिये—भारत की भौगोलिक स्थिति उसकी स्वकीय सीमा विज्ञान समुद्र तट एवम् सामुद्रिक व्यापार, प्रायिक विद्युत्प्रदान विकास की अनिवार्यता इनके विकास की सभी विद्युत् सुखी की प्रावण्यता सैनिक निर्भरता शांति की प्रावण्यता ब्रिटेन और अमेरिका के साथ समुद्र प्रायिक सम्बन्ध और उन पर कुछ सामग्री प्राप्त की दृष्टि से निर्भरता एशिया के अन्तर्गतवादी हलों में अहम्पूर्ण स्थान पाने की अविष्यता प्रादि।

भारत की विदेश नीति के उपरोक्त निर्धारक तत्वों पर विचार करने के उपरान्त निष्कर्ष पर में यही कहा जा सकता है कि इस नीति को निश्चित करने में जहाँ स्वकीय की गैरुक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है वहाँ यूनान इतिहास और प्रायिक परिस्थितियों पर विचार करने पर 'राष्ट्रीय-हित' में इस नीति को एक निश्चय दिशा प्रदान की है। भारत की विदेश नीति के सम्बन्ध में अहिंसक गैरुक का यह अर्थ अत्यन्त अहम् बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि "भारत की विदेश नीति को ठोस अर्थव्यवस्था नीति कहना सर्वथा अशुभ है। यह इसलिए समत है कि अनेक अर्थ उद्योग नीति का अर्थों में प्रतिपादन

किया है, प्राविष्टार नहीं किया है। यह नीति मुख्यतः हमारी परिस्थितियों की उपज है। व्यक्तिगत रूप से मेरा विश्वास है कि भारत के वैदिक मामलों की शायदोंर यदि किसी अन्य व्यक्ति या बल के हाथ में होती तो भी हमारी विदेश नीति वर्तमान नीति से अधिक मित्र नहीं होती।"

भारत की विदेश नीति को प्रमुख विशेषतायें (Chief Features or Characteristics of Indian Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति को प्रमुख विशेषतायों का उल्लेख स्वर्गीय प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ७ सितम्बर १९४६ को प्रसारित अपने भाषण में ही कर दिया था जिसमें उन्होंने यह धारा प्रकट की थी कि अन्य राष्ट्रों के साथ भारत के प्रतिष्ठ और सीधे सम्बन्धों का विकास होगा तथा यह देश अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं स्वतन्त्रता की स्थापना में उनके साथ सहयोग करेगा।

भारत का यह विश्वास है कि सत्य का अधिकतम रूप हो घटियों (Extremities) के बीच में ही पाया जाता है। विश्व राजनीति-मंडल पर स्थित जानों ही महा शक्तियों द्वारा स्वयं की नीति का म्याम एक दूसरे के विश्वासों तथा व्यवहारों की निरर्बन्धता को सिद्ध करने के प्रयास एकांगी और सत्य के प्रातिक रूप हैं। भारत उन लोगों के प्रति भी सहानुभूति एवं मर भावना रखता है जो उसकी नीतियों में विश्वास नहीं करते या उनमें मित्र नीति को अपनाते हैं। भारत उपनिवेशवाद आतिवाद साम्राज्यवाद धारि विश्व के प्रतिभाषों का निन्दक है किन्तु फिर भी इनको मिटाने के लिये बहु हिंसात्मक साधनों का पक्षपाती नहीं है। उसका विश्वास है कि बुरे भावनों के द्वारा प्रच्छेद सदियों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। हंगरी के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखते हुए वहाँ की हिंसात्मक नीतियों को भारतीय नेताओं ने विरोध किया था। मोबा में फ्रांसीसी एवं पुर्तगाली साम्राज्यवादी प्रक्षेप भारत के सम्मान एवं स्वतन्त्रता के बेहूने पर एक काशिया से किन्तु फिर भी इनका विरोध करने के लिये हिंसक मार्ग का अनुसरण करने में भारत सर्वैव हिचकिचाता रहा। भारत की सर्वैव यह नीति रही है कि वह न तो किसी शक्तिशाली देश को घरेने पर हावी होने देना चाहता है और न ही वह स्वयं किसी कमजोर देश पर अपना अनुचित प्रभाव डालने का पक्षपाती है। हमारे महान नेता पं० नेहरू का विश्वास था कि हम अपने देशों के साथी और भाई बनना चाहते हैं, किसी के नेता नहीं। वे कहा करते थे कि भारत न तो किसी गुट का अनुयायी ही बनेगा और न निग का स्वयं का अनुयायी ही बनायेगा। उनकी नीति को राष्ट्रों के मध्य एक पुनः प्रयत्न में सु का कार्य करने की रहेगी।

भारत राष्ट्र मंडल का मात्र सक्रिय सदस्य है। उनकी नीति साम्यवादी एवं साम्यवादी-विरोधी राष्ट्रों के दोनों ही पुर्ण से गृहक रखने हुए,

संसाधनता की है। परन्तु यह सब होने पर भी भारतीय परिस्थितियों में भारत का एक शायद महत्वपूर्ण राष्ट्र बना दिया है और एशिया के प्रबलताओं में शायद ही स्थान प्राप्त करने का इसे मौक़ मिलेगा है। भारत के प्रथम और अंतिम मन्त्र प्रान्त राजबोपासाचार्य ने एक बार कहा था कि हमारी शक्ति कम है लेकिन हमारा महत्व बहुत अधिक है। भारत किसान दूसरे राष्ट्र को नैतिक बनाने का दम नहीं भरता क्योंकि वह स्वयं की असफलताओं और स्वयं के बर्बादों से परिचित है तथा उनके प्रति सामर्थ्य है। भारत का विश्वास है कि दूसरे ने दावों का बताना बहुत आसान काम है परन्तु हमसे प्रायः कोई नाम नहीं होता। पठित नेहरू यह नहीं चाहते थे कि दूसरे साब कि भारत प्रथम राष्ट्रों से अधिक शक्ति है। उनके सदैव यही प्रयास रहता था कि भारत प्रथम श्रेणी की शक्ति का कमी विमुक्त न कर समर्थ और सफल राष्ट्र बन। परन्तु वे हम बात का कमी आवश्यकताओं वाले थे कि यह प्रथम कोरा प्रत्याभूति न होकर देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों की उपयुक्तता का ध्यान में रख कर किया जाना चाहिये। कुछ विचारों और राजनीतिक प्रसंग भारत की शक्ति में बिना के प्रति हीन का कारण मना है। उनका प्रयोग है कि संघर्षों में बिना के प्रति पूरा रूप से निपटारे का विचार पीछे धामा भारत काश्मीर-प्रश्न पर पाकिस्तान के साथ इस नीति को क्यों नहीं अपनाता? परन्तु यह कारण सन्ध्या के अर्थ और स्थिति पर पूरी तरह विचार किये बिना मनाया गया है तथा प्रभाव है। भारत बाहरी स्तर (Du. Policy) को मजबूत बिना राष्ट्रीय एक ही ध्यान में निकलती है तथा उनका एक ही मक़द है। मुक्त के बोधों ही गतिपूर्ण साधना का लक्ष्य रहती है। के निरंतर नहीं है परन्तु राष्ट्रीय एक भारतीय स्तर पर परिवर्तन चाहती है।

भारत भारतीय राजनीति में इतना अधिक सक्रिय है तथा प्रत्येक राष्ट्रीय प्रश्नों के निपटारे के लिये इतना अधिक प्रयास करता है कि यह बनती रहती है। यह कहा जाता है कि भारत इतना शक्तिशाली देश नहीं है और साथ ही उसकी घरेलू समस्याएँ इतनी घबराती हैं कि उसे राष्ट्रीय निर्माण का अधिक ध्यान देना चाहिये। इस मन का उत्तर दत्त हुए भी नेहरू ने कहा था कि हम भारतीय विषयों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं—इसका कारण यह नहीं है कि हम हमसे रजि सेते हैं और न ही यह कि हम बिना केन्द्र में कोई महत्वपूर्ण स्थान बनाना चाहते हैं परन्तु इसका कारण यह है कि बिना की यह घटनाएँ हमारे दावों में हाथपैर बरती हैं या कर सकती हैं। भारत के सामने घातक विकास का एक लक्ष्य प्राप्त है। नये कारखाने नये नये बिजली पर और विद्युत-विद्युतय मान कर देश के निवासियों की प्रगति में बढ़ि करना इसके व्यवहार की प्रेरणा है।

भारत अपने विकास कार्यक्रमों के संचालन में किसी भी राजनीतिक एवं धार्मिक व्यवस्था का बोझ नहीं है। समाज के समाजवादी ढांच का उसका लक्ष्य एक प्रकार से समाजवाद और पूंजीवाद के बीच का समन्वयकारी मार्ग है। ठीक उसी प्रकार जैसा कि उसकी विदेशनीति दोनों युटों मधुमेदो एवं शीत युद्ध की तीव्रता को बटाने का प्रयास करती है। भारत की धार्मिक विकास की योजनाओं की सफलताओं की पहली शर्त है विश्व में शांति एवं सहयोगपूर्ण वातावरण यत भारत की विदेश नीति का मूल मंत्र स्वभावतः विश्व शांति है। यह स्वतंत्रता की नीति है। भारत की विदेश नीति के प्रमुख निर्माता श्री नेहरू ही के शब्दों में 'हम स्वतंत्र हैं क्योंकि हम बिना किसी बंधन या ताराबन्ध के स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय ले सकते हैं।' विश्व के देशों का बहुमत शीत युद्ध के किसी भी युट के प्रभाव के नीचे ना।

संयुक्त राष्ट्र सत्र के प्रति भारत का दृष्टिकोण आशापूर्ण है। इसका मत है कि सत्र का सदस्य बन कर एक देश अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सगठन के लिये राष्ट्रीय सम्प्रभुता को कुछ सीमित करता है। भारत की विदेश नीति का प्रायः आदर्शवादी बहू कर राष्ट्रीय हितों के प्रति उदासीन सिद्ध किया जाता है। परन्तु असल में यह भ्रम्य देशों की शक्ति अपने राष्ट्रीय हित पर आधारित है तथा दूसरे देशों के हितों से और विश्व शांति के लक्ष्य में अपने साथ सामंजस्य करके चलती है। श्री नेहरू ने एक बार कहा था कि एक देश की नीति का अपना परम्परागत आधारभूमि तथा देश के स्वभाव का सर्वत्र ध्यान रखना चाहिये। यह आदर्शवादी होनी चाहिये कुछ शर्तों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहनी चाहिये किन्तु इसके माध्यम ही साथ यह ध्यान भी होनी चाहिये। यदि यह आदर्शवादी नहीं है तो एक निम्नतर अवसरवादी बन जाएगा और यदि यह ध्यानवादी नहीं है तो एक दुर्साहसपूर्ण तथा प्रभावहीन नीति रह जाएगा। भारत की विदेश नीति की ध्येय तत्त्व की प्राप्ति के लिये आदर्श और ध्यान के उचित एवं संतुलित समन्वय का ही विधाया सञ्चना है। जब जब भी आदर्श और ध्यान के इस संतुलित समन्वय में कमी आई है तब ही भारत को किसी न किसी रूप में अपने आदर्शवादी विचारधाराओं और कमी नमी भीषण समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

भारत की वैश्विक नीति के इस संतुलित समन्वयक विवेचन के उपरान्त विस्तार की दृष्टि से यह कहा जाय तो हम भारत की विदेश नीति को निम्नलिखित प्रमुख प्रमुख उप-शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं —

- (१) समन्वयता की नीति
- (२) नातिवाद की नीति
- (३) समस्त देशों से मित्रता की नीति
- (४) परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच सैन्यबन्ध का कार्य करने की नीति।

की गुट से स्वयं को सम्बद्ध न करना ही तटस्थतावादी नीति कही जाता है। डॉ० पोटर (Potter) के शब्दों में "शक्ति युद्ध में प्रथम प्रमरीका तथा नोबियम संघ द्वारा प्रेरित शक्तियों के दो समूहों के मध्य चल रही राजनीतिक या कूटनीतिक प्रतिस्पर्द्धिता में किसी भी पक्ष का समर्थन करने में इन्कार का विचार ही तटस्थता है।"

यू कि तटस्थता शब्द कामूनी प्रथम वैज्ञानिक दृष्टि से प्रथमतः युद्ध की स्थिति से सम्बन्धित है। परंतु भारतीय नीति विमोचकों तथा अन्य विद्वानों का यह मत है कि भारत की वैश्विक नीति को तटस्थता की नीति की अपेक्षा "प्रसंगिकता की नीति" कहना अधिक श्रेयस्कर है। प्रसंगिकता शब्द का भी यही अर्थ है कि बिना किसी के साथ पूरी तरह बंधे हुए धारणी स्वतंत्र नीति का पालन किया जाए। भारत की विदेश नीति के कर्तव्य की दृष्टि से तटस्थ शब्द को कभी प्रयोग नहीं किया जा सकता। एक बार उद्घोषित कहा भी जा-सकता है तटस्थ शब्द प्रयोग नहीं करता क्योंकि इसका प्रयोग सामान्यतः युद्ध काल में होता है। "शांति काल में भी इसे एक प्रकार की युद्ध की मनोवृत्ति प्रकट होती है।"

भारत की विदेश नीति के लिये तटस्थ शब्द इसलिए भी उपयुक्त है कि तटस्थता एक निष्कारण विचारधारा (Negative conception) है। तटस्थता का अर्थ है किसी पक्ष में शामिल न होना और पूर्ण रूप से युद्धकालावधि नीति पर चमकना। लेकिन भारत की नीति ऐसी नहीं है। यह सकारणक और गतिशील (Positive and Dynamic) है। इस दृष्टि में यदि इसे गतिशील तटस्थता की नीति (Dynamic Policy of Non-alignment) कहा जाए तो फिर भी ठीक है। भारत की विदेश नीति 'तटस्थता' की भांति निष्क्रिय न होकर पूर्णतः सक्रिय है। भारत ने विश्व संस्था में जो सक्रिय रूप से काम लिया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने में जिस उत्साह से अपना सहयोग दिया है उसे देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि यह राष्ट्र विश्व राजनीति से वृषक रहने की नीति पर चल रहा है। इसकी चुप सभा कर एक घोर बैठ जाने की नीति नहीं है वरन् कि अपने पश्चिमी घालोचक इसे निरुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। मत्व ता यह है कि यह (प्रसंगिकता) एक विदेशात्मक सक्रिय एवं रचनात्मक नीति है जो सामूहिक सुरक्षा की घोर प्रवृत्ति होती है तथा एक मात्र इस पर ही सामूहिक सुरक्षा स्थित रह सकती है।

भारत की नीति को तटस्थ नहीं तट्ट कहा जा सकता है जहां तक कि यह परिणाम से ही किसी पक्ष के साथ अपने को बांधना नहीं चाहती बल्कि वास्तविकता यही है कि वास्तविकता यह है कि भारत की नीति चुपचाप बैठ कर तमासा देखने वाली नहीं है। भारत कभी भी घोर किसी भी ऐसी पक्ष का समर्थन करने को तैयार रहना है जिसकी नीति को यह विश्व शांति और सुरक्षा के लिये उपयोगी समझता है। इसी तरह यह सर्वत्र ऐसे पक्ष का विरोध करता रहना है जिसकी नीति को यह शक्ति घोर सुरक्षा के लिए अहितकारी

मानता है। मयुकत राज्य अमेरिका की अपनी यात्रा के दौरान अपने एक भाष्य में भारत की 'तटस्थता' की नीति का विवरण करते हुए व० नेहरू ने कहा था—

'यहाँ स्वतन्त्रता के लिए सतत उत्सुक हो स्याद की धमकी दी जाती हो पववा यहाँ बाधमक होता हो यहाँ न तो हम तटस्थ रह सकते हैं और न ही तटस्थ रहेंगे।

भारत की विशेष नीति को विविध नामों से पुकारा जाता रहा है जैसे तटस्थ विदेश नीति स्वतन्त्र विदेश नीति युट बांधवों से घलन रहने की नीति शांति की नीति असंलग्नता की नीति धारि इरीगिए इसके सम्बन्ध में मसन कहमिया रही है और धार भी है जबकि बस्तुमिति यही है कि इस नीति में घलन पड़मियों की कोई गु जाइत नहीं है।

यह उम्मेदनीय है कि असंलग्नता की नीति अपना कर तथा दूसरे राष्ट्रों को इसकी ओर प्रेरित कर भारत यह कदापि नहीं चाहा कि एक तीसरे युट का अपना देन नेतृत्व करे। भारत की ऐसी कोई भाकाशा नहीं है कि विश्व में यह एक तीसरी शक्ति के रूप में उदित हो। इसका प्रमुख लक्ष्य है जो विश्वपी गुटों—रिख राजनीति के मागर के दो कुमों के बीच में एक युग का निर्माण करना—मेम। युग जिसके इ ग दाना गुटों की पूरी एवं मतभेदों को दूर करके नई मिसाया जा सके। असंलग्नता की नीति सैनिक युटों से अपने भाप को दूर रखती है किन्तु यह पड़ीवी तथा अन्य राष्ट्रों के बीच अन्य सब प्रकार के सहयोग को बढ़ावा देती है। भारत ने इस नीति का प्रबलमजन करते हुए भी दूसरे देशों के साथ अनेक प्रकार की संबंधों की है। इन संबंधों का स्वरूप भैतिक न हो कर धारिक सामाजिक राजनीतिक एवं मास्कृतिक है। असंलग्नता की नीति के कारण ही यह सम्भव हो सका है कि भारत ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार और अपना मत प्रकट किया है। २२ नवम्बर १९९० को लोक सभा में बामते हुए स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि हम भैतिक युटों में शामिल नहीं हैं परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मिस-मिस नीतियों प्रेरणाओं मापनाओं और सिद्धान्तों के अनुसार अपना करते हैं।

युनरय यह भी स्पष्ट हा जाता चाहिये कि भारत की असंलग्नता का धमिप्रायः कोरा 'नातिबाद' नहीं है। यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक देश को युट की लम्बाबनामा को ध्यान में रख कर काम करना पड़ता है। यदि कोई इस माग्न पर धारमण करना है तब तो निश्चय ही हृमियारों का जबाब हृमियारों से देना पड़ना हागाति पठीत में हृमारा विधान रहा है कि भारत पर सम्भवतः कोई राज्य धारमण नहीं करेगा। इस सम्बन्ध में नेहरू ने टिप्पर भेजे को एक इटारण्य में कहा था—'हम किसी भी युट के माग्न में नहीं पाते। यह एक भूभाप का प्रन है। जममें न किसी एक के विदे भी माग्न पर धारमण करने के विदे रिख मरिजजानी प्रेरका नहीं है। परन्तु यदि के भारत पर धारमण करते हैं तो उन्हें यहाँ एक बहुत मरन

१९५२

स्वायत्त दिया जाएगा। ऐसा करने से स्वयं उनकी कठिनाइयों में कुछ प्रीति वृद्धि होगी। जो भी ऐसा करेगा उसके लिए हम स्थिति का बहुत मरम बना सकते हैं। इसलिये भारत सुरक्षित है। जहाँ तक पार्श्वक्य का सम्बन्ध है भारत के दृष्टनीतिक सम्बन्ध सञ्चार के सभी स्वतन्त्र दलों के साथ कायम है। इसकी संयुक्त राष्ट्र संघ के मध्य सङ्घर्षों में यत्नता होती है। इसके प्रति विश्व बहु राष्ट्र-मंडल का भी सदस्य है। यही कारण है कि एशिया के मण्डलों में भी यह अपनी भूमिका भरा करता है।”

भारत ने 'असमत्ता' की यह नीति यों ही नहीं बल्कि कुछ धरमन्त सञ्चालन कारणों के आधार पर अपनाई है जो संक्षेप में इस प्रकार स्पष्ट कीय है —

पक्ष में

(१) भारत किसी भी देश पर शासन करना नहीं चाहता अपितु विश्व में शांति बनाये रखने का इच्छुक है। इस दृष्टि से उसके लिये किसी भी गुट में शामिल हो कर अकारण ही विश्व में तनाव की स्थिति पैदा करना उपयुक्त नहीं है।

(२) भारत युद्ध का बुरा रगने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करना चाहता है किन्तु यदि किसी गुट विशेष में सम्मिलित होने की उसने योजना की तो उसका यह प्रभाव निश्चित रूप में क्षीय हो जाएगा।

(३) भारत अपनी विचार प्रकृति को स्वतन्त्रता को बनाय रखना चाहता है। यदि उसने किसी गुट विशेष की अगुआई में अपना लिया तो उसे अनिवार्य रूप से विश्व की समस्याओं पर बड़ी दृष्ट धरना पड़ेगा जो उसका गुट अपना रहा है। स्वर्गीय प्रधान मंत्री पं० नेहरू का स्पष्ट मत था कि किसी भी गुट में शामिल हो जाना अपनी राय को बहिष्कार करने के समान है। किसी गुट में शामिल होने की नीति दो कारणों से अस्वीकार्य है— प्रथम तो ऐसा करने पर भारत अपने भूतकाल से प्राप्त उन भावनों पर नहीं चल सकेगा जो उसकी विदेश नीति का आधार हैं। एक दूसरे उसका यह व्यवहार विश्व की वर्तमान परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं से भी भिन्न होगा। हमने प्रतिरिक्त ऐसी सम्भावना भी कम दिलाई देती है कि भारत गुटबन्दी का अन्तर्गत नीति के रूप में सफलतापूर्वक संघानन कर ही लेगा।

(४) असमत्ता की विदेश नीति भारत के राष्ट्रीय हितों के अनुकूल है। बहुत से विचारक जो अन्तर्राष्ट्रियता की विदेश नीति का घट्ट मानते हैं वे भी हम प्रकार की नीति में संतुष्ट होंगे। स्वतन्त्र बहुरिक्त नीति जाना म्तर में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। भारत अपने वाणिज्य विभाग के कार्यकर्तों को और अपनी योजनाओं की निधि के लिए विदेशी सहयोग एक महायत्न पर बहुत कुछ निर्भर है। असमत्ता की नीति उसके इस मरम का अपनी प्रकार सम्भव बना रही है। किसी गुट में शामिल न होने के परिणाम स्वरूप ही यह सम्भव हुआ है कि भारत के सम्बन्ध विश्व के दलों कठिनायी केमों के साथ अछड़े हैं और सोवियत रूस तथा अमेरिका दोनों से एक ही साथ उगे महायत्न प्राप्त पा रही है। पं० नेहरू के शब्दों में— वाणिज्य राजनीतिक अथवा दूसरे प्रकार की महायत्न प्राप्त करने के लिए यह दृष्टि

मानता है। समुक्त राज्य समेष्टिवा की धपनी याबा के दौरान धपने एक बागध में भारत की तटस्थता की नीति का विस्तेषण करते हुए प० नेहरू ने कहा था—

‘वहाँ स्वतन्त्रता के लिए तटरा आश्रित हो व्याप को बमकी दी जानी हो धपना वहाँ आक्रमण होता हो वहाँ न तो हम तटस्थ रह सकते हैं और न ही तटस्थ रहेंगे।

भारत की विशेष नीति को विश्व नामों से पुकारा जाता रहा है जैसे तटस्थ विदेश नीति स्वतन्त्र विदेश नीति मुट बन्धियों से धमना रहने की नीति आदि की नीति धसंभन्ता की नीति आदि इसीलिए हमके सम्बन्ध में मत फलमिया रही है और धाव भी है जबकि बस्तुनिधति यही है कि इस नीति में गलत फलमियों की कोई सुजादन नहीं है।

यह जम्हेलनीय है कि धसंभन्ता की नीति धपना कर तथा धुधरे राष्ट्रों को इसकी धौर प्ररित कर भारत यह कदापि नहीं चाहता कि एक तीसरे मुट का धपना देश नेतुल्य करे। भारत की ऐसी कोई धाकाला नहीं है कि विश्व में वह एक तीसरी शक्ति के रूप में उरित हो। इमका प्रमुख मन्थ है वो बिरोधी धुटों—विश्व राजनीति के मागर के दो कूबों के बीच में एक पुन का निर्माण करना—नेमा पुग जिसके द ग राजो धुटों की धुरी एवं मतभरों को दूर करके उन्हें मिलाया जा मके। धसंभन्ता की नीति धसंभन्ता के बीच बाध जाने धाप को दूर रखती है किन्तु यह पक्षीमी तथा धम्य राष्ट्रों के बीच बाध मब प्रचार के महूयोम को बढ़ावा देती है। भारत में इस नीति का धवमम्बन करते हुए भी धुधरे देशों के धाप धनेक प्रकार की संधियों की है। इन संधियों का स्वक्य मैनिक न हो कर धाधिक सामाजिक राजनीतिक एवं मास्कृतिक है। धमसन्ता की नीति के कारण ही यह सम्भव हो सता है कि भारत में धनेक संसार्राष्ट्रीय प्रश्नों पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार धौर धपना मत प्रधात किया है। २२ मधम्बर १९६० को मोक समा म बोसते हुए स्वर्गीय धपान मन्त्री नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि हम मैनिक धुटों में धामिक नहीं हैं परन्तु महत्वापूर्ण प्रश्नों पर मिस-मिस नीतियों प्रेरणायी मायनाधों धौर विधानों के अनुसार धमस करते हैं।

पुनश्च यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि भारत की धमसन्ता का धमिधायः कौरा आतिबाध नहीं है। यह नहीं भूसना चाहिये कि प्रत्येक देश को धुट की ममाधनाधों को ध्यान में रख कर नाम करना पटना है। यदि कोई देश भारत पर धाधमण करता है तब ता निरधय ही हधियारों का बबाध हधियारों से देना पड़ेगा इनाकि धतीत में हुमाग विधान रहा है कि भारत पर मन्त्रजत बाई राज्य धाधमण नहीं करेगा। नम सम्बन्ध में नेहरू ने टिधरर मीठे को एक इमण्डू में कहा था—‘हम किसी भी धुट के गान में नहीं धाते। यह एर धुगत का प्रश्न है। उनमें में किसी एक के निधे भी भारत पर धाधमण करने के निधे बिगन धकिजमाती प्रेरना नहीं है। परन्तु यदि के भारत पर धाधमण करते हैं तो उन्हें यहाँ एक बहुत मरम

समय बिसा बाएगा। ऐसा करने से स्वयं उनकी कठिमाइयों में कुछ घीर दि होगी। जो भी ऐसा करेगा उसके लिए हम स्थिति का बहुत गरम बना सकते हैं। इसलिये भारत सुरसिद्ध है। जहाँ तक पाश्चिम का सम्बन्ध है भारत के दृष्टीगत सम्बन्ध संसार के सभी स्वतन्त्र देशों के साथ कायम है। उसकी संयुक्त राष्ट्र संघ के सक्रिय सदस्यों में गणना होती है। इसके प्रति एकल बहु राष्ट्र-मंडल का भी सदस्य है। अफ्रीका और एशिया के मसठनों में भी बहु अपनी समिका प्रदा करता है।

भारत ने 'संसम्मता' की यह नीति यो ही नहीं बल्कि कुछ प्रयत्न प्रयत्न कारणों के आधार पर प्रपन ई है जो संक्षेप में इस प्रकार स्पेस लेय है —

पक्ष में

(१) भारत किसी भी देश पर शासन करना नहीं चाहता अपितु विश्व में शान्ति बनाये रखन का इच्छुक है। इस दृष्टि से उसके लिये किसी भी मुट में शामिल हो कर प्रचारण हो विश्व में तनाव की स्थिति पैदा करना उपयुक्त नहीं है।

(२) भारत मुझ को बुरे समयों के लिए प्रपन प्रभाव का उपयोग करना चाहता है किन्तु यदि किसी मुट विक्षय में सम्मिलित होने की उसने चेष्टा की तो उसका यह प्रभाव निविचन रूप में शीघ्र हो जायगा।

(३) भारत अपनी विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता को बनाय रखना चाहता है। यदि उसने किसी मुट विक्षय को प्रपना लिया तो उसे अनिवार्य रूप से विश्व की समस्याओं पर बही उस प्रयत्नाना पड़ेगा जो उसका मुट प्रपना रहा है। स्वर्गीय प्रभाव मन्त्रो व० मेहरू का स्पष्ट मत था कि किसी भी मुट में शामिल हो जाना अपनी राम का बसिरान करने के समान है। किसी मुट में शामिल होने की नीति को कारणों से सम्भाव्य है— प्रथम तो ऐसा करने पर भारत अपने भूतकाम से प्राप्त उन प्रायशों पर नहीं चल सकेगा जो उसकी विदेश नीति का आधार है। एक दूसरे उसका यह प्यब हार विश्व की बहुमान परिस्थितियों तथा पाश्चिमपठकों से भी निपट होया। हमने प्रतिरिक्त ऐसी सम्भावना भी कम विचार्य देती है कि भारत मुटब दो ग उत्पन्न नीति के रूप का संकलतापूर्वक संधानन कर ही लेगा।

(४) संसम्मता की विदेश नीति भारत के राष्ट्रीय हितों के अनुकूल है। बहुत से विचारक जो अन्तराष्ट्रियता की विदेश नीति को पष्ट मानते हैं वे भी इस प्रकार की नीति से संतुष्ट होंगे। स्वतन्त्र बर्नीक नीति काया म्तर में प्रत्यक्ष महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। भारत अपने प्राथमिक विकास क कार्यक्रमों को और अपनी योजनाओं की निधि के लिए बिहारी बहुयोग तक महायत्ना पर बहुत कुछ निभर है। संसम्मता की नीति उसके इस लक्ष्य को बनी प्रकार सम्भव बना रही है। किसी मुट में शामिल न होने के परिणाम स्वरूप ही यह सम्भव हुआ है कि भारत के सम्बन्ध विश्व के दोनों महाशक्ती देशों के साथ कायम है और साक्षियन कम तथा अमेरिका दोनों से एक ही साथ उगे महायत्ना मिल पा रही है। व० मेहरू के शब्दों में—'प्राथमिक राजनीतिक अथवा दूसरे प्रकार की महायत्ना प्राप्त करने के लिए यह बुद्धि

मता कुछ नीति नहीं है कि तुम अपने सभी प्रश्नों को एक ही टोकरे में रख दो।" हमारे जर्मनों में यह कहना चाहिए कि हम अत्येक प्रकार की सहायता के लिए किसी देश विशेष बचवा देशों के युद्ध विरोध पर ध्यान नहीं रख सकते। किसी एक युद्ध विरोध पर निर्भरता की यह नीति न केवल अयोग्य है अपितु भारत जैसे राष्ट्र के आत्मसम्मान के भी विपरीत है।

(३) भारत की औद्योगिक स्थिति में उसे अलग-अलग की नीति अपनाते को बाध्य करती है और यह सम्भव बनाती है कि वह स्वयं को युद्धों से अलग रख सके। हम विश्वीय युद्ध के साथ सैनिक युद्धबन्दी नहीं कर सकते क्योंकि विश्व के पश्चिम विंगीय या प्रमुख और अत्यन्त अतिव्यापी साम्यवादी देशों की सीमाएँ भारत की सीमाओं के समिकृत हैं। एक और साम्यवादी चीन की सीमा भारत की बरती को छूती है और दूसरी ओर मोरिया कस की सीमा भी केवल २० मील दूरी पर ही स्थित है। दुर्भाग्यवश साम्यवादी चीन से हम संघर्ष की स्थिति में हैं और यदि विश्वीय सैनिक क्षेत्रों में शामिल हो कर हमारे कस की सहाय्युक्ति भी दो ही तो यह हमारे सिधे विविध रूप से अहितकर होगी। भारत के निकटवर्ती साम्यवादी एवं अन्य देशों से वैश्वीय सम्बन्धों का हाना इसलिए भी आवश्यक है कि उनके आक्रमण की मूल म पाश्चात्य शक्तियों की सहायता उपयुक्त समय एवं प्रयुक्त मात्रा में प्राप्त नहीं की जा सके। दूसरी ओर यदि हम साम्यवादी देशों के अन्तर्गत म सम्मिलित हुंते हैं तो इनका स्पष्ट परिणाम अमेरिका एवं हमारे पाश्चात्य राष्ट्रों को अलग-अलग करना होगा जिससे उनके हाग से जाने वाली सतन् विज्ञान आर्थिक सहायता अवरुद्ध हो जाएगी और भारत का आर्थिक हाथा डुरी तरह लड़लड़ा जाएगा। इसके अतिरिक्त साम्यवादी देशों से हथारी बात-कटी होती इसलिए भी नहीं हो सकती कि अपनी अतीत की परम्पराओं के कारण हम साम्यवादी विज्ञान को अचछा नहीं मानते और हिंसात्मक एवं अमानवारी नीतियों तथा व्यवहारों को डुरी अिनाह म देखते हैं।

(४) अलग-अलग की नीति भारत की परिस्थितियों और उसकी परम्पराओं के अन्तर्गत है। ९ दिसम्बर १९३८ को उत्पत्तीय प्रबन्धनमन्त्री प० मेहता ने मोरिया में कहा था कि युद्धबन्दी में शामिल न होने की नीति का अर्थ है केवल बाणी ही है उसका अन्वयन नहीं किया है। यह एक ऐसी नीति है जो भारत की परिस्थितियों में भारत की प्राचीन विचारधाराओं में और विश्व की वर्तमान आवश्यकताओं में स्वाभाविक है। इस विचारधारा का मार भारत के लोगों के अस्तित्व म लक्ष्यगुता की विचारधारा का पाया जाता है। भारतीयों के इस परम्परा को अपने अन्तर्गतों और अिनाह से अतः अधिकार में पाया है। लक्ष्यगुता का विचार केवल युद्धों में ही सीमित नहीं रहा है बल्कि यहाँ की सामाजिक परम्पराओं में उसके आत्मिक रूप का अन्वयन हुआ है।

(५) भारत की विचारधारा आर्थिक राजनीतिक, आर्थिक एवं

सामाजिक जग में पश्चिमी तथा साम्यवादी गुटों के बीच की है और इसलिए यह प्राथमिक एवं स्वाभाविक बन जाता है कि उसकी विदेश नीति में ऐसे दोनों क बीच के मध्य का ही प्रबलत्वन किया जाए। भारत साम्यवाद की समानता बर्न मेर की समाप्ति सामाजिक सुरक्षा कोपण का अन्त धादि विचारों से सहमत है परन्तु उसमें पारि जाने वाली असहिष्णुता हिंसा स्वतन्त्रता का प्रभाव एवं समन धादि दोषों का वृणित दृष्टि में देखता है। इस प्रकार भारत पश्चिमी देशों की इस परम्परा से प्रभावित है कि व्यक्ति के ज्ञान एवं स्वतन्त्रता का मही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। किन्तु साम्यवाद के कथित इन दोषों में साम्यवाद की प्रतिबिम्बिता स्वकप जा वृणा एवं बहुता का बातावरण बनता है वह भारत के लिए एक उत्तमपूर्ण पहेला है जिस वह असहिष्णुता का प्रतीक मानता है।

पंडित मेहक ने यह ठीक ही कहा था कि "किसी गुट क साथ मैत्रिक सम्बन्धों में बंध जान के कारण मया उसके इतारे पर नाचना पड़ता है और माच ही प्रपनी स्वतन्त्रता बिभुस नष्ट हा जाती है। घत चाहे कुछ भी हो जाए हम किसी देश क साथ मैत्रिक सम्बन्ध नहीं करते। अब हम प्र-सम्भता (Non alignment) का विचार छोड़ते हैं ता हम अपना मङ्गल धाद कर बहन समते हैं। किसी देश से बंधना धारम सम्मान लाना है या बहुमूय निधि का बिनाध है।

भारत की असम्भता की नीति एक कलौटी पर

प्रसम्भता की भारतीय नीति की व्याख्या करने के उपरान्त अब हम यह संक्षेप में देखना चाहिए कि भारत ने इस नीति का अब तक कैसे प्रयोग किया है। इस नीति के इतिहास को मुख्यत तीन भागों में बांटा जा सकता है—१९४७ से कोरिया के युद्ध (१९५०) तक कारिया युद्ध से डितीय रतीय धाम निर्वाचन (१९५७) तक एवं १९५७ के बाद में अब तक।

1947 से 1950 के मध्य भारत की असम्भता की नीति बहुत प्युसी रही है और उसकी प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पश्चिमी गुट एक हद तक पराधीनक रही। पश्चिमी गुट की तरफ इस प्रारम्भिक ाव के कुछ बिना कारण से—उदाहरणार्थ सुरक्षा के मामले में भारत उन समय तक पूर्णतः पश्चिमी गुट पर आधरित था। भारत के सिद्धित बर्न पा पश्चिमी देशों का पर्याप्त प्रभाव धाया हुआ था और मर्षोन्नि धादिक दृष्टि से हमारा देश पश्चिमी गुट पर बहुत धादिक धाधित था। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद कुछ कास तक भारत का ध्यागतिक सम्बन्ध केवल पश्चिमी राष्ट्रों से था और देश के धादिक पुनर्निर्माण के लिए मङ्गलता सुरसन डियेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका से ही प्राप्त हो सकनी थी। धनः स्वाभाविक था कि इन परिस्थितियों में भारत असम्भता की नीति के नही राधने पर बसते हुए भी एकदम निष्पत्त नहीं रह सका। उदाहरणों द्वारा इन बात का प्रपनी प्रचार समझा जा सकता है। सर्वप्रथम पूर्वी जर्मनी के प्रति भारत की नीति एकदम निष्पत्त नहीं रही। बिनाशित जर्मनी में एन का (पश्चिमी

मठा पूरा नीति नहीं है कि तुम अपने सभी घबड़ों को एक ही टोकरे में रख दो।" दूसरे तर्कों में यह कहना चाहिए कि हम प्रत्येक प्रकार की सहायता के लिए किसी देश विशेष बचवा देशों के हुए विशेष पर ध्यान नहीं रख सकते। किसी एक गुट विशेष पर निर्भरता की यह नीति न केवल अपर्याप्त है बल्कि भारत जैसे राष्ट्र के धारमसम्मान के भी विपरीत है।

(५) भारत की भौगोलिक स्थिति भी उसे असंभवता की नीति अपनाएने का बाध्य करती है और यह सम्भव बनाती है कि वह स्वयं को गुटों से अलग रख सके। हम पश्चिमी गुट के साथ सैनिक गुटबन्दी नहीं कर सकते क्योंकि विश्व के पश्चिम विंगपी वा प्रमुख और प्रत्यक्ष लक्ष्यकारी साम्यवादी देशों की सीमाएँ भारत की सीमाओं के समीप हैं। एक और साम्यवादी चीन की सीमा भारत की करीबी को छूती है और दूसरी ओर पाकिस्तान उस की सीमा भी केवल २० मील दूरी पर ही स्थिति है। दुर्भाग्यवश साम्यवादी चीन से हम संबंधों की स्थिति में है और यदि पश्चिमी सैनिक नेमे में शामिल हो कर हमने उस की सहायता भी की तो वह हमारे लिये निश्चित रूप से अहितकर होगी। भारत के निकटवर्ती साम्यवादी एवं अन्य देशों से वैश्वीय सम्बन्धों का होना इसलिए भी आवश्यक है कि उनका आक्रमण की मूर्त में आक्रामक लक्ष्यों की सहायता उपयुक्त समय पर प्रयुक्त मात्रा में प्राप्त नहीं की जा सकती। दूसरी ओर यदि हम साम्यवादी देशों के नेमे में सम्मिलित होते हैं तो इसका स्पष्ट परिणाम अमेरिका एवं हमारे आक्रामक राष्ट्रों का अप्रमत्त करना होगा जिससे उनके द्वारा की जात वाली सतत विज्ञान आर्थिक सहायता अवरुद्ध हो जाएगी और भारत का आर्थिक ढांचा बुरी तरह सड़कड़ा जाएगा। इसके अतिरिक्त साम्यवादी नेमे से हमारी बाँट-कटी बोस्ती इसलिए भी नहीं हो सकती कि अपनी प्रतीत की परम्पराओं के कारण हम साम्यवादी विज्ञान को अज्ञान नहीं मानते और हिमात्मक एवं बयलकारी नीतियों तथा व्यवहारों को बुरी निमाह में देखते हैं।

(६) असंभवता की नीति भारत की परिस्थितियों और अचर्चा परम्पराओं से भेद लाती है। १ दिसम्बर, १९४७ का तत्कालीन प्रधानमंत्री ४० नेहरू ने लोकसभा में कहा था कि गुटबन्दी में शामिल न होने की नीति को अङ्ग्रेजों ने बचल बाणी की है उनका उत्पारन नहीं किया है। यह एक ऐसी नीति है जो भारत की परिस्थितियों में भारत की प्राचीन विचारधाराओं में और विश्व की वर्तमान आन्दोलनशास्त्रों में स्थायी है। इस विचारधारा का सार भारत के लोगों के अस्तित्व न सहिष्णुता की विचारधारा का पया जाना है। भारतीयों ने इस परम्परा को अपने परम्पराओं और इतिहास से अत्यधिकार में पाया है। सहिष्णुता का विचार केवल पुस्तकों में ही सीमित नहीं रहा है बल्कि यहां की सामाजिक परम्पराओं में उसके वास्तविक रूप का दर्शन होगा है।

(७) भारत की विचारधारा आर्थिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं

सामाजिक क्षेत्र में पश्चिमी तथा साम्यवादी युद्धों के बीच की छेड़ छोर इसलिए। यह आवश्यक एवं स्वाभाविक बन जाता है कि उनकी विदेश नीति में ऐसे तत्वों का बीच में मांग का ही प्रबलम्बन किया जाए। भारत साम्यवाद की उपासना करने के लिए ही समाजिक सुरक्षा कायदा का अन्त धारि विचारों से सहमत है परन्तु उसमें पाई जाने वाली असहिष्णुता हिंसा स्वतंत्रता का प्रभाव एवं समन धारि लोगों का वृष्टि से बेखतरा है। इस प्रकार भारत पश्चिमी देशों की इस परम्परा से प्रभावित है कि व्यापक ज्ञान एवं स्वतंत्रता का सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। किन्तु साम्यवाद के कथित इन दोषों में साम्यवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप का वृद्धा एक कटुता का बातावरण बनता है वह भारत के लिए एक असम्भवपूर्ण पहेली है जिसे वह असहिष्णुता का प्रतीक मानता है।

पंडित नेहरू ने यह ठीक ही कहा था कि "किसी युद्ध के साथ वैश्व सम्बन्धों में बंधन के कारण सदा उसके इशारे पर नाचना पड़ता है और साथ ही अपनी स्वतंत्रता बिम्बुम नष्ट हो जाती है। घट चाहे कुछ भी हो ज ए हम किसी देश के साथ सन्धि सन्धि नहीं करय। अब हम अ-सम्बन्धता (Non alignment) का विचार छोड़ते हैं तो हम अपना सङ्ग छोड़ कर बहने समत हैं। किसी देश से बंधना आत्म सम्मान लाना है या बहुमुख्य निधि का विनाश है।

भारत की असम्बन्धता की नीति एक कसौटी पर

असम्बन्धता की भारतीय नीति की व्याख्या करने के उपरान्त अब हमें यह सचेत में देखना चाहिए कि भारत ने इस नीति का अब तक कैसे प्रयोग किया है। इस नीति के इतिहास को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है—१९४७ से कोरिया के युद्ध (१९५०) तक कोरिया युद्ध से द्वितीय भारतीय आम निर्वाचन (१९५७) तक एवं १९५७ के बाद से अब तक।

१९४७ से १९५० के मध्य भारत की असम्बन्धता की नीति बहुत अस्पष्ट रही है और इसकी प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पश्चिमी युद्ध की एक हद तक पराभोयक रही। पश्चिमी युद्ध की तरफ इस प्रारम्भिक मुकाबले के कुछ विनाशकारण थे—उदाहरणार्थ सुरक्षा के मामले में भारत उस समय तक पूर्णतः पश्चिमी युद्ध पर आधारित या मांग के निर्दिष्ट बन्धन पर पाश्चात्य देशों का पर्याप्त प्रभाव छाया हुआ था और सर्वोपरि धारि वृष्टि से हमारा देश पश्चिमी युद्ध पर बहुत अधिक प्रभावित था। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद कुछ काम तक भारत का व्यापारिक सम्बन्ध सबसे पश्चिमी राष्ट्रों से था और देश के धारि पुनर्निर्माण के लिए अत्यावश्यक मुरयन विदेश एवं अत्यन्त राशय अमेरिका से ही प्राप्त हो सकती थी। अतः स्वाभाविक था कि इन परिस्थितियों में भारत असम्बन्धता की नीति के नहीं समने पर चलने हुए भी एकत्र निष्पन्न नहीं रह सका। उदाहरणों द्वारा हम बात का अपनी प्रकार समझा जा सकता है। सर्वप्रथम पूर्वी जर्मनी के प्रति मांग की नीति एकत्र निष्पन्न नहीं रही। विभाजित जर्मनी में एक ही (पश्चिमी

जर्मनी का) का पश्चिमी युद्ध से सम्बन्ध का कटनीतिक माम्यता प्रदान की गई जबकि हमारे (पूर्व जर्मनी) को यह माम्यता नहीं दी गई। भारत का यह तर्क कोई विवेक प्रदान नहीं करता कि उन्होंने पूर्वी जर्मनी को इसलिए माम्यता नहीं दी है कि ऐसा करना जर्मनी के विभाजन को मान लेना होगा। इसी तरह का बोझ बहुत कमपातपूर्व रूप कोरिया युद्ध के प्रारम्भ में रहा। न्यूयार्क राज्य अमेरिका और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों की तरह भारत ने भी एकदम बे-भिन्नता उत्तरी कोरिया को आक्रमण कोषित कर दिया जबकि वास्तु स्थिति यह है कि पश्चिमी देश आज तक भी अपने अपने के समर्थन में पूर्वोक्त विवेकसमय प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। यह सम्भावना ध्यान में बर्तमान है कि स्वयं दक्षिणी कोरिया ने ही उत्तरी कोरिया पर आक्रमण किया है। इन विषय में भी कम्पाकर मुष्ट का सिक्का है—भारत का निर्णय भी कोण्डापी (Kondapi) की रिपोर्ट पर आधारित था और यह रिपोर्ट उसके व्यक्तिगत विचारों से अत्यधिक प्रभावित थी।¹

१९२० से १९२७ के काल में सोवियत संघ के प्रति भारत के रुझान में कुछ परिवर्तन हुआ। इसके कुछ विवेक कारण थे। प्रथम तो १९२३ में स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत व्यवस्था में कुछ उबार ठरती का समावेश हुआ। दूसरे, सामरिक दृष्टिकोण से भी सोवियत संघ अधिक लक्षितकारी बना और जर्मने वास्तु राष्ट्र होने का पीरक प्राप्त कर लिया। तीसरे अमेरिका के साथ भारत के सम्बन्धों में कुछ ध्रुव घाने लगी क्योंकि १९४४ में अमेरिका और पाकिस्तान के मध्य एक रीतिक सन्धि हुई जिसके अन्तर्गत भारत के तीव्र विरोध के बावजूद अमेरिका ने पाकिस्तान को विहास वैधाने पर सहायता देने का निर्णय किया। फिर ताबा की समस्या के प्रति अमेरिकन रुझान में भी भारतीय जनमत का अमेरिका के विरुद्ध विरुद्ध कर दिया। अमेरिका के विरुद्ध लक्षित नाम फोस्टर ड्रैम ने सार्वजनिक तौर पर मोबा अ पूर्वकाल का समर्थन किया। इन परिस्थितियों में यह भारतीय विवेक नीति स्वभावतः सोवियत संघ के प्रति जिस भारतीय रुझान का हुन्सा समर्थन किया कुछ उदार एवं मूर्खपूर्ण नहीं। इन दोनों देशों के बीच इस बढ़ती ई मित्रता को परिष्कृत नहूँ और भी न्यून्वेब के प्रयत्नों में भी अधिक सशक्त कर दिया। सोवियत संघ के साथ केवल राजनीतिक सम्बन्ध ही प्रदान नहीं हुए बल्कि व्यापारिक सम्बन्ध में भी काफी वृद्धि हुई और भारत

1 " The Indian Cabinet decision on the matter was made after the receipt of a report from Mr Kondapi. The Indian delegate to the United Nations Commission of Korea ... The conduct of the Indian members in the U N Commission on Korea should be a matter of public scrutiny as there is ample evidence to indicate that they were guided more by personal prejudice than facts in making advices about the origin of the Korean War on June 25 1950 "

को उससे पर्याप्त प्राथिक सहायता मिलन सुची। इस काम में ही ने महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ घटी—स्वेज पर ब्रिटेन और फ्रांस का प्राबल्य तथा इज्जरी में सोवियत सङ्घ का हस्तक्षेप। स्वेज पर स पश्चिमी राष्ट्रों के प्राबल्य को दूर करने और मिस्र से आक्रान्ता फौजों को हटाने के मामले में भारत ने सोवियत सङ्घ के साथ पूर्ण सहयोग किया। इज्जरी की समस्या पर भी भारत की नीति प्रारम्भ में सोवियत सङ्घ का समर्थन करती रही।

१९४७ में द्वितीय धाम निर्वाचन हुए और इसके बाद से ही भारत की नीति पुनः पश्चिमी गुटों की ओर कुछ अधिक झुक गई। इसके भी कुछ कारण थे। प्रथम तो निर्वाचन में यह प्रकट कर दिया कि भारत में साम्यवादीयों का प्रभाव बढ़ रहा है। दूसरे १९४७ के रैस्मिन् प्राथिक सङ्घटन में दम में आक्रान्त और बिदेसी मुद्रा की बन्धी ने तथा द्वितीय पक्ष बर्षीय योजना की भावी असफलता ने भारत को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वह अग्रगण्यता की नीति पर अमल हुए भी यथासम्भव पश्चिमी गुट के साथ अपना सम्बन्ध बनाये। स्वयं कांग्रेस पार्टी के अग्रदलाल पश्चिमीयों का प्रभाव बढ़ा और महत्त्व मन्त्रिमण्डल में कुछ ऐसे लोगों का प्रवेश हुआ जिनकी सहायकभूति अमेरिकन गुट के प्रति अधिक थी। भारत की इस नीति में इस परिवर्तन का पहिले स्पष्ट संकेत इज्जरी की समस्या में भारत का इनके बदलने में मिला। जहाँ तक में इस बारे में भारत ने सोवियत सङ्घ का समर्थन किया था वहाँ बाद में वह अपनी पूर स्थिति से हट कर सोवियत सङ्घ का विरोध करने लगा। अब पश्चिमी एशिया और पूर्वी एशिया में पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध भी भारत बहुत अग्र अग्रान से करने लगा। बिदेसनाम सङ्घटन में भारत की अस्पष्ट रूपमुक्त नीति भी परिस्थितियों का परिणाम कही जा सकती है।^१

1 (a) "Nehru projected the policy of Non-alignment not merely because he believe that international peace could best be preserved by keeping India out of any military entanglement with either bloc because he was drawn both to the political principles of western democracy and to the economic principles of Soviet Socialism but also because he wanted a free hand in furthering the escape of captive people from the custody of any great power... Gradually however as India became more absorbed by her own vast economic problems and with mounting anxiety sought substantially aid from the West the Nehru Government grew less concerned about colonial liberation and not without a measure of self importance concentrated its efforts upon securing international peace by appointing to mediate in the quarrels of the great powers.

नवम्बर १९६२ में चीन द्वारा भारत पर विज्ञान पैमाने पर प्राक्कनय क्रिये जात्र पर समझौता की नीति की सखि परीक्षा हुई। एशिया के लोगों ने यह बात की बने मगी कि समझौता की नीति पूरा समझन हो चुकी है, घट बच क दिन म इसका जस्की घ बरवा परिल्याय हुना चाहिये एकिन राष्ट्र के साथ समझौता शौकफास्ट मे की मेहक ने स्पष्ट बापरमा की कि भारत समझौता समझौता की नीति का अनुसरण करता रहेगा। चीन के प्राक्कनय और विज्ञानकय प्राक्कनय क बापर भारत को कुछ गम्भीर वैदिक पराजयो का सामना करना पडा और भारत सरकार की प्रीस पर समझौता क डिस्टेन मे सहायता क बहुत बड़ी मात्र म जस्वाहन भारत पहुचे। इस समय पर विज्ञानियो को बसम तथा की नीति की प्राप्तायन करन का और उम कार्य पनाके का एक और प्रवसन मिया। यह कहा ज न मगा कि जब सम्पूर्ण बिग्न ही हो त्रिरोपी गुटो म विभक्त है तो भारत द्वारा समझौता की नीति का प्रवसन करना पूरा जस्वाहनकारिक है। म रठ हो गुटों म से-माध्यम गृह के प्रमुख मन्त्रव चीन के साथ वजूरत है और उमका सामना करने के निवे प्रवेरिक्त पर द्वारा वैदिक मन्त्र तथा के रडा है। मत इन परिस्थितिया म समझौता की नीति की कोई बज्रन मगी रही है और समय या गया है कि भारत को एक प्रवनी स्थिति का पुनर्निधा म रडा जस्वा म कर मना चाहिये। यद्यपि स्वय एकिन नकत को घानी प्राप्तायन म गहरा साफल पहुचा का डिन्नु फिर भी के विज्ञानियो और प्राक्कनयों क तर्कों के सामने परास्त मगी हुए और जस्वाते यह काते से हज्ज कर दिया कि समझौता की नीति जाकली है प्रववा बेत के निवे प्रवेरिक्तारी है। उन्होने पही कहा कि भारत के एक में यह नीति सर्वोत्तम है तथा के समझौता अनुसरण करते रहेंगे। श्री मेहक का प्रवम तक यह बा कि प्राक्कनयकारी का मुबाबता करने क निय भारत ने ज्वा मा मन्त्रासन की सहायता मी है उनके साथ क्रिमी प्रसार की राजनीतिक या बन्ध घर्त मगी मगी है। नीति की घर्तन सहायता का लेने का परिभाषा समझौता की नीति से दूर हुना मगी पडा ज्वा मरुता। समझौता की नीति के प्रयोचकों को इस नीति के समर्थक म म बनारा उत्तर दिया कि यदि इस नीति का परिस्वाग कर दिया गया तो भारत चीन-नीम समझौता युद्ध का एक प्रज्ज बन जाएगा और उम भारत चीन विचार १०० वर्षों के भी हज्ज मगी हो सकेगा। इसके प्रतिरिक्त इतिहास बनाना है कि गुटों की नीति कमी मी मगी म म पराजय मगी हो मगी है। अमेरिका के समर्थन के बावजूद न तो अरिया और जर्मनी का परीसरण हो सक्ता है और न पाकिस्तान का बावनीर मिल मगा है। इसलिये यह प्राया करना निती मूवता होगी कि यदि

- (b) Since 1957 India has tended to be content with a rather
 -- rule internationally than hitherto by contrast
 with either Egypt or Yugoslavia to be more moderate
 less stridently radical and revisionist even on anti-
 colonial issues

भारत पाश्चात्य राष्ट्रों के घुट में या साम्यवादी घुट में मिला गया न इस उमंग साम्य हुए प्रान्त ब्रह्मन भिम जाये।

भारत सरकार की घोर स यह एकदम स्पष्ट कर लिया गया कि देश अपनी रक्षा के लिय सभी मित्र राज्यों से सहायता सेवा परन्तु घातकता की नीति का परित्याग नहीं करेगा। भारत की सभ्य क या मित्रम्बर १९६५ में भारत घोर पाकिस्तान के घुट में घमसंगता का नीति का नाश को एक बार फिर सहा सिद्ध कर दिनाया गया। पाकिस्तान सीटा घोर मटो केस नाशगामी सैनिक घुटो का साम्य होने पर भी किसी से को प्रयत्न महायता प्राप्त नहीं कर सका। टर्नी घोर ईमान न उसे सी क सहायता देम का साधन निया भी ता सभ्य राज्या के विनाप भिमम पश्चिमी राज्य भी सम्मिलित स के कारण पाकिस्तान की मड पर बाय नहीं। इस घुट में पाक बल्लिबाध से यह निश्च हो गया कि राष्ट्रीय सुरक्षा क लिय घुटो में सम्मिलित होने की नीति मसत है। बात यही यह भीमिन नहीं गी। पाकिस्तान क बहुत बड़े समर्थक समुक्त राज्य अमेरिका न भारत घोर पारिस्तान दोनों पर प्रापित प्रतिद्वन्द्व मगा लिये घोर यह सापरा की कि जब उन दोनों पक्ष घुट बन नहीं कर सेंगे तब उन्हें किसी भी प्रकार की सैनिक सहायता नहीं दी जाएगी। स्पष्ट हा अमेरिका न अपनी इस घोषणा द्वारा एक साथी राज्य घोर घमसंगन राज्य को एक ही कोटि में रगा। जब घुटों में सम्मिलित होने में पाकिस्तान की भी साम नहीं पहुच सका तो फिर भारत को साम पहुचने की क्या आशा की जा सकती थी। सास्त्र में देखा जाए तो यह सहायता की नीति का ही परित्याग था कि एकदम की घातकता में भारत को घमसंगता में घमसंगन निम्ना घोर यह क गम सको बटनीतिक स्थिति किनी तरह कमजोर नहीं हुई। सुरक्षा परिषद में यह पर बहुम के घोरन भी सोचियन सभ द्वारा उसे पर्याप्त गमयन दिया गया। भारत पाक यह ने घमसंगता की नीति की सच्छता को घमिम रूप से सिद्ध कर लिया।

घमसंगता का नीति को नहुक युग में घाता स अधिक सच्छता प्राप्त हुई घोर साम्यवादी उगत स पश्चिमी समार दोनों ही भारत क विचारों की उमट निपुण घमसंगता की नीति को बड करने रहे। श्री मेहक ने बडोरतम घातकताओं के बावजूद भी अपना नीति की सुनतापुन रक्षा की। मई १९६४ में उनको मृत्यु के उपरान्त घोर घरा बदल की पान सरी कि भारत घमसंगता की नीति का घमसंगता सम्भवतः नहीं कर पाएगा। लेकिन अनिश्चितता के बावजूद सुम्न ही मिट दन घोर पद घमस करले ही स्वर्गीय भारत प्रपनमेंनी पाणबहुतर शास्त्री न पाक नशों में यह घातकता कर दी कि भारत क घमसंगता की नीति सरोत्तम है तथा यह उमका किसी भी घम में पारिस्तान नहीं करेगा घोर जब जनवरी १९६६ में श्री कृष्णी का घमार्थ क निश्चन हा गया तो उसकी उत्तराधिकारिणी श्रीमती देवनाथी ने भी इसी नीति पर बहिम रहन का राष्ट्र स बिज को संदेश दिया। आज भारत बठिन प्राधिक घोर घोरण गाय विनि स पीड़ित है। यह बिज के दोषों सेमों से

प्रायिक धीरे धीरे सहायता का मातापी है। साथ क मामले में उसे प्राथमिक अमेरिकन सहायता पर निर्भर रहना पड़ रहा है किन्तु फिर भी समतलता की नीति पर बसते रहने का भारत सरकार का बृह निश्चय है। अमेरिका की नाराजगी क बावजूद बिदतनीम के मामल में गत ने अपनी पूर्ण नीति जारी रखी है और यह मांग की है कि अमेरिका को विद्यमान पर बन्धारा बन्द कर देना चाहिए। कुछ लोगों का यह कहना है कि जून १९५५ में भारतीय दाये का जो धनसूच्यन किया गया वह अमेरिकन दबाव का ही परिणाम है और भारत सरकार पर अमेरिका का प्रभाव पड़ने लगा है। इस विषय में भी यही कहना उचित है कि समतलता की नीति के परिवर्तन के ठोस ब स्पष्ट सबल पर्याप्त संकेत नहीं हैं। साथ ही समतलता की नीति ही भारत की विदेश नीति का मूल आधार है।

() शांतिपथ की नीति
[Policy of Peace]

भारत की विदेश नीति सर्वत्र विश्व शांति एवं सुखशा की धोर प्रसार होगी रही है। शांति भारत के लिए न केवल प्रोत्साहन माता है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय नीति की पवित्ररुत में २३ अगस्त १९४४ को कहा था "यदि समय मिले तो भारत के लिए स्वयमेव प्रथम रूप से विश्व शांति बनन का पूरा मौका है भारत को इन बात की बहुत चिन्ता है कि उसकी प्रवृत्ति को तथा सामान्य रूप से मानव जाति की उत्थिति का संकेत में टालने वाला कोई युद्ध न हो।"

युद्ध धीरे धीरे नवोदित भारत के प्रायिक विकास को धक्का करने वाला है फिर चाहे वह युद्ध देश में हुआ हो अथवा अल्पक। १९४९ के स्वेज नहर के अल्पकालीन संकट में भारत की दो पक्षधरणीय यात्राओं को अतिरिक्त धन्य-साध्य तथा बिकल्पित बना दिया था। १९५२ के भारत चीन और १९५३ के भारत-पाक गणनों में भारतीय प्रायिक ध्येयका को अक्षरत होता था और १९५७ के अरब-इजरायल युद्ध क कारण स्वेज मार्ग का अक्षरत होता है। एही सब कारणों को अपनी रानी दृष्टि में देखते हुए भारत के सक्रिय युवा स्वर्गीय की सहक में १२ जून १९४५ को इन सभों में भारत की शांतिवादी नीति की घोषणा कर दी थी—

"हमारी पहली नीति ता यह होनी चाहिये कि हम किसी भीपक्ष प्रायिक (दुर्नीय महायुद्ध जैसी) को घटित होने से रोकने की नीति हमने बचन की हानी चाहिये और तीसरी नीति ऐसी स्थिति बनाने की हानी चाहिये कि यदि युद्ध घटित जाए तो हम इसे रोकने में समर्थ हो सकें। मैं यह चाहता हूँ कि जिनका मैं ऐसे देशों का क्षेत्र अतिरिक्त किन्तु हो जो यह निश्चय करें कि यदि युद्ध भी हो जाए, वे युद्ध में सम्मिलित नहीं होंगे।" — मैं चाहता हूँ कि मेरे इन युद्ध की घटना होने पर शांति रहे। एतदुपेक्ष में प्रगत न करें

अन्य प्रदेशों में होने वाले युद्ध के क्षेत्र को सीमित करें अपने प्रवेश की रक्षा करें और दूसरों के प्रवेश को मुरझित बनाने का भी यत्न करें।

इतिहास यह प्रमाणित करता है कि भारत ने कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया और आज भी यह ऐसा नहीं करना चाहता। भारत विश्व में सर्वत्र एक जातिप्रिय राष्ट्र रहा है और उमड़ी दुःख आस्था इसी बात में है कि सभी राष्ट्रों को अपने सभी मतभेदों का निपटारा जातिपूर्ण उपायों का अक्षयम्बल करके करना चाहिये। भारत ने अपने बापों द्वारा अपनी नीति की पुष्टि की है। अपनी भूमि पर आक्रमण करने वाले पाकिस्तान और साम्यवादी चीन के प्रति भारत ने इर्मी नीति का अनुसरण किया है। १९४७-४८ में पाकिस्तान ने आक्रमण किया भारत ने संयुक्त राष्ट्र सत्र में शिकायत का और सत्र के घाबरे के अनुपासन में युद्ध बिराम का स्वीकार किया। १९६२ में चीन ने भारत पर हमला बना और युद्ध बिराम के पश्चात् में अब तक भारत शान्तिपूर्ण ढंग से उसका साथ बिबादों का हरा करने का प्रयत्नशील है यदि कोई हठ या क्रिद है तो वह चीन ही की तरफ ग है भारत की तरफ ग नहीं। १९६५ में पाकिस्तान ने पहिले कश्मीर और फिर काश्मीर पर आक्रमण किया। भारत पान गंधर्प हुआ और पूरी तरह बिजता होते हुए भी गयुन राष्ट्र गंधर्प के घाबरे पर भारत ने युद्ध बिराम को स्वीकार करके तथा बाह में तानकन्य समझौते को मान कर जातिवाद की अपनी नीति का जो परिचय दिया था निश्चित रूप से बिद्व के अन्य राष्ट्रों के लिये अनुकरणीय उदाहरण है।

(३) समस्त देशों से मैत्री की नीति [Policy of Friendship]

भारत की बिदेश नीति की एक प्रमुग बिगेरता यह है कि वह एशिया के देशों से और अन्य पड़ोसियों से तथा बिश्व के प्रत्येक राष्ट्र से मित्रता का हर सम्भव प्रयास करता है हालांकि कभी-कभी मैत्री के इन घाबहान को बढ़ा करार अनुभव प्राप्त होता है। भारत ने अघिन में अघिन देशों के साथ मैत्री-संधिया और ब्यापारिक-समझौते किए हैं। इनमें से उदाहरण स्वरूप कुछ अस्थायीय समझौते अथवा संधिया ये हैं—भारत-सिन्डूरसैण्ड मैत्री संधि (१४ अगस्त १९४८) भारत-अफगानिस्तान शांति संधि (८ जनवरी १९३०) भारत-नेपाल मैत्री संधि (३१ जुलाई १९३०) भारत-बिबिध शांति संधि (३ अक्टूबर, १९३०) भारत-टर्की मैत्री संधि (१४ दिसम्बर १९३१) भारत-मीरिया मैत्री संधि (२३ फरवरी, १९३२), भारत-जापान शांति संधि (६ अग १९४२) भारत-फिलिपाइन मैत्री संधि (११ जुलाई १९३२) भारत-ईराकी मैत्री संधि (१० नवम्बर १९३२) भारत-मिय मैत्री संधि (६ अग १९४४) आदि।

ब्यापारिक रूप में देशों काय तो पाकिस्तान साम्यवादी चीन पुनर्मान और बहिष्ठी अघिता के ४ देशों को अथवाद रूप में छोड़ कर बिश्व

(४) परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच सतुल्यता का कार्य करना
(Maintenance of Balance between the Power Blocs)

भारत की विदेश नीति में विश्व में परस्पर विरायी गुण के मध्य सतुल्यता का कार्य किया है। समकालीन नीति के कारण और शक्तिपूर्ण देशों का साथ हान के कारण भारत ने यह कार्य के लिए सर्वाधिक प्रयत्न देश माना जाता रहा है। यद्यपि अत्यन्तैतिक और आर्थिक दृष्टि में विश्व का एक कमजोर राष्ट्र है तथापि अन्तर्गत विश्व की परिस्थितियों में नतीजों गुटों की शक्ति का समतोल सतुल्य शक्ति के अन्तर्गत विविध अन्तर्गत विचारों में समतुल्यता का कार्य करने की दृष्टि में भारत की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण रही है। कारिया हिन्दू आतंकी में समतुल्यता को सुनिश्चित में भारत ने भाग लेने का कार्य जिस महत्त्व का साथ किया उसको प्रथमा दानों की पूर्ण द्वारा की गई है। भारत में समुक्त राष्ट्र मध्य में और उमरु बाहर मईक प्रपनी बिबेक दृष्टि के आधार पर एक स्वतन्त्र नीति का अनुसरण किया है। इसीलिए जहाँ भारत ने पाश्चात्य राष्ट्रों की नीतियों को उचित हाने पर समर्थन प्रदान किया है वहाँ समुचित शक्ति पर उनका विरोध भी किया है। उक्तका महा दृष्टिकोण साम्यता। राष्ट्रों पर प्रति भी रहा है। जहाँ स्वतन्त्र ब्रिटेन फ्रांस और इत्यादि का अनुसरण भारत की निम्न का विषय रहा है जहाँ हुरीयों में सोवियत संघ के स्वतन्त्रता का भी भारत में समुचित बताया है। कोरिया में आक्रमण की स्थिति पैदा होने पर भारत ने उमकी निम्न की थी लेकिन साथ ही यह भी चेतावनी दी थी कि दक्षिणी कोरिया की सहायता करने वालों समुक्त राष्ट्र संघाय फौजों का ३८^० अक्षांश रेखा के उत्तर में नहीं बढ़ना चाहिए। कारिया के मामले में भारत की स्वतन्त्र नीति में ज्ञान मपाई बीस अक्षि-अक्षांश के मरुतों का भी अन्तर्गत में हाल किया था क्योंकि इसमें भारत ने पहिले उत्तरी कोरिया के विरुद्ध कार्यवाही में समुक्त राष्ट्र अमेरिका का साथ दिया बाद में चीन को आक्रामक भावित करने के प्रस्ताव पर अमेरिका का समर्थन नहीं किया और मई १९५१ में चीन को सामरिकतामयी भेजने पर प्रतिबन्ध लगाने प्रस्ताव पर भारत तटस्थ रहा।

(५) साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद धारि का विरोध
(Bitter opposition of Imperialism and Colonialism)

चेता कि पहले कहा जा चुका है भारत में मई के आन्तरिक और उपनिवेशवाद का विरोध करने की नीति अपनाई है क्योंकि भारत स्वयं पर मध्ये धरते एक परतन्त्रता का अनुसरण कर चुका था। भारत की नीति नीति का यह एक प्रमुख सिद्धान्त रहा है कि बहु पराधीन देशों की स्वायत्तता का सर्वेक समर्थन करे और उनके स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयागों में समतुल्यता शक्तिपूर्ण अंग में महायुक्त बने। अतिहास साक्षी है कि भारत ने शोषण में अज्ञानगिया को स्वतन्त्रता प्रदान करवाने हेतु दिसती में एगिया राष्ट्रों का एक विनाश समर्थन आवाजित किया था। तब ही है एगिया और अरीक का विविध राष्ट्रों की स्वतन्त्रता में भारत का प्रत्यक्ष अथवा अत्यन्त आन्तरिक रहा है। उदाहरणार्थ अतिरिक्त राष्ट्रों की स्वायत्तता में भारत का

भारत ने समुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न वर्गों और विश्व सम्मेलनों में सक्रिय रूप से भाग लेकर घनेक महत्वपूर्ण कार्य किया है। बहु-संघ के अफ्रीका-एशियाई युद्ध का एक प्रमुख सदस्य है जिसने संघ के मंच पर घनेक रीष एवं व्यापपूर्ण विषयों पर अपना पुरजोर समर्थन दिया है। भारत ने घाज तक कभी अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन नहीं किया। भारत पाक मध्यक दौरान पाकिस्तान द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने के घनेको उदाहरण हाते हुए भी भारत द्वारा उसका एक भी उल्लंघन नहीं किया जाना एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसी तरह अपनी भूमि पर पाकिस्तान के नग्न आक्रमण के समय और युद्ध में प्रसंघनीय रूप से विजैता के रूप में प्रकट हान पर भी भारत ने संघ के आदेशों का पालन करने में जो उत्तरता लिमाई है उससे इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के प्रति भारत की घास्था भसी प्रकार प्रकट हो जाती है।

(८) सहसंस्थित्व में विश्वास
(Faith in Coexistence)

भारतीय विदेश नीति की घपनी एक नीतिकला यह है कि असात्मता की नीति पर चलत हुए भारत ने सबसे इन बात का पल लिया है। कि विश्व में परस्पर विरोधी विचारधाराओं में सहसंस्थित्व की भावना पैदा हानी चाहिये कि एक दूसरे को कुचलने का। द्वितीय महायुद्ध के बाद जब विश्व के दोनों अतिश्यासी युद्ध एक दूसरे को कुचलने प्रयत्न इबाध की नीति अघनाने लगे मये तब भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय प० नेहरू ने घपने पंचशील के सिद्धांतों के अन्तर्गत जिनका उल्लेख आये किना जाण्गा सहसंस्थित्व के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो प्रथम विश्व की महाकतिमी द्वारा भी प्रायः अन्वहार में माने जाने लगे है यद्यपि दुराग्रही साम्यवादी चीन पर यह बात लागू नहीं हाते। प० नेहरू का यह कथन प्रायः ही उतना ही महत्वपूर्ण है कि आधुनिक विश्व में सहसंस्थित्व का अस्वीकार करने का दूसरा विकल्प सह-विनाश है।

(९) साधनों की परिचिता का सिद्धांत

भारत को राष्ट्र पिता महात्मा गांधी से विरामत के रूप में यह शिक्षाम मिला कि यदि पहिले कोई बड़ा या छोटा कार्य करना चाहना है तो उसके लिए साधन ही नैतिक और अर्थ ही अघनाने पड़ेंगे। नैतिक तथा अनुचित साधनों के अघनाने पर प्राप्त होने वाला फल रीमा नहीं होगा रीनाकि माया गया है। दुनये इन्नों में भारतीय बौद्धिक नीति में और भारतीय परम्परा तथा संसृति में साधनों को ही उगना ही महत्वपूर्ण माना गया है जिनका कि साधनों को। अघमरवादिता और अध्ये या कुरे चिन्तो भी साधन से अघने साधनों को प्राप्त करने की नीति भारतीय बौद्धिक नीति और संसृति से अनेक नहीं पाती। भावना और साधनों का नैतिक कानून के अनुकरण होने का विचार आधुनिक युग में सर्वाधिक स्पष्ट रूप से महत्त्वा गांधी द्वारा अघनन किया गया या रीत्रे हमारे प्राचीन धर्म शास्त्रों में इस विषय पर अनेक

बहुत बड़ा हाथ रहा है तथा दूनिस्सिया और पश्चीरिया की स्वतन्त्रता को भी भारत का पूर्ण समर्थन मिला है। भारत द्वारा परन्तु राबो की स्वतन्त्रता हेतु प्रान्त की गई महादत्ता का उल्लेख करते हुए संयुक्त परब मरुगाम के राष्ट्रपति मारिन न बहा का वीसेस्टारन गीबिया दूनीस्सिया और मोरको की घटनाओं का बर्णन इस बात का माली है कि भारत द्वारा स्वतन्त्रता के काम में कितना महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है।

(१) जातीय एवं वर्ग-भेद की नीति का विरोध
(Opposition to Racial Discrimination)

भारत सभी जातियों को विकास के समान अवसर प्रदान करने का पक्षपाती है। इसका विश्वास है कि विश्व के सभी देशों के निवासियों में एक ही मनुष्यता होनी है उनके बीच जाति एवं धर्म के आधार पर ऊच-नीच के सम्बन्धों की स्थापना करना जग्यायपूर्ण है। जातिवाद का विरोध भारत के इतिहास का एक स्वाभाविक परिणाम है। जातीय भेदभाव को जारनों से अनुचित है—प्रथम तो यह मानवता के विरुद्ध है और दूसरे, विश्व में सबको की स्थापना करके जाति और मुरसा के विरुद्ध है और प्रथम दक्षिणी अफ्रीका में घपनाय मये वर्ग भेद (Apartheid) की नीति द्वारा प्रचामी भारतीयों के प्रति और प्रत्येक के प्रति होने वाला अन्य प्रमहतीय है परन्तु भारत इसे मनुक्त राष्ट्र मन्त्र के माध्यम से शान्तिपूर्ण ढंग से दूर करना चाहता है। यह कोई हिंसात्मक माधन घपनायै जाने के पक्ष में नहीं है। भारत मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय का प्रदान समर्थक है और मन्पूर्ण विश्व में नीचिख स्वतन्त्रताओं की स्थापना का समर्थन करता है।

(२) संयुक्त राष्ट्र सघ का समर्थन
(Support to U N O)

भारत विश्व शांति एवं सहयोग का समर्थक होने के लिये प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का समर्थन करता है और उसके मन्नों को मरुसतापूर्वक क्रियान्वित करने में अपना पूरा पूरा सहयोग प्रदान करता है। संयुक्त राष्ट्र मंत्र एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मन्सार के राष्ट्रों ने प्रायः उन सभी मन्व्यों को पाने का संकल्प लिया है जो भारत की विदेश नीति का मन्व्य है। सब का प्रमुख उद्देश्य है मन्सार में शांति की स्थापना कर के सभी देशों के बीच सहयोग एवं प्रेमपूर्ण सम्बन्धों की रचना करना। यह साम्राज्यवाद और अतिविशेषवाद का विरोध कर मानव के मूल अधिकारों तथा स्वतन्त्रता में विश्वास प्रकट करता है। साथ ही यह सभी प्रकार के मन्नों या विचारों को बाधनीत एवं अन्य शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा मूलमन्ने का पक्ष पाती है। स्पष्ट है कि मंत्र के इन सभी मन्नों के माय भारतीय विदेश नीति का पूर्ण तरह से समायोजन हो जाता है। सब भारत के लिए एक सहायक है और उनके राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का एक प्रमुख प्रमावधायी एवं न्यायोचित मार्ग है, यह बात दूसरी है कि कोई-कोई शक्तिशाली पश्चिमी राष्ट्रों की मन्व्यकारी नीति मंत्र में भारतीय हितों को शान्ति पहुचाने की चेष्टा करती रही है।

भारत ने समुक्त राष्ट्र मंच के विभिन्न बयानों और विशेष परिचरणाओं में सक्रिय रूप से भाग लेकर घनत्व महत्वपूर्ण काम किया है। यह सपने के अफ़ा-एशियाई गुट का एक प्रमुख सदस्य है जिसने सपने के मंच पर घनेक बयान एवं ग्यायपूर्ण विषयों पर अपना पुरजोर समर्थन दिया है। भारत ने आज तक कभी अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन नहीं किया। भारत-पाक मंचप के दौरान पाकिस्तान द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने के घनेक उदाहरण होते हुए भी भारत द्वारा उसका एक मा उल्लंघन नहीं किया जाना एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसी तरह अपनी भूमि पर पाकिस्तान के गन धात्रमण के समय और युद्ध में प्रतंसनीय रूप से बिभ्रता के रूप में प्रकट होने पर भी भारत ने संघ के धात्रेयों का पालन करने में जो तदरता दिशलाई है उससे इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के प्रति भारत की धात्रेय मसी प्रकार प्रकट हा जाती है।

(८) सहस्रस्रस्रस्र में बिरबात
(Faith in Coexistence)

भारतीय बिदेश नीति की घपनी एक मौसिकता यह है कि घमममता की नीति पर चलते हुए भारत ने सदाक इन बात का पख लिया है। कि बिरब में परस्पर बिरोपी बिचारधाराओं में सहस्रस्रस्र की माबता पना हाती चाहिये न कि एक दूसरे को कुचमने का। श्रियोय महासुद्ध के बाद जब बिबन के बानों मल्लिमामी सुट एक दूसरे को कुचमन घपबा दपाक की नीति घपनाने सग पये तब भारत के तत्वासीत प्रबात मत्री स्वर्गीय प० नेहरू ने घपने पंचशीम के सिद्धांनों के अन्तर्गत बिबता अन्तेक धामे बिगा जातया महस्रस्र स्व के सिद्धांता का प्रतिपादन किया जो घब बिबन की महास्रस्रिया द्वारा भी प्रायः ब्यबहार में माने जाने सगा है यद्यपि बुराघड़ी साम्यवादी बात पर यह बात लागू नहीं होती। प० नेहरू का यह कबल धाम भी अतना ही महत्वपूर्ण है कि बाबुनिक बिबन में सहस्रस्रस्र का घस्वीकार करने का घुररा बिबल्य सह-बिताग है।

(९) सापनों की पबिभ्रता का सिद्धांत

भारत की राष्ट्र पिला महात्मा गांधी से बिरामत के रूप में यह शिराम मिला कि यदि पहिले कोई बड़ा या छोटा काम करना चाहता है ता उगरे लिए माघन की नैतिक घोर धेष्ठ ही घपनाने पड़ेंगे। नैतिक तया अनुबिध सापनों के घपनाने पर प्राप्प होने वाला फल नैना नहीं होगा नैमाकि माभा गया है। घुररे न्घनों में भारतीय बदेनिक नीति में घोर भारतीय परस्रग तथा संस्रुति में सापनों को भी अतना ही महत्वपूर्ण माना गया है बिबना कि सापनों को। घपमरबादिता घोर घपने या घुरे बिसी भी सापन से घपने सापनों को प्राप्प करने की नीति भारतीय बदेनिक नीति और संस्रुति से मेन नहीं मानी। माबन घोर सापनों का नैतिक कानून के अनुकूल होने का बिचार घापुनिक सुम में लर्बाधिक स्पष्ट रूप से महात्मा गांधी द्वारा ब्यबध किया गया या बने हमारे प्राचीन धर्म शापनों में इस शिषय पर घनेक

संस्थितियों पहुँचे से ही उपलब्ध है। स्वयं भारतीय मन्त्रिमन्त्र में कहा गया है कि राज्य—

- (क) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का;
- (ख) राष्ट्रों के बीच व्यापक एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का
- (ग) अपठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि सम्बन्धों के प्रति ध्यान बढ़ाने का
- (घ) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का मध्यस्थता द्वारा निगटारे के लिए प्रोत्साहन देना;
- इत्यादि का प्रयत्न करेगा।

अपनी इस धारसंबाधिता से प्रेरित होकर ही भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति सश्रिय सहयोग की नीति अपनाई है। २० नवम्बर १९४३ को बुनगानिन और तुन्बेब की वाक्य के समय बोधते हुए स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने कहा था कि हम इस बात में विश्वास करते हैं कि वा सत्य प्राप्त किये जाए वे अच्छे होने चाहिये। माय ही इस बात में जी विश्वास करते हैं कि सामन भी अच्छे ही अपनाये जान चाहिये। ऐसा न किये जान पर नई-नई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं तथा स्वयं मकलम भी बहस पाता है। एक समय भारत पर अश्लील कहा था कि हर्म सुराहियों का विरोध करना चाहिये किन्तु किसी बड़ी सुराई द्वारा नहीं। हिंसा और पुष्पा का अधिक हिंसा प्रपञ्च पुष्पा द्वारा जमान नहीं किया जा सकता। अपनी इसी दृष्टिकोण के आधार पर भारत ने अपनी विदेश नीति के अन्त्यात्म धारकों को अपनाया है। जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को दूर करने में बातचीत करना पंच कैनने एवं मध्यस्थता का प्रयोग करना शक्ति के प्रयोग प्रथम प्रयोग की जमकी को भी दूर रखना शक्तिपूर्ण सहप्रतिस्पर्ध के सिद्धान्तों को मानना भीत पुत्र का विरोध करना तथा साम्यवादी और वेर साम्यवादी दुटों के बीच असमानता एवं असम रहने की नीति को अपनाया था।

(१०) पंचशील के सिद्धान्त (Principles of Panch Sheel)

भारतीय विदेश नीति का प्रधानतम सिद्धान्त "पंचशील" के नाम से विख्यात है। यह विदेश नीति की वाचारविज्ञाना है जिसे अहमप्रतिस्पर्ध का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। श्री नेहरू के शब्दों में दो व्यवस्थारों एक औपचारिक तथा दूसरी एकमवादी—अर्थात् शस्त्र मुसश्रिभत शक्ति से एक दूसरे के सामने खड़ी हैं। पुत्र की इसी अधिक सँपारी की वा चुकी है कि कोई पुत्र सम्भव नहीं है। प्रत्येक पुत्र को अपने को बचाना है और शक्ति के लिये शस्त्रों का वेर मवाया जाना है इस पूर्णतः विश्वट्रियम स्थिति में भारत का एक लकारात्मक अनुयाय है—पंचशील।

'पंचशील' स्वयं में कोई नया शब्द नहीं है। यह से लगभग छह दशक

वर्ष पूर्व महारमा बुद्ध ने इस लक्ष्यों का प्रयोग करते हुए अपने अनुयायियों को पाँच बातों—सहिता प्रस्थेम, इण्डियर्ष सत्य भावण धीर मत्त—यान विशेष का पालन करने का उपदेश दिया था। प्राधुनिक युग में इण्डोनेशिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० सुकार्णो ने १ जून १९४३ का अपने संवैधानिक नीति के आधार के रूप में पञ्चशिला (Panjashila) प्रस्ताव १। सिद्धान्तों का घोषणा की जो इस प्रकार हैं—अपने लोगों में विश्वास या 'रुद्रबा' मानवता में विश्वास स्थापितता में विश्वास सामाजिक न्याय में विश्वास एवं ईश्वर में विश्वास।

परन्तु इन सब से ऊपर भारतीय पंचशील ने एक विशेष महत्त्व ग्रहण किया। जहाँ बौद्ध पंचशील व्यक्तिगत आचरण के नियमों की सहिता या जहाँ इण्डोनेशिया की 'पञ्चशिला' उस देश के स्वातन्त्र्य संग्राम के लक्ष्यों की स्वदेश की नीति सम्बन्धी घोषणा या जहाँ भारतीय पंचशील अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सर्व प्रमुख सम्पूर्ण देशों के आचरण से सम्बन्धित नियम की सहिता बनी। भारत के इस पंचशील को नित्य पाब सिद्धान्तों में निहित किया गया के इस प्रकार हैं—

- (१) एक दूसरे की प्रादेशिक प्रवृत्तता और नवीक्य सत्ता के लिये पारस्परिक सम्मान की भावना
- (२) अनाक्रमण
- (३) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
- (४) समानता एवं पारस्परिक लाभ एवं
- (५) शांतिपूर्वक सहस्रस्तिम्भ।

इन पाँचों सिद्धान्तों का प्रतिपादन १ अप्रैल १९५४ का तिष्ठत के दिवस में भारत और चीन के मध्य हुए एक सम्झौते में किया गया। तत्पश्चात् जब जून १९५४ में साम्यवादी चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई केनेबा से सौदत समय दिल्ली आये तो दोनों प्रधान मंत्रियों ने २० जून १९५४ को अपने एक संयुक्त बक्तव्य में पंचशील के सिद्धान्तों के प्रति अपने विश्वास को ज्ञाताया। इस बक्तव्य में घोषित किया गया कि—

'चीन और भारत में दोनों देशों के संबंधों के संभारन के लिये इन पाँच सिद्धान्तों के पालन का निश्चय किया है। वे एशिया और विश्व के अन्य देशों के साथ अपने सम्बन्धों में भी इच्छा अनुसरण करेंगे। यदि इनका प्रयोग न केवल विभिन्न देशों में प्रकृत सामाज्य कर से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी किया जाए तो हमने शांति एवं सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ आधार का निर्माण होमा जो वर्तमान सन्दर्भों तथा संकाओं के स्थान पर विश्वास केंद्रा हुआ। हम सम्य एशिया के तथा समार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक और राजनीतिक पद्धतियाँ विद्यमान हैं। यदि उपरोक्त सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाए तथा उक्त पालन किया जाए व दूसरे के हान पर कोई हस्तक्षेप न हो तो ये विभिन्नताएँ शांति और प्रगति के लिये उत्तम मनी करेंगी। अत्यंत ही प्रादेशिक प्रवृत्तता नवीक्य सत्ता तथा अनाक्रमण का

वाशिंगटन मित्र बाने पर विभिन्न बर्षों में शांतिपूर्ण महामहत्त्व रोमा और मैत्री सम्बन्ध बढ़ेंगे। इससे विश्व में विद्यमान वर्तमान तनाव कम होगा और शांति का बालाकरण उत्पन्न होने में महामत्ता मिलेगी।

२३ सितम्बर १९५४ को प्रधानमंत्री पति सायबोमिबोको के सम्मान में आयोजित एक राजकीय भोज में पण्डित नेहरू ने उपरोक्त पाँचों सिद्धान्तों को 'पंचशील' का नाम दिया। उन्होंने विश्व के अन्य देशों को भी पंचशील की स्वीकार करने के लिए वाग्द्वान किया। इस वाग्द्वान के उत्तर में २ अप्रैल १९५३ तक बर्मा, भाषीस, नेपाल, बियतनाम, युपीस्मादिया और कम्बोडिया ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

१० अप्रैल १९५३ को नई दिल्ली में एशिया और अफ्रीका के १४ राज्यों से भाये हुए २०० प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह नाम लिया गया कि संसार के राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध इन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित होने चाहियें। अप्रैल १९५३ को वाग्द्वय में एशिया और अफ्रीका के २६ राष्ट्रों के सम्मेलन में पंचशील के पाँच सिद्धान्तों को विस्तृत रूप प्रदान किया गया और उसमें पाँच सिद्धान्तों के स्थान पर १० सिद्धान्तों की स्थापना की गई। दूसरे बर्षों में पंचशास को दशशील का रूप दिया गया। ये १० सिद्धान्त इस प्रकार थे—

(१-२) मौलिक मानवीय अधिकारों और संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में उल्लिखित सिद्धान्तों के प्रति सम्मान की भावना

(३) सब नस्लों और छोटे बड़े राष्ट्रों की समानता

(४) दूसरे देश के मामलों में हस्तक्षेप न करना

(५) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार प्रत्येक देश को धारण-रक्षा करने का अधिकार।

(६) किन्हीं महाशक्तियों द्वारा विधेय ज़ेरों की पूरा करने के प्रयोजन से बनाई गई व्यवस्थाओं से पूरक श्रुति और दूसरे देशों पर बलाब म डालने से बचना

(७) आक्रमण के कार्यों को नहीं करना हमसे की कमकियां न होना,

(८) सब अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण उपायों से निपटारा करना

(९) पारस्परिक हितों की वृद्धि एवं

(१०) श्वाय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वापित्वों के प्रति सम्मान।

वाग्द्वय सम्मेलन के बाद पंचशील की वास्ट्रिया (४ जून १९५३) अरब (२२ जून १९५३) पीरिगड (१७ जून १९५३) संयुक्त राज्य अमेरिका (२७ अक्टूबर १९५३) वास्ट्रिया (३ अक्टूबर १९५३) ने स्वीकार किया। १४ दिसम्बर १९५३ को ८० राष्ट्रीय की संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में भारत द्वारा उपस्थित किसे जाने जाने 'पंचशील' के प्रस्ताव की

स्वीकार कर लिया गया और इस प्रकार पंचशील के सिद्धान्तों को विश्व के अधिकांश राज्यों द्वारा (अपवाद स्वल्प कुछ राष्ट्रों को छोड़कर) मान लिया गया।

जब हम पंचशील के सिद्धान्तों की व्याख्या या विवेचना पर जाते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिद्धान्त की दृष्टि में पंचशील के सिद्धान्त बड़े उत्तम धारण हैं और उन पर चमने से विश्व में स्थायी शांति बनी रह सकती है। पंचशील का प्रथम सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण है जो यह घोषित करता है कि संसार के सभी राष्ट्रों को एक दूसरे की प्रादेशिक अयत्नता और सर्वोच्च सत्ता का सम्मान करना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि किसी भी राज्य को अपने से कम शक्तिशाली राज्य पर राजनीतिक एवम् नैतिक शक्ति नहीं लायनी चाहिये। इस प्रकार इस सिद्धान्त का यह अर्थ भी निकलता है कि प्रत्येक राष्ट्र को प्रादेशिक अथवा प्रायिक साम्राज्यवाद के सिद्धान्तों का परित्याग कर देना चाहिये। पुनश्च इसी सिद्धान्त के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि अल्प देशों में कम पूरक प्रायिक सुविधायें प्राप्त करना अथवा दुर्बल बटपुठली सरकारों को स्थापित करने या दूसरे देशों में विद्रोही कार्यवाहियों को प्रोत्साहन देने या किसी भी राज्य में किसी कम विवेक का प्रायिक दृष्टि में सबसे बुराई का प्रयास करने आदि समस्त कार्य जिनमें राज्य की सर्वोच्च सत्ता एवं अहस्तछेद के सिद्धान्तों का उल्लंघन हो नहीं करन चाहिये। पंचशील का यह प्रथम सिद्धान्त इस बात को प्रस्थापित करता है कि अहस्तछेद के द्वारा युद्ध की सम्भावनाओं को निश्चित रूप से कम और शांति की सम्भावनाओं को निश्चित रूप से अधिक बढ़ाया जा सकता है।

पंचशील में समानता और पारस्परिक लाभ पर बल दिया गया है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने से छोटे और बड़े सभी राज्यों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये तथा पारस्परिक हितों को ध्यान में सहायक होना चाहिये। बलुन प्रायुक्तिक जगत में प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे के अनुभवों से बड़ी सीमा तक लाभान्वित हो सकता है और एक दूसरे की सहायता से अपनी समस्याओं का सफलतापूर्वक निराकरण कर सकता है।

पंचशील के सिद्धान्तों में सहस्रस्तित्व का अंतिम सिद्धान्त प्रायुक्तिक अन्तर्राष्ट्रीय जगत के अंतिम आशाकरण में सम्भवतः सर्वोच्च महत्व का सिद्धान्त है क्योंकि आज विश्व में विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणालियाँ कार्यरत हैं। प्रत्येक राष्ट्र को यह अपेक्षा है कि वह अपनी पद्धति की अष्टता में विश्वास रखे लेकिन स्पष्ट ही हम विश्वास का यह अभिप्राय बदायि नहीं हो सकता कि वह दूसरी पद्धति में विश्वास रखने वाले राष्ट्रों के विरुद्ध अयुक्तिक प्रयत्न करे। विभिन्न पद्धतियों वाले राष्ट्रों में विनाशक युद्धों के स्थान पर शांतिपूर्ण और अन्तर्गत प्रतिस्पर्धा चल सकती है और होना भी यही चाहिये कि वे राष्ट्र अपनी अपनी पद्धति की अष्टता को प्रमाणित करने के लिये स्वयं प्रतिस्पर्धा की ओर उद्युक्त

हो। यह एक हीन और अनुचित बात है कि विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे के प्रति ईमानदारी का भावना रखते हुए एक दूसरे को हानि पहुंचाये पक्षपाती विचारों का प्रयोग करें। विश्व में विरोधी पक्षों द्वारा एक दूसरे का समपूर्वक सफाया करने का प्रयास अनिर्वाह्य मानव जाति का विनाश के मार्ग की ओर इतरण होगा और यह एक लक्ष्य है कि यदि कोई राष्ट्रीय महायुद्ध सिद्धांतों का अग्रिम तहलक के परिणामों को देखने के लिये वास्तव विश्व का अधिकतम भाग बचेगा ही नहीं। मानव के मानविक गुणों में इस बात की नितांत आवश्यकता है कि अस्तित्व राष्ट्र शांतिपूर्ण बहुमस्तित्व के सिद्धांत का पालन करें क्योंकि केवल इसी मार्ग का अनुसरण करने से विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और संबंधों की स्थिति का समुचित रूप में धन हो सकता है और विश्व शांति के वातावरण में मानव अपनी अधिकतम उपलब्धि कर सकता है।

पंचशील के सिद्धांतों की व्याख्या और मूल्यांकन

अद्यपि पंचशील के सिद्धांतों ने कुछ समय के लिये चीन युद्ध के काहरे को हटा दिया और विश्व की समता में जोड़ी शांति की स्थापना की तथापि इतिहास का निर्णय इस बारे में कुछ दूसरा ही रहा और यह कहना असंभव होना ही पड़ता है। यह सिद्धांत व्यावहारिक और कठिन मामलों में भारतीय दृष्टिकोण की हार सिद्ध हुआ। अस्तित्व में पंचशील के सिद्धांतों की व्यावहारिकता के प्रति आशंका से ही आलोचकों द्वारा विभिन्न मापदण्डों का उठाई जाती रही और मान्यता उठाई जाती है। आलोचकों का कहना है कि पंचशील और बहुमस्तित्व के सिद्धांतों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यावहारिक सिद्धांतों के रूप में प्रयोग करने की बात व्यापक तौर पर आशंका के अन्तर्गत ही पुष्टि और स्वीकृति के उपरान्त मान्य हुई। विशेष रूप से इसलिये क्योंकि साम्यवादी अर्थ-साम्यवादी चीन और अस्तित्व में ही अस्तित्व पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का निर्माण करने और उनके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का निर्धारण करने के कार्य में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। किन्तु अस्तित्व पर चीन के बहुमस्तित्व और अकारण आक्रमण ने सिद्ध कर दिया कि चीन ने एशिया को अस्तित्व और अकारण होने के लिये ही पंचशील में अपनी व्यापक प्रकट की थी। अस्तित्व पाठ ही अपनी नकार उधार कर यह आश्वासन जारी के रूप में विश्व के सामने आया और उसके आधार पर पंचशील के सिद्धांत अकारण अकारण होकर विकृत भये।

उपर्युक्त व्याख्या के अतिरिक्त और भी अनेक व्याख्याकारों ने इन पंचशील सिद्धांतों के प्रति समय-समय पर निम्नलिखित रूप में उठाई गयी रही है—

(1) मान्य यह कहा जाता है कि पंचशील केवल मात्र उदात्त आदर्शों को कोरी घोषणा मात्र है जिससे किसी भी समस्या का व्यावहारिक हल नहीं होता। यह सिद्धांत केवल लक्ष्य-साधक शक्ति को प्रथम में आकर कर भांति विरोधी पक्षों को अपने पृथिव्य कार्यों से संबंधित करने का अवसर प्रदान करता है। केवल शब्दों के आशु से ही अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना

करन की कामना करना एक स्वयंनिष्ठ व्यवस्था ही क समान है। उन सिद्धान्तों का पालन करने के लिये हममें कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं की गई है। परत इनकी उपयोगिता स्वतः ही संविहास्पद है।

प्रधानमंत्री श्री नेहरू म. घामाचकों की उपयुक्त आपत्ति को पूर्णतः निराधार ठहराया और २६ दिसम्बर १९५४ को सौक्रममा में कहा कि—

सोर्गों में इन सिद्धान्त की घामोपनामें को है। किम आधार पर ? वे कहते हैं कि घाप यह कौसे विश्वास करत है कि इनका विघाम्बयन होगा। मिंसदह यदि आप किमी बात पर विश्वास नहीं करते ना इसरी बर्बा करना और इसक बारे में विघन ना बाँ साम नहीं है और फिर आपके लिये कोई दुमरी बात शेष नहीं रह पाती मिबाय इसक कि घाप घनेने रहें और लड़ कर हमरे पक्ष का परास्त बने—इसके घतिरिक्त घम्य काई मायं नहीं है। यह हमरे पक्ष के बचन का बिजबास करन का प्रयत्न नहीं है किन्तु ऐसा परिघिपियां उत्पन्न करने का प्रयत्न है किम घूमरा पक्ष घामन बचन को मग नहीं कर सकेगा यह सम्भव है कि दुमरा पक्ष अपने बचन का मग बने और यह भी सम्भव है कि वह अपने को घपिय विघम परिघियां में पाय। यदि बिन्ध के बिमिध देन पारस्परिक सम्बन्धों के लिये हम गंघ गिडाता का बार बार बाहुरते हैं तो ब इसक लिये लघ बातावरण उपस्वित करते हैं।”

(ii) पंचमीस के सम्बन्ध में एक दूसरी आपत्ति यह उठाई जाती है कि इन सिद्धान्तों की प्रेरणा साम्यवादियों के द्वारा हुई है। पर यह आपत्ति सहज हा में दलत है क्योंकि कोई भी सिद्धान्त बेबस इसलिये घनुचित या बलत नहीं हो पाता क्योंकि उसे किमी बस बिशय का समघन प्राप्त हा। यदि वह सिद्धान्त बाहता है तो लगे बबस लम दल की समस्यारी का परिघय प्राप्त होता है। उनके घतिरिक्त यह घामणा इसलिये भी गत है कि पंचमीस की रचना साम्यवादियों की प्रेरणा स नहीं घरिनु भी नेहरू की प्रेरणा में हुई थी।

(iii) तीसरी आपत्ति इन सिद्धान्तों के बार में यह भी गई है कि ये घायन घाम्प हैं। 'प्रायैतिक घाम्बना सर्वोच्च सत्ता' 'घामाचमन' 'घहम्बल' 'सहबलितय' घदि सनी लसे लरु है जिनके घर्ष के सम्बन्ध में प्राय लघ मने होना बरगि सघन नहीं है। उदाहरण के लिय घुघ दिगों के घनुमार सहयलितय का घर्ष यह है कि सरकारों के सम्बन्ध में पूर्ण लघ में (State of war) बायम घहनी बाहिये तथा रिनी प्रघार के परिबर्तन का घ्याम नहीं दिया जाना बाहिये। लैकिन सहयलितय की यह घारणा लघ्म घाम्प। बाघाबहातिक है।

(iv) पंचमीस के बीघा घाममन यह रिघा घाता है कि इन सिद्धान्त जनता को भ्रम एवं घोडे में घामने बाते है। घामाचकों का घहना है कि मातल बाद-नीतिनघार के बर्तन में घुजीगाद तथा साम्यवाद की बीघ

सहस्रस्तित्व की बात कभी स्वीकार नहीं की गई है वैसे कि १९१९ की भाठबी कांफ्रेंस में बिये नये लेनिन के मापक के इस उद्धरण से स्पष्ट है— हम कबस एक राज्य में नहीं रह रहे हैं अपितु राज्यों की एक प्रणाली में रह रहे हैं और सोवियत मन्त्रालय के साथ साम्राज्यवादी राज्यों की बहुत सीमा तक के लिये अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अन्त में किसी एक की विजय होना अनिवार्य है। इसके पहिले कि यह धार्ये सोवियत मन्त्रालय और पूंजीवादी राज्यों के बीच बहुत से संघर्षों का होना प्रासङ्गिकता है।^१

उपरोक्त तर्कों के सम्बन्ध में हमें यह भी साह रचना चाहिये कि स्टाकिन का मत लेनिन के मत से भिन्न था वैसे कि १९२२ में उसके इस कथन से स्पष्ट होता है— मैं अब भी यह विश्वास करता हूँ कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच युद्ध प्रासङ्गिकता नहीं माना जा सकता और वे दोनों देश मविष्य में एक दूसरे के साथ नातिपूर्वक रह सकते हैं।^२

हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ती कि साम्यवादी दल में युद्ध की अनिवार्यता पर अधिक बल नहीं दिया जाता है और सहस्रस्तित्व की कोई सम्बन्ध बात नहीं बताई जाती है। साम्यवादी नीति इस बात से परिचित है कि यदि प्राणविक युद्ध हुआ तो उसमें न पूंजीवादी जगत ही बचेगा और न साम्यवादी ही यह जीवन का एक ही मार्ग अन्तिम रूप से अवरुद्ध है और यह है सहस्रस्तित्व का। हां यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी जीवन अना राष्ट्र यदि उसके नेता प्राण ही की घाति मदान्त और युद्ध पिपासु रहे तो सम्भवतः निकट भविष्य में सहस्रस्तित्व की कारणों से विजय न करे हुए वे युद्ध की अनिवार्यता के गीत गाते रहे।

(१) पंचशीस के सम्बन्ध में पांचवीं प्रापति यह उठाई गई है कि उसके सिद्धान्त अब संयुक्त राष्ट्र संघ में लविहित हैं तो उनकी पूर्ण रूप से पुनरावृत्ति निरर्थक है। उदाहरणार्थ पंचशीस का प्रथम सिद्धान्त चार्टर की धारा २ (१) और २ (४) से मेल खाना है। धारा २ (१) में लिखित है

1. "We are living not only in a state, but in a system of States and the existence of the Soviet Republic side by side with the Imperialistic States for a long time is unthinkable. One or the other must triumph in the end. And before the end comes, a series of brightful collisions between the Soviet Republic and the Bourgeois states will be inevitable."

—Lenin.

2. "I still believe that war between U S A. and USSR cannot be regarded as inevitable and the two countries can live in peace with each other"

—Stalin

कि— 'यह संगठन अपने समस्त सदस्यों की सम्पूर्ण समानता के सिद्धान्त पर आधारित है।' धारा २ (४) में उल्लिखित है कि— 'समस्त सदस्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी राज्य की प्राथमिक प्रवृत्तियों, अथवा राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध धमकी या शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और न ही कोई ऐसा काम करेंगे जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों के प्रतिद्वन्द्वी है। स्पष्ट है कि पंचशील के सिद्धान्तों और चार्टर की व्यवस्थाओं में सादृश्यता है।

लेकिन पंचशील पर की गई ये आपत्तियाँ भी अधिक बल नहीं रखती क्योंकि किसी भी सिद्धान्त को इसमिय निरर्थक नहीं बताया जा सकता क्योंकि उसका उल्लंघन पहिले कही हो चुका है। भारत यह प्रश्न आप में एक महत्वपूर्ण और सत्य बात रखता है कि धर्म के नीति-मुक्त में भारतीय सिद्धान्तों की धार-धार बाहराने से शांति के वातावरण का सृजन किया जा सकता है। पं मेहरू के ये शब्द उपयुक्त थे कि— शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के विचार में कोई नवीनता नहीं है फिर भी यह एक पुराने विचार की एक विशिष्ट पृष्ठभूमि में नवीन क्रियाश्रित प्रवण है।"

पंचशील के धारोचकों की एक प्रमुख आपत्ति यह भी है कि इन सिद्धान्तों का जन्म ही पश्चिमी वातावरण में नहीं हुआ है। धारोचका द्वारा उन्हें 'अपवित्र माता की पवित्र सन्तान' (Holy daughter of Unholy mother) का नाम दिया गया है क्योंकि इनका जन्म २६ अगस्त १९४४ को भारत और साम्यवादी चीन के प्रधानमंत्रियों द्वारा तिब्बत के सम्बन्ध में उस समझौते में हुआ था जिसमें भारत ने तिब्बत पर साम्यवादी चीन की सर्वोच्च सत्ता मानकर प्रत्यक्ष रूप से तिब्बत की स्वाधीनता के अग्रहरण में साम्यवादी चीन को समर्थन प्रदान किया था। भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञ और जाने माने नेता आचार्य जवाहरलाल ने पंचशील के जन्म के समय ही कहा था—

"ये महान सिद्धान्त पापपूर्ण परिस्थितियों की उत्पत्ति हैं क्योंकि ये धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से हमारे साथ सम्बद्ध एक प्राचीन राष्ट्र (तिब्बत) के विनाश पर हमारी (भारत की) स्वीकृति पाने के लिये प्रतिपादित किये गये थे।" इस प्रकार की आपत्ति करने वालों का मत है कि मार्च १९५६ और उसके बाद तिब्बत में जो घटनाएँ घटित हुईं जिनके परिणामस्वरूप हमारा नामा को अपना देश छोड़कर भारत में शरणार्थी रूप में आना पड़ा उनसे यह स्पष्ट है कि साम्यवादी चीन इन सिद्धान्तों के प्रति कभी ईमानदार नहीं था। भारतीय नेताओं ने उनके साथ इस प्रकार का समझौता करके एक भयकर भूल की थी जिसका सामियाबा मन्मूख राष्ट्र को आज पठाना पड़ रहा है। भारत द्वारा चीन के प्रति इस प्रकार का एक अपमानना एक संतुष्टीकरण की नीति थी जिसकी असफलता स्वभाविक थी।

इस आपत्ति के प्रत्युत्तर में २७ अगस्त १९५६ को मोनसमा में नापण करते हुए पं० मेहरू ने कहा था— 'बुद्ध सोच यह पूछते हैं कि इन (तिब्बत की) घटनाओं के बाद भी क्या धर्म सब पंचशील का पालन करे ?

यह विशिष्ट प्रश्न है। यदि ये सिद्धान्त ठीक हैं और हम ऐसा मानते हैं तो हम उनका पालन करेंगे भले ही दुनिया में उन्हें कोई वांछनीय न समझे। चाहे कोई दूसरा इन सिद्धान्तों पर धारण न करे, हमें तो अपना पालन करना ही चाहिये।”

उपरोक्त आलोचनाओं एवम् उनके सम्बन्ध में विवेचन निराकरणों या स्पष्टीकरणों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पंचशील के अन्तर्गत भी धारण की गई हैं धरवा की बातें हैं वे व्यावहारिक दृष्टि से बल रखते हुए भी प्रतिबंधित हैं। पंचशील के सिद्धान्तों में प्राबुतिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जो महत्वपूर्ण भूमिका प्रदा की है उसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। १७ सितम्बर १९५२ को पंच नेहरू ने अपने आ-महीने पृथ के भाषण का इबासा देकर स्पष्ट बताया था कि—

“उस समय विश्व युद्ध का अन्त था। बमूकें मरी हुई थीं और उ मलिवां बोंडों पर भी किन्तु बत च महीनों में स्थिति में बहुत अधिक सुधार हुआ है। बमूकें अब भी मरी हुई हैं किन्तु उ गमिमां अब बोंडों पर नहीं हैं। अब भी धनेक ध बकारपूर्ण स्वतः और सतरे के क्षेत्र मीरुब है। फिर भी आगावरण में हर तरह सुधार हुआ है और पहिली बार संसार के लोगों ने यह अनुभव किया है कि बुद्ध धरवाम्मावी नहीं है। वास्तव में उसे टाला जा सकता है। यह कहना अतिक्रमोत्प्रेरक होया कि भारत ने विश्व राजनीति में कोई बड़ा अन्तर पैदा किया है। हमें अपनी भूमिका को प्रतिबंधित करके नहीं देखना चाहिये किन्तु सत्य यह है कि महत्वपूर्ण धरवसतों पर भारत ने अन्तर पैदा किया है। इस परिस्थिति को माने के आणधान को एक या दो शर्तों में ‘पंचशील’ के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए तो पंचशील के सिद्धान्तों में किसी प्रकार की सरावी नहीं है। प्राबुतिक विश्व में इस प्रकार के सिद्धान्तों की माय्यता में विश्वास प्रकट करना नितांत धारवक है परन्तु साथ ही इस बात की आवश्यकता भी है कि विश्व के राष्ट्र अपनी वास्तविक इच्छा से इन सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करने में आगदान करें। यदि धरवों के प्रति निष्पक्षता होकर एक दूसरे के प्रति मीचीपूर्ण और सहस्रवपूर्ण आतावरण बनाया जाए तथा सहस्रवस्थित्व की भावना से कार्य किया जाए तो इसमें सदेह करने की कोई पुजाइम नहीं रहती कि विश्व में शांति की स्थायी रूप से स्थापना हो सकती है। यदि साम्बवाची चीन द्वारा या किसी अन्य राष्ट्र द्वारा इन सिद्धान्तों का अस्वीकरण किया जाता है तो इसमें दोष सिद्धान्तों का नहीं है और इस कारण सिद्धान्तों को पूरा नहीं किया जा सकता। सत्य-वादन एक धारवस सिद्धान्त है किन्तु यदि कोई सदैव झूठ ही बोलने का धारि हो तो इससे सत्य के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी तरह जति एक धरवची चीन है इससे कोई इनकार नहीं कर सकता लेकिन किसी राष्ट्र की पूरी तरह अहितकारी प्रकृति ही हो जबवा किसी राष्ट्र के नेता धरवसों की तरह केवल युद्ध के मतवासे ही हो तो केवल इसी आधार पर शांति को एक बुरी चीज नहीं बताया जा सकता। भारत ने भी साम्बवाची चीन के साथ दोस्ती के सम्बन्ध निभाये किन्तु दोस्ती की पाइ

में यदि चीन न चाकू बसाया तो इसमें भारत का क्या दोष ? भारत का दोष है तो केवल यही कि उसने एक बोस्ट की तरह से सचेत रहने की सावधानी नहीं करती। इसी प्रकार यदि पंचशील के सिद्धान्तों को एक बोस्ट ने ठुकराया तो यह सिद्धान्त यह कभी नहीं कहते कि प्राक्ममकारी का मुकाबला मत करो, देख पर हमला करने वाले से सड़ो मत।

घत में इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'एक ऐसे युग में, जब जस्मास्थों में मानव सम्मता का विनाश करने की प्रबल्य शक्ति पा गई है शांतिपूर्ण सहमस्तित्व ही एक मात्र ऐसा उपयोगी विकल्प है, जिससे मानव सम्मता की रक्षा हो सकती है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में सैनिक उपायों अथवा युद्ध द्वारा पारस्परिक विचारों को बर्बाद करके घोर संघर्षों को निर्मित नहीं किया जा सकता। वस्तुतः यह (पंचशील) कोई आवु की छड़ी नहीं जिसके उल्लेख मात्र से अन्तर्राष्ट्रीय गन्नाह का साप हा जायगा परंतु, यदि इन पर अमल किया जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय तन्त्रों में निश्चित रूप से कमी होनी और संघर्ष के कारणों का उन्मूलन भी किया जा सकेगा। यह (पंचशील अथवा सहमस्तित्व) वस्तुतः एक उपाय नहीं बल्कि एक नई विचारधारा तथा शांतिपूर्ण रचनात्मक और प्रगतिमूलक अन्तर्राष्ट्रीय रणनीति है। परन्तु पंचशील का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तब ही किया जा सकता है जब संबंधित दलों का दृष्टिकोण बदल जाए उनका हृदय परिवर्तित हो जाए।

इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि प्राधुनिक युग में विज्ञान और टेक्नालोजी का अस्मयजनक प्रगति पर है उसने कारण युद्ध द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विचारों का समाधान करने का कोई प्रयत्न ही नहीं रह जाना और इस बात को दोनों विरोधी पक्ष भी स्वीकार करते हैं। घत जब अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में युद्ध द्वारा समस्याओं का समाधान ही सम्भव नहीं रहा तो स्वतः ही यह प्रावश्यक है कि राष्ट्र एक दूसरे को ऐसी उद्वेगित घमकियाँ और चुनौतियाँ न दें जिनका इधारा युद्ध की तरह हो। इनके स्थान पर उन्हें एक दूसरे के दृष्टिकोणों और विचारों को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

ऐसे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि प्राधुनिक युग में असार में प्रचलित और व्याप्त विभिन्न विचारधाराओं तथा भावधर्मों 'बीबी और बीने दो' के सिद्धान्त पर आधारित करते हुए अमल घस्तित्व कायम नहीं रख सकती। प्रावश्यकता इस बात की है कि युद्ध को और कानूनी बाधित कर दिया जाना चाहिये और सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण रूप से समाधान होना चाहिये। विरोधी विचारधारा वाले दलों के मध्य सद्भावनापूर्ण के सेतुओं का निर्माण किया जाए और शांति का क्षेत्र अधिकधिक विस्तृत हो।"

द्विपक्ष की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और संयुक्तराष्ट्र संघ में भारत का योगदान
सैनिक और अधोगिक दृष्टि से शीघ्र होने पर भी अमल घस्तित्व

की सक्रिय एवं प्रभावशाली विदेश नीति के कारण भारत प्राग्भूम से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में और संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों में प्रसंगीय भूमिका का निर्वाह करता रहा है। भारत की विदेश नीति के कार्यों में इस बात की सार्थकता की प्रमाणित किया है कि दो प्रयत्न शक्तिशाली गुटों में विभाजित प्राकृतिक संसार की स्थिति में एक स्वतन्त्र किन्तु रचनात्मक अवसरमत्ता की नीति विशेष महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है। स्वतंत्रता के प्रशस्तोदय के बाद का भारत की विदेश नीति का इतिहास बताता है कि घने संकटपूर्ण अवसरों पर भारत ने पूर्ण और पश्चिम के मतभेदों की चौड़ी खाई को कम करने का उत्सुकतापूर्ण प्रयास किया है। दो-तीन अवसरों पर तो उसने अपनी रचनात्मक भूमिका द्वारा तृतीय महायुद्ध के दावानल को प्रवृत्त होने से भी रोका है। संसार राजनीति और संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों में भारत ने जो विशेष भूमिका प्रदा की है वह प्रभावशाली निम्नलिखित रूप में प्रकट की जा सकती है—

(१) कोरिया समस्या के समाधान में भारत का योग

विश्व राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ में कोरिया की समस्या के समाधान में भारत का सब प्रथम ऐसा सक्रिय योगदान था जिसने संसार को एक नये युद्ध से बचाने के साथ-साथ भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी बढ़ाई। कोरिया के युद्ध में जिसका विस्तार से वर्णन संयुक्त राष्ट्र संघ के एक पूर्ववर्ती अध्याय में किया जा चुका है भारत की निम्नलिखित निष्पत्ति किन्तु रचनात्मक भूमिका रही है— प्रथम उत्तरी कोरिया को धाकनणकारी घोषित करने के बाद भी भारत ने सैनिक कार्यवाही में भाग नहीं लिया। द्वितीय भारत ने युद्ध में तटस्थता की नीति का अनुसरण करते हुए जाति स्थापित करवाने हेतु सम्मत्ता के लिए प्रयास किया। तृतीय उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की घेनाओं द्वारा ३८ की समानांतर रेखा को पार करने का विरोध किया। चतुर्थ भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका के उस प्रस्ताव का विरोध किया जिसमें चीन को धाकनता घोषित किया गया था। पंचम कोरिया की समस्या को मूलभूत में उसने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रस्ताव रखा। षष्ठम कोरिया में जाति स्थापित करने के लिए भारत ने दोनों ही पक्षों को अपने पक्षक प्रयासों से सहमत किया। जब युद्ध-विराम संधि के मार्ग में युद्ध शक्तियों के पक्षपातवादी की विकट बाधा उत्पन्न हुई तो इस प्रश्न को हल करने में भारत ने बड़ा भाग लिया और मुख्यतः उत्तरी के फलस्वरूप २७ जुलाई १९५३ को पानमुन जोंग (Pan Mun Jong) में कोरिया युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर हुए। युद्ध शक्तियों की समस्या के हल के लिए २ तटस्थ राष्ट्रों का एक प्रायोग (Neutral Nations Repatriation Commission) नियुक्त किया गया जिसका अध्यक्ष भारत को बनाया गया और जनरल बिर्गिया ने यह कठिन कार्य बड़ी योग्यतापूर्वक सम्पन्न किया। कोरियाई युद्ध में भारतीय विदेश नीति की प्रशंसा करते हुए भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका के एक मूलपूर्व राजदूत श्री चैस्टर बोस ने लिखा कि "गई दिल्ली ने ३८ पक्षांस रेखा पर युद्ध बन्द करने के लिए बल दिया। इस बेटावनी की परवाह नहीं करते हुए

हम उत्तर में बढ़े। तब साम्यवादी चीन की क्रांति सेनाओं ने फौरन यामु नदी (कोरिया की उत्तरी सीमा) पार की। तीन वर्षों बाद प्रथम में हमने बिगम संधि को उसी ३८° अक्षांश रेखा पर करना स्वीकार किया। इस बीच १९०० अमेरिकन घोर पता नहीं कितने चीनी घोर कोरिया मारे गये तथा बामन हुए।^{१२}

(२) हिन्दचीन की समस्या में भारत का योगदान

द्वितीय महायुद्ध से पहले हिन्द चीन पर फ्रांस का अधिकार था युद्ध में इसे जापान ने जीत लिया। जब जापान द्वारा फ्रांससमक्ष किया गया तो इसके उत्तरी भाग पर राष्ट्रवादी चीन ने और दक्षिणी भाग पर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् फ्रांस ने दक्षिणी भाग ब्रिटेन से प्राप्त कर लिया और उत्तरी प्रवेश की प्राप्ति हेतु राष्ट्रवादी चीन से संधि की। इस समय वियतनाम (अनाम) में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए वीतमिन्ह (Viet Minh) नामक संस्था की स्थापना हुई जिसने फ्रेंच प्रभुता से मुक्ति पान के लिए स्वातन्त्र्य संघर्ष शुरू किया। चीन में साम्यवादी शासन हो जाने पर १९४९ में वीतमिन्ह फौजों ने साम्यवादी सहायता के बस पर फ्रेंच सेनाओं पर भीषण आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर साम्यवादी प्रसार को रोकने के उद्देश्य से अमेरिका ने फ्रांस का सहायता देना आरम्भ किया। युद्ध १९४९ से १९५९ तक लगभग १ वर्ष चलता रहा जिसमें फ्रांस की पराजय के स्पष्ट संकेत प्रकट हो गये। २० मार्च १९५४ को फ्रांस ने संयुक्त राज्य अमेरिका को स्पष्ट संकेतों में बताया कि यदि विपुल मात्रा में अमेरिकन सैनिक सहायता न दी गयी तो फ्रांस को बाध्य होकर साम्यवादियों से संधि करना पड़ेगी। ५ अप्रैल १९५४ को अमेरिकन सीनेट में विदेश सचिव ने 'विदेशी मामलों की समिति' को बताया कि अमेरिका हिन्द चीन को साम्यवादियों के हाथ में नहीं जाने देगा। अमेरिकन सरकार का यह निश्चय बड़े संकेत के धारण देने वाला था क्योंकि अमेरिका के युद्ध में कूटने से तृतीय महायुद्ध की शीमल्योय की सम्भावना थी।

ऐसे संकटपूर्ण समय में भारत की ओर से युद्ध रोकने तथा दोनों पक्षों में समझौता कराने के अनेक प्रयास किये गये। २४ अप्रैल को सोवियत संघ की नेहरू ने हिन्दचीन की समस्या के शांतिपूर्ण समाधान के लिए जेनेवा सम्मेलन के विचारार्थ निम्नलिखित ६ प्रस्ताव रखे—

- (i) समस्त देशों को बाहिर कि वे शांति और संधि का वातावरण पैदा करें।
- (ii) युद्ध-बिराम के प्रश्न पर सबसे पहले ध्यान दिया जान।
- (iii) फ्रांस द्वारा हिन्द चीन की पूर्ण स्वतंत्रता स्वीकार की जाय।
- (iv) फ्रांस और हिन्द-चीन स्वयं आपस में सीधी बातचीत करें।

(v) समुक्त राज्य अमेरिका घोषित संघ ब्रिटेन और चीन एक ऐसा समझौता करे कि बिना अनुसार बुद्धत पलों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिले।

(vi) जनता सम्मेलन की प्रगति की रिपोर्टें समुक्त राष्ट्र संघ की भाव और समझौता करने के लिए उसकी सहायता भी आमन्त्रित की जाय।

हिन्द-चीन में बुद्ध-विराम क लिए की गयी पंडित नेहरू की उपरोक्त अपील का विदेशों में प्रचारा स्वागत निभा गया। यद्यपि भारत को १९५४ क इत जेनेवा सम्मेलन में सदस्य के रूप में आमन्त्रित तो नहीं किया गया लेकिन भारत की ओर से भी कुम्भमेतल इन दिनों जेनेवा में उपस्थित रहे और उसकी सक्रमता में योगदान कजो रहे। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री एन्थोनी ईडन ने पंडित नेहरू को लिखे पत्रे अपन पत्र में श्री मेतल के प्रति कार्यों की बड़ी प्रशंसा की। जेनेवा सम्मेलन में साम्यवादी चीन की उपस्थिति में हिन्द चीन में बुद्ध-विराम समझौते पर २१ जुलाई १९५४ को इस्ताखर हुए। तत्परचाय हिन्द-चीन की राजनीतिक समस्याओं का समाधान करके के लिए तीन सदस्यों का एक शान्ति आयोग (Peace Commission) नियुक्त किया गया जिसका अध्यक्ष भारत बना। तब से सदस्य कनाडा और पोलैंड के। भारत को शान्ति आयोग का अध्यक्ष बनाना भारत के शान्ति स्थापना के कार्यों के महत्त्व को स्वीकार करता था।

हिन्द चीन के सम्बन्ध में भारत द्वारा जो निस्वार्थ प्रयत्न (द्वि नये उनका मूल्यांकन करते हुए अमेरिकन राजदूत श्री वेस्टर बोम्स ने लिखा है - 'भारत में हिन्द-चीन में सन्ध के औपनिवेशिक साम्राज्य का समर्थन करने की विष्मकता के सम्बन्ध में हमें बार-बार चेतावनी दी थी जनवरी १९५४ में जब श्री नेहरू ने विराम-संधि करने पर बल दिया तो उत्तरदायी अमेरिकनों ने उन पर 'साम्यवादियों के धाम सहायुमूर्ति' का शोषारोपण करते हुए कहा था कि वह होशी मिन्ड का उसकी निकट अधिष्प में होने वाली हार से बचाना चाहते हैं। तीन महीने बाद दिन-दिन छु का पतन हुआ'¹ और कल्प सेना को लाभ नहीं के उच्छा में भीषण शैतिक पराजय का सामना करना पड़ा।

(३) अन्य कार्यों में प्रोत्साहन

कोरिया और हिन्द-चीन के अतिरिक्त भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय राज नीतिक क्षेत्र के और भी अनेक कार्यों में योग दिया। अगस्त १९५५ में जब किमोय और माल्टु टापुओं के बारे में साम्यवादी चीन और समुक्त राज्य अमेरिका में बड़ा तनाव और संघर्ष उत्पन्न हो गया तो भारत ने इसे कम करने में बड़ी सहायता की। भारत द्वारा अमेरिका से प्रयासवादी रूप में आग्रह किया गया कि वह मुद्रा की नीति अपनाये। फलस्वरूप भी आग्रह-न-

1 Chester Bowles New Dimensions of Peace, page 163.

होकर के वैयक्तिक निर्णय से एक बड़ा संघर्ष और अन्तर्राष्ट्रीय संकट दूर हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में निःपक्षीकरण के सम्बन्ध में भारत ने समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझाव रखे। १९३८ में महासभा के १९वें अधिवेशन में भारत ने दो प्रस्तावों पर वस दिया—(१) समझौता होने की अवधि तक धातविक आयातों के परीक्षण तुरन्त बन्द किये जाय और (२) धातविक आयातों को बन्द करने की सम्भावना के प्रश्न पर विचार किया जाय। भारत के निःपक्षीकरण के सम्बन्ध में समझौता होने तक धातविक विस्फोट बन्द रखने का सुझाव महासभा द्वारा भारी बहुमत से स्वीकार किया गया और अमेरिका रूस एवं ब्रिटेन आदि ने काफी समय तक इसका पालन भी किया। महासभा के इसी अधिवेशन में भारत ने यह प्रस्ताव रखा कि निःपक्षीकरण आयोग में संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्यों को सम्मिलित कर लिया जाय ताकि इसमें गत वर्ष आये हुये अनिरोध को दूर किया जा सके।

भारत ने राष्ट्रसंघ के आह्वान पर कांगो में शांति-स्थापना हेतु अपनी सेनायें भेजी जिन्होंने उस देश की एकता और अखण्डता को सुरक्षित रिया तथा शांति स्थापना करके उसे विचलित होने से बचाया। कांगो के प्रधान मन्त्री की घोषणा ने भारतीय सेनाओं की आपसी के समय भारतीय राष्ट्रपति के नाम २२ अक्टूबर सन् १९६३ के अपने पत्र में इस कार्य के लिए धान्य प्रकट करते हुए लिखा था कि "दिसम्बर मास में कंटंगा में भारतीय सेनाओं का कार्य उनकी महत्ता और साहस प्रशंसनीय था। मुझे अमरल प्रेमचंद तथा विवेकियर नोरोहा के नेतृत्व में लड़ने वाले भारतीय जवानों को अर्पणित देते हुए बड़ी प्रसन्नता है।" जोर्राठविस्ते तथा कोमबेजी में उनका प्रवेश ने वास्तव में हमारे देश की प्रादेशिक अखण्डता को पुनः स्थापित किया। आपके देश की सहायता इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है कि वह ऐसे समय में ही आई जब आपके देश में (चीनी आक्रमण के कारण) घाम सामंन्धी हो रही थी।"

साम्राज्यवादी परतन्त्रता का स्वयं मुक्त भोगी होने के कारण भारत न इण्डोनेशिया मलाया, चीनिया ट्यूनिशिया गोल्डकोस्ट साइप्रस अल्जीरिया आदि की स्वतन्त्रता का पूरा समर्थन किया। भारत न पैलेस्टाइन और साइप्रस के विभाजन का भी विरोध किया। न्यास प्रदेशों में (Trust Territories) के प्रशासन के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्ण नियंत्रण और निरीक्षण का समर्थन करते हुए भारत ने सर्वैव इस बात पर बल दिया कि स्वशासन न करने वाले प्रदेशों का शासन चाटर के सिद्धान्तों के अनुसार किया जाना चाहिए, इन पर शासनकर्त्ता साम्राज्यवादी शक्तियों को संघ के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होना चाहिए, जैसे न्यास प्रदेशों वाली शक्तियाँ अपने न्यास प्रदेशों के लिये हैं। यह उम्मेदनीय है कि भारत को "गैर स्वशासी प्रदेशों विषयक सूचना प्राप्त करने वाली संयुक्त राष्ट्र संघीय समिति" (U N Committee on Information from Non-Governing Territories) का १९३८ से १९६१ तक के लिये सदस्य भी चुना गया। १९३८ में परिषदी समोदा को जो निरीक्षक मण्डल भेजा गया उसका प्रधान

पूरी तरह निबाहा जो समुक्त राष्ट्र सङ्घ न उसके कर्तव्यों पर डाला। इन सभी समस्याओं पर सबिस्तार प्रकाश समुक्त राष्ट्र सङ्घ वाले अध्याय में डाला जा चुका है।

भारत की विदेश नीति की अब तक की व्याख्यात्मक चर्चा के उपरान्त अब हम विभिन्न प्रमुख देशों के साथ भारत के वैदेशिक सम्बन्धों का सम्बन्ध करेंगे।

भारत-पाक सम्बन्ध (Indo-Pakistan Relations)

१५ अगस्त १९४७ को जब भारत और पाकिस्तान असम असम अस्तित्व में आये भारत ने स्वाधीनता संग्राम के सेनापति और स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री नेहरू ने राष्ट्र के नाम एक प्रसंग्य म कहा

‘हम सब ही चाहे हम किसी भी धर्म को मानने वाले हों समान रूप से भारत की सन्तान हैं। हम साम्प्रदायिकता तथा मजहबी विचारों का प्रोत्साहन नहीं दे सकते क्योंकि कोई भी राष्ट्र बड़ा नहीं हो सकता यदि उसके भीतरी संकीर्ण विचारों और कार्यों का भय हो।’

कुछ ही महीनों बाद श्री नेहरू ने फिर कहा—

“जहाँ तक भारत का लक्ष्य है हमारा सरकार के रूप में तथा अन्तर्गत स्पष्ट रूप से कहा है कि हम ऐम किसी राज्य के बारे में मात्र भी नहीं सक्त जो साम्प्रदायिक या धार्मिक राज्य कहा जाए। हम सबसे धर्म निर्पेक्ष साम्प्रदायिक अन्तर्गत राज्य के बारे में सोचते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी हो समान अधिकार और अवसर प्राप्त होये। १५ वर्ष पूर्व अन्तर्गत के समय से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का यह मक्य रहा है और हम पूरी तरह से इस पर चलते रहे हैं।”

अन्तुत भारत के नातिवासी नेताओं को इस बात की पूरी ध्याना थी कि वेस के विभाजन से ज्ञान्ति और पारस्परिक मेसजोल को प्रोत्साहन मिसेमा तथा भारत और पाकिस्तान दोनों ज्ञान्ति, मद्भावना और सहयोग के बाता बरण में आधिक विकास के सम्बे एवं कठिन कार्य में पिस पड़गे। इसी सक्षप का ध्यान में रख कर भारत सरकार ने पूर्ण दृढ़ता के साथ साम्प्रदायिक बङ्गा को समाप्त कर दिया। किन्तु पाकिस्तान का तो जम ही साम्प्रदायिक पाचार पर हुआ था और उसके नेता भारत के प्रति बटुता और बेमनस्य के र्जात जामते विप-दृष्ट थे। यत उन्होंने प्रारम्भ से ही विरोध धारमण तथा भारतीय धू नाम को हड़पने और भारत को हर सम्भव प्रकार से शक्ति पहु पात की विदेश नीति का आधय लिया। यद्यपि पाकिस्तान नेताओं का मन साम्प्रदायिक भावनाओं से उद्दीप्त होने के कारण पहिले से ही भारतीयों के प्रति घृणा और अहयोग से परिपूरित था तथापि माइकेल ब्रेचर (Michael Brecher) का विचार है कि दोनों देशों के बीच सद्द्वर्ष न मूस कारण से रहे है—(१) वह पत्नी जिस समय बटवारा किया गया था

एक (२) रियासतों के बटवाने से सिक्त २ घर्ष जो होंगे वेगो हाग सगावे नये । इन दोनों ही मूल कारणों से इन देशों के बीच घनेक समझौतों उदास हुई तथा वहाँ के निवासियों में मनोवैज्ञानिक सहर्ष बढ़ा घौर काश्मीर को दोनों देशों के सहर्ष का केन्द्र बिन्दु बन गया । परन्तु यदि स्थिति का सही मूल्यांकन किया जाए तो काश्मीर को सहर्ष का केन्द्र बिन्दु नहीं माना जा सकता । भारत के प्रति वैमनस्य के बीच दो पाकिस्तान के सिद्धान्त और धार्मिक बिहार की भाषना में निहित हैं जिसकी भी गेहक के १७ दिसम्बर १९४७ को भारतीय संसद में दिये गये बयान के निम्नलिखित घन से स्पष्ट है—

“अधिकारों, विशेष रूप से विदेशियों की सह प्रातिपुर्ण कारण है कि काश्मीर बिहार दोनों ही देशों (भारत और पाक) के सहर्ष का कारण है । हमारी मूलभूत बिचारधारा ही सिक्त है । हम बने निरपेक्षवाद में बिस्वास करते हैं किन्तु पाकिस्तान इस्लामवाद और सिद्धान्त में बहुमत पाकिस्तान के लिए एक संसहनीय तथ्य है । भारत के प्रति सहर्ष का बिचार पाकिस्तान की धार्मिक राजनीतिक नीति का एक परिणाम घक्त बन गया है ।”

भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों का इतिहास बहुत काला रहा है जिसमें घनकों बार पाकिस्तान ने सीमाघों का उल्लङ्घन किया है गोलाबारी की है मुत्तबार मेवे है कूटनीतिक बिसेवाधिकारों का घोक कर भारतीय सघघरों का सघमान किया है और भारत के बिस्व धाकमणारतक कार्य-बाहियां की हैं । लेकिन भारत ने इन सभी कार्य-बाहियों के प्रति उबार बुष्टि कोष रखा है यहां तक कि १९६४ के सयानक भारत पाक सहर्ष के बाघ भी पाकिस्तान के प्रति उसकी उबारबाही नीति में बिबेच परिवर्तन नहीं हो सका है । भारत के पाकिस्तान के सम्बन्धों और दोनों घरों के एक घुघरे के ति वास्तविक ब्यवहार के घीचत्य का इतिहास निम्नलिखित प्रमुख घटनाघों में जाना जा सकता है—

(१) जूनपाक का भारत में बिस्व २३ जुलाई, १९४७ को बेही रियासतों के सम्बन्ध में भारतीय स्वतन्त्रता घबिनियम” की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा गया था कि भारतीय

“People especially foreigners are wrong in thinking that Kashmir dispute is the cause of trouble between the two countries. Our basic thinkings are different. We believe in Secularism but Pakistan believes in Islamism and Two Nation Theory. The Majority of Muslims in Kashmir is an Eye sore to Pakistan according to this theory. Hostility towards India is part and parcel of Pakistan's religious-political ethica.

—Pandit Nehru in Indian Parliament on 17-12-1957

रियासतें स्वतन्त्र हैं और उन्हें अधिकार हैं कि चाहे व भारत के साथ मिश्र व्यवस्था पाकिस्तान के साथ व्यवस्था अपनी स्वतन्त्र स्थिति बनाये रखें। परन्तु उन्हें मौलौसिक स्थिति ध्यान में रख कर अपना निर्णय करना चाहिये। जूनागढ़ की रियासत भारत के क्षेत्र में थी परन्तु बहादुर नवाब ने अपनी रियासत को मिश्रीन का निर्णय पाकिस्तान के पक्ष में किया। नवाब का यह निर्णय जूनागढ़ की जनता की इच्छा के विरुद्ध था घत वहाँ की जनता ने विद्रोह कर दिया और नवाब को रियासत छोड़ कर पाकिस्तान भागना पड़ा। रियासत के दीवान और वहाँ की पुलिस ने जिनके हाथों में प्रशासन था राजकोट के भारतीय क्षेत्रीय कमिश्नर (Indian Regional Commissioner) से कहा कि जूनागढ़ के प्रशासन को भारत अपने हाथ में ले। तदनुसार प्रार्थना स्वीकार करत हुए, ६ नवम्बर, १९४७ को भारत सरकार ने रियासत का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया और फरवरी १९४८ में वहाँ पर विधिवत जनमत संग्रह (Plebiscite) कराया गया। भारत के पक्ष में १९०७७१ मत घाये जब कि विपक्ष में कुल ६१। इस तरह लोक निर्णय के अनुसार ही जूनागढ़ भारतीय प्रशासन में आ गया। पाकिस्तान ने, भारत के प्रति अपने विद्रोह का परिणाम भैत हुए और रियासत की जनता की इच्छा का पूरा धनावर करत हुए, इस प्रश्न का समुक्त राष्ट्र सङ्घ की सुरक्षा परिषद में उठाया। परन्तु पाकिस्तानी आस सफल नहीं हुई और रियासत के सम्बन्ध में अन्त में जो स्थित घन गई थी उसको स्वीकार कर लिया गया।

(II), हैदराबाद का भारत में वियन

हैदराबाद राज्य का शासन निजाम था। इस रियासत की कुल जनसंख्या १६६ लाख थी जिसमें केवल १२ प्रतिशत मुसलमान थे। निजाम अपनी रियासत का पूर्ण अस्तित्व बनाये रखने के पक्ष में था। नवम्बर १९४७ को उसने भारत सरकार के साथ एक 'यथापूर्व स्थिति' समझौता किया जिसके अनुसार वह निश्चित किया गया कि नया समझौता सम्पन्न होने तक भारत सरकार और हैदराबाद रियासत के बीच वे ही सम्बन्ध बने रहेंगे जो १५ अगस्त १९४७ से पहिले ब्रिटिश सरकार तथा हैदराबाद रियासत के बीच थे। हैदराबाद के प्रशासन में उस समय एक मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठन था जिसका नाम मजलिस-ए इम्हादजल था। इस संगठन के सैनिक मोर्चे-टीयर्स रजाकार कहलाते थे। शासन की समस्त वास्तविक शक्ति वहाँ रजाकारों के हाथ में थी। भारत और पाकिस्तान के दो राष्ट्रों के उदय के तुरन्त बाद इन रजाकारों ने हैदराबाद रियासत में घातक उत्पन्न कर दिया और स्थिति यह हो गई कि किसी भी नगर नागरिक का जीवन और सम्पत्ति सुरक्षित न थी। जब वहाँ की जनता इन मर्यादी शासकों में भगित और डूरी हो गई तो सितम्बर १९४८ में भारत सरकार ने पुलिस फायदाही की ताकि वहाँ की जनता का जीवन और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित हो सके तथा निजाम रजाकारों के अंगुल से निकल सके। १७ सितम्बर को हैदराबाद के परमाधी रजाकारों ने अपना रजाकार सरकार ने भारत के

आगे आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु हैदराबाद सरकार, भारत की इस पुनिस्र कार्यवाही से पहिन्न ही, हैदराबाद नमस्त्वा को संयुक्त राष्ट्र सभ की सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत कर चुकी थी। यद्यपि इस प्रश्न का प्रन्त उस समय हुआ जब १३ दिसम्बर, १९४८ को भारतीय प्रतिनिधि ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी कि यह प्रश्न के बाद विचार में कोई मात्र न गया। पाकिस्तान ने इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद में बनाये रखने का भरसक प्रयत्न की और भारत के प्रति अन्तरद्वेष बाक्युद्ध छोड़ा किन्तु उसे कोई सफलता हासिल न हो सकी। उल्टे विस्व की जनता को यही पता चला कि पाकिस्तान के हृषय में भारत के प्रति कितना वैमनस्य और बिहोप मरा हुआ है।

(iii) अरब प्रभावणो का प्रश्न

स्वतन्त्र भारत न पुरानी सरकार के पूरे कर्जों का भार सम्हाला जिसके अनुसार उसे १०० करोड रुपये ५ वर्ष में पाकिस्तान से भना था। लेकिन पाकिस्तान तो शर्म से ही अनियती पर उठारू का यद्यपि उसने ऐसा रवैय्या अपनाया कि इस कर्ज को चुकाने का नाम ही नहीं लिया और सैनिक संयुक्तों में होकर अपनी शक्ति को इस तरह बढाने में अग्र गया कि वह अपने बायित्तों से मुक्त हो सक। भारत ने अपनी उदार भूति के कारण पाकिस्तान के इस रवैय्ये को सहन किया। इतना ही नहीं उसने पाकिस्तान को अपनी धोर से दिये जाने वाले कर्जों की प्रभावणो को नहीं रोका। जब काश्मीर पर पाक का आक्रमण और पाक के साम्प्रदायिक हमनयन से दोनों देशों के सम्बन्ध पूरी तरह से बिगड़ गये तो तब भी (१९४८ में) भारत ने उसके प्रति वैर्य और सहभावना ही प्रदर्शित की। भारत ने प्रतिभाषित भारत के लक्ष्य बकाया का ५५ करोड रुपये का पाकिस्तान का हिस्सा उसे दे देने का निश्चय किया। अपने इस निश्चय पर टिप्पणी करते हुए श्री नेहरू ने कहा— 'हम इस प्रस्ताव में इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि हमारे इस उदार रवैय्ये से जो भारत के उच्च पादलों और यांभीजी के पुनीत मानदण्डों के अनुकूल है विश्व को विश्वास हो जायेगा कि हम पूरे तौर से शांति और सहभावना के दृष्टान्त हैं। परन्तु पुर्नगियबत श्री नेहरू बाकी और भारत की यह प्रस्ताव बुरासा में ही परिणत हुई। पाकिस्तान ने अपनी सभ्य पति को छोड़ा नहीं और ज्यों-ज्यों उसे दूब पिसाने की प्रेष्ठा की गई त्यों-त्यों वह काटने की धोर ही बीकता रहा।

(iv) बिस्वापित सम्पत्ति तथा अल्पसंख्यकों की रक्षा का प्रश्न

१९४७ से १९५७ तक लगभग ७ मिलियन मुसलमान भारत से पाकिस्तान गये और छोड़े छः मिलियन वैर मुस्लिम पाकिस्तान से भारत गये। दोनों ही क्षेत्रों के ये लोग अपने पीछे बिनाश मात्रा में अपनी सभ्य और सम्पत्ति छोड़ गये। अनुमानतः भारतीयों ने पाकिस्तान में १ हजार करोड रुपये की और मुसलमानों ने भारत में १०० करोड रुपये की सम्पत्ति छोड़ी। बिस्वापित सम्पत्ति के इस प्रश्न को हल करने के बारे में भारत सरकार की धोर से सुझाव दिया गया कि दोनों देशों की सरकारें मिल कर

सरकारी स्तर पर इस प्रश्न का समाधान करें और पाकिस्तान सरकार भारतीयों की बकाया सम्पत्ति का भारत सरकार को चुमतान करे किन्तु पाकिस्तान की नियत तो २७०० करोड़ रुपये की बगुन सम्पत्ति को डकार जाने की थी घट इस सम्बन्ध में कोई समझौता न हो सका।

दोनों राष्ट्रों के समस्त अल्पसंख्यकों की रक्षा की समस्या भी विद्यमान थी। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में समय-समय पर साम्प्रदायिक तनावों की ऐसी गम्भीर बटनायें होती ही रहती हैं जिनके कारण गैर-मुस्लिम लोगों को बहुत बड़ी संख्या में भारत में प्राकर तारख लेनी पड़नी है। इसकी तुलना में भारत से विभिन्न शरणार्थियों बहुत ही कम अल्पसंख्यक पाकिस्तान जाते हैं जिनमें से अधिकतर तो केवल इसीलिए कि वे अपने सगे सम्बन्धियों के कारण पाकिस्तान में ही रहने की इच्छा करते हैं। विभाजन के तुरन्त बाद अल्पसंख्यकों की रक्षा का प्रश्न गम्भीर रूप से उपस्थित हुआ। घट २ अगस्त १९५० को साम्प्रदायिक उपद्रवों को रोकने व अल्पसंख्यकों में रक्षा की भावना उत्पन्न करने के लिए भारत-पाक प्रथम सन्धियों के बीच 'नेहन-सिपाकत समझौता' हुआ। परन्तु पाकिस्तान ने इस समझौते का कमी पालन नहीं किया और विशाल संख्या में हिन्दू शरणार्थियों का भारत आने का ताता बगा रहा। घात्र भी ग्युनाधिक रूप में यह स्थिति विद्यमान है जबकि छुटरी ओर भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा सुरक्षा और नागरिक अधिकार प्राप्त हैं।

(v) नहरो विवाद

भारत और पाकिस्तान के मध्य एक घम्य समस्या नदियों के पानी के हिस्से को लेकर थी। पंजाब के विभाजन के कारण सिन्धु नदी के पानी को लेकर जिन पर एक विभाजित पंजाब की द्वि सन्धि निर्भर थी कठिन परिस्थिति पैदा हो गई। छतलज व्यास और रावी नदियों के छेड बर्त भारत में पड़ गये। लेकिन नहरों की दृष्टि से २५ में से केवल २० नहरें भारत में पाई और एक नहर दोनों देशों में पड़ी। भारत के हिस्से में पंजाब का आ भी प्राय प्राय उसकी द्वि भूमि पीदावार की दृष्टि से प्राप्ती नहीं थी क्योंकि वहाँ सिन्धु नदी की व्यवस्था नहीं थी जबकि पाकिस्तान के हिस्से में पड़ने वाले पंजाब के भाग में सिन्धु नदी की भरपूर व्यवस्था थी।

भारत पाकिस्तान से समझौता बार्ता करने को तैयार हो गया था कि नदियों के पानी की बजह से पाकिस्तान की द्वि पीदावार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। दोनों राष्ट्रों की सहमति से यह विवाद मध्यस्थता के लिए विश्व बैंक को सौंप दिया गया जिसके प्रयत्नों से १५ अगस्त १९६० को भारत पाक में सिन्धु नदी के पानी के दोनों राष्ट्रों में समान बंटवारे के बारे में 'नहरी पानी समझौता (Indo-Pak Canal Water Treaties)' हुआ। इस समझौते के अनुसार जो कि नदियों के विभाजन पर प्राचारित है यह निश्चय किया गया कि १० वर्ष की प्राविक अवधि के बाद जो पाकिस्तान की प्राथना पर ३ वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकेगी तीनों पूर्वी

नदियों का पानी भारत के अधिकार में रहेगा जबकि तीनों पश्चिमी नदियों का पानी पाकिस्तान के अधिकार में केवल इनका सीमित पानी उत्तर की घोर के जम्मू और काश्मीर प्रान्त में प्रयोग किया जायगा। यह तय हुआ कि १० वर्ष तक भारत पूर्वी नदियों (सतलज रावी घोर व्यास) से पाकिस्तान को प्रत्येक वर्ष पट्टी हुई मात्रा में पानी देगा और नई जोड़ने वाली नहरों के निर्माण के लिए पाकिस्तान को आवश्यक मात्रा में धन भी देगा। यदि पाकिस्तान भारत से पानी देने वाली अवधि में ३ वर्ष के लिए प्रार्थना करेगा तो प्रार्थना स्वीकृत होने पर उसी अनुपात में भारत द्वारा पाकिस्तान को भी देने वाली धन राशि में कटौती कर दी जाएगी।

भारत पाक सम्बन्धी नई बिदा में नई पानी समझौता भारत की घोर से एक अत्यन्त आशापूर्ण कदम था। पंडित नेहरू के शब्दों में "यह वास्तव में एक अपूर्व अक्षर और कई वर्षों में एक स्मरणीय दिवस है। स्मरणीय इस रूप में कि इसके द्वारा नई वर्षों से भारत पाकिस्तान के सम्मुख प्रस्तुत एक अत्यन्त कठिन और अटिन समस्या को अत्यन्त संतोषजनक रूप में सुलभ किया गया है। स्मरणीय इस रूप में भी कि यह हमारे दोनो देशों और विश्व बैंक के सामूहिक प्रयत्नों का एक अनुपम उदाहरण है।" यह संधि पाकिस्तान के लिये विशेष फायदेमन्द भी और विप्लव पर्यवेसकों को भी भारत के इस उदार दृष्टिकोण से राजकुल हुआ क्योंकि स्वयं उसको अपनी कृति पैदावार बढ़ाने के लिये सिन्धु-जस की काफी आवश्यकता थी। इस संधि की शर्तों के अन्तर्गत भारत केवल पाकिस्तान को सारी की सारी पश्चिमी नदियों को आर्ष टित करने के लिये सहमत नहीं हुआ बल्कि अपनी तीनों पूर्वी नदियों से भी पहले उस समय तक पानी देते रहने की सहमति दी जब तक की पाकिस्तान अपनी सिन्धु व्यवस्था करने में समर्थ न हो जाए। इसके अधिक उदार हृदयता की भारत से और क्या आशा की जा सकती थी? लेकिन पाकिस्तान ने भारत की इस उदारता का कोई आभार नहीं किया और उसके बाद के आक्रमक इतिहास ने भी नेहरू की इस आशा को भुंझा दिया कि इस समझौते के बाद से भारत पाक सम्बन्धी को एक नया और सुलभ अन्वय आरम्भ होगा।

भारत के मुँह बर्ज के अस्तित्व का पाकिस्तान द्वारा
बार २ दुकराय आना

काश्मीर पर १९४७ में पाकिस्तान के आक्रमण की बटना के बाद से ही भारत ने निरन्तर उस बात का अर्थ किया कि अविध्य में दोनों राष्ट्रों में किसी प्रकार का कुछ न करने सम्बन्धी एक स्थायी समझौता हो जाए ताकि प्रत्येक वर्तमान अवस्था भावी समस्या का समाधान अतिपुर्ण शर्तों के द्वारा ही किया जाता रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये १९४९ से ही भारत ने धन तक बारम्बार पाकिस्तान से मुँह बर्ज समझौता करने का प्रस्ताव किया है। इस तरह का पहिला अवसर यह था जब २२ दिसम्बर, १९६६ को भारत ने पाकिस्तानी उच्चायुक्त को एक प्रस्तावित संयुक्त घोषणा का मसविदा

सुझाया और इसके कुछ बिगों बाब ही श्री नेहरू ने पाठ प्रधानमंत्री को अपने पत्र में लिखा—

“भौमोलिक और बहुत सघन कारणों से यह अत्यन्त आवश्यक है कि दोनों देशों के बीच जो घनेक मसले उठ जाइए हैं उनका निपटारा हो। इस आशय की एक वृद्ध जोषणा करण पर हम किसी भी हासत में शांति पूर्ण तरीकों से उन्हें ठय करेय अपने दोनों देशों के साथ साथ हम उमास बुनिया की बहुत बड़ी सेवा करय क्योंकि इससे हम दोनों के विमाग से युद्ध का भय जागा रहेगा।

श्री नेहरू बारबार आलावान रहे, लेकिन पाकिस्तान ने क्यों तक सद्भावना का पाठ सीखा ही नहीं। इस पर १९५१ में श्री नेहरू ने पुन निम्नलिखित शब्दों में पाकिस्तान से युद्ध वचन समझौते की प्रपीन की—

“मैं समझता हूँ कि अगर पाकिस्तान और भारत दोनों इस बात के लिये सहमत हो जाए कि किसी भी कारणवश हम लोग परस्पर युद्ध नहीं करेंगे और शांतिपूर्वक अपनी समस्याओं को हल कर लेग तो हो सकता है कि वे कुछ समय के लिये हल न भी हो लेकिन उनके लिय मझाई करण की बजाय उन समस्याओं को बिचाराधीन बनाये रखना अधिक श्रेष्ठ होगा। इसलिये युद्ध बर्जित जोषणा अत्यन्त वांछनीय है इससे हमें सहायता मिलेगी।”

पाकिस्तान द्वारा ऐसे समझौते के प्रति अपेक्षापूर्ण रुख अपनाते पर भी श्री नेहरू ने अपनी उदार चित्तावन हार न मानी। उन्हें आता भी कि बेर सबर पाकिस्तान के मुसोमधी नेता सही लकीर पर घा जायेंगे। नवम्बर १९५२ में पुन एक पत्र उन्होंने राष्ट्रपति अय्युब को लिखा जिनमें कहा गया कि—

“हमारे दोनों देश विकास और आधुनिकीकरण के बड़े २ कामों में सगे हुए हैं ताकि हमारे लोगों के रहन सहन का दर्जा उचा हो सके। इसके लिये हम एक संकल्प हैं इसलिय प्रेसीडेंट अय्युब प्राप निश्चित रहें पाकिस्तान के साथ कायम अपने सम्बन्धों में तो आस और से हम इस नीति का पास करेंगे। पाकिस्तान के साथ किसी सघन या भ्रमण का विचार एक ऐसी चीज है जो स्वयं हमारे विरुद्ध है। हम अपनी और से इन कमी नहीं शुरू करेंगे। मुझे यकीन है कि भारत और पाकिस्तान का भविष्य दोनों के सामाय्य उनकी दोस्ती तथा सहायग में ही निहित है।

वास्तव में श्री नेहरू का शानिवाद प्रतीत था। उन्होंने एक बार यह कहा भी था कि पाकिस्तान के लोगों के साथ उनका भावार्थक मुझाव है और पाकिस्तान द्वारा कुछ आरत बिरोधी कार्यवाही करने पर भी वे पर प्रयत्न करेंगे जो दोनों देशों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहें। कुछ बिचारकों का मत है कि यद्यपि पाकिस्तान और भारत के बीच नेहरू काम में मैत्र भीत युद्ध की स्थिति बनी रही लेकिन फिर भी नेहरू ने पाकिस्तान के प्रति मोनेयन मुनासद कमजोरी और प्रतिवर्ता की नीति का ही प्रदर्शन किया।

२७ मई, १९६४ को खातिबाबी नैहक की मृत्यु हो गई। भारत के नये प्रजातन्त्रभी भी जालबहापुर जाल्सी बने। पाकिस्तान की नीति और उसके इरादों को मन्ती प्रकार समझते हुए और उसके प्राथमिक कार्यों का मुद्दोज़ाबनाय देने की इकता लिए हुए भी भी जाल्सी की प्राथमिक मनोकामना यही थी कि दोनों राष्ट्रीय के सम्बन्ध स्वत्व और मैत्रीपूर्ण बनें। यह प्रपना कार्य मार प्रह्वन करने के तुरन्त बाद दिये गये एक मापन में सम्मोने कहा—

“तम्ब घरेसे से भारत और पाकिस्तान में परस्पर ब्यर्थ की बनवत रही है। दोनों देशों के बीच कायम दुर्नाय्यपूर्ण सम्बन्धों की प्रतिक्रिया दोनों बड़ें देशों के समुदाय के बीच कायम सम्बन्धों पर होती रही है जिससे मयंकर समसाम्ये पैदा हुई है। इसके समाधान के लिए भारत पाकिस्तान की सरकारों और जनता को परस्पर ब्यवहार में अपनी जोर से निरूपणपूर्वक सहभाव से काम लेना होगा। १५ जून १९६२ को अपने एक पत्र में श्री जाल्सी ने प्रेसिडेंट अम्बूब से पुनः अनुरोध किया—‘अपने मतभेदों का घोर दूर करने के लिए हम सहिष्णुता एवं बयं से काम लेना चाहिए।’ १२ अगस्त, १९६४ को स्वाधीनता दिवस पर पाकिस्तान के साथ ‘मुझ बर्बन समझीता’ करने का एक बार फिर प्रस्ताव रखते हुए श्री जाल्सी ने घोषणा की—

‘हम चाहते हैं कि दोनों देशों में मैत्री और सहभावना हो। सीमा पर हम दोनों बालबात भारत या पाकिस्तान—किसी भी देश के लिए अच्छी नहीं है। साथ ही यह बात भी हमारे लिए गौरव का नहीं है कि हम सीमापार के लोगों का प्रबन्धन रोकने में असमर्थ हुए हैं। इसलिये हम एक ऐसा रास्ता ढूँढ निकालना चाहते हैं जिसमें हमारा सम्मान बना रहे।’

परन्तु अनुपता बयमस्य और इय्यां इये से परिपूरित पाकिस्तान के नेताओं के मास्तफकी से भारत के खाति प्रस्तावों और भारत की प्रतीक का कोई प्रसर नहीं हुआ। कच्छ पर और बाद में काश्मीर तथा भारत में होने वाले पाकिस्तान के प्राक्रमणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाकिस्तान के नेता केवल एक ही बात के धाकिल हैं कि उनकी ईंट का बनाव पत्थर से किया जाए और यदि वे हमारे देश पर पत्थर लगाने को लछन हों तो हम उन्हें कराया बोला लगाने को तैयार रहें। ऐसी पयार्थबाबी नीति प्रपनाने पर ही हम पाकिस्तान का मला कर उन्हें बमोकि तब ही पाक नेताओं को खाति की कीमत का यह अहसास होगा और वे सही रास्ते पर चल सकेंगे।

(vii) कच्छ के भारतीय प्रवेश पर पाकिस्तान का प्राक्रमण

१९४७ के बाद १९६२ में पुनः पाकिस्तान ने भारत पर दो प्रबल शक्ति प्राक्रमण किये। इनमें पहिला प्राक्रमण मार्च-अप्रैल १९६२ को कच्छ पर हुआ और दूसरा अक्टूबर-सितम्बर १९६२ में काश्मीर पर। कच्छ की लड़ाई (The Rann of Kutch) का सेप्टेम्बर ६ हुआ बयंमिनी है। यह एक दलबलीय खेल है जिसमें बयं के अधिकांश भाग में पानी भरा रहता है। जब पाकिस्तान ने इस प्रबल के उत्तरी हिस्से के भीतर पहिले एक प्राक्रमण

बना सी घोर बाद में भारतीय सीमा में कंजर कोट डींग एवं बिगोराट नामक स्थानों पर अपनी स्थायी चौकियाँ स्थापित करनी तो भारत सरकार ने पाकिस्तान को प्रतिवचन के बिल्कुल कड़ा विरोध-यत्न भेजा। पाकिस्तान द्वारा इन विरोध पत्रों की न केवल पूर्णतः उपेक्षा कर ली गई बल्कि गुजरात के बड़े क्षेत्र पर उसने अधिकार का दावा किया। पाकिस्तान का यह दावा ऐतिहासिक घोर वैधानिक रूप से सर्वत्र या क्योंकि इस क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पहिले से ही निर्धारित हो चुकी थी। किन्तु पाकिस्तान ने इस दावा को समुद्र मान कर उसके मध्य भाग का अन्तर्राष्ट्रीय सामा माने जान का दावा किया जो न केवल अपने भाषमें अनेकानेक या बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विरुद्ध भी था। अपने इस दाव के पक्ष में पाकिस्तान द्वारा तीन तर्क प्रस्तुत किये गये—

१ पाकिस्तान ने दावा किया कि कच्छ की खाड़ी पर मन् १७६२ में सिंध के राजा ने प्राक्रमण किया था।

२ १८७५ में सिंध के अधिकारियों ने यह रिपोर्ट प्रस्तुत की कि कच्छ—सिंध सीमा अवशास्त्रात् पर स्थित थी या कि कच्छ उन के मध्य में है।

३ कच्छ का रन या तो बल से घिरा हुआ समुद्र है अथवा सीमा की भीम है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सीमा इनके मध्य में होनी चाहिये।

पाकिस्तान के इन तर्कों अथवा दावों के प्रत्युत्तर में भारत ने निम्नलिखित तथ्यपूर्ण उत्तर प्रस्तुत किये—

१ इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सिंध के राजा का कच्छ के रन पर अधिकार रहा हो। सिंध के राजा ने इस क्षेत्र में या भी थोड़ी सी सेना नियुक्त की थी उस भी उसका मदक न फौरन ही वापस बुला लिया था। ब्रिटिश सर्वोच्च न्यायिक का सर्वत्र सम्पूर्ण कच्छ के रन को कच्छ के अधिकार क्षेत्र में माना है।

२ १६०९ में भारत सरकार के विदेश विभाग द्वारा अन्तिम रूप से निर्णय किया गया था कि कच्छ का रन बल से घिरा हुआ समुद्र अथवा भीम नहीं है बल्कि वनरत (Marsh) है इसलिये कच्छ के रन पर तत्काल अन्तर्राष्ट्रीय कानून लागू नहीं हुआ।

स्पष्ट है कि कच्छ विवाद पाकिस्तान द्वारा मन्मते इंग पर बिना किसी आधार के कड़ा किया गया था। बस्तु स्थित यही थी कि भारत के विभाजन में पहिले कच्छ के रन का उत्तरी भाग सिंध-प्रशासन क्षेत्र में न होकर कच्छ राज्य के नरेश के अधिकार क्षेत्र में था। कच्छ सिंध का किनारा ब्रिटिश प्राप्त सिंध तथा देशी गिरासन कच्छ के बीच की सीमा निर्धारित करता था। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा न होने के कारण इसका विभाजन अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की तरह नहीं हुआ था लेकिन १८७२ से १९४३ तक के सभी नक्शों में दोनों के बीच की सीमा को स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया गया था।

१२ अगस्त १९४७ में पूर्व के नज्दों में जो सीमा रेखा लिखाई गई, वह निरविहद और विवाद से परे थी।

भारत और पाकिस्तान के मध्य इस प्रकार बार्ता बम ही रही थी कि ६ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान सेना को एक टुकड़ी ने अपने टैंक व तोपखानों से सुमजिद होकर सरदार नामक भारतीय चौकी पर हमला बोल दिया। २४ अगस्त १९४७ का पाकिस्तान की पूरी एक ब्रिगेड (३३०० सैनिक) ने अमेरिकन टैंकों के साथ कच्छ पर भीषण आक्रमण किया जिसका मुकाबला बेबस २२३ भारतीय सैनिकों द्वारा ऐतिहासिक बीरता के साथ किया गया। बाह में भारत की घोर से तुरन्त ही प्रभावकारी सैनिक सुमुक भिजी गयी।

कच्छ सीमा पर भारत पाक संघर्ष को रोकने के लिये ब्रिटेन ने कुछ बिराम (Cease fire) का प्रस्ताव रखा जिसे भारत ने मान लिया लेकिन पाकिस्तान ने अस्वीकार कर दिया। पाकिस्तान का प्रस्ताव था कि दोनों देश "संपूर्ण संघर्ष क्षेत्र से अपनी सैन्य हटा दें जबकि भारत का दावा यह था कि कुछ बिराम घोर दोनों देशों के बीच शांतिबार्ता होने के पहिले कुछ पूर्व की स्थिति स्थापित हो क्योंकि ऐसा न होने पर आत्ममक शक्ति को अनिश्चित साम पहुँचना और भारत को हानि।

अन्त में लम्बे से होने वाले राष्ट्रमंडलीय प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन के अखसर पर ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ब्रिस्लान के प्रत्यक्ष से भारत और पाकिस्तान के बीच कच्छ के प्रश्न पर १ अून १९४७ को एक समझौता हुआ जिसमें निम्नलिखित बातें उल्लिखित की गयीं—

- १। १ जुलाई, १९४७ से कुछ बन्द कर दिया जाए।
- २। दोनों देशों को सैमायें ७ दिन के भीतर पीछे हटा ली जायें और १ जनवरी १९४७ की अपनी अपनी स्थिति पर लौट जायें।
- ३। सीमा विवाद के प्रश्न पर समाधान पहिले मन्त्रियों की बार्ता द्वारा किया जाए और इस प्रकार की बार्ता सफल न होने पर यह प्रश्न एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण (Tribunal) को सौंपा जाए। न्यायाधिकरण के तीन सदस्य हों जिसमें एक एक मन्त्र भारत तथा पाकिस्तान द्वारा नियुक्त किये जायें और अध्यक्ष के नाम पर यदि दोनों देशों में सहमति न हो सके तो समुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव उसका नाम प्रस्तावित करें।

इस समझौते अन्वया उचित के अनुसार पाकिस्तान अपनी सम्पूर्ण सेना अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के अन्तर में ले गया। परन्तु बिग-सुरज-कंडरकोट मार्ग पर दोनों देशों को ही अपने पुलिस बल रखने का अधिकार मिल गया। इस का अर्थ यह हुआ कि पाकिस्तान ने अपनी सेनायें बिहारकोट पोइन्ट ८४ तथा कंडरकोट से हटा ली और भारत को सरदार तथा बिपाकोट की चौकियाँ लानी करनी पड़ी। समझौते में यह व्यवस्था की गई कि "संपूर्ण क्षेत्र"

में पुसिस की कोई चौकी नहीं होगी परन्तु पाकिस्तानी पुसिस के गश्ती दल को कब्रकोट तक जाने जाने का अधिकार होगा। छारबेट तथा करीमशाही चौकियों पर भारत का अधिकार होगा और भारतीय पुसिस अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक गश्त कर सकेगी। छारबेट की चौकी पर भारत की पुसिस शक्ति उसकी ३१ दिसम्बर १९६४ वाली पुसिस शक्ति से अधिक न होगी। पाकिस्तानी दल मुरझ-कब्रकोट मार्ग का पहरा होगा तथा भारतीय गश्ती दल अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक जाएगा लेकिन गश्त करने बाधों की संख्या १ जनवरी की निर्धारित संख्या से अधिक न होगी। यह भी तय हुआ कि दोनों पक्षों दलों का कमी प्रामता सामना हो जाए तो वे एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

उपयुक्त समझौता होने के बाद कश्मि सीमा पर भारत और पाकिस्तान दोनों देशों ने अपनी अपनी सेनाएँ १ जनवरी १९६५ वाली स्थिति में हटा लीं। पाकिस्तान द्वारा उठाए गए सीमा निर्धारण के प्रश्न पर विचार हेतु एक न्यायाधिकरण की नियुक्ति कर दी गई जिसमें भारत द्वारा यगोस्ताबिया के न्यायाधीश को प्रस्तावित किया गया और पाकिस्तान द्वारा ईरान का। दोनों ही देशों में मतभेद के कारण अध्यक्ष की नियुक्ति संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव द्वारा की गई। न्यायाधिकरण द्वारा दोनों देशों को धावेत दिये गये कि वे कश्मि के सम्बन्ध में अपने अपने दावे प्रस्तुत करें ताकि उन पर विचार किया जाकर न्यायाधिकरण अपना निर्णय दे सके। न्यायाधिकरण का नियुक्त होना अभी टोप है।

काश्मीर पर भारत-पाक संघर्ष

भारत और पाकिस्तान १३ अगस्त, १९४७ का दो पृथक स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में अस्तित्व में आये और एक सममग का माह बाब ही २२ अक्टूबर, १९४७ को पाकिस्तान द्वारा काश्मीर पर आक्रमण कर दिया गया। आक्रमणकारी पाँच दिन में ही काश्मीर की राजधानी श्रीनगर के पास पहुँच गये। इस पर काश्मीर के महाराजा ने भारत सरकार से सहायता माँगी किन्तु भारत ने राजनीतिक समझौते के अन्तर्गत सहायता देने का इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् काश्मीर महाराजा ने अपनी रियासत को भारत में विलय करने का समझौता किया और तब भारत ने अपनी सेनाएँ काश्मीर में आक्रमणकारी को मार मराने के लिए भेजी। साथ ही दोनों देशों के बीच पूरी सड़कें न छिड़ जाए, इस स्थिति से बचन के लिए १ जनवरी १९६५ को भारतीय सरकार ने पाकिस्तान के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की ३३वीं धारा के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद में यह तिहायत भी कर दी कि पाकिस्तान की सहायता से कबाइलियों ने भारत भूमि पर आक्रमण किया है अतः उन्हें रोकना जाए। सुरक्षा परिषद ने २० जनवरी १९६५ को एक प्रस्ताव द्वारा आँध कमीशन की नियुक्ति की जिसमें दोनों देशों ने परामर्श से १३ अगस्त १९६५ को मुमता दिया कि दोनों देशों के बीच कम रहे युद्ध का रोका जाए और काश्मीर के अविष्य का निर्णय वहाँ की जनता की उय

से हा। इसके फलस्वरूप १ जनवरी १९४९ को मुठ बन्द हो गया और तत्पश्चात् भारत और पाकिस्तान के मध्य संयुक्त राष्ट्र संघीय मध्यस्थता के माध्यम से तथा सीधे रूप में भी बातचीत होती रही। मुख्य परिषद में काश्मीर समस्या में क्या नये नये मुलु लिसाये और इस सम्बन्ध में भारत और पाकिस्तान के बीच कितना विचार चलता रहा यदि सब बातों का पूरी तरह विस्तार के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्ववर्ती अध्यक्ष में 'काश्मीर समस्या' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक होगा। प्रस्तुत संदर्भ में केवल यह देखना उपयुगी होगा कि काश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान और भारत ने अपने अपने पक्ष में सब तक किन तर्कों को प्रस्तुत किया है और अन्त-सितम्बर १९९२ में काश्मीर में पाकिस्तानी बुमपैठ तथा काश्मीर को लेकर भीषण भारत पाक युद्ध के उपरान्त काश्मीर की स्थिति और भारत पाक सम्बन्धों की स्थिति क्या है ?

काश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान का तर्क

यद्यपि काश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान का पक्ष एकदम निर्बल है और उसकी स्थिति पूरी तरह एक अचरणीय की है किन्तु एगो प्रमेणिकन कूटनीति से प्रोत्साहित होकर पाकिस्तान सब तक अपने पक्ष में निम्नलिखित प्रमुख तर्क जगसित करता रहा है—

(१) काश्मीर का भारत में विलय भारत द्वारा प्रयोग की गई सक्ति एवं मय प्रदर्शन का परिणाम था अतः उसको स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि काश्मीर के नासक द्वारा अपनी स्वतन्त्र इच्छा का प्रयोग नहीं किया गया है।

(२) काश्मीर का भारतीय मय में विलय अममत संघर्ष की शर्त पर आधारित था। अतः इस शर्त को पूरी किये बिना काश्मीर को स्वामी रूप से भारतीय संघ में मिसा हुमा नहीं माना जा सकता।

(३) काश्मीर एक मुस्लिम बहुल प्रदेश है। जब पाकिस्तान का निर्माण ही मुस्लिम बहुल प्रदेशों से मिलकर हुआ है तो फिर काश्मीर का विलय भी तर्कपूर्ण दृष्टि से पाकिस्तान में ही हुना चाहिये।

(४) काश्मीर के अममत संघर्ष कर जाने के प्रश्न पर पाकिस्तान का समानता का अधिकार है। भारत का विभाजन करते समय भी सभी प्रकार के विचार विमर्श और निर्णय काउंसिल व मुस्लिम लीग की रबागम्बी से हुए थे अतः काश्मीर के मामले में भी कोई निश्चय करने में भारत और पाकिस्तान को बराबरी का हक मिलना चाहिये।

(५) पाकिस्तान का यह भी हक है कि काश्मीर के राजा ने काश्मीर की जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत में सम्मिलित हुना स्वीकार किया था अतः यह अवैधानिक है।

यदि वास्तविकता की कसौटी पर क्या जाए तो पाकिस्तान द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले तर्क निरान्त उपहासास्पद और बेतुके सिद्ध होते हैं।

पाकिस्तान एक बहुराष्ट्र है जो इस २० वीं शताब्दी में नई राष्ट्रीयता तथा धर्म के आधार पर काश्मीर में द्विराष्ट्र मिश्रान्त का प्रतिपादन करता है। इस सदी में बाति और धर्म की दुहाई करना एक असंगत बात है और भारत राज्य की धर्म निरपेक्षता की पृष्ठभूमि में तो पाकिस्तान का यह उर्क निन्दात्मक बेहूदा सगता है। भारत स्वयं संसार के सबसे बड़े मुस्लिम आबादी वाले राष्ट्रों में तीसरा स्थान रखता है और यहाँ के मुसलमान अपनी स्थिति में पूर्णतया संतुष्ट हैं कुछ मामलों में तो पाकिस्तान के स्वयं के मुसलमानों से भी बढ़कर। पाकिस्तान यह उर्क करता समय की काश्मीर का राजा ने भारत में सम्मिलित होने के लिए बनना की इच्छा को नहीं जाना यह धूस बात है कि अन्य १०० से अधिक देशी-विदेशी क्षेत्रों के बिलय में मतदान के द्वारा बनना की इच्छा नहीं जानी गई थी। वैधानिक स्थिति यही थी कि राज्य का प्रमुख न हस्तांतर हो जाने पर ही उस राज्य को सम्मिलित कर लिया जाता था। स्वयं पाकिस्तान सरकार न कलात के राज्य को यहाँ के नामक राजा को विरफ्तार करके बिना लोकमत वाले अपने राज्य में मिलाया था। इसी तरह पाकिस्तान न इस उर्क में भी कोई बस नहीं है कि काश्मीर का भारत में बिलय मय का परिणाम था। पाकिस्तान यह धूस जाता है कि काश्मीर पर उसका आक्रमण कोई जन आन्दोलन नहीं था। इसके अतिरिक्त यदि प्रांतीय आन्दोलनों में भी अन्तर्गद्दीन कानून के अनुसार यदि किसी हिस्से पर आन्दोलनकारियों का अधिकार हो जाता है तो उस राज्य के शासक को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह दूसरे राज्यों के साथ अपने पूरे राज्य के लिए समझौता करे। काश्मीर के शासक ने भारत में बिलय का प्रस्ताव तब ही किया जब कि उसने यह देख लिया कि पाकिस्तानी उर्क उसकी रियासत को हूबप जायेगी और बिना भारत की सहायता के उसकी रियासत का बचाव नहीं हो सकता। भारत ने पाकिस्तान का आक्रमण होने पर भी तब तक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जब तक कि काश्मीर के वैधानिक शासक ने अपनी रियासत को भारत में बिलय करते हुए सहायता की प्रार्थना नहीं की। दरअसल में पाकिस्तान की स्थिति उस अपराधी जैसी है जो अपना दोष दूसरों पर मढ़ना चाहता हो। पाकिस्तान ने स्वयं ने एक ओर तो काश्मीर के साथ संधिस्थिति समझौता (Status quo Agreement) किया और दूसरी ओर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए काश्मीर पर हमला कर दिया। पाकिस्तान का यह कार्य सरासर धोकेबाजी का था। वह एक मुट्टे और उर्क के रूप में अपने से निर्बल छोटी सी रियासत में घुसा और उस रियासत की प्रार्थना पर भारत न मुट्टे से रियासत को बचाया तथा रियासत का भारत में बिलय भी पूरी तरह वैधानिक ढंग से हुआ जिसमें किसी प्रकार की शक्ति प्रयोग प्रयत्न और जबरदस्ती की शू भी न थी।

भारत द्वारा काश्मीर के प्रश्न पर अपने पक्ष में प्रस्तुत किये गये उर्क

भारत का प्रारम्भ से यह निश्चित और अकाट्य मन रहा है कि काश्मीर का भारत में प्रवेश पूर्णतः वैधानिक है। हम सम्बन्ध में हमारे राष्ट्र

नेताओं द्वारा निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये जाते रहे हैं—

(१) १९५० के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी थी कि रियासत के शासक अपनी रियासतों के मामलों का निर्णय करने के लिये स्वतंत्र हैं। इस अधिनियम में उल्लिखित व्यवस्था की धीरे-धीरे समाप्ति का प्रयास ही भारत सरकार द्वारा किया गया। भारत का तर्क है कि जो प्रवेश पत्रिका दूसरे राज्यों के साथ बर्तमान हो जाती है वही कश्मीर का सम्बन्ध में बर्तमान कैसे हो सकती है? स्वर्गीय श्री नेहरू के शब्दों में—
 काश्मीर का भारत में प्रवेश पूर्ण रूप से भारतीय स्वतंत्रता कायदा के अनुरूप है। यह भारत संघ में प्रवेश करने वाली अन्य देशी रियासतों के साथ की गई कार्यवाही के भी पूर्ण अनुरूप है। काश्मीर का भारत में प्रवेश उस समय हुआ था जब कि वह राज्य मंडल का एक उपनिवेश ही था और काश्मीर के भारत में प्रवेश का मुद्दा की धीरे से तत्कालीन यमनेर जनरल द्वारा ही स्वीकार किया गया था। सम्राट की सरकार (ब्रिटिश सरकार) ने यह तर्क बिस्मयकारी है कि एक उपनिवेश ने प्रसवार्थक कार्य किया। वास्तव में वे स्वयं को ही तोय रहे हैं।¹

भारत के द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त तथ्य से यह स्पष्ट है कि काश्मीर के शासक न भारतीय संघ में अपने राज्य का विना किसी शर्त के इसी प्रकार किया है जिस प्रकार कि बोधपुर जयपुर मैसूर जयपुर अन्य किसी राज्य के राजा द्वारा अपनी सामंतीय गति का उपयोग करते हुए किया गया।

(२) भारत का दूसरा तर्क ग्यायोचित एक प्रबल तर्क यह है कि काश्मीर की जनता द्वारा भी अपने स्वतंत्र रूप से निर्वाचित संविधान सभा के माध्यम से काश्मीर को भारतीय संघ का अभिन्न अंग घोषित किया गया है और इस दृष्टि से काश्मीर में जनमत संग्रह की बात भी प्रायः पूर्ण हो जाती है। काश्मीर की जनता द्वारा निर्वाचित संविधान सभा ने अपने राज्य के संविधान की प्रथम धारा में ही इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया है कि काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। पुनः यह एक सर्वविधित तथ्य है कि संविधान निर्माण के पश्चात् काश्मीर में प्रबल तर्क यह है कि स्वतंत्र चुनाव हो चुका है और वहाँ की जनता की निर्वाचित सरकार ही शासन का

1 "The accession of Kashmir to India is entirely in conformity with the Indian Independence Act, it is also in full conformity with all that has happened in the case of the other princely states, which acceded to India. Kashmir acceded to India when she was still a dominion of the Commonwealth and the accession was accepted on behalf of the Crown by the then Governor General. It is strange that the His Majesty's Government should not argue that a dominion had acted un-constitutionally they are really blooming themselves."

—Nehru's Speech in Parliament on March 28, 1951

संभासन करती है। १९६७ के घाम निर्वाचन में काश्मीर की जनता द्वारा भारत की लोक सभा में भी अपने सदस्यों का स्वतंत्र निर्वाचन किया गया है। इस प्रकार अब पाकिस्तान द्वारा जनमत संग्रह की मांग केवल मात्र एक बेबान और सोखली बचीस है।

इसके प्रतिरिक्त भारत द्वारा भारतनिरुपेय प्रथम जनमत संग्रह की बात को स्वीकार किये हुए १८ वर्ष हो गये हैं और इन १८ वर्षों में काश्मीर की परिस्थिति में राजनीतिक मामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से बहुत बड़ा प्रस्तर घा गया है। पाकिस्तान द्वारा बड़े पैमाने पर सैनिक सहायता प्राप्त करने सैनिक संगठनों की मददस्वता स्वीकार कर देने और काश्मीर की निर्दोष जनता पर दो बार भीषण धाक्रमण करने के कारण स्थिति परी तरह बबस चुकी है। स्थिति के वपत जाने की बात तो १९५७ में भी आरिन की रिपोर्ट में भी स्वीकार की गई थी। अब स्थिति यह है कि प्रन्तर्राष्ट्रीय कानून की *Rebus Sic Stantibus* के नियम के अनुसार भी भारत का १८ वर्ष पुराने उत्तरदायित्व का स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

(३) भारत निरुपेय का प्रश्न एक लोक तंत्रीय प्रश्न है लेकिन इसका प्रयास राज्यों को टुकड़ों में विभाजित करने के लिये नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ क्या सम्भव को यह स्वीकार होगा कि बैस्स के निवासियों को भारत निरुपेय का अधिकार मिले? श्री बी० एन० चक्रवर्ती ने इस प्रश्न का सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत करते हुए पूछा था कि क्या फ्रेंच अपने ब्रिटेनी सभ में कनाडा की जातियों के क्षेत्र में बैस्विचम बेल्जुम में और पाकिस्तान प पबतुनों को भारतनिरुपेय का अधिकार देने के लिये तैयार है? यदि नहीं तो फिर उन्हें यह कहने का क्या अधिकार है कि भारत काश्मीर में भारतनिरुपेय की मांग स्वीकार करे। पाकिस्तान के जिन राज्यों का विलय किया गया उसमें स्वयं से उनमें भारतनिरुपेय का अधिकार दिया था?

(४) पाकिस्तान को जम्मू लिये लगभग २० वर्ष हो चुके हैं। जब इन २० वर्षों में वह अपने ही राज्य की जनता को मोकतभात्मक अधिकार नहीं दे पाया है तो काश्मीर के लोगों के लिये भारतनिरुपेय का मार्ग सपाना उसके लिये एकदम बेहूना बात है।

(५) काश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान द्वारा भारतनिरुपेय प्रथम जनमत संग्रह की मांग रकना इस दृष्टि से भी संशंका अनुचित है कि पाकिस्तान स्वयं उस राज्य की भूमि पर धाक्रमण करता है जिसका विलय वह अपने में चाहता है। पाकिस्तान के हाथ भून से रिये हुए हैं क्योंकि उसने दो बार काश्मीर की भूमि पर गन धाक्रमण किया है। इतना ही नहीं उसने धाक्रमण द्वारा प्राप्त काश्मीर की भूमि पर भी अपना अधिकार बनाये रखा है और कुछ भूमि को अपने प्रबन्धकारी मित्र साम्यवादी चीन को घेंट कर दी है। फिर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि भारत सरकार गन काश्मीर में

जनमत संग्रह करवाने की इच्छा मान ली गई थी वह किसी प्रकार के विषय की पूर्ण बात न थी और इस प्रकार का मातृवाचन भी काश्मीर के शासक को दिया गया था न कि पाकिस्तान को। बात स्पष्ट है कि इस प्रश्न पर पाकिस्तान चाहे एक तृतीय पक्ष है। बात किसी प्रकार का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता जबकि कोई दावा नहीं रख सकता।

(५) काश्मीर में जनमत संग्रह करवाने की बात पाकिस्तान द्वारा अपनी सेनाओं के हटाने के बाद पूरा करने की कही गई थी जिसका स्पष्ट उल्लेख भारत सरकार के पत्र में बलुच गण्ट प्रेष के प्रस्ताव में भी मौजूद है। पाकिस्तान द्वारा अपनी सेनाओं को न हटाया जाना स्वयं जनमत संग्रह के मार्ग में एक रोड़ा कहा जा सकता है। श्री नेहरू ने १९५५ में काश्मीर में दिये गये भाषण में स्पष्ट रूप से कहा था—जनमत संग्रह। कौन-सा जनमत संग्रह चाहते हो? मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि उसकी सेना वहाँ (काश्मीर में) १० वर्ष से ठहरी हुई है और अभी तक उन्होंने उस मू-मात्र को खाली नहीं किया है। यद्यपि उन्होंने ऐसा करने का दावा किया था। क्या हम १०० वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करते रहेंगे?

(७) पाकिस्तान द्वारा काश्मीर में मुस्लिम बहुमत के आधार पर जनमत की मांग प्रस्तुत करना भी किसी तरह न्यायोचित नहीं है। भारत द्वारा मिस्टर बिन्ना के डिप्लोमैट सिद्धांत को कभी स्वीकार नहीं किया गया है। आज भी भारत में पाकिस्तान से धार्मिक सभ्यता में मुसलमानों का निवास है और उन्हें समानता के आधार पर सभी प्रकार के नागरिक व राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। बात धर्म के बहुमत के आधार पर काश्मीर के पाकिस्तान में विजय की मांग करना जबकि जनमत संग्रह का नारा सगाना बेतुकी बात है। काश्मीर को भारत अथवा पाकिस्तान में विजय करने का सम्पूर्ण अधिकार वैधानिक रूप से काश्मीर के महाराजा को प्राप्त था। अतः उसके द्वारा किया गया निर्णय एक अंतिम और अपरिवर्तनीय तथ्य है।

(८) यदि २० वर्ष पीछे सौटकर भारत आत्मनिर्णय की पाकिस्तानी मांग को मानने का हुं साहस करता है तो सम्पूर्ण देश में शक्ति भंग हो जाएगी और स्वयं काश्मीर में भी गम्भीर स्थिति पैदा हो जाएगी क्योंकि भारत और काश्मीर की बात यह कभी स्वीकार नहीं कर सकती कि उनके द्वारा दिये गये पहिले के किसी भी निर्णय को फिर से चुनौती का प्रश्न बना कर उनके अपमान किया जाए।

काश्मीर के भारत में विजय के प्रश्न पर भारत के घूटपूर्व मुख्याधीन श्री यशवंत चव्हाण ने जो विचार व्यक्त किये वे वे काश्मीर पर भारत की स्थिति को एकदम स्पष्ट कर देते हैं। श्री चव्हाण के शब्दों में समय समय पर काश्मीर सरकार एवं भारत सरकार के बीच किये गये समझौतों एवं दोनों राज्यों में विकसित वैधानिक शासन के आधार पर आज

स्थिति यह है कि जम्मू-कश्मीर राज्य भारतीय संघ का अंग है जिसका भारतीय संघ से पृथक्करण जम्मू-कश्मीर तथा भारत के संविधान के संशोधन बिना सम्भव नहीं है। कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण तथा उसके बाद की घटनाओं का विवरण करते हुए श्री गजेन्द्र गडकर ने कहा कि 'सुरक्षा परिषद के प्रस्तावों का पालन नहीं करने के सिधे भारत को कदापि दोष नहीं दिया जा सकता है क्योंकि भारत द्वारा अपने उत्तरदायित्व का पालन करने की बात पाकिस्तान द्वारा अपने उत्तरदायित्व के पालन के पश्चात् ही पैदा होगी है। अतः यदि कश्मीर में जनमत संग्रह सम्भव नहीं हुआ है तो उसका सम्पूर्ण दोष पाकिस्तान का है क्योंकि उसने सेनाओं को हटाने सम्बन्धी अपने उत्तरदायित्व का पालन नहीं किया है।'¹

भारत-पाक संघर्ष १९६५

भारत के प्रति पाकिस्तान के अन्तजात बेमनस्य एवं शत्रु भाव का सबसे अधिक स्पष्ट प्रदर्शन अगस्त सितम्बर १९६५ में देखने को मिला। अगस्त १९६५ में कश्मिर के भारतीय प्रदेश पर आक्रमण के उपरान्त २० दिन को हीने वाले कश्मिर समझौते की स्याही सूखने भी नहीं पाई थी कि अगस्त में पाकिस्तान ने कश्मीर में सादा वस्त्रधारि सशस्त्र घुसपैठिये (Intruders) भेजे। ३ अगस्त १९६५ से लेकर काश्मीर से फौजी दृष्टिग देकर भेज गये तीन हजार से पांच हजार पाकिस्तानी हमलावरों ने भारत के उत्तरी राज्य में घुसपैठ शुरू की।

1 "As a result of agreements between the Government of Kashmir and the Govt. of India from time to time and the development of constitutional law both in Kashmir and in India, the position today was that Jammu and Kashmir formed part of the territory of the Union of India. It could not go out or be taken out of the territory of the Union of India without an amendment of the Constitution of India as well as the Constitution of Jammu and Kashmir. Referring to the first Pakistani aggression and subsequent event including the Security Council resolutions Mr Gajendragadkar said "India could not be blamed for not discharging its obligations under the resolution. Its obligations arose only after Pakistan discharged its in first instance. If no plebiscite could be held, it was entirely because Pakistan refused to carry out its obligations."—former C.J of India Mr P B Gajendragadkar (Patriot, dated 29-12 1966).

If any party to a case fails to perform the obligations incumbent upon it under a Judgement rendered by the Court, the other party may have recourse to the Security Council which may if it deems necessary make recommendations or decid- upon measures to be taken to give effect to the Judgement."

१४ अगस्त १९६३ को 'वाशिंगटन पोस्ट' ने खबर छापी—“पाकिस्तानी प्रकटारों के दायीन कम से कम १५ सौ छापामार ३ अगस्त से मुठभिराम-नेपा को पार कर काश्मीर में बुन गए हैं।”

अब पाकिस्तानी छापामारों की कोसिस नाकाम हो गई और उनमें से एक हजार से ज्यादा मारे गए और बहुत से पकड़ लिये गए और बुनिया को बकौन हो गया कि वे हमलावर पाकिस्तान द्वारा ही दृणित देकर भेजे गये थे ठक पाकिस्तानी सेना ने बुनस्नबुत्सा हमला कर दिया ।

सन्धन 'टाइम्स' के रावसपिण्डी स्थित सम्पादकाता द्वारा भेजे गए ११ अगस्त १९६३ को प्रकाशित समाचार में कहा गया कि— 'इसमें कोई शक नहीं कि काश्मीर में पाकिस्तान की और से जाए लोगों ने मुरिस्ता कामबाही की है और इन सरगमियों की योजना पाकिस्तान सरकार के निर्देशन से की गई है । पत्र में आगे कहा गया कि— 'पाकिस्तान ने काश्मीर में प्रकटारों द्वारा मरण किया है और ऐसा समझा है कि वह दक्षिण हक तक के लिये कटिबद्ध है, यहां तक कि महापुंड के लिये भी चाहे इसका मतीबा दोनों देशों के करोड़ों लोगों के लिये कितना भी मुकामानेह क्यों न हो ।

पाकिस्तान ने इस बात से इन्कार करने का शयल किया कि हमलावरों की सुट-बसोट के पीछे उचका हाथ है । पाकिस्तान के विदेश मन्त्री की बेइ ए मुट्टी ने १० अगस्त को रावसपिण्डी में कहा कि काश्मीर में जो कुछ हो रहा है उसकी जिम्मेवारी किसी भी तरह पाकिस्तान पर नहीं पौनी जा सकती ।

पर तथ्य की मुट्टी के बयानों के बिच्छ विद्य हुए । इसके बहुत अधिक प्रमाण मिले कि अत्यन्ततौर पर किया गया भारत पर सैनिक हमला सीधे पाकिस्तान द्वारा सपठित किया गया था और इसको पाकिस्तान के सर्वोच्च सोमों का समर्पन और जासीबाई प्राप्त था । धन्य बातों के घमावा पाकिस्तानी हमलावरों से बिच शक और टाइप के हथियार बरामद हुए और उन पर जो निश्चान पाये गए उनसे तथा पकड़े गए पाकिस्तानी प्रकटारों और अन्य सोमों क सपानो से इसका प्रमाण मिला । जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा हथियार बरामद होते गये और बुसपैठी पकड़े गए, जैसे-जैसे प्रमाणों की संख्या भी बढ़नी गई । इस समूचे प्रमाण से यह तथ्य निबाबहीन रूप से स्पष्ट हो गया कि बुसपैठियों की सरगमियों के पीछे पाकिस्तानियों का पूरा हाथ था । उन्होंने ही अपनी हथियारबद्ध प्रौत्रों को बुसपैठियों के रूप में दुकड़ियों में बांटा था । पाकिस्तान ने ही मरी में उन्हें छापामार हमले की दृणित की उन्हें दुकड़ियों में सुसंभठित किया और उन्हें कपड़े और सैनिक साज-सामान देकर जानमान की बरबादी करने के इरादे से काश्मीर में भेजा ।

छापामार सेना के मुख्यालय या जिहास्टर सेना के मुख्यालय में इन

पुसपैठियों को भरपूर ट्रेनिंग दी गई। ये पुसपैठी पाकिस्तानी सेना के तथा कश्मिरी आजाद कश्मीर की वटासियनों के सैनिक थे। उन्हें सम्पूर्ण मार्च करने की तरह के हथियारों का इस्तेमाल करने फील्ड एकीनियरी और बात समाकर हमला करने संभार व्यवस्था को मंग करने प्रादि गुरिस्मा बावपेशों की ट्रेनिंग दी गई थी। इस उद्देश्य के लिये चार केन्द्र खोले गए थे जिनमें से एक पश्चिमी पाकिस्तान में सिन्धुतारी में था।

पुसपैठियों को आठ दस्तों में बांटा गया और हर दस्ते में छ. कम्पनियां थीं और एक कम्पनी में ११० फौजी थे। ज्यादातर इन दस्तों की कमान्ड पाकिस्तानी फौज के अफसर कर रहे थे जिनका पद मजर के बराबर था।

पुसपैठियों ने छोटी-छोटी टुकड़ियों में बोरी-छिपे मुदबिराम-रेजा पार की और नियत स्थानों पर आकर बड़े बस का रूप धारण कर लिया। इनके पास विभिन्न प्रकार के हथियार पका हुआ जाना सूखा राखन दवाइयां ट्रांजिस्टर रेडियो और बहुत बड़ी संख्या में भारत के करंसी नोट थे।

पुसपैठियों को जो काम दिये गये थे उनमें से कुछ इस प्रकार थे—

पुसों को नष्ट करना संभार-व्यवस्था को मंग करना भारतीय सेना के लिये रसद साने वाले दस्तों उनके मुख्यालयों रसद मण्डारों पुलिस चौकियों और प्रमुख उद्योग-केन्द्रों को बर्बाद करना सैनिकों पर सैनिक अधिकारियों और गणमान्य व्यक्तियों को खान से मार डालना था।

पुसपैठियों को इस बात का पूरा आश्वासन दिया गया था कि उन्हें स्थानीय लोगों से पूरी सहायता मिलेगी। साथ ही उनको यह आदेश था कि अगर कश्मीर के लोग उनका साथ न दें तो वे इन्हें डराने के लिये मकानों और साज-सामान में आग लगा दें। परन्तु पाकिस्तानी आक्षाओं पर पानी फिर गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री सातबहादुर शास्त्री के शब्दों में—

‘पाकिस्तानी हथियारबन्द आदमियों का काम तोड़-फोड़ की कार्यवाही करना आग लगाना और हमारे हवाई झूठों को दाँत पकवाना था। पाकिस्तान का क्यास था कि उसके झूठे पर कश्मीर में बगावत होगी। उसका अनुमान था कि साथ कश्मीर पाकिस्तान के साथ जाने के लिये तैयार बैठा है। डुमरी और कश्मीर के लोग न तो उन हथियारबन्द लोगों को पनाह देते थे और न खाना। इस तरह कश्मीर के बहादुर लोगों ने साबित कर दिया कि कश्मीर भारत का भाग है और पाकिस्तान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जब पाकिस्तान ने यह देखा कि हथियारबन्द आदमियों को भेजने के बाद भी कश्मीर में न तो अन्ति हुई और न वहाँ की जनता ने साथ दिया तो उसने दूसरा तरीका हमले का अन्तिवार दिया।

धम्म पर सैनिक आक्रमण

भारतीय प्रवेश काश्मीर का हृदयाम के अपने इस प्रयास में असफल होकर एक द्वार हुए जुमारी की तरह भीतना कर तथा अमेरिकन पैटन टैंक व सेबर चेटों के बल पर भारत को रौंठ देने का मन्सूबा करके पहली सितम्बर, १९६५ को पाकिस्तान की एक बैरस डिप्टेड घोर ७० टैंकों ने काश्मीर पर भीषण हमला कर दिया। यह हमला धम्म क्षेत्र में हुआ। पाकिस्तान ने इस क्षेत्र को हमसे के लिये कई कारखानों से बनाया—पहला कारण इस प्रदेश का घाट मैदान टैंक युद्ध के लिये तथा अमेरिकन सस्त्रों के प्रयोग के लिये बड़ा उपयुक्त था। दूसरा कारण यह क्षेत्र पाकिस्तान की प्रधान सैनिक आबनिओं के अत्यन्त निकट था। इस क्षेत्र में मुश्किराम रैजा से १० मील दूर स्पानकोट १३ मील दूर खारियाँ और समीप ही मुबारत की छावनी से धारमण्डकारी फौजों को पूरी सहायता मिल सकती थी। इसकी तुलना में यह स्थान भारत के सैनिक सड़ों से बहुत दूर थे।

काश्मीर पर हमला करने से पहले ही पाकिस्तान एक विनाश सैनिक योजना बना चुका था। इसके अनुसार धम्म पर हमले का प्रमाण मध्य प्रखण्ड पर अधिकार करना था जो कि जम्मू के निकट चिनाब नदी पर एक अत्यन्त सामरिक महत्व का सैनिक बड़ा था। प्रखण्ड पर अधिकार हो जाने से पाकिस्तान जम्मू को भीतता हुआ जम्मू-काश्मीर की भारतीय सेनाओं को शेष भारत से विच्छिन्न कर सकता था। पाकिस्तान के सैनिक और राजनीतिक नेताओं की कल्पना थी कि इस सैनिक पराजय से भारत को इतना जबरदस्त राजनीतिक आघात पहुँचिया कि इसमें पाकिस्तान का प्रतिरोध करने की भावना नष्ट हो जायेगी और काश्मीर पर पाकिस्तान सत्तता से कब्जा कर लेगा। प्रखण्ड और जम्मू पर अधिकार करने के बाद पाकिस्तान की घायली योजना सैनिक बलि के बल पर भारत के दो अन्य प्रदेशों को भीतकर काश्मीर पर अधिकार को सुदृढ़ करना था—(१) पसर पारेवास से डेराबाबानाटक के पुल से रावी नदी पार कर गुस्बातपुर पर तथा पठानकोट के रेल तथा सड़क के महत्वपूर्ण सड़ों पर अधिकार स्थापित करना। (२) कसूर-बेमकरण के मार्ग पर हरिके तरतारन घोर व्यास के पुल की तीन दिशाओं से बढ़ते हुए हमला करना इस प्रकार अमृतसर को चारों घोर से घेर लेना तथा बिस्मी की घोर जाने वाले बासे महामार्ग (Grand Trunk Road) पर कब्जा करके बिस्मी की घोर बढ़ना। वास्तव में पाकिस्तान की यह महत्वाकांक्षी सैनिक योजना यदि सफल हो जाती तो भारत के लिए यह एक प्रबल सैनिक आघात होता और १९६२ के चीनी आक्रमण के बाद से बची-बुरी भारत की प्रतिष्ठा भी धूम में मिल जाती।

भारतीय प्रत्याक्रमण और युद्ध विराम

धम्म क्षेत्र में पाकिस्थानी सैनिकों के प्रबल तीन हमलों को भारतीय सैनिकों ने विफल बना दिया लेकिन अब चौथा हमला ७० टैंकों और स्वतन्त्र सेना की एक विवेक के साथ किया गया तो भारतीय फौजों को पीछे हटना

घोर शत्रु की बढ़ती हुई टैंक-बाहिनी को निरप्ट करने के लिए बायु शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। युद्ध के प्रथम तीन दिनों में शत्रु के घने कूट नष्ट कर दिये गए, पाकिस्तानी बायु शक्ति को मय पैदा कर लिया गया और बुखान को भाग बड़न से रोक दिया गया। पर चूंकि पाकिस्तान छम्ब म घपने पुरे मीम्ब बस के साथ टूट पड़ा था अतः भारत के पास श्व की रक्षा का एक मात्र उपाय यही बचा कि वह युद्ध के दूसरे मोर्चे से ताकि छम्ब में पाकिस्तानी सैनिक दबाव कम हो जाय। इसी रणनीति अमलते हुए भारत ने ६ सितम्बर को साहौर का ७ सितम्बर को सासकोट को घोर ८ सितम्बर को राजस्थान-मिथ सीमा पर गदरा रोड को मोर्चा खोला। यदि इन तीन मोर्चों को जोस कर पाकिस्तान की सैन्य शक्ति को विभाजित नहीं किया जाता घोर अखनूर और जम्मू की घोर पाकिस्तानी सेनायें बढ़ती रहती तो काश्मीर स्थित भारतीय फौजें पूरी तरह पर बातीं। पाकिस्तान के प्रधानक पूरी तैयारी के साथ किए गये योजना युद्ध कार्यक्रम को अस्त-व्यस्त करने के लिए भी इन मोर्चों का जोसा जाना आवश्यक था।

भारत की यह युद्ध-योजना पूरी तरह सफल हुई। पाकिस्तान को छम्ब से घपनी फौजें साहौर तथा सासकोट के घुरी तरह पिटते हुए मोर्चों पर भेजनी पड़ी। राजस्थान का गदरा रोड मोर्चा खोसने से कश्मि के युद्ध भाग सेन बासी पाकिस्तानी सेनायें बही फती रह गईं और पंजाब के मोर्चों सेनायों को सहायता देने के लिए नहीं जा सकीं।

पाकिस्तान को घपने कार्यक्रम का भरपूर बबाव मिला। १३ सितम्बर को पाकिस्तानी बायुशक्ति की पूरी तरह कमर तोड़ दी गई घोर उमक मरीकम पेटन टैंकों का घसस उत्तर तथा 'फिनोरा में कश्मिस्तान का दिया गया। घसस उत्तर नामक गाँव के निरुट १०-११ मितम्बर को मीपण घोर निरुणिक युद्ध हुआ जिसमें पाकिस्तानी सेना के २२६ टैंकों का भाग लिया। यहाँ घपने रण-कीयल और शीर्ष से पाकिस्तान के सर्वोच्छ्रित अंतराबंध विभोजन को घुरी तरह क्षति-प्रस्त कर लिया गया। उसक १७ टैंक नष्ट हुए, घनेक उच्च सैन्याधिकारी पकडे गये। फिनोरा नामक घुरे गाँव के पास युद्ध में समय ६०० पाकिस्तानी टैंकों ने भाग लिया। घुरी १३ दिन तक युद्ध चलता रहा जिसमें पाकिस्तान के २४३ टैंक नष्ट कर गये गये। घपने छोटे मार्च और घमीज बोस्त को पिटते हुए बगधर के घाटा चीन से न रहा गया। पाकिस्तान के प्रति घपनी सहानुमति घोर उसकी रक्षा करने की भावना का भ्रुटा प्रदर्शन करते हुए १६ सितम्बर को घे-ने भारत सरकार को ३ दिन का घस्टीमेटम भेजा घोर घारोप पाया कि भारत ने सिन्धु-तिब्बत सीमा पर चीनी प्रदेश म घपने सैनिकों को स्थापित किये हैं तथा ३६ याक और ८०० मेर्के जुरासी हैं। घत-भारत ३ दिन के भीतर इन घातों को नष्ट करवे घोर पनुषों को बारिघर दे घन्यपा उये घम्मीर परिणाम भुगतना पड़ेगा। भारत ने इन घातों निरोधण के लिए कई प्रस्ताव रो पग्गु चीन ने उर्दे टुकरा दिया।

दुर्गता भी क्यों नहीं? प्रायश्चित्त कोई बड़े होते सभी तो उनका निरीक्षण किया जाता। चीन के इस घस्टीमेटम का उद्देश्य तो सम्भवतः यही था कि वह पाकिस्तान को अपने समर्थन की प्राप्ति विनाकर भारत के साथ निरन्तर सख्ते रहने की धीर युद्ध न बर करने की प्रेरणा दे। कुछ प्रसक्तों का मत है कि युद्ध में पाकिस्तान इतनी बहरी धीर कमरा टाट पराजय पा चुका था कि वह किसी तरह युद्ध बिराम चाहता था। चीन ने ऐसे समय घस्टीमेटम यह घोष कर दिया कि पश्चिमी देश बिलिखत होकर सुरक्षा परिषद में सुरक्ष युद्ध-बिराम के लिए उग्र प्रयत्न करेंगे धीर इसका साम उठाते हुए पाकिस्तान युद्ध-बिराम द्वारा पूर्ण पराजय के अग्रमान से बच सकेगा। चीनी घस्टीमेटम का वास्तविक उद्देश्य कुछ भी रहा हो किन्तु १६ सितम्बर को इसकी अन्तिम समाप्ति होने पर चीन न घस्टीमेटम की अन्तिम तीन दिन और बड़ा ही तथा इस बड़ी हुई अन्तिम की समाप्ति पर एक तरफ तो सुरक्षा परिषद का युद्ध-बिराम का निर्णय हुआ धीर दूसरी तरफ चीन ने यह अव्युत्त बोधना की कि भारत ने चीन की सीमा न बने हुए ऐतिक बड़े स्वयमेव ठोड़ बिने है। यह घस्टीमेटम के अनुसार अन्तिम कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं रही है।

चीन द्वारा अन्तिम घस्टीमेटम बापित लेने के अनेक परिणाम निकले— प्रथम सारा विश्व यह समझ गया कि चीन बस्तुतः बिलिखत पानी में है। वह अमेरिका को 'कामची शर' कहा करता था धीर तिकता सुभ अन्तिम घस्टीमेटम पाकिस्तान को सुभ करने की वा किमान्तिव करने का साहस उसमें नहीं था।

दूसरे, चीन की कुतूही ने इस बात को प्रमाणित कर दिया कि अन्तिम १९६२ का भारत नहीं था। पिछले तीन वर्षों की अन्तिम में उसने रखा-अवस्था इतनी सुबूढ़ कर सी धीर नभ-संपठित पर्वतीय अन्तिम को तनीततम अन्तिम से सुसज्जित करके इतना अन्तिमसी बना था कि यदि चीन १९६२ बीसा बुसाहस करता तो उसकी प्रतिष्ठा को नो प्राप्ति सहना पड़ता जो भारत को सहना पड़ा था। चीन ने धीर भारत ने उसे स्वीकार किया परन्तु कुतूही कामान्तिव नहीं धीर परिणामतः अन्तिम में भारत के सन्धिबल को पुन प्रतिष्ठा धीर भारतियों में यह ध्यात्म-बिश्वास अन्तिम कि अन्तिम धाने पर उनके चीन धीर पाकिस्तान दोनों से सख सखने की सामर्थ्य है।

तीसरे, चीन के घस्टीमेटम ने इस बात का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया था धीर चीन परस्पर मंत्रीबद्ध है ठीक वैसे ही जैसे बोर-बोर है हांते है।

चौथे, भारत पाकिस्तान का यह 'महायुद्ध' २३ सितम्बर, १९६५ तक अन्तिम में संयुक्त राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से २३ सितम्बर को ३३ युद्ध-बिराम हो गया। भारत-पाक युद्ध के

राष्ट्रसंघ में क्या-क्या गुप्त विधे कौन-कौन से प्रस्ताव पारित या रद्द हुए और उनके प्रति भारत और पाकिस्तान का क्या रवैया रहा घादि बातों का विस्तार से बर्णन 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' नामक पिछले अध्याय में 'काश्मीर समस्या' के अन्तर्गत किया जा चुका है, मत्र इनकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक होगा।

भारत और पाकिस्तान के इस युद्ध में पाकिस्तान को पूरी धारा पी कि चीन उसकी सहायता करेगा परन्तु उसे निराश होना पड़ा। उसने 'सीटो और सिष्टो' सैनिक संगठनों से सहायता की माचना की किन्तु बहा से भी निराशा ही उसके पल्ल पड़ी। भारतीय सेना ने पाकिस्तान के एक बहुत बड़े भूभाग पर आक्रमण कर लिया। युद्ध समाप्ति पर ७४० बर्गमील का पाकिस्तानी क्षेत्र भारत के कब्जे में था जबकि आकस्मिक आक्रमण का मामला सेने के कारण २४० बर्गमील के क्षणभंग्य भारतीय क्षेत्र पाकिस्तान के अधिकार में था। इस युद्ध में पाकिस्तान की वायु और नौक शक्ति को लहस-मलहस कर दिया गया जबकि भारत की क्षति अपेक्षाकृत बहुत कम हुई।

युद्ध विराम के कारण

यहाँ उन कारणों को भी संक्षेप में जान लेना उचित होगा कि जिनकी वजह से भारत ने युद्ध विराम स्वीकार किया। भारत ने युद्ध विराम इसलिये माना कि जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसे विराम होकर संघर्ष करना पड़ा था वे उद्देश्यक पूर्ण हो चुके थे। ये उद्देश्य इस प्रकार थे—

पहला उद्देश्य वम प्रयोग द्वारा काश्मीर क्षेत्र के पाकिस्तानी प्रयास को विफल बनाना था।

दूसरा उद्देश्य पाकिस्तान को और सम्पूर्ण विश्व को यह बताना था कि काश्मीर पाकिस्तान का नहीं बल्कि भारत का है और उनका अधिभार्य पक्ष है जिसकी तरफ उठाने जाने वाला कोई भी आक्रमणकारी कर्म कुचम विना जाएगा।

तीसरा उद्देश्य इस बात को सिद्ध कर देना था कि भारत एक सौविभ्रिय राष्ट्र है लेकिन आक्रामकता पड़ने पर युद्ध रत हो कर शत्रु पर बख प्रहार भी कर सकता है।

चौथा उद्देश्य संयुक्त राज्य अमेरिका को यह बात मतीमांति स्पष्ट कर देना था कि उसने साम्यवाद के प्रतिरोध में नाम पर पाकिस्तान को जो विद्याम संघ्य सहायता दी उनका पाकिस्तान द्वारा एक प्रजातन्त्र राष्ट्र के विरुद्ध चितना कुचनयोग किया गया है। भारत ने अमेरिकन सरकार को स्पष्ट शब्दों में बताया कि पाकिस्तान को दी जाने वाली अमेरिकन सहायता भारतीय महाद्वीप में शांति के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है।

पाँचवा उद्देश्य पाकिस्तान द्वारा प्रचारित इस पाण्डा को मिथ्या

सिद्ध करना था कि भारतीय महाद्वीप में भारत और पाकिस्तान में सैनिक-संतुलन बनाये रखने का अमेरिका व ब्रिटेन पर विशेष उत्तरदायित्व है।

कूटा और सर्वोपरि उद्देश्य भारत के लिए अमानक संकट बनी हुई वायु सैनिक शक्ति को पंजीर शक्ति पटुना देना था। तत्कालीन रक्षा मंत्री श्री बम्हाळ ने लोकसभा में बारम्बार इस बात की घोषणा भी की थी कि भारत का अहम् पाकिस्तान की सैन्यशक्ति को क्षीण करना है।

यूनि संघर्ष की समाप्ति तक भारत अपने उद्देश्यों को बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त कर चुका था। भारत ने युद्ध विराम स्वीकार कर लेने में कोई अनुचित बात न देखी लेकिन उद्देश्यों को प्राप्त करना ही युद्ध विराम का कारण न था। भारत तो एक शक्ति प्रती राष्ट्र होने के नाते युद्ध के प्रथम दिन से ही युद्ध विराम के लिए तैयार था परन्तु अपनी सैन्य शक्ति की महानता के बल पर बिस्मिली को जीतने का स्वप्न देखने वाले पाकिस्तान ने युद्ध-विराम के प्रत्येक प्रयास को ठुकरा दिया। ऐसी स्थिति में भारत के पास विकल्प इस बात के धीरे-धीरे बारा न था कि वह पाकिस्तान का ईंट का बनाव पत्थर से है और संघर्ष में विजयी होकर संघर्ष जय्य अपने उद्देश्यों को पूरा करे।

पाकिस्तान ने युद्ध-विराम के प्रारम्भिक प्रयासों को ठुकरा कर अन्त में बिना काश्मीर प्राप्त किये ही युद्ध-विराम स्वीकार कर लिया—इसके भी कुछ निश्चित कारण थे—पहला कारण इसकी सैनिक शक्ति का प्रथम विश्वयुद्ध और भारत के हावों कपटी पराजय से उत्पन्न नैराश्य था। पाकिस्तान की सर्वोत्कृष्ट सेना और युद्ध-सामग्री प्राची से अधिक पूरी तरह बरबाद हो गई थी। दूसरी ओर युद्ध चिड़ते ही अमेरिका ने दोनों ही देशों की सैनिक सहायता देना बंद कर दिया था। तृतीय भी भारत की अपेक्षा पाकिस्तान को ही अधिक हानि हुई क्योंकि भारत तो अपनी अधिकतर युद्ध सामग्री स्वयं तैयार करता था जबकि पाकिस्तान इसके लिए पूरी तरह से अमेरिका और ब्रिटेन पर ही अवलम्बित था। इन दोनों देशों द्वारा ही बने बाने सैनिक सहायता के प्रभाव में पाकिस्तान अपनी विनष्ट युद्ध सामग्री की पूर्ति नहीं कर सका और उसके लिए युद्ध बसाना असम्भव हो गया। इन्हीं, ईरान इण्डोनेशिया और चीन ने पाकिस्तान को मुला समर्थन दिया। लेकिन इनसे प्राथमिक सैन्य सामग्री न मिलने के कारण पाकिस्तानी नेता अपने माथ को झोके हुए युद्ध विराम के लिए सहमत हो गए। दूसरा कारण बिस्मिली के सोच मय का पाकिस्तान के प्रतिफल होता था। यदि कांठ देशों के काश्मीर पर पाकिस्तान के सैनिक आक्रमण को बेहदा समझ और सुरक्षा परिषद ने भी अपने प्रस्ताव में भारत तथा पाकिस्तान को ३ अगस्त से पहले की स्थिति में वापिस मोटने का निर्बंध देते हुए परोक्ष रूप से पाकिस्तान की निन्दा की। संयुक्त राज्य अमेरिका भी पाकिस्तान के इस कार्य से प्रसन्न न हुआ क्योंकि साम्यवादी आन्दोलन से रक्षा के नाम पर ही गई सैन्य सहायता का पाकिस्तान ने एक

इस समय प्रवेशा चीन ही एक ऐसा देश था जो चाहता था कि पाकिस्तान अपने अन्तिम सिपाही तक भारत में संघर्ष में डूबता रहे ताकि जब इस मरणांतक संघर्ष से दोनों राष्ट्र निर्बल और नृत्तप्राय हो जायें तो उसे दक्षिण पूर्वी एशिया में निर्बाध रूप में अपना प्रभाव स्थापित करने का स्वर्णविवसर मिल जाये। चीन को इस युद्ध से और भी विशेष लाभ हुए। एक तरफ तो भारत अमेरिका द्वारा पाकिस्तान का साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिए ही गई विज्ञान युद्ध सामग्री नष्ट कर रहा था जो साम्यवादी चीन के लिए सामर्थ्यक बात थी और दूसरी तरफ युद्ध के कारण चीन के मनु भारत की वैश्य शक्ति भी क्षतिग्रस्त हो रही थी। तीसरा कारण चीन व अन्य मित्रों से कोई सहायता न मिलने की पाकिस्तानी निराशा थी। पाकिस्तान की घाता के अनुकूल चीन न भारत के विरुद्ध सहाय्य या उत्तर पूर्वी सीमा-तट प्रवेश पर कोई दूसरा मार्ग नहीं जोता। फिर जब १६ सितम्बर को चीन ने भारत को अस्तीमेटम दिया और उसे पुरा नहीं किया तो भी पाकिस्तान की थोड़ी-बहुत जिन्दा घाताओं को मरणांतक आघात लगा। बाकिगटम और लन्दन से भी पाकिस्तान को निरस्माहित होना पड़ा। उसे घाया भी कि लन्दन व बाकिगटम उसकी सहायता का बीड़े घाएंगे परन्तु हुआ यह कि पहले वो आर्थिक व सैनिक सहायता विम रही थी वह भी बन्द हो गई। वास्तव में इस सैनिक सहायता को जारी रख के ब्रिटेन और अमेरिका असार के सामने अनादर का पात्र नहीं बनना चाहत थे। यदि विश्व मोक्षमत का नयनहोता और भारत की मित्रता तो बैठने की घातका न होनी तो सम्भवतः ये राष्ट्र पाकिस्तान को इतना निर्गम न करते। चौथा कारण यह था कि युद्ध-विराम स्वीकार करने पाकिस्तान भारत पर पुनः आक्रमण करम की तैयारी का प्रथम प्राप्न करम आक्रमण या उसकी विफलता और पराजय निश्चित हो चुकी थी और यदि यह सम्बा स्थितता तो उसकी या सम्पूर्ण बरबादी होती यह उसके लिए और भी घोरमबाणी हांती। इन्हीं सब कारणों से पाकिस्तान के युद्धान्मारी शासकों ने युद्ध विराम स्वीकार कर लिया ताकि फिर से शक्ति संजय करके मन्दिप्य में काश्मीर को मने का प्रयत्न किया जा सके।

भारत-पाक युद्ध के परिणाम और प्रभाव

भारत और पाकिस्तान के बहु सम्बन्धों व इतिहास में सितम्बर १९६५ का युद्ध पाकिस्तानी मनमुटाव और द्वेष भावना का अरम विकास था जिसे अन्तिम पाकिस्तानी अधिकारी १९४७ से पाकते था रहे थे। पाकिस्तान के लिए एक 'पामिक सीमा' स्थापित करने तथा भारत को भीषण शिष्टान था यह एक प्रबल प्रयास था। परन्तु युद्ध में पाकिस्तान की भीषण पराजय ने नाजी जर्मनी के पराभाव व समान ही इस बात को एक बार फिर से प्रस्थापित कर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टानों का समाधान शक्ति द्वारा करने का प्रयास अपनी अन्तिम अवस्था में अर्थ में निष्ठ हांगा है और "जो लोग पहले तलवार उठाते हैं वे तलवार से ही नष्ट हो जाते हैं।" भारत की पाकिस्तान पर यह विजय अर्थ-निरपेक्षता समाजवाद और स्वतन्त्रता के सिद्धांतों की विजय थी जिसने इस बात को अपनी प्रकार स्पष्ट कर दिया कि

भारत अपनी प्रादेशिक अलख्यता बनाये रखने के लिए कटिबद्ध है और संसार की कोई भी शक्ति उसके अभिन्न अङ्ग काश्मीर को उससे विलय नहीं कर सकती।

भारत और पाकिस्तान का युद्ध १९६२ के चीनी आक्रमण की भांति अनेक दृष्टियों से भारत के लिए बरदान सिद्ध हुआ और इसके कई महत्वपूर्ण परिणाम निकले।

(१) इस युद्ध ने यह प्रस्थापित कर दिया कि भारत की धर्म-निरपेक्षता का आचार अत्यन्त ठोस है। पाकिस्तान के शासकों का बिस्वास था कि भारत के साथ संपर्क की स्थिति में काश्मीर की मुस्लिम जनता उसका साथ देगी और भारत के खिलाफ विद्रोह कर देगी। उन्हें यह भी मानी थी कि धर्म के नाम पर इस्लाम के अग्रे भारत के मुस्लिम नागरिक पाकिस्तान के समर्थन में चौथे बस्ते (Fifth Column) का काम करें। परन्तु पाकिस्तान की आकांक्षित विद्रोहियों में बहस मई। भारत के या काश्मीर के मुस्लिम नागरिक पाकिस्तान द्वारा इस्लाम नाम पर उत्पन्न किये गये वर्तमान के प्रबल आन्दोलन में अग्रिम रहे। सम्पूर्ण युद्ध-काल में उन्होंने भारत के प्रति बिना शर्क प्रतिष्ठा का परिचय दिया। उससे पाकिस्तान की गारी उम्मीदों की कवा खोद दी।

(२) भारत-पाक सङ्घर्ष से भारत की एकता सुदृढ़ व सम्पुष्ट हुई। युद्ध सिद्धमे से पहिले तो भारत के विभिन्न स्वामी में साम्प्रदायिक उपद्रव होते रहते थे लेकिन मातृभूमि पर जब विदेशी आक्रमण का सङ्कट पैदा हुआ तो भारतवासी अपने सामिक भावा-सम्बन्धी और प्रथम मत् नैव मुत्ता कर देव की रक्षा के लिए एक हो गये। भारत के लिए यह अवसर १९६२ के चीनी आक्रमण से भी अधिक बमझूर था क्योंकि इस समय एक इस्लामी राष्ट्र ने भारत पर हमला बोसा था और भारत में करोड़ों निवासी इस्लामी मन के हो अनुयायी थे। परन्तु युद्ध ने संसार को बता दिया कि आत्मिकाल में भारत के ईसाइयों पारसियों हिन्दुओं मुसलमानों प्रादि में मतभेद हो सकते हैं, लेकिन सङ्कट के समय वे अपने मतभेदों को दफना कर राष्ट्र की रक्षा के लिए और तनु के पराभव के लिए एक होने की क्षमता रखते हैं। वस्तुतः यह एक तथ्य है कि भारत-पाक सङ्घर्ष में देश की एकता को एक नया रूप एक निस्तार दिया।

(३) इस युद्ध ने भारत में एक अपूर्व स्वाभियान पैदा किया और देश को आत्मनिर्भर बनाने की भावना बसवटी की। पाकिस्तान ने युद्ध में अमेरिका द्वारा मुत्त में दिये गये अस्त्रास्त्रों टुकुँ और बमबर्षकों का प्रयोग किया जबकि भारत के अधिकृत हथियार स्वदेशी थे परन्तु स्वदेशी पोसों ने विनाशकाम पैटन टुकुँ को क्षिणियों की तरह धूम डामा और स्वदेशी पैट विमानों ने डेवर बेटों की हाकत पतनी कर दी। इनसे भारतीयों के हृदय में अपनी नैतिक क्षमता और धरने ही राष्ट्र द्वारा विभिन्न सैन्य-सामग्री

प्रति यहूग भारतविश्वास पैदा हुआ। इसके प्रतिरुद्ध भारत में यह तीव्र अनुभूति भी हुई कि पर-निर्भरता कितनी मयाबह होती है। भारतीयों ने देखा कि पाकिस्तान की पराजय का एक प्रमुख कारण शस्त्रास्त्रों का मामला में पूरी तरह सम्पन्न और बाणिज्यगत पर निर्भर रहना था जबकि भारत कुछ काम में भी शस्त्रास्त्रों के लिए माहूलाब नहीं बना क्योंकि उसका कारखाने विकास मात्रा में सैनिक-सामग्री उत्पादित कर रहे थे। चीनी प्राक्रमण में भारत को पहला घाघात देकर कुछ सम्भलने को विवश किया तकिम पाकिस्तान के प्राक्रमण ने भारत को इस अनुभूति से ऋकभोग दिया कि उसे भीघ्रातिशील अन्त्यावादन और अन्त्यास्त्र निर्माण की दृष्टि से स्वावसम्भी होना चाहिए।

(४) इस संघर्ष का चौथा परिणाम यह हुआ कि विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा बड़ी और अनक प्रकार की भाँतिपों दूर हुई। भारत के तत्कालीन घिछा मन्त्री श्री छागसा ने २४ सितम्बर का मोकसमा में भाषण देते हुए कहा—“मुरदा परिपद की बैठक में भाग लेने के लिए न्यूयार्क जाने पर मैंने अमेरिकन लोगों से कहा कि यद्यपि आपने पाकिस्तान की पटन टक तथा सभी प्रकार के प्राधुनिक शस्त्रास्त्र दिये हैं फिर भी हमारे गुरबीर जवानों ने पाकिस्तान को प्रच्छा पाठ पढ़ाया है। सुरक्षा परिपद की बैठक में भाग लेने के समय मैं इस बात के कारण अपना गिर ठ था उठा कर खद मका और गर्ब कर सका कि मैं भारतीय हूँ क्योंकि पाकिस्तान के साथ सझाई में हमारे जवानों ने अद्वितीय धीय प्रदर्शित किया था।” भारत के सैनिकों ने अपने शौर्य से १९६० के चीनी प्राक्रमण की बसद्ध कातिमा को भी दाना। इस युद्ध से पहले पाकिस्तान शस्त्रास्त्र गणों में इस दाना का धुन कर प्रचार कर रहा था कि भारत एक निर्बल राष्ट्र है कागजी मेर है बोदा पहनवान है तथा पाकिस्तान का एक सिपाही भारत के तीन सिपाहियों के बराबर है सकिन २२ दिन के इस सशाम में इस मझाई का सामने साकर पटक दिया। संसार को पता चल गया कि पाकिस्तान के तीन सिपाही मिसकर भी भारत के एक जवान का मुकाबला नहीं कर सकते और सैन्य-कीमत ब शस्त्र प्रयोग में भी भारत के सैनिक इतने कुशल हैं कि अपने परम्परागत और पुरान हतों के हथियारों से प्राधुनिकतम शस्त्र-सम्बित सैन्यवाहिना को पराजित कर सकते हैं।

(५) सनिक विज्ञापनों का कहना है कि इस युद्ध के टक युद्ध के तरीकों को भी प्रभावित किया। पाकिस्तान ने विरवविरयात अमेरिकन पैटन टैकों का प्रयोग किया था किन्तु किम तरीके से भारतीयों ने इनका सफ्रया किया उनसे पैटन टैकों की शक्ति में युद्ध विज्ञापनों का विरवाप पट गया।

(६) भारत-याक युद्ध ने भारत का एक अद्विजामी राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया। श्री नहूक की मृत्यु के उपरान्त पने मय प्रदान मन्त्री श्री नास्त्री ने भारतीय जनता का विश्वास जम मया। श्री नास्त्री की दृढ़

नीति ने न केवल मारवाड़ियों को प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व को विश्वास करा दिया कि भारत के शासन की बागडोर भी नरक क बीम्य उत्तराधिकारी और समबत उनके भी सबल हाथों में है ।

(७) पाकिस्तान के लिए यह कुछ बड़ा बातक सिद्ध हुआ । इसने पाकिस्तान के सभी विश्वासियों और उसकी सभी मान्यताओं को चकनाचूर कर दिया तथा पाकिस्तानी सैनिक तानाशाही का लोहलापन प्रकट कर दिया । पाकिस्तान दिन में इस बात को समझ गया कि भले ही भारत की तीन चौपाईं सेनायें चीन के संभावित आक्रमण को रोकने के लिए हमारे मोर्चों पर पड़ी हों परन्तु भारत अपनी एक चौपाई सेनाओं से ही पाकिस्तान के गभीरतम अमेरिकन सन्धियों से सुश्रित सेनाओं को पछाड़ने की समता रखता है । असल 'उत्तर' और 'फिलोसोफ' में सड़ बसे टैक युद्ध ने पाकिस्तानी सैनिक बहुमायताओं को नष्ट कर दिया । उसे अपनी सेना की वास्तविक शक्ति का यथार्थ ज्ञान हो गया और इस बात का भी प्रह्लास हो गया कि भविष्य में भारत के किसी भी युवाग पर आक्रमण करने का धर्म उसके लिए कितना मयाबह हो सकता है ।

(८) इस युद्ध से भारत को अपने मित्र और जन्म देश का बन्धी तरह पता चल गया । मनाया को छोड़ कर अन्य किसी राष्ट्र ने भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण की स्पष्ट रूप से निन्दा नहीं की । ब्रिटेन ने तो स्पष्ट शब्दों में भारत की धामोचना करके पुनः मह प्रकट कर दिया कि पाकिस्तान के साथ होने वाले प्रत्येक संघर्ष में उसका समर्थन पाक को ही मिलेगा । इसोनेबिना टर्की ईरान आदि राष्ट्रों ने भी भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैय अस्तित्व किया ।

(९) इस युद्ध ने आधुनिक विश्व राजनीति में समुक्त राष्ट्र सच क उपमोयिता को सिद्ध कर दिया । गुरुता परिपक्व ने बड़ी दृष्टापूर्वक हस्तक्षेप करके इस युद्ध का पटासेप किया । यद्यपि कुछ दृष्टिओं से सच का रवैय पक्षपातपूर्ण रहा फिर भी यह प्रबन्ध सिद्ध हो गया कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर महाशक्तियाँ सहयोग से काम करें तो संघ को पूरी सफलता मि सचती है । भारत पाक युद्ध को बन्द कराने में सोवियत संघ और समुक्त राष्ट्र अमेरिका ने सहयोग का सब अयनाया और इसी कारण गुरुता परिपक्व व शक्ति स्थापना के कार्य में सफलता मिली ।

(१०) भारत-पाक संघर्ष ने सोवियत कूटनीति को एक नया मो लेने का अवसर प्रदान किया । वो राष्ट्रों के भगड़ों को सुलभ करने में अती में सोवियत सच ने मध्यस्थ क रूप में अपनी शिवाय कमी आपत नहीं की थी परन्तु इस दिशा में पहली बार सोवियत सच बाये बड़ा और सतत ताकत सम्मेलन का आयोजन किया । सोवियत कूटनीति के जाड़ ने असफल प्रती होने वाले इस सम्मेलन को सफलता में बदल दिया । ताकतवर सम्मेलन पाकिस्तान या भारत की कूटनीति की नहीं बल्कि सोवियत कूटनीति ।

विजय थी जिसने यह सिद्ध कर दिया कि एशिया में सोवियत इस का प्रभाव बढ़ रहा है और साम्यवादी चीन के प्रभाव में कमी आ रही है।

युद्ध बिराम का उस्सघन और ताराकंद सम्मेलन का आयोजन

संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तलेख से २३ सितम्बर १९६१ को युद्ध बिराम आवश्यक हो गया लेकिन युद्ध के क्षेत्रों में पूर्ण शांति नहीं आयी। दोनों धार से युद्ध बिराम का उस्सघन होता रहा। नयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों के लिए इन उस्सघनों को रोकना समय नहीं था क्योंकि दोनों ही देशों की कुछ सेनायों धामने-सामन लड़ी थी और मामली नी म्झप पर दोनों धार से गामियाँ चल जाना सामान्य बात थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के महामन्त्रि द्वारा इन उस्सघनों को बन्द करने के लिए कुछ मुझब दिये गये परन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला और युद्ध बिराम उस्सघन की घटनायें घटती चाली रही। इस बात की घराका बनी रही कि कहीं दोनों पक्षों में युद्ध फिर न बढ़क उठे।

इस भयानक स्थिति को समाप्त करने के लिए यद्यपि अमेरिका सहित पश्चिमी राष्ट्र और संघ के महासचिव सक्रिय थे तथापि सोवियत कूटनीति विशेष रूप से सक्रिय थी। सोवियत प्रधान मंत्री का विचार था कि इन सारे झंझटों का घन्त दोनों देशों के शीर्षस्थ नेता प्रत्यक्ष बार्ता करके कर सकते हैं। यद्यपि सोवियत संघ ने विशेष बिसवस्वी लेकर ताराकंद सम्मेलन की व्यवस्था की बर्हा राष्ट्रपति धम्पूब वी और प्रधान मंत्री श्री मानबहादुर शास्त्री मिस कर प्रत्यक्ष बार्ता कर सकें। ताराकंद बार्ता का आयोजन ४ जनवरी १९६६ से हुआ। इसके पहले कि इन ताराकंद बार्ता व ताराकंद समझौते का बर्लिन धारम्भ करें यह उचित होगा कि उन कारणों को दख दिया जाय जिनकी बबहु से भारत और पाकिस्तान ताराकंदबार्ता के लिए सहमत हुए।

भारत द्वारा ताराकंद-बार्ता के प्रस्ताव को स्वीकार करने के कारण

भारत ने ताराकंद में हाजीपीर बार्पिस और टिदबाम दरों से अपनी सेना हटाने का भा बार्ति प्रस्ताव क्यों स्वीकार किया इसके घनेक कारण थे। यद्यपि इन समझौते पर अधिहृत रूप से पूर्ण प्रमाणिक प्रमाण दासने काम थी शास्त्री इस संसार से ताराकंद समझौते पर हस्ताक्षर करने के कुछ ही घन्टों बाद बिदा हो गये फिर भी घनक साथ ताराकंद जान जाने बिदेन मंत्री घरदाग स्वर्ण सिंह और रक्षा मंत्री श्री बीह्वाल ने इस बार्ता की घुष्टमूभि पर बहुत कुछ प्रमाण दासा था। श्री बीह्वाल ने ३१ जनवरी १९६६ का घटना में एक सार्वजनिक समा में कहा था—

“ताराकंद को रबाना होने में पहले शास्त्री जी के दिमाग में तीन बातें थीं—१ पाकिस्तान के साथ हमारे जो भी मनम है उनका हन निघानने के लिए बय का प्रयोग नहीं होना चाहिए, २ युद्ध बिराम की बर्तों के

वामन ईमानदारी से किया जाना चाहिए, एवं एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। वे टाककर के शांति के लिए उतनी ही बुद्धता से सब बिलगनी बुद्धता उद्योगि पाकिस्तान के मुद्दों में दिखायी दी और उनकी चीनों बावें पाकिस्तान ने अन्त में स्वीकार कर ली।

भारत सरकार के मंत्रियों और अधिकारियों द्वारा समय-समय पर दिये गये बक्तव्यों व स्पष्टीकरण आदि से पता चलता है कि श्री शास्त्री द्वारा टाककर बावें के प्रस्ताव को स्वीकार करने और शांति पर बल दिये जाने के कई कारण थे—

पहला कारण दो मोर्चों पर लड़ाई करने से बचना था। बटनाघों ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारत-पाक मुद्दों में चीन और पाकिस्तान की मिली-जुली छाविश की और यदि लड़ाई सम्भी लिखती तो दोनों देशों के साथ हथारों की लम्बी सीमाओं पर एक साथ सकने की सम्भावना हो सकती थी। ऐसी लड़ाई की सम्भावना को टालना ही यत्नकर था। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी जैसे प्रबल और लक्षितानी राष्ट्र ने भी दो मोर्चों की लड़ाई से बचने के लिए इस ने साथ १९१९ में अपना कुमन सम्भूत किया था और १९४९ में जब उसने दोनों मोर्चों पर लड़ाई शुरू कर दी तो यह उसके लिए विनासकारण छाविश हुआ। चीन द्वारा अपना पर्यटनम किमान्ति न करने से भारत के लिए सितम्बर १९६५ में दो मोर्चों पर सकने का टाककर संकट तो टल गया था लेकिन पाकिस्तान और चीन की साठ-पाठ के कारण यह अटपट भिटा नहीं था। टाककर में इस पदरे को पूरा करने का जो स्वर्ण अवसर मिला था उससे शास्त्री की बचित नहीं हुआ बाहते थे। उन्होंने इस को छाड़ी बनाते हुए पाकिस्तान को लक्षित का प्रयोग छोड़ने के लिए सहमत किया। यह भारत की एक बड़ी भूतनीतिक विजय थी जिससे भारत को ठोस वैमिक साम मिला और चीन तथा पाकिस्तान के संयुक्त मोर्चा बनाम का अटपट दूर हो गया।

दूसरा कारण भारत की शांति-भावना और मुद्दों के बीच कुपरिष्कारों से बचने की प्रबल आकांक्षा थी। पिछले १८ वर्षों से पाकिस्तान भारत के मुद्दोंवर्तन प्रस्ताव को ठुकराता आ रहा था। शास्त्री का विश्वास था कि दोनों देशों की सेनायें सर्वत्र धामने सामने नहीं लड़ी रह सकती। २१ दिन के मुद्दों में भारत का १०० करोड़ रुपये स्वाहा हो गया था उसकी विकास योजनाओं की संमीर धाबात पहुँचा तथा सञ्चित के सब कार्य एक से गये थे। मुद्दों के विनाश की तीव्रता को अनुभव करते हुए ही श्री शास्त्री ने ४ जनवरी को टाककर सम्मेलन के धारमिक अधिकेशन में कहा था— 'लड़ाई से धमसयानें मुलभूती नहीं हैं पैदा होती हैं। एक दूसरे से लड़ने के बजाय धादय हम बरीकी बेकारी और धमाम से लड़ें। भारत और पाकिस्तान की साधारण जनता बुद्ध नहीं छाविश चाहती है। उनकी बकरत पोसा-बास्य और धरत लक्ष की नहीं छाने कपड़ें और मकान की है।' यद्यपि हाबीपीर आदि धामरिक महल के बरों से छीने हटा लेने की बात मान लेना एक पधोक्रिय कार्य था लेकिन राष्ट्र के व्यापक हित की दृष्टि से

इस मार्ग को अपनाते में कोई आपत्ति नहीं समझी क्योंकि पाकिस्तान ने कम जैस शक्तिस्मय राष्ट्र की सहायता में शक्ति का प्रयोग न करने का आश्वासन दिया था। फिर एक बात और भी थी। भारत ने हाजीपूर का मिल और टिखवास के दरों में युद्ध-विराम रैला पार करके अपना चौखें इसमिए भेजी थी कि पाकिस्तान इन दरों से सद्यस्त्र ससर्पटिमे भेज कर बागमोर के शॉट बातावरण को घनात कर रखा था। परन्तु जब पाकिस्तान इस बात पर सहमत हो गया कि वह ३ अगस्त से पहले की युद्ध विराम रेखा का बाहर करेगा और शक्ति के प्रयोग से दूर रहेगा तो भारत के लिए इन दरों से अपनी सेना हटा देने में आपत्ति करना उचित नहीं था। कम जैस राष्ट्र की सहायता होते हुए, जिसके साथ भारत की अनिच्छित मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं और जिसने कार्मर पर भारत के विरुद्ध की गयी पाकिस्तानी तथा पश्चिमी राष्ट्रों की प्रत्येक आस का घटीत में विपक्ष बनाया था भारत के लिए यह बाधिका का कि वह उपरोक्त परिस्थितियों में समझौते के लिए उद्यत हो जाता।

तीसरा कारण मुरदा परिषद का प्रस्ताव और कम का प्रथम अनुरोध था। मुरदा परिषद को २० सितम्बर के प्रस्ताव के अनुसार भारत और पाकिस्तान दोनों यह बात मान चुके थे कि वे अपनी सेनाएं ३ अगस्त से पूर्व की स्थिति में लौटा देंगे। श्री गांधी हाजीपूर टिखवास और कापिन स भारतीय सेनाओं हटाने की पूर्व शत के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को लिख चुके थे कि जब तक युद्धपरिधियों के पुनः प्रवेश से मुरदा का भारत को आश्वासन नहीं मिलता तब तक इन दरों से हटना भारत के लिए सम्भव न होगा। जब जब कि पाकिस्तान द्वारा इस प्रकार का आश्वासन दे दिया गया तो इन दरों से सौटने का मुरदा परिषद के प्रस्ताव को न मानना परिषद में भारत के पक्ष को बिगाड़ देता होता। इसका प्रतिरिक्त कम का अनुरोध भारत के पक्ष में कोई अहितकारी न था कि जिसमें न मान कर कम से मिलन जाता विभिन्न प्रकार की आर्थिक सैनिक और राजनीतिक सहायता से बहित होने का खतरा उठाया जाता। श्री गांधी का विचार था कि यदि तागर्द मे साक्षित प्रधान मंत्री कोसीजिन के मानन पाकिस्तान यह मान लेता है कि वह युद्ध नहीं करेगा तो यह एक बहुत बड़ी बात होगी क्योंकि पश्चिम में पाकिस्तान द्वारा बचन भंग करने की स्थिति में भारत को हमेशा कम की सहायता मिलती रहेगी।

इन्हीं सब कारणों से श्री गांधी के नेतृत्व में भारत तागर्द वार्ता के लिए सहमत हुआ और अपने तागर्द घोषणा पर हस्ताक्षर किये।

पाकिस्तान द्वारा तागर्द वार्ता का प्रस्ताव

स्वीकार करने के कारण

यद्यपि पाकिस्तानी विदेश मंत्री सुदतो ने सितम्बर १९६३ में गुजरात की थी कि पाकिस्तान कागमोर के लिए एक द्वार बर्ष तक भी मन्ता

रहेगा और दिसम्बर १९६३ में सहर प्रयुक्त ने संयुक्त राष्ट्र संघ में बोपला की भी कि काश्मीर को पा लेने के बाद ही पाकिस्तान भारत के साथ 'युद्ध बर्जित संधि' (No War Pact) कर सकता है, परन्तु फिर भी जनवरी १९६५ से ही राष्ट्रपति प्रयुक्त ने तात्काल बोपला पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया। पाकिस्तान के इस निश्चय के मूल में भी प्रत्यक्ष ही बनेक कारण थे—

पहला कारण यह था कि भारत के साथ कोई समझौता पूर्ण स्थिति न होने तक पाकिस्तान को पुनः अमेरिकन सैन्य सहायता मिलने की आशा नहीं रही थी। अमेरिका अपने नास्वास्त्रों के दुरुपयोग के कारण ही पाकिस्तान से दूरा न था बल्कि इसलिए भी मारा था कि वह अमेरिका के महान् धनुषीन से सांठगांठ बना रहा था। पिछड़ी पेंडिंग को यह बोस्ती वास्तविकता की कटई पसन्द न थी। १५ दिसम्बर, १९६३ को राष्ट्रपति जॉनसन ने सहर प्रयुक्त को वास्तविकता में यह मनी भाँति स्पष्ट कर दिया था कि पाकिस्तान को अमेरिकन सैन्य सहायता इसमिये भी जा रही था कि साम्यवाद का प्रसार रोकने का दोनों देशों का सामान्य प्रयोजन सिद्ध हो सके। परन्तु अब जब कि भारत के साथ युद्ध में सैन्य सहायता के मूल उद्देश्य की उल्लेखा कर ही गयी है तो पाकिस्तान को किसी सैन्य सहायता की आशा नहीं रखनी चाहिए। पाकिस्तान की सक्ति का प्रभाव जोत ही अमेरिकन हथियार और विमान के जिन्हें पाये बिना उसकी रही-सही सैन्य शक्ति को भी बड़ी शक्ति पहुँच सकती थी। ज्वाहरलाल अमेरिकन कल-पुर्णों के अभाव में अमेरिकन सस्त्रास्त्रों के बियड़ जाने पर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता था। प्रयुक्त को आशा थी कि यदि भारत से कोई सम्मानजनक समझौता कर लिया जाय (दिस से नहीं केवल उमर से) तो अविष्य में इस बात की आशा की जा सकेगी कि अमेरिका से पुनः सैन्य सहायता पा ली जाय।

दूसरा कारण युद्ध के समय चीन की धोर से अविश्वास और निराशा का हाव लयता था। जब युद्धकाल में चीन ने दूसरा मोर्चा खोलकर या अन्य किसी प्रकार से पाकिस्तान को कोई ठोस सहायता नहीं दी तो पाकिस्तान अपने मन में चीन की असहिमत को समझ गया। सोशियल प्रभाव मंत्री भी कोसीगिह ने भी प्रयुक्त को और विदेशमंत्री प्रोमिको ने छुट्टों को तात्काल में यह बात बखूबी तरह समझा दी कि चीन पर मरोसा रखने में और उसके साथ मित्रता बढ़ाने पर पाकिस्तान की बड़ी दुर्बलि होगी जो इण्डोनेशिया की हुई है।

तीसरा कारण जिसकी बखू से प्रयुक्त शक्ति-सक्ति के लिए तैयार हो पये यह था कि भारत के साथ २९ दिन के युद्ध ने उनके सासन को बड़ से द्रिता दिया था और उनकी सैन्य प्रतिष्ठा की बूल में मिसा दिया था। यदि उन परिस्थितियों में भारत के साथ कोई भी गया युद्ध छिड़ा जाता या सम्मानजनक समझौता करने की स्थिति पैदा नहीं की जाती तो प्रयुक्त सरकार का पतन हो सकता था। २९ जनवरी १९६६ को 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित समाचार के अनुसार यदि प्रयुक्त को भारत द्वारा स्यापक रूप से किये जाने

काश जवाबी हमल की तनिह मी संभावना होती तो बहु छम्ब छत्र पर प्राक्रमण करने की अनुमति अपन सेना अधिकारियों को न देता । अयुध ने छम्ब क्षेत्र पर हमल की योजना को स्वीकृति तमी प्रदान की जब उनसे सेना-पतियों ने उन्हें यह पुरा विश्वास दिसा दिया कि भारत केवल स्वानीय घोर सीमित मुठ ही करेगा ।

चौथा कारण साहीर घोर स्वासकोट क निकट भारतीय सेनाओं की उपस्थिति से उत्पन्न विकट परिस्थिति थी । साहीर घोर स्वासकोट जैसे क्षेत्रों का भारतीय सौधों की मार में होना पाकिस्तान के सेनानी राष्ट्रपति के लिए घोर कसक घोर अपमान का कारण था । यद्यपि पाक सेनाएँ भी भारत के छम्ब क्षेत्र में थीं परन्तु यह प्रवेश साहीर घोर स्वासकोट जैसा महत्वपूर्ण नहीं था । राष्ट्रपति अयुध के सामने केवल दो ही विकल्प थे या ना समझौता करके शांति स्थापित की जाय और भारतीय सेनाओं से पाकिस्तानी क्षेत्र को मुक्त किया जाय या पुन संबंध करके स्थिति का अपन पक्ष में सौटाया जाय । चूंकि पुन संबंध करना पाकिस्तान के लिए आत्मघाती होता था तथा घी अयुध न शांति के माम को ही बरए करना उचित समझा ।

पंचवाँ कारण यह था कि ताशकंद में पाकिस्तान को यह अनुभव हुआ कि तत्कालीन परिस्थितियों में घोर अविष्य की दृष्टि से शांति का माग परनाते हुए रूस की बात मान लेने से उभ कूट्र ठोस साम मिस सकेंगे । उनकी पहली धाना यह थी कि रूस का प्रसन्न करके बहु सुरक्षा परिपद् में काश्मीर के मामले पर रूसी बीटा के प्रयोग को रोक सकेया । पाकिस्तान का यह एक बहुत बड़ा सामन था कि अमेरिका और ब्रिटेन के समान यदि बहु रूस का सहयोग भी रजित कर सका तो अविषय में काश्मीर प्राप्त कर सकेया । ताशकंद बार्ता के दौरान पाकिस्तानी पत्रों ने इस आशय का झूठा प्रचार भी किया था कि सोवियत प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति अयुध को यह आश्वासन दे दिया है कि सुरक्षा परिपद् में यदि काश्मीर का मामला प्रस्तुत हुआ तो रूस भारत के पक्ष में अपनी बीटों का प्रयोग न करेगा । हासकि रूसी सेनाओं ने ताशकंद बार्ता के पहले घोर बाद में बारम्बार इस प्रति को दूर करने का प्रयत्न किया कि काश्मीर के मामले में सोवियत नीति में कोई परिवर्तन धाया है फिर भी घी अयुध को यह विश्वास है कि पाकिस्तान को रूस का समर्थन मिस मनेया । यह बात उनके (अयुध के) १ फरवरी १९५६ क उन राष्ट्रीय प्रचारण से स्पष्ट हो गयी जिसमें उन्होंने कहा था कि ताशकंद समझौते क अनुसार २५ फरवरी तक दोनों देशों की सेनाओं को सामान्य प्रदेश में सौट जाने के बाद सुरक्षा परिपद् को दोनों राष्ट्रों की मौलिक राजनीतिक समस्या (काश्मीर) के समाधान की घोर ध्यान देना चाहिए ।

पाकिस्तान न रूस के शांति प्रस्ताव क प्रति इसलिये भी सहमति प्रगट की कि इतसे उसे अमेरिका क रूस दोनों की सेनिक धार्मिक सहायता प्राप्त हुआ सक्ती थी । यह स्थिति उमक लिए अपने राष्ट्रीय हित एवं शक्ति की बढ़ि की दृष्टी से बड़ी सामग्र्य हाजी ।

रहेगा और दिसम्बर १९६३ में सदर अयूब ने संयुक्त राष्ट्र संघ में घोषणा की थी कि काश्मीर को पा लेने के बाद ही पाकिस्तान भारत के साथ 'युद्ध बर्जन' संधि' (No War Pact) कर सकता है, परन्तु फिर भी जनवरी १९६३ से ही राष्ट्रपति अयूब ने तात्काल घोषणा पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया। पाकिस्तान के इस निश्चय के मूल में भी प्रथम ही अनेक कारण थे—

पहला कारण यह था कि भारत के साथ कोई समझौता पूर्ण स्थिति न होने तक पाकिस्तान को पुनः अमेरिकन सैन्य सहायता मिलने की आशा नहीं रही थी। अमेरिका अपने शास्त्रास्त्रों के दुरुपयोग के कारण ही पाकिस्तान से छटा न पा बल्कि इसलिए भी माराज था कि वह अमेरिका के महान् सन्धु चीन से सौंठ्याँठ बढ़ा रहा था। पिम्बी पैकिंग की यह दोस्ती बार्तिगटन का कतई पसन्द न थी। १३ दिसम्बर, १९६३ को राष्ट्रपति बार्तिगटन ने सदर अयूब को बार्तिगटन में यह मन्त्री बार्ति स्पष्ट कर दिया था कि पाकिस्तान को अमेरिकन सैनिक सहायता इसमिये भी आ रही थी कि साम्बाह का प्रसार रोकने का दोनों देशों का सामान्य प्रयोजन छिड़ हो सके। परन्तु अब जब कि भारत के साथ युद्ध में सैन्य सहायता के मूल उद्देश्य की उपेक्षा कर दी गयी है तो पाकिस्तान को किसी सैनिक सहायता की आशा नहीं रखनी चाहिए। पाकिस्तान की बलि का प्रदान कोट ही अमेरिकन हथियार और विमान के जिन्हें पाये बिना उसकी रही-सही सैन्य बलि को भी बड़ी बलि पहुँच सकती थी। जवाहरलाल अमेरिकन कल-पुर्जों क प्रभाव में अमेरिकन शास्त्रास्त्रों के बिना जाने पर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता था। अयूब को धाना भी कि यदि भारत से कोई सम्मानजनक समझौता कर लिया जाय (बिल से नहीं केवल ऊपर से) तो भविष्य में इस बात की आशा की जा सकेगी कि अमेरिका से पुनः सैनिक सहायता पा भी जाय।

दूसरा कारण युद्ध के समय चीन की धोर से अविश्वास और निराशा का ह्रास बनना था। जब युद्धकाल में चीन ने दूसरा मोर्चा खोलकर या अन्य किसी प्रकार से पाकिस्तान को कोई ठोस सहायता नहीं दी तो पाकिस्तान अपने मन में चीन की असन्तुष्टि को समझ गया। सोवियत प्रदान मंत्री की कोडीगिंग ने भी अयूब को और बिबेलमत्री प्रोमिको ने सुटो को तात्काल में यह बात बन्धी तरह समझा दी कि चीन पर भरोसा रखने में और उसके साथ मित्रता बढ़ाने पर पाकिस्तान की बड़ी दुर्बलि होगी जो इन्डोनेशिया की हुई है।

तीसरा कारण जिसकी बजह से अयूब बार्ति-संधि के लिए तैयार हो गये यह था कि भारत के साथ २९ दिन के युद्ध ने उनके शासन को बड़ से हिंसा दिया था और उनको सैनिक प्रतिष्ठा को बूल में मिला दिया था। यदि उन परिस्थितियों में भारत के साथ कोई भी नया युद्ध छेड़ा जाता या सम्मानजनक समझौता करने की स्थिति पैदा नहीं की जाती तो अयूब सरकार का पतन हो सकता था। २९ जनवरी १९६९ को "स्टेट्समैन" में प्रकाशित समाचार के अनुसार यदि अयूब को भारत द्वारा व्यापक क्षम से किये जाने

हमें जवाबी हमम ही तनिक भी संभावना होती तो यह छम्ब क्षेत्र पर प्राक्रमण करने की अनुमति अपने सेना अधिकारियों को न देता। प्रयुक्त ने छम्ब क्षेत्र पर हमसे की याचना को स्वीकृति तभी प्रदान की जब उनके सेना-रतियों ने उन्हें यह पूरा विश्वास दिला लिया कि भारत केवल स्वामीय घोर धीमित मुँह ही करेगा।

बीसा कारण लाहौर घोर स्यासकोट के निकट भारतीय सेनाओं की उपस्थिति से उत्पन्न विकट परिस्थिति थी। लाहौर घोर स्यासकोट जैसे क्षेत्र का भारतीय तोपों की मार में होना पाकिस्तान के सेनापति राष्ट्रपति के लिए और बसत घोर अपमान का कारण था। यद्यपि पाक सेनाएँ भी भारत के छम्ब क्षेत्र में थीं परन्तु यह प्रश्न लाहौर घोर स्यासकोट जैसा महत्वपूर्ण नहीं था। राष्ट्रपति प्रयुक्त के सामने कबल दो ही विकल्प थे या ना समझीता करके शांति स्थापित की जाय और भारतीय सेनाओं में पाकिस्तानी क्षेत्र को मुक्त किया जाय या पुन संघर्ष करके स्थिति का अपने पक्ष में सौदाग्य जाय। चूंकि पुन संघर्ष करना पाकिस्तान के लिए घातमहाती हाता घतः थी प्रयुक्त ने शांति के मार्ग को ही बरख करना उचित समझा।

पश्चात् कारण यह था कि तासकर में पाकिस्तान को यह अनुमत्त हुआ कि तत्कालीन परिस्थितियों में घोर अविषय की दृष्टि से शांति का मार्ग अपनाते हुए रूस की बात मान लेने से उम कुछ ठोस साम मिल सकेंगे। उनकी पहली धाना यह थी कि रूस का प्रसन्न करके यह सुरक्षा परिषद् में काश्मीर के मामले पर कसी बोटो के प्रयोग को रोक सकेगा। पाकिस्तान का यह एक बहुत बड़ा सामन था कि अमेरिका और ब्रिटेन के समान यदि यह रूस का सहयोग भी अहित कर सका तो अविषय में काश्मीर प्राप्त कर सकेगा। तासकर बार्ता के दौरान पाकिस्तानी पत्रा में इस बात का झूठा प्रचार भी किया था कि सोवियत प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति प्रयुक्त को यह आश्वासन दे दिया है कि सुरक्षा परिषद् में यदि काश्मीर का मामला प्रस्तुत हुआ तो रूस भारत के पक्ष में अपनी बोटो का प्रयोग न करेगा। हासकि रूसी सेनाओं ने तासकर बार्ता के पहले घोर बाद में बारम्बार इस शांति की दूर करने का प्रयत्न किया कि काश्मीर के मामले में सोवियत नीति में कोई परिवर्तन आया है फिर भी भी प्रयुक्त को यह विश्वास है कि पाकिस्तान को रूस का समर्थन मिल सकेगा। यह बात उनके (प्रयुक्त के) १ फरवरी १९६६ के उम राष्ट्रीय प्रसारण से स्पष्ट हो गयी जिसमें उन्होंने कहा था कि तासकर समझौते के अनुसार २५ फरवरी तक दोनों देशों की सेनाओं को भीमात्त प्रदत्त से लौट जाने के बाद सुरक्षा परिषद् की दोनों राष्ट्रों की मौलिक राजनीतिक समस्या (काश्मीर) के समाधान की घोर ध्यान देना चाहिए।

पाकिस्तान न रूस के शांति प्रस्ताव के प्रति इनलिए भी सहमति प्रगट की कि इसमें उसे अमेरिका न रूस दोनों की सैन्य आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकती थी। यह स्थिति उसके लिए अपने राष्ट्रीय हित एक शक्ति की बढ़ि की दृष्टि से बड़ी सामन्य हाती।

उपरोक्त मंत्री कारग्यों बस पाकिस्तान द्वारा ताजकंद वार्ता का प्रस्ताव स्वीकार किया गया ।

ताजकंद वार्ता के उतार-चढ़ाव व सोवियत कूटनीति

रूस के निर्मूलक पर जब भारत और पाकिस्तान ताजकंद वार्ता के लिए सहमत हो गये तो श्री जयूर शीर शास्त्री का ताजकंद सम्मेलन ४ जनवरी से १० जनवरी १९६६ तक चलता रहा । सम्मेलन का औपचारिक उद्घाटन होने के समय पहले तो बड़ी बाधा पहले हुई कि सम्मेलन की विचारणीय विषय सूची क्या हो । भारत सोवियत नेताओं के इसी आश्वासन पर सम्मेलन में उपस्थित हुआ था कि यहाँ काश्मीर के प्रश्न को नहीं उठाया जायगा । इस विपरीत पाकिस्तान का आग्रह विषय सूची में काश्मीर को सर्वोपरि स्थान देने का रहा । वृ कि जब भारत के इस बुद्धिबोख से महमत वा टि टिखर सम्मेलनों में शक्ति स्थापना के मौलिक सिद्धान्तों पर बैठे प्रश्नों पर ही विचार किया जाना चाहिए, घट पाकिस्तान को अनिच्छापूर्वक मौलिक सिद्धान्त पर वार्ता के लिए महमति देनी पड़ी और युद्ध बर्जन पर दोनों राष्ट्रों के सम्म्यक्त विचार करने लगे । श्री शास्त्री ने दोनों देशों द्वारा युद्ध-मार्ग के परित्याग की घोषणा करने वाला एक संधि प्रस्ताव पाकिस्तानी प्रतिनिधि मंडल को भेजा जिसे १३ मिनट के भीतर ही कागज का टुकड़ा उड़ कर अस्वीकार कर दिया गया । भारत के बारम्बार आग्रह करने पर पाकिस्तान ने अपनी तरफ से एक संधि का मसविदा भेजा जिसमें बड़ी पुरानी रट लगायी गयी कि काश्मीर समस्या के समाधान के बिना युद्ध बर्जन का कोई समझौता नहीं हो सकता । इसी समय सम्प्रबतः ताजकंद वार्ता को असफल बनाने के लिए चीन ने भारत सरकार को बड़ा विरोध-त्रय भेज कर पाकिस्तान को अपने समर्थन का विश्वास दिलाते हुए उसे सपथ्यता न करने की प्रस्ताव दी । ८ जनवरी की शाम तक स्थिति बिफर ही गयी । जब पाकिस्तानी प्रवक्ता से पूछा गया कि क्या ताजकंद सम्मेलन की समाप्ति से पूर्व दोनों देशों के सामनाध्यय किसी संयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे तो उसका उत्तर इन शब्दों में दिया गया संयुक्त घोषणा स्वदेश वापिस लौटने के लिए कोई टिकट नहीं है । हम इसके बिना भी पाकिस्तान जा सकते हैं ।”

ताजकंद सम्मेलन की असफलता की संभावना से रूस अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए प्राणपण से सक्रिय हो उठा । इस समय सोवियत कूटनीति अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में विद्यमान थी । ६ जनवरी का सोवियत प्रधानमंत्री कोसीगिन ने वार्ता में विरोध की स्थिति को ठोड़ने के लिए १३ घंटे की मजक दीड़बुप की । भारत और पाकिस्तान के पक्षधरों को इस बात का पूरा आग्रह किया गया कि वे दोनों पक्षों के लिए सम्मान-नीय किसी समझौते पर वृत्ति लेकिन पाकिस्तान की हठधर्मिता समझौते के मार्ग में बाधा बनी रही । अंत में १० जनवरी की शाम को ४ बजे संझ्या को यह संकेत मिलने लगा कि भारत और पाकिस्तान में किसी तरह का समझौता हो जायगा और तब ६ बजे रात को ताजिकों की गड़बड़ाहट के बीच राष्ट्रपति प्रबुब का और प्रधानमंत्री नातबहादुर शास्त्री ने सोवियत प्रधान मंत्री कोसीगिन की

उपस्थिति में एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जो 'ताशकंद घोषणा' का नाम से विख्यात हुई ।

ताशकंद घोषणा
(Tashkent Declaration)

१० जनवरी १९६६ को हुए भारत-उस्मास के बीच जिस ऐतिहासिक 'ताशकंद घोषणा' पर हस्ताक्षर हुए, वह निम्नलिखित रूप से थी—

'भारत के प्रधान मंत्री श्रीर पाकिस्तान के राष्ट्रपति ताशकंद में मिलने और भारत तथा पाकिस्तान के वर्तमान सम्बन्धों पर विचार करने का वाद अपने इस दृढ़ संकल्प की घोषणा करते हैं कि वे दोनों देशों के बीच फिर से सामान्य और शांतिपूर्ण सम्बन्ध कायम करेंगे और दोनों देशों के लोगों में एक-दूसरे के प्रति सम्मान और मित्रता पैदा करेंगे । वे इस उद्देश्य की पूर्ति को भारत और पाकिस्तान के १० करोड़ लोगों के हित में अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं ।

१

भारत के प्रधान मंत्री श्रीर पाकिस्तान के राष्ट्रपति इस पर सहमत हुए कि दोनों देशों के भारत और पाकिस्तान के बीच अन्धे पड़ोसियों का संघर्ष कायम करने के लिए समूह राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र (चार्टर) के अनुसार पूरे प्रयत्न किये जाएंगे । इस घोषणा-पत्र के अन्तर्गत वे अपनी इस जिम्मेदारी को फिर से स्वीकार करते हैं कि वे ताशकंद से काम नहीं लेंगे और अपने विचारों को शांतिपूर्ण तरीकों से सुझाएंगे । वे दोनों इसे समझते हैं कि दोनों देशों के बीच तनाव उनसे अलग बिकेरकर भारत-पाकिस्तान झूझ की शांति और अस्तुता भारत और पाकिस्तान के लोगों के हित में बाधक है । इस घुठसूझि में अम्मू-काश्मीर के बारे में विचार हुआ और दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी स्थिति को स्पष्ट किया ।

२

भारत के प्रधानमंत्री श्रीर पाकिस्तान के राष्ट्रपति इस पर राजी हुए हैं कि दोनों देशों के सब सशस्त्र आर्मी २३ फरवरी १९६६ तक उन ठिकानों पर वापस लौट जाएंगे जहाँ वे ३ अगस्त १९६३ के पहले वे और दोनों पक्ष मुठ बिराम रेखा पर मुठ बिराम की शर्तों का पालन करेंगे ।

३

भारत के प्रधानमंत्री श्रीर पाकिस्तान के राष्ट्रपति इस पर सहमत हैं कि भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों का आचार इस सिद्धान्त पर होगा कि एक दूसरे के भीतरी मामलों में हस्त नहीं दिया जाएगा ।

४

भारत के प्रधानमंत्री श्रीर पाकिस्तान के राष्ट्रपति इस पर सहमत हुए हैं कि दोनों देशों में एक-दूसरे के बिच्छ प्रचार को रोका जाएगा और

ऐसे प्रकार को बढ़ावा दिया जायना जिससे दोनों देशों में मित्रता का सम्बन्ध बढ़े ।

१

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त और भारत में पाकिस्तान के उच्चायुक्त अपनी-अपनी अगुआई नीति का पालन करें और दोनों देशों में सामान्य राजनयिक संबंधों को फिर से कायम करने कायम करें । दोनों सरकारें अपने राजनयिक व्यवहार में १९६१ के विद्यमान समझौते का पालन करेंगी ।

२

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि वे भारत और पाकिस्तान के बीच आर्थिक सम्बन्धों का व्यापार संचार और सांस्कृतिक सम्पर्क को फिर से कायम करने की कार्यवाही पर विचार करेंगे और भारत तथा पाकिस्तान के वर्तमान समझौतों को ध्यान में लाएँगे ।

३

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि वे अपने अधिकारियों को मुद्दबन्दियों की वापसी का आदेश देंगे ।

४

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि दोनों पक्ष सरजाहियों की, जिम्कासियों की सैनिकी बसनेवालों की समस्याओं से सम्बन्धित मामलों पर बात-चीत जारी रखेंगे । वे इस बात पर भी सहमत हुए कि दोनों पक्ष ऐसे हालात पैदा करेंगे जिससे लोगों का श्रेष्ठ लाभ हो । वे इस बात पर भी सहमत हुए कि धर्म के दौरान दोनों पक्षों ने जिस मामल में सम्झौते पर अधिकार कर लिया है उनके लौटाने के बारे में बात-चीत की जाएगी ।

५

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि जिन मामलों का दोनों देशों से सीधा सम्बन्ध है उन पर विचार के बिना दोनों पक्षों की सर्वोच्च और अन्य स्तरों पर बैठकें होती रहेंगी । दोनों पक्ष इस पर सहमत हैं कि "भारत-पाकिस्तान संयुक्त समितियाँ" नियुक्त की जाएँ जो अपनी-अपनी सरकारों को बताएँ कि घाबरे और क्या कदम उठाए जाएँ ।

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि दोनों पक्षों के संबंधित सरकारों के बीच व्यक्तिगत रूप से संबंधित संबंधों की संविधिपरिषद के अध्यक्ष के बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने रचनात्मक मित्रतापूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण है यह बैठकें हो सकीं जिससे दोनों पक्षों के लिए सम्बन्धों का परिष्कार निकले । वे उम्मीद है कि पाकिस्तान की सरकार और वहाँ के लोगों को भी

इस में धम्यबाद देते हैं जिन्होंने उर्दूवा दतना हादिकु स्वागत और गाठिर गरी की ।

ये सोवियत रूस की मन्त्रीपरिषद के धम्यरा की इस घोषणा के गयी होन की धामंत्रित करते हैं ।

• जनवरी १९६६

भारत के प्रधानमंत्री

शान्तबहादुर शास्त्री

पाकिस्तान के राष्ट्रपति

मोहम्मद यूसुफ़ खान

'ताशकंद घोषणा पर भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण नशामय ने ताशकंद घोषणा प्रदो के उत्तर नामक प्रबनोत्तरी में कुछ प्रनात्तर प्रकाशित किये हैं जा इस घोषणा के महत्व उद्देश्यों आदि के बारे में बखिहूत प्रकाश डालते हैं । ये प्रबनोत्तर निम्न प्रकार से हैं—

ताशकन्द घोषणा का महत्व क्या है ?

ताशकन्द घोषणा का निष्कर्ष यह है कि भारत और पाकिस्तान अपने आपसी भगड़ों और बिबादों का हल करन में ताकत क प्रयोग का त्याग दें । दोनों देशों ने यह मान लिया है कि क मविष्य में किसी भी रूप में हल करन के लिये हथियार नहीं उठायेगे । दोनों देशों के बीच सामान्य शान्तिपूर्ण और आपसी सहयोग के सम्बन्धा से जो बातावरण बनेगा उसके द्वारा हा दोनों देश विभिन्न समस्याओं को हल करने की कोशिश करेंगे ।

भारत और पाकिस्तान का पिछले १८ वर्षों का इतिहास दुर्मयिपूर्ण सम्बन्धा का इतिहास रहा है । उसे देखते हुए इस घोषणा का महत्व और भी ज्यादा हो जाता है । इस घोषणा से दोनों देशों के पिछले रबीये लम्ब हो जाते हैं और उनक बीच शान्तिपूर्ण और अच्छे पड़ोसी सम्बन्धों क द्वार खुल जाते हैं ।

ताशकन्द घोषणा में दोनों देशों के बीच की किसी गलत समझौतों समझों या मतभरों को हल करन की कोशिश नहीं की गई है । न ही इस में दोनों में से किसी देश द्वारा उसके किसी इलाके या उसकी बिबादधारा को परित्याग कराने की कोई कोशिश की गई है । फिर भी यह घोषणा पाकिस्तान के माय शान्तिपूर्ण और अच्छे पड़ोसी-सम्बन्धों क युग की शुभघटना करती है और इस महाद्वीप तथा एशिया क बिस्व में शान्ति क प्रयासों में एक महत्वपूर्ण योग देती है । इस प्रकार, यह घोषणा उन प्रमुख सिद्धान्तों को पूरा करती है जिन पर भारत अनेक वर्षों से धरिय रहा है । ये सिद्धान्त हैं पाकिस्तान से हमारे शान्तिपूर्ण सम्बन्ध रहें और मित्रता क सन्देश में मुक्त बातावरण में दोनों देश अपनी मित्रता के सम्बन्धों का एक नया आधार प्रदान करें ।

ताशकंद घोषणा क्या इस बात की कोई ब्यवस्था करती है कि भविष्य में भारतीय इलाकों में घसपैठ बन्द हो जायेगी ?

ताशकंद घोषणा में ताकत को हस्तेमाउ न करने का एक सिद्धान्त माना गया है । इस सिद्धान्त में दोनों देशों की धार से पुन यह स्पष्ट घोषणा

की गई है कि दोनों देश एक दूसरे के मास्टरिक मामलों और देवरेल में कोई दखल नहीं देने और सेनाओं को हटाने के बाद सड़क बन्दगी की रखा पर सड़क बन्दगी की बातों में भी कोई दखलान्वाजी नहीं करे। दोनों देशों ने यह मान लिया कि वे किसी भी रूप में हथियार-बन्द सैनिक बिनमें हथियारबन्द सैनिकों को शामिल हैं सड़क बन्दगी रक्षा के उच्च बार नहीं भेजेंगे; हथियार बन्द युवपैठियों द्वारा सड़क बन्दगी रक्षा को किसी भी विधा में पार करना सड़क बन्दगी को उल्टा मानी जाएगी बिधका गतीका दोनों देशों द्वारा एक दूसरे के बरेभू मामलों में दखलान्वाजी और सक्ति के प्रयोग के रूप में हो सकता है। और यह सब तात्काल-भाषणा के प्रयोजन व उसकी आत्मा के प्रतिकूल होता।

भारत ने अपनी घोषणाओं के विपरीत अपनी सेनाओं को हाजीपीर और अन्य इलाकों से हटा कर २ घण्टा वाली स्थिति पर वापस आना क्यों कबूल किया ?

हाजीपीर और सड़क बन्दगी रक्षा के पार धर्म इलाकों से सेनाओं को हटाने का बहा तक सवाल है इस सम्बन्ध में भारत सरकार का रुख नहीं है जो हमारे प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव की १५ सितम्बर, १९६५ को लिखे पत्र में स्पष्ट किया था। हमें पत्र को प्रधानमंत्री न संभव में भी सुझाया था। इस पत्र में उन्होंने लिखा था

“महासचिव महोदय मैं धापका स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जब सड़क बन्दगी पर पूरी तरह धमक शुरू हो जायेगा और जब सब बातों पर बुनासा से सौच बिचार किया जायेगा तब हम किसी ऐसी स्थिति को मानने को तैयार नहीं होयें जिससे मबिध्व में भी हमारे इलाकों में युवपैठ करने वालों के लिए दरवाजा खुला रहे या जिससे हमारे इलाकों में युवपैठियों के बिनाक हम कार्रवाई न कर पायें।”

भारत ने हाजीपीर हटें और सड़क बन्दगी रक्षा के पार धर्म इलाकों पर जो कब्जा किया वह पाकिस्तान अधिभूत काश्मीर के युवपैठियों को बम्बू काश्मीर में युवने पर रोक लगाने के सिधे सैनिक दृष्टिसे बकरी हो पया था।

तात्काल घोषणा में मबिध्व में किसी प्रकार की युवपैठ न किये जाने और सभी हथियारबन्द सैनिकों बिसमें हथियारबन्द युवपैठिये भी शामिल हैं को वापस बुलाने की आरम्भी की गई है। यदि तात्काल घोषणा पर ईमानदारी से धमक किया गया जाय कि हम सोचते हैं कि होया तो हमें इसमें सदिह नहीं है कि मबिध्व में हमारे इलाकों में युवपैठ नहीं होगी। इस प्रकार, हाजीपीर से सेना हटाने का जो लक्ष्य हमारे प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र सभा के महासचिव को १५ सितम्बर १९६५ के पत्र में लिखी जो वह धम पूरी हो जाती है। तात्काल पर इन्हीं बातों पर और इस घोषणा के अनुषंगे “२” से होने वाले मामलों को दृष्टिगत रखते हुए तात्काल घोषणा को हमने स्वीकार किया।

भारत और पाकिस्तान—दोनों ही देशों में ताशकंद घोषणा की घोषणा की गई है। घोषणा में ऐसी हीन-सी बातें हैं, जिन्हें घोषणा के सफल होने का विश्वास होता है ?

ताशकंद समझौते पर कुछ घातोचनार्यें भारत और पाकिस्तान—दोनों ही देशों में घन प्रपेसित नहीं की। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों से ताशकंद पर जिनकी पृष्ठभूमि भारत और पाकिस्तान के पिछले सम्बन्धों जैसी रही हो दोनों पक्षों की समीक्षाओं परी नहीं हो सकती। दोनों ही देश अब तक एक दूसरे के विपरीत मार्गों पर थे। उनके सामने एक तरफ तो भौगोलिक एकता और दोनों देशों के समान ऐतिहासिक सम्बन्धों की बरीनत शान्ति प्रश्ने पड़ौसियों व घापसी सहयोग का रास्ता है। दूसरी तरफ एक दूसरा रास्ता घापसी मतमुदाब मजदू-मजदू और करोड़ों लोगों की परिणामियों का है। ताशकंद घोषणा में भारत और पाकिस्तान न अपने घापसी मतमुदाब का छोड़ कर शान्ति बोन्सी और प्रश्ने पड़ौसियों के सम्बन्ध कायम करन का फैसला किया है। इससे दोनों देशों के बीच अतन्नाक तनाव लय हो जायेगी और शान्ति की स्थापना होगी। दोनों ही देश शान्तिपूवक घन वेसको प्राणिक रूप से बसबाव बना सकेंगे। इन घापसी की शान्ति स्थापना के आश्वासन से दोनों ही देशों की धुरसा में और मजमुती जायेगी।

यही कुछ पहले इस घोषणा के उद्भवत पहले हैं। लेकिन इन सब से ज्यादा आवश्यक ताशकंद घोषणा की धारणा है, जो दोनों देशों की सरकारों और लोगों के लिये उनके हितों के काम कराने की दिशा में प्रेरक होती चाहिए।

ताशकंद घोषणा में इस बात की भी व्यवस्था है कि दोनों सरकारों के बीच विभिन्न विचारों पर जो दोनों देशों से सीधे तास्सुक रफते हों उद्भवत और अन्य स्तरों पर बैठकें आयोजित की जाएं। मंत्री-स्तर और अधिकारियों के स्तर पर भारत-पाक की संयुक्त बैठकें आयोजित करने का भी व्यवस्था की गई है। ये बैठकें अनेक समस्याओं पर विचार विमर्श कर के अपनी अपनी सरकारों को रिपोर्ट देंगी। इस प्रकार इस घोषणा से दोनों देशों के बीच एक ऐसा शान्तिपूर्ण वातावरण बनाने का प्रयास किया गया है, जिसमें समझौतों की गुंजाइश रह सके। घोषणा में विश्वास विभाया गया है कि हमारी सीमाओं पर—पूर्वी और पश्चिम—धीरे धाम ही जम्मू-कश्मीर की मजदूई बन्दी रस्ता पर शान्ति कायम रयी जायेगी।

ताशकंद घोषणा से काश्मीर के बारे में हमारे स्थिति पर क्या कोई अंतर पड़ता है ?

जैसा कि घोषणा के अनुच्छेद १ में स्पष्ट है दोनों ही पक्ष अपनी अपनी स्थिति पर बायम हैं। घन काश्मीर के बारे में हमारी स्थिति पढ़ा है—कि काश्मीर भारत का एक अविभाज्य अंग है और यह कि जम्मू व काश्मीर पर भारत की प्रभुता के बारे में कोई वादवात् नहीं की जा सकेगी।

तात्काल बोधना से संसार के प्रमुख देशों में क्या प्रतिक्रिया हुई है ?

इस बोधना का चीन को छोड़ कर दुनिया के सभी देशों ने स्वागत किया है और इसे एक महान राजनीतिक सफलता तथा शान्ति की विधा में एक बड़ा कदम बताया है। दुनिया के सभी देशों में प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की बुद्धिमत्ता और शान्ति की उनकी धर्मभाषा की प्रशंसा की गई है।

क्या तात्काल-बोधना भारत की बुनियादी नीतियों के अनुकूल है ?

तात्काल बोधना ने केवल भारत के पड़ोसी देश से बल्कि सम्बन्धों और दूसरे देशों के प्रति शान्ति और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की बुनियादी नीतियों के अनुकूल है बल्कि यह उन्हें और पृष्ठ करती है। इसी नीतियों के अनुसरण में भारत १९४६ के बाद से पाकिस्तान से अमान्यता सन्धि करने के लिये बराबर आ रहा है। भारत सरकार और भारतीय जनता यह भी सोचती है कि पाकिस्तानी जनता के साथ मैत्री और भाईचारे से रहना चाहती है। तात्काल बोधना ने भारत के उद्देश्यों और नीतियों को पूरा करने की दिशा में एक आधार प्रदान किया है।

तात्काल बोधना की सबसे बड़ी उपलब्धि यही मानी गई कि १९४७ के विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान के मध्य बने जाने वाले तनाव को इसने समाप्त किया और सितम्बर १९६६ के युद्ध से उत्पन्न अमान्यता स्थिति को सामान्य बनाया। इस विषय में तात्काल बोधना पर हस्ताक्षर होने के बाद कृषि मंत्री श्री कोसीबिन ने कहा था—

‘यह बोधना भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में एक नवयुग की शुरुआत करती है। ऐतिहासिक संघर्ष को समाप्त करती है। जो बड़ी एशियाई राष्ट्रों के सामान्य सम्बन्धों में बाधाओं को दूर करने वाली कठिनाइयों पर विजय पाने के मार्ग का निर्देश करती है और हमारी सम्मति में एशिया के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में अस्थिर परिस्थितियों को बनाये रखने की वास्तविक आधार दिशा प्रस्तुत करती है।’

‘तात्काल बोधना’ के महत्व को बताते हुए जनवरी १९६७ में स्वतंत्र भारत के राजगुरु श्री टी. एन. काल ने ‘सोवियत भूमि’ में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखा था—

‘सोवियत संघ तात्काल में भारत और पाकिस्तान की बैठक आयोजित कर सका जब कि उनके बीच तत्काल एक खूनी संघर्ष हो चुका था यही बात अपने-आप में बहुत महत्वपूर्ण है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि दोनों देशों की सरकारों एक नतीजे पर पहुंच सकीं और अत्यंत धार्मिक द्वारा अपने मतभेदों को दूर करने के लिये कुछ सिद्धान्तों की स्थापना कर सकीं। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों की सरकारों तथा जनता ने यह महसूस किया कि उनके आपसी संघर्ष और तनाव से दोनों को कोई लाभ नहीं है, बल्कि इससे सिर्फ उम्र ही उमर दोनों को लाभ होता है जो दोनों देशों को कमजोर करता आइए है तथा दोनों का खोखल करना चाहते हैं। उन्होंने इस बात को भी महसूस किया कि दोनों की विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्थाओं के

बावजूद, दोनों के मित शान्तिपूर्ण सहजीवन ही एक मात्र मौजूद रास्ता है ताकि वे एक साथ रह सकें। भारत और पाकिस्तान सदा सर्वदा पड़ोसी बने रहेंगे। भारत और पाकिस्तान की जनता के बीच घने-घने जोड़ें समाज है और दोनों के घापसी हितों में कोई अन्तर्जात भगड़ा नहीं है। दोनों देशों की जनता एक ही नस्ल की है दोनों की मुख्य बोसियाँ एक हैं। उरू पजाबी बंगला आदि। उनमें धार्मिक और सांस्कृतिक साम्य मौजूद है। उनकी प्रथम व्यवस्थाय एक-दूसरे की पूरक है और उनके सामरिक हितों में भी कोई भगड़ा नहीं है। ये दोनों देश घापस में मिल कर पारस्परिक फायदे में मित काम कर सकते हैं तथा इस उपमहादीप में शान्ति को मजबूत बना सकते हैं। ताशकन्द की ऐतिहासिक बोषणा इतिहास और भूगोल के इन तथ्या की स्वीकृति थी। ताशकन्द बोषणा का यह महत्व है कि दोनों देशों में बस प्रथम के परित्याग का तथा अपने मतमेंदों को इस करने के मिते शान्तिपूर्ण शर्तों का प्रत्यक्ष तरीका घपनामे का सकस्य किया। इससे भी घाग बढ़ कर सांस्कृतिक धार्मिक और प्रथम क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग का एक रास्ता तय किया गया। घोषणा के मातहत दोनों देशों की घामन-सामने लड़ी सेनामें जिससे फिर संघर्ष हो सकता था पीछे हटाई गई।

हमें यही जामा बता है—भारत और पाकिस्तान की जनता को यही शोना बता है कि ताशकन्द में बोया गया मीत्री और सदुभावना का बीज हमारे जनमय के दिसो-दिभाग में गहरी लड़ जमा ले तथा हमारे दोनों देशों और जनगण के बीच सच्ची मीत्री में मनाहर फूल खिल उठें।

ताशकन्द घोषणा शान्तिपूर्ण सहजीवन की भावना का बीजा-जागता बराहरण है। इससे पता चलता है कि कोई भी देश अपने पड़ोसी के साथ शान्तिपूर्वक और मित्रतापूर्वक रह सकता है। ताशकन्द घोषणा की भावना का महत्व भारत और पाकिस्तान के बीच सम्बन्धों के क्षेत्र में घागे है। यदि ये दोनों देश इस भावना का सफल कार्यान्वयन कर लें तो वे दुनिया के दूसरे देशों के समथ तनाव के दूसरे क्षेत्रों में—घपन संघर्षों के शान्तिपूर्ण समाधान के मिते एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। इससे भी धार्मिक यह है कि ताशकन्द घोषणा पड़ोसी देशों के समथ अपने त्रिमाकभाप के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सामप्रद उद्भवमूलक और शान्तिपूर्ण सहयोग का रास्ता दिखाती है। इससे यह भी मिश्र हाता है कि सोवियत संघ के साथ भारत की मीत्री तथा भारत के साथ सामियत संघ की मीत्री किसी धम्य देश के खिलाफ नहीं है और यह दोनों को किसी तीसरे देश से अपने मीत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करने में बाधा नहीं डालती। इसके विपरीत यह सारी दुनिया में मीत्री और सहयोग की बृहत्तर भावना का सिर्फ एक घम है।

ताशकन्द घोषणा की घालोचना

ताशकन्द घोषणा को जहाँ एक ओर अपने जाम में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बताया गया है, वहाँ दूसरी ओर दोनों ही देशों में इसकी कटु

घासोचना भी हुई है। पाकिस्तान में इसकी घासोचना का प्रमुख आधार यह बात है कि इससे पाकिस्तान को अपने मुख्य लक्ष्य काश्मीर को पाने में किसी प्रकार की सफलता नहीं मिली है। यद्यपि राष्ट्रपति प्रयुब ने इस घासोचना के उत्तर में यह बाबा किया है कि तात्काल्य घोषणा से काश्मीर की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया है क्योंकि शान्ति स्थापना के बाद जब इस प्रश्न की सुरक्षा परिषद में उठाया जा सकेगा।

भारत में इस घोषणा की घासोचना प्रमुखतः निम्नलिखित आधारों पर की गई है—

प्रथम घासोचना यह की जाती है कि भारत द्वारा हाजीपीर कागिस घोर टिक्काम से बरों से अपनी सेनाओं को हटाने की शर्त स्वीकार कर लेना एक तरह तो सैनिकों के पराक्रम घोर बलिदान के साथ विश्वासपाठ है तथा दूसरी तरह यह मरिष्य के लिए पाकमस के खतरे को बनाये रखता है। पाकिस्तान द्वारा इसी बरों में से होकर अधिकतम पुषपठियों को काश्मीर में भेजा गया था। मरिष्य में पाकिस्तान फिर से ऐसी कार्यवाही नहीं करेगा— इसका क्या निश्चय है? पाकिस्तान क बाश्बासतों का भूस्थ क्या है? इस बात की क्या धारष्टी है कि मरिष्य में कमी यह सामरिक महत्व के इन बरों से काश्मीर पर घाय नहीं बरसायेगा? पाकिस्तान ने १९६७ में भी भारत पर धकारण ही हमला किया था घोर बाद में कागिस पर भारतीय सैनिकों द्वारा किये गये कब्जे को इसी शर्त पर हटाया गया था कि पाकिस्तान पुनः कमी उस घोर से धाकमप नहीं करेगा। परन्तु पाकिस्तान ने अपने भाश्बासत को निर्मल्य करते हुए न केवल मुझनिराम-रैबा का सैकड़ों बार उस्संजन किया बल्कि १९६२ में भारत पर जब धाकमस भी कर दिया। तात्काल्य समझौते के सम्पन्न होने के बाद भी भारत के प्रति पाकिस्तान के बिहोप और बुर्खबहार में कोई कमी नहीं घाई है। पाकिस्तान तात्काल्य-भासता को दुरुप कर भारत से प्रतिशोध के लिए वेताब हो रहा है घोर विश्व के प्रत्येक राष्ट्र से प्रत्येक सम्मन उपाय द्वारा धस्वास्त्र फुटाने में सगा हुआ है। जब तो उसने काश्मीर में सझनानी भी शुरू कर दी है। जबदूर १९६७ में पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा गोलीबारी किने जाने की फुटफुट बारबातें भी हुई हैं। पाकिस्तान की इस प्रकार की कार्यवाहियां तात्काल्य घोषणा का स्पष्ट उस्संजन हैं।

इस घासोचना के प्रत्युत्तर में पहले बताया जा चुका है कि भारत ने पाकिस्तान की घोर से घाने वाले पुषपठियों की रोक-बाम के लिए मुझ निराम रैबा को पार करके उपरोक्त बरों पर धकिहार किया था। जब तात्काल्य समझौते के द्वारा एक मध्यस्थ के सम्मूत पाकिस्तान के मुझ निराम रैबा घोर मुझ-निराम की शर्तों को पालन करने का मुझ ने उपायों के परित्याग का घोर एक-दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप न करने का धास्वाधम किया था तो भारत के घामने इन बरों पर अपनी सौर्जे बनाये रखने का कोई उर्क संभव धाधार न था। भारत शुरू से ही यह कहता था रहा था कि

२ अगस्त १९६२ की पूर्वस्थिति घानी चाहिये। पाकिस्तान द्वारा इस मान लिए जाने पर भी यदि भारत अपने बचन से मुकरता तो न केवल सुरक्षा परिषद में बल्कि सौविद्यत क्लब और विश्व के अन्य मित्र राष्ट्रों के समक्ष अपने पक्ष की विभाजना होता। अब ता यहो है कि दोनों राष्ट्रों को इस घोषणा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। भारत अब तक यही करता आ रहा है और घाने भी करने को दृढ़ संकल्प है। लेकिन केवल एकपक्षीय सम्मान से काम नहीं चल सकता। यदि पाकिस्तान भारत के साथ तत्काल सद्दाने पर ही घामादा होगा ता इस बार उसे १९६२ की तरह क्षमा कर देने की उदारता सम्भवतः भारत सरकार नहीं दिखायेगी। भारत की उदारवादी सरकार के लिए भी यह सम्भव न हो सकेगा कि वह भारतीय जनता की भावनाओं से विचलनाइ करे और साथ को दूध पिलाने की प्रवृत्ति से बाज न धाये।

घानोचकों द्वारा दूसरा महत्वपूर्ण तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि पाकिस्तान द्वारा चीन के साथ जित प्रकार का मठबग्यन किया गया है उससे यह बात अब स्पष्ट है कि उसकी नीति भारत के साथ निरन्तर घुसा और शत्रुता बनाये रखने की है। उनका कहना है कि यह बात कदापि आश्चर्यजनक न होगी कि भारत पर सम्मिश्रित आक्रमण करके उसे पराजित करने की योजनायें बनाई जायें। ऐसी स्थिति में ताशकन्द समझौते में पाकिस्तान का किया गया विश्वास भविष्य के लिए विश्वासघात बन सकता है। इसका उत्तर यही है कि हमें अपनी शक्ति पर भरोसा रखना चाहिए। पाकिस्तान १९४७ से भारत के प्रति घातकता रहा है और चीन १९६२ से भारत का घोर शत्रु बना हुआ है। इन दो शत्रु राष्ट्रों के बीच गठ हुए भारत को निरन्तर इतना नुकसानामी बना रहना होगा कि वह दोनों मोर्चों पर घात को मात दे सके और यह भी सच है कि भविष्य में यदि मुठ हुआ तो भारत शत्रुओं को ऐसी रियायतें नहीं देना चाहेगा कि जिनसे उनके विपक्षे दांत बने रहे।

तीसरी महत्वपूर्ण घानोचना यह की जाती है कि स्वर्गीय श्री शास्त्री ने सौविद्यत क्लब के दबाव में घाकर इस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये थे। घोषणा पर हस्ताक्षर के कुछ ही पन्ते बाद रात्रि में उनकी मृत्यु हो जाना भी घानोचकों के मतानुसार एक रहस्यमय बात मानी जाती है। इस बात की भी घानोचका म्यन्ड की जाती है कि भविष्य में क्लब पाकिस्तान की मित्रता बनाये रखने के लिए काश्मीर के घामसों में पहले की तरह भारत का समर्थन नहीं करेगा। परन्तु इन दोनों ही संवेहों के कोई दृढ़ आधार नजर नहीं घाते।

भारत चीन सीमा विवाद और भारतीय विदेश नीति

[*Since Indian Border dispute and Indian Foreign Policy*]

जगतान्धियों से भारत और चीन के सम्बन्ध घायन मंत्रीपूण रहे है। प्रतिहास इस बात का साधी है कि इन दोनों महाद्व राष्ट्रों ने एर-दूधरे पर कमी जानमन करने की चेष्टा नहीं की और भूतकास में दोनों के प्रवाइ

सांस्कृतिक सम्बन्ध कायम रहे। पश्चिमी साम्राज्यवाद की स्थापना हो जाने के उपरान्त दोनों देशों के प्राचीन सम्बन्धों का विच्छेद हो गया। लेकिन औपनिवेशिक अनुभव ने उन्हें एक-दूसरे के सम्मिलित ना कर सड़ा कर लिया। १९२७ ई० जब इंग्लैण्ड में साम्राज्यवाद विरोधी संघ का सम्मेलन हुआ तो भारत और चीन के प्रतिनिधियों ने एक संयुक्त बक्तव्य में चीन में ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीय सेनाओं के प्रयोग की निन्दा की। १९३१ में जब जापान द्वारा मन्चूरिया पर आक्रमण किया गया तो चीन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने हेतु भारतीय जनता ने जापानी वस्तुओं का बहिष्कार किया। पुनश्च १९३७ में चीन जापान युद्ध आरम्भ होने पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने चीन के प्रति मित्र भाव के प्रवर्तन हेतु एक वाक्यटी बतला भेजा। इस पृष्ठभूमि में यह स्वाभाविक था कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् स्वामीन भारत अपने इस पड़ोसी राष्ट्र के साथ अच्छे सम्बन्ध रखने का प्रयास करता।

१९४८ ई० में राष्ट्रवादी सरकार के पतन के पश्चात् चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। भारत ने इस नव-स्थापित सरकार को तुरन्त मान्यता प्रदान करके अपने मंत्रीमण्डल व्यवहार का परिचय दिया। राष्ट्रवादी सरकार के समय चीन में भारतीय राजदूत के पद पर सरदार के० एम पण्डितकर काम कर रहे थे जब १९४९ में जूनी को दुबारा भारतीय राजदूत बना कर चीन भेजा गया। श्री पण्डितकर के प्रवर्तनों से भारत और चीन के बीच उत्तम मंत्री सम्बन्धों की शुरुआत हुई। पण्डितकर ने वहाँ चीन की जनता को भारतीय दृष्टिकोण से परिचित कराया वहाँ भारतीय जनता को भी चीनी क्रांति के आचारमूल तत्त्वों से आतन्कारी करवाई। उन्होंने बताया कि चीनी क्रांति एशिया के नवजागरण का प्रतीक है और चीन की नव-स्थापित सरकार वहाँ के लगभग १० वर्ष पुराने विकास का धनिवार्य परिणाम है। सबियों की मुक्तियों के बाद स्वामीनता प्राप्त करने वाले भारत का इस क्रांति में आरम्भ से ही सहानुभूतिपूर्ण रुख रहा और इसीनिचे पण्डितकर के प्रवर्तनों ने इस सहानुभूति में और भी बृद्धि की तथा स्वर्णिम श्री नेहरू के नेतृत्व में भारत ने इस बात का पूरा प्रयास किया कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में उचित स्थान दिया जाए।

परन्तु चीन ने भारत की मित्रता का बजाव भारत पर आक्रमण करके दिया और इस तरह महायोमी श्री घरबिन्द की १७ वर्ष पूर्व की गई वह भविष्यवाणी हमारे देश के ऐतिहासिक आरम्भ में पसरत सब बन कर आई—

माघो के तिम्बत धमियान का मौलिक महत्व चीन की सीमाओं को सीधे भारत तक बढ़ाने और वहाँ तक तक ठीक णय पर ठीक रण विधि के द्वारा प्रहार करने के लिये सज्ज सजे रहने में निहित है जब तक कि भारत प्रवन्तता से अपने को साम्यवादी युद्ध का साथी बोधित न करे। परन्तु माघो और स्टालिन के मोह से बचने के लिये उनके चरणों पर झुक जाना किसी भी प्रकार के एक व्यावृत्ति-हित (A Saving Gesture) नहीं है। यह एक देसा हगित

(Gesture) है जिसका अर्थ है हमारे सम्पूर्ण प्रायश्चित्तों और महत्वाकांक्षाओं का विनाश। जो इंगित हमें बचा सप्टा है वह है—चीन के प्रति एक दृढ़ नीति का अनुसरण उसके दुष्ट इरायों का प्रत्याख्यान करना (denounce) बिना किसी प्रारक्षण के (without reservation) मंगुल राष्ट्र अमेरिका के साथ कड़े हुए और अपने धारम-समर्पण की रक्षा करते हुए प्रत्येक ऐसे प्रवृत्त करना जिससे हमारी ओर से अमेरिकन हस्तक्षेप और जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है भारत पर चीन की दृष्टि से अमेरिकन प्रतिरोध का मार्ग प्रशस्त करना। सैनिक रूप से चीन हमसे समय १० गुना अधिकता है परन्तु प्रजातन्त्र की अमेरिकन रक्षा व्यवस्था के शूपाथ (Spear head) के रूप में भारत सरकारता से माओ की यात्रा-मुसम्मिन घटीहणियों को रोक सकता है।”

भारत पर चीन के आक्रमण ने न केवल हमें सामूहिक-शक्ति पहुँचाई है बल्कि अपने मौलिक सिद्धान्तों राष्ट्रीय योजनाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्नों पर नये सिरे से सोचने का समय बाध्य कर दिया है। चीन का आक्रमण केवल भारत की अकेली घटना नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र विश्व की एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या ने हमको एक ऐसे स्थान पर लाकर लड़ा कर दिया है जहाँ से संसार की स्वाधीनता प्रेमी मानवता अपने अतीत के सम्पूर्ण विकास की सुरक्षा को ही अविनाश की दृष्टि से देखने के लिये बाध्य हो गई है। 'युद्धों से व्यक्ति अपने वैयक्तिक और सामूहिक प्रयासों द्वारा स्वतन्त्रता के लिये समय करता रहा है और अपने-अपने क्रान्तियों के बाद उसे वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था एक पारिभ्रमिक के रूप में उपलब्ध हुई है। यदि चीनी बर्बरतावादी आक्रमक नीति इस युग में भी सफल हुई तो स्वयं बुनियाद को हजारों वर्ष पुराने इतिहास को दुह्रगने के लिये फिर से वापिस होना पड़ेगा।”¹

1 “The basic significance of Mao's Tibetan adventure is to advance China's frontiers right down to India and stand poised there to strike at the right moment and with right strategy unless India precipitately declares herself on the side of the Russian block... Really the gesture that can save India is to take a firm line with China, denounce openly her nefarious intentions, stand without reservation by the U.S.A. and make every possible arrangement consonant with our self respect to facilitate an American intervention in our favour... Militarily China is almost ten times as strong as we are (in 1950) but India as the spear head of an American defence of Democracy can easily halt Mao's mechanised millions... We must bear it into our minds that the primary motive of Mao's attack on Tibet is to threaten India as soon as possible” (Nov 11 1950)

भारत चीन सीमा विवाद और चीन का आक्रमण कोई सामान्य सीमा-विवाद नहीं है बल्कि यह तो स्वतन्त्रता पर पशुता का वर्तमान पर भूत का और शांति पर बर्बरता का भीषण प्रहार है। यह एक ऐसी मन्मीरतम मानव समस्या है जिस पर विश्व के प्रबुद्ध जनमत को और स्वाधीनता प्रेमी लोकतन्त्रात्मक गणराज्यों को विचार करना चाहिये। यह एक तथ्य है कि भारत एशिया में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के मध्य की एक निर्णायक कड़ी है और यदि चीन अपनी कृत्री अति और विस्तारवाद की नीति में सफल हो कर एक बार भारत में पैर जमा देगा तो फिर एशिया और अफ्रीका की गणराज्य स्वतन्त्रता का समान्त होने में देर न सकेगी। भारत चीनी प्रसारवाद के मार्ग में एक महानतम बाधा है और इसीलिये चीन ने भारत से टक्कर लेने का निर्णय किया है। सीमा-विवाद तो केवल एक बहाना है जिसका आशय प्रत्येक आक्रान्ता नेता है और जिसे वह प्रबल पाकर अपने पड़ीसी पर बबरबस्ती लाव देता है।

विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत की १६०० मील से भी अधिक सम्बन्धी उत्तरी सीमा घटीत काम से भारत की प्राकृतिक सीमा रही है और हिमालय में हिम शृङ्खल इस देश का सुरक्षा प्रदान करते रहे हैं। काश्मीर में सहाय्य और उत्तरी पूर्वी सीमा में नेफा (NEFA) के पास यह शृङ्खला अनेक जगह टूटी-फूटी है इसलिये वे दोनों ही क्षेत्र प्राचीन काल से ही सीमा-विवाद के अवसर उत्पन्न करते रहे हैं। तिब्बत और सहाय्य के बीच तथा नेपाल भूटान सिक्किम और तिब्बत के बीच अनेक बार सीमा-विवाद पैदा हुआ है। जब भारत पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने पैर रोप दिये तो अंग्रेजों ने इस प्रकार के सीमा-विवाद का अन्त करने के लिये नेपाल भूटान और सिक्किम को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत अर्द्ध-स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। सन् १९१२ में चीन में शेनियातसेन का परतन्त्र स्वामित्व हुआ। चूंकि कई सौ वर्षों बाद चीन में ऐसा सुपठित और अतिव्यापी राज्य कायम हुआ अतः अंग्रेजों ने यह उचित समझा कि ब्रिटिश भारत की सीमा को निर्धारित कर दिया जाए। फलस्वरूप लॉर्ड कार्जन ने तिब्बत चीन और भारत के बीच सीमा के सम्बन्ध में एक संधि करने के लिये कदम उठाया।

(क) तिब्बत-संधि और मेक-मैहोन लाइन

उत्तर पूर्व में भारत और तिब्बत तथा तिब्बत और चीन के मध्य सीमा निर्धारण के लिये तीनों देशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन २७ अगस्त १९१४ को लिसा में हुआ। ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत अधिक Arthur Henry Mo Mahon चीन की तरफ से Monsievr Ivanchen तथा तिब्बत की तरफ से Lonchen Ga-den Shatre Pal-Jor Dorji ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इसमें यह ठर किया गया कि—

(१) तिब्बत पर चीन की Suzerainty रखनी लेकिन बाह्य तिब्बत (Outer Tibet) को अपने कार्य में पूरी स्वतन्त्रता होनी।

(२) चीन उसके साम्प्रतिक सीमाओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(३) चीन उसे अपने राज्य का सुझा भी कमी जापित नहीं करेगा।
बाह्य तिब्बत और भारत के बीच की ऊँची पठार-श्रृंखलाओं का सीमा मान कर एक नक्शे में भास पसिल से निगान कर दिया जिसमें तीनों प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए। इसी सीमा को मैक मेहोन लाइन (Mc Mahon line) के नाम से पुकारा गया। सिमला सम्मेलन में साम्प्रतिक तिब्बत और बाह्य तिब्बत के बीच भी सीमाओं का निश्चय हुआ।

यद्यपि सैन्यातसेन की सरकार ने बाद में इस आचार पर सिमला संधि का अनु-समर्थन (Ratification) करने से इन्कार कर दिया कि आंतरिक और बाह्य तिब्बत के बीच की सीमा उसे मान्य नहीं है पर चीन सरकार द्वारा भारत तथा बाह्य तिब्बत के बीच की सीमा पर कमी काई जापित नहीं उठाई गई और चीन की वर्तमान पुनोत्थी तथा मैक मेहोन रेखा को ही व्यावहारिक रूप से मान्यता दी जाती रही। जब कभी सीमा के बारे में कोई विवाद भी हुआ तो चीन द्वारा इसी रेखा का समर्थन किया गया। ऐसे अवसर १९३१ १९४४ और १९५३ में घाये। साम्यवादी चीन का भारत अपने अपने पक्षों में बारबार मैक मेहोन रेखा का ही धर्म देता रहा और १९५६ से पूर्व चीन ने इस बारे में कोई जापित नहीं उठाई।

जहाँ तक सहाय की सीमा का प्रश्न है चीन और भारत के बीच किसी संधि का उल्लेख नहीं मिलता तथापि व्यावहारिक दृष्टि से जिस सीमा तक भारत और तिब्बत अपना कब्जा जतायियों से करते रहे हैं और जिसे भारत सबब अपने नक्शों में दिखाता रहा है वही परम्परागत सीमा-रेखा है। समय-समय पर भारत में घाये वाले विभिन्न महत्वपूर्ण यात्रियों ने भी इसी सीमा का उल्लेख अपनी यात्राओं में किया है। काश्मीर की उत्तरी सीमा का वर्णन करते हुए ब्रिटिश प्राधिकारियों ने १८६६ में चीन को स्पष्ट किया था कि इसकी पूर्वी सीमा २० घंटांश पूर्वी रेखागत है। इस सेस-यत्र स इस बात में संदिग्ध की कोई गुन्पाइत नहीं रहती है कि प्रस्ताई चीन भारतीय सीमा के अन्तर्गत है और यह सीमा ऐतिहासिक तथा परम्परागत है। काश्मीर राज्य के भास विभाग के कामजातों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि काश्मीर की सरकार ही प्रस्ताई चीन के व्यापारिक मामों की रक्षा व परम्परा करता रही है।

(घ) १९४७ से १९५४ तक का भारत चीन सम्बन्ध
और राजनीतिक घटना-वक्र

भारत चीन सीमा विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के रूप में यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि भारत ने स्वाधीनता प्राप्त करने के साप-भाव उत्तरायिकार के रूप में ब्रिटिश सरकार द्वारा तिब्बत में कुछ अतिरिक्त (Extra territorial) अधिकार प्राप्त किये थे जो निम्नलिखित हैं —

- (i) "तिब्बत और ब्रिटिश भारतीय व्यापारियों के झगड़ों में बचाव पक्ष के देख की बिना सामूहिकी की चीर जमी देश का न्यायाधीश मामले पर मुक्तवाई में सम्मिलित करता था।
- (ii) यदि तिब्बत में ब्रिटिश राज्य के लोगों के बीच विवाद हो तो वह विवाद ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा निर्यात होते थे।
- (iii) ब्रिटिश एजेंटों को स्वाधिकार रक्षा के लिये कुछ चीज रखने का अधिकार था।
- (iv) पंट हुप के मात दु'य से ब्याप्टसी तक टेसीफोन और टेसीवाक संस्वानों पर भी ब्रिटिश अधिकारियों का अधिकार था।
- (v) तिब्बत में भारत सरकार के ११ विभाग रहें थे।

७ अक्टूबर, १९१० को चीनी सेनाओं ने प्रथम बार तिब्बत में प्रवेश किया। इस पर भारत ने चीनी सरकार का ध्यान इस तरह आकर्षित किया। बस्तुतः भारत का यह कदम भारत-चीन विवाद को रोकने के लिये एक प्राथमिक प्राथम कदम था लेकिन भारत की मितता और समुक्त राष्ट्र संघ में चीन को सबस्यता बिलाने से प्रबलियों के प्रति पूर्ण अपेक्षा माव बलति हुए १० अक्टूबर को चीन ने अपने उत्तर में भारत के प्रति कठोर इस मप माना। चीन की प्रापामी विश्वासवादी नीति का यह एक स्पष्ट संकेत भारत की सकारवादी नीति से सम्भवत इसे गम्भीरता से नहीं लिया। अपने पत्र में चीन ने लिखा था—“पश्चिम की साम्राज्यवादी नीति से प्रभावित भारत चीन के पारदर्शीय मामलों में हस्तक्षेप करने का साहस न करे।”

चीन द्वारा इस प्रकार की सम्भावनी का प्रयोग करने के उपरान्त भी भारत सरकार चीन के प्रति मैत्री व सहायुपुति पूर्ण रख प्रपनाती रही। १ फरवरी १९११ को भारत ने समुक्त राष्ट्र संघ में चीन के विरुद्ध पारित उस प्रस्ताव का पूरा विरोध किया जिसमें चीन को कोरिया में आक्रमण बोधित किया गया था। ८ सितम्बर, १९११ को सात शीघ्रितको में ४९ राष्ट्रों के साथ होने वाली बापामी संधि में भारत इधीलिये सम्मिलित नहीं हुआ कि उसमें चीन को सामिस नहीं किया गया था। उत्तरवात ११ मई, १९११ को कोरिया-युद्ध के समय भारत ने चीन की धोर से बकालत करते हुए युद्ध-बन्धियों के बारे में समुक्त राष्ट्र संघ के समझ अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो बहुमत से पास हो गया। २९ अगस्त १९१४ को बोर्नो राष्ट्रों के मध्य एक ८ वर्षीय व्यापारिक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत भारत द्वारा तिब्बत को प्राप्त अपने बहिर्देशीय अधिकारों (Extra territorial rights) को चीन को सौंप दिया किन्तु इस अधिकार-स्वाय के बदले में उसको स्वयं को युद्ध की हासिस न हुआ। भारत ने तिब्बत में चीन की सम्प्रभुता को स्वीकार कर लिया और ब्यापार की कुछ शर्तों में बापसी समझौता हुआ। बोर्नो राष्ट्रों के मध्य राजनीतिक सम्बन्ध मधुर व मैत्रीपूर्ण रहें—इसके लिये उनमें एक पंच सूचीय संधि हुई। उत्तरवात् बाहुव नामक स्वात में बफ्रीका और एशिया के देशों का एक विशाल राजनीति सम्मेलन हुआ जिसमें इन देशों

के प्रधानमंत्रियों घबरा शासनाध्यक्षों ने भाग लिया। चीन के साथ अपने व्यवहार की सदासतता का प्रदर्शन करते हुए भारत ने इस वेष्टा के साथ जान-बूझकर का पतित कराने में उनकी मदद की। इसका परिणाम था राष्ट्रीय के प्रधान मंत्रियों ने एक दूसरे के देशों की यात्रा करके अपने सम्बन्धों का अधिक निश्चिन्तापूर्ण बनाने का प्रयास किया था। २५ जून १९५४ को चीन के प्रधानमंत्री ची चाऊ-एन-लाई ने भारत में हार्दिक उत्सव पाया और १८ अक्टूबर १९५४ को ची नरक का चीन में स्वागत किया गया।

परन्तु चीन द्वारा इस प्रकार का स्वागत प्रदर्शन हार्दिक न था क्योंकि इस समय तक वह भारतीय सीमा में अपनी हुरकटा की वृद्धि कर चुका था। चीन द्वारा जा नये नक्से प्रकाशित किये गये थे उनमें भारत की ५० हजार वर्गमील सीमा चीन के अन्दर दिखाई गई थी। चीन प्रधानमंत्री से मुलाकात के समय जब ची नरक ने इन नक्सों की बात खेड़ा तो ची चाऊ-एन लाई ने उत्तर दिया कि ये नक्से चाङ-काइ केव की राष्ट्रवादी सरकार के पुराने नक्सों की मकसद हैं और चीन की नई सरकार को इतना समय नहीं मिला कि वह इनमें संशोधन कर सक। ची चाऊ-एन-लाई ने यह धारणासा दिया कि भारत को इस बारे में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि समय मिलने पर इन नक्सों को ठीक कर लिया जायगा। परन्तु तब से चीनी प्रधानमंत्री अपनी सीमा का स्वागत करने में विशेष पटु थे।

सीमा विवाद का आरम्भ—१९५५ से १९६२ तक की घटनाएँ

भारत का ईश्वर तुम्हें मानने वाला माघो का जान भारत के प्रति कभी भ्रमापूर्ण नहीं हो सकता था। माघो की विस्तारवादी नीति में छत्र कपट और हिंसा का संदेश से ही प्राणाम्य रहा है और उसकी भारत के प्रति नीचा की संज्ञा कभी नहीं रही थी। अमेरिका जैसे महाशक्ति की प्रबल सहायता के बावजूद अपने चीन की राष्ट्रवादी सरकार का उखाड़ फेंका था। अतः यह कोई स्वाभाविक बात न थी कि माघो ने इस सफलता से प्रेरित होकर उत्तर और दक्षिण में चीनी राज्य के विस्तार की रूपरेखा तैयार की और कोरिया एम् तिब्बत के अर्धकर भर-महार के रूप में इस नीति का कार्यान्वयन किया।

माघो की इस नीति अथवा दूसरे शब्दों में 'माघो-तन्त्र' और 'माघो-नीति' (Mao-archy & Mao-Policy) तथा माघो की साम्यवादी राज्य की कल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

(१) सम्पूर्ण विश्व में साम्यवादीयों का राज्य बाधक होकर रहेगा। हमने नियत उन्मुक्त बालावरण पैदा हो चुका है।

२) राजनीतिक शक्ति और राज्य का आधार इच्छा नहीं बल्कि तमबाद और बंदूक है। मानव-शक्ति संसार के प्राथमिकतम शस्त्रास्त्रों से

भी अधिक शक्तिवासी है प्रयत्न जिस देश की शक्ति अधिक बनसक्या है वह उतना ही ताकतवर है ।

(३) नवसत्र अन्ति क प्रभाव में विश्व में समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती सहप्रस्थित्व की बात करना गिरी मूलता है और मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति अपेक्षा है ।

(४) यदि तृतीय महायुद्ध हुआ तो चीनी साम्यवादियों की विजय पूर्व-निश्चित है । चीनी साम्यवादियों के सामने पश्चिम की पूंजीवादी शक्तियाँ निर्बल हैं ।

(५) किसी देश पर कब्जा करने के लिये सबसे पहिले उसे प्रार्थकित तथा भयाक्रान्त कर दिया जाना चाहिये । एक पग धाये बढ़ कर फिर एक पग पीछे सौट कर शक्ति की शर्तें करनी चाहिये और कथित सन्धु पर की गई हम गियायत क बल पर सबसे समझौते की मनमानी शर्तें स्वीकार करवानी चाहिये ।

(६) धमिकों और किसानों की शक्ति के नाम पर विस्तारवादी युद्ध मानव समाज के उद्धार के लिये 'मुक्ति' का युद्ध हो ।

(७) साम्यवाद के प्रसार के लिये यह एक श्रेष्ठतम नीति है कि पड़ोसी राज्य की समस्त भूमि को एक-एक करके पहिले घबरा नकल में बिबाधक सीमा-बिबाध पैदा किया जाए और इसके बाद शक्ति प्रयोग के लिये उपयुक्त वातावरण बनाया जाए ।

(८) पड़ोसी राज्यों अथवा गैर-साम्यवादी राज्यों में अन्ति कार्य को सत्रम् मेप मे मेज कर उनकी सेनाएं उद्योग केन्द्रों और उत्पादन-क्षेत्रों में उस देश के नागरिक के रूप में भरती कर लेनी चाहिये । उत्पादनात् गुप्त रीति से शक्ति की तैयारी करनी चाहिये और घबरा पाते ही सेना की शर्तों तथा उत्पादन को सस्ती बिबा में मोड़ देना चाहिये ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि माघो ने भारत के प्रति इन सभी नीतियों का प्रयोग किया है । उसने "हिन्दी-चीनी भाई भाई" के धारण के पीछे सभी साम्यवाद की तैयारी की और तब भारत की पीठ में छुरा भोंक दिया ।

भारत की सीमा में घुसपैर

(Incursions in the Indian territory)

पंचमस समझौते की स्वाही सुझने भी नहीं पायी थी कि १० जुलाई १९५४ को चीन ने एक बिगाह पत्र भेजकर भारत पर यह धारण समाय कि उसकी सेनाओं ने डू-बे नामक चीनी स्थान पर पैर कानूनी तरीके से अधिकार कर लिया है । जिस स्थान को चीन सरकार ने डू-बे नाम से सम्बोधित किया वह बडागोटी नामक जरागाह है जो उत्तर प्रदेश में ब्रह्मिनाथ मे स्थित है । भारत सरकार ने चीनी धारण के प्रत्युत्तर

से २७ अप्रैल १९५४ को अपना स्पष्टीकरण दिया कि यह स्वाम मरतीय प्रदेश में है और वहाँ भारतीय सीमा-सुरक्षा-सेना की एक चौकी है वास्तविकता यह है कि तिब्बती अधिकारी इस प्रदेश में अनाधिकृत रूप से घुसने का प्रयास करते रहे हैं जो अनाधिकृत और अनाधिकृत सहप्रस्तित्व के सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लंघन है। अक्टूबर १९५४ को जब चीन ने हमें चीन के सामने रक्तता चाहा। उस समय चीन सरकार ने हमें एक सामान्य बटना कह कर टास दिया और यह प्रस्तावना लिया कि भारत को इस विषय में चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं है।

विश्व प्रवेश १९५५ के तुरन्त बाद चीन की हस्तगतों और के माप भारतीय सीमा पर आक्रमण हो गई। चीनियों ने बड़ाहोती पर अधिकार कर लिया और अपनी एक सैन्य टुकड़ी भी वहाँ स्थायी रूप से कायम कर दी। अगस्त १९५६ में चीनी सैन्य टुकड़ियों ने दमबान और उत्तर प्रदेश के बिलाम प्रदेश में प्रवेश किया। १९५६ में गिपची बरें (हिमालय प्रदेश) तथा १९५७ में माहित क्षेत्र (नफा) में चीनियों ने भारतीय सीमाओं के अधिकृत निका। फुलाई, १९५८ में उन्होंने महाय के सुरक्षा अभियान पर अपना बड़ा कर लिया। इसी वर्ष चीन ने एक भारतीय सैन्य दल का अकस्मात्तः उत्तर में बन्दी बना कर उसके साथ कुर्बानहार किया। इस बीच चीनियों ने अकस्मात्तः के पठार में सड़क बना ली जिसका पता भारत सरकार का दो वर्ष बाद १९५८ में जाकर लगा। भारत ने अब चीन का इस बारे में विरोध पत्र दिया जब तक चीनी सरकार में अपनी कई सैनिक चौकियाँ स्थापित कर चुके थे।

इसी समय चीनियों द्वारा तिब्बत में बड़े पैमाने पर दमन चक्र चलाने लगा जिससे मध्यमात होकर ३१ मार्च, १९५७ का तिब्बत से पलायन करके वहाँ के बसाई लामा ने भारत में राजनीतिक शरण ली। भारत द्वारा बसाई लामा को शरण दिए जाते समय उन्हें इस बात का स्पष्ट निर्देश दे दिया गया कि वे देश में राजनीतिक कार्यवाहियों से अलग रहें। पर उन्हें शरण देने का परिणाम यह निकला कि चीन की सरकार भारत से और भी अधिक कुछ नहीं और पूर्ण चुनौती के रूप में उसने भारत सरकार को सूचित किया कि अन्तर्गत की शक्तों का अब वह अपनी गुविधा के अनुसार निभायेगा। इनके बाद ही तिब्बत में भारतीय व्यापारियों और तीर्थ यात्रियों के मार्ग में माना प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की जाने लगी और साथ ही पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों सीमाओं पर चीन की हस्तगतें तेजा से शुरू हो गई तथा उसने भारतीय सीमा के विभिन्न प्रदेशों में अपने सैनिक दस्ते भेजने और चौकियाँ स्थापित करने का कार्य आरम्भ कर लिया।

एक तरफ तो भारतीय सीमाओं में चीन की अतिक्रमण जारी रही और दूसरी तरफ समस्याओं के समाधान के लिए बातों-बातों के प्रयासों द्वारा भी पत्र-व्यवहार। पहला पत्र चीन ने १५ अक्टूबर, १९५८ को चीन सरकार

एम-साई को लिखा विमर्श उन्ने चीनी प्रधान मंत्री को यह पाप दिखाया कि जब १९४४ में वे मान्य प्राय से ता उनका ध्यान चीन में प्रकाशित ऐम मान बिनों की ओर बाधित किया गया था बिमर्श भारत का बहुत सा प्रेन चीन के अधिकार में दिखाया गया है। धी नेहक न प्राते पत्र में लिख कि चीनी प्रधानमंत्री द्वारा यह धारणासन किया गया था कि वे मानचित्र राष्ट्र बाकी सरकार के समय के हैं और चीन में साम्यवादी शासन को इनमें संशयन का समय नहीं मिल सका है। धी नेहक ने स्मरण करवाया कि १९३९ में भी बाऊ-एन-साई का जब दोबारा भारत में प्रापगत हुआ तब उनके जो बातचीत हुई उसका सारांश इस प्रकार था—

प्रधानमंत्री बाऊ ने मैक-महोन रेखा के सम्बन्ध में यह कहा कि उनके विचार में ब्रिटिश साम्राज्यवाधियों द्वारा स्थापित यह सीमाप रेखा ठीक नहीं है फिर भी क्योंकि यह एन सिड तथ्य (Accomplished fact) बन चुका है और चीन में तथा भारत तथा बर्मा में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं, पर चीन सरकार की सम्मति है कि मैक-महोन रेखा को उसे स्वीकृति द वनी चाहिए। परन्तु इस विषय में चीनियों में अभी तक निश्चयी अधिकारियों से परामर्श नहीं किया है। उनका ऐसा करने का विचार है।”

अपने इसी पत्र में धी नेहक ने बाइना विक्टोरियम में प्रकाशित एक मानचित्र का उल्लेख करते हुए बताया कि इसमें भारत व मूटान के कई प्रवेन चीन की सीमा के अन्तर्गत दिखाए गए हैं। चीनी सरकार ने इसके प्रत्युत्तर में लिखा कि “वे सबसे पुराने नक्शों के आधार पर खने हैं और सभी चीन सरकार ने अपनी सीमा का सर्वेक्षण और सम्बद्ध देशों से परामर्श नहीं किया है और वह स्वयमेव इन सीमाओं में परिवर्तन नहीं करना चाहती।” धी नेहक के लिये चीनी सरकार का इस प्रकार का खेया बहुत ही बेदजनक और प्राश्चर्यपूर्ण था। अतः उन्होंने लिखा कि “चार वर्ष पूर्व राष्ट्रीय पुन निर्माण के कार्य में संलग्न होने के कारण चीन को सबसे संशोचित करने का अवकाश न मिलने की बात तो समझ में आ सकती थी परन्तु चीनी सरकार पर परेधान करने का के १ वर्ष बाद तक प्राप्तिपूर्ण मानचित्रों का प्रकाशन बहुत ही सुप्रसिद्ध और गुनिश्चित सीमाओं को किसी प्रकार के सर्वेक्षण प्रमापित कर सकते हैं।

धी नेहक के उपरोक्त पत्र का प्रत्युत्तर देते हुए चीनी प्रधानमंत्री भी बाऊ-एन-साई ने लिखा कि “हमारे देश में प्राय-कन प्रकाशित होने वाले मानचित्रों में चीनी सीमाओं के अनुसार छापी गई हैं। हमारा यह मत नहीं है कि सीमाप-रेखा का प्रत्येक भाग पर्याप्त प्रमाणी के आधार पर खींचा गया है लेकिन सम्बद्ध देशों से परामर्श बिना इसमें परिवर्तन करना अनुचित होगा। इसके अनिश्चित होने जनता में व्यापक भ्रम (Confusion)

देखा होया तबसे हमारी सरकार बदनाम होगी। घाने इसी पत्र में मैक-महोन रेखा के बारे में भी बातें ने यह मठ प्रकट किया— 'मैक-महोन रेखा चीन के तिब्बती प्रदेश के विद्वत् प्रयोगों की प्राक्रमणकारी नीति का परिणाम था। कामुनी तौर से इसे बंध नहीं माना जा सकता। मैं आप से यह कह रहा हूँ कि चीन की केन्द्रीय सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया।'

भारत के साथ कमी न टूटन बाना और निष्कपट दोस्ती का दम भरने वाले चाऊ-एन-साई और चीनी प्रशासन का इस प्रकार का व्यवहार भी मेहरू के लिए विक्षेप कष्टदायक और सांघातिक था। २२ मार्च १९३६ को उन्होंने अपने एक पत्र में धा चाऊ-एन-साई के इस कथन पर प्राक्षय प्रकट किया कि चीन सरकार ने भारत के चीन की सीमाएँ रेखा को कमी स्वीकार नहीं किया। भी मेहरू ने निश्चित शब्दों में बताया कि— 'अपिदाश हिस्सों में इस गल्फामोन भारतीय और चीनी सरकारों के मध्य हुए समझौतों का समर्थन प्राप्त है। अपने दावे के समर्थन में भी मेहरू ने उन विभिन्न संघियों का हवाला दिया था जिसे चीन के मध्य हुई थी। भी मेहरू द्वारा चीन सरकार से यह आग्रह किया गया कि वह (चीन) परम्परागत वा एक प्रमुख प्रबलक होने के नाते सीमाएँ विवाद का समाधान मैचीपुर्ण नीति से करे।

भी मेहरू के मार्च १९३६ के पत्र का जवाब चाऊ-एन-साई ने पांच महीने बाद दिया। इस बीच में तिब्बत से दमाईलामा और उनके मार्चा माय के भारत में शरण ले चुके थे। अपने ८ सितम्बर १९३६ के इस पत्र में भी चाऊ-एन-साई ने भारत पर आरोप लगाया कि 'वह तिब्बत में प्रसन्न विद्रोहियों को संरक्षण दे रहा है।' पत्र में चीनी प्रधानमंत्री ने इस पुराने तर्क को फिर से पीटा कि दोनों देशों की सीमाओं का विधि पूर्वक निर्धारण कमी हुआ ही नहीं था और चीन मैक-महोन रेखा को पूर्णतः अस्वीकार करता है। महात्मा के सम्बन्ध में चाऊ-एन-साई ने कहा था कि वह (चीनी सरकार) इस विवादास्पद प्रदेश में भारत के एक पक्षीय दावे को कमी स्वीकार नहीं कर सकती। यह उल्लेखनीय है कि अपने इसी पत्र में चाऊ ने भारत के सम्बन्ध में १० हजार किमी मीटर के प्रदेश में दावा प्रस्तुत करते हुए यह निराधार आरोप लगाया कि भारतीय राज्यों एक प्रदेश में प्रविष्ट हो कर चीन की प्रादेशिक अखण्डता को चुनौती दे रही है।

भी मेहरू ने चीनी दावे पर अत्यन्त आश्चर्य और क्षय प्रकट करते हुए २६ दिसम्बर, १९३६ को लिखा था कि—

"यह सही है कि चीन और भारत की समूची सीमा का विधि पूर्वक निर्धारण कमी नहीं हुआ परन्तु कुछ प्रयोग इतने कुमम हैं कि बड़ी वा सीमा बन्द सम्भव नहीं है। लेकिन इस समूच प्रदेश का सीमा-निर्धारण या तो संघियों के द्वारा हुआ है या परम्परागत के साथ और यह तब चीन सरकार

मे ले लिया और कई दिन तक व यह बेग बसे रहे। इस समय तिब्बत में चीनी फौज के ११ डिब्रीजन भारत पर आक्रमण करने की तयारी में बटे हुए थे। सितम्बर, १९६२ में उत्तरी-पूर्वी सीमा में चीन की सैनिक कार्यवाही बढ़ने लगी। ८ सितम्बर को चीनी सैनिकों के पैर-महोत रस्ता को पार करके भारतीय प्रवेश का दम्भीर धनिष्मण किया। २० सितम्बर को झोला के निकट धायमा पर्वत चोटी पर चीनियों ने भारतीय सैनिक चौकी को अपने आक्रमण का शिकार बनाया। जब भारत द्वारा चीन की इन कार्यवाहियों पर रोष व विरोध प्रकट किया गया तो चीनियों ने यह निर्लज्ज उत्तर दिया कि वह स्वात चीन की सीमा में है और चीनी सेनाय तो केवल धात्मरक्षा के लिए अपने प्रवेश में मद्द रही है।

चीनी आक्रमण और भारत में घायातकालीन स्थिति की घोषणा

(Chinese Aggression and Declaration of Emergency)

प्रथमी पूर्ण सैनिक तैयारियों को करने के उपरान्त २० अक्टूबर, १९६२ को ठीक सुबह भारत की उत्तरी सीमा के दोनों प्रखण्डों पर चीन की तबद्ध फौजों ने आक्रामक रूप से भीषण आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण घोषित होने के बाद ही चीन और पड़ोसी राज्यों - साब किया गया। आक्रमण के स्थानों में भारतीय सेनाओं की संख्या पहिले पांच हजार से अधिक नहीं थी जब कि चीन ने लगभग १० हजार सेनाओं के साथ पहिले बार किया और इन सेनाओं के पीछे तिब्बत में और भी अधिक डिब्रीजन युद्ध में करने को तैयार बैठे थे। एक प्रसिद्ध गुरिल्ला की १ सेनापति जनरल चाक को हुप (Gen Chang-Koo-Hop) ने इस आक्रमण का निर्देशन किया। आक्रमण से पहिले लगभग एक महीने तक चीन भारत के विरुद्ध इतना अधिक झूठा प्रचार करता रहा कि मानो भारत ही चीन पर आक्रमण करता जा रहा है। इतना ही नहीं २० अक्टूबर को प्रातःकाल ४ बजे अपने आक्रमण से एक बड़े पहिले चीनी रेडियो ने यह घोषणा की कि भारतीय फौजों चीनी सीमा रक्षकों पर हमला कर रही हैं। अचानक एक सप्ताह तक इसी प्रकार का झुंझावात आक्रमण प्रचार होता रहा और दुनिया के लोगों को यह निश्चित रूप से पता नहीं लग पाया कि वास्तव में हमला किस ने किया है हालांकि प्रबुध जनमत को इसमें कोई संशय नहीं था कि काठिवासी भारत आक्रमण की कभी पहिले नहीं कर सकता।

आक्रमणों में जो कुछ हुआ उसे देख कर संसार के सभी लोगों का भ्रम दूर हो गया। भारतीय सेनाओं की इस आक्रामक हमला का पूर्ण ज्ञान न था और न ही वे बढ़ने के लिये तैयार थे। परतः मीके पर धरुण संख्या में या कुछ भारतीय सैनिक दुबड़िया मीठुब की उम्होने ही सुरमण का कड़ा मुकाबला किया। दूसरे व्यापकतर हमला में भारत की सेना तक को हथु ने धात्मरक्ष में जाम किया जब वह उन रास्तों और पहाड़ियों की चोटियों में से होकर उस भारतीय प्रवेश में प्रविष्ट हुआ बिनाभी कबाई १४ हजार फीट से भी अधिक

है। सुनियोजित आक्रमण-योजना के अनुसार चलते हुए चीनी फौजों ने भारतीय सेना की एक बहुत बड़ी संख्या का बमस काट कर पूव भाग में सोहित से ८० मील दक्षिण भारत की सुरक्षा सेनाओं को खदेड़ दिया और सेना तथा बोमबिसा आदि पर कब्जा करते हुए कुछ मिनाबर सगमय साइ चौदह हजार बर्म-मीस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। भारतीय फौजें पूरी तरह सम्मर्से तब तक महाल में ४० चौकियों को भारत से छीन लिया गया और चीनी सेना कुशूस की चौकी तक बढ़ गई।

देश में अकस्मात् ही उत्पन्न इस विकट परिस्थिति के कारण २५ अक्टूबर, १९६२ को भारतीय सरकार ने देश में आपत्कालीन स्थिति की घोषणा कर ली। इस घोषणा के बाद ही संसार यह मभी प्रकार समझ सका कि भारत में अकस्मय ही एक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके पूव २२ अक्टूबर को प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहा— "आज देश एक मजालक संकट में फँस गया है। चीनियों ने हम पर आक्रमण कर हमें बहुत बड़ा झोला दिया है। देश के हर नागरिक को इस संकट का सामना करने के निम्ने प्राणपण से योगदान देना होगा। १६ नवम्बर को अपने एक दूसरे संदेश में श्री नेहरू ने कहा— आज चीन से हमारा युद्ध जीवन मरण का संघर्ष है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि प्रतिम विजय प्राप्त होने तक हम लड़ते रहेंगे और सपु-सेना को भारत की एक-एक इंच भूमि से परत कर ही हम सँगे।"

इस युद्ध में चीनियों को जो निर्णायक विजय हुई उसका मुख्य कारण ये थे—

(१) सीमांतिक स्थिति चीन के पक्ष में थी। चीन तिब्बत के छवि पठारों और पर्वतीय चोटियों से हमला कर रहे थे जबकि भारतीय सैनिकों को निचली घाटियों से हिमालय की ऊँची चोटियों पर बढ़ कर अपने मोर्चों की रक्षा का विकट कार्य करना पड़ा।

(२) चीनी सेना बलों से इस आक्रमण की तैयारी कर रही थी और पर्वतीय युद्ध का बहु पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त कर चुकी थी। इसके बीपरीत भारतीय सैनिक किसी भी ऐसे आक्रमण की परिस्थिति से अनभिज्ञ थे और साथ ही मैदानी प्रदेशों से आने के कारण इनकी अधिक ऊँचाई पर लड़े जाने वाले पहाड़ी युद्ध ही के सम्मत्स्य न थे।

(३) तिब्बत के समतल पठार में चीनी अपनी फौजों और युद्ध सामग्री को सैकड़ों मील दूरी के पास तक ले गये थे। तिब्बत के सैनिक सड़कों से यहाँ तक पहुँच पातायात की बड़ी सुविधा थी परन्तु भारतीय फौजों का सीमांत तक युद्ध-सामग्री और सैन्य सहायता पहुँचाने में २०० मील ऊँची दुर्गम हिमालय की पर्वत श्रृंखला पार करनी पड़ती थी। साथ इनका विशद था कि देश के हेलीकोप्टरों और विमानों से थोड़ा—या सगला पहुँचाना संभव नहीं था।

(४) चीन के पाम पहाड़ों पर मडन के भिसे मुकूट हुस्के घोर न्यवानिन सम्म वे। चीनी सैनिक बुखाराना बुड में भी निपुण वे जो हिमालय के दुयम क्षेत्र के लिये उपयुक्त युद्ध प्रणाली थी। इसके प्रतिरिक्त इन प्रदेशों में बड़ी मगोल-बली बीड-बर्माजुयायी घोर तिघ्यतीयों से मिलती चुमनी बातियों से भी उन्हें बड़ी सुविधा हुई।

चीन द्वारा एक पक्षीय युद्ध बिराम की घोषणा

२१ नवम्बर, १९६२ का चीन न प्रकृतात् यह घोषणा की कि जब रात्रि से चीनी सेनायें मोलिया बलाना बन्द कर देंगी। इस समय चीनी सेनायें मैक महोन रेखा के पूर में बेसांग चीत कर उससे १०-१३ मील दक्षिण में डिग्बाई के तेल कुपा से केबल १०० मील दूरी पर थी घोर पश्चिमी सिरे में वे भारतीय सीमा में मैक-महोन रेखा के दक्षिण में १०० मील तक भाकर घाघाम के मैदान के निकट पहुंच चुकी थी तथा बहूपुत्र नदी से वे ४० मील उत्तर में थे।

चीन की बुद्ध बिराम की एक उनीय घोषणा (Unilateral Cease-fire Declaration) भारत बिसम्बन्धन की तथापि इसके पीछे कुछ ठोस कारण निहित थे। प्रथम चीन द्वारा जब भारत पर आक्रमण किया गया था मागठाम सेना युद्ध के लिये कतई तैयार न थी सकिम प्राय स्थिति बरल चुकी थी घोर चीन ने यह समझ लिखा था कि भारतीय प्रदेश में जाने बठकर युद्ध करना बातक हो सकता है। दूसरे, भारत को अमेरिका घेठ बिट्टेन घोर प्रथम पश्चिम देशों से तेजी से भारी माषा में सैनिक सहायता उपसम्भ होने लगी थी। इस प्राबुतिकतम वस्तुत्वों का मुकबला करना चीन के लिये अवश्य ही महंगा पडता। तीसरे, आक्रमण करत समय चीन ने यह मोषा था कि भारतीय जनता बिमकुड होकर भारतीय शासन के बिरुद्ध बिद्रोह कर देंगी। भारत स्थित चीनी एजेण्टों ने प्रामी सरकार को यह खबर दी थी कि चीन आक्रमण पर भारत में युद्ध युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। किन्तु इन सकृत कास में भारतीय जनता न जिन एरता का प्रवर्तन किया उसत चीनी जासकों ने समझ लिया कि पाये बढने पर उन्हें भारतीय जनता का ऐसा कोई स्वागत नहीं मिल सकेगा जिसकी कि उन्हें कल्पना थी। चीने भारत पर चीन आक्रमण से बिस्व का जनमत तेजी से चीन-बिोपी होता जा रहा था घोर स्वयं उसका बिराहरो माई कस उससे नापज था। इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि मास्को ने आक्रमण रोकन के लिये चीन पर प्रभावपूर्ण राजनीतिक दबाव डाला घोर बिनिध कमजोरियों के कारण चीन के लिये यह मुश्किल था कि वह मास्को के दबाव की उपेक्षा कर देता। पाँचवें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्राबुतिक परिस्थितियों में चीन का उद्देश्य भारत पर बिजय पाना तो हो ही नहीं सकता था उसका उद्देश्य तो एशिया में अपनी सैनिक शक्ति की प्राक बमाना था घोर अपने प्राकस्मिक आक्रमण से भारतीय सेना को पराजित कर बननी सैनिक घेठला न नेतृत्व को मिड करना था।

चीन प्राकस्मिक घोर विनाम पैमाने पर आक्रमण के द्वारा उपरोक्त

उद्देश्य का प्राप्त कर चुका तो उसे धब लड़ाई करने से कोई साम न था। और इसीसिधे धपने एक-पक्षीय युद्ध बिराम की बाधना करके धपनी शान्तिप्रियता का कपटपूर्व सेन सेनना उचित समझा ।

युद्ध बिराम की धपनी एक-पक्षीय धोषणा के साथ शान्तिपूर्ण धर्षाओं का प्रदर्शन धारम्भ करने के सिधे चीन ने धपनी ही धोर से एक द्वि-सूत्रीय धोजना भी धोषित की—

(१) चीनी सेनाधे ७ नवम्बर १९५९ की 'बास्तबिक नियंत्रण रेखा' (Actual Line of Control) क २० किलो मीटर धपनी धार हट धाएगी । सेना का हटन। एक दिसम्बर क धारम्भ होगा ।

(२) चीन धनाओं के हटन ने जो क्षेत्र लार्भा होगा उसधे चीनी सरकार धपनी बसुनित धीकियां कामध करेगी । इन धीकियों की धिधनि का पता धारत सरकार को उतके दूताधाम धारा धिया जाएगा ।

चीन की धोर से भारत सरकार को इन गतों को मान लेने क सिधे कहा गया धर्षात दूधरे लक्षों में भारत को बत्रा गया कि बहु धपनी सेनाधों को भी ७ नवम्बर १९५९ की रेखा से २० किलो मीटर धपन ही सेन में धौर हटा से ।

भारत में युद्ध बिराम की प्रतिधिया

भारत यधनि युद्ध तो मही बाहना था वरन्तु चीन धारा धोषित धोजना क उतक सामने एक कठिन धमस्या उत्पन्न हा गई । युद्ध बिराम की यह धोजना धान की २५ धनदूबर १९६२ का धोषना की ही कबल एक प्रनार की धुनगावृति थी । भारत क सामने धमस्या यह थी कि धरि बहु चीन की गतों का मान सेता है ता धाधमक क सामने धुकना धागा धौर धरि मही मानता तो धाग होने कासी बटनाधों के सिधे संसार भारत को ही उत्तरधायी धमधेधा । धत सबसे उपयुक्त धार्ध भारत को मही लगा कि धमने स्वीकारोषित के बिना ही ध्यावहारिक रूप से केवल युद्ध बिराम की धोषणा को मान धिया धौर उपयुक्त द्वि-सूत्रीय धोजना को धपनी धोषणा धारा धस्वीकृत कर धिया । धा नेहरू ने स्पष्ट शब्धा में धोषित धिया कि जब तक चीन धानधे क सितम्बर, १९६२ की स्थिति तक नहीं सौट जाती नब तक दोनों देयों के मध्य किस प्रकार की धार्ता सम्भव नहीं है । ८ मितम्बर ९६२ की यह रेखा बहु है जिसके उत्तर में चीनी धाक्रमण की धानधे धाक्रमण ने धहिते स्थित थी ।

इस सम्बाध में यह धार्ध की बात है कि भारत धौर चीन दोनों सरकारों की धोषणाओं को एक साथ पढ़ने के धार बास्तबिक तथ्य से धनिधित्त प्रधरत ध्यक्त इस धमधन में यह धाएया कि चीन ने ता ३ धर्षा धहित की धिधनि में धाता धीकार धिया लकिन भारत क धर्म इन्कार कर धोषण धाक्रमण की केवल बड़ माह पूष की रेखा पर रहने की ही धांग थी ।

परन्तु इसमें बाला देवे वाली बात यह है कि चीन द्वारा बताया गये ७ नवम्बर, १९५६ की वास्तविक नियन्त्रण रेखा तक आक्रमण के बाद भी चीनी सेनायें नहीं पहुँच पाई थी और जिस स्थान से किना मीटर बापमी का गायब था उसकी सनाथो को पश्चिमी क्षेत्र में जहाँ की तथा बनी रहना था हा पूर्वी क्षेत्र में प्रवेश उन्हें कुछ हुआ था। यही नेहरू ने चीन को लिखे पत्र १ दिसम्बर, १९६२ के अपने पत्र में इस स्थिति का स्पष्ट करते हुए कहा—

लिखे गये ७ नवम्बर १९५६ की वास्तविक नियन्त्रण-रेखा कहते हैं वह घनग-जमम चौकियों का सिलसिला था। आप जानते ही हैं कि नवम्बर १९५६ में किन्नल जिलमा जिनलुम देहरा समजुजमिज्ज प्रथम इस ठिकानों के पश्चिमी क्षेत्रों में किसी तरह की चीनी-चौकिया न थी और न स्यागुर के बहिल या पश्चिम में चीनियों की किसी तरह की चौकिया हैं। इसके बाददूर आपकी सरकार का दावा है कि सहाय में ७ नवम्बर १९५६ की वास्तविक-नियन्त्रण-रेखा का नियन्त्रण-रेखा के साथ है जिसे आपकी सेनाओं ने २ अक्टूबर को चारी हफ्तों के बाद कायम किया है। यह प्रारम्भिक युद्ध-विराम की घाट में उन इलाक़ पर चीन का मौखिक धमिदार रखने का निश्चित इयल है, जिस पर चीन का दावा रहा है और जिसको प्राप्त करने के लिए आपकी सेनाओं ने २० अक्टूबर १९६२ में बड़े पैमाने पर हमला किया। हम इसे नहीं मान सकते।”

अपने इसी पत्र में यही नेहरू ने मध्य और पूर्वीय क्षेत्रों का भी उल्लेख किया। यही नेहरू ने लिखा कि यहाँ भी स्थिति ८ सितम्बर, १९६२ के बाद बदली है। यतः पश्चि बार्ता मुक करते से बहिले चीन को ८ सितम्बर १९६२ की स्थिति वापिस ले प्रानी चाहिये।

भारत के सशुट के समय विभिन्न राष्ट्रों का पल

चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में एक विशुद्ध दृष्टि उन व्यवहारों पर डाल लेना धरासङ्गिक न होगा जो विभिन्न राष्ट्रों ने भारत के प्रति उसके सशुट काम में प्रकट किए। पश्चिम से भारत के आधारेभूत मतभेद स्वाधीनता के बाद से ही बने पा रहे थे लेकिन चीन के आक्रमण पर भारत सरकार की प्रार्थना के प्रत्युत्तर में अमेरिका ब्रिटेन और उसके सुरक्षित बाद फ्रांस पश्चिमी जर्मनी घान्टु जिया और कनाडा ने इत पति से भारत को प्रभावनामी सैनिक सहायता भेजी। इन देशों द्वारा भेजे गये सहायता ठीक समय पर भारत पहुँचे और मास्टीक सैनिकों को जो धक तक पुराने जत्तों से ही सह रहे थे सुरक्षित गये जत्तों से मुनखित किया जा सका। इन्हीं दिनों अमेरिका सेना के प्रमुख अधिकारी और विटोम के राष्ट्र मण्डलीय मन्त्री भी भारत पहुँचे। इन्होंने भारत का प्रमथ करके कई दिनों तक सैनिक दृष्टि से बलु-स्थिति की जांच की और भारतीय सैनिक आक्रमणतापो का अध्ययन किया। बाद में अमेरिका और राष्ट्र मण्डलीय देशों ने अपने सैनिक शिष्ट मण्डलों की मेजदर भारत को हवाई न सैनिक सहायता देने के लिए एक विस्तृत प्रतिबद्धन तैयार किया जिसके फलस्वरूप भारत को प्रारी भाषा में सैनिक सामधी मिलने मनी।

भारत के इस भयानक सङ्कट काल में पाकिस्तान ने भारत के प्रति जर्मजात बैमनस्य पूरी तरह निभाया। चीन के आक्रमण से पाकिस्तान को मुह माँची मुराब मिली परन्तु जब भारत को पश्चिमी मित्रों द्वारा तत्कालीन वृहत् सौम्य सहायता मिलने लगी तो उसकी पीठ में साप सेट गया। पाकिस्तान ने अपने पड़ोसी देश पर घाई हुई विपत्ति से उसके प्रति सहानुभूति दिखाने की अपेक्षा उल्टे इस बात का प्रचार करना शुरू किया कि चीन ने भारत पर किसी प्रकार का सैनिक आक्रमण नहीं किया है बल्कि यह तो एक सामान्य सीमा-सङ्घर्ष की बटना है जिसे लेकर भारत ने तिस का ताड़ बना दिया है। पाकिस्तान के समाचार-साधारण मन्त्री श्री बीघरी ने पित्ता २ कर यह प्रसाप किया कि भारतीय सरकार चीन के साथ अपने सीमा-सङ्घर्ष को बढ़ा बढ़ा कर इसलिए प्रस्तुत कर रही है कि जिससे उमर पास अरब मस्त्रों का बखीरा जमा हो सक। यह सङ्घर्ष वास्तव में एक सामान्य स्थानीय मामले के अतिरिक्त कुछ नहीं है। २१ नवम्बर १९६२ को पाकिस्तानी राष्ट्रपति अयूब ने अपने पश्चिमी मित्रों को चेतावनी दी कि यदि नाटो और सीटो का पाकिस्तान के लिए कोई मदद मित्र नहीं हुआ तो वह उनसे प्रलग हट जाएगा। इसके बाद अयूब ने यह मुझाया कि यही समय है जब अमेरिका और ब्रिटेन काश्मीर के प्रश्न पर भारत को फुटने के लिए बाध्य कर सकत हैं। पाकिस्तान ने इस बात का भी प्रचार किया कि दो सङ्कट काश्मीर सैनिक सहायता भारत पश्चिम से ल रहा है उसका प्रयास ता वह पाकिस्तान के बिरद करना चाहता है। पाकिस्तानी अधिकारियों ने कहा कि चीन के साथ सीमा-विवाद तो एक बहाना है जिसके आधारे पर भारत सैनिक सहायता प्राप्त करने का वहुयत्र रच रहा है।

चीनी आक्रमण पर रूस की प्रतिक्रिया प्रारम्भ में ता अक्षय निराशा बनक रही लेकिन बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि उसका रूस भारत के पक्ष में है। २५ अक्टूबर १९६२ के प्राबदा के सम्पादकीय लेख में असे रूप से चीन को २४ अक्टूबर कासी शतों का समर्थन किया गया लेकिन बरतु स्थिति को समझते ही ३ नवम्बर में ही वह अपनी तटस्थता को चीन पर आ गया हालांकि उसने पूर्व निश्चय के अनुसार भारत को न्ये धाने वाले २२ मिग विमानों का निर्यात अक्षय स्थगित कर दिया। रूस ने चीन को अपना भाई और भारत को अपना मित्र कहा जिन्से भी भारत ने रूस के प्रति प्रति कौपी। लेकिन श्री नेहरू को रूस के अक्षय में कोई निराशा नहीं हुई क्योंकि उनको विश्वास था कि कुछ आन्तरिक घड़नों के कारण रूस के रूस में भारत के प्रति अनुत्तरवादी प्रवृत्ति पाहे मने ही आ गई हो पर अन्ततः रूस भारत के विपक्ष में नहीं जाएगा और वास्तव में हुआ भी यही। भारत पर आक्रमण के प्रश्न को लेकर रूस और चीन के बीच सटाभिक प्रश्न की भाई अथिक चौड़ी हो गई और अयूब की समझा का समाधान होने ही रूस ने चीन के प्रति कठोर रूस अनाया। रूस ने निश्चित रूप से चीन पर यह दबाव डाला कि उसे भारत के साथ सहूप न बिभुग हो जाना चाहिए और इसमें कोई गन्धेह नहीं कि चीन दाग एक परतीय मुट्ट बिराम-व्योपना करने के पीछे रूस की बड़ती हुई आराजगी का अय

निहित था। शत्रु में बर्लिन के कम्युनिस्ट सम्मेलन में तो चीन के विरुद्ध रुस का आधिकारिक उनालामुखी फूट पड़ा और पीकिंग के कार्यक्रम की तीव्र निन्दा की गई।

भारत पर हुए इस कार्यक्रम की तटस्थ राष्ट्रों पर जो प्रतिक्रिया हुई वह बहुत ही निराशाजनक रही। निश्चय ही भारत को तटस्थ देशों से वह समर्थन और सहयोग नहीं मिला जिसकी इस सङ्घटन काम में उनसे प्रार्थना की जाती थी। प्रथम कई हफ्तों तक तो तटस्थ राष्ट्र मौन ही रहे और मलाया तथा साइप्रस को छोड़कर किसी में भी स्पष्ट रूप से चीनी कार्यक्रम की निन्दा नहीं की। बाला क राष्ट्रपति श्री नरुमा ने तो इसे एक सामान्य बटमा बताया और भारत को तत्सह सहायता देने के लिए ब्रिटेन से विरोध प्रकट किया। श्री टीटो और नासिर भी सगमग चुप ही रहे। तटस्थ नीति की दस्तुत यह एक बड़ी विडम्बना थी कि एक स्वतन्त्र और तटस्थ राष्ट्र की सरकारें भी रक्षा करने के लिए भारत में वै राष्ट्र सामने आये बिना पर विश्वास की जो दुर्घटना में बाँट देने का आराधन मयाया जाता है। एक विचित्र बात थी कि एक तटस्थ राष्ट्र पर जब कृपा कार्यक्रम हुए तो यह दूसरे तटस्थ राष्ट्र सरकारों की दृष्टि से भय उत्पन्न हुए और एक दूसरे का मुँह खोलते रहे।

शत्रु में कुछ तटस्थ राष्ट्रों ने दोनों देशों के बीच समझौते के लिए वार्ता का उपयुक्त माध्यम बूझने की चेष्टा की। इस प्रयत्न में श्री सङ्घा बर्मा, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, मिस्र और बाला—इन ६ राष्ट्रों ने संयुक्त रूप से भारत और चीन के बीच वार्ता कराने के लिए एक ज. सूत्रीय सुझाव रखा।

कोलम्बो-प्रस्ताव

(Colombo Proposals)

१० और ११ दिसम्बर १९५२ को उपर्युक्त ६ देशों के प्रतिनिधियों ने कोलम्बो में श्री सङ्घा की प्रधानमन्त्री श्रीमती मण्डारनायके की अध्यक्षता में एक सम्मेलन किया ताकि भारत-चीन सीमा-विवाद का हल खोजा जा सके। इस कोलम्बो-सम्मेलन के प्रारम्भ होने से पूर्व चीन ने पुनः बमकी बरत भारत-विरोधी प्रचार किया ताकि सम्मेलन के समस्त राष्ट्रों को बमका कर वह उन्हें भारत की ग्यायोचित माँग का समर्थन करते से रोक सके। अपने इस प्रयास में कुछ हद तक वह सफल भी रहा और तटस्थ राष्ट्रों का सम्मेलन बिना कोई निर्युक्त किये अनिश्चितता के बाठाबरब में समाप्त हो गया। सम्मेलन से एक दिन पहिले साम्यवादी चीन ने भारत का एक बमकी बरत पत्र भेजा जिसमें उससे मित्रमिच्छित बातों का 'हाँ' या 'ना' में उत्तर देने के लिए कहा गया—

१. भारत मुझ विरोध का प्रस्ताव स्वीकार करना है या नहीं

२. भारत को चीन का यह प्रस्ताव स्वीकार है, मन्ना नहीं कि दोनों

देशों की सेनायें ७ नवंबर, १९६६ की नियमनण रैसा से ०० किमी मीटर पीछे हट जाए

१ भारत चीन की यह मांग स्वाकार करता है या नहीं कि दोनों देशों के अधिकारी परस्पर भिन्नकर सनापों की बापमी धीर बिसेन्वीकृत क्षेत्र की स्थापना के बारे में बिचार बिमर्ष करें ।

चीन की इस प्रकार की धमकी देना ब्यर्थ मया बयोकि श्री महक ने इस बात को स्पष्ट शब्दों में कता दिया कि भारत ने एक वलीय युद्ध विराम स्वीकार नहीं किया है, जवग उसने धपमी धीर से उसे मङ्ग करने के बारे में कुछ नहीं किया है । श्री महक ने यह भी कहा कि दूगारे प्रश्नों का उत्तर देने का सबास सब ठ- नहीं उठता जब तक कि चीन ८ सितंबर १९६२ को किये गये अपने धापमण को समाप्त नहीं कर देता धीर इस समय से पहले ही स्थिति पर नहीं सोच जाता ।

कोलम्बो में यह ६ राष्ट्रों का जो सम्मेलन बसा उसन न तो स्पष्ट निर्णय ही लिया धीर न ही भारत पर धापमण करने के लिए चीन की कोई निम्ना ही थी । हां यह धबध्य निश्चय किया गया कि कोलम्बो सम्मेलन क प्रतिनिधि भारत क चीन जाकर धपमे प्रस्ताव पेग करें तथा सङ्घर्ष को समाप्त करने का प्रयत्न करें । सम्मेलन ने धपने प्रस्तावों को उस समय तक प्रकट न करने का निर्णय किया जब तक कि उस पर दोनों पलों की प्रतिधिया उन्हें मामूम न हो जाए ।

सम्मेलन में किये गये निश्चय के अनुसार श्री सङ्गा की प्रधानमंत्रिणी श्रीमती मण्डारनायके ने स्वयं चीन धीर फिर भारत का दौरा किया । तत्पश्चात १६ जनवरी १९६३ को कोलम्बो प्रस्ताव प्रकाशित कर दिये गये । यह उस्पेक्षनीय है कि सम्मेलन ने इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि उसके प्रस्तावों के बारे में भारत धीर चीन की सरकारों से प्राप्ति निश्चयारमक उत्तरों से प्रतिम रूप से सीमा-निर्धारण क सम्बन्ध में दोनों देशों के दावों पर कोई प्रतिबन्ध प्रभाव नहीं पड़ेगा । श्रीसम्बा सम्मेलन ने जो प्रस्ताव प्रकाशित हुए वे सधेर में इस प्रकार थे—

१ "सम्मेलन इस बात को अनुमक करता है कि बतमान तप्यन युद्धविराम का समय भारत चीन बिबाद को माम्निपूण हङ्ग से हल करने क लिए सबन उपयुक्त है

२ (ध) भारत-चीन सीमा के पविषमी क्षेत्रों के सम्बन्ध म सम्मेलन ने चीन सरकार से धपील की है कि वह उस क्षेत्र म अपनी मैतिक धीकियों को • किमादीटर पीछे हटा म जीना टि चीन क प्रधानमन्त्री की शाऊ-एन-गाई ने पत ३१ धीर २० नवम्बर को भारत के प्रधानमन्त्री श्री नेहरू के पास भेजे गए धपने पत्र में प्रस्ताव किया

२ (ब) सम्मेलन भारत सरकार ने यह धपील किया है कि वह अपनी बांमाम मैतिक स्थिति को कायम रखे

२ (घ) सीमा-विवाद का अन्तिम हल होने तक चीनी सीमाओं द्वारा बाली किया गया क्षेत्र प्रसन्निक क्षेत्र हो और उसकी निगरानी और सीमा चौकियों द्वारा (बागों पक्षों द्वारा नियुक्त) की जाएगी किन्तु इससे उस क्षेत्र में भारत और चीन दोनों का पहल की मौजूदगी का बाधा उत्पन्न नहीं होगा।

३ पूर्वोक्त 'नेफा' क्षेत्र के सम्मान में सम्मेलन का विचार है कि उस क्षेत्र में दोनों सरकारों द्वारा साम्य वास्तविक नियंत्रण रक्षा पर बुद्धिबिराम रक्षा का कार्य कर सकती है। उधर से क्षेत्रों के बारे में दोनों देश अपनी नविष्ठ में होने वाली वातपीठ में निर्णय कर सकते हैं।

४ मध्यवर्ती क्षेत्र की समस्याओं के बारे में सम्मेलन का सुझाव है कि उसका हल सैन्य बल का आश्रय किए बिना ही शांतिपूर्ण तरीकों से हो जाएगा।

५ सम्मेलन का विश्वास है कि इन प्रस्तावों के क्रियान्वित होने से दोनों देशों के प्रतिनिधियों के बीच युद्ध-बिराम की स्थिति में समस्याओं को सुसम्भन की दृष्टि में बार्ता के लिए मार्ग प्रशस्त होगा।

६ सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि ये प्रस्ताव बुद्धिबिराम की स्थिति को बढ़ करने में भी सहायक होंगे।

कोलम्बो प्रस्तावों के मूल में यह उद्देश्य निहित था कि भारत और चीन के मध्य स्थित पूर्ण पठिरोध की अवस्था को समाप्त करके ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दिया जाय जिससे दोनों राष्ट्र अपने सीमा-विवादों का समाधान करने के लिए बार्तालाप प्रारम्भ करने की दिशा में अग्रसर हों।

कोलम्बो-सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों ने कोलम्बो प्रस्तावों को पारित करने के उपरान्त श्रीमती मंडारनायके से अनुरोध किया कि वह इन प्रस्तावों को दोनों राष्ट्रों की सरकारों के सामने स्वयं उपस्थित करें ताकि प्रावश्यक स्पष्टीकरण भीके पर ही दिया जाकर दोनों सरकारों को इस बात के लिए सहमत किया जा सके कि वे पारस्परिक समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान करने के लिए प्रस्तावों को मानने हेतु उत्तम हैं।

उपर्युक्त निश्चय के अनुसार श्रीमती मंडारनायके ने पहिले चीन का और फिर भारत का दौरा किया। ३१ दिसम्बर, १९६२ से ८ जनवरी १९६२ तक चीन में रहने के पश्चात् उन्हें यह प्राप्तावन मिला कि चीन की सरकार कोलम्बो प्रस्तावों को सर्व्व स्वीकार कर लेगी। भारत को प्रस्तावों के प्रति पहले से ही कोई आशंका न थी। केवल कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक माने जाय जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि पूर्वी क्षेत्र में भारतीय सेना मौजूद नहीं लाइन तक जा सकेगी। केवल उन स्थानों को छोड़ कर जिनके बारे में मत-भेद है। चीनी सेना भी अपने पूर्व स्थानों तक जा सकेगी किन्तु विवाद-ग्रस्त क्षेत्रों से उसे भी दूर ही रहना होगा। इन स्पष्टीकरणों की

प्राप्त करने के बाद भारत सरकार द्वारा प्रस्तावों के प्रति विधिवत् सहमति प्रदान कर दी गई परन्तु चीन की तरफ से प्रस्तावों के साथ कुछ ऐसी शर्तें जोड़ दी गईं जिन्होंने यह प्रस्ताव अकार्यकारक महत्वहीन हाथ में घेर चीन की अपरोक्ष स्वीकृति स्पष्ट हो गई। चीन की शर्तों से यह पता चल गया कि वह कामम्बो प्रस्तावों के चौबे घोर पाँचवें प्रस्ताव के प्रति पूणतः प्रतिकूल है और प्रस्ताव संख्या १ २ (घ व स) व १ के प्रति सार्थक रूप में अनुकूल है।

उत्सव देशों ने चीन की सरकार से बारम्बार अनुरोध किया कि वह कामम्बो प्रस्ताव स्वीकार करके भारत के साथ अपने विवादों को हल करने का प्रयास करे, लेकिन चीन द्वारा प्रस्तावों को घसी तक पूरा रूप से स्वीकार नहीं किया गया है और इसीलिए दोनों राष्ट्रों के मध्य अतिरोध की अवस्था पूर्ववत् विद्यमान है।

चीन भारत के साथ जातिपूर्ण ढंग से अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए तैयार नहीं है—इसका स्पष्ट प्रामाण्य उसके द्वारा की जाने वाली उन कामवाहियों से मिलता है जो युद्ध-ठिराम के उपरान्त भी वह आज तक करता रहा है। १९९३ के अन्त और १९५४ के आरम्भ में चीनी प्रधान मंत्री श्री चाऊ-एन-साई ने अफ्रीकी और एशियाई देशों का दौरा किया। अपनी इस यात्रा के दौरान उन्होंने अपने कटनीतिक भाषणों से कुछ इस प्रकार का संकेत दिया कि माना चीन भारत के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने को उत्सुक है। लेकिन अपनी पाकिस्तान यात्रा के दौरान हिन्दू गणराज्यों से जारी प्रधान मंत्री ने यह भर्त्सा-मौलिक प्रभावित कर दिया कि चीना नेता भारत-विरोध के कारण अन्धे हुए चुक है। पाक-राष्ट्रपति अय्यूब खान के साथ प्रकाशित संयुक्त विज्ञापित में चाऊ-एन साई ने पाकिस्तान की इस भाष्य का समर्थन किया कि काश्मीर में जनमत सत्रह की व्यवस्था होना चाहिए। इतना ही नहीं चाऊ के प्रस-सम्मेलन में चीनी प्रधान मंत्री ने पाकिस्तान की सैंटा और सीटो की संवस्यता का भी समर्थन किया और कहा कि चीन पाकिस्तान के इस कथन को सही मानता है कि उसने इन संगठनों की सदस्यता प्राप्त करने के लिए स्वीकार की है। साम्राज्यवादी मीनिक संगठनों का इससे अधिक निकृष्ट समर्थन सम्भवतः सम्भव नहीं मिल सकता।

पाकिस्तान की यात्रा के उपरान्त श्री चाऊ ने संघ की यात्रा की बाह्य विरगिट की तरफ रुप बदलन हुए २६ फरवरी १९५४ को अपने एक सार्वजनिक भाषण में उन्होंने घोषणा की कि 'भारत और चीन की मैत्री-परम्पराएँ बहुत प्राचीन हैं और चीन इन परम्पराओं को पुनर्स्थापित करने के लिए फिर से प्रयास करेगा।' इसी दिन श्रीमती महात्मा जवाहरलाल नेहरू ने चाऊ के एक संयुक्त-विज्ञापित पर हस्ताक्षर हिन्दू जिनमें कहा गया कि चीन कामम्बो प्रस्तावों के आधार पर भारत से बात बात करने के लिए तैयार है। लेकिन चीनी नेता का यह निस्सन्देह और बोसता एक निरास्य भाष्य था

क्योंकि वहाँ यह संका में भारत के साथ चीन की परम्परागत मैत्री की वृद्धि हो रहे थे वहाँ उनके देशवासी महाजन में उनके (चीनियों के) द्वारा बनाई हुई नियन्त्रण की वास्तविक रेखा पर परपरो के डर लगा रहे थे। भारत सरकार ने २४ फरवरी १९६४ के एक विरोध पत्र में चीन की सरकार का ध्यान इस घोर पाकपिण्ड करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि चीन की यह कार्यवाही अवैध होने के साथ-साथ कोसम्बा प्रस्तावों के भी प्रतिद्वन्द्व है।

चीन की भारत के प्रति अज्ञानता का एक घोर निर्दय प्रमाण सितम्बर १९६१ में भारत पाक संघर्ष के दौरान मिला। इस समय पाकिस्तान को अपना समर्थन देने व भारत को घमंका कर पाकिस्तान के प्रति पक्ष करने से उसे विमुक्त करने के उद्देश्य से चीन ने भारतीय सेना पर धाक़मण की चेतावनी दी। यद्यपि इस चेतावनी को कार्यरूप में परिणत करने का साहस चीन ने नहीं किया तथापि उसकी घमंकी इस बात की परिचायक थी कि चीन भारत के साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने को इच्छुक नहीं है। चीन भारत के विरुद्ध अपने धाक़मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए केवल उचित प्रयत्न की प्रतीक्षा में है। चीन के इस नापाक इरादे का पीछा जायता प्रयास सितम्बर-अक्टूबर १९६७ में पूरा मिला। ११ सितम्बर १९६७ का चीनी सैनिकों ने पहले दो भारतीय जवानों को अपने साथ बात चीन में उलझा दिया और तब ही अचानक ही इन पर धाक़मण कर दिया। यह घटना नाचू-सा (Nathu-La) में हुई। यद्यपि धाक़मिक धाक़मण से प्रारम्भिक नाम चीनियों को प्रयत्न हो गया लेकिन भारतीय सेना द्वारा जो कारगर बचाव कार्यवाही की गई उसमें चीनियों को अपेक्षाकृत अधिक नुकसान उठाना पड़ा और भारतीय सेनाओं द्वारा निबन्धित प्रयत्न में भारी बढ़ने के उनके मन्सूबे मिट्टी में मिस गये। नाचू-सा काँड की स्मृति भूमि हो भी न पाई थी कि २ अक्टूबर को चीनियों ने चोला (Chola) की भारतीय चीफ़ी पर धाक़मिक हमला कर दिया। परन्तु यहाँ भी पहरी अग्नि उठाकर उन्हें अपने नापाक इरादों से हाक चोला पड़ा।

नाचूसा घोर चोला की इन सबीन घटनाओं ने इस बात को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है कि भारत को चीन की तरफ से प्रतिक्षण सख्त रूढ़ना चाहिए। राजनीतिक पर्यवेक्षकों का कहना है कि ना-चूसा घोर चोला के हमलों के पक्षे चीन की सुनियोजित विद्याय धाक़मण की संज्ञा चाहे न रही हो लेकिन इसमें उनके तीव्र उद्देश्य निश्चित रूप से निहित थे—प्रथम चीनी सेना का उद्देश्य दर पर धाक़मण करके भारतीय सेनाओं को अपेक्षाकृत निचली भूमि पर बाँदेड़ देना था ताकि सामरिक दृष्टि से चीनियों की स्थिति उस क्षेत्र में अधिक सुदृढ़ हो जाये। द्वितीय चीन मिशिकम घोर नूतन में यह प्रतिवेश करना चाहता था कि भारतीय सेनाओं उनकी रक्षा करने में सक्षम नहीं है यतः उन्हें चीन के परक्षण में जाने जाना चाहिए। तृतीय चीन के मन्सूबे साधक भारत के आसाम घोर बंगाल के सामरिक क्षेत्रों में रहने वाले 'चीन-मन्सू' घोर नामा मित्रो-विरोधियों को इस बात के लिये प्रेरणाहित करना चाहते थे कि उन्हें भारत-विरोधी कार्यवाहियों में किसी प्रकार की बाँध

नहीं आने देनी चाहिए। सीमाव्यवस्था चीन के प्रथम दो उद्देश्य पूर्णतः विफल हो पड़े और तृतीय उद्देश्य के पूरे होने की कोई आशा नहीं की जा सकती क्योंकि भारत की वर्तमान सरकार देशद्रोहियों को समा करने की मनस्थिति में नहीं है।

अन्त में वर्तमान परिस्थितियों में भारत के लिये यह सर्वथा वांछनीय है कि अन्तर्गण्टीय राजनीति-निर्मित चीन-पाक-भुर्गी (China Pak Axis) के कारण वह अपनी-सीमाओं की रक्षा के लिये प्रतिद्वन्द्वी आसक्त रहे और इस कटु-मत्स्य को विस्मृत न होकर कि शक्ति में ही शान्ति प्रतिष्ठित होती है। पुनश्च स्वतन्त्र संसार के लिये सबसे अधिक महत्व इस बात का है कि चीन के विस्तारवाद को रोकने के लिए डाँस का काम करे। कम्युनिज्म अन्तः ही और बाहर से भी भारत के लिए एक खतरा है पर कम्युनिस्ट यदि भारत पर आधिपत्य अमान की काशिष करे तो यह बोलतनाम में सीमित नईई बीसी घटना नहीं होगी। आकार और संसार में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण भारत में इन तरह के प्रयत्न का अन्त्य देशों पर भी अन्तर पड़ना और से भी अन्त्य हो उठेगा।

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका (India and the United States of America)

१८ दिसम्बर १९५६ को वाशिंगटन में अपने एक टेमीबिजन मारण में स्वर्गीय श्री नेहरू ने कहा था—

“भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच अन्तः ही स्वतन्त्रता प्राप्ति करने के लक्ष्य से ही सहयोग और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध विद्यमान रहे हैं। कोई भी भारतीय इस बात को नहीं भूल सकता कि हमें स्वतन्त्रता संघर्ष के बिना में आपक देश से सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ था। हमारे दानों गणतन्त्र (अमेरिका और भारत) प्रजातान्त्रिक संस्थाओं और प्रजातान्त्रिक नीति पद्धति के प्रति समान विश्वास रखते हैं और शान्ति और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध हैं। ऐसी स्थिति में इन दो देशों के बीच मित्रता और पारस्परिक सहयोग नितास्त स्वाभाविक है।”

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही अनेक मठभेदों के बावजूद भारत और अमेरिका के मंत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास होता रहा और यह काम आज भी जारी है। अपनी आजादी के दिवस २० वर्षों के इतिहास में इन दोनों राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध अनाव और मित्रता की एक विचित्र कहानी रहे हैं। विश्व के अनेक महत्वपूर्ण मामलों में भारत ने अमेरिकन नीति की कटु आलोचना की है तो अन्तः ही मामलों में उसको अपना समर्थन भी दिया है। भारत की असमर्थता की नीति को समर्थने में शान्ति कर बैठने के कारण और अनेक मठभेदों में ही अन्तः ही पर साम्यवाद के विरोध की नीति पर चलने के कारण जहाँ एक ओर अमेरिका ने भारत के हितों को नुकसान पहुँचाया है वहाँ दूसरी ओर अपनी विशाल आर्थिक सहायता

के द्वारा श्री चीनी धानमण्ड के उद्योग अधिकार्य बिना जर्त सैनिक महायत्ता देकर भारत के प्रति अपनी मैत्री और सहानुभूति का परिचय भी दिया है। दोनों महान् राष्ट्रों के मनभेदी और मैत्रीपूर्ण व्यवहारों का विगत २० वर्षीय इतिहास बस्तुतः बड़ा राबक है।

अमेरिका और भारत के मतभेद

दोनों देशों में मैत्री की तीव्र इच्छा होती हुए भी दुर्भाग्यवश इनके पारस्परिक सम्बन्धों की सुस्मात संदेह के बातावरण में अग्रसर हुई। भारत का एक अतिहासी अधिकारी बर्ष प्रारम्भ से ही अमेरिकन विदेशक नीति को कुछ घबि और नफरत से देखता था। इस बर्ष की मायना भी कि अमेरिकन कूटनीति भारत के प्रति अनुता और बैमनस्य की है। दूसरी तरफ कुछ प्रमुख अमेरिकन नेताओं ने अमेरिका तथा सोवियत रूस के बीच युद्ध में इस प्रकार का दृष्टिकोण अपना लिया था कि जो देश स्पष्ट रूप से अमेरिका के साथ नहीं है वे उसके विरोधी ही हैं। भारत की नटस्थनावासी नीति को एक व्यर्थ का कुलोसता मानत हुए कुछ प्रमुख अमेरिकन नेताओं ने इस घातय के बलम्य दिये कि प्रमानमन्त्री भी महक एक षड' साम्यवादी (Quasi Communist) हैं और भारत एक न एड दिन अग्रर श्री साम्यवादी मोह धारण' के पीछे लिमक जाएगा।

यद्यपि ममय बीठने के साथ-साथ भारत के प्रति अमेरिकन भावितियों का बहुत कुछ निवारण हो गया तो भी कतिपय मामलों में आधारभूत मतभेद बने रहे जो घाज दोनों देशों के सम्बन्धों में तनाव और रूपापन पैदा करते छुते हैं। बिन मामलों में दोनों देशों के दृष्टिकोणों में विरोध है, वे सक्षेप में इस प्रकार विनाये जा सकते हैं—

(१) काश्मीर पर मतभेद

काश्मीर के प्रश्न पर भारत का बलमत और भारतीय प्रनामन अमेरिका के पक्षपातर्तु दृष्टिकोण का १९४० से लेकर अब तक कठोर घालोबक रहा है। १९४० में काश्मीर पर पाकिस्तान ने हमला किया और न्याय की घाला में भारत ३१ दिसम्बर १९४० को काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में से गया। अमेरिका जैसे महान् लोकन्यायमक राष्ट्र से और संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रमुख संस्थापक से यही घाला की जाती थी कि वह पाकिस्तान की आक्रमणकारी घोषित करा के भारत के पक्ष में न्याय की प्रणय देता। लेकिन अमेरिका ने अनेघाम आक्रमणकारी को पक्ष लगाया व आक्रमण का विरोध किया। मुख्यत अमेरिका की नीति के कारण ही काश्मीर के प्रश्न का संयुक्त राष्ट्र संघ में बचना संघ के बाहर कोई संदीपजनक समाधान नहीं हो सका और घाज भी अमेरिका समबक पाकिस्तान का रबैया इन मामले में भारत के लिए सिरबर्ष बना हुआ है। काश्मीर की समस्या पर अपनाया गया अमेरिका का रूप धारम्भ में ही भारत के प्रति अनुतावर्ष रहा है और इसने दोनों राष्ट्रों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में दरार धारने की भूमिका निमाही है।

(२) पाकिस्तान को सैनिक सहायता

अमेरिका और भारत के सम्बन्धों के बीच मनमुटाव और सीम का एक प्रधान कारण यह है कि अमेरिका पाकिस्तान को विशाल सैनिक सहायता देकर इस उपमहाद्वीप के सक्ति सतुभन को बिगाड़ता रहा है। १९२४ की सैनिक सहायता संधि के पश्चात् अमेरिका ने पाकिस्तान को यह कह कर सैनिक सहायता देना शुरू किया कि इसका उपयोग साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए किया जायगा। किन्तु साम्यवाद से सड़ने के नाम पर जो आधुनिकतम शास्त्रात्मक पाकिस्तान का उपहार के रूप में लिये गये उनका प्रयोग पाकिस्तान ने भारत जैसे भोग्य शास्त्रात्मक राष्ट्र के विरुद्ध किया। भारत ने अमेरिका का बारम्बार अपनी नागरिकीपूर्ण जनतायनी दी कि पाकिस्तान अमेरिका द्वारा दी गयी सैनिक सामग्री का दुरुपयोग भारत के विरुद्ध करने का बड़ा प्रतिक्रम है परन्तु अमेरिकन नेताओं ने भारतीय जनतायनों की हर बार उपेक्षा कर दी। भारत के प्रति अनुभाव रखने वाला राष्ट्र जब मुक्त की अमेरिकन सैन्य सहायता से प्रथम सैनिक राष्ट्र बनने लगा तो विषण होकर भारत को भी अपमान रखा व्यय को बढ़ाना पड़ा जिसका प्राथिक प्रयत्न पर प्रतिशुभ प्रभाव पड़ने लगा। पाकिस्तान को सतुष्ट रखने की नीति पर चलते हुए अमेरिका ने इस तथ्य की मदद बखशने का की कि बन्दूक का प्रयोग आक्रामक के लिए उतनी ही सुविधा प्रदान हो सकता है जितना कि प्रतिरक्षा के लिए और एक बख्त बन्दूक से पोसी के निकल जाने के बाद इस प्रदान का व्यावहारिक राजनीति में कोई महत्व नहीं रह जाता कि आक्रमण किमन किया जा। पाकिस्तान में भारत-विरोधी भयकर कुप्रचार का पूष्ठभूमि में अमेरिका के इस आशवासन की निरर्थकता स्वयं अमेरिका को श्रात थी कि अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दिये गये अस्त्रों का प्रयोग भारत के विरुद्ध नहीं किया जायगा। इस सैनिक सहायता के सम्बन्ध में अमेरिका में भारतीय राजदूत श्री एम० सी० आणला ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—

“समुक्त राष्ट्र अमेरिका अपने हाथ से स्वयं अपने दूसरे हाथ से रिय हुए नाम को नष्ट कर रहा है। वह भारत को करोड़ों और अरबों डॉलर से इनसिए सहायता कर रहा है ताकि उसका औद्योगिक विकास हो सके उसी समय वह हमारे विरोधी देशों को शास्त्रात्मक देकर हमें इन बात के लिए बाध्य कर रहा है कि हम अपनी प्रतिरक्षा के लिए अधिक व्यय करें और इस प्रकार हमारे व साधन जिनका हमारे देश की जागा के कर्याण के लिए उपयोग होना चाहिए या शास्त्रात्मक के उत्पादन में व्यय हो रहे हैं।”¹

1 “The U.S. is undoing with one hand to India what she is doing with the other. She is pouring millions and billions of dollars into India to help to organise herself industrially at the same time by giving arms to countries hostile to us she is compelling us to spend more and more on our defence and this diverts our resources from being

सितम्बर १९६२ में भारत-पाक समर्प के उपरान्त अमेरिका ने पाकिस्तान और भारत दोनों को आर्थिक एवं सैनिक सहायता देना बन्द करके आन्तरिक मामलों को एक ही स्तर पर रख के भारतीय जनता के साथ में वृद्धि की ओर फिर पाकिस्तान का सैनिक कम जुर्मानों की सप्लाई पुनः शुरू करने की कोशिश करके अपनी धरुवरकी नीति का परिचय दिया। पाकिस्तान को सैनिक सहायता का पुन प्रारम्भ करना इस का शोचक है कि अमेरिका भारत की मंत्री की सम्मेलन उतनी परवाह नहीं करता जितनी परवाह उसे पाकिस्तान की मारवाही की है। भारत के लिए अमेरिका का यह रवैया भी अत्यन्त दुःखकारी रहा है कि अमेरिका ने भारत को आधुनिकतम आस्पास देने से इन्कार कर दिया और यह कहा कि वे इन हथकों का हमें उम्मी है सकते हैं जबकि पाकिस्तान से काश्मीर के ऊपर हमारे विवाद का अन्त हो जाय। यह शर्त भी एक ऐसे समय रखी गयी जब देश १९६२ में चीनी आक्रमण से पीड़ित था।

(३) सभ्य संगठनों पर भारत-अमेरिका मतभेद

दोनों राष्ट्रों के सभ्य मतभेदों का एक मौलिक कारण यह रहा है कि जहाँ स्वतन्त्रता के बाद से ही भारत की स्वाधीन सरकार ने हर प्रकार के सैनिक संगठनों का उग्र विरोध किया है वहाँ पुण्डित विषय में अमेरिका की नीति सैनिक संगठनों का आस विद्याम की रही है। नाटो की स्थापना इसी नीति का परिणाम है। भारत इस प्रकार के सैनिक संगठनों की अन्तर्राष्ट्रीय शांति के मार्ग में बाधक समझता है और इनकी स्थापना का संयुक्त राष्ट्र सभ के मूल उद्देश्य के विपरीत मानता है। एशिया और अफ्रीका में अपने प्रभाव फैलाने का विचार करने के लिए अमेरिका द्वारा प्रतिपादित ट्रूमैन विद्याम और आइजबमहोवर विद्याम की भारत में आ कटु आलोचना की गयी उद्यमे अमेरिकन प्रशासन के एक बड़ कां की भारत का विरोधी बना दिया। इसी तरह दोनों देशों के सम्बन्धों में तब और भी विवाद था जब भारत ने बेबनान और जोर्डन में अमेरिकन हस्तक्षेप का विरोध किया। भारत के प्रति पाकिस्तानी उद्यम-कुंड में कमी न घाने का एक प्रमुख कारण भी यही है कि पाकिस्तान अमेरिका के साथ सैनिक सम्बन्धन में बंधा हुआ है। अमेरिका इस सैन्य कुंडों की सामवाही प्रसार पर प्रमुख लक्ष्य के लिए आवश्यक समझता है जबकि भारत का एक है कि सामवाही को सैनिक कुंडों से नहीं रोका जा सकता बल्कि यदि इसका सामना करना हो है तो आर्थिक कोषण व गरीबी का अन्त किया जाना चाहिए।

(४) गोमा के मामले पर सम्बन्धों में क्लिष्ट

१९९१ तक गोमा की समस्या भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रश्न

used for the good of our people to building up arms and armaments."

—M. C. Chagala.

का केवल अमेरिकन सरकार ने इस सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही भारत विरोधी रुख अपना कर भारतीय जनता में अमेरिकनों के प्रति संदेह के वातावरण को अधिक बना रखाया। ७ नवम्बर १९४५ का अमेरिका के विदेश सचिव श्री जॉन फास्टर डवैस ने कहा — 'जहाँ तक मैं जानता हूँ सम्पूर्ण संसार योद्धा को पुनर्मात्र के एत प्राप्त के रूप में स्वीकार करना है।' और जब दिसम्बर १९६१ में भारत ने गोघ्रा को पूर्तगायी हासता संयुक्त किया तो सुरक्षा परिषद में श्री स्टीवेन्सन के इन शब्दों में अमेरिकन धारणा और धीपनिवेशिक प्रकृति का फ्वालामुर्ती फूटा — 'आज रात्रि को हम उस नाटक के प्रथम अङ्क को देख रहे हैं जिसका अन्त संयुक्त राष्ट्र संघ की मृत्यु के साथ हो सकता है।' अपने इसी भाषण में उन्होंने सदा नाइबेरिया और संयुक्त अरब गणराज्य को भारत का समर्थन करने के लिए धारणा की तथा कहा कि यह समर्थन संयुक्त राष्ट्र संघ के अग्रिम के लिए अत्यन्त प्रथम है। पूर्तगायी उपनिवेशवाद के इस निरासन्न समर्थन के उपरान्त भारत में अमेरिका विरोधी भावनायें पुनर्पिछा अधिक मजबूत हो गयी जिनमें कमी तभी घायी जब १९६२ में श्री वि. धारमण के समय अमेरिका द्वारा भारत का तेजी से सैनिक सहायता उपलब्ध की गयी।

(२) अमेरिका से मतभेद के अग्र धारणा

और भी अनेक घटनाओं को लेकर भारत और अमेरिका में व्यापक मतभेद रहे। इन घटनाओं में चीन में साम्यवादी राज्य को साम्यता का प्रथम भाषण के साथ संघि का प्रथम कोरिया का युद्ध हिन्दू-चीन का प्रथम विपत्तनाम समस्या धारि प्रमुख हैं। जब १९४६ में चीन में साम्यवादीयों ने प्याम काई लेक की सरकार को अग्रत्व करके उसे फारमोसा भाग जाने के लिये बाध्य कर दिया तो भारत ने न केवल चीन की साम्यवादी सरकार का साम्यता प्रदान की अपितु उसने इस बात का भी प्रथम किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की इस नवीन सरकार को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारत के इस प्रयास को सफलतापूर्वक नहीं माने दिया। धार भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका फारमोसा चीन का सबसे बड़ा समर्थक है। भारत ने चीन की विश्वासघाती और अज्ञातापूर्ण धारमण नीति को परसते हुए यद्यपि अग्र उसरी अक्रान्त करना छोड़ दिया है ता भी इस अग्र से वह अक्रान्त नहीं करता कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में सम्मिलित करने उस को सतिबादी नीति अपनाते के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

कोरियायी युद्ध में यद्यपि भारत ने अमेरिका के साथ मिल कर उत्तरी कोरिया को धारमणकारी सति करने का कार्य किया किन्तु ता में घटनाओं के जो रूप प्रहण किया उसमें भारत व अमेरिका के बीच मतभेद उत्पन्न हो गये

1 "To night we are witnessing the first act of a drama that could end with its (United Nations) death."

घौर भारत की भूमिका अमेरिका को बहिष्कर प्रतीत नहीं हुई। अमेरिका ने यह बात पसन्द नहीं की कि भारत द्वारा चीन को प्रभावित करने के अमेरिकन प्रस्ताव का विरोध किया जाय जबकि समस्या के समाधान के लिए चीन का संघ में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रस्ताव रखा जाय। कोरिया युद्ध में भारत की उद्वेगनाशी नीति घौर शान्ति प्रयासों की अमेरिका ने बड़ी आलोचना की और पश्चिमी प्रेस ने भी मेहकू का उदाहारण करते हुए उन्हें डॉन क्विजोट (Don Quixote) तक कहा।

४ सितम्बर १९५१ को सान-फ्रांसिस्को में जापान के साथ संधि करने के लिए एक सम्मेलन हुआ। किन्तु चिन बलों पर जापान के साथ संधि होना जा रही थी उससे जापान पर अमेरिकन प्रभुत्व स्थापित होने की संभावना थी यह भारत में सम्मेलन में शामिल हान से इन्कार कर दिया। हिन्दचीन की समस्या पर भी दोनों देशों के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर रहा। भारत हिन्दचीन की समस्या का पारस्परिक बर्तन के आधार पर जातिपूर्ण द्वय से सुलझाने का पक्षपाती या जबकि अमेरिकी प्रशासन लक्षि ५ आश्रय में विश्वास करता था। भारतीय संघ में पठित मेहकू में हिन्दचीन की समस्या का समाधान के लिए जो ६ सुझाव प्रस्ताव रहे उनकी अमेरिका में धीरे प्रति किया हुई। भारत घौर चीन के बीच लिम्बन के ऊपर समझौते में भी दोनों देशों के पारस्परिक मतभेदों को बहिष्कृत किया।

१९५० के पूर्व तक अमेरिका में चीनी लोगों के साथ कानूनी रूप से जो भेदभाव किया जाता था उसका भी भारत द्वारा अनेकों बार विरोध किया गया। इसी प्रकार निःसस्त्रीकरण के सम्बन्ध में भी भारतीय दृष्टिकोण अमेरिका की अपेक्षा सोवियत संघ के अधिक समीप रहा। १९५३ में पाकिस्तान के आक्रमण के समय अमेरिका द्वारा जा रक्त भयनाया गया उससे भारतीय जनमत कुछ के बीरान घौर बाह में भी कुछ समय तक अमेरिका के प्रति पर्याप्त विशुद्ध रहा। प्रथम तो आक्रमणकारी पाकिस्तान के साथ ही आक्रमण भारत को भी जाने वाली सैनिक सहायता पर प्रतिबन्ध लगा कर दोनों को एक ही स्तर पर रखा गया और इसके इस सचर्प ने बीरान पूरी चुप्पी साब कर आक्रमणकारी को मूक प्रेरणा देते का संकल्प देना किया। फिर इस बात से भी भारतीय जनता के हृदय में अमेरिका-विरोधी भावनाओं को बल मिला कि अमेरिका ने आशान्त क्षेत्र में भारत की जो सहायता की उसके पीछे अप्रत्यक्ष रूप से कुछ लक्ष्य मरानी बाही। बैसे तो यह कहा जाता है कि अमेरिकी सरकार अन्न का उपयोग विदेशों में जाति एवं स्वतन्त्रता की जड़ें मजबूत करने के लिए कर रहा है किन्तु व्यवहार में कई बार पाया गया है कि ऐसी सहायता किसी राजनीतिक उद्देश्य का भी साधन बना ही जाती है। भारत के साथ भी जब इस प्रकार के व्यवहार का सुत्रपात किया गया तो भारत की सरकार ने जनता एकमत होकर इसके विरुद्ध आवाज उठाने लगी। जनता ने यह संकल्प किया कि हम सुनो मत बाये किन्तु पान के बलों के पीछे अपनी स्वतन्त्रता का बलिदान नहीं करेंगे।

पी० एम० ४८० के अधीन मिस्र के बासा मेहू यदि हमारे निर्यातों पर कोई बाधा हमारे संकल्प एवं इच्छा के विरुद्ध सावता है तो उसका यह देश पूरी शक्ति और बसिदान के साथ बहिष्कार करने को तैयार था। शास्त्रीजी ने इसी सम्बन्ध में देश को आत्मनिर्भर बनने का आन्दोलन बताया। एक दान की जगह दो दाने उताने धन्न की बर्बादी कम करने तथा धन्न के स्थान पर घास पीजों का प्रयोग करने की बात कही गई। जय जवान जय किसान का नया नारा देश का दिया गया। सारे देश में एक दिन का एक समय का भोजन आंदोलन का संकल्प किया तथा हर सम्भव प्रयत्न से धन्न का उत्पादन बढ़ाने तथा देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकार तथा जनता बड़े उत्साह से कूट-संकल्प हा गई।

विद्यमान पर मा अमेरिका और भारत के दृष्टिकोणों में अंतर है। भारत का आग्रह है कि अमेरिका को हम बर्बाद बन्द करके शांति स्थापना की दिशा में रचनात्मक पम उठाना चाहिए।

भारत और अमेरिका में मैत्रीपूर्ण व सहयोगी सम्बन्ध

भारत और अमेरिका के मतभेदों का यह धर्म नहीं समझा जाता चाहिये कि दोनों देश सदैव एक-दूसरे के विपरीत मार्गों पर ही चलते रहे घबरा इनमें किसी प्रकार की शत्रुता स्थापित हो गई। वास्तविकता यही रही कि महत्वपूर्ण मतभेदों के होते हुए भी दोनों को बांधने व से मैत्री तथा सहयोग व सूत्र अधिक शक्तिशाली और स्थायी से और सा भी है। दोनों ही राष्ट्रों के मध्य यह विश्वासघात घटना प्रभाव अस्तित्व बनाय रही कि व अगला समय का धर्म विश्वास के पूरा साम्य से नहीं होगा बल्कि इसका सही धर्म है कुछ मूल धर्म तत्वों पर सहमति। परिणामतः दोनों ही देशों के मध्य स्थायी रूप में तनावपूर्ण होते हुए भी मैत्री और सहयोग के सूत्र से घाबरा रहे और घाब भी है।

भारत और अमेरिका दोनों ही संसार के महानतम लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र हैं जिनका मूल उद्देश्य विश्व शांति सुरक्षा जनतन्त्र की प्रगति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और वास्तु प्रक्रिया का पालन है। दोनों ही देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चाणु पत्र में निहित आदर्शों के प्रति आस्थावान हैं। इसके अनिश्चित समाजवादी समाज के ढांचे (Socialistic Pattern of Society) की भारतीय भारतवादी सामाजिक सुरक्षा और उदार जनतन्त्र (Social Security and Liberal Democracy) की अमेरिकन भारतवादी से विशेष मिल्नता नहीं रखती है। फिर भारतीय नेताओं ने अमेरिकनो के सर्वाधिक विषय विश्वास व्यक्तिगत व्यवसाय के प्रति कभी कोई गम्भीर विरोध प्रदर्शित नहीं किया है। इसके विपरीत उन्होंने सदैव व्यक्तिगत व्यवसाय और सामाजिक व्यवसाय के पारस्परिक सहयोग द्वारा ही मानव के पारिस्थितिक विकास के प्रयत्न किये हैं।

इन तमाम उद्देश्यों के दोनों राष्ट्रों के मध्य मानिष्य को बनाये रना

है। प्रभारतीय साम्यवाद के विरुद्ध भारत की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति के बावजूद अमेरिका ने भारत की सैन्यीकी प्रभावशालिता को अनुभव किया है। दूसरी ओर भारत प्रारम्भ से ही सभी देशों के साथ विशेष रूप से अमेरिका जैसी शक्ति के साथ सैन्यीकी सम्बन्ध स्थापित करने को सचेष्ट रहा है। दिसम्बर १९४० में श्री नेहरू ने कहा था—

‘हम तब तक अन्य देशों के साथ समिष्टतम सैन्यीकी बनाने रखने के इच्छुक हैं, जब तक वे स्वयं ही कोई कठिनाईयाँ पैदा नहीं कर देते। हम अमेरिका के मित्र बने रहेंगे। हम अमेरिका के साथ सहयोग करने का इरादा रखते हैं और हमारा निष्पक्ष सोवियत संघ के साथ भी पूर्ण सहयोग करने का है।’

वस्तुतः भारत के नेता प्रारम्भ से ही इस बात को समझ गये थे कि अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों के प्राथमिक सहयोग के बिना भारत का औद्योगिक विकास नहीं हो सकेगा। अतः उन्होंने साम्यवादी राष्ट्रीयता के साथ सैन्यीकी सम्बन्ध बनाने रखते हुए भी अमेरिका और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों के साथ निकट सहयोग रखा। २५ मई १९४६ को अमेरिका में भारत की सत्ताधीन राजदूत श्रीमती विजयसक्ती पण्डित ने अमेरिकन ‘चार सूत्री कार्यक्रम’ (Four Point Programme) की प्रस्ताव करते हुए कहा था कि यह आज के विश्व की समस्याओं के निराकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

१९४६-५० के दौरान भारतीय राजनीतिज्ञों ने पारशात्य अगम में अक्षमता की भारतीय नीति के बारे में फैली विभिन्न प्रतिक्रियाओं के निराकरण के विशेष प्रयास किए जिनके फलस्वरूप अमेरिका में भारत की विशेष नीति के बुद्धिकोण को कुछ सीमा तक ठीक रूप में समझा जाने लगा। अक्टूबर १९४६ में श्री नेहरू ने अमेरिका की सद्भावना यात्रा (Good-Will Tour) की। परन्तु अमेरिकन मित्रता का आकांक्षी होने पर भी भारत अपनी स्वतन्त्र और असमन्वित नीति के प्रति बृहत्प्रतिज्ञा था। अपनी अमेरिकन यात्रा के दौरान श्री नेहरू ने इस बात को इन शब्दों में स्पष्ट भी कर दिया—

‘भारत अमेरिकन सहायता को परस्पर सामवायक तर्कों पर ही स्वीकार करेगा तथा किसी भी शक्ति प्रथम प्राथमिक शक्ति के बदले अपनी कठिनाई के प्राप्त स्वतन्त्रता के अलावा ही बलिदान के लिए तैयार न होगा। श्री नेहरू ने साम्यवादी नीति को कूटनीतिक माध्यम के रूप में अमेरिकन नीति से अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रमाण भी दे दिया।

चीन में साम्यवाद की स्थापना ने अमेरिका को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह एशिया के बारे में अपनी नीति पर पुनर्विचार करे। अब अमेरिका को इस तथ्य की स्पष्ट अनुभूति हो गई कि एशिया में साम्यवाद की हामी को प्रकृत सया कर पक्ष में करने के लिए भारत की सहायता की सैन्यीक विताण्ट प्रारम्भ है। अमेरिकन प्रतिनिधि समा की

विदेशी मामलों की समिति" के सम्मुख सहायक राजसचिव श्री मैकफी (George C. McGhee) ने स्वीकार किया कि—

“यदि कोई व्यक्ति इस क्षेत्र (दक्षिणी एशिया) में प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष राष्ट्रों पर विचार करे तो भारत जनसंख्या व क्षेत्रफल दोनों की दृष्टि से सबसे बड़ा देश दिखायी देता है। भारत की जनसंख्या ४५ करोड़ है। यह स्वतंत्र विश्व का सबसे बड़ा देश है—“भारत की स्थिति पश्चिमी राष्ट्रों के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है।”

इसी तरह मई १९५३ में अमेरिकन राज्य विभाग की एन रिपोर्ट में स्पष्ट शब्दों में बताया गया कि— अगर भारत में जनतन्त्र सफल होता है तो नारा दक्षिणी एशिया सुदृढ़ हो जायगा। अगर असफल होता है तो एशिया की भाँजाओं में अकारण हो जायगी।¹

भारत में प्रजातन्त्र की सफलता के महत्व को समझते हुए, अनेक समस्याओं पर भारत के दृष्टिकोण को नापसन्द करने के बावजूद भी अमेरिका ने आर्थिक क्षेत्र में भारत से सहयोग करने की नीति अपनाई और इससे विकास में गहरी रुचि ली। अमेरिकन प्रेरणा से विश्व बैंक विकास ऋणकोष तबनीकी महत्वपूर्ण आयोग आदि संस्थाओं ने ऋण व उपहार के रूप में भारत को विकास आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता प्रदान की। भारत और अमेरिका की बढ़ती हुई मैत्री केवल आर्थिक और शासकीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के क्षेत्र में भी इसका विस्तार हुआ। ‘फुल-ब्राइट योजना’ (Fullbright Scheme) के अन्तर्गत दोनों देशों में एक बड़ी संख्या में विद्वानों का आदान-प्रदान किया। इन सांस्कृतिक प्रतिनिधियों के माध्यम से दोनों ही देशों में पारस्परिक सम्बन्धना व सहानुभूता को प्रासाहन मिला।

१९५६ में स्वेडकाष्ट की महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय बैठकाने दोनों देशों में सहिकृता को भाँसे बढ़ाया। यद्यपि अमेरिका को राष्ट्रपति नामिर के स्वेडनहृ के राष्ट्रीयकरण का कार्य टर्किर नहीं था किन्तु फिर भी भारत के समान ही अमेरिका इस पदा में भी न था कि समस्या के हल के लिये शक्ति का प्रयोग किया जाय। जब अक्टूबर १९५६ में ब्रिटेन व फ्रांस ने इजरायल के साथ मिल कर मिस्र पर अपनी सनार्थ बढ़ाई तो भारत और अमेरिका ने समान रूप से इस आक्रमण का तीव्र विरोध किया। यह मुख्यतः अमेरिका का दबाव नहीं था कि ब्रिटेन और फ्रांस को अपना आक्रमण समाप्त करना पड़ा। स्वेड की इस बैठकाने अमेरिका ने भारत के दृष्टिकोण को आदर किया और दोनों राष्ट्रों के सम्बन्ध पूर्वपिया अधिक मधुर बने। बाद में दिसम्बर

1 If democracy succeeds in India, all of South Asia is buttressed. If it fails the outlook in Asia will be very black indeed.”

१९२६ में श्री नेहरू की अमेरिका-यात्रा में दोनों देश और भी निरट घाते तथा अमेरिकन जनता के मन्त्रिण्ड में भारत क प्रति फेरी भावत धारणाओं का दुहरा बहुत कुछ माफ हुआ ।

दिसम्बर १९२६ में अमेरिकन राष्ट्रपति वाइलसनहोवर ने भारत की यात्रा की । भारत की जनता द्वारा उनकी हार्दिक स्वागत किया गया । न्यूयार्क में भारतीय 'कौंसल जनरल' [Consul General] श्री गोपाम मेतल ने कहा कि यह बटना भारत-अमेरिकन सम्बन्धों को एक नया मोड़ देने वाली है ।" १३ दिसम्बर १९२६ को अपनी संयुक्त विज्ञप्ति में श्री नेहरू और श्री वाइलसनहोवर ने यह विश्वास व्यक्त किया कि "उनके ममान धारणा और उद्देश्य तथा शान्ति के लिए उनके ममान प्रवास दोनों देशों की मित्रता को और अधिक सुबुड ब स्थायी बनायें" । राष्ट्रपति की यात्रा के उपरान्त अमेरिका की भारत के विकास में और भी गहरी रुचि हुई । २२ मार्च १९६० को अमेरिकन उपराज्य सचिव श्री डगलस डिस्सो (Douglas Dillon) ने सीनेट की विदेश समिति क सम्मुख स्वीकार किया कि भारत का आर्थिक विकास अमेरिकन विदेश नीति का एक प्रमुख उद्देश्य बन गया है । इन सम्बन्ध में राष्ट्रपति वाइलसनहोवर ने भारत को विशेष धादर देने हुए ४ मई १९६१ को वाशिंगटन में भारत के चांसलरी श्री एस० के पाटिल क साथ स्वयं एक सम्मेलन पर हस्ताक्षर किये । इस सम्मेलने द्वारा फलन की कमी का सामना करने तथा गम्भे को सुरक्षित रखने क लिए अमेरिका ने भारत को आसानी ४ वर्षों में चावल ब पैहुं से भरे हुए १२०० जलमान भेजने का निश्चय किया । मई १९६० का यह सम्मेलने ही 'सार्वात्मिक कामून-४८०' (PL-480) के नाम से प्रसिद्ध है । ४ वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर इस सम्मेलने की अवधि बढ़ाते हुए भारत को पाब भी बड़े पैमाने पर आसामन सहायता बी जा रही है ।

दिसम्बर १९६२ में भारत पर चीन का विनाश और एकजम धमरवासित आक्रमण शुरू होने पर भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्बन्धों में एक नवीन अध्याय का श्री गलेस हुआ । भारत ने अमेरिका से अनुरोध किया कि यह औपनिवेशीय सीनिक महद से और स्वर्गीय राष्ट्रपति कनेडी ने भारत के अनुरोध को स्वीकार करते हुए अविनाश आसामन सहायता प्रदान की । संयुक्त राज्य अमेरिका की सत्तिकासी वायु सेना ने ६० घण्टे के भीतर १००० टन युद्ध-सामग्री भारत पहुँचाई । इस तरह इस महान् राष्ट्र ने न केवल संकट के समय उत्पन्नता से भारत को युद्ध-सामग्री प्रदान की बल्कि साथ ही इस युद्ध सामग्री की दुलाई भी की । अमेरिका की इस संकटकालीन सहायता ने भारतीयों के हृदय में छापे हुए अमस्त दिक्कते आक्रोशों को भी दामा और यह निश्चय कर दिया कि मतभेदों के बावजूद दोनों राष्ट्र मित्रता के स्पार्डि धाधार स्तम्भ पर खड़े हैं । चीन आक्रमण के समय भी भारत ने अपनी असंलज्जता की नीति का बिस कुषारता से संवाहन किया अपनी विदेश सचिव चीन ररुड द्वारा प्रसंभा की गई । अमेरिका ने भारत को यह सहायता बिना किसी शर्त के प्रदान की और ६ नवम्बर १९६० को भारत

में अल्फासीन अमेरिकन राबर्ट की विसत्र व (Gailbraith) ने एक प्रेष सम्मेलन में कहा—

“फौजी सहायता देकर हम भारत को पश्चिमी देशों के सैनिक गुट में शामिल नहीं करना चाहते और न हम भारत की तटस्थ नीति को बदलने के ही समर्थक हैं। अमेरिकन राष्ट्रपति जनरल कई बार कह चुके हैं कि अमेरिका भारत की तटस्थ नीति का स्वागत करता है।”

वास्तव में राष्ट्रपति जनरल ने भारत की तटस्थ नीति को अल्प अमेरिकन नेताओं को अपेक्षा अधिक धन्यगी तरहूँ समझा और उसका यथाविधि सम्मान किया। किन्तु दुर्भाग्यवश समय का यह महान् क्षण अत्यन्त प्राक्लम्बिक रूप से हमारे बीच से उठ गया और उनकी भृत्य से भारत ने अपना एक बहुत बड़ा दुर्भाग्यस्तक का दिया। श्री बेनही का स्थान श्री आनान म लिया। उन्होंने अपने प्रथम भाषण में ही भारत को यह आश्वासन देने का प्रयत्न की कि अमेरिका का नवीन प्रशासन भी भारत के प्रति श्री बनेहा की उदार नीति का ही अनुसरण करेगा। मौलाम्यवश श्री आनान के शासनकाल में भी १९६५ में भारत तक मध्य क पहले तक नियमित आर्थिक सहायता मिलनी रही। ७ दिसम्बर ६६ का दोनों राष्ट्रों के मध्य हुए एक सम्मेलन के अनुसार अमेरिका ने भारत को आर्थिक शक्ति का समय स्थापित करने के लिए ८ करोड़ डॉलर देना निश्चित किया। अमेरिका की सहायता से भारत की वायु सेना भी अधिक लक्ष्यशाली बनी तथा भारत के विभिन्न भागों में भारत अमेरिका ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया के वायु सैनिकों के सम्मिलित रूप से सैरान्विक सैनिक सम्प्राप्त किए।

किन्तु अमेरिका और भारत के ठेकी से मुक्त हुए सम्बन्धों का १९६५ में पकड़ा गया। सितम्बर १९६५ में पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध आ सैनिक संघर्ष किया उसमें अमेरिकन वैंटन टैंकों से रजिस्टर्ड विमानों आदि सस्त्रास्त्रों का लक्ष्य प्रयास किया गया। अमेरिका ने पाकिस्तान को यह सैन्य सामग्री साम्प्रदाय का विराप करने के लिए ही थी धन जब पाकिस्तान द्वारा उसका दुरुपयोग भारत के विरुद्ध किया गया तो अमेरिका को पाकिस्तान के इस कार्य का विरोध करना चाहिये था। परन्तु आनान प्रशासन ने पाकिस्तान को सैन्य सामग्री के इस प्रयोग से रोकना ही दूर रखा इस विषय को लेकर पाकिस्तान की विन्ना भी नहीं की। मुख्य परिणाम में ही अमेरिका द्वारा पाकिस्तान-युगपाठी रक्त ही अपनाया। इनसे भी बढ़कर आश्चर्य का बात यह हुई कि जब १९६६ में पाकिस्तान ने चीन के अल्पसंख्यक सैनिकों को भी भारत की विधान मात्रा में सैनिक सहायता को प्राप्त की तो भी अमेरिकन प्रशासन के पाक समर्थक रूप में कोई परिवर्तन नहीं आया।

उपरोक्त गम्भीर विचारों से स्पष्ट है कि विश्व के इन दो महान् प्रजासत्तात्मक देशों के सम्बन्धों में आर्थिक उदार बंधन पकता रहा है। वर्तमान में भारत के सम्मुख तीन प्रमुख समस्याएँ हैं (i) जापान के प्रजा

पर पाकिस्तान का संभावित आक्रमण (ii) चीन के विस्तारवाद से रक्षा बंध (iii) भारत के आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिए प्रचुर मात्रा में परसर्त आर्थिक सहायता। अमेरिका द्वारा भारत के प्रति प्रबल तर्क जो स्वयं प्रपन्नाया जाता रहा है उससे इस बात के कोई निश्चित संकेत नहीं होते कि अमेरिका का वर्तमान प्रशासन भारत की द्वितीय और तृतीय समस्या के प्रति इत्मीनान है। लेकिन बड़ा तर्क काश्मीर की समस्या और भारत तक सम्बन्धों का प्रश्न है अमेरिका की नीति निश्चित रूप से पाक-पक्ष में है। फिर भी यह एक आशाजनक लक्षण है कि विवेकशील अमेरिकन नागरिकों और उद्योगपति प्रेस के एक भाग ने काश्मीर समस्या पर संतुलित रूप से विचार करना प्रारम्भ कर दिया है।

इन दोनों महान राष्ट्रों के सम्बन्धों का अध्ययन करते समय हमें इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि भारत और अमेरिका दो स्वतन्त्र और सब प्रमुख सम्पन्न पिन देश हैं तथा मित्रों में मतभेदों का होना न केवल स्वाभाविक है बल्कि स्वस्थ मित्रता का परिचायक भी है। भारत और अमेरिका अपने मतभेदों को रचते हुए भी स्वस्थ सहाई और आचारभूत मैत्री सम्बन्धों से धारण है। भारत की विदेश नीति में प्रबल मातृकता के स्थान पर अधिकांश व्यावहारिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रस्तुत होने लगे हैं और यह धारणा की जाती चाहिये कि भविष्य में दोनों देशों की मैत्री अधिक सुदृढ़ होगी।

भारत और सोवियत संघ

(India and the Soviet Union)

भारत-सोवियत सम्बन्धों पर आधुनिक दूरदर्शी और महत्त्व विचार व्यक्त करते हुए श्री लेहक ने सोवियत प्रतिनिधि मंडल के नेता ए० ए० आन्ड्रेयव [A. A. Andreyev] द्वारा दिये गये एक भाषण में २६ फरवरी १९३९ को कहा था—

'हम इस बात से परिचित हैं कि इसी द्वारा एक ही समय को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों को अपनाया जा रहा है किन्तु मूलभूत बात एक-दूसरे के प्रति एक दुसरे के दृष्टिकोण और मित्रता के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना है। मुझे विश्वास है कि ऊपरी मतभेदों के बावजूद भारत और सोवियत संघ के बीच यह भावना विद्यमान है। मेरे विचार से यह कहना सही है कि भारत और भारतीय जनता की सोवियत संघ और सोवियत जनता के साथ मित्रता की भावना अतिरिक्त आशय वा स्वायत्त भावना पर आधारित नहीं है बल्कि इसकी जड़ें इनकी गहरी हैं कि समय पर उत्पन्न होने वाले विचारों के मतभेद में यह अपने आपको सुदृढित रख सकती है। मैं सोचता हूँ कि यह मित्रता निश्चित रूप से मेरे देश के लिए लाभकर है, मैं जाना करता हूँ कि यह मित्रता आपके देश के लिए भी लाभ सम्पुर्ण विश्व के लिए हितकर है।'

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सोवियत संघ के साथ भी भारत के

सम्बन्ध कमी एक से नहीं रहे । १९४६-१९४७ में बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इन दोनों देशों का सम्बन्ध एतना ही दृष्टिकोण था । उदाहरण के लिए, भारत में आतंजित भेद्युक्त उपनिवेशवाद निवृत्तकरण प्रमुख घोर विरोधाभासकार के प्रश्न पर सोवियत संघ का समर्थन किया । भारत और इस के उन प्रश्नों पर सर्वोच्च का रोग का ही अमेरिका के विदेश मन्त्रि जॉन फोस्टर डब्ल्यू ने १८ जनवरी १९४७ को ये जवाब कह डाले— भारत में सोवियत साम्यवाद अन्तः कासीन टिप्पू सरकार के माध्यम से अपने प्रभाव का विस्तार कर रहा है । लेकिन यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं चलेगी । नाममात्र घोर भेद्युक्त द्वारा प्रतिगमित साम्यवादी व्यवस्था का भारत का उदारवादी समाजतन्त्र से अनिपप मामलों में अन्तर्भेद होना स्वाभाविक था । १९४७ के बाद से ही भारत के साम्यवादी दल ने अपनी विरहसकारी प्रतिविधियाँ प्रारम्भ करके भारत सरकार को साम्यवादी मन्त्र के प्रति आग्रह कर दिया । थोड़े ही समय में यूनान और कोरिया के प्रश्नों पर इन दोनों देशों में मतभेद पैदा हो गया । इसी दौर में भारत ने ब्रिटेन की सधि का स्वीकृति प्रदान कर की विरह दोनों के सम्बन्धों में और भी अधिक विगाह था गया । अगस्त १९४९ में सोवियत प्रश्न में भारत सरकार पर दावा लगाया कि वह विरह घोर अमेरिकन साम्राज्यवाद के साथ साठगाँठ कर रही है । परन्तु हमें यह है कि १९४९ के आरम्भ में ही दक्षिणी भारत में साम्यवादियों की प्रतिविधियों में अन्तः विद्रोह का रूप धारण कर लिया । भारत सरकार ने उन प्रतिविधियों को अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के घटव्य में सम्बन्धित किया और मही समझा कि सोवियत इस भारत की आन्तरिक व्यवस्था और राजनीति में हस्तक्षेप का प्रयत्न कर रहा है । भारत सरकार की दृष्टि में इन प्रश्नों का विरोध करना आवश्यक हो गया । दून १९४९ में सोवियत इस के माध्यम से कहा कि मेहक सरकार का अन्तःविरोधी स्वरूप उसकी नीतियों से भसीभांति स्पष्ट है । इसी घोर थी मेहक की दृष्टि में विरह साम्यवाद का विस्तारवादी स्वरूप एशियाई देशों की शान्ति और स्वाधीनता के लिए सबसे बड़ा खतरा था । उन्हीं के जवाब में आज हम साम्यवादी विद्रोह में विगत तथा केन्द्रीकृत राज्यों को मरते हैं समझते हैं कुछ दिनों को एक समस्या—आर्थिक समस्या का हम को प्रदान करत है मन्त्रि के यह हल एक बहुत बड़ी कीमत पर प्रदान करते हैं । मुझे केन्द्रीकृत राज का जगह नहीं है शान्तिवादी राज्यों को पसन्द नहीं करता और जबकि मेरा विश्वास है कि आर्थिक स्वतन्त्रता अविचार्य है—उमके लिए समस्त राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का अनिदान एक बहुत बड़ी कीमत है ।

दरमध्य में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपनायी गयी भारत की अर्थसम्पत्ता की नीति को स्थापित के द्वारा आरम्भ से ही गीत नहीं समझा गया । स्थानिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कठोर व्यवहार का अनुक्रम करने वाला बना था । उमने भारतीय अर्थसम्पत्ता की नीति को निर्भर और अन्तःवादी नीति का ही प्रतिरूप समझा । फिर अन्तःस्थित भारत अन्तःराष्ट्रीय दृष्टि की दृष्टि से पाश्चात्य देशों—विदेश का से अन्तः घोर अमेरिका के साथ अन्तः सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक मानता था । परन्तु भारत के

पश्चिमी देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध व सहयोग स्थापित करने के प्रयत्न साम्यवादी देश सोवियत रूस और भारत के साम्यवादी दल व प्रान्तीयता के विषय बन गये। सोवियत परापाठी वर्ग के प्रसिद्ध साम्यवादी नेता वी एनजी रामदत्त ने अप्रैल १९४१ में वी नेहरू को 'एशिया का नया अंग काई जेक' कहा। इसके पहले मार्च १९८८ में ही साम्यवादी दल यह घोषित कर चुका था कि "भारत की तटस्थता तो एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग को छुटाने का पावरफुल मास है।"

परन्तु १९४१ के अन्त तक घाते-भात भारत और सोवियत संघ के सम्बन्धों में फिर से सुधार होने लगा और कुछ मामूली बाधाओं ने रहते हुए भी यह अम बराबर चलता रहा। वी नेहरू ने अखिलता की रचनात्मक और सक्रिय नीति का निष्पन्न अंग से बड़ी ही कुशलतापूर्वक संभालन किया। ब्रिटेन और अमेरिका के साथ अपने मैत्री सम्बन्धों का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति का परिष्कार नहीं किया और सोवियत संघ के साथ अपने सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में भी अग्रसर होते रहे। इस काल में भारत ने चीन की नयी सरकार (साम्यवादी सरकार) का मान्यता दिखाने का प्रयत्न किया और इन विषय में पाश्चात्य देशों की नाराजगी की परवाह नहीं की। वी नेहरू के इन रचनात्मक और निष्पन्न कदम के फलस्वरूप भारत और रूस के बीच सम्बन्धों में सुधार हुआ। इसी काल में डा० राजाकुमार (भारत के प्रथम राष्ट्रपति) मास्का में भारत के राजदूत नियुक्त हुए और उनके सङ्घवासियों व दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास होने लगा। फलस्वरूप भारत और सोवियत संघ में प्राथमिक सहयोग का प्रारम्भ किया। १९४१ में ही दोनों के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ जिसके अनुसार सोवियत संघ के साथ और अच्छे दूत के बरसे १ लाख २० हजार टन गेहूँ और मक्का देना स्वीकार किया। १९४१-४० में दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ हुए।

परन्तु इस बढ़ती हुई मैत्री को जून १९४० में कोरिया युद्ध विघ्न बाने पर एक अचरदस्त पाघात लगा। वी नेहरू की अखिलता की नीति इस घबका उस राष्ट्र को प्रसन्न करने के लिए इधर या उधर मिल बाने की नहीं थी। वे तो स्वतंत्र नीति पर चलते हुए न्याय और निष्पन्नता तथा शक्ति के लिए जो उपयुक्त समझौते बड़ी करते थे। वृत्ति वी नेहरू को यह विश्वास हो गया कि उत्तरी कोरिया द्वारा दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया गया है अतः भारत में पश्चिमी देशों के साथ मिल कर उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर दिया। भारत के इस कार्य से सोवियत संघ में रोष पैदा हो गया। परन्तु बाद की घटनाओं ने सोवियत संघ को इस बात से प्रति आश्चर्य करा दिया कि भारत का उपरोक्त कदम उसकी स्वतंत्र नीति का परिष्कार था न कि पाश्चात्य शक्तियों के बचाव का। जब कोरिया समस्या के बाद के बरसों में भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की शिकायतों से इन्हीं मायावी रैसा पाठ न करने और चीन को संघ द्वारा आक्रमणकारी घोषित न करने का आग्रह किया गया तो स्टाकिन ने भारत के

शांति प्रयासों की प्रशंसा की। कोरियायी युद्ध की अवधि में भारत की नीति से जहाँ वाशिंगटन और विल्सी के बीच मतभेद की स्थिति पैदा हुई वहाँ सोवियत संघ के साथ उसका सम्बन्धों में एक बड़ी सीमा तक प्रगाढ़ता आ गयी। दोनों दलों इसलिये भी एक दूसरे के निकट आये कि सितम्बर १९५१ में भारत में आपाती शांति-संधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया क्योंकि यह संधि जापान को साम्राज्यवादी सिक्क में जकड़ने की एक शान थी। अप्रैल १९५२ में रूस के मोह-नासक स्टालिन ने भारतीय राजदूत डा० राजगोपाल से भेंट की। यह भेंट इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी कि डॉ. वर्मा की अवधि में स्टालिन किसी भी राजदूत से नहीं मिला था। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस भेंट को सोवियत संघ और भारत के सम्बन्धों में सुधार का प्रतीक माना गया। सितम्बर १९५२ में कोरिया के युद्ध अवधि में प्रश्न पर सोवियत संघ और भारत के बीच पुनः मतभेद पैदा हो गया और विभिन्नी न समूह राष्ट्र संघ की महासभा में आमोचना करते हुए कहा कि भारत की नीति से संघर्ष का बहुत ही घाटका है परन्तु सोवियत भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया और दोनों ही देश फिर मैत्री की धार प्रदत्त हुए।

मार्च १९५३ में स्टालिन का देहांत हो गया। भारतीय नेताओं द्वारा सावियत नेता के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गयी। इस काल में समूह राष्ट्र अमेरिका ने भारत द्वारा कोरिया के राजनीतिक सम्मेलन में भाग लेने का विरोध किया जिससे भारत और सोवियत संघ के सम्बन्धों में अधिक प्रगाढ़ता आयी इसके अतिरिक्त सोवियत संघ ने वाकिन्तान को भी आतंकी सैनिक सहायता का विरोध करके और काश्मीर के प्रश्न पर भारत की अपना समर्थन देकर भारत की सद्भावना प्राप्त करने में सफलता हासिल की। १९५३ के मध्य में राजा प्रभुस्स द्वारा स्वयंभूत काश्मीर का भारा वृत्त किया गया। उस समय भारत की जनता में यह आशय धारणा थी कि संघ अमेरिका के इस तारे का समूह राष्ट्र अमेरिका की सरकार से प्रेरणा मिली है। फलतः भारतीय प्रशासन और जनता में सावियत संघ के प्रति अधिक हार्दिक प्रभुश्रुति पैदा हुई।

१९५४ में नरूक और चाउ-एन-साई ने तिब्बत के ऊपर एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें विख्यात 'पंचशील' का उल्लेख किया गया। सोवियत संघ ने भारत के पंचशील के प्रति अपनी धारणा प्रकट की। एक तरह से 'पंचशील' जैसे सिद्धान्तों के द्वारा सैन्य संगठनों का विरुद्ध करते हुए शांतिवादी सहसंस्थान और मैत्री तथा सहायता का विमल फूल का गया और दूसरी ओर अमेरिका साम्यवाद के प्रसार को रोकने के नाम पर विभिन्न सैन्य संगठनों का आतंकी विचारों की नीति पर चमत्ता रहा। नाटो के बाहरी ओटो और अमदार पैक्टों की रचना हुई जिन्होंने शीत युद्ध का अक्षिा के द्वार पर साक्षर गड़ा कर दिया। भारत द्वारा इन प्रकार के सैन्य संगठनों की कठोर आलोचना की गयी। अमेरिका द्वारा स्थापित इन सैनिक संगठनों के विषय में भारत और सोवियत संघ का एक ही प्रकार का दृष्टिकोण होने से दोनों देशों में सम्बन्ध सुदृढिा अधिक मजबूत हो गये।

जून १९२३ में श्री मेहता ने सोवियत संघ की यात्रा की और वहाँ के लोगों को अपनी महत्प्रसिद्धि की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित किया। २२ जून को श्री मेहता और सोवियत प्रजासंघ की श्री बुलगायिन ने इस यात्रा के एक समुक्त बक्तव्य पर हस्ताक्षर किए जि दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध को पहले से ही मैत्री तथा सहिष्णुता पर आधारित है। बक्तव्य में मैत्रीपूर्ण भाव निर्बोधित होते हैं।

श्री मेहता की इस यात्रा के बाद १९२३-२४ में श्री बुलगायिन और लुश्चेव ने भारत की यात्रा की। सन् १९२७ की बोस्नेविक क्रांति के बाद नाबव पहली बार कोई क्रांती प्रजासंघ की मैत्री और सद्भावना की यात्रा पर इस प्रकार भ्रम देख से बाहर निकला था। क्रांती नेताओं की यह भारत यात्रा भारत की प्रजासंघता की नीति के लिए बड़े धारण व सम्मान की बात थी। भारत में क्रांती नेताओं का ऐतिहासिक स्वागत किया गया। अपने महान् मायिक सम्मान का उत्तर देते हुए श्री बुलगायिन ने घोषणा की—“भारत सोवियत मैत्री की रचना पंचशील के विश्वसनीय तथा स्थायी आधार स्तम्भों पर की जा रही है। भारत तथा सोवियत संघ के मध्य सच्ची समानता तथा पारस्परिक भाव के आश्रय पर ध्यान रख कर व्यापक सहयोग के विकास के लिए सभी आवश्यक स्थितियाँ देना करना भी गयी है।

भारतीय साक्षर के समक्ष बुलगायिन ने कहा—“हम अपने प्राथमिक तथा वैज्ञानिक अनुभव को आपके साथ बाँटने के लिए तैयार हैं।”

मंगल में लुश्चेव ने भाव विभोर होकर घोषणा की—“हम अपनी रोटी का आखिर टुकड़ा भी आपके साथ बाँटकर खावेंगे।”

अपनी इसी भारत यात्रा के दौरान सोवियत नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस बात का समर्पण किया कि गोष्ठा भारत का एक अमिष्य घण्टा है और पुर्तगाल को बर्हा रहने का कोई अर्थिकार नहीं है। काश्मीर और पोष्ठा के प्रश्नों पर भारत का समर्थन करके सोवियत संघ ने प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अपने लिए सद्भावना पैदा करने में सफलता प्राप्त की। दोनों देशों के नेताओं द्वारा एक दूसरे के देश की सेवा की गयी सद्भावना आनामें मैत्री व सहयोग की प्रतीक बन गयी। १९२३ में ही अग्निवेशवाद और राष्ट्रीय भेदभाव से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों के सम्बन्ध में दोनों देशों द्वारा अपनाये गये समान दृष्टिकोण ने दोनों देशों की मित्रता की धीर सहारा रूप प्रदान किया। यद्यपि १९२३ में हंगरी की बटना को लेकर भारत और सोवियत संघ के सम्बन्धों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया क्योंकि भारत द्वारा हंगरी में की गयी सोवियत सैनिक कार्यवाही का विरोध हुआ लेकिन यह तनाव अल्पकालिक ही रहा और इससे दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को कायम रखने की प्रक्रिया में कोई विघ्न उत्पन्न पैदा नहीं हुई।

१९२३ के बाद से ही भारत और रूस के बीच प्राथमिक सम्बन्ध की

उत्तरोत्तर विकसित होते गये। १९१३ में जहाँ दोनों देशों का व्यापार कुल ८० लाख रुबल पर सीमित था वहाँ १९१७ में यह राशी बढ़ कर १ करोड़ रुबल पर पहुँच गयी। इसके प्रतिरिक्त सोवियत संघ ने भारत के टैक्नीकल विकास में भी मूस्यवान सहयोग दिया। इस सम्पूर्ण वास्त में काश्मीर के प्रश्न पर सावियत संघ भारत को तुला समर्पण देता रहा और सुरक्षा परिषद में इससे काश्मीर समस्या पर भारत की हर प्रकार से सहायता की। भीतपुत्र की विविध राजनीति के कारण सुरक्षा परिषद के पाँच स्थायी राज्यों में संसार धाक्रमणकारी पाकिस्तान का पक्ष ग्रहण करने लगे और कुछ ऐसे अवसर आये कि जब यदि सोवियत इस पश्चिमी राष्ट्रों के प्रस्तावों पर निवेधाधिकार का प्रयोग न करता तो पश्चिमी राष्ट्र भारत की संप्रभुता की धक्केलना करने वाले प्रस्ताव पार कराने में सफल हो जाते।

निःपक्षीकरण के क्षेत्र में भी सोवियत संघ और भारत के बुद्धिकोशों में काफी समानता रही। १९५० में सोवियत संघ ने एकमेव आणविक बमों का परीक्षण बन्द करने की घोषणा की। भारत द्वारा कम से कम इस वाक्य की किसी प्रतिसादी की गयी। इसके उपरान्त १९५९ और १९६० की महत्त्वपूर्ण अधिवेशनों में भी भारत द्वारा सोवियत संघ के निःपक्षीकरण प्रस्तावों का समर्थन किया गया। १९६२ में दोनों देशों के महावायु युद्ध सम्बन्धी का इमारत में तब एक ईट और रस दी गयी जब गोष्ठा विषय के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद द्वारा भारतीय कार्यवाही की निन्दा का प्रमत्त सोवियत संघ के निवेधाधिकार के प्रयोग से विपक्षित कर दिया गया। इसमें कोई शक्य नहीं कि सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ ने भारत के पक्ष में अपना निवेधाधिकार का सामयिक प्रयोग से स्वयं को भारत का महत्त्व मित्र मित्र करने के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किये। इनके कारण भारतीय जनता कम से कम प्रति धिकाधिक मन्त्री-शाव रखने लगी है।

अक्टूबर १९६२ में चीन का विद्रोहकारी धाक्रमण हुआ। एक साम्यवादी देश के धाक्रमण से ऐसा लगने लगा कि सावियत संघ और भारत का पारस्परिक सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा हो जायगा। सोवियत संघ के सामने भी विकट समस्या थी। एक तरफ तो उसका भाई चीन था और दूसरी तरफ नसका दोस्त भारत। समस्या यह पैदा हुई कि वह युद्ध में किसका पक्ष ले। धाक्रमण के प्रारम्भिक समय में उस की जल्दी और प्रतिबन्धियों से भारत को बड़ी निराशा और असन्तुष्टि हुई। भारत के जिम्मेदार व्यक्ति भारत सरकार से बहुसंख्यता की नीति का परिस्थापन करने और पश्चिमी सम में शामिल हो जाने का आग्रह करने लगे। २१ अक्टूबर १९६२ के प्रायदा के सम्बन्धीय सच को देकर भारतीय जनता को धाक्केप विधित एकका गुरु था क्योंकि इस सच में सुने का है चीन की २८ अक्टूबर वाली शर्तों का समर्थन किया गया और एक प्रकार से बिना भारत की निन्दा किये चीन के पक्ष का समर्थन हुआ। इनका ही मंत्री कम द्वारा अपने पूर्व निर्णय के अनुसार भारत को दिये जाने वाले २२ मिनट विमानों का निर्माण भी स्थगित कर दिया। इन सब बातों को देखकर भारत में कम से कम विद्रोह प्रतिबन्ध

सन् १९४५ में श्री नेहरू ने मोबियत संघ की यात्रा की और वहाँ के लोगों को अपनी महासम्मिलन की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित किया। २२ सन् की श्री नेहरू और सावित्र प्रबानर्मनी श्री बुलगातिन ने इस आशय के एक सङ्कलन बरन्ध १२ हस्ताक्षर किए कि दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध को पहले से ही मैत्री तथा सहिष्णुता पर आधारित है। मबियत में भी पञ्चमीन द्वारा निर्दिष्ट होते रहेंगे।

श्री नेहरू की इस यात्रा के बाद १९२३ २६ में श्री बुलगातिन और कुम्बैच ने भारत की यात्रा की। सन् १९१७ की बोस्नेविक क्रान्ति के बाद नामक पहली बार कोई क्सी प्रबानर्मनी मैत्री और सद्भावना की भाषा पर इस प्रकार अपने देश से बाहर निकला वा। क्सी नेताओं की यह भारत यात्रा भारत की अस्मानता की नीति के लिए बड़े घावर व सम्मान की बात थी। भारत में क्सी नेताओं का ऐतिहासिक स्वागत किया गया। अपने महान् पारिष्ट सम्मान का उत्तर देते हुए श्री बुलगातिन ने घोषणा की—“भारत मोबियत मैत्री की रचना पञ्चमीन के विश्वसनीय तथा स्थायी आधार स्तम्भों पर की जा रही है। भारत तथा सावित्र संघ के मध्य सच्ची समानता तथा पारस्परिक लाभ के साथ १ पर व्यापक व प्राथिक सहयोग के विकास के लिए सभी आवश्यक स्थापना पैदा कर ली गयी हैं।

भारतीय संसद के समस्त बुलगातिन ने कहा—“हम अपने प्राथिक तथा वैज्ञानिक अनुभव को आपके साथ बाँटने के लिए तैयार हैं।”

मंस में कुम्बैच ने भाव बिभोर होकर घोषणा की—“हम अपनी रीढ़ी का घाबिर टुकड़ा भी आपके मान बाँटकर लायेंगे।”

अपनी इसी भारत यात्रा के दौरान मोबियत नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस बात का समर्थन किया कि गोष्ठा भारत का एक प्राथमिक घ प है और पूर्वमास का बड़ा रहने का कोई परिहार नहीं है। काश्मीर और गोष्ठा के प्रबानों पर भारत का समर्थन करते मोबियत संघ ने प्रत्येक भाष्यवासी के हृदय में अपने लिए सद्भावना पैदा करने में सफलता प्राप्त की। दोनों देशों के नेताओं द्वारा एक दूसरे के देश की व की मयी सद्भावना यात्रायें मैत्री व सहयोग की प्रतीक बन गयीं। (१९२५ में ही उपनिवेशवाद और भारतीय मेवभाव से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों के सम्बन्ध में दोनों देशों द्वारा अपनायी गयी समान दृष्टिकोण ने दोनों देशों की मित्रता को और सहुरा रूप प्रदान किया। यद्यपि १९२५ में हंगरी की बदला को लेकर भारत और मोबियत संघ के सम्बन्धों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया क्योंकि भारत द्वारा हंगरी में की गयी मोबियत सैनिक आपत्ताही का विरोध हुआ, लेकिन यह तनाव अल्पकालिक ही रहा और इससे दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को कावक रखने की प्रक्रिया में कोई विशेष उमाम्मन पैदा नहीं हुई।

१९२६ के बाद से ही भारत और इस के बीच प्राथिक सम्बन्ध जी

उत्तरोत्तर विकसित होते गये। १९५३ में वहाँ दोनों देशों का व्यापार कुल ८० लाख डॉलर पर सीमित था वहाँ १९५७ में यह राशी बढ़ कर ५ करोड़ डॉलर पर पहुँच गयी। इसके प्रतिरिक्त सोवियत संघ ने भारत के टैक्नीकल विकास में भी मुख्यतः सहयोग दिया। इस सम्पूर्ण काम में काश्मीर के प्रश्न पर सोवियत संघ भारत को सुझाव समर्थन देता रहा और सुरक्षा परिषद में उसने काश्मीर समस्या पर भारत की हर प्रकार से सहायता की। श्रीलंका की विभिन्न राजनीति के कारण सुरक्षा परिषद के पाँच स्थायी राज्यों में भारत धाक्कामुकारी पाकिस्तान का पक्ष ग्रहण करने लगे और कुछ ऐसे अवसर घाये कि जब यदि सोवियत संघ पश्चिमी राष्ट्रों के प्रस्तावों पर नियन्त्राधिकार का प्रयोग न करता तो पश्चिमी राष्ट्र भारत की संप्रभुता की पक्कतना करने वाले प्रस्ताव पाम करान में सफल हो जाते।

निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में भी सोवियत संघ और भारत के दृष्टिकोणों में काफी समानता रही। १९५८ में सोवियत संघ ने पकड़े आणखिक बमों का परीक्षण बन्द करने की घोषणा की। भारत द्वारा कम क इस बात को बिनी प्रशंसा की गयी। इसके उपरान्त १९५९ और १९६० की यह सभा के परिषदों में भी भारत द्वारा सोवियत संघ के निःशस्त्रीकरण प्रस्तावों का समर्थन किया गया। १९६२ में दोनों देशों के महामय युद्ध सम्बन्धी का इमारत में एक ईट और रस भी गयो जब गोष्ठा बिसय के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद द्वारा भारतीय कायबाही की निरुद्धा का प्रयत्न सोवियत संघ के नियन्त्राधिकार के प्रयोग से बिच्छु कर दिया गया। इसमें कोई संशय नहीं कि सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ ने भारत का पक्ष में जनन नियन्त्राधिकार का सामयिक प्रयोग से स्वयं को भारत का गहुर मित्र गिद्ध करने का प्रयत्न प्रमाण प्रस्तुत किये। इनके कारण भारतीय जनता कम क प्रति धबिच्छाबिच्छु मंजी भाव रखने लगी है।

घनूबर १९६२ में चीन का बिस्वासघाती आक्रमण हुआ। एक साम्यवादी देश के आक्रमण में ऐसा समने लमा कि सोवियत संघ और भारत का पारस्परिक सम्बन्धों में बिपादक पैदा हो जायगा। सोवियत संघ का समने भी बिबट समस्या थी। एक तरफ तो उसका भाई चीन था और दूसरी तरफ उसका दोस्त भारत। समस्या यह पैदा हुई कि यह युद्ध में किसका पक्ष ले। आक्रमण के प्रारम्भिक समय में कम को चुप्पी और अनिबिधियों से भारत को बड़ी निरामता और उलझन हुई। भारत के त्रिम्पेदार ब्यक्ति भारत सरकार से बहुसमन्ता की मोति का परित्याग करने और पश्चिमी बय में शामिल हो जान का आग्रह करने लगे। २५ घनूबर १९६२ क 'आकहा' के मन्त्रालयीय लख का रेगकर भारतीय जनता को आश्चर्य विधित घनका पहुँचा बिपारि हम लख में सुने रूप से चीन की २८ घनूबर बाना इन्तों का समर्थन किया गया और एक प्रकार से बिना भारत की निन्दा किये चीन के पक्ष का समर्थन हुआ। इतना ही नहीं कम द्वारा घन दुर्ब निरुद्ध के धनुमार भारत को रिये जाने बाये २२ मिय बिमानों का निरुद्ध नी स्वदित कर दिया। इन सब बाती को सेकर भारत में कम क बिबट प्रतिच्छु

प्रतिक्रियाओं का प्रकार सा प्रा गया। लेकिन भारत सरकार कभी रबैमे के प्रति सचेत रहते हुए भी घातकित नहीं हुई क्योंकि उस विस्वास का कि बस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर रूस चीन का पक्षपोषण नहीं करेगा और हुआ भी यही। बीरे-बीरे भारत पर चीन आक्रमण के सम्बन्ध में साक्षियन रूप का दृष्टिकोण बरामने मगा और ३ नवम्बर तक बहु घपनी तटस्थ नीति पर था गया। बाद की महत्वपूर्ण घटनाओं ने इस बात के निश्चिन्त सकिष्ठ है किये कि रूस ने भारत का पक्ष नहीं छोड़ा है और उसका प्रभावपूर्ण राजनीतिक दबाव चीन द्वारा मुद्र-विरोध की घोषणा करने का एक प्रमुख कारण रहा है। दिसम्बर १९२ में तो सुप्रीम सोवियत के सामने भी लुक्चब ने भारत पर चीन के आक्रमण की पुनरी निम्ना तक की। सोवियत नीति में भारत के प्रति विरोधी रूप नहीं घपनाये जाने का सबसे प्रमुख कारण यही रहा कि घपने महात् संकट कास में बोर प्रतिक्रियाओं के बावजूद भी भारत में घसंभामता की नीति का परिवर्तन नहीं किया और पश्चिम के रोग्य संगठनों में शामिल होने से इन्कार कर दिया। जब १९९३ में चीन द्वारा होसम्बो प्रस्ताव प्रमास्य ठहरा दिये पदे तो भी सोवियत राजनीतिज्ञों ने चीन की रही घातकितना की। इसके घनिरिक्त जगने घपने बावदे को निश्चाले हुए मिय विमान की बिये और भारत में मिय विमान का कारणाना भी स्थापित किया। भारत-चीन विवाद में सोवियत रूस के इस प्रकार के स्वाधुण व्यवहार का कारण ही चीन के प्रमुख पत्र Peoples daily ने लिखा कि— "पहले सोवियत रूस ने इस विवाद में तटस्थता की होक किया और अब बहु संकुल राज्य अमेरिका के साम्राज्यवाद के पिट्टु भारतीय प्रतिक्रियाकारियों का लक्ष्य-लक्ष्मा समर्पन कर रहा है।" स्पष्ट है कि घात-सोवियत मीची भारत चीन संघर्ष की कलीटी पर परी उतरी। जुलाई १९९३ में भारत सरकार की घोर से एक मिशन सोवियत मंच गया ताकि सोवियत रूस से प्राप्त होने वाली रैनिक सहायता की संभावनाओं पर विचार किया जा सके। भारतीय घातकों का धावर करते हुए सोवियत नेताओं ने भारत को प्रभावशाली रैनिक सहायता देने का आश्वासन दिया।

४ नवम्बर, १९९३ को रूस और भारत के बीच नयी दिल्ली में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसने प्रमुनार भारत में तेल एवं गैस का पता लगाने तथा उन्हें विक्रित करने के लिए रूस से रैनिकीयताओं को भेजने का निश्चय हुआ। रूस ने बीरारा कारणाना स्थापित करने का और एक रकि-नामी रैनिकी स्टेसन स्थापित करने में सहायता देने का वचन भी दिया। यह उल्लेखनीय है कि रूस प्रमुनार भारत में भारी जसोमो के ऐसे कारणान स्थापित करने में सहयोग दे रहा है जिनके बाव ये रकिमी रैनो का सहयोग हमारे लिए सामवायक तर्तों पर मुचना नहीं है।

फरवरी १९९४ में जब पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद में काश्मीर का प्रश्न पुन प्रस्तुत किया तो सोवियत रूस ने भारत के पक्ष का स्पष्ट बर्थों में समर्थन करके एक बार फिर भारत के प्रति घपनी मीची और सद्भावना का परिचय दिया। इसके उपरान्त भारत-सोवियत मीची की परीक्षा का एक

स्वर्ण प्रवचन सितम्बर, १९६५ में भारत-पाक संघर्ष के समय उपस्थित हुआ। इन संघर्ष के दौरान सोवियत कूटनीति किसी न किसी प्रकार संघर्ष को मोत करने की रही और मंगलन इसीलिए कम नै पाकिस्तान के कर्षों का पहले के समान विरोध नहीं किया। मधुक्त राष्ट्र संघ में भी उगनी नीति कुछ इसी प्रकार की रही। बाद में कम ने जनवरी १९६६ में नासकंद सम्मेलन का आयोजन किया और अपनी कमत्कारिक कूटनीति का प्रयोग करते हुए भारत और पाकिस्तान के मध्य तामकंद समझौता करवा दिया।

इस समझौते के बाद से ही सोवियत नीति में पाकिस्तान के प्रति मीत्रा और नरमी की नीति का अावहार किया जाना लगा और उगके माध प्रायिक सहायता के समझौते सम्पन्न हुए। पाकिस्तान के प्रति इस कमनी हुई सोवियत नीति से भारत के राजनीतिक क्षेत्रों में यह आसंक्य प्रवश्य होने लगी है कि संभवतः भविष्य में सोवियत नीति प्रत्येक प्रश्न पर विशेषकर काश्मीर के प्रश्न पर ऐसी रह सकती है कि न तो भारत को ही पूरी तरह नाराज होना का अवसर मिले और न पाकिस्तान हो यह समझे कि सोवियत कम पाकिस्तान के पक्ष में पहले ही क समान बटोर है। एक बिम्बा का बिम्ब यह भी है कि पाकिस्तान के नता नावियत कम पर निरन्तर यह आकाश डाल रहे हैं कि पाकिस्तान का कमी सैनिक महायत्ना दी जाय। यद्यपि सोवियत कम न अपनी तक पाकिस्तान का सैनिक महायत्ना आस नहीं की है किन्तु इस बात क साकेत अवश्य मिलने लगे हैं कि सोवियत रूप में पुषपिता कुछ नरमी घायी है। यदि कम द्वारा वास्तव में पाकिस्तान का सैनिक सहायता दी गयी तो कधी अस्वास्थ भारत के लिए उतने ही अशुभ सिद्ध होंगे जितने अमरिका अस्वास्थ होते रहे हैं। साथ ही कम द्वारा ऐसा करम उठाये जाने से भारत के राजनीतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में सोवियत कम की भारत के प्रति मनी-भावना में भी शंकाओं उठ कड़ी होना अस्वाभाविक न होगा। सोवियत कूटनीति किस दिशा में बढ़ेगी इसका निश्चय केवल भविष्य ही करेगा।

भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन (Evaluation of India's Foreign Policy)

भारत की विदेशी नीति और विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के साथ भारत के सम्बन्ध पर विचार से समीक्षात्मक अध्ययन करने के उगगत भागनीय बिन्ने नीति आस की अतिगोति पूर्ण प्रसंसा और अतुबिन निम्न बातों की का बिम्ब है। प्रसमकों का कहना है कि भारत न शानि और अतसमता की नीति पर अमठे हुए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमूनपूर्व प्रदिष्ठा और मम्बान प्राप्त किया है तथा पाकिस्तान से चीन क साथ मरवात्मक संघर्ष में भी इन नीति की उपवेपता कमीटी पर गरी उतरी है। इसका विपरीत आगा कर्षों का मन है कि भारत का विदेशी नीति अविदेक पूर्ण अमदन और गामनी रही है तथा इसके द्वारा अनीत में जो कुछ भी प्रदिष्ठा य सम्मान प्राप्त है। मितः यह एक बौरा दिग्बा बहा जा सकता है। पाकिस्तान और चीन से संघर्ष को हमारी संरुक्तास की अदिशों ने यह प्रमागित कर दिया

है कि असमानता की नीति के कारण हम न कोई पक्का मित्र बना सके हैं और न अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को वायम रखने में ही सफल हो सके हैं। असमानता की नीति विदेशों के लिये ठा एक भाति है ही, स्वयं अपने प्रति या एक धोखा ही है। आलोचकों द्वारा भारत की विदेश नीति की बहुधा या आसाचनायें की जाती हैं वे साररूप में इस प्रकार हैं—

प्रथम यह आर्थिक आदरसंबाधी और भाषना प्रधान है। 'शांति दूत' की प्रतिष्ठा पाने के लिये हमने अपने राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की है। उदाहरणार्थ तिब्बत सम्बन्धी नीति भारत की विदेश नीति की आदर्शवादिता और असफलता का स्वर्णत उदाहरण है।

दूसरे, भारतीय और विदेशी लोगों ही आलोचकों का मत है कि भारत की विदेश नीति को स्वतन्त्र कहना एक भाति है। वस्तुतः यह निष्पक्ष और स्वतन्त्र रही ही नहीं। रोसिगर ने १९१० में लिखा था—“नई दिल्ली ने अन्य विदेश शक्तियों की अपेक्षा घनेक अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिक स्वतन्त्रता पूर्वक निर्णय किया है। किन्तु क्या-क्यों महाशक्तियों के सघर्ष में तनाव अधिक बढ़ता गया है भारत सरकार स्वतन्त्र विदेश नीति का दावा करते हुए भी ब्रिटिश और संयुक्तराज्य अमेरिका और फ्रान्सों गई है। बाद की घटनाओं ने रोसिगर के १९१० में लिखे गये शब्दों की ओर भी सिद्ध कर दिखाया। ब्रिटेन का पक्षपाती होते हुए भारत में साइप्रस के प्रश्न पर १९२४ और १९२५ में महासभा में वोट नहीं दिया मसामा में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आस्थाचारों का उलना प्रबल प्रतिवाद नहीं किया जितना हिन्द-चीन में अर्थ साम्राज्यवाद का किया। इसी तरह अरब-इजरायल सम्बन्धों के प्रति हमारी नीति निष्पक्षता और तटस्थता की नहीं रही है। इजरायल की तुलना में हमने अरब अरबों का पक्षपात लिया है। शांति-दूत भारत में अरब राज्यों पर यह बलाघ डालने की प्रभावशाली श्रेष्ठा अतीत में कमी नहीं की कि उन्हें इजरायल के प्रतिपक्ष की भावना से डरने चाहिए। जब १९१७ के हाल ही के अरब-इजरायल संघर्ष में भारत ने पूरी तरह अरबों का एकतरफा पक्ष लेकर अपनी असमानता की नीति का खोजलापन सिद्ध कर दिया है। विरोधियों का आरोप है कि भारत का शांतिवाद कोरा ढोंग है इसमें को अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपुत्र समझौते की सीख देने वाला भारत अपने ही पड़ोसी पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सका है।

तीसरे राजमोपलाचार्य जैसे राजनीतिज्ञों ने भारत की असमानता की नीति का राष्ट्रीय हितों के प्रतिफल मानते हुए कहा है कि इस नीति के कारण विश्व का एक भी राज्य हमारा पक्का मित्र नहीं रह गया है उसे हमारे दो शक्तिशाली अनु हैं—चीन और पाकिस्तान। भारत की विदेशी नीति पर राष्ट्रीय हितों की उखा करने में सर्वथा असमर्थता का आरोप लगाते हुए भी ए. ई. गोरबाता ने १९ नवम्बर, १९९२ को 'Indian Council of

World affairs' की एक बैठक में दिल्ली में कहा— बिना नीति का मस्य बेन के हितों को सुरक्षित करना और बढ़ाना होता है। मस्ये बड़ा हित राष्ट्र की अलखता (Integrity) है। इसमें हमारी नीति बिफल मिश्र हुई है। चीन ने हमारे विनाश प्रदेश पर अधिकार कर लिया है भारी मैनिक महायत्ना से ही उस चीन का मकता है किन्तु हमारे प्रधान मन्त्री मममन्त्रीने की बातें करने के प्रावि है। भारतीय प्राणियों के अगत में रह रहे हैं वे मोक्षिय सभ पर बड़ा विश्वास कर रहे हैं कि वह उन्हें मिग-२१ विमान देगा। किन्तु वह भारत को अतिने विमान देगा उससे चीन गुने विमान चीन को भी दना।”

चीने धावोचकों का कहना है कि भारत द्वारा पाश्चात्य देशों विशेष कर अमेरिका के साथ मैनिफ मुटबदियों म सम्मिलित न हाना एक भारी धूम है। श्री बोयवासा क शब्दा म “भारत का पश्चिम के साथ मैनिफ सम्बन्ध सुदृढ़ करने में नहीं हिचकना चाहिये। श्री राजगण्डामाचारी जैसे जाने माने बूटमीतिज्ञ का भी यही मत है कि भारत का पश्चिमो देशों क साथ अधिप अनिष्टता से सम्बन्ध होना चाहिये। बहुधा यह तक उपस्थित किया जा ता है कि जो दल नीति क सधियों क द्वारा पश्चिमी देशों क साथ सम्बन्ध हैं उन पर जान अथवा कोई अन्य साम्यवादी राष्ट्र धावमना करने का माहग नहीं करता। उदाहरण म फारमोसा को साम्यवादी चीन धरना बताता है परन्तु अमेरिका का फारमोसा को पूरा रौनिक समर्थन होने से वह अथर अंकने की भी हिम्मत नहीं करता। इसी तरह हांगकांग क मकाओ चीन के प्रदेश हैं लेकिन इनके स्वामी ब्रिटन और पुनमास नाटो सधि-वांगठन के सदस्य हैं अत चीन उन पर अधिकार करने का साहम नहीं करता। किमियाइन द्वीप समूह और दक्षिणी कियतनाम चीन के प्राथमग से इमलिए सुरक्षित हैं कि उन्हें अमेरिका का अतिगाली रौनिक संरक्षण प्राप्त है। यह तक दिया जाता है कि यदि भारत भी पश्चिमी देशों क रौनिक संमठन का सदस्य होता तो प्रथम तो चीन भारत पर हमला ही नहीं करता और दूसरे यदि करता भी तो भारतीय सेनायें पश्चिम के आपुनिकनम सम्बन्धों से इतनी सुमग्न होती कि उसे सेना बोयविला और बेनोंम जैसे मोषण और धपमानजनक पराक्रमों का सामना नहीं करना पड़ता। आचार्य हुजमानी का भी यही मत है कि चीन के साथ हमारे बिगड़े हुए सम्बन्धों के कारण हमें मोक्षिय सभ का अधिक अरोमा नहीं करना चाहिये तथा पश्चिमी राष्ट्रों के साथ अनिष्टता बढ़ानी चाहिये। उनके शब्दों म “चीन सभ का माई है अर्थात् भारत उसका मित्र मात्र है। भारत-चीन संघर्ष में मोक्षिय सभ तटस्थ रहा क्योंकि वह यह समझता है कि भारत से साम्यवाद फैलाने के लिए चीन ही पर्याप्त है। यह तथ्य स्पष्ट है कि मोक्षिय सभ ने चीन के विरुद्ध हमारी सहायता नहीं की जबकि पश्चिमी देशों द्वारा हमारी सहायता करने में किसी प्रकार की देरी नहीं की गई।” पून श्री हुजमानी के अनुसार “सभ इस संघर्ष में तटस्थ और उन्मौन है क्योंकि वह समझता है कि इस संघर्ष के लिए चीन ही पर्याप्त है। उसने चीन को धावमना नहीं ममझा जबकि पश्चिमी देश उसे ऐसा ममझ कर हमें पूरी रौनिक सहायता दे रहे हैं।”

पांचवें भारत की विदेश नीति प्रारम्भ से ही अवास्तविक और गसत व्यापारों पर धारित रही है। चीन और पाकिस्तान के प्रति हमारी तुप्ती करण की नीति ने ही हमें इतना अधिक मुकसान पहुँचाया है। चीन से भारत के मठभेदी के आसार प्रकटकर १९६० से ही स्पष्ट होने लगे थे। किन्तु तत्पश्चात् की ओर से यार्कें मूवते हुए चेम्बरलेन की भाँति हिटलर माफ़ो को समुपद्रु रकने के लिए भारत ने १९६४ में तिब्बत का समझौता किया और वहाँ चीन की संप्रभुता को स्वीकार कर लिया तथा अपना सभी बहिर्राष्ट्रीय अधिकारों को ठिगानाभि दे बी। इतना ही नहीं पंचशील के सिद्धान्तों में चीन की आस्था को हम हमारी कूटनीति में महान विश्वास मान बैठे जबकि वास्तविकता यह थी कि मित्रता के बाने में अपनी शक्ति का भय बिखा कर चीन ने तिब्बत को पूरी तरह अपने अमानुषिक पंजे में दबोच लिया था और पंचशील की भाँड़ में अपनी माफ़ी आशाएँ योजनाओं की तैयारी में लगा था। पंचशील तो एक पाथरस था जिसे छोड़ कर चीन ने आवश्यक समय तक अपनी शक्तिप्रियता का हिंडोरा पीटना बकरी समझा और योंही उसकी सैनिक तैयारियाँ पूरी हो गईं उसने पंचशील की मकाम का उतार फेंका। भारत ने आश्चर्य नीति के इस सिद्धान्त की अपेक्षा की कि—पड़ोसी को शत्रु समझो अत्यन्त विश्वस्त मित्र पर भी सरोसा न करो। हमने चीन पर अग्र विश्वास करके हिन्दी चीनी माई-माई के नारे लगाए संसार में पंचशील और शक्ति का हिंडोरा पीटा अपनी नीति का आधार शक्ति के स्वातंत्र पर शक्ति को इतना बनाया कि शक्ति की उपासना में हम अपने विशाल राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक सैनिक तैयारियों की अपेक्षा कर बैठे। हमारी सैनिक निर्बलता का परिणाम यह निकसा कि चीन के विश्वासघाती बर्बर आक्रमण के समय हमें अपना अज्ञान पराजय और शक्ति उठानी पड़ी। भारत की विदेश नीति ने इस नीतिक सिद्धान्त को बिस्मृत किया कि शान्ति शक्ति से माठी है और हिटलर को मित्रराष्ट्रों ने अपनी उत्कृष्ट सैनिक शक्ति से ही पराजित किया था।

छठे भारत अपनी नीति को उलटपुलट और असंगतता की नीति कहता है, परन्तु जब साम्यवादी युट के एक बड़े सबस्य के साथ युद्धरत अवस्था में होते हुए दूसरे युट के पश्चिमी देशों से प्रचुर परिमाण में आर्थिक और सैनिक सहायता ली जाने तो क्या हमारी नीति असांगततावादी कही जाती है ?

सातवें भारत की विदेश नीति अपने मित्र और शत्रु की परीक्षा करन में सर्वत्र प्रसफ़ल रही है। देश पर चीनी आक्रमण के समय हमारी सहायता उन राष्ट्रों ने की जिनकी हम कटु आलोचना करते रहे हैं। संयुक्त अरब मण्डलम इण्डोनेशिया जैसा प्रायः राष्ट्र जिनके लिए भारत ने बहुत कुछ किया हमारे सङ्घटन में मौनवर्षाक की भाँति चुपचाप बैठे रहे। मसामा ने जिसको भारत का सचिय समर्थन इण्डोनेशिया प्रायः राष्ट्रों की तुलना में नहीं के बराबर मिला हमारा पूर्ण समर्थन किया। इसी प्रकार इबरायल ने जिसकी मित्रता को भारत ने अरब राज्यों का अयास रखते

हुए हमारा हुकराया, १९५५ में सुरक्षा परिषद् के चुनाव में भारत का साथ दिया।

घाठने, भारत की विदेश नीति का यह एक मुख्य दोष रहा है कि एक बार तो इन्होंने सिद्धान्तों और व्यवस्थाओं के अन्तर पर ध्यान दिया बिना ही सब देशों की मित्रता प्राप्त करने का प्रयास किया है और दूसरी ओर मित्रों का मा व्यवहार करना न सीखने के कारण इस नीति में किसी भी राष्ट्र का स्थाप नहीं दिया है। अनेक मित्रों के सम्बन्ध में हमारे मन में कई गलत धारणाएँ बनी हुई हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी प्रकार की मित्रता रहना असम्भव है। समझें कि मित्र बनाने की नीति अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों की रचना करती है उदाहरण के लिए प्रश्न उठ सकता है कि एक प्रजातन्त्रात्मक देश हाथ हुए मा क्या हम एक सम्पूर्णतावादी राज्य के साथ अपने समीपुल्य सम्बन्ध बनाय रख सकते हैं अथवा समानकारी समाज में विश्वास रखते हुए पूँजीवादी राष्ट्रा की मित्रता हम किन्तु उपमागी रहेगी।

मैंने भारतीय विदेश नीति के वर्णोपागों में समय-समय सङ्घिष्णुता-पूर्ण व्यवहार की निम्ना दी है किन्तु उनका स्वयं का व्यवहार कई बार असङ्घिष्णुतापूर्ण रहा है। हम घटना मा वस्तु स्थिति को जिस प्रकार देखते हैं वहाँ है कि दूसरे मा इसी रूप से देखने लगें। जब हम दूसरे देशों की आलोचना करते हैं तब भी एक पक्षीय दृष्टिकोण अपनाते हैं तथा बोहर स्तर के साथ से दूषित बन जाते हैं। हम अन्तरगत द्वारा की गई विभिन्न परिभाषा की बहुत आलोचनाएँ करते हैं। किन्तु आक्षेपित रूप द्वारा की गई परिभाषा की बार हमारा ध्यान ही नहीं जा। हमारे नीति-निर्माणाया में कई बार कहा है कि वे जो आलोचनाएँ स नहीं आलोग किन्तु व्यवहार में उन्होंने अपने अपने का पालन कम किया है। हमारी नीति प्रायः केवल शब्दों तक ही सीमित रही है। पाकिस्तान के चीन के साथ भी मजबूर हाकर हमें हथियार उठाना पड़ा था नहीं तो शक्ति के अभाव में हमने कभी भी शक्ति-प्रयोग की दिशा में सोचा न था। यह हमारी अवास्तविक नीति का एक प्रमाण है। हमने 'प्रचार' की अर्थ का इतना कम प्रयोग किया है कि विश्व के देश कई प्रश्नों पर सही रूप में हमारे दृष्टिकोण को अभी तक नहीं समझ पाये हैं। यह कहा जाता है कि भारत ने दोनों गुटों के बीच पुल का काम किया है। यह काम दुगारों का अर्थ है हमारे द्वारा ही अर्थ प्रदान का पात्र बना है। किन्तु यह काम यदि हमने संभाला भी है तो इस अपने सिद्धान्तों का अतिरिक्त बिना पूरा कर सकेंगे इसमें सन्देह है।

भारतीय विदेश नीति की आ विभिन्न आलोचनाएँ की गयी हैं उन में अत्यन्त अतिरंजना और एक पक्षीयता का बाहुल्य है। ये आलोचनाएँ अतिरंजित और अतिरंजित न होकर आलोचना का परिणाम हैं। यह सत्य है कि स्वतन्त्रता के २० वर्ष के इतिहास में कुछ ऐसा अतिरंजित अन्तर

उपस्थित हुए हैं जब संसमंत्रय में गड़ कर भारत की विदेश नीति निर्देश रहने से विचलित हो गयी किन्तु सम्बन्ध और सम्पत्तिका का बोहरा हटत ही बहु पुन संसमंत्रयता और निर्पेक्षता क माग पर पा गयी । इन प्रकार क भातिवन्न मार्ग-विचलन के आधार पर यह कहना निश्चयन म अनिश्चयन पूर्ण है कि भारतीय विदेश नीति धामन्मता के बोले में पक्षान्तपूर्ण है । प्रत्येक राष्ट्र की विदेश नीति का मूल लक्ष्य अपनी सुरक्षा समष्टि और स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए देश के हितों की धमिबुद्धि करना होना है और इसीलिए कुछ अवसरों पर कूटनीति का धाधय सेते हुए कतिपय ऐसे काम भी करने पड़ते हैं कि जिनसे लोगों में यह धम पैदा हो सकता है कि विदेश नीति अपनी बिना बरक रही है । भारत की विदेश नीति की कतिपय प्रवसनों पर इसी प्रकार के धम का बिकार बनी है और फिर भी राष्ट्र-हित की दृष्टि से यदि कोई सामयिक बिना परिवर्तन हुआ भी हो तो उसके धाधार पर विदेश नीति के सम्पूर्ण धाधार को ही धाधोपान धामोचना का धाय नहीं बनाया जा सकता । यदि धामाधक भारत की विदेश नीति पर ब्रिडिन या धमेरिका पक्षपाती होने का धारोण मपाते हैं ता उन्हें यह धद क्यों नहीं रहता कि प्रकटुवर १९१९ म स्वयं-बाधक पर भारत ने ही ब्रिडिन की कठोरतम मरवा म निम्बा की बुगई १९१८ में मैकडान और बोर्डन मे धमेरिका तथा ब्रिडिस कोर्बे उठारे जाने का उग्र बिरोध किया १९१८ म साइप्रस की रष्ट्रीय धामाधधो का संघर्षन करते हुए उसके बिभाधन की कठु धामोचना की और सैनिक गठबन्धनो की पक्षिधयी नीति की इयेबा उग्रतम धिस्तानेबारी की । धाज भी बिधतनाम पुठ के प्रति धमेरिका नीति का भारत एक कठोर धामोचक है ।

यह कहना एक बचकानी बात है कि इस या उस राष्ट्र से धायिक व सैनिक सहायता लेने से हमारी असमन्मता बचवा उदस्यता की नीति बिधबिध होती है । भारत की विदेश नीति का लक्ष्य राष्ट्रिय हित को बढ़ाना है देश की धलबद्धता स्वतन्त्रता प्रकृतता और लोकतन्त्रात्मक पद्धति का संरधण देना है और इन सबके लिए धायिक प्रगति के प्रत्येक सम्भव ध्याधधित उपाय करना है । भारत जैसे लकोरित स्वतन्त्र राष्ट्र की धायिक सम्मति के लिए तीन बातों का होना धामाधक है—बिधसित देशों से प्रकुर माग म पुजी की व मशीनों तथा तकनीकी ध्यतिधों की सहायता मिले सहायता सभी देशों से मिले जाहे के किसी की मुठ के ही एवं बिधक से यधामन्मक हर कीमन पर धामिध बनी रहे । यदि ध्यान से देखा जाय तो स्वाधीन भारत का २० वर्ष का इतिहास इन तीनों ही नीतियों पर चलने का इतिहास है । भारत धमी से धामिध और पैकी जाहता है और इसीलिए धमी से हर सम्भव सहायता लेने की तैयार रहता है । संसमन्मता की नीति को चलना तो तब है जब प्राय की जाने वाली सहायता सखत हो । परन्तु प्राय ने धाज तक जो भी सहायता भी है उसके साथ किसी प्रकार की राधनीतिक बतों का ममाध है । अपनी सम्प्रभुता और स्वतन्त्रता का पूर्णन अधुन्न रखते हुये ही भारत ने धायिक व सैनिक सहायता 'पक्षिधम' और पूर से सी है । धीन के धामगण से उलान और तकूटकास में भी

भारत ने पश्चिम देशों से जो सैनिक सहायता प्राप्त की वह बिना किसी शर्त के भी घोर विषय की महाशक्तियों ने भारत के इस धर्म घोर उमकी दृष्टि की प्रशंसा की। इसीलिए अमेरिकन राजदूत मैसब्रिज ने कहा—
 “कोची सहायता दखर हम भारत को पश्चिमी देशों के सैनिक गुट में शामिल नहीं करना चाहते और न हम भारत की तटस्थ नीति को बदलने के ही समर्थक हैं।” अमेरिका भारत की तटस्थ नीति का रक्षायत करता है।
 फिर आभासक यह धूस बातें हैं कि यदि भारत किसी एक गुट से बंध जाता तो उसे दूसरे गुट से सहायता नहीं मिल पाती और फिर यह भी निश्चित नहीं था कि जिस गुट से भारत बंधे वह भा अन्वयमेव भारत का सहायता देता ही। भारत-पाक संघर्ष और उसके बाद अमेरिका के द्वारा पाकिस्तान का ही जाने वाली सैनिक और आर्थिक सहायता पर प्रतिबन्ध लगाया जाना इस सम्भावना को स्पष्ट करता है। एक गुट के साथ मिस्र जान से भारत प्रत्येक दृष्टि से उसी गुट के हाथों पराधीन हो जाता और उमकी नीति का स्वतन्त्र निर्धारण नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ भारत ने चीनी आक्रमण के पहले और बाद में पश्चिम में अतिश्वर (Supersonic) जेट विमान तैयार करना चाहा और यह शन रली कि बेन्त विमान का तयार करने के कारण भी भारत में स्थापित करने में सहयोग दे। परंतु अमेरिका के अमेरिका विमान बेचने का तयार हा यद्ये नेकिन इनर निर्माण का कारण बनाने को तयार नहीं हुए क्योंकि तब भारत अविष्य में इन विमानों के बारे में आरम्भ-निर्भर हो जाता। इस पर भारत न सोचियत संघ से बात की और भारत ही सम्भावना धारित करने के लिए वह तुरन्त इस बात के लिए तयार हो गया कि वह न केवल मिस्र विमान बेचगा बल्कि इसके निर्माण का कारण भी स्थापित करवा। वह मिस्र के अर्थन इस पक्षक का निम्ना भी। एक पक्ष के साथ बंध जान पर भारत का इस तरह का साम नहीं मिलता। यह एक पक्ष में बंधन का ही परिणाम है कि पाकिस्तान अस्वास्त्रों के लिए पूरी तरह विदेशों का मोहताब है जबकि भारत अपनी सगमय २० प्रतिशत सैन्य सामग्री का उत्पादन स्वयं कर रहा है।

भारतीय विदेश नीति के कुछ आलोचकों का कहना है कि यदि भारत पश्चिमी गुट के साथ सैनिक संधि में आबद्ध होता तो चीन उम पर आक्रमण करने का दुस्ताहस नहीं करता। लेकिन इस प्रकार की आभासना करने जान यह क्यों नहीं ध्यात रखते कि सैनिक गुटबन्दी में हमारी स्वाधीनता का ही बिनाश हो सकता है। गुट विषय के साथ सैनिक दृष्टि से सम्बद्ध हो जान पर हमारी स्वतन्त्र निर्णय शक्ति काम नहीं रहती और हम सैनिक सहायता देन वाली शक्तिगामा मत्ता का इच्छा के अनुसार बसना पड़ता है न अन्वयमेव अपनी इच्छा और भावना के प्रतिबन्धन करने पड़ता है। विपक्षता में अमेरिका का सैनिक हस्तक्षेप इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण वियतनामी सरकार को धान नहीं करना पड़ता है जो अमेरिकन सरकार चाहती है। इसी तरह दक्षिणी वार्िया की सरकार पर अमेरिका का बिलता प्रभाव ध्यात था और है—यह सभी जानते हैं। बिदनी सैनिक हस्तक्षेप में हमारी प्रभुमत्ता निश्चित रूप से धुनायिक माना में विगणित होती है। इसके परिणित

राष्ट्र में धारमरक्षा के लिए पराबलम्बी होने की भावनाओं को प्रोत्साहन देता है। विदेशी सैनिकों के वक्त पर हम चीन को धामे बढ़ाने से रोक सकते हैं लेकिन हम उनकी हूपा पर ही कब मज रखने। समझा का मरुवा समाधान तो इसी में है कि हम अपनी स्वयं की शक्ति का विकास करने मनु को पराबलित करने की सामर्थ्य उत्पन्न करें। अपनी धारम रक्षा के लिए दूसरे की शक्ति का भरोसा करना अपने राष्ट्र को मनु सभ मानना है और निरुत्पन्न कोई भी स्वाधीनता प्रेमी स्वाभिमानी राष्ट्र इसे स्वीकार नहीं कर सकता। श्री नेहरू के ये लक्ष्य धारम भी सत्य हैं और भविष्य में भी रहेंगे कि—“हम अपने देश की रक्षा का मार किसी को कैसे सौंप सकते हैं यदि हम अपने देश की धाजारी की रक्षा स्वयं नहीं कर सकते तो हमें धाजार होने का क्या अधिकार है?” वास्तव में इस बात में किसी को मरुवा उठनी ही नहीं चाहिए कि सैनिक युद्ध में सम्मिलित होने की नीति किसी भी धारम में हमारे राष्ट्रीय हित और गौरव की दृष्टि से धयस्वर नहीं हो सकती। भारत की धारमरक्षा और तटस्थता की नीति विश्व में शान्ति स्थापित रखने में समय-समय पर मन्नायक बनी है। चीनी धारमरक्षण के बाद दिसम्बर १९६२ से बर्मेनी के तटकासीन प्रधानमन्त्री घोडेनीर ने बर्मेन समय में कहा था— ‘यदि भारत सीटा या सेष्टो का मरुस्य होता तो चीनी हमले के समय विश्व युद्ध छिड़ जाता। मेरा निश्चल मत है कि भारत की तटस्थ नीति का मरुस्य यह है कि प्रत्येक मरुस्य को सीमित क्षेत्र में ही रख कर समाप्त कर दिया जाय। यह नीति पूरे विश्व के हित में है।’

भारत की विदेश नीति की सफलता का एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि पूर्व और पश्चिम के दोनों गुर्नों ने इस नीति की सराहना की है। धमेरिका इस बात को समझता है कि भारत प्चिम में सोकुरम का प्रथम समर्थक है और उसकी सफलता एशिया के धारम देशों को प्रजातन्त्र का अनुगामी बनाने में सहायक होती। यदि भारत को चीनी धारमरक्षण के समय धमेरिका ने न धारम पश्चिमी राष्ट्रों न बिना शर्त सैनिक सहायता को तो इसीलिए कि भारत की धाजारी और सोकुरम के महत्त्व को उम्हने समझा। धमेरिका भारत की तटस्थ नीति को पहले मसे ही प्रमना की दृष्टि से न देखता हो किन्तु धर उसके मत में निश्चल रूप से अनुकूल परिवर्तन हा गया है। यह यह समझन लगा है कि भारत के पश्चिमी सैनिक युद्ध के साध जाबड होने का यह स्वामाधिक परिणाम होगा कि सोवियत रूस और चीन एक दूसरे के अधिक निकट धामे की धारमरक्षा महसूस करेगे क्योंकि तब शक्ति-समुत्पन्न उनके विपरीत हो जायेगा। चीन और रूस को संयुक्त सैनिकिक न सैनिक शक्ति संयुक्त राज्य धमेरिका के लिए एक मदाबह स्थिति पैदा कर देनी। धत धमेरिका का हित इसी में है कि इन दोनों राष्ट्रों में मनमेव विद्यमान रहें और फूट बडती रहे तथा भारत अपने तटस्थता की नीति बनाये रहे। ब्रिटिश राजदूत सर डेविड धारम्वबी गोर ने नवम्बर १९६२ में कैसीफोनिया के राष्ट्रमन्त्र-कतब में मापण देते हुए कहा था— ‘हमारी इच्छा यह नहीं है कि हम भारत को स्वयं इच्छापूर्वक धारम की हुई युद्धों से धारम रहने की नीति छोड़ने की प्रेरणा दें। ऐसा करने से चीनी और रूसी साम्यवादियों को अपने पराबल मत्रमेव

समाप्त करने की तथा भारत एवं ऐसे नव देशों के विश्व एक हान की प्रस्ताव मिलायी जो इस समय भारत की सहायता कर रहे हैं। इस और भारत में जिस सीमा तक सहायता जारी रहना है वह इस और चीन के मतभेदों को बढ़ाने वाला है और साम्यवाद के विरोधियों को साहसा प्रदान करने वाला है। ठीक इसी प्रकार इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध पत्र 'मैन्चेस्टर गार्डियन' ने भारत की नीति का पक्ष-पोषण करते हुए १७ नवम्बर १९६२ के प्रथम पृष्ठ में लिखा था— 'युद्ध में और युद्ध-समाप्ति के प्रयत्न में भारत सरकार का इसमें बड़ा सामंजस्य कि वह साक्षियता का समर्थन या कम से कम उसकी सामंजस्यक तटस्थता को प्राप्त कर। भारत के नियम पक्ष उचित नहीं है कि वह तटस्थता का भाषोन्स-सुष की भुजाओं में प्रवेश—वहाँ यह जाना नहीं चाहना—छोड़ दे।' भारत की गुटा से प्रसंग रहने की नीति तब तक प्रवर्धनी जारी रहनी चाहिए, जब तक साक्षियता सरकार 'स नीति को अममन ही न बना दे। भी नहक इस प्रवृत्ति तरह मनभन्ने हैं। सम्भवत ही कनेडा और भी मैकमिलन मा ऐसा ही मानत हैं।'

चीनी धाकड़ों के समय और उसके बाद न केवल पश्चिमी गुट ने बल्कि साम्यवादी गुट के अधिकांश देशों ने भी भारत की विदेश नीति का अनुमोदन में पुनः विश्वास प्रकट किया। दिसम्बर १९६२ में श्री सुब्रह्मण्यन ने कहा—'भारत की तटस्थ नीति न विश्व के संयमन पर भारी राजनीतिक और नैतिक शक्ति प्राप्त कर ली है।' इसी पत्र प्रकाश में भी अनेक बार स्पष्ट लिखा कि चीन ने भारत पर हमला करके न केवल उसे अमेरिकन गुट में प्रवेशने का प्रयत्न किया है बल्कि विश्व शांति के लिए भारी घाटा पैदा किया है।

स्पष्ट है कि चीन के धाकड़ों ने भारतीय विदेश नीति के पोषण को नहीं बल्कि उसकी उपयुक्तता को धिक्का किया। गण्ट काम में भारत का दोनो पक्षों की ओर से समर्थन मिला और कम तथा चीन के मैट्रोलिड मध्य की गई भारत को सेवर और अधिक खोड़ी हो गई। धाकड़ों स्पष्टि यह है कि भारत पर हमला करने वाला चीन विश्व राजनीति में प्रवेश पाइ गया है और केवल इसे-पिने राष्ट्रों के अतिरिक्त केप विश्व का उगे जाई समर्थन नहीं है। चीनी धाकड़ों ने भारत की विदेश नीति की अममनता प्रमाणित नहीं की है उगकी कुछ कमियों को प्रवर्धन स्पष्ट किया और भारत यह समझ गया कि उसे अपनी सैनिक निर्भरता को दूर करना होगा। इन अनुमोदन के अन्तर्गत भारत की विदेश नीति में अतिरिक्त धाकड़ों का समावेश हुआ जो भारत-पाक युद्ध के दौरान पूर्णतः स्पष्ट हो गई।

नवम्बर १९६५ में पाकिस्तानी धाकड़ों द्वारा भारत की विदेश नीति पर बार-बार अतिरिक्त धाकड़ों का प्रकाशन हुआ। इन धाकड़ों ने यह मिश्र करने का प्रयत्न प्रयास किया कि भारत को विश्व नीति पूर्णतः अममन रही है और इसमें कोई रस नहीं है। अममनता की नीति पर

फ़ोर् प्रहार करते हुए नवम्बर, १९६५ में श्री इण्डोनेशिया ने कहा—“यह सिद्धान्त कोरी बड़बास मात्र (Unmitigated nonsense) है यह कुछ समय के लिए नीति हो सकती है किन्तु सदा के लिये इसे विदेश नीति नहीं बनाया जा सकता। विदेश नीति व मौलिक सिद्धान्त हैं—भारत संरक्षण और देश के ग्यायोचित स्वार्थों की रक्षा। इसके प्रतिरिक्त कोई अन्य सिद्धान्त निरर्थक व बेहूदा बात है। मुटों से धमक रहने की नीति को पक्क इसलिये बदला जाना चाहिए कि जब विश्व को दो भागों में विभक्त करन वाले कोई मुट नहीं रहे हैं। भारत विश्व में शांति बनाये रखने का उपदेश देता है यह ‘छाटे मुट बड़ी बात है। विश्व की वर्तमान स्थिति में हिंसा का धमी तक कोई विकल्प नहीं हुआ जा सकता। भारत की विदेश नीति को परम्परागत हिंसा के साधना के प्रतिरिक्त किसी अन्य धन से क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। आज देश में हमारी विदेश नीति की सफलता का डोम पीटा जा रहा है किन्तु यह विषय नीति की सफलता नहीं किन्तु भारतीय देश की सफलता है। विदेश नीति की सफलता सब परिस्थितियों को सही रूप में समझने पर अवलम्बित होती है। क्या भारत ने तिब्बत चीन पाकिस्तान को अनीमति समझा है? भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को अहिंसा द्वारा हल करन का प्रयत्न किया है। किन्तु यदि भारत में माओरसे-मुग का मत चाँहि सम्मत् होता तो चीन के हाथों परास्त न होते।”

श्री इण्डोनेशिया की यह आलोचना अत्यन्त रूप से सत्य होते हुए भी असंभवता की नीति के बारे में सही नहीं थी। भारत पाक युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया था पश्चिमी राष्ट्र काश्मीर व मामले में पहले ही की तरह पाकिस्तान के साथ सहानुभूति रखते हैं। यदि इस समय अपनी तटस्थ विदेश नीति के कारण भारत को रूस का समर्थन न मिलता तो सुरक्षा परिषद सम्भवतः ऐसा प्रस्ताव कभी पास नहीं करती कि पाकिस्तान और भारत के सभी सतस्थ व्यक्ति ३ अक्टूबर १९६५ की पूर्व स्थिति पर लौट जाय। इस संघर्ष में ब्रिटेन और अमेरिका के पक्षपातपूर्ण रवैये को देख कर भारत में पश्चिमी देशों के साथ सैन्य समझौतों और गठबन्धनों पर बल देने वाले स्वतन्त्र दल तक को महरी निराशा हुई। इस निराशा की अतिशक्ति श्री मसानी के इस श्लोक में हुई जिसमें उन्होंने रूस के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध सुदृढ़ करने पर बल दिया। इस अवसर पर श्री शास्त्री ने कहा— मैंने पहले ही बार स्वतन्त्र दल के नेता श्री मसानी को यह कहते हुए सुना है कि हम सोवियत संघ से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढ़ाने चाहिए। इससे पहले मैंने कभी उनसे ऐसी बात नहीं सुनी थी। वू कि श्री मसानी ने ऐसा कहा है घट गुट निरपेक्षता या असंभवता की नीति का समर्थन करने के लिए कोई दूसरा लक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं है। श्री शास्त्री ने आगे कहा कि भारत की असंभवता की नीति का सबसे बड़ा प्रभाव यही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ सैनिक सन्धियों में बंधने वाला पाकिस्तान अब उसके फ़्टर शत्रु चीन से घबने सम्बन्धों की बलिष्ठ बना रहा है और रूस से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा है।

उपरोक्त संपूर्ण विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत विभिन्न नवटो व बाबूद घपनी विदेश नीति के मौलिक आधारों पर दृढ़ है और भारत की विदेश नीति 'मुट-निगपेदाता' पर चलती हुई राष्ट्रीय हितों को कुल मगसक भिन्न हुई है। यद्यपि उक्त भटक मगे है मकिन भन्का का सह कर पाये बहन की उसकी गति धक्कत नही हो गई है। इस सम्बन्ध में भारत की वर्तमान स्थिति पर जापानी पत्र 'जापान टाइम्स' ने हाम ही में आ मखिन टिप्पणी की है वह इस प्रकार है।

'कम्प्युनिस्ट चीन का छाडकर भारत एशिया का सबसे धपिब जन सख्या वाला देस है। कुछ बर्य पहले की जनगणना में इस गणराज्य की जनसख्या ७७ करोड़ ७० लाख थी और तब से उसमें सगठार वृद्धि हो रही है।'

'इस विमान जन-समूह क बस्याण और प्रगति से दूमरे देसा का स्पष्टत सम्बन्ध है और इसा क रण पनी समस्याओं में दूक रही भारतीय जनता की मदद क लिए उद्दान ब्यापक इच्छा जाहिर की है। दुर्म ग्यब भारत धपम का पड़ामा देसा कम्पनिस्ट चीन और पाकिस्तान में मित्रतापूरा सम्बन्ध स्थापित नही कर सका।'

"जुलाई क प्रारम्भ में भारत के विदेश-मन्त्रालय ने दूमरे देसा के साथ भारत के सम्बन्धों का ब्योरा समझ में प्रस्तुत किया था। उसमें कहा गया कि जनवरी १९६६ में हुई ताशकंद घोषणा से यह उम्मीद बर्षी थी कि दूमरे देसों के साथ मित्रतापूरा और सहयोगपूर्ण सम्बन्धों का नया अध्याय शुरू होगा लेकिन पाकिस्तान क रबैय क कारण यह सम्भवे न हो सका। ब्योरे में कहा गया है कि १९६२ के संघर्ष से उत्पन्न विचारों का हम करने के लिए भारत में जितने मुझाव रहे पाकिस्तान न उन सबको दूर कर दिया। उसमें धपे शिकायत की गई है कि मार्च, १९६६ में मित्र स्तर पर आ पहुरी बैठक हुई थी उसमें पाकिस्तान इस जिन पर धका रहा कि जब तर काग्योर का प्रश्न हम नही हा जाता तब तक दूमरे समझा पर बातचीत नही हो सकती। भारत का कहना है कि पाकिस्तान का यह रबैय ताशकंद घोषणा क बिपरीत है क्योंकि उस घोषणा का मूस उद्देश्य हा यह था कि काश्मीर पर मतभेद होत के बाबजूद दोनों देसों की पानि और सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे कि दूमरो अटिम गमस्याओं का समाधान किया जा सके।

"इसका परिणाम यह हुआ कि काश्मीर बिबाद भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों को कटु बनाये हुए है।

दूमरी धोर भारतीय ब्योरे में कहा गया है कि दूमरे लफियाई देसों में सम्बन्ध सुधारने में भारत की मधनता मिनी है। उसमें बर्मा में रण नीमा निर्धारण सम्बन्धी समझौते और अफगानिस्तान मराल चीनका समवेमिदा

घोर इन्डोनेशिया से सम्बन्ध सुबुद्ध होने का विक्रम किया गया है। प्राग कहा गया है कि भारत और नेपाल के सम्बन्ध लगातार मजबूत होते जा रहे हैं और भारत ने नेपाल की अनेकानेक योजनाओं में मदद की है। दक्षिण-पूर्व एशिया में इन्डोनेशिया और मलेशिया में 'तनाव समाप्त होने और इन्डोनेशिया के संयुक्तराष्ट्र में पुनः शामिल हो जाने से उस क्षेत्र के सभी देशों में भारत के वैश्व-सम्बन्ध विकसित होने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ है।

"भारत और कम्युनिस्ट चीन का मतला बहुत गिरा है। प्रतिवेदन में कहा गया है कि १९६६-६७ की घटनाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि मास चीन हर मोर्चे पर भारत के प्रति आक्रामक रवैया धरना रहा है। चीन ने भारत की सीमाओं पर अपना सैनिक व बिक्रम और राजनीतिक दबाव डाल रखा है। चीन नेत्रा लासकद घोषणा का र्थक सिद्ध करम का हर समय ब्याप कर रहे हैं और तनाव बनाये रखकर पाकिस्तान को भारत के बिक्रम मड़का रहे हैं। उच्च आभाषना और मुट-निरपेक्षता तथा नातिपुर्ख सहमतिस्व की भारत की बिदेस नीति की निम्ना चीनी प्रचार के निममित प्रग है। तिस्वती सरक्षापिर्षों को ओ सनातार भारत घा रहे हैं मानवता के आचार पर सहायता और सरक्षण दिया गया है।

"इससे यह निश्चित पता चलता है कि तिस्वती सरक्षापिर्षों ने भारत द्वारा सहयोग दिए जाने से चीन में मासाकारी बहुत नाराज हुए हैं। हालांकि इस सहयोग के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है।

"कुछ दूसरे एशियाई देशों से भारत के सम्बन्धों के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। फिर भी हम यह कहना चाहेंगे कि पश्चिमी शक्तियों से किसी प्रमुख महामता के बावजूद भारत अपनी निजी बिदेस-नीति पर दृढ़ है। कुछ लोग उसकी बिदेस-नीति को सामयिक की ओर मुका बटाते हैं तथापि भारत अपनी 'तन्स्वला और 'मुट-निरपेक्षता' की नीति पर दृढ़ है।"

भारतीय बिदेस नीति और अस्तु घासुओं के निर्मास्व का प्रारम

भारतीय बिदेस नीति की उच्चतम आभाषना आम्तिबाध पर अचिक्र बस देते हुए अस्तु बभी और आम्बिक घासुओं का निर्माण में करम की है। आभाषकों का कहना है कि आम्तिबाधी बिदेस नीति का अम्बिप्राय यह नहीं है कि बिदेस की प्रतिरक्षा की दृष्टि से आम्बिक घासुओं का निर्माण नहीं किया जाए। भारत के अस्तु-घासु अस्तु अस्तु रक्षा के लिए होयै। भारत तक तक इन घासुओं का ब्रयाण नहीं करेया अब तक कि आम्बिककारी दम भारत पर आम्बिक हमसा करने का इरादा न कर सेंगे। अब फिर अपनी प्रति-रक्षा की दृष्टि से बनाए जाने वाल आम्बिक घासुओं से भारत के आम्तिबाधी लक्ष्य को हानि पहुचने की बात कहना समार्थ में परे इटना है। बिगेपिर्षों का कहना है कि भारत चीन और पाकिस्तान जैसे दो अम्बिकारी मज्जुघा से बिरा हुआ है। चीन अनेक अस्तुबघों का बिस्कोट कर चुका है और अम्बिकारी

का लेजी से बिकास कर रहा है। इस बात की पूरी समाधान है कि संभवतः १९७० तक उसके प्रदेपगास्त्रों की मार की सीमा में संपूर्ण भारत आ जाए। यदि उसकी क्षमता में इतनी वृद्धि न हो पाई तो भी यह लगभग निश्चित सा है कि १९७० तक वह अपने प्रदेपगास्त्रों से उत्तर भारत के किसी भी धीसौगिक अथवा सैनिक अड्डे को नष्ट करने में समर्थ हो जायेगा।

आसोचकों का आरोप है कि स्वर्गीय श्री नेहरू अपने जीवन-काल में चीन की वास्तविक क्षमता और चीन द्वाराओं के प्रति धीला साठे रहे। १९६२ में जब चीन ने भारत की पीठ में घुरा मोक विया तनी उनकी नीर लुली। इमी तरह १९ अक्टूबर १९६४ को चीन ने जब अपने पहलै परमाणु बम का परासण किया तो श्री नेहरू की आरणाओं की इमारत फिर अड्डा पडी क्योंकि चीन क आक्रमण के बाद दिसम्बर १९६२ में ही उन्होंने सम्वाददाताओं क प्रश्नों के उत्तर में कहा था कि 'मे नहीं सोचता कि चीन क पास पर्याप्त परमाणु शक्ति कम से कम दिकट भविष्य में हो पाएगी। इसक एक साल बाद उन्होंने एक बार फिर बोपना की कि भारत को चीन के परमाणु बिस्फोट से बबराने की जरूरत नहीं है।' श्री नेहरू के बाद स्वर्गीय श्री नास बहादुर शास्त्री ने जनता की सबज पहचानी। लेकिन उन्होंने भी नेहरू की नीतियों की दुहाई दी और परमाणु अस्त्र न बनाने का प्रण लिया। श्री शास्त्री के बाद भारत की बागडोर श्रीमति इन्दिरा गांधी के हाथ में आई। उन्होंने भी जब तक कूठनीतिक मापा मे बोलठे हुए इसी निबधय को बाहराया है कि भारत के लिए किमहाल अणु बमों और आणविक आधुषी के निर्माण की पीड़ में न पड़ना ही अयेस्कर है। देश की प्रबिनाम जनता की, लगभग सभी बिरोधी पक्षों और स्वयं आधेस के एक शक्तिशाली बम की आबाज है कि चीन परमाणु बम से हाइड्रोजन बम तक जा पहुंचा है और यह एक दुक की बात है कि हमारे देश के कर्तुंभार अमी श्री इसी दुबिधा मे पड़े हैं कि भारत को परमाणु परीक्षण करना चाहिए या नहीं। उनका कहना है कि २० साल की आबाजी और इन छोटे से असे के दौरान दो पड़ोसी देशों के साथ हुए संघर्ष श्री हमें कोई सबक नहीं सिखा पाए हैं। १९४७ में अम्मु और काश्मीर में पाकिस्तान के लिलाठ लड़ाई हुई १९६२ में चीन के साथ सभष हुआ और १९६२ में फिर पाकिस्तान के साथ दो-दो हाथ होने की नोबत आ गई। अन्तिम दो सभषों की अथपि बहुत छोड़ी थी फिर भी उनका गम्भीर प्रभाव देश के धार्मिक सामाजिक और मनोबैज्ञानिक जीवन पर पड़ा। युद्धों से भारत को किसी किस्म का राजनीतिक या सामरिक लाभ नहीं हुआ अस्ते पड़ोसी देश भारत को मुकनाम पहुंचा कर अपने लाभ-संघर्ष में सफल हुए। हजारों बर्ष किन्तोमीटर भारतीय भूभाग उनके कब्जे में चला गया और हम अपने संपूर्ण नारों के बाबजूद एक बर्ष सैंटीमीटर अथह तक आपस से लड़ने में अलमसे रहे। १९६२ के बाद तो स्थिति इतनी दुग्द और बयनीय हो गई है कि किसी न किन्ती छोरे पर आक्रमण की आशका बनी रहडी है। १९६२ के संघर्ष में पाकिस्तान में प्रतिगोप की आबानि जला रो है। यह आरतो सामरिक क्षमता को बढ़ाने का यत्न और जोर से कर रहा है और भविष्य में अन्दर कभी भारत को फिर उससे लोहा लेना पड़ा तो अने

१९६२ के मुकाबले कहीं अधिक बड़ी शक्ति में उठराना हुआ चीन के साथ भारत के सम्बन्ध और भी बिगड़े हुए हैं। चीन और भारत की व्यवस्थाओं और विचारधाराओं में अतीव-व्याप्तमान का अन्तर है। चीन अपने निरिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कोई भी कदम उठाने और किसी भी सीमा नष्ट करने का पक्ष धर है वह अपने उद्देश्यों को बलवी परिवर्तित भी नहीं करता। चीन की सीमा में ३० लाख सिपाही और लगभग इतने ही होमगार्ड हैं। यदि ऐसा देश परमाणविक आतमियों से पूरी तरह सम्बन्ध हो गया तो भारत अपने परम्परागत अस्त्र शस्त्रों के बल पर चीन की प्राणविक शक्ति के सम्मुख कितनी देर ठहर सकेगा, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है। चीन पर बिस्तारवादी होने का आरोप है और इसमें कोई शक नहीं कि माया अपनी सीमाओं का विस्तार करना चाहता है ताकि जसकी बढ़ती हुई आबादी को रखाया जा सके। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारत ही एक मात्र ऐसा देश है जो अपनी शक्ति का उपयुक्त विकास करके चीन के प्रभाव को रोक सकता है और यही पक्क है कि भारत चीन का कट्टर दुश्मन है।

फिर एक बात और भी है वह यह कि पाकिस्तान चीन के बठ-जोड़ में भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को विधेय कतरा देना कर दिया है। इसलिए अब देश की सुरक्षा के लिए यह जरूरी हो गया है कि चीन और पाकिस्तान दोनों की सम्बन्धित शक्ति में मोहो सेने सामक शक्ति धान में देना की जाय। इसके लिए यह जरूरी है कि भारत प्रतिगन्ना के प्रत्येक साधन से सम्बन्ध हो और एक प्राणविक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बने ताकि आक्रमणकारी शक्तियां वह समझें कि बहि भारत पर हमला किया गया तो उनके प्राणु-प्राणु सनका भी संहार कर देंगे। सब राष्ट्रों में भय की ऐसी अनुभूति होने पर देश पर आक्रमण की उतनी प्राणका नहीं रह सकती कितनी कि धाव है। इस और अमेरिका जैसी महाशक्तियां भी एक दूसरे से टकराने से इसलिये संकोच करती हैं कि एक का संहार दूसरे का भी अविचार्य संहार होगा। भारत इस महाद्वीप में शान्ति स्थापित करने में प्रभावशाली योगदान लमी कर सकेगा अब वह समझ ले कि आधुनिक राजनीति में शक्ति से ही शान्ति सम्भव है। भारत का २० वर्ष का भिषत अनुभव उसे इस सिद्धांत को समझने के लिये काफी है। इस देश के कर्णधारों को यह नहीं भुलना चाहिये कि वे अपने देश की स्वाधीनता के दिन से ही शान्ति और सहयोग के नारे लगाते रहे हैं, लेकिन फिर भी उनके देश को ही अपने पक्षियों के साथ युद्ध में पुष्पना पड़ा है। हमारी सुरक्षा इसी में है कि हम अपने में वह शक्ति देना कर लें जो सब के लीने को दे—सर्वपक्ष के पहले लीके पर।

भारत की प्रतिरक्षा नीति के दो स्पष्ट उद्देश्य हैं—सब को युद्ध करने का साहस न होने देना और युद्ध हो ही जाये तो सस्ये सब की पराजय अनुभव्यमाना बना देना। स्पष्ट है कि समुचित प्रतिरक्षा-नीति युद्ध सम्भव तो है ही शान्ति बनाये रखने का उपायान भी है। अब चीन जैसा शत्रु परमाणविक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनता जा रहा है पाकिस्तान प्रत्येक सम्भव उपाय से प्रत्येक सम्भव पक्ष बरक सेने की नीति पर चल रहा है, तो

भारत अपनी प्रतिरक्षा नीति का पूरा समर्थ और शान्ति बनाय गयेन का उपादान तभी बना सकता है जबकि वह भी परमाणु धातुओं का इतना विकास कर दे कि प्रथम तो शत्रु को मुह्र करने का साहस ही न हो और यदि वह साहस कर ले तो हमारी सतर्क और हमारे धनु धातुम शत्रु की पराजय आवश्यकभावी बना दे। समुचित शक्ति-संयुक्त ही भारतीय उपमहादीप में शान्ति ला सकता है।

उपरोक्त ठकीं क आधार पर ही भारत के वर्तमान नीति-निर्माणियों को बारम्बार साग्रह किया जा रहा है कि वे आणविक धातुओं का निर्माण न करने का नीति का अविमम्भ तिलाञ्जनी देकर जनमत का आधार करें और देश के अविध्य को सुरक्षित बनायें। कम आणविक शक्ति से ही हमारी सतर्क इगनी समर्थ हो सकती है कि आक्रमकालीन देश को वे कुछ घणत आक्रमण का विचार बना सकें। ही भारत की आक्रमक प्रतिष्ठा-नीति का मतलब सिर्फ इतना होना कि हम अपने देश की रक्षा करें—औ इसके लिए अक्रमण पड़ने पर आक्रमण भी कर सकते हैं। हममें अब यह सम होना चाहिये कि हम ई ट का बचाव पत्थर से १० मैगाटन का जवाब ३० मैगाटन में दे सकें। तभी हमारी सतर्क असेल हीकार बन सकती। आलापका का कहना है कि भारत का आणविक छतरी पान अब विचार की कल्पना भी छोड़ देनी चाहिए क्योंकि दूसरों के बम पर कूड़ने वाला राष्ट्र सुरक्षा की दृष्टि से कभी निश्चित नहीं हो सकता।

उप आलापनाओं और विचार न बाधक रहति घनी तक भारत सरकार परमाणु बम न बनाने की बात ही कर रही है किन्तु इस बात क मकेल प्रभाव मिलन मग है कि आणविक होने पर भारत सरकार धनु धातुम न बनाने की अपनी नीति पर पुनर्विचार करन का तैयार हो जायेगी। यह 'आणविक' स्थिति अब घायेगी इसका निश्चय तो भारत सरकार ही करेगी लेकिन घनेक विदेशी पर्यवेक्षकों की चारणा है कि भारत से परमाणु घसत्रों के विकास की समस्या पर सत्रिय रूप से सोचना शुरू कर दिया है और अधिक समय तक जनमत की उपेक्षा करना उतक लिए संभव नहीं होगा। कनाडा के पत्र विकारिया कोलोमिस्ट में एस्टनी एल मोबो ने भारत के परमाणु शक्ति नयन होने के बारे में विचार व्यक्त किया है—

घाभा है भारत भी अब परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों की बिरादरी में शामिल होगा। चीन के हाइड्रोजन बम बना देने से भारत को परमाणु घसत्र बनाने का फैसला करना ही पड़ेगा।"

हाइड्रोजन बम बनाने में सफल होने के बाद विश्वस्त सुत्रों से अब यह सूचना मिल रही है कि एक वर्ष के भीतर ही चीन परह्र ही भीत की दूरी तक पार करने वाले प्रयोगात्मक बना लेगा। इन दो घटनाओं से बहुर होकर भारत की वर्तमान सरकार को आणविक रूप से परमाणु घसत्र बनाने के निर्णय की आवश्यकता करनी होगी। इसर भारत की राजनीतिक घटनाओं से

भी यही तर्कित किया है कि परमाणु प्रस्त्र बनाने के पक्ष में भारत न ब्रह्म लक्ष्मी निर्णय नहीं किया था वह शायद वर्तमान सरकार को प्रीति ही करना पड़े। सत्ताधारी बल कायस के बहुत से नेताओं और प्रतिपक्षी दलों के संसद सदस्यों का वर्तमान सरकार पर बराबर दबाव पड़ रहा है कि एशिया में अखिल-संतुलन बनाये रखने के लिए परमाणु बम बनाने में अब भारत को अग्रणी करनी चाहिये।

भारत के सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वह अमेरिका और सोवियत संघ से अलग दोनों से परमाणु प्राक्मण की स्थिति में सुरक्षा की मागस्टी मगने या फिर अपना परमाणु बम बनाने। अगर भारत पहला रास्ता चुनता है तो स्वाधीनता मिशन के बाद बीस वर्ष से जली जा रही इसकी परम्परा अखिल-मिशन हो जायेगी इसलिए बेहतर रास्ता उसके लिए अपना परमाणु बम बनाना ही है जिससे उसके शत्रु डरते रहे।

भारत में सामरिक मामलों के जानकार सैनिक विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ सभी का अर्थान है कि पड़ोसी देशों के साथ लगने वाली भारत की १ हजार २५ मील लम्बी सीमा परमाणु छाले की गारण्टी से सुरक्षित नहीं रह सकती। भारत के महा मापाई मठभेदों प्राधिक प्रसन्नोप और अिन अन्य ऐसी बाधों को विचटन की प्रकृतियों का नाम देते हैं, चीन उनका अपने पक्ष में फायदा उठाना चाहता है। वास्तव में देखा जाये तो भारत ऐसी स्थिति में है कि एशिया के परमाणु-अखिल संतुलन को ठीक रख सकता है। सम्बन्ध में सामरिक विषय के शोध संस्थान में भारत के मैजर अमरत सोमवत ने बताया था कि भारत एक वर्ष में अपने प्रथम परमाणु बम का विस्फोट कर सकता है।

विश्वस्त अनुमानों से पता चलता है कि परमाणु स्रष्टियों के निर्माण में लेबी ने घान से भारत दो वर्ष के बाद प्रति वर्ष दो ही परमाणु प्रस्त्र बनाने की क्षमता रखता है। अब रहा प्रक्षेपण भी का प्रसन्न। सामरिक बुद्धि से माण्ड में माङ्गवाठ में चीनियों द्वारा निर्मित परमाणु अखिल प्रतिष्ठान को नष्ट करने की क्षमता है और भारत को अपनी इस क्षमता पर ही भरोसा करना चाहिए।

EXERCISES

- 1 Describe the main features and objectives of Indian foreign policy since independence.

अतापत्रा के बाद की भारतीय विदेश नीति के मुख्य लक्ष्यों और लक्ष्यों का वर्णन कीजिए।

What do you mean by India's policy of non-alignment? Do you think that it is a sound policy? Give reasons.

भारत की अखण्डता की नीति से घाय क्या घनिप्राय सेत है ? क्या घायकी दृष्टि में यह एक ठोस नीति है ? कारण बताइये ।

- 3 "The policy of India is the policy of peace" Discuss and assess India's contributions to the maintenance of world peace

भारत की नीति शांति की नीति है । विश्व शांति को बनाये रखने में भारत के योगदान की विवेचना और उसका मूल्यांकन कीजिए ।

- 4 Discuss the significance and applicability of the Panch Shila or five principles of Peaceful co-existence.

✓ 'पंचशील' अथवा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के पांच सिद्धांतों का महत्त्व और उनके प्रयोग की विवेचना कीजिए ।

- 5 Describe the role of India in world politics since 1947 1947 से विश्व राजनीति में भारत की भूमिका का बहान कीजिए ।

6. Write short notes on India's relations with the U.S.A., U.S.S.R., and Pakistan.

संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ और पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्धों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये ।

- 7 "The Chinese attack on India in October 1962 marks a turning point in the Indian foreign policy" Do you agree? Give reasons.

"अक्टूबर 1962 में भारत पर किया गया चीना आक्रमण भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन अथवा मोड़ लाने वाला बिन्दु है ।" क्या आप सहमत हैं ? कारण बताइये ।

- 8 Review India's relations with China and add a note on Colombo Proposals.

✓ चीन के साथ भारत के सम्बन्धों का सर्वेक्षण कीजिए और कोलम्बो प्रस्तावों पर एक टिप्पणी लिखिये ।

- 9 Examine India's relations with Pakistan and assess how far it has affected India's relations with other countries.

पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्धों की परीक्षा कीजिए और यह मूल्यांकन कीजिए कि अल्प देशों के साथ भारत के सम्बन्धों का इतने कहीं तक प्रभावित किया है ।

10. Mark the important developments in India's relations with Pakistan since 1960.

1960 से भारत-पाक सम्बन्धों के महत्वपूर्ण विकास का बहानाइये ।

- 11 Discuss and analyse the causes and results of the Indo-Pakistan War of September 1965

सितम्बर 1965 के भारत-पाक युद्ध के कारणों और परिणामों का विवेक्षण और विवेचना कीजिए ।

12. Write a critical note on Tashkent Agreement.
 ✓ टाशकंद समझौते पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए ।
13. Write a critical note on the foreign policy of India since independence
 ✓ स्वतंत्रता के बाद से भारत की विदेश नीति पर आलोचनात्मक नोट लिखिये ।
14. Discuss the attitude of India's Foreign Policy on the activities of the U.N
 संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों या कार्यवाहियों पर भारत की विदेश नीति के दृष्टिकोण या व्यवहार की विवेचना कीजिए ।
15. Examine critically the arguments for and against the Pakistan's view of the Kashmir question. What difficulties prevent its solution?
 काश्मीर प्रश्न पर पाकिस्तानी दृष्टिकोण के पक्ष और विपक्ष के तर्कों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये । इस समस्या के समाधान में कौन सी कठिनाईयाँ पविक हैं ?
16. Make a critical estimate of India's foreign policy
 भारत की विदेश नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।
17. What are the defects of Indian foreign policy? Do you think they are inherent?
 भारत की विदेश नीति के दोष क्या हैं ? क्या आप के विचार से वे परम्परागत हैं ?
-

12

दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया

(SOUTH & SOUTH EAST ASIA)

- १ एशिया की जागृति
- २ पाकिस्तान की बिदेस मोति
- ३ नेपाल
- ४ ची संका
- ५ दक्षिण-पूर्वी एशिया धर्य धीर म्हुत्ता
- ६ बर्मा
- ७ थाईलैण्ड
- ८ लाओस
९. विपत्तनाम
- १० मलैशिया
- ११ इण्डोनेशिया
- १२ फिलिपाइन्स

“एशिया के देशों में यूरोप के सम्पर्क के पिछले ती बरों में राष्ट्रीयता का विकास सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना है। ‘यहाँ राष्ट्रीयता का विकास प्रत्यक्ष रूप में विदेशी शासकों के विरोध और बगैरत-परिष्करी सम्पर्क के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली ऐतिहासिक-सहानता की बेतना धीरे सांस्कृतिक सहानता के स्वामिनाम के कारण हुआ है तथापि एशियाबाद की भाषना का काम विस्तृततः यूरोपियनबाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति से पहले एशियाबाद या एशियाबाद जैसी कोई भाषना नहीं थी।”

—के एम० बलिवकर

‘राष्ट्रबाद इन विश्व में
 बहुत से लोगों के लिए एक
 समयातीत सिद्धान्त हो सकता है
 एशिया और अफ्रीका के हम लोगों के
 लिए यह हमारे प्रयत्नों का एक प्रमाण
 बरगम है। इसको समझ लीजिये और
 आपके हाथ में अधिकतम सुझाव
 इतिहास की कुञ्जी का जाती है।”

—राष्ट्रवादी मुक्त

----- एशिया में कोई ऐसी राजनीतिक वास्तविकता नहीं है विरोध-
 विरुद्ध सम्बन्ध कम्युनिस्टा साम्यवाद विपत्तनाम या भारत पाकिस्तान
 अफगानिस्तान अरब या यहाँ तक कि कोरिया सोवियत क्ल या
 जापान से हो जो किसी न किसी रूप में चीन को पक्ष में
 न बलम्ब से या बलको प्रभावित न करे। ---

विरोधतः एशिया महाद्वीप पर किसी ऐसे
 मुझ अर्थवा शक्ति की कल्पना नहीं
 की जा सकती है जिसमें
 चीन निर्यात न हो।”

—वाल्स डिपाल

एशिया की जापति (Rise of Asia)

एशिया पूर्व में प्रजासत्त महासागर से पश्चिम में भूमध्यसागर तक तथा उत्तर में आर्कटिक महासागर से दक्षिण में हिन्द महासागर तक मध्य अक्षांशों का सबसे बड़ा महाद्वीप है। दुनिया की धापी से पश्चिम अक्षांशों का इस महाद्वीप पर निवास करती है। सभी प्रकार के सभी और सभी संस्कृतियों तथा भाषाओं का यह महाद्वीप घर है। इस महाद्वीप पर विभिन्न प्रकार के जलवायु भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु पाई जाती है। परन्तु इन सब भिन्नताओं के होते हुए भी इस महाद्वीप में एक खोज समान है—आधुनिक भौतिक और तकनीकी विकास की अवस्था। १८वीं व १९वीं शताब्दियों में जब यूरोप तथाकथित औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) के प्रभाव में मध्यकालीन अवस्था त्याग कर आधुनिक अवस्था में पहुँच रहा था तो ऐसे समय एशिया में अपनी परम्परावादी संस्कृति एवं राजनैतिक-संगठन सम्बन्धी प्राचीन प्रथाओं का परिवर्तन करने में इन्कार कर दिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि यूरोप प्रगति करता जाता था और एशिया पिछड़ता गया। इतना ही नहीं 'पश्चिम' ने एशिया को पराजित करके उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को भी समाप्त कर दिया। जर्मनी और जापान बाद में ईरान, नेपाल और चीन को घाट कर मध्यम सम्पूर्ण एशिया पारशात्य राष्ट्रों के स्वातन्त्र्य में आ गया। अष्टम शताब्दी में ही तथा मसाला सिंगापुर और इंग्लैंड में जम मय क्रांति में ही हिन्दुओं में डेरा जमा लिया, इन्हीं में ईस्ट इंडीज में पैर गाँव लिये क्लिमा न चीन के साम्राज्य प्राप्त महिष्ठ साइबेरिया या बाह्य असीया में और स्पेनिश लोगों ने (बाद में अमेरिकियों ने) फ्लिपिन्स में अपने गृह जमा लिये। यहाँ तक कि पुर्तगाल जैसे छोटे से राज्य ने भी अपने उद्विग्न जयम कर लिये। वे देश भी जो बाहिरा और स्वतन्त्र थे व्यावहारिक दृष्टि से विदेशी राष्ट्रों के आधिकारिक और राजनैतिक प्रभाव से मुक्त नहीं रह सके। पश्चिमी एशिया अपने मध्य-पूर्व के राष्ट्र जो प्रथम महायुद्ध से पहले 'ओटोमन साम्राज्य' के अधीन थे १९१९ के पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा अन्वेषित एवं नवीन व्यवस्था—संरक्षण पद्धति (Mandate System) के अन्तर्गत जब यूरोप के शेष साम्राज्यों के नियन्त्रण में आ गये। केवल जापान ही एक ऐसा राष्ट्र रहा जिसने पारशात्य साम्राज्यवाद में पूर्ण निष्ठा रखे हुये स्वयं को औद्योगिक बना दिया अपने पिछड़ेपन के सभी बिन्दुओं को मिटाया और शेष एशियाई राष्ट्रों के दुर्भाग्य से अपने धर्म का बचाने में सफल हो गया। यही नहीं वह कालांतर में औद्योगिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में पश्चिम का एक और प्रतिद्वन्दी सिद्ध हुआ।

एशिया में स्वातन्त्र्य-आन्दोलनों का मुख्यालय

एशिया के राष्ट्र पहले से ही आधिकारिक दृष्टि से अविश्वसित अवस्था में थे। पारशात्य शक्तियों ने उन पर अपना आधिपत्य जमाने के बाद उनके आधिकारिक

भोषण की नीति अपनाई। इस नीति ने कमसे इतना भयावह रूप से लिया कि एशिया के घनेक समूह राज्यों को भी सुखमरी पीड़ा और विभिन्न कष्टों का निहारना पड़ा। जब तक एशियावासियों में बिदेसी मत्ता के वास्तविक स्वरूप और प्रकृति को नहीं पहचाना तब तक वे चुपचा। और निष्कप रहे। लेकिन जब उन्हें वास्तविकता का मान हुआ अपने बहुत हुए कष्टों की विवसित कर देने वाली अनुभूति हुई तो शीघ्र ही वे यह समझ गये कि उनकी इन सब कठिनाइयों का निराकरण तभी सम्भव हो सकेगा जब वे बिदेसी शासन से मुक्ति पा सकेंगे। इस प्रकार की चेतना बहुत कुछ पश्चिमी ज्ञान साहित्य कानूनों और संस्थाओं के कारण पैदा हुई। पूर्व को पश्चिम के राष्ट्रवादी विचारों और उसके उच्च जीवनस्तर ने सर्वाधिक प्रभावित किया। प्रो० शुमन (Schuman) के शब्दों में— इन पिछड़े हुए राष्ट्रों के नये बुद्धिजीवियों ने विज्ञान युद्धकला तथा राजनीति में पश्चिमी राष्ट्रों की बखता तथा निपुणता का ज्योंही एक धार्मिक भाग प्राप्त किया थाही उनमें इस बात की मांग करने वाले नेतागण भी पैदा हो गये कि उन्हें अपना भविष्य स्वयं निरिक्त करने का अधिकार मिलना चाहिए।¹

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर एशिया और अफ्रीका में स्वतंत्रता राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र की पहली सहर आई। एशिया कासी 'पश्चिम' की सम्मन्धता और अपनी निपनता तथा दीन हीन अवस्था से परिचित होने के बाद आत्म-निर्णय की मांग करने लगे। 'भारत भारतीयों के लिये', 'चीन चीनियों के लिये' आदि आवाजें बुलन्द होने लगीं। एशिया करबट सेकर विश्व में अपने उचित स्थान की मांग करने लगा। सम्पूर्ण महाद्वीप में एक छोर से सेकर दूसरे छोर तक वास्तव्य प्रकृति से छुटकारा पाने की एक उद्दाम सामन्त। बाधत हो गई जिसने एक लम्बे स्वातन्त्र्य आन्दोलन की संघर्ष का रूप धारण कर लिया। यद्यपि विभिन्न एशियाई राज्यों के इन राष्ट्रवादी आन्दोलनों का स्वरूप एकसा नहीं था तथापि उनका उद्देश्य अवश्य एकसा था—पश्चिम के उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद और आति-शेरमात्र का विरोध करना। फलस्वरूप एशिया के लगभग सभी पराधीन राज्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी स्थिति पर अस्मितकारी पुनर्विचार की मांग की। एशियाई राष्ट्रों की इन नवीन मांगना की स्पष्ट अभिव्यक्ति अगस्त १९२६ में यूरोप में बियरविले (Bievville) नामक स्थान पर आयोजित जाति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एशियाई प्रतिनिधियों के उस मांग-पत्र में हुई जिसमें यह भोषणा की गई कि—

"यूरोपियन विचारकों के अनुसार विश्व सम्भवत उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित है जिनमें यूरोपियन जातियाँ निवास करती हैं। मानव संख्या के

1 "Once the new intellectuals among backward peoples acquired the rudiments of Western skills in science, warfare and politics, leaders arose among them to demand that they take their destinies into their own hands."

बहुमत तथा अपनी सर्वाधिक प्राचीन सम्यताओं वाला एशिया महादीप धीर विशेष समस्याओं में उलझा हुआ अपनी महादीप यूरोपियन बिचारकों के अनुसार विश्व का भाग नहीं है। हमारा यह नज़र भिन्न है कि यह दृष्टिकोण पसंद है। यदि विश्व स्वामी शांति का इच्छुक है तो बड़ा स्वामी या क्षेत्रीय शांति नहीं होनी चाहिए यदि आप शांति चाहते हैं तो पहले आपकी उन कारणों को दूर करना चाहिए जिनसे एशिया में यूरोप के प्रति विरोध पैदा हुआ है। यदि आप एशिया व यूरोप में एक सहयोगी-बन्धुत्व की स्थापना करने में सफल हो जाते हैं तो आप विश्व-शांति की दिशा में सबसे बड़ा कदम उठा लेंगे। जो चीज हम सहयोग के मार्ग को घबड़ा किए हुए हैं वह एशिया के शोषण तथा अंधिम में अधिक राज्यों को अधीनत्व बनाने के पश्चिमी राष्ट्रों की घुटबन्धी है।”

एशियाई प्रतिनिधियों द्वारा अस्मिन्कृत किया गया उपरोक्त बिचार सम्पूर्ण विश्व का इस बात का निश्चित संकेत था कि एशिया अब अपने सगा है धीर अपनी महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति व लिए अब वह हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने की मन-स्थिति में नहीं है। एशिया के क्षेत्रीय से हाने वाले नव जागरण ने एशिया के इस निश्चय को सीधे ही प्रकट कर दिया। द्वितीय महायुद्ध ने जिसमें यूरोपियन राष्ट्रों के दो मुठ परस्पर मरणांतक संघर्ष में प्रारंभ रहे वे सदियों से उपेक्षित धीर शोषित एशिया महादीप को अपना उद्देश्य प्राप्त करने का सुवर्ण प्रदान किया। नैतिक धीर शौचोन्मिक्त दृष्टि का समूह व अपनी आपान ने हिंस्रता से फासीसियों को निकाल फेंका जब ईस्ट इंडीज को कब्जे में कर लिया जिनके अध्येय शिमापुर का भीत लिया धीर किर्गीपाइन्स में अमेरिका जमी महाकक्ति को पछाड़ दिया। दूसरी ओर १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन ने भारत में अध्येय साम्राज्य की नींव हिला दी। ऐसा लगता लगा कि श्वेत जातियों का मितारा अब टूटने को है। परन्तु दुर्भाग्यवश एशिया महादीप को अभी कुछ वर्षों तक साम्राज्यवादी दुर्दिन धीर देखने से। १९४३ में पश्चिमी शक्तियों की विजय के पश्चात् साम्राज्यवाद की पुरानी व्यवस्था पुनः ज्यों की त्यों स्थापित रह गई।

लेकिन अब यह स्थिति अधिक समय तक जारी रहने वाली न थी। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर आई हुई स्वतन्त्रता राष्ट्रीयता धीर शोचर्तन की लहर में द्वितीय महायुद्ध के बाद प्रथम बार का रूप धारण करके समस्त एशिया धीर अंधिम को आप्लावित कर दिया। द्वितीय महायुद्ध में श्वेत जातियों को जिन प्रारम्भिक पहुरी पराजयों का सामना करना पड़ा था उमत्त एशियाई जनता को यह विश्वास था परा कि पश्चिमी राष्ट्र अपना 'गारी' समझी अध्येय नहीं है। इस अनुभूति के फलस्वरूप स्वातन्त्र्य आन्दोलनों में नये प्राण फूले गये। वक्रे हुए यूरोप के लिये जनको दबाना मुश्किल हो गया धीर आजादी की लहर चली कि एक के बाद एक सभी राष्ट्रों के स्वयं पूरे होते चले गये। वास्तव में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि १९१९ के बाद एशिया धीर अंधिम के महादीपों में साम्राज्यवाद की पराजय आरंभ हुई धीर १९४३ के बाद दमका समुत्तमूलन होने लगा। पश्चिम की प्रभुता धीर

सोवतंत्रवाद के मार्ग का अनुयायी बनने के लिए सचेष्ट है और दूसरी तरफ साम्यवाद भी अपनी मत्ता जमाने की होड़ में व्यस्त है। यदि एशिया में औद्योगिक क्रांति एवं आर्थिक विकास के कदम स्वतंत्रता के प्रागमन के पूर्व ही हो गये होते तो बिनाप परेशाना नहीं होती किन्तु आज बिडम्बना यह है कि एक तरफ तो राजनीतिक स्वतंत्रता मिसती जा रही है और दूसरी तरफ सोवों का बीजम स्तर पर भी मध्ययुगीन है। परिणामतः आज का एशिया बिभिन्न बाहों के सघर्ष का पीड़ा-स्वप्न बन गया है। साम्यवाद अपनी नवीन किन्तु गहन भूमिका में प्रयत्नित हुआ है और समग्र एशिया को अपने में समाविष्ट कर लेना चाहता है। पश्चिमी पूंजीवाद सोवतंत्र में प्रथम विकास के कदम सहम-सहम कर उठाने की प्रवृत्ति रखने के कारण सफलता की दौड़ में साम्यवाद से पिछड़-सा रहा है। रंग की तरकी का उदाहरण तो विश्व के सामने है ही किन्तु उससे भी अधिक एशिया में साम्यवादी चीन का बेहतरीन उदाहरण है। यदि पश्चिम के शक्तिशाली और समग्र मानवतात्मक राष्ट्र चाहते हैं कि एशिया पूरा का पूरा साल रम में न रंग जाय तो यह प्रयत्न है कि उन्हें भारत जैसे सोवतंत्रात्मक राष्ट्रों की प्रत्येक सम्भव गहायता को धोस कर करनी चाहिए ताकि वे सोवतंत्र के प्रत्येक स्तम्भ बम कर एशिया में बहते हुए साम्यवाद पर प्रभावी प्रहार नया सकें।

एशियाई व्यक्तित्व का विकास—बाणभुक्त सम्मेलन

भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक भूमिकाओं आर्थिक दृष्टिकोणों तथा राजनीतिक अनुभवों वाले लोगों का महाद्वीप एशिया जब स्वतंत्रता की पट्टाबाइयां सेने लगा तो स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार की बिघटनकारी शक्तियां तलाशने लगीं। जाति भेदनास्य और कर्तुनाभा न साम्प्रदायिकता व स्वार्थसिप्ता ने पूंजीवाद और साम्यवाद आदि ने अपना सिर उठाया। कुछ राष्ट्रों में गृह-युद्ध हुए, वहीं साम्प्रदायिक बने और बिद्राह हुए तो वहीं मूल तथा निरपेक्षता से तप्त और पीडित जनता व प्रवृत्त हुए। राष्ट्रवादी नेताओं को जिन्होंने बिदेशी सैनानों से मोहा निय या सब स्वदेशी सैनानों का मामना करना पडा। जब उन्होंने अपने सब गिई के बिषय पर दृष्टि डाली तो उन्हें एक-दूसरे को पराजित करने पर तुले हुए वं 'शक्ति-गुटों' का संघर्ष बिगाई दिया। यह संघर्ष एशिया-बागियों के लिए जनरनाय या बयोरि उनकी मयाबह ममस्याओं के समाधान के लिए आंतरिक म्यिरला और अन्तर्राष्ट्रीय शांति की अनिवाय प्रावणयकता थी। अपने का इन जनरनाय परिस्थितियों में पाकर एशियाई राष्ट्रों में एक प्रकार के सामुदायिक दृष्टिकोण का विकास हुआ और उसमें प्रत्येक यह अनुभूति प्राप्त हुई कि अपनी बिडनाइयों से दूर कर बिजय पाते के लिए उन्हें पारस्परिक एकता संगठन और सहयोग का परिचय देना होगा।

इस प्रकार की एकात्मकता की नवीन पतन की परिधिगत माय १९४७ में बिषय मामलों की भारतीय परिषद् (Indian Council of World Affairs) के सन्वाकषण में नई दिल्ली में प्रायोजित एक संसाराचारी

एशियाई मंत्री सम्मेलन' (Asian Relations Conference) में हुई। सम्मेलन ने घनेक प्रस्ताव पारित किये और घनेक निर्णय लिए तथा एक 'एशियाई मंत्री संगठन' (Asian Relations Organisation) की निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए स्थापना की—

- (i) एशियाई समस्याओं और सम्बन्धों के महाद्वीपीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं के अध्ययन और ज्ञान को प्रोत्साहित करना
- (ii) एशियाई राष्ट्रों में तथा एशिया और विश्व के दूसरे राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग को बढ़ावा देना; एवं
- (iii) एशियाई जनता की प्रगति और हितों में बुद्धि करना।²

जनवरी १९४६ में १५ राज्यों के प्रतिनिधियों ने औपनिवेशिक विषयों पर, विशेषतः इण्डोनेशिया में जब सरकार द्वारा की गई सैनिक कार्रवाही से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए एक अन्य सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें समापति महोदय ने जोषणा की कि "एक बात निश्चित है। जब आक्रमण के सम्मुख आत्मसमर्पण प्रथम उपनिवेशवादी शासन की पुनर्स्थापना को सहन नहीं किया जायेगा। सम्मेलन में एक प्रस्ताव भी पारित हुआ जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि एकत्रित राज्यों के मतानुसार इण्डोनेशिया के विरुद्ध जब पुलिस कार्यवाही 'राष्ट्र संधीय पार्टी सुरक्षा परिषद के प्रयासों और शक्तिपूर्वक हस्त ले लिए स्थापित मध्यस्थता समिति (Good Offices Committee) की ओर प्रवृत्तता के समान है।"³

जनवरी १९४६ के इस सम्मेलन में ज। १५ राज्य उपस्थित हुए वे इस प्रकार थे— अफ़गानिस्तान, ऑस्ट्रेलिया, बर्मा, चीनका गिन इण्डोनेशिया, भारत, ईरान, ईराक, जेबमान, पाकिस्तान, फ़िलीपाइन्स, सूरी अरब सीरिया और यमन।

मई १९५० में फ़िलीपाइन्स द्वारा बोमुई नामक स्थान पर एशियाबासियों ने सांस्कृतिक एवं व्यापिक सहयोग की समस्या पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया। उत्पश्चात् अग्रेष १९५४ में भारत पाकिस्तान और चीन बर्मा और इण्डोनेशिया के प्रमाण मंत्रियों ने हिन्द चीन सहित अन्त्याय समस्याओं पर विचार करने के लिए परस्पर बैठ की।

दिसम्बर १९५० में उपरोक्त पाँचों प्रधान मन्त्रीगण बोबोर में एकत्र हुए और उन्होंने एशियाई एवं अफ़्रीकन राष्ट्रों का एक बृहत् सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अफ़्रीका में नवजागरण की जो सहर पाई उसका सर्वोत्तम रूप वाष्पुङ्ग-सम्मेलन में ही प्रकट हुआ। भारत

बर्मा धीर इण्डोनेशिया द्वारा मिस कर विश्व इतिहास में पहिली बार इस प्रकार के राष्ट्रो-एशियाई सम्मेलन का आयोजन किया गया। भारत सहित २६ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। पहिली बार साम्यवादी चीन भी गैर-साम्यवादी राष्ट्रों के साथ सम्मेलन में भाग लेने के लक्ष्य से उपस्थित हुआ। यह सम्मेलन १० अप्रैल १९५५ से २७ अप्रैल १९५५ तक बना धीर जब यह खत्म हुआ तो लगभग सम्पूर्ण संसार को यह विश्वास हा गया कि सोया हुआ एशिया धीर एकता का एक भाग उठा है एक नई आवाज धीर एक नये संदेश के साथ। यह आवाज विद्रोह और सशस्त्र जाति की लड़ी की यह आवाज शोक-मुद्र की गरी थी यह आवाज तो जाति मैत्री सम्मेलन और मानिपूर्ण सह प्रतिनिध की थी जिसमें 'बीसो धीर बीन बा' की भाषणा घोषणा की। इस नई आवाज धीर इस नये संदेश को दुसरे करन बायो म प्रमुख थे धीर सेनापती श्री जवाहरलाल नेहरू जिसके विशेषपूर्ण धीरपूर्ण धीर दूरदर्शितापूर्ण विचारों धीर उद्गारा म उपस्थित प्रतिनिधियों का ध्यान सहज ही आकृष्ट कर लिया। यह तब हिमा में विश्वास करमे बाय राष्ट्रों का भी सम्मोचनार्थक उनकी बागों क बचन का स्वीकार करमा पड़ा धीर स्वाकार करने का डोग रचना पड़ा।

बाण्डुङ्ग सम्मेलन म उपस्थित राष्ट्रों क समझ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि—स्वतन्त्रता से वास्तविक अमिप्राय क्या है? क्या सरकार की राजधानी से विदेशी ध्वज उठर जान धीर उसके स्थान पर राष्ट्रीय-ध्वज सहारा देने मात्र से स्वतन्त्रता का सत्य पुरा हो जाता है? सम्मेलन में उपस्थित अधिकांश प्रतिनिधियों न यही मत व्यक्त किया कि ध्वजारोहण मात्र से स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं होती। काफी विचार विमल से उपरान्त प्रतिनिधियों इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वास्तविक स्वतन्त्रता तभी है जबकि उसमें निम्नलिखित तत्वों का समावेश हो—

- (i) विदेशी प्रभाव से मुक्ति एवं पूरा सौकरन्तारमक स्व शासन
- (ii) जाति सम्प्रदाय धीर रंग का किसी प्रकार भेद भाव धीर भाषा मानव प्रतिष्ठा की साम्यता
- (iii) नीच धार्मिक समृद्धि जिसके साथ अधिकाधिक जनता को मुक्त हो एवं
- (iv) युद्ध का सम्मूचन तथा सम्मेलन का प्रसार।

बाण्डुङ्ग सम्मेलन द्वारा इस बात की भी घोषणा की गई कि उपनिवेशवाद के सभी रूपों का सम्मूचन करना चाहिए। फिर भी सम्मेलन के प्रतिनिधियों में उपनिवेशवाद के रूपों के सम्बन्ध म भारी मतभेद प्रकट हुए। श्री महा क तन्त्रातीन प्रधान मंत्री जान जोयेनबाता का मत था कि उपनिवेशवाद में साम्यवादी शासन के उभार का भी शामिल किया जाना चाहिए जो जाति और विषम शक्ति स्थापित किया जाता है। परन्तु सम्मेलन के धीर प्रतिनिधियों ने साम्यवादी शासन क उपासना की बात नहीं की उपस्थिति में इस परिभाषा का स्वीकार करने का विरोध किया।

इस विषय पर सम्मेलन में कटु और उग्र विचार हुआ और घट में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि जनता की इच्छा के विरुद्ध शक्ति और विध्वंस द्वारा स्थापित शासन भी उपनिवेशवाद है।

बाणभुक्क—सम्मेलन की एक प्रमुखतम विशेषता यह रही कि उसने राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक व्यवहार के इस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिसमें से पाँच सिद्धान्त तो पंचशील क श्रौ से। ये इन सिद्धान्त इन प्रकार के—

(१-२) मौलिक मानवीय अधिकारों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सम्निहित सिद्धान्तों के प्रति सम्मान की भावना

(३) बड़ मसलों तथा छोटे-बड़ राष्ट्रों की समानता

(४) दूसरे देश के मामलों के हस्तक्षेप न करना

(५) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार प्रत्येक देश को धातमरखा करने का अधिकार

(६) किसी महाशक्तियों द्वारा विशेष उद्देश्यों को पूरा करने के प्रयोजन से बनाई व्यवस्थाओं से पूरक रहना तथा दूसरे देशों पर दबाव न डालने से बचना

(७) धातमरख के कायों की न करना, हमसे की कमकिया न देना

(८) सब घटवर्ग राष्ट्रीय विचारों का शान्तिपूर्वक उपायों से निबटारा करना

(९) पारस्परिक हिंसा की वृद्धि, एवं

(१०) श्वास तथा घटवर्ग राष्ट्रीय शक्तियों के प्रति सम्मान।

बाणभुक्क—सम्मेलन के महत्व को इंगित करते हुए एक विद्वान् बार्नेट ने अपनी पुस्तक 'साम्यवादी चीन और एशिया' में लिखा है कि—'बाणभुक्क सम्मेलन एशिया और अफ्रीका के पुनरोत्थान का प्रतीक था। यह एक बमूठ पूर्व ऐतिहासिक सम्मेलन था जिसमें एशिया और अफ्रीका के प्रमुख नेता पश्चिमी महाशक्तियों के प्रभाव से मुक्त बैठक में सम्मिलित हुए थे जो इस बात का ज्वरसंत उदाहरण था कि विश्व के मामलों में अब एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों का भी प्रभाव बढ़ रहा है।

घट में बाणभुक्क सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि "हम अर्द्धक्रियावादी एक ही प्रकार के अत्याचार से पीड़ित रहे हैं और हमारा लक्ष्य भी एक है। हम अफ्रीका और एशिया बाओ सर्वत्र एक-दूसरे के प्रति महानुभूति और हमदर्दी रखते रहे हैं। एशिया और अफ्रीका के हम लोग उपनिवेशवाद की लूट और अत्याचारों के विचार हुए हैं और इसके कारण गरीबी और पिछड़े पन की स्थिति में रहने के लिए मजबूर किए गए हैं। हमारी धातमरख बबरन बर्बाद गई है। हमारी महत्वाकांक्षाओं को कुचला गया है और हमारा भाग्य दूसरों की दया पर निर्भर रहा है। अतएव इस

बासता के विद्वत् विद्रोह करने के प्रतिरिक्त हमारे पास अन्य कोई विकल्प शेष नहीं है ।”

बाण्डुङ्ग-भाषणा की समाप्ति

यह एक उल्लेखनीय बात है कि बाण्डुङ्ग-सम्मेलन में साम्यवाद की प्रघानमंत्री चाऊ-एन-लाई ने बहुत ही चतुरतापूर्ण मुझिका का निर्वाह करके उपस्थित प्रतिनिधियों पर चीन की सदानयता की छाप छोड़ने में बड़ी कामर नहीं रसी । उन्होंने सम्मेलन में प्रस्तुत प्रत्येक प्रस्ताव का पुरजोर समर्थन करते हुए इन शर्तों को बाण्डुङ्ग पुरराया । इन एशियाबासी एक ही प्रकार के आस्थाधार से पीड़ित रहे हैं और हमारा लक्ष्य भी एक है । हमारा भाग्य दूसरों की दया पर निर्भर रहा है । बासता के विद्वत् विद्रोह करने के प्रतिरिक्त हमारे पास अन्य कोई विकल्प शेष नहीं है ।” यही नहीं जब स्व-शासन का प्रश्न आया तो चीनी प्रघानमंत्री ने जोरदार शब्दों में प्रसन्नोशिया मीरबजो और ट्यूनीशिया क लोगों के आरम्भितुंय के अधिकार का प्रबल समर्थन किया । आनीय मेदमाव के प्रश्न पर आटकीय रूप से उन्होंने सम्मेलन के प्रतिनिधियों को प्रभावित करने की श्रेष्टा की । शांति का प्रश्न उठाया तो हमें पर उन्होंने साम्यवादी जयत की धोर से प्रबलसह सह पस्थित का स्वस्थिम प्रस्ताव रख कर चीनी उदारतावाद का परिषय दिया । इतना ही नहीं उन्होंने घण्टे-एशियाई देशों की सहानुभूति प्रजित करन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतर्गत सामूहिक सुरक्षा संगठनों की स्थापना के निश्चालन को भी स्वीकार कर लिया । भी चाऊ के इन प्रत्यक्ष विनयशील धोर सहयैमात्मक रूप के पीछे एक गहरी कृत्मीनिक मेड़ियाचार्य छिरी थी । अपने देश का विस्तारवाद का मुनिघाजित नीति पर प्रथम करन के पहले घाबरायक रीतिक संवारी करने हेतु चीनी प्रघानमंत्री समय बाहूटे ये धोर इसीलिए बाण्डुङ्ग-सम्मेलन में अपने व्यवहार द्वारा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि चीन तो शांति का पुजारी है और अमेरिका के साथ अपने साथ उनके विचार में बहु बेदार है । चीन की सरकार अपनी शर्ती साम्राज्यवादी विस्तार योजना का क्रियाविध करने के लिए अपनी प्रति विश्व स धया कर पड़ीसी एशियाई राष्ट्रों को बेकबर रराना चाहती थी । भी चाऊ एशिया का नेतृत्व चीन के हाथों में आने का स्वप्न देस रहे थे ।

परंतु साम्यवादी चीन के वास्तविक इरादों से बाण्डुङ्ग सम्मेलन के प्रतिनिधि राष्ट्र घनभिन्न न थे । इनमें से अधिकांश देशों के कृत्मीनिक प्रतिनिधि पेरिप में घनेक बयों से मौजूद थे उन्हें चीन के नापाक इरादों का बहुत कुछ पता था और वे यह भी जानते थे कि साम्यवादियों के नेतृत्व में चीन की जनता को क्या मुस्य हुकाना पड़ा । असीका धोर एशिया के देशों के प्रतिनिधि इस प्रकार घोदोसन न भी परिचित न जो आसो धोर पेरिप एशिया धोर असीका महाद्वीपों में बयों से बलाये जा रहे थे । फिर भी यह विचाराव किमी को न था कि साम्यवादी चीन निज मरिष्य में ही बाण्डुङ्ग भाषणा के पनीता लया देस । धोर यही विश्वास पहले भारत को धोर अरु इण्डोनेशिया घाति देशों को घा पचानी बोला दे गया । बाण्डुङ्ग सम्मेलन के

कुछ ही समय बाद से साम्यवादी चीन ने भारत-चीन मैत्री के पाँच सिद्धांतों और वाप्युङ्ग के दस सिद्धांतों का युवा उल्कावत रूप भारत भूमि पर अपनी कुदृष्टि डालना शुरू कर दिया और घम्य देशों पर भी बहु भयना प्रभाव फैलाने का प्रयत्न करने लगा। चीन ने बात बूम कर मीमा विचार पैदा करके १९६२ में भारत के साथ बूमा संघर्ष छेड़ दिया जिससे सारे महाद्वीप का बातावरण उद्विग्न हो गया और प्रायः एक दोनो राष्ट्र युद्ध-सन्तुल्य अवस्था में हैं।

सम्मेलन में माग लेने वाले घम्य राष्ट्रों में भी राष्ट्रीय भावना की छत्रता अपने राष्ट्रीय हितों की विनिश्चिता और विघटनकारी तत्वों की प्रबलता के कारण वाष्पुम भावना बीरे बीरे समाप्त होने लगी जिसका उदाहरण हम जान में ही निहित है कि १९६४-६५ में इन्हीं राष्ट्रों का होने वाला बुरा सम्मेलन स्वयंभूत बनना पड़ा जो प्रायः एक नहीं हो पाया है।

वास्तव में यह एशिया का दुर्भाग्य है कि प्रायः एशियाई देशों में काफी लंबी दूरी पर कुकी है। भारत और चीन संघर्ष के कारण पर लड़के हैं पाकिस्तान भारत के बिकट सम्भव भावी युद्ध की तैयारी में व्यस्त है पाकिस्तान और अफगानिस्तान से पश्तुनिस्तान के प्रश्न को लेकर तीव्र मन-मुटाव है उत्तरी व दक्षिणी वियतनाम जमागत युद्ध में फंसे हैं साम्यवादी चीन और फारमोसा स्थित राष्ट्रवादी चीनी सरकार में एक दूसरे के अस्तित्व को मिटाने की बलवती आकांक्षा परिलक्षित हो अरब देश और इजरायल संघर्षपूर्ण तनाव की स्थिति में हैं अरब राज्यों में स्वयं में परस्पर स्वर्षा और विरोधी भावनाएँ विद्यमान हैं तथा इण्डोनेशिया एवं घम्य अनेक राष्ट्र चीन के प्रति घोर आक्रोश की स्थिति में हैं। इसके अतिरिक्त प्रायिक विकास की समस्याओं के प्रति विचार-नीरी में मतभेद हैं और राजनीतिक व्यवस्थाओं में अन्तर है। इस प्रकार एशिया में एकता व संयोग की अपेक्षा मतभेद का क्षेत्र विस्तृत है। सम्पूर्ण महाद्वीप समग्र तौर में एक समस्या क्षेत्र बना हुआ है।

इस युद्धभूमि के उपरान्त अब हमें प्रमुख एशियाई देशों द्वारा किये गये भोगदान का संसार की राजनीति में सामान्य रूप से और एशिया की राजनीति में विशेष रूप से विश्लेषण करना चाहिये। अन्वयन की दृष्टि से एशिया की निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है और उनमें निम्नलिखित राष्ट्र सम्मिलित किये जाते हैं—

- (i) पूर्वी एशिया—चीन जापान तथा जापान।
- (ii) दक्षिण एशिया—भारत पाकिस्तान तथा श्री लंका।
- (iii) दक्षिण पूर्वी एशिया—बर्मा इण्डोनेशिया हिन्द चीन मलाया फिलीपाइन्स तथा थाईलैण्ड।
- (iv) पश्चिमी एशिया—अफगानिस्तान ईरान ईराक सीरिया तुर्की-अरब मबनान इजरायल ट्रांसजोर्डन टर्की माइस्र तथा मिस्र (सौगोमिटर दृष्टि से मिस्र अफ्रीका का अङ्ग है परन्तु

ऐतिहासिक सांस्कृतिक धार्मिक एवं जातीय दृष्टिगत से यह पश्चिमी एशिया के पश्चिम निकट है इसलिये हमने अन्तर्गत लिया गया है) ।

पाकिस्तान की विदेश नीति पृष्ठभूमि [Foreign Policy of Pakistan Outline]

बीसवीं शताब्दी के बाद घरेलू के भारत महाद्वीप से बिछा होना पर यह मूल्य दो स्वतंत्र और प्रमुखा सम्पन्न राष्ट्रों में विभाजित हो गया । १४ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान और १५ अगस्त १९४७ को भारत पूरा स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्थापित हुए । पाकिस्तान का दो भू-भागों जो एक दूसरे से सड़कों मील दूर हैं को मिला कर बनाया गया—एक पश्चिमी पाकिस्तान जिसमें पश्चिमी पंजाब सिन्ध उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत (N.W.F.P.) बंगाल का पूर्व भाग तथा आसाम का कुछ भाग सम्मिलित हैं । पाकिस्तान का कुल क्षेत्रफल ३,९५,९२६ वर्ग मील और आबादी लगभग १० करोड़ से भी ऊपर है ।

अपने जन्म के तीसरे दिन ही अर्थात् १९४७-४८ में पाकिस्तान को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त हो गई । मुस्लिम लीग के प्रेसीडेन्ट एवं प्रधान नेता श्री मुहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल बने और प्रधानमंत्री पद भी नियुक्त अली साँ ने समाया । श्री जिन्ना पाकिस्तान के लिए शक्ति और एकता के सबसे बड़े स्रोत थे और पाकिस्तान का कोई राजनीतिक इस अर्थका नेता, उनका विरोध के न के साथ नहीं करना था । १९४८ में अन्तर राष्ट्र से उनका निध हो गया और इस प्रकार पाकिस्तान के राजनीतिक जीवन में शुरू से ही एक ऐसी रिक्तता था गई जिसको पूर्ण अन्य कोई व्यक्ति नहीं कर सकता था । श्री जिन्ना के बाद पाकिस्तान का राजनीतिक नेतृत्व प्रधानमंत्री श्री नियुक्त अली साँ के कंधों पर पड़ा लेकिन न तो वे श्री जिन्ना के समान लोकप्रिय और सक्रियताशील ही थे और न उन्हें पाकिस्तान के सभी राजनीतिकों का व्यापक समर्थन ही प्राप्त था । अर्थात् राष्ट्र के मध्य अनेक गृह और देश नीति सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न थी । हममें काश्मीर समस्या नहरी पानी की समस्या और देश के धार्मिक विकास और शरणार्थियों की समस्याएँ प्रमुख थी । श्री नियुक्त अली साँ अपने नेतृत्व में इनमें से किसी भी समस्या का समाधान नहीं कर पाये और पाकिस्तान के राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में उनका शासन के प्रति विरोध निरन्तर बढ़ता गया । १६ अक्टूबर १९५१ को राजनीतिकी में आयोजित एक सभा में जायानु बरत समय एक अकालम युद्ध अक्टूबर द्वारा श्री नियुक्त अली की हत्या कर दी गई । इस तरह अनेक जर्म के ४ वर्षों के अन्तराल में पाकिस्तान को घाते दो ठरे हुए प्रमुख नेताओं के अन्तर्गत तथा अर्थ प्रदत्त से बचिन हो जाना पड़ा ।

श्री नियुक्त अली साँ की हत्या के अन्तराल अन्तर्गत निजामुद्दीन

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री खीर भी गुलाम मुहम्मद गबर्नर जनरल बने। इस समय तक दक्ष के प्रशासनिक ढाँचे में इतनी स्थिरता खीर अध्यक्षता प्रवेश कर चुकी थी कि एक प्रकार से प्रशासनिक सत्ता का बंटवारा गबर्नर जनरल संविधान सभा के अध्यक्ष खीर प्रधानमंत्री के मध्य हो गया। १९५३ तक इस प्रकार के द्विधम शक्ति-विभाजन के परिणाम प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। पाकिस्तान के समझ खीर भी अनेक नवीन समस्याएँ उठ खड़ी हुईं खीर देश में राजनीतिक अध्यक्षता तथा घृष्टाचार काफी बढ़ गया। दूसरी ओर शासन के प्रति जनता में भी असंतोष के रोप का सुफान हिन्दुओं मारने लगा। अन्ततः स्थिति इतनी बर्नीर हो गई कि गबर्नर जनरल गुलाम मुहम्मद ने प्रधानमंत्री से बिना किसी प्रकार का परामर्श किए १७ अप्रैल १९५३ को निजामुद्दीन-मन्त्रीमण्डल को भग कर दिया खीर अमेरिका स्थित पाकिस्तानी राजदूत खीर मुहम्मद असी को नया मन्त्रीमण्डल बनाने के लिए धामनिष्ठ किया। संविधान सभा की बैठक भी स्थगित कर दी गई।

किन्तु स्थिति बरतार होती गई। इसी समय पाकिस्तान के सैनिक अधिकारियों में सत्ता का प्यास जाग उठी क्योंकि प्रथम तो सरकार खीर प्रशासन में घृष्टाचार तथा परकर्मजता का बोसबासा का खीर दूसरे अमेरिका से पर्याप्त सैनिक सहायता मिलने के कारण पाकिस्तानी सेना पूर्वपिछा सैनिक शक्तिशाली खीर प्रजास-मण्डल बन गई थी। धनएक उपयुक्त व्यवहार देना कर, प्रधान सेनापति जनरल अय्यूब के नेतृत्व में पाक सरकार के विरुद्ध सैनिक विद्रोह का विपुल बज्र लगा। जनरल अय्यूब के दबाव से प्रेसीडेन्ट इसकन्वर मिर्जा ने सरकार को भंग कर ७ अक्टूबर, १९५५ को समस्त देश में मार्शल लॉ लागू करने का फैसला कर दिया। यही नहीं तबनिर्मित संविधान स्थगित कर दिया गया संविधान-सभा खंग कर दी गई खीर समस्त राजनीतिक दलों को समाप्त घोषित कर दिया गया।

कुछ समय तक इसकन्वर मिर्जा खीर अय्यूब ने मिल कर शासन चलाने का प्रयत्न किया लेकिन सफलता नहीं मिली। अन्त में ही मिर्जा को अपना पद त्यागना पड़ा खीर सारी सत्ता जनरल अय्यूब के हाथ में आ गई जो आज तक भी कायम है।

जनरल अय्यूब की तानाशाही के करीब चार वर्ष बाद नये संविधान के अन्तर्गत ४ जून १९५२ को राष्ट्रीय असेम्बली की बैठक हुई खीर सैनिक शासन अन्त हुआ। पाकिस्तान के इतिहास में इस दिन को ऐतिहासिक कहा गया क्योंकि लगभग ४४ माह के बाद यहाँ प्रजातान्त्रिक सरकार की पुनः स्थापना हुई अन्ते ही कासात्तर में बहू एक दंग ही सिद्ध हुआ हो। अय्यूब के नेतृत्व में निर्मित नवीन संविधान आज तक पाकिस्तान में लोकप्रिय नहीं हो सका है क्योंकि यह बुनियादी रूप से प्रजातान्त्रिक नहीं है। पूर्वी पाकिस्तान में तो इसके प्रति व्यापक असंतोष है। इस संविधान के विरोधियों की मुख्य माँगें इस प्रकार हैं—(i) संविधान में मंगोबन हो (ii) राजनैतिक दलों को रखा किया जाय (iii) राजनीतिक दल बनाने की स्वतन्त्रता हो एवं

(iv) प्रेंस व माबल की घाजादी हो। यद्यपि द्यूब किसी-न-किसी प्रकार अपनी सत्ता से चिपके हुए हैं लेकिन विभिन्न कारणों से पाकिस्तान के राजनीतिक स्थिति पर कासे बाधक उभर रहे हैं और यह भय है कि घटनायें किसी भी समय सम्भीर रूप कारण कर सकती हैं।

पाकिस्तान की विदेश नीति मुख्य सत्य (Foreign Policy of Pakistan Main Aims)

प्रारम्भ में पाकिस्तान के विदेशी मामलों में स्वतन्त्र नीति का अनुसरण किया और वह किसी बेल प्रमदा गुट विशेष की ओर नहीं मुका। लेकिन भारत के प्रति जगजात बेमन्ता और गजना की उमकी माबनावें शीघ्र ही इतनी बसबती हो गई कि उगाती परराष्ट्र नीति का मूम प्रेरणा स्रोत भारत के विरुद्ध मित्रों की गोज करना बन गया और उसने उदस्थता की नीति को ठिकाने लि दे दी। अपनी घान्तरिक ममस्याओं काश्मीर का हड़पने की उद्दाम नाममा महुरी पानी का बन्बाग बिम्बापितों की सम्पत्ति का बिबटारा ऋषा का भ्रुपतान सीमा निर्धारण घावि बातों को बेकर पाकिस्तान में भारत के प्रति बढुता का मगाममूद्र हिमोरे लेने सषा और भारत की स्पार्द राजनीतिक ब्यबस्था व निरन्त घाविक प्रगति ने उमक मम में इर्वी घोर मय का संचार कर दिया। काय कैसाई के शब्दों में— 'उसकी (पाकिस्तान की) विदेश नीति पर निरन्तर केबस एक तत्व हाबी रहा—भारत के विरुद्ध सुरदा पाने की इच्छा'। परन्तु 'भारत के विरुद्ध सुरदा पाने की इच्छा' को जगह की कैसाई महोदय को 'भारत के विरुद्ध इर्वी-इ व और शत्रुता की इच्छा' शब्दों का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि भारत का तो आज तब नर परम्परागत इतिहास शक्तिप्रियता का और सहयोग व सद्माबना के प्रमार का र्हा है तथा किसी भी राष्ट्र का घाजात करने का इच्छा भारतीय शासकों की बस्यनाघों में भी नहीं रही है।

पाकिस्तान ने अपने जग के सुरन्त बाग म ही 'भारत के शत्रुओं को गम सगाओ और हर कीमत पर हर तरह से भारत को शक्ति पहुँचाओ' वाली नीति का अनुसरण करना शुरू कर दिया। इसलिये पाक नेताओं ने शुरू से ही पाक जनता और विश्व के मामले अपने इन मसूबों को प्रबट कर लिया कि भारत के विरुद्ध अपना पदा प्रबल करने और अनिरु शक्ति बढाने के लिए पाकिस्तान को लगे मित्रों की घाबस्यकता है जो काश्मीर के प्रजन पर उगका समर्पन तो करें ही साब हा। साथ उमे घाबस्यक मैनिक गद्दामता भी हैं। भारत-विरोध की उद माबना ने पाकिस्तान का 'एक ही दिग्ग में मुद्गता' मिसा दिया। इस बात की पुष्टि करत हुए ही स्वर्गीय प्रपान मंत्री थी सोदरायरी ने कहा था—'हमारे लिए इस प्रकार का पूपरत्पयग जीवन स्वाति करना बठिन है। हम जगमी गृधता के लिए अपनी पर्यन्त रूप में मगक गया हड़ नहीं है। हमारे पास केबल ही अपनी सुरदा का प्रदण करने के लिए पर्यन्त स्या भी नहीं है। हमें अपनी सुरदा के लिए दूसरी गम्पियाँ की घोर मुद्गता ही पड़ गा। पाकिस्तान का प्रत्येक मामक भारत के विरुद्ध घाग

उपसत्ता रहा और यह प्रचार करता रहा कि भारत पाकिस्तान जैसे छोटे देश की सत्ता मिटाने पर तुमना हुआ है और उस भारत के प्राक्रमण का सर्वप्रथम भय है। पाकिस्तान के घुतपूर्व विदेश मंत्री श्री जुस्फिकार खान ने २३ मार्च १९६४ को न्यूयार्क में एक टेलेविजन बेंच में भारत के विदेश विपक्षन करते हुए कहा कि प्रधान मंत्री नेहरू पाकिस्तान के साथ 'नया प्राक्रमण' की नीति बरत रहे हैं और काश्मीर में पिछले १२ वर्षों में भारत के प्राक्रमण का रिवाज ऐसा है कि बनेज का भी इससे इर्ष्या करेगा।^१

भारत से शत्रुता के अतिरिक्त एक और भी बात ने पाकिस्तान की विदेश नीति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। सबसे बड़ा इस्लामी गणराज्य होने के नाते पाक नेताओं की नजर से ही यह महत्वाकांक्षा रही है कि वह समस्त इस्लामी जगत का नेतृत्व करे। लेकिन मिस्र में नासिर के उदय ने पाकिस्तान के इस इरादे को पूरा नहीं होने दिया है। नासिर का प्रथम स्वप्न है और वह है अरब गणराज्य के मञ्चे के अन्तर्गत मिस्र के नेतृत्व में समस्त अरब देशों को एकत्र कर उनका एक अखिल भारतीय महासंघ हो। पाकिस्तान की इस्लाम जगत का नेतृत्व करने की महत्वाकांक्षा उन्हें जैसे सहन हो सकती है।

पाकिस्तान के सम्पूर्ण इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाकिस्तान द्वारा उद्वेगता या किसी गुट में न मिस्रने के स्थान पर पश्चिमी देशों के साथ सैनिक गठबन्धन में बंध जाने का निर्णय इसीलिए किया गया कि उसके उपरोक्त दोनों उद्देश्यों—भारत को नीचा दिखाना और इस्लामी जगत का नेतृत्व करना—की पूर्ति हो सके। 'पश्चिम' (बरोपकर अमेरिका के साथ सैनिक दृष्टि से आबद्ध हो जाने का वास्तविक कारण पाकिस्तान के साम्यवाद के प्रति भय या विरोध न कमी का और न ही जैसा कि भारत—चीन के मध्य सीमा के प्रश्न का लेकर युद्ध छिड़ने और पाकिस्तान द्वारा चीन के साथ छान्द-बाँध करने से कभी प्रकार स्पष्ट है। पाकिस्तान की विदेश नीति के प्रमुख मक्य वा हमेला से ये ही रहे हैं—

१. भारत के मुकाबले अधिक तत्कालीनी हो कर काश्मीर समस्या को अल्पतः अनुकूल हल कराने के लिए भारत को बाध्य करना

२. सैनिक दृष्टि से अपने को इतना सबल बनाना कि भारत किसी हालत में उससे सैनिक दृष्टि से खोप्ट न होने पावे

३. भारत के विरुद्ध पश्चिमी राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त करना

४. पश्चिम समर्थक अरब-इस्लामी राष्ट्रों को अपने साथ मिस्र कर नासिर के नेतृत्व को चुनौती देना और पाकिस्तान के मञ्चे के नीचे एक इस्लामी जगत का संगठन करना

५. पश्चिमी देशों और अन्य देशों के साथ सैनिक गठबन्धनों से बंध कर भारत को घातस्थित करना।

1 The Hindustan Times, March 24, 1964

शांति की प्रतीति प्रकट होना था कि पाकिस्तान का मूल उद्देश्य इस्लामी जनत से निष्कपट वैश्वीयता सम्बन्धी में भाग्य होना नहीं है, प्रत्युत पश्चिमी एशिया और समस्त अरब देशों का एक संघ बना कर उसका नेतृत्व करना है। प्रथम पाकिस्तान के प्रचार से मुस्लिम देश पहिले ही आपत्क हो पड़े और उसकी इस्लामी राज्यों के नेतृत्व की मनोकामना पूरी न हो सकी। इस्लामी जनत का अनुशासन करने में पाकिस्तान की दो कारणोंबल मुह की खानी पड़ी। प्रथम तो पाकिस्तान स्वयं एक इतना समस्याग्रस्त और भाषिक दृष्टि से विखड़ा हुआ देश था (और है) कि वह इस्लामी राज्यों को किसी भी प्रकार की भाषिक सहायता देने में असमर्थ रहा। दूसरे, मित्र के कर्नल नासिर ने पाकिस्तानी नेताओं की महत्वाकांक्षाओं को साकार नहीं होने दिया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाकिस्तान ने कई कदम उठाए, मुस्लिम देशों के अन्तर्राष्ट्रीय भाषिक-सम्मेलनों का आयोजन किया समय-समय पर पराधीनता में बन्धन हुए इस्लामी देशों के प्रमुख प्रबन्ध और समर्थक के रूप में अपने धाप को प्रस्तुत किया किन्तु भी नासिर के बढ़ते हुए प्रभाव के सामने उसके ये सारे प्रयास लगभग निष्फल सिद्ध हुए। इतना ही नहीं स्वयं नहर कांड पर पश्चिम-समर्थक दृष्टिकोण अपनाते के कारण और अफगानिस्तान से अपने सम्बन्ध बिगाड़ने के कारण मुस्लिम जनत में उसकी प्रतिष्ठा को बहुत ठेस पहुँची।

१९४७ से १९५२ तक इस्लामवाद पूर्ण स्वतन्त्र-देश नीति की नीकार करने के कारण अर्थिक मामलों में पाकिस्तान मुटबन्दी का पूरी तरह शिकार बनने से बचा-सा रहा। यही कारण था कि अमेरिका ने जब संयुक्त राष्ट्र संघ में कोरिया युद्ध के बारे में साम्यवादी चीन को बाकमक घोषित करने का प्रस्ताव रखा तो पाकिस्तान अनुपस्थित रहा। इस काल में उसने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिखाने के प्रस्ताव को समर्थन दिया और उपनिवेशों की जनता की स्वतन्त्रता दिखाने में भी रुचि ली।

(२) पाकिस्तान और राष्ट्र मंडल

ब्रिटिश राष्ट्र मंडल को वर्ष १९४८ के बाद से केवल 'राष्ट्र मंडल' (Commonwealth of Nations) के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा है के प्रति भी पाकिस्तान का दृष्टिकोण प्रभावशाली सुरक्षा और स्थिरता की आवश्यकता द्वारा ही निर्धारित हुआ। पाकिस्तान 'राष्ट्रों के इस नवीन समुदाय का एक सम्मानित सदस्य बन गया। राष्ट्र मंडल के विभिन्न सम्मेलनों में पाकिस्तानी नेताओं ने साम्यवाद साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की मर्खता करने में तथा अफ्रीका में रब देश की नीति का विरोध करने में एशियाई देशों को सहयोग दिया। परन्तु साथ ही भारत का विरोध करने और उसे नीचा दिखाने के किसी प्रबन्ध को भी उसने हाथ से नहीं जाने दिया। राष्ट्र मंडल के सम्मानित सदस्य की हैसियत से पाकिस्तान का सर्वत्र यह 'सम्मानित' व्यवहार रहा कि उसने राष्ट्र मंडल के सदस्यों को भारत विरोधी बनाने की हर बन्ध कोशिश की यद्यपि उसे अपने ऐसे प्रत्येक प्रयास

में अधिनाशक असफलता ही हाथ लगी। अनेक घबराहटों पर पाकिस्तान का व्यवहार स्पष्ट इन उर्ध्वों धीर भावनाओं के प्रतिरूप रहा जिनके लिए राष्ट्र मंडल काम कर रहा है।

(३) पाकिस्तान का पश्चिम से गठजघन धीर उत्तरी साम्यवाद विरोधी नीति

भारत के विरुद्ध अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने धीर देश की धर्म व्यवस्था को मंग होने से बचाने के लिए पाकिस्तान को धन धीर सत्ताओं की धरम्यत भावयकता थी। जब इस्लामवाद पूर्ण स्वतंत्र-देश नीति पर चल कर पाकिस्तान किसी तरह सामान्य न हो सका धीर अपनी तुलना में उमने भारत की दिन-प्रतिदिन विश्व मामलों में शक्ति तथा उच्चता प्राप्त करते देगा तो पाकिस्तान के राजनीतिज्ञ न केवल डोमला मय दक्षिण भारत को पञ्जाबन के लिए बेनाह हा उठ। धनएव पाक-प्रधानमंत्री माहम्मद धनी ने पाकिस्तान की विशेष नीति का पश्चिमी गुट की धीर धर्मियुध धरमा ही धर्मधर समझा। इस नीति धर धमने का निश्चय करने न सुगत बाद अमेरिकन विशेष संधिध न्यर्गीय श्री डेलेग द्वारा सञ्चालित साम्यवाद-विरोधी धर्मियाम में योग देने के बहाने पाकिस्तान ने १९५४ में अमेरिका धीर धर्मों क साथ पारस्परिक सुरक्षा संधि कर ली धीर बहु बनबाद-सधि (धर मटा) धीर 'सीटो' में भी सम्मिलित हो गया। इन सैनिक संधियों में शामिल होकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में बहु धमने रूप में पश्चिमी देशों का समर्थन बन गया। पाकिस्तान की इस नीति न उते पश्चिमी राष्ट्रों विरुद्ध कर संयुक्त राज्य अमेरिका की विपुल धर्मिक धीर सैनिक महायत्ना धर्मय उपसन्ध कराई किन्तु इसमें पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि एमियाई राष्ट्रों की एवता पाकिस्तान के लिए कोई महत्व नहीं रखती धीर विभिन्न जातियों तथा धर्मियतम्बियों के एक मूत्र में धारण होने धीर मित्र बन कर रहने के सिद्धांत में बहु विश्वास नहीं करता।

पाकिस्तानी शासकों ने पश्चिम के गुटबन्धी की नीति को अपनाते हुए अपनी मानसिक संतुलन भी को दिया धीर भारत के तटस्पर्धा को 'नकारात्मक तथा रंपहीन' बताया। प्रधानमंत्री हुनन सहीद मुहुराबर्दी ने एक बार भारत के 'धर्मलक्षता या तटस्पर्धा की 'शून्य' के समान महत्वहीन सम्बोधित किया। उन्होंने 'नकारात्मक तटस्पर्धा' धीर 'विकासशील तटस्पर्धा' की निम्ना की धीर इस नीति का धाधामक तटस्पर्धा की संज्ञा की। श्री मुहुराबर्दी ने तटस्पर्धाकारियों को धरधरधारी कहते हुए उनकी तुलना ऐसे धर्मियों से करना उचित समझा जो मित्र दिशाओं में चल रही बा नाधों धर धरने पांश धमने का मूर्धतापूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। जब एक बार उनमें पता गया कि भारत की तरह पाकिस्तान भी तटस्पर्धा की नीति का धरधरधन नहीं करता तो भी मुहुराबर्दी न उत्तर दिया—“हमारे विवेक धर धरार पुनरुत्थ पूर्ण जीवन धर्मियन करना कठिन है। हम अपनी सुरक्षा के लिए अपनी पर्याप्त रूप में मजक तथा बुद्ध नहीं हैं। हमारे पास धर्मों ही

घपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए पर्याप्त धन भी नहीं है.....हमें घपनी सुरक्षा के लिए दूसरी कठिनायियों की धीरे मुड़ना ही पड़ेगा।”

पश्चिमी गुट को प्रसन्न करके उससे प्रचुर आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्राप्त करने की दृष्टि से पाकिस्तान ने प्रत्येक उचित अनुचित नामनों में ध्यान भीष कर 'पश्चिम' को समर्पित बना धारम्भ किया। बगदाद-वैकट सीटो-संगठन धारि में सम्मिलित होने के बाद स्वेज-महा के मामले में उसने एम्सो-शैब इबरायमी आक्रमण का समर्थन किया। उसने मध्य पूर्व में 'माइकनहॉवर-सिद्दायत' का स्वागत किया। पश्चिमी गुट में जाने के माते पाकिस्तान ने साम्यवाद के विरुद्ध अपने प्रतिश्वास और बृहत्पुर्ण व्यवहार का प्रवर्धन किया। अमेरिका से पाकिस्तान में रूस की मध्य-एशिया की बखली सीमा के निकट सैनिक धडे प्राप्त किए। अमेरिका का उद्देश्य यहाँ से रूस की सैनिक शक्ति विधियों का निरीक्षण करना था। यू-२ जासूमी विमान की उडान पैशावर से ही शुरू हुई थी। पाकिस्तान ने अमेरिका का ये सब प्रबोधित सैनिक बना इमीलिए स्वीकार किया क्योंकि अमेरिका के साथ अपने सैनिक गठ-बन्धन को बहु भारत के विरोध में सहायक समझना था। पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री सुह्राराम्नी ने पाकिस्तान की धरे बली म फरवरी १९५७ में सैनिक संधि का निर्देशन समर्थन करते हुए ब पण की थी कि— 'ये पाकिस्तान के लिए आवश्यक है क्योंकि उस पर भारत क आक्रमण का संकट उदा बना हुआ है। बिच बेह पर हमले की धारका हा बहु (सैनिक संधियों से) पुषक रहने की नीति नहीं रख सकता धत हमें मित्र बनाने चाहिए।” स्पष्ट है कि धीटो धीर सैन्टो के संधि-संगठनों में सम्मिलित होने से पाकिस्तान का मूल उद्देश्य साम्यवाद के विरुद्ध ड्रास बनना नहीं था बल्कि भारत के विरुद्ध विधेपत काश्मीर के प्रश्न पर पश्चिमी देशों का सङ्घाग पाना था। भारत के विरुद्ध मित्रों की खोज के अपने प्रयास में पाकिस्तान की पहली नजर अमेरिका पर ही। इसलिए भी पही क्योंकि एक-मात्र बही देश अपनी समृद्धि के कारण पाकिस्तान के आर्थिक पुनर्निर्माण में पर्याप्त सहायता देने की शकता रखता था। पाकिस्तान से अमेरिका के साथ दोस्ती का नाम पीकर उससे विपुल आर्थिक ब सैनिक सहायता प्राप्त की और अपने पुनर्निर्माण एवं विकास के धरेक कार्यक्रमों में अमेरिका का गाम्भेरी स्वीकार कर ली। अमेरिका के साथ हुए सैनिक समझौते के धन्त पंत अमेरिकन विधेपत्र टैक्नीशियन इ बीनियर सैनिक अधिकारी धीर कुटनीतिज्ञ पाकिस्तान से जाने धारम्भ हो गए धीर देश खुदे नाम 'कीत-मुड' में गलत हो गया। पाकिस्तानी राजनीतिज्ञों ने अमेरिकन-विधेपारधारा धीर आबकों का धनुसरण करने में गर्व धनुसक किया तथा अमेरिका की मित्रता को सम्मानपूर्वक 'विधेपाधिकार' समझा।

११ जुलाई से १० जुलाई १९९१ तक राष्ट्रपति धम्बू ने अमेरिका की यात्रा की। उसकी यात्रा से पहिले अमेरिकन उपराष्ट्रपति (धीर धर राष्ट्रपति) निष्कन धौतमन पाक-यात्रा पर धा चुके से धीर १२ जनवरी

१९६१ को कर्चमी में पाकिस्तान व अमेरिका के बीच प्रमाण पत्रों का आदान प्रदान द्वारा एक मैत्री-संधि की सृष्टि की जा चुकी थी।

पश्चिमी राष्ट्रो विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका का ध्यान-केंद्र पाकिस्तान के लिए धरमस्त मुखकर थी। पाकिस्तानी नेताओं ने अपने इस दृष्टिकोम को छिपाने की चेष्टा भी नहीं की। श्री सुह्रारबर्ग ने एक बार स्पष्ट शब्दों में कहा— अमेरिका अविद्वित तथा अर्थ विकसित देशों की प्रसन्नता और समृद्धि के लिए उन्हें इस योग्य बनाने का प्रयास कर रहा। कि वे मामूलाक नामक निराला की विचारधारा से स्वयं को बचा सकें। 'पश्चिम' को प्रसन्न रखने के लिए पाकिस्तान ने प्रारम्भ से ही संयुक्त राज्य में घोर उत्तरे बाहर सोवियत विरोधी नीति का अनुकरण किया। उमने अफगानिस्तान के साथ पकूनिस्तान क्षेत्र पर काम रहे घरेने विवाद के लिए मास्को को उत्तरदायी ठहराया। उसने यूगोस्लाविया के साथ—जिला

१९४८ के बाद से ही सोवियत रूस के साथ सम्बन्ध सुधर नहीं गये—घरों पूरा सम्बन्ध विकसित किया। फरवरी १९६० में राष्ट्रपति टीटो ने पाकिस्तान के यात्रा की घोर तक जनवरी १९६१ में सर अय्यूब ने यूगोस्लाविया के दौरा किया तथा पाकिस्तान की द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के लिए श्रुत। विषय में एक समझौता किया। १९६० तक पाकिस्तान की नीति साम्यवा के प्रति अवसरानुकूल भावनाक रही। उमने सहाय के अपने क्षेत्र में भी अतिक्रमण पर काफ़ी घोर मनाया और चीन का इस कार्यवाही की ओ निन्दा की। १९६६ के अन्तिम अरण्य में जब सोवियत घर्मा कन सम्बन्धों। कुछ सुधार होने तथा तक भी पाकिस्तान में रूस के प्रति अनुभाव जन हो के कोई तसलु अचट नहीं हुए।

१९६१ में एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई जिलने पाकिस्तान व सीटा तथा सीटो संधि-संमठनों में रहते हुए भी स्वतन्त्र नीति का अनुसर करने की प्रबल प्रेरणा दी। इस समय साओस में भीषण संकट उत्पन्न हो पर संयुक्त राज्य अमेरिका ने सीटा संमठन के शर्तों से सहायता की मांग की परन्तु फ्रांस के राष्ट्रपति डि-गाल (De Gaulle) ने इसका बड़ा विरो किया। फ्रांस के इस विरोध से यह स्पष्ट हो गया कि वह सीटो और ना में रहते हुए भी स्वतन्त्र विदेश नीति का अनुसरण करने पर अटिबद्ध था इस घटना से राष्ट्रपति अय्यूब घोर उनके मांसियों को यह विश्वास हो पा कि सीटा एक मृतप्राय संमठन है घोर फ्रांस के पर किन्हो पर अमते हुए पाकिस्तान भी अपनी स्वतन्त्र नीति रत सजता है तथा अमेरिका के प्रब अनु चीन के साथ मैत्री पूरा सम्बन्ध स्थापित कर सकना है। परिणाम प्रति पाकिस्तान के परिवर्तित इस मते दृष्टिकोम का स्पष्ट प्रमाण तक मि गया जब १९६१ में उमने संयुक्त राष्ट्र संघ में मास्कोवाही चीन की महम्प का प्रजन घाने पर इसके बल में पहिली बार अमरिवा की दरद व अतिवृ मत्र किया। चीन के नाय घट-अग्न बनाने में पाकिस्तान का एक मात्र स यही था कि वह अरण्य के अिद्व एजिया के सबसे बड़े राष्ट्र का सहयोग प्र।

कर से घोर भाव ही संयुक्त राज्य अमेरिका व अन्य पश्चिमी शक्तियों का भी एक भारती ही झुठझोर कर इस बात के लिए विवश कर दे कि वे भारत के विरुद्ध पाकिस्तान को प्रत्येक प्रकार का सहयोग देने के लिए पूर्णतया प्रसन्न हो जायें। यह कहना उचित होगा कि पाकिस्तान ने बुट-बन्दी की अपनी नीति को रूढ़ि बना कर अधिक से अधिक अपना उम्मु सौधा करने की दिशा में भावे बढ़ना विशेष हितकर समझा। यही नहीं बल्कि पश्चिमी देशों को बेताबगी तक भी देने लगा कि काश्मीर के सम्बन्ध में भारत के विरुद्ध उसका यदि पुरजोर समर्थन नहीं किया गया तो उसे अपनी विवेक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। अपनी कमकियों और दूसरी तरह अपनी मिशनों के बल पर पाकिस्तान अमेरिका से प्राथमिकतम सहायता प्राप्त करता रहा।

फरवरी, १९६२ में चीन द्वारा भारत पर अब परत्यागित रूप से विज्ञान नैतिक आक्रमण किया गया तो पाकिस्तान में बुनियाद मनाई गई और अब पश्चिमी राष्ट्रों में इस संकटकाल में भारत को तेजी से सैन्य सामग्री भेजी तो पाकिस्तान द्वारा पश्चिम की इन कार्यवाही की धर्मश्रीपूर्ण समझा गया। इसके बाद से ही पश्चिम के प्रति पाकिस्तान की मर्मोपूर्ण नीति उठनी प्रभाव और निश्चिन्ता नही रही बितनी पहिली थी। अब उसका मुकाबल चीन की धार होने लगा। सितम्बर, १९६२ में पाकिस्तान द्वारा भारतीय भू-भाग पर सुनियोजित आक्रमण किया गया जिसमें उस सभी सैन्य-सामग्री का कुलकर प्रयोग हुआ जो संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा साम्यवाद के विरोध के नाम पर पाकिस्तान को दी गई थी। भारत के विरुद्ध इस युद्ध में पाकिस्तान को यह आशा थी कि अमेरिका से नैतिक गठबन्धन में अनिच्छित रूप से आबाद होने के कारण उसे अमेरिका व अन्य पश्चिमी शक्तियों की नैतिक सहायता प्राप्त होगी। लेकिन पाकिस्तान की यह आशा निराशा में परिवर्तित हो गई। संयुक्त राज्य अमेरिका और पाकिस्तान के सम्बन्धों में अब घोर नी बियाड़ भा गया अब अमेरिका ने भारत के साथ ही पाकिस्तान को भी आगे वाली नैतिक-सहायता पर रोक लगा दी। पाकिस्तान के नेता अमेरिका ने इस रूढ़ि से बुरी तरह झुंझा हा गया और उन्होंने अपने देश की अनिच्छित शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए चीन से विज्ञान वमाने पर सहयोग प्राप्त किये। चीन के प्रतिपादित पाकिस्तानी नेता सोवियत रूस की घोर नी धर्म भाव प्रकटित करने लगे और इस तरह उन्होंने पश्चिमी बल में यह भय पैदा करने में सफलता पाई कि यदि पाकिस्तान को पश्चिमी शक्तियों से नैतिक-सहायता न मिली तो उसके लिए पश्चिम की धर्म को दुकरा कर चीन और रूस की गोदी में जा बैठना अस्वभाविक न होगा।

पाकिस्तान की इस झुठनीति का वास्तव परिणाम निश्चय ही अमेरिका ने १९६७ में इस बात की घोषणा कर दी कि वह पाकिस्तान के अनिच्छित घोर शक्ति प्रकट आक्रान्तों की प्राथमिक मरम्मत के लिए उसे कस-पुर्ज देगा। अमेरिका की यह घोषणा इस बात का स्पष्ट संकेत है कि 'पश्चिम'

पाकिस्तान को नाराज नहीं करना चाहता और उसे अपने हाथ में रखने के लिए वह बराबर उसके सामने चारा डालने को मजबूर है। कम-बुझे बेचने की बात भारत के पक्ष में भी नहीं गई है। लेकिन इस इन्फ्लैट-ममदगी के प्रदर्शन से कि अमेरिका व कम-बुजों के लिए भारत व पाकिस्तान दोनों के लिए बाजार एक जैसा घुसा है इस तथ्य की उपरान्त नहीं की जा सकती कि बेचन इन कम-बुजों से ही तो पाकिस्तान के लगभग १० घरेलू रूपों के वे हवाई जहाज और टैंक फिर से भाग उगमने के काबिल हो जायेंगे जो भारत से मुझ के बाद यूंसे-संगड़ हाकर रह गए हैं। पाकिस्तान भी बचाव खुश होने के नाराजगी के हो-हस्ते व बीच इस तथ्य को दबा देना चाहता है कि अमेरिकन कम-बुजों से उन सबके सब जहाजों और टैंकों में जान पड़ जायेगी बिनाकी माहों भी धर्मना पोड़ दिन बार सड़ने लगनी। काजिमटम में बड़ी मासूम धरा से कहा जा रहा है कि अमेरिका ने तो दोनो राष्ट्रों का कम-बुजों बेचने की बात कह कर बड़ा म्याम किया है। इस मामले में वह मरन व पाकिस्तान को एक ही धाँव से देखता है। साथ ही जाना-कुत्ती के माध्यम से यह बात फैलाने में भी काशियटन नहीं बूब रहा है कि अमेरिका पाकिस्तान को इसलिए महायत्ना देते रहना चाहता है कि कहीं वह कठ कर चीन व बाहुवाग में न बसा जाए। पर अमेरिका के इस प्रकार के पीछे इकीरत कुछ और ही है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को गुन गुन व घसती करण चीन नहीं कम है। कम के मुकामसे के लिए पाकिस्तान को साथ रखना अमेरिका बकरी समझता है। अमेरिका यह जानता है कि कुछ भी हो वह कभी भी कम के बिपक्ष भारत का इस्तेमाल नहीं कर सकेगा। यद्यपि प्रायः पाकिस्तान कमिनि से मजबूत मजान की पूरी कोशिश कर रहा है फिर भी उसकी कम से पाठनी कितनी गहरी है इसे सब जानते हैं।

अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को कम-बुजों बेचने के कारण चाहे कुछ भी हों इस तथ्य को नहीं मन्नाया जा सकता कि इसमें पाकिस्तान को मैनिफ शक्ति बढ़ेगी और यह सब देखते हुए भारत को कुछ नहीं बँटा रहेगा। नतीजा यह होगा कि दोनों पक्षों के बीच हथियारबन्दी की होड़ बढ़ेगी और अरबों के एस्तेमाल की सम्भावना भी। अमेरिका की पाकिस्तान को मैनिफ सहायता सम्बन्धी यह नीति किञ्च शक्ति व हक में किसी तरह उचित नहीं बड़ी जा सकती। अमेरिका का यह कर्तव्य है और उसमें यह सामर्थ्य भी है कि वह भारत और पाकिस्तान में दोस्ती करावे। काश्मीर व प्रश्न का लेकर दोनों राष्ट्रों में किन्ही भी दिन पुनः बिम्बोट हो सकता है। अभी तक अमेरिका ने भारत-नाक मित्रता का गुणगान ही किया है—बिना कुछ भी नहीं। भारत और पाकिस्तान को बनना रसा के लिए हथियारों की उन्नत है पर दोनों की सुरक्षा-समस्याएँ एक जैसी नहीं हैं। इसलिए अमेरिका का अपनी हथियार देने की नीति निर्धारित करते समय भारत और पाकिस्तान में मित्रता बनाने का उद्देश्य सर्वोपरि रखना चाहिए। परिस्थितियों का लजाका दे कि अमेरिका का मैनिफ सहायता बन्द करके घोषित सहायता बढ़ा देनी चाहिए। बड़े देश मित्रता अपना मैनिफ सहायता पर गर्व कर रहे हैं यदि उनका प्रायः भी अन्तर्निहित नेतों के विचार पर गर्व रहे तो

संसार में प्रभाव की समस्या दो ब्रह्माभियों में ही हल हो सकती है।

(४) पाकिस्तान की चीन से भारत-विरोधी साठ-पाठ

पश्चिमी देशों के साथ भारत के विरुद्ध सहायता पान के साथ-साथ पाकिस्तान से चीन से मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखने के प्रति भी प्रारम्भ से सजगता रही और चीन के कुछ बयों को छोड़कर १९६० के बाद से चीन के साथ साठ पाठ करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। पाकिस्तान ने चीन की साम्यवादी सरकार को १९६० में माग्यता प्रदान की १९६१ में दोनों राष्ट्रों में राजदूतों का प्राधान-प्रवान हुआ और बाद के कुछ बयों में रई के अधिक स्वार्थ के कारण दोनों देशों के सम्बन्ध और भी धाये बढ़े। पाकिस्तान रई बेचना चाहता था और चीन खरीदता था। दोनों देशों में व्यापार बढ़ा। इस समय पैकिंग ने अपने देश के मुस्लिम : जूठनों के माध्यम से पाकिस्तान के मुस्लिम सफ़्फ़रों से सम्पर्क स्थापित किया। १९६४ से पूर्व तक दोनों ही देशों के सम्बन्ध उत्तरोत्तर सुधरते ही गये और पाकिस्तान की यह बाधा हाने सभी कि वह चीन को भारत के विरुद्ध मोड़ सकेगा।

परन्तु १९६४ से ही पाकिस्तान और चीन के सम्बन्धों में यतिरोध व बिपाद की कुख्यात हो गई। १९६४ में पाकिस्तान के साम्यवादी-विरोधी सीटो सभठन में सम्मिलित होने पर पैकिंग ने इसकी कठोर खजो म निम्ना की। फिर भी इससे दोनों देशों के सम्बन्ध अधिक इसीलिए नहीं बिबडे क्योंकि पाकिस्तान के सीटो सभठन में सम्मिलित होने का सङ्केत रई-दिल्ली और मास्को का विरोध था न कि पैकिंग का। पैकिंग इस समय निरन्तर यही कहता रहा कि काश्मीर के प्रश्न का निर्यय संधि-वार्ता में होना चाहिए। इसके विपरीत उस काश्मीर के प्रश्न पर भारत को कुमा सपर्यन वेता रहा।

१९६४ से १९६९ तक भारत और चीन के मैत्री-सम्बन्ध प्रगाढ़ थे रहे। इस अवधि में पैकिंग और पिण्डी के सम्बन्ध यद्यपि अधिक मैत्रीपूर्ण नहीं बन पाए किन्तु जममें कटुता भी नहीं बढ़ी। १९६७ में पाकिस्तान के वस्कासीन प्रवान मन्त्री मी सुहराबर्दी ने यह घोषणा की कि— मैं चीन की मैत्री चाहता हू। मैं इस विषय में चक्रेता नहीं हूँ। मुझे इस बात का निश्चय है कि जब संकट का समय आयेगा चीन हमारी सहायता करेगा।

सुहराबर्दी की धाता रंग सामे लगी। १९६९ से चीन और भारत के सम्बन्धों में सीमा-प्रश्न को लेकर कटुता बढ़ने लगी। पाकिस्तान ने रिबति का काम उठाते हुए चीन के साथ अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने की बात इस प्राचार पर सारी कि लज्जे के शत्रु को मित्र बनाना सामशायक होता है। चीन भी इसी सिद्धान्त के प्राचार पर पाकिस्तान के निकट धामे गया। इसी समय भारत स्थित चीनी राजदूत ने रई दिल्ली को वेतापत्री की कि यदि भारत ने चीन के प्रति अपने रईये को नहीं सुधारा तो उसे ही मोर्चों पर लड़ना पड़ेगा।

पाकिस्तान ने चीन को अपना अधिक प्रमुख घोर भारत व प्रतिपक्ष देख कर काश्मीर पर अपना प्रमुख मुद्दा करने के लिए चीन से काश्मीर और चीन की सीमा के बारे में समझौते की बातचीत प्रारम्भ कर दी जब कि यह सीमा भारत और चीन के बीच विवाद-ग्रस्त थी और काश्मीर के एक भाग पर पाकिस्तान का धर्मप्रवृत्त एवं अर्ध-धर्म प्रतिकार था। १९६१ से पाकिस्तानी समाचार पत्रों ने एक प्रकार प्रारम्भ किया कि चीन के विरुद्ध किसी प्रतिरक्षा संगठन में पाकिस्तान का विकास नहीं है। दिसम्बर १९६१ में जब भारत ने मोघा दमन और चीन को पुर्तगाल के अतिरिक्त-बाकी प्रत्याचारी शासन से मुक्त किया तो पाकिस्तान के राजनीतियों ने प्रचारान्वादन शुरू किया कि पश्चिमी देशों की मित्रता विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उन्होंने आठो संघटन के अपने मित्र पुनर्वास की कोई सहायता नहीं की। पाक नेताओं ने यह शोर मचाया कि काश्मीर के प्रश्न को पश्चिम के समर्थन का उन्हें सब शक्यता नहीं है और पाकिस्तान का यह के साथ सौधी बढ़ाती चाहिए। पाकिस्तानी राजनीतियों के इस प्रकार के प्रचार में बाहरी कूटनीतिक चाल छिपी थी—एक धार तो साम्यवाद की धार मुक्ति का मय दिशापर पश्चिमी देशों का अर्ध-सक्रिय समर्थन प्राप्त की उनकी तासगा थी और दूसरी धार पश्चिमी देशों के प्रति कुछ तीव्र हवा यह कर काश्मीर के प्रश्न पर चीन को अपनी घोर मुकाम की साक्षात् थी। पाकिस्तान को अपनी इस कूटनीति में सफलता मिली—ऐसा नहीं कहा जा सकता।

१९६६ से १९६१ के मध्य पाकिस्तान की विशेष नीति ने कुछ घोर भी विधि नसावाजिया दिखाई। एक तरह तो भारत के विरुद्ध समर्थन प्राप्त और समर्थ होने की दृष्टि से पाकिस्तान पश्चिम के साथ ही साथ चीन के सामने भी दीरघी का शक्यता पसारने लगा और दूसरी तरफ राष्ट्रपति अय्युब खान से हमस कि धारणा प्रकट करते हुए अर्ध-महा द्वीप को रखा के लिए भारत और पाकिस्तान को सफल रखा व्यवस्था की आवश्यकता पर बस बैठे रहे। अक्टूबर १९६६ में उन्होंने एक प्रेस सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा कि विरुद्ध की भीमा पर और अफगानिस्तान में जा पटनायें बट रही है उनसे प्रतीत होता है कि अगले पांच वर्षों में उस महाद्वीप के लिए भी एक उत्तम उत्पन्न हो जायेगा। भी अय्युब ने कहा कि उस महा द्वीप के किसी भी दिरे पर हमला हो सकता है अतः इस स्थिति पर भारत और पाकिस्तान दोनों को ही गौर करना चाहिए। राष्ट्रपति अय्युब ने उस समय यह भी स्वीकार किया कि पाकिस्तानी विदेश मन्त्रालय का लक्ष्य चीन का शक्यता है जिसमें कुछ पाकिस्तानी प्रेष्य चीन का विनाश मया है अक्टूबर १९६६ में तेहरान में उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि विश्व पश्चिम में चीन विनाशवाद की दृष्टि से आगे बढ़ेगा।

परन्तु इन सब कथनों के बावजूद उस समय यह ठेक कर अत्यन्त आवश्यक हुआ कि भारत पर चीन का बड़े पैमाने पर धर्मप्रतिकार हमला होने पर अय्युब खान ने घोर पाकिस्तान का सरकार ने अपनी सभी उपकरणों को तैयार मगाने हुए अंतर के कुछ अतिरिक्त में यह विचार प्रकट किया कि

पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए भारत चीनी साम्यवाद से भी अधिक खतरा मानक है। भारत के विरुद्ध पाकिस्तान का खतुता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है। १९६० में पेशावर के हवाई प्रहृ से उड़ने वाले यू-२ विमान कांड के समय चीन ने अमेरिका को भी भर कर गारियां देते हुए भी और बस द्वारा पाकिस्तान के हवाई प्रहृओं को प्रक्षेपणास्त्रों से नष्ट करने की धमकी देने पर भी पाकिस्तान के विरुद्ध एक भी खण्ड सम्भवत इधीबिए नहीं कहा या कि पाकिस्तानी नेताओं ने चीन को यह विश्वास दिला दिया था कि पाकिस्तान भारत से अपनी रक्षा करने के लिए चीनिक कुठों में सम्मिलित हुआ है, उसका साम्यवादी चीन से कोई विरोध नहीं है।

अक्टूबर, १९६२ में भारत पर चीन के आक्रमण के समय से पाकिस्तान ने चीन से अनिच्छता बढ़ाने में कोई कमी नहीं रखी। इसके लिए उसने चीन से कई समझौते किए। जनवरी १९६३ में दोनों देशों में एक व्यापारिक समझौता हुआ। अत्यन्त २ मार्च १९६३ का 'सिक्किम और काश्मीर की सीमा विषयक अन्तिम समझौता' (Final Agreement on Delimitation and Demarcation of Sikkim Kashmir Border) किया गया जिसके द्वारा दोनों देशों की सीमाओं का निर्धारण हुआ। पाकिस्तान ने इस संधि के अन्तर्गत चीन को भारत की अनाधिकृत व प्रथम रूप से हकपी हुई १३६ ०० वर्गमील भूमि छावर संप्रेश समर्पित कर दी जिसके परिणामस्वरूप चीन का भारत चीन सीमा पर ६ वरों पर अधिकार हो गया। भारत ने विरोध प्रकट करते हुए कहा कि पाकिस्तान न काश्मीर पर हमला करके इसके एक बड़े भूभाग पर अर्धव्य अधिकार कर रहा है प्रत उसे इस सीमा प्राप्त के सम्बन्ध में चीन से समझौता करने का कोई अधिकार नहीं है। ५ मार्च १९६३ के अपने भाषण में श्री नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी कि चीन भारत और पाकिस्तान के काश्मीर के मझे का साम उठाते हुए अपने प्रयत्न का विस्तार कर रहा है। भारत सरकार के विरोध के बावजूद पाकिस्तान यह बुराप्रहृपूर्ण बाधा करता रहा कि उसके और चीन के बीच उस प्रदेश में सीमाओं सम्बन्धी मतभेद का जिसका निबटारा उन्होंने लान्छिपुर्ण तरीकों से बाठबीठ द्वारा किया है। पाकिस्तान का कहना था कि यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह समझ था कि जैसे भारत की सीमा का विवाद उत्पन्न हुआ है वैसे ही इस सीमा पर भी संघर्ष पैदा होने से घोर अनाम्ति और अन्तर्राष्ट्रीय अनाधपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती।

चीन और पाकिस्तान भारत के विरुद्ध में कुरमि संधि के मार्ग पर बढ़ते गये। अत्यन्त १९६३ में एक अन्य समझौते के अनुसार पाकिस्तान ने चीन के हवाई प्रहृओं को अपने प्रदेश के हवाई प्रहृओं में उतरान तथा उड़ने से कुछ अधिकार प्रदान किए। इस समझौते पर नाराजगी प्रकट करते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका ने झाका के हवाई प्रहृ के सुधार के लिये दिये जाने वाले ४३ लाख डॉलर का ऋण पाकिस्तान को देने के समझौते को स्थगित करने की घोषणा की। सितम्बर १९६३ में चीन ने पाकिस्तान को कूट के बहसे सीमेन्ट देने का समझौता किया। अक्टूबर १९६३ में साम्यवादी चीनी

महाराज्य के समारोह में भाग लेने के लिए प्रथम बार पाकिस्तान का एक उच्च स्तरीय मिश्र मण्डल चीन गया। मार्च १९६३ में राष्ट्रपति प्रयूब द्वारा चीन की राजकीय यात्रा की गई और तत्पश्चात् दोनों देशों के रक्षा एवं विदेश मंत्रियों ने एक दूसरे के देश की यात्रा की। सितम्बर १९६३ के भारत-पाक संघर्ष के समय चीन ने भारत को १३, सितम्बर को तीन दिन का अस्तीमेतम देकर यह द्वावा प्रकट किया कि यदि पाकिस्तान से भारत संघर्षरत रहा तो चीन को भारत से लड़ना पड़गा। बाद में चीन ने अपने अस्तीमेतम को २२ सितम्बर, तक बढ़ा दिया। भारत ने चीनी धमकियों का मुहताङ उत्तर युद्ध में पाकिस्तान की परास्त कर के दिया। चीन का अस्तीमेतम पाकिस्तान के प्रति अपनी मित्रता निम्नाने का पूरा स्वांग सिद्ध हुआ। चीन ने भारत पर पुनः आक्रमण करने का साहम नहीं किया।

प्रश्न उठता है कि आन्तरिक पाकिस्तान व चीन भारत में सहने के लिए सामादा क्यों है? इसका आधार भूत कारण यह है कि भारत में जनी हुई सरकार है जहाँ जनतन्त्रात्मक शासन प्रचलित है। भारत ने स्वतन्त्रता के अपने २० वर्षों के इतिहास में आन्तरिक सहस्रितत्व की नीति पर बसकर दुनिया में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वह औद्योगिक प्रगति के मामले में बढ़ा है एवं एशिया का सबसे बड़ा जनतन्त्र एवं धर्म निरपेक्ष राज्य है। भारत के विपरीत पाकिस्तान में फौजी तानाशाही है। वहाँ फौजी तानाशाह प्रयूब जनता की प्रगति में ध्यान न देकर अपनी गृही कायम रखने के लिए युद्ध को बढ़ावा देता है। पाकिस्तान कोई उस्तेसमीय प्रगति २० सालों में नहीं कर सका है। उसे हमारी प्रगति से हमारे जनतन्त्र से ईर्ष्या और असन है। वह काश्मीर के लोगों के लिए धारम-निर्णय कराता है लेकिन अपने देशों में धारम चुनाव नहीं कराता। चीन भी कम्युनिस्ट तानाशाही का समर्थक देश है। उसने तिब्बत पर जुम्प ड्राये हैं तथा विश्व में सर्वत्र बर्मे संघर्ष करा कर कम्युनिस्ट विस्तारवादी नीति को फैलाना चाहता है। उसके मार्ग में ४३ करोड़ लोगों का जनतन्त्रवादी देश भारत सबसे बड़ी बाधा है। वह इसके जनतन्त्र को फलता फलतः और सफल होता नहीं देना सकता। इसलिये ये देश भारत से लड़ाई पर उतरा है।

वास्तव में इस समय पाकिस्तान राजनीतिक समारोहन और भ्रष्टे पट्टी की दुरगी नीति बल रहा है। एक धार तो वह उस और चीन के साम्प्रदायी होण से संसार की रक्षा के लिए अमेरिका ब्रिटन आदि पश्चिमी बलों की सैनिक मुठ बनियो में शामिल हुआ है और दूसरी ओर उसने चीन से शोर्नी बढ़ाई है। पाकिस्तान के आन्तरिक विषादा इन प्रकार दोनों मुठों की अन्धक से अन्धक महाजालियों को अपने हाथ में रखने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु इसमें सफल होने की बहुत कम संभावना है।”

(१) पाकिस्तान अफगानिस्तान सम्बन्ध

पाकिस्तान के अफगानिस्तान के साथ सम्बन्ध अपने जन्म बाल से ही बड़े अन्धोपमंड रहे हैं। अफगान लोग अपने तपाकपित 'पञ्चमिस्तान'

की स्थापना करके प्रथम मायरा तक पहुँचने का स्वप्न देख रहे थे, परंतु उन्होंने पक़्तु भाषा भाषी क्षेत्र में एक ऐसे राज्य की स्थापना की माँग की जो पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान की वर्तमान सीमाओं पर—'दुरैण्ड लाइन' (Durand Line) के स्थान पर एक नवीन सीमा रेखा को बर्राम दे। पाकिस्तान ने अफ़ग़ानों की इस माँग को ठुकरा दिया फलतः दोनों देशों में कटुता और वैमनस्य के भावों का प्रसार हुआ।

१९५५ में अफ़ग़ानिस्तान ने पश्चिमी पाकिस्तान में पक़्तु क्षेत्र सहित एक नई प्रजासत्तक इकाई की स्थापना के विरुद्ध कराँची को एक विरोध पत्र भेजा। इसपर पाकिस्तान ने अफ़ग़ानिस्तान पर यह गंभीर आरोप लगाया कि वह पाकिस्तान के देश छोड़ी तत्वों को प्रोत्साहन दे रहा है। पाकिस्तानी नेताओं द्वारा यह भी कहा गया कि अफ़ग़ानिस्तान प्रन्तराष्ट्रीय साम्यवाद के हार्पी का एक किसौना मात्र है और सोवियत संघ का 'सात' बन चुका है। राष्ट्रपति अयूब ने अमेरिका को अफ़ग़ानिस्तान के बारे में प्रमित करने की पूरी कोशिश की किन्तु अमेरिका का आसन्न बर्ग पाकिस्तानी दृष्टिकोण को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। पाकिस्तान के विरोध की उपेक्षा करते हुए अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान की प्रत्येक व्यवस्था के विक्रम में सहयोग देने में साक्षियता संघ से डर कर प्रतियोमिता की। जनवरी १९६६ में अफ़ग़ान विद्रोह मंत्री कराँचा पाए किन्तु दोनों देशों ने सम्बन्ध सुधरने का बचाव और भी अधिक बिगड़ गये। श्री अयूब ने शेखो से सम्बन्ध मुस्लिम राज्यों के अध्यक्षों को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध मड़काने का प्रयास किया लेकिन टर्की ने तत्कालीन राष्ट्रपति और ईरान के शाह ने उनकी बातों का समर्थन करने से इन्कार कर दिया। मार्च १९६० में पाकिस्तान को जब एक और निराशा हाव लगी जब अपनी काबुल शाखा के समय तत्कालीन कमी प्रवात मंत्री श्री सुल्तैब ने अफ़ग़ानिस्तान के बाबे का पूर्ण समर्थन किया। पाकिस्तान ने इस समर्थन का बड़ा जोर गुप्त मचाया और पाक-अफ़ग़ान सम्बन्धों में और भी निराशत घाई।

दोनों देशों के सम्बन्ध जब विशेष बटु हा गए जब सितम्बर १९६० और मई १९६१ में दोनों में सीमा के बाजौर (Bajaur) क्षेत्र में लड़ाई हुई। परिष्णाम स्वरूप अगस्त १९६१ में दोनों ही देशों के कूटनीतिक सम्बन्ध टूट गए। पहले भी १९५५ में उनके कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद हो चुके थे किन्तु १९५७ में वे पुनः स्थापित हो गए।

ईरान के शाह के मंत्रीपूर्ण हस्तक्षेप से २६ मई १९६३ को पाकिस्तान व अफ़ग़ानिस्तान व्यापारिक एवं कूटनीतिक सम्बन्ध पुनः स्थापित करने को महत्तम हुए। दोनों ही देशों ने यह बचन दिया कि वे परस्पर सदभावना मंत्री और विश्वास का वातावरण बनाने में सहायक होंगे। फिर भी अफ़ग़ान प्रतिनिधि मंडल के नेता मईर रशिया न २६ मई को तेहरान में यही कहा कि अफ़ग़ानिस्तान न दुरैण्ड रेखा को दोनों देशों के बीच की प्रन्तराष्ट्रीय सीमा रेखा नहीं माना है और पक़्तुनिस्तान का प्रकृत पक्ष भी विवाद का

यह है। किन्तु समय-समय पर पाकिस्तानी विदेश मंत्रियों की भुट्टो ने दक्षिण-पूर्वी में कहा कि पाकिस्तान का प्रश्न अब समाप्त हो चुका है। इस ही की भुट्टो ने यह भी संकेत कर दिया कि पाकिस्तान अब भी अफगान खारों को अपने देश में बुलाने से रोकता रहेगा। पाकिस्तान का प्रश्न अब भी दोनों देशों के मध्य एक विबाध घस्त प्रश्न है।

(१) पूर्वी पाकिस्तान में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

पाकिस्तान के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की वर्षा के प्रसंग में पूर्वी पाकिस्तान के साथ पिछड़ी के सम्बन्धों पर भी संघेय में प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा क्योंकि पाकिस्तान द्वारा मगये जाने वाले काश्मीर की प्राप्ति के लिये के पीछे उनकी अपनी आन्तरिक स्थिति भी है। पूर्वी पाकिस्तान में आब सख्त घमनाय व्याप्त है और यह स्वायत्त शासन की मांग पर रहा है। इसलिए काश्मीर को जाने का लारा मगार 'इस्लाम गतरे में' की आवाज सुनने पर और भारत से मुक्त क लाने की बात कहकर पाकिस्तानी नेता अपनी जनता को अहित कर्म और बहुकाल का प्रयास करते रहते हैं। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने अब मुसाल में न घान का नेकम सा कर लिया है और इसीलिए १६ अगस्त १९६६ सबह घामी स्वतंत्रता के लिए आंदोलन छेड़ चुकी है। इन सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पूर्वी पाकिस्तान में सम्पूर्ण पाकिस्तान की जनसंख्या का लगभग ३३ प्रतिशत भाग निवास करता है। १९६१ की जनगणना के अनुसार पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या ५०,०४०,२३३ है जब कि पश्चिमी पाकिस्तान की जनसंख्या ४२,००,३०८ है।

पाकिस्तान के इन दोनों हिस्सों में मतभेद के प्रमुख कारण ये हैं—

(१) राष्ट्रीय असेम्बली के १३० स्थानों में दोनों प्रांतों से ७३-७३ बराबर संख्या में सदस्य लिए जाते हैं जब कि पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या ३३ प्रतिशत है।

(२) १९५७ से १९६१ के बीच पश्चिमी पाकिस्तान ने विपत्ति की घरेला ४७३ करोड़ रुपये का आयात किया है।

(३) १९६४-६३ में बिदेगी आण का १३ प्रतिशत पूर्वी पाकिस्तान का दिया गया जब कि ३६ प्रतिशत पूर्वी पाकिस्तान को बुकाना पड़ना है।

(४) प्रथम पंचवर्षीय योजना में पूर्वी पाकिस्तान को १८ करोड़ रुपये का कर दिया गया जब कि पश्चिम पाकिस्तान को ४६६ करोड़ रुपये का आण दिया गया।

इसी तरह तीव्र के स्थानों पर नियुक्ति का क तार घापनाम स्वम घादि की बुकिया प्रदान करने के मात्रमा में जो पश्चिमी पाकिस्तान का पूर्वी पाकिस्तान के प्रति पूर्णतः पसपाना पुण रबया रहा है। पूर्वी पाकिस्तान निष्ठा क इत पसपाना को गहन करने क लिए अब तैयार नहीं है और इसीलिए

१६ अगस्त १९६६ से पूर्वी पाकिस्तान की प्राचामी लीग ने एक प्रान्दोलन शुरु कर अपनी निम्नलिखित छः सूचीय माँगें प्रस्तुत की हैं—

- (i) संसदीय सरकार की स्थापना और बासिय मताधिकार ।
- (ii) विधान मंडलों की सार्वभौमिकता ।
- (iii) दोनों प्रांशों के लिए स्वतंत्र वार्षिक ब्यबस्था ।
- (iv) पूर्वी पाकिस्तान को पूरक रूप से कर मताले का अधिकार मिले व केन्द्र को उहका कुछ प्राड ही दिया जाय ।
- (v) दोनों नामों के निर्वाचि ब्यापार का प्रसन २ हिसाड रखा जाय ।
- (vi) दोनों राज्दों को अपनी अपनी सेना रखने का अधिकार हो ।

प्राचामी लीग की तरह ही पूर्वी पाकिस्तान की राष्ट्रीय प्राचामी पार्टी ने भी प्रसस्त १९६६ से इही प्रकार का प्रान्दोलन शुरु कर रखा है । इस पार्टी ने अपनी १४ माँगें प्रस्तुत की हैं जो निम्नानुसार हैं—

- (i) पञ्जाब सीमाना प्रवेस, सिन्ध बलूचीस्तान और पूर्वी पाकिस्तान को लेकर पाकिस्तान नष का बठल हो और स्वतंत्र मताधिकार के प्राचार पर विधान मंडलों का बठल हो
- (ii) नागरिकों को ब्यक्तिगत स्वतन्त्रता रहे
- (iii) सभी राजनीतिक बन्धियों की मुक्ति की जाय,
- (iv) पाकिस्तान सीटो एवं सैण्टो की सहस्वता का स्थाप करे,
- (v) पूर्वी पाकिस्तान को सुरक्षा के मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता मिले
- (vi) पूर्वी पाकिस्तान से जन से जाने पर रोक रहे
- (vii) प्रथिरसा बधोग सरकारी क्षेत्र में रहे और दोनों प्रांशों में स्थापित हो
- (viii) बैंक बीमा और पटसन उद्योग सरकार के हाय में रहे
- (ix) भूमि ब्यबस्था में सुधार हो
- (x) बभिक संघ पठित करने का अधिकार दिया जाय
- (xi) सर्व साधारण के लिए शिक्षा की ब्यबस्था में सुधार हा
- (xii) बलूचिस्तान से बमन कामून उठाया जाय
- (xiii) पूर्वी पाकिस्तान में बाड निर्बंधण ब्यबस्था हो और
- (xiv) जन साधारण पर से कर मार हुंका किया जाय ।

पाकिस्तान की तामाबाही सरकार पूर्वी पाकिस्तान के जन-प्रान्दोलन को कुचसने के लिए पूरी तरह अपना बमन बरक बना रही है । इन बमन कामों की सुचना बाह्य बमन को न मिल सके इस बुष्टि से सरकार द्वारा समाचार पत्रों पर रोक सपा भी गई है और जन-नेताओं को जेल में डूत दिया गया है । लेकिन पूर्वी पाकिस्तान का सर्वप्रथम प्रान्दोलन इस प्रकार के बर्बरतापूर्ण प्रयामों से रक सकेगा—इसकी संभावना नबर नहीं जाती ।

नेपास
(Nepal)

हिमासय पर्वत क दक्षिणी इलान पर बसे नेपास के उत्तर में तिब्बत का छोटा किन्तु राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण देश और दक्षिण में भारत का विशाल गणराज्य स्थित है। वर्तमान समय में नेपास की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठी है। ब्रिजपरूप स साम्यवादी चीन द्वारा तिब्बत को धातमसात कर लेने के बाद। इस देश के उत्तर में प्राकमध्यात्मक और विस्तारवादी नीति का हिंसक पुजारी साम्यवादी चीन और दक्षिण में शातिपूर्ण सहप्रस्थित्व और गणधीन का निष्ठावान् प्रवर्तक भारत है। भारत के अस्तित्व के लिए नेपास की स्थिति एक सुदृढ़ सुरक्षा स्तम्भ जैसी है। यदि हम नेपास को भारत क विस्तृत और सर्वाधिक उपजाऊ गंगा प्रदेश का प्रवेणद्वार कहे तो हममें कोई अत्युक्ति नहीं। नेपास और भारत की सीमाएँ एक दूसरे में किन्तनी समी हुई हैं इसे स्पष्ट करते हुए स्वर्गीय श्री नरहक न ६ दिसम्बर, १९४० को कहा था कि "एक वर्षवा भी इस बात का ज्ञानता है कि कोई व्यक्ति भारत में गुजरे बिना नेपास नहीं जा सकता। इसलिए कोई भी देश नेपास के साथ हम से अधिक अनिष्ट सम्बन्ध नहीं रख सकता। हम यह चाहत हैं कि सभी देश नेपास और भारत में ब्रिजमान् अनिष्ट मौगोनिक और सार्वभूतिक सम्बन्धों को दृष्टि म रखें। प्रात्र सत्य यह है कि तिब्बत पर साम्यवादी चीन का अनिक प्राधिपत्य हो जाने के बाद से भारत की सुरक्षा बहुत कुछ नेपास की सुरक्षा पर निर्भर करती है। यदि साम्यवादी चीन येन-येन प्रकारेण नेपास तक अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर लेने में समर्थ हो जाता है तो भारत की सुरक्षा की नींव को निश्चय ही एक गम्भीर खतरा उपस्थित हो जाएगा।

नेपास पर चीन की कुदृष्टि आरम्भ से समी हुई है। चीनी साम्यवादी नेता यह तर्क देते रहे हैं कि नेपास-चीन संधि १७९२ के अनुवार नेपास पर चीन की राजनीतिक प्रभुसत्ता होनी चाहिए क्योंकि चीन ने कभी भी उत्क संधि का परित्याग नहीं किया है। चीन का साम्यवादी शासन नेपास का मूला है—इसका संकेत इस बात से मिलता है कि १९३९ म माओ स्वे-नुग ने अपनी पुस्तक 'Chinese Revolution and the Chinese Communist Party' में नेपास को चीन के 'अधिराज्यों' (Dependencies) की सूची में शामिल कर लिया था। माओ ने अपनी इस पुस्तक में लिखा है कि 'पुत्र चीन को पराजित कर साम्राज्यवादी राज्यों से चीन से अनेक अधिराज्यों की चीन के पर्याप्त क्षेत्र को हस्तगत कर लिया। जापान ने कोरिया, ताईवान, रियूक्यू द्वीप, पेस्काडोस और पोर्टमोयर पर इयत्तैव मे बर्मा नेपास भूटान और हांगकांग पर क्रम से धन्य पर और पुतगाल जैसे सामान्य क्षेत्र में महाक्र पर अधिकार कर लिया।" यदि सोवियत विस्तारवाद और साम्यवादी शासन के पर्यंत चीन के व्यवहार को कोई निर्देशक तत्व माना जाए तो हम बात में संदेह करने की कोई पुजाइन प्रतीत नहीं होती कि चीन की निगाह उपरोक्त क्षेत्रों की ओर समी है और वह कबम उपरोक्त अवसर की प्रतिता में है।

नेपाल धीरे भारत की कोई प्राकृतिक सीमा-विभाजक रेखा नहीं है। निकटतम पड़ीसी होने के साथे दोनों राष्ट्रों के हित परस्पर बंधे हुए हैं। कतिपय राजनीतिक एवं सामरिक कारणों से नेपाल में भारत के इतने अधिक हित नहीं थे कि वह नेपाल के प्राथिक राजनीतिक धीरे सामाजिक प्रगति में प्रत्येक सम्भव योग देने के लिए उत्सुक है। किन्तु फिर भी भारत के मस्तिष्क में नेपाल की प्रभुसत्ता पर रथ भाव भी बोरे शासन की कल्पना नहीं है। भारत नेपाल सम्बन्धों के बारे में १७ मार्च १९५० का भारतीय सदन में कहे गये श्री नेहरू के ये सव्य वाक्य भी पूर्वत् सत्य हैं कि—

“जहाँ तक कुछ एजियाई प्रतिनिधियों का सम्बन्ध है भारत धीरे नेपाल के बीच कोई सैनिक समझौता नहीं है। लेकिन भारत सरकार द्वारा किसी भी धीरे से नेपाल पर आक्रमण सचन करना सम्भव नहीं है। नेपाल पर सम्पादित कोई भी आक्रमण अवश्यम्भावा रूप से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा होगा।”

नेपाल की संक्षिप्त ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

१८१६-३० में महाराजा पृथ्वीनारायणशाह ने सम्पूर्ण नेपाल का एक शासक की धर्मीयता में संगठित किया। इसके पहले नेपाल के विभिन्न भागों पर विभिन्न राजाधों यववा राजीरदारों का अधिकार था जो एक प्रकार से स्वतन्त्र शासकों के रूप में शासन करते थे। नेपाल के इतिहास में एक बुद्ध किन्तु राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना १७५६ में पटी जब राणा बख्शहापुर ने राजा को नियन्त्रण में रख सत्ता का अग्रहण कर लिया धीरे राणा परिवार के निरंकुश कूर और अत्याचार पूर्ण शासन की नींव डाली। राणा बख्शहापुर के पदासीन होने के बाद से लगभग १४ वर्षों तक राणा परिवार के विभिन्न व्यक्तियों ने प्रबन्धमन्त्री के रूप में नेपाल की सत्ता पर निरंकुश शासन किया। इस प्रकार की राजाबाही १९३१ तक चली। इसके पूर्व नेपाल न केवल राजाधों के कठोर नियन्त्रण में रहा बल्कि बाहरी जगत के सम्पर्क से भी बहिष्कृत ही रखा गया। ब्रिटिश सरकार भी उसे ऐसा ही रखने देना चाहती थी। राजाधों के शासन काल में नेपाल विकसित बोधक समाज को प्रथम देता रहा धीरे उसका आधुनिक विकास धनक्य रहा। अन्ततोगत्वा १९५०-५१ में महाराजाधिराज श्री त्रिभुवन नारायणशाह के अग्रत्यागित कवच के फलस्वरूप नेपाल राणा बरिबार की काशी छामा से मुक्त हुआ। भारत ने राजा त्रिभुवन के इस मुक्ति-आयोसन को रोजन की बेटा नहीं की बल्कि उसने नेपाल के शासकों को प्रजातान्त्रिक सुधार मान की सलाह ही दी क्योंकि नेपाल की भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति की महत्ता को ध्यान में रख कर भारत नेपाल को एक स्थिर प्रजातान्त्रिक राष्ट्र बनना चाहता था। फरवरी १९३१ के प्रथम सप्ताह में नई दिल्ली क नेपाली कांग्रेस के प्रतिनिधियों राणा प्रतिनिधियों और महाराजा त्रिभुवन के मध्य विपरीय बार्ता प्रारम्भ हुई। १२ फरवरी को एक कई मंत्री परिषद के निर्माण के बारे में एक समझौता हुआ। १८ फरवरी १९३१ को काठमाण्डू में नये मन्त्रिमण्डल में जयव प्रह्व की जिम्मे प्रबन्धमन्त्री भी मोहन समथोर

जंगबहादुर बने। श्री मातृकाप्रसाद कोइराला युद्धमंत्री नियुक्त हुए। इस प्रकार एक नये नेपाल का उदय हुआ और निरंकुश सामन्तशाही शासन से नेपाली जनता को मुक्ति मिली।

किन्तु राजाओं और नेपाली कांग्रेस के प्रतिनिधि मन्त्रियों में अधिक समय तक नहीं बन सकी। महाराजा त्रिभुवन भी इस समुक्त मन्त्रिमण्डल के मतभेदों को दूर करने में असफल रहे। परिणाम-स्वरूप मन्त्रिमण्डल घटियरता और मर्षर्ष की घबट्टा में जसता रहा। मन्त्रिमण्डल के राजा गुट और नेपाली कांग्रेस गुट के इस घाम्तरिक संधय मे घन्त म राजा गुट की सक्ति घटती गई और उपयुक्त अवसर पाकर महाराजा त्रिभुवन १६ अप्रैल १९३१ को प्रधानमंत्री मोहन शमसेरजंग जंगबहादुर राणा को सर्वोच्च समापति के पद स हटा कर यह पद स्वयं न सम्हाल लिया। इस पर बोनी हमों (राणा वस ब नेपाली कांग्रेस दल) ने पुन भारत सरकार से मध्यस्थता करने की अपील की। मई १९३१ में नई दिल्ली मे हुए वार्ता में यह तय किया गया कि श्री मोहन शमसेरजंग प्रधानमंत्री के पद पर बने गूँ किन्तु मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन हो और माघ ही ४० सवस्यों की एक परामर्शदात्रा परिषद भी बनाई जाय। परन्तु पुनर्गठित मन्त्रिमण्डल भी उष मतभेदों का जिकार बना और १८ नवम्बर १९३१ को प्रधानमंत्री श्री मोहन शमसेरजंग ७ अपन पद स त्याग-पत्र दे दिया। १४ नवम्बर १९३१ को महाराजा त्रिभुवन ने श्री मातृका प्रसाद कोइराला को मन्त्रिमण्डल बनाने को कहा। इसके प्रधानमन्त्रित्व मे श्री नेपाल की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति मे कई सुधार नहीं हुआ। इस समय (१९३२) में डा के घाई, सिंह ने सरकार का लुका उभटने का असफल प्रयास किया।

६ अगस्त १९३२ को अपने प्रति बढ़ते हुए बिरोध को रोक कर, श्री मातृकाप्रसाद कोइराला ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। इसके दो माह बाद ही सितम्बर १९३२ में परामर्शदात्री परिषद भी भंग कर दी गई। विपम परिस्थिति में महाराजा त्रिभुवन न दूसरे बार श्री मातृकाप्रसाद कोइराला को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया। श्री कोइराला द्वारा अपने नये मन्त्रिमण्डल में श्री टंकाप्रसाद घाणाय को शामिल किया गया (जो बार में प्रधानमंत्री पद पर घासीत हुए)। जनवरी १९३३ म श्री टंकाप्रसाद घाणाय को मन्त्रि पद से मुक्त कर दिया गया और माघ १९३३ में श्री मातृकाप्रसाद कोइराला ने श्री त्यागपत्र दे दिया। बू कि महाराजा त्रिभुवन बीमार मे भग उन्होंने सम्पूर्ण अधिकार निहासल क उत्तराधिकारी राजकुमार महेन्द्र बिष्मलाह को सौंप दिया। राजकुमार महेन्द्र ने मन्त्रिमण्डल को समाप्त करके सम्पूर्ण शासन का दायित्व स्वयं ग्रहण कर लिया। १० माघ १९३३ को महाराजा त्रिभुवन की मृत्यु हो गई और श्री महेन्द्र बीरबिष्मलाह नेपाल के राजनिहासल पर घाम्त्र हुए। २७ जनवरी १९३६ तक नेपाल नरेण स्वयं शासत भूष का संभालन करते रहे और उन्होंने घनेर प्राणिक ब धार्मिक सुधार क्रियान्वित करने के ईमानदारी पूर्ण प्रयास किये।

२७ जनवरी १९५६ के उपरोक्त महाराजा महेश्वर ने श्री टंकप्रसाद शास्त्री को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। जुलाई १९५७ में श्री शास्त्री के स्वान पर डा के डाई सिंह प्रधानमंत्री बने किन्तु श्री सिंह भी नपास नरेस से मिस कर कार्य न कर सके। १४ नवम्बर, १९५७ को उनके स्वायत्त के उपरोक्त शासनमूख एक बार फिर नरेस के हाथों में केन्द्रित हो गया। इसी बीच नेपाली कांग्रेस नेपाली सेवान्त कांग्रेस और प्रजा परिषद ने मिस कर एक संयुक्त मोर्चा स्थापित करत हुए ग्राम चुनावों की मांग की। दिसम्बर १९५७ में नेपाल नरेस द्वारा घोषणा की गई कि फरवरी १९५८ में ग्राम चुनाव अवश्य होये।

१९५८ के राष्ट्र व्यापी चुनाव में नेपाली कांग्रेस ने १०९ में से ७४ सीटों पर विजय प्राप्त की और उसके अध्यक्ष श्री बी पी कोइराला प्रधानमंत्री बने। बाबाओं को यह भासा हुई कि अब नेपाल में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया है। लेकिन यह भासा फलीभूत नहीं हुई। १५ माह बाद ही राजा महेश्वर ने सरकार को भंग करके सम्पूर्ण शासन-मूख अपने हाथ में ले लिया। यह स्थिति कुछ समय बने रहने के बाद नेपाल में पुन लोकतन्त्रात्मक मान प्रकृत हुआ। जनवरी १९६१ में श्री तुलसी गिरी के स्वान पर श्री सुर्बहादुर पापा नेपाल के प्रधानमंत्री बने।

नेपाल की विदेश नीति और भारत-नेपाल सम्बन्ध

यह कहा जा चुका है कि फरवरी १९५१ में नेपाली कांग्रेस के प्रतिनिधियों राणा के प्रतिनिधियों और महाराजा त्रिभुवन के मध्य त्रिपक्षीय वार्ता होन के फलस्वरूप ही नेपाल में निरंकुश साम्राज्यवादी शासन के स्वान पर संयुक्त मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ और इस तरह लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली की आधार चिन्ता रखी गई। वरन्तु यह संयुक्त मन्त्रिमण्डल अभी प्रकार काम नहीं कर सका। संयुक्त सरकार की स्थापना के प्रयास बुरी तरह असफल हो गए। नेपाली नेताओं द्वारा स्थिर प्रशासन देने और जनता के हित में कार्य करने में असफल रहने के कारण भारत की सहायता का आशी बनना पड़ा। इस समय एक प्रथम बात यह हुई कि बीरसा बल और नेपाली कांग्रेस दोनों ने ही भारत विरोधी नीति अपना ली। मार्च १९५३ में नेपाली कांग्रेस के एक समय ने भारत-विरोधी प्रचार में भद्रसूची रूप से मांग सेना प्रारम्भ कर दिया। नेपाली कांग्रेस की कार्य समिति द्वारा एक प्रस्ताव पारित करके यह मांग की गई कि नेपाल और भारत के बीच स्वस्थ सम्बन्ध बनाये रखने और इन दोनों देशों के नागरिकों में मतभेद मिटाने के लिए भारत द्वारा अपने नागरिक विधेयों और सैनिक मिशन को नपास से हटा देना चाहिए। १९५३-५४ में काठमाण्डू बाटी में भारत विरोधी माँगों बढ़ती रही। नेपालियों में यह भावना और पकड़ने लगी कि नेपाल को भारत और चीन के मध्य एक सशक्त (बफर) राज्य की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए, क्योंकि तिब्बत के पलायन हो जाने के उपरान्त भारत और चीन एक दूसरे के विस्तृत सामने-सामने खड़े हो गए हैं। यदि

१९२४ में जब भारत का एक संसदीय प्रतिनिधि मण्डल काठमान्डू की सद्भावना यात्रा पर आया तो उसे विरोधी जनसमुह का सामना करना पड़ा। यहाँ तक की भारतीय राजदूत की कार पर पत्थर फेंके गये। यह घटना नेपाल में स्पष्ट रूप से बिद्यमान भारत-विरोधी भावना की परिचायक थी जिसमें धामे धामे वाले कुछ समय तक उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

जनवरी १९४६ में श्री टंकाप्रसाद शास्त्री के प्रधानमन्त्री बनने से भ्रमण की विदेश नीति साम्यवादी चीन की धीर विरोध रूप में झुकी। प्रधानमन्त्री बनने से पहले राणानाही के समय से ही श्री शास्त्री ने यह स्पष्ट कर दिया था कि उनकी प्रयत्न सहायमूर्ति साम्यवादी प्रणाली के साथ ही और यदि उनका वश बने तो वह इसी प्रकार की शक्ति द्वारा नेपाल को राणाओं के बंगुल से मुक्त करना चाहेंगे। उन्होंने कहा कि साम्यवाद न केवल एक नवीन राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक दर्शन है बल्कि एक नया धर्म भी है और एकमात्र ऐसा धर्म है जिसका द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रभावशाली ढंग से प्रहार किया जा सकता है। प्रधानमन्त्री बनने पर श्री शास्त्री ने अपनी बिदल-नीति पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला और कहा कि नेपाल विश्व की शक्ति प्रतीकों का मध्यमिण कर विश्व शक्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहेगा तथा अपने विकास के लिए सीमित सहायता के साथ कोई शर्त न जुड़ी हो। श्री शास्त्री ने विश्व बशर्ते कि उस सहायता के साथ कोई शर्त न जुड़ी हो। श्री शास्त्री ने विश्व शक्ति धीर पराधीन देशों की स्वतन्त्रता के हित में न केवल वश की बात बल्कि कर बाहर से तो यही प्रकृत किया कि नए नए भारत की नीति का अनुसरण करना चाहता है लेकिन उनका सम्बन्धी मुकाम स्पष्टतः मास्को और विरोध पेशिया द्वारा अपनाई गई नीति की ओर था। श्री शास्त्री ने भारत को बोझे में रखने के लिए पोलमोल ढंग से अपनी नीति की व्याख्या की जिसका प्रमुख उद्देश्य नेपाल में भारत के विभिन्न हितों को साक्षात् पहुँचाना था। ब्रिटिश शासनकाल से ही नेपाल भारत की परराष्ट्र नीति का अनुसरण करता रहा था परन्तु विश्व शक्ति के लिए कार्य करने की प्रिय लगने वाली बात कह कर श्री शास्त्री ने यह उद्देश्य दिया कि नेपाल अब किसी एक देश के साथ निस कर कार्य नहीं करेगा। इसी तरह पराधीन देशों के मुक्ति वह अब भारत का अनुकर्ता नहीं रहेगा। इसी तरह पराधीन देशों के मुक्ति साम्यवादों के समर्थन की बात कह कर श्री शास्त्री ने स्पष्ट कर दिया कि चीन युद्ध में वह पश्चिमी देशों का पक्ष न लेकर साम्यवादी युद्ध के अधिक निष्पट होगा। टंकाप्रसाद की विदेश-नीति का यही उद्देश्य रहा कि साम्यवादी चीन से सीधे-सीधे करके नेपाल में भारत के राजनीतिक प्रभाव को कमजोर कर दिया जाय। उन्होंने दिसम्बर १९४६ में भारत यात्रा के समय दिए गये एक बक्तव्य में कहा कि नेपाल भारत और चीन के मध्य एक संतुल्य रूप में कार्य करना चाहता है और दोनों से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है।

श्री शास्त्री के नेतृत्व में नेपाल द्वारा इन प्रकार की नीति धराने

का इतुगामी फल यह हुआ कि साम्यवादी चीन ने नेपाल के साथ सम्बन्ध बढ़ाना शुरू कर दिया। अक्टूबर १९५६ में श्री घाचार्य ने चीन की यात्रा की और जनवरी १९५७ में चीनी प्रधानमंत्री चाऊ-एन-साई नेपाल आए। अपनी यात्रा में श्री चाऊ ने नेपाल की अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को पक्षपात रखने में पक्षपाति मद्दायग का प्रावधान ऐसे रूप से दिया जिससे यह ध्वनित होता था कि मानो नेपाल की स्वतन्त्रता को चीन से नहीं बल्कि भारत से खतरा हो। उन्होंने नेपालियों की एक सभा में यह भी घोषणा की कि नेपालियों और चीनियों में एक ही रक्त प्रवाहित होता है। चीनी प्रधानमंत्री का यह कथन वास्तव में बड़ा सारगमिष्ठ और घायलकूटनीतिक था। इससे प्रथम तो यह अभिप्राय था कि चीनियों और नेपालियों दोनों के पूर्वज मंगोलस बल से सम्बन्धित हैं और दूसरा अभिप्राय यह था कि चीन नेपाल मुटान और सिक्रिम को एक सुभ में धाबड़ हो जाना चाहिए। पवित्रमी उपनिवेशवाद के क्षयित कौटुम्बिक का भय विहाय श्री चाऊ ने नेपालियों के हृदय में यह बारणा बीठाने की काबिल की कि नेपाल और चीन के सम्बन्ध पक्किर अनिष्ट होने चाहिए।

श्री घाचार्य ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में श्री चाऊ के द्वारा प्रदर्शित मार्ग को स्वीकार कर लिया और उन्हीं की भाषा या भावना में बोलत हुए कहा कि 'एशिया के अधिकांश देश अधिकांशित हैं। पर यह स्वाभाविक है कि अपने हित साधन में वे कभी-कभी एचिबाई एकता की उपाय कर बैठें और मायूसी बातों के लिए मटक आवें। हमें इस सम्भावना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और ऐसे कदम उठाने चाहिए कि ऐसे अवसर उपस्थित न हों। स्पष्टतः श्री घाचार्य का लक्ष्य भारत जैसे अमेरिकन सहायता प्राप्त करने वाले एशियाई देशों की ओर ही था। श्री घाचार्य ने बीसमाम भाषा का प्रयोग करते हुए कहा कि भारत को अपने ही हित में नेपाल में राष्ट्रीयता के विकास में सहयोग देना चाहिए क्योंकि राष्ट्रीयता के विकास द्वारा ही एशिया में साम्यवाद के प्रसार को रोकना या संकट है। उनका यह कथन अत्यन्त रूप से भारत पर यह आरोप लगाता था कि भारत नेपाल को अपना पिट्टू देव बनाने का प्रयास करता है जो उसे नहीं करना चाहिए।

श्री घाचार्य के वासनकाल में ही नेपाल और चीन के मध्य तिब्बत के सम्बन्ध में एक सचि हुई और साम्यवादी चीन ने ३ वर्ष की अवधि में नेपाल की ६ करोड़ रुपयों की सहायता देने का वचन दिया। यह समझौठा वास्तव में नेपाल में साम्यवादी प्रसार की एक राजनीतिक भास थी और इससे स्पष्ट हो गया कि नेपाल का चीन के प्रति बहुत अधिक मुकाम हो रहा है। इस समझौते से भारतीय जनमत नेपाल के हारों के प्रति स्वाभाविक रूप से तर्कित हो गया। ६ अक्टूबर १९५६ को इस समझौते पर टिप्पणी करते हुए हिन्दुस्तान-ट-इम्स ने लिखा—'नेपाल की वर्तमान सरकार चीन के साथ ६ करोड़ रुपयों की अधिक सहायता-समझौते पर हस्ताक्षर करके यही मार्ग से हट रही है। नेपाल इस समय उस सहायता का ही अनुपयोग

करण की स्थिति में नहीं है जो भारत से उसे मिस रही है। इन स्थितियों में चीन के साथ भाषिक सहामता-सम्मतिता करना केवल एक राजनीतिक बात है।”

नेपाल और चीन की इस बढ़ती हुई मैत्री की स्थिति में यह नितांत स्वाभाविक था कि भारत हिमालय के इस क्षेत्र में अपनी कूटनीति सुभारने का प्रयत्न करता। अब भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद ने जनवरी १९५६ में नेपाल की यात्रा की और दिसम्बर १९५६ में श्री धार्याय को भारत यात्रा के लिए प्रेरित किया। भारतीय राष्ट्रपति ने अपनी यात्रा के दौरान नेपाली जनता और शासक वर्ग को स्पष्ट शब्दों में इस बात का आश्वासन दिया कि भारत क नेपाल के सम्बन्ध में कोई क्षेत्रीय महत्वाकांक्षायें नहीं है और न ही वह नेपाल क प्रांतिक मामलों में कोई हस्तक्षेप करना चाहता है। राष्ट्रपति महाशय न यह भी जोषणा की कि भारत नेपाल के प्राषिक विकास की १३ करोड की योजना में पूरा पूरा सहयोग देगा। २२ जनवरी १९५६ को काठमाण्डू में अपने एक भाषण में डा० प्रसाद ने भारत और नेपाल क अनिच्छ सम्बन्धी और पारस्परिक द्विों को इन शब्दों में व्यक्त किया—

“नेपाल की ताति और सुरक्षा को कोई भी सतत भारत की ताति और सुरक्षा के लिए भी सतत ही बडा सतत है। आपके मित्र हमारे मित्र है और हमारे आपके।”¹

परन्तु दोनों देशों के नेताओं की इन सद्भावना यथापि क उपयोग्य भी कोई बाधित परिणाम नहीं निकला और श्री टका प्रसाद धार्याय के नेतृत्व में नेपाल की विदेश नीति पूरवत् साम्यवादी चीन की ओर अभिमुख रही। जुलाई १९५७ में श्री धार्याय क स्वाम पर डा० क० धार्याय सिंह नेपाल के प्रधान मंत्री बने। यद्यपि उनकी नीति भारत के साथ सम्बन्ध सुभारने की थी परन्तु श्री धार्याय के समर्पक समाचार पत्रों में भारत के विरुड तीव्र प्रचाराम्बोजन छेड़ते हुए उस पर तरह-तरह क आरोप लगाने शुरू कर दिए। कसबक्य भारत के प्रति नेपाली दृष्टिकोण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया। डा० सिंह को यह-काम में असमकता मिली और नवम्बर १९५७ में उन्हें त्याग पत्र देना पडा। डा० सिंह ने नेपाल के ऊपर संयुक्त राज्य अमेरिका क दबाव की चर्चा की और यहाँ तक आरोप लगाया कि अमेरिकन मिशन निश्चय में साम्यवाद विरोधी प्रभावों को भवद करना चाहता है। डा० सिंह के प्रधानमंत्रित्व काम में अमेरिका और नेपाल के सम्बन्धों में तथाकथना। भारत-निश्चय अमेरिकन राजदूत ने डा० सिंह के इस आरोप का खण्डन किया कि अमेरिका नेपाल को अन्तर्राष्ट्रीय कंफ्ल्टों में पचीटना चाहता है।

1 Any threat to the peace and security of Nepal is as much a threat to the peace and security of India Your friends are our friends and our friends yours

सन् १९५६ में घाम निर्वाचन होने के बाद भी बी० पी० कोइराला नेपाल के प्रधान मंत्री बने। किन्तु उनके १० महीने के प्रधान मन्त्रित्व काल में भारत-नेपाल सम्बन्धों में कोई सुधार नहीं हुआ। श्री कोइराला ने अपने शासन काल में चीन की यात्रा की और श्री चाऊ-एन-साई को पुनः नेपाल घाने के लिए धामनित्र किया। श्री कोइराला ने अपनी यात्रा के समय साम्यवादी चीन के साथ एबरेस्ट-पर्वत शिखर के बारे में प्रारम्भिक समझौता बातों की और बाद में काठमाण्डू में भी अन्तिम समझौता हुआ वह एक प्रकार से भारत के साथ नेपाल सरकार का विस्वासघात था। वास्तव में कोइराला मन्त्रिमण्डल द्वारा चीन से इस प्रकार का समझौता भारत को तम करने के उद्देश्य से किया गया था। परन्तु जब महाराजा महेन्द्र द्वारा कोइराला मन्त्रिमण्डल को बर्खास्त करके शासन सत्ता अपने हाथ में ले लिया गया तो लोकतन्त्रवात्सल्य मानन प्रणाली के पतन की दृष्टि से भारतवासियों को खेद भसे ही हुआ, परन्तु कोइराला-सरकार के प्रति कोई विशेष सहानुभूति भी प्रकट नहीं की गई।

कोइराला-मन्त्रिमण्डल के पतन के बाद १९६१ तक भारत और नेपाल के सम्बन्ध तनावपूर्ण रहे। इस तनाव और कटुता का उत्पन्न होने का एक प्रमुख कारण यह था कि यद्यपि कोइराला-मन्त्रिमण्डल मरने के साथ ही नेपाली कांग्रेस के घनेक नेताओं को विरपटार कर लिया गया था परन्तु कुछ व्यक्ति घाम कर भारत बसे घामे ये और भारत ने खड़े हुए ही नेपाल में जन आन्दोलन की योजनाएँ क्रियान्वित करने को सचेष्ट थे। इस बात को लेकर कि भारत नेपाल-महेश के विरोधियों को घामे यहाँ से नेपाल सरकार विरोधी कार्यवाहियाँ करने की छूट दे रहा है, दोनों देशों के राजनीतिक और अन्तर्नीति सम्बन्ध में विशेष कटुता घा गई। इसके प्रतिरिक्त दोनों देशों के सम्बन्धों में बिगाड़ घाने का दूसरा प्रमुख कारण यह रहा कि भारत की घनेक नेताधनियों के बावजूद महाराजा महेन्द्र ने काठमाण्डू स्थाता सड़क-मार्ग बनाने का सम्बन्ध में चीन से समझौता करके स्पष्टतः भारत विरोधी कदम उठाया। चीन के निमन्त्रण पर महाराजा महेन्द्र ने न केवल चीन की यात्रा की बल्कि यहाँ पहुँच कर घामे शासन के लिए साम्यवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त करने का बुरा प्रयास किया। इस सम्बन्ध में जल्का एक भारत के प्रति अपेक्षा का रहा। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि महाराजा द्वारा चीन की यात्रा किये घामे से पूर्व नेपाल सरकार ने २४ विघम्बर, १९६१ को ६ पृष्ठों की एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें कहा गया कि विदेशों से नेपाल को बितपी भी मदद मिली है उक्तमें चीन से मिलने वाली मदद सर्वाधिक उधार व स्वार्थ विहीन थी। इतना ही नहीं अक्टूबर-नवम्बर १९६२ में जब चीन द्वारा भारत पर अग्रस्थाहित रूप से बिश्वास एवं विस्वासघाती जानमघ हुआ तब भी इस घाक्रमण के प्रति नेपाल का एक उदस्पता का रहा। उस समय नेपाल का चीन खडना यही इन्तिम करता था कि नेपाल की अन्धस्तन सहानुभूति साम्यवादी चीन के प्रति की यद्यपि उल्कासीन दुइमपी थी तामबहुतुर बाइपी की नेपाल-यात्रा से नेपाल की भारत विरोधी नीति में कमी अकम्प घा गई थी। श्री मास्वी की यात्रा ने भारत-नेपाल सम्बन्धों में सुख

घम्याय की जो धारा-धिसा रही उसे बाद में महाराजा महेंद्र की भारत यात्रा और राष्ट्रपति डा० राजाज्योतिबा की नेपाल यात्रा से बड़ी मजबूती मिली। दोनों देशों के साधनाम्बुओं और हीर्यस्य नेताओं की पारस्परिक यात्राओं से भ्रमपूर्वक धारणाओं का निराकरण हुआ और नेपाल का शासक बर्ष साम्यवादी चीन के वास्तविक अतरे का छोटा रूप में पहिचानने लगा। इसी के परिणामस्वरूप भारतीय दूतावास द्वारा यमाने जाने वाले स्वतन्त्रता समारोह में नेपाल की राष्ट्रीय पञ्चायत के नेपथीय श्री बापा ने कहा कि जब तक एक भी नेपाली जीवित है तब तक नेपाल के रास्ते से किसी भी धाकमसुकारी के सिद्ध भारत पर आक्रमण करना सम्य नहीं है।

२३ सितम्बर, १९६४ को भारत के विदेश मंत्री सरदार स्वर्ण सिंह की नेपाल यात्रा भी बड़ी महत्वपूर्ण रही। श्री स्वर्ण सिंह ने अपनी स्पष्टवाचिता से और नेपाल के प्रति भारत की हार्दिक मैत्री के सही प्रस्तुतीकरण से बाहुरी प्रचार के रज महे काहुरे को भी साक कर दिया। नेपाल की मंत्री परिषद् के उपाध्यक्ष धीर बि। मंत्री बापा तथा श्री स्वर्ण सिंह में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत द्वारा नेपाल के लिए २ करोड़ रुपये की सानत से सीमावर्ती नम्बे मु ली और मध्यपूर्वी नेपाल से घोस्वरा घाटी के बीच १२८ मील लम्बी सड़क का निर्माण करने का निश्चय किया गया। काठमान्डू से भारतीय सीमा रक्षीस को छोड़ने वाली एक धम्य सड़क-योजना भी भारत ने धपने हाज में ली। इसके अतिरिक्त भारत ने धपने वर्षों से कोसी-योजना पूरी करने का निश्चय किया। कोसी योजना के पश्चिमी गहर-कार्य का उद्घाटन भारत के स्वर्णम प्रधान मंत्री श्री इन्दिरा द्वारा २४ अप्रैल १९६३ को किया गया। इस योजना का उद्देश्य नेपाल को बाढ़ की सति से बचाना व बिजली व सिंचाई से उसे सम पहुंचाना है। भारत नेपाल मैत्री संघ के धम्यस में भारत द्वारा नेपाल को दी गई उदार सहायता के प्रति धाधार प्रकट करते हुए कहा— 'भारत नेपाल के सम्बन्ध पुरातन काम से ही बने जा रहे हैं। भौगोलिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से जो सम्बन्ध हैं-वे धमर हैं और हिमालय के समान पवित्र तथा शाश्वत हैं।'

भारत और नेपाल के सम्बन्ध अतरोत्तर मधुर होते गये। दिसम्बर, १९६३ में नेपाल मरैस ने भारत यात्रा की समाप्ति पर प्रधान मंत्री श्री इन्दिरा के साथ जिस संयुक्त विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर किये वह इस बढती हुई मैत्री का प्रमाण था। इस विज्ञप्ति में, काश्मीर का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए भी महाराजा महेंद्र ने घोषित किया कि— 'भारत-निर्णय का सिद्धान्त केवल पराधीन और स्वास्त (Trust के धाधीन) राज्यों में ही लागू किया जा सकता है और प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों के धमिन्न बर्गों पर इसे बन्ने लागू नहीं किया जा सकता है। इस विज्ञप्ति में महाराजाधिराज ने यह भी स्वीकार किया कि भारत की सहायता से नेपाल में जल रहे बिरास-धायों की प्रगति संतोपजनक है। श्री इन्दिरा ने भी घोषणा की कि नेपाल के पञ्च-वर्षीय धायोजन की पूर्ति की बिधा में भारत धबिधाधिक सहायता प्रदान

करता रहेगा। अपनी इसी भारत-यात्रा के दौरान महात्मा ने भारतीय जनता को पटना से प्रसारित अपने एक लेख में कहा कि—“नेपाल और भारत के सम्बन्ध और सुधरे हैं और दोनों देशों के बीच एक दूसरे की बात समझने की एक दूसरे का सम्मान करने की तथा एक दूसरे को राष्ट्रीय धार्मिकताओं अनुभूतियों व परिस्थितियों का धार्मिक करने की समता बढ़ी है।” (दिनमान जनवरी १९६६)

जनवरी १९६६ में भारत में श्रीमती इन्दिरा गांधी व और नेपाल में श्री तुमसी गिरी के स्वागत पर श्री सुर्वे महापुर गांधी ने प्रकाश मन्त्री पत्र प्रकाश किया। मार्च १९६६ में श्री गांधी भारत की सम्मानन-यात्रा पर गये। यह हर्ष का विषय है कि वर्तमान में दोनों ही देश पारम्परिक मैत्री के पत्र पर बुद्धता के साथ प्रथम है। यह दोनों के ही हित में है कि वे राजनीतिक व्यापक और सांस्कृतिक समी क्षेत्रों में अनिच्छित रूप से पावक है।

श्री संका

(Ceylon)

श्री संका भारत के दक्षिणी पक्ष किन्तु के समीप एक छोटे आकार का द्वीप है जो भारत के साथ सांस्कृतिक आन्धरी पर अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। हिन्द महासागर में भारत की समीपता के कारण इसका सैनिक महत्व बहुत पहले से ही स्वीकार किया जाता रहा है। इस द्वीप का क्षेत्रफल २५, १६२ वर्गमील और जनसंख्या लगभग १११,३०० है। इस के तट प्रदेश की सम्बाई १०० वर्गमास है।

सामरिक महत्व का अभाव होने से भारतीय महाद्वीप पर आक्रमण और अधिकार करने वाली किसी भी महात्वाकांक्षी शक्ति की कुछ दृष्टि से यह द्वीप नहीं बच पाया। बाहरी देशों के आक्रमण का निवारण करने-बनते-बनते भारत में यह ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया। ब्रिटिश उपनिवेश बन कर इसका भी पूर्ण घोषण हुआ क्योंकि ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति यहाँ भी वैसी ही की वैसी की अन्य देशों में। फिर भी यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था अर्ध-राज्य शासन-व्यवस्था की कुशल परम्परा प्रायः ने यहाँ स्व शासन का वातावरण बना दिया और प्रथम महायुद्ध के दौरान निम्न व १४ औरीक विद्रोह तथा भारत की राष्ट्रीयता की लहर ने यहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन का बीजारोपण कर दिया। वास्तव में प्रथम महायुद्ध साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के लिए एक बुलबुल बनना सिद्ध हुआ क्योंकि इसके बाद से ही एशिया के विभिन्न देशों में राष्ट्रवाद अपने विभिन्न रूपों में—कई प्राधिकारी द्विपारमक रूप में और कहीं संबैधानिक तथा सूचारवादी रूप में—प्रकट होने लगा। भारत की मॉडि ही भी लका में यह संबैधानिक और सूचारवादी आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ। भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम का भी इस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। १९१९ में श्री संका में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसके नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन चलने लगा। ब्रिटिश सरकार द्वारा

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक विभिन्न संबैधानिक सुधार किए गये लेकिन सेंका का जनमत तो अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए बैठाव था। जुलाई १९४३ में श्री सेनानायक द्वारा ब्रिटिश सरकार के समक्ष श्री सेंका को Dominion Status प्रदान करने की एक योजना प्रस्तुत की गई। इसके साथ ही प्रतिरक्षा और विदेशी मामलों के क्षेत्र में एक सीमा का प्राव्य भी रखा गया।

काफी विचार-विमर्श के बाद अन्त में श्री सेंका के लिए एक नया संविधान तैयार किया गया और अन्त में याम जुनाबो की व्यवस्था हुई। इन जुनाबों में United National Party को सबसे अधिक सीटें मिली। इस दम के नेता और श्री सेंका के प्रथम प्रधान मंत्री श्री डी० एस० सेना नायक ने सेंका को Dominion Status लिये जाने की मांग दोहरायी। जून १९४७ में ब्रिटेन द्वारा इस मांग को स्वीकार किये जाने का घोषणा कर दी गई। ११ नवम्बर १९४७ को ब्रिटिश मसद में श्री सेंका को स्वतन्त्रता प्रदान करने का बिल प्रस्तुत किया गया जो चार मप्ताह के अन्दर ही दोनों सत्रों द्वारा पारित हो गया। इस प्रकार लगभग १३१ वर्षों के पश्चात् श्री सेंका को उपरान्त श्री सेंका को अपनी सार्ई हुई स्वतन्त्रता पुन मिली। ४ फरवरी १९४८ का ब्रिटिश सरकार द्वारा उक्त पुन Dominion Status प्रदान कर दिया गया।

जुलाई, १९५६ में श्री सेंका ने राष्ट्र मण्डल में एक गणराज्य के रूप में शामिल होने की इच्छा प्रकट की और ब्रिटिश सरकार द्वारा इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया। अगस्त १९५६ के निर्वाचनों में विजयी होने वाले People's Front के नेता श्री मंडारनायक इस समय श्री सेंका के प्रधान मंत्री थे।

२३ सितम्बर १९५६ को श्री मंडारनायक की एक बीड-मिडु द्वारा हत्या कर दी गई। इससे देश में अस्थिर राजनीतिक-अंश उठ खड़ा हुआ। १० मार्च १९६० के दूसरी बार के याम जुनाबों में United National Party पुन सबसे बड़े दल के रूप में प्रकट हुई और श्री इडने सेनानायक ने अपना मन्त्री मण्डल बनाया। अगस्त १९६० में सेनानायक-मन्त्रिमण्डल की अविश्वास प्रस्ताव का शिकार होना पड़ा। जुलाई १९६० में पुन जुनाब हुए जिसमें Freedom Party ने अधिकतम सीटों पर कब्जा बनाया और इस दल की वैतु चिरियाबो मंडारनायक (स्वर्गीय श्री मंडारनायक की पत्नी) ने प्रधान मंत्री पद सम्भाला। श्रीमती मंडारनायके दिसम्बर १९६४ तक बड़ी कुशलतापूर्वक शासन का संभालन करती रही थीं तत्पश्चात् २५ मार्च १९६५ को श्री इडने सेनानायक प्रधान मंत्री बने। श्री सेनानायक के प्रधान मंत्रित्व काल में जब तक भारत और सेंका के सम्बन्ध संतोषप्रद का नै मयूर रहे हैं।

ची लंका की विदेश नीति और भारत-लंका सम्बन्ध

अपनी निर्बलता राजनीतिक परिस्थितियों भौतिक स्थिति और आर्थिक विकास की भावश्यकता के कारण ची लंका ने विश्व-मायकों में प्रारम्भ से ही एक ठटस्वातवादी नीति अपनाई और इस देश के अधिकांश नेताओं सह-प्रतिस्पर्धी नीति के प्रचारक बन गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही ची लंका ने अपनी विदेश नीति के ये प्रमुख तत्व निर्धारित किये —

- (i) ची लंका की तन्त्रात्मक-स्वतन्त्रता की रक्षा,
- (ii) एक पूर्ण स्वतन्त्र राज्य के रूप में राष्ट्र मंडल की सदस्यता स्वीकार करना
- (iii) दक्षिण पूर्वी एशिया के सभी देशों विद्येकर भारत से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना
- (iv) औपचारिक रूप से किसी सक्ति-गुट के साथ सम्बन्ध न होना और बीच-गुट से बचता रहना एवं
- (v) मित्र देशों के साथ सहयोग करते हुए शांति और आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील रहना।

ची लंका ने एशिया और अफ्रीका के देशों के प्रति सर्वत्र सहयोग-भावना रखी है और साम्यवाद साम्राज्यवाद तथा तानिसेवावाद का तीव्र विरोध किया इस देश के नेताओं द्वारा सभी की स्वाधीनता और न्यायपूर्ण मायों को इमेका समर्पित दिया जाता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी ची लंका ने अपने को किसी गुट विषय के साथ सम्बन्ध नहीं किया है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्या के कुशाहपूर्णा के आधार पर ही अपने यथासम्भव मतदान किया है।

अपनी स्वाधीनता के समय से ही ची लंका के एक समान साझेदार के रूप में 'राष्ट्रमण्डल' से निकट सम्बन्ध रहे हैं। यह अनेकनीय है कि 'कोलम्बो-बोबना' की आधार सिद्धा १९२० में कोलम्बो में होने वाले राष्ट्रमण्डलीय प्रबन्धनसमिती सम्मेलन में ही रखी गयी थी। कोलम्बो-बोबना के अन्तर्गत आर्थिक क्षेत्र में भारत और ची लंका ने प्रसंगीय सहयोग किये और भारत द्वारा लंका के आर्थिक विकास में विविध रूपों में पर्याप्त सहायता प्रदान की गयी।

अपनी स्वतन्त्रता के तुरंत बाद ची लंका ने विदेश-सम्बन्ध के प्रबन्धन काल में भी लंका ने पश्चिम के साथ निकट-सम्बन्ध स्थापित किये। अमेरिकन आर्थिक सहायता-कार्यक्रम (American Technical Assistance Programme) के अन्तर्गत पश्चिमी सहायता का लाभ प्राप्त करने वाला यह प्रथम देश बना। १९५३ में सर जॉन कोलेषामा लंका के प्रधानमंत्री बने। उसके नेतृत्व में ची लंका के पश्चिम के साथ और भी निकट के सम्बन्ध स्थापित हुए। उन्होंने १९५५ के ब्रांडुन-सम्मेलन में महत्वपूर्ण भाग लिया

धीर पश्चिम के प्रवक्ता की सुमिका पदा की। एशियाई देशों के धीर भी अनेक सम्मेलनों में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। इन सभी सम्मेलनों में धीर संका ने एशिया की साम्यारिक्ता और प्रजावाधिक व्यवस्था में अपना गहरी भास्था प्रकट करते हुए सैनिक गुटबन्धी को बुरा बतसाया धीर यह स्पष्ट कर दिया कि वह केवल प्रायिक सहायता को पसंद करता है यदि उसके पीछे कोई अन्य सम्पन न हो।

१९५६ के घाम जुमावो के बाद धीर कोटमेवामा का स्वागत ब्रिटेन में लिखित धी मंडारनायके ने लिया। इस नये प्रधानमन्त्री ने संका की तटस्थतावादी नीति को बुरा निकार दिया और ब्रिटेन को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह ट्रिंकोमली (Trincomale) तथा काट्टनके (Kattu-Nale) से अपने सैनिक प्रहारे हटाये। फलस्वरूप ब्रिटेन इन प्रहारों को मानवीय द्वीप समूह में जाने को सहमत हो गया। धी मंडरनायके की यह मांग मन्वन के प्रति किसी प्रकार की शत्रुता की द्योतक नहीं थी अपितु यह देश की सभी राष्ट्रों से मैत्री व सहयोग तथा 'प्रतिक-गुटों' से घनमन्तता को नीति के लिए एक अनिवार्यता थी। सन १९५६ में एक बौद्ध माधु द्वारा उनकी हत्या कर दिये जाने से धी संका की निश्चल रूप म गम्भीर शक्ति उठानी पड़ी।

धी मंडारनायके के निष्ठा के बाद केवल कुछ महीनों के लिए धी संतानायके प्रधानमन्त्री बने धीर तत्पश्चात् जुलाई, १९६० में धीमती मंडारनायके मंसार की प्रथम महिला प्रधानमन्त्री बनी। इस विद्वती प्रधानमन्त्री ने अपने शासन काल में अनेक आतिशारी कदम उठाए बिना धी संका व अनेक बगों में बिरोध किया गया धीर सरकार का सत्का पम्पटने के लिए कई प्रयत्न प्रयत्न हुए। धीमती मंडारनायके ने भारत-चीन सीमा बिबाद पर तटस्थ देशों के 'कोसम्बो-सम्मेलन का आयोजन किया और सम्मेलन द्वारा पारित 'कोसम्बो प्रस्तावों' को लेकर स्वयं पेरिक्य धीर रिस्ती गई।

अपने शासन-काल में धीमती मंडारनायके ने अमेरिकन टेन-कम्पनियों के बिरुद्ध राष्ट्रीयकरण के कदम उठाए धीर इस सम्बन्ध में पश्चिमी राष्ट्रों के भीष दबाव का बुरापावक विरोध किया। धी सत्का को 'एस्सो (Esso) और कास्टैक (Caltex) कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण के कदमों में बिभुर करने में असफल होकर मधुक्त राज्य अमेरिका न संका को प्रायिक सहायता के प्रथम बापदे से मुक्त करने का निश्चय किया। बिन्तु अमेरिका के इस निश्चय का धी संका पर कोई बिपरीत प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि बिनेसी टेन-सम्पाना के राष्ट्रीयकरण की उसकी नीति ने मधुक्त राज्य अमेरिका द्वारा ही आम बाणी आबिक गुमता में उसे कटी प्रायिक साम्य पहुंचाया।

अनेक तत्परजामो के बावजूद धपन उय धीर आतिशारी दृष्टिकोष

यपनी निर्भरता राजनीतिक परिस्थितियों नीयोतिक स्थिति और
 आर्थिक विकास की आवश्यकता क कारण की लंका ने विश्व-मायनों में
 प्रारम्भ से ही एक उदत्तावस्था की नीति अपनाई और इस देश के अधिकारों
 के वाद से ही की लंका ने अपनी विदेश नीति के प्रमुख मक
 निर्धारित किये —

- (i) की लंका की स्वतन्त्र-स्वतन्त्रता की रक्षा
- (ii) एक पूर्ण स्वतन्त्र राज्य के रूप में राष्ट्र संघ की सदस्यता
 स्वीकार करना
- (iii) विश्व पूर्वी एशिया के सभी देशों विशेषकर भारत से दीर्घपूर्व
 सम्बन्धों की स्थापना
- (iv) औपचारिक रूप से किसी बलिष्ठ-मुठ के साथ सम्बन्ध न होता
 और सीट-मुठ से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत और आर्थिक
 और सीट-मुठ से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत और आर्थिक
 विकास के लिए प्रयत्नशील रहना ।

की लंका ने एशिया और अफ्रीका के देशों के प्रति सदैव सहयोग-भावना
 रखी है और साम्यवाद साम्यवाद तथा उपनिवेशवाद का तीव्र विरोध किया
 इस देश के नेताओं द्वारा सभी की स्वाधीनता और स्वायत्तता मांगों को हुनेका
 समर्थन किया जाता रहा है । संयुक्त राष्ट्र संघ में भी की लंका ने अपने को
 किसी मुठ विशेष के साथ सम्बन्ध नहीं किया है बल्कि राष्ट्रीय समस्या के
 युक्तियों के आधार पर ही अपने दवास्वयम मतदान किया है ।

अपनी स्वाधीनता के समय से ही की लंका के एक सवान
 सम्बन्ध के रूप में 'राष्ट्रसम्बन्ध' से निकट सम्बन्ध रहे हैं । यह सम्बन्धनीय है
 कि 'कोलम्बो-योजना' की आधार सिता 1950 में कोलम्बो में होने वाले
 राष्ट्रसंघीय प्रजातन्त्री सम्मेलन में ही रखी गयी थी । कोलम्बो-योजना के
 अन्तर्गत आर्थिक क्षेत्र में भारत और की लंका के प्रसंघनीय सहयोग किने
 और भारत द्वारा लंका के आर्थिक विकास में विभिन्न रूपों में पर्याप्त सहायता
 प्रदान की गयी ।

अपनी स्वतन्त्रता के पुरत बाद भी सेनामायके के प्रदान पणित्व काय
 से की लंका ने पश्चिम के एक निकट-सम्बन्ध स्थापित किये । अमेरिकन
 प्र-सिद्धि सहायता-कार्यक्रम (American Technical Assistance
 Programme) के अन्तर्गत पश्चिमी सहायता का काम प्राप्त करने वाला
 यह प्रथम देश बना । 1953 में अर जाँट कोर सेवाता लंका के प्रजातन्त्री
 बने । इसके तैत्तुल में की लंका के पश्चिम के साथ और भी निकट के सम्बन्ध
 स्थापित हुए । जून 1955 के बांडुय-सम्मेलन में मङ्गलपूर्व ताय सिता

और पश्चिम के प्रबलता की सुनिश्चिता प्रदा की। एशियाई देशों के बीच भी अनेक सम्मेलनों में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। इन सभी सम्मेलनों में भी संका ने एशिया की धार्यात्मिकता और प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अपनी गहरी भावना प्रकट करते हुए सैनिक युद्धबन्दी को बुरा बतलाया और यह स्पष्ट कर दिया कि वह केवल धार्मिक सहायता को पसंद करता है यदि उसके पीछे कोई धार्मिक बल न हो।

१९५६ के ग्राम चुनावों के बाद श्री कोटलेवासो का स्थान ब्रिटेन में स्थित श्री मंडारनायके ने लिया। इस मये प्रधानमन्त्री ने संका की तटस्थतावादी नीति को पूरा निरकार दिया और ब्रिटेन को इस बात के लिए बाध्य किया कि यह ट्रिनेमाली (Trincomale) तथा काट्टु-मके (Kattu-Nale) से अपने सैनिक घाड़ों हटाये। फलस्वरूप ब्रिटेन इस घाड़ों को मासदीव द्वीप समूह से जाने को सड़मठ हो गया। श्री मंडारनायक को यह मांग मन्दन के प्रति किसी प्रकार की सन्नता की द्योतक नहीं थी क्योंकि यह देश की सभी राष्ट्रों से मैत्री व महामोग नम शक्ति-गुटों से अनमनता को नीति के लिए एक अनिवार्यता थी। सन १९५६ में एक वोट-माधु द्वारा उनकी हत्या कर दिये जाने से श्री संका की निश्चित रूप न गम्भीर क्षति उठानी पड़ी।

श्री मंडारनायके के निधन के बाद केवल कुछ महीनों के लिए श्री सेनानायके प्रधानमन्त्री बने और तत्पश्चात् कुमार, १९६० में श्रीमती मंडारनायके संसार की प्रथम महिला प्रधानमन्त्री बनी। इस विधा में प्रधानमन्त्री ने अपने शासन-काल में घनई नीतियों के बरत उठाए जिनका श्री संका व अनेक बगों में विरोध किया गया और सरकार का तत्काल पतन के लिए कई असफल प्रयत्न हुए। श्रीमती मंडारनायके ने भारत-चीन सीमा विवाद पर तटस्थ रहने के नीति-सम्बन्धों का धार्योगन किया और सम्मेलन द्वारा पारित 'कोसम्बो प्रस्तावों' को लेकर स्वयं पेरिफ और हिस्ती गई।

अपने शासन-काल में श्रीमती मंडारनायके ने अमेरिकन उन कम्पनियों व बिस्व राष्ट्रीयकरण के बरत उठाए और इस सम्बन्ध में पश्चिमी राष्ट्रों के बीच दबाव का बृहतापूर्वक विरोध किया। श्री संका को एस्सो (Esso) और काल्टेक्स (Caltex) कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण के बरतों न विमुक्त करने में असफल होकर संयुक्त राज्य अमेरिका न संका को धार्मिक सहायता के, के अलग वायदे से मुक्त जाने का निश्चय किया। बिन्तु अमेरिका व इस निश्चय का श्री संका पर कोई विरोध प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि विदेशी ठेक-सम्पन्ना व राष्ट्रीयकरण की उम्मीद नीति न संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा ही जान जाती थी थी धार्मिक तुलना में उये तरी धार्मिक नाम पहुँचाया।

अनेक सचनताओं व बरतूर अणन उर और आधिकारी दृष्टिकोण

के कारण १९६१ के चुनावों में श्रीमती भंडारनायक पराजिता हुई और जनता स्वामिनाथ (१९६१ में श्री इंदिरा गान्धीनायक) ने लिया। श्रीमती भंडारनायक के मृत्यु के बाद भी श्रीमती भंडारनायक परम्परागत मूलभूत नीति पर ही चल रहा है। भारत के प्रति गान्धीनायक सरकार का वैश्वीय सम्बन्ध है। श्रीमती भंडारनायक की निष्पक्षता और व्यापक दृष्टिकोण का पता इसी से चल जाता है कि वह पहल करने के तुरन्त गान्धीय प्रथम एक बहुराष्ट्रीय में भाग लेती थी। भारत के प्रति गान्धीनायक सरकार का सम्बन्ध प्रस्ताव न मानने के कारण उत्पन्न हुआ है। हमें याद करनी चाहिये कि दोनों पड़ोसी देशों की मित्रता उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती जायेगी। यदि श्रीमती भंडारनायक के किसी बर्ष की जयन्ती कुछ स्थानों के भारत के प्रति किसी प्रकार का सम्बन्ध हो तो उन्हें उसे निकाम केन्द्रता चाहिये क्योंकि स्वर्गीय श्रीमती भंडारनायक के जन्म में हम एक स्वतन्त्र और मित्र सत्ता चाहते हैं। प्रत्येक दृष्टि से—सांस्कृतिक ऐतिहासिक सम्बन्धों या बर्ष के सम्बन्ध में श्रीमती भंडारनायक किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा हम से अधिक समीप है।

श्रीमती भंडारनायक की समस्या और

भारत-सत्ता सम्बन्धिता १९६४

यदि भारत और श्रीमती भंडारनायक के सम्बन्ध सभी क्षेत्रों में सामान्य रूप से प्रारम्भ से ही अच्छे रहे हैं फिर भी इन दोनों देशों के बीच झड़ता का एक कारण विद्यमान रहा है और वह है—श्रीमती भंडारनायक के रहने वाले भारतीय प्रवासी। प्रवासी में यह समस्या विशेष के औपनिवेशिक शासन से मिली थी। लगभग १२५ वर्ष पूर्व ब्रिटिश पूंजीपतियों ने प्राचीन काश्मिर राजाओं की जमीनों में औपनिवेशिक (Plantation Industry) प्रारम्भ किया था। इस उद्योग से काम करने के लिये उन्होंने दक्षिणी भारत से मस्ती मजदूरों का काम में आयात किया और उन्हें वहीं बसा दिया। इन मजदूरों को कानून द्वारा विशेष सुविधायें भी प्रदान की गईं। कामान्तर में काश्मिर राजाओं में विषमता जन समस्या भी बढ़ने लगी। परिणाम यह निकला कि नई दक्षिणी भारत के नामित मजदूरों और सत्ता के मित्रता लोगों के बीच प्रतिद्वन्द्विता स्वाभाविक रूप से पैदा हो गई। दक्षिणी लोग यह चाहते लगे कि प्रवासी भारतीय बापिन भारत छोड़ो आंदोलन के लिये उनके कारण दक्षिणी लोगों को रोजगार के अवसरों से वंचित रहना पड़ता है।

जब श्रीमती भंडारनायक ने स्वाधीनता प्राप्त की तो यहाँ की स्वतन्त्र सरकार यह अनुभव करने लगी कि मूल सत्ता बापिनो के हित में इन भारत प्रवासियों की बापिन भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल होना चाहिये। सत्ता सरकार ने अपने इस विचार के पक्ष में निम्नलिखित तीन कारण दिये—

प्रथम सत्ता में रहने वाले भारतीय यहाँ के स्थानीय नागरिकों के साथ अपनी एक बंधन मित्र नहीं लगे हैं। उनकी बंधन प्रथम भारत में ही है। प्रति बर्ष के अपने परिवारों का मातृभूमि निवास रखने को चाहते हैं और उनके विवाह सम्बन्ध भी भारत में ही होते हैं। चूँकि श्रीमती भंडारनायक के साथ उनकी

काई मानसिक प्रयत्न साम्प्रदायिक लड़ाई नहीं है। प्रथम उन्हें अपने मूल देश भारत को सौट जाना चाहिये।

द्वितीय इस प्रवासी भारतीयों के कारण सिक्कीम लोगों का गेजवाग के प्रवर्धनों से संबंधित रहना पड़ता है। भारतीय मजदूर या कुल्ल भी कंगठे हैं वैसे भारत को भेज देते हैं। अथवा जैसे भारत में कार्य करते हैं। इसका भी लंका के विदेशी विधिमय पर विरहीत प्रभाव पड़ता है।

तृतीय इस समस्या का एक राजनैतिक पहलू भी है। इन मूल भारतीयों में साम्प्रदायिक बंधन बहुत दृढ़ होने के कारण इनके द्वारा अपनी मनवान की शक्ति से भी लंका के राजनैतिक परिवर्धन का प्रभावित किया जा सकता है। श्री कोटसेवासने ने कहा कि भारतीयों का साम्प्रदायिक समूह भी लंका के निर्वाचन क्षेत्रों के परिष्कारों का निर्णायक रूप से प्रभावित करता है।

समस्या के राजनैतिक पहलू का प्रथम करण के निये मन् १९५२ में एक निर्वाचन कानून पास किया गया जिसके अनुसार मताधिकार कबल सका के प्रथम ही नागरिकों तक सीमित कर दिया गया। इस कानून के कारण श्री लंका में बसे हुए भारतीय एक बड़ा प्रश्न से मताधिकार से संबंधित हो गये। प्रथम उनका समूह १९५२ के चुनाव का अधिकार करने के अनिश्चित और कोई मार्ग नहीं रहा।

भारत सरकार ने इस समस्या का हल करने के लिये श्री लंका की सरकार से बातें चारम्भ की। जून १९५३ में श्री लंका की सरकार ने समाज के समस्या पर लक्ष्य से विचार किया किन्तु यह बातें असफल हो गई। श्री सेनानायक ने भारतीयों को अनिश्चित रूपों पर जोर दिया जिसे स्वीकार करना श्री लंका के लिये असम्भव था। बाद में कोटसेवासने के प्रधान मन्त्रित्व काल में जनवरी १९५५ में दोनों देशों के बीच एक समझौता हुआ जो लंका-काटसेवासने समझौता के नाम से प्रख्यात है। इस समझौते के द्वारा यह निश्चित हुआ कि जो भारतीय श्री लंका की नागरिकता प्राप्त करना चाहते हैं उनका नाम एक रजिस्टर में दर्ज कर लिये जाय और वे अपनी भारतीय नागरिकता को छोड़ने का संयोजन न ही उन्हें भारत वापिस कर दिया जाय। समझौते में यह कहा गया कि ऐसे प्रत्येक भारतीयों की संरक्षण समझौते में प्राप्त जायगा जिसका राजमन्त्रीकरण नहीं हुआ है। और लंका के प्रवासी के भारत सौटने की व्यवस्था भी इस समझौते में पा गई और साथ ही सिक्कीम में भारतीयों के सहायकता पर लक्ष्य गया भी है।

लंका-काटसेवासने समझौते का भारत-लंका-विवाद के अन्तिम घोट सम्मानजनक हल के रूप में स्वागत किया गया। परन्तु इनका मत यह

समझौता सफल नहीं हुआ। क्योंकि श्री लंका में स्थित भारतीयों में बहुत से ऐसे हैं जिन्हें न तो भारत अपनी नागरिकता देने को तैयार है और न श्री लंका ही।

नेहरू-कोटसेवासो समझौते के अन्तर्गत दिसम्बर १९५३ से जनवरी १९५५ तक श्री लंका सरकार ने नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक ५१५० व्यक्तियों के प्रार्थनापत्रों में से केवल ७५० व्यक्तियों के प्रायता-पत्र स्वीकार किये जबकि इसी काल में भारतीय उच्चायुक्त ने भारत कोटसेवासो समझौते के अन्तर्गत ५,००० व्यक्तियों में से ५,६०० व्यक्तियों के प्रार्थना-पत्र स्वीकार किये। अक्टूबर १९५४ में विस्ती में पुनः नेहरू और कोटसेवासो को मुझाकाठ हुई। इस सट में दोनों प्रधान मंत्री इस बात पर सहमत हो गये कि दोनों सरकारों द्वारा राज्य विहीन व्यक्तियों की संख्या कम करने के प्रयत्न किये जाने चाहिये। यह निश्चय हुआ कि श्री लंका सरकार अपनी पंजीकरण (Registration) प्रक्रिया में लौघता करे और भारत व लंका के नागरिकों का पंजीकरण दो वर्ष की अवधि में समाप्त कर दिया जाय। इन सम्बन्ध में १९५६-५७ में श्री लंका के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री मन्नाडर नायके द्वारा श्री बार्ना की गई परन्तु समस्या का कोई हल नहीं निकला जा सका। फिर भी न सम्बन्ध में प्रयत्न जारी रहे गये।

लंका में निवास करने वाले करीब इस काल भारतीय प्रवासियों के समस्या का शांतिपूर्ण समाधान वास्तविक २९ अक्टूबर १९६४ को भारतीय प्रधान मंत्री श्री सारबहादुर शास्त्री और श्री लंका की प्रधान मंत्री श्रीमर्त मन्नाडर नायके के बीच हुए समझौते के द्वारा हुआ। यह समझौता किसी सधि के रूप में नहीं है अपितु दोनों प्रधान मन्त्रियों के बीच हुए पत्र-व्यवहार एवं अक्टूबर १९६४ में दोनों की भारत में परस्पर बाताई के पत्र-वात् प्रकाशित संयुक्त विज्ञापन में निहित है। इस भारत-लंका-समझौते (India-Ceylon Agreement, 1964) की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(१) समझौते का मुख्य उद्देश्य यह ब्योपित किया गया कि श्री लंका में निवास करने वाले समस्त भारतीय प्रवासी जो अभी तक भारत प्रवास श्री लंका विन्सी के नागरिक नहीं हैं किसी एक देश के नागरिक प्रवश्य बन जाए।

(२) इस प्रकार के राज्य विहीन नागरिकों की संख्या उस समय तक ६,७५,००० पांकी गई, जिनके सम्बन्ध में यह समझौता हुआ कि इनमें से ३,००,००० व्यक्तियों को उनके परिवारों की स्वामाजिक वृद्धि के साथ श्री लंका द्वारा नागरिकता प्रदान कर दी जायगी तथा ५,२५,००० व्यक्तियों का उनके परिवारों की स्वामाजिक वृद्धि सहित भारत अपने वहाँ बुझाना स्वीकार करता है। समझौते में क्षेत्र ५,००० व्यक्तियों के सक्रिय का निर्णय एक घणन समझौते पर छोड़ दिया गया जो अभी तक नहीं हो पाया है।

(३) भारत को सौदाबे जाने वाले व्यक्ति अपने ११ बर्षों में एक यात्रा के अनुसार निश्चित सख्या में प्रति बर्ष भारत आते न्हेंगे और इसी प्रकार श्री लंका द्वारा भी नागरिकता प्रदान करने का कार्य १२ बर्षों में इसी प्रकार की एक सांख्यिक यात्रा द्वारा पूरा किया जायगा ।

(४) भारत को सौदाबे जाने वाले व्यक्तियों को उनके भारत जाने के समय तक श्री लंका की सरकार सभी प्रकार की ऐसी सुविधाएं प्रदान करेगी जो अन्य विदेशी नागरिकों को प्रदान की जाती हैं परन्तु उन्हें विदेशों को बन भेजने की सुविधा नहीं दी जायगी ।

(५) भारत को सौदाबे समय ऐसे व्यक्ति अपने साथ उम्र समय के नियमों के अनुसार अपनी कमाई की पूंजी बाकि लेजा सकेंगे जिसकी सीमा बार हजार रुपये से कम किसी हालत में नहीं होगी ।

इस समयभौते के द्वारा भारत और श्री लंका के बीच भारतीय प्रवासियों की समस्या का हाथिपूर्ण हल निकासी पया किन्तु यह समझौता रति पय सेबों में दोनों ही देशों में आलोचना का पात्र बना । भारत में कहा गया कि सुदीर्घकाल तक श्री लंका में निवास करने वाले मया व्यक्तियों को श्री लंका द्वारा ही नागरिकता प्रदान किया जाना आवश्यक था । भारत द्वारा उन्हें बापिस सेना स्वीकार करना अनुचित है । श्री लंका में समयभौते की आलोचना इस आधार पर हुई कि इसमें मनुष्यों को एक वस्तु के रूप में मान कर उनका बंटबारा सम्पत्ति के बंटवारे की तरह किया गया है जिसमें व्यक्तियों की इच्छा का कोई स्वाभ नहीं है । आलोचकों के अनुसार १५०००० व्यक्तियों का माय का निपटारा नहीं करना और ८५००० व्यक्तियों का भाग का निपटारा करके भी उनका अन्तिम निर्णय १२ बर्षों के मया समय में करना समझौते का बड़ा भारी दोष है ।

दक्षिण-पूर्वी एशिया धर्म और महत्ता

(South-East Asia : Meaning and Importance)

धर्मराष्ट्रीय सम्बन्धों और विश्व शांति के दृष्टिकोण से दक्षिण पूर्वी एशिया संसार के सर्वाधिक विच्छोट एक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है । एशिया का साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह २०वीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बटना है, किन्तु यह विद्रोह कहीं भी इतना स्पष्ट और सफल नहीं रहा जितना कि दक्षिणी पूर्वी एशिया में । चीनकी शताब्दी के प्रारम्भ में मध्यय सपूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया साम्राज्यवाद के अधुन में फंसा गया था परन्तु अब यह सम्पूर्ण प्रदेश स्वतन्त्र और मुक्त होकर विश्व राजनीति को प्रभावित कर रहा है । इस क्षेत्र के अधिकांश देशों का अपना कोई व्यवस्थित इतिहास नहीं रहा और न वहाँ किन्हीं ऐसी स्मार्ड प्रणालियों और संघातों का बिराग हो पाया जिन पर अन्ति प्राप्त करने और पब प्रदर्शन के लिए निर्भर रहा जा सकता । भारत से स्वतन्त्रता की जो महत्त उठी वह बर्षों होती हुई इन देशों

बसिएल पुर्वो एशिया
(South East Asia)

दक्षिणी पूर्वी एशिया के राज्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

क्र. सं.	देश का नाम	स्वातंत्र्य होने की तिथि	बित्त के संधीन दे	सैन्यकल (बर्गमीस)	१९६१ के बनीनों की संख्या	बीनियो की संख्या	कुल जनसंख्या में अनुपात
१	बर्मा	४ जनवरी १९४८	ब्रिटेन	२,६१,७८६	२,००,६४०	१,२०,०००	१.६
२	थाईलैंड	—	—	२,००,१४८	२,१०,७६,०००	२,३६,०००	११.३
३	कम्बोडिया	—	—	८८,७८८	६,००,०००	२,३०,०००	४.४
४	लाओस	—	—	८६,०००	३,००,०००	१,००,०००	०.६
५	बियतनाम	—	—	६२,०००	१,६०,००,०००	६,००,०००	०.४
६	(a) उत्तरी (गाम्बुआयी)	प्रथम जुलाई १९५४	फ्रांस	६४,०००	१,३०,००,०००	७८,०००	६.२
७	(b) दक्षिणी (पबराज्य)	फरवरी १९५४	—	४,६६,०००	६२,७६,६१५	२,३६,६००	३.०८
८	सिंगापुर	३१ अगस्त १९५७	ब्रिटेन	४,३५,६१५	८,३५,७००	२,२५,०००	२.०
९	इण्डोनेशिया	२८ दिसम्बर १९५६	हॉलैंड	१,१५,७५८	२,४७,१८,०००	२,७०,०००	१.२
१०	(१) इन्डोनेशिया की पूर्वी का समूह)	—	—	—	—	—	—
११	फिलीपाइन्स	४ जुलाई १९४६	अमेरिका	१,१५,७५८	२,४७,१८,०००	२,७०,०००	१.२

की सीमाओं से टकराई धीर कुछ धीपनिवेशिक शासकों ने हवा का दस देक कर स्वेच्छा से धीर कुछ ने बर्षों के रक्त रंजित सघर्ष के उपरान्त विघ्न होकर इन्हें स्वतन्त्रता प्रदान कर दा। फिर भी स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त भी दक्षिण देशों को इस बात का कोई स्पष्ट धामान नहीं था कि भविष्य के लिए उन्हें कौन सा मार्ग धपनाना चाहिए धीर कौन सी प्रणामी उनके लिए ध्येयक तथा उपयुक्त होगी? स्वतन्त्रता इन देशों को धकश्य मित गई, परन्तु उस स्वतन्त्रता को सुरक्षित धीर सुदृढ़ करने तथा उसे पाधार बना कर शक्तिशाली एव प्रगतिशील राष्ट्र बनने के लिए उन्हें उचित पथ प्रदर्शन धीर साधन नहीं मिल सके। यही कारण हुआ कि पात्र दक्षिण प्रदक्षिण धीर दक्षिण पूर्व एशियाई देश विभिन्न विचारधाराओं प्रणामियों गुट-बन्धियों के तिकार बने हुए हैं धीर विघ्न की महाशक्तियां उन्हें धपने हामा का सिनीना बनाये हुए हैं। दक्षिण पूर्व एशिया का क्षेत्र वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय युग में संघर्ष का एक प्रमुख केन्द्र बन गया है।

यह एक रोचक सत्य है कि 'दक्षिण पूर्व एशिया' एक नया शब्ध है जिसका प्रयोग द्वितीय महायुद्ध के पूर्व होता ही नहीं था। दक्षिण पूर्व एशिया' शब्ध का प्रथमन एक भौगोलिक प्रदेश के लिए द्वितीय महायुद्ध के मध्य हुआ। महायुद्ध के शौरान जब इस क्षेत्र को जापानियों व नियन्त्रण से मुक्त करने के लिए अगस्त १९४१ में अयुक्क सम्मेलन के द्वारा एशिया (South East Asia Command) की स्थापना हुई, तभी से इस शब्ध का उपयोग होने लगा। प्रारम्भ में यह शब्ध उन ६ देशों के लिए प्रयुक्त किया जाता था जो "भारत के पूर्व में धीर बीच के दक्षिण पश्चिम में स्थित थे।" डाक्टर फिसिपाइन्स धियतनाम लाघोष कम्बोडिया बार्सेइ धीर बर्मा तथा दक्षिण की धीर मसामा धीर मुमात्रा से लेकर म्युगिनी तक इच्छानेमित्यन द्वीप समूह से मित कर बना है।^१ कुछ विद्वान भारत पारिस्ताम मसाम धीर ची सङ्घ को भी दक्षिण पूर्व एशिया क धन्तर्गत सम्मिलित करते हैं जबकि कुछ विद्वान इन देशों को दक्षिण-एशिया नामक एक पृथक भौगोलिक प्रदेश मानते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व वर्तमान 'दक्षिण पूर्व एशिया' क्षेत्र को इतना धकिक महत्व प्राप्त नहीं था। परन्तु युद्धोपान्त उपनिवेशवादी शासन के पतन धीर साम्यवादी चीन व उदय के कारण इस क्षेत्र को सधमा ही अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो गया धीर पात्र ता यह अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घट धीर सम्भावित महायुद्ध की धूमिका का निर्माण कर गी है। यहाँ

1 F G Carnel South East Asia and the Modern World
India Quarterly April June 1957 p. 101
D R Chatterji South East Asia in Transition India
Quarterly Oct. Dec. 1956 p 789

अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के प्रसार और उसको रोकने के लिए जो प्रयत्न चल रहे हैं, वे समस्त संसार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित कर रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में दक्षिण पूर्वी एशिया प्रभावित हो कारणों से विशेष महत्वपूर्ण है—आर्थिक एवं सामरिक या पुष्टनीतिक (Strategic)। आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र अनेक ऐसे कच्चे मालों का प्रधान उत्पादक है जिसकी औद्योगिक संसार में अत्यधिक मांग है। यह क्षेत्र सामरिक प्रयत्न पुष्टनीतिक दृष्टि से इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विश्व के प्रधान वायु और समुद्री मार्गों पर स्थित है तथा साम्यवादी चीन व संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य सङ्घर्ष का प्रधान केन्द्र है। पूर्वी शीत-युद्ध के सम्बन्ध में इस प्रदेश के अधिकांश राज्यों ने एक तटस्थतावादी नीति अपनाई है। इन दोनों ही गुटों की दृष्टि में इसका विशेष महत्व है।

दक्षिणी पूर्वी एशिया के देश विश्व मामलों में अथवा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भाग ले रहे हैं। इन देशों में प्रधानतः बर्मा, थाईलैंड, हिन्द-चीन विभक्तनाम मलयेशिया इण्डोनेशिया फिलिपाइन्स आदि के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर विचार करता आवश्यक है।

बर्मा

(Burma)

भारत की पूर्वी सरहद पर बांकाग पूर्वी एशियाई राज्यों में महत्वपूर्ण राज्य बर्मा अवस्थित है। इस देश का क्षेत्रफल २९१७८६ वर्ग मील है। यहाँ की जनसंख्या १९६१ की जन-गणना के अनुसार २०५४००० है।

बर्मा बौद्ध-धर्मावलम्बियों का देश है जिस पर सबसे पहले १९१२ में ब्रिटिश प्रभाव स्थापित हुआ। कालांतर में यह प्रभाव बढ़ने के उपरान्त १८८५ से १९१७ तक बर्मा का शासन भारत के एक अङ्ग में होता रहा। परन्तु १ अगस्त १९४७ से इसे भारत से पृथक् कर दिया गया और इसके लिए एक प्रथम प्रजासैनिक दलों की व्यवस्था की गयी। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने पर १९४२ से १९४४ तक इस पर जापानियों का अधिकार रहा। महायुद्ध समाप्त होने पर यहाँ ब्रिटिश प्रभुसत्ता पुनः स्थापित की गई। जब बर्मा जनता का पहले से बला घा रहा राष्ट्रवादी आन्दोलन विशेष तीव्र हो गया और बर्मा नेता अपने देश की अधिकतम स्वतन्त्र किये जाने की मांग और मोर से युक्त करनी लगे। बर्मा की स्वतन्त्रता की आवाज तब अधिक उज्ज्वल हो गई जब १९४६ में लन्दन में अन्तर्देशीय सरकार स्थापित हुई और उसकी स्थापना के लिए निरन्तर सङ्घर्षशील 'फ्रीडम फोर पीपल' (Anti-Fascist People's Freedom League, A.F.P.F.L.) के नेताओं के साथ विचार-विनिमय हुआ। इस सींग के नेता जनरल आणसान् थे। प्रारम्भिक निराशाओं के बाद अन्त में ब्रिटिश सरकार

चीर बर्मा के मध्य एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए जिसमें संविधान-सम के निर्माण के लिए अप्रैल १९४७ में चुनाव कराने का निष्पत्ति किया गया। चुनावों में पीपुल्स-लीग (A.F.P.F.L) को छानदार विजय मिली। २३ मई १९४७ को बर्मा के संविधान का मसविदा तैयार किया गया जिसके अंतर्गत बर्मा को एक पूर्ण प्रमुखा सम्प्रदाय गणराज्य के रूप में संगठित करने का निष्पत्ति हुआ। दुर्भाग्यवश १२ जुलाई १९४७ को एक भूतपूर्व प्रधान-मंत्री यू सां सा (U Saw) द्वारा भेजे गये कुछ हथियारों में भी शामिल हुए (Aung San) और उनके कुछ मध्य माधियों का मोती बना कर हत्या कर दी। यू सां सा स्वयं मरता हुआ था। थांगा या थिन्तु उमे मफसला बाद में बसकर ऊ नु (U Nu) के नाम से विख्यात हुए। ६ जनवरी १९४८ को बर्मा में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त की और इस प्रकार बर्मा संघ (Union of Burma) प्रतिष्ठापित हुआ।

स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरान्त बर्मा का अन्तर्गत गम्भार आन्तरिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। पीपुल्स लीग (A.F.P.F.L) में भूत-पड़ गई। एक गुट ऊ नु का समर्थन करके गया। ला नूनरा उनका विरोध। बर्मा के साम्यवादियों ने जा पीपुल्स लीग में मध्य-सम्पर्क में अपना स्थिति से असन्तुष्ट हो कर जगह-जगह हड़त में और सरकार के विरुद्ध हड़त की मावनाओं को उत्तेजित किया। साम्यवादियों के मन्त्र विरोधी सम्प्रदाय 'कारेन' (Karen) ने मन्त्र जन जाति के विरोधी भी गमिस हो गए। इस मध्य बर्मा में एक गणराज्य-संविधान बनना सामन सम्भव किया और यह राज्यपाल से चुपके हो गया।

बर्मा की अर्थव्यवस्था तब और भी गरीब हो गई जब समय १९००० कोमितांग सन्धि साम्यवादी चीन से भाग कर बर्मा में प्रविष्ट हो गये और सीमान्त क्षेत्रों में उपद्रव फैलाने लगे। परन्तु ऊ नु के सीमाय से सरकार-विरोधी गतिविधियाँ स्वयं एक दूसरे के भी उत्तनी ही विरुद्ध थी जिनकी कि त्रैय शासन की। अतः ऊ नु ने बड़ साहस और संयम के साथ अपने शत्रुओं का सामना किया और उन्हें भूत-भेक को विजय कर दिया। १९४३ में बर्मा में संयुक्त राष्ट्र सहायता महासभा में यह निष्कायन की कि उसके देश में बर्मा की विन्सी सनाए (K.M.T. Top) भूमि धारि हैं। और बर्मा में शत्रुतापूर्ण बाद कर रही हैं। अतः उनका चीन बाहर निकालना चाहिए। अप्रैल १९४३ को महासभा ने एक प्रस्ताव पारित किया-वार्ता द्वारा तथा कतिपय राष्ट्रीय मद्दयार्थों द्वारा इन क्षेत्रों का बाल्य विनाशा काम चाहिए। १९४३-४४ में बर्मा में इन प्रश्नों का महामन्त्र म पुन उठाया और निष्कायन से कि इस बारे में बड़ा जन प्रवृत्ति है। इसी मध्य बर्मा राज्यपाली भीम चार्टर की शत्रुता राज्य समेटिका को एक संयुक्त सैनिक समिति में बर्मा से चीनी सैनिकों को

निकासना शुरू किया और प्रकृत यह समस्या शांतिपूर्वक हल हो गई। इस प्रकार अपनी बुझना और कुछ सूर्य-बूम से ऊपर में देश के बिनाही तम्बों पर काम पा लिया। थी ऊपर के प्रभावी नेतृत्व में बर्मा की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति सुधरती गई। प्रभावशाली नैतिक कार्यवाहियों द्वारा कारेम विद्रोहियों को भी बहुत कुछ शांत कर दिया गया।

अपनी पश्चिमी सीमा पर स्थित भारत जैसे महात् पणराज्य से प्रेरणा पाकर बर्मा ने भी अपने प्रत्यर्थाप्टीय सम्बन्धों में उदरस्थता और शांतिपूर्ण सहयोग की नीति अपनाई। यह तथ्य स्मरणीय है कि थी ऊपर ने साम्यवादियों की समस्या का एक पूर्णतया यह समस्या के रूप में मुकाबला किया और विदेशी शक्तियों का "यस समस्या की धाड़ में बर्मा में धार्मिक हस्तक्षेप करने से दूर रखा। साम्यवादी चीन को साम्यता प्रदान करके प्रत्यर्थाप्टीय क्षेत्र में बर्मा ने अपने स्वतन्त्र बुद्धिकोण का परिचय दिया। यह साम्यता भी तब ही गयी जब कि दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध सन्तोषजनक नहीं थे।

यद्यपि राष्ट्रवादी चीनी नेताओं के बर्मा-क्षेत्र से दूट जाने से चीन-बर्मा सम्बन्धों का बोझ का एक ढाँटा दूर हो गया किन्तु फिर भी उनके सम्बन्ध बहुत मजबूत नहीं हो पाय और सीमा-निर्धारण को लेकर दोनों राज्यों में का तनाव बना रहा। अक्टूबर १९२६ में बर्मा प्रधानमंत्री ऊपर ने चीन शांतिपूर्ण बार्ता द्वारा सीमा-विवाद का समाधान करने के लिए पेश किया। परन्तु चीन ने न केवल बर्मा के ११० मील लम्बे सीमाखण्ड का विस्तार द्वारा किया गया पक्षिकानिर्धारण "रीक-महोन"—रेखा के विस्तार द्वारा किया गया पक्षिकानिर्धारण से इन्कार कर दिया बल्कि उसने बर्मा-प्रदेश के कुछ भागों पर भी अपने दावे को दोहराया। स्वभावतः बर्मा को चीन के दावे कितनी भी रूप में स्वीकार नहीं हो सकते थे परन्तु दोनों देशों के नेताओं की बार्ता असफल रही।

संयुक्त राष्ट्र संघ में ऊपर-सरकार का रूखा सन्तोषजनक और निर्गुण्टवा का रहा। अगस्त १९४८ में बर्मा संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना। उसने स्वयं का 'चीन-बुद्ध' के वाच-नेत्रों से पूर्णतया अलग रखा। बर्मा ने उत्तरी कोरिया को प्राक्रमणकारी घोषित करने में अमेरिका का साथ दिया और कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघीय कार्यवाही का भी समर्थन किया, किन्तु उसने साम्यवादी चीन को प्राक्रमण का भागीदार मानने से इन्कार कर दिया। ऊपर ने अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र संघ से धार्मिक सहायता देने में कोई हिचक नहीं की लेकिन अपने देश को अमेरिका के प्रभाव में नहीं जाने दिया और इसीलिए उन्होंने विश्व साम्यवाद के विस्तार को अवरुद्ध करने की अमेरिकन नीति को बर्मा का समर्थन व सहयोग देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। इसी प्रकार थी ऊपर ने एक और तो अपने देश के साम्यवादियों के विद्रोह को दबाया और उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देना स्वीकार नहीं किया और दूगटी और विभिन्न साम्यवादी देशों से धार्मिक व धन्य प्रकार

की सहायता भी प्राप्त की। भी ऊनु ने उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद और साम्यवाद सभी की बुराई कर लिया की। उनके नेतृत्व में बर्मा में इण्डोनेशिया के राष्ट्रवाद और हिन्द-चीन में हो ची मिन्ह के अनुयायियों का समर्थन किया। श्री ऊनु ने इस बात का पूरा प्रयास किया कि उनका देश विभिन्न राष्ट्रों की पारस्परिक मैत्री और शांतिपूर्ण सह-प्रस्थित्य का एक प्रमुख प्रवक्ता बन जाए।

ऊनु सरकार ने न केवल राजनीतिक क्षेत्र में दृढ़ता और सुम-सुम का परिचय दिया बल्कि धार्मिक क्षेत्र में भी उसने कुछ नातिकारी कदम उठाए। बुद्धाध्ययन देश की धार्मिक स्थिति को स्थिरता प्रदान न की जा सके थी और ऊनु सरकार की उद्योगों में राष्ट्रीयकरण की नीति ने दसमें घससोप पैदा कर दिया। अपनी सरकार के प्रति बढ़ते हुए असंतोष को देखकर श्री ऊनु ने अक्टूबर १९५८ का यह प्रस्तावित घोषणा की कि वह बर्मा के प्रथम सेनापति जनरल ने विन (General Ne Win) को स्टाई टोर पर मत्ता सौंप रहे हैं और उनके निर्देशीय सरकार की स्थापना करने के लिए कह रहे हैं।

श्री नेविन यद्यपि एक सैनिक अधिकारी थे किन्तु उन्होंने भी बर्मा को शांति और सह-प्रस्थित्य की नीति पर ही धार्य बढ़ाया तथा इस बात की पूरी चेष्टा की कि विभिन्न राष्ट्रों से बर्मा के लो भी विवाद हों उन्हें शांतिपूर्ण ढंग से सुलभ किया जाये। इसी भावना से प्रेरित होकर अक्टूबर १९५९ में उन्होंने कर्गची की यात्रा की ताकि बर्मा और पूर्वी पाकिस्तान के सीमा विवाद का निपटारा हो सक और समझौता जायागो न जाने जान की ब्यवस्था की जा सके। श्री नेविन की इस यात्रा का परिणाम सुख ही निकला। श्री नेविन क समय में ही चीन और बर्मा के सीमा विवाद का समाधान हुआ। फरवरी १९६० में सोवियत प्रथम मंत्री श्री लुश्चेव की बर्मा भारत और इण्डोनेशिया की प्राची यात्रा को ध्यान में रखते हुए चीनी सरकार ने जनवरी १९६० में ही श्री नेविन को इस लिए पैकिंग में आमन्त्रित किया कि दोनों देशों के मध्य चल रहे सीमा-विवाद का हल खोजा जा सके। सम्भवत ही जाऊ सोवियत प्रथम मंत्री को चीन के शांतिपूर्ण इरादों के प्रति धाम्यस्त करना चाहते थे। श्री नेविन की पैकिंग यात्रा के फलस्वरूप २८ जनवरी १९६० को बर्मा और चीन के मध्य एक 'थ्रीषी एंड' घनाश्रमघ समझौता सम्पन्न हुआ और इस तरह सन्धे समय से चला आ रहा सीमा विवाद सुलभ किया गया।

श्री ऊनु के पद-त्याग के समय लोगों ने यही अनुमान लगाया था कि दक्षिण-एशिया का एक और देश जनरल नेविन के नेतृत्व में सैनिक शासनाधीन का सिद्ध हो गया है। उन्हें यह भाशा नहीं थी कि बर्मा में पुनः मोरानारमण नामक व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी। परंतु भाशा क बिग्रीड जनरल नेविन ने फरवरी १९६० में चुनाव कराए। चुनावों में श्री ऊनु की पार्टी में प्रचंड बहुमत प्राप्त किया। परिणाम स्वरूप श्री ऊनु एक

भार फिर बर्मा के प्रधान मंत्री बन। जनरल मेडिन जबका सेना ने इस कोई मापति नहीं की।

ऊनु न घपन मने शासन काल म साम्यवाहियों का वामन करने और कारेन विद्रोहियों का कुचमने में उत्सेजनीय सफलतायें प्राप्त की और प्रशासन भी पहले से अधिक सुख्यवस्थित और उज्य हो गया। विदेश नीति के क्षेत्र में भी ऊनु की मायनार्य पहले बानी ही रही। अक्टू १९५१ में बर्मान प्रजातन्त्रीय गणराज्य के साथ वारिष्ठ्य युव सम्बन्ध स्थापित किये गये परन्तु बर्मा सरकार ने घोषणा की कि इसका अर्थ शूटभौतिक माय्यता नहीं माना जायगा।

जून १९५१ में बर्मा में एक बृहत् सफट पैदा हो गया जब ज्ञान राज्य के नेताओं ने यह घोषणा बुझाने की कि बर्मा में एक ही राज्य की स्थापना की जाय जिसम सभी प्राण्य स्वतन्त्र रहते हुए केंद्रीय सरकार का मित कर पठन करें। इसका स्पष्ट अर्थ था कि केंद्रीय सरकार केवल उनका संगठन मात्र रह जाये। ऊनु की पार्टी ने इस प्रश्न को लेकर फूट पड़ गई और ऊनु के समर्थक कमजोर पड़ते गए। दूसरी ओर ऊनु की सकार की घोषणा व्यापार को राष्ट्रीयकरण करने की नीति से बर्मा के व्यापारी बर्ग भी अत्यन्त ही चला वा और एक चहुँप हो ३ मास १९५२ को प्राप्त काम सतार यह समाचार सुनकर स्वस्थ रह गया कि बर्मा में वैदिक अर्थि हो गई है और जनरल मेडिन के नेतृत्व में बर्मा की सेना ने एक राष्ट्रीय अर्थि के बाव देन के शासन क घपने करने में ले लिया है।

वास्तव में १९५८ से ही इस बाठ के स्पष्ट घोषणा मिल रहे थे कि बर्मा में संसदीय व्यव की सरकार ठीक प्रकार नहीं बन पा रही है। विपुल्य भीम' या 'एफएल' (A F P F L) ने फूट पड़ने के उपरांत उसका स्थान लेने के लिये उत्तमा ही प्रभावभासी धम्य कोई धम सामने नहीं जाया था। जनता म नी काफी राजनीतिक जागृति वा कुकी भी और बहु बुमरै प्रकार का प्रयतिशील गया सर्वोदयी नेतृत्व चाहती थी। जनरल मेडिन ने पहले के घपने पन्नाकामीन शासन काम में जनता का काफी धादर पाया था पर उपयुक्त धमसर पाकर ऊनु के नेतृत्व को उच्चाङ्क रीकना उनके सिद्धे कठिन नहीं हुआ। भी ऊनु और उनके मंत्रिमण्डल क सभी मंत्री निरपहार या मजर बंद कर लिये गये और देश का शासन चलाने के लिये ८ सदस्यों की अर्थिकारी परिषद की स्थापना भी की गई। यह कहा गया कि सेना के इस कदम का उद्देश्य उन परिवर्तनों को रोकना था जिनकी योग्यता प्रत्यार्षीयको द्वारा की गई थी।

मास १९५२ से बर्मा का शासन जनरल मेडिन के नेतृत्व में चल रहा है। इनके नेतृत्व में भारत और बर्मा के सम्बन्ध उत्तरोत्तर मजबूत होते गये हैं। दिसम्बर १९५१ में स्वयंसेवक प्रधानमंत्री श्री शान्ती जनरल मेडिन

करने के लिये रंगून गये थे और होना ही नेताओं ने वर्मा व भारत के भौगोलिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों पर जोर दिया था और बाह्य प्रकट की थी कि ये दोनों देश एशिया तथा संसार में प्रांति बनाने में सहयोग करते रहेंगे। दोनों नेताओं की यह भाषा अब तक फलीभूत हुई है और भविष्य में भी फलीभूत होनी रहेगी। यद्यपि प्रवासी भारतीयों की समस्या को लेकर कमा-कमी बातावरण में कुछ स्थिता भी जाती है किन्तु यह समस्या भी अन्तिम रूप से शीघ्र ही समाप्त हो जायगी। ऐसी भाषा हम करनी चाहिये। वर्मा के विश्व के अन्य राष्ट्रों से भी प्रच्छन्न सम्बन्ध है। यह भाषा भी सैनिक गठबन्धनों से दूर है और एशिया की स्वाधीनता का समर्थक है।

बर्मा-चीन-विवाद, १९६७

यह सम्प्लेक्षनीय है कि यद्यपि विगत कुछ वर्षों से बर्मा धीर साम्यवादी चीन के सम्बन्ध सामान्यतः मित्रतापूर्ण बने थे और किन्तु फुन-जुसाई १९६७ में तमगों के प्रश्न पर सड़ाई भोज लेकर साम्यवादी चीन ने एक बार फिर यह प्रकट कर दिया है कि वह सघर्ष प्रिय है और मैत्री का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। भगड़ का कारण भी बड़ा मामूली था है। 'रंगून के दो स्कूलों में चीनी विद्यार्थी माधो के तमगे लटका कर गये। स्कूल के अधिकारियों ने इस पर आपत्ति की। इस पर चीनी विद्यार्थी तमक पड़े। अधिकारियों ने स्कूल बंद करने के आदेश जारी किये। (यहाँ यह बात स्पष्ट रहन की है कि चीन सरकार अपने देश में विदेशी स्कूलों को चलाने की अनुमति नहीं देती। इसके अलावा उन्होंने पिछले वर्ष उन सभी विदेशी छात्रों का अवन पर की राह लेने को कहा था जो चीन में पढ़ते थे। इसका प्रतिकूल बर्मा में ३० चीनी स्कूल हैं। अब चीनियों ने अत्याय हाय-नाबा मन्थानी गुरु की तो बर्मी लोगों ने कहा कि अगर आपको हमारी नीति मज़ूर नहीं तो आप चीन की राह लें। इस पर उन्होंने कई अध्यापकों का जिनमें एक अध्यापिका भी थी स्कूल क कमरे में बन्द कर दिया। चीनी विद्यार्थियों ने बर्मी लोगों के साथ धीर भा तरह तरह की बय हिमांगी धीर बदमिशात्री का परिणय दिया। इस पर पुलिस आई और सब आकर अध्यापकों का निवास मिली। इस समय तक चीनीयों का इन हस्तियों की सबर रंगून के अलावा अन्य शहरों में भी फैल गई। बातावरण बड़ा तनावपूर्ण हो गया। देखते देखते छात्रों के भगड़े ११ दो देशों की मित्रता पर बन गई। कुछ बर्मी प्रदमनकारियों ने बर्मा स्थित चीनी दूतावास को घेर लिया। गोलीबारी शुरू हुई। १७ लोग हताहत हुए। तीन चीनी इमारतों १३ कारों तथा २ अन्य यात्रियों को स्वाहा कर दिया गया। रंगून में कर्फ्यू लग गया। जब इसमें भी स्थिति शांत न हुई तो मार्शल ला की घोषणा की गई। प्रागल्भी गोलीबारी का दौर बकर समाप्त हो गया है लेकिन आरोपों-प्रत्यारोपों के धोड़े बड़े खोर से दौर रहे हैं। चीन सरकार ने स्थिति की समीक्षा को देखते हुए अपने राजदूत को बर्मा न भेजने का निर्णय ले रोप प्रकट किया। स्थिति को गुप्त करने के लिए चीन सरकार ने बर्मा से एक पांच-सूत्रीय कायबम पर अमस करने की मांग की है। इसके अनुसार बर्मा (१) अध्यापकों को हटाने (२) जिन परिवारों के

ब अमेरिका के बिबुद्ध युद्ध जोपणा कर दी। किन्तु सन् १९४१-४४ में ही जापान की प्रतिबिधियों से वाईसैण्ड का उसकी मित्रता में विश्वास समाप्त हो गया और २ जुलाई १९४४ को नाई प्रीडी (Nai Pridi) के नेतृत्व में जापान विरोधी सरकार स्थापित हो गई। जापान मर्मबंध मार्सेस फिबुन (Phibun) को सत्ताभ्युक्त कर के बेन में डाल दिया गया। किन्तु १९४७ में मार्सेस फिबुन के व नाम कर सत्ता के फिग में हड़पने में सफल हो गया। राजा फूमी काम अदुण्ठेठ (Phumiphon Adunthet) को जो राजा घामन्ट की मृत्यु पर सन् १९४६ में सत्तासूक्त हुआ था संविधान के प्रसंगत एक बैधा तिक राय्याभ्यस (Constitutional Head of the State) बना दिया गया। १९५८ में वाईसैण्ड के सेनापति मार्सेस सरिठ बनरत ने सरकार का सत्ता पण्ट दिया १९५२ का संविधान स्वगित कर दिया और वहाँ के सम्राट ने प्रान्तरिम संविधान की जोपणा करके भी सरिठ को वहाँ का प्रधान मंत्री बना दिया। दिसम्बर १९६३ में सरिठ का देहान्त हो गया। उनके बाद बनरत घानम प्रधान मंत्री नियुक्त हुए।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वाईसैण्ड

जापान के आत्मसमर्पण करके के पश्चात् वाईसैण्ड और घट ब्रिटेन में १ अगस्त १९४६ को एक सन्धि हुई जिसके प्रसंगत वाईसैण्ड ने के सब सुप्रदेश इङ्ग्लैण्ड को वापिस कर दिये जिन पर सन्ने ७ दिसम्बर १९४७ के बाद कब्जा कर लिया था। इसके घटिरिक्त वाईसैण्ड द्वारा यह भी निश्चय किया गया कि टीन, रबर टीक-ककड़ी और १२ लाख टन चावल वह ब्रिटेन को मुक्त प्रदान करेगा। नवम्बर १९४६ में फ्रांस और वाईसैण्ड के मध्य सन्धि हुई जिसके द्वारा दोनों ने पारस्परिक युद्ध स्थिति को समाप्त करने की घोषणा की और वाईसैण्ड ने फ्रांस को हिन्द-चीन का विचारपूर्ण प्रवेश वापिस कर दिया। चीन के साथ अपने विवादों का समाधान भी उसने इसी प्रकार शांतिपूर्वक रूप से कर लिया। २९ अप्रैल १९४७ को वाईसैण्ड संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया गया।

अमेरिका का वाईसैण्ड के प्रति व्यवहार पहले से ही मध्य रहा था किन्तु जब मार्सेस फिबुन ने सत्ता हथियाने के बाद विश्व मामलों में प्रत्यक्ष रूप से साम्यवाद विरोधी मनोवृत्ति व्यक्त की तो उसने वाईसैण्ड के साथ और भी अधिक वैचीपूर्वक व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। वाईसैण्ड में बियतनाम की बाधीनामी सरकार को मान्यता प्रदान की और बाद में १९५० में कोरियाई युद्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सैनिक कार्यवाही में सहायता देने के लिए अपनी एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी भेजी। इन सहयोग सूचक कार्यों ने अमेरिका में वाईसैण्ड के प्रति वहाँ की सहायता प्रवृत्ति पैदा कर दी और उमन इसे प्रमूक्त धार्मिक सहायता की। साम्यवादी मनरे का मुकाबला करने के लिए भारी मात्रा में सैनिक सहायता भी प्रदान की गई। शासन में बीनाब में नीतियों की उपस्थिति से और हिन्द चीन साघोस व कम्बोडिया में 'बिषयविम्वु आगावारी' की प्रतिबिधियों में अमेरिका बहुत बिलित हो गया।

पार्स-नेचर दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य सभी काम मुस्कों की तरह धार एक संभावित विस्फोट का केन्द्र बना हुआ है। छापामार युद्ध को क्वासामुकी के मुह पर लड़ा एशिया का यह विमुक्त्य धूमाम कभी भी मयानक और निर्णायक शक्ति-परीक्षण का असाढ़ा बन सकता है। दक्षिण विमतनाम का छापामार युद्ध अब तृतीय महायुद्ध की संभावनाएँ लेता जा रहा है। पार्स देश में नी ऐसी ही पाग के पकने के समाचार मिलने लगे हैं दक्षिण पूर्वी एशिया की राजनीति के बिसेपजों ने कहना शुरू कर दिया कि पार्स देश भी अब दक्षिण विमतनाम के समे पर बसने लगा है। उत्तर-पूर्व के भाग के छपन क्षेत्रों में जहा पाकर सभी रास्ते समाप्त हो जाते हैं और बहा राहगीरों को नये रास्ते बनर नहीं पाते छापामारों ने एक नई साजिश का सिससिसा शुरू कर दिया है जो १९५४ की बेनेबा नधि के कुछ बर्षों बाद के प्रभाव दक्षिण विमतनाम में छापामारों की यात्रिस से बहुत कुछ मिलनी जुमती है। प्रमेरिका इस स्थिति से कितना परेधान है इसका कुछ अन्दाजा तो इसी से लग जाता है कि घभी से पार्स देश में उतने २५ हजार सैनिक वनाठ कर रहे हैं। यह सच है कि अधिकतर सैनिक बहा पार्स छापामारों से हापापार्स न कर के उत्तर बीयतनाम की बम बारी में भाग लेते हैं लेकिन वैसे-वैसे पार्स इस में कम्युनिष्ट छापामारों की विस्फोटारमक गति बिधियाँ बढ़ती जा रही हैं उनकी भूमिका भी महत्वपूर्ण होती जा रही है। बिचारणीस अमेरिकी नेता इस बात से कितने चिन्तित हैं इसका बोधा सा एहसास तो सनेटर मैसफिस्ट्र के उस कथन से ही हा जाता है जिसमें उन्होंने पार्स देश का हिन्-चीन का छोटा बीयतनाम कहा है। अमेरिकी मसद के रिपब्लिकन नेता नेपर्ड को घभी से यह संदेह होने लगा है कि पार्स देश में छापामार युद्ध धीरे धीरे अवनत पड़ने और से बाहर निकलने लगा है और गूढ़ युद्ध का रूप मता जा रहा है। उदाहरणार्थ अमेरिकी जा मही चाहते कि अमेरिका अवनत अापनो दुनिया की पुसिस की भूमिका में पेश कर, जानना चाहत है कि पार्स देश में अमेरिका का उद्देश्य अन्वष्ट क्या है ?

पहला दौर—पार्स देश दक्षिण पूर्वेशिया में अमेरिका ने सर्वाधिक बिम्बसनीय सङ्घर्ष राट्टों में से है। जब पार्स सरकार में यह बोपणा की कि हम एक हजार सैनिक दक्षिण बीएतनाम में भेजने जा रहे हैं तो अमेरिका को बहुत झुंझी हुई थी। अमेरिका पार्स देश को प्रतिबर्ष जो १० करोड़ डालर की सहायता दे रहा है उसमें ६ करोड़ डालर की बेबस सैनिक सहायता की जाती है। शुरू में पार्स देश बीयतनाम युद्ध में अमेरिका को अपना सैनिक समर्थन देकर ही अवनत को सम्पुष्ट समझता था लेकिन कुछ सप्ताह पूर्व पार्स देश तियत अमेरिकी राजदूत में आपणा की कि अमेरिका बी-५२ बम बर्षक बहाज अब पांच हजार मील की लम्बी दूरी में तय कर के उत्तर अमेरिका पर बमबर्षों के बाव सीधे पार्सदेश में अमेरिकी घट्टे पर बिधाम करें। राजनीतिक पर्यवहारों का कहना है कि पार्स देश की सरकार के लिए छापामारों से निपटना दिनों दिन कठिन होता जा रहा है और बीएतनाम युद्ध में उतने सैनिक भेजने का जो निश्चय किया है उतना प्रमुख कारण आन्तरिक ही है। पार्स सरकार अमेरिका से अधिक से अधिक सैनिक सहायता

चाहती है। सुरदा मंत्री मंत्रमाला और वार्ड सरकार के बीच मयी जानकारी के बाव जमेरिकी सैनिक सहायता की मर में दो करोड़ डालर की वृद्धि में भी बहु सम्पुष्ट नहीं है। इस तरह अमेरिका धीरे-धीरे वार्ड देश की प्राथमिक राजनीति में उलझता जा रहा है। मसजम नवम्बर के महिने में अमेरिकी प्रतिकारियों ने स्वीकार किया कि अमेरिकी हेमिकल्पाए-सैनिक वार्ड सैनिक को न केवल छापामारो से निपटने के लिए प्रविषाय हे रहे हैं बल्कि मुठमेा में उनके साथ साथ भी ले रहे हैं। हाल के कुछ महिनों में वार्ड सैनिकों को छापामार युद्ध में वीक्षित करने के लिए विन्नेप अमेरिकी सैन्य टुकड़ियां भी

अमेरिकी सैनिक सलाहकार वार्ड देश में छापामार युद्ध की ममावनाजो को मुक्त में ही खतन कर देना चाहते हैं क्योंकि इन्हे मय है कि प्रागे चल कर हुनोई धीरे धीरे वीक्षित की पुष्ट मरद से वार्ड छापामार भी उतकी मीर हुराम कर मकते हैं। ऊपर ने बात बोखने वाला वार्ड देश मरद से खिन्ना मगालत है इसका कुछ पन्नाका तो म नवम्बर की उस सरकारी बोपका से मय जाता है जिसमें कहा गया है कि १९६९ में मरकारी सेमा स मुठमेा में १२० कम्पुनिट छापामार मारे मये २० मिरफ्फार फिये मये धीरे दो इमार ने धारम समर्वण किया। वार्ड इन की म्पति दिनों-दिन खिन्नी मगालती जा रही है इसकी कुछ म्पुष्ट मया के मुहुमयी के २४ रुधन म भी मितती है कि छापामारों को नियन्त्रित करने के लिए सरकार अपनी साथ का बहुत बड़ा साथ खर्च कर रही है। लठ वर्ष अकेले पञ्चराष्ट्रीय विकास की अमेरिकी एजेंसी ने ३ करोड़ ०० लाख डालर छापामारों की बाव गोरने में मया मिये। अब तक हुनोई वीएतनाम युद्ध में फंसा हुआ है तब तक वार्ड देश के कम्पुनिट छापामारों की बहु खतनी मरद नहीं कर सकना खितती कि छापामार युद्ध के हुसरे दौर में प्रवेश करने के लिए बकरी है। लेकिन वार्ड देश में कम्पुनिट छापामारों की तोड़-फोड़ की कार्यवाही यों में लपातार सिध तेजी से वृद्धि हो रही है इसे दस्तवे हुए पर संका गिरर्भक नहीं मगती कि वार्ड देश में पाके चल कर अमेरिका को एक हुसरे वीएतनाम का सामना करना पड सकता है। (माप्साहिक दिनमान फरवरी १९६७)

लाघोस [Lagos]

लाघोस हिन्द चीन प्रायद्वीप का एक देश है। हिन्द चीन मलायन प्रायद्वीप के उत्तर तथा वार्डदेश के दक्षिण में स्थित एक दक्षिण पूर्वी एशियाई प्रदेश है जिनमें लाघोस कम्बोडिया व मियतनाम सम्मिलित हैं। सामरिक दृष्टि से दक्षिण-पूर्वी एशिया में लाघोस की नीमोलिक स्थिति परमन्त ही महत्वपूर्ण है। हिन्द चीन प्रायद्वीप के मध्य मन्धियारे का निर्माण करने वाले इन देश की सीमायें साम्यवादी चीन साम्यवादी उत्तरी मियतनाम मियतनाम पखुठान (दक्षिणी मियतनाम) कम्बोडिया वार्डदेश धीरे वार्ड की सीमायों से मिसी हुई हैं। इन देश का कुल क्षेत्रफण २९,००० वर्ग मील और १-संख्या मजमय ३० लाख है। इसके दक्षिण भाग में

पहाड़ियां चीन बंगल साये हुए हैं। यहां के लोगों में घनेक जातियों के लोग शामिल हैं जो छोटे-छोटे प्रारम्भ-निर्भर समुदायों में विभाजित हैं।

साप्रोस में तीन दस होने के कारण स्थिति बड़ी जटिल है। ये तीन दस इस प्रकार हैं—(१) साम्यवादियों के नेतृत्व में पापेट सामो दस (Pathet Lao) इसके नेता राजकुमार भूफानो बोंग हैं। (२) राजसत्तावादी (Royalists) इनके नेता बोन बीम हैं। (३) तटस्थतावादी (Neutralists) इनके नेता राजकुमार सीबन्ना पोमा हैं।

साप्रोस पर पहले फ्रांस का अधिकार था किन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद यह एक सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न राष्ट्र बन गया। स्वर्गीय सम्राट सिशाबोंग के शासन के अन्तमत्त ११ मई १९५७ को यहाँ एक सर्वैधानिक गणतन्त्र की स्थापना हुई। ११ जुलाई १५१ का साप्रोस को फ्रांसीसी सभ के अन्तमत्त वैधानिक रूप से स्वतन्त्र देश बना दिया गया। किन्तु युवराज भूफानो बोंग के नेतृत्व में एक साम्यवादी समर्थक अल्पसंख्यक दस ने 'नम ध्यबस्वा' को मानन क इन्कार कर दिया। उसन 'पापेट सामो' या 'साप्रो भूमि' नामक प्रान्त'मन संगठित किया और उत्तरी वियतनाम के साम्यवादियों के साथ मिल कर बड़ फायदाही करने लगा। पापेट सामो की सेनाओं ने १९५३ और १९५५ के प्रारम्भ में घनेक सफल प्रारम्भ किए। अन्त से ११ जुलाई १९५५ को वेनबा में हुए समझौते के अन्तर्गत साप्रोस राज्य की सर्वोच्च प्रमुख सम्पन्न स्वतन्त्रता को मायता प्रदान की गई। इसमें यह विचार निहित था कि १९५५ न निर्वाचन द्वारा निर्मित होने वाली राष्ट्रीय मन्टार में पापेट सामो विरोधियों को भी शामिल कर लिया जायगा।

किन्तु पापेट सामो दस में निर्वाचन का अधिकार किया और अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाना और सुदृढ़ करना प्रारम्भ कर दिया। पापेट सामो ने संमयूक्त चीन फॉर्मरसी नामक दो उत्तरी प्रांतों को अपना बड़ा बनाया। पापेट सामो ने तोड़-फोड़ की और अन्य हिंसारमक कार्यवाहियों जारी रखी।

१ अगस्त १९६० को छनरीपारी सेना के एक कामपदी कमांडर कॅप्टन कोंयसी ने साप्रोस सरकार को अघबल कर दिया। उसने दस में 'तटस्थता की स्थापना' और साम्यवादियों के साथ शांति सधि करने का सकल्प व्यक्त किया। तटस्थतावादी नेता राजकुमार सीबन्ना पोमा अघबा सुबन्न पोमा) के नेतृत्व में एक तटस्थ सरकार स्थापित की गई। परन्तु अन्तरम कौमी मोताबान के नेतृत्व म सशस्त्र सेनाओं ने उतका विरोध किया। दिसम्बर १९६० में कौमी मोताबान ने साप्रोस की प्रजातन्त्रिक राजधानी बिएन तिएन पर अधिकार कर लिया और सीबन्न पोमा की तटस्थ सरकार को निकाल बाहर किया। मन्त्राट साबय थापन्ना ने युवराज बोन बीम को अन्तरम मोताबान समर्थक नई सरकार का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। ४ जनवरी १९६१ को इस सरकार के प्रति राष्ट्रीय अघम्यसी में बिन्नास प्रस्ताव पारित

कर दिया। इन्हीं वर्षों में राजकुमार सोबाना प्रथम मुबम्म फौमा ने माम्बाही समर्बक ल पावेट भाषा से मिस कर बीन-धोम की सरकार के विरुद्ध मुठ खेड़ दिया। प्रत्य मे ३ मई १९११ में मुठ-बिराम समझौता हो जाने पर यह सझाई बन्ध हुई। इसी माह माम्बाही की समस्या पर विचार करने के लिए १४ राष्ट्रों का एक सम्मेलन ब्रेनेवा में बुरू हुआ जिसमें माम्बाही तथा कम्बोडिया में सझाई प्रथम करने और प्रत्यर्ष्ट्रीय प्रायोग की देश देश में प्राय जुताव प्रायोचित करने के लिए समझौते किये गये।

बून १९११ में राष्ट्रपति केनेडी और प्रधानमन्त्री बुन्नेन ने बियना में हुई अपनी मेट के बबतर पर तटस्थ और स्वतन्त्र माधोस की स्थापना की आवश्यकता पर सर्वेक्य व्यक्त किया। इस समझौते के प्राधार पर ब्रेनेवा में माधोस के लिए एक संयुक्त सरकार की योजना तैयार की गई जिसमें राजमठ माधोस सरकार तटस्थ मुठ और पावेट भाषों तीनों ही को प्रतिनिधित्व प्राप्त था। संयुक्त सरकार के स्वरूप निर्माण के सम्बन्ध में बाठों की प्रगति प्रगति करती रही और प्रत्य में बून १९१२ में माधोस के तीनों राजकुमारों में माम्बाही म एक तटस्थ सरकार की स्थापना करने के बारे में समझौता हुआ। परिखामन्वरूप २३ जन १९१२ को माधोस में संयुक्त सरकार की स्थापना हुई। तत्पश्चात् २ जुलाई १९१० को उगवा सम्मेलन की बैठक पुन बुलाई गई और उसमें माम्बाही की तटस्थता की मारखी प्रयास की गई। जिस तटस्थ माम्बाही-सरकार की स्थापना हुई जसमें तटस्थतावाही राजकुमार मुबम्म फौमा को प्रधानमन्त्री बनाया गया। माधोस के तटस्थतावाही बोधबापक में बताया गया कि माधोस की सरकार प्राथमिक मामलों में किसी भी बिदेसी मत्ता का हस्तछेप स्वीकार नहीं करेगी। इसके परिचित बोधना पत्र में निम्नलिखित बातें और कही गई—

- (i) प्रत्यर्ष्ट्रीय मामलों में परिचितपूर्ण सहृष्टित्व के १ सिद्धान्तों का पालन किया जायेगा तथा माम्बाही की स्वतन्त्रता व सार्वभौमिकता के प्रति प्रावर एव समानता के प्राधार पर सभी राज्यों के साथ वैशीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होंगे व कूटनीतिक सम्बन्धों में बखि होगी।
- (ii) माम्बाही की बनता की इच्छा के अनुकूल माम्बाही की स्वतन्त्रता सार्वभौमिकता तटस्थता और ऐसीय एकता के प्रति बाबर बनाए रखा जाएगा।
- (iii) प्रथम राज्यों के प्राथमिक मामलों में हस्तछेप नहीं किया जाएगा और न ही बमकी या बस प्रयोग को समर्बक किया जाएगा।
- (iv) तटस्थतावाही नीति के लिए खतरा पैदा करने बासा कोई तैतिक या धर्मिक समझौता नहीं किया जायगा और न ही माम्बाही में बिदेसी तैतिक धरु बनान की अनुमति दी जायगी।
- (v) किसी भी देश को दूसरे देश के बिरोध में माम्बाही की भूमि पर तैतिक शक्ति का प्रयोग करने या बिदेसी मामलों में हस्तछेप करने की अनुमति नहीं दी जायगी। नाय ही किसी भी देश को सहायता देने के

लिए सैनिक संगठन को भी मान्यता नहीं दी जायेगी जिसमे 'सीटो' की सम्मिलित है।

(४) साधोस के घन्तिरिक मामलो में किसी भी बधेशिक शक्ति को हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान नहीं की जायेगी। बिदेशी सैनिक और सैनिक अधिकारी साधोस मे नहीं रह सकेंगे।

(५) प्रत्यक्ष और बिना शर्त सहायता सभी राष्ट्रों से स्वीकार की जायेगी। ये देश साधोस को स्वतन्त्र और धार्मिक दृष्टिकोण से सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से जो भी सहायता देने उनका स्वागत किया जायेगा।

(६) शांति और तटस्थतावादी नीति के प्रसार पर किये गये समझौतों और संधियों का धार किया जायेगा किन्तु इन मित्रात्मक के विरोधी समझौतों का बहिष्कार होगा।

बघपि बोपणा-मत्र में निहित मित्रात्मक बड़े उच्च और बड़ से तथा जेनवा सम्मेलन में किये गये समझौते के अनुसार स्थापित तटस्थ संयुक्त सरकार के स्थाई होने की आशा की जात गयी थी किन्तु जापान के माध्य में स्थाई शांति का आना इतनी जल्दी बढा न आ। घत उपरोक्त समझौते का विधिपूत्रक कमी पासन गही किया गया। समझौते के बड़े समय बाद ही साधोस में एक दक्षिण पूर्वी सैनिक शक्ति हुई जिसके परिधामस्वरूप दो सामर्थ्यी मन्त्रियों को मन्त्रिमण्डल से निकाला गया। मुद्र विराम की ठेक रत के लिए भारत, कनाडा और पोर्लैण्ड के जिस अन्तर्राष्ट्रीय निगमन-आयोग की स्थापना की गई थी वह भी साधोस मे शांति स्थापित नहीं रह सका। अप्रैल १९६१ में तटस्थतावादी सेनाओं और पापेट साधो सनाधो मे आर के मैदान में मुद्र पुन प्रारम्भ हो गया। बघपि २१ अप्रैल १९६१ का फिर आस्थाई मुद्र विराम हो गया किन्तु मुद्र की चितगावियां रह रह कर बढ़क उठती है और तटस्थतावादी प्रधानमन्त्री सुबन्त जीमा की पापेट साधो के बिबद्ध अमेरिका से सहायता देने को बिबज होना पडा है।

आज भी साधोस की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के प्रमुख कारणों में से है। बिबतनाम में बियतनाम की तरहू यहाँ पर पापेट साधो की सैनिक सक्रमताओं से संयुक्त राज्य अमेरिका पूर्णतः चिन्तित है और अपने बहु हस्तक्षेप करने की चमकी तक दी है। दूसरी ओर आंम के राष्ट्रपति डिगाम का मत है कि साधोस बियतनाम धारि सम्पूर्ण द्विध आंम की ममस्याओ का कोई सैनिक हल सम्भव नहीं है। इन ममस्याओं का समाधान ता राजनीतिक आचार बर ही हो सकता है जिसके लिए उन्होंने जेनेवा की तरहू का एक सम्मेलन छिर बुलाने का सुझाव दिया है। स्वयं भारत में भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है तथा सोवियत मम भी इसे मानने को राजी है। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात के लिए तैयार नहीं है। परिणाम स्वरूप साधोस की स्थिति भी निकट भविष्य में बियतनाम जैसी हो जाय तो कोई आश्चर्य तो बात नहीं होगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा जेनेवा सम्मेलन का शायद इचीसिए विरोध किया जा रहा है कि कहीं सम्मेलन में इस बात पर समझौता करना पड़ जाय कि इस क्षेत्र के सभी राज्यों को तटस्थ मानकर उनमें बिस्वैत सेनाओं का प्रवेश नहीं होने दिया जायेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका इच्छित विद्यतनाम के तटस्थता की स्थिति इसलिए स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि वह दक्षिण विद्यतनाम सन्धि में साम्यवादियों के साधन की स्थापना हो जाने की निश्चित सम्भावनाओं पैदा हो जायेगी। यदि साक्ष्य न दिलाएँ विद्यतनाम साम्यवादी शक्ति में कम पड़े तो धीरे-धीरे सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया ही साम्यवादी बन सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका को एक यह कल्पित भय भी है कि साक्ष्य एवं दक्षिण विद्यतनाम से पीठ पीछे होने पर उसे विश्व जनमत के सम्मुख अवमानित होना पड़ेगा।

स्पष्ट है कि महाशक्तियों व कम के कारण मात्र एक साक्ष्य धीरे विद्यतनाम की पुष्टिपा उत्तमी नहीं है धीरे इनके बीच मुसम्बने के कोई तत्त्व दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं।

कम्बोडिया

(Cambodia)

कम्बोडिया चांमेर सम्राटों की सुनि सभवा सगकोर व साम्राज्य के नाम से भी जाना जाता है। कम्बोडिया का प्राचीन ऐतिहासिक विवरण चीन के रिकार्ड में मिलता है। इन रिकार्ड के अनुसार फ्यान प्रवेश के भारतवासीय शासक का उल्लेख जाता है। इस फूनाग साम्राज्य के उत्तर में साक्ष्योस पर्व में स्याम (सब विद्यतनाम) धीरे दक्षिण में पाईसैण्ड का। इस साम्राज्य में बोलता प्रवेश ना जो बार में काम्बुज कहलाने लगा। यही काम्बुज प्रवेश था कम्बोडिया का राज्य है। फूनाग साम्राज्य का सन्धापक कोइइय नामक ब्राह्मण व जो साम नाम से विख्यात था। कुछ इतिहासकार इसी का कम्बोडियन नाम धीरे चांमेर राज्य का प्रथमक मानते हैं। काम्बुज के शासक ने फूनाग से स्वतन्त्र होने कासात्तर म बोलता प्राप्त (काम्बुज) के शासक ने फूनाग से स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। इसके उपरान्त चांमेर राजसभ का सभ्य हुआ विद्यके प्रतापी सम्राटों में जयवर्मन द्वितीय धीरे सूर्य वर्मन द्वितीय के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। सूर्य वर्मन द्वितीय के समय में ही सगकोर में राजधानी का निर्माण हुआ। इस प्राचीन नगरी के लश्कर मात्र भी कम्बोडिया में विद्यमान है।

१३ वीं शताब्दी के मध्य चांमेर सभ का पतन हो गया। १३२७ म स्याम (सब बाइसैण्ड) के राजा रामाधिपति ने वहाँ अधिकार कर लिया जिसके परिणामस्वरूप काम्बुज को २०० वर्षों तक प्रत्यक्ष सभवा परोस रूप से स्याम के धाक्षीपत्य में रहना पड़ा। १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांस ने इण्डोचीन में प्रवेश किया। फ्रांसिसियों ने सभप्रथम चीन पर सभमा नियन्त्रण स्थापित किया। कम्बोडिया में फ्रांसिसियों के धाक्रमणों से बचने के लिए फ्रांस का संरक्षण स्वीकार कर लिया। १८८४ में इस राज्य को

(कम्बोडिया को) फ्रांस द्वारा सपठित इण्डोचीन या हिन्दचीन सभ में शामिल कर लिया गया। फ्रांस के सरक्षण में यहाँ की जनता पश्चिमी प्राचार विचारों से प्रभावित हुई और कम्बोडियन राष्ट्रीयता का प्राहुमत्व हुआ। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस पर जापान का अधिकार हो गया। जापानी अधिकार के समय कम्बोडियन राज मन्त्रों ने जापानियों के विरुद्ध छापामार सभर्प छेड़ कर उन्हें बहुत तंग किया। परिणामतः कष्ट पाकर जापानियों ने कम्बोडिया के कुछ प्रदेश वाईसीएच को दे दिये।

युद्ध को प्रसिद्ध अवस्था में जब जापान को अपनी पराजय निश्चित हो गई तो उसने हिन्दचीन को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। १५ मार्च १९४५ को कम्बोडियन प्रधान मन्त्री ने अपने देश की स्वतन्त्रता घोषित कर दी। जापान द्वारा जो कम्बोडियन प्रदेश वाईसीएच को दे दिये गये वे युद्ध की समाप्ति पर वाणिज्यगत सम्मेलन के प्रादेश से कम्बोडिया को वापिस मिल गये। १९४७ में कम्बोडिया का एक राष्ट्रीय मन्त्रिमण बनाया गया। ८ नवम्बर १९४६ को यहाँ की प्रत्येक मन्त्री ने फ्रान्स युनियन के धनगत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में रहना स्वीकार कर लिया और फ्रान्स में ६ नवम्बर १९४६ को कम्बोडिया पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित हुआ।

कम्बोडिया की विदेश नीति प्रायः भारत की तरह ही तटस्थता की रही है। पर पश्चिम के अतिरिक्त साम्यवादी देशों के साथ भी अच्छे सम्बन्ध रखने के लिए वह सचेष्ट है। १९५४ के जेनेवा सम्मेलन में लिए गये निर्णयों के अनुसार कम्बोडिया से सम्बन्धित विदेशी सैनिक हटा लिए गए और सभी से कम्बोडिया अपनी विदेश नीति में एक पूर्ण स्वतन्त्र देश जैसा वाचस्पण कर रहा है। कम्बोडिया यद्यपि तटस्थ है किन्तु फिर भी उसका मुठाना चीन और साम्यवाद की घोर होना पड़ा है और वह भी विवेकानन्द साम्यवादी नीति की घोर। दिसम्बर १९६२ में छ. तटस्थ राष्ट्रों के कोलम्बो सम्मेलन में कम्बोडिया की घोर से राजकुमार नरोत्तमसिंहमक (Prince Norodom Sihanouk) ने भाग लिया था। इस सम्मेलन का आयोजन भारत की प्रमोद विचार के समाधान की नीति के लिए हुआ। नवम्बर १९६३ में कम्बोडिया ने यह घोषणा करके अमेरिका के साथ अपने विगाड़ने हुए सम्बन्धों का सख्त संकेत दिया कि मन्त्रिमण में वह अमेरिका से कोई आर्थिक सहायता नहीं लेगा। दिसम्बर १९६३ में अमेरिका और कम्बोडिया के सम्बन्धों में इस तत्कालीन घाटोपी को लेकर घोर विगाड़ पड़ा गया कि कम्बोडिया के रक्षियों से राष्ट्रपति केनदी की मृत्यु पर गनीय शक किया गया था। दोनों देशों के दूतनीतिक सम्बन्धों में अस्पाई रूप से बिच्छेरे पड़ा गया यद्यपि बाद में इन सम्बन्धों की पुनर्स्थापना हो गई। विषयनाम में अमेरिका के मन्त्रिमण की नीति को और युद्ध-विस्तार के कार्यों को लेकर कम्बोडिया और अमेरिका के सम्बन्धों में पुनः तनाव बढ़ना जा रहा था।

विषयनाम

(Vietnam)

विषयनाम प्रायः म केवल दक्षिणी पूर्वी एशिया अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व

में धार्मिक गुहसंहार और युद्ध का केन्द्र बना हुआ है और इस बात की प्रत्येक सम्भावना है कि यदि बिगड़ती हुई स्थिति पर लीधता से काबू न पाया गया तो बियतनाम का युद्ध कभी भी तृतीय महायुद्ध का विस्फोट कर देगा।

महाकासी के तांडव नृत्य की रंगत्पत्ती बने हुए इस देश का क्षेत्रफल १२७००० वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या लगभग १ करोड़ है। बियतनाम की बकिणी पूर्वी एशिया का सबसे पुराना और कूखीर राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त था। लगभग २ हजार वर्ष से जो अधिक समय से यह राष्ट्र बनेक नामों—मोहज सुधोगत बत और बियतनाम से इतिहास प्रसिद्ध रहा है।

इस राष्ट्र का भारम्भ लाल नदी की बाटी में हुआ और धीरे-धीरे यह इधर उधर फैलन लगा। लगभग ८०० वर्षों तक इसके विस्तार की गति मन्दगति से चलती रही। इस देश के किमान शासिककाल में अपने कृषि कार्यों में संलग्न रहते परन्तु युद्ध के समय सशस्त्र सिपाहियों के रूप में रणक्षेत्र में दृष्ट पड़े।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार बियतनाम राष्ट्र का जन्म सबप्रथम बामभोज साम्राज्य के नाम से हुआ। होंग बीग बत ने २८७ ई० पू० तक यहाँ शासन किया। तत्पश्चात् बिसक बत की स्थापना हुई ई० पू० २०७ क दासपाठ उनका भी नाप हो गया। याह में नामकीत बत की स्थापना हुई जिसने लगभग १०० वर्षों तक चीनी ब्राह्मणों का धीरता के साथ मुकाबला किया। १११ ई० पू० में लच्छिमासी हनुवंश की बानी सेनापत्तों ने नामकीत साम्राज्य को पराजित कर दिया और एक बियतनाम में चीन के हजार वर्ष से भी अधिक के व्यापार पूर्ण शासन का प्रारम्भ हुआ। चीन के निरंकुश शासन के विरुद्ध और बियतनामी जनता बारम्बार विद्रोह करती रही। बियतनामी राष्ट्रवादियों और चीनी सेनापत्तों के मध्य सबसे धर्मकर युद्ध १११ ई० में शासक नदी की बाटी में हुआ जिसमें चीनी सेनापत्तों को बियतनाम का सामना करना पड़ा और एक सैकड़ों वर्षों तक चीन के विरुद्ध पराजय का सामना करना पड़ा और एक सैकड़ों वर्षों तक बियतनाम की धीर मुक्त करने का साहस एक नहीं हो सका। इस निष्पत्तिक विजय के बाद लगभग १०० वर्षों तक बियतनाम शान्ति और स्वतन्त्रता का उपयोग करता रहा।

१९वीं शताब्दी में बियतनाम में युरोपियन जातियों ने प्रवेश किया। पहिले पुतयाली धामे और एक बत। फ्रांसियों ने यहाँ सर्वप्रथम १९९४ में प्रवेश किया और कुछ ही वर्षों में उन्होंने न कबल बियतनाम बल्कि समस्त हिन्द-चीन को अपने साम्राज्यवादी सिक्के में ढक लिया। बियतनाम माओस बम्बोडिया धादि सभी धर्मों में फ्रांस के उपनिवेश बन गये। साम्राज्यवाद का यह जुआ लगभग हीन ही वर्षों तक हिन्द चीन के कंधों पर रहा। फ्रांस ने स्वार्थी जनता को फ्रांस बनाया संस्कृति और रीति-रिवाजों के जरिये पुरखत

विजित करने की नीति अपनाई और उसकी अपनी धाराओं को कभी किसी प्रकार का महत्व नहीं दिया। प्रथम महायुद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका के धारसंबाधी राष्ट्रपति विल्सन की पराधीन देशों को धारम-निर्णय का अधिकार देने की घोषणा हिन्द-चीन के निवासियों को बड़ी प्रेरणात्मक लगी। हिन्द चीन के युवकों ने सैनिकों और अधिकारियों के रूप में युद्ध-भोचों पर काम किया और सौतेले पर के अपने साथ स्वाधीनता समानता और सामाजिक न्याय की विचारधाराओं को साथे। महायुद्ध के बाद फ्रेंच साम्राज्यवादियों ने हिन्द चीन की राष्ट्रवाणी महत्वाकांक्षाओं का बुरी तरह बमन किया लेकिन यह बमन-बक जनता के आगररक्षणी बीज को प्रकृतित होने से न रोक सका। परिणामस्वरूप यहाँ की जनता धीरे धीरे विदेशी प्रभुत्व से बुरा करने लगी।

द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने पर फ्रेंच सैन्य शक्ति बुरी राट्टो के सामने निर्बल प्रमाहित हुई। हिन्द चीन की फ्रेंच सेना जापान की बढ़ती हुई सेनाओं का मुकाबला न कर सकी। परन्तु कूटनीतिक काम का सहारा लेते हुए जापान ने हिन्द चीन पर अपनी सभ्य शक्ति से अधिकार नहीं किया प्रत्युत सैन्य शक्ति के धातक की छाया में फ्रेंच प्रशासन के साथ २१ जुलाई, १९४१ को एक पारस्परिक सुरक्षा समझौता करके हिन्द चीन में प्रविष्ट होने की अनुमति प्राप्त कर ली। युद्ध-काल में जापान ने इस प्रदेश क प्राकृतिक स्रोतों को अपनी औद्योगिक धारस्यक्तताओं की पूर्ति के लिए पूरा उपयोग किया। मार्च १९४२ में उसने इन क्षेत्र में फ्रेंच प्रशासक बग को पर-भ्युत् कर दिया।

जापान के युद्ध-कालीन शासन-काल के दौरान वियतनाम की राष्ट्रवादी शक्तियाँ विशेष रूप से प्रबल हो गयीं। जम्हूनि भीत मिन्ह लीग नामक एक राष्ट्रवादी शक्ति-बल की स्थापना की जिसका नेतृत्व साम्यवादी छापामार नेता की हो थी-मिन्ह को सँपा गया। वियतनाम क शक्तिकारी और राष्ट्रवादी तत्वों ने जापान के इस क्षेत्र से हटने के समय इनकी प्रबुर युद्ध-सामग्री हस्तगत कर ली कि वह शीर्ष-काल तक छापामार युद्ध बसा करने की स्थिति में आ गये। भीत मिन्ह लीग (यह नाम स्थानीय भाषा में था) अपना वियतनाम स्वतन्त्र्य लीग' जापानियों से भी उठती ही नफरत करती थी किन्तु कि फ्रेंचियों से। धरत जब अघरत १९४२ में जापान ने धारम समरण किया और वियतनाम जासियों को जापानी नियन्त्रण से छुटकारा मिला तो भीत मिन्ह राष्ट्रवादियों ने नितम्बर में धरम से अपनी स्वतन्त्रता का पवित्र करके वियतनाम एरणम्बर का उद्घाटन किया। अघरत १९४२ में उठो एन राष्ट्रीय महानभा एरणजित की धोर अपन बेल की तब-स्थापित सरकार के लिए थी। हा थी मिन्ह का राष्ट्रपति चुना। बापोसाई ने (जो अघरत का पुनर्मुख सभ्रात का धोर जिसने द्वितीय महायुद्ध के दौरान वियतनाम की ए धारना की धारणा करने हुए स्वयं को वियतनाम का शासक घोषित किया था) शक्तिशालियों की शक्ति से अघरत शोर अपना सिंहासन स्थापित किया और हो-ची-मिन्ह द्वारा इनोई ने स्थापित की गई बायकारी सरकार के

सर्वोच्च राजनीति परामर्शदाता का पद प्राप्त करके ही सतोर प्राप्त कर लिया। वियतनाम की इस तब-स्थापित सरकार ने राज्य का पूरा नाम वियतनाम लोकतन्त्रीय गणराज्य' रखा। सरकार ने कोचीन चीन टोंगकिंग और प्रछाम (ये प्रदेश हिन्द चीन में सम्मिलित हैं) पर अपने प्रमुख का शासन किया।

वियतनाम के राष्ट्रवादियों द्वारा की गई उपरोक्त कार्यवाही फ्रांस के लिए बसड़ थी। जापान के हिन्द चीन से पलायन के बाद जब वियतनाम पुनः फ्रेंच प्रमुख के अन्तर्गत आ गया तो फ्रांस ने राष्ट्रवादियों से किसी प्रकार का समझौता करने के बजाय समझौता करने का निर्णय लिया। फलस्वरूप चीन मिन्ह-राष्ट्रवादियों और फ्रेंच साम्राज्यवाद म युद्ध छिड़ गया।

१९४२ में लेकर १९४४ तक फ्रांस और हो-ची मिन्ह के बीच निरन्तर सझाइयाँ चलती रहीं। डा० हो-ची-मिन्ह को स्वानिय साम्यवादियों कुछ वैरनाम्पवादियों और बाह में चीनी साम्यवादियों की सहायता प्राप्त हुई। उनके अनुयायियों ने देश में प्राकृतिक अणुस्फोटक सामानों का खानाबखण्ड पैदा कर दिया तथा इन प्रकार फ्रांस के सिय वियतनाम में व्यवस्था स्थापित करना असम्भव बना दिया।

भैतिक साधनों द्वारा हो-ची मिन्ह पर विजय पाने में अपने को नाकामयाब पाकर फ्रांस ने राजनीतिक साधनों का आशय लिया। अपने अर्धतुट बायोर्शाई को प्रसाम में एक नई कार्यकारी सरकार (Provisional Government) स्थापित करने के लिये उक्तसाया। ५ जून १९४८ को बायोर्शाई ने कोचीन चीन सहित 'रिपब्लिक अर्ध वियतनाम' के नाम से एक नई सरकार स्थापित कर ली। इन तरह जब वियतनाम में दो सरकारें काम करने लगी—दक्षिणी वियतनाम में बायोर्शाई की रिपब्लिक अर्ध वियतनाम सरकार और उत्तर में डा० हो-ची मिन्ह का वियतनाम गणराज्य जिसे 'चीतमिन्ह' कहा जाना गया। मार्च १९४९ में बायोर्शाई ने फ्रांस की यात्रा की। फ्रेंच सरकार के माप कुछ समझौते किने गए जिनके अन्तर्गत वियतनाम (बीत मीन्ह नहीं) फ्रेंच-च का एक उपराज्य (Associated State of the French Union) बना दिया गया। इ के वैदेशिक मामलों व इसकी सेनाओं पर फ्रेंच आसन का नियंत्रण स्थापित हो गया। १० दिसम्बर १९४९ को बायोर्शाई ने संयुक्त (Saigon) में स्वयं को राज्याध्यक्ष घोषित कर दिया। यह बायोर्शाई-घामित वियतनाम की राजधानी बनी। डा० हो-ची मिन्ह द्वारा आसित वियतनाम की राजधानी हनोई ही रही।

फ्रेंच साम्राज्यवाद की इस प्रकार की कूटनीतिक चालों ने स्पष्टतः वियतनाम में भीषण बृह-बृह की नुस्खात कर दी क्योंकि एक तरफ तो हनोई की सरकार स्वयं को सम्पूर्ण वियतनाम की वैधानिक सरकार कहने लगी और दूसरे ओर वीगोन-सरकार सारे वियतनाम की वैधानिक सरकार होने

का दावा करने लगी। सीध ही इस घुड़-युद्ध ने एक राष्ट्रव्यापी-युद्ध का रूप धारण कर लिया। एक तरफ अमेरिकन हासरो कात्वास्त्रों, टको धीर बायुमार्गों से मुसजिमत १२०००० फौज सैनिक ये तो दूसरी तरफ साम्यवादी चीन की सहायता-प्राप्त डा० हो-शी मिन्ह के अपेक्षाकृत कम सख्या में निक। स्थिति तब धीर भी विपन्न हो गई जब सन् १९२० में अमेरिका ने एक 'शीत-युद्ध' (Cold-War) की भी हिन्द चीन के द्वार तक लीच ले। फरवरी १९२० में सैगोन की वियतनाम सरकार को समुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन आईसैन्ड एवं स्वतन्त्र्य विश्व के अधिकांश राग्या ने कूटनीतिक माय्यता प्रदान कर दी। दूसरी तरफ डा० हो की 'होर्नोई सङ्कार' को दूगोस्माकिया से 'कूटनीतिक माय्यता मिसी। इसके प्रतिरिक्त रूस साम्यवादी चीन, 'सीहू-घाबगल' से सम्बन्धित अन्य देशो धीर कुछ एशियाई राष्ट्रों का 'कूटनीतिक समर्थन' प्राप्त हुआ। डा० हो-शी मिन्ह ने राष्ट्रवादी धम्यवादी विरतनाम के धामीए सेनो में अपने प्रम बना विस्तार करने के लिए प्रबन्ध धम करन मने। उन्होमे फौज स आण्यबाद द्वार पोषित सङ्क्षित धीर पूर्ण सहायता प्राप्त सैगोन सरकार के विरुद्ध धपना धवसुत धापामार युद्ध जारी रखा। होर्नोई की सफलताधो न बाजिगटन को इस मय से मशक्षित कर दिया कि कही सम्पूर्ण वियतनाम ही साम्यवादी जिकज मे न बना जाय। धन उनमे फौज सेनाधो को अधिकाधिक मय्य सहायता दना धारम्भ कर दिया। इधर साम्यवादी चीन धीर इस होर्नोई की 'शीत मिन्ह या वियत मिन्ह सरकार' को यबासम्भर हर प्रकार की सहायता प्रदान करन मम। इस तरह 'उपनिवेशवादी हासको' धीर उपनिवेशी सामिन्तो के बीच युद्ध होमे बाले युद्ध ने धब स्वतन्त्र विश्व' तथा 'धमर्गर्तीय साम्यवाद के मध्य सन्ध का रूप धारण कर लिया।

७ मई १९२४ को 'शीत मिन्ह' सेनाधो ने डीन चीन फू में फौज सेनाधो को सबध बड़ी धीर निराणिक पराजय दी। फ्रांस के सगमम १२०० सैनिक बंधो बना लिये गये। इस धीयध पराजय ने हिन्द-चीन में फौज धाभ्राज्यवादी की कम्मर तोड़ दी। फ्रांस ने अमेरिका से धीर सैनिक सहायता भेजने की धपीस की। बाजिगटन ने लडन क समझ संयुक्त सैनिक हस्तधेप का प्रस्ताव रखा किन्तु लडन ने साफ इन्कार कर दिया। एडमिरल रेडफोर्ड द्वारा एक पक्षीय अमेरिकन हस्तधेप धीर ध्राणजिक शस्त्रों के प्रयोग का सुझाव दिया गया लेकिन युद्ध के विश्व व्यापी बन जाने के मय से राष्ट्रपति ध्राडजमहोबर ने समस्या के नागितपूर्ण समाधान का ही निश्चय लिया।

जेनेवा में युद्ध-विराम संधि धीर वियतनाम का विभाजन

१६ अग्रेल से २१ जुलाई १९२४ तक जेनेवा मे हिन्द चीन की समस्याधो पर बातचीत चलती रही धीर अन्त म २१ जुलाई दोनो पक्षों में युद्ध विराम संधि हुई। इस संधि के धनुवार निम्नलिखित धागे स्वीकार हुई—
 (i) यह रेश दो भागों म बट गया— उत्तरी वियतन म धीर दक्षिण

वियतनाम । १७वीं अक्षांश रेखा के उत्तर में हुनोई नदी से लपटा हुआ सारा उत्तरी वियतनाम साम्यवादियों को मिला और उसके दक्षिण में दक्षिण वियतनाम गणराज्य की स्थापना हुई ।

- (ii) दोनों मार्गों के बीच एक बरकर क्षेत्र की भी स्थापना की गई ।
- (iii) डॉ. वैनो द्वारा सारा वियतनाम शांति करने का निर्णय हुआ ।
- (iv) समस्त देश के भविष्य का निर्णय करने के लिये यह व्यवस्था की गई कि बुनाई १९५६ में निष्पन्न नीति से नये बुनावों द्वारा दोनों मार्गों का एकीकरण किया जायेगा ।
- (v) दोनों पक्षों द्वारा संधि की शर्तों का पालन करने के लिए वियतनाम में अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग की स्थापना की गई । इसके सदस्य—भारत, कनाडा और पोलैंड बनाये गये ।

बुद्धविराम की अक्षमता और वियतनाम संघर्ष

वैनोवा समझौते से धाना हुई थी कि वियतनाम में निकट भविष्य में ही पूर्ण शांति स्थापित हो सकेगी और धाम बुनाव द्वारा उत्तरी व दक्षिणी वियतनाम का एकीकरण हो जायेगा । परन्तु इस प्रकार की कोई भी योजना फलीफुल नहीं हुई । उत्तरी वियतनाम ने अन्ततः-संग्रह कराने से इन्कार कर दिया । इस पर दक्षिणी वियतनाम में मई १९५६ में परिषद समा के लिये बुनाव करके विभिन्न संसद की स्थापना कर दी गई । इस तरह दक्षिण वियतनाम लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली की प्रथम सीढ़ी पर चढ़ा ।

वैनोवा समझौते के अनुसार जब साम्यवादियों ने दक्षिण वियतनाम को आती किया तो वे इस क्षेत्र के जंगलों में विनाश संख्या में अस्त्रास्त्र छिपा कर छोड़ गये । वे सभी अस्त्रास्त्र सामरिक महत्व के स्थानों पर या तो सावधानी के साथ छिपा दिये नये धरना बरती में पाड़ दिये गये । वहीं नहीं साम्यवादी अनेक छापामार बस्तों को भी पीछे छोड़ गये जो जंगलों और पर्वतों में छिप कर भीके और पावेस का इन्कार करते लये । इन्कार अपने क्षेत्र में उत्तरी वियतनाम में भी साम्यवादी सरकार तभी के साथ अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने लगी । उसे साम्यवादी चीन और सोवियत रूस ने भारी परिमाल में अस्त्रास्त्र सहायता और टेक्नीकल सहायता सूमन होने लगी । चीन और हुनोई एक दूसरे पर अस्त्र क्षेत्र की वृद्धि के आरोप लगाने लये । डा० होषी मिन्ह की सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय बुद्ध-विराम निर्गमण आयोग से शिकायत की कि अमेरिका दक्षिण वियतनाम को हथियार दे रहा है । दूसरी ओर शाबम (Dien-दक्षिण वियतनाम के प्रथम राष्ट्रपति) की सरकार ने हुनोई पर आरोप लगाया कि वह उसकी सरकार का तथ्यता उत्तरे के लिये साम्यवादियों की सहायता दे रहा है ।

इस प्रकार के आरोपों-प्रत्यारोपों से उत्तरी व दक्षिण वियतनाम के

बीच की कटुता बढ़ती गई। इसी मध्य ३० अगस्त १९५६ को दक्षिण विमलनाम में आम चुनाव हुए और राष्ट्रपति दायम की सरकार ने भारी बहुमत प्राप्त किया। दूसरी ओर १५ जुलाई १९६० को उत्तरी विमलनाम की राष्ट्रीय संसद ने सर्व-सम्मति से ७० वर्षीय डा० होचीमिन्ह को राज्याध्यक्ष (Head of State) चुन लिया। दोनों ही नेता सत्ता से चिपके रहे और एक-दूसरे पर बेनेवा का जाति समझौता भंग करने का दोष लगाते रहे। उत्तर की प्रेरणा से दक्षिण विमलनाम में साम्यवादियों ने १९६० में 'राष्ट्रीय मुक्ति सेना' (National Liberation Front) की स्थापना की। इन दिनों को सरकारी बयानों में वियत-कांग (Viet Cong—Vietnamese Communists) कहा गया। यह विमलकांग संगठन सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने लगा।

इसपर तो अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा देने के बाद हुनोई सरकार ने दक्षिण के विरुद्ध पुनः ठोड़-फोड़ पुनर्पठ और क्षपामार सज़ाई प्रारम्भ कर दी और उत्तर १९६०-६१ के दौरान वियतकांग क्षपामार सैनिकों ने अपनी कार्यवाही देश के बहुत से भागों में अत्यधिक बढ़ा दी। १९६१ के अंत तक लगभग २० हजार साम्यवादी वियतकांग क्षपामार सैनिक दक्षिण विमलनाम में जहाँ-उहाँ आतंक फैल कर रहे थे। साधारण होकर दक्षिण विमलनाम के राष्ट्रपति जो दिन्ह दायम (Ngo Dinh Diem) ने १६ अक्टूबर १९६१ को सारे विमलनाम में धापातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी। मई १९६१ में अमेरिकन उपराष्ट्रपति लिण्डन बार्नसन ने सीगोन का दौरा किया। उन्होंने वापिस सीटकर अपनी सरकार को यह विचारित की कि दक्षिण विमलनाम को अमेरिकन सहायता में वृद्धि की जाय और इस सहायता की गति को बढ़ाने के उपाय किये जायें। इस पर राष्ट्रपति कॅनेडी ने अक्टूबर १९६१ में अमरल मैक्सवेल टैकर को दक्षिण विमलनाम इसलिए भेजा कि वह साम्यवादी कुनौती का सामना करने के लिये सीगोन सरकार की आवश्यकताओं को धरें।

१० दिसम्बर को अमेरिकन राज्य-विमान ने 'शांति को खतरा' (A threat to the peace) के नाम से दो भागों में एक इन्त-यन्त्र निदासा और आरोप लगाया कि वियतकांग मुक्ति साम्राज्य का निर्देशन व सञ्चालन उत्तरी विमलनाम से होता है, साम्यवादियों द्वारा दक्षिण विमलनाम का विभित कर लिये जाने का स्पष्ट रूप से खतरा उपस्थित है और यदि ऐसा हुआ तो साम्यवादी युद्ध में १४०००००० व्यक्ति और सम्मिलित हो जायेंगे जिससे आखिर की प्रगति का मार्ग पूर्णतः बन्द हो जायेगा जहाँ कि साम्यवादियों का पहला से ही ध्येय है पर अधिकार है। दक्षिण विमलनाम सरकार और अमेरिकन प्रशासन का यह खतरा आरोप था कि हुनोई सरकार का यह प्रयास है कि वह दक्षिण विमलनाम की सरकार के विरुद्ध बिद्रोह करने वाले साम्यवादी वियतकांग लोगों को शस्त्रों की सहायता देकर बग़ावत की सरकार की बग़ावत के और दक्षिण विमलनाम को उत्तरी विमलनाम के साथ मिला ले।

४ जनवरी १९६२ को संयुक्त राज्य अमेरिका ने दक्षिण वियतनाम की आर्थिक और सैनिक सहायता देने की योजनाएँ घोषित की। समयमय एक मास बाद एक अमेरिकन मैजिब कमान स्थापित की गई और लगभग ४ हजार अमेरिकन सैनिक युद्ध-कार्य में भाग लेने के लिए भेजे गए।

दक्षिण वियतनाम द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग (International Control Commission) से शिकायत की गई कि उत्तरी वियतनाम बृहत्पैठ और बिनाश की कार्यवाहियाँ कर रहा है। किन्तु जब शिकायत पर आयोग द्वारा विचार किया जाने लगा तो पोलिश सदस्य ने आपत्ति की कि आयोग को दक्षिण वियतनाम की शिकायत की जांच पड़ताल करने का अधिकार नहीं है। परन्तु आयोग द्वारा निर्णय लिया गया कि उस जांच करने का पूर्ण अधिकार है। सोवियत संघ और चीन ने दक्षिण वियतनाम के आन्तरिक घामको से अमेरिका के अनुचित हस्तक्षेप को निन्दा करते हुए आरोप लगाया कि अमेरिका द्वारा जो सैनिक कमान नियुक्त की गई है वह दक्षिणी वियतनामी जनता के उस देश पर एक पूर्ण संघर्ष का समर्थन करने के लिए स्थापित की गई है जो प्रगामी और साम्राज्यवाद के हाथों की कठपुतली हायम सरकार के विरुद्ध सड़ा जा रहा है। साम्यवादी चीन द्वारा घोषित किया गया कि बेनेवा सम्मेलन का गहायक प्रधान चाबश्चक परामर्श करके 'दक्षिण वियतनाम से युद्ध के सम्बन्धों को दूर करने के उचित उपाय करें। मार्च १९६२ में रूस द्वारा मांग की गई कि अमेरिका दक्षिण वियतनाम में युद्ध-सामग्री से बचना बन्द करे और वहाँ से अपने सैनिक घामसे को वापस बुला ले। रूस द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग के सदस्यों से भी घोषित किया गया कि वे दक्षिण वियतनाम में अमेरिकन हस्तक्षेप बन्द करने के लिए दबाव लायें।

२ जून १९६२ को अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग के भारतीय और कनाडियन सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया—

(i) उत्तरी वियतनाम आक्रमक कार्यवाहियों का शोषी है। उत्तरे दक्षिण वियतनाम में लक्ष्मणापूर्ण कार्यवाहियों को प्रोत्साहन व समर्थन देकर बेनेवा सम्मेलन को घबहाँसना की है।

(ii) दक्षिण वियतनाम न संयुक्त राज्य अमेरिका से वास्तविक सैनिक सहायता करके बेनेवा सम्मेलन की १९वीं और १७वीं शर्तों का घबहाँसना की है।

आयोग का निर्णय किसी भी पक्ष को अपनी कार्यवाहियों से निरत न कर सका। दोनों वियतनामों के बहिष्कृत और भागी सम्बन्धों का प्रश्न 'शोधयुद्ध में उत्तक कर रह गया। आरोपों प्रत्यारोपों की बीछारें होने लगीं। रूस व साम्यवादी चीन उत्तरी वियतनाम के जुने समर्थक बनें तो ब्रिटेन व कुछ अन्य पश्चिमी राष्ट्र दक्षिण वियतनाम में अमेरिका की स्थिति का समर्थन करने लगे।

दिसम्बर १९६३ में अमेरिकन प्रतिरक्षा सचिव रॉबर्ट मैकनमारा (Robert McNamara) ने कुछ प्रमुख अफ़िकारियों के साथ सीगोन का दौरा किया और घोषणा की कि— 'दक्षिण बियतनाम को जब तक आवश्यकता होगी अमेरिकन नैतिक सहायता दी जायेगी। किन्तु अमेरिका की इस घोषणा से बियतनाम ने साहस में कोई कमी नहीं आई पर्यन्तु उसकी भारत-कपुल कार्यवाहियों को ममानकता में वृद्धि होती गई। जनवरी १९६४ में फ्रांस के राष्ट्रपति डिगाम ने जोर देकर कहा कि बियतनाम का तटस्वीकरण किया जाना चाहिए। मार्च १९६४ में अमेरिका ने राज्य सचिव डीम रस्क द्वारा कहा गया कि यदि बियतनाम अपनी नैतिक कामवाही समाप्त कर दे चीन व उत्तरी बियतनाम दक्षिणी बियतनाम के मामलों में हस्तक्षेप करना छोड़ दें और उसे धार्मिक रूप से स्वीकार करने दें तो अमेरिका अपने दक्षिण बियतनाम का तटस्वीकरण भी स्वीकार कर सकता है। श्री डीम रस्क द्वारा यह विचार व्यक्त करने के तुरन्त बाद ८ मार्च को श्री मैकनमारा ने प्रमुख नैतिक तथा राजनीतिक अधिकारी पुन सीगोन मये जहाँ उन्होंने एक प्रस सम्मेलन में स्पष्ट शर्तों में घोषणा की कि दक्षिण बियतनाम को आवश्यक सभी धार्मिक सैन्य प्रशिक्षण सम्बन्धी और सैन्य सामग्री की सहायता अमेरिका देने को तैयार है। अमेरिका द्वारा इस सहायता का उद्देश्य दक्षिण बियतनाम की जनता का साम्यवादी विप्लववादी गति को रोकना है। २३ जून १९६४ को राष्ट्रपति जामसन द्वारा संयुक्त सेनाध्यक्षों के प्रधान और अमेरिका के बरिष्ठ सैन्य अधिकारी श्री मैकनमारा वी टैमर को दक्षिण बियतनाम से राजभूत नियुक्त किया गया। इस उत्तरी बियतनाम की ओर से १७वीं अगस्त रक्षा पर दबाव बढ़ता गया चीनी साम्यवादी सेना उत्तरी बियतनाम से लयती हुई चीन की दक्षिणी सीमा पर विज्ञ न मझ्या म एकत्र हो गई और कुछ चीनी सेना तो उत्तरी बियतनाम के भीतर तक जम कर बैठ गई। साथ ही सगमन १२०००० साम्यवादी नैतिक दक्षिण बियतनाम में पूरा रूप से सक्रिय हो गये।

अगस्त १९६४ से बियतनाम में और भी बिप्लव परिस्थिति उत्पन्न हो गई। अगस्त को दक्षिण बियतनाम के तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल न्गुयन काङ् (General Nguyen Khanh) ने आपत्कालीन स्थिति की घोषणा करते हुए उत्तरी बियतनाम में प्रत्याक्रमण की मांग की क्योंकि दक्षिण बियतनाम के साम्यवादी विप्लववादी घोषणाकारों को उत्तरी बियतनाम से विप्लव संख्या में अस्तराक्षों और अनिर्णय की सहायता मिल रही थी। राष्ट्रपति काङ् की यह घोषणा संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति के प्रतिकूल थी क्योंकि यह उत्तरी बियतनाम के विप्लव सैनिक कार्यवाही नहीं करना चाहता था। पर सीगोन सरकार को संतुष्ट करने के लिए, अमेरिका ने दक्षिण बियतनाम को नैतिक व धार्मिक सहायता में वृद्धि की घोषणा की। साम्यवादी रूप में यह अनुमान लगाते हुए कि उ० बियतनाम के साम्यवादी नैतिक विप्लववादी के विचार बन सकते हैं अमेरिका को चेतावनी दी कि यदि हमारा धुपानो यह उत्तरी बियतनाम को भरपूर सहायता देने को बाध्य होगा। साम्यवादी चीन ने भी घोषणा की कि यद्यपि नैतिक सहायता चीन में एक भी नहीं

मेका है लेकिन यदि उत्तरी वियतनाम पर आक्रमण हुआ तो उसके सब का बाँध टूट जाएगा। इस प्रकार की शोषणार्थी और आतंरिक-शत्रुताओं के बीच ही एक अत्यंत उत्तेजक घटना घटित हो गई। उत्तरी वियतनाम की पुनर्इच्छियों ने टोक्यो (अथवा टोंगकिम) की खाड़ी में संयुक्त राज्य अमेरिका के एक विमानसक पीठ पर आक्रमण कर दिया और इसका बदला लेने के लिए अमेरिका ने ४ अगस्त १९६४ को उत्तरी वियतनाम की पुनर्इच्छियों के ग्रहों पर तथा उस के पड़ारों पर पाँच बड़े तक भीषण बम-बर्षा की। इस बम-बर्षा के बाद ही स्पष्ट और चीन ने अमेरिका को अपनी उपरोक्त कृती बेताबनियाँ की।

परिस्थिति दिन-प्रतिदिन विषम से विषमतर होती गई। साम्यवादी विप्लवकारों द्वारा उत्तरी वियतनाम में जारी सैनिक सहायता प्राप्त करके दक्षिण वियतनाम के सैनिक ग्रहों को तहस-नहस करने का प्रयास शुरू कर दिया। १ नवम्बर, १९६४ को वियतनाम आतंरिकों ने वियतनाम के हवाई ग्रहों पर आक्रामक रूप से भीषण हमला करके २७ विमान गिरा कर दिये। इस आक्रमण में अनेक अमेरिकन सैनिक मरे और घायल हुए। इस घटना से अमेरिकन राष्ट्रपति जॉन्सन ने अपनी उत्तरी वियतनाम पर आक्रमण करने की नीति को पसीता लगाते हुए स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी कि अमेरिका उत्तरी वियतनाम द्वारा वियतनाम आतंरिकों को दी जाने वाली सैनिक सहायता बंद करने के लिए दक्षिण का प्रयोग करने को तैयार है। श्री जॉन्सन ने कहा कि यह सैनिक सहायता जापोस के मार्ग से जा रही है और वेनेज़ुएला समझौते के अंतर्गत प्रतिकूल है। दिसम्बर, १९६४ को हार्वर्ड हार्विस से एक विज्ञापित प्रकाशित की गई जिसमें दक्षिण वियतनाम को सैनिक सहायता देने का बन्धन रखा गया। १९६३ के भारत में दक्षिण वियतनाम में बीज-बर्षाविमानियों ने अमेरिका विरोधी प्रदर्शन किये जिससे स्थिति विशेष तनावपूर्ण हो गई। इन प्रदर्शनों को जिनमें युद्ध विराम बातों भारत करने तथा वियतनाम का पुनः एकीकरण की माँग की गई थी, क्रूरता पूर्वक दबा दिया गया।

इसके बाद ही अमेरिका ने दक्षिण वियतनाम में अमेरिकन सेना पर वियतनाम के आक्रमण के प्रतिशोधस्वरूप ७ फरवरी १९६३ को उत्तरी वियतनाम पर हवाई हमले भारत कर दिये। अमेरिकन वायुवाहन वियतनाम सैनिकों को सहायता पहुँचाने वाले सैनिक ग्रहों, पुर्णों तथा पड़ारों और सामरिक महत्त्व के अन्य ठिकानों पर भीषण बमबारी करने लगे। २७ फरवरी १९६३ को वाशिंगटन में अपनी नीति को पुनः करने के लिए उत्तरी वियतनाम द्वारा दक्षिण वियतनाम पर वियतनाम आतंरिकों द्वारा किये जाने वाले हमलों का विस्तृत विवरण एक स्वेतपत्र के रूप में प्रकाशित किया। इस और चीन ने अमेरिकन बम बर्षा की कटु निन्दा करते हुए अमेरिका को इस आक्रमण के सम्बन्धित परिणामों के बारे में कठोर चेतावनी दी। मार्च से ही अमेरिकन हवाई हमलों की गति में तेज़ी आने लगी। २३ मार्च को साम्यवादी चीन ने शोषण की कि यह वियतनाम में लड़ने के लिये अपनी

सेनामें सेजने को तैयार है। इसके साथ ही उत्तरी बियतनाम बस और चीन द्वारा अमेरिका पर यह आरोप लगाया गया कि वह अपने हवाई हमलों में प्रभुगैस का सघा उस्टी और उबकाई माने वाली गैसों का प्रयोग कर रहा है। विश्व के निम्नल समुदाय द्वारा भी इन विपैनी गैसों के प्रयोग की तीव्र निन्दा की गई। फ्रांस, रूस और भारत की सरकारों ने दोनों पक्षों (उत्तरी व दक्षिण बियतनाम) में कोई समझौता कराने के लिये पुन बनेवा-मम्मेसम बुलाये जाने की प्रपील की। संयुक्त राष्ट्र संघ के महा सचिव भी ऊ बांट ने सम्बन्धित देशों के बीच बातों का प्रस्ताव किया और १७ तटस्व राष्ट्रों ने मुठ बंद करने की प्रपील की।

अप्रैल १९६५ के अरम्भ में उत्तरी बियतनाम क राष्ट्रपति डा० हो-भी मिन्ह ने एक बार-पूचीय प्रस्ताव रला जिनमें और बातों क प्रतिरिक्त दक्षिणी बियतनाम से अमेरिकन सेनाओं के पूर्णत हटाये जाने उत्तरी बियतनाम पर बम-बर्षा बंद किये जाने तथा मैगोन में बियतकाय के राजनीतिक कार्यक्रम के प्रमुखार निपटारा किये जाने की माग की गई। इस प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में ७ अप्रैल को राष्ट्रपति जॉन्सन द्वारा बापला की गई कि यदि दक्षिण बियतनाम को स्वतंत्र रहने लिया जाए और सुरक्षा के लिए अमेरिकन सेना यही रहे तो अमेरिकन सरकार बिना गर्त बाता करने को तैयार है। हनोई द्वारा राष्ट्रपति जॉन्सन क इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। सोवियत संघ और सासधीन ने हनोई के हृष्टिकाय का समर्थन किया। अमेरिकन सैनिक-हस्तछेप और बायु पाक्रमण के बिच्छ उत्तरी बियतनाम को सन्नत करने के लिए कम न हनोई के निाट बायुयान सेवा प्रदेनगास्त्रो के बरूडे बनाता शुरू किया। उपर चीन में भी उत्तरी बियतनाम को क्सी सैनिक सामधी स माने की मुबिबायें प्रदान की। रूस और पान की इस कामबाही के अबाव में अमेरिका ने दक्षिण बियतनाम में अपना सैनिक शक्ति में और हृष्टि कर दी। मई १९६५ में अमेरिकन कार्येस द्वार एक बियेयक पारित किया गया जिसके अर्तगत बियतनाम में मुठ-कार्यों के लिये ७० करोड़ डॉलर की प्रतिरिक्त राशि स्वीकार की गई।

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों द्वारा बिसेपकर एशिया और अफ्रीका के देशों द्वारा बियतनाम मुठ बंद करने की बारम्बार प्रपीलें की जाने लगीं। जून १९६५ में लन्दन में हुए १४ वें राष्ट्र मंडलीय प्रपातमंकी मम्मेसम में एक बियतनाम शांति धायोग' स्थापित किया गया। इस बापोग को बियतनाम की समस्याओं स प्रत्यल सम्बन्धित देशों की सरकारों से सम्पर्क करने और बियतनाम में मुठ समाप्त कराने में सहायता करन का नाम सौपा गया। अमेरिका और दक्षिण बियतनाम द्वारा राष्ट्र मंडलीय मध्यपठा के प्रति कोई धार्षात नहीं की गई किन्तु मोबियत संघ चीन और उत्तरी बियतनाम ने इसे अस्वीकार कर दिया। जब जुलाई १९६५ में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति ीटो टोर भाग्न क स्वर्गीय प्रपातमंकी भी लाभ बहादुर शास्त्री ने बियतनामी-अर्ष के शांतिपूण समाधान के लिये एक संयुक्त प्रपील जारी की ता चीन की गुडविय सरकार के समाचार पत्र भीपुसस देशों ने इस

प्रतीति की निम्नोद्योग प्रामोचना करते हुए टीटो और मास्त्री को 'अमेरिकन साभाम्यबाह के एक्सेट' कह कर अपनी कुत्सित मनोवृत्ति का परिचय दिया। वास्तव में यह एक खेदजनक और उपहासास्पद बात थी कि 'शांति-वार्ता' को पदार्थ की संज्ञा दी गई।

वियतनाम के मामले में नेतृत्व की प्रतिस्पर्धा सोवियत चीन मतभेदों को भी समारने लगी। ३० अगस्त १९६३ को साम्यवादी चीन ने वियतनाम कस की वियतनाम सम्बन्धी नीति के लिये उसकी प्रामोचना की। वास्तव में चीन को भय था कि वियतनाम में शांति-स्वापना के लिए कस वार्ता करने को सहमत होकर शांतिप्रिय राष्ट्र होने की वाह-बाहू न कट सके। इसलिये चीन बारम्बार घ प्रहृषक यह कहता रहा कि वियतनाम वियतनाम शांति वार्ता के लिए प्रतिवर्ष रूप से प्रथम अर्थ यह होनी चाहिए कि वियतनाम से बिना अर्थ अमेरिकन सेना हटा ली जाय। नवम्बर १९६३ में साम्यवादी चीन ने यह भी प्रकट किया कि फरवरी १९६३ में जब सोवियत प्रधानमंत्री कोसीगिन ने वेंगिन की यात्रा की थी तो उन्होंने चीन की सरकार को वियतनाम-युद्ध समाप्त करने में अमेरिका की सहूलता करने को कहा था। ११ नवम्बर को चीनी-साम्यवादी दल के समाचार पत्रों 'पिपुइत डेली' और 'पी रेड-वर्लड' ने यह गम्भीर और मनगढ़ल आरोप लगाया कि अमेरिका और कस मिल कर छारे संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की योजना पर चल रहे हैं और वियतनामी जनता की विद्रोह रूपी शीपन अण्डामा को शांत करने में संलग्न हैं। इन समाचार-पत्रों ने कस के इस प्रस्ताव की भी कटु प्रामोचना की कि बिना किसी अर्थ के हिन्द चीन पर एक नया अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रामोचित किया जाय।

वियतनाम-युद्ध में अमेरिका अपनी अधिकारिक सैनिक-शक्ति प्रोक्तता तथा किन्तु उत्तरी वियतनाम के साइस को कम नहीं किया जा सका। जहाँ अगस्त में १९६२ में वियतनाम में सिर्फ १००० अमेरिकन सैनिक थे और अक्टूबर, १९६३ में इनकी संख्या लगभग १७०० थी तथा १९६४ के अंत तक वियतनाम के प्रतिरक्षा विभाग की योजना के अनुसार यह संख्या १८९६२ तक पहुँच गई। किन्तु फिर भी यह समझा जाया कि इस युद्ध को सैनिक दृष्टि से जीतने के लिये २ से ३ लाख तक अमेरिकन सैनिक आवश्यक हैं।

दिसम्बर १९६३ में सोवियत प्रधानमंत्री की कोसीगिन ने साम्यवादी नेता एलेक्जेंडर शेरेपिन को वियतनाम-युद्ध शांत कराने के उद्देश्य से इतनी योजना। यह वह अक्षर था जबकि वियतनाम के अक्षर पर कुछ समय के लिए कुछ विराम की योजना की गई थी अमेरिका ने वियतनामी ठिकानों पर हम विराम बंद कर गया था और संघर्ष को परस्पर वार्ता द्वारा निपटाने के लिए जी-सीडू कूटनीतिक प्रयत्न किये जा रहे थे। दुर्भाग्यवश इस अनुक्रम अक्षर का कोई साम नहीं उठाया जा सका। साम्यवादी चीन को कस और अमेरिका के ये शांति प्रवास अपनी विश्व-प्रभुत्व प्राप्ति की योजनाओं के प्रति

बावक प्रतीत हुए। चीनी पत्रों ने रूस और अमेरिका पर पुनः तरह-तरह के बोपारोपण करना धारम्भ कर दिया। यही नहीं पेरिस ने उत्तरी वियतनाम की सरकार को यह भी कह दिया कि रूस से मतभेद दूर करना मासुसवाह सेनिनवाद के प्रति विश्व-संघात समझ बायेदा। चीनी नेताओं ने इस बात के प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किये कि उत्तरी वियतनाम में सेसेपिन का उद्देश्य पूरा न होने पाये।

१७ दिन तक हुआई हमले बंद रखने से भी जब उत्तरी वियतनाम के रूस में कोई परिवर्तन नहीं हुआ उस्ते हुआई-सरकार अपनी सैन्य-शक्ति को पुनर्पठित करने में व्यस्त रही तो जनवरी १९६६ के अंत में अमेरिका पुनः हुआई हमले करने के प्रश्न पर विचार करने लगा। वास्तव में अमेरिकन नीति-निर्माताओं को रूस द्वारा प्राकृतिकतय हथियार उत्तरी वियतनाम को दिये जाने से चम्पीर चिंता सता रही थी। जब अमेरिका को यह निश्चय हो गया कि हुआई हमले बंद रखने से उत्तरी वियतनाम बिना कर्त बाता करने के प्रति सहमति के कोई सझन प्रकट नहीं कर रहा है बकि इस शांतिकास का उपमाय उत्तरी वियतनाम को जाने वाज पुसपैठ के मार्गों की मरम्मत करने व अपने प्रतिरक्षा साधनों को सुदुढ़ करने में कर रहा है तो बम-बर्षा पुन-सेची से धारम्भ कर दी गई।

१९६६ के सम्पूर्ण अय में वियतनाम-समस्या का समाधान करने के लिये अनेक प्रयास किये जाते रहे, किन्तु उत्तरी वियतनाम के राष्ट्रपति डा० होची-मिन्ह अपनी निम्नलिखित चार बातों पर बटे रहे—

(i) संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिण वियतनाम से अपनी सारी सनार्थें गुरंत हटावे।

(ii) दक्षिण वियतनाम में संधि बाता आपाचार वियतनांग चीनियों के राजनीतिक संघठन 'राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे' (National Liberation Front) से की जाये क्योंकि यही दक्षिण वियतनामी जनता का एक मात्र प्रतिनिधि है।

(iii) समझौते के लिये उत्तरी वियतनाम की चतुसुत्री योजना स्वीकार हो जाये।

(iv) उत्तरी वियतनाम पर की जान वाली बमबारी को फौरन बन्द किया जाये।

डा० हो-ची-मिन्ह ने ब्रिटेन, फ्रांस, भारत आदि अनेक देशों को और गमासवाची राष्ट्रों को पत्र भजे जिनमें उपरोक्त बातों पर बम दिया गया। बचक जनवरी १९६६ में भ्रंज गये थे। भारत के राष्ट्रपति डा० राज-गुणगु ने प्रत्युत्तर में लिखा कि अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग का घणपश हूँ न माये भारत १९६४ के बेरोबा समझौते के अनुसार दोषा दशा का एवागण्य करना चाहता है। डा० राजगुणगु ने लिखा कि भारत का सपुत राज्य अमेरिका से यही अनुरोध है कि बम-बर्षा बन्द की जाये और

संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रामुखता में दोनों घुटों से प्रबन्ध (Non-aligned) देशों से सैनिक प्राप्त करते एक धन्तराष्ट्रीय सेना का संगठन किया जाये जो इस समस्या का समाधान होने तक दोनों देशों की सीमाओं पर शांति स्थापित करने का कार्य करें। प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी ने बियतनाम में युद्ध बिराम के लिये जेनेवा-सम्मेलन के पुनः आमन्त्रित किये जाने का प्रस्ताव रखा। भारत के प्रस्ताव महाशक्तियों को पसन्द नहीं आये। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका बिना सब बम-बर्षा बन्द करने को सहमत न था तो सोवियत संघ जेनेवा-सम्मेलन को सब ठक बुलाने के लिये तैयार नहीं था जब तक कि उत्तरी बियतनाम इसके लिये सहमत न हो जाये।

श्रेष्ठ राष्ट्रपति जिर्गॉन ने उत्तरी बियतनाम पर अमेरिकन बम-बर्षा और दक्षिण बियतनाम में उत्सर्जित हस्तक्षेप का जोर विरोध किया। एशियाई देशों की अपनी यात्रा के दौरान राष्ट्रपति मजीबय ने इस बात पर बहुत बल दिया कि अमेरिका को दक्षिण बियतनाम से सभी फौजें हटा लेनी चाहिये। और बियतनाम-समस्या का समाधान जेनेवा-सम्मेलन के अनुसार दोनों मार्गों का पुनः एकीकरण करके तथा इनको तटस्थ देश बना कर किया जाना चाहिये। १ नवम्बर १९६६ को श्री जिर्गॉन ने पुनः कहा— अमेरिका को बियतनाम से अपनी सेनाएँ तुरन्त हटा लेनी चाहिये और हिन्द चीन प्रायद्वीप की तटस्थता को धन्तराष्ट्रीय गारंटी को स्वीकार करना चाहिये। भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया। अक्टूबर १९६६ में भारत में यूगोस्लाविया संयुक्त परब गणराज्य एवं भारत के गिब्रार-सम्मेलन के प्रसंग पर भी राष्ट्रपति टौटो नासिर और श्रीमती इन्दिरा गांधी के बियतनाम समस्या पर एक-से विचार इस प्रकार थे— बियतनाम में तुरन्त रुकवाई बन्द हो वहाँ से विदेशी सेनाएँ हटा ली जायें कोई बाहरी देश वहाँ के धान्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करे और वहाँ की जनता की इच्छानुसार उसके राजनीतिक स्वल्प का पठन किया जाये।¹ यह उद्देश्यहीन है कि उपरोक्त राजनेताओं के अनुसार 'सम्मन्त्रित पक्षों' में बियतनाम का राजनीतिक दल राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को भी सम्मिलित करने की बात थी (और है) जिसके सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उद्योग विरोध था (और है)।

प्राथमिक विश्व की पन्नीरतय समस्या बियतनाम-संघर्ष का समाधान करने की बिधा में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया क्योंकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत संघ के परस्पर विरोधी दृष्टि इस बिधा में संघ को पंगु किये हुये थे। दूसरी बात से बतयना बुली और सुम्प होकर महाशक्ति ठपॉट ने १ नवम्बर १९६६ को अपने पर का काबकास समाप्त होने पर पुनः उस पर पर बने रहने तक से इन्कार कर

1. हिन्दुस्तान दैनिक २१ अक्टूबर पृष्ठ-२ व २४ अक्टूबर १९६६, पृष्ठ-१

दिया। इसी प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र सभ के सभी सदस्यों का नाम उन्हीं एक पक्ष में भेजा जिसमें लिखा कि—

“घटना-श्रम शयातार एक बड़ी सड़ाई की तरह बढता जा रहा है और उसे रोकने के उपाय बेहद कमजोर हैं। वियतनाम की सड़ाई में नयुक्त राष्ट्र सभ सर्वथा निस्सहाय सिद्ध हो रहा है। खाति की साज म हथियारों का इस्तेमाल बार-बार किया जा रहा है। ऐसी हानत में अपने पक्ष पर बने रहने में मुझे कोई सार दिखाई नहीं पड़ता।” यद्यपि श्री ऊपार्ट को बड़ राष्ट्रों द्वारा खाति-स्वापन सम्बन्धी पाश्चात्तम देकर पक्ष पर बने रहने को राजी तो कर लिया गया परन्तु दुर्भाग्य से उन पाश्चात्तना को पूरा नहीं किया गया और वियतनाम-युद्ध आज पूर्वपिछा और भी अधिक भीषण रूप लिये विद्यमान है।

विश्व समय भरदूबर १९६६ में भारत में टीटो-गसिर-गांधी का मि राष्ट्र सितर-सम्मेलन हो रहा था, उन्हीं दिनों वियतनाम-समस्या के बारे में ही फिलिपाइन्स की राजधानी मनीला में भी एक सितर-सम्मेलन हुआ जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन्सन के प्रतिरिक्त फिलिपाइन्स पार्सलैण्ड डॉक्ट्रिनिया दक्षिणी वियतनाम वक्षिण कोरिया और न्यूजीलैण्ड के साधनाध्यक्षों ने भाग लिया। इस सम्मेलन की विराप्ति में यह मांग की गई कि वियतनाम में खाति-स्वापना के लिये सबसे पहले यह धावश्यक है कि वियतनाम अपनी धाक एक कार्यवाहियाँ समाप्त करे और नतरी वियतनाम दक्षिणी वियतनामी प्रदेश से अपनी फौजें हटा ले। ऐसा ही जाने के बाद अमेरिका द्वारा भी अपने सैनिक हटा लिये जाये और सम्बन्धित पक्षों में शान्ति हो सकेगी।

वियतनाम समस्या के समाधान के बारे में संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के महा-सचिव भी ऊपार्ट ने कि गॉस और थीमती गांधी के विचारों का काफी हद तक समर्थन किया और कहा कि अमेरिका द्वारा उत्तरी वियतनाम पर पक्षे कम-बर्पा बन्द की जानी चाहिए क्योंकि तभी शांति बर्ता प्रारम्भ होने के समुक्ल उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण हो सकता है। श्री पांट ने ही शब्दों में— वियतनाम की समस्या वास्तव में अपनी भाजादी के लिए सन्ने बाने देशवासियों की समस्या है। जब-जब भाजादी मिमने में ज्यादा देर लगती है तब-तब प्रतिबादी शक्तियाँ प्रबल हो उठती हैं और दूनरी संयुक्त शक्तियों को डबा देती है।

वियतनाम प्रश्न के हल के लिए योग द्वारा मुझाव दिया गया कि संयुक्त राष्ट्र सङ्घ तटस्थ देशों को हम विबाद में पक्ष बना कर उनमें इन समस्या का समाधान कराये। श्री ऊपार्ट भी वियतनाम सङ्घर्ष में संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की निष्पक्षता अधिक समय तक सहन नहीं कर सक। उन्हीं नव

बर्ष के दिन १ जनवरी १९६७ को इस समस्या को सुसम्झने के लिए एक त्रि-सूत्रीय योजना प्रस्तुत की, जो इस प्रकार थी—

(i) उत्तरी वियतनाम पर की जाने वाली हम-बर्षा अभियान बन्द की जाय ।

(ii) दक्षिणी वियतनाम में मन्त्री बल अपनी सम्पूर्ण सैनिक कार्य बाहियाँ बन्द कर दें ।

(iii) जाति-सन्धि की बातचीत में मुद्दा करने वाले सभी हम भाग में जिसमें राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे (National Liberation Front N.L.F.) के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों ।

१४ मार्च १९६७ को महासचिव ठाण्ट ने उपरोक्त प्रस्तावों को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया । परन्तु अभी तक इस प्रश्न पर महासचिवों में जोर मतभेद होने के कारण कोई समझौता नहीं हो सका है । इस विषय में प्रमुख महासचिवों के दृष्टिकोस इस प्रकार है—

संयुक्त राज्य अमेरिका का कहना है कि वियतनाम में उद्योगी उपस्थिति सेवक सरकार की रक्षा और दक्षिण वियतनामी जनता को साम्यवादी घातक से मुक्त रखने के लिए है । वह अपने मित्र दक्षिण वियतनाम की प्रार्थना पर उत्तर वियतनामी घातकों से उठे बचाने के लिए जाया है । यह उस समय तक किसी भी बातों में भाग लेना उसके लिए उचित नहीं है जब तक कि उत्तरी वियतनाम दक्षिणी वियतनाम पर अपने हमले बन्द नहीं कर दे । अमेरिकन प्रशासन का यह भी बड़ा विश्वास है कि दक्षिण पूर्वी एशिया में राजनीतिक स्थिति इतनी अस्थिर, अनिश्चित और खंग खोस है कि अमेरिका के वियतनाम एवं लेव डिन चीन से हट जाने पर इस सम्पूर्ण क्षेत्र में साम्यवादी घातक स्थापित हो जाने में विरोध देर नहीं लायेगी । यद्यपि वियतनाम से अमेरिका को हटना ही है तो इसके पहिले इस बात का पूरा प्रमाण कर लेना होगा कि उत्तरी वियतनाम पहले ही के समान अपनी आक्रमक कार्यबाहियों को पूरा आरम्भ करके दक्षिणी वियतनाम के अस्तित्व को कहीं उत्तरे में न डाले । इस क्षेत्र में साम्यवाद के प्रसार का बिना उचित निरोध हुए अमेरिका का वर्तमान प्रशासन हीमा नहीं पड़ना चाहता । यद्यपि अमेरिका में जनमत वर्तमान प्रशासन की नीति के विरुद्ध दिनों-दिन प्रबल होता जा रहा है किन्तु अधिकांश अमेरिकन राजनीतिको और राष्ट्रपति जॉन्सन को अब है कि यदि सींगोन सरकार को अमेरिका की सहायता से बर्चित कर दिया गया तो साम्यवादी चीन से प्रचुर सैनिक सहायता पाकर उत्तरी वियतनाम दक्षिणी वियतनाम को हड़प लेना और इस तरह सम्पूर्ण वियतनाम पर साम्यवादी चीन की प्रभुता स्थापित हो जायेगी । वियतनाम को भीत लगे के बाद कम्बोडिया और म्यांमर भी सरलता से पेरिस के प्रभुत्व में चले जायेंगे । इसके बाद दक्षिण पूर्वी एशिया में बार्सैड चीन का घमना घुंकार बनेगा । चांगों छोड़ से साम्यवादी चीन व उसके समर्थक हलों से घिर जाने पर बार्सैड बेर तक अपनी स्वतन्त्र सत्ता सुरक्षित नहीं रख सकेगा । इस प्रकार अकेले वियतनाम में चीनी मंसूबों की विजय होने का

अथ होगा समयमग सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में साम्यवादी चीन का वर्धस्व संस्थापित हो जाना। चू कि यह स्थिति अमेरिका के लिए घणघण होगी पश्चिम के अस्तित्व के लिए गम्भीरतम चुनौती होगी अतः दक्षिण वियतनाम की रक्षा करके चीनी प्रसारवाङ्ग को रोकना अमेरिका के लिए अनिवार्य है। वियतनाम में अमेरिका की नीति पर साप्ताहिक दिनमान (१४ मई १९६७) पृष्ठ ३७) के सम्पादकीय में आ विचार प्रस्तुत किये गये हैं वे पठनीय हैं। यह सम्पादकीय इस प्रकार है—

“वियतनाम को लेकर अमेरिका को एक साथ कई सझाझवा सझनी पड़ रही है। एक सझाई यह है आ दक्षिण वियतनाम के मैदानों में सझी आ रही है दूसरी सझाई यह है जिसके अन्तर्गत उत्तर वियतनाम की अथर्ववस्था को सझुस्य सझा पर अमचारी की जा रही है तीसरी यह है जिसका उद्देश्य दक्षिण वियतनाम के सैगान सांखित प्रवेशों में वियतकांग का प्रतिरोध करने के लिए आबस्यक आन्विक उमति और स्थानिक सोरुत्तन का आयोजन किया जा रहा है चौथी यह है आ जिस मठ अपने पक्ष म करन के लिए सझी जा रही है और पाँचवी तथा अमरिकी राष्ट्रपति की दृष्टि म सबस महत्वपूर्ण यह सझाई है जो अमेरिकी अनमत की अदाकत म सझी जा रही है। अमरिकी अनमत जहाँ एक अर वियतनाम म साम्यवादी अानत स्थापित होन की सम्मानना को दूर रचना चाहता है वहा दूसरी ओर वियतनामी दलपम में अमेरिका क ओर और अ्यादा बंधते जाने की आशाक्या से बचराठा है। यह शुक्तिभा उसके लिये वियतनाम सम्बन्धी सगमग सभी सम्मानित नीतियों को समान रूप से अस्वीकार्य बना देती है।”

वियतनाम युद्ध में सोवियत रूस और साम्यवादी चीन दोनों ही उत्तरी वियतनाम को समर्थन क अग्रत्यक्त सहयाग दे रहे हैं परन्तु दोनों में अर्थभय नहीं है। इस सम्बन्ध में दोनों की नीति का उल्लेख करते हुए एक ब्रिटिश पत्र ‘सन्डे टेलीग्राफ’ ने अपने सम्पादकीय में इस प्रकार लिखा है—

“इससे समझे नहीं हैं कि सोवियत रूस वियतनाम युद्ध का अन्त देचना चाहता है, पर उसके रास्ते में सझी आया चीन का रबैया है। युद्ध समाप्त करने के किसी भी प्रयत्न का समर्थन यदि सोवियत रूस ने किया तो चीन तुरन्त ही यह कह कर सोवियत रूस की निर्या करेगा कि अपने अपने को अमरिगा के हाथों से बचा दिया है। राजनीतिज्ञों का बुद्ध मन है कि वियतनाम युद्ध में चीन ही एक मात्र ऐसा हैम है जो अाति नहीं चाहता है। उसी अपनी विवेक नीति का मुख्य उद्देश्य तो सम्पूर्ण एशिया की भूमि में अमरिजन सजापों को हटाना है ताकि दक्षिण एशिया पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो सके। अतः अमेरिकन पत्र Progressive के अनुसार चीनियों का मन है कि—‘दक्षिण वियतनाम में अमेरिकन सैनाओं का अभाव इतना अघिया गियतनामियों के विरुद्ध नहीं है जितना चीनियों के।’ स्वयं चीनी सैनापों के कथनानुसार— अमेरिका ने चीन के आरों तरफ बेरा अालने के लिये मोवियन रूस ब्रिटेन जापान और भारत के साथ युद्धबन्दी कर रही है।” दक्षिण पूर्वी एशिया में अपने प्रभाव के विस्तार का दुश्मन साम्यवादी चीन उत्तरी वियतनाम को अपने उद्देश्य की निधि का आधन और संयुक्त राज्य अमेरिका क हमलों को

रोकने के लिए एक मध्यवर्ती राज्य (Buffer State) बनाये रखना चाहता है। उसे सड़ाई कमाने में ही अधिक साम है इसलिए वह दक्षिण विपतनाम के विषय में कोई सम्मेलन बुलाने का प्रावधान नहीं सम्मत्ता। वह तो केवल इसी बात पर बल देता है कि अमेरिकन सेनाएँ बिना किसी शर्त के दक्षिण विपतनाम छोड़कर चली जाएँ ताकि उसे नियन्त्रण में लाया जा सके।

सोवियत रूस की स्थिति इस मामले में बड़ी बुद्धिवाचक है। एक तरफ तो वह अपने जाति भाई उत्तरी विपतनाम को सहायता देने में चीन से पीछे नहीं रहना चाहता क्योंकि इससे चीन को मास्को की बदनाम करने का अवसर मिलता है और दूसरी तरफ रूस को यह चिन्ता भी सजाती है कि यदि उत्तरी विपतनाम सफल हो गया तो सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी चीन की तुली बोलने लगेगी। विपतनाम के प्रश्न को लेकर वह अमेरिका से टकराने की स्थिति से भी बचना चाहता है। रूस की दृष्टि यह है कि बदनामी से बचने के लिए जब स्वयं मार्श से वह उत्तरी विपतनाम को सैनिक सहायता पहुँचाना चाहता है तो चीन उसके मार्श में बाधाएँ डालता है क्योंकि उत्तरी विपतनाम को सङ्घर्ष में विजयी बनाने का सारा श्रेय वह (चीन) स्वयं लेना चाहता है और यदि 'रूस' समूची मार्श से उत्तरी विपतनाम को अस्मात्न भेजता है तो उसे अमेरिका के समूची बेड़ से भय रहता है। फिर भी दोनों ही स्थितियों से किसी न किसी तरह बचते हुए सोवियत रूस उत्तरी विपतनाम को अपनी प्रचुर मात्रा में सैनिक सहायता पहुँचा रहा है कि इनो को चीनी सहायता के प्रति सन्तुष्ट होने लगी है।

विपतनाम सङ्घर्ष में भारत की नीति स्पष्ट होते हुए भी बड़ी बुद्धिवाचक और उलझन भरी है। चीन भारत का प्रबलतम शत्रु है अतः दक्षिणी पूर्वी एशिया में उसकी प्रभाव शक्ति भारतीय हितों के लिए अत्यन्त बाधक होगी। इस दृष्टि से उचित यही पक्षता है कि इस सङ्घर्ष में भारत को दक्षिण विपतनाम का पक्ष लेना चाहिये। परन्तु यदि दक्षिणी विपतनाम की नीति अपनाई जाय तो सोवियत रूस से जुड़े हुए हमारे राष्ट्रीय हितों की हानि पहुँचाती है। भारत-पाक सङ्घर्ष भारत-चीन विवाद और काश्मीर समस्या आदि के बारे में छाविबत मैत्री हमारे लिए कितनी मुख्यवान है यह कोई छिपा तथ्य नहीं। अतः यदि इस दूसरे दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो समुचित यही प्रतीत होता है कि भारत को उत्तरी विपतनाम का समर्थन करना चाहिए। यदि दोनों दृष्टिकोणों पर समुचित विचार किया जाए तो राष्ट्रीय हित की दृष्टि से ठीक यही है कि भारत १९५४ के जेनवा सम्मेलन के क्रियान्वयन पर ही पुनः बल दे। दोनों पक्षों में सम्मेलन के मार्श को प्रवृत्त करने के लिए ही भारत उत्तरी विपतनाम पर बल-बर्पा बन्द करने का पक्ष-नीतिक है। भारत की मांग्यता है कि बल-बर्पा रोकने से प्रथम तो युद्ध का विस्तार का भय कम हो जायेगा दूसरे महायुद्ध की विरफोटेक स्थिति टल जायेगी और तीसरे पारस्परिक शान्ति के लिए बाता-

करण में सुधार हो सकेगा। जब विरोधी पक्ष धामने-धामने वर्ण के लिए बैठेंगे तो सभी विरोध एक-एक करके शून्य होने शुरू हो जाएंगे और वियतनाम में शांति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।

वास्तव में वियतनाम में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब कि सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका एक दूसरे के निकट आकर अपनी मित्रता बढ़ाएँ और साम्यवादी चीन के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाएँ। ऐसा न होने पर आधुनिक विश्व में स्थायी शांति की सम्भावना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। यह एक गुप्त सन्देश है कि जब इस बात के संकेत मिलने लगे हैं कि एक तरफ तो राष्ट्रों की जॉइसन विना शर्त बम बपा बन्द करने के लिए तैयार हैं ताकि हनोई को वास्तविक करने में बम-बर्षा की बाधा की बात कहने का मौका न मिले और दूसरी तरफ हनोई और वियतनाम भी अपने दुरापहपूर्व रवये में तर्फी जाने को सहमत हों।

मलेशिया

(Malaysia)

समय १५ साल जनसंख्या और ५०६६० बर्गमील क्षेत्र का मलया प्रायद्वीप दक्षिण पूर्वी एशिया के एक छोर पर स्थित है। पहले इस क्षेत्र पर कई सुल्तानों का शासन था जो बहुधा परस्पर लड़ते रहते थे। कालान्तर में अंग्रेज लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से यहाँ आये। धीरे-धीरे अपनी विस्तारवादी नीति द्वारा उन्होंने सन् १९०६ तक इस सम्पूर्ण प्रदेश पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ प्रदेश को राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से तीन असमान भागों (Unequal parts) में विभाजित किया—

(i) प्रथम राजनीतिक विभाज्य का नाम 'असंघीय मलयराज्य' (Unfederated Malaya State) रखा गया। यह पाँच राज्यों को मिला कर बनाया गया। ये पाँच राज्य थे: जोहोर केदाह कलान्तिन परलिस तथा ट्रेंगगानु (Johore Kedah Kalantin Perlis and Trengganu)। यद्यपि औद्योगिक रूप से ये पाँचों राज्य स्वतन्त्र थे परन्तु ये सब संघियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बद्ध थे और ब्रिटिश परामर्शदाताओं द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते थे।

(ii) द्वितीय विभाज्य का नाम 'संघीय मलय राज्य' (Federated Malaya State) रखा गया। इस विभाज्य की रचना या स्थापना पेरक (Perak) नेगरी सेम्बिलान (Negri Sembilan) सेलंगौर (Selangour) तथा पेहंग (Pahang) को मिला कर की गई। सन् १८८६ में चारों राज्यों को एक संघ के रूप में संगठित करके कुलासालुम्पुर (Kuala Lumpur) में एक ब्रिटिश रेजिडेंट जनरल के अधीन कर दिया गया।

रोकने के लिए एक मध्यवर्ती राज्य (Buffer State) बनाने की योजना बाह्यता है। उसे सजाई करने में ही अखिर नाम है इसीलिए वह दक्षिण बियतनाम के विषय में कोई सम्मेलन बुलाने का आशयकता नहीं समझता। वह तो केवल इसी बात पर बल देता है कि अमेरिकन सेनाएं बिना किसी शर्त के दक्षिण बियतनाम छोड़कर चली जाएं ताकि उसे लिगवने में माघो स्पी ईस्य को किसी पीड़ा का अनुभव न करना पड़े।

सोवियत रूस की स्थिति इस मामले में बड़ी बुद्धिमानपूर्ण है। एक तरफ तो वह अपने आदिमाई उत्तरी बियतनाम को सहायता देने में चीन से पीछे नहीं रहना चाहता क्योंकि इससे जापान को मास्को को बचाना करने का अवसर मिलता है और दूसरी तरफ रूस को यह चिन्ता भी सजाती है कि यदि उत्तरी बियतनाम लुप्त हो गया तो सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी चीन की ताकत बोलने समेयी। बियतनाम के प्रबल को लेकर वह अमेरिका से टकराने की स्थिति से भी बचना चाहता है। रूस की दया यह है कि बदनामी से बचने के लिए अब स्वतन्त्र मार्ग से वह उत्तरी बियतनाम को सैनिक सहायता पहुंचाना चाहता है तो चीन उसके मार्ग में बाधाएं डालता है क्योंकि उत्तरी बियतनाम को सङ्घर्ष में बिजयी बनाने का सारा श्रेय वह (चीन) स्वयं लेना चाहता है और यदि 'रूस' समुद्री मार्ग से उत्तरी बियतनाम को सहायता देता है तो उसे अमेरिका के समुद्री बैड से भय रहता है। फिर जो लोगों की स्थितियों से किसी न किसी तरह बचते हुए सोवियत सङ्घ उत्तरी बियतनाम को इतनी प्रचुर मात्रा में सैनिक सहायता पहुंचा रहा है कि हार्मो को चीनी सहायता के प्रति लज्जा होने लगी है।

बियतनाम सङ्घर्ष में भारत की नीति स्पष्ट होती हुई भी बड़ी बुद्धिमानपूर्ण और उल्लस-रि है। चीन भारत का प्रबलतम शत्रु है, अतः दक्षिणी पूर्वी एशिया में उसकी प्रभाव दृष्टि भारतीय हितों के लिए अत्यन्त बाधक होगी। इस दृष्टि से उचित यही बचता है कि इस सङ्घर्ष में भारत को दक्षिण बियतनाम का पक्ष लेना चाहिये। परन्तु यदि दक्षिणी बियतनाम की नीति अपनाई जाये तो सोवियत रूस से कुछेक हुए हमारे राष्ट्रीय हितों की हानि पहुंचाती है। भारत पाक सङ्घर्ष भारत-चीन विवाद और काश्मीर समस्या आदि के बारे में सोवियत मंत्री हमारे लिए कितनी भ्रमजनक है यह कोई छिपा तथ्य नहीं। अतः यदि इस दूसरे दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो समुचित यही प्रतीत होता है कि भारत को उत्तरी बियतनाम का समर्थन करना चाहिए। यदि दोनों दृष्टिकोणों पर समुचित विचार किया जाए तो राष्ट्रीय हित की दृष्टि से ठीक यही है कि भारत १९५४ के जेनेवा सम्मेलन के अध्याख्यान पर ही पूर्ण बल दे। दोनों पक्षों में सम्झौते के मार्ग को प्रबल करने के लिए ही भारत उत्तरी बियतनाम पर समर्थन बन्द करने का पक्ष-निष्पत्त है। भारत की मान्यता है कि समर्थन रोकने से प्रथम तो युद्ध का विस्तार का भय कम हो जायेगा दूसरे महायुद्ध की विस्फोटक स्थिति टल जायेगी और तीसरे पारस्परिक कार्यों के लिए बाधा-

वरण में सुचारु हो सकेगा। जब विरोधी पक्ष भामने-सामने वर्षा के लिए बैठे तो सभी गठितोप एक-एक करके हर्न: हर्न दूर हो जाएंगे और विद्यमान में शांति का मार्ग प्रकट हो जायेगा।

वास्तव में विद्यमान में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब कि ताकियत सङ्घ और संयुक्त राज्य अमेरिका एक दूसरे के निष्पक्ष भाकर अपनी मित्रता बढ़ाए और साम्यवादी चीन के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाए। ऐसा न होने पर आधुनिक विश्व में स्थायी शांति की सम्भावना असम्भव नहीं तो प्रायतः कठिन अवश्य है। यह एक शुभ संकेत है कि जब इस बात के प्रकृत मितने लगे हैं कि एक तरफ तो राष्ट्रों के अस्तित्व बिना सर्व सम वर्षा बन्द करने के लिए तैयार हैं ताकि हुनोई को कार्यालय करने में बम-बर्षा की बाधा की बात कहने का मौका न मिले और दूसरी तरफ हुनोई और विद्यमान भी अपने पुराप्रहपूर्ण रविय में नरमी लाने को सहमत हों।

मलेशिया

(Malaysia)

समय १२ साल जनसंख्या और ५०६६० वर्गमील क्षेत्र का मलाया प्रायद्वीप दक्षिण पूर्वी एशिया के एक छोर पर स्थित है। पहले इस क्षेत्र पर कई सुल्तानों का शासन था जो बहुतों परस्पर लड़ते रहते थे। कामान्तर में मलेशिया सोवियट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से यहाँ आये। धीरे-धीरे अपनी विस्तारवादी नीति द्वारा उन्होंने सन् १९०६ तक इस सम्पूर्ण प्रदेश पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

मलेशिया ने अपने अधीनस्थ प्रदेश को राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से तीन असमान भागों (Unequal parts) में विभाजित किया—

(i) प्रथम राजनीतिक विभाग का नाम 'असंघीय मलयराज्य' (Unfederated Malaya State) रखा गया। यह पाँच राज्यों को मिला कर बनाया गया। ये पाँच राज्य थे: जोहोर, केदाह, कलांतिन, परलिस तथा ट्रेण्गानु (Johore, Kedah, Kelantan, Perlis and Trengganu)। मद्यपि ब्रिटिशिक रूप से ये पाँचों राज्य स्वतन्त्र थे परन्तु ये सब संघियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध थे और ब्रिटिश परामर्शदाताओं द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते थे।

(ii) द्वितीय विभाग का नाम 'संघीय मलय राज्य' (Federated Malaya State) रखा गया। इस विभाग की रचना या स्थापना पेरक (Perak) नेगरी सेमबिलान (Negeri-Sembilan) सेलांगर (Selangour) तथा पैहण्ग (Pahang) का मिला कर की गई। सन् १९०६ में चारों राज्यों को एक संघ के रूप में संगठित करने कुआलालुम्पुर (Kuala Lumpur) में एक ब्रिटिश रेजिस्ट्रेंट बनारस के अधीन कर दिया गया।

रोकने के लिए एक मध्यवर्ती राज्य (Buffer State) बनाने की आवश्यकता है। उसे बढ़ाई करने में ही अचिन्तन मान है इसीलिए वह दक्षिण विद्यमान के विषय में कोई सम्मेलन बुलाने का आवश्यकता नहीं समझता। वह तो केवल इसी बात पर बल देता है कि अमेरिकन सेनाएँ बिना किसी शर्त के दक्षिण विद्यमान छोड़कर चली जाएँ ताकि उसे नियंत्रण में लाया जा सके।

सोवियत रूस की स्थिति इस मामले में बड़ी बुद्धिपूर्णा है। एक तरफ तो वह अपने जाति भाई उत्तरी विद्यमान को सहायता देने में चीन से पीछे नहीं रहना चाहता क्योंकि इससे चीन को मास्को की बदनामी करने का अवसर मिलता है और दूसरी तरफ रूस को यह चिन्ता भी घटाती है कि यदि उत्तरी विद्यमान सफल हो गया तो सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में उसके प्रथम प्रतिद्वन्द्वी चीन की तुलना बोलने लगेगी। विद्यमान के प्रश्न को लेकर वह अमेरिका से टकराने की स्थिति से भी बचना चाहता है। रूस की दृष्टि यह है कि बदनामी से बचने के लिए जब स्वतन्त्र मार्ग से वह उत्तरी विद्यमान को वैश्व सहायता पहुँचाना चाहता है तो चीन उसके मार्ग में बाधाएँ डालता है क्योंकि उत्तरी विद्यमान को सङ्घर्ष में विजयी बनाने का उद्देश्य वह (चीन) स्वयं लेना चाहता है और यदि 'रूस' समुद्री मार्ग से उत्तरी विद्यमान को सहायता देकर है तो उसे अमेरिका के समुद्री बेड़े से भय रहता है। फिर जो दोनों ही स्थितियाँ से किसी न किसी तरह बचते हुए सोवियत रूस उत्तरी विद्यमान को अपनी प्रथम मार्ग में वैश्व सहायता पहुँचा रहा है कि हलोई को चीनी सहायता के प्रति बहुराष्ट्रीय होने लगी है।

विद्यमान सङ्घर्ष में भारत की नीति स्पष्ट होते हुए भी बड़ी बुद्धिपूर्णा और उलझन गरी है। चीन भारत का प्रथम शत्रु है, पर दक्षिण पूर्वी एशिया में उसकी प्रभावशाली शक्ति भारतीय हितों के लिए अत्यन्त घातक होगी। इस दृष्टि से उचित नहीं बचता है कि इस सङ्घर्ष में भारत को दक्षिण विद्यमान का पक्ष लेना चाहिए। परन्तु यदि दक्षिण विद्यमान की नीति अपनाई जाये तो सोवियत रूस से जुड़े हुए हमारे राष्ट्रीय हितों की हानि पहुँचती है। भारत का सङ्घर्ष भारत-चीन विवाद और काश्मीर समस्या आदि के बारे में सोवियत यैकी हमारे लिए कितनी मुश्किल है यह कोई छिपा तथ्य नहीं। पर यदि इस दूसरे दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो समुचित नहीं प्रतीत होता है कि भारत को उत्तरी विद्यमान का समर्थन करना चाहिए। यदि दोनों दृष्टिकोणों पर समुचित विचार किया जाए तो राष्ट्रीय हित की दृष्टि से ठीक यही है कि भारत १९४४ के अनेक सम्मेलनों के क्रियात्मक पर ही पूर्ण बल दे। दोनों पक्षों में सम्मेलनों के माध्यम से प्रस्ताव करने के लिए ही भारत उत्तरी विद्यमान पर समर्थन देने का पक्ष ग्राह्य है। भारत की मान्यता है कि समर्थन रोकने के प्रथम तो युद्ध के विस्तार का भय कम हो जायेगा दूसरे महायुद्ध की विस्फोटक स्थिति इस मामले में और तीसरे पारस्परिक बाधा के लिए बाधा-

करण से सुचारु हो सकेगा। जब विरोधी पक्ष धामने-सामने चर्चा के लिए बैठेंगे तो सभी विरोध एक-एक करके सनें: सनें दूर हो जाएंगे और वियतनाम में शांति का मार्ग प्रगस्त हो जायेगा।

वास्तव में वियतनाम में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब कि छोड़ियत सङ्घ और संयुक्त राज्य अमेरिका एक दूसरे के निकट आकर अपनी मित्रता बढ़ाएँ और साम्यवादी चीन के विरुद्ध सङ्गठित मोर्चा बनाएँ। ऐसा न होने पर आधुनिक विश्व में स्थायी शांति की सम्भावना घटसम्भव नहीं तो असंभव कठिन अवश्य है। यह एक शुभ संकेत है कि जब इस बात के संकेत मिलते लगे हैं कि एक तरफ तो राष्ट्र ति जॉन्सन बिना शर्त बम बपा बन्द करने के लिए तैयार हैं ताकि हनोई को बार्तालाप करने में बम-बर्षा की बाधा की बात कहने का मौका न मिले और दूसरी तरफ हनोई और वियतनाम भी अपने दुराग्रहपूर्ण रवये में तरोती माने को सहमत हों।

मलेशिया

(Malaysia)

समय ६३ साल जनसंख्या और ५०६६० वर्गमील क्षेत्र का मलाया प्रायद्वीप दक्षिण पूर्वी एशिया के एक छोर पर स्थित है। पहले इस क्षेत्र पर कई सुल्तानों का शासन था जो बहुधा परस्पर लड़ते रहते थे। कासास्तर में प्रवेश लोय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से यहाँ आये। धीरे धीरे अपनी विस्तारवादी नीति द्वारा उन्होंने सन् १६०६ तक इस सम्पूर्ण प्रदेश पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

प्रदेशों ने अपने प्रथमस्व प्रदेश को राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से तीन प्रथम भागों (Unequal parts) में विभाजित किया—

(i) प्रथम राजनीतिक विभाग का नाम 'असंघीय मलयराज्य' (Unfederated Malaya State) रखा गया। यह पाँच राज्यों को मिला कर बनाया गया। ये पाँच राज्य थे: जोहोर, केदाह, कलान्तिन, परलिस तथा ट्रेगांग (Johore, Kedah, Kelantan, Perlis and Trengganu)। यद्यपि संवैधानिक रूप से ये पाँचों राज्य स्वतन्त्र थे परन्तु ये सब संघियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बद्ध थे और ब्रिटिश परामर्शदाताओं द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते थे।

(ii) द्वितीय विभाग का नाम 'संघीय मलय राज्य' (Federated Malaya State) रखा गया। इस विभाग की रचना या स्थापना पेरक (Perak) नेगरी सेमकिलान् (Negri-Semkllan) सेलांगर (Selangour) तथा पेहंग (Pahang) को मिला कर की गई। सन् १८५६ में चारों राज्यों को एक संघ के रूप में संघटित करने कुलासालुमु (Kuala Lumpur) में एक ब्रिटिश रेजिडेंट जनरल के प्रथम कर दिया गया।

(iii) तृतीय राजनीतिक विमाय का नाम 'स्ट्रेट्स सेटलमेंट' (Straits Settlement) रखा गया। इसमें कुछ छोटे-बड़े द्वीप और मुख्य भू-प्रदेश के कुछ राज्य शामिल थे। ये द्वीप यथा ही सू-दक्षिण थे—मलक्का (Malacca) पेनांग (Penang) वेलेजली प्रांत (Province Wellesley) दिण्डिंग्स (Dindings) तथा सिंगापुर (Singapore)। सन् १९४७ तक इनका प्रशासन भारत के साथ ही किया गया लेकिन बाद में इन्हें 'क्राउन' (Crown) की अधीनता में एक पृथक उपनिवेश बना दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध में सिंगापुर सहित सम्पूर्ण मलाया प्रायद्वीप पर जापानियों का कब्जा हो गया। उन्होंने अपनी योजिक एवं सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मलाया प्रायद्वीप के प्रायिक छोटों का कुल कर शोषण किया। इस शोषण ने मलायी राष्ट्रवाद को जागृत कर दिया। १९४२ में जापान के धारमसमर्पण कर देने के बाद मलाया प्रायद्वीप वापस ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष आ गया।

जुंकि मलाया प्रायद्वीप में स्वाधीनता के लिये राष्ट्रवादी घान्दोलन विधिव सश्रित हो उठे थे सन अक्टूबर १९४२ में ब्रिटिश सरकार ने सर हेरोल्ड रीक माइकेल को मुस्तानों के साथ सार्थि वार्ता करने के लिये भेज। १ मय स १९४६ को सिंगापुर को 'स्ट्रेट्स सेटलमेंट' से अलग करके एक नया 'क्राउन उपनिवेश' (Crown Colony) बना दिया गया। इसके अतिरिक्त पेनांग और मलक्का सहित २ मसीब राज्यों (पांच अर्धराज्य और चार मसीब) को मिला कर ब्रिटिश शासन की अधीनता में एक 'मलाया संघ' (Malayan Union) के रूप में संघठित करने की व्यवस्था भी की गई। सिंगापुर को पृथक क्राउन उपनिवेश इसलिये घोषित किया गया क्योंकि वहाँ राष्ट्रीयता की एक ऐसी भावना विद्यमान थी जो मलय की राष्ट्रीयता को स्वीकार न कर अपना स्वतन्त्र प्रतिष्ठान चाहती थी।

जुंकि 'मलाया संघ' की योजना का लोगों में विरोध किया पर ब्रिटिश सरकार ने इस संघ योजना का परित्याग करके १ फरवरी १९४८ को ब्रिटिश संरक्षण में २ राज्यों के एक संघ की स्थापना की घोषणा की। परन्तु जनता इस घोषणा से भी असंतुष्ट न हुई। फलतः जमहू-जमहू घान्दोलन और विध्वंसतामय कार्य होने लगे हालांकि भारतीय सामिक एवं विचारधाराओं प्रादि प्रमुख विधिव्यवस्थाओं के कारण कोई एकीकृत राष्ट्रीय घान्दोलन शुरू न हो सका। साम्यवादी तत्व सम्पूर्ण प्रदेश में घराबकला न परिभरता पैदा करने लगे। ब्रिजिस शासन ने अराजक तत्वों का कठोरता पृथक समन किया। किन्तु समय की गति को देखते हुए अगस्त में ३१ अगस्त १९४७ को 'राष्ट्र मण्डल' के एक स्वशासित अधिराज्य के रूप में मलाया संघ (Federation of Malaya) की स्वतन्त्रता घोषित कर दी गई। इस प्रकार अनेक वृत्ताधियों को ब्रिटिश शासन के बाद ३१ अगस्त १९४७ को मलाया ने स्वतन्त्रता की संसि। १६ नवम्बर १९४७ को कुप्रासामुम्पुर में घोषणा की गई कि मलाया के नामरिक्तों को जागे से ब्रिटिश टाइटल (Titles) नहीं दिये जायेंगे। सिंगापुर

'अन्डन उपनिवेश' ही बना रहा और उसका प्रशासन सन् १९५४ में लागू किये गये एक पुनर् संविधान के अनुसार चमता रहा। तथापि सिंगापुर में स्वशासन की मांग और पकड़ती गई और कुछ वर्षों के सम्बन्ध विवादों और रोषों प्रतिरोधों के बाद अन्त में २-३ जून १९६६ की अर्द्धरात्रि में सिंगापुर के द्वीपीय राज्य (Island State) का स्वशासन और स्वाधीनता की प्राप्ति हुई। श्री लीकुआनयिऊ (Lee Kuan yew) इस नये स्वाधीन राज्य के प्रथम प्रधान मंत्री बने। १३-१४ जून १९६६ को श्री लीकुआनयिऊ तथा सिंगापुर के अन्य मन्त्रियों ने मलाया के प्रधान मंत्री से बातचीत करने के लिये कुमालामुम्पुर की यात्रा की। दोनों ही ने एक संपूज्य विज्ञप्ति में आशा प्रकट की कि पारस्परिक सहयोग के महत्त्व को समझते हुए दोनों देश व्यापार, विज्ञान और शिक्षा की उन्नति करेंगे।

बृहत् मलेशिया योजना

यू कि मलाया में साम्यवादी आन्दोलन बढ़ा जाकर अन्त में और बहुत बड़ी संख्या में रहने वाले प्रवासी चीनी यहाँ के राजनीतिक जीवन पर खाने लगे थे अतः साम्यवादी चीन के इस क्षेत्र में सम्भावित विस्तार की विकट समस्या के समाधान के लिये १९६१ की शीघ्र के आरम्भ में मलाया के प्रधान मंत्री श्री टंकु प्रद्युम्न रहमान ने मलाया सिंगापुर उत्तरी बर्निया सूमी और सारलाक को मिला कर 'बृहत् मलेशिया' अथवा मलेशिया मघ की स्थापना की योजना प्रस्तुत की। इस सभ के उद्देश्य थे—(१) चीन के विस्तार को रोकना, (२) इस क्षेत्र के राजनीतिक जीवन पर प्रवासी चीनियों के प्रभाव को कम करना और (३) इस क्षेत्र का आर्थिक विकास करना। पहले तो सिंगापुर ने इसमें सम्मिलित होने से इनकार कर दिया। पीछे इस प्रश्न पर जनमत संग्रह कराया गया जिसमें सिंगापुर के ५१ प्रतिशत लोगों ने 'मलेशिया' में शामिल होने से पक्ष में वोट दिया। कुछ कारणों से फिलिपाइन्स ने भी मलेशिया सभ का विरोध किया पर ब्रिटेन के हस्तक्षेप से बहु भात हो गया। इण्डोनेशिया द्वारा बृहत् मलेशिया की इस योजना का अत्यन्त विरोध किया गया अतः उसने यह भी जायदा की कि बृहत् मलेशिया के मार्ग में 'बाधा डालने की नीति का अनुसरण करेगा। मलाया और इण्डोनेशिया में परस्पर बहुत घारोपों व उपेक्षापूर्ण व्यवहार का आदान प्रदान हुआ। अक्टूबर १९६३ में मलाया भारत के समय मलया सभ इण्डोनेशिया और फिलिपाइन्स में सहकति हो गई और उन्होंने तीनों देशों के बीच मैत्री-सम्बन्धों की आवश्यकता का समझा। अन्त में साम्यवादी चीन का सभी को समझ समझ बनना था और इसी बात ने उन्हें परस्पर मत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में अग्रसर किया। इण्डोनेशिया की सद्भावना प्राप्त करने के लिए मलाया ने दक्षिण-पूर्वी एशिया में मलेशिया इण्डोनेशिया और फिलिपाइन्स का मिला कर 'सिन्डो' महा सभ बनाना मा स्वीकार कर लिया। यह सभ की आम मंत्री कि मनीसा समझते व बाद इण्डोनेशिया का विरोध भात हो जायदा। परन्तु यह भागा पूर्ण नहीं हुआ क्योंकि इण्डोनेशिया मलेशिया सभ निर्माण-योजना का विरोध करता ही रहा।

राष्ट्र में अनेक विप्लव बाधाओं और विचार विमर्श के बाद १६ दिसम्बर, १९६३ को मलेशिया संघ की स्थापना हो गई। इसमें सिंगापुर, सतरी बोमियो (साबा) और सारावाक सम्मिलित हुए। संघ को ब्रिटेन की पूरी सहायता प्राप्त थी परन्तु इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो ने इसका विरोध किया। मलेशिया संघ के निर्माण के विरोध में अफ़्गानिस्तान में ब्रिटिश दूतावास के सामने इण्डोनेशिया के निवासियों ने हिंसात्मक उग्र प्रदर्शन किये। इस हिंसात्मक प्रदर्शन की मलेशिया संघ पर जो बड़ी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई और १० सितम्बर १९६३ को कुवालालुमुपुर स्थित इण्डोनेशियाई दूतावास के प्रमुख मलेशियायी बनता ने भी उग्र और हिंसात्मक प्रदर्शन किये। इण्डोनेशिया ने मलेशिया संघ को न केवल मान्यता देने से इन्कार कर दिया अपितु इसे नष्ट करने के लिए आपामार सैनिक भी भेजे। मलेशिया संघ ने इण्डोनेशियाई कार्यवाहियों के प्रति उग्र विरोध प्रकट करते हुए इण्डोनेशिया और उसके समर्थक फ़िसिराहम्ब दोनों से ही कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिये।

मलेशिया और इण्डोनेशिया का पारस्परिक विवाद शीतयुद्ध का प्रमाण प्रकट बन गया। इण्डोनेशिया ने संयुक्त राष्ट्र संघ में मलेशिया के प्रतिनिधित्व पर धारणा की। राष्ट्रपति सुकार्णो ने घोषणा की कि वे बलपूर्वक इस संघ का नामोनिशान मिटा देंगे। चूंकि इण्डोनेशियाई आपामार सैनिक मलेशिया में कुचबाप भेजे जा चुके थे घट मलेशिया ने अपनी सुरक्षा की दृष्टि से ब्रिटेन से सैनिक सहायता माँगी जिसके अन्तर्गत समय-समय १०,००० सैनिक साबा और सारावाक प्रायों में स्थापित किये गये। मलेशिया संघ को कुचबाप देने के इण्डोनेशियाई पदबंध से बचाव के लिए मलेशिया द्वारा सैनिक सहायता प्राप्त किया जाया अस्तुत बड़ा अनिवार्य था। कहा जाता है कि मलेशिया को कुचबाप देने के उद्देश्य की पूर्ति हेतु इण्डोनेशिया और साम्यवादी चीन के बीच एक गुप्त समझौता हुआ था जिसके द्वारा यह निश्चय किया गया था कि मलेशिया को कुचबाप देने के बाद वे दोनों देश उसे घास में बाँट लेंगे।¹

इण्डोनेशिया और मलेशिया संघ के बीच एक बार तो तनातनी इतनी बढ़ गई कि यह सम्भव निश्चित था अपने-अपने दोनों के बीच कुछ कुछ होकर ही रहेगा। इस विवक्ति को टालने के लिये २० जून १९६४ को टोकियो में एक विचार सम्मेलन हुआ जिसमें इण्डोनेशिया फ़िसिराहम्ब तथा मलेशिया के सातताम्बल शामिल हुए। किन्तु मतभेद इतने गहरे थे कि किसी तरह का समझौता नहीं हो सका।

मलेशिया संघ के प्रति इण्डोनेशिया के इतने उग्र विरोध का एक स्पष्ट कारण यही था कि पश्चिमी हरियन को प्राप्त करके ही राष्ट्रपति सुकार्णो को

1 New York Herald Tribune February 7, 1965, p 4

दक्षिण धोर दक्षिण-पूर्वी एशिया

प्रादेशिक महत्वाकांक्षा समाप्त नहीं हो गई थी। उनकी तजर उत्तरी बोनियो (साबा) पर बराबर रही धोर वे उसे भी इण्डोनेशिया की दृक्छाया में लेने के प्रयत्नाधी रहे। इसी बात को लेकर मनेशिया धोर इण्डोनेशिया के मध्य मनोमामन्य धोर बिरोध का सागर उमड़ पडा। इण्डोनेशिया की मांग यह थी कि ब्रिटेन सर्वप्रथम उत्तरी बोनियो को प्राकार कर दे धोर तदुपरांत स्वतन्त्र बोनियो इस बात का फैसला करे कि वह मनेशिया संघ में शामिल होता बाहता है या नहीं। परन्तु ब्रिटेन ने इण्डोनेशिया की मांग को प्रस्वीकार करते हुए मनेशिया संघ के निर्माण में योग दिया धोर उसे मान्यता प्रदान की। प्रतिक्रियास्वरूप इण्डोनेशिया ने मनेशिया संघ के निर्माण का प्रेक्षम बिरोध ही नहीं किया अपितु राष्ट्रपति सुकार्णो ने उसका नामोनिहान मिटा देने की भी कसम खायी।

मनेशिया संघ के निर्माण के बारे में यह स्मरणीय है कि सिगापुर मुक्त में ही इसमें शामिल नहीं होना बाहता था। परन्तु अमेरिका धोर ब्रिटेन ने उसे संघ में शामिल होने के लिये बाध्य किया किन्तु संघ में शामिल होने से सिगापुर की प्राधिक कठिमाईयां प्रबन्धिता अधिक हो गई। अतः १ अगस्त १९६३ को वह मनेशिया संघ से पृथक हो गया। यद्यपि संघ का निर्माण संयुक्त राष्ट्र संघीय हल के निर्देशन में नहीं की जनता के मत के प्राधार पर हुआ था धोर इसीलिये इसका विघटन भी जनमत के प्राधार पर ही हुआ बाहिये या परन्तु सिगापुर के प्रधानमन्त्री श्री सीकुप्रान पु तथा मनेशिया के प्रधानमन्त्री श्री एंड्रु प्रब्युस रहमा ने परस्पर समझौते के प्राधार पर इसका विघटन कर दिया। समझौते के समय दोनों ने पारस्परिक सहयोग की बात कही थी परन्तु बाद में तीव्र ही उनमें व्यापारिक मुठझिड़ गया। सिगापुर में मनेशियाई उत्पादन के १८३ धायत कोटे स्वयं से लिये। इस प्रकार लगभग ४० प्रतिशत व्यापार उसके हाथ से निकल गया। ४ जून १९६९ को इण्डोनेशिया ने २२३ बर्गमील के क्षेत्रफल धोर लगभग १७ लाख की प्रायादी वाले सिगापुर को मान्यता प्रदान कर दी। सिगापुर स्वतन्त्र होकर संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया धोर इस तरह मनेशिया संघ में मनाया उत्तरी बोनियो बनी धोर सारबाक ही रह गये। यह उल्लेखनीय है कि मनेशिया संघ से पृथक होते समय सिगापुर ने यह प्रास्तावक दिया था कि वह किसी ऐसे देश के साथ कोई संधि समझौता नहीं करेगा जिससे मनेशिया की सुरक्षा अतरे में पड़ जाय।

मनेशिया संघ से इण्डोनेशिया का बिरोध इतना उग्र था कि जब जनवरी १९६३ में मनेशिया संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद का सत्र्य निर्वाचित हुआ तो इण्डोनेशिया ने बूणा धोर बिरोध का निर्मग्न प्रदर्शन करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता तक छोड़ने की घोषणा कर दी यद्यपि बाद में वह संघ में पुनः सम्मिलित हा गया। जब अगस्त ६३ में सिगापुर मनेशिया संघ से अलग हो गया तब भी इण्डोनेशिया के बिरोध में कोर्ट कमी नहीं पाई। मनेशिया इण्डोनेशिया बिना दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्तर्राष्ट्रीय संकट का मुख्य कारण बना रहा तथापि यह प्रबन्ध निर्वाचित हो गया कि

इण्डोनेशिया का कोई भी उद्योग विरासत मलेशिया संघ के प्रतिष्ठान को नहीं मिला सकता। अक्टूबर १९६५ में स्वयं इण्डोनेशिया भंगकर बृहत्तर इण्डोनेशिया का शिकार हुआ। इस हासत में इण्डोनेशिया के नेताओं को 'मलेशिया कुपना' अभियान को बन्द करना पड़ा। मलेशिया और इण्डोनेशिया में समय-समय पर कटुता का आता-बराता बना रहा जिसका अन्त जून १९६६ में बैंकॉक सम्मेलन में हुआ। इण्डोनेशिया में दक्षिण पंजी अंग्रेज के बाद वहाँ के विदेश मंत्री डॉ. धामर मलिक और मलेशिया के उप प्रधान सुत अब्दुलराक की मई-जून १९६६ में बार्सिलोन्ना की राजधानी बैंकॉक में सति-वार्ता हुई। इस वार्ता में दोनों ने आपस में चीन पैपी का आदान प्रदान किया और अपने सम्बन्धों को मधुर व मृदु बनाने की कोशिश की। इस सत्र में ध्यान देने योग्य बात यह है कि दोनों ही देशों ने अपनी सति-वार्ता बिना किसी मध्यस्थ की सहायता के प्रत्यक्ष और सीधी बातचीत द्वारा पूरी की जिसे बैंकॉक आयोग की सलाह की गई।

बैंकॉक सम्मेलन के बाद से ही दोनों देशों के सम्बन्ध निरन्तर मधुर होते गए। जुलाई १९६६ से इण्डोनेशिया की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की बैठक हुई जिसने मलेशिया से संपर्क समाप्त करने की १ जून १९६६ को घोषित की गई सरकारी नीति को स्वीकार किया। अन्ततः सुधारों के नेतृत्व में नई सरकार मलेशिया संघ को मान्यता पहले ही दे चुकी थी। दोनों राज्यों ने बिबाहप्रसूत साराबाक और साबा के प्रदेशों में परिस्थिति सति होने पर जनमत संग्रह करने का निश्चय किया है। दोनों राष्ट्रों के इस सम्मेलन से दक्षिण-पूर्वी एशिया का एक नया क्षेत्र में धान शान्ति स्थापित हो गई है।

इण्डोनेशिया

[Indonesia]

इण्डोनेशिया या ईस्ट इंडीज (East Indies) सैकड़ों द्वीपों का एक विशाल समूह है जो यूरोप-एशिया और एशिया-ऑस्ट्रेलिया को मिलाते वाले सामुद्रिक मार्गों के आर-पार तथा सु-मध्य रेखा के किनारे स्थित है। द्वितीय महायुद्ध के पहले जिस प्रदेश को ईस्ट इंडीज कहा जाता था वही अब इण्डोनेशिया कहा जाता है। इस प्रदेश में प्रताप्त महासागर के चार बड़े द्वीप-समूह सुमात्रा जावीज और सेमीबीज पन्द्रह अन्य छोटे द्वीप तथा हजारों छोटे-छोटे द्वीप सम्मिलित हैं। छोटे द्वीपों में उत्तरीय लोम्बाक सोएम्बावा, सोएम्बा पश्चिमी न्यूगिनी या इरियान पश्चिमी व दक्षिणी-पूर्वी बोनिपो, फ्लोरिस, सैटूर, मोम्बूहात आदि हैं। इण्डोनेशिया द्वीप समूह का मुख्य समय ७५ लाख वर्गमील और जनसंख्या लगभग ८ करोड़ है, जिसमें स्वयं इण्डोनेशिया नागरिकों के प्रतिष्ठित मजायावासी चीनी व अन्य मुसलमान आदि सम्मिलित हैं।

यद्यपि उपरोक्त द्वीपों में से कुछ पर अब सारों (हॉलैंड नागरिकों) का आधिपत्य काफी पहिले स्थापित हो चुका था तथापि इण्डोनेशिया का

प्रधिकारण से भाग उनके कब्जे में द्वितीय महायुद्ध से पूर्व लगभग ५० वर्षों के दौरान ही हुआ। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस सम्पूर्ण क्षेत्र पर जापान का अधिकार हो गया। डा० हट्ट तथा मुद्यार्यो नामक दो युवक इण्डोनेशियाई राष्ट्रवादी नेताओं ने युद्ध के उपरोक्त स्वाधीनता प्राप्ति की भांसा से जापानियों के साथ पूर्ण सहयोग किया परन्तु दूसरी ओर शरीफुद्दीन (Sjarifuddin) तथा शहरिर (Sjahrir) ने युद्ध-काल में ही विदेशी आधिपत्य से देश को मुक्तकारा दिखाने के लिये जापान के विरुद्ध जापान-युद्ध खेड़ दिया। महायुद्ध की अन्तिम अवस्था में जापान के भारत-समर्पण के दो दिन बाद ही १७ अगस्त १९४५ को इण्डोनेशियाई जनता के एक समूह ने डा० मुद्यार्यो को राष्ट्रपति और अकार्ना (बटेविया) को राजधानी बना कर स्वतन्त्र इण्डोनेशियाई गणराज्य (Independent Republic of Indonesia) की स्थापना की घोषणा कर दी। चूंकि जापान के भारत-समर्पण करने के पहिले यह तय किया जा चुका था कि इण्डोनेशिया पर पुन अल्प-प्रभुत्वता को कायम किया जायेगा अतः डा० मुद्यार्यो और उनके सहयोगियों तथा 'स्वतन्त्र इण्डोनेशियाई-गणराज्य' की मन्त्र-स्थापित सरकार को यह आश्वासना सतान समी कि जब शोग इण्डोनेशिया पर अपने आधिपत्य की पुनर्स्थापना का बीधा ही प्रयास करे। इस सम्भावित और निश्चित अतरे का मुकाबला करने के लिये तथा अपने देश को अन्तिम रूप से साम्राज्यवाद से मुक्त कराने के लिये लगभग सम्पूर्ण इण्डोनेशियाई जनता संयुक्त रूप से कटिबद्ध हो गई।

अगस्त से सितम्बर, १९४५ तक उपरोक्त 'इण्डोनेशियाई गणराज्य' किसी प्रकार काम करता रहा। इस अवधि में कुछ शारकीय संस्थाओं स्थापित करने का प्रयास भी किया गया किन्तु इसी मध्य मिन राष्ट्यों की सेनाओं इण्डोनेशियाई भू-क्षेत्र में उतर गई और कुछ ऋद्धों के बाद जापान के अधिकारता भाग पर उन्हें कब्जा कर लिया। इस घटना से इण्डोनेशियावासियों में जोष और विरोध की भावना समझ पड़ी क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि ये मिन राष्ट्रीय सेनाओं इण्डोनेशिया पर जब-साम्राज्यवाद की पुन स्थापना के लिए आई हैं। मिन राष्ट्रीय सेनाओं का इण्डोनेशियाई क्षेत्र में उत्रने की सहायता के लिये ही प्रवेश हुआ था। इस समय शीवरसैण्डग अन्त आधिपत्य से मुक्त हुआ ही था अतः उनमें इतनी सामध्य शेष न थी कि वह अपने अपने सैनिक बल पर इण्डोनेशिया में अपना प्रभुत्व ब नियन्त्रण कर सकना।

इण्डोनेशियाई जनता का राष्ट्रवाद जब साम्राज्यवादी देश के सामने मुक़ाबले को तैयार न था अतः मिन राष्ट्रीय ब्रिटिश सेनाओं ने इण्डोनेशियाई बुद्धों की ऋद्धों होने लगी। २३ अक्टूबर १९४५ को उनमें एक बर बोगदा टकराव हो गई। इस संघर्ष में दोनों पक्षों के हजारों व्यक्ति मारे गए। २५ अक्टूबर, १९४५ को इण्डोनेशिया की राष्ट्रवादी सरकार ने यह घोषणा की कि वह प्रभुत्वता के हस्तांतरण के विषय में अन्तरकार से समझौता-वार्ता करने के लिये तैयार है। मध्यस्थों का प्रयास के अन्तर्गत भी वार्ता के लिये

तैयार हो गया और उसने एक नो-सूत्रीय प्रस्ताव रखा। परन्तु राष्ट्रवादी सरकार ने इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। दोनों पक्षों में समझौता कराने के विभिन्न प्रयास हुए लेकिन किसी को सफलता नहीं मिली।

इसी मध्य सुरक्षा परिषद में इण्डोनेशियाई विचार उपस्थित हुआ। १७ जनवरी १९४६ को यूएन ने सुरक्षा परिषद में यह आरोप लगाया कि ब्रिटिश और डच-फौजों ने इण्डोनेशिया पर अपना कब्जा बना लिया है और उनका यह कार्य प्रभारतीय शांति के लिये मम्मौर खतरा उत्पन्न कर रहा है। यूएन ने मांग की कि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा शान्ति की बाँध की जाकर इण्डोनेशिया को बिदेसी सैनिकों से मुक्ति दिखाई जाये। यद्यपि परिषद में यूएन के प्रस्ताव पर विचार तो आवश्यक किया गया किन्तु प्रावश्यक बहुमत के अभाव में वह प्रस्ताव पारित न हो सका और फलस्वरूप इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी।

इण्डोनेशिया और डच सरकार में समझौता कराने के लिए सुरक्षा परिषद के बाहर भी विभिन्न प्रयास चलते रहे। १३ मार्च १९४६ को इण्डोनेशियाई गणराज्य के तत्कालीन प्रधानमंत्री शहरिर ने यह प्रस्ताव रखा कि भारत प्रारम्भ करने से पहिले डच सरकार इण्डोनेशिया के अन्तर्गत को मान्यता प्रदान कर दे और समझौता होठे ही इण्डोनेशिया से अपनी सेनाएं वापिस बुला लें। डच सरकार ने इन शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। अल्पकाल १४ अप्रैल १९४६ को हेम म दोनों बलों के बीच पुन समझौता भारत प्रारम्भ हुई परन्तु इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला। २४ अप्रैल को यह बातें मय हो गई और सात ही दोनें पक्ष भी एक पहिले से अधिक कठोर हो गये।

पक्ष डच सरकार ने इण्डोनेशियाई शान्ति में फूट पैदा कराने की नीति का अन्तसम्पन्न किया। इण्डोनेशिया के कुछ स्वामी तत्वों को मड़काया गया पाइ के टुकड़ों को उकसाया गया और जून १, १९४६ में उनके द्वारा मटिलो-सम्मेलन का आयोजन कराया गया। इस सम्मेलन में शामिल होने वालों ने इण्डोनेशियाई गणराज्य का विरोध किया और हाईलैंड की छत्रछाया में एक सक्षम राज्य की स्थापना की मांग की। इसी तरह के और भी अनेक प्रयास किये गये और इस प्रकार अन्त इण्डोनेशिया में पारंपरवादी पान्दोसन ने और पकड़ सिबा।

इस सम्पूर्ण अवधि में इण्डोनेशियाई राष्ट्रवादियों व डच सैनिकों में निरन्तर छोटे-मोटे संघर्ष होते रहे और बृह-मुठ की भी शक्ति बनी रही। अक्टूबर १९४६ में यद्यपि ब्रिटिश मध्यस्थता के फलस्वरूप दोनों पक्षों में सैनिक युद्ध बिराम हुआ फिर भी कभी कभी सड़ाई चलती रही। परन्तु १३ नवम्बर १९४६ को डच सरकार और इण्डोनेशिया-वादियों के एक मुठ में संयुक्त राज्य इण्डोनेशिया (United States of Indonesia) की

स्थापना-सम्बन्धी समझौता हो जाने पर इण्डोनेशियाई उपराष्ट्रियों ने अपनी हिंसात्मक छापामार गतिविधियाँ पुनः शुरू कर दीं। 'संयुक्त राज्य इण्डोनेशिया' का यह प्रस्तावित संघीय राज्य तीन स्वायत्त राज्यों को मिला कर बनाया जाना निश्चित हुआ था।—(१) इण्डोनेशियाई गणतन्त्र (२) महापूर्व (The Great East) एवं (३) बोर्नियो का डच भाग। उपरोक्त समझौते (विद्युत् नाम लिगाबती समझौता Lingsojati Agreement रखा गया) के अन्तर्गत नीदरलैंड्स नीदरलैंड्स बेस्ट इंडीज या पश्चिमी इरियन सुरीनाम कुराकास तथा संयुक्त संघीय राज्य इण्डोनेशिया (The Federated United States of Indonesia) को मिलाकर एक नीदरलैंड्स-इण्डोनेशियाई संघ की स्थापना की भी व्यवस्था की गई थी।

उपरोक्त समझौते का इण्डोनेशिया के पञ्चराष्ट्रियों द्वारा स्वागत और उपराष्ट्रियों द्वारा विरोध किये जाने की व्यवस्था में डच अधिकारियों ने इन द्वीपों की प्रांतीय एकता भंग करने की बातें प्रस्तावित कीं। डचों की कूटनीति सफल हुई। अप्रैल १९४७ में पश्चिमी जावा में इण्डोनेशियाई गणतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह करके डच-सैनिक सरकारों में एक प्रथम राज्य की स्थापना कर ली। मई, १९४७ में पश्चिमी बोर्नियो का संयुक्त राज्य इण्डोनेशिया के अन्तर्गत ही एक स्वशासित भू-प्रदेश घोषित कर दिया और अगस्त में यही स्वर पूर्वोक्त बोर्नियो को भी प्रदान कर दिया गया। सन् १९४७ के अन्त तक स्वायत्त भू-प्रदेश स्थापित करने का यह सिलसिला चलता आता रहा।

अप्रैल में पश्चिमी जावा और पश्चिमी बोर्नियो की घटनाओं ने इण्डोनेशिया के मन्त्रराज्य को डच सरकार के इरादों के प्रति पूरी तरह शकित कर दिया। २७ जून को प्रधान मन्त्री शरिफुद्दीन (Sharifuddin) मन्त्रराज्य के प्रधान मन्त्री बने। शरिफुद्दीन सरकार ने डच सरकार के प्रति कठोर दृष्टि प्रकट करना शुरू किया। अब इण्डोनेशिया की स्थिति प्रतिशय घबराहटपूर्ण होने लगी। चूंकि डच सरकार इण्डोनेशियाई द्वीपों की प्रांतीय एकता भंग करने में सफल हो चुकी थी और कुछ द्वीप अपनी स्वायत्तता की घोषणा करने लगे थे। अतः जुलाई, १९४७ में डच अधिकारियों ने 'कानून व व्यवस्था' स्थापित करने के बहाने 'इण्डोनेशियाई गणतन्त्र में 'युनिफ़ाइड-कार्यवाही' करने का निश्चय किया। १४ अगस्त, का डच सरकार ने गणराज्य की सरकार को यह अस्वीकार दिया कि वह १६ अगस्त तक डच विरोधी हिंसात्मक कार्य-वाहियों को समाप्त कर दे विदेशी नागरिकों की अशान्ति को दूर कर दे और डच अधिकृत क्षेत्रों के विरुद्ध प्राथमिक प्रतिबन्ध उठा दे, अन्यथा डच सरकार उसके विरुद्ध अपनी इच्छानुसार कार्यवाही करेगी। मन्त्रराज्य सरकार ने इस अस्वीकार कर दिया। इस पर २१ जुलाई को डच सेनाओं ने गणराज्य अधिकृत जावा और सुमात्रा पर हमला बोल दिया। डच सरकार ने इसे 'सीमित युनिफ़ाइड' की संज्ञा दी और इसकी मूखता संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को दे दी।

इस घटना के तुरन्त बाद नूसाई में ही भारत और आस्ट्रेलिया के सुरक्षा परिषद का ध्यान बच इण्डोनेशियाई सड़कें की ओर आकर्षित किया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ से इण्डोनेशिया में अधिकतम हस्तक्षेप करने की अपील की और बच बानुमानों को अपने क्षेत्र से मुक्त करने की मनाही कर दी। १ अगस्त से २१ अगस्त १९४७ तक सुरक्षा परिषद में इण्डोनेशियाई समस्या पर विचार होता रहा। परिषद द्वारा दोनों पक्षों को अधिकतम युद्ध बन्द कर देने और पक्ष फँसने प्रथम शक्तिपूर्ण समझौता-वार्ता द्वारा समस्या को सुलझाने के लिए कहा गया। परिषद में युद्ध विराम आयोग की स्थापना का प्रस्ताव तो पास नहीं हो सका परन्तु फ्रांस् के शक्तिपूर्ण निराकरण में दोनों पक्षों को सहायता देने के लिए अमेरिका आस्ट्रेलिया और बेल्जियम के प्रतिनिधियों का मिसा कर एक 'सहाय्य या मध्यस्थता समिति (Good Offices Committee)' की स्थापना कर दी गई। इस समिति के प्रयासों से सड़कें बन्द हो गई और १७ जनवरी १९४८ को एक विराम संधि समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। समझौते के अनुसार सड़कें स्वतंत्र कर दी गईं विश्वीय क्षेत्र बनाये गये और विवाद के राजनीतिक समाधान के लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये गये।

यह दोनों पक्षों में स्थायी संधि के लिए वार्ता चलने लगी। इस सम्बन्ध में अनेक प्रस्ताव आये परन्तु दोनों पक्षों में स्थायी आधार पर कोई समझौता नहीं हो सका। बच-सरकार ने संयुक्त राष्ट्र इण्डोनेशिया को अन्तिम एवं औपचारिक रूप प्रदान करने का निश्चय किया तथा संघ और उसके सदस्यों के अधिकारों को अधिक महत्व दे करके 'गणराज्य' की स्थिति को गिराने की चेष्टा की। मार्च १९४८ में बच-सरकार ने 'नीवरलैंड्स-ईस्टइंडीज' के लिए एक 'कार्यकारी संघीय सरकार' (Provisional Federal Government) की नियुक्त की किन्तु 'बचराज्य' ने स्वयं को इससे सम्बन्ध करने से इन्कार कर दिया। इसी बीच १६-१७ अगस्त को तिमूर (बोर्नियो) में एक अग्रिम घटना घट गई जिसके फलस्वरूप गणराज्य के सैनिकों और बच सैनिकों के मध्य सड़कें पुनः शुरू हो गईं।

१९ दिसम्बर, १९४८ को, युद्ध विराम संधि को भंग करते हुए, बच अधिकारियों ने गणराज्य के समर्थकों की तथाकथित प्रांतिककारी कार्यवाहियों का इमन करने के लिये पुनः 'पुलिस-कार्यवाही' का आदेश दिया। बच सरकार की यह दूसरी पुलिस (अर्थात् सैनिक)-कार्यवाही पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर थी। इसके फलस्वरूप गणराज्य की सेनायें तितर बितर कर दी गयीं और उसके नेताओं को जिनमें हटा व मुकासों भी थे कैद कर लिया गया। बच अधिकारियों ने अपने ऊपर और बचमानवीय कार्यों से बाह्य विश्व की सम्मानना पूर्णतः छो दी। सुरक्षा परिषद की एक संकटकामीन बैठक में २२ दिसम्बर को समस्या पर पुनः विचार किया गया। परिषद ने एक दूसरा युद्ध-विराम आदेश जारी किया और हॉलैंड की बचराज्य के प्रदान तथा अन्य राजनीतिक कदमों को छोड़ देने की हिदायत दी। इसी

घोर वासिगटन न इण्डोनेशिया के डच अधिकारियों को धार्मिक सहायता देना बन्द कर दिया। इसी बीच २० जनवरी से २३ जनवरी १९४६ तक नई दिल्ली में इण्डोनेशियाई समस्या पर विचार करने के लिये एक सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें डच-कार्यवाही की कठोर निन्दा की गई तथा इण्डोनेशिया वासियों के स्वाधीनता संग्राम का पूरजोर समर्थन किया गया। २८ जनवरी (१९४६ को सुरक्षा परिषद ने पुनः युद्ध-विराम का आदेश जारी किया।

उपरोक्त सब कार्यवाहियों घोर विस्फ के बढते हुए विरोधी जनमत से बाध्य होकर नीदरलैंड सरकार डच-सरकार अपना साम्रज्यवादी एक दुराग्रही नीति से विचलित हुई उसने फरवरी १९४६ में इण्डोनेशिया की स्वाधीनता पर विचार करने के लिए एक 'गोसमेज' सम्मेलन आयोजित करने की घोषणा की। सन्धी बातों के बाव डचों ने अपनी सेनाएँ जावा और सुमात्रा से हटा ली। बाद में लगभग डार्ई महीने तक (२३ अगस्त से २ नवम्बर १९४६ तक) हेग में गोसमेज सम्मेलन चला और अन्त में २ नवम्बर १९४६ को एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार संयुक्त राज्य इण्डोनेशिया को १६ राज्यों सहित नीदरलैंड्स का 'साम्बेदारी न एक ही समुदाय' की छत्रछाया में समान स्तर पर एक सर्वसोम लोकतान्त्रिक गणराज्य में परिणत कराने का निश्चय किया गया। परन्तु इस प्रस्तावित सप्त सरकार में 'डच-यूगिनी' या 'धक्षिणी इरियन' को समाविष्ट नहीं किया गया। २७ दिसम्बर, १९४६ को नीदरलैंड-सरकार न इण्डोनेशिया का प्रमुसत्तापूर्ण रूप से हस्तांतरित कर ली। राजधानी का नाम बटेविया से यन्स कर जाकार्ता (Jakarta) रखा गया। वासिगटन ने छीप्र ही इस नये राज्य को कूटनीतिक मान्यता प्रदाा कर दी और २५ दिसम्बर १९४६ को इण्डोनेशिया संयुक्त राष्ट्र संघ का भी सदस्य बन गया।

इण्डोनेशिया गणतन्त्र (एकात्मक राज्य) की स्थापना

'डच क्राउन' (Dutch-Crown or Sovereign) की छत्रछाया में उपरोक्त 'संघीय संयुक्त राज्य इण्डोनेशिया' (The Federated United States of Indonesia) की स्थापना से जी देश में शांति का वातावरण पैदा नहीं हो सका। इण्डोनेशिया-बासी तो नीदरलैंड से पूर्णरूपेण पृथक एक 'एकात्मक' राज्य के इच्छुक थे। अत उन्हीं राज्य के संघीय स्वरूप को समाप्त करने के लिए आन्दोलन छेड़ दिया। अन्त में १५ अगस्त १९४६ को १६ राज्यों के मूल सप्त (Federation) के स्थान पर इण्डोनेशिया गणतन्त्र (Republic of Indonesia) के नाम से १६ प्रांतों वाले एक एकात्मक (Unitary) राज्य की स्थापना हो गई। गीत युद्ध और महाशक्तिवा के संघर्ष के सम्बन्ध में इण्डोनेशिया ने प्रारम्भ में भारत के समान ही घसतमसत नीति पर चलने का निश्चय किया। १९४१ में नवयुक्त राष्ट्र रिक्तन पर बोसठे हुए राष्ट्रपति सुकार्पो ने बहू-**"हमारी नीति विरोधी मुटों के बीच की स्वामी बिहीन भूमि (No-Man's Land) पर है और हम इन विरोधी**

गुटों के बीच एक 'कुल' के रूप में सहायक होना की घोषणा करते हैं।" १० अगस्त १९४४ को पारस्परिक सहमति से इण्डोनेशिया और नीदरलैंड्स के मध्य प्रस्तावित संधि को भी बफना दिया गया और दोनों देशों में पारस्परिक सार्वभौम राज्यों वाले सम्बन्ध स्थापित हुए।

पश्चिमी इरियन की समस्या

दोनों देशों में उपरोक्त सम्बन्धों की स्थापना के बाद भी पश्चिम इरियन या पश्चिमी न्युगिनी विवाद का प्रश्न बना रहा। नीदरलैंड (यस हॉलैंड) ने इण्डोनेशिया को तो स्वतन्त्र कर दिया था किन्तु इरियन को नहीं देने में इन्कार कर दिया था। यद्यपि यह स्वाभाविक था कि इण्डोनेशिया संधि सन्तुष्टि के हम प्रयत्न को अपनी भूमि से मिटाने का प्रयत्न करता। इण्डोनेशिया ने पश्चिमी इरियन के अधिकार का निर्धारण करने लिए जनमत संग्रह का सुझाव भी दूकरा दिया और बुधरी और नीदरलैंड्स भी इण्डोनेशिया के सभी दावों को पस्वीकार कर दिया। दिसम्बर १९४० इण्डोनेशिया यह घोषणा कर चुका था कि नीदरलैंड्स से वाता केबस सत्ता हस्तांतरण के प्रश्न पर ही होगी। बाद में अगस्त १९४४ में १९४३ नेशिया और ८ अक्टूबर राष्ट्र संधि में यह प्रत्युत्तर किया गया कि वह दोनों पक्षों उचित हम दू देने में सहायता करे। नीदरलैंड्स द्वारा इसका विरोध किया गया। १९ अक्टूबर १९४७ को १९ अक्टूबर १९४७ को सयुक्त राष्ट्र की महासभा में पश्चिमी इरियन से सम्बन्धित एक प्रस्ताव पास किया गया। २/३ बहुमत में मिस सकते थे मिस गया। इस बंटना से इण्डोनेशिया में उद्योग की सहर फैल गई। जनता में यह उद्योगों कारखानों बँकों कार्यालयों पर अधिकार करना शुरू कर दिया। इण्डोनेशियाई सरकार ने भी कार्यवाही करते हुए लगभग १००० उद्योगों को निष्कासित किया। प्रतिक्रियास्वरूप नीदरलैंड्स ने पश्चिमी इरियन में अपने और धार्मिक भेज दिये तथा दो युद्ध पोत भी वहाँ के लिए रवाना कर दिये। दोनों देशों के सम्बन्ध इतने कटु हो गये कि राष्ट्रपति सुकार्णो ने नीदरलैंड्स साथ राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद करने की घोषणा कर दी। राष्ट्रपति सुकार्णो ने इण्डोनेशियाई जनता को पश्चिमी इरियन को अपनी भूमि का अङ्ग बनाने के लिये संगठित प्रयास करने की प्रतीति की।

स्थिति को अधिक बिगड़ते देखकर अमेरिका के राष्ट्रपति हैनेरी ट्रुमैन सयुक्त राष्ट्र संधि के महासचिव ऊपाट में पश्चिमी इरियन की समस्या समाधान के लिए प्रयास शुरू किये। इसी समय अमेरिकन कूटनीतिक एक्सपर्ट बँकर ने एक योजना प्रस्तुत की जो बँकर योजना कहलायी। योजना के आधार पर नीदरलैंड्स व इण्डोनेशिया में पश्चिमी इरियन प्रश्न पर समझौता हो गया और दोनों देशों ने सयुक्त राष्ट्रसंघ के माध्यम से समस्या को हल करने की बात स्वीकार कर ली। १ अक्टूबर, १९६२ पश्चिमी इरियन में यह राज्य समाप्त कर के इस प्रदेश को एक प्र

संयुक्त राष्ट्रीय परिषद (UN Temporary Executive Authority) के प्रशासन में रक्त दिया गया। यह परिषद पश्चिमी इरियन पर १ मई १९६१ तक राज्य करता रहा। बाद में पश्चिमी इरियन का नियंत्रण इण्डोनेशिया ने सम्भाल लिया और इस प्रकार इस प्रयोग का जब प्रयुक्तता से युक्ति मिल गई।

इण्डोनेशिया की आन्तरिक राजनीति

जुंकि विश्व राजनीति के प्रति इण्डोनेशिया का दृष्टिकोण बहुत कुछ उसकी अपनी आन्तरिक परिस्थितियों से प्रभावित रहा है। यद्यपि उसके आन्तरिक-राष्ट्रीय सम्बन्धों पर दृष्टिपात करने से पहले यह उचित होगा कि उसकी आन्तरिक राजनीति पर एक विह्वल दृष्टि डाल ली जाय।

जब इण्डोनेशिया विदेशी आधिपत्य से मुक्त हुआ तो न केवल वहाँ की ८० प्रतिशत जनता अशिक्षित थी बल्कि राजनीतिक दलों का भी बाहुल्य था। इनमें राष्ट्रवादी दल (The Nationalist or the PNI), साम्यवादी दल (The PKI) मुसलमानों के दो संगठन मुस्लिम संघ या मसजुमी (The Muslim Federation or the Masjumi) तथा कठिनादी इस्लाम (The Orthodox Islam of the Nu) के चार दल मुख्य प्रतिद्वन्द्वी थे। अक्टूबर १९५६ में राष्ट्रपति सुकार्णो ने इतन सारे राजनीतिक दलों के प्रति स्पष्ट रूप से अपना विरोध प्रकट किया और कहा कि एशियाई देशों के लिए पारम्पर्य उदारवादी अन्तर्गत हानिकारक है।

१९५७ में पश्चिमी राष्ट्रों की समर्थक मसजुमी सरकार अमेरिकन सहायता स्वीकार करने के कारण एक अविश्वास प्रस्ताव द्वारा अल्पसंख्यक की गई और राष्ट्रवादियों ने साम्यवादियों की सहायता से डा. सली सास्रोमिद जोजो (Sastroamidjojo) के नेतृत्व में नई सरकार बनाई। सितम्बर १९५५ में इण्डोनेशिया में प्रथम संसदीय चुनाव हुए जिनमें २२ राजनीतिक दलों के उम्मीदवार लड़े हुए। स्पष्ट बहुमत किसी भी दल को न मिल सकने के कारण मिनी जुमी सरकार की स्थापना की गई। इसके शीघ्र बाद ही सरकार की आर्थिक नीति से असन्तुष्ट होकर सुमात्रा एवं कुछ अन्य द्वीपों में विद्रोह हो गया और १४ मार्च १९५७ को सरकार अल्पसंख्यक हो गई। जब राष्ट्रपति सुकार्णो ने सम्पूर्ण देश में सैनिक शासन लागू करते हुए डा. जुजांडा (Djuanda) को प्रधान मंत्री नियुक्त किया। परन्तु सुमात्रा आन्दोलन तथा सेमिबीज ने केन्द्रीय सरकार के घाटकों का पालन करने से इन्कार करते हुए अपना विद्रोह जारी रखा। १५ फरवरी १९५८ को सुमात्रा के विद्रोहियों ने एक पुनः सरकार स्थापित कर ली। इस समय राष्ट्रपति सुकार्णो विदेश भ्रमण पर गये हुए थे। वे तुरन्त वापिस आये। १५ मार्च १९५८ को उन्होंने विद्रोहियों पर पूरी शक्ति के साथ आक्रमण किया और सम्पूर्ण देश में आपात की घोषणा कर ली। चार महीनों में ही सारे विद्रोही कुचल दिये गये और सम्पूर्ण इण्डोनेशिया पर केन्द्रीय सरकार पुनः मत्ता स्थापित करने में सफल हो गई।

१२ जनवरी १९९० को मुकाबलों न देस के सभी राजनीतिक वर्तों का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया और कुछ ही दिनों बाद अपनी साम्यसत्ता में उन्होंने नज़्जम फ़ट नाम से एक नये राजनीतिक संगठन और पापुस्त क़द नज़्जम फ़ास्र के नाम से एक सर्वोच्च राज्य संस्था जिसके प्रति मुकाबलों ने इण्डोनेशियाई संसद का यह क़द कर संघ कर दिया कि जयस मया हीम सुधार और पुनर्व्यवस्था कर दिया जायगा। इस ठामनाही रवैये में विरोध में १९९१ में राष्ट्रपति मुक़बलों की हत्या के दो घसफ़्त प्रयत्न किये पये। बीरे-बीरे इण्डोनेशिया की धाम्तरिक परिस्थिति बिगड़ती जाती गई। इण्डोनेशियाई साम्यवादी दल (PKI) जिसका मुकाबलों पर प्रबल प्रभाव था, निरन्तर बलिष्ठासी हाता गया और इसी कारण चीन व इण्डोनेशिया के सम्बन्ध निरन्तर बढ़ते रहे। परन्तु बयो-बयो देस के धाम्तरिक प्रबल महत्वपूर्ण बनते गये एव-एवो इण्डोनेशियाई सेना भी इण्डोनेशियाई साम्यवादी दल में मठमेव बढ़न लये। १९९१ के मध्य तक स्थिति यह हो गई कि साम्यवादी दल राष्ट्रपति मुकाबलों की धाम्तरिक नीति से पूरी तरह घसस्तुष्ट हाकर उनके सिक्षाक बिद्रोह करने की धाम्तरिक में छुट गया। १० दिसम्बर १९९१ को साम्यवादियों द्वारा प्ररिठ एक सैनिक बिद्रोह हुआ। राष्ट्रपति भवन के सैनिकों के क़माण्डर से क उन्तु ग (Lt. Col. Untung) ने एकाएक भवन पर धावा कर के मुकाबलों के शासन का घन करने का साहसिक प्रयास किया। उन्तु ग ने सुरक्षा मंत्री जतरस नयूतियों और इण्डोनेशियाई सेना के घनेक उच्च घस्रघरी को कैद कर लिया तथा राष्ट्रपति मुकाबलों को रक्षात्मक कैद में रख दिया। किन्तु इस सैनिक बिद्रोह का मुकाबलों के प्रति नफ़ासदारी रखनेवाली सेना न पूरी तरह कुचल दिया। बिद्रोहियों ने सेना के ६ उच्च धिकारियों की हत्या कर दी और वे जाबा भाग गए। जनरल नयूतियों और राष्ट्रपति मुकाबलों की जान किसी तरह बच गई।

मद्यपि बिद्रोह बसा दिया गया किन्तु इसके साम्यवादी दल की कठि को कोई विशेष धावात नहीं पहुँचा। साम्यवादी दल कठि से नस्त मुकाबलों ने इस घटना को भुस जाने की घवील की और बिद्रोहियों को शागा कर देने का धावासाधन किया परन्तु इण्डोनेशियाई सेना अपने धाम्तरिकारियों की हत्या का बदसा लेने की उठाक बो। इसके प्रतिरिठ और भी घनेक पाटियाँ साम्यवादियों की बिरोधी थीं। अठ देस में साम्यवादियों और इन बिरोधी कठियाँ में घसर्ष होने लया। १ फरव्रवर, १९९१ को घनेक संघट १ ने इण्डोनेशियाई सरकार से मांग की कि साम्यवादी दल (PKI) को घनेक संस्था घोषित कर दिया जाय। 1८ फरव्रवर को इण्डोनेशियाई सेना ने साम्यवादी दल को घनेक घोषित करते हुए उसके क़ार्यालय और समाचार पत्र घादिक को जलन कर लिया। इण्डोनेशियाई साम्यवादी पार्टी बिरोधी धाम्त्रोसन ने लोघ ही चीन बिरोधी धाम्त्रोसन का रूप धारण कर लिया क्योंकि सायों के बिघार था कि १० सितम्बर के बिद्रोह में चीन की साबिस थी। देस भर में चीनियों के बिघर घाय बढ़क उठी। अकार्त के चीनी बिह्व बिघासय में

भाव लगा ही गई और चीनी कूटावास पर हमल हुए । चीन के साथ सम्बन्ध बिच्छेद की मांग की जाने लगी ।

सम्पूर्ण इण्डोनेशिया में साम्यवाद और चीन विरोधी लहर ने वहाँ की राजनीति को बिल्कुल अनिश्चित बना दिया । राष्ट्रपति सुकार्णो पूरी तरह से साम्यवाद विरोधी सक्रियताशी सेना के प्रभाव में आ गये । इण्डोनेशिया में चीन के विरुद्ध जो वातावरण बन गया उसमें पिन्ही-पेकिंग बकाता-धुरी (पाकिस्तान चीन इण्डोनेशिया धुरी) का अन्त करके ही छोड़ा । १२ मार्च, १९६९ को से ज सुकार्णो के नेतृत्व में नैतिक नेताओं ने राष्ट्रपति सुकार्णो के साथ सम्बन्धी बातचीत के बाद शान्तिपूर्ण ढंग से सत्ता अपने हाथ में ले ली । बकाता रैडियो के घोषणा की कि राष्ट्रपति सुकार्णो ने अपने सारे अधिकार अन्तरिम सुकार्णो को सौंप दिये हैं । यह स्थिति यह थी कि यद्यपि सुकार्णो राष्ट्रपति पद पर घासीन बने रहे परन्तु वास्तविक सत्ता उनके हाथ से छिन गई । इसके बाद जुलाई १९६९ में अन्तरिम सुकार्णो ने इण्डोनेशियाई राजनीति को पूरी तरह अपने बतवर्ती बनाते हुए सुकार्णो को राष्ट्रपति पद से भी अलग करवा दिया ।

इण्डोनेशिया के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
(Indonesia La International Relations)

घास्यारिक क्षेत्र में राजनीतिक अस्थिरता और धार्मिक विवाहियेपन के कारण नव स्वतंत्रता प्राप्त इण्डोनेशिया को विश्व राजनीति के प्रति तटस्थतावादी नीति ही सर्वोत्तम दिखाई पड़ी और १९५० में राष्ट्रपति सुकार्णो ने यह घोषणा भी कर ली कि इण्डोनेशिया का इरादा विरोधी गुटों के बीच एक पुल के रूप में सहामक होने का है । इण्डोनेशिया ने अमेरिका अथवा कम के अक्रसाये जाने पर भी 'नीतियुद्ध' में अलग-अलग से स्वयं को अक्रसाये रखा । इसने विश्व के दोनों गुटों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की । परन्तु इसकी अंशसम्भूता अथवा तटस्थता की नीति केषम कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक ही ठीक-ठाक तरीके से चम पाई । बाद में साम्यवादी चीन का प्रभाव बढ़ने से इण्डोनेशियाई सरकार अ्यवहार में तटस्थतावादी नहीं रह सकी । चीन प्रभावित सुकार्णो शासन के अन्तान हुआ जाने के बाद वर्तमान सरकार पुनः तटस्थतावादी और विवेकपूर्ण इंटिकोअ बिचर-अयस्याओं के प्रति अ्यवशाने लगी है ।

यह हमें बिसता चाहिए कि विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के साथ इण्डोनेशिया के बौद्धिक सम्बन्ध किस प्रकार के रहे हैं ।

इण्डोनेशिया और कम के सम्बन्ध प्रारम्भ में मधुर नहीं थे । त्तिथ महायुद्ध के अन्त बार सोवियत संघ ने अमेरिका और इंग्लैण्ड पर इण्डोनेशिया में साम्राज्यवादी अ्यवस्था रखने का आरोप लगाया । हाईकमिन्ड को भी इण्डोनेशिया वासियों का गमा घोटने का प्रमाण करने के लिए दोषी

ठहरा गया। परन्तु इण्डोनेशियाई नेताओं को ये बातें बर्ष भर नहीं सही क्योंकि वे हीतमुक्त को अपने देश में नहीं माने देना चाहते थे। इस प्रारम्भ में यह आरोप लगाता रहा कि इण्डोनेशिया परिषद की कठमूलकी है। इसके प्रतिरुद्ध बहू जनवादी १९४८ में जब श्री इण्डोनेशियाई प्रतिनिधियों ने अपने विचार का इस विकास के लिए पारस्परिक समझौता किया तो सोवियत संघ ने इस समझौते का विरोध किया और इसे देश की प्रगतिशील शक्तियाँ के लिए हानिकारक बताया। उसने इण्डोनेशियाई साम्यवादी बहू को समझौते के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उत्तेजित किया। इसके बाद २ नवम्बर, १९४९ के हेग समझौते का भी इस द्वारा विरोध किया गया। इण्डोनेशियाई 'अखण्ड' हीतमुक्त को अपनी भूमि तक न जाने देने के लिए कठिनाई ही गया और उसने साम्यवादी दस को और कानूनी कगार करके उसका अधिकार नेताओं को बेलों में ठूस दिया। इण्डोनेशिया की यह बहू स्थिति से काम उठाने में असफल होकर सोवियत संघ ने हीत ही अपना एक बहू दिया और कठुवा को न बहूने देने के लिए २० सितम्बर, १९४९ को इण्डोनेशिया के साथ कठनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए। कात्मार दे वे सम्बन्ध बनिष्ठ हो गए और इस इण्डोनेशिया को बाहिक ब तकनीकी सहायता देने लगा। दोनों राष्ट्रों के सम्बन्ध आज भी यथापूर्व बहुर हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति भी इण्डोनेशिया में प्रारम्भ में अफरत की। इण्डोनेशियाई स्वतन्त्र-संघर्ष में अमेरिका ने कई तरह से बहू की सहायता की थी। उसने जब मुक्त-योद्धों को प्रशिक्षित किया या और जब अधिकारियों को प्रशासन प्रदान किये थे, किन्तु फिर भी इण्डोनेशियावासियों को इस बात से कुछ सात्वना मिली कि अमेरिका ने बहू की 'पुलिस कार्यवाही' का विरोध किया या और 'यूरोपियन पुनर्निर्माण योजना' के अन्तर्गत इण्डोनेशिया के बहू प्रशासकों को बाहिक सहायता देनी बहू कर दी थी। यही नहीं अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भी जब बहू पर इस बात के लिए दबाव डाला या कि वे संयम से काम लें। इन्हीं सब कारणों से स्वतन्त्र इण्डोनेशिया ने अमेरिका के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया। इण्डोनेशियाई अखण्ड ने अमेरिका की तकनीकी सहायता स्वीकार की किन्तु यह ध्यान रखा कि उसकी आन्तरिक नीति में कहीं अमेरिकन हस्तक्षेप प्रवेश न कर जाय। इण्डोनेशियाई नेताओं से बहू बात छिपी न थी कि अमेरिका इण्डोनेशिया की आन्तरिक अस्थिरता टटस्वतावाद और साम्यवाद के प्रभाव की वृद्धि से चिन्तित है और योंका पाकर इण्डोनेशिया के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने में नहीं बूकेगा। इसीलिये उसने अमेरिका के पारस्परिक सुरक्षा समझौतों में भाग लेने से इन्कार कर दिया। उसने सन् १९५८ में चीन की सहायता के लिए बाधना नहीं की अपितु उसका विरोध ही किया। १९५९ में अमेरिका के विदेश सचिव डेलस का जकार्ता में बाहिक स्वागत किया गया और उसी वर्ष राष्ट्रपति सुकार्णो का भी बाहिक स्वागत में उसी बोध से स्वागत हुआ।

इण्डोनेशिया और चीन के सम्बन्धों में पूरा उदार-बहूण भावा रहा।

धारम्य में दानो देशों की मैत्री तभी से बढ़ी। इण्डोनेशिया ने तुरन्त चीन का मान्यता दी और कोरिया युद्ध में चीन को प्राकामक पोषित करने के प्रस्ताव का विरोध किया। १९५१ के वाशिंग्टन सम्मेलन में दोनों राष्ट्रों के नेताओं में प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हुआ और दोनों देशों की सरकारों ने इण्डोनेशिया में बस चीनियों की स्थापित की देखरेख के लिए एक समझौता किया। १९५६ के धारम्य से मैत्री के ये भागे टूटने लगे। उस से प इण्डोनेशिया की सरकार ने चीनियों की व्यापारिक गतिविधियों पर कुछ प्रतिबंध लगा दिये। ये चीनी व्यापारी इण्डोनेशिया के व्यापारिक जीवन पर एकाधिकार कायम किये हुए थे जिसका प्रभाव इण्डोनेशिया की अर्थ-व्यवस्था पर बड़ा विपरीत पड़ रहा था। साम्यवादी चीन ने इण्डोनेशिया के इस कदम का बड़ा विरोध किया। २९ दिसम्बर १९५६ को चीन ने सुझाव दिया कि दोनों सरकारों में प्रवासी चीनियों के बारे में कोई समझौता हो जाना चाहिए परन्तु इण्डोनेशिया के सहमत न होने से बहुतायत प्रवासी में घोर सी वृद्धि हो गयी। अंत में १९६० में इण्डोनेशिया में बसे प्रवासी चीनियों के बारे में दोनों देशों के बीच समझौता हो गया और चीन तथा इण्डोनेशिया के सम्बन्ध पुनः ठीक हो गए। फिर भी पारस्परिक अविश्वास तथा भयभाव दूर नहीं हुए। सितंबर दिसम्बर १९६५ में साम्यवादी चीन ने प्रभाव से इण्डोनेशिया में कामपकी जागि हुई और बा० सुकावों की सरकार का तख्ता उलटने का प्रयास किया गया। इण्डोनेशियाई सरकार ने स्पष्टतः धारोप लगाया कि यह सब कुछ चीन की सुरक्षितिक के कारण हुआ है। लेकिन ने स्वयं को निर्दोष बताया परन्तु इण्डोनेशियाई नेता संतुष्ट नहीं हुए और दोनों देशों के सम्बन्ध बिगड़ गए। कुछ नेताओं ने यह धारणा प्रकट की कि इस जालि में सुकावों स्वयं का हाथ था। इस धारोप ने शीघ्र ही इतना तून पकड़ा कि इण्डोनेशिया में कुछ राज नेताओं और अधिकारियों द्वारा सुकावों के त्याग पत्र तक की मांग शुरू हो गई। १९६४-६५ में वास्तव में साम्यवादी चीन का इण्डोनेशियाई शासन पर इतना प्रभाव था कि उसने भारत-विरोधी इस धारणा को धारत के विरुद्ध पाकिस्तान को रीतिक सामग्री देने का समझौता किया। इण्डोनेशियाई नेता इस बात को भूल बैठे कि भारत ने उनके राष्ट्र को स्वतंत्रता दिलाने में कितना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

१९६६ में राष्ट्रपति सुकावों के हाथ से वास्तविक सत्ता छीन कर जनरल सुहार्तो के हाथों में आ गई और तभी से इण्डोनेशियाई शासन पर से साम्यवादी प्रभाव हट गया। जनवरी १९६७ में हमारे भूतपूर्व विदेश मंत्री श्री छ मला श्री इण्डोनेशिया की यात्रा के परिणामस्वरूप दोनों देशों के सम्बन्ध पुनः सुदृढ़ बने। इण्डोनेशिया ने पाकिस्तान का रीतिक सामग्री देने का समझौता समाप्त कर दिया और इस बात का धारबाधक दिया कि भारत-पाक युद्ध के दौरान पाकिस्तान को भेजा गया गो-रोना का साज-सामान भी जालि से लिया जायगा। साम्यवादी चीन द्वारा इण्डोनेशिया में जो धमकन जागत करार गईं उसके बाद से ही दोनों देशों के सम्बन्ध निरन्तर बिगड़ते गये और आज संपूर्ण इण्डोनेशिया में चीन-विरोध की धार लगी हुई है। वहाँ का साम्यवादी इस ओर एक समय काफ़ी गतिवासी था, अब बहुत हद

तक अपनी लोकप्रियता को बैठा है किन्तु फिर भी उसकी शक्ति अपनी पूर्णता नष्ट नहीं हुई है और साम्यवादी भीम प्रत्येक सतत करने का प्रत्येक संभव प्रयास कर रहा है।

फिलीपाइन्स (Philippines)

फिलीपाइन्स दक्षिणी प्रशांत महासागर में स्थित है जिसमें कई हजार छोटे-बड़े द्वीप सम्मिलित हैं। यहाँ की भाषा और बोलियों की संख्या ८७ से भी अधिक है, परंतु इनमें प्रमुख विषयगत इकोनोमी और इकोसोमी हैं। यहाँ की जनसंख्या में लगभग २०% रोमन कैथोलिक ईसाई हैं और केवल ४% मुसलमान।

यह प्रवेश ३०० वर्षों तक स्पेन के और उसके बाद लगभग ५० वर्षों तक अमेरिका के अधीन रहा। द्वितीय महायुद्ध के पहिले यह द्वीप समूह अमेरिका के ही अधीनत्व था। किन्तु वहाँ स्पेन ने अपने शासन-काल में इस प्रदेश का पूर्ण घोषण किया वहाँ अमेरिका ने फिलीपाइन्स-वासियों को स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये तैयार किया। द्वितीय महायुद्ध पारस्य होने से पहिले ही कॉमनवेल्थ-एक्ट के अंतर्गत यह घोषणा कर दी गई कि १९४६ में किसी समय फिलीपाइन्स को स्वतंत्रता दे दी जायेगी। द्वितीय महायुद्ध काल में इसे जापानी शासक का अधिकार होना पड़ा। ७ दिसम्बर १९४१ को जब पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया गया तो मनीला (फिलीपाइन्स की राजधानी) को भी वहीं छोड़ा गया। मगर पर जून कम वर्षों की गई। मई १९४२ में इस देश पर जापानियों का अधिकार स्थापित हो गया। उन्होंने इसकी अर्थ-व्यवस्था का कुसूर घोषण किया फलस्वरूप देश में चारों ओर विद्रोह निर्दयता व अवैधता का वातावरण व्याप्त हो गया। वर्षों-वर्षों बुद्धि राष्ट्रों की पराजय सम्मिलित घाते लगी फिलीपाइन्स की जनता को अपनी स्वाधीनता की धामा होने लगी। २६ जून १९४४ को संयुक्त राज्य अमेरिका की वापस से अपने एक प्रस्ताव द्वारा फिर से यह बुराया कि फिलीपाइन्स को पूर्ण स्वाधीनता दी जायेगी। काँग्रेस ने राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान की कि वह वहाँ ४ जुलाई १९४६ से पहिले ही स्वतंत्र राज्य की स्थापना की घोषणा कर दे। अमेरिका ने अपने बचन का पुराता से पासत किया और जापान द्वारा धारण-समर्पण कर दिये जाने के बाद ४ जुलाई, १९४६ को फिलीपाइन्स को स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई। स्वतंत्र फिलीपाइन्स के प्रथम राष्ट्रपति घोसनेना बने।

फिलीपाइन्स सरकार के सामने तुरंत ही दो समस्याएँ उत्पन्न हुए—
 १. एक छोटी संपादनवादी विचारों वाले एक सुरिस्मा-
 २. धार्मिक जिन्होंने जापान के विरुद्ध युद्ध किया था घोसनेना-सरकार के सामने
 धारण-समर्पण करने को तैयार नहीं थे तथा भूमि और कृषि सम्बन्धी व्यापक
 सुधारों की माँग कर रहे थे। दूसरी ओर जमींदारों बतिकाँ और अमेरिकन
 हितों द्वारा समर्थित उदारवादी दल या जिसका गैरुल्व फिलीपाइन्स की सीरीज

क अध्यक्ष रीनघास कर रहे थे। ऐसी स्थिति में प्रोत्सेना ने देश का शासन बलागो में स्वयं को प्रसफ्त पाकर त्यागपत्र दे दिया। उनके परचाद् रीनघास नये राष्ट्रपति चुने गये। उन्होंने हुक सैनिकों के विश्व बशियान बलागो किन्तु शीघ्र ही उनकी हत्या कर दी गई। १९४९ क निर्वाचनों के परिणाम स्वल्प एस्पीडियो विकरीनो नये राष्ट्रपति बन। विद्रोहियों का दमन करने के लिये उन्होंने रामन मगसाईसाई नामक एक प्रसव योग्य व्यक्ति का प्रतिरक्षा मंत्री नियुक्त किया। श्री मग साई साई ने हुक विद्रोहियों के दमन में धाधातीत सफलता प्राप्त की। साथ ही उनकी ईमानदारी ने उन्हें देश की जनता के मन में बैठाने दिया। श्री मगसाईसाई ने फिलीपाइन्स का राष्ट्रीय एकता मुरदा और लोकतन्त्र का सुदृढ़ आधार प्रदान किया जनता न नवम्बर १९३१ क निर्वाचनों में उन्हें अपना राष्ट्रपति चुना। १९३७ में एक विमान-दुर्घटना में इस महान् मानवतावादी राष्ट्रपति की मृत्यु पर उपराष्ट्रपति गालिया राष्ट्रपति पद पर धासीन हुए। नवम्बर १९३७ के निर्वाचनों में उन्हें ही पुन बस का राष्ट्रपति चुन लिया गया। श्री गालिया के बाद राष्ट्रपति पद को श्री मन्नापवास ने सुसोभित किया। वर्तमान में फिलीपाइन्स के राष्ट्रपति का मार्कोस है।

अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में फिलीपाइन्स राजनीतिक सूम्नरुध और स्व-शासन की क्षमता स्वतंत्रता से पूर्व ही धा गई थी। स्वाधीन होने से पहिले ही फिलीपाइन्स ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया था। १० जून १९४२ को श्री बाने वाली संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा पर हस्ताक्षर करने बालो में फिलीपाइन्स के तत्कालीन राष्ट्रपति विजयान भी थे। प्रभात युद्ध-परिपद में श्री विजयान व प्रोत्सेना सहस्य रहे। फिलीपाइन्स क प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र सहायता व पुनर्वास धमिकरण तथा बटन बुद्ध-सम्मेलन की कार्यवाही पर हस्ताक्षर किये। उन्होंने सान-फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र का प्रारम्भिक सदस्य भी भाग लिया। फिलीपाइन्स संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रारम्भिक सदस्य था धमर्दि घोषणा पर हस्ताक्षर करने बाले राष्ट्रों में से बह एक था।

स्वाधीनता प्राप्त करने के मुरत बाद १४ मार्च १९४७ को धमेरिका और फिलीपाइन्स के मध्य एक ९९ बर्षीय पारस्परिक सहायता-समझौता हुआ जिसके अंतर्गत धमेरिका को फिलीपाइन्स की भूमि पर सैनिक व मौ-सैनिक बहरे स्थापित करने का अधिकार मिला। शीघ्र ही धमेरिजन पत्र प्रचुर मात्रा में फिलीपाइन्स में प्रविष्ट होने लगा और मनीला के बाशिगटन से पविष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी फिलीपाइन्स और धमेरिका पारस्पर बनिष्ठ सहयोग से बसने लये। फिलीपाइन्स के प्रतिनिधि जनरल रोमोसो १९४९ में महासभा के अध्यक्ष बनाये गये। १९४८ से १९५० तक फिलीपाइन्स संसदन-परिपद का सदस्य रहा और गुरदा परिपद का सदस्य भी चुना गया। साम्यवादी लतरे से बचने के लिये सत्र १९५४ में फिलीपाइन्स 'सोटो' बर्षान् दशिय-पूर्वी एशिया मुरदा संघि संघटन का सदस्य बन गया।

फिजीपाइस के नेताओं ने प्रारम्भ से ही यह स्पष्ट कर दिया था कि उनका राष्ट्र 'तटस्थता' की नीति में विश्वास नहीं करता है। फिजीपाइस के स्वर्गीय राष्ट्रपति रामन मगगाईसाई ने कहा था 'हम उन देशों के बुद्धियोग से सहमत नहीं हैं जो वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को दो शक्तिमानी प्रतिद्वंद्वी मुठों के माध्यम से प्रतिक्रिया का परिणाम मानते हैं।'

इस सम्बन्ध में दो कारणों से हम अपने धमेक पड़ोसी देशों बुटिकोए को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। पहला कारण यह कि हम साम्यवाद को ऐसी शक्ति नहीं मानते जिसकी तुलना भूमि में स्वर्ण पाकर ही संतुष्ट हो जाये। अपने देश में हमारे गये साम्यवाद हिंसारमक आन्दोलन से हमने यह अनुभव प्राप्त किया है कि साम्यवाद एक विद्रुत राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा मान नहीं (जैसा कि हिटलर का मानना था) बल्कि एक ऐसा सतत् किस्म का आन्दोलन है जिसका मध्य समस्त भू-मंडल पर शासन करना व्यक्तिगत स्वाधीनता का पूरी तरह नष्ट करना और ईश्वर तथा मनुष्य की धारणा को विरस्तन एवं लाक्षणिक करना है।" अमेरिका और फिजीपाइस के सम्बन्ध दिन प्रतिदिन प्रगाढ़ होते गये। जून १९६० में राष्ट्रपति फाइजल होवर ने मनीला का औपचारिक रूप से दौरा किया और मित्रता को सुदृढ़ बनाया। धाज भी दोनों देशों की मैत्री यथापूर्व काममें है।

एशिया की राजनीति में भी फिजीपाइस ने प्रारम्भ से ही बड़ी शक्ति प्रविष्टा सम्बन्धी धाजयक्तताओं को फिजीपाइस ने अमेरिका से भी पक्ष में प्रयुक्त किया और मई, १९६० में बागुई में एक सम्मेलन का आयोजन किया। कोरिया के युद्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ की धोर से मजबूत के लिये उसने एक शैतिक बस्ता भी भेजा। फिजीपाइस ने जापान के साथ शंघि के प्रश्न पर स्वतन्त्र नीति अपनाई और उससे क्षतिपूर्ति की मांग की। जहाँ तक चीन के साथ सम्बन्धों का प्रश्न है उसने साम्यवादी चीन को मायवा नहीं दो धोर इस बारे में अमेरिकन नीति का ही अनुसरण किया। भारत के साथ फिजीपाइस के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। १ जनवरी १९६० को मनीला में नई दिल्ली के दूतामयों (L-Exations) का स्तर बढ़ कर राजदूतालयों (Embassies) का कर दिया गया। इकराबत के साथ ही कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये गये। अक्टूबर, १९६१ में फिजीपाइस ने मलाया के धार्मिक सहयोग बढ़ाने के लिये एक संपन्न बनाया। राष्ट्रवादी चीन के साथ भी सम्बन्ध पुष्ट किये गये। २६ अगस्त १९६१ को बहिन-विपत्ताम के साथ एक मैत्री-संधि सम्बन्ध को गई।

जब मलेसिया संघ का निर्माण होने लगा तो फिजीपाइस ने उसकी नीतियों को जगमें मर्मित किये जाने का विरोध किया। फिजीपाइस का दावा था कि समूचे उत्तरी चीनियों पर उनका अधिकार है क्योंकि पक्षों में १९४८ में मुक्त टापू के मुस्ताम से लिया। जब पक्षों के यहाँ से हट

जाने पर यह प्रदेश सुलु के सुल्तान के उत्तराधिकारी फिलीपाइन्स टापू को सौंप दिया जाता चाहिये। फिलीपाइन्स के इस दावे के फलस्वरूप इण्डोनेशिया और मलयेशिया की तरह फिलीपाइन्स और मलयेशिया में भी कुछ समय के लिये विवाद उत्पन्न हो गया और दोनों ने अपनी बाह्य सम्बन्ध (Diplomatic Relations) तोड़ दिये। परन्तु साम्यवादी चीन के शासन के मय से चीन ही उत्तरी कोरिया के प्रश्न पर फिलीपाइन्स का एक मरम पड़ गया। तत्पश्चात् फिलीपाइन्स के राष्ट्रपति मकापगाल (Macapagal) ने माफीलिनो (Maphillindo) के नाम से इस प्रदेश में एक संघ बनाने की योजना रखी जिसमें मलयेशिया, फिलीपाइन्स और इण्डोनेशिया इन तीनों को सम्मिलित करने की बात थी परन्तु इण्डोनेशिया और मलयेशिया में संघर्ष की स्थिति के कारण इस संघ का निर्माण न हो सका। घाशा है इण्डोनेशिया और मलयेशिया में अन्धे सम्बन्ध स्थापित हो जाने से अब इस संघ की योजना भी भविष्य में कार्यान्वित हो सकेगी।

EXERCISES

1. How has the Second World War affected the political development of South East Asia ?
द्वितीय महायुद्ध ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के राजनीतिक विकास का किस प्रकार प्रभावित किया है ?
2. Discuss the importance of South East Asia in International affairs.
अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में दक्षिण-पूर्वी एशिया के महत्व की विवेचना कीजिये।
3. Write a essay on the role of South East Asia in World Affairs.
विश्व-सामग्री में दक्षिण-पूर्वी एशिया की भूमिका पर एक निबन्ध लिखिये।
4. Indonesia is now quickly gaining a reputation as a regional bully. Discuss the foreign policy of Indonesia in the light of the statement
"इण्डोनेशिया अब एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में तेजी से प्रतिष्ठि प्राप्त करता जा रहा है। इस रूप के प्रकाश में इण्डोनेशिया की विदेश नीति की विवेचना कीजिये।
5. Discuss the Vietnam crisis. Do you think that the Vietnamese crisis can escalate into a world war ?
वियतनाम-संकट की विवेचना कीजिये। क्या घापना संभव है कि वियतनाम-संकट विश्व युद्ध के रूप में परिणत हो सकता है ?
6. Give a short account of the struggle of Burma for freedom. What is its foreign policy after independence ?

स्वतन्त्रता के सिधे बर्मा के संघर्ष का संक्षिप्त विवरण दीजिये।
स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसकी क्या विशेष नीति रही है ?

- 7 Describe the position and importance of Malaya, Phillippine and Thailand in the International Affairs. अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में मलया फिलीपाइन और थाईलैण्ड की स्थिति तथा इनके महत्व का वर्णन कीजिये।
8. Discuss the problem of Indo-China after the Second World War What is its importance in the International sphere ? द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्द-चीन की समस्या की विवेचना कीजिये। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसका क्या महत्व है ?
- 9 "The United States regards Geneva as far eastern Munich and settlement reacted at Geneva on July 21 1954 is one of the greatest communist victory of the decade" Discuss "संयुक्त राज्य अमेरिका जेनेवा को दूर पूर्विय म्यूनिख मानता है और २१ जुलाई १९५४ को जेनेवा में किया गया समझौता इस बहाल्वि की एक महानतम स म्यवादी विजय है।" विवेचना कीजिये।
10. "Laos problem may lead to an international crisis if not successfully solved" Discuss "यदि लाओस की समस्या को अतिपूर्व ढंग से नहीं सुलझाया गया तो यह अन्तर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न कर सकता है।" विवेचना कीजिये।
- 11 Write short notes on the following —
(a) Bandung Conference
(b) Geneva Settlement of 1954 and problems of Laos
निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —
(अ) बांडुंग सम्मेलन
(ब) १९५४ का जेनेवा-समझौता और लाओस कम्बोडिया तथा कियतनाम की समस्यायें।

13

पूर्वी एशिया (EAST ASIA)

१ चीन (साम्यवादी)

- (a) चीन में साम्यवादी दल का सम्पूर्ण धीरे-धीरे उत्कर्ष
- (b) साम्यवादी क्रान्ति के परिणाम
- (c) साम्यवादी प्रसार के कारण
- (d) बिदेस नीति के आधारभूत तत्व
- (e) बिदेस नीति के साधन
- (f) चीन की बिदेस नीति एवं उसकी प्रथम प्रवृत्तियाँ
- (g) चीन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
 - (i) साम्यता एवं स. ए. संघ में प्रवेश का प्रश्न
 - (ii) चीन तथा स. ए. अमेरिका के सम्बन्ध
 - (iii) चीन तथा भारत के सम्बन्ध
 - (iv) चीन तथा सोवियत रूस एवं समाजवादी देशों के सम्बन्ध
 - (v) चीन एवं बाह्य अफ्रीका
 - (vi) चीन एवं तिब्बत तथा अन्य एशियाई व. अफ्रीकन देश
- (h) चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति

२ हांगकांग

३ जापान

“द्विरव की शक्ति चीन पर प्राथित है और जो कोई चीन को समझ सकेगा उसी के हाथ में प्राणामी पांच सताम्बियों तक विश्व-राजनीति की कुञ्जी होगी।”

—जान हे

चीन—वह एक ईरप पड़ा सो रहा है। उसको सोचो दो क्योंकि जब वह उठेगा तो दुनिया को हिला डालेगा।”

—नैपोलियन बोनापार्ट

साम्यवादी चीन (Communist China)

यह एक अत्यधिक कुर्मावपूर्ण विद्वम्बना की बात है कि एक ऐसा देश जो कुछ समय पूर्व तक साम्राज्यवादी सिप्पा दमन अत्याचार और शोषण का शिकार बन रहा था आज स्वयं एक नुसंस और क रतम साम्राज्य वाण का बाना पहन कर अन्तर्राष्ट्रीय रामच पर उतर आया है अपने मित्र और शत्रुओं को समान रूप से धमका रहा है मुड का नारा बुन्द कर रहा है और मुड को मानव जाति के कल्याण का एकमात्र साधन बना रहा है। यह वश है साम्यवादी चीन। आज अन्तर्राष्ट्रीय अगण की सुनहरी प्राणाय और विश्व शक्ति बहुत कुछ इसके आचरण और इसकी नीतियों पर ही निर्भर करती है। आज का साम्यवादी चीन एशिया क क्षितिज पर एक अजुन छाया है और कोई नहीं कह सकता कि यदि इस छाया को समय रहते बदन स न रोना गया तो यह सम्पूर्ण विश्व पर किने भयकर रूप में छा जाएगा। इस देश क वर्तमान अशुभ और आतंककारी रूप पर विचार करन स पहिले इसमें साम्यवादी दस क अन्वेषण और उत्कर्ष के इतिहास के बारे म कुछ जान लेना पृष्ठ भूमि के रूप में अधिक उपयुक्त होगा।

चीन में साम्यवादी दस का अन्वेषण और उत्कर्ष

प्रथम महायुड के बाद चीन म साम्यवाण के सिद्धान्त का प्रमापी प्रचार और प्रसार चेत-तु-स्यु (Chen Tu Hsiu) क सुप्रसिद्ध पत्र स्यु चाईना क पीपल्स लेटर्स स हुआ। पी चेत ने मास्को से प्राय ब्यक्तियों की सहायता से सितम्बर, १९२० में चांघाई म चीनी साम्यवादी दस (Chinese Communist Party) की नीव डाली। पीप्र ही चीन के विभिन्न नपरोँ और विदेशों में साम्यवादी दस की छोटी-छोटी शाखायें (Cells) स्थापित होने लगीं। जुलाई १९२१ में सचाई में चीनी साम्यवादी नेताओं का प्रथम सम्मेलन हुआ। इसमें वर्तमान चीनी गणराज्य के अनेक जाने-माने नेता माया-से-तुंग चाऊ-एन-लाई चू नेह स्यु हापो-पी आदि सम्मिलित हुए। मन् १९२२ में चीनी साम्यवादी दस ने अपना लक्ष्य मजदूरों और किसानों के अधिनायक तन्त्र को स्थापना ब्यक्तिक सम्पत्ति का उन्मूलन और शरी शरी साम्यवादी समाज का निर्माण बनाया। दस के सदस्यों को निर्देशित किया गया कि वे कूपोमिनांग के सदस्यों के साथ समुक्त मार्चा बनाकर राष्ट्रीय एका और स्वतन्त्रता के कार्य में सहयोग दें। १९२२ से १९२७ तक माया-से-तुंग और च्यांगकाई लेक पारस्परिक सहयोग क पथ के अनुगामी रहे। इस अवधि में मापो ने साम्यवादी दस की केन्द्रीय समिति के अध्यक्ष और कूपोमिनांग के प्रचार विभाग के अध्यक्ष पद पर काम किया। यह कूपोमिनांग की क नीति क ध्युरो का भी सदस्य रहा। इसके पत्रिका 'पोपीटिकल डेनी नामक पत्र के सम्पादन के पद को भी समने सुगोमिन किया।

इस समय माघो ने साम्यवादियों व कुपोमिताय के राष्ट्रवादियों के पारस्परिक सहयोग की नीति को साम्यवाद के सुदृढ़ धारोपण के लिए आवश्यक समझा जबकि श्री बेन तू स्मू को इस तरह का सहयोग कठई पसन्द न था और वह बेवपूर्वक यह कहता था कि साम्यवादी राष्ट्रवादियों के लिये कुसियों का काम कर रहे हैं। माघो और बेन के इस विरोधी दृष्टिकोण में सोवियत रूस का मत माघो की नीति के पक्ष में था और इसीलिये वसी प्रतिनिधि बोरोदिन ने श्री बेन को समझाया कि यह एक ऐसा समय है जब किसानों व मजदूरों द्वारा राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण करने का परिणाम भीयल रक्ष्यगत होगा।

साम्यवादियों और राष्ट्रवादियों का यह सहयोग अधिक समय तक नहीं चल सका क्योंकि राजनीतिक सत्ता और प्रभुता पर एकाधिपत्य रखने के दोनों ही मूले थे। स्पष्ट था कि एक म्यान में दो तमबन्दे नहीं समा सकती थी। साम्यवादी हम अभी अपने प्रारम्भिक चरणों में था परत व्याप-काइ सेक क सक्तिशाली राष्ट्रवादी हम ने साम्यवादियों को कुपोमिताय के महत्व पूर्ण पक्षों से हटाना शुरू कर दिया। फलस्वरूप संयुक्त मोर्चा (United front) भंग हो गया और मूह-मुह खिड़ पया। व्याप-काइसेक ने चीन के सहरो में साम्यवादी बल का दमन करना शुरू कर दिया परत साम्यवा अपने क्रान्तिकारी सगठन को सुदृढ़ करने लगे। इस समय माघो व वू-नेह यह नीति अपनाई कि सहरो से दूर रहा जाए, भूमि सुधार की विद्या में बड़ जाए, बड़े जमींदारों को समाप्त करके भूमि का किसानों में पुनर्वितरण किया जाए, किसानों के कर और मूद की दर कम की जाए तथा उन्हें कुपोमिताय के विरुद्ध पूरी तरह सहका दिया जाए। अपनी नीति के समर्थन में माघो का कहना था जनता समुद्र है हम मजदूरियां हैं जब तक इसमें तरते रहेंगे तब तक हम बने रहेंगे। "हाथी जगता से और छपकों से सम्पर्क बढ़ाना व उन। प्रिय बनने की इस नीति से साम्यवादी भीद्र ही बाइ एवं बुमिस पीड़ित अनेक प्रांतों में प्रबल हो गये। माघो-ने नेह भुट पूरी शक्ति से सरकार विरोधी तलों को संगठित करने में बुट गया।

१९३१ में व्यापसी तथा उसके पासपास के प्रांतों में चीनी सोवियत गण राज्य स्थापित कर लिया गया। १९३२ तक समयय ३ कराइ जनता द्वारा बना हुआ चीन का छटा राज साम्यवादियों के नियंत्रण में हो गया। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी १९२७ ३० के दशक में व्याप-काइ सेक जनता पर बहुत बड़ी सीमा तक छाया रहा। साम्यवादियों का ध्यत करने के लिए उद्यते इन पर बारम्बार विनाश प्रक्रमण किये यद्यपि उसे इसका दमन करने में विशेष उद्देशनीय सक्षमता हासिल नहीं हुई। १९३४ में साम्यवादियों ने यह विद्येय उद्देशनीय सक्षमता हासिल नहीं हुई। १९३४ में साम्यवादियों ने यह अनुभव किया कि उनकी सेना राष्ट्रवादियों की सेना द्वारा चारों ओर से घिर जाएगी। परत इस बेराह से बचने के लिए नाम सेना के दक्षिणी चीन में नवांग सी प्रांत से उत्तर पश्चिम में जेगमी प्रांत में जाने के लिये ८ महीने में ३ हजार मील तय करने वाला विस्पात ऐतिहासिक प्रवाह (Long March)

किया। कहा जाता है कि इस सम्बन्ध में साम्र सेना के लगभग ८० हजार चीनियों को मृत्यु का घास बनना पड़ा किन्तु शेष सैनिकों को युद्ध के सभी कष्टों का पूरा-पूरा अनुभव हा गया। खन्ती खान में साम्यवादियों को घनेक साम्र से—प्रथम यह प्रान्त रूस के निकट था अतः सोवियत सहायता सुगमता पूर्वक प्राप्त हो सकती थी द्वितीय यह प्रान्त श्यांगकाइ-शेक द्वारा अधिकृत प्रदेश से बहुत दूर था एवं तृतीय जिन जापानियों को चीनी साम्यवादी अपने देश से निष्कासित करना चाहते थे उनके द्वारा अधिकृत मंचूरिया के भी यह प्रान्त अधिक निकट था।

पारस्परिक कलह मत्तेशों राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचारों तथा साम्यवादियों से संघर्ष के कारण श्यांग-काइ-शेक की शक्ति निरस्त होनी गई। वे प्रतिपामी और प्रतिक्रियावादी विचारधारार्यों के प्रभाव को रोकने में असमर्थ रहे और साम्यवादियों ने इस मौक का परा साम्र उठाया। १९३० तक श्यांग-काइ-शेक का सख्त यही रहा कि चीन के दो बड़े शत्रुओं जापानियों व साम्यवादियों में से पहले साम्यवादियों को बिनष्ट किया जाए। परन्तु साम्यवादियों के जेम्ही प्रान्त में पलायन कर जाने से श्यांग को इनके समन में कोई सफलता नहीं मिल सकी। इधर चीन की जनता जापानी आक्रमणों से घासंकुष्ट होकर उस ही (जापान का) धरता प्रधान मन्त्रु मान रही थी और उसके आक्रमणों से रसा चाहती थी। श्यांग माघों के विरुद्ध तो कठोर सैनिक कार्यवाही करने में संसन्न थे परन्तु जापानी आक्रमण व विरुद्ध उनका प्रतिरोध प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो रहा था। १९३१-३६ तक वे बराबर जापानी आक्रमण के सामने पीछे हटते रहे। १९३६ में यह मांग पूरी बाड़ पकड़ने लगी कि माघा की साम्र सेना और श्यांग की राष्ट्रवादी सेना संयुक्त होकर विदेशियों से लड़े। इस विचार का प्रचार सेनाधों में भी इतना प्रभावशाली हो गया कि दिसम्बर १९३६ में श्यांग को उसके दो अधीनस्थ सेनापतियों—श्यांग जुये-श्यांग तथा मांग हू-शेंग ने खन्ती बना लिया। उन्होंने श्यांग को इस बात के लिये बाध्य किया कि वह साम्यवादियों से मिलकर जापान के विरुद्ध लड़े। वास्तव में इस समय यदि साम्यवादी चाहते तो श्यांग का बध कर सकते थे परन्तु स्टालिन के परामर्श से ही उन्होंने ऐसा नहीं किया।¹

इस समय साम्यवादी पार्टी के सदस्यों की संख्या लगभग एक लाख और उनका प्रभाव क्षेत्र ३० लाख जनता का प्रदेश था। माघोसे तुंग की नीति यह थी कि पहले कूमोमितांग के साथ समानता का दर्जा प्राप्त किया जाय और तब उनका स्थान ग्रहण कर लिया जाए। माघोसेतुंग कूमोमितांग के मित्रान्तों को मानता हुआ भी साम्यवादी आन्दर्यों को परित्यक्त करने की उद्यम नहीं था। उनका स्पष्ट बहना था कि मेरी नीति ७० प्रतिशत साम्यवादी २० प्रतिशत समझौतावादी और १० प्रतिशत जापान विरोधी है। साम्यवादियों ने जापानियों के विरुद्ध संघर्ष में अर्धरर आत्मापर युद्ध छोड़ा

घौर आरानिया को मार्चो बने खडा त्रिम । इस आपामार बबबा गुरिकला युद्ध के विषय में एक आपानी सेनापति ने कहना था— यदि हम इनके बिकर छोटे सैनिक दस्त भेजते हैं तो वे कभी बापिस नहीं सौंठते । यदि बड़ी सेना भेजते हैं तो उन्हें कभी साम्यवादी नहीं मिलते । एक अन्य आपानी सेनापति ने आपामार चीनियों का तुलना मधुमक्खियों से करते हुए बताया इसे जितना हटापो वा इनसे जितना बचा उतनी ही प्रबलता से वे शास्त्रमण करते हैं ।

श्यांग माओ सहयोग की स्थिति किसी न किसी तरह १९४१ तक बनी रही किन्तु आपान के पतन के साथ ही यह संधि भंग हो गई घौर १९४७ तक देश पूरी तरह गृह-युद्ध के कलाह तक पहुँच गया । माओ की सेनाओं में श्यांग की सेनाओं पर लक्ष्यों से ही नहीं बल्कि नये विचारों से सुसज्जित होकर भाषा बोस दिया घौर इसके बाद साम्यवादी सेनायों को बर्षों तक विजय पर विजय प्राप्त करनी पड़ी अन्ततोगत्वा ७ दिसम्बर १९४९ को पैंकिम में विजयी लाल सेनाओं के हर्षनाथ के मध्य माओ ने चीन अन्तराज्य की स्थापना की विभिन्न घोषणा कर दी ।

राष्ट्रवादी चीन की सेनाओं के फारसोमा पलायन कर जाने के उपरांत चीन की मुख्य भूमि पर माओ-बाऊ-जू नेह की साम्यवादी योजनाओं का क्रियान्वित करने का मार्ग प्रदक्षत हो गया । साम्यवादियों ने अपनी अस्ति संगठन करने के लिए प्रारम्भ में चीन के बेहातियों घौर कूपकों को तरह-तरह के लक्ष्य बाग दिखाये थे किन्तु बर्षों-बर्षों समय बीतता गया त्यों त्यों वास्तविकता स्पष्ट होती गई घौर चीन की जनता इस बात का अनुभव करने लगी कि वह साम्यवादी तानाशाही के नाह विक्रम में फँस गई है । साम्यवादी सामन के प्रारम्भिक दिनों में ही चीन के किसानों को यह आभास हो गया कि उन्होंने बहुत बड़ा बोसा खाया है घौर जमींदार तथा चीनी सामन्तों से भी बड़ कर कठोर और निर्भय अत्याचारी शासन प्रणाली के वे श्रेष्ठ दास बन गये हैं ।

साम्यवादी आन्ति के परिणाम

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन की अन्ति के महत्व को बताते हुए माओ-स्टेलु ने कहा था— हम सोच समान रूप से यह अनुभव करते हैं कि हमारा कार्य मानव जाति के इतिहास में स्वयी स्वात प्रह्व करेगा । उसमें यह कहा जाएगा : मनुष्य जाति का अतुर्प्राप्त चीन की जनता प्राय से उठ खड़ी हुई है । १० बर्ष के विदेशी शास्त्रमण तथा अष्ट एवं दुर्बल सरकार का अन्त हो गया घौर चीन की जनता एकता की असाधारण भावना में अनुप्राणित होकर उस सरकार के पीछे पड़ी हुई है जिसकी जनता के राजनीति परामर्शवादी सम्मेलन ने रचना की थी । चीन के सन्वे घौर अटनापूर्ण इतिहास में पहिली बार एक ऐसी सरकार की स्थापना हुई है जिसके आदेश का समूचे देश में सम्मान किया जाता है । इसलिए अतिशयोक्ती

एकता-बद्ध एवं बृह् मिश्रण सम्पन्न मय धान का व्युत्पन्न सनातन के नित्यम में धारणिक महत्वपूर्ण उपाय है।²

कीर्तन ने भी 'सिखा है साम्यवादी नेत्र में एक एक ही एक राष्ट्रीय मन्त्र के रूप में चीन का उदय अर्थात् चीन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है।³ वस्तुतः साम्यवादी चीन का उदय एक ऐसी घटना है जिसने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक केवल एक जातिवादी मोड़ उत्पन्न किया है जिसके अनेक नतीजा हैं और विषय परिस्थितियों का जन्म दिया है। इस अन्तिम जो परिणाम निकले हैं अर्थात् इस न विषय राजनीति को और परिस्थितियों को जो नया मोड़ दिया है वह संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

प्रथम इस अन्तिम का स्वयं चीन की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि साम्यवादी अन्तिम में पूर्व ही चीन को पांच बड़ी महाशक्तियों में से एक के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी किन्तु चीन वास्तव में एक महाशक्ति था नहीं। लेकिन साम्यवादियों के नवोत्थ में एक युवागिष्ठ और शक्तिशाली चीन का उदय हुआ जिसने तेजी से प्रगति करत हुए पांच के विश्व में सही अर्थों में एक महाशक्ति का रूप धारण कर लिया। यह सब है कि समुक्त राष्ट्र संघ और उसकी सुरक्षा परिषद में साम्यवादी चीन को सदस्यता प्राप्त नहीं है सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन की प्रत्येक घटना उसके व्यवहार में प्रभावित होती है और विश्व की कोई भी नीति अथवा कोई भी राष्ट्र उसकी उपेक्षा करने की पूर्ण स्थिति में नहीं है समुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ जैसी महाशक्तियों के लिए पांच न चीन एक समस्या बना हुआ है। उनकी राष्ट्रीय सुरक्षा और वैदेशिक सम्बन्धों की सम्पूर्ण नीतियां चीनी विस्तारवाद की धारणा से पूरी तरह प्रभावित होने लगी हैं।

1 We have a feeling in common that our work will be written in the history of mankind. It will say the Chinese people, one quarter of humanity from this day forth stood up. One hundred years of foreign aggression, corrupt and weak internal government have come to an end and the Chinese people inspired by a remarkable spirit of unity have stood behind the government that the Peoples Political Consultative Conference has set up for the first time in the long and eventful history of China. A strong central government whose command is respected throughout the length and breadth of the land has been established. The emergence of New China strong unified and determined is therefore a factor of capital importance in the history of the world.

—Mao Tse Tung.

2 W. Friedmann An Introduction to World Politics page 239

दूसरे, चीन में साम्यवादियों की विजय ने साम्यवादी धीरे पश्चिमी शक्तियों के मध्य एक नया शक्ति-संतुलन स्थापित कर दिया है। द्वितीय महायुद्ध से पहिले एक मात्र सोवियत संघ ही विश्व का साम्यवादी देश था। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त पूर्वी यूरोप के विभिन्न देश—पूर्वी जर्मनी उत्तरी कोरिया और बाह्य मंगोलिया में भी साम्यवादी शासन की स्थापना हो गई। लेकिन साम्यवादी चीन के उदय से पूर्व जनसंख्या सैन्ध शक्ति, आर्थिक स्रोतों आदि सभी दृष्टिकोणों से पश्चिमी गूट साम्यवादी गूट से अधिक शक्तिशाली था। साम्यवादी चीन के उदय से पासा पलट गया। प्रायः स्थिति यह है कि यदि सम्पूर्ण साम्यवादी बलत धीरे पश्चिमी बलत को शक्ति की दृष्टि से प्रांका जाए तो यह नहीं कहा जा सकता कि पश्चिमी गूट किसी स्पष्टतर स्थिति में है। जनसंख्या की दृष्टि से तो साम्यवादी गूट पश्चिमी गूट से घामे बढ़ा हुआ है ही लेकिन सैनिक शक्ति के क्षेत्र में भी वह पश्चिमी गूट को पछाडने की स्थिति में जाने लगा है।

तीसरे, साम्यवादी चीन के उदय से पारशात्य देशों की स्थिति धीरे नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। चीन में साम्यवादी की विजय पश्चिमी गूट, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका की कूनीति की एक महान प्रसफलता की। जापान की पराजय के उपरान्त अमेरिका ने चीन की तत्कालीन राष्ट्रवादी सरकार का विपुल आर्थिक और सैनिक सहायता दी थी। १४ करोड़ १३ लाख आर के बहाज दिय गये थे ७० करोड़ आर सवार पट्टे के अन्तर्गत राष्ट्रवादी चीन को मिले थे और साठ बारह करोड़ आर का अनुदान १९४८ के "चीन कानून" अनुसार उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु इसकी प्रभुर महायुद्ध के बादकूब अ्यान-कार्ड-ब्लेक साम्यवादियों के हाथों बुरी तरह पराजित हुआ और संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिष्ठा को गहरा धाचाल पहुँचा। चीन की राष्ट्रवादी सरकार के पलायन ने (जिसने फारमोसा में अमेरिका की संरक्षकता में चलन थी) अमेरिका को चिन्तित ब्रवा दिया और साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए वह अपनी नीति में जनक महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की बाध्य हुआ गया—

(i) अमेरिका ने फारमोसा में अ्यान की अयोड़ी राष्ट्रवादी सरकार की रजा को अपना उत्तरदायित्व मान लिया।

(ii) उसने यूरोप के अतिरिक्त एशिया में भी साम्यवाद के प्रचरोध की नीति पर धाचरण करना शुरू कर दिया। इसके लिए एक तरफ तो एशियाई देशों के गैर-साम्यवादी तत्वों का आर्थिक आर्थिक सहायता देने की नीति अपनाई गई और दूसरी तरफ उन्हें सैनिक साज-सामान दिया गया तथा साम्यवादी विरोधी प्रादेशिक सुरक्षा संघठनों की स्थापना करने के मार्ग का अनुसरण किया गया। बसिली पूर्वी एशिया में सीटो और पश्चिमी एशिया में बकबाव ईकट या सैटो की स्थापना इसी नीति का परिणाम था।

(iii) अमेरिका ने यह भी निश्चय किया कि यदि प्राचरयकता हुई तो वह स्वयं अपने सैनिक साधनों से प्रत्यक्ष कर में साम्यवादी प्रसार का विरोध करेगा। इसी निश्चय के फलस्वरूप १९५० में बसिली कोरिया की

पूर्वी एशिया

रक्षा के लिए अमेरिकन फौजें साम्यवादियों से युद्धग्रस्त हुयीं और प्रायः बियतनाम में लगभग ३ लाख अमेरिकन सेना उत्तरी बियतनाम के विरुद्ध अपना सैनिक अभियोग चलाये हुए है। अशिया महादीप व घोर भीषण राष्ट्र साम्यवाद के अन्तर्गत चलाये गये अमेरिकन सैनिक सहायता प्रीन सैनिक संघर्षों के आस में फसाये गए।

(iv) विपुल सैनिक सहायता के बावजूद थ्याय-काई-रोक की पराजय में अमेरिकन नीति-निर्माताओं को इस तथ्य की अनुमति करा दी कि केवल सैनिक सहायता से साम्यवाद के प्रसार को नहीं रोका जा सकता। पर विरुद्ध के मध्य विकसित और पिछड़े हुए देशों को प्रतिक्रमिक भाषा में धार्मिक और प्राबिक सहायता देने की नीति का अनुसरण किया गया। विशेष रूप से अमेरिका ने जापान और भारत के धार्मिक पुनर्निर्माण में सहायता व कर उन्हें आकर्षण का सुपुङ्गु बना देने का प्रयत्न किया। अमेरिका इस बात को समझ गया कि बेकारी युद्धमयी घोर तरीकी व परिस्थितियाँ हैं जो साम्यवाद के प्रसार के लिए विशेषरूप से अनुकूल होती हैं अतः इन परिस्थितियों का निराकरण किया जाना अनिवार्य है एवं

(v) अमेरिका न चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। बल्कि ब्रिटेन, फ्रांस आदि अनेक पश्चिमी देशों ने अपने ध्यापारिक मामलों के कारण साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान की और उसके समर्थन बृद्धि की, अतः उनके घोर अमेरिका के मध्य कुछ मतभेद उत्पन्न हो गये।

चीने चीन में साम्यवादियों की विजय सोवियत संघ के लिए बरदान और अभिमान दोनों ही सिद्ध हुई। बरदान इसीलिए क्योंकि इससे जनसंख्या साधन दोनों घोर रूप से अर्थिक संकुचन से साम्यवादी जगत अत्यधिक गति प्राप्त बना और विश्व में अर्थिक संकुचन स्थापित कर सका। परिणाम इसलिये कि माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व में चीन सोवियत संघ का एक बहुत बड़ा प्रतिद्वन्दी बन गया और प्रायः सैद्धांतिक संघर्ष की प्रायः में दोनों देश गति संघर्ष के मध्य से अलग हो गये। वास्तव में साम्यवादी चीन में इस क लिए भारी कठिनाइयों के बीच निश्चित रूप से निहित थे। १९४९ तक सोवियत संघ साम्यवादी जगत का एकमात्र धर्मनिरपेक्ष नेता था और विश्व के सभी साम्यवादी देश उसके विद्यमान थे। लेकिन साम्यवादी चीन के उदय ने सभी साम्यवादी देशों को घुंती दी। ज्यों-ज्यों वह प्रतिद्वन्दी बन कर नहीं रह सकता। अतः यह एक तथ्य है कि साम्यवादी चीन कम या घोर प्रतिद्वन्दी बन गया है। इस और चीन की प्रतिद्वन्दी स्वयं साम्यवादी जगत के मतानुसार चीन समीरतम समस्या बन गई है। पाँचवें पामर और पश्चिम के मतानुसार चीन में साम्यवादी अर्थिक वा अनुकूल एशिया पर अतिव्यवस्था प्रभाव पड़ता निश्चित है। एक घोर तो चीन की साम्यवादी अर्थिक प्रोत्साहित किया व घोर घुंती का में राष्ट्रवादी अर्थिकों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया व घोर घुंती करके जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि मन्त्र की रिपोर्ट

सम्बन्ध-नीति-समिति का मठ वा सम्मेलन चीन साम्यवादियों के लिए विश्व के सभी धोखाधिक दृष्टि से पिछड़े हुए भागों के लिए साम्यवादी सिद्धांत और शक्ति के विकास के लिए प्रायोगिक संघर्ष और परीक्षण स्थल बन जाएगा ।

छट साम्यवादी चीनी आठवां का पूर्वी एशिया-पूर्वी एशिया का राजनीति पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है । ची के एम एलएफएल के शब्दों में "चीन एक महाशक्ति बन गया है और इस रूप में साम्यवाद प्रदान किये जाने पर जार दे रहा है—इस प्रकार की साम्यवाद जिन समस्याओं की मांग करता है वे सरल नहीं हैं और सुदूर पूर्व में जो संघर्ष रहे वह इस प्रतिवाद का परिणाम है । संयुक्त राज्य अमेरिका आज भी साम्यवादी सरकार का चीन को वैधानिक सरकार मानने का उद्योग नहीं है । वह फारमोसा स्थित ग्यांग-काई-शेन की राष्ट्रवादी सरकार का ही चीन की वैधानिक सरकार मानता है और उस अपना भरसक प्रदान किये हुए है । इस समय अमेरिका की सहायता से यही सबसे बड़ा सैन्य रक्षक बाले ग्यांग-काई-शेन का ही पूरा मान्य है । उसने इस टापू का नाम बदल कर ताइवान रख दिया है । इसके पश्चिम में फारमोसा बसन्तकालीन वेल्फेयर के ४८ छोटे द्वीप तथा चीन के तट से १२ मील दूर किमोय और मात्सु के टापू हैं । इस समय इन सब पर ग्यांग का अधिकार है किन्तु साम्यवादी चीन इन्हें अपना हिस्सा समझता है और इन पर अपना अधिकार करना चाहता है । चीनी नेताओं का कहना है कि इन पर संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना की सहायता से ग्यांग का शासन साम्यवादी चीन के लिए बहुत बड़ा खतरा है । भारत में चीन में साम्यवाद के उदय का ही यह परिणाम है कि एशिया में चीन और अमेरिका एक दूसरे के सबसे प्रतिद्वन्द्वी और शत्रु बन गये हैं जिससे यह प्रबल धन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का टूफान पैदा बना हुआ है । अमेरिका के विरोध के कारण ही संघ में चीन का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं हो पा रहा है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चीन में साम्यवादियों की विजय का विश्व राजनीति पर अत्यन्त महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव पड़ा है । इससे नवीन समस्याएँ और उलझनेँ उत्पन्न हुई हैं तथा पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया विश्व राजनीति का केन्द्र स्थल बन गया है । १९२१ में जनरल स्मट्स द्वारा कहे गये थे कि "संयुक्त राज्य यूरोप से दूर पूर्वी एशिया और प्रबल महाशक्ति में पहुँच गया है सम्भवतः उस समय सत्य नहीं था परन्तु साम्यवादी चीन के उदय के फलस्वरूप विश्व राजनीति में उत्पन्न हुए परिवर्तनों से आज वे शब्द विश्व-राजनीति की यथावत्ता के परिचायक बन गये हैं ।

चीन में साम्यवाद के प्रसार के कारण

चीनी बुद्ध-बुद्ध में साम्यवादियों की विजय एक अप्रत्याशित घटना थी । ग्यांग काई शेन चीन की साम्यता प्राप्त सरकार का अधिकारशील अध्यक्ष था ।

जापान की पराजय के पश्चात् चीन के अधिकांश भाग पर उसकी एकदम सत्ता स्थापित हो गई थी। इसके प्रतिरिक्त समूह राज्य अमेरिका में भी उसे विपुल प्रायिक एवं वैश्व सहायता मिली थी। किंतु फिर भी साम्यवादियों के साथ सघर्ष में वह अस्थिर रूप से पराजित हुआ। राष्ट्रवादी सरकार की इस पराजय और साम्यवाद की चीन में हम निरुत्साह विजय के मुख्यतया निम्न निम्नित कारण बताये जाते हैं—

(१) श्यांग काई शेक ने किसानों के महत्व को गहरी समझ था जब कि माओ इनके महत्व को समझ कर उन्हें संगठित करने में जुट गया था। १ फूसाई १९४१ को माओ ने 'जनता के लोकतन्त्रीय अधिनायक तंत्र' विषय पर लिखे गये अपने प्रसिद्ध लेख में बताया था कि मजदूर लोकतन्त्र चार वर्गों— मजदूर किसान छोटी बुजुर्गों का प्रतिनिधित्व सब होना और इसका नेतृत्व साम्यवाद बल द्वारा हुकूम और धमिक करे। इसीलिए चीन के नये शासक मध्ये में हम के सूचक एक बड़े तारे के साथ चार पीछे छोटे तारे रखे गये। श्री माओ ने स्पष्ट शर्तों में यह कहा कि 'साधियों हम माओज्यसिंह के बमीदार वर्ग के तथा मजदूर माओ के पुत्रीवादियों के वर्ग पर किसानों मजदूरों समूह बुजुर्गों और राष्ट्रीय बुजुर्गों के अधिनायक तंत्र स्थापित कर रहे हैं।' किसानों और मजदूरों की संगठित सहायता के बल पर ही निजंबर के अन्त तक साम्यवादी सेनाओं ने सम्पूर्ण चीनी महाद्वीप का जीत लिया।

(२) चीन की राष्ट्रवादी सरकार का मुख्य आधार मध्यम वर्ग बना रहा और उसने किसानों और मजदूरों की स्थिति सुधारण की ओर कभी कोई ध्यान नहीं दिया। साम्यवादियों ने इसका पूरा लाभ उठाया। माओ ने किसानों को सख्त बल दिखा कर अपनी ओर आकर्षित कर लिया। डा० सनयातसेन का मान्य उच्चाधिकारी होत हुए भी श्यांग-काई-शेक अन्ततः चीनी भूमिपतियों और प्रजापतियों का प्रतिनिधि सिद्ध हुआ। यह वह भूमि सुधारों का बेसा धारक कार्यक्रम प्रदर्शित न कर सका बरन् कि चीन के किसानों में धारक्यक था। लेकिन माओसेतु ने कृषक वर्ग को अपने कार्यक्रम का आधार बनाया। साम्यवादी होते हुए भी उसका कार्यक्रम मार्क्सवाद की अपेक्षा डा० सनयातसेन के त्रि-मूर्तीय सिद्धान्त—राष्ट्रवाद लोकतन्त्र और धार्मिकता या प्रायिक समानता के अधिक अनुकूल था। चीन का कृषक और धमिक वर्ग माओ के धारक्यक कार्यक्रम के बर्गीभूत होकर साम्यवादियों को हृदय से सहयोग देने लगा। फलतः श्यांग काई शेक की राष्ट्रवादी सरकार को पराजय का मुल देसना पड़ा।

(३) श्यांग-काई-शेक की सरकार अपनी कुजोमित्रीय का प्रशासन पराम्भ भ्रष्ट और अकुशल था। यह युद्ध से उत्पन्न हुई मीषण मुहा स्थिति और अन्य प्रायिक समस्याओं का समाधान करने में अक्षम रहा और जाता की महाभूमि से बैठा। परिणामतः चीन में नये-नये कमिन्तारी विचारों का अन्तर्गत का अक्षर मिल गया।

(४) श्यांग को अमेरिका से साम्यवादियों के विरुद्ध जो सहायता

दिसी यह न केवल आजादी की उचित उचित समय पर भी नहीं मिल सकी। इस सहायता का एक बड़ा धन-प्रत्येक प्रकार के सम्प्राप्त पीनी आवश्यकताओं के अनुकूल न था। इसके प्रतिरिक्त साम्यवादियों की मैत्री तथा घोर मुद्रा प्रणामी भी राष्ट्रवाहिनियों से कहीं अधिक घटती थी। साम्यवाहिनियों ने आजादी भारत मुद्रा नानि का अनुकरण किया था और यह मुद्रा नीति इनकी सफलता का एक बहुत बड़ा कारण बनी।

(५) व्यांग-काई-लेक राष्ट्र को शक्तियाली बनाने की प्रयत्ना अपनी व्यक्तिगत शक्ति को सुवृद्ध बनाने के लिए अधिक चिंतित था। वह अपने सहयोगियों से भी सहायता प्राप्त करने में असफल रहा। उसकी असहिष्णुता ने चीन के बुद्धिजीवियों व विचारियों को अपने शासन का विरोधी बना दिया। एक विद्वान ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि आक्रमणकारी की सैनिक या शक्ति सामना करने पश्चिमी राष्ट्रों ने सैनिक सहायता प्राप्त करने तथा राष्ट्र संघ को हस्तक्षेप के लिए प्रेरित करने में अपनी प्रयत्नशीलता के कारण व्यांग की सरकार को अपने देश में सर्वाधिक सम्पन्न तथा समृद्धिपूर्ण माना जायान को सौंप देना पड़ा यहाँ तक कि बलिब चीन के लखनौ नगर तथा मानकिंग घोर पैकिंग जैसे महत्वपूर्ण केन्द्र भी उनमें चिन पये।

(६) साम्यवादी व्यांग के राष्ट्रवादियों से कहीं अधिक सुसंगठित उत्साही और ईमानदार थे। साम्यवादियों को अपने देश की जनता में बहरी बहरी थी। चिन प्रवेशों में उनकी सरकार कायम थी वहाँ की शासन व्यवस्था किसी भी मापदण्ड के अनुसार पक्षी कही जा सकती थी। सम्पूर्ण बल में साम्यवादी अपनी कार्यकुशलता और ईमानदारी के लिए प्रख्यात थे। साथ ही सम्पूर्ण देश यह जानता था कि आजादी के विरुद्ध साम्यवादियों ने ही चीन की प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा की थी। व्यांग-काई-लेक का उसके अधिनस्थ दो सेनापतियों ने गिरफ्तार करके इमी जल पर छोड़ा था कि वह साम्यवादी चीनियों ने विरुद्ध अभियान समाप्त करके आजादी विरोधी संयुक्त मोर्चे को बुद्ध बनाये और साम्यवादियों तथा उत्तर के सैनिक नेताओं के साथ आजादी के विरुद्ध सहयोग करे। साम्यवादियों से सहयोग करने पर ही आजादी की पराजित किया जाना सम्भव हो सका था।

बत पहले आजादियों और फिर व्यांग की पराजय के बाद वहाँ वहाँ साम्यवादियों की सेनायें पहुँची यही उनका मुक्तिशासता के रूप में स्वागत हुआ। १९४५ के अन्त में व्यांग ने स्वयं कहा था — 'विद्रोहियों के विरुद्ध अपने अभियान में हमें सैनिक तथा जन साधारण के संयुक्त व सम्बद्ध प्रयासों का लाभ प्राप्त नहीं हुआ। हमें कई बार मुद्रा की कानी पड़ी है। यही हमारा असफलता का कारण है।'

संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में बहुधा यह कहा जाता है कि साम्यवादियों की विद्रोह सोवियत सहायता के कारण सम्भव

हुई। लेकिन उनका यह कथन सत्य से कितने दूर है। इस सम्बन्ध में यूरेन न मिसा है कि—

“प्रथम महायुद्ध के बिनाश एव विध्वंस न मित्र राष्ट्रों धीरे उनके शत्रुओं की मूर्खता के साथ मिल कर कम का साम्यवाद के हवाले कर दिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंस और बिनाश में मित्र राष्ट्रों तथा शत्रुओं की मूर्खता के साथ मिलकर जोन को गाम्बाल के हाथों में मौन दिया। इन दोनों घटनाओं से समुक्त राज्य अमेरिका को इतना बहुरदस्त पकड़ा गया कि १९१७-१८ में कुछ अमेरिकन यह कहने लगे कि कभी कति प्रथम पड़यत्न का परिणाम भी धीरे १९८१-२० में उठे कि कहा कि जोनी जॉन या ता कही पड़यत्न का परिणाम है प्रथम। यह न सिगमन् स्विन कुछ इतिहासियों के पड़यत्न का फल है। ये व्याख्यान ऐसी नहीं हैं जिनके ऊपर सम्मोचता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। कम में कम्युनिस्टों की विचार का यद्यपि २०वीं शताब्दी में कम ही महानतम विचार और अमेरिका की महानतम पराजय के नाम से पुकारा जा सकता है। तथापि बहुत ना अमेरिकनों का कार्य भी धीरे न उनका कृतियों से ही कोई सम्बन्ध या अपितु वह चीनियों के द्वारा ही सम्पन्न हुई थी।”¹

—

यदि सार कम में प्रकट किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि साम्यवादियों को २२ वर्ष के उग्र संक्षुर्प के बाद सफलता मिलने के प्रमुख कारण य थे—व्यांग-वाई-झेक की घखगता भ्रष्टाचार, युद्ध से उत्पन्न हुई भीषण मुद्रा स्फीति तथा अन्य जायिक समस्याओं का हल न कर सकने के कारण धीरे जमीनारों धीरे पुच्छीपतियों का समघन बनने में मारी जनता की महाकुमूर्ति को देना साम्यवादियों का सुदृढ धीरे मुनिपत्रिन मज्जठन एव प्रथम घावों को क्रियान्वित करने का प्रबन्ध उसाह दृढ़ सद्गुण उत्कृष्ट यदा यद्वि विश्वास तथा घनघक समय सोकप्रिय भूमि सुधार

- 1 "The ruin and destruction of World War I coupled with the follies of Allies & enemies delivered Russia to Communism. The destruction and ruin of World War II coupled with the follies of allies and the enemies delivered China to Communism. Both developments were so shocking to the U.S.A. as to cause many Americans in 1917-18 to explain the Russian Revolution as a German Plot" and in 1949-50 to explain the Chinese revolution as a "Russian Plot or the consequence, somehow of a conspiracy of traitors" in Washington. Since these explanations are unworthy of serious consideration they need not be dwelt upon here. Red conquest of Russia was the work of Russians. Red conquest of China albeit Russia's greatest victory and America's greatest defeat in the 20th Century was the work neither of Americans nor of Russians, but of Chinese."

—Schuman

उनका परिस्वितियों में पूरा साम उठाने की सामर्थ्य तथा जनता के सब बगों की सहानुभूति प्राप्त करने वाला धारक कार्यक्रम। वास्तव में यह प्रयोग्यता निष्कम्पता उपेक्षा और उदासीनता का सक्षमता क्रियाशीलता उत्साह साहस भ्रष्टा और विश्वास के साथ संघर्ष या जिममें दूसरे पक्ष की विजय सर्वथा स्वाभाविक थी।

साम्यवादी चीन की विदेश नीति के आधारभूत एवं प्रभावशासी तत्त्व

साम्यवादी चीन की विदेश नीति अन्य देशों की भांति कुछ आधारभूत सिद्धान्तों के आश्रय पर संरक्षित है और उसके ऊपर अनेक तन्त्रों का प्रभाव है जिनमें से कुछ प्रमुख संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) साम्यवादी विचारधारा

सोवियत रूस की भांति चीन की विदेश नीति पर भी मार्क्स और एनिंग के सिद्धान्तों का पूरा प्रभाव है। चीनी साम्यवादी सरकार की स्थापना की इसी वर्षों के प्रवसर पर राज्य प्रमुख स्तुताप्रोधी ने जो घोषणा की थी उससे चीन का साम्यवाद पर नारी भोग देना स्पष्ट हो जाता है। मार्क्स चीन का यह विश्वास है कि उसने जिस तीव्र गति के साथ आर्थिक प्रगति की है उसकी प्रथमकाल में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। चीन में आधुनिक कृषि उद्योग विज्ञान एवं सस्कृति का विकास इसलिये सम्भव हो सका कि उसमें अग्नि द्वारा साम्राज्यवाद सामन्तवाद और भौकरताही—पूँजीवाद एवं पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका है। साम्यवादी रूस का वहाँ के जन-जीवन में नारी महत्व बढ़ गया है। जनता की समस्त सफलताओं को रूस की विजय जोषित किया जाता है। यह सामाजिक जाति तथा निर्माण रूस की सहायता से ही सम्भव हो सका है। स्तुताप्रोधी के शब्दों में— हमारी सारी सफलताएँ मार्क्सवाद-निर्माणवाद की नवीन दृष्टियों एवं नवीन सफलताएँ हैं। साम्यवाद के कारण ही चीन इतना समर्थ हुआ है कि उसने प्रतीत के अपने अपमान को समाप्त कर दिया है तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों की साम्यवादी भांति करने में सहायता कर सकता है। साम्यवाद के मुख्य सिद्धान्त वर्ष सङ्घर्ष इतिहास की नीतिक व्याख्या पूँजीवाद का साम्राज्यवादी रूप प्रादि से चीन की विदेश नीति पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुई है। इस दृष्टि से एशिया तथा अफ्रीका में साम्यवाद के प्रसार को चीन अपना उत्तरदायित्व मान कर चलता है।

(२) राष्ट्रीय हित

साम्यवादी चीन की विदेश नीति अपने राष्ट्रीय हित की रक्षण में विचारधारा को भी रक्षण बना लेती है। सोवियत रूस निरक्षरबीकरण पर जोर दे रहा है तथा भांतिपूर्ण सह-प्रस्थित्व की नीति पर चल रहा है। किन्तु चीन द्वारा इन व्यवहारों की कटु आलोचना की जाती है क्योंकि वहाँ के नेताओं की दृष्टि में ये नीतियाँ चीन के राष्ट्रीय हित को रक्षण में असमर्थ हैं। वहाँ तक चीन की विदेश नीति का प्रश्न है उसमें सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय हित

जाते ही साथ-साथ बसते हैं। 'सिद्धान्त' राष्ट्रीय हित को प्रभावित करता है तथा राष्ट्रीय हित' के अनुसार ही सिद्धान्त का रूप भी ठास दिया जाता है। सिद्धान्तों की व्याख्या करते समय उस देश के भूगोल इतिहास राष्ट्रीय परंपरा जनीन के अनुभव तथा देश की वर्तमान आवश्यकताओं का माप प्रभाव पड़ता है। चीन के नेताओं के प्रत्येक कार्य का मूल सक्षय देश के शक्ति-स्तर (Power Status) का बढ़ाना होता है। वे चीन को सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा अमरीका के समकक्ष बनाना चाहते हैं। उनका विचार है कि इसके पास भी इतना शक्ति या आय को एक महात् शक्ति (Great Power) के पास होती है। जो देश इसे महात् शक्ति मानने से इन्कार करे उसे ऐसा मानने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए भयबा कोई बड़ी शक्ति उसे अपने समान न माने तो उसका उनका पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। शक्ति को पाने एवं बढ़ाने में चीनी नेता किसी भी बलिदान को बड़ा नहीं मानते। भारत भ्रमण के समय चाऊ-एन-साई ने उत्तर प्रबल के राज्यपाल से कहा था कि यदि धावे विश्व का साम्यवादी बनाने के प्रयत्न में चीन की प्राचीन जनसंख्या की बलि देना पड़े तो भी हम कोई परवाह नहीं ह्यायी।²

(३) पूंजीवाद का विरोध

साम्यवादी देश होने के नाते चीन की विरहनीति पूंजीवादी देशों के साथ प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण सम्बन्ध रखती है। इन सम्बन्धों के पीछे अतीत के अनुभवों की बहुतों काम करती है जबकि उसे साम्राज्यवादी शक्तियों के पर्याचार एवं होवस का शिकार बनना पड़ा था। इस समय जहाँ भी बड़ी उपनिवेशवादी शक्तियों का विरोध किया जाता है वहीं पर चीन का हस्तक्षेप प्रारम्भ हो जाता है। चीनी नेताओं का कहना है कि सभी शोषित देशों में चीनी जनता अपना प्रतिबिम्ब देखती है। यही कारण है कि एशिया अफ्रीका तथा सेंटिम अमेरिका के देशों में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्र प्राप्त करने के लिए जो भी संघर्ष किया है चीन की जनता ने उनको यथाशक्ति सहायता प्रदान की है। पिछड़े देशों में राष्ट्रवादी शक्तियों को उन्माद कर जहाँ साम्यवादी शक्ति के उपयुक्त वातावरण बनाना चीन की विरह नीति का मूल सिद्धान्त एवं आधारभूत अंश रहा है।

(४) राष्ट्रवादी चीन की समस्या

साम्यवादी चीन के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में सबसे बड़ी बाधा राष्ट्रवादी चीन की फारमोसा में स्थित सरकार का माना जा सकता है। राष्ट्रवादी चीन के नेता च्यान-बाई लोक को ही विश्व के कई प्रमुख राष्ट्रों द्वारा चीन का अखिर शासक माना जाता है। सुरक्षा परिषद में भी इसी चीन का स्थायी पद प्राप्त है। फारमोसा चीन की भूमि से केवल नौ मील की दूरी पर स्थित है इसलिए यह साम्यवादी चीन की सुरक्षा के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। फारमोसा की रक्षा में अमरीका का मातवा बेटा तथा सम्मानित राजन्त्र नेता

1 "Evening News Bombay 8th March 1962.

गयी हुई है। इन सबके कारण साम्यवादी चीन की विदेश नीति हर संभव प्रयत्न द्वारा अपनी सुरक्षा एवं एकीकरण की दिशा में प्रयाण करती है। साथ चीन के नेता फारमोसा की समस्या पर दबावपूर्ण व्यवहार पर उतर पाते हैं। वे किसी प्रकार का ऐसा मनमौता नहीं करना चाहते जिससे कि इस समस्या को घूना ही छोड़ दिया गया हो।

(१) विदेश नीति के जनक 'माघो'

जिस प्रकार मानिप्रिय भारत की विदेश नीति सुबनकर्ता स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू से उसी प्रकार युद्धप्रिय विस्तारवादी साल चीन की विदेश नीति का निर्माण बहुत कुछ साम्यवादी नेता माघोसे-गुङ्ग के मस्तिष्क द्वारा हुआ था। माघो एक साम्यवादी है जहाँ चीन के सोवा एवं वस्तुओं का उसका ज्ञान बहुत व्यापक है किन्तु पश्चिमी विचार एवं सभ्यता के बारे में वह शून्य प्रामाण्य है। माघो ने एक बार लिखा था कि पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने विपत्तनाम बर्मा कोटिया नेपाल और भूटान को चीनी साम्राज्य से अलग कर दिया था जैसे घसस में ये चीन के ही भाग है। इससे स्पष्ट होता है कि माघो चीनी परम्पराओं में पूरी तरह रंवा हुआ है। जैसे वे मान करती थी राजनीतिक दृष्टि से चीनी साम्राज्य का भाग न थे। ये सभ्यता एवं सम्यता की सभ्यता के कारण चीन को अक्सरबल कुछ भुगतान करते थे। वास्तविकता चाहे कुछ भी हो किन्तु माघो के विचारों से चीन की विदेश नीति के स्वरूप की एक भ्रमक प्राप्त होती है। माघो को अपने देश के महान् शक्ति पर नाथ है तथा उसे यह बेह कर मारी घसलोप होता है कि इस एक अमेरिका द्वारा चीन को समानता का स्तर नहीं दिया जाता और महान् शक्तियों के साथ बैठ कर विश्व की समस्याओं पर विचार करने से उसे रोका जाता है। यह घसलोप ही चीन के शासनकारी राष्ट्रवाद के विभिन्न कारणों में प्रधान है।

माघो चीन में सबसे प्रमुख शक्तिशाली व्यक्ति है जिसने मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद की नीतियों के लिए व्याख्या की है चीन के साहित्य एवं कला के धारकों एवं स्तर निर्धारित क्रिये हैं सभी राजनीतिक नीतियाँ एवं कार्यवाहियाँ उसी के नाम से प्रसिद्ध होती हैं। साथ देश माघो की नीतियों एवं कार्यों का गुणमान करता है। माघो के नेतृत्व में चीन द्वारा जो नीतियाँ अपनायी जा रही हैं वे जामर ही किसी अन्य नेता के नेतृत्व में अपनायी जा सकती थी। इससे सन्नेह नहीं कि चीन द्वारा अपनी नीतियों में अपनाई गई सबकुछ एवं दृढ़ता में माघो का बहुत कुछ हाथ रहा है। यहाँ तक कि कई बार चीन की विदेश नीति के अनेक बौद्धिम (Riak) भी उठाने का साहस किया है। उदाहरण के लिये साक्षिय संघ के साथ उसका मतभेद का सिमा का सफाई है। साम्यवादी चीन ने एक स्वतन्त्र बड़ी शक्ति के रूप में व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया है। महान् शक्ति की समस्त धारक्यताओं को वह प्राप्त करने में प्रयत्नशील है जैसे चीमाघो पर सुरक्षा पद्धती देशों में मनपसन्द नामन इसके स्वयं के प्रभाव क्षेत्र प्रभावशील सदि-व्यवस्था अपनी नीति को क्रियान्वित करने के लिये सब प्रकार के साधन अपनाता पाहि।

चीन की विदेश नीति के साधन

साधन का चीन पूरी तरह साम्यवाद में उस जुका है प्रकृत बनता जा रहा है। यहाँ जीवन की प्राचीन परम्पराओं में घोर चीन पद्धतियों का बुझाया कह कर ठोकर मार दी गई है। साम्यवादी चीन ने अपनी जिस एक मात्र परम्परा को रखा है वह है विस्तारवाद एक साम्राज्यवाद की मूल। जिस किसी भी देश पर चीनी राजा ने प्रस्थायी या नाममात्र को कभी अधिकार किया था उसे चीन की वर्तमान सरकार 'लुप्त हुआ मार्ग' कह कर पुकारती है। अपने सक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये चीन की विदेश नीति जिस साधनों का प्रयोग करती है वे मुख्यतः निम्न प्रकार हैं—

(१) युद्ध एवं हिंसा

चीन की युद्धप्रिय एवं विश्व शांति का दुश्मन बनाने वाले अनेक तत्व हैं। उदाहरण के लिये नेताओं की महत्वाकांक्षा साम्यवाद में अन्तिम का समर्थन मूलकाम के पूर्योपस्थियों के घोषण का कट्टर अनुमोदक धारि। मन् १९१६ में माओ ने लिखा था कि साम्राज्यवादियों ने चीन के बहुत से भाग उससे लिये हैं। जापान ने कोरिया, मन्चूरिया, द्वीप प्रेरिकारज और पाट-थायर इगर्लैंड न बर्मा भूटान नेपाल तथा हांगकांग म्पन में एनम तथा पुंग म जैसे मामूली इलाके मेकाओ का क्षेत्र चीन से छीन लिया।^१ इस प्रकार की भावनाएँ व्यक्त करने वाला व्यक्ति जब पूरी शक्ति अपने हाथ में ले तो यह कल्पना की जा सकती है कि वह क्या करेगा? माओ तथा चीन के अन्य नेता युद्ध को अनिवार्य तथा उचित मानते हैं। उनका विचार है कि अपने सक्ष्यों को पूरा करने के लिये उनके पास एक मात्र मार्ग युद्ध ही है। माओ ने लिखा है कि—हम साम्यवादी युद्ध को सर्व-अपेक्षक मानते हैं। यह युद्ध अनुचित न हो कर उचित एवं मार्क्सवादी होता है। इस न बन्दूक न कोर से समाजवाद स्थापित किया है। सारा संसार केवल बन्दूक का सह्यपता से ही बदला जा सकता है। युद्ध का सबसे युद्ध से ही समाप्त किया जा सकता है। बन्दूक से छुटकारा पाने के लिये बन्दूक ही हमें सनी होगी।^२ चीन युद्ध को साम्यवाद के प्रसार के लिये आवश्यक मानता है। उसका मत है कि नातिपूर्ण मनु-अस्तित्व की नीति जिसका सोवियत मव पालन कर रहा है वह साम्यवाद के विरुद्ध है तथा नगोपनवाद की प्रतीक है।

(२) अन्ये सधर्ष की योजना

चीन के साम्यवादी अधिकारियों का विश्वास है कि एशिया में साम्यवाद के प्रसार के लिये अन्ये सधर्ष की योजना का उपयोग करना पड़ेगा। यह योजना साम्यवादी मित्रांशों से ही ली गई है किन्तु इसकी स्थापना माओ

1. Mao-Tse Tung Chinese Revolution and the Chinese Communist Party

2. Selected Works of Mao-Tse Tung Vol II Bombay p p 272-73

ने की है। माघो का विचार है कि पूरबीवासी देशों में कुछ निरन्तर तथा साहम नहीं हाता इसलिये जब उन्क बिद्व सावधानी के साथ धनसत देन कर एक सवा समर्प छोड़ा जायगा ता क टिक नहीं सकये। साम्यवादी देशों के पीछे सिङ्गापु का बस होता है तथा राजनीति का सहारा और इसी कारण के पूरबीवासी देशों में सोड फ़ोड कर सकत है। सवे संघर्ष की योजना के अधीन पश्चिमी देशों का तीव्र विरोध किया जाता है और अन्य देशों में साम्यवादी बलो की सहायता की जाती है। चीन द्वारा पश्चिमी शक्तियों के बिद्व प्राक्रमण की बमकी देने की नीति अपनाई जाती है। इस बमकी का मक्य पहले ताईवान को लना बहाँ स्थित अमरीकी शक्ति को उकमाना तथा एशिया के देशों में बहा साम्यवादी आन्दोलन हो रहे हो बहाँ पश्चिम के हस्त सेप को रोकना है। कौरिया बियतनाम प्रादि स्थाओं पर इन बमकी के वास्तविकता भी प्रहस कर भी है।

(३) साम्यवादी प्रचार

एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप में कहीं-कहीं साम्यवादी आन्दोलन हो रहे हैं। चीन द्वारा इनको सहाय्य एवं मार्ग-दर्शन दिया जाता है। उसका यह प्रयास रहता है कि ये आन्दोलन चीन को प्रायण मान कर मज न कम धारण कर लें। ऐसा करन क लिय चीन द्वारा न केवल हथों का समर्थन ही प्रदान किया जाता है बल्कि सस्त्रास्त्रों की सहायता भी। चीन का निश्वास है कि इस प्रकार के त्रिसारमक आन्दोलनों द्वारा साम्यवाद का पक्ष मजबूत होता है पूरबीवाद की बड़ डोमी पकड़ी है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि चीन का लोकप्रियता प्राप्त होती है।

(४) सैनिक सहायता कार्यक्रम

साम्यवाद की स्थापना एवं अपने प्रभाव का रंग बमाने के लिये चीन द्वारा किसी भी देश को सैनिक सहायता दी जा सकती है बबबा देने की बमकी भी जाती है। जिस देश को इस प्रकार की सहायता दी जा रही है उसमें कुछ बातों का होना बकरी है जैसे—उस देश के मक्य प्राब बही हों जो स्वय चीन के हैं इस सहायता से चीन की सुरक्षा को किसी प्रकार का खतरा पैदा न हो उस सहायता की प्रतिक्रिया स्वल्प किसी बड़े देश का मुकाबला न करना पड़े, पश्चिम द्वारा उस देश में हस्तक्षेप की सम्भावना न हो प्रादि। साम्यवाद की स्थापना के लिये किसी देश का सैनिक सहायता प्रदान करते समय चीन सदैव इस बात का ध्यान रखता है कि बह किसी बड़े मुड में न पड़ जाए। यह सहायता गैर मरकाठ एवं सचीनी होती है तथा खतरनाक मुकाबला होने की अवस्था में इसे कमी भी बन्ध किया जा सकता है।

(५) शक्तिपूर्ण सह प्रस्तित्व

इस साधन का उपयोग प्राय लोकप्रियता प्राप्त करने के लिये किया जाता है। चीनी नेताओं ने शक्तिपूर्ण सह प्रस्तित्व की नीति की ब्याख्या इस प्रकार से की है कि वे धनसत के अनुसार बुद्ध एवं जाति दोनों ही रास्तों

को धपनाने के लिये स्वतन्त्र हो जाते हैं और उनकी प्रतिष्ठा को किसी प्रकार की धाँच नहीं घाती। चीन यह कहता है कि पश्चिमी देश धाँकमरणाकारी हैं। यदि वह मजिब कायबाही करता है तो इसका मध्य बहु धाँकमरणा बताता है इसी प्रकार जब उस मगता है कि मियदी का पमडा मारी है तो सेना का घोर घाँग भी नहीं उठाता तथा मजिब माघन न धपमान पर धाँतिप्रिय हाम का मुफ्त घोरक मुट लेता है। धपनी इस नीति क धधीम चीन एशिया क देनों म यह माँग करता है कि वे नटस्य घने रहें तथा धपना रक पश्चिम की धार मुका हुवा न रमें बरन् इस प्रकार की नीति धपनार्ये जो चीन की मानि के धनुकूल हा। कोई देश जो कि क्षानिपूर्ण मह प्रस्तित्व मे विश्वास करता है यदि पश्चिम के साथ सहयोग करने लगे तो यह धाँकम्यक नहीं रहता कि चीन उसकी स्वतन्त्रता तथा क्षानिपूर्ण सह प्रस्तित्व में बणिन धम्य सिद्धान्तों क प्रति सम्मान दिनायगा। दूसरे क्षणों में यह कहा जा सकता है कि जो देश चीन की लोकप्रिय राष्ट्रमयिकता का स्वागत नहीं करता स्थानाय माम्यबाही दम द्वारा किये गये चीनो प्रचार का दमन करता है म्य तीय माम्यबाही धाम्योमन के प्रति सश्रिय कल्प उठाता है तथा पश्चिम क माध उधार म्य धपनाता है यह चीन का मित्र नहीं रह सकता अनु धन धायेगा तथा उसके साथ चीन क्षानिपूर्ण मह प्रस्तित्व जैसे किसी सिद्धान्त का पामन नहीं करेगा।

(६) बोहरी नीति

चीन की विदेश नीति पर बिचारधारा एक राष्ट्रीय श्रित इन दो तर्कों का मुख्य रूप से प्रभाव है। इन दोनों क बीच धसनुयन पदा हो जान या साम्यस्य न र्कण पर जा नीति घन जाती है उमका धनुमान चीन और कग क गम्बणो को देश क मगाया जा सकता है। इन दोनों देशों की नीति एक ही मग सहयोग एक प्रतिस्पर्धा की है। दोनों देशों के बीच सहयोग का धाधार एक-ही बिचारधारा है। दोनों ही बिच में साम्यवाद का प्रचार करना चाहत है, दोनों ही पुम्बीबाण के क्षु हैं। इन कारणों से दोनों देशों के बीच परस्पर मैत्री एवं सहयोगपूर्ण संबंधों की रचना हुई किन्तु मन् १९३३ के आम पाम म ही यह स्पष्ट हान मग गया है कि चीन के श्रित मोबियत सप के हिन। के मित्र ही नहीं बरन् बिरोपी भी हैं। चीन यह प्रयत्न करता है कि साम्यवाद के प्रचार का कार्य बहु मोबियत सप के धनुवर के रूप में नहीं बरन् साथी क रूप में कने तथा गर-माम्यबाही देशों में उम एक बड़ी क्षानि माना जाए। इस प्रकार मोबियत सप के साथ चीन के साम्य प्रनिस्पर्धापूर्ण हो गये।

अब इन दो साम्यबाही देशों के धाधती संबंधों का यह रूप हो गया तो माणियन सप द्वारा चीन को दी जाने वाली नहायना मे भी माधगामी तथा सीरे मारी धा गई। चीन का कम म धाधिक मशायना क्षानिय घोर मिश्रक काधर-हिन एव धप्रयथा धाँकमरणा द्वारा मणिया में साम्यवाद के प्रचार क निन मरुयोग क्षानिय। यह उसे लसी प्राण हो मकेगा जबकि बर कम क ि नों की साधना म सहयोग क। कम का सबसे बड़ा हिन है अन्तर्राष्ट्रीय माम्यबाही

चीनी गणराज्य उन सभी सोव्यों को राजनीतिक छरण प्रगम करेगा जो जन-हित्ति शांति तथा जनतन्त्र के लिए सभासित सयप में भाग लेने के कारण अपनी सरकारों द्वारा मर्यापे गये हों ।

इसी आधार पर १ अक्टूबर १९४९ को जब चीन की साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तो उसने अपनी विदेश नीति के ये मक्य घोषित किये—

- (i) चीन की स्वतन्त्रता और अखण्डता की रक्षा करना
- (ii) स्वामी अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सब देशों के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग के नियम प्रयत्न करना
- (iii) उन विदेशी सरकारों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना जो राष्ट्रवादी चीन से अपना संबंध विच्छेद कर चुकी हों
- (iv) साम्राज्यवादियों और विधेयत संयुक्त राज्य अमेरिका के विकृत संघर्ष में साम्यवादी देशों का साथ देना एवं
- (v) प्रवासी चीनियों के हितों और अधिकारों की रक्षा करना आदि ।

चीन की विदेश नीति के उपरोक्त सभी मक्य ऊपर से बहुत सुन्दर और आकर्षक दिखाई देते हैं किन्तु इनकी व्याख्या चीन की अपनी स्वेच्छा पारी विस्तारवादी व्याख्या है जिसका विश्व का कोई भी शक्तिप्रिय राष्ट्र कभी स्वागत नहीं करेगा । इस सुसूत्रबन्धी विदेश नीति का वास्तविक व्याख्या करने से पहिले यह धीर जोर देना उपयोगी होगा कि वर्तमान समय में चीन अपनी विदेश नीति के इन आभारभूत मक्य को प्राप्त करने में प्राणधन से मन्थेष्ट है—

(१) संपूर्ण एशिया में साम्यवाद का प्रसार प्राप्त के स्वीय डंम का नहीं हो, बल्कि विकुष्ठ मार्क्सवाद सनिनवाद-उम का कुछ साम्यवाद हो ।

(२) हिंसा छूत बल और दीघम द्वारा साम्यवादी चीन की सीमाओं का अधिकारिक विस्तार किया जाए ताकि एशिया में पूर्वी युरासियन डंम के कठमुठमी देशों की स्थापना की जा सके ।

(३) एशिया के समस्त देशों पर प्रभावशाली राजनीतिक शक्ति और आर्थिक नियन्त्रण स्थापित किया जाए ।

(४) संपूर्ण एशिया और सुदूरपूर में पश्चिम के विधेयकर अमेरिका के प्रभाव को समाप्त कर दिया जाए ताकि उसकी (चीन की) शक्ति महत्वा कांताधो की पूर्ति में कोई बाधा न पड़े ।

(५) एशिया ही नहीं अल्पितु समस्त विश्व का एकसूत्र साम्यवादी नेता बनने की दिशा में हर उपाय में आगे बढ़ा जाए चाहे इस मक्य का प्राप्त करने के लिये आने जाति मान्यों से ही संपर्क नहीं न मोक्ष लेना पड़े—कम चीन अन्तर्राष्ट्रीय का यही एक प्रमुख कारण है ।

(९) मेना को आधुनिकतम धीर आन्वित शस्त्रास्त्रों एवं सैनिक उपकरणों से सुगज्जित करके तथा चीन की राष्ट्रीय शक्ति का सैनिक आधार पर पूर्ण गठन करने उपरान्त सन्धियों को प्राप्त किया जाए।

अब हम चीन की विदेश नीति की वास्तविक व्याख्या पर आते हैं।

चीनी विदेश नीति का प्रथम महत्वपूर्ण लक्ष्य चीन की स्वतन्त्रता और अखण्डता की रक्षा का है। इस लक्ष्य का धर्मिप्राय यह है कि साम्यवादी चीन जन मांग पर भी अपनी ही अधिकार मानता है जिन पर अधि-राष्ट्रीय सरकार का अधिकार है। इस प्रकार फारमोसा अथवा ताइवान पर चीन की सरकार अपना प्रभुत्व मानती है और उसे वेत-अन प्रकारैण सेने की प्रयत्नशील है। वे मांग जिन पर चीन का अधिकार का धीर जो कामाल्पर में चीन से प्राप्त हो सके और जिन्हें राष्ट्रीय सरकार वापिस नहीं ले सकी उन्हें भी साम्यवादी चीन सेने का दावा करत है। पिछले दो हजार बरों में चीन ने शक्तिशाली होने पर अपनी विस्तारवादी नीति पर चलते हुए सुदूरपूर्व मध्य एशिया और पश्चिम पूर्वी एशिया में विनाश साधनात्मक स्थापित किये थे। अपने को साम्राज्यवाद का कट्टर विरोधी कहन वाले चीनी साम्यवादी क्रान्तिकारी अपने इतिहास की विम्ना वादी परम्परा को चयेबला और कुबनाइ का ध वि की विश्व विजयों से नहीं भूसे हैं। वे चीन को विश्व की मह शक्ति बना कर पश्चिमी शक्तियों तथा जापान के प्रभाव और प्रभुत्व का समुद्रोन्मूलन कर देना चाहते हैं। सुदूरपूर्वम मध्य-एशिया और पश्चिमी पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में साम्राज्यवादी साम्यवादी प्रत्येक सम्भव प्रोत्साहन देकर चीन के साम्यवादी वास्तविक विस्तारवाद की अपनी कुत्सित प्रवृत्तियों को पूरा करना चाहते हैं। इसी कारण वे बियतनाम के विरोध में शक्ति के विरोधी हैं भारत के अतन्त्र को अपने मार्ग में बाधा समझते हैं और उसके शत्रुओं को अपना मित्र किन्तु इससे भी रोचक लक्ष्य यह है कि भारत के शत्रु भी चीन के केवल शत्रु ही तक मित्र हैं जब तक वे चीन के निष्ठाग बनने के क्षेत्र में नहीं आते। ज्यों ही चीन उनके माध्यम से अपना उद्देश्य सीधा कर लेगा त्यों ही उन्हें भी अपने में आत्मगत कर लेने की आवश्यकताओं से बह बाज नहीं आयेगा। साम्यवादी चीन सबसे पहिले भारत और बर्मा द्वारा नियंत्रित सीमावर्ती क्षेत्र तथा मनोसिवा और कोरिया पर अपना अधिकार चाहता है। यही कारण है कि उसने मैक-महोन रेखा को मान्यता न दे कर भारत के साथ सीमा संबंध खेड़ रखा है।

अपनी विदेश नीति में साम्यवादी चीन ने स्वामी अन्तर्-द्विज शक्ति की बात कही है। इस संबंध में चीन का विशेष मतलब यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति में स्थापित एक ही धा सकता है जबकि विश्व में साम्राज्यवाद की समाप्ति और साम्यवाद की स्थापना हो जाए और इस उद्देश्य की पूर्ति का एक मात्र साधन युद्ध ही है। माघो के अनुसार विदेश नीति शक्ति की प्राप्ति के लिये साम्यवादियों द्वारा संघासित विश्व व्यापी संघर्ष का ही एक माध है। इसका उद्देश्य सर्वत्र क्रान्तियों को पैदा करना विश्व के सर्वहारा वर्ग को संगठित करना तथा उसके साम्राज्यवादियों पर विजय अभियान के लिये

विद्रोह कर रहा है। माघा ने १९१६ में ही लिख दिया था— बग युग। समाज के धारण से ही विकसत की एक निश्चित दशा में बगों राष्ट्रों राष्ट्रों प्रथवा राजनीतिक समूहों में विरोध के समाधान के लिये। अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिये) युद्ध संघर्ष का सबसे उच्चतम रूप है। इतिहास में दो ही प्रकार के युद्ध हैं—क्रान्तिकारी और क्रान्ति विरोधी। हम पहिले व समर्थक धीरे धीरे के विरोधी हैं। केवल क्रान्तिकारी युद्ध ही पवित्र है। हम पवित्र राष्ट्रीय क्रान्तिकारी युद्धों के तथा पवित्र वर्ग क्रान्तिकारी युद्धों के समर्थक हैं। साम्यवादी चीन का विश्वास है कि एक नया विश्व-युद्ध साम्राज्यवादी जिविर का पूर्ण विध्वंस धीरे समूची पृथ्वीवादी व्यवस्था का पूर्ण विनाश करके स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय शांति का निर्माण कर सकेगा। माघा धीरे उसके अनुयायी युद्ध एक शक्ति के प्रयोग का प्रावश्यक समझते हैं। नीति के रूप में वे भले ही इसका प्रयोग न करें परन्तु प्रावश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। भारत व विरुद्ध पेंकिंग में इंगी व्यापार पर अक्टूबर १९६२ में शक्ति का मजबूत प्रदर्शन किया था।

यंभीपूर्ण भावना वाले देश के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना की नीति में साम्यवादी चीन का आशय यह है कि वैर-साम्यवादी देशों में अस्वाभाविक मित्रता स्थापित करके साम्राज्यवादी देशों की शक्ति को कमजोर किया जाए। आज चीन में जिन वैर-साम्यवादी देशों से मैत्रीपूर्ण संबंध बना रखे हैं वे किसी स्थायी मित्रता के सूचक नहीं हैं। आवश्यकता पड़ने पर साम्यवादी चीन अपने इन सभी मैत्रीपूर्ण व्यवहारों को प्राकृतिक रूप से तुरन्त समाप्त कर देगा।

चीनी विदेश नीति में साम्राज्यवादियों और विशेषतया संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध संघर्ष की चर्चा की गई है। इस नीति को स्पष्ट करत हुए प्रो० इयूमेन ने काफी समय पहिले ही लिख दिया था कि— सास चीन की विदेश नीति अर्थात् रूप में अमेरिका के विरुद्ध है, क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका ने नये जमाने के शत्रुओं को हथियार दिये हैं उसे साम्यता देने में इनकार कर दिया है निरन्तर उसको उलटने की चेष्टा की है फारमोस में राष्ट्रवादी सरकार का संरक्षण किया है तथा चीन की मुख्य भूमि व समाहित छुटकारे की दृष्टि से व्यापक व अनवीर्यतम सहायता प्रदान की है। चीन अमेरिका को अपना मुख्य शत्रु समझते हुये उसे नीचा दिखाने का यथासंभव प्रयत्न करता है। वास्तुतः पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति चीन दायित्वों की परंपरागत धृष्टा धीरे विरोध का बरसा साम्यवादी चीन अमेरिका से बुकाने पर उताव्र प्रतीत होता है धीरे इसीनिधि अमेरिका का अपमानित करने का कोई मौका वह अपने हाथ से नहीं जाने देता। चीनी युद्धों धीरे युद्धियों के दिनांक में वह बाठ दू-स-दू कर मर ही गई है कि अमेरिका उनका सबसे बड़ा शत्रु है। अमेरिका के विरुद्ध जनता में धृष्टा धीरे जनता कैसा कर चीन की साम्यवादी सरकार ने वहाँ की जनता व अपना मित्रता धीरे भी कम दिया है तथा वैदिक प्रावश्यकताओं की प्राइ सेकर चीन की प्राचीन-जाम से जनी भा रही पूर्व प्रणामी को धिन्न-मिष कर दिया है।

साम्यवादी चीन की विदेश नीति का एक शोषित सक्षय साक्षित मञ्च के साथ घञ्च सक्षय बनाय रक्षता है। हुमान मित-नी तामन एक साम्यवादी संकल्प में प्रारम्भिक बयों में चीन की विदेश नीति के संबंध में कहा था— 'साम्यवादी चीन की विदेश नीति में वस ए विस्त, कैनिन पीर स्टामिन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा सामाजिक विकास के नियमों पर आधारित है। बनेर ऐधी में मी लिखा है— 'समाजवादी कान्ति की मातृभूमि तथा साम्यवाद के संरक्षक के रूप में साक्षित सक्ष की रक्ष करना सभी साम्यवादियों का कर्तव्य है तथा यह साम्यवादी विदेश नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है।' पुनार् १९४९ में अपने एक लेख में माओत्सेतुय ने लिखा था—

चीन की जनता का या तो साम्राज्यवाद की ओर मुड़ना चाहिये प्रथवा समाजवाद की ओर। इस तिसम का कोई प्रथवा नहीं हा सकता। मुड़ेर पर ईठना प्रथम है और कोई तीसरा मार्ग नहीं है। — तदस्पता क्वल क्वमावरण है तीसरे मार्ग का अस्तित्व ही नहीं पाया जाता। — अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणों से हमार संबंध उस साम्राज्यवादी विरोधी मोर्चे के साथ है किनका नता सोक्षित संघ है। सक्षी एक मीत्रीपूर्ण सहायता के सिधे हम क्वल इसी मोर्चे से सहायता की प्रथेक्षा कर सकते हैं साम्राज्यवादी मोर्चे से नहीं।"¹

परन्तु सोक्षित संघ से पूर्ण मित्रता के संबंध बनाये ररने ही चीनी विदेश नीति भी प्रामक है क्योंकि अन्तिम रूप से चीनी विदेश नीति का लक्ष्य विश्व में साम्यवादी चीन की एक अत्र प्रमुख शक्ति की स्थापना है। इस विशा में चीन वस का कठोर प्रतिद्वन्दी है अतः उससे स्थायी मैत्री बनाये रक्षना चीनी नेताओं के सिधे संभवत मुमकिन नहीं है। सोक्षित वस स्वयं यह बात मसी प्रकार समझता है और जानता है कि विश्व में उसे दो सप्रथम शक्तियों से मुकाबला करना है—एक तो पश्चिमी अगत विधेपकर संयुक्त राज्य अमेरिका से और दूसरे उससे ही जाति आई साम्यवादी चीन से। दोनों दलों के बीच विद्यमान द्विर्तों और सिद्धान्तों के वर्तमान संघर्ष यही संकेत करते हैं कि इनके द्वारा पारस्परिक मित्रता की बात करना केवल एक प्रथरीण है अथवा परों के पीछे ठाम ठाके हुए दोनों ही पक्षजान अपने अपने प्रमुख विस्तार के लिये अपने-अपने दां-येक खिल रहे हैं।

1 "The Chinese people must either incline towards the side of imperialism or towards that of socialism. There can be no exception to this rule. It is impossible to sit on the fence there is no third road. Naturality is merely a camouflage, a third road does not exist. Internationally we belong to the side of the anti-imperialist front, headed by the Soviet Union. We can only turn to this side for genuine and friendly assistance not to the side of imperialist front."

चीन की विफलता में प्रवासी चीनियों के दिवांगत रहना या मी स्योग है। इस संदर्भ में हमें यह जान लेना चाहिए कि चीन के बाहर दूसरे देशों में मगमग सदा करोड़ प्रवासी चीनी हैं। दक्षिणी एशिया में विभिन्न देशों में बसे हुए चीनियों की संख्या मगमग निम्नानुसार है।

का नाम	चीनियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या का अनुपात
थाय	२३६५०००	३७०
म्यांमार	१६५०००	७६६
ब्रिटिश बोर्नियो	२३६००००	११३
कम्बोडिया	२७००००	२७००
दक्षिण वियतनाम	२३००००	३३
उत्तरी वियतनाम	७००००	६२
इण्डोनेशिया	५००	०६
बर्मा	२२४००	०
फिलीपाइंस	३००००	१९
जापोन	२७००००	१२
	१००००	०६

चीन की भाग्यता है कि विदेशों में रहने वाले मगमग एक करोड़ चीनियों के साथ चीन के विरोधी देशों में बड़ा दुर्घटनकार प्रभाव डाल रहा है और साम्यवादी चीन अपने प्राइमों के साथ मिले जाने बाल इस मगमग व दुर्घटना को सहन नहीं कर सकता। इसीलिए चीनी प्रशासिका के म्याओचित अधिकारों और हियों की रक्षा के लिये वह सभी आवश्यक उपकरणों को १९५१ में चीनी प्रधान मंत्री जाऊ के प्रकाशन की व जगजगती की ची प्रवासी चीनियों के साथ दुर्घटना के उल्टी इन चीन के मिय चीन का संघीर विषय हुआ। सितंबर १९५४ में उन्होंने फिर घोषणा की कि— प्रवासी चीनियों के साथ चीन के विरोधी देशों में बड़ा दुर्घटनकार प्रभाव डाल रहा है। हम मानना करते हैं कि ये देश प्रवासी चीनियों के साथ ऐसा नहीं करेंगे और हम भी इन चीनियों को यह प्रस्ताव देंगे कि वे जिन देशों में रहते हैं उन ही सरकारों के कानूनों का तथा सामाजिक पद्धतियों का मरना करगें। चीन ने इसी प्रकार का एक मसुदा पाइइसन चीनियों के साथक व संघर्ष एशियाई देशों को १९५५ में दिया— कुछ लोग यह कहा है कि एक करोड़ प्रवासी चीनियों का उपयोग दूसरे देशों की सरकारों का तथा जलटने के लिये किया जा सकता है। चीन का ऐसा दावा बुरादा नहीं है कि वह पड़ोसी देशों में इनकी सहायता से पड़ोसी राज्यों को सरकारों का जलटने का प्रयत्न करेगा। परन्तु चीन के नेताओं की इन प्रकार की घोषणाओं को ही प्रभावक धिड़ हुई है। भारत इण्डोनेशिया बर्मा पाकिस्तान तथा जापोन आदि में चीनी प्रवासियों के जिन प्रकार के पाठ्यक्रम नाम लिये हैं और जनताधिकार सरकारों को उगाह कर साम्यवादी शासन मुग्न

स्थापित करने की जा चेष्टायें वे प्राप्त भी कर रहे हैं, उनमें यह नतीजा भी प्रमाणित हो गया है कि चीनी प्रधानता या साम्यवादी चीन के साम्राज्यवाद-विस्तार की नीति का एक साधन है।

चीनी विदेश नीति की प्रधान अवस्थाएँ (Main Phases of China's Foreign Policy)

चीनी विदेश नीति के प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि प्रकट रूप से १९४५ में लेकर जब तक वह तीन प्रधान अवस्थाओं में से होकर गुजरी है—

- (१) आन्तरिक पुनर्गठन एवं उपनीति का युग (१९४९-१९५५)
- (२) मजबूतकारी युग (१९५५-१९५९)
- (३) गया उपद्रवकारी युग (१९५९ से वर्तमान तक)

प्रथम युग जिसे हम आन्तरिक पुनर्गठन का युग कह सकते हैं। १९४९ से १९५५ तक रहा। इस युग में चीन में अपनी सम्पूर्ण अर्थिक तथा आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में लगायी। इस अवधि में उसकी विदेश नीति कठोरता और उपद्रव की रही—विशेषकर पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति चीन ने सर्वप्रथम दिसम्बर १९४९ में घोषित एक से वैश्व सम्बन्ध स्थापित करने और उत्पत्तियों वाले विभिन्न मंत्रीपूर्ण सुरक्षा एवं पारस्परिक सहायता सम्बन्धी तथा आर्थिक संधियों की। चीनी नेताओं ने साक्ष्य सहायता से विश्व के अन्य सभी देशों में विशेषकर एक शिया राष्ट्रों में साम्यवाद के प्रसार का बीड़ा उठाया। इसी उद्देश्य से नवम्बर, १९४९ में ७० प्रतिशत के विश्व संघ के एक अध्याय में पैकिंग में एशिया और आस्ट्रेलिया के एक का टुकड़-युनिमन सम्मेलन बुलाया गया। इसमें उपर्युक्त महाद्वीपों के साम्यवादी शक्ति नेता सम्मिलित हुए। सम्मेलन में भी स्वीकारों को द्वारा यह घोषणा की गई कि इस सम्मेलन को सम्पूर्ण एशिया में राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों में समर्थन करना चाहिए। भी स्वीकारों ने विद्यमान सभी इन्फोर्मेसियन मसाला फिलीपाइन्स आदि के मुक्ति-संघर्षों की ओर संकेत करते हुए सम्मेलन के प्रतिनिधियों का उपदेश दिया कि—'चीनी जनता के एक का अनुसर करत हुए समस्त संघर्षों द्वारा एशिया के अधिकतर भाग में शक्ति का विकास किया जाना चाहिए।' चीनी नेता ने चीन जनता के एक का स्वरूप भी स्वीकार किया। उसने इस संबन्ध में बार-बार पर विचार बत दिया—(i) शक्ति का को साम्राज्यवाद विरोधी सभी देशों और संघर्षों के साथ मिल जाना चाहिए (ii) शक्ति-वर्ग को केन्द्र बना कर साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक व्यापक संघर्ष बनाना चाहिए और इसका केन्द्र साम्यवादी इन दो-पक्षीय (iii) साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए मार्क्स और लेनिन के सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित और जनता से अविच्छिन्न सम्बन्ध रखने वाला साम्यवादी इन दो-पक्षीय (iv) साम्यवाद के एक केन्द्र में सभी संघर्षों के लिये राष्ट्रीय सेना का संगठन भी किया जाना चाहिए।

समझौता कराने की जिज्ञा में प्रयत्नशील हो। मध्यम में चीनी प्रतिनिधि द्वारा चापचा की गई कि विभिन्न सामाजिक पद्धतियों का प्रतिपुर्ण गति में सहस्रस्तरक संभव है। उन १९५३ में कांगिया की युद्ध विराम-नियम चीन की इस परिस्थिति सुदृग्मवेगी मुमुताबादी प्रवृत्ति का पुष्टि मिली। १९५४ में चीन ने विश्व राजनीति में सशिम भाग लेना शुरू कर दिया। इस वर्ष उसने वेनबा सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया चीन शांतिवादी नीति का अनुसरण करते हुए १७वीं प्रमाण रैला पर नियतनाम का विभाजन तथा लाघोम और कम्बोडिया की पृथक व्यवस्था स्वीकार कर ली। अपनी इस स्वीकारोक्ति द्वारा चीन ने अपनी शांतिवादिता का द्विदोरा पीटा जबकि वास्तविकता यह थी कि उसने समझौता इसलिये स्वीकार किया था कि इससे जावे नियतनाम के साम्यवादी राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति मिल रही थी और इसे प्रहा बना कर चीनी साम्यवाद प्रागे बढ़ सकता था। इस सम्मेलन में चीनी प्रधानमंत्री चाऊ ने यह अनुभव किया कि विभिन्न सरकारों के साथ कूटनीतिक संबंध और संबंधों स्थापित कर चीन की शक्ति को अधिक बढ़ाने के प्रयास करने चाहिये ताकि प्रबल प्रागे पर चीन इस शक्ति का अपने पक्ष में उपयोग कर सके। इस नीति पर चमठे हुए चीन ने सर्वप्रथम प्रसेस १९५४ में तिब्बत के बारे में भारत से संबंध की और पंचशील के सिद्धांतों में 'हादिक' धास्ता प्रकट की। चीन की नैकनीयती का विश्वास कराने के लिये ही चाऊ ने गई दिल्ली में घोषणा की—

"संसार के सभी देश चाहे वे छोटे हों या बड़े निर्बल हों या बलवान विभिन्न सामाजिक पद्धतियों के बावजूद शांतिपूर्ण रीति से रह सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की जनता के राष्ट्रीय स्वतंत्रता और धात्म-निर्णय के अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिये। प्रत्येक राष्ट्र की जनता को यह अधिकार है कि वे अपनी सामाजिक पद्धति को खुले और इनमें दूसरे देश हस्तक्षेप न करें। शांति का निर्वात नहीं किया जा सकता।"

पश्चिमी राष्ट्रों ने चीन की नैकनीयती पर कोई मरोसा नहीं किया और पंचशील का रोरा प्रचार समझा। फिर भी एशिया के विभिन्न देशों को अपने लक्ष्य जाय और अपनी कुशल कूटनीति द्वारा प्रभावित करने में चीन को उत्सखनीय सफलता मिली। कोरिया-युद्ध में अमेरिका को गकहर देकर एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों में अपनी सैनिक शक्ति का घय बहु पहले ही पैदा कर चुका था परत इन्हें शक्तिशाली चीन को अपना मित्र बना लेने में क्या साकोष हो सकता था। चीन को अपनी अदृग्मवेगी मुमुनीति में सफलता इस लिये भी मिली कि चीन ने पश्चिमी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध जो जिहाद छोड़ा था उससे सभी एशियाई देशों को सहानुभूति भी बर्षों कि वे सब उसमें पीड़ित रह चुके थे। चीनी सफलता का एक और भी कारण था। कारिया-युद्ध के बाव से ही संयुक्त राज्य अमेरिका साम्यवाद से सुरक्षा के लिये सैनिक-संबंधों का जास बुन रहा था और भारत जैसे देशों की मायता थी कि इन सैनिक संबंधों द्वारा चीन-युद्ध का एशिया के इस भाग में लाया जा रहा है। चीन ने एशियाई राष्ट्रों की इस मनाइता का पूरा माभ

उठायी । उसने पश्चिम द्वाग समर्थित सीनिव-संधियों और प्रहर्षों के विरुद्ध प्राग उसी पश्चिम की इस नीति को नवीन साम्राज्यवादी प्राग एी संज्ञा की और शान्ति का क्षेत्र विस्तृत करने पर बल देते हुए विदेशों के साथ शीघ्र सम्बन्ध बढ़ाने शुरू किये । एशिया और अफ्रीका के अधिकांश भागों में चीनी राजपूत प्रनिष्ठित हो गये । प्रमत्त ११११ में चीन ने बाहुज्जु-सम्मेलन में प्राग सिमा और एशिया तथा अफ्रीका के २६ राष्ट्रों के सम्मूह परपत कृतीतिज्ञता के प्राग अपनी शान्तिवादी मुद्रुनीति की दुहाई दी । चीनी शासक ने सम्मेलन में कहा— 'चीनी युग-मज्जम यहाँ एकता बढ़ाने प्राया है अथवा करने नहीं । ह्याराग ध्यय मतभेद पैदा करना नहीं । किंतु सामान्य भूमि की लोभ करना है और यह उपनिबन्धवाद के कष्टों और मूसीबतों को दूर करने में प्राया जा सकता है । साम्यवादी चीन एशिया और अफ्रीका के सब देशों से सामान्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है ।' बाहुज्जु सम्मेलन में शासक-एन शाई ने वा कायों से अपने राष्ट्र का शान्ति प्रेमी सिद्ध करने में सफलता पाई— (i) प्रवासी चीनियों के बारे में इण्डोनेशिया के साथ साथ काश्च उमन एशियाई देशों का प्राद्वस्त किया कि उन्हें अपने यहाँ के चीनी प्रवासियों से प्राद्वस्त नहीं होना चाहिए एवं (ii) ताइवान क्षेत्र में तनाव कम करने के लिये शासक ने शान्ति वाता का प्रस्ताव रखा । बाहुज्जु सम्मेलन के प्रवसर पर चीनी की बड़ी प्रघसा हुई और बाद में १११८ तक चीन का शान्ति प्रेम का यह द्योग ब्यस्तूर बसता रहा ।

तृतीय युग जिस हम नया उपद्रवावादी युग कह सकते हैं १११६ से प्राग यद्यपि इसके मध्यस्थ १११७ के अन्तिम प्राग ग ही दक्षिणोच्चर प्राग लग यमः १११७ से ही पश्चिमी देशों के प्राग-साथ एशियाई देशों के प्रति चीनी चीनी ध्यबहुार में कठोरता प्राग सभी । नवम्बर में मास्को में शान्तिबिक्र शान्ति की ४० की बय गाठ के प्रवसर पर शान्ति के सभी साम्यवादी देशों के सम्मेलन में चीन की नवीन उपद्रव नीति का स्पष्ट संकेत प्राग । माघोत्सव युग में १८ नवम्बर के अपने प्रागस्थ में पूर्व और पश्चिम के संघर्ष पर बल देते हुए चीन की नवीन नीति का सिद्ध प्राग इन देशों में किया— इस समय विश्व में दो ह्यारों हैं—पूर्वी ह्यार और पश्चिमी ह्यार चीन में एक बहावत है 'यदि पूर्वी ह्यार पश्चिमी ह्यार पर ह्यारी नहीं होती तो पश्चिमी ह्यार पूर्वी ह्यार पर ह्यारी हो जायगी । मेरे विश्वास में वर्तमान शान्ति की यह बिरोधता है कि पूर्वी ह्यार पश्चिमी ह्यार पर ह्यारी है यद्यपि समाजवाद की शान्ति पुष्कलीवाद की शान्ति से अधिक है ।'

अपनी नई उपद्रवादी नीति का श्री गणेश करने हुए चीन ने सबप्रथम उन प्रागों का प्रबल बिरोध किया जिनके अनुसार साम्यवाद की नीति में कुछ प्रागोपन होना चाहिए था । ताइवान १११८ के सन्धान के सन्धट में चीन के सन्धटों टापोचो के सन्धट में तथा १११६ के प्रागोपन के सन्धट में वेदिय ने बड़ा बल प्रागनाया । १११६ से ही चीन की बिदेस नीति में धनिम्पष्ट कृय में एक नया प्राग उपद्रव ह्यार और बहु अधिक प्राग उपद्रव प्रागोपन तथा साम्राज्यवादी बसनी गई । १११६ में अपने बचनों का उपद्रवण कर चीन ने

तिष्ठत की स्थापना का मन्त्र कर दिया और वमार्ई सामा को अपना देश छोड़ कर भागना पड़ा। इसी समय से चीन भारत के साथ सीमा विवाद में बढोगे नीति आगतने समा और नने नने मारतीय सीमा पर उन के अधिग्रहण बढते गये। १९५९ में ही ची को कुश्नेव ने समुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की जिसे चीनी नेताओं ने पमंत्र नही किया और उनका दृष्टिकोण रूस के प्रति आसाधना मक हा गया। इसके बाद धीरे धीरे रूस आधिकारिक मात्रा में चातिपुर्ण सहपस्तित्व का समर्थक बनता गया और चीनी दृष्टिकोण इस नीति तथा रूस के प्रति प्रतिकारिक विरोधपूर्ण होता गया। १९६२ में अपने मित्र देश भारत पर चीन के आक्रमण ने उसके साम्राज्यवादी स्वहप को सर्व के प्रकार की नाति स्पष्ट कर दिया।

अपनी मनीत उग्र नीति के कारण चीन ने दिसम्बर १९६३ से एक नवीन कूटनीतिक अभियान आरम्भ किया। अफ्रीकन महाद्वीप को अति के सिधे एकत्रम अनुकूल समर्थ कर वहाँ अपने प्रभाव का तीव्र मति से विस्तार करने के उद्देश्य से दिसम्बर १३ में आऊ-एन लाई ने विभिन्न अफ्रीकन देशों की ८ सप्ताह की यात्रा शुरू की। चीनी प्रचारमर्मी संयुक्त बरब गभराज्य अस्वीरिया मास्को द्यूनीलिया जामा मासी मिनी, सुडान ईथियोपिया सोमालिया आदि देशों में गए और फरवरी १४ में बर्मा पाकिस्तान और संका की यात्रा भी की। अपनी इस यात्रा के दौरान ची आऊ ने इस बात का पूरा प्रवास किया कि प्रथम तो इन देशों पर से सोवियत व पश्चिमी प्रभाव खीण होकर चीनी प्रभाव में वृद्धि हो जाय और दूसरे भारत और रूस के साथ सीमा विवाद में उठे इन देशों का समर्थन प्राप्त हो परन्तु १९६३ के अन्त तक होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्गामी ने चीन की विवेक नीति और नवीन कूटनीतिक अभियान की असफलताओं को प्रकटित कर दिया। वह अतिरिक्तिया व अकेलियाई राष्ट्रों के आग्रहों के समर्थन बुलाने में असफल रहा। अफ्रीका में अपने सिध्व बेन बेरमा द्वारा आहित अतिरिक्तिया में सम्मेलन का आयोजन करके मापोस्तेनु व अर्धे लियाई देशों पर चीन की आक्र बँट ना आहना का। परन्तु सम्मेलन शुरू होने से पहले ही बेनबेरमा का पतन हो गया। सम्मेलन के आयोजन में असफलता पाने के उद्देश्य से चीन ने अस्वीरिया की नई सरकार का समर्थन किया। परन्तु भारत आदि राष्ट्रों ने सम्मेलन को स्वगित करवा दिया। बेन बेरमा के विरोधियों के चीनी समर्थन ने यह सिद्ध कर दिया कि अपने स्वार्थ-युति के उद्देश्य से चीन सामयवाद के सिद्धान्तों की भी उपेक्षा कर सकता है। चीन की इस स्वार्थपरता ने अकेलियाई देशों में उसे बढतान कर दिया। पाकिस्तान के प्रति चीन की हमदर्दी की शोभ भी उस समय बुल गई जब भारत-पाक संघर्ष के दौरान चीन केवल भारत का पमर्मी देता रहा और इस तरह उसने पाकिस्तान की इस आशा को आपात पहुंचाया कि चीन भारत को गहरी सति पहुंचाकर पाकिस्तान के प्रति अपनी बोस्ती का सङ्कट बेमा। चीन के इस रूस से पाकिस्तान को मन ही मन बड़ी नारापमी व निराशा हुई। इसके अतिरिक्त साम्यवादी देशों को भी इस बात से बड़ी ठेस पहुंची कि चीन अपने घोर अनु संयुक्त राज्य अमेरिका के विद्वेष और उससे सैनिक सहायता पाने वाले

पाकिस्तान का बुलन्द बुलन्द समर्थन कर रहा था। १९६२ में ही इण्डोनेशिया में चीन के हुरादों को घुस बटा दी गई। चीन प्रेरित साम्यवादी भाति असफल हुई और इण्डोनेशियाई सेना ने साम्यवादियों का बुरी तरह धमन किया। विश्व के साम्यवादी देशों में इण्डोनेशियाई साम्यवादी देश का एक विशिष्ट स्थान था। उसके प्रथम गतन में विश्व के साम्यवादी मान्यतन को पहला प्रायास लगा और साथ ही पकिंग पिडी-अकार्ता बुरी छिप्र-मिन्न हो गई। अफ्रीशियाई देशों में भी चीन का प्रभाव क्षीम हो गया और वे चीनी साम्यवाद के अतरे को समझने लग गये। दिसम्बर, १९६२ में ममाबी के प्रयागमभा डॉ हेरिस्टम बाब्बा में स्वरुट शब्दों में घोषणा की कि—

‘अफ्रीका क लाम्बी स्वामों के बारे में चीनी यह मनम्न है कि य उतक लिये बनाय गये हैं। पकिंग के लोग अगेज का की कल्पना म भी बढ़ा एसा साम्राज्य बनाना चाहते हैं जिसम समुपुष् एशिया तथा अफ्रीका समिमलित हों यदि बनता बापति न करे तो इसमें यूरोप और अमेरिका भी समिमलित हों। जब मैं अफ्रीका पर बिचार करता हूँ तो मुझ क्मिदो में उतना भय नहीं है जितना अोनियों में है। अनेक बर्ष चीन ज्ञान क कारण क्सी तरह पढ़ गया है, किन्तु चीनी तरह नहीं पढ़े हैं।’

अफ्रीका न्हावीप में चीन तेजी से अपनी प्रतिष्ठा मान्य गया और पकिंग से कूटनीतिक सम्बन्ध बिच्छेय का सिमसिमा भी शुरू हो गया। यह कहना अनुचित न होया कि चीनी बिदेश नीति की विमचरपी के तीन प्रयाग लेय रहे हैं—रूस एवं अरुय साम्यवादी देश अमेरिका एवं पश्चिमी गुट क देश तथा एशिया क अफ्रीका क मबोन्ति राष्ट्र—और इन तीनों ही प्रयाग क्षेत्रों में चीन की ब्देलिक नीति अधिकारत असफल हुई है।

अब हम विश्व के प्रमुक्त राष्ट्रों के साथ चीन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर दृष्टिगत करेंगे।

चीन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

(China's International Relations)

(१) माग्यता एव संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश का प्रयत्न

१ अक्टूबर, १९४६ को लडीन ज्ञानन गय की स्थापना पर साम्यवादी चीन में संसार के बिभिन्न देशों में कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित अग्न की इच्छा प्रकट की। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी माग्यता प्रदान करने की प्रायता की गई। सोवियत संघ पूर्वी यूरोपियन देशों माग्न बर्षों की लडा पाकिस्तान इण्डोनेशिया ब्रिटेन स्केन्डिनेवियन राज्यों घाति ने साम्यवादी शासन का माग्यता प्रदान करके उमके साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये।^१ किन्तु

१ ब्रिटेन घाति कुछ राज्यों द्वारा साम्यवादी चीन को माग्यता ती प्रदान कर दी गई किन्तु साथ ही साथ तुल्य कूटनीतिक स्थापित नहीं किये गये।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'प्रतीक्षा' की नीति अपनाई। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी ऐसा ही किया क्योंकि उसका अधिकार्य सदस्य अमेरिका के प्रभाव में थे। इस पर जनवरी १९५० में सावियत रूस ने अल्बर्ट रूस से संघ के उम सभी राज्यों का अधिकार कर दिया बिनाम 'व्याय-फाई-नोक' के राष्ट्रवादी चीन को स्थान मिला हुआ था। नवम्बर १९५० में साम्यवादी चीन में उत्तरी कोरिया के पक्ष में कोरियाई-यूद्ध में हस्तक्षेप किया। इस पर वाशिंगटन द्वारा आपित किया गया कि इस आक्रमक रुवम के कारण साम्यवादी चीन ने सभी राज्यों की मास्यता प्राप्त करने का अधिकार का दिया है। इसके बाद साम्यवादी चीन को मास्यता देने के बिरुद्ध कारणों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती बसी गई और अमेरिका ने स्पष्ट बयों में बता दिया कि पैकिंग सरकार को मास्यता प्रदान नहीं की जायेगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने साम्यवादी चीन का मास्यता न देने का संकल्प में प्रधानतः निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किये हैं:—

(i) यह ठीक है कि चीन की जनसंख्या का अधिकार्य भाग मास्य वासियों द्वारा नियन्त्रित मुख्य भूमि पर निवास करता है लेकिन इसके साथ ही इस राज्य की जेभा नहीं की जा सकती कि ताइवान (फारमोसा) में भी इस समय एक करोड़ दस लाख चीनी सैनिक रहते हैं और उनकी सरकार उस सरकार का प्रतिनिधित्व करती है जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में प्रमुख तथा महत्वपूर्ण भूमिका बजा की है।

(ii) संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए यह किसी प्रकार उचित न न्यायसंबत नहीं होगा कि वह एक ऐसे राष्ट्र को अपनी सभस्वता से बंथित कर दे जिसने शुरू से लेकर आज तक इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के साथ पूर्ण सहयोग किया। सब के लिए यह सर्वथा अनुचित होया कि एक सहयोगी तथा शान्तिप्रिय राष्ट्र के स्थान पर वह एक ऐसी सरकार को प्रतिनिधित्व प्रदान करे जिसका संपूर्ण रिकार्ड आक्रमणकारक इतिहास से भरा पड़ा है।

(iii) प्रकृत केवल साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का नहीं बल्कि यह भी है कि फारमोसा में रहने वाले एक करोड़ से भी अधिक निवासियों को नया साम्यवादियों के ह्वाले कर उनकी स्वतन्त्रता और आचारभूत मानवीय अधिकारों से बंथित कर दिया जाना चाहिये।

(iv) साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने का अति प्राय होया कि संघ ताइवान पर साम्यवादी चीन द्वारा आक्रमण किये जाने का मुक समर्थन करता है क्योंकि चीनी प्रधानमंत्री यह स्पष्ट घोषणा कर चुके हैं कि जब तक फारमोसा पर साम्यवादी चीन का अधिकार नहीं हो जाता जब तक संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ सहयोग करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठया।

(v) बचपि यह सत्य है कि साम्यवादी चीन की ६०-७० करोड़ की जनसंख्या की तुलना में फारमोसा की एक करोड़ जनसंख्या बहुत कम है।

परन्तु साथ ही यह बात भी मिस्या नहीं है कि फारमोसा की जनसंख्या उन १५ से भी अधिक देशों की जनसंख्या से नहीं ज्यादा है जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त है।

(vi) क्या संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए यह एक ग्यायपूर्ण बात होना कि भारतो लोगों की स्वतन्त्रता और उनकी सरकार के कामूनी अधिकार समाप्त कर दिये जायें ?

(vii) संयुक्त राष्ट्र संघ के शोपणा-पत्र के धनुबन्ध (२) में लिखा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में उन सभी सदस्यों को प्रवेश-अप दिया जा सकता है जो शांतिप्रिय हों और अन्तर्राष्ट्रीय शान्तियों को स्वीकार करने को तैयार हों। शोपणा-पत्र के धनुबन्ध (१) के अनुसार संघ के सदस्यों का भुक्त वास्तव है अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखना और इन उद्देश्य की पूर्ति के लिए एवं शांति के लिए उत्पन्न किसी खतरे को दूर करने या रोकने के लिए प्रभावकारी सामूहिक कार्यवाही करना और अन्तर्राष्ट्रीय विवाद (जिनसे शांति बग होने का खतरा है) के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सहारा लेना। साम्यवादी चीन संघ के इन धनुबन्धों का किमी भी रूप में पालन नहीं करता है। १९५० से लेकर अब तक हिंसात्मक और प्राणमशात्मक कार्यवाहियों में संलग्न रहते हुए पम-पम पर उमन संघ और उसके आवेदों की प्रवृत्तना की है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के विरोध के बावजूद कुछ राष्ट्रों का एक यह है कि यदि साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दे दिया जायेगा तो उसकी उग्र हिंसात्मक नीति पर कुछ हद तक नियन्त्रण किया जा सकेगा। परन्तु अब तक का इतिहास तो यही बताता है कि चीन अपने विस्तारवादी धाकमण की नीति का परिणाम नहीं करना चाहता है और संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी दुराग्रहपूर्ण शक्तों के आधार पर ही स्थान प्राप्त करना चाहता है। साम्यवादी चीन के मदीय शान्तियों में समस्याओं पर समझौता वार्ता करने की स्वाभाविक इच्छा ही विद्यमान नहीं है। जो राष्ट्र हर समस्या का समाधान युद्ध ही समझना हो उमने समझौता-वार्ता की पुञ्जाइग ही नहीं रह जाते हैं ?

अमेरिका का एक तर्क यह है कि साम्यवादी शासन चीनी जनता का प्रतिनिधि ही नहीं है क्योंकि साम्यवादियों द्वारा सैनिक शक्ति के बल पर ही सरकार पर कब्जा किया गया है और इसके बाद की भारतो चीनियों की हत्या की गई है।

विवाद अनेक रूपों में साम्यवादी चीन के संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश का प्रश्न महा समा के सम्मुख प्राता रहा। प्रात निर्गत यह है कि ब्रिटेन के फ्रॉस संहित १० से भी अधिक राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश करने का समर्थन करने वाले हो गये हैं। हालांकि दो तिहाई बहुमत के दिनांक से यह संख्या ८० से भी अधिक होना आवश्यक है। जिस पर भी मुझा परिणाम में संयुक्त

राज्य अमेरिका मौजूद है जो ऐसे किसी भी प्रश्न को जाने नियन्त्राधिकार से समाप्त करने को कटिबद्ध है। अभी महसूस यही किया जाता है कि संघ में निकट भविष्य में साम्यवादी चीन का प्रवेश या सकना संभव नहीं है।

(२) चीन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्बन्ध

जैसा कि कहा जा चुका है साम्यवादी चीन का सबसे बड़ा शत्रु अमेरिका है। चीन में साम्यवाद के उदय काल से ही अन्दर अमेरिका माओ त्से-तुङ्ग और उसके छात्रियों की धाँकी का काँटा रहा है। प्यांग-काई-जेक की राष्ट्रवादी सरकार को प्रभूत नैतिक सहायता देकर संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीनी साम्यवाद को बरशाधी करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। बाद में जब राष्ट्रवादी प्रवक्ता कुमांमिताम इस ने स्वयं को फारमोसा में 'चीन' की गणराज्य सरकार के रूप में संस्थापित कर लिया तो माओ और उसके सहयोगियों को यह बात पसंद हो गया कि कहीं अमेरिका सत्त्वास्त्रों की सहायता से हस्तक्षेप द्वारा चीन के नवजात साम्यवादी शास को नष्ट प्रष्ट करने की कोशिश न करे। गायबिट (Gyuybit) के प्रसूतार इसी बात का यह परिणाम हुआ कि 'पैकिंग ने यह देखने के लिए प्रतीक्षा नहीं की कि अमेरिका क्या कदम उठाता है, बल्कि उसने तुरन्त पूर्वी एशिया से अमेरिकन प्रभाव को बिलुप्त करने के लिए बमकियों भरे प्रयास प्रारंभ कर दिये।^१

अमेरिका और चीन की परस्पर विरोधी कार्यवाहियाँ विरोधी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को जन्म देने लगी। वाशिंगटन ने न केवल स्वयं साम्यवादी चीन को साम्यता प्रदान करने से इन्कार किया बल्कि उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त करने के चीनी-भार्य को भी प्रवृद्ध किया। इसके अतिरिक्त साम्यवादी चीन के उदय के प्रारम्भिक वर्षों में एक महत्वपूर्ण विवाद चलता रहा जिसमें बड़े-बड़े अमेरिकन विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने चीन में साम्यवादियों की विजय के लिए टू-मैन प्रशासन को उत्तरवादी ठहराया। इस विवाद में प्रवृद्ध किए गये अमेरिकन राजनीतिज्ञों के विचारों से साम्यवादी चीन का यह विश्वास और भी बूढ़ हो गया कि अमेरिका-वासी अभी तक चीन क साम्यवादी शासन को विनष्ट करने का स्वप्न देख रहे हैं। इस प्रभुमूर्ति के फलस्वरूप चीनी साम्यवादियों में अमेरिका के प्रति क्रूरा और विद्रोह को विशेष बल मिला। चीनी युवकों और युवतियों के मस्तिष्क में यह बात ठस ठस कर भर ही गई कि संसार में अमेरिका ही उनका महानतम शत्रु है।

१९६० में कोरिया-युद्ध का भीगण्ट हुआ। यू एन धी की उत्तरी कोरिया के विरुद्ध ब्रह्मरतक कार्यवाही चीन साम्यवादियों को अपने निकटवर्ती मित्र राज्य के विरुद्ध अमेरिकन पाक्रमण के समान प्रतीत हुई क्योंकि युद्ध-क्षेत्र में प्रमुख अमेरिकन बलि ही काम कर रही थी। साम्यवादी चीन को

'अमेरिका-पेरित' यह कार्यवाही 'साम्यवादी आन्दोलन पर' एक तीव्र भाषान के समान लयी। जब जपान की समुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं यामु नामक स्थान के पास पहुँची त्यों ही चीनी सैनिक टिङ्की-बन की भाँति उन पर टूट पड़े। कोरिया का युद्ध अब प्रथम अमेरिका व चीन का युद्ध बन गया। अक्टूबर १९५१ में माघो-स्वे-तुङ्ग ने कहा— हम केवल अपने देश की रक्षा के लिए साम्यवादी आन्दोलनों के विरुद्ध लड़ रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यदि अमेरिकन सेनाओं ने हमारे ताइवान (फारमोसा) पर कब्जा न किया होता तो हमारे साम्यवादी मित्र राज्य ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण न किया होता और स्वयं अपनी साम्यवादी कार्यवाहियों का विस्तार हमारी उत्तरी-पूर्वी सीमा तक न कर लिया होता तो हम आज अमेरिकन सेनाओं के विरुद्ध न लड़ रहे होते।^१

कोरियाई युद्ध के फलस्वरूप अमेरिकन नीति निर्माताओं ने इस बात का पूर्ण निश्चय कर लिया कि फारमोसा को साम्यवादी चीन व सम्प्रभित आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए कुल एक सैनिक महामता ही जाय। अमेरिका के इस निश्चय ने दोनों देशों के सम्बन्धों को और भी अधिक बिपाक्त कर दिया। चीन में बाँधियटन विरोधी प्रचार-प्रमियाण नीत्र कर दिया गया। कोरिया-युद्ध शुरू करने और उसमें तथाकथित कीटाणु-युद्ध आरम्भ करने के लिए अमेरिका को बोधी ठहराया गया तथा प्रमियाण पानी इन आरोपों में विश्वास भी करने लगे। साम्यवादी शासकों ने इस बात का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया किया कि चीनी और अमेरिकन जनता के मध्य भी कोई घषिक चौड़ी हो जाये। क्लॉड बस (Claude Buss) का शीम— चीन बाँधियों ने अमेरिका पर जापान में फासिस्टवाण तथा सैनिकवाद की पुनर्स्थापना करन तथा एशिया में अथवा प्रमुक्त स्थापित करने के लिए जापान का एक साधन के रूप में प्रयोग करने व आरोप लगाये। इसी तरह उगुंनि अमेरिका को दक्षिणी कोरिया के राष्ट्रपति सिममन री की सहायता करने एवं कोरिया में गृह-युद्ध छेड़ने के लिए भी बोधी ठहराया।^२ चीन के साम्यवादी नेताओं ने कोरिया-युद्ध की यह व्याख्या करते हुए कहा कि—“यह युद्ध कोरिया फारमोसा हिन्द चीन एवं फिपीपाइम्स पर कब्जा करने तथा फिर एशियाई मामलों में हस्तक्षेप करने के अमेरिकन षडयंत्र का ही पहला साम है।”^३

साम्यवाद के प्रसार का प्रबल करने के लिए समुक्त राज्य अमेरिका ने विभिन्न सैनिक और प्रतिस्थापक सगठनों का निर्माण किया। अमेरिका द्वारा निर्मित और अेरित नाटो सीटो अणुसंघ (ANZUS), अमराह पैक्ट (अब मैटो) तथा मध्य पूर्वी अमान आदि संधियों की साम्यवादी चीन ने यह कह कर बहुत मर्मना की कि इन सब का उद्देश्य विश्व में अमेरिकन प्रभुत्व की स्थापना करना है। अमेरिकनों के लिए चीन की मुख्यभूमि के द्वार

Quoted by Buss, C. A. The Far East Page 553

2. Claude Buss The Far East, Page—554

बंद कर दिये गये। अनेक बार सा अमेरिकन पत्रकारों तक का प्रवेश भी अनुमति नहीं दी गई। चीन स्थित अमेरिकन सार्वभौमिक अधिकार भी बंद कर दी गई। अमेरिका के साथ व्यापारिक सम्बन्ध पूर्णतः अंत बिदात कर दिये गये। उसके साथ सभी प्रकार के सम्पर्कों पर—चाहे वे सामाजिक हों या सांस्कृतिक हों या कूटनीतिक हों—रोक लगा दी गई। कोरियाई युद्ध में जिन अमेरिकन जासूसों का बन्दी बना लिया गया था उन्हें भी बड़े बाय-बिकार के बाद और सोवियत रूस के आग्रह पर मुक्त किया गया।

कोरिया और फारमोसा की बटमारों को दोनों राष्ट्रों के बैमनस्य का प्रभाव कारण बना ही १९२४ में जिन चीन के प्रान्त पर भी दोनों देशों में बाँधी तनाव पैदा हो गया। चीन-बिन-फू में फौज सेनाओं की निर्माणिक पराजय के उपरान्त जब वाशिंगटन ने जारी सन्धि में अपनी सेनाओं कोन की सहायता से देने का निर्णय किया तो अमेरिका और साम्यवादी चीन में प्रत्यक्ष झूठ का गम्भीर सगर उत्पन्न हो गया। सीआम्बलर केनेवा समझौता सन्धि होने के कारण यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति टल गई। सन् १९५१ में चीन और अमेरिका के बीच सन्धि और नये कारण उपस्थित हो गये। माघोस म संघर्ष के लिए चीन ने अमेरिका को उत्तरवादी ठहराया और कहा कि वह विगतनाम के प्रजातन्त्रवादी संघर्ष एवं चीन की सुरक्षा का सीधी चुनौती देने के लिए ही सुदूर पूर्व में संघर्ष चाहता है। विगत की शक्ति के बारे में संयुक्त राज्य अमेरिका का रुख देख कर भी चीन को जारी असंतोष हुआ। इसके प्रतिरिक्त जनवरी १९६० में जापान तथा अमेरिका के बीच सहयोग एवं सुरक्षा की संधि हुई। इसके भी चीन के सम्बन्ध कटु बने। चीन ने हर सम्भव प्रयास द्वारा जापान व अमेरिका के बंध-बन्धन को तोड़ने का प्रयास किया। लेकिन रैडियो ने अमेरिका पर एशिया में साम्राज्यवादी गडबंद करने का आरोप लगाया। १ सितम्बर १९६२ को साम्यवादी चीन की बाइ सेना ने क्योमिठोम सेना के एक यू-२ सैनिक बाइ-बायुमान को चीन की मुख्यभूमि पर मार गिराया। चीन सरकार ने इस बटमार पर एक बिस्तृत बयान जारी किया और इस विगत की उठान का उत्तरवादी अमेरिका को ठहराया। अक्टूबर १९६२ में 'क्यूबा-साइट' व समय साम्यवादी चीन द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के बिद्वंद्वार विप वमन किया गया। सम्पूर्ण चीन में क्यूबा समर्थक विनास प्रदर्शन संबन्धित किये गये क्यूबा समर्थक गारे लगाय गये और क्यूबा के नेताओं के बिच प्रदर्शित किये गये। १९६२ में ही संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीनी आक्रमण के बिद्वंद्वार भारत को प्रभावशाली सैनिक सहायता भेजी। इसके भी साम्यवादी चीन के पाओस में वृद्धि हुई।

१९६५-६६ में विगतनाम समस्या को लेकर अमेरिका व चीन की कटुता में पुन वृद्धि हुई। विगतनाम में शांति-स्थापना के प्रत्येक प्रयास को साम्यवादी चीन ने असफल बयान की कोसिल की। यह मुख्यत चीन की हठवादिता का ही परिणाम है कि जस्टी विगतनाम की सरकार सभी शांति-प्रस्तावों के बिद्वंद्वार ठोकर रख पड़ने लिये हुए केबल अपने ही प्रस्तावों को मानने पर तैयार दे रही है। जस्टी विगतनाम की सरकार को वैदिक निर्णय

युद्ध के लिए उन्नतता था रहा है जिसके फलस्वरूप अमेरिका को भी पहिली वियतनाम की घोर से वी-तोड़ युद्ध करना पड़ रहा है। वियतनाम में शांति स्थापना की दिशा में यह एक शुभ संकेत है कि अब हुनोई सरकार धर्म धर्म वेष्टिंग की अपेक्षा मास्को के अधिक निकट धार रही है। अमेरिका के कुछ निश्चय में साम्यवादी चीन के सम्पूर्ण वियतनाम और तब एशिया के अन्य क्षेत्रों पर छा जाने के सम्बन्धों का प्रबल आघात गढ़ा जाया है। वियतनाम युद्ध में चीन एशिया में समुक्त राज्य अमेरिका की नीति चाहे कतिपय पक्षों पर कितनी ही अर्थात्नीय क्यों न हो लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अमेरिका की कठोर और मुह-तोड़ बचाव इन की नीति में युद्ध-विपासु साम्यवादी चीन को बहुत कुछ निपटित कर रखा है। दोनों दलों के बीच वर्तमान स्थिति यही है कि साम्यवादो चीन के नेता बहुत अमेरिका को अपने राष्ट्र का धोरतम शत्रु मानते हैं यहा अमेरिका चीन को शांति मानवता और प्रजातन्त्र का निकृष्टतम शत्रु मानते हुए उसके पश्चिमी को बातक चुनौती देने कासा ममभ्रता है।

(३) चीन तथा भारत के सम्बन्ध

चीन और भारत के संबंधों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश भारत की विदेश नीति के पूर्ववर्ती पच्चाय में भारत का मीमा विवाद नायक के अन्तर्गत डाला जा चुका है। अब इसकी पुनरावृत्ति न की जा कर प्रस्तुत मन्त्र में बचन उन कारणों का उल्लेख किया जायगा जिनसे प्रेरित होकर साम्यवादी चीन ने अक्टूबर, १९६० में भारत पर मुनिगोचित किन्तु एक अप्रत्याशित विनाश वैतिक धाकमण किया। भारत की बहुमूर्त मंत्री को दुकरा कर किये गये धरन डम विन्वासवादी धाकमण में एक महीने के मात्र भीतर चीन ने सत्ता तथा बसाय और साम्यवादी चीन लिये जानी वैतिक आसाम में संदास के निकट तक पहुंच गये और सहाय में उन्होंने समग्र सम सारे प्रवेश पर अधिकार कर लिया जिसे अपनी स्वेच्छाचारिता के आधार पर वे धपना बताते हैं। इस विषय के बाद चीनियों ने आकस्मिक रूप से यह जापना की कि वे २० नवंबर की मध्य रात्रि के बाद युद्ध बन्द कर देंगे और उनके भीषांत प्रहरी (Frontier Guards) १ दिसंबर, १९६२ से चीन और भारत की ७ नवंबर १९६६ की वास्तविक निपटण रैला के पीछे २० किमी मीट (12 $\frac{1}{2}$ मीस) तक वापिस मीट जायेंगे। १ दिसंबर से चीनी सेनाओं ने पीछे मोटना भी शुरू कर दिया परन्तु चीन की यह एक भ्रामक और गहरी कूटनीतिक चाल थी। चीन का वास्तविक परिचाय यह था कि सहाय के अक्षरार्थ बिना प्रदेश पर और १९६६ से १९६२ तक के बीच में जातीयों द्वारा अपने प्रदेश में स्थापित चीनियों पर चीन का अधिकार मान लिया जाय। चीन के इस धोम को समझते हुए भारत-भारत ने उमक इग एकपत्नीय शांति-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया परन्तु माघ ही यह बिराम मोड़ने का प्रयास न करने का भी निश्चय किया। भारत सरकार ने इस बात पर बस दिया कि सधि बार्ता तमी की जा सकती है जबकि चीन अपनी सेनाओं को २ सितंबर १९६२ से पहले की स्थिति में ले जाय। बाद में चीन और भारत के इस मीमा-विवाद के समाधान की दिशा में

भारतव्यो प्रस्ताव समझे प्रायः। परन्तु चीन द्वारा इन्हें न मानने के कारण अभी तक समस्या का कोई समाधान नहीं हो सका है और दोनों देशों की चीनो-भारत-सामन कड़ी हुई है।

प्रश्न प्रश्न उठता है कि चीन ने भारत पर आक्रमण क्यों किया? उत्तर में कहा जा सकता है कि चीनी आक्रमण के मूल में एक नहीं बल्कि अनेक कारण निहित थे। इन कारणों को भारतीय और विदेशी राजनीतिज्ञों ने अलग-अलग पर राष्ट्र-नीति विचारकों ने विभिन्न प्रकार से प्रकट किया है।

२७ नवम्बर १९६२ को ब्रिटिश-टेसीविजन के लिए एक रैंट में स्वर्गीय श्री नरक ने बताया कि चीन का यह आक्रमण प्रमुखतः तीन कारणों से हुआ है—

(i) चीन की प्रवृत्ति विस्तारवाद की है। शक्तिवासी होने पर चीन सर्वत्र अपने साम्राज्य का विस्तार करता है और उन सभी प्रदेशों पर अधिकार करने की चेष्टा करता है जिन पर उसका किसी भी कारणवश दावा नहीं रह चुका हो।

(ii) चीन यह नहीं चाहता कि भारत सोकृतम्भात्मक पद्धति पर चलते हुए ज्ञान-विज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो। इसीलिए वह कुछ द्वारा भारत पर सीमित संधियों का इतना बोझ डाल देता चाहता है कि जिससे भारत का अर्थ-तन्त्र बोलिभूत बन जाये और वह महान् राष्ट्र सफलता के मार्ग पर न बढ़ सके।

(iii) तिब्बत के प्रति भारत की नीति और बर्माईसामा को भारत द्वारा अलग दिये जाने से चीन भारत के प्रति असंतुष्ट है।

४ नवम्बर, १९६२ को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मुख्य-पूर्वी मामलों के महायुक्त सचिव हेरीमैन ने चीनी आक्रमण के निम्नलिखित उद्देश्य प्रकट करके बताये—

(i) चीन महाद्वीप में प्रवेश की प्राप्ति का इच्छुक है।

(ii) भारत पर आक्रमण की प्राप्ति में चीन अपने देश की आर्थिक विफलताओं से उत्पन्न अग्रतिष्ठा को भी देना चाहता है।

(iii) चीन का तीसरा उद्देश्य भारत की बदनाम करना उसके आर्थिक विकास में बाधा डालना और कृषि एवं उद्योगों की उन्नति को घोर से उसका अग्रान् हुटाना है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक सदस्य श्री वायट (Wyatt) ने कहा कि भारत पर अपने इन विस्तार आक्रमण से चीन एशिया को यह बता देना चाहता है कि वह पूर्व का स्वामी तथा कड़ी निगरान् में सर्वथा स्वतन्त्र है और युद्ध का अनिवार्य समझने वाले साम्यवादी बल का नेता है।¹ मध्यपूर्व

1 The Hindusthan Times November 19 1962 p 7

घोर दक्षिण पूर्वी एशिया के मामलों के अमेरिकन सहायता सचिव भी टैलबॉट ने मठ प्रकट किया कि चीनी धाक्रमण का उद्देश्य उत्तर पूर्वी सीमान्त प्रदेशों में बसाव डाल कर सहाज में सुविधायें प्राप्त करना था।¹

अनेक ब्रिटिश विद्वानों और पत्रकारों के मतानुसार चीनी साम्यवादीयों का लक्ष्य सहाज की सड़क को सुरक्षित बनाना था और अपने धाक्रमण द्वारा उन्होंने भारत को यह सूचित कर दिया कि इस सड़क पर घोर हिमात्मक विभिन्न प्रदेशों पर साम्यवादी चीन का अधिकार उसे (भारत को) स्वीकार करना पड़ेगा। श्री विद्याप्रकाश त्त ना ठकं है कि जबस मात्र इसी कारण से चीन का भारत पर धाक्रमण की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वह हमसा झुक करमे है पहले ही सहाज में तो सड़क बना चुका था और इस बात से भी मनों प्रकार परिचित था कि भारत उसे खींच ही मैतिक दृष्टि से वहाँ से नहीं हटा सकता। श्री त्त के मतानुसार चीनी धाक्रमण के अनेक बहुत बड़े उद्देश्य थे—

(i) भारत का एक ईर्ष्यासु पड़ोसी होने के नाते चीन कई कारणों से यह विस्मयी सं बहुत चिन्ता हुआ था। साम्यवादी पद्धति के परम उपासक चीनी नेताओं ने धर्म राष्ट्र के धार्मिक पुनरोत्थान के लिए एक लम्बी छमांग (Big leap) की नीति इस विश्वास से धर्म की ची कि यह सफल होगी और एशिया के सब देश चीन द्वारा दिखाने गये मार्ग का अनुसरण करेंगे। चीनी नीति के विपरीत भारत लोकतन्त्रात्मक रीति से पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा अपनी प्रगति में समा हुआ था जो मन्द हाँसे हुए भी स्वार्थी थी। दोनों पद्धतियों की इस प्रतियोगिता में 'कुर्माप्यबल संधी छमांग' की नीति न केवल विफल ही गई बल्कि बुगि तरह असफल भी हुई। इस नीति की असफलता से चीन की साम्यवादी पद्धति के स्थान पर भारतीय लोकतन्त्रात्मक योजनात्मक प्रणाली अधिक प्रष्ट प्रतिपादित हुई। इससे चीन का यह भय हा गया कि एशिया के दूसरे देशों में उसकी प्रतिष्ठा और उसके नेतृत्व का प्रभाव पहुँचेगा। प्रतिक्रियास्वरूप भारत की प्रतिष्ठा को बुरी तरह मरुभ्रष्ट होने के उद्देश्य से साम्यवादी चीन ने भारत पर बिलाल सैनिक धाक्रमण कर दना उचित समझा। सैनिक दृष्टि से भारत को पराजित करने यह इस बात का डिहोरा पीट देना चाहता था कि भारत एशिया में चीन के नेतृत्व और प्रभाव को चुनौती देने की शक्ति नहीं है। चीन इस बात से भी बहुत चिन्ता हुआ था कि जब उसके देशवासी अपना लून-पमीना बहा कर उन्नति करने में लग हुए थे। अभी उसके जाति-माई सोचियत बस न उन्हें मँसपर में छोड़ दिया जासा कि भारत को वह पहले से भी अधिक प्रचुर धार्मिक एवं प्राविधिक सहायता देता रहा। इन सब बातों से चीनी नेताओं ने निश्चय कर लिया कि मेहक को भीचा दिखाया जाये भारत की घुटों से प्रलग करने की नीति का बदनाम किया जाय तथा उसकी शक्ति और स्थिति को प्रबल हादि पहुँचा दो जाये। इसमें कोई संशय नहीं कि 'भारत पर चीन का धाक्रमण बड़े कर विचारों से किया गया जिसके उद्देश्य थे—हिमालय में वैश्व की शक्ति और

प्रधिकार को स्थापित करना भारत की प्रतिष्ठा को घटाना पहुँचाना नेहरू का नीचा दिखाना चीन को एशिया में सबसे बड़ी वास्तविक शक्ति सिद्ध करना चीनी माइयो के स्थान पर नेहरू के नेतृत्व में भारतीय प्रतिक्रियावादियों की सहायता करना वामे छान्धेव को पाठ पढ़ाना और संसार की शक्तियों का यह सूचना देना कि युगन्या में तब तक शांति नहीं रह सकती जब तक कि चीन को महाशक्ति के रूप में स्वीकार न किया जाय और उससे ऐसा व्यवहार न हो।¹

स्टैबिन्स के मतानुसार चीनी धाकमज के प्रथम कारण ये थे —
 बाह्यरिक्त प्रघाति अन्तर्राष्ट्रीय निराशा एशिया में चीन को सर्वोच्च शक्ति बनाने की जिंठा भारत का नीचा दिखाने की इच्छा और सोवियत मज को परेवान करने की आकांक्षा।

समुक्त राज्य अमेरिका में भारत के उत्कासीन राजपूत श्री बी० के० नेहरू ने चीनी धाकमज का विस्तार से विश्लेषण करते हुए अपनी एक टमीबिबन—मेंट में चीनी धाकमज के निम्नलिखित कारण बताये —

(i) चीन को भारत द्वारा की गई धार्मिक प्रगति से ईर्ष्या थी। वह इस प्रगति को धक्का करना चाहता था और इसका सर्वोत्तम उपाय उसकी दृष्टि में यही था कि भारत के साधनों को विकास कार्यों की धार से प्रतिरक्षा के कार्यों की ओर उन्मुख कर दिया जाये। मुझ खेड़ कर चीन ने भारत में ऐसी ही स्थिति पैदा करने की चेष्टा की।

(ii) चीन का पास लेन की कमी है और जब तक इस बारे में वह रूस पर पूरी तरह निर्भर था। चीनियों को इस बात का विश्वास था कि यदि हिमालय पार करके उन्होंने आसाम पर अधिकार प्राप्त कर लिया तो इस प्रश्न का लेन—रूप उन्हें मिल सके थे।

(iii) दक्षिण-पूर्वी एशिया में और दोनों पटों से घुसक रहने वाली शक्तियों में भारत को भी प्रतिष्ठा प्राप्त थी वह पैकिंग को अत्यधिक बढकती थी। पैकिंग नई हिस्सी को सैनिक दृष्टि से पराहित करके संसार को बताना चाहता था कि एशिया का नेता भारत नहीं बल्कि चीन है।

(iv) चीन सोवियत रूस द्वारा भारत को भी आभ वाली सहायता से सख्त माराज था और धाकमज की स्थिति पैदा करके रूस को इन बात के लिये बाध्य करना चाहता था कि वह भारत का पक्ष लेता छोड़ दे और उसकी सहायता न करे।

भारत पर धाकमज करने में चीन का एक प्रधान उद्देश्य पाकिस्तान को अमेरिकन—पूट से निकाल कर अपने साथ मिलाता और दक्षिण पूर्वी एशिया में अमेरिका के प्रभाव को मज्ज्य बनाना था। प्राचीन घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि पाकिस्तान को अमेरिका की धार से निमुक्त करने में चीन बहुत कुछ धरम हुआ।

चीनी मामलों के विरोध में सी० एफ० हडसन ने चीनी आक्रमण के उद्देश्यों का विचार रूप से विश्लेषण करते हुए यह मत प्रकट किया कि इस समय भारत एवं प्रकृत एशिया के नेतृत्व के लिये संघर्ष है। रूप एशिया का दृष्टि में आज भी एक पश्चिमी क्षेत्र है और द्वितीय महायुद्ध में पराजित होने के बाद जापान के एशियाई-नेतृत्व की संभावना घुमिप्त हो गई है। एसी स्थिति में आज एशिया के नेतृत्व की प्रतिस्पर्धा केवल भारत और चीन के बीच है। चीन सम्राज्यवादी साम्यवादी पद्धति का पापक है ता भारत पश्चिमी देशों की राजनीतिक शक्ति-आत्मक प्रणाली पर चमत्त हुए वैयक्तिक स्वतंत्रता और कानून के शासन (Rule of Law) का अनुयायी है। चीन के साम्यवादी नेताओं ने देखा कि बहा शोक्त-आत्मक पद्धति की योजनाओं में भारत स्वामी धार्मिक प्रवृत्ति कर रहा है बहा लंबी छ्नाग का नीति की प्रसफमता से चीन की प्रतिष्ठा को गहरा घाघान गया है और इस दानि की वृत्ति केवल वैतन आक्रमण में भारत को युद्ध-लेन में पराजित कर ही जा जा सकती है। इसी विचारधारा के प्रभाव में जाकर चीनी नेताओं ने अपनी विशाल स्वतीय रोगा को भारत पर आक्रमण करने के आदेश दलिय। जब चीन अपने आक्रमण के विभिन्न उद्देश्यों को बहुत कुछ प्रकट कर चुका तो उमने सहमा ही युद्ध बन्द करने की एक-पसीय पापणा करक नाति प्रियता की माहूवाही सूटने की पच्छा की।

(४) चीन तथा सोवियत रूस एवं समानवादी देशों के मध्य देश

जैसा कि कहा जा चुका है चीन के लिये संविधान की प्रस्तावना में 'सोवियत संघ तथा जनता के शोक्त-आत्म के साथ प्रदुट मैत्रा का उल्लेख है। वस्तुतः उसके बन के समय से ही यह मैत्री चीना विदेश नीति को आधार गिना रही यद्यपि बाद में जाकर चीन स्वयं साम्यवादी जगत के नेतृत्व के लिये सोवियत संघ की बटोर प्रतिस्पर्धा करने लगा और उनमें म केबस संझाम्तिक संघर्ष ही उठ लड़ा हुआ बकि उनके पारस्परिक हित भी टकरान की शीबत घा गई और आज स्थिति यह है कि दोनों मैत्र एक दूसरे की निम्बा करने व एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप की भट्टी लगान म एक दूसरे को भात देने की मनोबजा में है। इतना ही नहीं अपनी एक पार स लगनी हुई सीमा पर दोनों देसा की सेनायें भी लगी हुई हैं।

नाति के फौरन बाद चीन और सोवियत संघ की मत्री मत्री स जमती-फुनती रही। माघोस्तेगुद्ध ने रूस की माता की और २४ फरवरी १९५० को दोनों देशों के मध्य मीन संधिया हुयी—(१) ३० बय के मिय मैत्री और पारस्परिक सहायता की संधि (२) र्दान जुन-देरने पाठ-घार्यर और डाइरन (Dalren) में संबद्ध संधि एवं (३) श्रुत संवमित समझौता।

प्रथम संधि के द्वारा यह निश्चय किया गया कि जापाना घायमण की स्थिति में घयबा जापान के सहारा से हिनी दूसरे देस के आक्रमण का

स्विति में दोनों देश परस्पर एक दूसरे की सहायता करते और साथ ही वे ऐसी किसी भी संधि में लिप्त न होंगे जिससे उनमें से किसी क हितों पर प्रभाव आती हो। उन्होंने यह भी तय किया कि वे जापान के साथ भी एक शांति संधि के लिये प्रयास करेंगे समान हितों के सभी प्रत्यर्राष्ट्रीय मतलों पर परस्पर विचार-विमर्श करते समस्त विश्व में शांति एवं सुरक्षा की प्राप्ति हेतु की जाने वाली कार्यवाहियों में भाग लेंगे तथा परस्पर निकटतर प्राथिक एवं सांस्कृतिक संबंध स्थापित करेंगे।

द्वितीय संधि के द्वारा सोवियत संघ ने ज्वाय बुन-रेस्ने को जापानो शांति संधि के बाद और अधिक से अधिक १९५२ के अन्त तक चीन को हस्तांतरित करने की प्रतिज्ञा की। इस संधि के द्वारा यह भी निश्चित हुआ कि १९५२ तक सोवियत संघ की सेनायें पोर्ट धार्बर से जापान हुआ भी जायेंगी। बाहरन के सम्बन्ध के संबंध में अन्तिम निर्णय उस समय तक के लिये स्थगित कर दिया गया जब तक कि जापान के साथ शांति संधि न हो जाए। फिर भी अस्थायी रूप से यह संपूर्ण संपत्ति चीन को दे देना जिसे रूस ने पट्टे में प्राप्त किया था।

तृतीय संधि के द्वारा सोवियत संघ ने चीन को ५ बय की अवधि के लिये ३ कराड़ डालर का कर्जा देना स्वीकार किया। इस ऋण का ५ किश्तों में दिया जाना तथा ११ दिसंबर, १९५४ के पश्चात् १० किश्तों में लौटाया जाना निश्चित हुआ।

इन संधियों द्वारा १९५५ की सोवियत संघ और चीन की संधियों को अन्त कर दिया गया।

उपरोक्त संधियों के सम्पन्न होने के उपरान्त सोवियत रूस और चीन के संबंध कुछ बर्षों तक अत्यन्त मैत्रीपूर्ण रहे। सितम्बर, १९५२ में ज्वाय बुन-रेस्ने चीन का लौटा दी गई परन्तु पोर्ट धार्बर के बारे में यह निश्चय हुआ कि यह तक तक नहीं लौटाया जाएगा जब तक कि जापान की रूस और चीन के साथ शांति-संधि नहीं हो जाती। बाय में यह १९५४ में तय किया गया कि पोर्ट धार्बर १९५५ से चीन को दे दिया जाएगा। मई, १९५५ में इसे चीन को हस्तांतरित भी कर दिया गया।

इस अवधि में सोवियत संघ द्वारा चीन को दी जाने वाली वित्त-वाणिज्य और प्राथमिक सहायता में भी निरन्तर वृद्धि होती गई। लिफ्टान में तेल तथा विभिन्न प्रकार की धातुओं का बोलन (Exploitation) हेतु संयुक्त पुंजी कम्पनियां (Joint Stock Companies) स्थापित करने के और चीन तथा रूस के बीच याता-यात सेवार्थ धारंभ करने के लिए एक समझौता किया गया। दोनों राष्ट्रों के मध्य सभी प्रकार के प्राथिक संबंधों का विकास हुआ। तीन संयुक्त नियमों की स्थापना की गई—सिक्कीम में तेल झरो की खान, उसके उत्पादन व बाजार के लिये चीनी-रूसी तेल निर्यात

विक्रयों में दुसरे एवं अन्य प्रकार की धातुओं की लागें खोजने संबंधी नियम तथा चीनी-रूसी मगर उद्योग निगम। चीन का सगमग ७० प्रतिशत व्यापार रूस के साथ होने तथा जिसमें १९५० के बाद निरन्तर वृद्धि होती चली गई। रूस ने बिक्रयों में प्राविधिक कर्मचारी और परामर्शदाता चीन भेजे और हजारों की संख्या में चीनी युवक औद्योगिक मशीनों खानों तथा रेलवे संबंधी प्रविक्षण के लिये रूस जाये गये। सन् १९३१ में 'औद्योगिकरण योजना' धारण करने ११ नये संस्थानों की स्थापना करने तथा ५० पुराने संस्थानों के स्वरूप परिवर्तन के लिये' रूस द्वारा चीन को और अधिक श्रम प्रदान किया गया। ११ अक्टूबर, १९५४ का एक नये समझौते द्वारा यह निश्चित हुआ कि— सोवियत संघ चीन को लगभग १ अरब रूस (रूसी मुद्रा) मूल्य के यंत्र-उपकरण तथा श्रम वेतन मिश्रित कर्षणों संबंधी सभी रूसी प्रविधिक चीन को लौट देगा तथा रेलवे निर्माण वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रतिविधियों में उसके साथ सहयोग करेगा। १९५४ में ही रूस ने चीन की अनुशासित उत्पादन में भी सहयोग देना स्वीकार किया परन्तु साथ ही यह निर्णय भी हुआ कि चीन द्वारा अनु-परीक्षण रूस की पूरा अनुमति के बिना नहीं किया जा सकेगा। इसके प्रतिरिक्त चीनी-रूसी मैत्री संगठन स्थापित किये गये। इसे स्थायी घट्ट एवं सक्रियता बचाने के लिये प्रचार का सहयोग मिया गया। रूसी साहित्य का चीनी भाषा में अनुवाद करवाना भी धारण हुआ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे के साथ काफी समय तक सहयोग में काम किया। सोवियत संघ ने चीन को समुक्त राष्ट्र संघ में स्थान बसाने के लिये निरन्तर प्रयास किया और इस दिशा में अपने चीन से मतभेदों के बावजूद भी ध्यान भी बहु प्रयत्नशील है। १९५४-५५ में दोनों ही देशों ने पश्चिमी शक्तियों विरोधकर अमेरिका द्वारा निर्मित किये जाने वाले प्रादेशिक सैनिक संगठनों की कटुतम आलोचना की। १९५६-५७ में दोनों ने मित्र पर ब्रिटेन व फ्रांस के आक्रमण की निन्दा की। हंगरी और पोलैण्ड में जब दखिख पंथी दंगे हुए तब भी दोनों देशों में नियमित रूप से बिचार-विमल होत रहे। १९५८ में टोटो के संशोधनवाद की कटु आलोचना भी दोनों ही देशों के द्वारा की गई। सोवियत संघ की मार्ग ही धर्म समाजवादी देशों के साथ भी चीन ने मैत्रीपूर्ण संबंध कायम रखे। उनके साथ विद्यार्थियों विभाजियों संगीतकारों नृत्यकारों और प्राविधिक विशेषज्ञों का आदान-प्रदान किया तथा अनेक व्यापारिक समझौते भी किये।

परन्तु चीन और समाजवादी देशों के अन्य देश—विरोधकर रूस के पारम्परिक संबंध धरिध समथ तक मैत्रीपूर्ण नहीं रह सके। वास्तव में इनके संबंधों में तनाव का बीजारोण तो तब ही हो गया जब १९५४ में सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी को २०वीं कांग्रेस की बैठक मद्रास हुई। इन कांग्रेस में भाग लेते हुए डॉ. लुबोव न हो जाने लगी नहीं थी जो पठमुम्ने य-वर्षादियों की समझ से परे थी और जिनके साम्यवादी जगन में शैक्षणिक कार्य को प्रकाश ही अर्थ दे दिया। सभी तरह समुदा साम्यवादी आ-यन

यह मानता था या कि जब तक पूजोवादी व्यवस्था का अस्तित्व रहेगा तब तक संसार में युद्धों की अनिवार्यता भी बनी रहेगी। साम्यवादी आन्दोलन की यह भी मान्यता थी कि विभिन्न देशों में समाजवाद की स्थापना क्रांति के द्वारा ही संभव हो सकती है। परन्तु श्री लुश्चेव ने परम्परागत इन दोनों मान्यताओं की उपेक्षा की और धार्मिक धायुषों के वर्तमान युग के लिये इन्हें असंभव बताया। उन्होंने कहा कि समाजवादी योजना प्रायः इतना अकिञ्चिती है कि किसी भी धर्म-साम्यवादी देश का उस पर आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं हो सकता जब यह कहना अनुचित है कि युद्ध व्यवस्थावादी है। इसी तरह अंतिम की अनिवार्यता के संबंध में श्री लुश्चेव ने कहा कि प्रायः संसार के सभी देशों में जन-आन्दोलन इतने सतत बन चुके हैं कि कुछ देशों में समाजवाद की स्थापना हितसामक क्रांति द्वारा नहीं बल्कि विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा ही और समस्त संघर्षीय तरीके से ही संभव हो सकती है। श्री लुश्चेव की ये दोनों स्थापनायें चीनी नेताओं के गले नहीं उतर सकीं। फलस्वरूप चीनी साम्यवादी पार्टी ने सोवियत नेताओं को पक्ष पर श्री लुश्चेव पर सजोषनवादी होने का आरोप लगाया और उनकी कटु आलोचना करना शुरू कर दिया। चीनी नेताओं ने कहा कि श्री लुश्चेव ने उनके सहयोगी मार्क्स और लेनिनवाद के बतये गये सिद्धान्तों से प्रलय हुए हैं।

सन् १९५६ के बाद दोनों देशों के बीच अन्तिम के लिए संघर्ष खिड़ जाने के कारण दोनों के राष्ट्रीय हितों में भी मेल-पैदा हो गया। साथ ही दोनों का वैवाहिक संघर्ष भी पुनर्पिता तीव्रतर हुआ। श्री लुश्चेव द्वारा मास्को में कनी साम्यवादी दल की सन् १९५६ में आयोजित कांग्रेस (और १९६१ की २२ वीं कांग्रेस में भी) स्टासिन की तीव्र मर्खना एवं निन्दा की गई। श्री लुश्चेव के इस स्टासिन विरोधी अभियान को विस्तामितिकरण की सजा दी गई। पैकिंग को इस के नये नेताओं का यह व्यवहार बड़ा नायाबार गुबारा। इसी तरह जब मास्को युगोस्लाविया को साम्यवादी आतृत्व में बापिस बुलाने के लिए तत्पर हुआ तो भी चीन को बड़ा गुबारा मगा। चीनी विदेश मंत्री श्री चैन यी ने युगोस्लाव पुनर्निर्धारवाद पर तीव्र आक्रमण प्रारम्भ कर दिया - तीव्रता इसतिर्ब नमोंकि चीनियों की दृष्टि में युगोस्लाव राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने अमेरिकानासियों के साथ सहपस्वित्व का इरादा जाहिर करके जोर प्रपण किया था।

सोवियत जब और चीन के मध्य मतभेदों की खाई निरन्तर खोड़ी होती गई। जब अक्टूबर १९५९ में चीन अमेरिका राज्य के तीव्र प्रपण मंत्री श्री लुश्चेव ने साइबेरियावर से कम्युनिज्म में मुसाकत की और अमेरिका के प्रति सोवियत कठोरता में कुछ संभावित तन्त्रना के संकेत दिये तो बुमरी घोर चीन ने बातिगटन विरोधी निन्दा प्रचार प्रचरित गति से जारी रखा और इस बात की प्रयत्न केला की कि कम्युनिज्म तथा अमेरिका के मध्य समझे वाले चीन युद्ध में किसी प्रकार कनी न घा पाये। चीन ने अमेरिका के साथ समझौते की जरा भी इच्छा प्रदर्शित नहीं की। श्री लुश्चेव की अमेरिका

यात्रा को चीन ने बहुत बुरा समझा इसीलिए श्री सुश्वेब को, जब उन्होंने चीन की यात्रा की पैकिंग में कोई विशेष स्वागत प्राप्त नहीं हुआ। पुनश्च जब उन्होंने माघोत्सव से विश्व में एक गंवा नवीन आतावरण पैदा करने में सहयोग देने का अनुरोध किया जिसमें पूब व पश्चिम के निवासीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने की दिशा में सहायता मिल सके ता चीनी नेताओं ने उनके इस विचार को प्रति कोई उत्साह प्रकट नहीं किया। वास्तव में चीनियों ने श्री सुश्वेब के सुझाव को अपमान सूचक समझा कि वे लोम सोवियत संघ को ऐसे शत्रुओं के साथ समझौता स्थापित करने में सहयोग दें जो फारमोसा की कम्युनिस्ट सरकार को सक्रिय सहायता देती है या पश्चिम को कूटनीतिक मामला प्रदान करने में इन्कार करती है और जो संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के सदस्यता प्राप्त करने के मार्ग को अवरुद्ध करती है। पश्चिम सरकार ने अपने व्यवहार से अपनी इस नाराजगी और नापसंदगी को साफ जाहिर कर दिया कि एक तरफ ता श्री सुश्वेब राष्ट्रपति फ्राइजलहाबर से यह आश्वासन प्राप्त करने में असफल रहे हैं कि अमेरिका साम्यवादी चीन के प्रति कुछ नर्म दृष्ट प्रकट करेगा और दूसरी तरफ वे चीन-वासियों से यह अपेक्षा करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने में वे सहयोगी बनें।

श्री सुश्वेब ने अपनी इस चीन यात्रा (१९३६ में) के दौरान इस बात पर बल दिया कि चाहे साम्यवादी कितने ही सतकत क्यों न हो जाए उन्हें पूर्वीपति राष्ट्रों के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग करने से बचे रहना चाहिए। चीन के मार्क्सवादी नेताओं को श्री सुश्वेब का यह कथन 'प्रतिक्रियावादी शक्तियों की प्रवर्तनादी शक्तियों पर विजय के समान प्रतीत हुआ। श्री सुश्वेबने अमेरिकन राष्ट्रपति फ्राइजलहाबर की राजनीतिज्ञता की जो प्रशंसा की वह भी चीन-वासियों के पक्ष में उठर सकी। वास्तव में यह कहना कोई प्रतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि चीनियों को श्री सुश्वेब की अमेरिका यात्रा एक प्रकार का विरहामपात लगी।

चीन और रूस के सम्बन्धों में तब और भी बढ़ता घाई जब १९३६-३७ में चीन के भारत के साथ चल रहे सीमा विवाद पर श्री सुश्वेब ने यह आशा व्यक्त की कि दोनों देश धरने सीमा सम्बन्धी झगड़ों का शीघ्र ही कोई शान्तिपूर्ण हल पायेंगे। श्री सुश्वेब ने चीन का कोई वृष्टयोपण न करते हुए उसकी मित्रता को सपनम बर्सा बर्सा दिया या भारत को। माघो चाऊ और अन्य चीनी नेताओं को यह भी बड़ा बुरा लगा कि जहां चीन अपने गणितवाई पड़ोसी देशों के साथ तीव्र मतभेदों में घोर सपनों में संलग्न था वहीं श्री सुश्वेब रंभुन गई दिल्ली और अर्थात् घाति में मदमावना यात्राओं पर जा रहे थे और इन राजधानियों में मैत्री सूचक दावना का गया है रहे थे।

साम्यवादी चीन की मानवियत संघ में १९६० में विभिन्न प्रश्नों पर सैद्धांतिक मतभेद 'व' का गद। नाभरपायी प्रश्नों को सत्तर मर में केंद्र में के नियम ११३ के परिधि परिधि उप ह । -न १९६० के बुगारैस् में हुए रगाधिया अर्थात्गी दन के तुनीर समरन क घबम १२ श्री सुश्वेब ने अपने इस मत की पुनः पुष्टि की कि चीन का 'पूर्वीपति के

अपीन युद्ध की धनिबान्धता का सिद्धान्त अब सामू नहीं होता। दूसरी ओर चीनी प्रतिनिधि मंडल के नेता ने वापणा की कि जब तक साम्राज्यवाद विद्यमान है युद्धों का अंतरा बना रहेगा। इसके बाद नवम्बर १९६० में मास्को में साम्यवादी नेताओं का जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ उसमें भी स्वी चीनी सैद्धान्तिक मतभेद और भी तेजी से उभर कर सामने आये। स्वी समाचार पत्रों में चीनी "कट्टर पंथी" रक्त के विरुद्ध मूर्खतापूर्ण लेख प्रकाशित होते रहे और दूसरी ओर चीनी समाचार-पत्र व रेडियो स्वी "संयोजनवाद" की कट्टर शक्तों में निम्न करते रहे। चीन रूस से इस कारण भी बहुत अधिक चिढ़ गया कि जुलाई १९६० को रूस ने चीन की विकास योजनाओं में लगे समस्त सोवियत वैज्ञानिकों को तीन दिन का नोटिस देकर बुला लिया और यह स्वी कर्मचारी अपने साथ विकास योजनाएँ व मन्त्रे तक साथ लेते आये। सोवियत संघ ने चीन को सामग्री और मशीनें आदि भेजना भी बन्द कर दिया। दोनों देशों के बीच के मतभेदों की यह खाई तक और भी अधिक चौड़ी हुई जब १९६१ में सोवियत साम्यवादी पार्टी का कार्यक्रम प्रकाशित हुआ जिसमें २ वर्ष की अवधि में सोवियत संघ में साम्यवाद की स्थापना का मार्ग दिया गया। इस कार्यक्रम में साम्यवाद का जर्ण वस्तुओं को प्रचुरता बताई गई। चीनी साम्यवादी पार्टी को कार्यक्रम में जो हुई साम्यवाद की यह व्याख्या अत्यन्त आपत्तिपूर्ण लगी। दोनों देशों के संबंध तक और भी अधिक कट्टर हुए जब १९६२ में सोवियत रूस ने भारत को मिस विमान देने तथा उनको बनाने के कारखानों में सहायता देने का समझौता किया। १९६२ में ही न्यूवा संकट में अपनाई गई स्वी नीति ने भी चीनियों को बहुत चिढ़ किया। चीनी नेताओं ने आरोप लगाया कि न्यूवा के सम्बन्ध में सोवियत नीति आदि में अत्यन्त तक यत्न रही है। रूस ने पहले तो न्यूवा में अपने प्रवेशवास्तव भेजे किन्तु बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा युद्ध की धमकी देने पर उन्हें वापिस मंगा लिया। चीनी नेताओं ने कहा कि रूस का पहिना होय 'वुस्साहस का बा और दूसरा कायको लेर अमेरिकन साम्राज्यवाद के आगे 'बुनित धारमसमरण करने का। १९६२ में ही भारत पर चीन के धाकमण के सम्बन्ध में स्वी नीति ने भी चीन को अग्रसन्न कर के धनि में भी का काम किया। दोनों देशों के मध्य सैद्धान्तिक मतभेदों की यह खाई बढ़ती ही गई। १४ नवम्बर, १९६२ को मोस्को में हुए अमेरिकन साम्यवादी दल के सम्मेलन में स्वी प्रतिनिधि ने कहा कि साठिपूर्ण सहप्रस्तित्व के प्रति रिक्त किसी भी नीति को मुक्तिघण्ट नहीं माना जा सकता। उभर चीनी प्रतिनिधि ने सोवियत सरकार के दृष्टिकोण की ओर जिनका की।

जुलाई १९६३ में रूस और चीन की साम्यवादी पार्टियों में बातों हुई ताकि परस्पर बिचारबाटा में मन्त्रेय प्राप्त किया जा सके। किन्तु मास्को में हुई यह वार्ता पूरी तरह असफल हो गई और दोनों ही देशों के द्वारा एक दूसरे की कट्टर शक्तों में निम्न की गई। स्वी नेताओं ने अपना यह स्पष्ट मत प्रकट किया कि पश्चिम के साथ युद्ध होने पर मानव जाति समूह नष्ट हो जाएगी जिसमें स्वी जनता और उसकी सम्पत्ति भी सम्मिलित है अतः ऐसे विनाशक युद्ध की बात सोचना मूर्खतापूर्ण होना। किन्तु इसके विपरीत चीनी

नेताओं का यह विचार बना रहा कि साम्राज्यवाद के सम्पूर्ण विनाश के लिए युद्ध अत्यावश्यक है। उनकी (इसी नेताओं की) विचार प्रणाली कुछ इस प्रकार की थी कि परमाणुविक युद्धों से सड़ा गया तृतीय महायुद्ध अन्तिम रूप से अमेरिका और इस को ही समाप्त करेगा चीन को नहीं। अपनी विनाश संस्था के बल पर, महायुद्ध के बाद भी चीन संसार की महानतम शक्ति ठेप रह जायगा और तब संसार में साम्यवादी शक्ति का प्रश्न सुगम हो जाएगा।

२२ जुलाई १९६३ का मास्को में अमेरिका इस और ब्रिटेन ने एक अणु परीक्षण निरोध संधि पर हस्ताक्षर कर के आकाश बाह्य अन्तरिक्ष और जल के नीचे अणु परीक्षणों पर रोक लगा दी। किन्तु साम्यवादी चीन ने न केवल इस संधि का बहिष्कार ही किया बल्कि अपने इस कार्य को उचित ठहराते हुए सोवियत सभ पर यह धाराप लगाया कि यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साथ मिलकर अणुविक जन्त्रों के क्षेत्र में अपनी एकाधिकार क़ायम रखना चाहता है। उनकी सम्मति में इस संधि का बल एक ही प्रयोजन है—चीन को प्राणुबल शक्ति बनने से रोकना।

१९६३ तक दार्जिलिंग के बीच कटुता की एक गहरी घोर जगमग स्थायी छाई बन गई। फिर भी कम न जहां समय से काम लिया बड़ी चीन आविष्यत इस के राजनीतिक व्यवहार, विचारधारा व अन्य नीतियों का प्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से कटुतम रूप में विरोध करने लगा। फलस्वरूप इस को भी अपने बचाव के लिए कुल कर प्राये धाना पड़ा और इस तरह इन दोनों महाशक्तियों का साम्युद्ध सम्पूर्ण साम्यवादी जगमग की एकता को गहरा घाघात पहुंचाने लगा। मिल्टन कोवनेर (Milton Kovner) के शब्दों में "एक विनाश उपासामुखी की तरह विरोध और संघर्ष की विचारियां जा अब तक मित्र एवं सहभागी के भूटे आवरण से प्राणुबल भी पूर्ण अन्तिय होकर बमक उठीं जिनके ज्ञान्त होने की सम्भावना निवृत्त भविष्य में दिनाई नहीं देती।"¹

१९६४-६२ के वर्षों में भी इस और चीन ने सम्बन्धों में घोर विगाह हुए। चीन इस को पाश्चात्य देशों का अनुचर बताने लगा और उसने यह धारण लगाया कि यह (रूस) अमेरिका और उसके मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर विश्व साम्यवादी प्राणुबल की पीठ में सुरा भाषना चाहता है। अक्टूबर १९६४ में भी कुलवेर को अणुबल पर विरोध करने पर पेरिस में बड़ी गतिमानताई गई और यह आशा प्रकट की गई कि रूस के अनेक नेता जातिपूर्वक बहुमन्त्रित्व की नीति को त्याग कर विश्व साम्यवादी प्राणुबल को बलपूर्वक

1 "Like a long smouldering volcano now active now quiescent, the Sino Soviet dispute has erupted anew with unprecedented intensity and the dust has not yet settled."
— Milton Kovner Sino Soviet Dialogue in Current History September 1963 page 120

घाय बड़ाये। परन्तु जब रूस के नये प्रमानमंत्री श्री कासीगिन और राष्ट्रपति ब्रिजन ने पाश्चात्य देशों के साथ सहप्रस्थित्व की नीति का परिणाम सही किया तथा उसका साथ अपने विचारों को मातिपूर्वक सुझाने के मार्ग पर चलन का निश्चय किया तो चीनी नेताओं को बड़ी निराशा हुई और उन्होंने रूस के नये नेतृत्व पर भी उसी प्रकार के शंका समाये जिस प्रकार के वे श्री स्टालेन पर समाते रहे थे। साथ ही रूस और चीन की तनातनी निरन्तर बढ़ती जा रही है तथापि यह तन्मिषबाशी करना कठिन है कि रूस और चीन के भाषी सम्बन्धों की गति क्या होगी। इन प्रतीत ऐसा होता है कि शक्तिशाली पुनर्बागीरररु सम्भव हो सकेगा रूस पाश्चात्य देशों के साथ अपने भेदभाव मिटा सकेगा और वे सम्मिलित शक्तियाँ चीनी शक्ति से विश्व को बिभुक्त करा सकेंगी।

(२) चीन एवं बाह्य मंगोलिया

बाह्य मंगोलिया पूर्वी एशिया का एक छोटा सा देश है। यद्यपि यह समुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया गया है परन्तु उसका व्यवहारतः कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इसकी स्थिति एक प्रकार से पूर्वी यूरोपीय अठपुतकी साम्यवादी देशों जैसी है। इस पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सोवियत रूस का प्रभाव और नियन्त्रण है। मास्को के आदेश पर ही इसकी नीतियों का संश्लेषण होता है।

पहले बाह्य मंगोलिया पर चीन का प्रभुत्व था। तत्पश्चात् जापानियों ने चीन से इसे छीन कर वहाँ एक समय सरकार स्थापित कर दी। सोवियत रूस के प्रयास से १९२४ में पूबक राज्य के रूप में इसकी स्थापना हुई। तब से ही मंगोलिया रूस और चीन के बीच बफर (Buffer) राज्य है। चीन का साम्यवादी शासन बाह्य मंगोलिया पर सोवियत प्रभुत्व का प्रतिद्वन्द्वी और इस धुन्-धुन का अपने प्रभुत्व में लेना चाहता है। पहले चीन ने बाह्य मंगोलिया के स्वतंत्र अस्तित्व को इससिने स्वीकार किया था कि उसे स्वीची अहामता और समर्पण की अत्यधिक आवश्यकता थी। उस समय वह सोवियत रूस को नाबुल नहीं कर सकता था। परन्तु अब स्थिति बदलती जा रही है और सोवियत रूस के साम्यवादी चीन का अन्तर्विरोध बढ़ रहा है। चीनी मता कई बार स्पष्ट तौर पर कह चुके हैं कि बाह्य मंगोलिया उनका है। चीन बाह्य मंगोलिया में अपने प्रभाव बढ़ाने की जी-तोड़ कोशिश कर रहा है। १९९१ में चीन ने उसे ५० लाख डॉलर का ऋण मन्त्री प्रथमिक मित्र दिया और अब तो बाह्य मंगोलिया चीनी-कार्यकर्ता कार्य रहे हैं।

(३) चीन और तिब्बत

तिब्बत का क्षेत्रफल ४ लाख ७० हजार वर्गमील का जब कि जनसंख्या केवल ३२ लाख। यह हिमालय और कुनपुन पर्वत और खादियों पर इतनी ऊँचाई पर बसा हुआ है कि इसे संसार की छत (Roof of the World) कहा जाता है। साथ ही यह प्रदेश इतना दुर्गम है कि इसे पशुसमय

बेस (Mysterious Country) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसका उत्तर में सिक्किम (चाम) और दक्षिण में नेपाल तथा भारत और पाकिस्तान से सीमा लगती है। ७ वीं शताब्दी में तिब्बत एक सक्तिवासी राज्य था और ८ वीं शताब्दी में तो यह चीन से लड़ना सिया करता था। १८ वीं शताब्दी में छठे दलाईलामा के उत्तराधिकार के प्रश्न पर तिब्बतियों और मंगोलों में झगड़ा हो गया तथा चीन ने तिब्बत की राजधानी ल्हासा पर अधिकार करके ७ वें दलाईलामा की अपनी इच्छानुसार नियुक्ति कर दी।

सन् १९०६ में चीन और ब्रिटेन ने एक संधि पर हस्ताक्षर किये जिस के अन्तर्गत तिब्बत पर चीन का संरक्षण (Suzerainty) स्वीकार कर लिया गया। चीनी सरकार ने 'संरक्षण' के इस अधिकार का दुरुपयोग करते हुए १९०८ में तिब्बत की भ्यावहारिक प्रशासनिक शक्तियाँ स्वयं हस्तगत करके दलाईलामा के पास केबल उमजा नाम मात्र का पद रहने दिया। सन् १९११ में तिब्बतवासियों ने चीनी सैनिकों को निःशस्त्र बाहर किया और दलाईलामा ने अपने देश को स्वाधीन घोषित कर दिया। चीन ने तिब्बत में पुनः अपना प्रभुत्व स्थापित करने का असफल प्रयास किया। अप्रैल १ १४ में चीनी अधिकारियों और भारत के ब्रिटिश अधिकारियों ने एक अन्य समझौते द्वारा तिब्बत पर चीन के संरक्षण की पुष्टि कर दी। तिब्बत को दो भागों में बांटने की योजना बनाई गई—एक बाह्य तिब्बत जिसमें ल्हासा समाविष्ट था और दूसरा 'भौतिक तिब्बत' जिसकी सीमायें चीन की सीमाओं से मिलती थी। बाह्य तिब्बत की स्वायत्तता स्वीकार की गई और चीन ने 'इस क्षेत्र के प्रशासन में हस्तक्षेप न करे' इसको चीनी संसद में प्रतिनिधित्व न देने उसमें अपनी सेनायें न भेजने, वहाँ अपने सिविल अधिकारीकरण नियुक्त न करने और उसकी भूमि को एक चीनी उपनिवेश में परिणत न करने' का वचन दिया। परन्तु चीनी संसद ने इस समझौते को संयुक्त करने से इन्कार कर दिया। सन् १९१३ में चीन ने ल्हासा से मांग की कि तिब्बत के वैदेशिक संबंधों के प्रशासन का अधिकार चीन को दिया जाय और साथ ही पूरे प्रशासन में भी चीनियों को पर्याप्त भाग मिले। दलाईलामा ने न केवल चीन की मांग को ठुकरा दिया बल्कि उसमें बहरबस्ती पोषे गये चीनी 'संरक्षण (Suzerainty) को भी मानने से इन्कार कर दिया। १९१६ में चीन ने तिब्बत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का पुनः असफल प्रयास किया। द्वितीय महायुद्ध में जापानियों से पराजित होने वाली चीनी गणराज्य सरकार की सेनाओं ने पीछे हटने की क्रिया में कुछ तिब्बती भूमि पर अधिकार कर लिया। युद्ध समाप्त होने के उपरान्त तिब्बत ने इस भूमि का वापिस लौटाया जाने की मांग की जिसे ठुकरा दिया गया। १९४६ में चीन में साम्यवादी शासन की प्रस्थापना हुई जिनके चारों साम्राज्यवादी प्रांशालों की पुनः क्विप तिब्बत को मंगलाने ङंग में चीन का एक प्रतिरुद्ध तथा अविभाज्य भाग घोषित किया। ३ अक्टूबर १९२० का तिब्बत की स्वायत्तता का उन्मूलन करते हुए चीन ने उस पर प्रायमण कर दिया। तिब्बती जनताओं ने योद्धा बहुत प्रतिरोध किया परन्तु वे चीन की विगत शक्ति का सामना करने में असमर्थ रहें। भारत ने चीन का विरोध नहीं

मेका जिसके उत्तर में कहा गया कि चीन का उद्देश्य तिब्बत को 'साम्राज्यवादी दासत्व' से मुक्ति दिसाना है। चीन ने यह भी सिखा कि तिब्बत संबंधी उसकी कार्यवाही उसका धरेलू मामला है और इस बारे में भारत का विरोध विदेशी प्रभाव के कारण है। इस पर भारत ने ४ नवंबर १९५० को संयुक्त राष्ट्र सब से सहायता मांगी किन्तु तब तक चीन की पालतुक दृष्टि से सब कर तिब्बत स्वयं अपने पर उसका अधिकार मान चुका था। ऐसी अवस्था में संयुक्त राष्ट्र सब ने भारत के प्रस्ताव पर विचार करना स्वयं पर कर दिया।

२३ मई १९५१ को चांग और तिब्बत के मध्य निम्नलिखित शर्तें हुईं—

- (i) तिब्बत को स्वायत्त शासन का पूर्ण अधिकार होगा और चीन उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।
- (ii) परन्तु तिब्बत के विदेशी संबंधों का दायित्व चीन पर होगा।
- (iii) प्रतिरक्षा कार्य को सुदृढ़ बनाने के लिए चीनी सेना तिब्बत में रहेगी वहाँ की सेना का पुनर्गठन करेगी तथा अन्ततः चीनी सेना में उसको धारमसात् कर लेगी।
- (iv) चीनी सरकार बर्खास्तमाना को उचित सम्मान प्रदान करेगी तथा वे अपने अधिकारों के साथ तिब्बत लौट पायेंगे।
- (v) तिब्बत में सामिक स्वतन्त्रता रहेगी।
- (vi) स्वायत्त सरकार द्वारा किए जाने वाले सुधार कार्यों में चीन हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा विकास कार्यों में सहयोग देगा।
- (vii) जिन तिब्बतियों ने चीनी सेना का साथ दिया है उन्हें दण्डित नहीं किया जायेगा।
- (viii) चीन का एक सैनिक तथा प्रयासकीय मण्डल तिब्बत में रहेगा।

परन्तु चीन ने इस शर्त के प्रति कोई आश्चर्य प्रदर्शित न करते हुए तिब्बत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने और वहाँ साम्यवाद का प्रसार करने की नीति जारी रखी। चीन ने तिब्बत की सेनाओं को चीनी सेनाओं में समाविष्ट कर लिया और तिब्बत के सिमे कुछ सैनिक समितियों की स्थापना की। अक्टूबर १९५१ में चीनी फौजों ने तिब्बती-भूमि के घाँसोगीकरण का बहाना लेकर ल्हासा में प्रवेश किया और देश पर चीनी नियंत्रण का विस्तार करना शुरू कर दिया। अगस्त १९५४ में नई दिल्ली ने सकारतावत् किन्तु एक महान् राजनीतिक भ्रम के रूप में तिब्बत पर चीन की सार्वभौमिकता की स्वीकार कर लिया और कुछ व्यापारिक अधिकारों के बदले में वहाँ से अपनी सैनिक दृकद्वियाँ वापिस बुलाने की सहमति दे दी।

अब चीनी साम्यवादियों का तिब्बती जीवन के हर पहलु पर नियंत्रण लीनपति से बढ़ने लगा। इसके फलस्वरूप १९५६ में पूर्वी तिब्बत के सम

प्राप्त क ल्या सोचों में बिद्रोह कर दिया । लुपारों को यह बात बड़ी अपमानजनक लमी कि चीनी साम्यवादी तिब्बत में पवित्र धम और धार्मिक गुम्बों का अपमान करें और साम्यवाद के प्रसार के लिये उनमें दैतवाधियों पर कर लगावा करें । चीन द्वारा लुपारों के इस बिद्रोह को दबान के लिये लमी प्रयत्न किये गये । यद्यपि माओ-त्से तुङ्ग ने तिब्बत में आतिपूरुण शांति स्थापना के लिए जनवादी सुधारों को प्रस्ताव रूप से स्वीकृत कर दिया किन्तु फिर भी यह बिद्रोह पूरे तिब्बत में व्याप्त हो गया । मार्च १९५६ में ल्हासा में एक बिद्रोह उठ उड़ा हुआ जिसका क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया और दमाई लामा को जिन्हें तिब्बती जनता अपना सर्वेस्य और ईश्वर का अवतार मानती है तिब्बत छोड़ कर भारत में शरण लेनी पड़ी । २० मार्च को तिब्बत की सरकार संघ कर ही गई और उसने स्थापन पर १६ सदस्यों की एक तिब्बत के स्वराज्य प्राप्त क्षेत्र के लिये धार्मिक समिति स्थापित की गई जिसके प्रधान पंचनलामा बताया गये और जिसमें चार चीनी अधिकारियों को भी सम्मिलित किया गया । तिब्बत में साम्यवादी धान के दमन कर की समग्र दिव्य में निरुद्ध हुई और दमाईलामा के पलायन प बड़ी चिंता व्यक्त की गई । चीन ने हजारों निर्दोष तिब्बतियों को जेल में डाल लिया और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया । ल्हासा शिविर और ग्वानासे चीनियों के गढ़ बन गये । तिब्बत के धार्मिक स्थापन लैतिक शिविरों में परिणत कर दिये गये । सितम्बर १९५६ में दमाईलामा ने समुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को एक तार भेज कर औपचारिक रूप से इस बात का धापह किया कि संघ तिब्बत की जनता पर प्रमानुषिक व्यवहार तथा मान्यता व धर्म के प्रति प्रनाधार एवं व्यवहार के बिद्वेष हस्तक्षेप कर । २५ सितम्बर को धायरलैण्ड और मसाया द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव में यह धापह किया गया कि समुक्त राष्ट्र संघ तिब्बती जनता को धार्मिक और नागरिक स्वतंत्रता पुनर्दिष्ट करे । महासभा द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया । चीन में इसके बिद्वेष लीव प्रतिक्रिया हुई और पैकिंग सरकार ने इसे धवैध एवं कर्तविकृत करने वाल प्रस्ताव की संज्ञा दी । ५ जून १९९० को धार्मिक लैतिक समिति (The International Commission of Jurist) ने अपनी एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें स्पष्ट रूप से यह धारोप लगाया गया कि पैकिंग सरकार तिब्बती जनता क राष्ट्रीय आतीय और धार्मिक दम को पूरुणत नष्ट करने का प्रयास कर रही है । इसी बीच चीन सरकार ने तिब्बत को ल भी जन राज्य का एक प्रांत बना दिया और वहां भारतीय धाधियों व ध्यापक पर भारी रोक लगा दी । इस लक्ष्य में भारत सरकार द्वारा भेजे गये बिदापकों को लही को टोकरी में डाल दिया गया । १० दिसम्बर १९५६ को समुक्त राष्ट्र संघ महासभा में एक प्रस्ताव द्वारा तिब्बती जनता के लौकिक अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता के हान पर दु ल व्यक्त करते हुए चीन में दमनकारी कार्य ली समाप्त करने का अनुरोध किया किन्तु चीन द्वारा समुक्त राष्ट्र लीव दम कार्यवाही को मान्यताधियों के परधम की संज्ञा ल गई और ल स्थापित किया गया कि संघ की ल प्रस्ताव की लक्ष्यवाही चीन के धार्मिक लक्ष्य में हस्तक्षेप है । तिब्बत चीन के साम्यवादी लक्ष्य में बसना ल गया । चीन में पंचनलामा को भी लक्ष्य में बलित

कर दिया और उसे एक तिब्बती लड़की से विवाह करने को बाध्य किया ।

चीन तिब्बत में साम्राज्यपूर्ण ढंग से चाहे किना ही अधिकार जमा से किन्तु उसे यह कमी नहीं घूमना चाहिये कि तिब्बत सवा से एक स्व-शासित देश रहा है और एक न एक दिन बहु चीन से अपनी स्वाधीनता वापिस चीन कर ही हम मेगा । साथ चीन तिब्बत की संस्कृति परंपरा और इतिहास को मिटाने पर तुला हुआ है किन्तु तिब्बती जनता अपने प्राणों को होम करके भी चीन के इस स्वप्न को पूरा नहीं होने देगी । तिब्बत के मूलभूत मानव अधिकारों की रक्षा के लिये जिसके लिये संयुक्त राष्ट्र संघ बचनबद्ध है कोई सक्रिय कदम अवश्य उठाना चाहिये ।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि भारत के विरोधी बलों ने साम्यवादी चीन द्वारा तिब्बत के इस अपहरण के लिये स्वर्गीय नेहरू और उनकी सरकार को दोषी ठहराया । विरोधियों का तर्क है कि ब्रिटिश शासन काल में भारत को तिब्बत में व्यापार प्राप्ति की कुछ सुविधाएँ प्राप्त थीं जिन्हें नेहरू सरकार ने अप्रमत्त १९५४ में चीन के प्रति अपनी मित्रता की बलि-बेची पर चढ़ा दिया । भारत द्वारा १९५४ में चीन से किया गया तिब्बत संबंधी समझौता वस्तुतः चीन द्वारा तिब्बत के अपहरण पर भारत द्वारा स्वीकृति की माहुर मित्र हुआ । भारत की कमजोरी का लाभ उठा कर ही साम्यवादी चीन ने तिब्बत का नाम रूप से अपहरण किया । घातकों का कहना है कि भारत को अपने यहां रसाईनामा को धरण देने के साथ-साथ उनकी निष्कासित सरकार (Emigre Government) को भी मान्यता देकर उनको अपना प्रदेश वापिस बिसाले में सहायता करनी चाहिए थी ।

बर्मा पाईलण्ड कोरिया, हिन्दचीन, इण्डोनेशिया प्रादि देशों के साथ साम्यवादी चीन के जो बहिष्कृत संबंध रहे हैं उन पर इन विभिन्न देशों की विदेश-नीति की चर्चा करते समय पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है । चीन के मजर्म में निष्कर्ष रूप में केवल इतना ही निकलना पर्याप्त है कि वह एक अतिशक्तिशाली युद्धप्रिय हिंसात्मक और विस्तारवादी देश है जिसके द्वारा प्रयत्न नहीं है । उसके विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता शान्ति एवं सम्मान को बनाये रखने के लिए एशिया और अफ्रीका के गैर-साम्यवादी देशों के लिए यह प्रतिबन्ध है कि वे सुरक्षित ही अपनी जन कमजोरियों को दूर कर लें जिनसे अप्रत्यक्ष प्राकमण को प्रोत्साहन प्राप्त होता है । दूसरी ओर उन्हें अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की ओर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए, क्योंकि चीन के विरुद्ध किसी भी देश की प्राथमिक प्रवृत्तियाँ अभी सुरक्षित रह सकती हैं जबकि वह देश सैनिक दृष्टि में चीन के विरुद्धवादी देशों का मुहनाह उत्तर देने के लिए मराम हो । जापिक और मीनिठ प्रवृत्ति के दोनों कार्यों की साधना में यह उचित रहेगा कि एशिया और अफ्रीका के राष्ट्र एक दूसरे के साथ बढ़ने की घोषणा सहयोग करके लें । कुछ विचारकों का मत है कि इन देशों की साम्यवादी कमजोरियों की सबसे बड़ी धीपधि यह है कि वे अपने प्राथमिक एवं राजनीतिक एकीकरण की दिशा में सामुदायिक क्षेत्रीय प्रवृत्ति करें ।

चीन की सांस्कृतिक क्रांति (Cultural Revolution)

साम्यवादी चीन के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के संबंध में चीन की वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति का संक्षिप्त विवरण देना सर्वथा प्राथमिक होया क्योंकि किसी भी देश की दृष्टि-नीति बहुत कुछ उसकी विदेश-नीति को प्रभावित करती है।

१८ वर्ष पहले १९४९ में माओ ने चीनी मजदूरगण की स्थापना की। उसने देश की जनता से प्रतीक करते हुए कहा कि यदि प्रत्येक चीनी कड़ी मेहनत करे और स्वयं की भावना का परिचय दे तो चीन शीघ्र ही प्रथम साम्यवादी गौरव प्राप्त कर लेगा। माओ ने अपनी नीतियों और विचारों से यह स्पष्ट कर दिया कि वह एक ऐसा आदर्शवादी है जो लोगों की बसा सुधारने की प्रतीक्षा उनके स्वभाव को बदलने में विश्वास करता है।

सत्ता पाने के साथ ही माओ ने चीनी जनता को पूरी तरह बचक बचक बनाने का सपना देखा। यह मानते हुए भी कि इस काम में पूरी हो जताशक्तियाँ लगेगी माओ ने अपने सपने को साकार करने की कोशिश की। उसने न केवल उद्योगतन्त्रवादियों शिक्षाविदों और धूम्रपूर्व शासकों के बंजरों के उत्पात को रोकने का बड़ा संकल्प किया बल्कि बग-भेद को मिटा कर एक औरत समाज की रचना करने का फैसला किया। माओ ने अपने साधियों का बताया कि क्रांति को पीधित रखने और साम्यवाद साने का यही एक रास्ता है।

माओ का यह सपना इतना सनकपूर्ण और घम्यावहारिक था कि विद्वानों के साथ ही अनेक चीनी नागरिक और नेता भी उसे पागल समझने लगे। हालाँकि चीन में औद्योगिक व सैनिक क्षेत्र में तीव्र प्रगति की लेकिन इस सब के बावजूद माओ को औरत समाज बनाने में सफलता नहीं मिली। १९५८ से ही धीरे-धीरे माओ की इस सनक का विरोध होने लगा। इन विरोधियों में सेना के अधिकारी सरकार की योजना निर्माता और पार्टी के पदाधिकारी सभी थे। १९६५ में माओ को इस विरोध की स्पष्ट अनुमति हुई। यह वह प्रथम व्यक्ति संघठित करने के लिए पैकिंग छोड़ कर छोपाई चला गया और नवम्बर १९६५ में उसने अपने विरोधियों का सफाया करने के लिए एक औरत प्रमिदान बताया जिसका पता घरेलू १९६६ में मारे संसार को चल गया जबकि साल रसकों ने अपनी कायबाही गुले रूप में पारंग की। ३० घरेलू १९६६ को चीनी प्रधानमंत्री चाऊ-एन-साई ने "न प्रमिदान को प्रथम एक सरकारी माध्यम में— "महात्त मजदूरगणोंय मांयुनिक क्रांति" (Great Proletarian Revolution) की मजा दी। इस मांयुनिक क्रांति का श्रागणन करत हुए चाऊ ने घोषणा की कि बोद्धिद गैसतिक नसा साहित्य और संस्कृति के सभी स्तंभों में पूंजीवादी विचारधारा (Bourgeois Ideology) के समूहागमूमन का उध गय शीघ्र प्रयास करन की आवश्यकता है। यह कहा गया कि नम महान सांस्कृतिक क्रांति का

उद्देश्य ऐसे बुद्धिवादिनों का प्रथम प्रतिवाद करना है जो सामन्तवादी (Feudal) पूँजीवादी (Bourgeois) तथा मजदूरवादी (Revisionist) विचारों का प्रचार कर रहे हैं।

माओ ने एक नई शक्ति के निर्माण और पार्टी के भीतर अपने विरोधियों का सामना करने की दृष्टि से रक्षायुक्त सिन विभाषो को अपने विश्वास में ले लिया। सिन विभाषो कट्टर माओवादी है। माओ को उम्मीद थी कि उस्ता के लिए होने वाले किसी भी संघर्ष में सिन विभाषो की मदद से २५ लाख सैनिक उनका साथ देंगे। सिन विभाषो ने एक स्वामिमत्त की तरह माओ के अधिमान की बामबोर संमान ली। इसके साथ ही माओ ने महान् सांस्कृतिक क्रांति का नारा बुलन्द किया और बड़े साहस तथा विश्वास के साथ विद्युत् वर्ष सारे हार्दिकुम ६ महीने के लिए बंद करने की घोषणा कर दी ताकि उनमें पहले वाले लगभग दो करोड़ युवक साक्षरताओं की सूची में अपना नाम लिखा सकें। सांस्कृतिक क्रांति के नाम पर गठित साक्षरताओं की इन सेना ने पीछे घेर दूसरे सहूरी में माओ तथा सिन विभाषो के विरोधियों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया।

महान् संबंधारता नर्णय सांस्कृतिक क्रांति की जोट में अपने राजनीतिक विरोधियों का शिकार करने का जो अधिमान माओ ने जसामा उसमें अनेक उच्च उस्ताधारी व्यक्तियों को परबन्धुत कर दिया गया। इस प्रकार परबन्धुत किये जाने वाले व्यक्तियों में पैकिय-साम्यवादी दल के सचिव धी पेंग-चेन (Peng-Chen) सांस्कृतिक विषयों के मन्त्री तथा धन प्रधान मन्त्री लू टिंग-यी (Lu Ting-Ye) सेना में जनरल स्टॉक के अध्यक्ष लो-जुई चिय (Lo-Jui-Chiang) तथा राष्ट्रपति सिङ्ग-जाओ-पी के नाम उल्लेखनीय हैं।

समय के साथ साक्षरताओं की गतिविधियाँ और पकड़ती गयीं और १९६६ का प्रन्ध होते होते उम्मीद श्यापक रूप धारण कर लिया। जनवरी १९६७ तक यह सांस्कृतिक क्रांति साक्षरताओं द्वारा इनके अधिक उग्ररूप में होने लगी कि कई स्थानों पर इनके गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया तथा माओ समर्थकों एवं माओ विरोधियों में सुल्भम लुल्हा भीषण संघर्ष होने लगा। फरवरी १९६७ में चाङ्ग-एन-साई ने इन क्रांति के प्रबन्धन साक्षरताओं (Red-Guards) को बिन्नविद्यालयों स्कूलों और जेठों पर वापिस जाने का आदेश देकर इस क्रांति की अयंकरता को कम करने का असफल प्रयास किया। स्वयं माओ साक्षरताओं के क्रिया-कलापों से चिन्तित हो गया किन्तु फिर भी उसने अपनी सांस्कृतिक क्रांति की इति-श्री करना उचित नहीं समझा।

साम रक्षकों की हुरकतों से माओ विरोधी तिविर में असबसी मजदूरी और धारमरता के उदाय होने जाने लगे। आम चीनी भी सांस्कृतिक क्रांति के वास्तविक धर्म को समझ गया, क्योंकि शक्ति के मन् में चुर साम

रक्षकों को अपने प्रतिरिक्त और सभी माओ विरोधी नजर आये और उन्होंने उन सबको एक ही ढंके से हांकना चाहा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि माओ विरोधियों का भी एक संगठित मोर्चा बन गया जिसे जनता और सेना के एक मजबूत पक्ष का समर्थन मिल गया। वास्तव में चीनी जनता और सम्पूर्ण विश्व को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि चीन में साम्यवादी क्रांति को १९४९ में सफल बनाने और ७ वर्ष तक इसके सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देने के बाद माओ और उसके साथियों को एक नवीन श्रमि करने की और यह घोषणा करने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि जनता को 'जाति की रक्षा करने के लिये सत्ताशुद्ध व्यक्तियों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहिये। चीनी जनता और संपूर्ण साम्यवादी जगत के लिये सांस्कृतिक क्रांति की यह एक अनोखी व्याख्या थी। चीन की सामान्य जनता को तब बड़ी हैरानी हुई जब उसने देखा कि उपरोक्त संघर्ष में एक घोर चीन पर शासन करने वाले साम्यवादी प्रधान माओत्सेतुङ्ग और प्रधान सेनापति सिनपिघाघो हैं तथा दूसरी घोर साम्यवादी चीन के राष्ट्रपति लिऊ-छाघो-ची साम्यवादी कम के महामन्त्री तथा नीति निर्धारक संस्था (Politbureau) के सचिवालय के अध्यक्ष तेंगहसियाघो पिंग (Teng-Hsiao-Ping) और माओ सिन तथा चाऊ के बाद चीन में चौथा स्थान रखने वाले पेंगचेन जैसे महारथी हैं।

इस प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति बनाम विरोधी-सफाया क्रांति से चीनी जनता को स्पष्ट हो गया कि यद्यपि माओ चीन की स्मृति की बात करता है, लेकिन उसका वास्तविक मकसद चीन की सम्प्रभता नहीं है। वह उप्र क्रांति का हिमायती है औरैनिक शक्ति के दस पर पुरसंत एक माओ समर्थक समाज' की रचना करना चाहता है। माओ ने सिद्धान्तों का प्रसार करने वाले समाचार पत्र 'रेड-फ्लैग' (Red Flag) ने स्वयं घोषणा की कि— 'यह संघर्ष उन व्यक्तियों से अधिकार और सत्ता छीनने के लिये है जो माओ विरोधी सिद्धान्तों का अनुसरण कर रहे हैं। इनसे सत्ता इसलिये छीनी जानी चाहिये कि ये पूंजीवादी मार्ग पर चल पड़े हैं।' इसमें कोई संदेह नहीं कि माओ को अपने सिद्धान्तों को मुरसित बनाये रखने की बिना न पागल बना दिया है। माओ स्वयं अपनी धारणा से यह देख चुका है कि कम में स्टालिन के मरने के बाद बहू किम प्रकार उसकी दुदना हुई और उनक सिद्धान्तों में सशोषण हुआ तथा कम ने मार्क्स और लेनिन के मूल सिद्धान्तों की व्यावहारिक दृष्टि से उपेक्षा कर दी। माओ समझिन है कि उनसे मरने के बाद माओवाद' को उसके विरोधी कक्ष में ही रफना ह्ये। इसीलिये यह चाहता है कि अपने जीवन काल में ही अपने विरोधियों का समाप्त करण बह अपने माओ उत्तराधिकार को मुरसित बना ले। यह उन्मेवनीय है कि माओ ने १८ वर्गि प्रधान राष्ट्रपति सिनपिघाघो को जनता उत्तराधिकारी बना है। पुनरप माओ मतत क्रांति' (Uninterrupted Revolution) के सिद्धान्त का समर्थक है। माओ और उनक साथियों को यादना है कि कम की मति चीन में भी पूंजीवादी शक्तियों से समझौता करके महप्रतिरत की जान करने वाले ददारिद्र्यधी प्रबल हा रहे हैं जिन्हें रोबने के लिये क्रांति की उबता और प्रबलता सरब बनाये रखनी चाहिये। माओ के अनुसार गान्धिनिक

शक्ति साक्षरता जागरूकता (Eternal Vigilance) की प्रतीक है। यह चीनी समाज में उत्पन्न होने वाली पूंजीवादी प्रवृत्तियों के हमन का धीरे-धीरे साम्यवादी शक्ति को विभिन्न मन्त्रित्वाधो धीरे-धीरे से मुक्त रखने वाला एक संघर्ष है।

माघो ने उपरोक्त विभिन्न कारणों से प्रेरित होकर जिस मयाबह सांस्कृतिक शक्ति का सुत्रपात किया उसने सम्पूर्ण चीन में अशांति और अराजकता पैदा कर दी। चीन की मुख्य भूमि और उसके बाहर अनेक स्थानों पर शासन रखकों की बतिबिधियों का प्रतिरोध होने लगा। कई प्रांतों में माघो विरोधी सेना के शासन की बायबोर अपने हाथों में सम्मान भी। अनेक स्थानों पर किसानों और मजदूरों ने शासन रखकों की भिटाई की। जब शासन रखकों को सपठित विरोध का सामना करना पड़ा तो उनसे घिबिर में तहलका मच गया। माघो का दिखाना रास्ता ही सही है, इस विरोध से अन्धे बने शासन रखक पिछले काल भी स्थिति को वास्तविकता न मान सके और अपनी अराजकताओं के लिये एक दूसरे पर कीचड़ उछालने लगे। प्रगर तु बेसा न करता तो ऐसा नहीं हुआ की माघो ने उनके अपने घर में प्राण लवा दी और वे आपस में ही मड़ने मड़ने लगे।

माघो की सांस्कृतिक शक्ति ने अनेक रज लिये। अगस्त १९२९ को पेकिंग में सांस्कृतिक शक्ति के महोत्सव के लिये एक साख व्यक्तियों का अज समूह एकत्र हुआ। इसके बाद शासन रखकों ने पूंजीवादी तथा सोवियत संघोचनवादी समझे जाने वाले सभी रीति-रिवाजों और धर्म के विरुद्ध प्रदर्शन प्रारम्भ कर लिये। माघो और मिन्न पिमाघो अतिविधित काल के लिये चीन के सभी स्कूलों और विद्यालयों को अन्दर करके लगभग दो करोड़ बीस लाख की विशाल अातर सेना (साख) का निर्माण कर चुके थे और इसे माघो का अरज फौजान व पूंजीवाद का विध्वंस करने का कार्य सौंप चुके थे। जब इस अात्र-सेना ने सारे चीन में शक्ति का एक अजीब अासा बना दिया; इन 'शासन रखकों' ने दुकानदारों को पश्चिमी अंग के अरज बेचने से तथा पश्चिमी अंग के अास काटने से अना किया। अजमूजकों की अंग मोरी की पठानों को अाक से अोरना मुक्त किया। अिन्नियों को अहरवार अास रखने से अना किया। अिन्नियों की दुकानों में अजमूजकों व राजनीतिक अाहिरय के अासन पर माघो की अचनाओं को अरज दिया। अाक अिन्नियों की दुकानों को अन्दर कर दिया तथा अुमठित पहायों व असाअन अाधों की अिन्नी पर अतिअज लगा दिया। शासन रखकों द्वारा अीवारों पर अगाव अमे पोस्टरों में कहा गया कि माघो की अचनाओं से अिन्न अरज रखने वाली अचनाओं को असा अना चाहिये। मोटर अाहियों में अिन्नी अाहियों में और अैस की अजम अैगुनी में अासा करने की अिन्ना की अई। अिन्नाओं में अज अीअने अासे क अासन पर अवारी का तथा अवारी के अासन पर अीअने अासे को अिन्न कर अम की अ अठान को अतिपाअित किया गया। और तो और अाचानों में अिन्नार करने अासे तथा अम-अज अिन्नने अासे अमपत्तियों की अिन्ना की अई, पेकिंग के प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक अज अर कर लिये गये तथा अासिक अिन्नों और अुत्तियों

को नष्ट करके इनके स्थान पर माघो के चित्र घोर लास भंड सगाये गये ।

लास रखकों का सामाजिक आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया और दूसरी ओर विरोधियों का पलड़ा भी भारी होने लगा । चाब स्थिति यह है कि सम्पूर्ण चीन माघो विरोधियों और माघो-समर्थकों का संघर्ष स्थल बना हुआ है । चीन में अब माघो का विरोध सतही नहीं है और उद्ये केवल कुछ प्रतिभियावाधियों का विरोध कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता । माघा के विरोधियों में चीनी साम्यवादी पार्टी के कुछ ऐसे नये हुए नेता शामिल हैं जिन्होंने माघो के कंध से कंधा भिड़ा कर चीनी जनता में भाग लिया था । चाब ये नेता चीन से माघो की जड़ें खोद फेंकने के लिये कटिबद्ध हैं । हासन को देखते हुए यह आभास मिलता है कि उन्हें इस काम में कामयाबी मिलनी । कुछ पक्षों की मान्यता है कि चीन में होने वाला संघर्ष छोटे छोटे युद्धों का संघर्ष है बड़े पैमाने पर होने वाला गृह युद्ध नहीं । जो भी हो चीन के बाहर से चीन के बारे में मिलने वाली खबरें यही बताती हैं कि बड़ा गृह युद्ध ही निश्चय हो गई है ।

चीन की वर्तमान उद्यम-युगल का तात्कालिक प्रभाव यही पड़ा है कि जहाँ एक ओर राजनीतिक क्षेत्र में उसका प्रभाव कम हुआ है वहाँ दूसरी ओर कुछ समय के लिए उसका आर्थिक विकास भी रुक गया है । कुछ विश्लेषकों का मत है कि इस उद्यम-युगल के कारण अगले दो-तीन वर्षों तक चीन कोई आर्थिक प्रगति नहीं कर सकेगा और हो सकता है कि उसकी आर्थिक दशा पर पश्चिम विपरीत प्रभाव पड़े । अल्पसंख्यक माघो इस स्थिति से चिन्तित है । लेकिन फिर भी लास रखकों की जाति का अस्त-व्यस्त का उसका इरादा मजबूत नहीं आता । माघो का इरादा इसे पाँच-साँच में पहुँचाने का है । माघो की सांस्कृतिक जाति का अस्तित्व मुख्य अमी मध्यम वर्ग के वर्ग में है लेकिन एक बात साफ़ उभर कर सामने आ गई है कि चीन की राजनीतिक स्थिति पहिले जैसी कभी नहीं होगी और चीनी साम्यवादी पार्टी की एकता की हवा सदा-मदा के लिये सतम हो गई है । युवा-वर्ग की जाति के लिये उदरमा कर माघा ने एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया है जिस पर बाहु गाना बठिन साबित हुआ । इसके प्रतिरिक्त जाति में अना को उदरमा कर माघो ने अपनी स्थिति को मजबूत बना लिया है । ऐसी हासन में आत्म टैलर के "न मर्यों में काफ़ी वज्र है कि— 'चीन की वर्तमान उद्यम-युगल का तात्कालिक परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न हो लेकिन इससे माघोवाद की मौत का—न केवल ७५ करोड़ चीनियों के लिये बल्कि सारी दुनिया के लिए—भक्ति मिलता है ।"

हांगकांग

(Hongkong)

चीन की मुख्य भूमि के बाकी निकट हांगकांग का और पिटा है । वर्तमान हांगकांग की सीमाएँ एक चीनी माँच को दो भागों में बाँटती हैं । समय-समय पर भी अल्प पहिले हांगकांग एक अलग प्यनीसा गणु था जहाँ न

तो कोई उद्योग या धीरे न उसका कोई राजनीतिक महत्त्व। अफ्रीम युद्ध के बाद तत्कालीन चीनी सरकार ने इस द्वीप को १८४२ के नान्किंग-समझौते के अन्तर्गत ब्रिटेन के हवाले कर दिया। तब से आज तक यह अफ्रीम के ही अधीन रहा है। इस सु-क्षेत्र में स्वयं हांगकांग द्वीप के प्रतिरिक्त कुछ पड़ोसी द्वीप—कोलून प्रायद्वीप (Kowloon Peninsula) तथा 'नवीन प्रदेश' (New Territories)—भी सम्मिलित हैं। ब्रिटेन का एक उपनिवेश बन जाने पर हांगकांग सीमा ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया और मुम्बई पूब में ब्रिटेन के हितों की सुरक्षा की दृष्टि से इसकी महत्ता में काफी वृद्धि हुई। २६ बर्गमील क्षेत्र का यह टापू औद्योगिक रूप से आज एशिया के सबसे विकसित क्षेत्रों में से है जहाँ लगभग ८५०० कारखाने चल रहे हैं। सम्पूर्ण हांगकांग की कुल आबादी ३८ लाख के करीब है। हांगकांग में निर्मित वस्तुओं का निर्यात १५% से बढ़ कर आज ७७% हो गया है। कपड़ा-उत्पादन बड़ा निर्माण कृषि और मछली-व्यापार अब भी यहाँ के मुख्य उद्योग हैं। हांगकांग यूरोपियन और पूर्वी व्यापारियों के लिए एक विशाल बाजार का काम देता है क्योंकि हांगकांग प्रशासन ने इसे स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र बना रखा है अतः यहाँ व्यापार की गति बिजनी तेज है उतनी ज़ायद ही किमी अन्य नगर में हो। ब्रिटेन के लिए यह उपनिवेश व्यापारिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही राजनीतिक दृष्टिकोण से आवश्यक भी है। सम्पूर्ण हांगकांग में जनसंख्या और व्यापारिक उत्पन्न इतन घनिष्ठ हैं कि कृषि के लिए पर्याप्त भूमि नहीं मिलती। इसलिये खाद्य-पदार्थों की दृष्टि से हांगकांग-निवासी मुख्यतः चीन की मुख्य भूमि पर ही निर्भर हैं। चीन से प्रतिदिन हजारों किसान अपनी बीजों बेचने के लिए हांगकांग पहुँच जाते हैं। चीन निर्यात योग्य अनेक वस्तुओं को हांगकांग के बाजार से ही बाहरी विश्व को बेचता है। खाद्य पदार्थों के प्रतिरिक्त पानी के बारे में भी हांगकांग चीन की मुख्य भूमि पर ही निर्भर है। इसलिये व्यावहारिक दृष्टि से प्रशासन को छोड़ कर हांगकांग और चीन में विशेष अन्तर नहीं है। चीन में जो कुछ होता है उसका प्रभाव हांगकांग पर पड़ना अवश्यम्भावी है। एक कहावत के अनुसार—'जब चीन खास होता है तो हांगकांग बरत उठता है। हांगकांग की राजधानी विश्व के अष्टम बंदरगाहों में से है। चीनी नगर कैंप्टन से २१ मील दूर ब्रिस्टोरिया बंदरगाह प्राचुरिक सम्पत्ता वाणिज्य और उद्योग का एक प्रख्यात बन्दरगाह है।

हांगकांग के राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से हमने देखा कि १८४२ में चीन द्वारा यह द्वीप ब्रिटेन को हस्तांतरित किया गया। लगभग सौ वर्ष तक ब्रिटिश शासितय में रहने के बाद द्वितीय महायुद्ध के दौरान दिसम्बर १९४१ से अक्टूबर १९४५ तक जापानियों ने इस पर अधिकार कर लिया। १९४५ में जापान की पराजय के पश्चात् ब्रिटिश सौग हांगकांग में फिर से बिनाई दिये और सीमा ही उन्होंने बहा अपना प्रमुख पुनः स्थापित कर लिया। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन द्वारा चीन के तत्कालीन राष्ट्रपति तासों के विरोध की कोई परवाह नहीं की गई अस्ते ब्रिटिश-सरकार ने हांगकांग पर अपना नियन्त्रण पहले से भा अधिक मजबूत बनाने का निश्चय किया।

१९४१-४० में साम्यवादीयों द्वारा मुख्य चीन पर घपना नियन्त्रण स्थापित कर देने के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने चीन की प्रतिक सचेत होकर कदम उठाये। सन् १९३० के धारम्भ में हा ब्रिटेन ने साम्यवादी चीन को कूटनीतिक मान्यता प्रदान कर दी और यह भी घोषणा की कि ब्रिटिश लोगों के हांगकांग में कबस व्यापारिक हित हैं। उनका वहाँ रह कर किसी को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने का इरादा नहीं है। ब्रिटेन ने अमेरिका के इस सुझाव को भी स्वीकार नहीं किया कि चीन के विरुद्ध हर प्रकार के व्यापारिक प्रतिबंध समाये जाय। तथापि संयुक्त राष्ट्र सभिय एक प्रस्ताव के अनुपालन में उसने चीन के विरुद्ध सैनिक महत्व के व्यापार पर अवश्य प्रतिबंध लगाये।

साम्यवादी चीन ने कई बार ब्रिटेन से हांगकांग को छीनने की बमर्शी दी, किन्तु उसने अपनी बमर्शी को कार्यान्वित करने की चेष्टा कमा नहीं की। फारमोसा से राष्ट्रवादी सरकार ने भी हांगकांग पर अपना दावे का बराबर दुहराना जारी रखा और कई बार वहाँ के आन्तरिक उपद्रवों का उद्यत तथा प्रोत्साहित किया। अक्टूबर १९३६ में हांगकांग के मुख्य भू क्षेत्र कानून नामक स्थान पर यम्मीर उपद्रव हुए और यह धारोन् लगाया गया कि ये सब "राष्ट्रवादियों द्वारा उकसाये गये थे। ब्रिटिश अधिकारियों ने उपद्रवों का सक्ती से दमन करते हुए चीन-वासियों को चेतावनी दी कि "बलिष्ठी पूर्वी एशिया में विश्व के स्वतंत्र हितों के प्रहरी हांगकांग की रक्षा के लिए ब्रिटेनवासी मृत्युपर्यन्त लड़ेंगे।"

१९३६ के बाद हांगकांग में सुटपुट उपद्रव होते ही रहे। लेकिन मई १९६७ से वहाँ गम्भीर उपद्रवों की शुरुआत हो गई। लगभग ३ सप्ताह तक सम्पूर्ण हांगकांग साम्यवादियों द्वारा किये गये उपद्रवों से घमिच्छत रहा। स्वयं हांगकांग टापू में माघावादियों ने शहरों के उस क्षेत्र में हिंसा और भागदानी शुरू कर दी जहाँ ब्रिटिश तथा अमेरिकन नाविक रहते हैं। ब्रिटिश प्रशासन ने लगभग ३००० साम्यवादियों को गिरफ्तार किया। उपद्रवों पर काबू पाने से पहले मुख्य भूमि के चीनियों की एक ब्रिटिश सैनिक त्रिद्वार पर गोलाबारी भी हुई परन्तु ब्रिटिश सैनिकों और मोरलों ने चीनियों को वापिस भगा दिया। इन उपद्रवों के बाद से हांगकांग में घमी तक पूर्ण तनाव की स्थिति बनी हुई है और मुख्य भूमि से चीनी जब तक गोलाबारी शुरू कर देते हैं।

चीनी रुप

हांगकांग में र्ही फसाद करवा कर चीन क्या बात प्राप्त करना चाहता है—"सबका निश्चित उत्तर ज्ञापित न मम में है। हांगकांग का स्वतंत्र रहन में घघेजों का स्वार्थ निहित है किन्तु प्रायिक रूप से चीन का भी इसमें भारी साम है। चीनी नागरिक यहाँ मास मन्त्रियों और अन्य उपमोना वस्तुयें बेचते हैं। कुस मिला कर चीन का हांगकांग से ७० करोड़ डालर की वार्षिक आय विदेशी मुद्रा में मिलती है। चीन को इस विदेशी मुद्रा की

मफ्त बकरल है बियेनकर तब तब अब तक कि उसे बाचाभौं घौर मगीनी सामान के घावात पर प्रति बर्ष करोड़ों डालर बर्ष करने पड़ते है । हमसिए ऊपर से यह अनुमान न हो ठीक ही है कि चीन से हांगकांग को कोई सैनिक ब्यतरा नहीं है किन्तु गहराई से अध्ययन करने पर पता चलेमा कि चीन हांगकांग पर अपनी निर्भरता को कम करने की कोशिश कर रहा है । इसके परिचिक्त क्या इस बात में भी तथ्य नहीं कि हांगकांग में माओबाबी यदि ऐसी स्थिति पैदा कर दें कि चीन के लिए उन्हें या तो घपमाना या उनसे नाता तोड़ना बकरी हो जाये तो उस अवस्था में चीन की परिस्थितियां हांगकांग के मामले में हस्तक्षेप करने पर विवत करेगी ? १९५६ के इति के बाद भी प्रधान मन्त्री चाऊ-एन-साई ने कहा था 'चीनी सरकार चीन के बरबाबे पर इस किस्म की मड़बड़ बरदास्त नहीं कर सकती ।

जापान

[JAPAN]

पूर्वी एशिया में साम्यवादी चीन के घसाबा जापान ही ऐसी प्रमूख बक्ति है जो प्रन्तर्राष्ट्रीय बटनाबक को प्रभावित कर सकने में सजम है । जापान एक डीप समूह है । प्रशांत सागर में स्थित इस डीप समूह में चार बड़े तथा तीन ह्वार छोटे डीप सम्मिश्रित हैं । इन सब की कुल लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक समग्र १४० मील है । जापान का क्षेत्रफल १ लाख ३२ ह्वार बर्गमील है और यहाँ की जनसंख्या अनुमानत १० करोड़ है ।

इस छोटे से बेल ने १८वीं सताब्दी के बराराख में न केवल सैनिक बक्ति और राजनीति के क्षेत्र में पश्चिम की प्रबेयता के बाने की बज्जी उबा दी थी बरिक्त सम्पूर्ण युरोप को घबड़ी तरह बता दिया था कि पूर्ब निप्याख नहीं है । इसमें साहस सीर्य दूरबचिता बमन और क्षमता है । १९वीं सताब्दी के पश्चिम भाग में ब्राह्मणकारी राष्ट्र के रूप में जापान ने साम्राज्यवादी बराब का स्वाब बक लिया । इस मनुष्यान से उछकी प्यास बुझी नहीं उखट और बड़ती गई मंचूरिया और कोरिया के प्रबन को लेकर १९०४-५ में जापानियों के हाब कधी सेनाभौं की जो दुवला हुई उसठ जापान के साहम और महरबाकांक्षा की कोई सीमा न रही । प्रथम महायुद्ध के बौरान जर्मनी पबिकृत प्रशांत डीपों पर भी उसमें कब्जा कर लिया । १९३२ से ही जापान की पास्तबिक शासन सत्ता सैनिकबादियों के हाबों में आ गई और चीन जैसे बिलाप धुबण्ड पर घपना पबिकार कर तथा उसके पमस्त ताबन स्रोतों का उपयोग कर जापान समस्त एशिया महाडीन का एकघन घासक बनने का स्वप्न देखने लगा । मंचूरिया पर पूरी तरह घपना बब्जा क्या लेने के बाद नवम्बर १९३६ में घसने घुरी राष्ट्रों से पबि करके चीन पर आना कब्जा बमाने की घुरी संघाती कर सी । जापानी सेनाभौं ने घुरे और और से चीन पर हमला बिला पल्लु मित्रराष्ट्रों—बिसेबकर बमेरिका द्वारा चीन की धादिक घौर सैनिक सहायता करने क फलस्वरूप जापानियों के इरादे घुरी तरह मफन न हो सने । डनी बीच घुरीय महायुद्ध छिड़ गया और दिगम्बर १९४१ में पर्महार्वर पर बर्षकर बम बर्पा करके जापान ने

अमेरिका के विरुद्ध लुमे युद्ध की घोषणा कर दी। महायुद्ध-काल में प्रशान्त क्षेत्र में सभी देशों पर जापानी सेनायें टिड्डी दस की शक्ति छा गयी और कुछ समय तक के लिए प्रशांत व हिन्द महासागर पर जापानी मोहिना का परी तरह प्रभाव जम गया। किन्तु १९४२ से ही इसका एक बहसने लया। जब बुरी राष्ट्रों का सितारा मर पड़ने लगा और अन्त में अगु बमों की प्रसंयकारी शक्ति के सामने जापान न घुटने टेक दिये। अतएव एक सही पूर्व साम्राज्य की जिस प्यास से जापान का हृदय डोस गया था उसका अन्तिम परिणाम साधो जापानवासियों के कारणात्मक अन्त के रूप में सामने आया। २ सितम्बर १९४५ को जापान न आत्म समर्पण की अन्तिम शर्तों पर विधिवत् हस्ताक्षर कर दिये।

जापान पर मित्र राष्ट्रों का नियंत्रण

आत्म समर्पण करने के ४ मास बाद ही जापान ने अपने आपको पूरी तरह 'पश्चिम' के नियंत्रण में संयुक्त राज्य अमेरिका व बड़े म पाया। यद्यपि औद्योगिक दृष्टि से जापान पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण था लेकिन व्यावहारिक रूप में यह नियंत्रण औद्योगिक समझौते की नीमावतों के अन्तर्गत अमेरिका का ही था। सितम्बर, १९४५ में वाशिंगटन में जापान के लिए एक संयुक्त परिषद् (Allied Council for Japan) की रचना की गई। इसमें अमेरिका ब्रिटेन रूस और चीन के प्रतिनिधियों की व्यवस्था हुई और इसकी अध्यक्षता जनरल मैकावर का सीपी गई। उद्ये 'मित्र राष्ट्रों के सर्वोच्च समाजगत अन्तर्गत' का यह प्रश्न किया गया। वास्तव में उपरोक्त संयुक्त परिषद् का सर्वोच्च अन्तर्गत प्रशासनिक मैकावर पर कोई नियंत्रण नहीं था। यह परिषद् अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकारियों को आत्म समर्पण की शर्तों को कार्यान्वित करने के बारे में परामर्श देती थी। क्लाउड बस (Claude Buss) व गडो म 'यह पूर्णतः गतिहीन थी और इसकी उठके बहुधा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के हास्यास्पद व बिकृत रूप के समान होती थी। कई बार यह केवल उपस्थिति अन्तर्गत (Roll Call) के लिए ही अपनी बैठके आयोजित करती थी और कुछ ही क्षणों में उठ भी जाती थी। १. जापान के प्रशासन से संबंधित दूसरी मस्या 'सूक्ष्मपूर्वी आयोग' का जिसका कार्य सर्वोच्च सेनाध्यक्ष की देखभाल करना था और जनरल मैकावर इसी के निदेशन में कार्य करता था। इस आयोग के मुख्य उत्तरदायित्व को ये— प्रथम 'उम नीतियों मिश्रणों और स्तरों का निर्धारण करना जिसके द्वारा जापान आत्मसमर्पण सम्बन्धी अपने शर्तियों का पालन कर सके और द्वितीय सर्वोच्च समाजगत के नीति निर्णायकों से सम्बन्धित धारणों पर पुनर्विचार तथा उमहा परीक्षण करना।"

यद्यपि उपरोक्त दोनों ही संस्थाएँ अंतर्राष्ट्रीय थी किन्तु दोनों में संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति ही व्यावहारिक रूप से अत्यधिक प्रभुत्वपूर्ण थी और जापान के प्रशासन की एक मात्र शक्ति का उद्योग अमेरिका

सेगामामरु जनरल मैकार्थर ही करता था। उसकी आदेश नीति निर्धारण के कार्य में प्रायः निर्णायक होती थी। १९४५ से १९४७ तक बीच मैकार्थर ने जापानी सरकार को लगभग एक हजार निर्देश दिये। जापान के युद्ध और नौ सेना महासमय खत्म कर दिये गये सैनिक सेवाधर्मों से सभी जापानियों को हटा दिया गया जापान की मरुता संस्थाओं को उपयोगिता हीन बना दिया गया इन्फ्रोस्ट्रो व गोसाबाइर के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया बिस्फोटक पदार्थों को समुद्र में डूबो दिया गया और समयम ६५ लाख जापानी सैनिकों व सामान्य नागरिकों को एशिया व प्रशांत महासागरीय द्वारों में इयर-उपर भेज दिया गया। सैनिक अधिकारियों को बंदी बना लिया गया। उनमें से घनेक को मृत्युदंड और कारावास की सजायें मिलीं। जापान की युद्ध पुलिस का भी विघटन कर दिया गया। इसी तरह युद्ध-पूर्व एवं युद्ध-कालीन प्रतिष्ठावादी संस्थाओं के संगठन और नेतृत्व को समाप्त कर दिया गया। विदेशों में जापानी नागरिकों की सम्पत्ति उन देशों को सति-पूर्ति के रूप में प्रदान की गई और जापान की विदेशी सम्पत्ति को समयम ३ परस वास्तर के मूल्य की ही हस्तगत कर सी गई। मई १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा भेजे गये पासे मिशन (Passley Mission) ने जापान की भावी शक्ति का सर्वेक्षण कर के यह सिफारिश की कि "जापान की युद्ध क्षमता सक्ती से कुचम दी जानी चाहिये ताकि उसका जीवन स्तर स्मृततम हो जाय। इस मिशन के सुझाव पर जापान के विभिन्न महत्वपूर्ण उद्योगों को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया और अनेक कारखानों की संख्या अत्यधिक कम कर दी गई। बुकि अमेरिका को जापान की जनता के लिए भोजन-सामग्री जुटाने पर प्रतिदिन लगभग १ लाख डॉलर व्यय करने पड़ रहे थे अतः अमेरिका की नीति यही रही कि जापान से इस 'कच्चे' का व्यय और सतिपूर्ति एकत्रित की जानी चाहिये।

अमेरिकन सेगामों के आधिपत्यकास में ही जापानी सम्राट हिरोहितो को अपने बचकर्म में १२४ वें सम्राट के की निरंकुश सत्ता समाप्त हो गई और ३ मई, १९४७ को जापानी जनता ने एक नया संविधान स्वीकार कर लिया जिसकी मुख्य विशेषतायें ये हैं—

- (१) राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध का सर्वैष के लिए बरित्याम
- (२) सम्राट के निरंकुश ईश्वर प्रदत्त अधिकारों की समाप्ति
- (३) संसद की सर्वप्रभुता और सर्वोच्च सत्ता को मान्यता
- (४) धर्म और राजनीति का विभगीकरण
- (५) स्थियों को मठाधिकार
- (६) संसद के प्रति उत्तरदायी जनप्रतिनिधियात्मक सरकार की स्थापना।

जापान के पुनरुत्थान के प्रयास

जापान के सैनिक आर्थिक और औद्योगिक पतन से विद्वट समस्यार्यें पैदा हो गईं। एक तरफ ता अमेरिका को जापानी आद्य सामग्री के व्यापक

धमाक की हूर करने तथा आवास विक्रिस्ता आदि समस्याओं के हल खोजने के विपुल व्यवसाय प्रयास करने पड़ रहे थे और डूमरो और जापानी उद्योगों व मधेयवस्था के इतने पतन से यह पिन्टा हो गई कि पूर्वी एशियाई बाजारों पर कहीं उस धक्का उसने गुट का कोई प्रम्य राज्य प्रमुख न बना से। मास्को स्वयं भी एशिया के निर्धन राज्यों में साम्यवाद के प्रचार को हूर प्रकार से उत्साहित कर रहा था और जापान के छात्रों व श्रमिकों में साम्यवाद इत गति से फैलाने लगा था। इसके प्रतिरिक्त 'पूर्व' व 'पश्चिम' के बुटकसीत सहयोग का स्थान 'शीत युद्ध' ने ले लिया और इस बात की तीव्र आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी कि स्वतन्त्र विश्व अपनी पूरी शक्ति के साथ अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद से लक्ष्य करे। चीन में तेजी से पतनना हुआ साम्यवाद एशियाई राज्यों के लिए संजीर रातरा पैदा कर रहा था।

इन सब परिस्थितियों में अमेरिका के लिए यह स्वाभाविक था कि वह जापान को पुन एक आरर एव समानपूर्य स्तर प्रदान करे तथा उसके पुनरुत्थान की दिशा में प्रयत्न हो। वास्तव में पूर्वी तथा दक्षिणपूर्वी एशिया में साम्यवाद के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए अमेरिका ने अपनी नीति को एक नया मोड़ देने का निश्चय कर लिया। अब अमेरिकावासियों ने प्रस्ताव सागरीय क्षेत्र में अपने हितों का सुरक्षा के लिए जापान के पुनर्जागरण को प्रतिबाध मान लिया।

अमेरिका ने सर्व प्रथम एक "ती सूत्री आर्थिक स्थिरता कार्यक्रम" अपनाया। इसका सर्वेस्य बजट को समुचित करना कर एकमित करने के कार्य को सुधम बनाना म्ब प्रषान को सीमित करना बेतनक्रम स्थिर बनाना मुस्य नियंत्रण को वृद्धि कराना विदेशी व्यापार तथा विदेशी मुद्रा नियन्त्रण में सुधार करना 'राशतिय' व्यवस्था को सुधारना कम्ब मास तथा संसार मुद्रा मास के उत्पादन में वृद्धि करना और आर-सामपी एकमित करने के कार्यक्रम को सुधरना आदि था। इस कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किया गया। सन् १९४८ में कुछ विख्यात अमेरिकन व्यवसायियों ने एक प्रतिनिधि मंडल ने जापान की यात्रा की एक बिगड़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपनी सरकार को यह सुझाव दिया कि जापान का नयाशीघ्र अमेरिकन निभरता से मुक्त कर दिया जाय।

अब अमेरिकन प्रशासन ने जापान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र का स्तर प्रदान करने की नीति पर विशेष सक्रिय रूप से चलना शुरू कर दिया है। जापान की आर्थिक दशा सुधारने के लिए क्षति-पूर्ति को स्थापित कर दिया गया और हड़तालों पर निमित्त प्रतिबंध लगा दिये गये ताकि उत्पादन कार्य बंद न हो सके दिसम्बर, १९४८ में जापानवासियों को निर्माण क मित्र उत्पादन में अधिनाधिक वृद्धि करने का अधिकार दे दिया गया। जापान का संसार की गतिविधियों में पुन-मास लेने का अधिकार प्रदान किया गया। अतएव अनेक जापानी बिज्ञानों और मेताओं ने एशिया एवं यूरोप की विस्तृत यात्राएँ की। प्राविधिक योग्यता प्राप्त विभिन्न जापानियों ने मनादा

पाकिस्तान और भारत का भ्रमण किया। जापान ने जापिग्य और व्याना के लिए बिदेहों में अपनी एजेंसियाँ स्थापित की और संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न सभाओं में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। साम्यवादी प्रभाव से जापान का मुक्त करने की दृष्टि से विश्वविद्यालयों आदि से साम्यवादी विचारों वाले अध्यापकों व प्रोफेसर्स का निष्कासित कर दिया गया। साम्यवाद को प्रोत्साहित करने वाली प्रत्येक प्रकार की प्रतिक्रिया को निषिद्ध ठहरा दिया गया। अंतरराष्ट्रीय विचारों का दमन करने के लिये समाचारपत्रों सम्बन्ध में कठोर कानून बना दिये गये। कुछ अपराधियों को समाज में सम्मानजनक रोजी जापिस प्रदान किया गया।

१९४६ में अमेरिका ने यह निश्चय किया कि जापान को अपनी सुरक्षा के लिये स्वयं समर्थ बनाया जाय। अतः इस मार्ग की संवैधानिक बाधाओं को दूर कर दिया गया और उसका अस्वीकरण पुनः प्रारम्भ हुआ। ऐनिक प्रवृत्ति वाले जापानियों को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। जनवरी १९४९ में जनरल मैकार्जर ने घोषणा की कि— यदि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था शांति के लिये इसी तरह अतन्त्रताक बनी रही और मानव जीवन पर छाई रही तो यह प्राथमिक है कि निःअस्वीकरण का प्रावर्ध 'आत्मरक्षा' के अधिक महत्वपूर्ण ध्येय के सम्मुख भुक्त काय और यह प्रावका (जापानवासियों का) कर्तव्य होगा कि प्रायः संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों के दायरे में प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी राष्ट्रीय सहयोग से शक्ति का शक्ति से सामना करें। जापान के पुनःअस्वीकरण की दिशा में सर्वप्रथम ७५ हजार जापानी सैनिकों को राष्ट्रीय पुलिस बल (National Police Force) के नाम से संगठित किया गया। सन् १९५० में यही संगठन एक सुसज्जित 'सुरक्षा सेना' (Defence Force) में परिवर्तित कर दिया गया। मार्च १९५४ में वाशिंगटन और टोकियो के मध्य 'पारस्परिक प्रतिरक्षा सहायता समझौता' (Mutual Defence Assistance Agreement) द्वारा जिसके अन्तर्गत जापान को काफी सैनिक सहायता मिली। अगस्त १९५५ में जापान ने एक अस्थायी आसी स्पल जलवायु सेना की स्थापना के लिए ६ वर्षीय योजना क्रियान्वित की। १९५६ में 'राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद' (National Defence Council) की स्थापना की गई। जापान के प्रतिरक्षा बजट में प्रतिवर्ष वृद्धि होती चली गई और अंततः ही जापान प्राकृतिक युद्धकला से सज्जित राष्ट्र बन गया।

जापान के साथ शांति संधि

यह स्मरणीय है कि जापान की पराधीनता का काल १९४५ से १९५२ तक रहा। १९५२ में शांति-संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद जापान पुनः स्वतन्त्र हो गया। इस शांति संधि का उत्तम पुस्तक के प्रारम्भिक अध्याय में 'शांति समझौते के अन्तर्गत किया जा चुका है, तथापि संक्षेप में यह इस प्रकार है—

साम्यवादियों द्वारा चीन पर कब्जा कर लिए जाने और कोरिया में कुछ क्षेत्रों पर सितम्बर १९५० में अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने पॉल कॉल्टर डोस को जापान के साथ शांति सन्धि सम्पन्न करने का कठिन कार्य

कर दिये और २८ अप्रैल १९३२ को संधि क्रियान्वित कर दी गई। इस पोसीण्ड एवं वेकोस्मोवाक्रिया ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये।

जापान के साथ की जाने वाली उपरोक्त शान्ति संधि में २७ बारायें थीं। इनके अनुसार निम्नलिखित प्रमुख व्यवस्थायें की गईं—

१ यह स्पष्ट कर दिया गया कि सभी हस्ताक्षर कर्ता राष्ट्र अपनी संप्रभुता और समानता के साधारण पर अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति बनाये रखने तथा समान हितों को विकसित करने के उद्देश्य में परस्पर मैत्रीपूर्ण सहयोग स्थापित करेंगे।”

२ मित्रराष्ट्र जापानवासियों को जापानी भूक्षेत्र और प्रादेशिक जल क्षेत्र पर पूर्ण प्रभुत्व का मान्यता प्रदान करते हैं।”

३ “जापान संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन करने एक उसकी सदस्यता के लिए प्रार्थना पत्र देने को तैयार है तथा वह कोरिया फारमोसा पैस्काबोर्स कुराइलस इशिणो सन्तानिन फ्राटले डीप समूह पारासेल डीप—ममूह और एण्टार्टिका पर अधिकार स्थापने व रयूकस दायतो (Daito) बोलिन बोसेकेनो इत्यादि द्वीपों के प्रशासन के सिधे अमेरिका की देख रैक में राष्ट्र संघीय ट्रस्टीगिप व्यवस्था की स्थापना पर महमत है।”

४ “कच्चे धनका वाणिज्य (Occupation) के लिए रची गई सभी विदेशी सेनायें जापान से हटा ली जायेंगी और केवल प्रतिरक्षा के लिए कुछ विदेशी सेनायें पूर्ववत् मौजूब रहेंगी

५ “बार वर्ष तक पूर्ववत् जब तक वाणिज्य व व्यापार सम्बन्धी कोई नई शर्तिया नही हो जाती जापान आयात-निर्यात के मानसा में मित्र राष्ट्रों के सभी निवासियों के साथ ‘अतिष्ठतम मैत्री’ (most Favoured nation) का व्यवहार करेगा।”

६ ‘अतिपूर्ति केवल धन की प्राप्ति तक ही सीमित रहेगी और इसका प्राप्त कर्ता आगान को कच्चा मान प्रदान करेंगे बितरते उस पर विदेशी मुद्रा सम्बन्धी कोई अनुचित बोझ न पड़ सके।

७ “जापान मित्र राष्ट्रों के निवासियों की सम्पत्ति या ठा उन्हें वापिस लौटायेगा या उसके बचसे में उन्हें मुआबजा देगा।”

८ “विदेशों में जापानी सम्पत्ति कुछ अपवादों के साथ सम्मिश्रित देशों द्वारा हस्तगत कर ली जायेगी।

शान्ति संधि में शस्त्रास्त्रों के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया गया।

जापान ने एक स्वाधीन राष्ट्र की हिसियत से और भी अनेक शर्तियाँ बंधन कीं। पहले तो संधि पर हस्ताक्षर करने के दिन ही वाणिज्य के साथ एक ‘सुरक्षा-समझौते’ पर हस्ताक्षर किये गये और बाद में २८ अप्रैल १९३२ को व्यावहारिक रूप में शान्ति संधि के क्रियान्वित हो जाने पर जापान ने राष्ट्रवादी चीन (फारमोसा) के साथ एक शान्ति संधि की। अमेरिकन प्रभाव के कारण टाकियो ने साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान नहीं की।

१ द्म १९५२ का भारत और जापान के मध्य एक पूरक शांति-ममझौठ पर हस्ताक्षर हुए जिसके प्रसंगत भारत ने क्षतिपूर्ति के सभी दाव त्वाग दिये । दोनों देशों ने परस्पर अनिष्ट 'वीची' का व्यवहार करने और एव हमारे की संपत्ति वापिस सोटाने का निश्चय किया । सन् १९५६ में फिसिपान्म्स के साथ एक क्षतिपूर्ति समझौता किया गया जिसके द्वारा फिसिपान्म्स में अपना बाबा १ भरब डालर भरराजि स घटा कर ८० करोड़ डालर कर दिया । दोनों देशों के मध्य सामान्य कूटनीतिक संबंध भी पुनः स्थापित हो गये । नवम्बर १९५४ में जापान और बर्मा के मध्य एक शांति दंडि हुई तथा दोनों देशों ने परस्पर कूटनीतिक दूतों का आदान प्रदान किया ।

जापान के साम्यवादी देशों-विशेषत चीन एवं रूस के साथ सम्बन्ध

अपनी स्वाधीनता के उपरांत १९५४ तक जापान अपने प्रधानमंत्री घोशिदा के नेतृत्व में अपने प्राथिक पुनर्निर्माण के लिये अथक प्रयास करता रहा । इस अवधि तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का राजनीतिक स्तर पर उल्लेखनीय विकास जापान ने नहीं किया क्योंकि वह सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अनेक दृष्टियों से बंधा हुआ था । दिसम्बर १९५४ में जापान का देशमन्त्र राजनीतिक हातोयामा प्रधानमंत्री बना । उसने प्रतिकूल दस के नेता शिये-मिस्तु को अपने विदेश मंत्री बनाया । हातोयामा और गिगियिगु ने मिल कर जापान के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को एक नई दिशा में नईना धारण कर दिया । विदेश मंत्री ने इस सम्बन्ध में अपने एक बक्तव्य में कहा — 'हमारी सरकार अब समस्त साधना की ताव करती जा एशिया के हमारे मित्रों के साथ हमारे निकट और अशुभ सम्बन्ध स्थापित कर लके ।

— मत हम इस बात के लिए तैयार हैं कि दोनों पक्षों को स्वीकार्य व्यापारों पर रूस और चीन के साथ सामान्य सम्बन्ध स्थापित किये जायें, परन्तु इससे स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ हमारे मौलिक सहयोग के सम्बन्धों को कोई बाध नहीं घाने की जायेगी । जहां तक सोवियत संघ और चीन के साथ व्यापार का प्रश्न है हम वर्तमान अन्ति समय में यह नहीं मानते कि इससे कोई बहुत लाभ की प्राप्ति की जा सकती है तथापि हम अपने वर्तमान व्यापार की सकुचित मात्रा को बढ़ाने के अवसरों का स्वागत करेंगे ।"

इस बक्तव्य से यह स्पष्ट हो गया कि अमेरिका के साथ अपने सम्बन्धों को हीनात्मिक व्यापारों पर प्रतिष्ठित मानते हुए भी जापान रूस और चीन के साथ संबंध करन के लिए तैयार था । जापान और चीन में १९५२ और १९५३ में जो व्यापारिक समझौते हो चुके थे १९५४ के बाद उनके अन्तर्गत व्यापार में पर्याप्त वृद्धि हुई । विगम्बर १९५४ में ही चीनी प्रधानमंत्री धी चाऊ-एन-लाई ने दोनों देशों के पारस्परिक व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों का अंगवार समझन किया । अदुवरांत दोनों देशों के व्यापार निर्वाह में उत्तमनाय वृद्धि हुई । जापान के साम्यवादी शासक के साथ सभी प्रकार का प्राथिक और तकनीकी सहयोग धारण कर दिया किन्तु फिर भी चीन

के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना नहीं की गई। इस बारे में जापान के हाग वैसे हुए थे। मित्र राष्ट्रों के साथ की गई शांति-संधि में उसने बचन दिया था कि वह चीन की राष्ट्रवादी सरकार को ही वैधानिक सरकार मानेगा और साम्यवादी चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना नहीं करेगा। अमेरिका का क्याल करते हुए ही जापान ने चीन के साथ वैयक्तिक स्तर पर व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना को अधिक प्रोत्साहित किया। चीन के साथ जापान के व्यापारिक सम्बन्ध जनी जनी प्रगति करते गये। १९६२ में गैर सरकारी स्तर पर एक और व्यापारिक समझौता हुआ। तत्कालीन प्रधान मंत्री इकेडा ने चीन से सम्बन्ध बढ़ाने की नीति अपनाई। परन्तु उनके बाद इसाकु सातो ने इस नीति को उलट दिया। इसाकु सातो के नेतृत्व में वर्तमान जापानी सरकार का विचार है कि कल या परसों चीन एशिया में जापान का प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होना इसलिए पेरिकम की तुलना में बाह्यदृष्टि में अधिक मजबूत सम्बन्ध बनाये रखना अधिक उपयोगी है। फिर बलिष्ठी-यमी होने के नाते साम्यवाद उन्हें (इसाकु सातो को) यों ही नहीं गूहाता। सितम्बर १९६० में भी सातो की ताइपेह यात्रा और ब्यांग आई-सेक की टोकियो घाने का निमंत्रण देना सिद्ध करता है कि सातो पेरिकम से व्यापार बढ़ाने को अधिक उत्सुक नहीं है। जायर मंत्री कारलु है कि उन्होंने कुछ दिन पहले पेरिकम के व्यापारिक निष्ठमंत्रियों को जापान घाने की अनुमति नहीं दी और चीन जाने का इच्छुक सत्रों को पासपोर्ट नहीं दिया। जापान सरकार ने माघो के चीन को राजनयिक सम्बन्ध नहीं दी है। १९६२ में चीन से गैर-सरकारी स्तर पर जो व्यापार समझौता हुआ था उसके नया किये जाने की धम कोई उम्मीद नजर नहीं आती। सातो का रुक देखते हुए चीन ने इसी साल भी में से चार जापानी मंत्रालयों को पेरिकम से वापिस भेज दिया। इन्हीं सब कारकों से जापान के कामपनी मीडुवा सरकार से बहुत नागव है और अब भी मीका मिलता है बने करने से बाध नहीं घाते।

प्रारम्भ में सोवियत संघ के साथ जापान के सम्बन्ध कठई संतोषजनक नहीं रहे। मास्को की जापान संबंधी मित्र राष्ट्रीय परिषद' तथा सुदूर पूर्वी घावोग' में बिश्न देखा करने वाली नीति दोनों देशों के बीच वैममस्य का मुख्य कारण थी। इसके प्रतिरिक्त जापान की कस से सञ्चालित तथा कुचउल डीपों को वापिस लेने की भावना युद्ध काल में सोवियत कस द्वारा पकड़े गये जापानी मतिकों और नागरिकों की वापसी का प्रश्न उत्तरी सामुद्रिक क्षेत्र में मस्व-सद्योग की समस्या जापान को संयुक्त राष्ट्र संघ की सचस्यता प्राप्त किये जाने के मार्ग में बाधा देना करने की कसी नीति और जापान व अमेरिका के पारस्परिक मुरजा-समझौते घादि ने टोकियो व मास्को के मत्रमेदों को और भी अधिक उब बना दिया। अमेरिका और जापान के मध्य सम्पन्न हुई शांति-संधि की कसी सरकार ने कट्ट घासोचना की और घनेस १९६२ में इस संधि के मागु कर दिये जाने पर मई में जापान ने मास्को से सप्ट मंत्रों में कह दिया कि वह अपना बूजास जापान ने हटा ले।

सितम्बर १९६२ में साविकठ संघ में जापान को संयुक्त राष्ट्र संघ

की सदस्यता प्रदान करने के प्रस्ताव के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रयोग किया। अगस्त १९४६ में जापानियों द्वारा अपने सामुद्रिक क्षेत्र में एक कड़ी अस्थायी पकड़ सिद्ध करने की घटना से बार्नो देशों के मध्य तनाव में और भी वृद्धि हुई। परन्तु तीस ही दोनों राष्ट्रा ने यह अनुभव किया कि उनके मध्य यह घनावस्थक बेमनस्य उनके पारस्परिक हितों के लिये घातक है। जापान के कठिपय नेताओं ने अनुभव किया कि पूर्णतः अमेरिका के इशारों पर नाचना बातक होमा क्योंकि अमेरिका किसी भी समय पुराप प्रथम अवस्था किसी नये 'वृक्षतावाद' की बसील देकर उनका साथ छोड़ सकता है। इसी तरह सोवियत संघ को लगा कि जापान के साथ उसका यह निरंतर द्वय अवस्था प्रतिरोध सुदूरपूर्व और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में उसके हितों के लिये हानिकर होमा। इस प्रकार की अनुभूति के फलस्वरूप दोनों ही देश एक दूसरे के निकट आने का प्रयास करने लगे। जापानी प्रधानमन्त्री हातोयामा ने १९४४ में यह निश्चय किया कि जापान स्वयं अपनी धार से सार्वभ्यत क्षेत्र और चीन से कुछ स्थिति समाप्त करने अर्थात् शांति संधि के लिए निवेदन करे। इस निश्चय के अनुसार जून १९४५ में संयुक्त म इस देशों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन की अर्थात् १९४५ के पूरे समय अस्तरी रही परन्तु कोई निश्चय नहीं हो सका। जापान सत्तासिन् दक्षिणी कुराइस (या कुराइस द्वीप समूह होबोमाई द्वीप समूह और मिकोजान का फिर से प्राप्त करना चाहता था। परन्तु इस सत्तासिन् और कुराइस को छोड़ने को तैयार नहीं था। ये प्रवेस उसे मित्र राष्ट्रों के 'वास्ता सम्मेलन' में दिये गये थे। इन प्रतिरोधों के कारण समझौता-वार्ता २० मार्च १९४६ का भंग हो गई।

संघि-वार्ता भंग हो जाने से प्रधान मन्त्री हातोयामा निराश नहीं हुए। अगस्त १९४६ में जापानी विदेश मन्त्री किगेयिरोकु ने मास्कोवा को विशेष दूत के रूप में मास्को भेजा और शांति-वार्ता की पुनः शुरुवात की। इनके बाद अपनी अस्वस्थता के बावजूद प्रधान मन्त्री हातोयामा स्वयं मास्को गये। अगस्त में १९ अक्टूबर १९४६ को मास्को में एक शांति घोषणा पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अन्तर्गत 'युद्ध-स्थिति समाप्त कर दी गई, कूटनीतिक सम्बन्धों की पुनर्स्थापना का निश्चय हुआ। सोवियत संघ ने जापान को समुद्र राष्ट्र संघ की सदस्यता दिलाने में समर्थन का धारवाचन दिया, कम में बनी जापानियों की रिहाई की व्यवस्था हुई और अगस्त में कम द्वारा शक्ति पुनः की मांग भी त्याग दी गई।' इसके साथ ही यह भी घोषणा की गई कि जापान और कम में शांति-संधि हो जाने के बाद कम जापान का हबोमाई तथा मिकोजान द्वीप हस्तांतरित कर देगा। दोनों देशों के मध्य एक व्यापारिक समझौता भी हुआ जिसके द्वारा उन्होंने परस्पर 'अनिष्टतम मनो' का व्यवहार करने का निश्चय किया। १८ दिसम्बर १९४६ को जापान समुद्र राष्ट्र संघ का सदस्य बना दिया गया। फरवरी १९४७ में दोनों देशों में शिपिंग कूटनीतिक सम्झौता स्थापित हो गये और मार्च १९६० में दोनों के मध्य पुनः एक तीन बर्षीय व्यापारिक समझौता सम्पन्न हुआ।

इस और जापान के वर्तमान सम्झौता यद्यपि मयूर है तथापि दोनों

म घभी एक कोई औपचारिक नाति-संधि नहीं हो सकी है और वास्तविक सहयोग की स्थापना प्रायः भी काफी दूर है। इस मलाकिन और कुराइन द्वीप-समूह पर अपना प्राधिपत्य छोड़ने की महमत नहीं है।

स्वतन्त्र जापान के संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ सम्बन्ध

२८ अप्रैल १९५२ को पुनः एक स्वाधीन राष्ट्र बनने तथा वाशिंगटन के साथ एक पारस्परिक सुरक्षा समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद जापान और अमेरिका के संबंध उत्तरोत्तर बलिष्ठ होते चले गये। १२ नवम्बर, १९५२ को तट रक्षा के लिए अमेरिका ने उच्चार पट्टे के आधार पर जापान को ७० फ़ीसेट (Ft. Gates) प्रदान किये। ३० सितम्बर १९५३ को दोनों देशों के मध्य एक नवीन व्यापारिक संधि पर हस्ताक्षर हुए। ३० अक्टूबर १९५३ को जापान की प्रतिरक्षा सञ्चा और प्राधिक सह्यता के लिये अमेरिकन सामग्री के आयात के बारे में एक समझौता हुआ। दोनों देशों के सम्बन्ध तब एक कदम और आगे बढ़े जब २३ दिसम्बर १९५३ को अमेरिका ने ग्युकुन (या र्युक्यू Ryukyu) द्वीप-समूह के अज्ञात आसिमा प्रादि द्वीपों पर अपना प्राधिकार त्याग दिया। - मार्च १९५४ को जापान और अमेरिका ने पारस्परिक प्रतिरक्षा सह्यता संबंधी बात गुन समझौतों पर हस्ताक्षर किये। यद्यपि अमेरिका के संकेत पर जापान ने साम्यवादी देशों के साथ सरकारी स्तर पर संबंध बढ़ाने की विधेय चेष्टा नहीं की किन्तु सितम्बर १९५४ में अमेरिका द्वारा प्रस्तावित 'ब्रिटीश-पूर्वी-एशियाई सामूहिक सुरक्षा संधि' पर उसने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। अमेरिका द्वारा जापान को संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्यता विधान में तभी सफलता मिल सकी जब गोबियत इस न दिसम्बर, १९५६ में इस विषय पर जापान को अपना समर्थन प्रदान किया। जून १९५७ में जापानी प्रधानमंत्री किशी ने अपनी अमेरिका यात्रा में राष्ट्रपति आइजनहावर से बातचीत की। २२ जून को एक संयुक्त बिज्ञप्ति प्रकाशित की गई जिसमें कुछ अन्य बातों के प्रतिरिक्त यह भी घोषित किया गया कि—

- १ अमेरिका जापान-स्थित अपनी सेनाओं में मारी कटौती करेगा।
- २ ओकीनावा पहले ही के समान अमेरिका के नियन्त्रण में ही रहेगा किन्तु वह उसके निवासियों के अतुल्य विकास के लिए भरसक प्रयास करेगा।
- ३ अमेरिका जापान-स्थित अपनी सड़ाकू स्वतः सेनाओं के प्रयास पर जापानी सरकार से परामर्श लेगा।
- ४ जापानी गणर उन देशों के साथ सैनिक मद्दत के व्यापार को सीमित ही रहेगी जो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी प्रसार द्वारा स्वतन्त्र राज्यों की सुरक्षा के लिये उत्तरा पैदा करता है।
५. दोनों देशों की सरकारें पारस्परिक व्यापार को उच्च स्तर प्रदान करने के लिए प्राव्यक कदम उठावेंगी।

संयुक्त विज्ञप्ति में पारस्परिक सहयोग के निम्नलिखित पांच सिद्धान्तों पर जोर दिया गया—

- १ 'दोनों राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों के अनुस्यू स्वतन्त्रता और ग्याय के आधार पर शांति के उपासक हैं तथा दोनों ही सामूहिक व्यवस्था के अस्तित्व पर अविरोध के अभाव में शक्ति प्रयोग के विरोधी हैं।
- २ शास्त्रास्त्रों पर कोई प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित न होने तक यह विश्व शांति के हित में है कि सभी राष्ट्रों के पास सुरक्षा के लिये पर्याप्त शक्ति और सामर्थ्य हो।
- ३ दोनों देश स्वतन्त्र राष्ट्रों के नाम के लिए अनावश्यक और स्पेक्ष्याकारी नियन्त्रणों से विहीन पारस्परिक मुक्तवस्ति व्यापार में दृढ़ विश्वास रखते हैं।
- ४ दोनों ही राष्ट्र इस बात पर सहमत हैं कि विश्व के मबिष्य की दृष्टि से अणु-धामुओं तथा पुराने ढंग के शस्त्रास्त्रों पर एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का होना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस विषय पर दोनों ही देश परस्पर विचार विमल करते रहेंगे।
- ५ दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध सामंभौम समामता पारस्परिक हित एवं सहयोग पर आधारित होंगे।

विज्ञप्ति में यह आता प्रकट की गई कि मबिष्य में दोनों देशों के पारस्परिक संबंध और भी मैत्रीपूर्ण होंगे।

अमेरिका और जापान के सम्बन्ध मैत्री पत्र पर अग्रसर होते रहे और ११ जनवरी १९६० को दोनों देशों में एक इस अर्थात् प्रतिरक्षा-समंभौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के अन्तगत 'जापान की सुरक्षा में योगदान देने एवं सुरक्षित पूर्व में शांति तथा सुरक्षा का आतावरण बनाये रखने के लिये जापान में सैनिक अड्डों पर अथवा अथवा भारी रकमे का अधिचार मिल गया। जून १९६१ में जापानी प्रयातमन्त्री इच्छा अमेरिका गये। उनकी आर्ति के अन्तस्वरूप दोनों देशों में अत्यधिक वैशानिक सांस्कृतिक और वैज्ञानिक सहयोग के विस्तार के लिये विभिन्न संयुक्त समितियों का निर्माण हुआ।

यद्यपि सकारणी स्तर पर अमेरिका और जापान के संबंध सहयोगपूर्ण बने रहे किन्तु जापान की अतता में अमेरिका के प्रति अस्वच्छा और रोड प्रकट होता रहा। जापान के जनसाधारण के मन में ये आर्ति निरन्तर अस्वच्छा रही—जापान की भूमि पर अमेरिका द्वारा अत्यधिक विराया जाता जापानी भूमि पर अमेरिका के सैनिक अड्डे अमेरिका द्वारा जापान का नि अस्वीकरण और विनीयीकरण के लिये अथवा अथवा जापान में मैत्रिक प्रयातन के मुख्य के रूप में अथवा अथवा की अथवा अथवा। यही सब कारण थे कि जब १९६१ के आरम्भ में जापानी सरकार के निमन्त्रण पर राष्ट्रपति आइजनहावर जापान की राजनीय यात्रा पर आने को तैयार हुए न। अन्ततः

के समाजवादी त्त्वों और विश्वविद्यालय के छात्रों ने उनकी प्रस्तावित यात्रा का तीव्र विरोध किया और सारे जापान में मारी बंदी हुए। विरोध का दावानल इतना फैला कि किसी वस के बहुमत का अस्तित्व ही अठरे में पड़ गया। अन्त में स्थिति को सम्मानने के लिये प्रधानमंत्री किसी ने अमेरिकन राष्ट्रपति क हौरे का कार्यक्रम ही रद्द करने की घोषणा करत हुए स्वयं अपने पक्ष से त्यागपत्र दे दिया। उनके बस न उनका त्यागपत्र से बहुत राहत की संसदी और उनका स्वाम पर इकेबा को प्रधानमंत्री बना दिया गया। प्रधानमंत्री इकेबा ने अमेरिका के साथ सम्बन्ध बनाये रखने के साथ-साथ साम्यवादी राष्ट्रों—विशेषकर चीन से—रुद्ध-अन्ध बढ़ाने की नीति अपनाई। परन्तु उनके बाद प्राप्त बाल वर्तमान प्रधानमंत्री श्री इसाकु सातो ने इस नीति का भारी रचना उचित नहीं समझा।

प्रधानमंत्री सातो 'जापान-अमेरिका परस्पर सुरक्षा संधि' को बहुत महत्व देते हैं और यह भी चाहते हैं कि ओकिनावा द्वीप उन्हें वापस मिल जाये मगर अमेरिका को नाराज करके नहीं। इसलिये १३ नवम्बर १९६० को सिएटल में जब अमेरिकी पत्रकारों ने छात्र-प्रदर्शनों के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा— "दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जापान ने और अमेरिका ने जिस सन्धि पर हस्ताक्षर किये हैं वह अपरिवर्तनीय है।" उन्होंने अपनी धार से धास्वासन दिया कि यदि ओकिनावा द्वीप का नियंत्रण जापान को वापस मिल जाये तो भी ओकिनावा में अमेरिकी सैनिक घट्टों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आने पायेगा। यह उल्लेखनीय है कि ओकिनावा अमेरिका का विशेष-स्थित सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण सैनिक घट्टा है जहाँ पर परमाणु घट्टों का अन्धा-साधा भण्डार है।

यद्यपि अमेरिकन परमाणु-अस्त्री जापान के लिए बरधान सिद्ध हुई है फिर भी सातो की हार्थिक इच्छा यही है कि धीरे-धीरे जापान पर निर्भरता से मुक्त हो जाये। जापानी संविधान के अनुसार जापान विधिक सेना का गठन नहीं कर सकता तथापि आत्म-सुरक्षा के नाम पर जापान ने इतनी सामरिक शक्ति जुटा ली है जिसकी द्वितीय महायुद्ध के पहले भी। जब जापानी नेता अनुभव करते हैं कि बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए उनके राष्ट्र के पास प्राधुनिक साज-सामान भी होना चाहिए। चीन के परमाणु प्रयोगों ने इस भावना को प्रोत्साहन दिया है। उसके पास साधन हैं तकनीक है केवल समय का इन्तजार है। जिस दिन जापान अन्ध-संशय की होड़ में कूद पड़ेगा, उस दिन कोई भी ताकत उसे रोक नहीं पायेगी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान और बाद में अमेरिकन सैनिक प्रशासन के अन्तर्गत कुबल कर रल दिया गया जापान आज अमेरिका और सोवियत सभ के बाद यही ताकतों में नाम मिलाने का हकदार बन चुका है। यह धात्ता की जाती है कि १९८० तक वह इस और अमेरिका के बाद दुनिया का तीसरा सम्पन्न देश बन जायेगा। १० करोड़ की आबादी का टापुओं पर बसा यह देश दुनिया के पाबे तेमबाहूज बहान बनता है ब्रिटेन से प्रति व्यक्ति ज्यादा इस्वात तैयार करता है और संघर्षों के उपयोग में वह केवल अमेरिका से पीछे है।

एशिया में चीन उत्तरी विपठनाम उत्तरी कोरिया सरीके कुछ गिने-पुने देशों को छोड़ कर कोई देश ऐसा नहीं है जिसे मार्क्सिस्ट विकास के निये जापान सहायता न दे रहा हो या न दे सकता हो। यहाँ तक कि माक्सिस्ट संघ भी उराल-यूक विशाल प्रदेश माइवेरिया के मौखिक विकास के निये जापानी सहयोग चाहता है।

EXERCISES

1 Discuss critically the impact of the emergence of Communist China upon international relations since 1949

१९४९ के उपरान्त के अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर साम्यवादी चीन के सम्मुख के प्रभाव की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

2 Examine critically the foreign policy of Communist China.
 साम्यवादी चीन की विदेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

3 Give the relations of the Communist China with the neighbouring countries.
 अपने पड़ोसी देशों के साथ साम्यवादी चीन के संबंधों को बताइये।

Or

Examine critically the foreign policy of the Communist China with the neighbouring countries.
 अपने पड़ोसी देशों के साथ साम्यवादी चीन की विदेश नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

4 "As long as the Chinese Communist regime remains in power there are several developments that may and will be anticipated in the Far East" (C P Schleicher)
 Explain the statement clearly bringing out the impact of the People's Republic of China on Far Eastern affairs.
 'जब तक चीनी साम्यवादी शासन मत्तारूढ़ है मूदूर पूर्व में अनेक घटनाएँ हो सकती हैं और होंगी।'
 इस कथन को स्पष्टतानुबन्ध समझाएँ और मूदूर पूर्वी मायनों पर चीन के अन्तर्गत प्रभाव बताइये।

5 How has the rise of Peoples Republic of China affected the alignment of the international forces in recent years? Give a brief account of the foreign policy of people's China.

हाम ही क वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के संवन्धन को भीनी गणराज्य के उदय में किस प्रकार प्रभावित किया ? चीनी गणराज्य की विदेश नीति का संक्षिप्त विवरण दीजिये ।

6. Examine the truth of the view that China's foreign policy is fast becoming imperialistic.

इस विचार की सत्यता की परीक्षा कीजिये कि चीन की विदेश नीति तब से साम्राज्यवादी होती जा रही है ।

- 7 Write what you know about the restoration of Japan to her independence after the Second World War Discuss the foreign policy of Japan since 1950

द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान के पुनरुत्थार के बारे में आप को कुछ जानते हैं—लिखिये । १९५० के बाद से जापान की विदेश नीति की विवेचना कीजिये ।

- 8 Write a short essay on "Hong-Kong after 1945"

"१९४५ के बाद का हॉन्ग-कांग" पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।



14

मध्यपूर्व (पश्चिमी) एशिया

[MIDDLE-EAST (WEST) ASIA]

- १ मध्य पूर्व का स्वरूप
- २ मध्य पूर्व का महत्व और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के निर्धारक तत्व
- ३ समुच्च-अरब-गणराज्य (मिश्र)
- ४ सीरिया
- ५ जोर्डन
- ६ लेबनान
- ७ तम्रनी अरब
- ८ इजरायल
- ९ साइप्रस
- १० इर्क
- ११ ईराक
- १२ ईरान
- १३ अरब तथा अक्षिण अरब संध
- १४ मध्य पूर्व में महाशक्तियों का संपर्क

‘संसार में देहालियम की खपत बहुत अधिक बढ़ गई तथा अमेरिकन विशेषज्ञों ने अचानक यह पता लगाया कि यदि संपुष्ट राज्य अमेरिका का पैट्रोलियम इसी तरह खप किया जाता रहा तो वर्तमान राजाध्वी के प्राप्त तक अमेरिका के तेल के कुप खूब जायेंगे मत- अर्थात् अमेरिकन यू-यर्म शास्त्रियों को नये तेल की खोज में भेजा जिन्होंने मध्यपूर्व में तेल का पता लगा लिया तथा वहां एक नये युग का सूत्रपात किया ।’

—नलेवर हांतिदबर्ब

समस्त मध्यपूर्व में
 कई ही राज्य इतना
 प्रखित नहीं हैं जितना कि
 साम्राज्यवाद । अमीर लड़को
 की तरह मध्यपूर्व की जनता
 यह नहीं चाहती है कि उनके तेलों
 की खानों या सम्पत्ति के कारण
 उनकी प्रताप करने का प्रयत्न किया जाये
 बरन् वे चाहते हैं कि उनकी सस्कृति और
 सम्पत्तः का आदर किया जाये ।”

—सिडनी एन० स्मिथ

मध्य-पूर्व (पश्चिमी) एशिया
(MIDDLE-EAST ASIA)

मध्य-पूर्व के राज्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है —

क्रम संख्या	राज्यों का नाम	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	१९६१ के अनुसार जनसंख्या
(१)	अदन का ब्रिटिश संरक्षित प्रदेश (Aden Protectorate)	१८५,०००	६१०,०००
(२)	अफगानिस्तान (Afghanistan)	२५०,९६६	१,७०,००,०००
(३)	बहरीन (Bahrain)	२३१	२०,०००
(४)	साइप्रस (Cyprus)	३,३८४	४,९२,०००
(५)	संयुक्त अरब गणराज्य (UAR) (मिस्र, Egypt)	३,८६,१९८	३,०४,१०,०००
(६)	ईरान (Iran)	६,२८,०००	२,००,८१,३१०
(७)	ईराक (Iraq)	१,७१,३९९	३६,३८,१०९
(८)	इजरायल (Israel)	७,९९३	२,३,७२,०००
(९)	जोर्डन (Jordan)	३७,५००	२,३,००,०००
(१०)	कुवैत (Kuwait)	८,०००	१,३०,०००
(११)	ओमान सरकार (Oman)	८२,०००	३,५०,०००
(१२)	सऊदी अरब (Saudi Arabia)	८,३०,०००	१,१०,००,०००
(१३)	लेबनान (Lebanon)	४३,०००	१,८५,००,०००
(१४)	सीरिया (Syria)	७२,२३४	४८,९१,०००
(१५)	तुर्की (Turkey)	२,९६,५४३	३,४७,९७,०००
(१६)	यमन (Yaman)	७५,२९०	६०,००,०००

मध्य-पूर्व का स्वरूप

मध्यपूर्व का क्षेत्र तीन महाद्वीपों का संगम-क्षेत्र है—यूरोप एशिया और अफ्रीका। इस क्षेत्र में तीन समुद्र—सामसागर कासासागर तथा एड्रिया टिक सागर तीन महाद्वीपों के द्वारा सीधे समुद्र से—मध्यसागर से जोड़े हुए हैं। इस क्षेत्र में प्राचीन साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा है। साम्राज्य की दृष्टि से मध्यपूर्व अरबीरिया और ट्यूनीशिया की पूर्वी सीमा से लेकर

अफ़गानिस्तान तथा पाकिस्तान तक फैला हुआ है। इसका जनसंख्या २,६००,००० बर्गमील है या कम रहित यूरोप के बराबर तथा भारत के बगुने से भी अधिक है। परन्तु यहाँ की जनसंख्या केवल ८ करोड़ के घासपास है। इसका कारण विनाश मध्यम है। यह विश्व के तीन बड़े धर्मों—ईसाई इस्लाम और यहूदी—का जन्म स्थल है। यहाँ पर बहुतायत में इस्लाम धर्म है परन्तु इराक में यहूदी और मेसोपोटमिया में ईसाई धर्म प्रमुख है। भाषा की दृष्टि से तुर्की इराक में और ईरान को छोड़ कर अरबी प्रमुख है। यह प्रदेश प्राचीन सभ्यताओं की भूमि है जिनमें मिस्र हिट्टाइट शूमानी सुमेरियन बबीरियन बेबीलोनियन अरब और तुर्की सभ्यताएँ आती हैं। इस्लाम के सर्वाधिक पवित्र तीर्थ स्थल—मक्का और मदीना—और इस्लामी विद्या की महानतम संस्थाएँ इसी प्रदेश में स्थित हैं। सऊदी अरब मिस्र और ईरान के विद्यालय मस्जिद होते हुए भी इन क्षेत्रों में नील नदी के प्रदेश टिमोटिस स्मूरेट बाटी के प्रदेश अच्छे उपजाऊ हैं।

मध्यपूर्व में कौन कौन से भौगोलिक क्षेत्र सम्मिलित किये जायें इस विषय में विभिन्न मत रहे हैं। भारतीय उपमहादीप के पश्चिम और रूस के दक्षिण-पश्चिम में स्थित प्रदेश को जो एशिया अफ्रीका और यूरोप का संगम स्थल है ब्रिटिश सरकार ने मध्य पूब की संज्ञा दी है। अमेरिकावासी इसे निकट पूर्व (Near East) और भारत सरकार पश्चिमी एशिया (West Asia) के नाम से सम्बोधित करती है। जार्ज लेंसोवस्की (George Lenczowski) के अनुसार मध्यपूर्व में एशिया के वे सब देश जो सोवियत संघ के दक्षिण में और पाकिस्तान के पश्चिम में स्थित हैं तथा अफ्रीकी महादीप पर स्थित मिस्र सम्मिलित हैं।¹ परन्तु पाईबिट के अनुसार 'मध्यपूर्व के सीमित धर्म में मिस्र तथा एशिया के अरब राज्य समझ जाते हैं किन्तु प्रायः इसमें ईरान और तुर्की तथा मध्य सागर पर अवस्थित लिबिया टमनिशिया पल्मिरिया और मोरक्को का भी समावेश किया जाता है।² स्लीचर के मतानुसार 'यदि इसमें केवल मिस्र अ अफ़गानिस्तान तक के प्रदेश को ही सम्मिलित करें तो इसका क्षेत्रफल २७ लाख बर्गमील है।'³ कुछ लोग सष्टो का मत यह होने के कारण पाकिस्तान को भी मध्यपूर्व में सम्मिलित करते हैं परन्तु अधिकांशतः मध्यपूर्व का तात्पर्य रूस के दक्षिण और पाकिस्तान के पश्चिम में स्थित एशियाई देशों तथा अफ्रीका के दो देशों—मिस्र और सूडान से समझा जाता है। मध्यपूर्व के उल्लेखनीय राज्यों में उन नामों को गिना सकते हैं जिनकी सूची पूर्ववर्ती तालिका में दी जा चुकी है।

मध्यपूर्व का महत्त्व और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के निर्धारक तत्व

मध्यपूर्व की महान महत्ता उसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के

1 Lenczowski George The Middle East in World Affairs p. xvii

2 Wint Guy Middle East Crisis Page 16

3 Schlercher Introduction to International Relations P 435

कारण है। सैनिक और सामरिक दृष्टि से यह क्षेत्र एक ऐसा मांग है जिसके द्वारा आक्रमणकारी तीन दिशाओं—तीन महाद्वीपों की धार एक साथ घुसना हो सकता है। दूसरे शब्दों में यह बड़े क्षेत्र है जो यूरोप एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों को एक गूँथना में भाँदल करता है। विश्व विजय की योजनाओं से उत्पन्न किसी भी आक्रमणकारी की योजना का विफल बनाने के लिए मध्यपूर्वीय क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्थाओं का सबसे और सुदृढ़ होना परवर्षिक जरूरी है। विश्व के समस्त समुद्री और वायु मार्ग जो व्यापारिक एवं सैनिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी हैं मध्यपूर्वी (अथवा पश्चिमी एशिया) से होकर गुजरते हैं। इसका असमांग यूरोप को दक्षिणी और पूर्वी एशिया आस्ट्रेलिया अमेरिका एवं यूरोप से जोड़ते हैं। पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक कारखानों में तयार होने वाला मास दक्षिण-पूर्वी एशिया का इसी प्रदेश के जलमार्गों से होकर जाता है। पश्चिम को अपने उद्योग पदार्थों को पमाने का एक प्रबल आवश्यक स्रोत पेट्रोल भी इसी मार्ग से प्राप्त होता है। स्वेज नहर इसी क्षेत्र में स्थित है तथा काल सागर और मूमध्य सागर का जोड़ने वाला बरे बानियास तथा बाम्बारस जमहमहमध्य यहीं पर स्थित हैं। ये जल जमहमध्य अमी टर्की के अधिकार में हैं। इस से इन्हे भूतकाम में मन का काफी प्रयास किया था। उसने १८५ - १६ में क्रिमिया का युद्ध इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु लड़ा था। द्वितीय महायुद्ध के बाद भी उसने टर्की पर इनकी प्राप्ति हेतु बलब बाला था। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस क्षेत्र के महत्व को समझते हुए इस क्षेत्र में भी टर्की धारि की सहायताय दूरमैत सिद्धान्त व आइजनाहोकर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था। यदि कस उपरोक्त जमहमहमध्यों पर अधिकार कर ले तो उसके जगो जहाज पूर्वी मूमध्यसागर से होकर एशिया और आस्ट्रेलिया के मार्ग की सुरक्षा को सबट में डाल सकता है। नाटो मधि क दक्षिणी पायव की तथा अफ्रीका के उत्तरी तट की सुरक्षा की दृष्टि से इस का यहाँ धाता पश्चिम के लिए सबधा अवाहनीय है।

मध्यपूर्व के देशों का एक बड़ा महत्व यह है कि वे जहाँ से अष्टता निस्तान तक कस की दक्षिणी सीमा बनाते हैं। एक पाद न नगा में समुद्र राज्य अमेरिका का सैनिक घुंटे प्राप्त हो जाते हैं तो युद्ध की दगा में बड़े मोचियत संघ पर सुगमतापूर्वक आक्रमण कर सकता है। स्वच्छ इंगीणिग मध्यपूर्वी क्षेत्र के प्रदेशों पर अपना प्रभाव जमान की अमरिका व कग में प्रतिस्पर्धा सगी हुई है। दग क्षेत्र में जगगा प्रभाव जताये रखने की गाम्यवाद के प्रसार को परवृद्ध करने के लिए ही पहले जगगाद पैरज कीर बा में सेप्टो का निर्माण हुआ। इस समय सऊदी अरब व पारहन प्राय में संयुक्त राज्य अमेरिका का एक बहुत बड़ा ज्वाई अट्टा है तथा मध्यपूर्व व और भी कई स्थानों पर अपने सैनिक घुंटे हैं। धार माहियत क्य नी क्य धार म अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए प्राणुरण में मधेय है। समुद्र परब गुरुराग्य सीरिया मेघनात धारि देशों में उमन धार प्रभाव व उत्तरीगनीय वृद्धि की है। धार क्य और अमरिका के गधय में मध्यपूर्व का यह क्षेत्र धारम महत्वपूर्ण और विमोक्त बन चुका है।

विज्ञान तेल-सम्पदा

मध्यपूर्व में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व वहाँ का तेल भण्डार है। तेल (पेट्रोल) औद्योगिक विकास के लिए एक अनिवार्य वस्तु है। फिर भी एक तथ्य है कि कोई भी वास्तविकतावादी अपनी विश्व-विजय की योजना को पूरी करने के लिए सबसे पहले तेल से समृद्ध क्षेत्रों पर ही अपने दाँत गड़ाएगा क्योंकि बिना तेल के प्राथमिक कुछ महीने एक वस्तु व्यक्ति के समान बेकार हो जाएगा। मध्यपूर्व का क्षेत्र तेल की दृष्टि से कितना समृद्ध है इसका पता कर्नेम नासिर के इस कथन से ही स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ समुक्त राज्य अमेरिका में पेट्रोल का औसत दैनिक-उत्पादन ११ बर्रेल (Barrels) घोर बनसुएला में २० बर्रेल है वहाँ अरब-क्षेत्र में ४०० बर्रेल प्रतिदिन निकालने की औसत है। विश्व के संपूर्ण द्रव तेल का लगभग ६६ प्रतिशत ईरान की खाड़ी के पासपास के प्रदेशों—मुख्य रूप से कुवैत ईरान ईरान और उज्बेनी अरब—में पाया जाता है। मध्यपूर्व का यह तेल यूरॉप के आर्थिक जीवन का प्राण है। सोवियत संघ के लिए प्रबल आकर्षण है और मध्यपूर्व के उद्योगहीन वरिष्ठ देशों की प्रायः का प्रकृति-शरत् अक्षय-स्रोत है। इस तेल का लगभग ६३ प्रतिशत यूरॉप को तथा १ प्रतिशत से अधिक सुदूरपूर्व तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को दिया जाता है। इस और अमेरिका यद्यपि तेल के सम्बन्ध में लगभग पालम निर्भर है, परन्तु यूरॉप अपने लिये आवश्यक तेल का अनुमानतः ८० प्रतिशत मध्यपूर्व से प्राप्त करता है। यदि यूरॉप को यह तेल प्राप्त न हो तो उसके प्रतिकोश उद्योग बंदे छप्प हो जायेंगे और उसकी सामरिक शक्त एक बड़ी सीमा तक नष्ट हो जायेगी। वही कारण है कि पश्चिम इस प्रदेश पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता है।

मध्यपूर्व की यह तेल सम्पदा विश्व की सभी प्रमुख शक्तियों के लिए इतना प्रबल आकर्षण है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को 'तेल-दूतनीति' (Oil-Diplomacy) कहा जाने लगा है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि तेल और पेट्रोलियम के तबीन क्षेत्रों की खोज के कारण ही जहाँ एक ओर यह सारा क्षेत्र पश्चिमी साम्राज्यवाद का शिकार बना वहाँ दूसरी ओर इस तेल के क्षेत्र में इतने क्षेत्रों में गहन राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना भी उत्पन्न की। विशेषतः ईरान में तेल खोज का राष्ट्रीयकरण एक निर्वाचक घटना सिद्ध हुआ और उसके बाद से इस क्षेत्र में पश्चिमी साम्राज्यवाद के पक्ष के अन्तर्गत समाप्त होते जैसे जैसे और आज यह सम्पूर्ण क्षेत्र विदेशी दासता से नगमन सर्वथा मुक्त हो चुका है।

मध्यपूर्व के इस तेल के अतिरिक्त इसे निकालने वाली कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया है। तेल निकालने का कार्य मुख्य रूप से तीन देशों—ब्रिटेन फ्रांस और अमेरिका की कम्पनियों कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इसमें ब्रिटेन को और द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् मजबूत राज्य अमेरिका को अधिक सफलता प्राप्त हुई। १९३८ में

ब्रिटिश कम्पनियों ने समयम एक करोड़ पच्चीस लाख टन तेल का उत्पादन किया जब कि अमेरिकन कम्पनियों के द्वारा किया गया उत्पादन ब्रिटिश उत्पादन का केवल १/६ भाग अर्थात् २० लाख टन ही रहा। परन्तु १९५४ में अमेरिकन उत्पादन आसीस मुना बढ़ कर ८ करोड़ टन हो गया जबकि ब्रिटिश उत्पादन इसका आधा समयम ४ १/४ करोड़ टन ही रहा। वहाँ १९३६ में मध्यपूर्व के कुल तेल का केवल १२ प्रतिशत उत्पादन अमेरिकन कम्पनियों द्वारा होता था वहाँ १९५६ में वे मध्यपूर्व के ६० प्रतिशत तेल का उत्पादन करने लगे। इसके विपरीत ब्रिटिश कर्पनियाँ १९३६ में इस क्षेत्र के ८० प्रतिशत तेल का उत्पादन करती थीं जबकि १९५६ में उनका भाग केवल ३० प्रतिशत रह गया। प्रायः अमेरिका की सगमय सवा प्रत्येक डालर से अधिक पूँजी मध्यपूर्व के तेल-व्यापार में लगी हुई है। उसने रास-अस-खनूरा (सऊदी अरब) कुवैत बहरीन में तेल शोधक कारखाने बनाये हैं और सऊदी अरब से लेबनान के समुद्र तट (ईफा) तक पाइप लाइन बना ली है। ब्रिटिश कारखाने कुवैत धारि में हैं।

मध्यपूर्व की बिनास तेल सम्पदा ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति का असादा बना रखा है।

अरब राष्ट्रीयता और यहूदीवाद से असका विरोध

मध्यपूर्व की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व अरबियों का उग्र राष्ट्रीयवाद और यहूदियों के प्रति उनकी घोर शत्रुता है। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही मध्यपूर्व में राष्ट्रीयता का उदय आरम्भ हुआ। सबसे पहल टर्की ने सामिक कट्टरता का परित्याग करके पारशास्य जीवन प्रणाली और राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था को ग्रहण किया। यह महान् शक्ति कमालपाशा के नेतृत्व में स्थापित हुई और प्रायः टर्की अपने आपकी एशिया का अर्द्ध भागने के स्थान पर यूरोप का अर्द्ध भागने लगा है। अरबियों का यह राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता के लक्ष्य तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि सामाजिक और धार्मिक शक्ति का भी बाह्य बना। यह राष्ट्रवादी आन्दोलन प्रथम महायुद्ध के बाद मध्यपूर्व के देशों पर घोपी गई नयी राजनीतिक और धार्मिक पराधीनता के कारण और भी अधिक उग्र हो उठी। २५ नवम्बर, १९४५ को सिक्न्दरिया में 'अरब लीग' की स्थापना के द्वारा इस क्षेत्र के लोगों ने अपनी धरम-एकता की महत्वाकांक्षा को अभिव्यक्त किया। अरब-सीय समूह मध्यपूर्व के बिनास और स्वतन्त्रता की प्रतीक बन गई।

द्वितीय महायुद्ध के बाद मध्य-पूर्व के देशों में जहाँ राजनीतिक चेतना ने स्वतन्त्रता की सङ्घर्ष को फैलाया वहाँ धार्मिक चेतना के फलस्वरूप उन्होंने विदेशों के धार्मिक शोषण के विरुद्ध उठ खड़े होने का संकल्प कर लिया। यह मन्दस्य विदेशी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के रूप में अभिव्यक्त हुआ— ईरान द्वारा तेल उद्योग का नियंत्रण द्वारा स्वेज का और कुवैत द्वारा तेल धारि के तेल उद्योग का।

राजनीतिक स्वतन्त्रता या लेने के बाद अरब राष्ट्रवाद का एक रूप अपने देशों में स्थित विदेशी फौजी प्रभुओं की समाप्ति के रूप में प्रकट हुआ। य फौजी प्रभु विदेशी दासता के मूर्तिमान् प्रतीक थे और इनका बना रहना राष्ट्रीय मौरव के लिए घोर कलक था। अतः मिस्र और ईरान न अपने देशों से विदेशी फौजों व सैनिक प्रभुओं को हटाने का प्रयत्न प्रमियात छोड़ा। बुर्साई १९५८ में जब अमेरिकन व ब्रिटिश फौजों से बर्तमान घोर जोर्डन में सतरी लोके संपूर्ण अरब-जगत ने निम्ना घोर विरोध का एक सूक्ष्म जड़ा कर दिया और अन्त में इन फौजों को लीज ही महा से हटाना पड़ा।

अरब राष्ट्रवाद का एक प्रायः षण सहस्रियों के साथ अपने मरणात्मक संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ। यद्यपि इस्मा-यहूदी संघर्ष बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था किन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद सहस्रियों के एक पृथक राज्य इजरायल की स्थापना हो जाने से द्वेष और संघर्ष की एक नवीन राजनीति का उदय हुआ जिसमें संयुक्त अरब गणराज्य अरब राष्ट्रों का अनुशा बना। आज अरब-यहूदी संघर्ष मध्यपूर्व की मन्तराष्ट्रीय राजनीति का महत्वपूर्ण निर्माण तत्व बना हुआ है। यद्यपि अरब राष्ट्रों और इजरायल के मध्य हुए विभिन्न युद्धों और जून १९६७ के वर्तमान युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि न तो अरब राष्ट्र इजरायल को नष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं और न ही इजरायल अरब-राष्ट्रों से और अधिक प्रवेश छीनने की स्थिति में है फिर भी दोनों पारस्परिक अनुशा का त्याग करने को प्रस्तुत नहीं है। १९६७ के वर्तमान युद्ध में बिसका प्राये यथा-स्थान बर्तन किया गया है इजरायल ने संयुक्त अरब गणराज्य व दूसरे अरब-देशों की जो कुछ भी भूमि हथिया ली है उस पर वह अपना कब्जा बनाये नहीं रख सकता और इसी तरह अरब राष्ट्र भी इजरायल के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकते। यदि इन दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित हो जाये तो इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्यपूर्व का इतिहास एक जातिकारी नवीन मोड़ ले लेगा।

प्रतिरक्षित तत्वों और सामंजस्य के मध्य संघर्ष

मध्यपूर्व के क्षेत्र में प्रगतधीन और सामंजस्यहीन तत्वों के मध्य का संघर्ष भी एक प्रमुख समस्या है। इसका एक प्रमाण यमन का जातिक संघर्ष है जिसमें एक घोर यमन के अणुस्व बाहु के समर्थन तत्व हैं तो दूसरी घोर यमन के अतिकारी। अतिकारियों को संयुक्त अरब गणराज्य और शही तत्वों को सऊदी अरब का समर्थन मिला रहा है। यों अरब-सींग के मीतर ये दोनों देश एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं परन्तु जातिक राजनीति में वे एक-दूसरे के प्रतिद्वन्दी हैं।

अरब-राष्ट्रों के एकीकरण का स्वप्न

मध्यपूर्व की मन्तराष्ट्रीय राजनीतिक अंतरण को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण बात अरब-राष्ट्रों के एकीकरण की है। अरब-सींग का बहु प्रवास रहा है कि अतरी प्रकीका और मध्यपूर्व के सब अरबी-भाषी गण्यों

का एक संघ बने। वास्तव में यह मुस्लिम-प्रभुता के स्वर्णिम धतीत को पुन साकार बनाने की याचना है। मिस्र के महान नेता जर्मस नासिर अरब-एकता के इस स्वप्न को साकार करना चाहते हैं। वह समस्त अरब राज्यों के एक संयुक्त गणराज्य की स्थापना के विचार के पोषक हैं। उन्होंने १ फरवरी १९५८ को मिस्र तथा सीरिया को संयुक्त करके 'संयुक्त अरब गणराज्य' की स्थापना करके अरब राज्यों की एकता की दिशा में पहला पय उठाया। इन दोनों देशों का एक भासनात्मक एक विधान सभा एक संयुक्त सेना और एक अग्रगण्य विधायक हुआ। ६ मार्च १९५८ को अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हुए यमन राज्य भी इसमें सम्मिलित हुआ और संयुक्त अरब राज्यों (United Arab States) का निर्माण हुआ। श्री नासिर की आकांक्षा का कि इसमें नई शरीरक अल्जीरिया, जॉर्डन, सऊदी अरब, येमन, कुवैत और कफो सीरिया, ट्यूनिसिया, मागीटानिया, चाड, सूडान, यमन, मस्कत-ओमान, बहरीन और कतार के प्रदेश भी सम्मिलित हो तथा इन सब के सहयोग से सब अरब राज्यों का एकीकरण हो।

परन्तु श्री नासिर का अरब राज्यों के एकीकरण का यह स्वप्न कुछ घाटे बकम के पक्ष में ही मग हो गया। उद्योगिक मत भेदों के कारण १ फरवरी १९५८ में स्थापित हुआ मिस्र और सीरिया का संयुक्त राज्य भी अधिक समय तक नहीं चल सका। २६ २८ मितम्बर १९६१ को सीरिया में शक्ति हुई और वह इस राज्य में वृषक हो गया। २६ मितम्बर को श्री नासिर को यह स्थिति स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु उन्होंने अपने देश का नाम मिस्र के स्थान पर संयुक्त अरब गणराज्य ही रहन दिया। २६ दिसम्बर १९६१ को मिस्र ने यमन के साथ भी अपने संबंध समाप्त कर दिया। परन्तु ८ मार्च १९६६ को सीरिया में पुन एक नासिर गणराज्य शक्ति हुई और अरब में मिस्र सीरिया तथा ईराक में मिस्र का पुन अरब-संघ का निर्माण किया। यह १९५८ के साथ की शक्ति मुद्दों और एकात्मक नहीं था। इसमें प्रत्येक सदस्य राज्य की वृषक सरकार और संसद की व्यवस्था की गई थी। इसका स्वरूप संघीय (Federal) था। यह संघ भी घाटे चल कर मंग हो गया। श्री नासिर का कहना था कि—“हम संघ को मुद्दों इकाई बनाने का प्रयत्न करने में मूल की। इसलिये हम असफल रहे। पूर्ण एकता अत्यावहारिक है। हम इन देशों के प्रतिश्रियावादी और स्वैच्छाचार-पोषक शक्तों से दूर रह कर प्रतिश्रीय राजनीतिक शक्तों के सहयोग से अरब राष्ट्र संघ बनाने का सक्षय पूरा करता है।

शक्तिय ही यह बतायगा कि अरब राज्यों की एकता का प्रयास वही मग मफल होता है। अरब राज्यों में एकता का एकात्मक आधार इजरायल का उद्य विरोध ही प्रतीत होता है। किन्तु इन १९६७ में इजरायल के साथ संघ में वृषक पगात्रिन शक्तों के बाद एकता के इस आधार का आधार बनाना है और कतिपय अरब राष्ट्र इजरायल के प्रति अपनी नीति पर पुन विचार प्रयत्नक मग करने लगे हैं। यद्यपि इस पराजय ने नासिर का प्री प्ला का शरीर शक्ति वृषक है और उन केन्द्र की प्रयत्न अरब संघ

दुनीतियां मिलने लगी है और यह स्वयं भी इबरायल के प्रति यबाबंवाही नीति अपनाये की दिशा में मुझे है तो भी शुमन (Schuman) के इन बयनों की सत्यता अभी बहुत कुछ स्थिर है कि— 'नासिर युगो पुरानी धरब महत्वाकांक्षाओं का केन्द्रीय प्रतीक बन गया है और इन महत्वाकांक्षाओं की आर्थिक पूर्ति ही इबरायल के लिए महीन संकटों सोबियत संघ के लिए नवान् अबसरों तथा अमेरिका के लिए महीन दुबिधाओं की सम्भावना उत्पन्न करती है ।'¹

यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक नेतृता के बावजूद राजनीतिक दृष्टि से मध्य-पूर्व के क्षेत्र में अभी तक राजनीतिक स्थिरता नहीं आई है । १९११ की श्रुति से पहले इस क्षेत्र में मिस्र में १७ सरकारें बदलती रहीं और घब भी वहां ठानाघाही तरह का ही शासन है और कोई नहीं कह सकता कि वर्तमान में नासिर के नेतृत्व को कब उखाड़ दिया जाय । १९४२ से १९१४ तक सीरिया में २४ सरकारें बदली और घब भी वहां की राजनीतिक दशा स्थिर है । मध्य-पूर्व सैनिक पड़यंत्रों और सामनात्मकों की हत्याओं का चर कहा जा सकता है । यहां के अधिकांश क्षेत्रों में सरकारों का धाना-बाना चलता ही रहता है ।

अब हम मध्यपूर्व के प्रमुख राष्ट्रों व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर दृष्टिपात करेंगे ।

संयुक्त अरब गणराज्य (मिस्र) (United Arab Republic—Egypt)

जैसा कि बताया जा चुका है संयुक्त अरब गणराज्य का पुराना नाम मिस्र है । यह नाम मिस्र और सीरिया के संघ का निर्माण होने पर रखा गया था परन्तु सितम्बर १९९० में सीरिया अरब गणराज्य से पृथक् हो गया और मिस्र ने अपना नाम संयुक्त अरब गणराज्य ही बनाये रखने का निश्चय किया । मिस्र का कुल क्षेत्रफल १०९,९१० वर्गमील है और जनसंख्या सगमय साढ़े तीन करोड़ है । इसकी राजधानी काहिरा है ।

बहुत समय तक मानव सभ्यता का यह प्राचीन स्वप्न टर्की के घाटोमन साम्राज्य का अङ्ग रहा । १९वीं शताब्दी के आरम्भ में मिस्र के तुर्की पाला मौहम्मद अली ने शरीफ की उपाधि लेकर स्वतन्त्र मिस्र की स्थापना की यद्यपि उस समय भी तुर्की का प्रभाव उस पर कायम रहा । प्रथम महायुद्ध के दौरान टर्की द्वारा अरबी से मिस्र जाने पर ब्रिटेन ने मिस्र को टर्की के नियन्त्रण से पूर्णतः मुक्त कर अपने संरक्षण में ले लिया । २० फरवरी १९२२ को ब्रिटेन ने अपना संरक्षण समाप्त कर के मिस्र को सर्वोच्च प्रभुता सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य माना परन्तु साथ ही यह निर्णय भी हुआ कि अब तक दोनों में मिस्र विषयों पर कोई अन्य समझौता नहीं हो जाता तब तक इन पर ब्रिटिश

सरकार का पूरा अधिकार माना जायगा—(i) मिस्र में ब्रिटिश साम्राज्य के मार्गों की सुरक्षा (ii) प्रत्यक्ष या परोक्ष विदेशी धातुमण्डलों और हस्तक्षेप से मिस्र की रक्षा एवं (iii) मिस्र और सूडान में विदेशी हितों तथा व्यवसायिकों का संरक्षण। परन्तु मिस्रवासी इससे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने विदेशी प्रभाव से पूर्ण मुक्ति का घोषणात्मक स्वर दिया। अगस्त १९३६ में दोनों पक्षों में यह समझौता हुआ कि युद्धकाल में वे परस्पर सहायता देंगे मिस्र युद्ध के समय ब्रिटेन को सब सुविधायें प्रदान करेगा परन्तु शांति-काल में ब्रिटेन के दस हजार सैनिकों और चार सौ बामकों से अधिक सेना स्वेज नहर के उत्तरी सिरे पर नहीं रहेगी।

द्वितीय महायुद्ध में यद्यपि मिस्र ने बुरी राहों के बिरुद्ध युद्ध की बापबा नहीं की किन्तु ब्रिटेन और अन्य मित्र राष्ट्रों ने इस देश का सैनिक छावनीयों की भांति प्रयोग किया। बाद में १९४५ में समस्त राष्ट्र संघ के निर्माण के लिए होने वाले सानफ्रान्सिस्को सम्मेलन में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की दृष्टि से मिस्र ने जर्मनी और जापान के बिरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

एश्वी मिस्त्री सघर्ष राजतन्त्र का अन्त व सैनिक शासन की स्थापना और स्वेज का राष्ट्रीयकरण

महायुद्ध समाप्त होने के बाद से ही मिस्र और ब्रिटेन के सम्बन्ध बिगड़ते चले गये। मिस्र ने यह भाग की कि उसकी भूमि में सम्पूर्ण ब्रिटिश सेनाएँ हटा ली जायें। मिस्त्री राष्ट्रीय घोषणात्मक नेना चाहते थे कि १९६६ की संधि रह कर भी स्वेज नहर के क्षेत्र से ब्रिटिश सेनाएँ हटा जायें और स्वेज का राष्ट्रीयकरण हो। सूडान भी शान्ति क्षेत्रों के मध्य सघर्ष का एक प्रधान कारण बना। उस समय तक सूडान पर ब्रिटिश नियन्त्रण का जबकि मिस्र उस पर अपना प्रभुता स्थापित करना चाहता था। धीरे-धीरे शान्ति क्षेत्रों के संबंध कटुतर होते गये। ब्रिटेन अब बेहम स्वयं-क्षेत्र से ही संतुष्ट न था बल्कि मिस्र को स्थायी तौर पर अपनी एक सैनिक छावनी के रूप में रचना चाहता था ताकि वह मध्यपूर्व के देशों में अपने हितों की रक्षा कर सके। इसी धोरण एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों में घातम-चेतना की प्रवृत्ति सहर फैल चुकी थी और मिस्र की अनन्तता अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिये कटिबद्ध थी।

दोनों पक्षों के मध्य जो समझौता-वार्ता चली उसके फलस्वरूप १९४६ में मिस्री प्रधानमंत्री सिदकी ने ब्रिटिश विदेश मंत्री बेबिन से माप एक समझौता करके यह तय किया कि ब्रिटिश सेना काहिरा और सिवन्पुरिया से ३१ मार्च १९४७ तक तथा जेर भाग में अक्टूबर १९४६ तक हटा जायेगा। परन्तु यह समझौता अत्यन्त ही गंभीर नहीं था। जगत्सर्वत्र ५ जनवरी १९४७ को मिस्र में संघर्ष राष्ट्र संघ के माध्यम माग मागना पत्र का दिया। मिस्र द्वारा मुग़्धा परिवर्तन से यह निरासन की गई कि मिस्र

परीक्षण की स्थिति एक स्थायी सत्य बन चुकी है। इसका एक साक्ष्य कारण यह है कि साइप्रस की समस्त ९ लाख जन-संख्या में यूनानी इसाएलों की संख्या ८० प्रतिशत के समय है। यूनानी साइप्रस वासियों की प्रगती सेना है और उन्हें अपनी मुख्य भूमि यूनान से लगातार मदद मिल रही है। लगभग २० हजार यूनानी सैनिक भी साइप्रस में मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में वे किसी भी समय तुर्क साइप्रस वासियों के इलाक़ पर अधिकार कर सकते हैं। इन्हें तुर्क साइप्रस वासियों को भी टर्की सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त है। १९६४ में टर्की ने स्पष्ट कर दिया था कि यदि तुर्क साइप्रस वासियों को कुछसेने या उन्हें साइप्रस से बाहर देने की कोशिश की गई तो स्थिति का सामना करने के लिये टर्की साइप्रस में अपनी वायु सेना का प्रयोग करेगा और आवश्यकता पड़ने पर यूनान से भी दो-दो हाथ करने में कतरायेगा नहीं। यह कोई बमकी न थी। उस समय टर्की ने बमबारी की थी और इस बार भी नवम्बर-दिसम्बर १९६७ में कई बार उसके एफ १०४ बैट विमानों में साइप्रस पर उड़ानें भरी हैं। ऐसी बग़ा में तुर्क सिप्रसी स्वानीय संघर्षों में मरे ही यूनानी सिप्रसियों के हाथों मार सा जायें लेकिन किसी बड़ी सड़ाई के लिये वे किसी भी स्थिति में लड़ को असमर्थ नहीं समझते हैं। यही कारण है कि दोनों बलों में बराबर तनातनी घनी रहती है और अब-तब हाथापाई भी हो जाती है। यह सत्य है कि सिप्रस में यूनानी सिप्रसियों की शक्ति तुर्क सिप्रसियों से कहीं अधिक है, लेकिन तुर्की सरकार द्वारा कार्यवाही की जान की आशंका से यूनानी सिप्रसी नेताओं ने १९६४ के बाद भी तुर्क सिप्रसियों के इलाकों पर बड़ा हमला करने की बुर्रत नहीं की। हालांकि सिप्रस में समुक्त राष्ट्र के ४०० सैनिक मौजूद हैं लेकिन यूनानी सिप्रसी सेनाओं यदि तुर्क सिप्रसी इलाकों पर कोई बड़ा आक्रमण कर तो वे सैनिक संघर्ष रोकने के लिये ना काफी होंगे और तुर्की से भी सहायता पाने में कुछ विमर्श लभेगा फिर भी विज्ञान बयों में किसी भी यूनानी सरकार ने सिप्रस में बड़ी सड़ाई फैलाने का कठोर मोल नहीं लिया। यूनानी सरकारें सिप्रस की समस्या का सैनिक समाधान करने से क्यों कतराती रही हैं? शायद इसका सब से प्रमुख कारण बही है कि सिप्रस में यूनानी सेनाओं के प्रधान सेनापति जनरल प्रिवास की यह नीति रही है कि यदि तुर्क सिप्रसियों के विरुद्ध तरह-तरह की माफ़ाबन्धियाँ की जाती रही तो एक न एक दिन वे अपनी पराजय स्वीकार कर लेंगे। इसी उद्देश्य से तुर्क सिप्रसियों के साथ बाये दिन सेइजानिया की जाती हैं। हाम के हिसक बने भी इसी नीति का परिणाम है।

टर्की

[Turkey]

टर्की मध्य पूर्व का होते हुए भी अनेक दृष्टियों से इस क्षेत्र के देशों में निम्न है और यूरोपियन सम्बन्धता की समानता रखता है। यूरोप से भगा होने के कारण टर्की एक लम्बे समय तक यूराल के महान् राज्यों में से एक गिना जाता रहा था। मात्र भी टर्की यूरोप के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सदस्य रूप से संबंधित है। इसलिये टर्की को अन्तः यूरोपियन और अन्तः पूर्विय राज्य (Partly European & Partly Middle Eastern)

कहना अनुचित न होया। सामाजिक और राजनीतिक एकता तथा नैतिक शक्ति की दृष्टि से टर्की आज भी मध्य पूर्व की महानतम शक्ति में से एक है।

एक राष्ट्रीय राज्य के रूप में टर्की का इतिहास प्रथम महायुद्ध से प्रारम्भ होता है। मध्यपूर्व में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ सब प्रथम टर्की में ही हुआ, प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर टर्की एक दुर्बल और पतनोन्मुख देश था। प्रथम महायुद्ध में समस्त केन्द्रीय यूरोपीय देशों में टर्की की पराजय सर्वाधिक रूप से हुई थी और उसकी राजधानी तक पर मित्र राष्ट्रीय सेनाओं का कब्जा हो गया था। युद्ध में इस पूर्ण पराजय ने टर्की को सेव्य की अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने को विवश कर दिया। यह संधि १० अगस्त १९२० का की गई जिसके अनुसार टर्की ने अथवा अपनी संपूर्ण अर-तुर्की जनसंख्या की प्रमुखता समर्पित की और मित्र सुदान साइप्रस मुरस्क्या ट्यूनेसिया अरब फिनिस्तीन मैसोपोटामिया और सीरिया आदि पर अपने सब अधिकारों का परित्याग किया। इस संधि के फलस्वरूप उसे अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों से हाथ धोना पड़ा। टर्की द्वारा प्राप्त पहिले वाले अरब राज्य ब्रिटेन और फ्रांस के संरक्षण में रख दिये गये। टर्की ने आर्मीनिया (Armenia) को स्वतंत्रता राज्य स्वाकार किया और कुरविस्तान को भी स्वतंत्रता देने का वाचन दिया। इस संधि में टर्की के विनाश साम्राज्य में केवल अनातोलिसिया का पहाड़ी भाग और कन्स्तुतुमिया (Constantinople) के आसपास का कुछ प्रदेश ही रह गया।

इस संधि का सम्पूर्ण टर्की में उग्र विरोध हुआ और टर्की के तत्कालीन सुल्तान के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षर कर दिये जाने पर भी इसकी सम्पूर्ण और क्रियात्मक नहीं हुई। मुस्तफा कमान पाशा के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों ने सुल्तान को उखाड़ फेंका। २६ अक्टूबर १९२३ को टर्की एक गणतन्त्र राज्य घोषित किया गया जिसका प्रथम राष्ट्रपति कमानपाशा बना। उसने सेव्य की संधि टूट्टरा ही और बाध्य हो कर पश्चिमी राष्ट्रों व रूस आदि को सोसाने की संधि १९२३ में सम्पन्न करनी पड़ी जो से १ की माबना की प्रतीक थी। इस संधि के बाद टर्की के जीवन में आत्मसम्मान और स्वाधीन एक नये युग का समारम्भ हुआ।

टर्की ने पश्चिमी शक्तियों की सफलतापूर्वक अन्वेषणा प्रदर्शय कर ही लेकिन पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का स्वागत करने में कोई हिचक प्रदर्शय न की। कमान पाशा के योग्य निर्देशन में टर्की ने अपना धार्मिकी कारण किया और वह शीघ्र ही एक प्रगतिशील राष्ट्र बन गया। द्वितीय महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों और पुरी राष्ट्रों-दानों वसों की ओर से टर्की पर युद्ध न शान्ति होने के लिए दबाव डाला गया परन्तु टर्की किसी न किसी प्रकार अपनी तटस्थता को युद्ध की अन्तिम अवस्था तक सुरक्षित रख पाया। सन् १९४३ के प्रारम्भ में अख्यन और वासिगटन में घोषणा की कि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए आयोजित किये जाने वाले सान् अमिसकी सम्मेलन में कबल से ही राष्ट्र आमंत्रित होये जिन्होंने एक मार्ग से पहिले-२ पुरी राष्ट्रों

के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया है। घत विफल होकर १८ फरवरी, १९४३ को टर्की ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद टर्की

घनी युद्ध समाप्त ही हुआ था कि सोवियत संघ ने टर्की के प्रति सन्तुष्टापूर्वक दृष्टि अपना ली। रूस ने १९२१ में हुई 'कसी-टर्की मैत्री संधि' को सन् १९४३ में खत्म होने वाली थी निम्ना की। साथ ही उसने टर्की के धरावात (Araden) तथा कार्स (Kars) क्षेत्रों पर भी दावा किया। टर्की रूस के साथ अपने सम्बन्धों पर पुनर्निर्धार के लिये तत्पर था लेकिन वह अपनी प्रमुखता प्रकट करके सन्धि से सम्बन्धित कसी कार्स के समझ मठमस्तक होने के लिये तैयार नहीं था। अतः उसने सभी जमी बाधों को प्रस्वीकार कर दिया।

सोवियत संघ के सन्तुष्टापूर्वक रविये का परिणाम यह हुआ कि टर्की पश्चिमी राष्ट्रों की शरण में जाने के लिये विवश हो गया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने १९७७ में टर्की को प्राथिक और सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। अमेरिका ने मार्शल योजना निर्धारित की जिसका उद्देश्य यूरोप के प्राथिक पुनर्निर्माण की गति को बल प्रदान करना था। इस योजना में टर्की को भी सम्मिलित किया गया। इसके बाद टर्की निरन्तर पश्चिमी राष्ट्रों के निकट घाता बना गया। मार्च १९४८ में यह 'यूरोपीय पुनर्निर्माण कार्यक्रम' में सम्मिलित हुआ और अमेरिका ने उसे अपने विकास हितों के लिये प्राथिक और प्राथिक सहायता प्रदान की। सन् १९४९ में उसे 'यूरोपीय परिषद' का एक संस्थापक सदस्य बनाया गया। यह 'यूरोपीय युगलान संघ' का भी सदस्य बना। अगस्त १९३० में टर्की ने नाटो की सदस्यता के लिये प्रार्थना की जो प्रारम्भ में कुछ सामरिक कारणों से प्रस्वीकृत कर दी गई किन्तु फरवरी १९३२ में स्वीकार कर ली गई। टर्की को नाटो की सदस्यता प्रदान करके पश्चिमी राष्ट्रों ने यह दावास्तन किया कि आक्रमण की स्थिति में उसे उनकी प्रत्येक सम्भव सहायता मिलेगी। टर्की ने कोरिया में जवाइ के समय संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं में अपनी ओर से ४३०० सैनिक भेजे। १९५१ में उसने 'मध्य पूर्वी प्रतिरक्षा संगठन' की स्थापना के प्रस्ताव का स्वागत किया। फरवरी १९३४ में टर्की और पाकिस्तान ने शांति और सुरक्षा तथा अन्य विषयों पर परस्पर निकटतर सहयोग करने की घोषणा की। फरवरी १९३३ में टर्की और ईराक के मध्य एक प्रतिरक्षा समझौता हुआ और इसी वर्ष नवम्बर में टर्की द्वारा "बगदाद वीरट" पर भी हस्ताक्षर कर दिये गये। १९३३ में ही इटली और टर्की के मध्य मैत्री के निकट सम्बन्धों की स्थापना हुई। टर्की ने नाटो के प्रति अपनी दृढ़ निष्ठा व्यक्त की। मार्च १९३६ में टर्की के प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान की यात्रा की और दोनों ही देशों ने बगदाद वीरट में पूरा विश्वास व्यक्त किया। फरवरी १९३७ में इंग्लैंड के प्रति अपने ऋण के युगलान के लिये टर्की ने उसके साथ एक नया समझौता किया।

यू कि टर्की अपने आर्थिक विकास के लिये विशेष चिंतित था और पश्चिमी जर्मनी समुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा ने उसे आर्थिक सहायता देने में विशेष अभिरूचि प्रकट की। इसके प्रतिरुद्ध उसे अन्तर्राष्ट्रीय वित्त कोष से भी पर्याप्त आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। मई १९५७ में जर्मनी के 'ग्रुप औद्योगिक संगठन' ने टर्की को औद्योगिक विकास में सहायता देने के लिये उसके साथ दो समझौते किये। मार्च १९५७ में बोयणा की गई कि वासिंगटन और अकारा (अमेरिका व टर्की) अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के पारस्परिक सहयोग को जारी रखने पर एक मठ है तथा अमेरिका टर्की को विस्तीर्ण सहायता देना। कनाडा ने 'नाटो-पारस्परिक सहायता समझौते' के अन्तर्गत टर्की को कुछ युद्धपोत देने का निश्चय किया। जनवरी १९५८ में अमेरिका ने टर्की को ही जा रही प्राविधिक आर्थिक व वैज्ञानिक सहायता में वृद्धि कर दी। मार्च १९५९ में एक घोर अमेरिका तथा दूसरी घोर टर्की ईरान और पाकिस्तान में द्वि-पक्षीय प्रतिरक्षा समझौते सम्पन्न हुए। अगस्त १९५९ में टर्की और स्पेन के मध्य 'नाटो तथा स्वामी मैत्री' की संधि हुई। जून में टर्की ने इटली के साथ आर्थिक व प्राविधिक सहयोग विषयक समझौता किया। अक्टूबर १९५९ में टर्की के प्रधानमंत्री म मैटो (बगदाद पैक्ट का नया नाम) की मंत्री परिषद की बैठक में भाग लिया। इस तरह टर्की अन्तिम आर्थिक पारस्परिक देशों के प्रभाव में आता गया।

२७ मई १९६० को टर्की के सेनापति गुरसेम न राष्ट्रपति बेयर तथा प्रधानमंत्री मेम्बेरस को कब्जा करके सैनिक शासन की स्थापना कर ली। इस क्रान्ति से टर्की में लोकतंत्र को मारी गइल। पड़ोसी तथापि नई सरकार ने पुरानी सरकार की अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों को बालू रखने की घोषणा की। सितम्बर १९६१ में सीरिया ने समुक्त अरब गणराज्य से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिये परन्तु अगस्त १९६३ में ये सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गये। संटो का सदस्य होने के नाते और पाकिस्तान से अनिष्ट सम्पर्क रखने के कारण भारत के प्रति टर्की का रवैया आपत्तिजनक ही रहा है।

टर्की की वर्तमान सरकार पूर्णतः पश्चिमी गुट के साथ है। साइप्रस के विषय में उसने बहुत उग्र रुक अपना लिया है। यह चाहता है कि साइप्रस का बंटवारा कर दिया जाए तथा साइप्रस की तुर्क जनता को आरामियुय का अधिकार प्राप्त हो।

ईराक (Iraq)

ईराक के उत्तर में टर्की पश्चिम में सीरिया और जोर्डन दक्षिण में सऊदी अरब दक्षिण पूर्व में कुवैत और फारस की खाड़ी के तट का एक छोटा-सा भाग तथा पूर्व में ईरान है। बगदाद उसकी राजधानी 'स्वाम सरकार' नाम और अरबी सरकारी भाषा।

सन् १९०७ में ईराक प्रोटेक्टोरेट अथवा टर्की साम्राज्य का एक भाग बन गया था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के समय जब टर्की ने युरोपीय राष्ट्रों का साथ दिया तो ब्रिटिश सेनाओं ने ईराक पर आधिपत्य जमा लिया। महायुद्ध के बाद राष्ट्र संघ के निर्माण के अनुसार १९२० में ईराक को ब्रिटिश संरक्षण के अन्तर्गत (Under British Mandate) रखा दिया गया। ब्रिटिश संरक्षण से ईराक के लोगों को बड़ा असंतोष हुआ। ईराकी राष्ट्रवादियों ने बड़े उद्यम रूप से यह मांग की कि ईराक को तुरन्त स्वतन्त्रता प्रदान की जाए और उसे सीरिया में सम्मिलित होने दिया जाए। ईराक की विगड़ती हुई राजनीतिक स्थिति को देखकर ब्रिटिश सरकार ने शरीफ हुसैन के पुत्र फैजल को ईराक की गद्दी पर बिठाने के लिये आमन्त्रित किया जिसको कि १९२० में फासीसियों ने सीरिया से निकाल दिया था। फैजल अगस्त १९११ में विचित्र ईराक की गद्दी पर बैठा दिया गया। उसी अक्टूबर १९२२ में ब्रिटेन के साथ एक संधि की जिसके अनुसार ईराक स्थित ब्रिटिश हाई कमिश्नर साहू फैजल का सलाहकार हो गया। इस स्थिति संधि में संरक्षण की व्यवस्थायें और ईराक में ब्रिटेन के विशेष स्वार्थों की गारन्टी समाविष्ट थी। ईराकियों को इस संधि से संतोष नहीं हुआ क्योंकि वे तो ब्रिटिश युष्मानी से प्रायः कल्प में भीघ्रातिघीघ्र मुक्त होना चाहते थे। राष्ट्रियों के बढ़ते हुए आन्दोलन व फलस्वरूप १९३० में एक नई एंग्लो ईराकी संधि समाप्त हुई जिसके द्वारा ब्रिटेन ईराक में अपना संरक्षण समाप्त करने और साथ ही ईराक को राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने में पूरा समर्थन देने को सहमत हो गया। परन्तु इस संधि के द्वारा भी उसने ईराक में अपने प्रत्येक व्यापक अधिकार और हित बनाये रखे। उसे कुछ क्षेत्रों में हवाई सड़कें बनाने और ब्रिटिश सेनाओं रखने का अधिकार भी मिला। ईराकी राष्ट्रवादियों ने इस संधि का विरोध करना भी निरन्तर जारी रखा। अगस्त १९३३ में साहू फैजल के मरने पर उसका पुत्रक पुत्र गाबी गद्दी पर बैठा जिससे १९४६ में सेना न सत्ता हथिया ली। धर्मश्री के नातावरण में ब्रिटेन और ईराक के सम्बन्ध विगड़त होते गये। १९३६ में सेना द्वारा सासन अफसर के पश्चात् ईराक में शहीदाई की मागनायें उभर आईं। १९३६ में वासक फैजल द्वितीय ईराक की गद्दी पर बैठा।

सितम्बर, १९३६ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने पर १९३० की एंग्लो ईराकी संधि के अनुसार ईराक ने युरोपीय राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्ध समाप्त कर लिये जबकि आन्दोलनकारी राष्ट्रवादियों की मांग थी कि युद्ध न किया जाए और जर्मनी के साथ अपने कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना हो। अग्रे १९४१ में ईराक न पुन सैनिक अति हुई और नई सैनिक सरकार ने युद्ध प्रियता प्रकट करते हुए युरोपीय राष्ट्रों का पक्ष लिया। इस घटना से ईराक और ब्रिटेन के सम्बन्ध विशेष रूप से विगड़ गये। ईराकी सैनिक सरकार के महा रशीद अली किलानी ने १९४२ में ब्रिटिश फौजों को अपने प्रदेश से गुजरने की अनुमति नहीं दी। अपने पौष्टिक हितों को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने ईराक पर हमला कर दिया रशीद अली की सरकार को उखाड़ फेंका और साम्राज्य कैम्प को वापिस गद्दी-नशीन करके अपने अनुकूल

सरकार का निर्माण कर लिया। बामफ फ्रंस के संरक्षक शासनकर्ताओं ने ब्रिटेन के साथ समस्त विरोध समाप्त कर दिया और मित्र राष्ट्रों के युद्ध प्रयत्नों में पूरा सहयोग दिया। जनवरी १९४३ में ईराक ने घुरी राष्ट्रों के विश्व युद्ध की घोषणा कर दी और १९४५ में समुक्त राष्ट्र सभ के वापसा पत्र पर भी हस्ताक्षर किये।

द्वितीय महायुद्ध के बाद ईराक

द्वितीय महायुद्ध के अंतिम दिनों में ईराक और ब्रिटेन के सम्बन्धों में तनाव आने लग गया क्योंकि प्रथम तो १९३० की संधि द्वारा ब्रिटेन ने ईराक पर जो अनुचित प्रतिवन्ध लगा रहे थे उनसे जनता को अंततोष था और द्वितीय इराकी जनता को ब्रिटेन की पेंनेस्टाइम नीति कतई पसन्द न थी। ईराक धरत बेघों की मंत्री का प्रथम समर्थक था और धरत राष्ट्रवाद के उद्देश्य में अपना योगदान देने की नीति से बिसग होना उसे रुचिकर नहीं था। १९४५ में उसने धरत मंत्री ईभि घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे।

महायुद्ध के बाद ईराक ने ब्रिटेन से कहा कि वह अपनी फौजें इराकी भूमि से हटा ले और अन्ततः मई १९४७ तक केबस दो घड़ों को छोड़कर सारे इराक से ब्रिटिश सेनायें हटा ली गईं। ईराक ने बोडन और तुर्की के साथ अपनी मंत्री संधि स्थापित की। जनवरी १९४८ में ब्रिटेन ने साथ पुन एक संधि की गई जिसके द्वारा ब्रिटेन ने इराकी रेल्वे पर से अपने अधिकार छोड़े और वसरा के बन्दरगाह का प्रशासन एबम् हवाई अड्डे इराक को सौंप दिये। बचसे में इराक ने ब्रिटेन को बचन दिया कि वह शांति संधियां सागु होते ही उसे हवाई अड्डों का प्रयोग करने देगा और युद्ध की सम्भावना होन पर उसे सैनिक सुविधायें भी प्रदान करेगा। परन्तु इराकी जनता ने इस संधि का तीव्र विरोध किया जिसके कारण संधि रद्द कर दी गई और इराकी प्रधानमंत्री को त्याग-पत्र देना पड़ा। ईराक में भी ईरान की भांति ही तेस उद्योग का प्रश्न उठा और १९५२ में इराक को यह प्राश्वासन प्राप्त हो गया कि उसे प्रति बर्ष दो करोड़ पाँड की राशि नेल की रोमस्टी के रूप में मिलेगी। परन्तु ब्रिटिश और फ्रेंच तेस कम्पनियों के साथ हुए इस समझौते से सारे देश में विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिसका परिणाम मई १९५२ में सैनिक शासन की स्थापना हुई।

इस समय इराक स्वयं को साम्यवाधियों की ओर से मूरक्षित अनुभव नहीं करता था। मार्च १९५० में ही इराक के उत्कासीन प्रधानमंत्री ने जनता से कहा था कि इराक को मोबियन प्रभाव से सर्वाधिक अंतरा है तथा इस देश को साम्यवाद के प्रश्न के लिये एक "माबी पुन" के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इराकी मरतार का यह भी विश्वास था कि इराकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में मिस्र एक बहुत बड़ी माया का काम कर रहा है। अत अतिरिक्त स्थिति और बाह्य हिन एबम् साम्यवाद के संभावित अउरे आदि की दृष्टि से इराक ने पश्चिमी गुट की ओर झुकना ही

नामप्रद वेला । लेकिन साथ ही अरब एकाता के स्वप्न का भी उमने परित्याग नहीं किया । फरवरी १९५३ में टर्की और ईराक के मध्य पारस्परिक सहयोग की एक सन्धि ई । मिस्र और सीरिया ने इस सन्धि का कटु विरोध किया और दोनों ही देशों ने ईराक विरोधी प्रदर्शन हुए ।

ईराक ने विभिन्न पश्चिमी एशियाई देशों के विरोध की कोई परवाह न करते हुए अपने गठबन्धन का विस्तार करने की योजना बनाई ।

अप्रैल, १९५५ को ईराक ने ब्रिटेन के साथ एक मैत्री सन्धि की । धीरे-धीरे इस सन्धि में पाकिस्तान और इरान भी सम्मिलित हो गये और इसे बगदाद सन्धि के नाम से पुकारा जाने लगा । इस सन्धि को समुक्त राज्य अमेरिका का आशीर्वाद प्राप्त था और उसने ईराक को लगभग ७० लाख डॉलर सहायता के तौर पर दिये तथा सन्धि संघटन को सैनिक सहायता देने का वचन दिया । बगदाद और बार्डिंगटन में अमरीकी सैनिकों के शांतिपूर्ण उपयोग पर भी एक समझौता हुआ । ब्रिटेन के साथ ईराक की मैत्री उस समय संकट में पड़ गई जब स्वेज नहर को लेकर ब्रिटेन ने मिस्र पर सैनिक आक्रमण कर दिया । ईराक ने ब्रिटेन से सेनायें हटाने की मांग की । नवम्बर १९५६ में बेकस में होने वाले अरब राज्यों के मुन्सियाधों के सम्मेलन में ईराक के शाह फैसल ने भाग लिया और उस बक्तव्य पर हस्ताक्षर किये जिसमें आक्रमणकारियों से प्रतिबन्धन व दिना अर्त अपनी सेनायें मिस्र से हटाने की मांग की गई थी । यही नहीं ईराक ने बगदाद सन्धि संघटन में भी ब्रिटेन का बहिष्कार आरम्भ कर दिया । लेकिन आक्रमण समाप्त होने पर दोनों देशों के सम्बन्ध फिर से सुधरने शुरू हो गये । अप्रैल १९५७ में ब्रिटेन ने ईराक को कुछ सड़क कायुमान प्रदान किये । १९५७ में ईराक ने समुक्त राज्य अमेरिका की आइसन हावर योजना के अन्तर्गत सैनिक सहायता मंगा स्वीकार कर लिया । अमेरिका ने उसके निर्माण कार्यों में सहायता देने का वचन दिया और ईराक ने यह घोषणा की कि वह सोवियत साम्यवाद को अपनी ओर नहीं बढ़ने देगा ।

१४ जुलाई १९५८ को अकस्मात ही अखुन करीम कासिम के नेतृत्व में ईराकी सेना ने शक्ति कर ही और सम्राट फैसल को उनके पुत्र व प्रपानसही सहित मार डाला । शक्ति के कारणों की व्याख्या करते हुए २२ जुलाई, १९५८ को कासिम ने कहा कि "यह शक्ति ईराक की जनता को देश के प्रांशरिक मामलों में व्यापक अष्टाचार एवं अत्याचार से बचने के लिये की गई है । पुराने शासन के अन्तगत ईराक में न कोई कानून था और न ही कोई न्याय था । इस शासन के अन्तर्गत कानून प्रशासन का एक मात्र उद्देश्य शासक वर्ग के हितों की वृद्धि करना था । परन्तु अब जिन व्यक्तियों ने सत्ता धारण की है वे जनता के हितों को सर्वोच्च स्थान देंगे और स्वयं को कानून से मुक्त करने परवा न्याय को विकृत करने की कमी नोखा नहीं करेंगे ।"

कर्मि के पश्चात् देश में गणतन्त्रात्मक सरकार बनाई गई जिसका नेतृत्व कासिम ने किया। इस सरकार को मिस्र सोवियत मंच पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों युगोस्लाविया साम्यवादी चीन इ.ओनेशिया टर्की पाकिस्तान ईरान और संका के प्रतिरिक्त पश्चिमी जर्मनी यूनान बेल्जियम और जापान ने भी मान्यता प्रदान की। बीरे-बीरे ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों ने भी नई सरकार को मान्यता प्रदान कर दी। फ्रांस ने जिसमें कि १९५९ में स्वैज संकट के समय ईराक ने कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिये थे इन सम्बन्धों की पुनः स्थापना का प्रस्ताव रखा। परन्तु उसकी अस्वीरिया नीति के कारण ईराक ने ४ अगस्त १९५८ को यह सुझाव अस्वीकृत कर दिया। ईराक में सैनिक प्रशासन भी शक्तिपूर्ण न रह सका। अजरम कासिम ने अनुभव किया कि यद्यपि प्रधानमंत्री अरिफ उसे सत्ता में हटाना और ईराक को संयुक्त अरब गणराज्य (मिस्र) के साथ मिलाया चाहता है। अतः ४ नवम्बर १९५८ को अरिफ को गिरफ्तार कर लिया गया और फांसी की सजा सुना दी गई यद्यपि फांसी भी नहीं गई क्योंकि बाब में अजरम कासिम ने उसे क्षमा कर दिया।

फरवरी १९५९ में कासिम की कैबिनेट ने अरिफ का दंडित लिये आन तथा कासिम पर साम्यवाद समर्थक अफसरों के बढ़ते हुए प्रभाव के विरोध स्वरूप त्याग पत्र दे दिया। ७ फरवरी को कासिम ने नई कैबिनेट की घोषणा की लेकिन इसके तुरन्त बाद सरकार और साम्यवादियों के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रकट गम्भीर रूप से उठ खड़ा हुआ जिसमें अजरम कासिम का साम्यवाद-वशीय दृष्टिकोण और मुकाब स्पष्ट हो गया।

१ मार्च १९५९ को ईराक के लगभग डेढ़ लाख साम्यवाद समर्थक लोगों ने मासल में एक विराट प्रदर्शन का आयोजन किया। कासिम सरकार ने इस प्रदर्शन पर रोक लगाने की अपेक्षा इस उत्साहित किया। प्रदर्शन नियोजित रूप से शुरू किया गया। इसके विरोध में अगले ही दिन मोमल स्थित सेना की एक टुकड़ी ने कर्मल जावफ के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। परन्तु सरकार की धीरे से विद्रोहियों के प्रथम कार्यालय पर बम्ब बर्षा की गई और विद्रोह को कुचल दिया गया। इस प्रकार विद्रोह में साम्यवादियों की राजनीतिक स्थिति को धीरे धीरे मुड़ना पड़ा।

ईराक सरकार साम्यवाद की धीरे मुड़ती गई। मार्च १९५९ में ईराक ने अरबवादी संधि मंगठन की मददस्वता से त्यज-पत्र दकर पश्चिमी राष्ट्रों, ईरान और टर्की आदि के मतसूत्रों को बढ़ा आया। पहचाना। इसका ही नहीं ईराक की सरकार ने संयुक्त राज्य अमेरिका से सैनिक सहायता सेना भी बन्द कर दिया और जून १९५९ में यह घोषणा भी कर दी कि ईराक ने ब्रिटेन के साथ अपने आर्थिक सम्बन्धों का भी तोड़ लिया है।

ईराक की सैनिक सरकार ने सोवियत संघ के साथ उन राजनीतिक सम्बन्धों को फिर से स्थापित कर लिया जो सन् १९५९ में तोड़ लिये गये थे।

इतना ही नहीं दूसरे साम्यवादी देशों—साम्यवादी चीन पूर्वी जर्मनी यूनास्ताबिया रोमानिया पोर्लैंड और बल्कोस्लोवाकिया के साथ भी सम्बन्धों की स्थापना की गई। परन्तु राष्ट्रपति कासिम ने घोषणा की कि ईराक मरिच्य में तटस्थवादी नीति ही अपनाएगा वह संयुक्त राज्य अमेरिका या सोवियत संघ किसी के भी घुट में सम्मिलित नहीं होगा।

१९५८ की वैज्ञानिक क्रांति स्थायी सिद्ध नहीं हुई। फरवरी १९६१ में कर्नल धारिफ के नेतृत्व में कासिम * विरुद्ध विद्रोह हुए। ८ फरवरी को कासिम की हत्या कर दी गई और धारिफ ईराक के नये राष्ट्रपति बने। गई सरकार ने ईराक को सैटो संगठन के बाहर ही बनाये रखा और ईराक की तटस्थता की नीति की रखा की। धारिफ ने सवार के सभी देशों के साथ मत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना के प्रयास किये। मार्च १९६४ में उन्होंने पाकिस्तान और भारत की यात्रा की और भारत को एक असांभवामिक देश बताते हुए उसकी बृह और विरोध नीतियों की प्रशंसा की।

ईराक और भारत एकता
पश्चिमी और साम्यवादी शक्तियों के साथ ईराक के महत्वपूर्ण सम्बन्धों को बढाने के बाद अब "ईराक और भारत एकता" को भी सचेत में देख लेना चाहिये।

ईराक और सीरिया के मध्य १९४९ से ही तनावपूर्ण सम्बन्ध बने पाये थे। १९५० में ईराक ने धरत एकता की बिला में चेष्टा शुरू की लेकिन सन् १९५५ में उसके बयबाब सखि संघटन में शामिल हो जाने से धरत एकता को गहरा घावात पहुँचा। उसने धरत देशों की सहानुभूति मी का दी। लेकिन स्वेज पर ब्रिटिश आक्रमण के समय ईराक ने पश्चिमी राष्ट्रों का तीव्र विरोध करके धरत देशों की सहानुभूति फिर से प्राप्त कर ली। उस समय उसने पूर्ण रूप से मिस्र का साथ दिया। १९५८ के धारम्म में ईराक क तत्कालीन सम्राट् फौजद और उनके जेनेरल मार्ल बोर्डन के बाह्र हुर्रम ने एक सखि द्वारा "अरब संघ के नाम से एक संघात्मक राज्य की स्थापना की। लेकिन धरत के धारम्म में ही बोर्डन के बाह्र ने संघ को मंग करने की घोषणा कर दी क्योंकि युसाई, १९५८ में ईराक के सम्राट् फौजद के हत्या करके कासिम न ईराक का पणतग्न घोषित कर दिना बा। क्रांति के बाद ही युसाई, १९५८ में ईराक और संयुक्त धरत गणराज्य (मिस्र) के मध्य एक सुरक्षा संधि हो गई और दोनों देशों में धरत सीम के सिद्धांतो पूर्ण स्वीकृति की घोषणा की गई। तत्पश्चात् दोनों देशों में धरत भी घने व्यापारिक एवम् प्राविधिक सहामता-सम्बन्धी समझौते हुए। पर तु फिर ५ उनके मध्य अनुरता का बाठावरण प्रथि समय तक नहीं बना रह सका जब ईराक को यह विश्वास हो गया कि संयुक्त धरत गणराज्य कासिम सरकार के विरुद्ध विद्रोह को प्रोत्साहन दे रही है तो दोनों देशों के बीच तनाव बढने लगे। कासिम सरकार ने संयुक्त धरत गणराज्य पर मोक्षम तनाव बढने लगे। कासिम सरकार ने संयुक्त धरत गणराज्य पर मोक्षम विद्रोह का समर्थन करने का धारोप समया और संयुक्त धरत गणराज्य के

१ अधिकारियों को ईराक छोड़कर बसे जाने का आदेश दे दिया । दोनों देशों में कटुता बढ़ती गई और उनके मध्य सम्बन्ध टूट गये ।

फरवरी १९९१ में कासिम सरकार का उस्ता एक नई सैनिक अति द्वारा पदत लिया गया और आरिफ नई सरकार के राष्ट्रपति बने । इस नई सरकार ने अरब राष्ट्रों के साथ पुन अन्धे सम्बन्धों की स्थापना की । हास ही में जून १९९७ के अरब-इरान संघर्ष में भी ईराक की पूर्ण और सक्रिय सहानुभूति अरब राष्ट्रों के साथ रही और उसने इजराइल के विरुद्ध संघर्ष में महत्वपूर्ण योग दिया ।

ईराक और कुव समस्या

यहां ईराक और कुर्द समस्या पर भी कुछ विचार आवश्यक है । उत्तरी ईराक में समय बस नाक कुर्द आति के भोग निवास करते हैं । १९९ में लोसाने की सन्धि ने कुर्विस्तान को टर्की ईराक और ईरान के मध्य बांट दिया था । तब से ही यह लोग निरन्तर विद्रोह करते रहे हैं और कुर्विस्तान के नाम से एक अलग राज्य की स्थापना करना चाहते हैं । इसकी माया और साहित्य भी अरब भाषा व साहित्य से भिन्न है । १९३१ में इनके नेता मुस्ता मुस्तफा ने विद्रोह किया जिसके कारण उसे देश निकासे का बन्ध मोगना पड़ा । बापिस सौटने पर उसने ईराकी सेनाओं पर हमला किया लेकिन पराजित होकर उधै सोवियत संघ भाग जाना पड़ा । १० वर्ष रहने के बाद वह बापिस स्वदेश सौटा और कुर्विस्तान राज्य की स्थापना क प्रयास करता रहा । तब १९५८ में ईराक में सैनिक अति हुई तो वह भागान्वित हुआ कि कुर्द लोगों की मार्गों पर अधिक सहानुभूति के साथ विचार किया जाएगा । लेकिन जुलाई, १९९१ में कासिम ने कुर्द लोगों की सभी आकांक्षाओं को ठुकरा दिया । इस पर मुस्तफा बगदाद छोड़कर कबायसी क्षेत्र में बना गया जहां उसने समयसम साथ हजार छापामार सैनिकों को प्रशिक्षित किया और कासिम सरकार के विरुद्ध कुर्विस्तान युद्ध छेड़ दिया । अग्रेस १९९२ में उत्तरी पहाड़ियों में इन विद्रोहियों ने एक पूरे सैनिक बस्ते का सफाया कर दिया ।

फरवरी १९९१ में होने वाली दूसरी सैनिक अति के फलस्वरूप कर्नेस आरिफ राष्ट्रपति बने । इस अवसर पर मुस्ता मुस्तफा ने मुदबन्दी की घोषणा करके अपने दो प्रतिनिधियों को बगदाद भेजा जिन्हें यह काय सौपा गया कि वे ईराक की नई सरकार का प्रतिनन्दन करत हुए उसक साथ सम्झौता बाठा करें । कुर्द लोग ईराक में स्वशासन चाहते थे और साथ ही उनकी यह मांग भी थी कि सभी कुर्द-बन्दी रिहा किये जाए कुर्विस्तान की आर्थिक नाकेबन्दी समाप्त कर दी जाए समस्त विद्रोहियों को धाम माफ़ी दी जाए तथा उनकी अन्त सम्पत्ति लौटाई जाए, उत्तरी ईराक में काम कर रहे मोक-सेबकों में से अर्धसैनिकी व्यक्तियों को हटाया जाए और कुर्विस्तान पर स जागन की शैर्जे हटा ली जाए । मार्च १९९३ में ईराक की राष्ट्रीय परिषद ने इस सिद्धान्त का स्वीकार कर लिया कि बिनेन्दीकरण के आधार पर कुव

लोगों को राष्ट्रीय सरकार प्रदान की जाए। कुर्द नेताओं ने भी यह मान लिया कि सरकार की बिकेन्द्रीकरण को यह योजना एक प्रकार से उनकी मांग की स्वीकृति ही है। मारिफ सरकार ने कुर्दों की नई मांगें मान्य

परन्तु कुर्द प्रतिनिधि तमबानी ने यह इच्छा प्रकट की कि कुर्दों की अपनी पुनित्व ही उनके क्षेत्र में कुर्विश भाषा ही राज्य भाषा के तौर पर प्रमुख हो और सुरक्षा स्वास्थ्य वातावरण तथा स्थानीय शासन सम्बन्धी मामलों में पूरी तरह कुर्दों को छोड़ें जाए। इस हठ के अन्तस्वरूप अगस्त वर्षों में हो गई और जून १९६१ में ईराकी सेनाओं ने कुर्द छापामार क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। कुर्विश नेता तमबानी मामलत बियना बनाना गया और उधने संयुक्त राष्ट्र संघीय महासचिव ऊ पांट ने इलाहाबाद की प्रार्थना की। ईराकी सेनाओं कुर्दों विद्रोहियों को कुचमनी कुर्दों पाले लड़नी नहीं मछपि सोवियत सरकार ने उनका पक्ष लिया और ईराक सरकार पर यह आरोप भी लगाया कि वह हिटलरी नीति पर चलकर अरबराज्यों को नष्ट करने का प्रयास कर रही है। दूसरी ओर ईराक सरकार के कुर्द मंत्रियों ने भी सरकार की दमन नीति के विरोध में अपने त्याग पत्र दिये। अन्ततः इन धारणिक और बाह्य दबाव के कारण मारिफ सरकार इन बात के लिये सहमत हो गई कि कुर्दों को प्राथमिक स्वाशासन का अधिकार दे दिया जाए और उनको एक परिपक्व निर्माण हो जिसका निर्वाचन प्रत्यक्ष मतदान द्वारा किया जाए। परन्तु कुर्द नेताओं ने इन प्रस्तावों को अस्वीकार करते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ से अपील की कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करे। कुर्दों का पामार सैनिक ईराकी सेना का बटकर मुकाबला करते रहे। संयुक्त राष्ट्र संघ की धार्मिक और सामाजिक परिपक्व ने जुलाई १९६१ में इस सोवियत प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि ईराक की सरकार सम्पूर्ण कुर्दों भाषि को समाप्त करना चाहती है। जपर कुर्द नेता मुहम्मद मुस्तफा ने सितम्बर १९६१ में तमबानी कुर्द सरकार और कुर्द राज्य बनाने की घोषणा कर दी।

कुर्द विद्रोहियों व ईराकी फौजों ने सर्वप्रथम बनता रहा जिसमें मीरिया फौजों ने ईराक को मरह की।

फरवरी १९६४ में ईराकी राष्ट्रपति धारिफ ने दूसरी बार कुर्दों नेता तमबानी के साथ बुडबन्धी समझौता कर लिया और कुर्दों नेताओं की इस मांग को समयमय स्वीकार कर लिया कि कुर्दों को स्वायत्त शासन के अधिकार प्रदान कर दिये जाएँ।

ईराक (Iraq)

पहले फारस के नाम से पुकारा जाने वाला ईराक भौगोलिक दृष्टि से उत्तर में कैस्पियन सागर व कम दक्षिण में फारस की व ऊनाम की खाड़ी

पूर्व में रूस अफगानिस्तान तथा बलुचिस्तान और पश्चिम में ईराक व टर्की से घिरा हुआ है। इस प्रदेश की राजधानी तेहरान और यहाँ का प्रमुख धर्म इस्लाम है। १६०६ तक ईरान में निरंकुश राजतन्त्र था जिसमें शाह वंश का शासन था। जनता राजतन्त्र शासन से सुखी न थी, अतः आन्तरिक कसह के कारण १६०६ में यहाँ क्रांति हो गई और मुस्तान मुजफ्फर शाह एक नवीन बिधान बनाने को विवक्त हुआ।

ईरान में एक तरफ तो आन्तरिक अशांति का बोमबामा था और दूसरी तरफ विदेशी पड़यत्न का कुचक्र घपना शासक फसाये हुए था। रूस और ब्रिटेन इस पर अपनी धाँसे गढ़ाये हुए थे। अगस्त १६०७ में एक एम्सो स्वी संधि हुई जिसके द्वारा रूस और ब्रिटेन ने ईरान को अपने प्रभाव क्षेत्र में विभाजित कर लिया। प्रथम महायुद्ध में यद्यपि ईरान तटस्थ रहा किन्तु उसके विभिन्न प्रदेशों पर ब्रिटेन रूस टर्की और जर्मन सेनाओं ने कब्जा कर लिया और ईरान इन सेनाओं के लिए एक युद्ध क्षेत्र बन गया। १६१७ में रूस में साम्यवादी क्रांति हुई और रूसी फौजें उत्तरी ईरान से हटा ली गई। फरसवरूप ब्रिटेन ने भी १६१८ में यहाँ से अपनी फौजें हटा ली। प्रथम महायुद्ध के बाद १६१६ में ब्रिटेन ने ईरान के साथ एक संधि की जिसके फरसवरूप ब्रिटेन का ईरान पर एक प्रकार से मैनिक प्रभुत्व स्थापित हो गया और व्यवहारतः ईरान की स्थिति एक ब्रिटिश उपनिवेश जैसी हो गई। परन्तु ईरान की संसद ने इस संधि की पुष्टि नहीं की।

ईरान के अस्थिर राजनीतिक वातावरण से ऊठ कर ईरानी सभा के एक सफसर रिजाखा पहलवी ने देश में एक सैनिक क्रांति कर दी। १६२१ में सत्ता ग्रहण करत ही उसने ब्रिटिश संधि का टूकरा दिया और रूस से एक सन्धि की जिसके अन्तगत रूस द्वारा ईरान की पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया। इस संधि को ईरान की राष्ट्रीय सभा ने भी पुष्टि कर ली। १६२५ में रिजाखा को ईरान की नवमंडित संविधान सभा ने सम्राट घोषित कर दिया।

नये सम्राट रिजाखा ने अपने देश में कानून और व्यवस्था की स्थापना करने पर पूरा ध्यान दिया और शासन पर इतना प्रभाव जमा लिया कि संसद १६४२ में उसके पुत्र के गद्दी पर बैठने के समय तक बिल्कुल निष्क्रिय बनी रही। रिजाखा ने मुस्तफा कमास पाशा की तरह ही ईरान में सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उसके शासन काल में ही १६३५ में वैधानिक रूप से फारस का नाम ईरान पड़ा।

द्वितीय महायुद्ध विद्रोहों पर यद्यपि ईरान ने तटस्थ रहने की घोषणा कर ली परन्तु जर्मनी के प्रति उसकी सहानुभूति बनी रही। रूस और ब्रिटेन ने मांग की कि ईरान से नाजी समर्थकों को निकाल दिया जाए। ईरान के शाह ने कहा कि हमके देश में नाजी समर्थक लोग नहीं हैं। परन्तु फ्रांसिस्टों के प्रति हमदर्दी की धाराका से ब्रिटेन और रूस ने संयुक्त रूप से

अगस्त १९४१ में ईरान पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। सितम्बर १९४१ में उन्होंने तम्राट रिजाशा को हटा कर उसके पुत्र मुहम्मद रिजाशा काह पइसवी को गद्दी पर बिठाया। नये काह न मिन राष्ट्रा से बाधा धारम्भ की जिसके फलस्वरूप १९४२ में एक द्विपक्षीय सहायता संधि सम्पन्न हुई। संधि के अन्तर्गत ईरान ने मित्र राष्ट्रों से प्रतिज्ञा की कि वह उनसे सेनाओं को ईरान में होकर जाने की अनुमति देगा उन्हें काह सामवी व अथ सहायता देगा और मिन राष्ट्रीय सेनाओं पुनः काल में ईरान में रह सकेंगे। हालांकि युद्ध समाप्ति के छ महीने बाद उन्हें वापिस हटा लिया जाया। ब्रिटेन और रूस ने ईरान को बचन दिया कि वे उसकी प्रादेशिक अखण्डता प्रभुसत्ता और राजनीतिक स्वाधीनता का सम्मान करेंगे। इस संधि के बाद ईरान ने सितम्बर १९४१ में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ईरान द्वारा मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में सम्मिलित हो जाने पर एक सितम्बर १९४१ को कन्वेंट, बर्लिन और स्टामिन ने सुप्रसिद्ध तेहरान घोषणा (Teheran Declaration) प्रसारित की जिसमें 'उन्होंने प्रत्येक सम्बन्ध वास्तविक सहायता ईरान को प्रदान करते रहने का उत्तरदायित्व लिया और ईरान की स्वाधीनता प्रभुसत्ता तथा प्रादेशिक अखण्डता कायम रखने की इच्छा व्यक्त की। बोझ ही दिनों में ईरान ब्रिटेनी ऐन ऑफ़ द फ्रेंड्स ऑफ़ द फ्री वर्ल्ड की शीर्षकों में ईरान को प्रभुसत्ता के माध्यम से कड़ी धोरणों तथा ईरान के दक्षिणी भागों में ब्रिटेन और अमेरिका की धोरणों का गई।

द्वितीय महायुद्ध के बाद ईरान

ईरान इस स्थिति को बहुत समय तक सहन नहीं कर सकता था। उसने सबसे पहिले सोवियत संघ के विरुद्ध संघर्ष किया। सोवियत संघ ने १९४४ में उत्तरी ईरान में तैज सम्बन्धी कुछ सुविधाओं की मांग की और ईरान की सरकार पर यह दबाव डाला कि उनकी मांगों को तुरन्त स्वीकार कर लिया जाए। ईरान के उत्तरी तैज अखरबेजान में पूर्वेह राजनीतिक दम ने सोवियत संघ के प्रभाव में घाकर १९४३ के अन्त में एक स्वतन्त्र सरकार की स्थापना कर ली। ईरान ने इस पर अपना प्रतिरोध प्रकट किया किन्तु सोवियत संघ पर उसका कोई प्रभाव न पडा। तब ईरान द्वारा मामला सुरक्षा परिषद के समक्ष ले जाया गया किन्तु अन्तत यह विवाद दोनों देशों के मध्य द्वारद्वारिक बाधा से हल हो गया और १ मई १९४६ को सोवियत धोरणों ईरानी धूमि से हट गई। अक्टूबर, १९४७ में ईरानी संसद ने ब्रिटेनियों को दा जाने वाली तैज सम्बन्धी मारी रियायतें समाप्त कर दी। इससे सोवियत संघ बहुत आग्राह हो गया और उसने ईरान के साथ अपना राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। सोवियत रूस ने ईरानी सरकार पर दोनों देशों के सामान्य सम्बन्धों के बिच्छेद अपनी प्रतिक्रियाओं और बचनों की अर्थनायक प्रवहेनता करने का धारोप सयाया।

रूस के व्यवहार से ईरान को आशंका हो गई, अतः उसने अमेरिका से

सैन्यी का प्रस्ताव किया और उससे सहायता व संरक्षण की मांग की। मार्च १९४७ में अमेरिका ने साम्यवाद के विस्तार को प्रवृत्त करने के लिये तथाकथित "ट्रूमैन सिद्धान्त" की घोषणा की। ईरान पर राजनीतिक दबाव डाला गया जिसके फलस्वरूप अक्टूबर १९४७ में एक अमेरिकन ईरानी सैनिक संधि सम्पन्न हुई। इस संधि के अन्तर्गत यह निश्चित हुआ कि संयुक्त राज्य अमेरिका ईरान में एक सैनिक मिशन भेजेगा जो ईरानी सैन्य को प्रशिक्षित करेगा। इसके शीघ्र बाद ही संयुक्त राज्य अमेरिका ने ईरान का तीन करोड़ डॉलर की सैनिक सामग्री प्रदान की और ड्राई करोड़ डॉलर का ऋण भी दिया।

इस समय ईरान में राष्ट्रीयता की प्रवृत्त तहरे हिमोरे से रही थीं और ईरान राष्ट्रीयता की एक ऐसी रंगभूमि बनता जा रहा था जो समग्र क्षेत्र में अविभक्त और असाह को व्याप्त कर रहा था। इस प्रवृत्त राष्ट्रवाद के कारण ईरान की ही एक ऐसे तेल विवाद में फँस गया जिसमें एक बार तो उसकी प्राधिक और राजनीतिक स्थिरता की नींव को हिता दिया। यह विवाद एग्मो-ईरानियन तेल विवाद था। ईरान के तेल का अधिकांश भाग एग्मो-ईरानियन तेल कम्पनियों के नियन्त्रण में था। ज० ईंगनी संसद ने उस को तेल उत्पादन के अधिकार देने से इन्कार कर दिया तो राष्ट्रवादियों ने निवेशियों को दिये गये सभी तेल अधिकारों की प्राप्ति करना शुरू कर दिया। एग्मो-ईरानी तेल कम्पनी ईरान सरकार की मांग पर जुलाई १९५० में इस बात के लिए तैयार हो गई कि वह ईरान को रायस्टी की बड़ी हुई बरे देमी परन्तु १९५० के अन्त में ईरानी संसद ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। ईरान के एक नेता डा० मुसद्दिक ने नेतृत्व में तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण की मांग की गई। मार्च १९५१ में ईरानी प्रधानमंत्री जनरल रजमारा (General Razmara) की हत्या कर दी गई क्योंकि वह तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण को अघ्यावहारिक मान कर उसका विरोध कर रहा था। अग्रेज के अन्त में ईरानी संसद के दोनों सदनों ने तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण के विधेयक पास कर दिये। ईरान के शाह को न केवल इन विधेयकों को स्वीकार करना पड़ा वरन् प्रतिवादी डा० मुसद्दिक को प्रधानमंत्री नियुक्त करना पड़ा।

— ब्रिटेन इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। अतः ब्रिटेन की सरकार और कम्पनियों ने ईरान द्वारा १९५३ में समझौते के एक पक्षीय अधिन के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से धपस की। परन्तु ईरान ने न्यायालय के क्षेत्राधिकार को मानने से इन्कार कर दिया। सितम्बर १९५१ में ब्रिटेन द्वारा मामला सुरक्षा परिषद में भी उठाया गया किन्तु डा० मुसद्दिक ने तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण को ईरान का परेसू मामला बना कर सुरक्षा परिषद के क्षेत्राधिकार को अस्वीकार कर दिया। अक्टूबर में तेल कम्पनी ने अपने कार्य को जारी रखने में असमर्थता बताते हुए अपने तेल कारखान छोड़ दिये। संयुक्त राज्य अमेरिका इस संघर्ष में ब्रिटेन के साथ था। उसने जनवरी १९५२ में यह घोषणा कर दी कि ईरान को सैनिक सहायता देगा।

बन्द कर दिया। उसने ईरान को इस बात के लिये विवश करना चाहा कि ईरान इस विवाद को किसी निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को पक्ष निर्णय के लिए सौंप दे। जुलाई १९५२ में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह निर्णय दे दिया कि एंग्लो-ईरानी तेल विवाद उसके ऐजाबिकार के बाहर है। प्रथम अर्धशत और राष्ट्रपति ट्रूमैन दोनों ने ईरान में समझौता करने का संयुक्त प्रयास किया। परन्तु डा० मुसद्दिक ने एंग्लो अमेरिकन प्रस्तावों को ठकुरा दिया और २९ जनवरी १९५२ को ब्रिटेन से कूटनीतिक सम्बन्ध भी तोड़ दिये।

लेकिन १९५३ में ईरान में डा० मुसद्दिक का विरोध बढ़ने लगा क्योंकि ब्रिटेन द्वारा ईरानी तेल के बाहुष्कार के कारण ईरान की आर्थिक अवस्था ठीकी से बिगड़ने लगी। जून १९५३ के अन्तिम दिनों में राष्ट्रपति आइवनहवार ने मुसद्दिक को एक पक्ष मित्र कर स्पष्ट कर दिया कि ईरान को अब तक कोई प्रमेोरकन सहायता नहीं दी जाएगी जब तक इमर्सेन्ट के साथ चल रहे तेल विवाद का निपटारा न हो जाता जबका उसे किसी तटस्थ अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के पुर्यांतया प्रभावस्थित होने का अवसर न हो जाता। इस की आर्थिक स्थिति के पुर्यांतया प्रभावस्थित होने का अवसर न हो जाने पर डा० ने अगस्त १९५३ में प्रधानमन्त्री मुसद्दिक से त्यागपत्र लेने का लिए कहा और जनरल फनुस्ला जेहदी को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर लिया। डा० मुसद्दिक द्वारा यह त्यागपत्र ले इंकार कर देने पर सेना और बग़ादर अमता की मदद से उसे बसपूर्वक हटा दिया गया। बाद में उसके विरुद्ध प्रतिभोग अज्ञायन पया और उसे तीन वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। नये प्रधानमन्त्री और डा० ने मिल कर अमेरिका से मार्त प्रारम्भ की। अमेरिकन सरकार ने ईरान को सम्भावित विभासियापन से अज्ञान के लिये चार करोड़ पञ्चम मास डासरी की आपातकामीन आर्थिक सहायता प्रदान करने का निश्चय किया। इसके प्रतिरिक्त आसियापन से ३० जून १९५४ तक २३४०००० डासरी से अधिक की वैनिक और आर्थिक सहायता देने का भी आस्वासन दिया गया। इसी वर्ष अमेरिका ने अतुसु श्री कार्यक्रम (Point four programme) के अन्तर्गत ईरान को और अधिक तकनीकी सहायता प्रदान करने का आस्वासन किया। दिसम्बर १९५३ में ब्रिटेन और ईरान में पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। अमेरिका के प्रयत्नों से कुछ समय परबाए एंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी एडिब अमेरिकन डच और फ्रेंच कम्पनियों के एक मंच का निर्माण किया गया। १ अगस्त १९५४ को इस संघ और ईरानी सरकार के मध्य ईरानी तेल उद्योग के संवासन के बारे में २३ वर्षीय समझौता हुआ जिससे न केवल एंग्लो-ईरानी तेल विवाद का समापन हुआ बल्कि ईरानी और अरबियों के बीच अतुसु सम्बन्धों की स्थापना भी हो गई।

ईरान अब अरबों की मुट में सम्मिलित हो गया। यह अवसरपर अरबों की मुट की प्रतिबिम्बियों में मान लेने लगा। फरवरी १९५३ में जापान के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना करने का निश्चय किया गया। अगस्त १९५३ में एक ब्रिटिश कम्पनी को अरब-राज तेल सेच ठेहरान तक ६०० मील लम्बी पाइप लाईन के निर्माण का ठेका दिया गया। ईरान

सरकार ने पश्चिमी जर्मनी, अमेरिका फ्रांस और ब्रिटेन की विभिन्न कम्पनियों को विभिन्न व्यापारिक ठेके दिये। १५ अगस्त १९३३ को तेहरान में ईरान और अमेरिका के मध्य मैत्री प्राथिक सम्बन्धों और कूटनीतिक अधिकारों से सम्बन्धित एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। ईरान का पश्चिम पक्षपाती राज ११ अक्टूबर, १९३३ को अरब सीमा पर पहुंच गया जब वह बयवाद पैक्ट में सम्मिलित हो गया। सोवियत संघ ने बयवाद पैक्ट में ईरान के प्रवेश को अनुचित बताया हुए उसकी कटु आलोचना की।

ईरान के शाह ने साम्राज्ञी सुरैया सहित मई १९५६ में तुर्की की यात्रा की। मार्च १९३७ में ईरान द्वारा 'शाहबनहावर सिद्धान्त' का युद्ध समर्थन किया गया। ईरानी सरकार ने समुक्त राज्य अमेरिका के साथ इस बक्तव्य पर हस्ताक्षर किये कि अमेरिका की मध्यपूर्व में न तो कोई प्रादेशिक महत्वाकांक्षा है और न ही उसे किसी प्रकार के प्रभाव क्षेत्र को निर्धारित करने की कोई इच्छा ही है।

ब्रिटेन के साथ यद्यपि ईरान के वार्षिक सम्बन्ध सुधर गये थे किन्तु दोनों देशों में बहरीन (Behrien) के प्रश्न की लेकर पुनः विवाद उठ खड़ा हुआ। ब्रिटिश विदेश मन्त्रालय ने यह बक्तव्य प्रसारित किया कि बहरीन एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रीय राज्य (Shekhdom) है। इसके विपरीत ईरान ने बहरीन पर अपनी प्रभुसत्ता का दावा किया। नवम्बर १९५७ में तेहरान में यह घोषणा की गई कि सरकार बहरीन को ईरान का बोनहवा प्राप्त घोषित करना चाहती है।

ईरान ने अगले दो वर्षों में इटली पाकिस्तान ब्रिटेन समुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों से विभिन्न व्यापारिक समझौते किये। इतना ही नहीं ईरान के शाह ने सोवियत संघ की यात्रा भी की और उसके साथ भी अपने सम्बन्ध सुधर दनाये। परन्तु इस बीच ईरान की मैत्री विकसित न हो सकी। १ मार्च १९३९ को ईरान ने जब अमेरिका के साथ एक द्वि-पक्षीय प्रतिरक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किये तो ईरान और रूस के सम्बन्धों में कटुता घा गई। रूस को यह मय हुआ कि समुक्त राज्य अमेरिका ईरान को उसके विरुद्ध अपने एक सैनिक धाँके के रूप में प्रयुक्त करना चाहता है।

धीरे धीरे ईरान ने अब राजनीतिक स्थिरता प्राप्त कर ली है। आज न वह समुक्त राज्य अमेरिका की कटपुनसी भाव है और न ही सोवियत संघ से उसके सम्बन्ध सराब हैं। ईरान की राजनीतिक स्थिरता का कारण उसकी प्राथिक व्यवस्था का ठीक होना है। तेज ईरान का सधने बड़ा उद्योग है जिनमें इस देश की कराड़ों जंगलों की विदेशी मुद्रा की बचत हानी है। १९६६ में ईरान ने 4½ अरब रुपये का तेज विकास। इस वर्ष इस उत्पादन में कम से कम २० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हाल ही में अमेरिका और ब्रिटानी तेज कम्पनियों में जो समझौते हुए हैं उनमें ईरान अपने तेज का

उद्योग बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैला सकता है। इस सम्बन्ध में ईरान में पूर्वी-यूरोप और सोवियत संघ में भी कुछ उपयुक्त समझौते किये हैं। तेल के प्रतिरिक्त ईरान काबोन कच्चे तेल सूखे सेने जालें कच्ची ऊन और चातुर्षों का निर्यात करता है। ईरान की इपि सब भी उसनी विकसित नहीं है जिसनी कि एक सम्पन्न देश की इपि होनी चाहिये। इसका मुख्य कारण बीजना न हाकर पानी की कमी है।

यह उम्मेदवर्नीय है कि यद्यपि ईरान के साथ पश्चिमी यूजीवाय के सबसे बड़ सम्बन्ध है किन्तु यह सम्बन्ध अपनी धीरे धीरे देश की सुरक्षा के सबसे दे रहे है। इसलिये ईरान और मध्य एशिया के बरब देनों के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ित होते जा रहे हैं। कर्नेस मासिर के प्रति धातंकित होने के कारण ईरान की विदेश नीति में कुछ महत्वपूर्ण मोड़ पाये हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण ईरान का भारत-किराती बल है। ईरान की विदेश नीति में भारत विरोध की घोषणा पाकिस्तान की मित्रता अधिक महत्वपूर्ण है। पाकिस्तान न साथ ईरान की सीमाओं मिलती हैं दोनों देशों का बर्मे एक है। मध्य एशिया में दोनों देश किसी न किसी रूप में कर्नेस मासिर के प्रभाव को पसन्द नहीं करते। शाह का कहना है कि ईरान को सैनिक रूप में अस्थिराती बनाने के लिए यह बकरी है कि वह न केवल अस्त्रों के मामले में भारतनियंत्र हो बकि अस्थिराती सहायक भी बन जायें। इस सम्बन्ध में ईरान की नजरें पाकिस्तान पर हैं। १९६३ में भारत-पाक युद्ध में ईरान ने पाकिस्तान का साथ दिया था और उसके बाद इन दो देशों के बीच काफी बड़ पैमाने पर सैनिक सहयोग जारी रहा। हाल ही में ईरान और पाकिस्तान की सीमाओं पर कुछ हस्त प्रकार की हमलास दिखाई दे रही है जिससे इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि दोनों इन सैनिक रूप से एक दूसरे के अधिक निकट जा रहे हैं। पाकिस्तान अपनी कौमी छात्रानियों को भारतीय चातु रणा के प्रभावी क्षेत्र से दूर से जाने की कोशिश में ईरान की सीमाओं के साथ लगा रहा है। इसके अतिरिक्त ईरान द्वारा पाकिस्तान को परिवहन के सस्त्र प्राप्त करणे में भी सहयोग मिलता है। साथ ईरान ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा है कि "यद्यपि ईरान बन्धुत्व के लिए वैसे बैठा है तो फिर यह उसके अधिकार है कि वह किसी भी रूप में उसका प्रयोग करे। ईरान और पाकिस्तान अतिया में एक नये सैनिकगुट को जन्म दे रहे हैं।

अबन तथा बसिए अरब संघ

ब्रिटेन में अबन तथा बसिए अरब संघ को स्थापनीता प्रदान करे। यह स्थापनीता इस प्रदेश को बूह संघर्ष की धीरे बसीट रहा है। अब धीरे बसिए अरब की पराजक स्थिति इस क्षेत्र न निवासियों के पारस्परिक संबध का परिणाम है। जिस समय से ब्रिटेन ने इस प्रदेश को स्वतन्त्रता देने का इरादा प्रकट किया था तब से ही यह संघर्ष बढ़ होना मया। यों बाहर से दैलन में देना प्रतीत होगा है कि यह संघर्ष सत्ता का एक त्रितीय संघर्ष है।

संघर्ष है, परन्तु इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं तथा इसके पीछे विश्व की महाशक्तियों का सबसे हाथ दिखा हुआ है—एक ओर मिस्र यमन और सोवियत संघ हैं तथा दूसरी ओर ब्रिटेन सऊदी अरब और वे परम्परागत मेस और इमाम हैं जो क्रांतियों तक दक्षिण अरब सब के समूह राज्यों पर शासन करते रहे हैं। विवाद का मूल कारण भूमि नहीं भूमिगत तेल है जो समूचे पश्चिमी एशिया की राजनीति को सुलगायें हुए हैं।

ब्रिटेन का पदार्पण

अंग्रेज पहले पहल १८३६ में अरब पहुँचे। उस समय वर्तमान यमन अरब तथा दक्षिण—अरब के मेस राज्य सब मिलाकर यमन के नाम से पुकारे जाते थे। ब्रिटेन ने अरब पर अपना शासन स्थापित किया तथा मेस राज्यों को अरब और तुर्की द्वारा प्राप्त यमन के बीच एक सरलित क्षेत्र के रूप में संपठित किया। उसने दोनों को प्रास्तरिक मामलों में मनमानी करने की छूट दे रखी थी तथा वह उन्हें कस्ब बन और ठाड़ना के द्वारा बंध में रखता था।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर यमन तुर्क आधिपत्य से मुक्त हो गया तथा उसने अरब और सरलित मेस राज्यों पर अपना नाम ब्रिटेन के सामने पेश किया। ब्रिटेन ने यह दावा अस्वीकार कर दिया जिसके परिणाम स्वल्प दोनों के बीच शीर्षकास तक संघर्ष बनता रहा। १९३४ में दोनों के मध्य एक संधि द्वारा यह तय हुआ कि यद्यपि यमन को अपना दावा पेश करने का अधिकार होगा परन्तु दोनों में से कोई भी बेतुका क बल पर यथा स्थिति में परिवर्तन नहीं करेगा।

१९४० में ब्रिटेन ने मेस राज्यों को मिला कर दक्षिण अरब संघ का गठन किया तथा अरब को एक ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में विकसित करना प्रारम्भ किया। इस पर यमन के तत्कालीन इमाम ने यमन की दक्षिणी सीमाओं के पार गुरिस्सा-युद्ध छेड़ दिया। इस संघर्ष में इमाम अहमद और उसका बेटे मुहम्मद अल अदर को मिस्र तथा सोवियत संघ की शरण में जाना पड़ा जिससे ब्रिटेन यह चाहता था कि दक्षिण अरब संघ को एक शक्तिशाली आधुनिक राज्य के रूप में गठित करके अस्तित्व स्वरूप्य दे दिया जाये एवं उसे राष्ट्र मण्डल के भीतर रखा जाये। जहाँ तक अरब का अरब था ब्रिटेन के मन में उसे छोड़ने की तैयारी नहीं थी क्योंकि अरब पर स ब्रिटिश नियन्त्रण हट जाने के बाद फारस की जाड़ी और अरब सागर में ब्रिटिश हितों और तेल के व्यवसायों की रक्षा की दृष्टि से अरब का सैनिक अहम महत्वपूर्ण माना जाता था। इतना ही नहीं हिन्द महासागर में ब्रिटिश नौसैनिक बड़े की दृष्टि से भी अरब ब्रिटेन के लिए अपरिहार्य बन गया था।

विद्रोह की दिनगारी

ब्रिटेन की इच्छा इस बारे में निर्भावक नहीं हो सकती थी। अरब में

अधुना प्रसन्नता के नेतृत्व में जन समाजवादी बल धीरे धीरे घटत घटिक संघ का निर्माण हुआ। यमन में भी लगभग इसी समय मिल्ब की सहायता ने इमाम प्रहमद क विच्छिन्न विद्रोह संयोजित किया गया। ब्रिटेन ने यमन की राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का दमन करने के लिए घटत धीरे दक्षिण अरब राज्यों को मिला कर दक्षिण अरब संघ बनाने का निश्चय किया। इसके पीछे ब्रिटेन की यह भास थी कि घटत क प्रवृत्तिवादी तत्व जेकों के प्रतिक्रियावादी तत्व से उतुमित हो जायेंगे। जेकों को घटने अस्तित्व के लिए ब्रिटेन पर निर्भर होना पड़ता था पर ब्रिटेन सोचता था कि वे लोग निश्चित रूप से घटत को ब्रिटेन का सैनिक सहायता बनाये रखने के लिए सहमत हो जायेंगे। ब्रिटेन की यह भास राष्ट्रवादियों से खिपी न रह सकी ज्योंहि इसका विरोध किया। इसी समय ब्रिटेन को एक उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया यमन में सत्ताम ने इमाम को अपदस्त करके सत्ता पर अधिकार कर लिया। ठीक उसी दिन ब्रिटेन ने प्रथम विमान-परिपद के नीचे एक प्रस्ताव पारित करा मिला कि घटत धीरे दक्षिण अरब राज्यों को मिला कर सब का निर्माण किया जाय। परिपद क धाठ सदस्यों में से सात यूरोपियन धीरे दो मसोदीय थे। घटत समर्थन करने वाले सदस्यों में से सात यूरोपियन धीरे दो मसोदीय थे। घटत के प्रमुख राष्ट्रवादी बलों ने इस मतदान में भाग नहीं लिया तथापि दक्षिण अरब संघ नामक नया राज्य बन गया एक इस दिन से घटत का पूरक अस्तित्व समाप्त हो गया।

द्वितीय अरब मोर्चे

दक्षिण अरब के राष्ट्रवादियों ने स्वायत्तता-प्रश्न-वादी के नेतृत्व में १४ अक्टूबर १९१३ की राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चे का निर्माण किया। मोर्चे को प्रारम्भ में मिस्र का पूरा समर्थन मिलता रहा। धूमरी धोर प्रसन्नता ने अपिच्छित दक्षिण यमन मोर्चे का संबन्ध किया। राष्ट्रवादी नेता निरन्तर यह मांग करते रहे कि संघ को संघ किया जाय तथा ब्रिटेन इस संघ की स्वाधीनता क लिए निश्चित विधि को बोलना करे। ज्योंहि यह मांग थी रही कि ब्रिटिश सेनायें इस क्षेत्र से सर्वथा हटा ली जाय और समुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षण में निर्वाचन कराये जाये। ब्रिटेन के सत्तावादी अहिंसावादी बल ने इन मांगों की धोर कोई ध्यान नहीं दिया परन्तु १९१४ में ब्रिटेन में मजदूर बल की सरकार बनी जिसके कारण सारी स्थिति बदल गई। उसने यह बोलना की कि यह स्वानीय लोगों की इच्छा के विच्छिन्न नहीं हो ब्रिटिश सैनिक सहाय नहीं बनाये रखेगी। १९१६ के मध्य में ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया कि यह घटत से घटने सैनिकों को हटा लेगी तथा दक्षिण अरब संघ को स्वाधीनता प्रदान कर देगी।

दक्षिण अरब संघ में राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चे का प्रभाव बढ़ता गया धीरे उसका ऐसा प्रारंभ स्थापित हो गया कि ब्रिटेन को विवक्त होकर घटत का संरक्षण निरन्तर करना पड़ा। वास्तव में यह क्षेत्र मिस्र धीरे ब्रिटेन के मध्य सैनिक परीक्षण का प्रयास बन गया तथा मिस्र ने स्वाधीनता मोर्चे की अपेक्षा यमनवादी मोर्चे को अधिक विश्वसनीय मान कर उसे

उत्साना शुरू किया एवं हस्त बिये । मिस्र और सऊदी अरब के बीच गहरी होड़ चल रही थी, उसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चा सऊदी सम्राट फजल का सहारा लेने लगा । संघ एक बहुमुखी स्वरूप में प्रस्त हो गया । एक ओर ब्रिटेन तथा राष्ट्रवादी शक्तियाँ आपस में स्पर्ध कर रही थीं, दूसरी ओर दोनों राष्ट्रवादी दल आपस में सड़ रहे थे तथा तीसरी ओर ब्रिटेन द्वारा प्रतिक्रित एवं संयोजित दक्षिण अरब सेना के अरबी सैनिकों ने ब्रिटेन के विरुद्ध बिद्रोह कर दिया । इसी समय स्वाधीनता मोर्चों ने दक्षिण अरब संघ में सम्मिलित सत्रह देश राज्यों में से १४ पर अधिकार कर लिया और इस मामलों में संघीय सेना को तटस्थ रहने के लिए तैयार कर लिया । यह झूह रचना सफल रही तथा ब्रिटेन का यह धोखा करनी पड़ी कि संघ-सरकार संग हो गई है और वह राष्ट्रीय शक्तियों के साथ सत्ता के हस्तांतरण के बारे में चर्चा के लिए तैयार है ।

स्वतन्त्रता की घोषणा

ब्रिटेन की इस घोषणा ने समस्त अरब क्षेत्र की राजनीति में हलचल पैदा कर दी । इसका मुख्य कारण यह था कि राष्ट्रवादी शक्तियों के हार्थों में राज्य सत्ता खींचने का अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन ने इस क्षेत्र क परम्परागत शासक वर्णों को छोड़ने का उद्देश्य कर दी । यह उद्देश्य सऊदी अरब कुवैत नीजिया बहरीन अरब, याना तथा ईरान के देशों बाइनाहों और अमीरी के लिए चिंता का विषय बन गई उनको ऐसा प्रतीत होने लगा कि अरब से ब्रिटेन के हस्त का अर्थ होगा कि इस क्षेत्र में समाजवाद और लोकतन्त्र के माध्यम से राजतन्त्र की नीव खोवना । इन राजतन्त्रालोक देशों ने अरब के अरबों का हटाया जाना अपने लिए घातक माना और ब्रिटेन से धमुरोष किया कि वह अरब से अपनी सेना और सामग्री बहरीन से जाव । ये देश इजरायल के कारण कितन भी अप्रसन्न क्यों न हो तप पि ब्रिटेन और अमरीका के समर्थन और सक्रिय सहयोग के बिना काम नहीं चला सकते । ब्रिटेन और अमरीका भी इस तथ्य से भसी भांति परिचित हैं ।

ब्रिटेन के लिए इस क्षेत्र का शासन आर्थिक एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से बहुत ही महत्वा सिद्ध हो रहा था अत ब्रिटेन ने निश्चय किया कि वह ३० सितंबर १९६० को अरब से अपनी सेनायें पूरी तरह हटा लेया और इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता प्रदान कर देया । उनके धामलय पर दक्षिण अरब संघ सेना ने राज्य शासन संभाल लिया और उसके सैनिक कमान न निश्चय किया कि वह सत्ता के स्पर्ध में यमनवादी मोर्चों का विरोध तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चों का समर्थन करेगा । उसने ब्रिटेन से मांग की कि वह सत्ता के विभिन्न हस्तांतरण के लिए इसी मोर्चों के नेता से बात करे । परिणामतः ब्रिटेन ने मोर्चों को धामाहित किया । इसी समय यमनवादी मोर्चों ने मिस्र की सहायता से सत्ता का प्रपहरण करने की चेष्टा की । ब्रिटिश एवं संघ सैनिकों ने इग प्रयास को विफल कर दिया । कुछ मूर्खों न दोनों मोर्चों क बीच बात बात धामाहित करने की चेष्टा की परन्तु चर्चा अतत विफल हो गई ।

मिस्र ने राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चे की मजबूत स्थिति को पहचान कर यमनवासी मोर्चे का समर्थन झीला कर दिया है जिसके कारण उसकी स्थिति पहले जैसी मजबूत नहीं रही। ऊपर यमन में समाज का पतन हो जाने के कारण भी यमनवासी मोर्चे की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यमन के वर्तमान राष्ट्रपति काजी इरियाजी यह नहीं चाहते कि मने बक्षिण धरत सम गम्ब के साथ यमन के सम्बन्ध धारम्भ से ही खराम रहे पर वे भी यमनवासी मोर्चे को निरस्तसाहित कर रहे हैं। तथापि यमनवासी मोर्चे के नेता मकाबी ने घोषणा की है कि उनके साथ हजार सैनिक नहीं सरकार के विरुद्ध तब तक संपर्क करते रहेंगे जब तक वे उसको मष्ट नहीं कर देते।

पेरिस द्वीप का प्रश्न

पश्चिम एशिया के सिधे बक्षिण धरत संप की स्वाधीनता से एक नई समस्या पैदा हो सकती है। बक्षिण धरत संप स्वाधीनता के परिणाम स्वरूप धरत की काही धौर मानसायर के बीच पेरिस द्वीप का स्वामी बनेगा। राष्ट्रीय स्वाधीनता मोर्चे के नेताओं ने धनेक बार यह घोषणा की है कि वे इजरायमी जहाजों को महा से होकर नहीं जाने देंगे। इजरायम ने पूर्वी घाटीकी तट के साथ धपने ब्वापार का बन्धने रखने के लिए ही जहाज की खाड़ी को बन्दपुबक कोला है यह निश्चय है कि वह पेरिस धौर बन्द रु बीच संकरे बन्दमार्ग धाब बन्द-मदाब का बंद किया जाना किसी भी स्थिति में सहन नहीं करेगा। ब्रिटेन ने बहुत पहिले ही इस बारे में चेतावनी दे की थी धौर संयुक्त राष्ट्र संघ से कहा था कि पेरिस द्वीप का प्रशासन वह सम्माल से बिसधे कि इस अन्तर्राष्ट्रीय-बन्दमार्ग को सेकर बकाबा जैसे मुड होने की बाधकता ही न रहे परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ में इस प्रस्ताव को धम्भीकार कर दिया।

पेरिस द्वीप पश्चिमो एशिया के लिए दूसरा बन्द-बन्दगोल सिध हो सकता है। सम्भव है कि पगजय के वेत में पीठित मिस्र धौर उऊनी धरत नई बक्षिण धरत सरकार को इस बारे में मजम रखने का परामर्श दे।

धाब कोई नहीं जानता कि गुड-नैचर्य की चुनीधियों से बिरी यह स्वतन्त्रता इस वेत का कहां से आवेगी। परिस्थितियाँ ऐसी जाधका उदाप्र करती है कि बक्षिण धरत नहीं दूसरा कांगो न बन बाये जिसकी स्वाधीनता नामुर बन कर यत साठ वर्षों से बगबर रिध रही है। धब प्रतिष्ठा के लिए यह धाबक्यक है कि बक्षिण धरत संघ में स्वाधीनता के उपरान्त रकनपाद न हो।

जैसा कि हम देख चुके हैं मध्यपूर्व में महाशक्तियों का संघर्ष १९वीं शताब्दी के धारम्भ से ही महाशक्तियों इस प्रदेश में धपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। २ वीं शताब्दी में जब इस प्रदेश

में स्थित तेल के विशाल स्रोतों का पता लगा तब उनकी विमलवस्ती घोर भी अधिक बढ़ गई। अरबों के पास तेल था लेकिन उनके पास अपने इस बहुमूल्य खनिज सम्पत्ति से लाभ उठाने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान न था और साथ ही बन का भी प्रभाव था। परिणामतः विभिन्न अरब राज्य जो खनिज तेल की दृष्टि से अनाइय के ब्रिटिश इंच फॉर्ब अमेरिकन एब स्वी लोगों की सामर्थ्यारी में काम करने के लिए विवश हो गये। शनैः-शनैः मध्यपूर्व विभिन्न प्रतिस्पर्धी हितों के सघर्ष और तेल कूटनीति का अड्डा बन गया।

मध्यपूर्व का सबसे अधिक प्रभावित करने वाली शक्तियाँ तीन रही— ब्रिटेन संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस।

मध्यपूर्व और ब्रिटेन

मध्यपूर्व में ब्रिटेन के सम्बन्ध सबसे अधिक पुराने हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद ब्रिटेन ही इस प्रदेश की प्रधान शक्ति बन गया। फिलिस्तीन जोर्डन तथा सीरिया उसके संरक्षित प्रदेश हो गये। ईरान ईराक और कुवैत के तेल व्यवसायों पर उसका नियन्त्रण स्थापित हो गया। मिस्र भी उसका संरक्षित राज्य था और स्वेज नहर पूर्णतः ब्रिटिश नियन्त्रण में थी। अदन और साइप्रस में ब्रिटेन के सैनिक अड्डे स्थापित हो गये। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बाद ब्रिटिश शक्ति और प्रभाव का पूर्व तेजी से अस्त होने लगा। मध्यपूर्व में भी उसका ऐसी ही ह्रास हुआ। एक के बाद एक लगभग सभी प्रदेश ब्रिटेन के हाथों से निकलते गये। ईरान में ब्रिटिश तेल कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया तो स्वेज क्षेत्र से उसे अमानजनक परिस्थितियों में हटना पड़ा। ब्रिटेन के हटने से मध्यपूर्व के क्षेत्र में जो शक्ति शून्यता आई उस अमेरिका तेजी से भरने लगा और आज ब्रिटेन बस इस प्रदेश में अमेरिका के प्रधान सहायक की भूमिका अदा कर रहा है।

मध्यपूर्व एब अमेरिका

अमेरिका ने मध्यपूर्व क्षेत्र में प्रथम महायुद्ध के बाद ही सशस्त्र सेना शुरू किया लेकिन इस क्षेत्र में उसका हित तेजी से व्यापक होते गए और आज वह इस प्रदेश में सर्वाधिक सशस्त्र सैनिकों वाला देश है। इस प्रदेश की सामरिक महत्ता और यहां के पेट्रोल का अत्यंत अभाव वाणिज्य और मास्को को परस्पर कटुतम प्रतिद्वन्द्वी बनाए हुए है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की मध्यपूर्व सम्बन्धी नीति प्रधानतः तीन तत्वों से निर्धारित है—तेल फिलिस्तीन तथा चीनयुद्ध और आत्मरक्षा की आवश्यकतायें।

अमेरिका मध्यपूर्व की ओर उसके विशाल तेल स्रोतों के कारण ही सबसे पहिले आकर्षित हुआ। उसे ईराक कुवैत मउरी अरब और बहरीय में तेल उत्पादन के अधिकार प्राप्त करने में सफलता मिली। ब्रिटेन और ईरान के तेल विवाद में उसने पूर्ण सशस्त्र सैनिकों की ओर आज ईरान के तेल उत्पादन में उसे सर्वाधिक हिस्सा प्राप्त है।

विलिस्टोन के प्रश्न में भी प्रथम महायुद्ध के बाद से ही अमेरिका की रुचि बाधुत हुई थी उद्योगों में वृद्धि के साथ ही अमेरिका का प्रभुत्व समर्थन किया। जिस दिन यहूदी राज्य के निर्माण की घोषणा हुई उसी दिन वाशिंगटन ने इजरायल को मान्यता प्रदान कर दी थीर बाव भी यह इस यहूदी राज्य का प्रधान संरक्षक बना हुआ है। अमेरिका की पक्षपाती नीति उसे प्रत्यक्ष रूपों में लोकप्रिय बनाने में विशेष सहायक रही है।

मध्यपूर्व में अमेरिका की विस्मयनी का सबसे प्रधान कारण जीवतुद्ध और आतंरिकता की आवश्यकता है।

इस प्रश्न में साम्यवादी रुझान को प्रभाव को रोकना अमेरिकन नीति का एक प्रधान लक्ष्य है। इसलिए ही उसने १९४० में टूमैन सिद्धांत और १९४७ में आइजनाहोवर सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिनके अन्तर्गत यह मध्यपूर्व के देशों को भारी परिमाण में सहायता देना था रहा है। अमेरिका इस प्रश्न के राष्ट्रों का सहयोग पाने के लिये अपनी बेसी का पूरा हथौड़ा लगा है। इस अंतर कूनीति के द्वारा वाशिंगटन मध्यपूर्व पर हावी होने का प्रयत्न कर रहा है। इसी प्रयास को रोकने के लिए ही अमेरिका ने मध्यपूर्व में सैनिक सगठन के निर्माण को प्रोत्साहन दिया है। १९४३ में उनी प्रस्ताव से ही अमराब पैक्ट (और अब सैंटो) का निर्माण हुआ।

अमेरिका की मध्यपूर्व सम्बन्धी नीति कभी भी विधेय सफल सिद्ध नहीं हुई है क्योंकि इस प्रश्न में पश्चिमी साम्राज्य विरोधी भावना प्रबल रूप से व्याप्त है। यद्यपि टर्की ईरान और अरब देशों में अमेरिकन के समर्थन है फिर भी पश्चिमी अरब राज्य उसकी इजरायली पक्षपाती नीति के कारण उसके प्रारम्भिक अर्थगुष्ट हैं।

मध्यपूर्व और रुझान

मध्यपूर्व के क्षेत्र में रुझान की रुचि बाव आसकों के समर्थन से ही नहीं था रही है। उस ही से यह टर्की से बर्दनिवास और आस्फोरस जसजमक यम्पों को इजिय: सेने और ईरान में अपना प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने का प्रयत्न करता रहा था। द्वितीय महायुद्ध के बाद घोषित रुझान ने मध्यपूर्व के पश्चिमी और सामाजिक पिछड़ेपन एवं इस प्रश्न की पश्चिमी विरोधी भावना का पूरा-पूरु साम उठाने का प्रयत्न किया। २९ अक्टूबर १९४६ को मिस्र पर इजरायल कास और ग्रेट ब्रिटेन का आक्रमण होने पर रुझान पश्चिमी देशों को अपनी सेनाओं पश्चिम हटाने की वेतावनी दी थीर न हटाने पर आणविक आयुधों के प्रयोग तक की वमकी दी। रुझान के इय बदल से सम्पूर्ण अरब जगत में उसे जो बाह-बाही समर्थन और सहायता मिली वह अमेरिका को ब्रिटेन पर बुद्ध बन्ध कर देने का भाटी दबाव डालने पर भी प्राप्त न हो सकी। इसी तरह सेबनाम और जोडन में जुलाई १९४८ में जब अमेरिकन और ब्रिटिश दोनों उद्योगों को घोषित संघ में उनके इस कर्म के जब अमेरिकन की सहायता दी थीर इन क्षेत्रों से विदेशी कौशलों के हटाने पर पूरा

बल दिया। अपने इस कदम से भी कम न धरब राज्यों की मद्मावना दृष्टि की। इसी तरह जब अमेरिका ने समुक्त अरब गणराज्य (मिस्र) को आस्थान बाँट बनाने के लिए आर्थिक सहायता देना स्वीकार नहीं किया तो कुत्सेब ने अक्टूबर १९३८ में घोषणा की कि वह इस योज. का पूरा करने के लिए मिस्र को इस करोड़ डॉलर का ऋण प्रदान करेगा। अपने इस प्रकार के सक्रिय सहयोग के कारण सोवियत रूस ने मिस्र और अफिराहा अरब राष्ट्रों की कृतज्ञता जीत ली। १९३८ की अंति के बाद ईराक में भी उसका प्रभाव काफी बढ़ता गया। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी अभी तक रूस मध्यपूर्व में अपना प्रत्यक्ष विस्तार करने में सफल नहीं हुआ है और न ही मध्यपूर्व के किसी भी देश में साम्यवादी सरकार की स्थापना हो सकी है। हाँ इतना प्रबल है कि मध्यपूर्व के तटस्थतावादी राष्ट्र बाजिगटन की अपेक्षा मास्को के प्रति अधिक उदार भावनाएँ रखते हैं। राष्ट्रपति नासिर का नेतृत्व सोवियत संघ के प्रभाव के विस्तार में विशेष महत्व सिद्ध हो रहा है तथापि इसका भविष्य यह नहीं है कि नासिर अरब देशों व रा साम्यवाद अपना देने के पक्ष में है। वस्तु स्थिति यह है कि बाजिगटन और मास्को के सक्ति संघर्ष के मध्य अरब राष्ट्रवादी नासिर के नेतृत्व में एक तटस्थतावादी नीति का अनुकरण करते हुए एक विशाल स्वतंत्र और शक्तिशाली अरब राज्य की स्थापना करना चाहता है, हाथों कि सतक यह प्रसिद्ध अरबवाद न तो टर्की को पसंद है और न ईरान तथा कुछ अन्य अरब राष्ट्रों को। साथ ही अरब इबरायमी संघर्ष भी मध्यपूर्व की राजनीति को बड़ा प्रस्पर और जटिल बनाए हुए है।

EXERCISES

1. Discuss the importance of Middle East in the diplomacy of Great Powers during years of 1940-56
१९४० व १९५६ के वर्षों के दौरान महाशक्तियों की कूटनीति में मध्यपूर्व के महत्व की समीक्षा कीजिये।
2. Write a short essay on international politics of the Middle East after World War II
मध्यपूर्व की द्वितीय महायुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
3. Discuss the part played by Middle East Oil in international diplomacy
अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के क्षेत्र में मध्यपूर्व के तेल ने का भूमिका क्या की है उसकी विवेचना कीजिये।
4. How was the Zionist problem influenced international politics in the Middle East?
मध्यपूर्व में यहूदीवाद की समस्या ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को किस तरह प्रभावित किया है?

5. Give a brief history of Anglo-Egyptian relations in the period leading to the Suez Crisis
स्वेज संकट के समय पर आंग्ल-मिस्री सम्बन्धों का संक्षिप्त इतिहास लिखिये ।
6. Write detailed notes on the following—
(a) Sena (b) Jordan (c) Lebanon (d) Saudi Arabia
(e) Cyprus (f) Turkey (g) Iraq (h) Iran (i) Arab-Israeli War 1967
7. Write a note on Arab nationalism
अरब राष्ट्रवाद पर एक नोट लिखिये ।
8. Trace the origin of the Arab League and indicate its role in the Middle Eastern Politics.
अरब लीग की उत्पत्ति बताइये और मध्यपूर्व की राजनीति में उसकी भूमिका दर्शाते लिखिये ।
9. What do you know of the Palestine problem and its settlement after the Second World War ?
फिलस्तीन समस्या और द्वितीय महायुद्ध के बाद इसके समाधान के बारे में आप क्या जानते हैं ?
10. How did Egypt become a republic ? Write a short essay on Nasser's foreign policy with particular reference to Israel, Soviet Russia and the Western bloc.
मिस्र एक गणराज्य कैसे बना? इब्राराहम नसर और पश्चिमी गुट के विरोध संघर्ष में नासिर की विदेश नीति पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।
11. Write a short history of Iraq with particular reference to its foreign policy from the end of the Second World War to the present day.
द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति से लेकर वर्तमान काल तक की ईराक की विदेश नीति पर विरोध रूप से चर्चा करते हुए ईराक का इतिहास संक्षिप्त में लिखिये ।
12. Write a note on Cyprus problem indicating its importance in world politics.
विश्व राजनीति में साइप्रस समस्या का महत्व बताते हुए इस पर एक नोट लिखिए ।

15

अफ्रीका की जागृति

[THE RISE OF AFRICA]

- १ अफ्रीका की जागृति और विभिन्न अफ्रीकन देशों का स्वतन्त्र होना
- २ कुछ प्रमुख अफ्रीकन देश—
 - (i) लीबिया
 - (ii) इथ्योपिया
 - (iii) मोरक्को
 - (iv) इथ्योपिया
 - (v) कांगो
 - (vi) नाइजीरिया
 - (vii) सूडान
 - (viii) केन्या
 - (ix) घाना
 - (x) अफ्रीका
 - (xi) दक्षिणी रोडेसिया
- ३ स्वतन्त्र अफ्रीका महाद्वीप की समस्याएँ
- ४ अफ्रीकी एकता आन्दोलन

‘यह बहुत स्पष्ट है कि आगले दस वर्षों में विश्व की शक्ति धीरे-धीरे अमेरिका के विकास के कारण प्रजातीय सम्बन्धों की दृष्टि से तथा सेवा संसार द्वारा अमेरिकी शक्ति के आधिकारिक और सामाजिक विकास में सहायता की पद्धतियों से बहुत अधिक प्रभावित होगी ।

—डॉ. ह्यूमरशोल्ड

हमारी नई स्वतन्त्रता
 हमारे सम्मुख लये-लये
 टाकिले पर ल कर रही है;
 जातीय पक्षपात धीरे-धीरे खोजों
 के प्रति धृष्ट से सावधान रहो ।
 सभी दूधनीयियाई भाई-भाई हैं ।
 मुस्लिम धीरे-धीरे लोगों समान हैं धीरे
 हमें आपस में भाईचारे का सम्बन्ध रखना चाहिये ।

—जोरा पुवा

अफ्रीका की आगुति और विभिन्न अफ्रीकन देशों का स्वतन्त्र होना

अफ्रीका कोई एक देश नहीं है, अपितु एक महाद्वीप है जिसमें अनेक देश हैं। उत्तरी अफ्रीका विशेषतः अल्जीरिया, समुक्त धरतः मर्राकम और सीबिया के निवासी गोरे हैं, किन्तु शेष अफ्रीका के मूल निवासी काले हैं। किन्तु इन गोरो और कालों के बीच पर्याप्त मात्रा में एकता और प्रेम विद्यमान है।

अफ्रीका महाद्वीप में आज से हजारों वर्ष पूर्व नील नदी की बाटी और कापेंज की महान सम्यताओं का विकास हुआ फिर भी केवल एक शताब्दी पूर्व तक इसका बाह्य संसार से अत्यन्त बौद्धा सम्पर्क रहा और इसलिए इसे अंध महाद्वीप (Dark Continent) की उपाधी दी जाती थी। १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोप और एशिया वासी इस महाद्वीप के उत्तर तटवर्ती प्रदेशों और भूमि से ही बौद्धा बहुत परिचित थे। सहारा के विभास मरुस्थल और भूमध्यरेखा के दक्षिण में स्थित प्रदेश से वे लगभग अपरिचित ही थे। इस समय तक अफ्रीका उनके लिए एक महाद्वीप न होकर एक तट मात्र था और इस प्रदेश में उनकी रुचि केवल इतनी ही थी कि वे यहाँ कुछ ऐसे बन्दरगाहों की स्थापना कर सकें जो भारत जाने वाले जहाजों के लिए बिधाम स्थल बन सकें जहाँ से वे जहाज ईशान के तर्क और साध ही अमेरिका के गन्त और कपास के बगानों में काम करने के लिए उन्हें पुनः मी मिल सकें।

किन्तु सन् १८०० के बाद से ही यूरोपियन शक्तियों में अफ्रीका में उपनिवेशों की प्राप्ति की होड लग गई। १८८० से १८९० के बीच उन्होंने सम्पूर्ण अफ्रीका के विभिन्न प्रदेशों को आपस में बाँट लिया। १८७० के बाद के केवल २० वर्ष की अवधि में ही यूरोपियन शक्तियों ने अफ्रीका के लगभग ९/१० भाग को आपस में विभाजित कर लिया। १८८० में उनके पास १ लाख वर्गमील का प्रदेश था जो १० वर्ष बाद ६ लाख वर्गमील का प्रेश हो गया। अफ्रीका महाद्वीप के समस्त देशों में से जिनकी संख्या इस समय कुल मिलाकर २० के लगभग है प्रथम महा-युद्ध से पूर्व केवल एबीसी निया (अबवा इथोपिया) ही स्वतन्त्र राज्य रह गया था किन्तु १९३९ में इसकी स्वतन्त्रता भी इटली द्वारा समाप्त कर दी गई हात्कि द्वितीय महायुद्ध में यह राष्ट्र पुनः स्वतन्त्र हो गया था।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर १९४५ में अफ्रीका महाद्वीप में केवल ४ राज्य स्वतन्त्र थे-एबीसीनिया, लाइबीरिया, दक्षिण अफ्रीका तथा संयुक्त और पित्त। महायुद्धोत्तरकाल में सम्पूर्ण अफ्रीका में स्वतन्त्र होने की इच्छा अत्यन्त

उपनिवेशवाद के विरोध ने भी अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में उत्सेहनीय भूमिका प्रदा की। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी अफ्रीका के देशों को स्वतंत्रता प्राप्त करने में बहुत सहायता दी। द्वितीय महायुद्ध ने उपनिवेशवादी शक्तियों को अत्यन्त दुर्बल बना दिया और फ्रांस ब्रिटेन प्रादि विजयी राष्ट्र इतने दुर्बल हो गये कि उनमें अपने उपनिवेशों की प्रबल स्वतंत्रता की प्राप्ति का दमन करने की शक्ति नहीं रह गई। इस तरह उनके एशिया और अफ्रीका के उपनिवेश तेजी से इसके हाथ से निकल गये। पहले एशिया के उपनिवेश तेजी से स्वतंत्र हुए जिससे अफ्रीकी राष्ट्रवादियों में प्रबल आत्म विश्वास जागृत हुआ।

द्वितीय महायुद्ध के बाद अफ्रीका महाद्वीप में एक-एक करके स्वतंत्रता की तीन उत्तरोत्तर जबरदस्त सहर आईं। जैसा कि कहा जा चुका है महायुद्ध की समाप्ति पर अफ्रीका में केवल ४ राज्य स्वतंत्र थे—एबीसीनिया साईडीरिया दक्षिण अफ्रीका का एक और मिस्र। यह १३० लाख वर्गमील का क्षेत्र अफ्रीका महाद्वीप के कुल क्षेत्रफल का केवल १% प्रतिशत था और इसकी २८ करोड़ की आबादी अफ्रीका की कुल जनसंख्या का २६ प्रतिशत थी। इसके बाद स्वतंत्रता की पहली सहर आई। इस सहर में कनम अल्जीरिया के अणुवाद की छोड़ कर भरबों द्वारा आवासित उत्तरी अफ्रीका ने उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों का सफाया किया। इस पहली सहर द्वारा स्वतंत्र होने वाले राष्ट्रों में १९५१ में स्वतंत्र होने वाला सीरिया और १९५६ में स्वाधीनता पाने वाले सूडान मॉरक्को तथा ट्यूनीशिया थे। इसके बाद स्वतंत्रता की दूसरी सहर आई जिसने कनम अणुवाद की छोड़ कर भरबों द्वारा आवासित अफ्रीका पर प्रभाव डाला। १९५७ में ब्रिटेन द्वारा बाना को स्वतंत्रता प्रदान की गई और १९५८ में गिनी पंचम फ्रेंच अणुवाद से मुक्त हो गया। १९५९ तक अफ्रीका में म्यारुह राज्य स्वाधीन हो गये किन्तु धर्मी तक सहारा के दक्षिण का और अल्जेरी नदी के उत्तर का मध्य अफ्रीका पराधीन था। १९६० में स्वतंत्रता की तीसरी जबरदस्त सहर आई जिसने इस प्रदेश के अधिकांश मुसलम देशों को आजाद कर दिया। यह वर्ष अफ्रीका के स्वतंत्रता का वर्ष कहा जाता है जिसमें १७ देश स्वतंत्र हो गये। इसके बाद एक-एक कर के अफ्रीका के शेष देश भी स्वतंत्र हो गये। १९६६ के अन्त तक केवल इने गिने प्रदेशों को छोड़ कर सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप आजाद हो गया। इस समय तक जो विभिन्न अफ्रीकन देश स्वतंत्र हो गये उनका ग्योरा इस प्रकार से है—

क्र.सं०	नाम प्रदेश	स्वतंत्रता पूर्व क्षेत्रफल (वर्गमील)	१९६१ के अनुसार जनसंख्या	स्वतंत्र होने की तिथि
१	साइबेरिया	अमेरिका ४३ ०००	२७ ५० ०००	१९५७
२	वियोलिया	—	२ करोड़	१९५१
३	सिडिया	— १ ७९ ३५८	१२ ०० ०००	२४ नवंबर १९५१
४	इरिट्रिया	इटली —	—	सितंबर १९५२

क्र.सं.	नाम प्रवेश	स्वतन्त्रता पूर्व प्रशासकीय क्षेत्र	स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्रफल (वर्गमील)	१९६१ के अनुसार वर्गमील	वर्धन होने की तिथि
५	सुडान	ब्रिटेन	८,९७५.००	१० करोड़	जनवरी १९५६
६	मौराकको	फ्रांस	—	—	मार्च १९५६
७	ट्यूनिशिया	फ्रांस	४८,१११	३९,२५,०००	मार्च १९५६
८	बाना	ब्रिटेन	९१,८४३	४८ लाख	मार्च १९५७
९	गिनी	फ्रांस	१,०५,२००	३,००,०००	अक्टूबर १९५८
१०	संयुक्त अरब गणराज्य	—	—	३ करोड़	१९५९
११	कैमरून	फ्रांस	३,८६,१९८	३ करोड़	जनवरी १९६०
१२	मौराकको (कुछ भाग)	—	—	३२,६५,०००	मार्च १९६०
१३	टोगा	स्पेन	—	—	मार्च १९६०
१४	मालीसब	फ्रांस	४,२१,८९३	१२ लाख	अप्रैल १९६०
१५	कांगो गणराज्य	बेल्जियम	—	—	जुलाई १९६०
१६	सोमालिया	ब्रिटेन व इटली	९,४३,०००	१३ करोड़	जुलाई १९६०
१७	मालायासी गणराज्य	फ्रांस	२२८,०००	५,१७,४२३	जुलाई १९६३
१८	घाय	फ्रांस	४,९६,०००	२५,८०,०००	अगस्त १९६३
१९	नाइजर	फ्रांस	४९,४५,०००	१४ लाख	अगस्त १९६३
२०	नाइजीरिया	फ्रांस	—	—	अगस्त १९६३
२१	मोस्टार्ड गणराज्य	फ्रांस	—	—	अगस्त १९६३
२२	सेनेगल	फ्रांस	—	—	अगस्त १९६३
२३	होपी	फ्रांस	—	—	अगस्त १९६३
२४	कांगो गणराज्य	—	१,०३,०००	४,१२,५००	अगस्त १९६३
२५	मध्यपूर्वी अफ्रीका	—	४५,९००	१७,११,०००	अगस्त १९६३
२६	नाइजीरिया	ब्रिटेन	—	—	अगस्त १९६३
२७	मालिनेरिया	फ्रांस	३,७३,२५०	२५ करोड़	अक्टूबर १९६३
२८	नियरालियोन	फ्रांस	४,१५,९००	५ लाख	नवम्बर १९६३
२९	कमोडा-उरांडी बेल्जियम	—	—	—	अप्रैल १९६३
३०	अफ्रीरिया	फ्रांस	२,०५,४०	४६,३०,०००	९ जुलाई १९६२
३१	सुमात्रा	ब्रिटेन	३८,२६,०००	१,०२,६५,०००	सितम्बर १९६२
३२	तवानिका	ब्रिटेन	९,३,९१	४५,१७,०००	अक्टूबर १९६२
३३	कैनिया	ब्रिटेन	१,१२,६८८	९ लाख	दिसम्बर १९६२
३४	जमीबार (मपावी)	ब्रिटेन	—	—	दिसम्बर १९६३
३५	म्यांमार	ब्रिटेन	—	—	१० दिसम्बर १९६३

क्र.सं	नाम प्रदेश	स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्रफल (वर्गमील)	१९६१ के अनुसार जनसंख्या	स्वतंत्र होने की तिथि
३६	बेन्जिया (उत्तरी रोबेसिया) ब्रिटेन	—	—	१९६४
३७	गैम्बिया ब्रिटेन	—	—	१९६२
३८	ब्रिटिश गियाना (नया नाम गुयाना) ब्रिटेन	८३०००	६,२०,०००	२६ मई १९६६
३९	बोत्सवाना (बेचुवानालैंड) ब्रिटेन	२७५००	१,३७,०००	३० सितम्बर १९६६
४०	सेसीथो (बसुतोलैंड) ब्रिटेन	११७१६	१,२४,०००	३ अक्टूबर १९६६
४१	बारबाडोस ब्रिटेन	१६६	२२०,०००	३० नवम्बर १९६६

यह स्मरणीय है कि अफ्रीका महाद्वीप की राजनीतिक परम्पराएँ प्रारम्भ से ही अविभाज्यवादी और सर्वसत्तावादी रही हैं। औपनिवेशिक युग के शुरु होना से पहले अफ्रीका महाद्वीप में एकतन्त्रात्मक शासन का बोलबाला था। कबीलों के सरकार स्वच्छाचारी ढंग से शासन करते थे। जब औपनिवेशिक युग प्रारम्भ हुआ तब भी इस स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया और इस महाद्वीप की मोसीभासी प्रजा साम्राज्यवादी शक्तियों के निरंकुश शासन से प्रभावित रही। इस राजनीतिक अवस्था का परिणाम यह हुआ कि अफ्रीका महाद्वीप के किसी भी देश में स्वस्थ लोकतन्त्रीय परम्पराओं का विकास नहीं हो सका। यद्यपि अब भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेशों में संवैधानिक लोकतन्त्र की स्थापना की गई है। तथापि वहाँ भी उदार लोकतंत्र बहुत सीमा तक सफल नहीं हुआ है। अल्जीरिया या घाना या इथोपिया अथवा मिस्र किसी भी देश को सँ हमें सर्वत्र यही दिसलाई पड़ेगा कि इन सभी देशों में निर्वाचित एकतंत्र की स्थापना की गई है।

अफ्रीका में साम्यवादी प्रभाव अभी तक बिलोप रूप से उप नहीं हो पाया है, तथापि यह बात ध्यान देने योग्य है कि साम्यवादी देशों ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध अफ्रीकावासियों के संघर्ष को सैद्धिक बल पहुँचाने में सक्रिय सहायता की है। इनमें अमुधा सोवियत सब रहता है। यह समय समय पर समुद्र राष्ट्र नरुब में और उसके बाहर अफ्रीकन जनता की स्वाधीनता का समर्थन करता रहा है। कांगो के प्रथम प्रधानमंत्री पेट्रिस लुमुम्बा की मृत्यु पर मास्को में एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्रोहविरोधसभ की स्थापना की गई थी जिसमें प्रायः सभी अफ्रीका के विभिन्न देशों के विद्यार्थी वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस तरह सावियत सब अफ्रीका में साम्यवाद का प्रचार प्रसार करने लगे हैं। यही नहीं उसने स्वयं को अफ्रीका के थम साम्योसर्गों के माथ जोड़ने की चेष्टा की है और अफ्रीका के गरीब देशों को आर्थिक सहायता कर जनजी पर्याप्त सहानुभूति प्रकृत कर सी है। फिर भी अफ्रीका के राष्ट्र

इस बात से घबराया नहीं है कि साम्यवादी देश उनके प्रति सहानुभूति तो रखते हैं लेकिन यह भी चाहते हैं कि फ़ीका में साम्यवाद की स्थापना हो। फ़ीका महाद्वीप में भी चीन सोवियत संघ का प्रतिद्वंद्वी है। सोवियत संघ और चीन दोनों ही फ़ीका के देशों का अपने-अपने साम्यवादी ढंग से प्रभाव में लाना चाहते हैं। इसी दृष्टि से दोनों देशों के उच्च नेताओं फ़ीका के विभिन्न देशों के दौरे करते रहे हैं।

फ़ीका की समस्या न केवल राजनीतिक अपितु एक बहुत बड़ी सीमा तक धार्मिक और भौतिक भी है। धार्मिक दृष्टि से फ़ीका के देश बहुत धार्मिक पिछड़े हुए हैं यद्यपि प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से फ़ीका संसार का एक साम्राज्यवादी देश है। जब तक साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शक्तियाँ फ़ीका महाद्वीप के विनाश प्राकृतिक साधनों का शोषण अपने लिए करती रही थीं परन्तु अब इनका उपयोग राष्ट्रीय हितों में होना है। फ़ीका के देश इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि विकसित देश उन्हें बाँधित धार्मिक और प्राविधिक सहायता दें किन्तु साथ ही उनकी सम्प्रभुता और स्वतन्त्रता पर भी किसी प्रकार की बाधा न पा पाये। अब यह सम्भव नहीं है कि फ़ीका महाद्वीप के देश पारस्परिक भौतिक-उत्पादन के लिए बाजार बन कर खड़े जाएँ।

फ़ीका के विभिन्न देशों की एक मज्बूत राजनीतिक समस्या खेत यूरेशियनों की है जिनके पूर्वज यूरेशियन देशों से आकर फ़ीका में बस गये थे। यद्यपि फ़ीका की जनता की तुलना में ये लोग धर्मग्रन्थ धर्म संख्या में हैं, लेकिन दीर्घकाल तक फ़ीकावासियों पर शासन करने के कारण उनके मन में उच्चतम की भावना बर किये हुए हैं। साथ ही उनके अपने विविध धार्मिक स्वार्थ भी हैं। फ़ीका के मूल निवासी इन गौरे उपनिवेशकारियों का बुरा और अनिश्वास की दृष्टि से देखते हैं। उच्च फ़ीका की रणभेद-नीति ने संपूर्ण संसार के समस्त निर्लेखक रूप से यह स्पष्ट कर दिया है कि बड़ा के गौरे उपनिवेशकारी मानवीय न्याय और सम्मानता की समस्त मयावाओं को साध कर अपने विविध धार्मिक हितों की पूर्ति के लिए शक्ति के बल पर अपने प्रायकी फ़ीका महाद्वीप में बनाये रखना चाहते हैं।

फ़ीका महाद्वीप की इस संश्लिष्ट ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि के बाद अब हम कुछ प्रमुख फ़ीका देशों की धर्मराष्ट्रीय नीति का संक्षेप में वर्णन करेंगे। इन प्रमुख देशों में सीबिया ट्यूनीसिया मोरक्का बाना नारनीरिया कांगो इथोपिया बुनाण्डा केनिया फ़ीजीरिया रोडेसिया प्रायि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कुछ प्रमुख फ़ीका देश

सीबिया

सीबिया नामक संघारमक राज्य की स्थापना २४ दिसम्बर, १९५१ को इटली के तीन उपनिवेशों-त्रिपोलीतानिया लायबेरिया तथा केनान को

मिलाकर की गई। यह एक राजतंत्रात्मक राज्य है जिसकी जनता अधिकांशतः मुस्लिम मताबलम्बी है। सोबिया अरब सींग का एक प्रमुख सदस्य है और इस नाते उसने अफ्रीका के अरब प्रदेशों की स्वाधीनता के लिए सराहनीय कार्य किया है। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सीबिया एक साधन सम्पन्न देश नहीं है, किन्तु फिर भी उसने स्वयं को संयुक्त राज्य अमेरिका के आर्थिक साम्राज्यवाद से बचाये रखने की सफल चेष्टा की है। दिसम्बर १९३३ से सीबिया संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है और संघ में रहकर अफ्रीकन देशों की स्वतन्त्रता के लिये अर्थ दियाई देशों का साथ दे रहा है।

ट्यूनीसिया

ट्यूनीसिया एक प्राचीन देश है जो उत्तरी अफ्रीका के भूमध्य सागर के तट पर स्थित है। इसकी गणना नी अरब देशों में की जाती है। पाठशास्य सम्प्रदाय से यन्मीर रूप में प्रभावित इस देश का राष्ट्रवाद अतिक्रमणकारी और सामन्तवाद में मुक्त रहा है। अठोस महायुद्ध काल में मई १९४३ में इस देश की पूरी राष्ट्रों से छीन कर बापिन फ्रांस को सौटा दिया गया था। फ्रांस ने ट्यूनीसिया के राष्ट्रवादी आन्दोलन का दमन करने की पूरी चेष्टा की। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों के प्रयासों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस दमन की कटु निन्दा की गई। जुलाई १९५४ में महामन्त्रियों के फ्रांस सरकार और ट्यूनीसिया के राष्ट्रवादी नेताओं से बर्षों की ट्यूनीसिया के सम्बन्ध में कोई ऐसा समझौता कर लें जो दोनों पक्षों के लिए सम्माननीय हो। अन्त में काफी विचार विमर्श और समझौता बार्ता के बाद २० मार्च, १९५६ को फ्रांस द्वारा ट्यूनीसिया की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई और नवम्बर, १९५६ में ट्यूनीसिया संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। ट्यूनीसिया के नेता अफ्रीकन देशों की एकता के विशेष रूप से समर्थक हैं। दुर्भाग्यवश अरब राष्ट्रों के साथ इस देश के सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं। मिस्र मोरक्को और अल्जीरिया के साथ किसी न किसी प्रश्न पर ट्यूनीसिया का विवाद चलता रहा है। फिर भी १९६३ में अरीस-अशाबा विद्रोह सम्पन्न के समय से ट्यूनीसिया अरब पड़ोसियों के साथ संबंध सुधारने की निरन्तर चेष्टा करता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य के रूप में उसने अफ्रीकी एशियाई देशों का साथ दिया है।

मोरक्को

अरब देशों में मार्क्का ही एक ऐसा देश है जो लगभग पिछले १२०० वर्षों तक एक स्वाधीन देश बना रहा यद्यपि इस दोष अरबों में बर्दा अन्याय आर्थिक अग्रगण्य करते रहे। १९१२ में पहली बार मोरक्का की स्वतन्त्रता को घायात पड़ना और उसे फ्रांस का संरक्षण स्वीकार करना पड़ा। यह स्थिति १९१२ से १९५६ तक रही। ४४ वर्ष के इस औपनिवेशिक काल में मार्क्को ने आसता का पूरा स्वाद चखा किन्तु मार्क्को की स्वाधीनता प्रिय जनता मुसामी की बेकियां अतिक्रमण समय तक सहन न कर सकी। फलतः १९५० से ही बर्दा स्वतन्त्रता का आन्दोलन शुरू हो गया। १९५३ में बर्दा अग्रगण्य बर्दा हुए और अनेक युरोपियनों की हत्या कर दी गई।

मोरक्को के मुस्लाम धीर फौज सरकार के बीच काफी संघर्ष बना। अक्टूबर 1913 में मुस्लाम को गद्दी से हटा दिया गया। परन्तु जबकि राष्ट्रवादी अतिव्या मुस्लाम का समर्थन कर रहा था तब नवम्बर 1913 में उसे फिर से गद्दी मिल गई। जब फ्रांस ने सिये मोरक्को को मुस्लाम बनाये गये तब सम्भव न रहा धीर 2 मार्च 1914 को मोरक्को की जनता ने पुनः स्वाधीनता की मांग की। 1914 की फौज यंत्रि ने मोरक्को का एक भाग स्पेन को दिया था धीर टेन्किबर्स का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र बना दिया था। 1914 का स्पेनिस मोरक्को की स्वतन्त्र हो गया। दिसम्बर 1914 में मोरक्को समुक्त राष्ट्र संघ का महसूस गता किया गया।

स्वाधीनता के बाद भी मोरक्को धीर फ्रांस के सम्बन्ध मयूर न बन सके क्योंकि मोरक्को ने इस बात की मांग की कि वहाँ से समस्त फौज खींच ली जाए। इसके प्रतिरिक्त फ्रांस से इस बात पर भी बड़ी लगानती हो गई कि उसने मोरक्को के उस वायुयान को मसन सकेता से अपनी धार मांड लिया जो कुछ अस्वास्थित मठाओं को मोरक्को बाह्य प्रतिनि क रूप में ले जा रहा था। फ्रांस ने इन नेताओं को गिरफ्तार भी कर लिया। इन बातों को देखकर मोरक्को में तूफान उठ उठा हुआ धीर अनेक फौज मायंत्रिकों की हत्या कर दी गई। प्रतिक्षिया स्वल्प फ्रांस ने मोरक्को का धार्मिक महाभवा देता बन्ध कर दिया। परन्तु इसमें मोरक्को हतास नहीं हुआ। उसने फौज धार्मिक सहायता के बन्धन की पूर्ति अमेरिकन धार्मिक सहायता से कर ली धीर बर्से में यह स्वीकार कर लिया कि समुक्त राज्य अमेरिका मोरक्को प्रदेश में सैनिक बर्से को स्थापना कर ले। मोरक्को का अपने पड़ीसी देख माण्डिताधिया के साथ भी सीमा संघर्ष बना धीर इसी कारण 1914 में होने वाले अबीस-अबाबा राष्ट्राध्यक्ष विचार-सम्मेलन में मोरक्को को धार्मिक नहीं किया गया।

इथोपिया

इथोपिया जिसे एबीसीनिया भी कहा जाता था द्वितीय महायुद्ध के बाद स्वतंत्र हो गया धीर 1914 से बने था रहे इथोपिया सम्राट हैन सेलामी ने पुनः शासन का भार सम्हाल लिया। इथोपिया अफ्रीका के सर्वोच्च प्रजातन्त्रीय राष्ट्री में से एक है धीर धार्मिक दृष्टि से उसने स्वयं का काफी मुद्दा कर लिया है। इथोपिया अफ्रीका राष्ट्री की एकता का प्रतीक है। मई, 1914 में सम्राट हैन सेलामी ने अफ्रीकन राष्ट्री के अध्यक्षों के सिलसिले सम्मेलन को धरती राजधानी अदीस अबाबा में धारोचित किया। समुक्त राष्ट्र संघ में भी इथोपिया ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में सुराहनीय भूमिका दिया। फरवरी 1914 में इथोपिया धीर सोमालिया के मध्य सीमा संघर्ष छिड़ गया लेकिन मुद्दा के राष्ट्रपति की मध्यस्थता से दोनों पक्षों ने युद्ध बन्धी समझौता स्वीकार कर लिया।

(7) ✓ कौंगो (अ जेबीस एवं लियोपोल्डविले)
अफ्रीका में दो कौंगो हैं जिनमें से एक फ्रांस के अधीन था धीर दूसरा

बैस्वीयम के । १९६० में दोगों ही कांगो को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई और दोगों ही में मखतभारमक शासन की स्थापना की गई । फंस कांगों की राजनीति में फंस के राजनीतिज्ञ बाद में भी विम्वरणी सेते रहे । प्रगस्त १९६३ में वहां एक राज्य अस्तित्व हुई जिसमें राष्ट्रपति यूसू की सरकार का तस्ता उभट किया गया ।

कांगो (सियोपोस्वियस) का वर्यन समुक्त राष्ट्र संघ के राजनीतिक कार्यों के प्रसंय में किया जा चुका है । • नून, १९६० को यह स्वतन्त्र हुआ और तुरन्त ही एक भयानक घृह युद्ध में फंस गया जिसमें दो महान पसिदान हुए प्रथम प्रजातन्त्री पैट्रिस लुमुम्बा का और द्वितीय संयुक्त राष्ट्र संघ क महा सचिव श्री डाग हेमरसोल्ड का । कांगो ने बिच्छ कटंगा प्राप्त ने बिच्छोह किया जिसका दमन कर दिया गया । संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से कांगो लंड-२ होने स बच गया ।

नाइजीरिया

नाइजीरिया का ब्रिटिश उपनिवेश एक अक्टूबर १९६० को स्वतन्त्र हुआ गया । इसका क्षेत्र फस ३१९१६८ वर्गमास और जनसख्या लगभग ३४०००००० है । यह जनसख्या अफ्रीका क देशों में सबसे अधिक है । नाइजीरिया अफ्रीका का समृद्धतम और महत्वपूर्ण उपनिवेश है । ब्रिटेन इस स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर एक शर्त २ तैयारी करता रहा था और इसलिये स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उसने ब्रिटेन की महारानी को नाम मान क लिए राज्य का अध्यक्ष बनाना स्वीकार कर लिया । १ अक्टूबर १९६३ को नाइजीरिया ने नए संविधान के द्वारा उत्तरी पूर्वी और पश्चिमी देशों को मिलाकर एक संघ बनाया तथा औपनिवेशिक स्वराज्य को समाप्त करके उस दिन एक गणराज्य की स्थापना का गई । नाइजीरिया के नूतपूर्व यवर्नर जनरल डा० एम नामदी धाजीकिवे नाइजीरिया के प्रथम राष्ट्रपति बभाये गये । नाइजीरिया शोध ही अफ्रीका महाद्वीप की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता का एक महान प्रतीक बन गया । मई १९६३ के घरीस अबाबा में अफ्रीकी राष्ट्राध्यक्षों का जो सिलर सम्मेलन हुआ उसमें बाना के तत्कालीन राष्ट्रपति एक मा और नाइजीरिया संघ के प्रजातन्त्री सर अदुबकर तफावा बभाये ने ही नेतृत्व किया ।

नाइजीरिया की संघिया और लोकतन्त्रात्मक परम्परामें पर्याप्त रूप से बूढ़ है और वह लोबता से धार्मिक प्रगति के मार्ग पर बड़ रहा है । संयुक्त राष्ट्र संघ के नाइजीरिया ने उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद और रंगभेद की नीति के बिरुद्ध अय अफ्रीकी-एलियाई देशों के साथ मिलकर संघर्ष किया है । इस देश ने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी निरपेक्ष और मानवीय नीतियों के लिये बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है । यह समझा जाता है कि नाइजीरिया सम्पूर्ण पश्चिमी अफ्रीका क लिये एक आदर्श राज्य हो गया ।

यूगाण्डा

लगभग ६८ वर्षों तक ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत रहने

के पश्चात् यूगाण्डा जी ८ अक्टूबर १९६२ को स्वतन्त्र हो गया। अपनी स्वतन्त्रता के समय ही यह राष्ट्र मंडल का सदस्य बन गया। यूगाण्डा एक संघात्मक राज्य है जिसमें केन्द्रीय प्रदेश के प्रतिरिक्त चार राजतंत्रात्मक प्रांत और एक सामन्तवादी प्रांत सम्मिलित हैं। यूगाण्डा के सामने सबसे बड़ा प्रश्न इन प्रांतों के हितों के साथ सम्बन्ध करके चलने का है। प्राथमिक दृष्टि से यूगाण्डा एक समृद्ध देश है और संयुक्त राज्य अमेरिका को कपास तथा काफी का निर्यात करता है। अक्टूबर १९६३ में यूगाण्डा ने अपने प्रायकी एक गणराज्य घोषित कर दिया और यूगाण्डा प्रांत के सरदार काबाका को अपना अध्यक्ष बनाया। गणराज्य बन जाने के बाद भी यूगाण्डा ने राष्ट्र मंडल की संरक्षता से परित्याग नहीं किया। जनवरी १९६४ में यूगाण्डा सरकार की प्रार्थना पर ब्रिटिश सैनिक बस्ती नहीं भेजी गई ताकि जांतरिक विद्रोह की सम्भावना होने पर वे उग्रता बतन कर सकें। यूगाण्डा ने बड़े आत्मविश्वास के साथ अफीकन राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व किया है। यह राष्ट्र भी अन्य अफीकन राज्यों की भांति रंगभेद नीति और पश्चिमी राष्ट्रों के साम्राज्यवाद का विरोधी रहा है।

केनिया

केनिया यूगाण्डा के उत्तर पूर्व में स्थित है। इस देश का कुल क्षेत्रफल लगभग २ लाख २५ हजार वर्गमील और आबादी लगभग ६५ लाख है। द्वितीय महायुद्ध के बाद केनिया में जो कि उस समय ब्रिटिश उपनिवेश या स्वातन्त्र्य आन्दोलन बहुत तीव्र हो गया। इस आन्दोलन का नेतृत्व केनिया के सबसे पुराने राष्ट्रवादी नेता श्री जोमो केन्याटा २०वीं सताब्दी की प्रथम दशक की शुरुआत से ही कर रहे थे। वस्तुतः केनिया के साथ जोमो केन्याटा का नाम उसी प्रकार जुड़ा हुआ है जिस प्रकार फुल से सुयन्त्र। एशिया और अफीका की शरती पर शायद ही कोई ऐसा धारणी होगा जो अफीका में राष्ट्रीयता का प्रथम संघ पूरने वाले जोमो केन्याटा का नाम न जानता हो। १९४८ में केनिया के राष्ट्रवादी वर्गों ने मिल कर केनिया जैसे अफीकन संघ का निर्माण किया। उसका अध्यक्ष श्री केन्याटा को ही बनाया गया। ब्रिटिश सरकार केन्याटा के राष्ट्रवादी वर्गों के प्रति हमनकारी नीति बरतने लयी। दून १९५३ में केनिया अफीकन संघ का उसने कठोरतापूर्वक हमन किया और केन्याटा का गिरफ्तार करके ७ वर्ष का दण्ड दिया गया। १९५६ के प्रारम्भिक दिनों में जब लन्दन में केनिया पर सर्वज्ञानिक सम्मेलन हुआ तो उसमें अफीका ने मांग की कि केन्याटा को रिहा करके सम्मेलन में भाग लेने के लिए संदेन बुलाया जाए, परन्तु ब्रिटिश सरकार न वह बात स्वीकार नहीं की।

कारावास की अवधि समाप्त होने पर अपनी रिहाई के बाद जोमो केन्याटा ने अपने देश को केनिया अफीकन नतनत प्रुनियन (कांग्रु) के नाम से संगठित किया और अपने देश के लिए स्वतन्त्रता की सड़ाई जारी रखी। प्राथमिक बिजत हो कर बिजनेस को केनिया की स्वतन्त्रता के बारे में निर्णय करना पड़ा। अगस्त १९६३ में वहाँ द्वि-सहभात्मक संघर्ष के लिए निर्वाचित

कार्य किया जिसमें प्रतिनिधि सदन के ११२ में से ६२ स्थान जोमो बेन्याटा के दल को प्राप्त हुए ३२ स्थान विद्रोही दल काडू (Kadu) का प्राप्त हुए, ८ स्थान काडू की समर्थक अफ्रीकन पीपुल्स पार्टी को मिले और शेष स्थान स्वतन्त्र उम्मीदवारों ने जीते। निर्वाचन में जीतने के पक्षस्वरूप १३ नव १९६९ को जोमो बेन्याटा के मंत्रित्व में केनिया की प्रथम अफ्रीकन सरकार का निर्माण हुआ। १४ जून को मन्वीमण्डस के प्रमुख सदस्य और राष्ट्रवादी नेता थो टाम एमवोया संभन गये और उन्होंने केनिया की पूर्ण स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश सरकार को सहमत कर लिया। किन्तु इस समय ही केनिया का अपने पड़ोसी गणराज्य सोमालिया के साथ संघर्ष हा गया। संघर्ष सोमालिया की इस माँग पर हुआ कि सोमालिया बहुमत्या भाषा उत्तरी सीमागत क्षेत्र उसे सौटाया जाए। केनिया अपने देश का कोई भाग छोड़ने को तैयार न था। अन्ततः, संघर्ष और संघि चर्चायें असफल हो गई तथा यह सीमागत क्षेत्र केनिया का अङ्ग ही बना रहा। १२ दिसम्बर १९६३ को केनिया एक स्वतन्त्र देश बन गया और उसे सर्वसम्मति से राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना लिया गया। इसके तौघ बाद ही केनिया ने संयुक्त राष्ट्र मंच की सम्प्रतिता भी प्राप्त कर ली। जनवरी, १९६४ में केनिया की सेना की घोर से विद्रोह की आशंका होने पर प्रधानमंत्री जोमो बेन्याटा की प्राबन्धा पर वहाँ ब्रिटिश कौबू भेजी गयीं जिसने शांति की स्थापना की। दिसम्बर, १९६४ में केनिया ने अपने घापको एक गणराज्य घोषित किया और थो बेन्याटा इस गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बने।

केनिया अफ्रीका में भीनी साम्राज्यवाद का प्रबल विरोधी और स्वतंत्र मोक्षवात्मक समाजवादी और संगठित अफ्रीका का समर्थक है।

घाना

पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटेन का एक उपनिवेश मोरूड कोस्ट था। वहाँ की जनता प्रीपनिवेशिक दासता से छुटकारा पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही। द्वितीय महायुद्ध के बाद वहाँ युनाइटेड मोरूड कोस्ट जनसंघन नामक एक दल की स्थापना हुई जिसके नेता डा० जे० बी० येकाह और डा० नबामे एक मा थे। मार्च १९४२ में डा० एन्क्रूमा प्रधान मन्त्री पद पर प्रासीन हुए और जुलाई १९४३ में ब्रिटेन की सहमति से मोरूड कोस्ट एक स्वतन्त्र प्रमुखा सम्पन्न राज्य के रूप में प्रादुभूत हुआ। बाद में ब्रिटिश टोगोलैड के माच मिल कर १९४७ में मोरूड कोस्ट घाना के नाम से एक गणतन्त्रात्मक मण बन गया और वहाँ अध्यक्षारत्मक शासन की स्थापना की गई। राष्ट्रपति पर डा० एन्क्रूमा को मिला जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अक्षमतावादी नीति का अनुसरण करने की घोषणा की। जुलाई १९६० में उन्होंने अक्षमतावादी राष्ट्रों के सम्मेलन का सुम्न्यव दिया और इस प्रकार १९६१ में होने वाले बेनयेड सम्मेलन के स्वप्न दृष्टाओं में से वे एक बने। डा० एन्क्रूमा न बेनयेड सम्मेलन में प्रमुख भूमिका घरा की। भारत पर चीन के घात्रमण के ममद जब लंका की तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीमति भंडारनायके ने समझा पर विचार करने के लिए तटस्थ देशों का एक सम्मेलन आयोजित किया तो

जाना ने भी उसमें भाग लिया। समुक्त राष्ट्र सत्र में जाना उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और दक्षिण अफ्रीका की रणनीति के विरुद्ध बोसता रहा। पर्यटन प्रवाहों में जाने वाले अफ्रीकन राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन में भी डा० एम्बुमा ने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया और यह मत प्रकट किया कि अफ्रीकन देशों को क्षेत्रीय संगठनों के निर्माण से दूर रहना चाहिए। उन्होंने बड़ी मत्त प्रकट किया कि सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप को मिस्र पर एक सत्र बनाने की बिना में अग्रसर होना चाहिए। डा० एम्बुमा ने इस बात की स्पष्ट शक्तियों में घोषणा की कि अफ्रीका की भूमि पर किसी प्रकार की घोरि सरकार रहन नहीं की जानी चाहिए, चाहे वह दक्षिणी रोडविया में हो या दक्षिणी अफ्रीका में। कांगो में समुक्त राष्ट्र सत्र की सेनामें भेजे जान में जाना का विशेष हाथ था।

जाना राष्ट्र मंडल वियतनाम-संघि मिशन के सदस्य क सम् में वियतनाम में शांति स्थापित करने की चेष्टा में संलग्न रहा और राष्ट्रपति एम्बुमा इस समस्या के निदान के लिये विदेश यात्रा पर गये। किन्तु पीछे से सैनिक अधिकारियों ने उनकी सरकार का उस्ता पलट दिया। तब डा० एम्बुमा गिनी की राजधानी केनाका पहुंच गये जहाँ के राष्ट्रपति ने अपने पद का छोड़कर उन्हें राष्ट्रपति बना दिया। वहाँ से डा० एम्बुमा जाना की विद्रोही सरकार को हटाने के प्रयत्न में लय गये किन्तु अभी तक उन्हें इन विस्तार में सफलता नहीं मिल पाई है।

(6) ✓✓ अल्जीरिया (Algeria)

भूमध्य सागर क तट पर ही अफ्रीका का एक प्रम्य अरब देश अल्जीरिया है। उनके एक मोर द्मुनिहिया और दूसरी मोर मोरक्को के देश है। १९६३ की अठ्ठाथी का प्रारम्भ में अल्जीरिया एक फ्रेंच उपनिवेश था। इस पर फ्रांस का अधिकार १८३० में प्रारम्भ हो गया। अल्जीरिया के कारण यहाँ पर्यटन संख्या में खासिरी प्राकर बस गये और उन्होंने अल्जीरिया के सभी भूमानों और प्राकृतिक साधनों पर अपना अधिकार बना लिया।

अल्जीरिया की जनता ने फ्रेंच शासन को कभी भी हथकड़े स्वीकार नहीं किया। प्रम्य धीपनिवेशिक देशों की ही भांति अल्जीरिया ने भी फ्रेंच धीपनिवेशिक शासन के जाने आत्मतर्पण करने की बात कही नहीं मोची। उनका स्वाधीनता-संग्राम एक सन्ने समय तक सशर के स्वतंत्र्य में मिया ने लिए बुल-वई का विषय बना रहा। अल्जीरिया का राष्ट्रीय आन्दोलन सन् १९२१ में मुसरित हुमा जब उसमें अपने देश की स्वतंत्रता के लिए स्पष्ट ३.६० में मांग की। स्वाधीनता के मध्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय धा रोसन ने ७ बुलाई १९६१ को एक राष्ट्रीय मोर्चे का निर्माण किया जा "राष्ट्रीय स्वाधीनता का मार्ग" (Froot of National Liberation, F N L) के नाम से प्रख्यात हुआ।

राष्ट्रीय स्वाधीनता के मोर्चे के नेतृत्व में १ नवम्बर १९४४ को फ्रेंच शासन के विरुद्ध समस्त संघाम प्रारम्भ हो गया जो १९६२ तक लगातार चलता रहा और जिसमें दोनों ही पक्षों के लोग साजों की मंजुरी में फौज मजदूरों की तरह मारे गये। एक फ्रेंच विवरण के अनुसार १९६१ तक इस युद्ध में १ लाख ४१ हजार मुस्लिम विद्रोही सैनिक और १६ हजार २२० फ्रेंच सैनिक मारे गये। इसके विपरीत प्रन्सीरिया के राष्ट्रवादी नेताओं के कथनानुसार लगभग १० लाख से भी अधिक प्रन्सीरियाइयों को अपने स्वाधीनता संघाम में प्राणों की बाहुति देनी पड़ी थी। प्रन्सीरिया में युद्ध का बंद करने के लिए धनेक प्रयास हुए लेकिन वे सब व्यर्थ गये। यह प्रश्न मसुक्त राष्ट्र संघ में भी उठाया गया किन्तु फ्रांस की हठधर्मिता के कारण वहाँ कुछ न हो सका। प्रन्सीरियावासियों ने अपने स्वाधीनता-संघाम को मफलतापूर्वक संचालित करने के लिए काहिरा में फरवृठ प्रन्सास की अध्यक्षता में नवम्बर १९६८ में प्रन्सीरिया की एक मसाम्मर सरकार की स्थापना की। इस सरकार को शीत में प्रबिंसम्ब माग्वाता प्रवास की। यद्यपि मोबियत सभ ने इसे माग्वाता ही की तथापि इसके माघ उसकी सहामुधुति प्रत्यक्ष स्पष्ट थी।

मीयण गकरंजित संघाम और फ़ोडरतम दमनकारी उपायों के उपरान्त भी जब प्रन्सीरिया के राष्ट्रवादियों को धारम-समर्पण के निय मुकाया न जा सका तो फ्रेंच साम्राज्यवादियों ने यह निश्चय किया कि प्रन्सीरिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर वहाँ जनमत संग्रह कराया जाय। फ्रेंच राष्ट्रपति डिगॉस ने धारम निर्णय और जनमत के धांधल पर प्रन्सीरिया को स्वतन्त्रता देने का धाडसासन दिया। स्वाधीनता संघाम के सेनानियों की धीर में यह मान की गई कि जनमत-संग्रह करने में पूर्व फ्रेंच सेना प्रन्सीरिया से हटा ली जाय किन्तु डिगॉस इसे मानने के लिए तैयार न था। फरवृठ प्रन्सास ने अपने धनुषाधारियों को मठवान न करने का धावेस दिया। किन्तु फिर भी जनवरी १९६१ में जनमत संग्रह का कार्य हुआ जिसमें लगभग डेड करोड लोगों ने प्रन्सीरिया में स्थापित शासन स्थापित होने के पक्ष में और पचाम लाख लोगों ने इसके विपक्ष में मत दिये। परन्तु डिगॉस द्वारा प्रन्सासित स्थापित शासन प्राप्त करने पर भी प्रन्सीरिया पूर्ण स्वतन्त्र नहीं होता था क्योंकि किसी न किसी रूप में उस पर फ्रांस का अधिकार बना ही रहता।

कुछ दिनों बाद प्रन्सीरिया की समानास्तर सरकार ने गार्तामाघ का एक अधनाया और यह संभव प्रतीत होने लगा कि प्रन्सीरिया की समस्या का कोई समाधान हो जायगा। इसी बीच डिगॉस की प्रन्सीरिया-नीति में अस्त्युष्ट कुछ फ्रेंच सैनिक अधिकारियों ने २२ अप्रैल १९६१ को महमा प्रन्सीरिया पर आक्रमण करके उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। किन्तु डिगॉस द्वारा इस सैनिक विद्रोह का कुचस रिया गया और मई १९६१ में इदियत में प्रन्सीरियन राष्ट्रध दिनों के साथ समझौता-बार्ता शुरू की गई जो मफल नहीं हुई। नवम्बर १९६१ में एक दूसरा सम्मेलन हुआ और राष्ट्रपति डिगॉस ने स्वतन्त्र प्रन्सीरिया के साथ एक समझौता करने की धोरण की। १८ मार्च १९६२ को फ्रेंच सरकार की धीर से घोषणा की गई कि

अल्जीरिया और फ्रांस के बीच कुछ विराम समझौता हो गया है। अतः में १ जुलाई १९६२ को अल्जीरिया स्वतन्त्र हो गया और इस प्रकार एक महान् स्वतन्त्रता संग्राम का अन्त हुआ।

२२ अक्टूबर १९६२ को अल्जीरिया संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया और तब से वह अफ्रीका में विकासशील राष्ट्र का प्रतीक बना हुआ है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद अल्जीरिया की राजनीतिक स्थिति कुछ बाँबा-बाज हो गई। वहाँ के दो नेताओं बेनबेसा और बेनबोदा के बीच सत्ता प्राप्त करने के लिये संघर्ष शुरू हो गया। स्वतन्त्र अल्जीरिया के प्रथम प्रधानमंत्री बनबोदा बन थे परन्तु शीघ्र ही बेनबेसा ने सत्ता अपने हाथ में ले ली और बीरे-बीरे बोडी के समी राष्ट्रवादी नेताओं जैसे बनबोदा बिसकाधिम करीम और फरहूठ अम्बास को सत्ता से अ्थुत कर दिया। सितम्बर, १९६३ में अल्जीरिया में एक अध्मछात्मक शासन की स्थापना कर ली गई और बेनबेसा राष्ट्रपति बन गए। बेनबेसा के सत्ता ग्रहण करने के बाद फ्रांस और अल्जीरिया के सम्बन्धों में पुनः विचारक भा गया। अल्जीरिया ने एक तरफ तो सहारा की मरुभूमि में फ्रेंच धरतु-परीक्षणों का विरोध किया और दूसरी ओर युरोपियनों की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण शुरू कर दिया। अल्जीरिया की इस नीति से फ्रांस बड़ा दुःख हुआ। फ्रांस का मन अल्जीरिया के प्रति तब और भी अधिक लंकातु हो गया जब अल्जीरिया द्वारा न केवल संयुक्त धरतु गणराज्य के राष्ट्रपति कर्नेल गासिर को ही बल्कि साम्यवादी न्यूवा के प्रधानमंत्री फिरेल-कास्ट्रो को भी धामनित किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रारम्भ में तो अल्जीरिया ने समाजवादी दृष्टिकाण का प्रतिपादन किया किन्तु तदनन्तर उसकी नीति में परिवर्तन दृष्टिमोक्षर हान लगा। जुलाई १९६३ में अल्जीरिया में साम्यवादी दल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और उसने अन्तन्ततावादी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का धनुसगुण करने की घोषणा की। परन्तु फिर भी सोवियत संघ ने उसे धार्मिक सहायता बना जारी रखा। उसे ब्रिटेन और अमेरिका से भी धार्मिक सहायता प्राप्त होती रही। सितम्बर १९६३ में अल्जीरिया को कुछकुछ का सामना करना पड़ा जिसे राष्ट्रपति बेनबेसा ने पूरी शक्ति से रखा दिया। तदनन्तर १९६३ में मोरक्का के साथ उसका सीमा-संघर्ष खिड़ गया जो पारस्परिक बातों के फलस्वरूप फरवरी १९६४ में समाप्त हुआ।

बेनबेसा का शासन भी अधिक समय तक नहीं चल सका। जून १९६५ में अल्जीरिया के उप-प्रधानमंत्री और प्रतिरक्षामंत्री कर्नेल बुमेहीन के मृत्यु में एक सैनिक अ्थि हुई और राष्ट्रपति बेनबेसा को धपवस्य कर दिया गया। कर्नेल बुमेहीन ने बेनबेसा पर तानाशाही का आरोप लगाया और घोषणा की कि इतिहास में तानाशाहों के माथ जिस प्रकार का व्यवहार किया गया है वैसे ही बेनबेसा के साथ किया जायगा। बेनबेसा को धपवस्य

करने के बाद कर्मस बुमेहीम नबीम पस्त्रीरियम सरकार के घष्यस बन गय । पस्त्रीरिया की मई सरकार ने घोषणा की कि यह फ्रांस के साथ सहयोग करीगी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अर्धतन्त्रता की नीति पर दृढ़ रहेगी ।

दक्षिणी रोडेसिया का संकट (The Crisis of South Rhodesia)

अम्बेजी नदी तथा उत्तरी हांसवान के मध्य में स्थित दक्षिणी रोडेसिया घषीका का एक देश है । इसके पूर्व में पूर्वनामी पूर्वी घषीका और पश्चिम में बुरुआनालैंड है । इस देश का क्षेत्रफल १ लाख ५० हजार ३३३ वर्गमील है । यहाँ की घषीकी जनसंख्या ३८ लाख यूरोपियन २ लाख और अन्य देशवासी मयमन १५ हजार है । इस प्रकार यहाँ गोरे और घषीकीयाँ का अनुपात १ : १२ है । ११ नवम्बर, १९६५ को इमानस्मिथ के प्रधानमन्त्रि में यहाँ की श्वेत सरकार ने ब्रिटेन के खिलाफ एक तर्फा स्वतन्त्रता की घोषणा (Unilateral Declaration of Independence) करके एक महान् अन्तर्राष्ट्रीय संकट काड़ा कर दिया । इस संकट का बर्तन करने से पूर्व दक्षिणी रोडेसिया की राजनीतिक व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दो अन्ध निम्न देना उचित होगा ।

प्राथमिक दक्षिणी रोडेसिया में १६ वीं शताब्दी में मसोने और मतबिले नामक दो राज्य थे । १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सोसिल रोड नामक एक महान्बनायी घ घेज ने इस क्षेत्र में प्रवेश करके इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया । दक्षिणी और मध्य घषीका में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार के उद्देश्य से ब्रिटिश साठव घषीका कम्पनी का प्रथम व्यवस्थापक और साम्राज्यवाद के प्रथम प्रसारक इसी सोसिलरोड के नाम पर कम्पनी में स्वामीय सरदारों से प्राप्त किये गये उक्त विज्ञान प्रवेश को रोडेसिया का नाम दिया । उत्तर-पश्चिमी रोडेसिया तथा उत्तर-पूर्वी रोडेसिया को मिला कर उत्तरी रोडेसिया और शेष भाग दक्षिणी रोडेसिया कहलाया । इन दोनों पर ब्रिटिश साठव कम्पनी का शासन चलता रहा । २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दक्षिणी रोडेसिया में काफी संख्या में यूरोपियन आकर बसने लये । १९२१ में यहाँ एक मतदान हुआ जिसमें यह पृष्ठा गया कि दक्षिण रोडेसिया के यूरोपियन दक्षिण-घषीका युनियन के साथ मिलना चाहते हैं अथवा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रखना चाहते हैं । मतदान पूर्वक स्वशासित रहने के पक्ष में हुआ और परिणामस्वरूप १९२३ में दक्षिण रोडेसिया एक स्वशासित देश बन गया जिसका प्रभुत्व ब्रिटेन के हाथों में रहा । यहाँ का शासन विधान इस प्रकार बनाया गया कि घषीकी जनता पर मुद्दीकर गोरे का शासन बना रहे ।

१९५३ में ब्रिटिश सरकार ने उत्तरी रोडेसिया (जिसका शासन ब्रिटेन ने १९२४ में अपने हाथ में ले लिया था), दक्षिणी रोडेसिया और न्यासालैंड (रोडेसिया का पड़ोसी देश जिस पर ब्रिटेन ने १८९१ में अधिकार

कर लिया था) को मिलाकर 'मध्य अफ्रीकी संघ' (Central African Federation) बना जाया। उत्तरी रोडेशिया और न्यासासैण्ड के लोगों द्वारा इस संघ का विरोध किया गया लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। यह संघ यूरोपियन प्रभाव से प्रसिद्ध था और 'सका शासन यूरोपियन साम्राज्यवाद का बीठा बायता ममूता। इस संघ में अफ्रीकन लोगों की बहुसत्ता थी। यूरोपियनों और अफ्रीकनों का अनुपात कमसे कम इस प्रकार था— दक्षिणी रोडेशिया—१ १२ उत्तरी रोडेशिया १ ४२ एवं न्यासासैण्ड—१ ३०८। संघ की कुल ७९ लाख घाबारी में से ७३ लाख अफ्रीकन थे। किन्तु फिर भी उनका बीबन पराधीनता का था। संघ के संविधान में यह व्यवस्था की गई कि विधान सभा की कुल ११ सीटों में से ५३ सीटें निर्वाचन से भरी जाय। लेकिन निर्वाचन की योग्यता इस प्रकार रखी गई थी कि कोई अफ्रीकी चुनाव में लड़ा नहीं हो सके। निर्वाचक कानून इस प्रकार का बनाया गया कि हायद ही कोई अफ्रीकी उसकी योग्यता पूरी कर सके। इसीलिये संघ के जो प्रथम चुनाव हुए उसमें लड़ा दक्षिणी रोडेशिया के ५० हजार यूरोपियनों को मतदान का अवसर मिला वही अफ्रीकी मतदाताओं की संख्या केवल ४२१ ही रही। उत्तरी रोडेशिया में तो मतदान का अवसर केवल तीन अफ्रीकियों को प्राप्त हुआ।

उत्तरी रोडेशिया और न्यासासैण्ड अफ्रीकी संघ से बसग होकर अपनी स्वतन्त्रता की मांग करने लगे। विरोध बढ़ जाने पर रोडेशिया और न्यासासैण्ड के मन्त्रियों पर विचार करने के लिये १९६० में संघ में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में विख्यात अफ्रीकन नेता हेस्टिंग्स बोम्बा प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं के साथ सम्मिलित हुए। गोरों की तरफ से संघ के प्रधानमंत्री रायबेसेम्स्की ने भाग लिया। अफ्रीकन राष्ट्रवादियों द्वारा यह मांग की गई कि न्यासासैण्ड को संघ से पृथक् करके स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किया जाय। परन्तु रायबेसेम्स्की ने इस मांग का वृद्धता से विरोध किया। वास्तव में मध्य अफ्रीका संघ को बनाये रखने में धूर्ततापूर्ण काम यह थी कि इन तीनों देशों में द्विदिश शासन को समाप्त करके स्थानीय गोरों की सरकारें बना दी जायें। प्रश्न में बहुत बान विचार के बीच संघन सम्मेलन अनफल हुआ गया और संघ यथावत् कायम रहा।

प्रमस, १९६० में संघ के प्रधानमंत्री बेसेम्स्की ने संघ को बनाये रखने की और अफ्रीकियों के विरोध को कुचलने की एक नई कूनीतिक बात बनी। उनसे विधान सभा को भंग करके २७ प्रमस १९६० को नये चुनाव करवाने की घोषणा की जिसमें जनता को यह निश्चय करना था कि संघ कायम रहे या नहीं। किन्तु अफ्रीकनों ने इस निर्णय का घोर विरोध किया क्योंकि वे जानते थे कि गाने वादावायों की तुलना में बहुत ही कम अफ्रीकनों को मतदान का अधिकार मिल पायगा। इसीलिये सभा अफ्रीकी राष्ट्रवादियों ने घोषणा की कि वे चुनाव का बहिष्कार करेंगे और किसी भी हालत में संघ में नहीं रहेंगे। प्रम ६ मही सरकार ने अफ्रीकियों की राष्ट्रवाद की भावना में दुष्प्रभाव डालने का प्रयत्न किया परन्तु यथावत् काम नहीं चला।

दिया। धरतीकी नेताओं को मिरपत्तार कर लिया गया और शांति व्यवस्था की रक्षा के नाम पर न्यूनतम नागरिक स्वतन्त्रता भी छीन ली गई किन्तु धरतीकी जनमत उत्तरोत्तर प्रबल होता गया। विश्व हाकर बेनेन्सकी सरकार को सभी नेताओं को मुक्त करना पड़ा जिन्होंने स्वतन्त्रता की अपनी मांग फिर बुलाने की। ब्रिटेन का संघ पर प्रभुत्व था किन्तु उसने बेनेन्सकी सरकार की मनमानियों को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की क्योंकि उसकी सहानुभूति तो मोरों के साथ थी।

धीरे-धीरे संघ में राष्ट्रवाद की लहर इतनी प्रबल हो गई कि ब्रिटिश सरकार न संघ की कार्यप्रणाली पर पुनर्बिचार करके प्रतिवेदन पेश करने के लिये मोकटन कमीशन नियुक्त किया। परन्तु इस कमीशन में धरतीकियों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र का था। इसके निराशाजनक प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से यही भक्ति किया गया कि संघीय रूप को बिनष्ट करने के बजाय उसमें उचित सुधार करना ही मञ्जूर रहेगा। किन्तु फिर भी कमीशन धरतीकन राष्ट्रीयता को पूर्ण उपास नहीं कर सका भी उस यह कहना पड़ा कि संघ की किसी इकाई को पृथक् होने की छूट कुछ जतों क माघ वा निर्दिष्ट धरों व बाद की जा सकती है। दूसरे पक्षों में कमीशन के प्रतिवेदन में धरतीकियों की स्वतन्त्रता की मांग साररूप में स्वीकार कर ली गई।

बेनेन्सकी सरकार ने मोकटन कमीशन की रिपोर्ट को पूरुत ठुकराते हुए धरतीकियों पर हमम बरक बसामे के लिये ब० पमाने पर यूरोपियन सेना को सन्धिगत करना शुरू कर दिया। दिसम्बर, १९६१ में ममस्या पर बिचार करने के लिये लदन में द्वितीय गोसमेज सम्मेलन हुआ किन्तु कोई निष्पत्ति नहीं लिया जा सका।

ब्रिटिश सरकार समझती हुई धरतीकन राष्ट्रीयता की अधिक समय तक उपास नहीं कर सकी और १९६३ में मध्य धरतीकन संघ र्घम हो गया। म्यामासैण्ड और उत्तरी रोडेसिया स्वतन्त्र हो गये। आजादी के बाद उत्तरी रोडेसिया जैम्बिया कहलाने लगा और म्यामासैण्ड का नया नाम ममाबी पड़ा। दक्षिणी रोडेसिया अब भी ब्रिटिश प्रभुता में ही बना रहा। बेनेन्सकी ने पदत्याग कर दिया और इधानस्मिथ दक्षिण रोडेसिया के नये प्रधान मन्त्री बने।

दक्षिणी रोडेसिया द्वारा स्वतन्त्रता की एततरका घोषणा

नय प्रधान मन्त्री इधानस्मिथ (Ian Smith) ने अपने पुराने राम के सम्पादते हुए ब्रिटिश सरकार से मांग की कि वह दक्षिणी रोडेसिया को स्वतन्त्र कर दे और साथ ही यह धमकी भी दी कि यदि ब्रिटेन ऐसा नहीं करेगा तो दक्षिणी रोडेसिया की सरकार अपनी ओर से स्वतन्त्रता की घोषणा कर लेगी। ब्रिटेन द्वारा १९६१ में दक्षिणी रोडेसिया में त्रिम सन्धिगत को लागू किया गया था उसमें धरतीका की जनता का मतानिगार बहुत ही सीमित था। देश भर में २ लाख लोगों ने से ६६ हजार ध्यक्ति

मठदाता से जब कि ३८ लाख बांकीकों में से केवल ११ • व्यक्ति ही मठदाता थे। दक्षिणी रोडेजिया की पूरी सरकार ऐसी स्वतन्त्रता चाहती थी जिसमें वहाँ रहने वाले २ लाख लोगों का ८८ लाख बांकीकों पर स्वार्थ प्रभुत्व बसा रहे। परत अपनी स्थिति सुबूढ़ करने के लिये इमान्दारी सरकार ने मई १९६३ में इसी संविधान के अन्तर्गत चुनाव करवाये जिसके परिणामस्वरूप गरीब सरकार को प्रबल बहुमत प्राप्त हुआ और अब वह ब्रिटिश सरकार से दक्षिणी रोडेजिया को स्वतन्त्रता प्रदान करने की मांग पर उत्तरोत्तर बस देने लगी।

स्पष्ट था कि उक्त स्वतन्त्रता का अर्थ २ लाख वोटों को ३८ लाख बांकीकों पर निर्दुल्ल हासन करने का अधिकार देना होता। परत ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट सरकार की मांग का विरोध करते हुए इस बात पर बल दिया कि देश के शासन में बहुसंख्यक बांकीकन अर्थ को अधिक बड़ा भाग मिलन चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने यह भी स्पष्ट किया कि स्वतन्त्रता निम्नलिखित बातों के पूरा होने पर ही दी जा सकेगी—

- (i) सब बांकीकन लोगों को मताधिकार प्राप्त हो एवं
- (ii) गरीब लोगों के लिए सुरक्षित किए गये विधेय प्रदेसों की व्यवस्था समाप्त कर दी जाय।

परन्तु इमान्दारी स्पष्ट की पूरी सरकार इन बातों को मानने के लिए तैयार नहीं हुई क्योंकि इन से उक्त प्रभुत्व और अस्तित्व समाप्त हो जाने की आशंका थी। स्पष्ट सरकार ने ब्रिटिश सरकार से मई १९६३ के निर्वाचन के आचार पर ही स्वतन्त्रता देने की मांग की। चूँकि ब्रिटिश सरकार को यह मांग भी स्वीकार्य न थी परत वोटों में कोई समझौता न हो सका। इसी दौरान स्पष्ट सरकार की हुरकतों से आसक्ति होकर कुछ बांकीकन राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में दक्षिणी रोडेजिया का प्रश्न उठाया और महासभा में अनेक बार इस आशा के प्रस्ताव स्वीकृत हुए कि प्रजातांत्रिक ग्याय के आचार पर दक्षिणी रोडेजिया को स्वतंत्र करना चाहिये।

अक्टूबर १९६३ में संसद में इमान्दारी स्पष्ट और ब्रिटिश प्रधानमंत्री बिस्मन ने मिल कर इस समस्या का समाधान करने का निष्पन्न प्रबल किया। समय का कहना था कि रोडेजिया के समाप्तकार, सुबिहित एवं उत्तरदायी बांकीकी नेता उसके साथ हैं तथा केवल जनपद और साम्यवादियों द्वारा बहुकामे हुए बांकीकी ही उमका विरोध कर रहे हैं। सम्मेलन की अवसलता पर स्पष्ट ने स्वदेश बापिस लौटने पर यह जोषणा कर दी कि यदि ब्रिटिश सरकार द्वारा उसकी सजों पर स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की गई तो वह मजबूर हो कर एकपक्षीय स्वतन्त्रता की जोषणा कर देगा। इसी और ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट को इस बात की स्पष्ट चेतावनी दी कि वह इस प्रकार एक-पक्ष द्वारा की जाने वाली स्वतन्त्रता की जोषणा (Unilateral Declaration of Independence) को राजद्रोहपूर्ण कार्य समझेगी और दक्षिणी रोडेजिया के विरुद्ध आसिक प्रतिबन्ध सजाने की

विषय हो जायनी तथा इस विद्रोह का कुपसने के लिए सभी संभव उपायों का व्यवसाय करेगी।

परन्तु इस्पान स्मिथ की धर्मसंस्थक गौरी सरकार ने ब्रिटिश नेतावनी की कोई परवाह न करते हुए ११ नवम्बर १९६५ को दक्षिणी राडेजिया की एकपक्षीय स्वतन्त्रता की घोषणा कर ही जिसके परिणाम स्वरूप रोडेजिया सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण सर्वमानिक सकट पैदा हो गया। इस्पान स्मिथ ने समुक्त राज्य अमेरिका के विरोध से बचने के लिए अपने पक्ष में अमेरिकन इतिहास का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उनमें कहा कि वर्तमान समुक्त राज्य अमेरिका के प्रारम्भिक १३ उपनिवेश १८वीं शताब्दी में ब्रिटेन की मातृहठी में थे। उन लोगों ने भी विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्रता की भाषणा की थी। दक्षिणी रोडेजिया भी उन्हीं का अनुकरण कर रहा है। परन्तु इस्पान स्मिथ इस उदाहरण की बुराई करते समय यह धूम गया कि दक्षिणी रोडेजिया और समुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति में बहुत भेद था। अमेरिका में बहुसंस्थक धर्मसंस्थक का कोई प्रश्न नहीं था जबकि दक्षिणी रोडेजिया का मुख्य प्रश्न ही यह था कि क्या धर्मसंस्थक गौरी को बहुसंस्थक प्रकीर्णों पर शासन करने का अधिकार है।

दक्षिणी रोडेजिया को इस एकतरफा स्वतन्त्रता की जायबाही की प्रतिक्रिया सम्पूर्ण संसार में हुई। सबों ने स्मिथ के इस कदम की कट्टर निन्दा की। संसार के लोकमत ने यह मांग की कि ब्रिटेन को हस्तक्षेप करके इस विद्रोह को कुपसना चाहिए। परन्तु संभवत यह समस्त कांड ब्रिटेन की मुक्त सहायुधुति के कारण ही संभव हो सका था और इसीलिए उसने कोई सैनिक कार्यवाही करके विद्रोह को दबाना अनुचित समझा। तथापि संसार के सामने अपनी नेकनीयती जताने के लिए ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि दक्षिणी रोडेजिया को यह एकतरफा स्वतन्त्रता की भाषणा उसे प्रमाय है। दक्षिणी रोडेजिया के ब्रिटिश गवर्नर ने इस्पान स्मिथ और उसके मन्त्रीमण्डल को परबन्धुत कर दिया और ब्रिटेन ने दक्षिणी रोडेजिया के साथ अपने कूटनितिक सम्बन्ध भंग कर दिये। साथ ही ब्रिटेन ने इसका साथ शस्त्रों की बिन्धी पर तथा यहाँ की मुख्य पैदावार तम्बाकू और चीनी की बरीद पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया ताकि आर्थिक परेनोनियों के कारण स्मिथ अपनी नीति बदलने को बाध्य हो जाय। परन्तु दक्षिणी रोडेजिया द्वारा इन बातों की कोई परवाह नहीं की गई। दक्षिणी रोडेजिया के ब्रिटिश गवर्नर ने ब्रिटिश नागरिकों को आदेश दिया कि वे स्मिथ की पैर-कानूनी सरकार से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखे। चीनी रेडियो ने ब्रिटेन की इस सारी कार्यवाही को 'धर्म की बौंस पट्टी' कहा क्योंकि इस्पानस्मिथ की सरकार को केवल दिक्कतों के लिए बर्मानिक रूप से लो परबन्धुत कर दिया गया था परन्तु उसके हाथ से सत्ता छीनने की कोई कोशिश नहीं की गई थी।

१३ नवम्बर, १९६५ को समुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में एक प्रस्ताव द्वारा दक्षिणी रोडेजिया सरकार के कार्य को घोर निन्दा की गई

तथा समस्त सदस्य राष्ट्रों से अनुरोध किया गया कि वे इथान स्मिथ की सरकार को मान्यता (Recognition) प्रदान नहीं करें तथा उसके साथ व्यापार करना बन्द कर दें। यह बात उल्लेखनीय है कि महासभा में यह प्रस्ताव १०६ मतों के बहुमत से स्वीकार किया गया और विरोध में केवल दक्षिणी अफ्रीका और पुर्तगाल के ही दो राष्ट्र थे।

दक्षिणी रोडेसिया की गोरी सरकार की एकतरफा स्वतन्त्रता की घोषणा से अफ्रीका के अन्य राज्य भी भयान्त बुरा हुए। इस समस्या का मुकाबला करने लिए अफ्रीकी-एकता समूह (Organisation of African Unity) की एक बैठक अदीस अबाबा में १ दिसम्बर, १९६२ को हुई जिसमें एक प्रस्ताव पारित करके यह निश्चय किया गया कि यदि १५ दिसम्बर तक ब्रिटेन दक्षिणी रोडेसिया के विद्रोह को नहीं कुचल देगा तो अफ्रीका के सभी स्वतन्त्र राज्य उसके साथ अपने वैश्व सम्बन्ध समाप्त कर देंगे। यह भी निश्चय किया गया कि अफ्रीका का कोई देश दक्षिणी रोडेसिया के साथ किसी प्रकार का आर्थिक सम्बन्ध नहीं रखे और दक्षिणी रोडेसिया से आने-जाने वाले वायुयानों को अपने प्राकार से नहीं गुजरने दें। ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध विच्छेद के निश्चय को १५ दिसम्बर १९६२ को गिनी और लम्बानिया ने कार्यान्वित कर दिया किन्तु अन्य अफ्रीकन देश परिस्थिति का प्रबन्धन करते रहे।

दक्षिणी रोडेसिया के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों का कोई प्रभावकारी परिणाम नहीं निकला क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन के साहाय्यवादी पूंजीपतियों की सहानुभूति स्मिथ की गैर-कानूनी सरकार को प्राप्त रही। दक्षिणी अफ्रीकन संघ और पुर्तगाल के अफ्रीकन उपनिवेशों की सीमायें दक्षिणी रोडेसिया से मिली हुई हैं अतः वहाँ से भी उसे हर तरह का सामान प्राप्त होता रहा।

दक्षिणी रोडेसिया के इस संकट पर सितम्बर १९६१ में लंदन के राष्ट्र मण्डलीय प्रधान मंत्री सम्मेलन में बम्बीरतापूर्वक विचार किया गया। सम्मेलन में भाग लेने वाले अफ्रीकी प्रधान मंत्रियों का मत था कि ब्रिटेन को स्मिथ-सरकार के विरुद्ध वैश्व शक्ति का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध सफल नहीं हो सकते और इस प्रकार के प्रतिबन्धों के दबाव से उसे सही रास्ते पर नहीं लाया जा सकता। किन्तु विश्व लोकमत की अवहेलना कष्ट हुए ब्रिटेन द्वारा अब तक दक्षिणी रोडेसिया की गोरी सरकार के विरुद्ध कोई वैश्व कार्यवाही नहीं की गई है और उसका स्वरूप अत्यन्त नरम पड़ा जा रहा है। आलोचकों का मत है कि ब्रिटेन का व्यवहार गुप्त रूप से स्मिथ सरकार को प्रोत्साहित करने का है। उनका आरोप है कि भूतकाल में इस प्रकार की परिस्थितियाँ एशिया के कुछ देशों में होने पर ब्रिटेन ने वैश्व कार्यवाही करने पर किसी प्रकार की देरी नहीं की थी जबकि दक्षिणी रोडेसिया में गोरी सरकार के विरुद्ध उसने वास्तविक रूप से कोई कठोर स्तर भी नहीं अपनाया है।

ब्रिटेन द्वारा दिसम्बर १९६९ में दक्षिणी रोडेसिया ने माप शांतिपूर्वक तरीके से समस्या का हल निकालने हेतु प्रयत्न किया गया। ब्रिटिश प्रधान मंत्री विस्सन और रोडेसिया के प्रधान मंत्री स्मिथ ने मुजाफ्फर जिब्रास्टर क क्रिकेट H M S Tiger नामक जहाज पर हुई। दोनों प्रधान मंत्रियों में २ दिनों तक मन्त्रणा होने के पश्चात् एक मुष्ट समझौता हुआ और यह बाधा प्रकट होने लगी कि रोडेसिया-मध्य का शांतिपूर्ण हल निकल गया है। परन्तु स्वदेश सौटन पर १० दिसम्बर १९६६ को रोडेसिया क प्रधान मंत्री स्मिथ ने समझौते की किसी बात को मानने से इन्कार कर दिया और अपनी बात पर अड़े रहना पसन्द किया। ब्रिटेन द्वारा विरक्त हो कर समुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में रोडेसिया क विरुद्ध सघ के चार्टर की धारा ४१ क विरुद्ध धार्मिक प्रतिबंध लगाने का प्रस्ताव किया गया जो स्वीकार हो गया। इसके द्वारा दक्षिणी रोडेसिया को भेजे जाने वाले १२ मुख्य वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध लगा लिया गया। परन्तु उन्नेलनीय बात यह रहा कि प्रतिबंधित वस्तुओं में तेल का सम्मिलित नहीं किया गया क्योंकि ब्रिटेन का कहना था कि ऐसा करने से दक्षिणी अफ्रीका के मोरम्बिक के पड़ोसी राज्यों को बच्य उठाना पड़ेगा।

ब्रिटेन द्वारा प्रस्तावित धार्मिक प्रतिबंध दक्षिणी रोडेसिया के विरुद्ध असफल सिद्ध हुए हैं। ब्रिटेन स्मिथ सरकार के विरुद्ध कोई भी कठोर कार्यवाही करने से किसी न किसी बहाने बचता रहा है। प्रथम इस बात की कोई संभावना नबर नहीं धाती कि दक्षिणी रोडेसिया को असहस्यक गोरी सरकार का बहुसंख्यक अफ्रीकनों पर से निरंकुश शासन निकट मविष्य में समाप्त हो सकेगा।

३ ✓ स्वतंत्र अफ्रीका महाद्वीप की समस्याएँ (Problems of Independent African Continent)

नवोदित अफ्रीका के राज्यों को अनेक प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इसमें से अधिकांश समस्याएँ तो यहाँ की पिछड़ी हुई धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न हाता हैं। यहाँ क रगों के सामने विश्व के अन्य देशों के बराबर जाने क लिए पार करने को एक सम्हा रास्ता पड़ा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यहाँ के कुछ देशों में जान्ति हुई गृह-युद्ध छिड़े तथा आतमी भेद नाब के आधार पर अनेकों उपद्रव किए गए। महाद्वीप के देशों में विकास के लिए धार्मिक प्रविश्रुति का सूत्राल हुआ। उनके हित राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक प्रबनों का नेकर परस्पर टकराने लये। अन्तर्राष्ट्रीय एवं महाद्वीपीय स्तरों पर सभौष्यता जाने के लिए यहाँ क विभिन्न देशों के बीच शक्ति का संघर्ष छिड़ गया। इन कारण स्वतन्त्र अफ्रीका में अनेकना संघर्ष और प्रविश्रुति का आतातक-ओर पकड़ने लगा। यहाँ के राज्यों के विकास के लिये परस्पर सहयोगपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता प्रमुख है किन्तु यहाँ इस आवश्यकता के विरगीत प्रवृत्तियाँ जन्म से रही हैं। विश्व की दूसरा शक्तियों के द्वारा टा पूर का काम उठाया जा रहा है। साम्यवादी गुट नव परिवर्ती न नौनी ही अफ्रीका

में अपना प्रभाव बढ़ाने के प्रयासों में सफल हैं। यूरोप के तिन देशों ने अफ्रीका के अपने उपनिवेशों को आन्तरीय प्रदान कर दी है वे भी यहाँ किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव जमाये रखना चाहते हैं। उनका तित इस बात में रहता है कि इन देशों पर योरी बाँट का ही प्रमुख बना रहे। स्वतन्त्र अफ्रीका महाद्वीप की प्रमुख समस्याएँ निम्न हैं—

(१) अफ्रीका महाद्वीप में किसी-कुसी संस्थाओं तथा विचारों के सहारे अहित को सफल बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिसमें एक नवीन अफ्रीका की सम्भावना मिहित है। किन्तु नवीन विचारों एवं संस्थाओं का वह प्रयोग अफ्रीका के पुराने रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं से भिन्न पड़ता है तथा इसका प्रति यहाँ के लोगों में विरोध को भावनाएँ हैं। समाज के परम्परावादी रूप के विध्वंस से जो असुरक्ष की भावना पैदा होती है वह इन देशों के विकास कार्यों की सफलता में मुख्य रूप से बाधक है।

(२) विकास कार्यक्रमों को फलदायक बनाने के लिये अफ्रीका महाद्वीप में पहले सामाजिक तथा सांस्कृतिक अहित का ज्ञान परम आवश्यक है। यहाँ के धार्मिक नियम राजनीतिक विचार अनुशासनहीनता की प्रवृत्तियाँ आदि में मूखपूर्ण परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। हो सकता है कि इस परिवर्तन काल में यहाँ के देशों को बनेक हिंसात्मक तथा गृहयुद्धपूर्ण अनुभव भी करन पड़ जायें।

(३) अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में महत्व जानने से पूर्व यह समझना उपयोगी है कि यहाँ की अहित का मोर्चा क जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। स्वतन्त्रता से पूर्व यहाँ के भागों पर हजारों मील दूर बैठे शासकों की आन्तरीय शासन करती थीं। उपनिवेशवादी शक्तियों का प्रतिनिधि ही यहाँ के सब कुछ थे। उनके साथ अफ्रीकावासियों का सम्बन्ध शोहर और स्वामी का सम्बन्ध था किन्तु आज यह स्थिति नहीं रही है। तो भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आचार पर योरोप के देश इन देशों पर अपने पूर्ण प्रभाव को बनाये हुए हैं।

(४) शोरे और काले का भेद प्रकृति से उत्पन्न होता है। यह अनुप्य कृत नहीं है और न ही अनुप्य इसे परिवर्तित कर सकता है किन्तु यह शारीरिक भेद अफ्रीका के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने वाला सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व है। गुन्थर (Gunther) महोदय के अनुसार 'सब चीजों से ऊपर एक भेद ही है जो कि अफ्रीका में असन्तोष तथा विद्रोह उत्पन्न करता है। यह अफ्रीकी हीनता का प्रभाव कारण है जिससे उपरान्त शोरे विद्रोह पैदा होते हैं। यह शोरे तथा काले दोनों ही प्रकार के लोगों के मस्तिष्क को बिगाड़ देता है।' योरोपियन शासनकाल में भारतीय

१) "It is the color bar above everything, that makes Africa boil with discontent. It is the root cause of Africa inferiorly which in turn leads to resentment and revolt it warps the minds of white man and black man both.

तथा रंग पर आधारित भेद भाव की नीति को पर्याप्त बढ़ावा दिया गया था। रंग भेद के कारण पूरे महाद्वीप में ही एक प्रकार की गहरी खाई पड़ गई थी तथा जिन देशों में योरोपियन समाज नहीं रहते वहाँ के काले लोग भी अपने पापको गोरों से हीम मानते हैं। यह खाई अब तक बनी रहेगी जब तक अमरीके के योरोपन के आधार पर अधिकतम जन-समुदाय के विरुद्ध कोई से लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त रहेंगे। जॉन हच (John Hatch) के शब्दों में 'अफ्रीका के साथ धारम विश्वास को जो कि सहिष्णुता के लिए आवश्यक होता है, अब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि वे रंग के आधार पर किए जाने वाले भेद भाव से अपने प्रापकी स्वतंत्र नहीं कर लेते।'¹ धीरे-धीरे अफ्रीका के देशों में अब अफ्रीकियों की सरकारें स्थापित होती जा रही हैं तथा गोरों के विरुद्ध काले लोगों को कुछ विशेषाधिकार देने की प्रवृत्ति बन करती जा रही है।

(३) केवल रंग भेद तथा जाति भेद को समाप्त कर देना ही पर्याप्त नहीं है। अफ्रीका के देशों में योरोपीय देशों द्वारा अनेक मूलभूत परिवर्तनों की स्थापना करके सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को बदल दिया गया था। अफ्रीका में जाति को पूर्ण बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इस अन्तिम को सामाजिक तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में भी लाया जाए। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद इन देशों में जो सरकारें स्थापित की गई हैं, यद्यपि उनका उन्हासन देश के निवासियों द्वारा ही किया जाता है किन्तु फिर भी वे इतनी अधिक सत्ता एवं अधिकार का प्रयोग करती हैं जितना कि विदेशियों द्वारा किया जाता था।

अनेक अफ्रीकी देशों में एक बनीय अवस्था का अधिक महत्वपूर्ण माना गया। इस माय्यता पर अफ्रीका के आदिवासी जीवन का प्रभाव है। आदिवासी जीवन की सामान्य परम्परा के अनुसार सम्यक्त विरोधी का होता अनुचित है क्योंकि यह अनेक प्रकार के अयुक्त उत्पन्न करता है। जो भी निर्णय लिए जाते हैं उन पर सभी व्यक्तियों के मत का प्रभाव रहता है। आज एक सामान्य अफ्रीकी धरम जीवन में यह धारणा कि उसके ऊपर सत्ता की जिस मात्रा का स्वतंत्रता के बाद में प्रयोग किया जा रहा है वह स्वतंत्रता के पूरा प्रयोग की जाने मात्रा से कहीं अधिक है। सत्ता की इस मात्रा को भी यहाँ के लोग अपनी सुरक्षा के नाम पर स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार प्रायः पूरे अफ्रीका में ही सरकार के नियन्त्रण तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच बड़ा असंतुलन होते हुए भी कोई उसका विरोध नहीं करता और न ही किसी को इससे असन्तोष होता है।

(६) राष्ट्रवाद की भावना से अफ्रीका के देशों में एकता का सूत्रपाद

1 'Africans themselves will never gain that self confidence essential to tolerance untill they feel themselves free from the last hint of discrimination on colour grounds.'

—Johan Hatch, Africa Today and Tomorrow P 303

किया और इसी एकता के आधार पर वे विदेशी शक्तियों से अपने आपकी रक्षा सके हैं। महाद्वीप के अधिकांश भाग पर राष्ट्रवाद का भारी प्रभाव है। हच (Hatch) के शब्दों में स्वतन्त्रता एकता की माँग करती है और राष्ट्रीयता की तेज मानसिक शक्ति ने सारे देश को साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध एकीकृत करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है।¹ तबका सम्यता एवं विज्ञान में विकसित होने के कारण यहाँ के देशों में राष्ट्रवाद उतना प्रभावशाली नहीं है बल्कि यह कि यह एशिया महाद्वीप में रहा है। यद्यपि राष्ट्रवाद की आशुति को रोकना नहीं जा सकता तो भी अफ्रीका के बड़े क्षेत्र अभी तक राष्ट्रवाद के प्रभावशाली व्यवहार के लिये तैयार नहीं हैं अर्थात् यहाँ पर स्वायत्तता की स्थापना के अनुकूल वातावरण अभी तक नहीं बना है।

(७) अफ्रीका के देशों में नवीन जीवन के प्रति स्वायत्तता के प्रति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रति पारस्परिक सहयोग के प्रति तथा आतंरिक एकता के प्रति प्रवृत्ति की भावनाएँ हैं। अफ्रीका अपने इसी रूप में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रामाणिक है। अब यह स्वाभाविक है कि अन्तर्राष्ट्रीय मतभेदों का घटनाओं का तथा मनमुटावों का प्रभाव इस महाद्वीप के देशों पर भी पड़े। किन्तु ये देश आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हैं इसलिए किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर अपना स्वतन्त्र विचार नहीं रख सकते। अफ्रीका का आर्थिक जीवन अब भी बहुत कुछ शेष सत्कार पर निर्भर करता है। इस आर्थिक परनिर्भरता को प्रवृत्ति में अब देश उपनिवेशवाद से स्वतन्त्रता की स्थिति में आये तो घनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। नये राज्यों का निर्माण इन प्रदेशों में से किया गया है जिनका योरोपीय शक्तियों से विभाजन कर रखा जा। ये राज्य आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिये सहयोगपूर्ण दृष्टिकोण नहीं रखते।

(८) प्रायः पूरे अफ्रीका महाद्वीप में अफ्रीकीपन की भावना का प्रभाव है। सभी अफ्रीकी यह निर्णय कर चुके हैं कि सम्पूर्ण अफ्रीका पर अविश्व में केवल अफ्रीकियों का ही राज्य रहेगा। इस दृष्टिकोण के कारण अफ्रीका में विभिन्न संघ तथा उपसंघ बनाने के प्रस्तावों पर समय समय पर विचार किया जाता रहा है। प्रायः, संघार-संघन तथा आर्थिक विकास की कुछ बाधाएँ इस प्रकार के संघ निर्माण के मार्ग में हैं जिनको दूर करने के लिये यहाँ के लोगों में सुरक्षा की भावना आयेगी तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों में भी विकास होगा।

(९) अफ्रीका का महाद्वीप जीतमुख के प्रसार को रोकने के लिये प्रयत्नशील है और इसी उद्देश्य से इसने अन्तर्राष्ट्रीय समारंभ में पक्षपात किया

1 "Independence demands national unity and the heavy wine of Nationalism has usually served to unify the country against the imperialists"

है। मद्यपि अफ्रीकी देश संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक कार्यों की समर्थना करते हैं तो भी यह उसके लिए एक आशा का प्रतीक है जो उसके आर्थिक तथा राजनीतिक विकास में सहायता देकर उन्हें विश्व राजनीति को प्रभावित करने योग्य बना सकता है तथा पूर्व और पश्चिम के भयङ्क से दूर रह सकता है। अफ्रीका के देश यह चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ साम्यवादी तथा पूंजीवादी शक्तियों के साथ की कठमूठसी न रह कर पूर्व पश्चिम और तिब्बतों का बराबर प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था बन जाए। उनके मतानुसार यह संस्था उपनिवेशवाद नवीन उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के नये तरीकों से अछूता है। वे चाहते हैं कि यह उनके अपने आर्थिक विकास में सहायता करे, उनकी राजनीतिक परेशानियों में सहायक बने तथा यही एक मात्र ऐसा धमिकरण है जो कि विश्व युद्ध को रोकने की सामर्थ्य रखता है।

अफ्रीकी एकता आन्दोलन

[African Unity Movement]

अफ्रीका के विभिन्न देशों ने जब से स्वतन्त्रता प्राप्त की है तभी से उसके एकीकरण के लिए अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। अफ्रीका के राज्यों की समस्याएँ समान हैं तथा स्वतन्त्रता के बाद इनमें परस्पर निरंतरता की भावना की वृद्धि हुई है। समय समय पर इस महाद्वीप के दो या दो से अधिक देशों का किसी निश्चित लक्ष्य के लिये संघ बन जाता है। किन्तु समस्या यह है कि इस एकता को किस प्रकार प्राप्त किया जाय इसी प्रश्न को लेकर अफ्रीका के राज्यों का विभाजन हो गया है। अफ्रीकी राज्यों के एकीकरण के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। यहाँ के स्वतन्त्र राष्ट्रों में राष्ट्रवाद की भावना का उदय नवीन युग की देन है। राष्ट्रवाद से प्रभावित अनेक नेताओं ने अफ्रीका के विभिन्न राज्यों के बीच जिन मन-मुटावों की स्थापना की थी उसका धनी ठक दूर नहीं किया जा सका है। उन्नीसवीं शताब्दी में योरोपियन शक्तियों ने अफ्रीका का जो विभाजन किया था उसके कारण एक उपनिवेश दूसरे से पृथक हो गया तथा उनमें उपनिवेशी एकता के भाव धा मये। वर्तमान समय में इन उपनिवेशी संघों को नवीन अन्तर-अफ्रीकी संघ में परिवर्तित करना बड़ा कठिन है। योरोपियन शक्तियों ने अफ्रीकी संघ के महत्व को पहले से नहीं पहचाना तथा इस क्षेत्र कोई महत्वपूर्ण कार्य न किया।

अफ्रीकी भावृत्त (Pan Africanism) का आन्दोलन महाद्वीप-के एकीकरण के प्राचीनतम आन्दोलनों के से एक है। इसके समर्थक प्रायः "संयुक्त राज्य अफ्रीका" के लक्ष्य का प्रस्ताव रखते हैं। उनका मतानुसार एक संघ के निर्माण के लिये जिन चीजों की आवश्यकता होगी वे सभी अफ्रीका महाद्वीप में पाई जाती हैं। किन्तु जैसा कि रुपर्ट ईमर्सन (Rupert Emerson) ने लिखा है—“एक अफ्रीकावादी तो यह चाहेगा कि अफ्रीकी भावृत्तवाद को एक आदर्श तथा रंगीन स्वप्न मान कर अस्वीकार कर दिया जाय क्योंकि यह राज्य सम्प्रभुता को उन ठोस दीवारों का उपयोगी उत्सर्जन

पटका जाय तब वहाँ प्रयुक्तियों के परीक्षणों को किसी प्रकार का ताहल न दिया जाय।

EXERCISES

"The most significant development of the period following World War II has been the emergence of the struggle of the African people for national self determination." Comment.

✓ द्वितीय महायुद्धोत्तर युग में सब से महत्वपूर्ण विकास राष्ट्रीय आत्म निर्णय के लिये अफ्रीकन लोगों के संघर्ष का उदय रहा है। विवेचना कीजिये।

Discuss the emergence of independent states in Africa and its effect on international politics

✓ अफ्रीका में स्वतन्त्र राज्यों के उदय की समीक्षा कीजिए और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर इसके प्रभाव को बताइये।

What has been the problems of Africa after the Second World War and how are they effecting the international relations ?

✓ द्वितीय महायुद्ध के बाद अफ्रीका की क्या समस्याएँ रही हैं और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को वे कैसा प्रभावित कर रही हैं।

1. Write a note on the resurgence of Africa.

अफ्रीका के आन्दोलन पर एक नोट लिखिए।

2. Write an essay on the growth and development of the movements towards continental unity in Africa. What do you think about the prospect of such unity ?

अफ्रीका में महाद्वीपीय एकता के लिये जो विभिन्न आन्दोलन हुए उनके उदय और विकास पर एक निबन्ध लिखिये। इस एकता के भविष्य के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

6. Describe how Algeria achieved her independence. Critically analyse the attitude of the French Government towards Algeria. How far has President De Gaulle succeeded in solving the Algerian problem ?

✓ अल्जीरिया ने जिस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की उसका वर्णन कीजिये। अल्जीरिया के प्रति फ्रेंच सरकार के दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये। अल्जीरिया समस्या का समाधान करने में राष्ट्रपति डिगोस को कहां तक सफलता मिली ?

7. Discuss the main stages in the development of the Congo-question. What part has the U N played in solving it ?

✓ कोंगो प्रश्न के विकास के महत्वपूर्ण चरणों की समीक्षा कीजिये। इस समस्या का समाधान करने में संयुक्त राष्ट्र संघ ने क्या महत्वपूर्ण भूमिका धरा की ?

8. Write a note on Afro-Asian unity

अफ्रो-एशियाई एकता पर टिप्पणी लिखिये।

16

एशिया व अफ्रीका के देशों के सम्मेलन

[AFRO-ASIAN NATIONS CONFERENCES]

- १ प्रथम एशियाई सम्मेलन १९४७
- २ द्वितीय एशियाई सम्मेलन, १९४९
- ३ बाण्डुंग सम्मेलन, १९५५
- ४ बेलग्रेड सम्मेलन १९६१
- मोरीटी सम्मेलन १९६३
- ६ इब्रैस अबाबा सम्मेलन, १९६३
- ७ काहिरा सम्मेलन, १९६४
- ८ नई दिल्ली सम्मेलन, १९६६

'एक ही अस्त्री बर्ष पूष स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये जिस महान्
 यत्न का समारंभ हुआ था वह बनने पूर्ण नहीं हुआ है। वह
 उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक संसार में
 उपनिवेशवाद का एक बिन्दु भी जीवित है। एशिया और
 अफ्रीका के अनेक देश अब भी परतंत्र हैं और आज
 इस सम्मेलन को यह स्पष्ट कर देना है कि
 अन्ताराष्ट्रीय सम्मेलन पर एक नये अफ्रीका और
 नये एशिया का उदय हुआ है।'

—राष्ट्रपति सुकार्जो (बेलग्रेड सम्मेलन)

एशिया और अफ्रीका के देश के सम्मेलन (Afro-Asian Nations Conference)

वीरुद्धों बर्षों तक एशिया और अफ्रीका के देश यूरोपियन साम्राज्यवाद के विक्रम में फँसे रहे और १९ वीं सताब्दी के अंत तक इन दोनों ही महाद्वीपों पर सबसे अधिक युरोपियन देशों का कब्जा हो गया। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद विभिन्न कारणोंवश एशिया के देशों में जागृति की महार फँसी और उनमें राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। द्वितीय महायुद्ध के बाद ही एशिया एकजुट भाग उठा और जागरण के इस संदेश से अफ्रीका महाद्वीप प्रभूता न बच सका। दोनों महाद्वीपों के विभिन्न देशों के विभिन्न सम्मेलन होने लगे जिनके कारण इन देशों के प्रतिनिधियों के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क बढ़ा। जैसे १९२७ में साम्यवादीयों एवं कुछ प्रगतिशील तत्वों द्वारा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर विश्व के पराधीन देशों के एक सम्मेलन का सर्वप्रथम आयोजन बेल्जियम के ब्रुसेल्स नगर में किया गया था जिसमें विश्व के परतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रीय आंदोलनों के विभिन्न महा सम्मिलित हुए थे और उन्होंने पहले-पहल प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करते हुए एक सम्मेलन के रूप में विचार-विमर्श किया था। द्वितीय महायुद्धोत्तर युग में समय-समय पर एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों ने तथा विश्व के तटस्थ देशों ने अपने सम्मेलनों द्वारा विश्व राजनीति की समस्याओं पर सम्मिलित रूप से विचार करके महत्वपूर्ण सुझाव दिये और विश्व की साम्राज्यवादी शक्तियों को स्पष्ट रूप से बता दिया कि सोते हुए एशिया और अफ्रीका अब जाग चुके हैं। ऐस ही कुछ महत्वपूर्ण सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

प्रथम एशियाई सम्मेलन

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एशियाई देशों का संगठन करने के आंदोलन में भारत की दिग्दर्शनी बहुत बढ़ गई थी। इसी कारण देश के आजाद होने से पहिले ही स्वर्गीय पंडित नेहरू की प्रेरणा से इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स (Indian Council of World Affairs) ने मार्च अग्रेस १९४७ में एशियाई देशों के एक सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें २८ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यद्यपि यह एक अंतर-सरकारी सम्मेलन था किन्तु इसका महत्व इस बात में था कि एशिया के विभिन्न देशों के राष्ट्रीय आंदोलन के नेता इसमें सम्मिलित हुए थे।

इस प्रथम एशियाई सम्मेलन ने एशियाई देशों की राजनीतिक स्वतंत्रता उनके आर्थिक विकास और रणभद्र आदि विभिन्न समस्याओं पर विचार किया। एशियाई देशों का एक स्थायी संगठन स्थापित करने का प्रस्ताव पर भी विचार हुआ। इस सम्मेलन में किसी प्रकार के जातिवारी निर्णयों की घोषणा करना बर्बर था। सम्मेलन में प्रकट किये गये विचारों से

यह प्रथम स्पष्ट हो गया कि विभिन्न एशियाई देशों की घनेक समस्त्राए समान रूपी हैं और उनका समाधान तब ही हो सकता है जबकि सब एशियाई देश मिलकर संयुक्त रूप से प्रयास करें। परन्तु फिर भी एशियाई देशों के मतभेदों पर न रह सके हालांकि वे अपने आप में अधिक महत्वपूर्ण न थे। इस सम्मेलन का वास्तविक महत्व यही था कि एशिया के देश एक सम्मेलन में एक स्थान पर मिलें और वे अपनी-अपनी समस्याओं पर निमजुस कर विचार करें। सम्मेलन का महत्व इस दृष्टि से भी था कि इसने यह संकेत किया कि एशिया अब बांग चुका है और अधिक समय तक उस पर साम्राज्यवादी शासन नहीं रह सकता। इस सम्मेलन ने विश्व को बड़ा विश्वास कि एशियाई देश यूरोपियन साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिये पूरी तरह कटिबद्ध हैं।

द्वितीय एशियाई सम्मेलन

एशियाई देशों का द्वितीय सम्मेलन भी देहली में २० स ३० जून १९४६ को हुआ। इस सम्मेलन का प्रायोजन करने का उद्देश्य इण्डोनेशिया पर डच आक्रमण से उत्पन्न परिस्थितियों पर विचार करना था। यह सम्मेलन भारत सरकार द्वारा प्रायोजित किया गया था। सम्मेलन में डच कार्यवाही की कठोर शर्तों में निन्दा की गई, डच आक्रमण का घसकस बनान के लिये विभिन्न कार्यक्रम बनाये गये और संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद आस्ट्रेलिया एबम् न्यूजीलैण्ड का सहयोग प्राप्त करके होमैण्ड के प्रति कठोर दण्ड अपनाये को वाच्य किया गया। इस द्वितीय एशियाई सम्मेलन ने एक बार फिर यह स्थापित कर दिया कि संगठित एशिया की उपेक्षा करना अब सुपम नहीं है और एशियाई देशों पर यूरोपियन साम्राज्यवाद को अधिक समय तक साँसे रहना असम्भव है।

बांडुंग सम्मेलन

१८ अप्रैल से २३ अप्रैल १९४६ तक इण्डोनेशिया के नगर बांडुंग में एशिया और अफ्रीका के लगभग २६ राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसका उद्घाटन इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो ने किया। सुकार्णो अपने स्वागत भाषण में कहा— मुझे प्राण है कि यह सम्मेलन मानव समाज का मार्ग निर्देशन करेगा। मुख्य भाषा है कि यह इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करेगा कि एशिया और अफ्रीका का पुनर्निर्माण हो चुका है। राष्ट्रपति सुकार्णो ने यह भी कहा कि "१५० वर्ष पूर्व स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिय जिस महान युग का समारम्भ हुआ था वह अभी पूर्ण नहीं हुआ है। वह उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि संसार में उपनिवेशवाद का एक बिन्दु भी अवशिष्ट हो। एशिया और अफ्रीका के घनेक देश अब तक परतन्त्र हैं और धार इन सम्मान को यह स्पष्ट कर देना है कि अन्तर्राष्ट्रीय संयमन पर एक नए अफ्रीका और एक नये एशिया का उदय हुआ है।

बांडुंग सम्मेलन का विस्तारपूर्वक बहान एक पूर्ववर्ती अध्याप में किया जा चुका है परन्तु यदा इसकी सभी सांकेतिक रूप से कर देना ही पर्याप्त होगा।

बाहुल्य सम्मेलन में ये बातें विशेष रूप से निर्धारित की गईं—सो-
 टालिक सम्मेलन और बिदेसी नियंत्रण से पूर्ण मुक्ति जाति सम्प्रदाय और
 रंगभेद किय बिना मानव प्रतिष्ठा की स्थापना तीव्रगति से आर्थिक प्रगति
 एवम् युद्ध का परित्याग तथा सद्भावना का प्रसार । सम्मेलन की वास्तविक
 उपलब्धियों का सबसे बड़ा और विस्तारपूर्वक उत्सव अन्तिम दिन प्रकाशित
 एक विज्ञप्ति में किया गया । इस विज्ञप्ति में 'बिदेसी सहायता एक संयुक्त
 राष्ट्र सभ्यीय षण्ड, तकनीकी ज्ञान और बहु-पक्षीय व्यापार के आवान प्रदान
 एवम् मित्र प्रकार के निर्यात द्वारा विश्व के एशियाई एवम् अफ्रीकी क्षेत्र के
 आर्थिक विकास की आवश्यकता' पर बल दिया । इसमें 'एशियाई व अफ्रीकी
 देशों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व से युक्त एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्रिक सन्स्था की
 स्थापना' की मांग की फिलिस्तीन में अरब लोगों के अधिकारों का समर्थन
 किया फिलिस्तीन समस्या के शांतिपूर्ण हल पर जोर दिया और संयुक्त
 राष्ट्र सभ्यीय प्रस्ताव को क्रियान्वित करने की अपील की । इसने संयुक्त
 राष्ट्रसभ की सदस्य सन्स्था में सृष्टि और अफ्रीका एवम् एशिया को अधिक
 प्रतिनिधित्व देने' की मांग की तथा निःअस्प्रीकरण प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय
 नियंत्रण व आणविक अस्त्रों के निषेध और उस अस्त्रों के परीक्षणों को
 बन्द करने' की अपील की । विज्ञप्ति में जाति स्वतन्त्रता मन्वीय
 अधिकारों के प्रति भार प्रदहन द्वारा सहिष्णुता सभी राज्यों की एकता
 और सम्प्रभुता प्रत्येक राज्य और जाति की समानता बहुस्तरेण संयुक्त राष्ट्र
 के चार्टर के सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सुरक्षा के
 अधिकार जति राजनीति और आक्रमणकारी प्रयत्नों से प्रकृता तथा
 भ्रमों के शांतिपूर्ण हल' आदि का समर्थन किया गया ।

वास्तव में बाहुल्य सम्मेलन के द्वारा एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों के
 जीवन में एक नवीन आत्मनिश्चाल और आजा का उदय हुआ तथा एशिया
 की एक नई आवाज सम्पूर्ण विश्व में गूँज उठी । यह आवाज थी कि एशिया
 और अफ्रीका के वासी अब पराधीन नहीं रहेंगे अपने हाथों अपने भविष्य का
 निर्णय करेंगे और स्वतन्त्रता तथा शांति के मार्ग में जाने वाली बाधाओं को
 उखाड़ फेंकेंगे । एशिया की राजनीति के दृष्टिकोण में बाहुल्य सम्मेलन के दो
 महत्वपूर्ण परिवर्तन निकले—प्रथम इसने अन्तर्राष्ट्रीय विश्व राजनीति की
 समस्याओं के प्रति एशिया और अफ्रीका में एक समान दृष्टिकोण का अन्व
 किया तथा द्वितीय संयुक्त राष्ट्रसंघ में एक ऐसे एशियाई अफ्रीकी गुट की
 आधारभूतता रखी जिसने आगे चलकर पूर्व और पश्चिम के मध्य में संतुलन
 पैदा करने का महत्वपूर्ण काम किया ।

बेलगढ़ सम्मेलन १९६१

एशियाई और अफ्रीकी देशों का तृतीय सम्मेलन सितम्बर १९६१ में
 यूगोस्लाविया की राजधानी बेलगढ़ में हुआ । इसको तटस्थ राज्यों का
 सम्मेलन कहना अधिक उचित होगा क्योंकि इसमें एशिया और अफ्रीका
 महादेशों के प्रतिष्ठित अथवा महा देशों के देश भी सम्मिलित हुए थे । इस
 प्रकार के सम्मेलन का सर्वप्रथम मुम्बई यूगोस्लाविया के प्रधान मातल टोटो

में १९५६ में रखा था। इसकी तैयारी में अफ़ग़ानिस्तान बर्मा कम्बोडिया चीन छका, क्यूबा इथियोपिया, ज़ाना यिनी, भारत, इण्डोनेशिया ईराक, मोरक्को नेपाल सङ्घी अरब सोमालिया सूडान संयुक्त अरब गणराज्य यमन यूगोस्लाविया झाजीबी आदि २२ राष्ट्रों ने भाग लिया था। इन राष्ट्रों द्वारा जन वशों को ही इस सम्मेलन में आमंत्रित किया गया जो (१) स्वतन्त्र नीति का परिपालन करते हुए तटस्थता और शांतिपूर्ण सहमन्वित्व में विश्वास करते हों (२) जो उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलनों का समर्थन करते हों (३) जो पूर्व परिवर्तन के समय में किसी सैनिक गुटबन्दी में न हों (४) जो बहु-पक्षीय सैनिक संघियों के सदस्य न हों एवम् (५) जो अपनी भूमि पर विदेशी सैनिक बलों को धारण न किये हों।

२६ अगस्त १९६१ को संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर और यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो ने २८ तटस्थ राज्यों को पत्र भेजा और उन्हें बेसग्रह सम्मेलन में शामिल होने के लिये आमंत्रित किया। तटस्थ राष्ट्रों का यह सम्मेलन यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में १ सितम्बर से ६ सितम्बर १९६१ तक हुआ। इसमें २५ देशों ने अपने प्रतिनिधि भेजकर भाग लिया जबकि तीन देशों ने अपने पर्यवेक्षक (Observers) ही भेजे। जो राष्ट्र इसमें सम्मिलित हुए उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) अफ़ग़ानिस्तान (२) अरबीरिया (३) बर्मा (४) कम्बोडिया (५) चीन छका (६) कांगो (७) क्यूबा (८) लाओस (९) इथियोपिया (१०) ज़ाना (११) यिनी (१२) भारत (१३) इण्डोनेशिया (१४) ईराक (१५) लेबनान (१६) माली (१७) मोरक्को, (१८) नेपाल (१९) मऊरी अरब (२०) सोमालिया (२१) सूडान (२२) ट्यूनेशिया (२३) संयुक्त अरब गणराज्य (२४) यमन और (२५) यूगोस्लाविया।

पर्यवेक्षक भेजने वाले राष्ट्र ये थे—(१) बोलीविया (२) झाजीब, एवम् (३) इक्वडोर।

सम्मेलन का विवरण

बेसग्रह सम्मेलन में उपस्थित राष्ट्रों ने विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श किया। उस समय जर्मनी की समस्या को लेकर भीत युद्ध बढ़ा उग्र हो गया था और अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिये बढ़ा ही खतरनाक बातावरण उत्पन्न हो गया था। विश्व में उस समय अनेक ऐसी घटनाएँ घटी थीं जिनमें से किसी को भी लेकर विश्व युद्ध की शुरुआत हो सकती थी। ये समस्याएँ प्रमुखतः जर्मनी व बर्लिन की समस्या राष्ट्रसंघ में चीन की सदस्यता का प्रश्न कांगो प्रश्न इत्यादि की थीं। सम्मेलन ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत संघ दोनों ही महाशक्तियों से अनुरोध किया कि वे भीतयुद्ध की उग्रता कम करें और पारस्परिक बातों द्वारा समस्याओं के समाधान का विकास करें। सम्मेलन में उपनिवेशवाद का अन्ततन्त्र समाप्त करने की भी मांग की गई।

उस समय हृदयकार बन्दी की होड़ और अमेरिका द्वारा परमाणविक परीक्षण अपनी शरम सीमा पर पहुँच गया था। सम्मेलन ने इस धार और भी सम्बन्ध राष्ट्रों का ध्यान आकृष्ट किया। परन्तु सम्मेलन का यह दुर्भाग्य था कि जिस दिन उसकी कायदाही शुरू हुई उसी दिन साबियत सच ने पुनः परमाणविक परीक्षण प्रारम्भ कर दिया। फिर भी सम्मेलन द्वारा यह निश्चय किया गया कि तटस्थ राज्यों का धोरण से एक प्रतिनिधि मंडल संयुक्त राज्य अमेरिका और साबियत सच का भेजा जाए तथा राष्ट्रपति केनेडी और प्रधानमंत्री एडविये से अनुरोध किया जाए कि विश्व की मयत्रस्त मानवता के लिये शांति और सुरक्षा को स्थापना करने हेतु निःशस्त्रीकरण की दिशा में वे सक्रिय रूप से भागे बढें और प्रत्यक्ष धाना करके निःशस्त्रीकरण, परमाणविक परीक्षा एवम् चीठमुद्र की समस्याओं का समाधान करें। भारत यूरोस्साविया और संयुक्त अरब गणराज्य ने बड़े बसनासी धर्मों में कहा कि बड़े राष्ट्रों को जाना स्वार्थ त्याग कर निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर एक मत हा बनाना चाहिये। सम्मेलन ने विश्व में स्थायी शांति स्थापित करने के लिये यह मत प्रकट किया कि सभी देशों को प्राथिक सामाजिक और राजनीतिक पिछड़ेपन से मुक्ति मिलाकर उन्नत प्रवस्था की धोरण से जाना चाहिये। सम्मेलन में उपस्थित सभी राष्ट्र इस विचार से सहमत थे कि हर तरह का उपनिवेशवाद तथा प्रजातीय विभेदवाद संयुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर के सिद्धांतों का उल्लंघन है और संसार के पराधीन देशों को तुरन्त ही मुक्ति मिलनी चाहिये।

सम्मेलन की विज्ञप्ति में कहा गया कि प्रत्येक देश और उसके देश वासियों को अपने धर्म से शासन संचालन की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये और उसके मामलों में किसी विदेशी शक्ति को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। सम्मेलन द्वारा प्रत्येक प्रकार के साम्राज्यवाद को विश्व हित की दृष्टि से हानि कारक समझा गया और इसी लिये सम्मेलन में एक स्वर से यह आवाज उठाई गई कि साम्राज्यवादी शक्तियों को तुरन्त अपनी शोषण की नीति समाप्त कर लेनी चाहिये।

सम्मेलन द्वारा यह विचार दृढ़ धर्मों में प्रकट किया गया कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को उसको इच्छानुसार काम करने की स्वतन्त्रता का उपयोग करने दे। सम्मेलन में इस बात को तीव्र निन्दा की गई कि कुछ राष्ट्रों में रंगभेद के नाम पर अनुत्पन्न-मनुष्य में भेद किया जाता है। अतिरिक्त अफ्रीका व काने गोरे के नाम पर किये जाने वाले अत्यन्त अपराधों पर विज्ञप्ति प्रकट की गई और उसके इस वाक्य की भरसना की गई।

सम्मेलन ने यह भी अनुभव किया कि शांति के नाम पर स्थापित वैश्विक धर्म ही वास्तव में शांति मग के मूल कारण हैं। अमेरिका और रूस ने अपनी वैश्वीय रीतिरिवाज मुद्रा करने के लिये विश्व के विभिन्न देशों में इन्हें स्थापित कर रखा है और इनसे पारस्परिक प्रेम व शांति के स्वान पर

मूसा और बिब्लेय उदरग्न हाता है। इन सैनिक बलों से एक दूसरे में प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत होती है जो अन्ततः संसार को अशांति और युद्ध की ओर इकट्ठनी है। इन सम्मेलन में सैनिक बलों की स्थापना पर जोम व्यक्त किया गया और इन्हे समाप्त करने की अपील की गई।

सम्मेलन ने शांतिपूर्ण सहप्रस्थित्व में आस्था प्रकट की। सम्मेलन का मत था कि जहाँ एक ओर सोवियत इस अपनी समाजवादी व्यवस्था को सर्वोत्तम बतलाता है और दूसरे पश्चिमी राष्ट्र इसी व्यवस्था की आलोचना करके अपनी प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली को उत्तम बतलाते हैं—यह रश्मि अनुचित है। विश्व में माना विचारधाराओं और शासन प्रणालियाँ हैं जो एक दूसरे से विभक्त हैं। किन्तु इनकी आलोचना करने से शांति स्थापित नहीं हो सकती। संसार शांति की ओर तो तब ही अग्रसर हो सकता है जब कि सभी व्यवस्थायें और विचारधारायें एक दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए परस्पर सहयोग प्रदान करें।

सम्मेलन द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के क्रिया-कलापों को मातृक हित में बतलाते हुए उसमें दृढ़ विश्वास व्यक्त किया गया और इस बात पर बल दिया गया कि राष्ट्रीय हित के निर्णयों को पूर्णतः मान्यता प्रदान करके उसे मजबूत बनाने का प्रयास करना चाहिये। सम्मेलन ने आर्थिक व प्राविधिक सहयोग पर बल दिया और यह मत व्यक्त किया कि विश्व के विकसित राष्ट्र पिछड़े देशों को आर्थिक राजनीतिक सामाजिक और भौतिक सभी दृष्टियों से विकसित करने का कार्यक्रम को अपनाया अपना कर्तव्य समझे।

बनप्रेड सम्मेलन में एशियाई देशों के अनेक मतभेद भी स्पष्ट हुए। जहाँ इण्डोनेशियाई राष्ट्रपति सुकार्णो ने उपनिवेशवाद को समाजकीर्ण विश्व की सभी बुगदियों की जड़ वगनाया जहाँ भारत के स्वर्गीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू ने विश्व शांति की स्थापना को मुख्य स्वान्त दिया और इस बात पर उन्हें राष्ट्रपति टीटो और कर्नल नासिर का पूरा समर्थन मिला। इस प्रकार सम्मेलन में दो दृष्टिकोणों में परस्पर टक्कर हो गई और सम्मेलन विकसित होते होते बका। अन्त में यह निरूपण हुआ कि सम्मेलन के प्रस्तावों को लेकर राष्ट्रपति सुकार्णो अमेरिका व में और राष्ट्रपति डी.डी. से मिल कर उन्हें सम्मेलन के निष्कर्षों से अवगत करवायें। इस तरह का दायित्व पंडित नेहरू और एन्कूमा को दिया गया जो तुरन्त से मिलने मास्को गये।

बेनप्रेड सम्मेलन का प्रभाव

बनप्रेड सम्मेलन में संसार की लगभग १/३ जन-संख्या के देशों ने भाग लिया। अतः यह स्वाभाविक था कि विश्व की महाशक्तियाँ अमेरिका व इस और अन्य देशों की आँखें इस सम्मेलन पर खसी रहीं। सभी देश यह जानने के लिए उत्सुक थे कि संसार की एक धरत अजगता बना निरक्षय करने का रद्दी है? पक्षि अमेरिका इस आदि राष्ट्र अत्यन्त

शक्तिसामी थे किन्तु फिर भी वे अनुभव करने लगे कि उनकी शक्ति की मात्रा में घटाव उनके प्रभाव में कमा घाना शुरू हो गई है। घन के यह सोचने को विवश हो गये कि विश्व जनमत का अब अधिक समय तक नहीं ठहराया जा सकता और न ही उसे अधिक समय तक बम में रखा जा सकता है। साथ ही उन्हें यह भी भय लगा कि तटस्थ राष्ट्र कहीं घपना एक घण्टा घुट बना कर उनकी शक्ति को ही चुनौती न देवे। लेकिन उनका इन प्रकार का भय निराधार सिद्ध हुआ क्योंकि बेसप्रेड सम्मेलन तीसरे घुट की कायवाही एक शक्ति संघर्ष से दूर रहने हुए शान्ति प्रेम और सहयोग पर आधारित घपने किसिम का पहिजा और निराला घायोजन था।

बेसप्रेड सम्मेलन का विभिन्न दृष्टियों में सफलतायें प्राप्त हुई—

(१) संघुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के १६ वें अधिवेशन में एक तटस्थ राष्ट्र बर्मा के राजनीतिज्ञ ऊ पाण्ट को महासचिव बनाया गया। उनका कार्यकाल १९६१ में समाप्त होना पर दोनों हा महासचिवों द्वारा समझें विश्वास व्यक्त किये जाने पर यह भाषण किया गया कि वे घपने पर पर घापे भी बने रहें।

(२) घण्टु परीक्षण स्थगित हान की सम्भावना बढ़ी और उनके सम्बन्ध में घापे बस कर महाशक्तियों के बीच एक संधि भी हो गई। १४ घुलाई १९६१ को तीन बड़े राष्ट्रों ने घण्टु परीक्षण निषेध संधि की जिस पर चीन और फ्रांस को छोड़कर समस्त १०१ राष्ट्र हस्ताक्षर कर चुके हैं।

(३) तटस्थ राष्ट्रों में पारस्परिक एकता की स्थापना एवं उन्निवेश बाद तथा जातीवाद के विरोध में भी सफलता प्राप्त हुई। समस्त अफ्रीका और एशिया महादीप में साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक व्यापक और शक्तिसामी लहर फैल गई तथा एशियाई बलौकी जनता में आत्मविश्वास और आत्मविश्वास की भावनाओं का बस मिला।

बेसप्रेड सम्मेलन के महत्व को ससार के प्रत्येक देश में समझ गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि दुनिया में एक नई शक्ति का आधिपत्य हा रहा है। अमेरिका के राष्ट्रपति कनेडी न इस सम्मेलन को 'उत्साहघण्ट' बतसाया। इङ्ग्लैंड ने इसका स्वागत किया और इसकी प्रतिक्रिया भी बड़ी घण्टुल रही परन्तु साम्यवादी चीन ने तटस्थ राष्ट्रों के इस तिलर सम्मेलन का घन्त तक विरोध करके एशियाई एकता को गहरा घापण्ट पठु बाया। बहु एशिया और अफ्रीका के विभिन्न राष्ट्रों को इसमें भाग न लेने के लिए भी घुमवाटा रहा घपण्टि बड़े इस प्रयास में किसी प्रकार की सफलता नहीं मिल पाई। फिर भी इण्डोनेशिया के माध्यम से चीन का प्रयास सम्मेलन में घुल न घुल काम करता रहा।

भारती सम्मेलन १९६१

फरवरी १९६१ में मोती (तंगानिका) में अरुतिपाई एघटा

सम्मेलन हुआ जिसमें विभिन्न प्रस्ताव पारित किए गये। इन प्रस्तावों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

१. ब्रिटेन से अपील की गई कि वह वामुत्तरीय के बुजुर्गों और श्रमिकों को तत्काल एक बिना शर्त स्वतन्त्रता प्रदान करे। उस वक्त भी कहा गया कि वह रोडेसिया सब को सीधे मंग कर के सीनें प्रेनों को धरम-अलग मान कर स्वतन्त्र करे।
२. सम्मेलन राष्ट्रों से अपील की गई कि वे उपनिवेशवादी तत्वों और उपनिवेशवादी सरकारों के धरम के लिकार लोगों को राजनीतिक शरम प्रदान करे।
३. सम्मेलन में इकरायस की इस बात के लिए और निम्न की गई कि वह एक नवीन उपनिवेशवादी धरम बनता जा रहा है। सम्मेलन द्वारा अफ्रीकियाई राष्ट्रों से अपील की गई कि वे मधुवी धरम को रोके।
४. सम्मेलन में धरम का समर्थन किया गया और धरम सीमा पर सऊरी धरम बोर्डन तथा इकरायसी धरमसु की मरतना की गई।
५. सम्मेलन ने यह मत प्रकट किया कि केनिया में तत्काल धरम चुनाव हों और उसके बाद ही उसे स्वतन्त्रता प्रदान की जाये। साथ ही केनिया मुनाडा अजोहार और तमानिका का धरमक सब बनाने का समर्थन किया गया।
६. सम्मेलन में साम्यवादी चीन के फारमोसा को मुक्त करने के धरमकार को स्वीकार किया गया।
७. सम्मेलन द्वारा सभी राष्ट्रों से अपील की गई कि वे पुतमाल के विरुद्ध धरमिक व कूटनीतिक बहिष्कार लागू करवायें। पुतमाल को धरमियाई सम्मेलन में भाग लेने से रोका जाय तथा अमासा और मीजधरम के मुक्ति धरमों को प्रत्येक धरमक सहायता प्रदान की जाये।
८. सम्मेलन ने सिफररिक्त की कि उत्तरी रोडेसिया को लोकतन्त्रात्मक सविधान प्रदान किया जाय और धरम को मंग दिया जाय। सदस्य राष्ट्रों से अपील की गई कि वे दक्षिणी रोडेसिया के लोगों को उनके स्वातन्त्र्य आशेन में सहायता दें।
९. सम्मेलन ने सीमासीरुण्ड की बनता पर धरम व धरमकारों की निम्न की।
१०. सम्मेलन द्वारा यह मत भी कि धरमिका रक्षिणी विपुलता के प्रति धरमिक मतमान नीति का परिस्थान करे धरमसुधरमक धरमकारों को धरम करे और धरमसु धरमिक एवं धरमसुधरमक धरमिस बुनाए।

BIBLIOGRAPHY

- 1 Deutscher Isaac Russia What next ?
- 2 Haines, C. Grove, ed The threat of Soviet Imperialism.
- 3 Hunt, R. N. C. The Theory and Practice of Communism.
- 4 Kubki, W. W. The Soviet regime Communism in practice
- 5 Nagy Ferenc The struggle behind the Iron Curtain
- 6 Schuman Frederick L. Soviet politics at home and abroad
- 7 Tara Covzio T. A. War and Peace in Soviet Diplomacy
- 8 Williams, William A. American Russian Relations
- 9 Yakhontoff Victor A. : U.S.S.R. Foreign Policy
- 10 Morgenthau and Thompson Principles and problems of International politics.
- 11 **रुसोवो के सोवियत विचार (इण्डियन बुक कम्पनी दिल्ली)**
- 12 Allen Henry C. Great Britain and the U.S.
- 13 Bollard Sir Reader Britain and the middle-East.
- 14 Fitzsimons, M. A. The Foreign policy of the British Labour Govt.
- 15 Mckittrick, L. E. M. Conditions of British Foreign Policy
- 16 Reynolds P. A. British Foreign Policy in the inter war years.
- 17 Soward, E. H. ed. : The changing Commonwealth.
- 18 Wolfers, Arnold Britain and France between two Wars
- 19 Panikkar K. M. In two Chinas
- 20 Nan Porla N. J. The Sino Indian dispute
- 21 S. Chandrashekher Communist China Today
- 22 Heller, Andor No more Comrades
- 23 Henry Jan Escaree China then and now
- 24 Walker China Under Communism
- 25 Acheson, Dean G. The Premises of American Policy
- 26 Hartmann Fredrick The Relations of Nations.
- 27 Kennedy J. F. The Strategy of Peace.
- 28 Langsme, W. C. The World since 1919
- 29 Munroe, Dana Gardner The Latin American Republics
- 30 The Major addresses of the 34th President of the United States published by U. S. I. S., New Delhi.

- 31 North John Cuba Hope of an Hemisphere.
- 32 Schleicher, Charles P International Relation—Cooperation and Conflict
- 33 Schuman Fredrick L. International Politics.
- 34 Sweezy Paul and Leo Huberman, Cuba—Anatomy of a Revolution
- 35 The Great Debate (Published by Foreign Languages Publishing House Moscow)
- 36 Bazeman Adda B India's foreign policy today's world politics
- 37 Chipman W India's Foreign Policy
- 38 Durgadas India and the World.
- 39 Kamath M. V India's Dynamic neutralism Current History
40. Crowley D W The Background to Current Affairs.
- 41 Crankshaw Edward The New Cold War—Moscow V/s Peking.
42. Dentsber Y The Great Contest, 1960.
- 43 Khrushchev Nikita The Victory in the Peaceful Competition with Capitalism
- 44 Seton-Watson From Lenin to Khrushchev
- 45 Smith Gordon Connel Pattern of the Post War World.
- 4 Kundra J C. Indian Foreign Policy
- 47 Mukherjee M Our Foreign Policy AICC Economic Review
- 48 Coyle David Cushman The United Nations and How It Works
- 49 MacLaurin, John The United Nations and Power Politics
- 50 Nicholas, H. G The United Nations as a Political Institution
- 51 Potter P B An Introduction to the study of International Organization
- 52 Everyman's United Nations (Published by the United Nations Department of Public Information).
- 53 Arora, S. K. American Foreign Policy towards India.
- 54 Mazumdar H. T India and America
- 55 Roy N C. India and the United States of America
- 56 Sohan Lal Red Star over India ?
- 57 B-rkes Ross N India and the Communist World Current History
- 58 Patel Satyavrata Ramdas Foreign Policy of India.
- 59 Braine B "Will India stay in the Commonwealth ?"
- 60 Dwedi Surendranath Why leave Commonwealth ?
- 61 Kachroo J L. India and the Commonwealth
62. Surjeet Harkishan Singh, Kashmir and its Future.
63. Kamath M. Y India at the United Nations.
- 64 Bhagat, B. R., Role of foreign assistance in India's economic development

- 65 Zikkin Maurice Development of Free Asia
66. Barghoorn, Frederic C The Soviet Image of the United States; A study in Distortion
- 67 Bains, J S. India's International Disputes
68. Brown, W N , The United States and India and Pakistan
- 69 Chakravarti P C. India-China Relations
70. Dutt, V P , China's Foreign Policy
- 71 Dutt, R. P India Today and Tomorrow
72. Dutt R. P Crisis of British Empire.
73. Gupta, Karunakar Indian Foreign Policy
74. Karunakaran, K. P India in World Affairs.
- 75 Natarajan, L. The American Shadow over India
76. Nehru, Jawaharlal India's Foreign Policy
- 77 Nehru, Jawaharlal The Discovery of India
78. Panikar K. M. Asia and Western Dominance.
- 79 Panikar K. M. , India and the Indian Ocean
80. Poplai, S. L. - Asia and Africa in the Modern World.
81. Karunakaran, K. P India in World Affairs.
82. Thapar Romesh ; India in Transition.
83. Bhāradwaj R. P Peaceful Co-existence.
84. Bowles, Chester A friendly peep at Asia's glass house
85. Blackett, Patrick, M S , Atomic Weapons and East West Relations.
86. King Hall, Sir Stephen , Defence in the Nuclear Age.
87. Kissinger Henry A. Arms Control Inspection and Surprise Attack.
88. Russel Bertrand Commonwealth and Nuclear Warfare Foreign Affairs, Vol XXXVIII.
- 89 Friedmann, W An Introduction to World Politics.
90. Hartmann Fredrick, H. , The Relations of Nations
- 91 Panikkar K. M. , Regionalism and Security
92. Schleicher Charles, P , Introduction to International Relations.
93. Parameshwaran C. Nehru's Foreign Policy - Rayed
94. Srivastava, G P some aspects of Indian Foreign Policy
- 95 Mookherji S K. India's role in world peace.
96. Clark, Colin British Trade in the Common Market.
- 97 Coatman, J The British Commonwealth of Nations.
98. Arora, S K. Indian Attitudes towards China International Journal.
- 99 Ismail Sir Mirza ; India and her neighbours.
- 100 Hardy A short History of International Affairs.
101. Banerjee, J K. ' The Middle East in World Politics.
102. Horskins, Halford L. ' The Middle East.
- 103 Lenczowski, George The Middle East in World Affairs
- 104 Longrigg Stephen Hemsley ; Oil in the Middle East.
- 105 Ghy Wint and Peter Calvocross The Middle East in Crisis.

- 106 Dean V M. , Main Trends in post war American foreign policy
- 107 Edwards, Michael Asia in the European Age.
- 108 Harrison brain South-East Asia.
- 109 Hall D G E. A History of South-East Asia.
110. Levi Werner India's Himalayan Border
- 111 Panikkar K. M. Asia and Western dominance.
112. Guillan Robert The blue ants—600 millions Chinese under the Red Flag
- 113 Velky Through Unknown Tibet.
- 114 Faber The red army of China
- 115 Schwartz, Benjamin Chinese Communism and the rise of Mao
- 116 Walker Richard China under Communism The first five years
- 117 Donelon Michael The Ideas of American foreign policy
- 118 Balbey Thomas A America Faces Russia Russian-American Relations from early times to our day
- 119 Bartlett, Ruhl, ed The Record of American diplomacy
- 120 Bemis, Samuel F A diplomatic history of the United States.
- 121 Byrnes, James F Speaking Frankly
- 122 Dilles, John Foster War or peace.
- 123 Felt Herbert The China Tangle
- 124 Guerrant, Edward O Roosevelt's Good Neighbour policy
- 125 Kennan George F American diplomacy
126. Lippman Walter The Cold War A study in U S. Foreign policy
- 127 Perkins Dexter The American Approach to foreign policy
- 128, Pratt, Julius W America's colonial experiment.
- 129 Pratt, Julius W A history of U S. foreign policy
- 130 Reichaver Edwim O ; Wanted An Asian policy
- 131 Rostow W W An American policy in Asia.
- 132 Tennrbaum Frank The American tradition in foreign policy
- 113 Hatch, John Africa Today and Tomorrow
- 134 Hutt, W H The Economics of Colour Bar
- 135 Hudson, Robert, D The Changing Map of Africa.
136. Segal, Ronald African Profiles.
- 137 Wal Bink Walter T Documents on Modern Africa
- 138 Savel, V and Vasilyov G An Outline History of Africa
- 139 Antonius George The Arab Awakening.
- 140 Ben Hornin E. The Middle East at Crossroads of History
- 141 Karanjia, R. K. ; The Arab Dawn.

142. Karanjia R. K. China stands up.
143. Pannikar K. M. In Two Chinas
144. Pannikar K. M. Afro-Asian States and their Problems.
145. Snow Edgar. Red Star Over China.
146. Strong, Anna Lolus. Dawn out of China
147. Wehl, D. The Birth of Indonesia.
148. Mirsky & Stepanov. Asia and Africa, A New Era
149. Sakran, F. C. Palestine Dilemma.
150. Fitzgerald, C. P. Revolution in China
151. Aarnes, Leonord. Sovtet Light on Colonies.
152. Crankshaw, E. ; The New Cold War Moscow Vers. Peking.
153. Prasad B. Origin of Indian Foreign policy
154. Coyajee J. C. India and the League of Nations.
155. Levi, W. Free India in Asia.
156. Kothari S. India's Emerging Foreign Policy
157. Rosinger L. K. India and United States.
158. Publication Division Delhi. Independence and After Speeches of Jawaharlal Nehru.
159. Government of India. White Paper on India-China Relations
160. Ministry of External Affairs India. Foreign Affairs Records
161. Breakes, R. N & Badi M. S. The Diplomacy of India.
162. Poplai S. L. & Tolbot, P. India and America.
163. Link (Weekly) New Delhi.
164. Peter Lyons. Neutralism.
165. Ronald Segal. Crisis of India.
166. Bertrand Russel. The unarmed Victory
167. D. R. Manekkar, Twenty Two Fateful Days.
168. K. S. Murty, Indian Foreign Policy
169. विद्यमान (साप्ताहिक) दिल्ली ।
170. Beloff M. The Foreign Policy of Soviet Russia.
171. Carr, E. H. German-Soviet Relations between the two World Wars 1919-1939
172. Crankshaw E. Russia without Stalin.
173. Dallin, D. J. Soviet Russia's Foreign policy
174. Molotov V. M. Problems of Foreign Policy
175. Tarazonio T. A. War and Peace in Soviet Diplomacy
176. Yakhontoff V. A. U. S. S. R. Foreign Policy

- 177 Vyshinsky A. On Eliminating the Danger of a War and Strengthening the Peace and Security of Nations
- 178 Report of the Officials of the Government of India to the People's Republic of China on the Boundary Question
- 179 Chalmers H. World Trade politics.
- 180 Mendes France, P. Economic and Action
- 181 Gunther J. Inside Africa
- 182 Lenzowski, G. Middle East in World Affairs.
- 183 Lequeur W. Z. ; Communism and Nationalism in Middle East
- 184 Ben-Gurion, D. The Rebirth and Destiny of Israel.
- 185 Bowles, Chester. Ideas, People and Peace.
- 186 Kiss, Grayson. The Changing Environment of International Relations.
-



- ११ सम्मेलन द्वारा ब्रिटेन को सुझाव दिया गया कि वह १९६३ के अन्त तक जंबीबार को स्वतन्त्र कर दे।
- १२ सम्मेलन के प्रथम प्रस्ताव में कहा गया कि कामो की स्थिति इस बात को इंगित करती है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिकन साम्राज्यवाद का सधन बना हुआ है। अतः सम्मेलन समस्त राष्ट्रों से यह अपील करता है कि वे संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन पर बल दें ताकि वह एशिया और अफ्रीका के लोगों की प्राकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सके।

अबीस अबाबा सम्मेलन १९६३

२२ मई, १९६३ को एक अफ्रीकी सम्मेलन हुआ जिसमें ३२ स्वतन्त्र राष्ट्रों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया। इस शिबिर सम्मेलन का आयोजन इथोपिया के सम्राट हेमसेसासी द्वारा किया गया था और यह २२ से २६ मई तक इथोपिया की राजधानी अबीस अबाबा में हुआ।

इस अबीस अबाबा सम्मेलन में संयुक्त अफ्रीका की स्थापना के विषय में विचार किया गया और इसके निर्माण-सम्बन्धी क्परेका इस प्रकार निर्धारित की गई—

- १ राष्ट्राध्यक्षों की एक असेम्बली और सरकार (सर्वोच्च संस्था) बनाई जाय जिसकी बैठक वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य हो।
- २ समस्त राज्यों की एक मन्त्री-परिषद स्थापित हो जिसमें सदस्य राष्ट्रों के परराष्ट्र मंत्री शामिल हों। वे कम से कम वर्ष में एक दो बार अवश्य विचार-विनिमय हेतु मिलें।
- ३ एक स्थाई सचिवालय स्थापित किया जाय जिसका प्रधान कार्यालय अबीस अबाबा में हो। इसमें एक महासचिव और उसके कुछ सहायक हों।

उपरोक्त निश्चयों के अनुसार सम्मेलन द्वारा कार्य किया गया। सचिवालय का नाम अफ्रीकी एकता समन्ध (O. A. U. I. c. Organisation of African Unity) रखा गया और गिनी के श्री दिवाल्लेत्सी को इसका महासचिव बनाया गया। सम्मेलन ने अफ्रीकी राज्या क मध्य हांग नामे भगदों को सुसम्भाने के लिए एक प्रायोग की स्थापना भी की।

सम्मेलन द्वारा यह निश्चय किया गया कि अफ्रीका के पराधीन देशों का औपनिवेशिक दासता से तथा एशिया अफ्रीका की अखण्डता को रंगरेख नीति के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए एक मुक्ति-सेना बनाई जाय और मुक्तिकोष की भी स्थापना की जाय। सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया कि दक्षिणी अफ्रीका और पुतनास के विरुद्ध राजनीतिक व आर्थिक बहिष्कार

की नीति अपनाई जाय। संयुक्त राष्ट्र संघ से यह मांग की गई कि वह सुरक्षा परिषद तथा वार्षिक और सामाजिक परिषद में अफ्रीकी राष्ट्रों का प्राथमिक स्थिति प्रदान करे। ब्रिटेन से कहा गया कि वह दक्षिणी रोडेसिया को तब तक स्वतन्त्रता प्रदान न करे जब तक कि वहाँ अफ्रीकी जनता को गैरो के समान अधिकार प्राप्त न हो जायें।

अखिल अफ्रीका सम्मेलन की सबसे बड़ा उपलब्धि यह है कि इसमें अफ्रीकी एकता का एक घोषणा-पत्र स्वीकार किया गया जो सार रूप में निम्नलिखित था—

- १ अफ्रीकी राज्यों और मासागावी के मध्य एकता स्थापित की जाए तथा पराधीन अफ्रीकी राष्ट्रों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में भरसक सहायता और सक्रिय सहयोग दिया जाय।
- २ सबसब राज्यों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए क्रिये जाने वाले प्रयत्नों में सार्ध-बन्धन स्थापित किया जाय।
- ३ सबसब राज्यों की प्रभुता और प्राथमिक अस्वच्छता की रक्षा की जाय।
- ४ अफ्रीकी महाद्वीप से प्रत्येक प्रकार के उपनिवेशवाद को समाप्त किया जाय।
- ५ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित किया जाय और संयुक्त राष्ट्र संघ एवं मौखिक मानवीय अधिकारों का आदर किया जाय।

घोषणापत्र में समूचे अफ्रीका महाद्वीप को दासता से मुक्त कराने की प्रतिज्ञा की गई। इस कार्य के लिए नौ अफ्रीकी देशों टॉगानिका, मस्वीरिया, इपोविमा, संयुक्त अरब गणराज्य, मूगाण्डा, कांगो, जिनी, सेनेगल, बेना गार्डीरिया को मिला कर एक स्वाधीनता समिति (Liberation Comm- itee) बनाई गई। इसका प्रधान कार्यालय दारैससलाम में रखा गया।

सम्मेलन में घाना के उत्कासीन राष्ट्रपति एन्क्रूमा ने यह प्रस्ताव पेश किया कि अफ्रीका को एक संघात्मक राष्ट्र का स्वरूप दिया जाए एवं एक अष्टीकन कार्यपालिका, प्रतिरक्षा संगठन तथा सबसब राज्यों के लिए एक सामान्य नीति का निर्माण किया जाए। परन्तु उनका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया था।

काहिरा सम्मेलन, १९६४

एशियाई और अफ्रीकी राज्यों का यह सम्मेलन संयुक्त अरब गणराज्य की राजधानी काहिरा में १ अक्टूबर, १९६४ को प्रारम्भ हुआ और ११ अक्टूबर को इसकी समाप्ति हुई। इस सम्मेलन में ४८ देशों के वरिष्ठ अधिकारियों व राज्याध्यक्षों तथा ११ देशों के पर्यवेक्षकों ने भाग लिया। सम्मेलन में प्रदानता अष्टीकन देशों की रही।

1. काहिरा सम्मेलन का उद्देश्य तटस्थतावादी क्षेत्र को विस्तृत करना और इसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करना था। संयुक्त अरब एमिराट्स के राष्ट्रपति कर्नेल नासिर ने अपने उद्घाटन भाषण में निम्नलिखित बातों पर बल दिया—

- (i) सर्व नाश से मानवता की रक्षा का एक-मात्र उपाय तटस्थता ही है।
- (ii) तटस्थता का काम बेबस रियायतें प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि सद्भावना का निर्माण करना भी है।
- (iii) विवाद शांति के लिए उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का अन्त आवश्यक है।
- (iv) स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले मुक्ति आन्दोलनों को प्रोत्साहित करना जरूरी है।
- (v) साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिया जाना न्याय संगत है।

सम्मेलन में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने जर्मनी के एकीकरण न हो पाने और अफ्रीका में रणभेद की नीति जारी रखने की तीव्र मर्चना की। भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाय ने विश्व शांति की स्थापना के लिए एक पंच-सूत्री प्रस्ताव पेश किया जो निम्नलिखित प्रश्नों से सम्बन्धित था—

- (i) अणु निःशस्त्रीकरण,
- (ii) सीमा-विवादों का शांतिपूर्ण हल
- (iii) विदेशी प्रभुत्व का अन्त और टोकड़ोड़पूर्ण कार्यवाहियों से मुक्ति
- (iv) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा आर्थिक विकास एवं
- (v) संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रम का समर्थन।

2. भारत ने अल्पसंख्यक प्रजातंत्र के प्रतिरिक्त समस्त राष्ट्रों के लिए पंचशील की भांति आचार संहिता सम्बन्धी एक दस-सूत्री योजना भी प्रस्तुत की। इस योजना में इन बातों पर बल दिया गया—

- (i) प्रत्येक राष्ट्र को अपनी आबासिकताओं, समताओं और परिस्थितियों के अनुरूप अपनी राजनीतिक आधिपत्य एवं सामाजिक प्रणालियों का निर्धारण का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।
- (ii) विभिन्न प्रणालियों पर चलने वाले राष्ट्रों के मध्य शांतिपूर्ण सहमस्तित्व की भावना विकसित होनी चाहिए और किसी भी राष्ट्र को अपनी प्रणाली को अन्य राष्ट्रों पर थामने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

- (iii) सभी राष्ट्रों को अन्य राष्ट्रों की सम्प्रभुता और समानता को मान्यता देनी चाहिए।
- (iv) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयोजनों के विरुद्ध किसी भी राष्ट्र को न बल प्रयोग करना चाहिए और न ही किसी राष्ट्र को बलकी देनी चाहिए। बल प्रयोग द्वारा क्षेत्रीय स्थिति में जो भी परिवर्तन लाया गया हो उसे मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।
- (v) सभी राष्ट्रों को दूसरे राष्ट्रों की राजनीतिक स्वाधीनता एवं प्रादेशिक प्रकल्पता का सम्मान करते हुए निश्चित रूप से निर्धारित एवं परम्परागत सीमा रेखाओं को मान्यता देनी चाहिए।
- (vi) सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा शांतिपूर्ण ढंग से होना चाहिए।
- (vii) सभी राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र संघीय महासभा के इस प्रस्ताव को मान्यता देनी चाहिए कि उपनिवेशों को अखिलम्ब और बिना किसी शर्त के स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।
- (viii) सभी राष्ट्रों को मौलिक मानव-अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का धारण करना चाहिए।
- (ix) सभी राष्ट्रों को एक दूसरे की आर्थिक और मानव कल्याण के लिए परस्पर आर्थिक-साहयोग्यता सहयोग देना चाहिए।
- (x) अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को दूर करने एवं निःशस्त्रीकरण के लिए सभी राष्ट्रों को मिल कर प्रयास करने चाहिए।

इस सम्मेलन में भी कुछ मतभेद उभर रूप से प्रकट हुए जिनके कारण यह विफल होते होते बचा। किन्तु अन्त में ११ अक्टूबर १९६४ को सर्व सम्मति से एक विज्ञप्ति प्रसारित की गई जिसका शीर्षक था "शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए कार्यक्रम।" इस विज्ञप्ति में उपनिवेशवाद के पूर्ण अन्त की बात कही गई और यह घोषित किया गया कि स्वाधीनता प्रत्येक राष्ट्र का अधिकार है तथा पराधीन देश अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उपनिवेशवादी राष्ट्रों के विरुद्ध सहज प्रयोग कर सकते हैं। इस विज्ञप्ति प्रथम घोषणापत्र में समयम १,१०० शब्दों में निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया—

- (१) यह सम्मेलन उपनिवेशिक मुक्ति आन्दोलन का समर्थन करता है और यह स्वीकार करता है कि यदि वहाँ की जनता विषय हो कर शक्ति और सशस्त्रों का सहारा से तो उसका यह कार्य अनुचित न होना।
- (२) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण हल निकालना ही सर्वोत्तम है।
- (३) विश्व की महान शक्तियों को पूर्ण निःशस्त्रीकरण की दिशा

- में बसकर ही कर समझौता कर लेना चाहिए और अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, यूरोप के कुछ भागों तथा विश्व के महा सागरों को धरु मुक्त क्षेत्र बनाया जाए।
- (४) संयुक्त राष्ट्र संघ के शांतिपूर्ण सहप्रस्थित्व के सिद्धांतों को संहिताबद्ध कर दिया जाना चाहिए।
 - (५) क्यूबा स्थित नौ-सैनिक बलों को खामी कर दिया जाना चाहिए और साथ ही अमेरिका को व्यापारिक व आर्थिक बेरेबन्धी भी उठा लेनी चाहिए।
 - (६) धरुन स्थित ब्रिटिश सैनिक धरु समाप्त कर शिमे जाने चाहिये।
 - (७) दक्षिण अफ्रीका सरकार की रमनेद नीतियों के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने के बारे में सभी देशों को प्राये प्राणा चाहिए।
 - (८) विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक प्रणामी वाले देशों के बीच शांतिपूर्ण सहप्रस्थित्व सम्भव और आवश्यक है तथा विश्व के सभी देशों को इस बात में विश्वास करना चाहिए।
 - (९) किसी भी देश को दूसरे देशों की प्रादेशिक अक्षयता और राजनीतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध बस प्रयोग नहीं करना चाहिये।
 - (१०) अफ्रीका और एशिया की पुर्तगाली बस्तियों को बिना शर्त प्रसिद्ध स्वतन्त्र कर लेना चाहिए और ऐसा न होने पर सभी तटस्थ देशों को उन देशों की आर्थिक व सैनिक सहायता देनी चाहिये।
 - (११) दक्षिणी रोडेसिया की धरु सम्पक सरकार की धरुन और प्राथकपूर्ण कार्यवाहियां बन्द की जानी चाहियें।
 - (१२) संयुक्त राष्ट्र संघ को स्वाधीनता दामुतोलीड और बैबुपानालीड की प्रादेशिक अक्षयता की गारन्टी देनी चाहिए और इन्हें सीमाविहीन स्वतन्त्रता प्रदान करने की कार्यवाही करनी चाहिये।
 - (१३) सभी सीमा सम्बन्धी विवादों को शांतिपूर्ण समझौतों द्वारा धरुबा पंचनिरालय द्वारा हल किया जाना चाहिए।
 - (१४) जेनेवा समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों को दक्षिण एशिया में स्थिति को बिगाड़ने वाली सम्भावित कार्यवाहियों से दूर रहना चाहिये। उन्हें दक्षिण पूर्वी एशिया में हस्तक्षेप समाप्त करना चाहिए और कम्बोडिया की तटस्थता व अक्षयता को मान्यता देते हुए उनका राजनीतिक हल प्राप्त करने के लिए जेनेवा सम्मेलन पुनः बुलाना चाहिये।
 - (१५) संयुक्त राष्ट्र संघ को साम्यवादी चीन को तटस्थता प्रदान कर देनी चाहिये।

काहिरा सम्मेलन की सफलता की कामना विश्व के सभी बड़े राज्यों से की। घोषित रूप से इस सम्मेलन के बोपला-यत्र की उदाहना करते हुए कहा—“काहिरा बोपला में शक्ति मुझ करने उपनिवेशवाद के प्रभुत्वों का सम्मूलन करने और विभिन्न राजनीतिक व सामाजिक पाठकों वाले राष्ट्रों में सहप्रतिष्ठान वही उच्च मात्राओं को कि सभी क्षेपों के दिन के मान हैं, निहित है।”

नई विस्ती सम्मेलन, १९६६

वीर प्रमुख तटस्थतावादी राष्ट्रों—यूगोस्लाविया, संयुक्त प्रजा गणराज्य और भारत के शासनाध्यक्षों का एक विश्व सम्मेलन २१ से २४ अक्टूबर, १९६६ तक नई विस्ती में हुआ। इस सम्मेलन की मुख्य विशेषता यह थी कि राष्ट्रपति नासिर, राष्ट्रपति टीटो और प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सम्मेलन में राजनीतिक प्रश्नों की प्रेक्षा प्राथिक प्रश्नों पर अधिक ध्यान दिया। तीनों ही महान नेता इस बात पर एक मत थे कि किसी भी देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिये उसकी प्राथिक स्वतन्त्रता अनिवार्य है। इस सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका के अतिक्रान्त देशों के प्राथिक विकास में विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया और विभिन्न प्राथिक समस्याओं के उपायों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन हुआ।

सम्मेलन के बाद जो संयुक्त विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमें इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की गई कि इतिहासों की शीघ्र बढ़ने शक्तिपूर्ण सहप्रतिष्ठान की नीति का पालन न करने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिये शक्ति का प्रयोग करने की प्रवृत्ति से विश्व शांति को खतरा बढ़ रहा है। विज्ञप्ति में अवीन की गई कि इस बढ़ने हुए खतरों को निःसंस्वीकरण के द्वारा तथा अणु आयुधों के विस्तार पर रोक लगा कर समाप्त किया जाना चाहिये।

विज्ञप्ति में उपनिवेशवाद मर उपनिवेशवाद और शक्तिवाद के नये खतरों तथा विपतनाम की स्थिति पर भी चिन्ता व्यक्त की गई। इस बात की उदाहना की गई कि अफ्रीकी एवं एशियाई राष्ट्र उपनिवेशवाद एवं शक्तिवाद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। विज्ञप्ति में इस बात पर सन्तोष व्यक्त किया गया कि यूरोप में तनावपूर्ण स्थिति पूर्ववत् कम है। विज्ञप्ति में इस बात को दोहराया गया कि उत्तरी विपतनाम पर कम बर्षों बिना किसी पूर्व शर्त के पश्चिमवर्ध इन्द्र की जानी चाहिये और किसी भी शक्ति शक्ति में अखिमी विपतनाम के राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे (National Liberation Front) को प्रतिनिधित्व देना चाहिये। सम्मेलन द्वारा इस बात पर बल दिया गया कि विपतनाम की समस्या को बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के १९६४ के बनेवा सम्मेलन के अनुसार हल करना उचित है। विज्ञप्ति में दक्षिण अफ्रीका दक्षिण पश्चिम अफ्रीका और दक्षिणी रोडेशिया में शक्ति भेदभाव की तीव्र चिन्ता की गई। यह भी ध्यान व्यक्त की गई कि पश्चिमी अफ्रीका में गोला योजनिक अस्त्रास्त्रों के तबाकित पुन्याम मिली एवं प्रयत्न प्रादि देश उपनिवेशवाद से शीघ्र मुक्ति प्राप्त करें।

तीनों सदस्य राष्ट्रों के नेताओं ने निःशस्त्रीकरण पर बस देते हुए इसके लिए एक विश्व सम्मेलन का आयोजन करने की प्रतीति की जिसमें सभी देशों का प्रतिनिधित्व हो। तीनों ही नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र सभ के महत्व और उनकी उपयोगिता में आस्था प्रकट की और उसे सशक्त बनाने के लिये अपने समर्थन की घोषणा की। उन्होंने नियुक्तता व शांतिपूर्ण सहप्रस्थित्व की नीतियों के मार्गों का दाहराया और शांति के लिये उन्हें अनिवार्य बतसाया।

सम्मेलन की समुक्त विमर्श में विश्व के सभी विकासशील देशों से बरीष की गई कि सहायता देने वाले समस्त देश उन पर जा तनाव और शरों साध रहे हैं उनका उन्हें पारस्परिक सहयोग से मुकाबला करना चाहिये। विकासशील देशों से अनुरोध किया गया कि वे अपने विकास को तीव्र गति देने के लिये नये कदम उठाये और प्रयास करें और अपने विभिन्न प्रयासों में समन्वय स्थापित करें। वे आपस में सहयोग बढ़ायें एक दूसरे से अधिक व्यापार करें एक दूसरे के तकनीकी और वैज्ञानिक अनुभव से लाभ उठाये और संयुक्त उद्योग स्थापित करें। यह भाषा व्यक्त की गई कि इनके द्वारा उनके पारस्परिक माम में वृद्धि होगी।



BIBLIOGRAPHY

- 1 Deutscher Isaac Russia What next ?
- 2 Haines, C. Grove, ed The threat of Soviet Imperialism
- 3 Hunt, R. N. C. The Theory and Practice of Communism.
- 4 Kubki W W The Soviet regime, Communism in practice
- 5 Nagy Ferenc The struggle behind the Iron Curtain
- 6 Schuman Frederick L. Soviet politics at home and abroad
- 7 Tara Covzio T A War and Peace in Soviet Diplomacy
- 8 Williams, William A. American Russian Relations
- 9 Yakhontoff Victor A. : U.S.S.R. Foreign Policy
- 10 Morgenthau and Thompson Principles and problems of International politics.
- 11 **रुसो के प्रोबन्सी विचार (इण्डियन बुक कम्पनी दिल्ली)**
- 12 Allen Henry C. Great Britain and the U S
- 13 Bullard Sir Reader Britain and the middle-East.
- 14 Fitzsimons, M A. The Foreign policy of the British Labour Govt.
- 15 Mckittrick, I E. M Conditions of British Foreign Policy
- 16 Reynolds, P A. : British Foreign Policy in the inter war years.
- 17 Soward E. H ed : The changing Commonwealth
- 18 Wolfers, Arnold Britain and France between two Wars
- 19 Panikkar K. M. In two Chinas
- 20 Nan Porin N J The Sino Indian dispute
- 21 S. Chandrashekher Communist China Today
- 22 Heiler Andor No more Comrades
- 23 Henry Jan Escaree China then and now
- 24 Walker China Under Communism
- 25 Acheson Dean G. The Premises of American Policy
- 26 Hartmann Fredrick The Relations of Nations.
- 27 Kennedy J F The Strategy of Peace.
- 28 Langsome W C The World since 1919
- 29 Munroe, Dana Gardner The Latin American Republics
- 30 The Major addresses of the 34th President of the United States published by U. S. I. S., New Delhi

- 106 Dean V M. ; Main Trends in post war American foreign policy
- 107 Edwards, Michael Asia in the European Age.
- 108 Harrison brain South-East Asia.
- 109 Hall, D G E. A History of South-East Asia.
- 110 Levi Werner India's Himalayan Border
- 111 Panikkar K. M. Asia and Western dominance.
- 112 Guillian Robert The blue ants—600 millions Chinese under the Red Flag
113. Velky Through Unknown Tibet.
- 114 Faber The red army of China
- 115 Schwartz, Benjamin Chinese Communism and the rise of Mao
- 116 Walker Richard China under Communism The first five years
- 117 Douclon, Michael The ideas of American foreign policy
- 118 Balbey Thomas A America Faces Russia Russian-American Relations from early times to our day
- 119 Bartlett, Ruhl, ed The Record of American diplomacy
- 120 Bemis, Samuel F A diplomatic history of the United States.
- 121 Byrnes, James F Speaking Frankly
122. Dulles, John Foster War or peace.
- 123 Fels Herbert The China Tangle
- 124 Guarrant Edward O Roosevelt's Good Neighbour policy
- 125 Kennan, George F American diplomacy
- 126 Lippman Walter The Cold War A study in U S. Foreign policy
- 127 Perkins Dexter The American Approach to foreign policy
128. Pratt, Julius W America's colonial experiment.
- 129 Pratt, Julius W A history of U S. foreign policy
130. Reischauer Edwin O ; Wanted An Asian policy
- 131 Rostow W W An American policy in Asia.
132. Tannenbaum Frank The American tradition in 'foreign policy
- 133 Hatch John Africa Today and Tomorrow
- 134 Hutt W H The Economics of Colour Bar
- 135 Hudson, Robert, D The Changing Map of Africa.
136. Segal, Ronald African Profiles.
- 137 Wal Bank Walter T Documents on Modern Africa
138. Savel, V and Vasilyev G An Outline History of Africa
- 139 Antonius George The Arab Awakening.
- 140 Ben Housin E. The Middle East at Crossroads of History
- 141 Karanja R. K. The Arab Dawn.

142. Karanjia R. K. China stands up
143. Pannikar K. M. In Two Chinas.
144. Pannikar K. M. Afro-Asian States and their Problems.
145. Snow, Edgar Red Star Over China.
146. Strong, Anna Lotus Dawn out of China
147. Wehl D. The Birth of Indonesia.
148. Mirsky & Stepanov Asia and Africa, A New Era.
149. Sakran, F. C. Palestine Dilemma.
150. Fitzgerald C. P. Revolution in China
151. Aarnes, Leonord Soviet Light on Colonies
152. Crankshaw, E. ; The New Cold War Moscow Vers Peking.
153. Prasad B. Origin of Indian Foreign policy
154. Coyajee, J. C. India and the League of Nations.
155. Levi, W. Free India in Asia.
156. Kothari, S. India's Emerging Foreign Policy
157. Rosinger L. K. , India and United States.
158. Publication Division Delhi Independence and After Speeches of Jawaharlal Nehru.
159. Government of India White Paper on India-China Relations
160. Ministry of External Affairs India Foreign Affairs Records
161. Breakes, R. N & Badi, M. S. The Diplomacy of India.
162. Poplal S. L. & Tolbot, P. India and America.
163. Link (Weekly) New Delhi
164. Peter Lyons Neutralism
165. Ronald Segal Crisis of India.
166. Bertrand Russel The unarmed Victory
167. D. R. Mankekar Twenty Two Fateful Days.
168. K. S. Murty Indian Foreign Policy
169. विनमात्र (साप्ताहिक) दिल्ली ।
170. Beloff, M. The Foreign Policy of Soviet Russia.
171. Carr E. H. German-Soviet Relations between the two World Wars 1919-1939
172. Grankshaw, E. Russia without Stalin.
173. Dallin D. J. Soviet Russia's Foreign policy
174. Molotov V. M. Problems of Foreign Policy
175. Taracouzio T. A. War and Peace in Soviet Diplomacy
176. Yakhontoff V. A. U. S. S. R. Foreign Policy

- 177 Vyshinsky A. On Eliminating the Danger of a New War and Strengthening the Peace and Security of Nations.
- 178 Report of the Officials of the Government of India and the People's Republic of China on the Boundary Question.
- 179 Chalmers, H. World Trade politics.
- 180 Mendes France, P. ; Economic and Action
- 181 Gunther J. Inside Africa
- 182 Lenzowski, G. Middle East in World Affairs.
- 183 Lequeur W. Z. ; Communism and Nationalism in the Middle East
- 184 Ben Gurion, D. The Rebirth and Destiny of Israel
- 185 Bowles, Chester. Ideas, People and Peace.
186. Kirk, Grayson ; The Changing Environment of International Relations
-

संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य और प्रयोजन [Aims & Purposes of U N O]

राष्ट्र संघ का स्वरूप निर्धारण करते समय इसके व्यवस्थापकों ने उन सदस्यों को अपनी दृष्टि में रखा था जिनको वे इसके माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे। संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर इनके सदस्यों की स्पष्ट व्यवस्था करता है।

चार्टर की प्रस्तावना के आरम्भ में सदस्य राष्ट्रों के द्वारा अपने विश्व शांति और सुरक्षा सम्बन्धी संकल्पों को प्रकट करते हुए कहा गया है कि—

पामामी पीढ़ियों को युद्ध की तबाही से बचाने के लिये जिससे कि हमारे जीवन काल में ही दो बार मानवता को अक्षणीय नष्ट मिला है व्यक्ति के मान और मूल्य में विश्वास को पुनः रोहराने के लिये संघियों और अन्य अन्तराष्ट्रीय विधि-स्रोतों से निरसन वाले घामातों का सद्मावना पूर्वक निर्बाह करने के लिये और उत्तरोत्तर धार्मिक एवं सामाजिक प्रगति के लिये हम संयुक्त राष्ट्र संघ के भागों में—

“सहिष्णुता से कार्य करने और अच्छे पड़ोसियों की भाँति एक दूसरे के साथ भाँति से रहने”

घन्तराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को स्थिर रखने के लिये अपनी शक्ति को सगठित करने”

केवल सर्वहित को छोड़कर सत्त्व शक्ति का उपयोग न करने के सिद्धान्त का अनुसरण करने,”

घन्तराष्ट्रीय सगठन से मानव का धार्मिक तथा सामाजिक विकास के लिये अपने प्रयासों को सम्मिलित करने का निश्चय किया है।”

हमारी सरकारों ने संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर पर अपनी सहमति प्रकट की है और इस प्रकार हम संयुक्त राष्ट्र नामक अन्तराष्ट्रीय संघटन को स्थापित करते हैं।”*

* We the people of the United Nations determined to save succeeding generations from the scourge of war which twice in our lifetime has brought untold sorrow to mankind and

to reaffirm faith in fundamental human rights, in the dignity and worth of the human person, in the equal rights of men and women and of nations large and small and to establish conditions under which justice and respect for the obligations arising from treaties and other sources of international law can be maintained, and

to promote social progress and better standards of life in large freedom, and for these ends to practice tolerance and live together in peace with one another as good neighbours; and

संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र की १११ धाराओं में उसके उद्देश्यों और मिशनों की विस्तृत व्याख्या की गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के धनक उद्देश्य हैं जिन्हें विविध कार्यक्रमों के द्वारा पूरा किया जाता है। वे उद्देश्य हैं—

- (१) दुनिया में शांति और सुरक्षा बनाये रखना और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये शांति पर होने वाले धातमार्गों को रोकना तथा उनके विरुद्ध प्रभावपूर्ण सम्मिलित कार्यवाही करना। न्यायपूर्ण सिद्धान्तों एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार शांति भंग करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं प्रथवा स्थितियों पर शान्तिपूर्ण साधनों से समझौता प्रथवा धातमी निष्पत्ति करवाना
- (२) धातमिण्ड के सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का विकास करवाना और साहसपूर्ण शांति का बल प्रदान करने के लिये अन्य आवश्यक कदम उठाना
- (३) दुनिया की धातमिण्ड सामाजिक संरचना या अन्य मानवीय समस्याओं को हल करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तथा मूलवश सिम प्राप्ति या अन्य भेद के बिना, मानव मात्र के लिये मानव अधिकारों और स्वतंत्रता के मूल अधिकारों को बढ़ाना और प्रोत्साहन देना, तथा
- (४) उक्त उद्देश्यों को प्राप्त के लिये राष्ट्रों की कोशिशों में धातमिण्ड स्थापित करना और उसके लिये एक केन्द्र का कार्य करना है।†

to unite our strength to maintain international peace and security and

to ensure, by the acceptance of principles and the institutions of methods that armed force shall not be used save in the common interest and

to employ international machinery for the promotion of the economic and social advancement of all peoples have resolved to combine our efforts to accomplish these aims.

Accordingly our respective Governments, through representatives assembled in the city of San Francisco who have exhibited their full powers found to be in good and due form, have agreed to the present Charter of the United Nations and do hereby establish an international organisation to be known as the United Nations.,

†The purpose of the United Nations are

1 To maintain international peace and security and to that end to take effective collective measures

सदस्यता (Membership)—संयुक्त राष्ट्र संघ के ये सब राष्ट्र सदस्य हैं जिन्होंने सान फ्रान्सिस्को में हुआ संधि किया है। इनकी संख्या ५१ थी। सब की सदस्यता इन सब राज्यों के लिये सुनी है जो आन्तिमिय हों और संयुक्त राष्ट्र संधि के चार्टर में विश्वास रखते हों।

संधि के धनुषद्वैर ४ [Article-4] में मये सदस्य बनने के लिये निम्न लिखित शर्तें रखी गई हैं जिनका मानना अनिवार्य है—

- १ वह एक राज्य हो
- २ आन्तिमिय हो
- ३ चार्टर के द्वारा प्रस्तावित कर्तव्यों को स्वीकार करता हो
- ४ संधि के निर्णय के धनुषद्वैर उन कर्तव्यों को पूरा करने में समर्थ हो
- ५ संधि के निर्णयानुसार उन कर्तव्यों को पूरा करने की इच्छा रखता हो।

उपरोक्त शर्तों को पूरा करने वाला राज्य संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य तब ही बन सकता है जब कि महासभा या सार्वजनिक सभा (General Assembly) के २/३ बहुमत और सुरक्षा परिषद् (Security Council) की स्वीकृति प्राप्त हो। सुरक्षा परिषद् के ११ में से ७ और जब ११ में से ९ सदस्यों का बहुमत तथा स्थायी सदस्यों का निर्णायक मत उसके पक्ष में होना चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि सार्वजनिक सभा में निर्णय लेने से पहले सुरक्षा परिषद् की स्वीकृति आवश्यक है।

for the prevention and removal of threats to the peace, and for the suppression of acts of aggression or other breaches of the peace, and to bring about by peaceful means, and in conformity with the principles of justice and international law adjustment or settlement of international disputes or situations which might lead to a breach of the peace

2. To develop friendly relations among nations based on respect for the principle of equal rights and self-determination of peoples, and to take other appropriate measures to strengthen universal peace

3. To achieve international cooperation in solving international problems of an economic, social, cultural, or humanitarian character and in promoting and encouraging respect for human rights and for fundamental freedoms for all without distinction as to race, sex language or religion and

4. To be a centre for harmonizing the actions in the attainment of these common ends.

सदस्यता समाप्त करने के सम्बन्ध में कोई उल्हेय नहीं किया गया है। अनुच्छेद १ और ६ के अनुसार सच क निर्मा भी सदस्य को चार्टर के सिद्धांता को निरन्तर भंग करने पर सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा द्वारा सच स बाहर निकाला जा सकता है या उसकी सभी सुविधायें रोकी जा सकती हैं।

यह भी ध्यान रख है कि नवी सदस्य राष्ट्र अपने सन्धोतों और संधियों को सच क कार्यालय में रजिस्टर करवायें। चार्टर में स घोषण १ बड़े राष्ट्रों की सहमति पर महासभा द्वारा २।१ बहुमत से स्वीकृति करने पर ही किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र सच क वर्तमान सदस्यों की संख्या कुल ११९ है। ये सदस्य इस प्रकार हैं—

सच के आरम्भ ११ सदस्य थे—अल्बानिया आस्ट्रिया बेल्जियम बोनिविया ब्राजील ब्राह्मोरगिया कनाडा चिली चीन कोम्बिया कोस्टारिका क्यूबा पैकोम्बोविया डेन्मार्क डोमिनिकन रिपब्लिक इक्वेडोर मियक्स साइप्रस ईथियोपिया फ्रान्स यूनायटेड किंगडम ग्रेट ब्रिटेन आस्ट्रेलिया हांगकंग इराक ईराक मेक्सिको साइबेरिया सयूनजग मेक्सिको हांगकंग न्यूजीलैण्ड निकारगुवा नार्वे पानामा पैरागुए, पेरू फिमिन्दाइल द्वीप समूह सउदी अरब सीरिया टर्की यूकेन दक्षिणी अफ्रीका का युनियन सोवियत युनियन वेट जिनेन सं० रा० अमरीका गुनेवे वेनजुएला युगोस्लाविया और पोर्लैण्ड। इसके बाद निम्नलिखित देश इसके और सदस्य बने—अफगानिस्तान आइसलैण्ड स्वीडन आइसलैण्ड [१९५६] पाकिस्तान, ममन [१९५६] बर्मा [१९५८] इजरायल [१९५९] इण्डोनेशिया [१९५०] स्पेन [१९५१]।

निम्नलिखित १६ राज्यों को बड़े विवाद के बाद दिसम्बर १९५५ में सदस्य बनाया गया—अल्बानिया आस्ट्रिया बल्गेरिया सीसोन कम्बोडिया फिनलैण्ड हुंगरी आयरिश रिपब्लिक इटली जोर्डन लिबिया साओस मेसाम पुर्तगाल रूमनिया और स्पेन। इनके बाद इसके सदस्यों की कुल संख्या ७९ हो गयी। १९५६ में जापान इसका ८० वा सदस्य बना १९५७ में पाना और मलाया के सदस्य बनने से यह संख्या ८२ हो गई। १२ दिसम्बर १९५९ को गिनी उसका सदस्य बना। १९६० में अफ्रीका में स्वतंत्र हुए १३ मय राज्यों [कैमरून कनराज्य टोगोसीन कनराज्य मलागासी (मैडागास्कर) गणराज्य बहोमी माइजर एवर बोस्टा आइवरी कोस्ट सोमालिया गणराज्य पैबोन तथा मध्य अफ्रीका के गणराज्य कांगो (सिडो-पोल्लिस) पामी सेनेगाल तथा नाइजीरिया] तथा साइप्रस क इनका सदस्य बनने से संयुक्त राष्ट्र सच की सदस्य संख्या ९९ हो गई। इनके बाद दिसम्बर १९६१ तक निम्नलिखित १५ राज्यों को कोर्लों में दी गई विधियों में इसके सदस्य बने—सिपार्विनियोन (६ अक्टूबर १९६१) मंगोलिया (२० अक्टूबर १९६१) मारोवानिया (२७ अक्टूबर १९६१) टांगानिका (२४ नवम्बर १९६१) जर्जिया तथा कम्बोडा (१८ दिसम्बर १९६२) टिनीडाड टोबेगो तथा बर्मा (१८ दिसम्बर १९६२) अफ्रीरिया (६ अक्टूबर १९६२)

पुष्याशा (२५ अक्टूबर १९६२) कुवैत (१४ मई १९६३) बंजीबार ल
फिनिया (१२ दिसम्बर १९६३) । इस प्रकार १९६४ के आरम्भ में बहुत
राष्ट्र संघ के सदस्यों की कुल संख्या ११३ थी । १९६४ में मलावी (म्यातामिक)
माल्टा तथा उत्तरी जर्मिया (भूतपूर्व रोडेजिया) एवं १९६५ में निकार
घोर सामरिक द्वीप समूह संघ के सदस्य बने । यहाँतक के मित्रम्बर १११
के अधिवेशन के समय इनके सदस्यों की संख्या ११८ हो गई है । तत्पश्चात्
नुमाना बौरसबाग। मेघोपे और बारबडाज के सदस्य बनने पर इसकी संख्या
संख्या १२२ हो गई है ।

संघ की सदस्यता के बारे में यह धीरे-धीरे उल्लेखनीय है कि—

१ इन्डोनेशिया ने मार्च १९६३ में संयुक्त राष्ट्र संघ छोड़ दिया
था, परन्तु अब वह पुनः सदस्य बन गया है ।

२ मलाया संघ १० अक्टूबर, १९६० को संयुक्त राष्ट्र संघ में
शामिल हुआ । १६ अक्टूबर १९६३ को इसका नाम बदल कर मलेशिया
हो गया ।

३ सीरिया १४ अक्टूबर १९४५ को संयुक्त राष्ट्र संघ का भाग
बना था । २१ फरवरी १९५८ को अलग अलग अरब के द्वारा यह संयुक्त अरब
एमीरायट्स में मिल गया । १३ अक्टूबर, १९६१ को अपने पुनः संयुक्त अरब
एमीरायट्स से अलग होकर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करती तथा—

४ संजामिया धीरे-धीरे २६ अगस्त १९६४ को परस्पर मि
लने और अब तंजानिया एमीरायट्स के नाम से संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य है ।

सहयोग के साथ आचार—संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों के अधिकारी
और जिम्मेदारियों के बारे में अनुच्छेद २ में यह स्पष्ट किया गया है कि
प्रत्येक राष्ट्र को वैयक्तिक धीरे-सामूहिक रूप से इनका पालन करना होगा
प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को साथ आचारण करने के अन्तर्गत कार्य करना होगा
है । संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत धीरे-सहयोग स्थापना के कार्य अब भी
सामान्य अर्थों में इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आभार शिवाय है । वे सर्वेक्षण
करती है कि—

१ संयुक्त राष्ट्र संघ अपने सभी सदस्य राष्ट्रों की प्रमुख शक्ति व
समानता के आधार पर आधारित है ।

२ संघ के सभी सदस्य आर्टिकल के अधीन अपनी जिम्मेदारियों के
रीति-रिवाज से पूरा करेगा ।

३ वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों को सांख्यिक रूप से इस प्रकार
हल करेंगे कि जिससे अन्तर्गत सुरक्षा धीरे-ध्याय को कोई खतरा
पैदा न हो ।

४ वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आक्रामक की बयानी देने भयानक
दूसरे राज्य के प्रति बल प्रयोग से दूर रहेंगे ।

५ संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आर्टिकल अनुच्छेद, की जाने वाली प्रत्येक
कार्यवाही में जैसे हर प्रकार की सहायता देंगे और इन राष्ट्रों की

भरद नहीं करे, बिनके विरुद्ध गोक्याम या किसी फीसले को लागू करने के लिये कार्यवाही की जा रही हो।

- १ राष्ट्र सभ बिस्व के गैर-सदस्य राज्यों की प्रतिविधियों के प्रति इतना मन्त्रय प्रवचन होगा कि वे जहाँ तक सम्भव हो ऐसा काम न करे जो अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा का कठोर में बाध दे।
- ७ इस चार्टर का कोई भी अंश समुक्त राष्ट्र को किसी सदस्य राज्य के विरुद्ध परेसू मामले में दखल करने का अधिकार नहीं देता है।

संयुक्त राष्ट्र सभ के अंग (Organs of the U N O)

समुक्त राष्ट्र सभ के ६ प्रधान अंग हैं—

- १ महासभा (General Assembly)
- २ सुरक्षा परिषद् (Security Council)
- ३ आर्थिक और सामाजिक परिषद् (Economic & Social Council)
- ४ म्यास परिषद् (Trusteeship Council)
- ५ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice)
- ६ सचिवालय (Secretariat)

इसके अतिरिक्त समुक्त राष्ट्र सभ सहायक अंगों की स्थापना भी कर सकता है।* अपने इसी आचार क प्रत्येत कर्तव्यों का ठीक ढंग निर्वाह करने के लिये समुक्त राष्ट्र सभ ने अनेक विशिष्ट समितियों (Specialised Agencies) की स्थापना की है जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सभ (I L O) यूनेस्को (UNESCO) आदि।

सभ के महासभी और सभ का बजट—सन् १९४६ में सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा ने समुक्त राष्ट्र सभ का पहला महासभी मार्च क अर्थिक बल के नेता और भूतपूर्व प्रधान मंत्री ट्रिग्वे सी ट्रिग्वे (Trygve Halvdan Lie) को नियुक्त किया था। श्री ट्रिग्वे सी ने ७ अंगे तक बड़ी निष्ठापूर्वक और धीरे धीरे सभ के कार्य सम्पन्न किया। किन्तु इस पर भी जब साम्यवादी रुझान द्वारा विरोध किया गया तो उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। श्री ट्रिग्वे सी के बाद सन् १९५३ में उसके स्थान पर स्वीडन के विल क्रियेपत्र हाग हैमरशोल्ड (Hammarskjöld) सभ के महासभी बने। सन् १९६१ में इनकी मृत्यु पर बर्मा के ऊथान्त (U Thant) २० नवम्बर, १९६२ को महासभी निर्वाचित हुए जो अभी तक इस पद पर मौजूद हैं।

* There are established as the principle organs of the United Nations A General Assembly a Security Council and Economic and Social Council a Trusteeship Council, and International Court of Justice and a Secretariat

Such subsidiary organs as may be found necessary may be established in accordance with the present charter (Article 7)

संयुक्त राष्ट्र सभ का बजट १९४८ में साठे तीस करोड़ डॉलर।
 बा जोर १९६० में ६ ११४९८००० अमेरिकन डॉलर। सभ के बजट की रकम
 सदस्य राष्ट्रों द्वारा दिये जाने वाले धनदानों से पूरी की जाती है। १९६०
 में इसका सबसे बड़ा हिस्सा ३२ ३९ प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र अमेरीका से
 था। इसके बाद ब्रिटेन ने १९६२ प्रतिशत और भारत ने २९.५
 प्रतिशत दिया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का ढांचा (रूप विधान) या संगठन (Structure or Organisation of the United Nations)

जैसा कि बताया जा चुका है चार्टर के ७वें अनुच्छेद में संयुक्त राष्ट्र
 के ६ प्रमुख अंगों की व्यवस्था की है—१. साधारण मन्त्र २. सुरक्षा परिषद
 ३. धार्मिक और सामाजिक परिषद ४. ट्रस्टीशिप परिषद ५. अन्तर्राष्ट्रीय
 न्यायालय और ६. सचिवालय।

हम यहाँ इन ६ अंगों की एक-एक करके व्याख्या करेंगे।
 साधारणसभ या महासभा (General Assembly)

संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रथम अंग महासभा है जिसे सीनेटर अंग्रेजों
 मन्त्र की संख्या में समानता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्थापिका
 की वास्तविकता है यद्यपि इसके प्रस्तावों की कार्यकारी शक्ति प्राप्त नहीं है।
 इसमें संयुक्त राष्ट्र के सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। प्रत्येक
 सदस्य राष्ट्र को महासभा या साधारण सभा में ३ प्रतिनिधि तथा ३ वैकल्पिक
 प्रतिनिधि [Alternate delegates] भेजने का अधिकार है किन्तु वह न
 [Vote] एक ही है सत्ता है। साधारण सभा में "एक राष्ट्र एक वोट" के
 सिद्धान्त को लागू करने के लिए बड़े छोटे और बड़े राष्ट्रों के भेद को समाप्त कर दिया
 है। इसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में चार्टर में लिखा गया है कि "किसी सदस्य का
 प्रतिनिधि मंडल ३ प्रतिनिधियों ३ वैकल्पिक प्रतिनिधियों तथा अपने ही मंत्र
 देने वाले किसी विषयक मंत्रणा देने वाले विशेषज्ञों तथा उनी प्रकार की
 स्थिति के उगने ही व्यक्तियों से मिलने कि प्रतिनिधि मंडल द्वारा घोषित नि-
 बाए, अधिक न होना।"

साधारण सभा का एक अध्यक्ष और ७ उप-अध्यक्ष होते हैं। महा
 प्रत्येक अखिलेश्वर के लिये अपना समापति चुनती है। यह उल्लेखनीय है कि
 इसके ८वें अधिवेशन के लिये भारतीय प्रतिनिधि चीमती विजय लक्ष्मी पण्डित
 को समापति निर्वाचित किया गया था। विषय की यह पहली बार असी तक
 एक मात्र महिला है जिसे इस प्रकार का सम्मान प्राप्त हुआ।

साधारण सभा या महा सभा का अधिवेशन वर्ष में एक बार मितम्बर
 महिने के तीसरे बुधवार को प्रारम्भ होता है। वर्ष में एक अधिवेशन होने
 को अधिवाह्य भी है परन्तु विशेष अधिवेशन महामंत्री सुरक्षा परिषद की अथवा
 संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बहुमत की प्रार्थना पर बुला सकता है।
 उदाहरणार्थ ऐसे अधिवेशन फेब्रुवारी की समाप्ति पर २० अगस्त से १३ मई
 १९४७ को तथा १६ अगस्त से १४ मई, १९४८ को सम्पन्न की स्थिति पर
 १ से १ नवम्बर १९४९ को तथा हंगरी की स्थिति पर ४ से

१९५९ का सेशनान पर ८ से २१ मगरव, १९५८ को चींग कोर्गो पर १७ से २० सितम्बर, १९५० को बुलाये गये थे ।

महासभा में मतदान की प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि महत्वपूर्ण प्रश्नों के निर्णय के लिये २/३ बहुमत और सामान्य प्रश्नों के निर्णय के लिये उपस्थित सदस्यों का साधारण बहुमत पर्याप्त होना चाहिये । चार्टर के अनुच्छेद १८ के अनुसार * महत्वपूर्ण प्रश्न में माने गये हैं—१. अन्तर्राष्ट्रीय शांति की सुरक्षा संबंधी विषयों २. सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्यों का चुनाव ३. धार्मिक तथा सामाजिक परिवर्तन के सदस्यों का चुनाव ४. संरक्षण परिषद के सदस्यों का चुनाव ५. संयुक्त राष्ट्रसंघ के नये सदस्य बनाना ६. सदस्यों के अधिकारों और बुद्धिधर्मों का स्वगत ७. संरक्षण व्यवस्था को कार्यान्वित करने सम्बन्धी प्रश्न एवं बजट सम्बन्धी चारा १९ के अनुसार उस सदस्य को जिसने संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना पूरा खर्चा नहीं दिया है मत देने का अधिकार नहीं होता किन्तु महासभा किसी ऐसे सदस्य को मत देने की अनुमति प्रदान कर सकती है जिसकी तरफ से उसे यह स्वीकार हो गया हो कि खर्चे का उपनाम करना महस्य राष्ट्र के नियन्त्रण से बाहर है (The failure to pay is due to Conditions beyond the Control of the Member)

महासभा का कार्य ७ मुख्य समितियों में बंटा हुआ है । प्रत्येक सदस्य इनमें अपना एक प्रतिनिधि भेज सकता है । ये समितियाँ इस प्रकार हैं—

Article 18—1 Each member of the General Assembly shall have one vote.

2. Decisions of the General Assembly on important questions shall be made by a two-thirds majority of the members present and voting. These questions shall include; recommendations with respect to the maintenance of international peace and security the election of the nonpermanent members of the Security Council the election of the members of the Trusteeship Council in accordance with paragraph 1 (c) of Article 86, the admission of new Members to the United Nations, the suspension of the rights and privileges of membership the expulsion of Members, questions relating to the operation of the trusteeship system and budgetary questions

3. Decisions on other questions, including the determination of additional categories of questions to be decided by a two-third majority, shall be made by a majority of the members present voting.

१ राजनीतिक और सुरक्षा समिति [First Political and Security Committee] इसमें महासभों का नियंत्रण भी सम्मिलित है।

२ आर्थिक और वित्तीय समिति (Economic and Financial Committee)

३ सामाजिक मानवीय एवं सांस्कृतिक समिति (Social humanitarian and Cultural Committee)

४ स्थापना समिति (Trusteeship Committee)

५ प्रशासनिक एवं बजट कमेटी (Administrative & Budgetary Committee)

६ कानूनी समिति (Legal Committee)

७ विशेष राजनीतिक समिति (Special Political Committee)

इनके प्रतिष्ठित २ अन्य प्रक्रियात्मक (Procedural) समितियाँ होती हैं।
१ सामान्य समिति—इसका कार्य महासभा की तथा इसकी विभिन्न समितियों की भाव बाहियाँ में समन्वय स्थापित करना होता है। २ प्रमाण पत्र समिति (Credential Committee)—यह प्रतिनिधियों के प्रमाणपत्रों की जाँच करती है।

काम समाप्त समितियों की नियुक्ति महासभा अपना इसकी किमी भी धन्य समिति द्वारा बिना उद्देश्यों की पूर्ति के नये की जा सकती है। ऐसी समितियों के उदाहरण हैं—संघीय विज्ञान परामर्शदात्री समिति धन्य शक्ति के प्रतिष्ठित प्रयोग सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति कोरिया के एकीकरण तथा पुनर्स्थापित सम्बन्धी संघीय धायोप कैनेस्टेशन के लिए संघीय धायोप आदि।

महासभा के कार्यों की प्रकृति मुख्य रूप से निरीक्षणायक एवं धनसंचालक होती है। समुक्त राष्ट्रसंघ की धर्म व्यवस्था का संचालन इसके साथ ही रहता है। यह न्याय परिषद के संघीय देशों से सम्बन्धित मुख्य काम भी करती है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर नये देशों को समुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाती है। सुरक्षा परिषद के साथ मिल कर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चुनाव करती है। पाठों के महासभा को पन्द्रह महासभयुक्त विधायों पर विचार करने की शक्ति प्रदान की है। यह उन प्रशासकों की नियुक्ति करता है जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति एवं सुरक्षा प्राप्त की जा सकती हो तथा विश्व के राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक और निराशंकाकरण के विचारों पर विचार करती है। विश्व में शक्ति स्थापित करना इसका प्रमुख लक्ष्य है और इस लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिये यह कोई भी सम्भव कथन ठोस करती है। तब के धन्य धर्मों की शक्ति की सीमा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का लक्ष्य उत्पन्न होने पर उसका निर्णय बड़ा तथा बाह्य ही किया जाता है। सुरक्षा परिषद का यह कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति तथा विशेष रिपोर्ट महासभा को प्रस्तुत करे। महासभा उन पर विचार करती है। तब का बजट भी, इसी के द्वारा स्वीकार किया जाता है।

तथा यही इस बात का निष्पत्ति है कि किस देश को संघ के व्यर्थ का कितना भाग बहूत करना चाहिये। इस तरह महासभा अपने कार्य करती है। इन कार्यों का करते समय सभा द्वारा वादविवाद किया जाता है, सिफारिशें की जाती हैं, ध्यान आकषिप्त किया जाता है, सूचित किया जाता है और धार्य अध्ययन करने की प्रवृत्ति की जाती है। जिन विषयों पर सुरक्षा परिषद् विचार कर रही हो उन पर महासभा विचार कर सकती है जब कि सुरक्षा परिषद् द्वारा ऐसा करने के लिये अनुरोध किया जाए।

महासभा के अधिकार और कार्य—महासभा के कार्यों की प्रकृति मुख्य रूप से निरीक्षणारमक एवं धन्येयकारमक होती है। महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के अधिकार क्षेत्र में अपने कामे सभी प्रकारों पर विचार कर सकती है। इनमें इसके कितनी भी उपाय के कार्यों और अधिकारों से सम्बन्धित विषय भी सम्मिलित हैं। महासभा के अधिकारों और कार्यों को निम्नलिखित रूप में प्रकट किया जा सकता है—

(१) संयुक्त राष्ट्र संघ की धर्म्य व्यवस्था का संचालन महासभा के ही हाथों में रहता है। महासभा को संघ के बीच तथा धारा १७ में बर्णित विदेश एजेन्सियों के आर्थिक बजट पर विचार करने और निष्पत्ति करने का अधिकार है। यही इस बात का निष्पत्ति है कि किस देश को संघ के व्यर्थ का कितना भाग बहूत करना चाहिये।

(२) महासभा को यह अधिकार है कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की व्यवस्था की जाय। अपने इस अधिकार के अन्तर्गत महासभा उन प्रयासों की सहायता करती है जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है और विश्व के राष्ट्रों के बीच आन्तरिक सहयोग की स्थापना की जा सकती है। विश्व में शांति स्थापित करना इसका प्रमुख लक्ष्य है और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये यह कोई भी कदम उठा सकती है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की व्यवस्था जिन सिद्धान्तों पर की जानी चाहिये उनके सम्बन्ध में यह सभा सुरक्षा परिषद् को धन्यता सबस्यों को मा दोनों को ही अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर सकती है।

(४) महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिये अतृप्त उपस्थित करने वाली प्रत्येक समस्या पर सुरक्षा परिषद् के अनुरोध पर धन्यता कितनी सदस्य राष्ट्र के अनुरोध पर धन्यता घोषणा-पत्र की ३३वीं धारा के अनुसार ऐसे कमी की राष्ट्र के अनुरोध पर भी जो संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है विचार करने का अधिकार रखती है। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि ऐसी कितना भी अधिकार का जिसके बारे में महासभा कुछ कार्यावाही करना आवश्यक समझती है, सुरक्षा परिषद् से बहुत के पहले धन्यता बाध में परामर्श अवश्य किया जाना चाहिये।

(५) महासभा ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अटनाओं एवं परिस्थितियों के बारे में सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकषिप्त कर सकती है, जिनके फल-स्वरूप उसकी

जिसे मैं विचार गति के लिये कोई जगह देना ही बना घबरा भयानक देना मेरी संभावना हो।

(६) अनुच्छेद १३ के अनुसार राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करने के लिये महासभा प्रारम्भिक अध्ययन और जांच-पड़ताल को प्रोत्साहित कर सकती है और इस विषय में अपनी सिफारिशों भी प्रस्तुत कर सकती है। साथ ही जाति, निम्न जाति घबरा घबरा का भेदभाव विरुद्ध विना किसी भावना घण्टिकार और मूल स्वतंत्रता विधान में सहायता देना इसका कर्तव्य है।

(७) अनुच्छेद २४ के अनुसार यदि किसी कारण से कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए जिससे महासभा की कार्य में राष्ट्रों के साधारण लोगों या राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को ठस बढ़ जाती है तो १२वें अनुच्छेद के उपबन्धों के अन्तर्गत रहते हुए महासभा उस परिस्थिति को जाति १२ अनुच्छेद के लिये सिफारिश कर सकती है।

(८) अनुच्छेद १३ के अनुसार महासभा सुरक्षा परिषद् से उत्तरी अफ्रीका रिपोर्ट मांगती है और उन पर विचार करती है। इन रिपोर्टों में सुरक्षा परिषद् को उन सारी कार्यवाहियों का ज्ञान-बोका रहना आवश्यक जो सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाये रखने के लिए करती है घबरा करन वाली है। महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ के घनों के अन्तर्गत अपनी रिपोर्टें मांग सकती है और उन पर विचार कर सकती है।

(९) चार्टर के अनुच्छेद २७ में अन्तः सरकारी समझौते द्वारा अन्तः अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों में सम्बन्ध धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में विशेष माध्यम जोसे जाने का महासभा द्वारा आदेश दिया जा सकता है। धार्मिक और सामाजिक परिषद् तमें से किसी भी माध्यम के साथ समझौता करके उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रस्तुत करना आवश्यक है। ऐसे समझौता समझौता के प्रति महासभा का अनुच्छेद करना आवश्यक है। महासभा की यह घण्टिकार है कि वह इन माध्यमों की नीतियों और प्रतिबंधितियों को बरतकर सहयोगपूर्ण बनाने के लिये आवश्यक सिफारिश करे।

(१०) अनुच्छेद २३ के अनुसार अन्तः समझौते की सारी और उनमें अन्तः-अन्तः तथा अन्तः-अन्तः के अनुच्छेद सहित बुद्ध के लिये निम्न उपायों का म समझौतों के अन्तर्गत भी काम संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत ही जाति उपाय का पूरा करती है। इन उपायों में यह भी अन्तः है कि महासभा के अन्तर्गत में काम करते हुए अन्तः परिषद् उन कार्यों को पूरा करने में महासभा की सहायता करेगी।

(११) महासभा को कुछ निषेधित सम्बन्धी कार्य भी करने होंगे हैं। अन्तः संघों का २।६ बहुमत से यह सुरक्षा परिषद् के ६ स्थायी सदस्यों अन्तर्गत और अन्तः परिषद् के १२ सदस्यों तथा अन्तः परिषद् के निषेधित।

सरम्यों का बयन करती है। प्रतिबन्ध यह सुरक्षा परिषद् के तीन सन्ध्यों का दो साल के लिये धीरे धीरे तथा सामाजिक परिषद् के ६ सदस्यों का ३ वर्ष के लिये नाम निर्दिष्ट करती है। माघ ही माघ किन्तु पूषक मतदान द्वारा महासभा और सुरक्षा परिषद् बिस्कुन प्रथम प्रसंग अन्तर्गत राष्ट्रीय व्यापारिक कल्याणियों का निर्वाचन करती है। महासभा सुरक्षा परिषद् के परामर्श पर संघ के महासचिव की नियुक्ति करती है। इसी तरह सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर ही यह संयुक्त राष्ट्र संघ में नये सदस्यों को सदस्यता प्रदान करती है।

(१२) संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में संशोधन करने की सिफारिश की महासभा द्वारा की जा सकती है परन्तु इस सम्बन्ध में यह प्रावश्यक है कि महासभा के २/३ सदस्यों द्वारा इसका समर्थन किया जाय। यह २/३ बहुमत प्राप्त होने पर ही संशोधन सुरक्षा परिषद् में सिफारिश परित्यक्त किया जा सकता है। सुरक्षा परिषद् में भी २/३ बहुमत ही (जिसमें १ बड़े राष्ट्रों का होना आवश्यक है) स्वीकृति होने पर ही घोषणा-पत्र में संशोधन किया जा सकता है।

संघ सभा (Little Assembly) — यह उल्लेखनीय है कि महासभा एक राजनीतिक कार्य करने २ इतना बड़ा किया गया और बढ़ता जा रहा है। उठना कि संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माणाधीन ने सोचा भी न था। महासभा की कि में बुद्धि होने का मुख्य कारण यह है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद महासभा के बीच जो शक्ति युद्ध छिड़ा उसके कारण सुरक्षा परिषद् अपनी कियों का प्रयोग करने में प्रभावहीन हो गई। नियोज्याधिकार का प्रयोग एक ही कियों के बीच की कम-कम के कारण यह सोचा जाने लगा कि सुरक्षा परिषद् धारण को रोकने तथा जाति के शत्रुओं का सामना करने के लिए एक मत नहीं हो सकती घट कोई प्रावश्यक काम भी नहीं उठा सकती और इसलिए कोई उपाय किया जाना चाहिये। यही सोच कर १३ नवम्बर १९४७ को महासभा द्वारा एक 'अन्तरिम समिति (Interim Committee) नामक एक नया सहायक प्रयत्न स्थापित किया गया जिसे सामान्य रूप से 'छोटी अन्तर्गत समिति' या संघ सभा (Little Committee) कहा जाता है। इस अन्तर्गत समिति पर यह दायित्व डाला गया कि यह सभा का अधिकार न होने के बाल म जाति और सुरक्षा के प्रश्नों पर अपने सुझाव प्रस्तुत करे। इसके लिए इसे तीन कमीशन नियत करने प्रावश्यक अन्वेषण कराने और महासभा को महासभा का विशेष अधिकार बुलाव की सिफारिश करने का अधिकार दिया गया। इसकी स्थिति को सुस्पष्ट करने के लिए महासभा में यह भी निश्चय किया कि "अन्तरिम समिति आठर के अनुसार सुरक्षा परिषद् के दायित्वों का ध्यान रखेगी। यह उल्लेखनीय है कि महासभा के समान इस समिति को भी संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व दिया गया है। अन्तर्गत महासभा के प्रत्येक सदस्य को इसमें एक प्रतिनिधि बनाने का अधिकार है। इस प्रकार आन्तक में यह समिति महासभा का एक संयुक्त स्वरूप है। यह महासभा से बहुत छोटी उमरा पंचमाल और महासभा के अधिकार में रहने वाली स्थायी संस्था है। प्रारम्भ में यह दो बार एक वर्ष के

लिए बनाई गई। नवम्बर, १९४१ में इसे अतिविशेष अवधि के लिए पुनः स्थापित किया गया किन्तु एक घंटे तक के समर्पक देह इसके नीचे लिखी है। प्रारम्भ में इस समिति ने इतना अधिक कार्य किया कि इसके स्थायी बनने की सम्भावनाएँ होने लगी, परन्तु बाद में इसका कार्य विभिन्न निश्चित एवं विशेष समितियों तथा जायों द्वारा सम्भाल लिया गया। १९४२ के बाद इसकी कोई बैठक नहीं हुई।

महासभा की बढ़ती हुई सक्रिय घोर महासभा—संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद महासभा की सक्रिय घोर सक्रिय महासभा निरन्तर इसकी बढ़ती जा रही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने सम्भवतः इसकी रक्षणा भी ब की होनी।

महासभा की सक्रियता में अत्यन्तनीय वृद्धि ३ नवम्बर, १९२० के "शांति के लिये एकता" (Unity for peace) प्रस्ताव के पास होने के बाद हुई। १९२० में कोरिया का युद्ध छिड़ने पर परिषदीय शक्तियों को यह बत हो गया कि एक के विरोध के कारण सुरक्षा परिषद द्वारा आक्रमणकारी के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया जा सकेगा। इसी घातका के कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि सुरक्षा परिषद में वितरोध होने की वजह से महासभा द्वारा विचार किया जाना चाहिए क्योंकि महासभा के निवेदाधिकार की व्यवस्था न होने के कारण किसी देश विशेष द्वारा कार्यवाही में बाधबुझ कर बाधा नहीं पहुँचाई जा सकती। संयुक्त राष्ट्र के नीचे विरोध के बावजूद भी घोर यह कहने के बाद भी कि इससे सुरक्षा परिषद की सलाह भी हो जाएगी, यह "अचेशन प्लान" (Acheson plan) पेश कर दी गई। इस योजना के अनुसार सुरक्षा परिषद के निवेदाधिकार विहीन ७ सदस्यों के बोट से बा संघ के सदस्यों के बहुमत से २४ घंटे का वोटिंग देकर महासभा का प्राथमिक परिषद में शामिल किया जा सकता है। यदि सुरक्षा परिषद आन्तरिक मतभेदों के कारण शांति बंध की रक्षा आक्रमण की घातका में या आक्रमण को रोकने में अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती तो महासभा को अधिकार है कि इस विषय पर और विचार करके यह "सामूहिक उपायों" के लिए अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे और अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिए सैनिक कार्यवाही का भी निर्देश दे। इस प्रस्ताव में अन्तर्राष्ट्रीय सनातन बाले क्षेत्रों में स्थिति का निरीक्षण करने और रिपोर्ट देन के लिए १४ व्यक्तियों का "शांति निरीक्षण आयोग" (Peace Observation Committee) की व्यवस्था भी की गई। प्रस्ताव के तीसरे (C) भाग के अनुसार संघ द्वारा सदस्यों से बहु प्राप्ति की गई कि वे आक्रमणकारी देशों पर महासभा अथवा सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर संघ के अर्थात् कार्यवाही करने के लिए समस्त सुविधाएँ देना पवान करें।

अन्तर्गत प्रस्ताव संघ के विधान में वस्तुतः बड़ा अतिक्रमण परिवर्तन लाये जाता है। इन्हीं निश्चय ही महासभा को सुरक्षा परिषद से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। बड़ा पहले संयुक्त राष्ट्र संघ का केन्द्र सुरक्षा परिषद

की बड़ी शक्ति यह गौरवपूर्ण स्थान इस प्रस्ताव के बल पर महासभा ने प्राप्त कर लिया है। यद्यपि इसके निषेधाधिकार की समाप्ति का नहीं हुई है परन्तु इसके उत्पन्न परिणाम को दूर करने का हल निकल आया है। यद्यपि महासभा इस विषय में केवल सिफारिशें ही करती है और इसका मानना प्रथम न मानना और इन्हें न मानते हुए भी चार्टर का उल्लंघन न करते फिर भी ये सिफारिशें बड़ा महत्व रखती हैं। पाल्मर तथा पार्किंस (Palmer and Parkins) का यह कहना सही है कि महासभा की सिफारिशों का प्रभाव भी काफी हो सकता है।^{१०} नवम्बर १९४६ में मिग पर इजराइल प्र ट ब्रिटेन और फ्रान्स का संयुक्त प्राक्रमण हान पर महासभा के विशेष अधिवेशन ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए ही मफमठापूर्वक शांति स्थापित की।

वस्तुतः १९४६ से ही 'मुरखा' परिषद की तुलना में महासभा का महत्व बढ़ता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं का विश्वास था कि सुरक्षा परिषद संघ की प्रधान कार्यकारी शक्ति होगी और महासभा एक वाद विधा-संघ (Debating system) के रूप में कार्य करेगी। इमीनिए जहा परिषद को वाध्यकारी शक्ति प्रदान की गई बड़ी महासभा को कमजोर सिफारिशें करने का ही अधिकार दिया गया। सन्निवृत्तकाल में व्यवहार ने यही सिद्ध किया है कि महासभा का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है जब कि सुरक्षा परिषद का प्रभाव तुलनात्मक रूप से घटा है। महासभा का महत्व बढ़ने का उपयोग कारणों के प्रतिरिक्त एक प्रधान कारण यह रहा है कि इसके सदस्यों की संख्या तेजी से बढ़ी है। मात्र १२१ राज्यों की इस सभा में कुछ अपवादों को छोड़ कर विश्व के लगभग सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

१२ सदस्यों की सुरक्षा परिषद उन घटकों में विश्व-प्रतिनिधि नहीं करती या सक्ती जिन घटकों में महासभा को सम्पूर्ण विश्व का अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध रहा का सक्ता है। क्लार्क एलचेबर्गर (Clark M. Elcheberger) के मतानुसार महासभा मानव जाति की संघर्ष का एक रूप है जिसमें राष्ट्र-सन्निवृत्त परिषद की अनेकों समस्याओं का विचार करने का साधन बूझा रहता है, वह भी कानून तथा संसत्तात्मक प्रक्रिया के ढांचे में महासभा में सदस्य

^{१०} "The Assembly still can only make recommendations in this field but its recommendations may have considerable weight"

—Palmer and Parkins International Relations, Page 357

^{११} "Here one sees developing a parliament of mankind for which the nations are seeking means to dealing with the overwhelming problems of peaceful change within the framework of Law and parliamentary procedure."

—Clark M. Elcheberger, U.N., The First Twenty Years, 1965 Page 18

राष्ट्र स्वयं स्वयं में अपनी शिकायतों प्रस्ताव और सुझाव प्रायः प्रस्तुत करता है। इस तरह यह विश्व का संयुक्त मन्त्र-मण्डल (Open Council of the world) है। महात्मा ने 'जाएँ वही ले कर मानवीय कल्याण मोक्ष वरुण और आशावादी चरण एक ही सभी समस्याओं पर विचार किया बात है। स्टार्क (Starke) के शब्दों में यह बात उल्लेखनीय है कि 'महात्मा ने अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों के समाधान में प्रबल भाग लिया है। इसने संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख लाने वाले कुछ मुख्य प्रश्नों पर विचार करके किमिस्तीन ब्रुनाम स्पेन और कोरिया के सम्बन्ध में कार्यवाई की है।'

(२) सुरक्षा परिषद (Security Council)

संघटन (Composition) — संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने सुरक्षा परिषद की रचना उसकी कार्यकारिणी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक के रूप में की थी। पाल्मर और पर्किंस (Palmer & Perkins) ने सुरक्षा परिषद को 'संयुक्त राष्ट्र की कुन्जी' (Key organs of the U.N.) कहा है।^{१०}

वार्टर के २६ व्यापक में अनुच्छेद २३ से ३२ तक सुरक्षा परिषद का संघटन कार्य अधिकारों और महत्त्व पद्धति का वर्णन है। वार्टर की कुछ व्यवस्था के अनुसार पहले सुरक्षा परिषद में कुल ११ सदस्य होते थे—५ स्थायी और ६ अस्थायी किन्तु अक्टूबर, १९६२ में संघ के वार्टर का संशोधन किया गया और परिषद के सदस्यों की संख्या ११ से बढ़ा कर १५ कर दी गई। सुरक्षा परिषद के निर्वाचनों के न्यूनतम प्रामाण्यक मतों की संख्या भी बढ़ा कर ७ से ९ कर दी गई। २६ जून, १९४२ को २१ देशों द्वारा हस्ताक्षर किये जाने के बाद वार्टर में संशोधन किये जाने का यह पहला प्रयत्न था। वास्तव में पिछले बनेक वर्षों से सुरक्षा परिषद के सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने के लिए कई राष्ट्र प्रयत्नशील थे क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या को दृष्टि में रखते हुए यह परमावश्यक था कि सुरक्षा परिषद का विस्तार किया जाये।

उपर्युक्त संशोधन के अनुपालन में सुरक्षा परिषद के नव मासिक सदस्य इस प्रकार हैं—

(i) स्थायी सदस्य—ये ५ हैं संयुक्त राज्य अमेरिका, रॉयल ब्रिटेन, सोवियत संघ, फ्रांस और राष्ट्रवादी चीन।

(ii) अस्थायी सदस्य—ये १० हैं जनवरी १९६० से वे इस प्रकार हैं—अर्जेंटीना, इंडोनेशिया, कनाडा, डैन्मार्क, इथियोपिया, भारत, जापान, ब्राजील और मालदीविया।

†Starke An Introduction to International Law page 373

१०Palmer and Perkins International Relations, page 35R.

महानगरों द्वारा १९६३ में यह नियम लिया गया था कि १० घण्टायी सदस्यों में से १ प्रतिवाहक और अधिक राज्यों में से एक पूर्ण मूलाय में से २ प्रति सदस्यता व २ प्रतिधनी मूल्य की प्रत्येक राज्य में से जान जायिग । मूलाय परिषद का अध्यायी सदस्यों का बत मान निर्वाचन इस नियम से मत जाता है । चार्टर के अनुच्छेद २३ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि परिषद के अध्यायी सदस्य का रूप के लिए चुन जायेंगे । २ वग की अवधि समाप्त होने पर किसी सदस्य का मूल्य पुन चुनाव के लिए बढ़े होने का अधिकार नहीं है । परिषद में प्रत्येक सदस्य राज्य का एक प्रतिनिधि ही भाग ले सकता है या स्वामी रूप में वही रहना हो ।

कार्य और शक्तियाँ (Functions & Powers)—मुरखा परिषद का कार्य और उम्मीद शक्तियों का सम्बन्ध में अनुच्छेद २४ में लिखा गया है कि—

(१) "संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने की मुख्य जिम्मेदारी मुरखा परिषद को दे दी है और यह मानते हैं कि इस जिम्मेदारी के अधीन अपने कर्तव्यों का पूरा करने में मुरखा परिषद उनकी ओर स ही काम करती है । यह इसलिए किया जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से प्रत्येक कार्यवाही जल्दी और प्रभावपूर्ण ढंग से हो सके ।

(२) इन कर्तव्यों को मुरखा परिषद संयुक्त राष्ट्रों के प्रयोगों और सिद्धान्तों के अनुसार ही पूरा करती और इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिए मुरखा परिषद का जो निश्चित अधिकार दिये गये हैं वे ६७८ और १२वें अध्यायों में बताये गये हैं ।

अनुच्छेद २५ इस बात की घोषणा करता है कि "संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य इस बात पर राजी हैं कि वे वर्तमान चार्टर के अनुसार मुरखा परिषद के फैसलों का मानेंगे और उन पर प्रभुत्व करेंगे ।"

अब हमें इतना चाहिए कि अध्याय ६, ७, ८ और १२ के अनुसार मुरखा परिषद का कार्य और शक्तियाँ क्या हैं ? अध्याय ६ अगड़ों के शांतिपूर्ण निपटारे से सम्बन्धित है जिसमें ३३ से ३८ तक के अनुच्छेद सम्मिलित हैं । अध्याय ७ शांति को लाने में बालन वाली शांति भंग और आक्रमण की चेष्टाओं के बारे में कार्यवाही से सम्बन्धित है इसमें ३९ से ४१ तक के अनुच्छेद शामिल हैं । अध्याय ८ प्रादेशिक प्रश्न से सम्बन्धित है जिसमें ४२ से ४४ तक के अनुच्छेद शामिल हैं । अध्याय १२ अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-पद्धति की बातें करता है और इसमें मुरखा परिषद के विभिन्न न्याय सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित हैं ।

उपरोक्त सभी अध्याय में मुरखा परिषद के जिन कार्यों और शक्तियों का उल्लेख है वे निम्न प्रकार से हैं—

(१) यदि किसी अगड़ से विश्व की शांति और सुरक्षा को खतरा हो तो दोनों विवादी पक्ष पक्ष अगड़ों को सबसे पहले बातचीत पद्धतियों से बचकर भंग न्यायपूर्ण समझौते प्रादेशिक संस्थाओं या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक संस्थाओं के द्वारा या अपनी पक्ष के अन्य शांतिपूर्ण साधनों से मुमकिन का प्रयास करेंगे और

सुरक्षा परिषद धातव्यकृत्य समझने पर बिबारी पक्ष को धपने भ्रम है ऐसे तापनों से निपटाने की मांग करेगी। (अनुच्छेद ३१)

(२) सुरक्षा परिषद किसी ऐसे भ्रम से धपना स्थिति की जांच-पड़ताल कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क का रूप है। सफ़ा हो धपना मिलते कोई दूसरा भ्रम है उठ सकता है। सुरक्षा परिषद इस बात का भी विचार करेगी कि वे भ्रम से धपना स्थिति जारी रहे तो उनसे विश्व की शांति और सुरक्षा का कोई कतरा पैदा हो सकता है धपना नहीं। ऐसे भ्रम से या इस प्रकार की कोई स्थिति पैदा हो जाने पर सुरक्षा परिषद किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही करने या सुनधाने के उपायों की तिफारिज कर सकती है। (अनुच्छेद ३४ ३६)

(३) उपरोक्त तिफारिजों कते समय सुरक्षा परिषद को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि सामान्य रूप में कानूनी धपनों को अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के विभाग के उपदधो के अनुसार पैदा किया जाने। (अनुच्छेद ३६)

(४) सुरक्षा परिषद ही इस बात का निर्णय करेगी कि कौनसी केटायें शांति की कतरों में डालने वाली शांति धप करने वाली और आक्रमण की केटायें ममभी वा सकती हैं। बड़ी तिफारिज करेगी और तब करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम करने धपना फिर से स्थापित करने के लिये कौनसी कार्यवाही की जानी चाहिये। किसी स्थिति को दिग्दूने से बचाने के लिये सुरक्षा परिषद अपनी तिफारिजें करने धपना किसी कार्यवाही का तिश्चय करने से पहिले बिबारी पक्षों में ऐसी धपनायी कार्यवाहियाँ करने की मांग करेगी जिन्हे वह उचित वा धातव्यकृत्य समझे। इन धपनायी कार्यवाहियों में बिबारी पक्षों के धधिकारों वाकों या उनकी हैसियत का कोई अहित न होना। यदि कोई पक्ष इस प्रकार की धपनायी कार्यवाहियों नहीं करता है तो सुरक्षा परिषद इसका भी विविधत ध्यान रहेगी। (अनुच्छेद ३६ ४०)

(५) सुरक्षा परिषद धपने संमतों पर धपन कराने के लिये ऐसी कार्यवाहियाँ भी तिश्चय कर सकती है जिनमें मजसून सेना का प्रयोग न हो। वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों में इस प्रकार की कार्यवाही करने की मांग कर सकती है। इन कार्यवाहियों के अनुसार धातव्य सम्बन्ध पूरुत धपना धातव्य रूप से धपना किं वा धपने हैं समुद्र वायु, डाक तार, रैडियो और आकाशगत के धपनायक साधन बन किये जा सकते हैं धपना राजनीतिक सम्बन्ध तिश्चय किया जा सकता है। (अनुच्छेद ४१)

(६) अनुच्छेद ३१ में बतलाई गई उपनायक कार्यवाहियाँ यदि सुरक्षा परिषद का धुट्टि में नाकाकी हो धपना नाकाकी तिश्च हो गई हों तो अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कताये रखने या फिर से स्थापित करने के लिये वह जस स्वयं और नाक सेनाओं की मजसूत से धातव्यकृत्य कार्यवाही कर सकती है। इस कार्यवाही में समुद्र राष्ट्रों क सदस्य देशों की जस जस वायु सेना तिश्चय तदर्थन कर सकती है। बेरा डाक नरणी है धपना धपन दूसरे प्रकार की कार्यवाहियाँ कर सकती है। (अनुच्छेद ४२)

(७) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने में सहयोग देने के लिए संयुक्त राष्ट्र सभ के सब सदस्यों का यह कर्तव्य बताया गया है कि वे सुरक्षा परिषद के मौखिक पर और विभिन्न समझौते तथा समझौतों के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएँ सहायता और अन्य सुविधायें जिनमें मार्ग-प्रदर्शक भी शामिल होंगे मुहैया करायें। सेनाओं की सख्या उनका प्रकार उनकी तैयारी और शक्ति आदि के बारे में निश्चय समझौते या समझौतों से लिये जाएँ और इन प्रकार के समझौतों की जानकारी सुरक्षा परिषद की प्रेरणा से जल्दी से जल्दी शुरू की जानी चाहिये। वे समझौते सुरक्षा परिषद और सदस्यों अपनी सुरक्षा परिषद तथा सदस्य दोनों के बीच लिये जाएँ और इन पर ध्यान तब ही दिया जा सकता जब हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र अपनी २ वैधानिक प्रक्रियाओं द्वारा इनको पुष्टि कर लेंगे। पार्टी में यह भी सिखा गया है कि सभ्यतापूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिये अपनी २ राष्ट्रीय वायुसेना के इस जल्दी से जल्दी उपलब्ध करायें ताकि संयुक्त राष्ट्र सभ सुरक्षा सैनिक कार्यवाही कर सकें। इन सैनिक दलों की सख्या और तैयारी आदि के बारे में निश्चय सुरक्षा परिषद अपनी सैनिक स्टाफ समिति की मदद से करेगी। सैनिक स्टाफ समिति की मदद से ही सामूहिक कार्यवाही के लिये योजनाएँ बनाई जाएँगी। (अनुच्छेद ४३ ४२)

(८) अनुच्छेद ४७ के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि सुरक्षा परिषद को निम्नलिखित प्रश्नों पर स्वतंत्र सलाह देने और सहायता के लिये एक सैनिक स्टाफ समिति बनाई जाएगी—(क) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा परिषद की सैनिक आवश्यकताएँ (ख) उनके अधीन सेनाओं का प्रयोग और उनकी कमान (ग) सशस्त्रों का नियंत्रण और (घ) सम्भावित निष्पत्ती काय। सैनिक स्टाफ समिति में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के स्टाफ अध्यक्ष या उनके प्रतिनिधि रहेंगे। यदि संयुक्त राष्ट्र सभ का कोई सदस्य समिति का स्थायी प्रतिनिधि न हो और समिति के दायित्वों को ठीक तरह पूरा करने में उस सदस्य का भाग लेना आवश्यक हो तो समिति उसको अपने साथ काम करने के लिये बुला सकेगी। इस अनुच्छेद में यह भी सिखा गया है कि सुरक्षा परिषद के उपयोग के लिये जो सशस्त्र सेनाएँ ली जाएँ उनका कुछ सम्बन्धी निर्देशन सैनिक स्टाफ समिति के हाथ में रहेगा और यह समिति सुरक्षा परिषद के अधीन रहेगी। सैनिक स्टाफ समिति उपर्युक्त प्रादेशिक स्थावकों से सलाह देने के लिये प्रादेशिक उपसमितियों का निर्माण भी कर सकती है। सैनिक स्टाफ समिति को यह अधिकार सुरक्षा परिषद द्वारा प्रदान किया जाएगा।

(९) जब सुरक्षा परिषद किसी राष्ट्र के विरुद्ध रोकथाम की या अपने अपने निलंबनों को अमल कराने की कोई कार्यवाही कर रही हो उस समय यह हो सकता है कि किसी दूसरे राष्ट्र के सामने कुछ विशेष प्रादेशिक समस्याएँ उठ खड़ी हों। अतः अनुच्छेद ५० में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी सूरत में इस राष्ट्र को चाहे वह संयुक्त राष्ट्र सभ का सदस्य हो या नहीं अपनी समस्याओं को हल कराने के लिये सुरक्षा परिषद से सलाह देने का अधिकार होगा।

सुरक्षा परिषद प्रावधानों का समझने पर विचारी पक्ष को अपने भयंकर ऐसे सामर्थों से निपटाने की मांग करेगी। (अनुच्छेद ३१)

(२) सुरक्षा परिषद किसी ऐसी भयंकर घबराहट स्थिति की जांच-पड़ताल कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क का रूप में सफ़ा हो सकता हो घबराहट स्थिति की कोई दूसरा भयंकर उठ सकता हो। सुरक्षा परिषद इस बात का भी निश्चय करेगी कि ये भयंकर घबराहट स्थिति जारी रहे तो उसमें विश्व की शांति और सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो सकता है घबराहट नहीं। ऐसे भयंकर या इस प्रकार की कोई स्थिति पैदा हो जान पर सुरक्षा परिषद किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही करने या मुमकिन के उपायों की सिफ़ारिश कर सकती है। (अनुच्छेद ३४, ३६)

(३) उपरोक्त सिफ़ारिशें करते समय सुरक्षा परिषद को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि सामान्य रूप में कानूनी भयंकरों को अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के विचार के अन्तर्गत के अनुसार पैदा किया जाये। (अनुच्छेद ३६)

(४) सुरक्षा परिषद ही इस बात का निश्चय करेगी कि कौनसी क्षेत्रों में शांति की उल्लंघन में डालने वाली शांति भंग करने वाली और आक्रमण की चेष्टाओं सम्बन्धी हो सकती है। बड़ी सिफ़ारिश करेगी और तय करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम करने घबराहट स्थिति में स्थापित करने के लिये कौनसी कार्यवाही की जानी चाहिये। किसी स्थिति को दृष्टिगत से घबराहट के लिये सुरक्षा परिषद अपनी सिफ़ारिशें करने घबराहट किसी कार्यवाही का निश्चय करने से पहिले विचारी पक्षों से ऐसी अस्थायी कार्यवाहियाँ करने की मांग करेगी जिन्हें बड़े उचित या प्रावधान्यक समझे। इन अस्थायी कार्यवाहियों में विचारी पक्षों के अधिकारों शर्तों या उनकी क्षमता का कोई ध्यान न होना। यदि कोई पक्ष इस प्रकार की अस्थायी कार्यवाहियाँ नहीं करता है तो सुरक्षा परिषद इसका भी विचारित किया जायेगी। (अनुच्छेद ३६, ४०)

(५) सुरक्षा परिषद अपने फ़रमानों पर अमल कराने के लिये ऐसी कार्यवाहियाँ भी निश्चित कर सकती है जिनमें अस्थायी सेवा का प्रयोग न हो। यह संयुक्त राष्ट्र सभ के सदस्यों से इस प्रकार की कार्यवाही करने की मांग कर सकती है। इन कार्यवाहियों के अनुसार प्राथमिक सम्बन्ध प्राप्त घबराहट प्राथमिक रूप से समाप्त किने जा सकते हैं समुद्र बन्द, डाक तार, रेडियो और अन्तर्राष्ट्रीय के अस्थायी साधन बन्द किने जा सकते हैं घबराहट राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है। (अनुच्छेद ४१)

(६) अनुच्छेद ३१ में बताई गई उपरोक्त कार्यवाहियाँ यदि सुरक्षा परिषद का दृष्टि में नाकाफी हों घबराहट नाकाफी ठिक हो गई हों तो अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने या फिर से स्थापित करने के लिये यह सब स्वयं और बाह्य सहायता से प्रावधान्य कार्यवाही कर सकती है। इस कार्यवाही में संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों की बल बल बाहु सेवा विशेष महत्त्व कर सकती है, वेरा डाक गठनी है घबराहट अन्य दूसरे प्रकार की कार्यवाहियाँ कर सकती है। (अनुच्छेद ४२)

(७) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाय रखने में सहयोग देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्यों का यह कर्तव्य बताया गया है कि वे सुरक्षा परिषद के माँगने पर और बिनाय समझौते के बिना समझौते के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएँ सहायता और अन्य सुविधायें जिनमें मार्ग प्रशिक्षण भी शामिल होंगे मुहैया करायेंगे। सन्धारों की सख्या उनके प्रकार उनकी सैना के और स्थिति आदि के बारे में निश्चय समझौते का समझौते से मिले जायेंगे और इन प्रकार के समझौते की बातचीत सुरक्षा परिषद की प्रेरणा से करनी है। सुरक्षा परिषद तथा सदस्य वर्गों के बीच मिले जायेंगे और इन पर एकता सुरक्षा परिषद तथा सदस्य वर्गों के बीच मिले जायेंगे और इन पर समझौते द्वारा इनकी पुष्टि कर देंगे। बाहर से यह भी शिक्षा गया है कि सदस्य समझौते से सुरक्षा परिषद के माँगने पर और राष्ट्रीय बाधु-सेना के दम बाधु कर सकें। इस से निकल दलों की सख्या और सैनिकी शक्ति के बारे में निश्चय सुरक्षा परिषद अपनी सैनिकी शक्ति की मदद से करेगी। सैनिकी शक्ति समिति की मदद से ही सामूहिक कामवाही के लिये योजनाएँ बनाई जायेंगी। (संयुक्त राष्ट्र संघ ४३ ४२)

(८) अनुच्छेद ४७ के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि सुरक्षा परिषद की निर्णयित प्रवृत्तियों पर स्वतंत्र सहायता देने और सहायता के लिये सैनिकी शक्ति समिति बनाई जाएगी—(क) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा परिषद की सैनिकी सहायताएँ (ख) उनके अधीन सेनाओं का प्रयोग और (ग) सैनिकी शक्ति समिति में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के स्टाफ के साथ या उनके प्रतिनिधि रहेंगे। यदि संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई सदस्य सैनिकी शक्ति समिति का स्थायी प्रतिनिधि न हो और सैनिकी शक्ति समिति के स्टाफ के साथ काम करने के लिये बुलाये जायें। इस अनुच्छेद में यह भी शिक्षा गया है कि सुरक्षा परिषद के उपयोग के लिये जो सशस्त्र सेनाएँ भी जाएँगी उनका कुछ सुरक्षा परिषद के अधीन रहेगी। सैनिकी शक्ति समिति उपर्युक्त प्रादेशिक समितियों से सहायता देने के लिये प्रादेशिक उपसमितियों का निर्माण भी कर सकता है। सैनिकी शक्ति समिति को बहु-प्रकार सुरक्षा परिषद द्वारा प्रदान किया जाएगा।

(९) जब सुरक्षा परिषद किसी राष्ट्र के विरुद्ध रोकथाम की या धमके देने जैसी कोई कार्यवाही कर रही हो उस समय यह हो सकता है कि किसी दूसरे राष्ट्र के सामने कुछ विशेष प्राधिकार समस्याएँ उठ सकती हों। जब अनुच्छेद ५० में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी शुरुआत में उस राष्ट्र को चाहे वह संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य हो या नहीं अपनी समझौतों को हल करने के लिये सुरक्षा परिषद से सहायता देने का प्रार्थना होना।

(१०) यदि संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी सदस्य पर कोई संरक्षण आवश्यक होगा है तो वह व्यक्तिगत प्रथम सामूहिक रूप से धातमरखा करने का अधिकारी है। अनुच्छेद ३१ यह व्यवस्था बना है कि संघ राष्ट्र पर उस समय तक कोई रोक नहीं होगी जब तक कि सुरक्षा परिषद अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिये स्वयं कोई कार्यवाही न करे। धातमरखा के लिये सदस्य को भी कार्यवाही करने उतनी मुचना सुरक्षा परिषद ही सुरक्षा परिषद को ही बाएगी। लेकिन इससे सुरक्षा परिषद के अधिकारों और बाधितों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ पा। वह अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने या फिर से स्थापित करने के लिये जब कभी जो कार्यवाही न कर सकती है।

(११) स्वामीय फलनों और बिचारों के समाधान के लिये सुरक्षा परिषद प्राथमिक सचनों और एजेंडियों को माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर सकती है। इसके प्रतिरक्त प्राथमिक सचन या एजेंडिया बनाने लेंशों में शांति और सुरक्षा बनाये रखने की दिशा में जो भी कदम उठाती है, उनको मुचना उन्हें नियमित रूप से सुरक्षा परिषद को देनी पड़ती है।

(१२) सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ में जो बाधित प्रवृत्त किया है उन्हें निमाने का भार भी सुरक्षा परिषद पर ही है। संरक्षित प्रदेशों को किसी भी राष्ट्र के सदस्य में देते समय संरक्षण सम्बन्धी शर्तों की सुरक्षा परिषद द्वारा ही तय की जाती है। वही इन शर्तों में फेर बदल या संशोधन कर सकती है। यदि ऐसे कुछ सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र हों जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य में हों तो इन शर्तों की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक एवं वैश्विक प्रगति के लिये सुरक्षा परिषद के साथ मिलकर आवश्यक कदम उठा सकती है।

क्रिया विधि (Procedure)—सुरक्षा परिषद की क्रियाविधि के संबंध में अनुच्छेद २८ से ३२ तक व्यवस्थामें दी गई है। सुरक्षा परिषद का सचन इस प्रकार का है कि वह सचकार काम कर सके। इसलिये सच-स्थान में सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य का प्रतिनिधित्व हर समय रहना आवश्यक है। सुरक्षा परिषद की बैठकें समय-समय पर होती रहती हैं और इसमें यदि कोई सदस्य राष्ट्र चाहे तो उसका प्रतिनिधित्व उसकी सरकार का सदस्य या विशेष रूप से नामजब (Nominatod) कोई दूसरा प्रतिनिधि कर सकता है। सुरक्षा परिषद सच-स्थान के प्रभाव किसी दूसरी ऐसी व्यवस्था में वह काम करने में सुपमता समझे, अपनी बैठकें कर सकती है। परिषद अपने कार्यों के लिये आवश्यक संपत्तियों पर सहायक संपत्तियों की स्थापना कर सकती है। अनुच्छेद ३ द्वारा यह व्यवस्था भी की है कि सुरक्षा परिषद अपनी क्रियाविधि के नियम स्वयं बनायेगी और अपने अध्यक्ष चुनने की विधि भी वह स्वयं तय करेगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी सदस्य चाहे वह सुरक्षा परिषद का सदस्य न भी हो परिषद के सामने घाते हुए किसी भी मामल को बहुत में न म भि सकता है बसते कि सुरक्षा परिषद को वह विश्वास हो कि उस मामले में उस सदस्य के हितों पर विशेष कर से प्रभाव पड़ता है। लेकिन ऐसी सदस्य को मतदान का अधिकार नहीं होता। अनुच्छेद ३२ द्वारा यह व्यवस्था भी की

कि जब कोई भगड़ा सुरक्षा परिषद में वेग हो तो संयुक्त राष्ट्र संघ का वह सदस्य जो सुरक्षा परिषद का सदस्य नहीं है प्रथम वह राज्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ का वह सदस्य नहीं है यदि वह बिनाशी पत्र है तो बहुम में भाग लेने के लिये बुनामा या सफ़टा है परन्तु ऐसे सदस्य को बोट डैन का अधिकार नहीं होगा। सुरक्षा परिषद अपनी बहुमों में ऐसे राष्ट्र के भाग लेने के लिये जो संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य न हो, श्वाय-सम्भन नियम बनाने का अधिकार रखती है।

मतदान की प्रक्रिया और विधेयाधिकार

[Voting and Veto Power]

प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को एक मत प्राप्त है मकिन मतदान की प्रक्रिया बहुत कुछ विभिन्न प्रश्नों के स्वरूप या परिषद के कार्यों पर निर्भर करती है। परिषद के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया गया है—(१) साधारण और (२) प्रसाधारण। साधारण कार्यों में परिषद के कार्यक्रम धारि धारत हैं और परिषद की बैठक के सम्बन्ध में स्थान और समय का निर्णय सना परिषद के महापक्ष धर्मों की स्थापना करना कार्यवाही सम्बन्धी नियम बनाना एक बैठक में सम्मिलित होन के नियम सदस्यों को आमन्त्रित करना धारि। इसके अनिश्चित धर्म्य मामल प्रसाधारण कार्यों में धारते हैं और विचारों के मामिलपूख समाधान सम्बन्धी मामले धारक्रमणकारी मक्ति के विरुद्ध प्रतिबन्ध लक्षणा धारि।

साधारण मामलों पर झिन्हीं ९ सदस्यों के स्वीकारात्मक (Affirmative) मत बर्बापत हैं मकिन लक्षणात्मक मामलों पर ९ सदस्यों के स्वीकारात्मक मतों में ५ स्थायी सदस्यों के मत शामिल होना धारबन्धक है। इन ५ स्थायी सदस्यों में कोई भी सदस्य अपनी धमहमति प्रकट करे धरबा प्रस्ताव के विरोध में मतदान करे तो प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं समझा जाता। विधेयाधिकार वा विधे (Veto) की सुप्रसिद्ध धरबन्धा है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद के धर्म-संलक्षणी सम्बन्धी मामलों का छोड़ कर धर्म्य निर्णयों पर इन ५ स्थायी सदस्यों की सुमिति धरनिबाध है परन्तु श्वायी सदस्यों में से कोई सुरक्षा परिषद की बैठक में धरनुपस्थित हो धरबा धरपना मत न दे तो ऐसी स्थिति में विधेयाधिकार (Veto) नहीं माना जाता।

परिषद का कोई भी सदस्य धरबा धरप्यारी मतस्य यदि प्रस्तुत विधाध से सम्बन्धित हो तो उसे भी मतदान करने का अधिकार नहीं रहता। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी सदस्य राष्ट्र ऐसे किसी भी प्रश्न पर जो विधाराधीन हो सुरक्षा परिषद में हो रहे धरबा विधाध में भाग ले सकता है, यदि उसकी समझ से उस विधाध का उसने दिवों पर कोई प्रभाव पड़ता हो। सुरक्षा परिषद यदि धरचित समझ तो ऐस किसी भी राष्ट्र का जो सुरक्षा परिषद धरपना संयुक्त राष्ट्र संघ का भी सदस्य न हो उससे सम्बन्धित विधाध पर विधाध करते समय उस बैठकों में भाग लेने के लिये धरामन्त्रित कर सकता है। इस प्रकार धरामन्त्रित करने वाले राष्ट्र मतदान में भाग नहीं ले सकते।

संयुक्त राष्ट्र को सब ही सम्भवता मिल सकती थी जब कि इसे सभी महाशक्तियों का पूरा-पूरा सहयोग मिले। दूरदर्शी राष्ट्रपति क्लैव्हेस्ट ने यह अनुभव कर लिया था कि सीमित संघ अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे बड़े देशों के नियंत्रित ही ऐसे संयुक्त में भाग लेना सम्भव नहीं होगा त्रिमम अन्य राष्ट्र केवल अपने बहुमत के बस पर ही महाशक्तियों को कोई काम करने के लिये बाध्य कर दें। इस प्रकार की स्थिति का रोकने का एक मात्र उपाय नियंत्रण अधिकार (Veto Power) था। यह स्पष्ट था कि महाशक्तियों के सहयोग के बिना अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व संयुक्त की कोई भी व्यवस्था सफल नहीं हो सकती थी और महाशक्तियों को उनसे इच्छा के विरुद्ध अवरुद्धि किसी भी कार्य को करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता था क्योंकि इसका परिणाम स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की समाप्ति हो सकता था। घत इन सब बातों का मोक्षविचार कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने यही मूल प्रस्ताव किया कि वह नियंत्रण अधिकार से सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को ही स्वीकार करेगा और यदि इसमें नियंत्रण अधिकार की व्यवस्था नहीं होगी तो जब तक कि यह संयुक्त को स्वीकार करना प्रामाण्य होगा। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का यह स्पष्ट मत था कि सुरक्षा परिषद ऐसे निर्णय कर सकती है त्रिममे अनुसार उसे अपनी शक्ति का उपयोग करता रहे परन्तु इसमें यह आवश्यक है कि वह ऐसे उपयोग अपनी इच्छा से करे न कि अन्य राष्ट्रों द्वारा बाध्य हो कर। यदि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ऐसे किसी उपाय से सहमत नहीं है तो उसे इस बात का पूरा अधिकार होना चाहिए कि वह अपनी नियंत्रण अधिकार द्वारा उस उपाय के प्रस्ताव को रद्द कर दे।

रुद्ध नियंत्रण अधिकार का प्रबल समर्थन करते हुए भी वाशिंगटन इस प्रकार को सीमित रखना चाहता था। जहाँ वह ऐसे किसी अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त को स्वीकार करने को तैयार नहीं था जिसमें नियंत्रण अधिकार की शक्ति न हो वहाँ वह इस बात के लिए उत्तम था कि विवादों के शांतिपूर्ण हल के लिए नवीन सदस्यों के संगठन में प्रवेश—इस बातों का सम्बन्ध नियंत्रण अधिकार की व्यवस्था में की जाए परन्तु कम इसके लिए तैयार न। यह नियंत्रण अधिकार को सीमित रखना चाहता था। कम को यह पता कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों में अल्प विषयों के कारण अमेरीके के विरुद्ध कुछ महाशक्तियों द्वारा या किन्तु यथापि में दोनों के बीच सैद्धांतिक मतभेद इतने थे कि दक्षिणी धीरे उत्तरी धीरे की भाँति इनका आपस में मेल हो ही नहीं सकता था। कम को धातक भी कि बाद में जब कर सुरक्षा परिषद में अपनी शक्तियों का प्रकट हो जाएगा तथा वे बहुमत के आधार पर स्वयं को अवरुद्ध कर सकेंगी। यही कारण था कि अपने अपने हितों की रक्षा के लिये नियंत्रण अधिकार की व्यवस्था पर और दिया धीरे कहा कि या तो उसे सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को यह अधिकार दिया जाए अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थापना ही न की जाए।

नियंत्रण अधिकार की इस पुच्छभूमि के उपरान्त अब हम इसकी समीक्षा करते हैं। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के इस अधिकार की उपयोगिता के आधार पर हमें समीक्षा के लिए एक मत नहीं है। इस

की माँग समय-समय पर अनेक बार महासभा में विश्व के छोटे राज्यों द्वारा उठी रही है। १९४६ में फ्रिंकीपाइन्स के प्रतिनिधि ने तो यहाँ तक बहू दिया कि नियंत्रणकारी एक फ्रैंकफोर्टीन टाप (Frankenstein) है। यह संयुक्त राष्ट्र में सभी व्यावहारिक कार्रवाहियों को रोक देता है। हम इस स्पष्ट तथ्य को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते कि संयुक्त राष्ट्र मध्य जिन रूप में आज संघटित है, उस रूप में वह मानव को युद्ध की विभीषिका से बचाने में असमर्थ है।^{१०}

वास्तव में एक आलोचक द्वारा नहीं कहा गया है कि 'वाशिंगटन शक्ति' में एकता के घमास में बाटर में स्थापित सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था को पसंद बना दिया है प्रथम क्रम से कम संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रथम महत्वपूर्ण कार्यों के प्रयोग को बाधित कर लिया है या रोक दिया है।^{११}

उपर्युक्त सभी समालोचनाया से स्पष्ट है कि कृपया विचार कर नियंत्रणकारी के विषय में प्रधानतः चार बातें कही जाती हैं—

प्रथम यह कहा जाता है कि नियंत्रणकारी के कारण ही सुरक्षा परिषद शक्ति और सुरक्षा की व्यवस्था के अपने उत्तरदायित्व का पूरा करने में असमर्थ हो गई है। यह अधिकार ही अंतरराष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण रूप में सब से बड़ा बाधक है। ऐसी कुछ परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें प्रयोग अनिवार्य हो जाता है, परन्तु नियंत्रणकारी के कारण सुरक्षा परिषद ऐसा नहीं कर पाती। इस विषय में ट्रिग्वेसी (Trygve Lie) ने कहा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ "नियंत्रणकारी के कारण मनुष्यक है। यह महा शक्तियों के संघर्ष द्वारा पक्षापातग्रस्त कर दिया गया है।"

दूसरे, नियंत्रणकारी विधि व समझ समझ और राष्ट्रों की सम्पूर्ण-समानता के मौलिक सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। इस मत को केल्सन (Hans Kelsen) ने मजबूती प्रदान स्पष्ट किया है जिसका उद्धरण ऊपर किया जा चुका है।

तीसरे नियंत्रणकारी पृष्ठपोषक राज्यों (Client States) की एक न्यूनानिधि सुनी राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दे सकता है। यह हो सकता है कि प्रत्येक स्वामी स्वयं अपने विभिन्न राष्ट्रों को नियंत्रणकारी का संरक्षण प्रदान करे। ऐसी स्थिति में यह भय पैदा होता स्वाभाविक है कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य स्वामी सदस्यों के नेतृत्व में गुटों में विभक्त हो जायेंगे। यह भय निराधार नहीं है। हम सभी जानते हैं कि अमेरिका और सोवियत संघ के नेतृत्व में ऐसे दो अतिशक्तिशाली गुट जन्म से भी चुके हैं।

चौथे नियंत्रणकारी के कारण सुरक्षा परिषद में जो विरोध उत्पन्न होता रहा है, उससे विश्व के राज्यों की सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था में बाधा

^{१०} Leonard International Organisation, page 206.

^{११} Lack of unanimity of the Five Great Powers has paralysed the system of collective security established in the charter and has provided or at least hampered the exercise of other important functions of the United Nations Organisation.

को पूरी तरह इमरगा किया है। समूह राष्ट्र सभ की तरह से निर्वास होकर ही उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये NATO SEATO जैसे प्रादेशिक सुरक्षा सभनों का आश्रय लिया है।

पक्ष में व्यक्त लक्ष (नियंत्रणकार की प्रतिबाधता)—नियंत्रणकार की व्यवस्था में निःसंदेह कुछ दोष अवश्य हैं किन्तु उनका घापार पर यह कहना अनुचित है कि इस व्यवस्था को निरस्त करना न तो वांछनीय है और वास्तव में नियंत्रणकार व्यवस्था को निरस्त करना न तो वांछनीय है और न व्यावहारिक ही। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि किसी भी सभन को सफलता पमी मिल सकती है जब उसे विश्व की महान शक्तियों का सहयोग प्राप्त हो परन्तु हम महान देशों का किसी एक सभन में भाग लेना सम्भव नहीं है जिसमें अन्य देश केवल अपने बहुमत से इसे किसी कार्य को करने चाहना न करने के लिये बाध्य कर दें। इसे रोकने का एक मात्र उपाय नियंत्रणकार ही है। शुमान (Shuman) ने लिखा है इसके निर्माताओं ने यह स्पष्ट ही समझा था कि यदि सुरक्षा परिषद किसी महान राज्य के विचार के विरुद्ध कोई कार्यवाही करती है तो इसका पक्ष विरत शक्ति नहीं बरत पाया होगा।”

नियंत्रणकार के पक्ष में व्यक्त की जाने वाली कुछ प्रमुख विज्ञानों सम्मतिया इस प्रकार हैं—

“नियंत्रणकार हमारी कठिनाईयों का आचारभूत कारण नहीं है। इस के लोपों के साथ हमारे दुर्भाग्यपूर्ण विवेदों का प्रतिबिम्ब मात्र ही। यदि हम इस संकट से बचना चाहते हैं तो हमें उन विवेदों को तय न लेना चाहिये। केवल मतदान की विधि को बदलना यथेष्ट न होगा। नतीजतन नियम का अन्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन की वास्तविकताओं से होना है। यदि पांच महान राज्य किसी मामले पर राजी नहीं होते हैं तो उनमें से किसी के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग एक बड़ा मुद्दा को पैदा करेगा। समूह राष्ट्र सभ की स्थापना इसी सम्भावना से बचने के लिये हुई थी।

(ए ई स्टीवेन्स)
नियंत्रणकार (Veto) असहमति सूचक तत्त्व है न कि इसका कारण। अतः नियंत्रणकार व्यवस्था के समाप्त कर देने से महा शक्तियों के मठसे बुर नहीं होनी थीर न ही इसमें कोई बड़ा लाभ हुआ। फिर नियंत्रण कई प्रकार के प्रश्नों के लिये प्रयुक्त होता है। मरत्यता थीर शक्तिपूर्ण समझौते के सम्बन्ध में इन व्यवस्था की समाप्ति सामग्र्य है। किन्तु शक्ति शक्ति की तथा आक्रमण की रक्षा में सैनिक कार्यवाही के सम्बन्ध

“But as the framers clearly perceived, the fact is inescapable that any coercion of a Great Power or of a small power supported by a Great Power is prescription not for law order or peace but for wholesale violence.”

—Schuman International Politics p.p 232 33.

से नियम की व्यवस्था को समाप्त करना बहुत विवादास्पद चीज नवान समस्याओं को उत्पन्न करने वाला है, यद्यपि इस सम्बन्ध में नियम बनाये जा सकते हैं।

"नियमाधिकार की व्यवस्था न प्राप्त होने तक १९४७ घोषणा की जाती है कि यह स्थिति हमारे अनिच्छुक गुनाहों की स्थिति है। नियमाधिकार की यह व्यवस्था प्रथम ही ऐसी स्थापना के बिना हमारी रक्षा करती है। यह ऐसे विवक्षित मामलों का पूर्ण उत्तर है (किसी विवक्षित मामलों के हाथ में अपने माध्यम का आधीन बना रहा है। नियमाधिकार की व्यवस्था प्रत्येक राष्ट्रीय आक्रामक या घातका से हमारी निरन्तर स्वतंत्रता की गारंटी है।"

(मैनेटर वेल्डनबर्ग)

जैसे उदाहरणों का विचार करते समय जिनमें नियमाधिकार ने संयुक्त राष्ट्रसभ की कामवाहियों को रोहन सम्बन्धी प्रभाव डाला है, यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि नियमाधिकार एक सशक्त है, न कि एक कारण। यह वास्तव में जिनकी राष्ट्रीय व्यवस्था और संयुक्त राष्ट्र की विकासवादी शक्ति को जोड़ने वाली बन्धी है। यह वह सुरक्षा-शीट है जो संयुक्त राष्ट्रों को राजनीतिक दृष्टि में ऐसे उत्तरदायित्वों को खाने से रोकता है जिन्हें पूरा करने की शक्ति उनके पास नहीं है।"

(जैम्स)

"संयुक्त राष्ट्र सभ के अन्य किसी भी सभ्यता की घोषणा नियमाधिकार अधिक शक्ति बयानियों के विषये उत्तरदायी है, यह सही है कि

*Schellecher An introduction to International Politics, Page 625-26

"It is our defence against what I venture to believe would be betterly condemned in many quarters as our involuntary servitude if our veto power did not exist. It is the complete answer to any rational fears that we may be subordinating our destiny to alien commands. It guarantees our perpetual independence of international dictation."

—Senator Vandenberg

"... is considering those instances in which the veto has had effect of preventing U.N. action. It is important to remember that veto is a symptom and not a cause. The veto is indeed the link between the Nation state system of power and the developing power of the U.N. It is the safety valve that prevents the U.N. from undertaking commitments in the political field which it presently lacks the power to fulfil."

—Dr. Jassop

प्रत्येक बार वीटो में प्रयोग का एक प्रसङ्गमता है परन्तु शेष संयुक्त राष्ट्रों की मशीनरी का नहीं है और न ही वीटो को समाप्त कर देने से ही कठिनाई का हल हो जाएगा।^{१०}

(बाल मैक्मोडिन)

वस्तुतः यह कहने में कोई प्रतिबाधिका नहीं कि नियेबाधिकार एक प्रतिबाधिका है। विद्वानों और विभिन्न शास्त्रियों द्वारा व्यक्त विचारों और एक तक की सुरक्षा परिषद की कामवाहियों के आधार पर घने कारण इस पर भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

प्रथम संयुक्त राष्ट्रसभ को सुचारु रूप से चलाने के लिये नियेबाधिकार का होना अत्यावश्यक है। नियेबाधिकार इस सत्य की अनुभूति पर आधारित है कि बिना महा-शक्ति के सहयोग के सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था सम्भव नहीं है। राष्ट्रसभ की प्रसङ्गमता का एक प्रमुख कारण संयुक्त राष्ट्र प्रमरीका और सोवियत संघ का उससे पृथक् रहना था। प्रायः न तो एक और प्रमरीका नियेबाधिकार के बिना संयुक्त राष्ट्रसभ में रहने की उच्च नहीं होगी और उनके बिना संयुक्त राष्ट्रसभ निरर्थक तथा निष्फल होकर राष्ट्रसभ की कहानी की पुनरावृत्ति करेगा। इस सम्बन्ध में विभिन्न की (Vishinsky) का मत है कि 'नियेबाधिकार की शक्ति के अन्त का अर्थ होगा संयुक्त राष्ट्रसभ का अन्त क्योंकि एक महा-शक्ति के विरुद्ध प्रयत्न का अर्थ है युद्ध का निश्चित निमित्त।' इसमें कोई संदेह नहीं कि नियेबाधिकार के अभाव में संयुक्त राष्ट्रसभ की स्थिति एक बिना पहिये के रथ के समान हो जायेगी। यदि वर्तमान सभ में से बहुमत द्वारा किसी महा-शक्ति को किसी कार्य के लिये कमी बाधित किया जाता तो उसका परिणाम विश्व युद्ध और सब से उस शक्ति का पृथक् हो जाना होता। नियेबाधिकार का मूल विचार स्वार्थी पक्षित राष्ट्रों के शास्त्रों में विश्व युद्ध की सम्भावना को हटाने और विचारों को सम्मेलनो द्वारा सुलझाना है।

दूसरे यह कहना गलत है कि नियेबाधिकार के कम स्वरूप सुरक्षा परिषद का काम ठप हो गया है। अब तक का अनुभव बताता है कि नियेबाधिकार शक्ति के हटाने अधिक प्रयोग होने के कारण किसी महाशक्तियों लिये सभ में घटने अधिक बाधा नहीं पहुँचाई है। जिन निर्णयों के सेने में यह बाधक बना है उनके न सेने पर भी विश्व शांति में किसी प्रकार का अंतरा नहीं पहुँचा है। स्लीचर (Schleicher) का यह कथन ठीक है कि "यह बताया बड़ा कठिन है कि नियेबाधिकार ने संयुक्त राष्ट्रसभ के कार्य पर कितना प्रतिकूल प्रभाव डाला है। प्रथम ७ वर्षों में जितने निर्णयों का प्रयोग किया गया था उसमें से आठे सत्रसभता के प्रार्थना-पत्रों से सम्बन्धित थे और शेष

^{१०} "The veto is responsible for more mis statements than any other feature of the U N O. It is true that each time the veto is used it means a failure, but it is not the U N machinery that is at fault nor would abolishing the veto do away with the trouble."

विचारों के शांतिपूर्ण निपटारे के बारे में। कुछ निवेद्य ऐसे थे जिनका प्रयोग कई बार एक ही विषय पर किया गया था। इस बात को स्वीकार करने के बाद भी इन राष्ट्रों की संघ की सभ्यता का प्राप्ति न होना दुर्भाग्यपूर्ण था। यह नहीं कहा जा सकता कि सब में उनकी अनुपस्थिति से उसके बावजूद कोई सति पहुँची हो।

तीसरे, कई बार निवेद्याधिकार समतापूर्ण किए जाने में बाधक रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय विचारों को शांतिपूर्ण उपायों से सुलभ करने में सफल हुआ है। उदाहरणार्थ जब काश्मीर का प्रश्न सुरक्षा परिषद के समक्ष प्रस्तुत था और ब्रिटेन ने अमरीका को समझौता कर पाकिस्तान का समर्थन कर रहे थे तो सोवियत रूस के निवेद्याधिकार के प्रयोग में स्थिति का सम्भालने में और सत्य को रक्षा करने में सहायता प्रदान की। इस निवेद्याधिकार का ही यह परिणाम निकला कि सभी पक्षों ने समस्या के एक दूसरे ऐसे समाधान को ढूँढ निकालने का प्रयास किया जो सबको मान्य हो सके। इसी तरह जब ब्रिटेन ने अमरीका के बार्मिंघम रिपोर्ट की अग्रहणना करके काश्मीर के विस्फोटक प्रस्ताव सुरक्षा परिषद से पारित कराना चाहा तो सोवियत रूस ने पुनः निवेद्याधिकार को अमरीकी देकर उन्हें ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिये बाध्य किया जो सभी पक्षों को स्वीकार हो। काश्मीर समस्या के सम्बन्ध में रूस द्वारा और भी अनेक अवसरों पर इन अधिकार का प्रयोग इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि निवेद्याधिकार पक्षपातपूर्ण किए जाने पर कुठार घात करके समय बी गता करने में समर्थ होता है। यह अधिकार सब में विभिन्न पक्षों में समुल्लेखित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। यदि निवेद्य की व्यवस्था न होती तो संयुक्त राष्ट्रसंघ पूरी तरह एक गुट विरोध का गन्ध बन जाता और उस मुटु विरोध को अपनी समझानी करने की पूरी छूट मिल जाती।

चौथे सुरक्षा परिषद की सीमित निवेद्याधिकार प्रणाली दोषपूर्ण होते हुए भी राष्ट्रसंघ परिषद की सर्व सम्मति मतदान प्रणाली से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

पाँचवे सुरक्षा परिषद का अधिकार कार्य महासभा द्वारा सम्हाल लिया गया है तथा १९५० में शांति के लिये एकता का प्रस्ताव पास होने के बाद से निवेद्याधिकार का तथा निवेद्य (Veto) करने वाली सुरक्षा परिषद का महत्व बढ़ गया है। जैसा कि कहा जा चुका है इस प्रस्ताव के द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि सुरक्षा परिषद के निवेद्याधिकार बिना शांति (धारा १०) सभ्यता के मत या सब के मतों के बहुमत से अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को सफल न मानने वाली किसी भी परिस्थिति पर विचार करने के लिये महासभा का आवश्यक विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। इस तरह इस व्यवस्था ने एक बड़ी सीमा तक निवेद्य अधिकार को प्रभावहीन बना दिया है। जब इसका प्रभाव मुख्य रूप से सभ्यता के सम्बन्ध में ही रह गया है। न तो यह कोई नया अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष उत्पन्न करता है और न इसके घावे ही बढ़ता है। निवेद्याधिकार संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य को पट्टी भी नहीं करता। इसके होते हुए भी महासभा द्वारा अनेक कार्य सम्पादित किये जाते हैं। संयुक्त-राष्ट्रसंघ की वास्तविक सफलता तो इस बात में

निहित है कि वह विभिन्न राज्यों में अपने निर्णयों को क्रियान्वित करा करने में सफल हो।

एक अनेक और भी ऐसे व्यावहारिक पग उठाये जा चुके हैं जिनके नियोजनकार के महत्त्व का पूर्णपिटा बहुत कम कर दिया है। अन्तरिम समिति या लघु सभा (Interim Committee or Little Assembly) ज्ञाति निरीक्षण आयोग (Peace Observation Commission) तथा सामूहिक उपाय समिति (Collective Measures Committee) आदि की स्थापना के द्वारा महासभा में सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था को नियोजनकार के दुष्प्रभाव से मुक्त कराने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नई सदस्यता और आति-पुर्ण समझौतों के सम्बन्ध में तो नियोजनकार आसिक है परंतु समाप्त होना चाहिये। परन्तु आति भय और आक्रमण की स्थिति में ऐतिक कार्यवाही के लिये इस अधिकार का प्रयोग अत्याज्य है परंतु इसे बनाये रखना आजपर है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद

(The Economic and Social Council-ECOSOCO)

संघन (Composition)—य मुक्त राष्ट्रसंघ का तीसरा महत्त्वपूर्ण पर्य-आर्थिक और सामाजिक परिषद है जिसके द्वारा मुख्य रूप से संघ के परराजनीतिक प्रकृति के लक्ष्यों को पूरा किया जाता है।

मूल चार्टर के अनुच्छेद ६१ (१) के अनुसार आर्थिक और सामाजिक परिषद में महासभा द्वारा चुने हुए समुक्त राष्ट्र संघ के १८ सदस्यों के चुने की व्यवस्था थी। किन्तु अगस्त १९६६ में जब चार्टर में पहली बार संशोधन किया गया तो इस परिषद के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा कर १८ से २७ कर दी गई और यह संशोधन १९६६ में लागू भी हो गया है। इन २७ सदस्यों में से ६ सदस्य प्रति वर्ष ३ वर्ष के लिये चुने जाते हैं अर्थात् १/३ सदस्य-प्रति तीसरे वर्ष पर त्याग कर देते हैं। जिन सदस्यों की अवधि समाप्त हो जाती है, वे अनुच्छेद ६१ (२) के अनुसार सुरक्षित ही पुनः चुनाव में लड़ सकते हैं।

अनुच्छेद ६१ (४) में यह व्यवस्था भी की गई है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का एक प्रतिनिधि रहेगा। परिषद में ६ बड़े राष्ट्रों को कोई विशेष स्थान अथवा अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं। इनमें न तो किसी राष्ट्र को नियोजनकार प्राप्त है और न ही स्वामी सदस्यता। सदस्यों की योग्यता आदि के सम्बन्ध में कोई लिखित निर्बंध अथवा व्यवस्था नहीं है। महा सभा अपनी इच्छानुसार किसी भी सदस्य राष्ट्र को इस परिषद में चुन सकती है।

मतदान और कार्य विधि (Voting and Procedure)—आय वर्गों की तरह आर्थिक और सामाजिक परिषद में भी प्रत्येक निर्वाचित सदस्य राष्ट्र का एक प्रतिनिधि बैठकों में उपस्थित रहता है। सभी निर्णय उपस्थित सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा किये जाते हैं। परिषद जब किसी २०

घाटिक विकास की परिस्थितियाँ उपलब्ध हो सकें। इसके लिये विभिन्न एजेंसियों के बीच यदि सांस्कृतिक मामलों में घाटिक भाग लेने में बाध-विबाध न भगाइ जा तो यह परिपक्व उनको निदाने का प्रयत्न करती है तथा विश्व के औद्योगिक विकास में सभी देशों के सहयोगपूर्ण इन्फ्रामोड को विकास करती है। तबारा न विभिन्न क्षेत्रों में सबसे काम सभी मनुष्यों के बीच जो जारी प्रसमानता पाई जाती है वह मानव अधिकारों की मांगता के विषय है। इसलिये यह परिपक्व उनको ऊँचा उठाने का हूर सम्भव प्रयास करती है। यह उनकी शिक्षा का विकास करने तथा संस्कृति एवं व्यवहार की घाय परम्परार्य प्रचलित करने में प्रयत्नशील रहती है।

विश्व हुए देशों के घाटिक विकास के लिये इस सत्पा द्वारा घाटिक एक प्राविधिक सहायता योजनाओं की स्थापना की गई है। घाटिक वृष्टि से विघनी हुई बातियों और जन समुदायों का विकास करने ही उनको सामाजिक रूप से ऊँचा उठाया जा सता है। परिपक्व की 'प्राविधिक सहायता समिति का मुख्य उद्देश्य ही दुल और हरिजात से मानव जाति को छुटकारा बिताना है।' इस समिति का उद्घाटन करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रू मैन ने क था— विश्व की घाटे से अधिक जनता हरिजात के दुल भोग रही है, उन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। वे बीमारियों की शिकार होती हैं। उनका घाटिक सम्यक आराम हय न है। उनकी दरिद्रता उनकी जन्मति में बाधन है और समूह प्रवेशों के लिये बड़ा संकट है। इतिहास में पहली बार मनुष्य जाति को जनता के दुल को हूर करने का ज्ञान और बलता प्राप्त हुई है। प्रत हमें वैज्ञानिक और औद्योगिक जन्मति के नामों द्वारा कम विकसित प्रदेशों को सम्यक करने की नई साहसपूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहिये।" स युक्त राष्ट्रसंघ की घाटिक और सामाजिक परिपक्व इन उद्देश्यों की पुष्टि का प्रयास करती है। यह धर्म-विकसित देशों को विकसित क्षेत्रों की सहायता महीनो मन्त्रो उपकरणों घाटि की प्राप्ति के लिये घाटिक सहयोग देती है। भारत जैसे कम विकसित देशों का वर्तमान समय में भी प्रकार की सहायता की पून अपेक्षा है—(१) प्राविधिक बलता (Technical Skill) की विधियों और उपयो की सहायता से उत्पादन बड़ा कर हरिजात का विनाश एक (२) बावस्वक उपकरणों मन्त्रो महीनो मन्त्रों, सड़कों बन्धनपाहों को प्रस्तुत करके व्यापार उद्योग इति-उत्पादन में वृद्धि। घाटिक और सामाजिक परिपक्व उपरोक्त प्रकार की सहायता उपलब्ध करा के भारत जैसे घाय प्रबन्ध धर्म-विकसित एशियाई एक अफ्रिकन देशों को मन्त्रो-सम्भव बड़ा लाभ पहुँचा रही है।

घाटिक के मनुष्य १२ (२) के अनुसार घाटिक और सामाजिक परिपक्व समाज के लिये मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं के प्रति घास्वा बढाने बढाने उनके पालन कराने के लिये विधायित्व कर सकती है। वास्तव में परिपक्व का लक्ष्य मुख्य रूप से मानव-अधिकारों (Human Rights) को प्रोत्साहन देना है। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा राष्ट्रसंघ की अपेक्षा इन अधिकारों पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि द्वितीय महायुद्ध से पहिले और महायुद्ध काल में बर्बरतापूर्ण अत्याचारों से मानवीय अधिकारों का घाटिक

हानि होने के कारण 'मानव अधिकार' की रक्षा एक उच्चतम प्रश्न बन गया था। चारों ओर से यह माप की जाने लगी थी कि मानव अधिकारों को बचाव करने वाली क़रतबों की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये और संयुक्त राष्ट्रसंघ को इस निम्न में विशेष प्रयत्न करना चाहिये। अतएव सप के च टर् में महासभा को एकाधिकार और सामाजिक परिपद को मानव अधिकारों की अधिकारिता के साथ ही जोड़ दिया गया है। इस दायित्व का पूर्ति के लिये परिपद में विभिन्न प्रकार के मानव अधिकारों का अध्ययन किया है और इन के लिये विभिन्न प्रयोग स्थापित किये हैं। अरणाधिकारों तथा राज्य हीन व्यक्तियों के लिये नियम बनाए गए हैं। टुड्ड सुनिश्चों के अधिकारों की रक्षा का और बमर का अध्ययन किया गया है। महासभा ने जार्जिनाज (Genocide) के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया है जिसके अनुसार किसी भी राष्ट्रीय, नस्ली, धर्म या भाषिक समुदाय को पूर्णतः बिलुप्त करने के प्रयत्नों को अर्थघ्न घोषित किया गया है। भारत दक्षिण-अफ्रीका में मार्गोयो के मानव-अधिकारों के अग्रहण के प्रश्न को महासभा में बारम्बार उठाना रहा है। परिपद ने स्त्रियों की भ्रूति पर सूचना और टुड्ड की स्वतंत्रता पर घामोय का निर्माण कर इन विषयों में विभिन्न सम्झौतों अथवा संधि समझौतों (Conventions) के प्राप्ति तैयार किये हैं।

लेकिन इन विषयों में सबसे बड़ा कार्य मानव अधिकारों की सांख्यिक घोषणा (The universal declaration of human rights) का है। इस घोषणा को एक प्रयोग तैयार करने के उपरान्त सामाजिक परिपद को देना था। परिपद ने इसको महासभा में विचार के लिये प्रस्तुत किया। घोषणा का यह प्रस्ताव १० दिसम्बर १९४८ को महासभा ने अतिरिक्त रूप १४८ मतों के बहुमत से स्वीकार कर लिया। मानव अधिकारों के व्यापक कार के लिये प्रति वर्ष १० दिसम्बर का दिन 'मानवीय अधिकार दिवस' (Human rights day) के रूप में मनाया जाता है।

मानव-अधिकारों की सांख्यिक घोषणा में प्रस्तावना सहित ३० ध्येय हैं जिनमें राजनीतिक, भाषिक व सामाजिक अधिकारों का विस्तार दर्शाया गया है। इन अनुच्छेदों की मुख्य भावें निम्नलिखित हैं।

अनुच्छेद १ के अनुसार सभी मानव स्वतन्त्र रूप से जन्मे हैं और गौरव व अधिकारों में समान हैं।

अनुच्छेद २ के अनुसार प्रत्येक मानव को जापणा में निहित अधिकारों का अतिकार है।

अनुच्छेद ३ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धान्त का उल्लेख है।

अनुच्छेद ४ के अन्तर्गत दासता और दास-व्यापार, शारीरिक शोषण या पीडा यह जाना एकम् अमानवीय व्यवहार करना निषिद्ध ठहराया गया है।

अनुच्छेद ६ से ११ तक सर्वमान्य मानवीय अधिकारों का उल्लेख है।

अनुच्छेद १२ में निजी गोपनीयता का उल्लेख है।

अनुच्छेद १३ में पत्र-व्यवहार की स्वतंत्रता एकम् स्वदेश में प्रत्येक स्थान पर जाने जान की स्वतंत्रता का उल्लेख है।

आर्थिक एवम् सामाजिक परिषद की भुजायें (The arms of Economic and Social Council)-इस परिषद का कार्य बहुत महत्वपूर्ण व्यापक एवम् दीर्घगामी है जिस केवल एक सभा मात्र द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि इस परिषद के अधीन अनेक प्रायोगिक विभिन्न प्रकार की समितियों की स्थापना की गई जो इसके कार्य में सामान्यत्व की स्थापना करती हैं।

परिषद के प्रायोगिक दो प्रकार के हैं -

(१) क्रियात्मक (Functional)

(२) प्रादेशिक (Regional)

क्रियात्मक प्रायोगिक निम्नलिखित हैं-

(१) आर्थिक रोजगार एवम् विकास प्रायोगिक (Economic Employment and Development Commission)

(२) यातायात तथा संचार प्रायोगिक (Transport & Communication Commission)

(३) वित्तीय प्रायोगिक (Financial Commission)

(४) सांख्यिकी प्रायोगिक (Statistical Commission)

(५) जनसंख्या प्रायोगिक (Population Commission)

(६) सामाजिक प्रायोगिक (Social Commission)

(७) मानव अधिकारों संबंधी प्रायोगिक (Commission on Human Rights)

(८) स्त्रियों की स्थिति संबंधी प्रायोगिक (Commission on Status of Women)

(९) नशीले द्रव्य सम्बन्धी प्रायोगिक (Commission on Narcotic Drugs)

इन प्रायोगिकों में परिषद द्वारा निर्धारित संयुक्त राष्ट्र सभ के सदस्यों के प्रतिनिधि लिये जाते हैं। इनके प्रमुख कर्तव्य ये हैं—अपने अधिकार क्षेत्र में विषयों का अध्ययन करना परिषद के सम्मुख सिफारिशें करना और इन योजनाओं और सिफारिशों को कार्यान्वित कराने में सहयोग देना।

प्रादेशिक या क्षेत्रीय प्रायोगिक निम्नलिखित हैं -

(१) यूरोप के लिए आर्थिक प्रायोगिक (Economic Commission for Europe)

(२) एशिया के तथा सुदूरपूर्व के लिये आर्थिक प्रायोगिक (Economic Commission for Asia and Far East)

(३) लैटिन अमेरिका के लिये आर्थिक प्रायोगिक (Economic Commission for Latin America)—दक्षिणी और मध्य अमेरिका को लैटिन अमेरिका कहा जाता है।

(४) अफ्रीका के लिये आर्थिक प्रायोगिक (Economic Commission for Africa)—प्रादेशिक या क्षेत्रीय प्रायोगिक विभिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन और निपटारा सुगम बनाने की दृष्टि से नियुक्त किये जाते हैं। इन प्रायोगिकों की सदस्यता संबंधित क्षेत्रों के राष्ट्रों को ही जाती है परन्तु यदि

के संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य न हों ता उनका चुनाव छाबी सदस्यों के रूप में किया जाता है। क्षेत्रीय प्रायोग धरनी क्षेत्रीय सरकारों से सीधा पत्र-व्यवहार कर सकते हैं और सम्झन भी दे सकते हैं।

उपर्युक्त प्रायोगों के अनिरीक प्राधिक और सामाजिक परिवर मे कुछ विशेष अमिकरण (Specialised agencies) भी सम्मिलित हैं जो निम्न लिखित हैं—

(१) सार्वभ्यापी डाक संघ (Universal Postal Union)—यह सन् १८७१ मे प्रथम बार स्थापित हुआ इसका प्रथम कार्यालय बर्न (Bern) में है।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation)—इसकी स्थापना सन् १९१९ मे हुई थी। इसका प्रथम कार्यालय जेनेवा में है।

(३) पुनर्निर्माण एवम् विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for reconstruction & Development)—यह सन् १९४४ में स्थापित हुई। इसका प्रथम कार्यालय वाशिंगटन में है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund)—यह भी सन् १९४४ में स्थापित हुआ तथा इसका प्रथम कार्यालय भी वाशिंगटन में है।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ (International Civil Aviation Organisation)—यह भी १९४४ में स्थापित हुआ। इसका प्रथम कार्यालय मोन्ट्रियल (Montreal) में है।

(६) खाद्य एवम् कृषि संघ (Food and Agriculture Organisation)—यह सन् १९४२ में स्थापित हुआ। इसका प्रथम कार्यालय रोम में है।

(७) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा विज्ञान एवम् सांस्कृतिक संघ (United Nations Educational Scientific and Cultural Organisation)—युनेस्को १९४२ में स्थापित हुई थी। इसका प्रथम कार्यालय पेरिस में है।

(८) विश्व स्वास्थ्य संघ (World Health Organisation)—यह १९४४ में स्थापित हुई तथा इसका प्रथम कार्यालय जेनेवा में है।

(९) अन्तर्राष्ट्रीय दूरभाषी संचार संघ (International Telecommunication Union)—इसका प्रथम कार्यालय भी जेनेवा में है तथा इसे १९२४ में ही बना दिया गया था।

(१०) विश्व उल्का विद्या सम्बन्धी संघ (World Meteorological Organisation)—यह १९४७ में स्थापित किया गया था तथा इसका प्रथम कार्यालय लीजाने (Leuvenne) में है।

संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बाल-कल्याण प्रापत्कामीन कोष (U N International Children's Emergency Fund UNICEF)की गठना विशिष्ट समितियों में नहीं की जाती पर यह भी प्राधिक और सामाजिक परिवर के सम्बन्धित संस्थाओं में से एक है। इस संस्था की स्थापना महासभा

द्वारा ११ दिसम्बर १९४६ को हुई थी। यह अथलासी संस्था है। ३० देशों का एक कार्यकारी मंडल इसका संभालन करता है। इस कोष में ११८ देश अपनी अपनी मुद्रा में चन्दा देते हैं। इसका वार्षिक बजट लगभग ३ करोड़ डॉलर का है। इस संस्था का प्रमुख बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण आदि कार्यक्रमों द्वारा बच्चों के कल्याण में सहयोग देना है जो स्वास्थ्य सुधार पाण्डिक भाजन पढ़ाई मिठाई, व्यवसाय, गिला सम्बन्धी कार्यक्रम आदि के द्वारा पूरा किया जाता है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद की स्थायी समितियाँ ये हैं —

- १ प्राविधिक सहायता समिति
- २ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से बातचीत करने वाली समिति
- ३ गैर-सरकारी संगठनों या संस्थाओं से परामर्श की व्यवस्था करने वाली समिति
- ४ कार्यबलि समिति और
- ५ बच्चों के कार्यक्रम की अन्तरिम समिति

इन सब में प्राविधिक सहायता समिति (Technical Assistance Committee)—सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसके कार्यों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उपरोक्त सभी अन्तर्राष्ट्रीय समितियों एवं विज्ञेय निकायों का बड़ा महत्व है क्योंकि इनके द्वारा संसार के लोगों के जीवनस्तर को उठा उठाने तथा उनकी मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के सुसम्झने की दृष्टि में उत्प्रेक्षणीय कार्य किया जाता है। इनके अतिरिक्त ये विश्व के साथ के बीच परस्पर सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराने में भी सहायक होती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय आतायात एवं संचार व्यवस्था को सुचारुतः आक व्यवस्था को सुचारु बनाने योजना के उत्पादन तथा वितरण को संतोषजनक बनाने अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय की प्रणाली को स्थापित करने वीमारिबों को कम करने तथा स्वास्थ्य के स्तर को सुधारने में इन विज्ञेय समितियों द्वारा जो कार्य किया गया है तथा किया जा रहा है उनको बुझाया नहीं जा सकता।

इस प्रसंग में गैर-सरकारी संगठनों (Non-Governmental Organizations) की चर्चा भी उत्प्रेक्षणीय है। प्रायः सामान्य हितों की पूर्ति के लिए विभिन्न देशों के व्यक्तिगत तथा गैर-सरकारी समुदाय एक संयुक्त संगठन की रचना कर लेते हैं। ऐसे संगठनों में लोक चर्च व्यापारिक एवं व्यापारियों की संस्थाएँ सामुदायिक समाज विमानों के संगठन स्त्रियों के संगठन तथा साथ ही असह्य व्यवसायिक वैज्ञानिक मानवीय और समाज सुधार संगठनों का योगदान रहा है। इन प्रकार के गैर-सरकारी संगठन विश्व के विभिन्न भागों की विज्ञान जनता से सम्बन्धित रहते हैं। इन संगठनों के द्वारा लड़े गे मेकर बड़ तक तथा घर से मेकर विश्व तक के मनी सहाय्य विषयों पर विचार किया जाता है। इन संगठनों के लिये आठर के अनुच्छेद ७१ में कहा गया कि आर्थिक और सामाजिक परिषद अपने कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों पर गैर-सरकारी संगठनों के साथ आसम्भकानुसार बातचीत

एक समझौते कर सकती है। इस सम्बन्ध के घनी ३ प्रकार के गणना संघठनों की रचना की गई है—प्रथम प्रकार के संघठन हैं जिनका ध्येय है कि सामाजिक परिवार के अधिकारों कायों से सम्बन्ध है तथा जो प्रथम संघठनों के लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में भी गहरा सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार के संघठनों की संख्या ६ है। द्वितीय प्रकार के संघठन संघठन के केवल एक भाग में ही सम्बन्ध रखते हैं और इसी संख्या में संघठन हैं जो कि समुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव द्वारा रजिस्टर में घनिष्ठ कर दिये जाते हैं।

स्पष्ट है कि आर्थिक और सामाजिक परिवार ने मानव ज्ञान के अन्तर्गत एक सुखी जीवन की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। महासचिव के बाद संसार के आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से पीड़ित होने के कारण इस परिवार का कार्यदायक और भी बढ़ गया है परन्तु सम्प्रभूत राज्यों के रहते हुए यह संस्था प्रथम कार्यो से आर्थिक रूप से ही योगदान कर रही है। प्रारम्भ में तो यह प्रथम कार्यो को सम्पन्न करने में समयमय असफल ही रही थी। इससे सन्ने बाद दिशाएँ हाठें में याजनायें बनता थी तथा कार्यक्रम से सम्बन्धित निएय सिय जते में परन्तु प्रथम सत्रों को प्राप्त करने की दिशा में इसके क्रम नहीं क बराबर ही बढ़ पाते थे। अमेरिका के परराष्ट्र सचिव ने एक बार इसक सीमित स्वरूप को स्पष्ट करत हुए कहा था कि—

एक अन्तर्राष्ट्रीय संघठन आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को हल में सहायक हो सकता है लेकिन सम्प्रभू राष्ट्रों को कार्यो और अधिकारों में दखल नहीं दे सकता। वह वैयक्तिक सदस्य राष्ट्रों को कोई भी कार्य करने को कोई धारण नहीं दे सकता। राष्ट्रों के प्रतिष्ठित मामलों तक उसकी पहुँच नहीं है। उसके साधन और उसकी कार्य पद्धति केवल यह है—अध्ययन विचार-विमर्श रिपोर्ट एवं सुझाव।

वास्तव में किसी के द्वारा यह ठंका ही कहा गया है कि आर्थिक और सामाजिक परिवार 'जातुमी सुरक्षा परिवार' की चुप्पी मौन बहिन है।

प्रो फेनविक (Fenwick) ने मठ प्रकट किया है कि आर्थिक और सामाजिक परिवार कोई नीति निर्धारण की संस्था नहीं है बल्कि एक विशिष्ट समिति का समान है जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार एक सामाजिक सहयोग के सच में व्यावहारिक काम करता है।

"It is not a policy forming body but rather a special committee designed to promote and to carry on the practical work of International economic and social co-operation without detracting from the ultimate responsibility to the General Assembly in the matter"

—Charles G Fenwick International Law p 186.

स्टार्क (Starke) के बयानों में इस सस्या को मुक्तिकल से ही कार्यकारी प्रग बताया जा सकता है क्योंकि इसका कार्य तो बेबम सिफरिसे करना एवं राय देना है। इसके निर्देश और मार्गदर्शन द्वारा सरकारें एवं विशिष्ट एजन्सियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में महामता प्राप्त करती हैं।*

प्रो० शुमन (Schuman) ने लिखा है कि चार्टर की ६१ से ७२ तक की धाराओं में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की व्यवस्था की गई है। १८ राज्यों (अब २०) की इस मस्या को भी परामर्श देने सम्मयन एवं सिफरिसे करने तक ही सीमित बना दिया गया है—यह एक सही तथ्य है जो सच की बटिस और इसके विशिष्ट साधनों की बहुलता से परिचित नहीं होता।†

४ न्यास-परिषद (Trusteeship Council) और न्यास-व्यवस्था (Trusteeship System)—संयुक्त राष्ट्रसंघ का चौथा महत्वपूर्ण घटक न्यास-परिषद (Trusteeship Council) है। सच के चार्टर में अध्याय १२ के अन्तर्गत पहिले अनुच्छेद ७५ से ८३ तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्था (Trusteeship System) को समझाया गया है एवं तत्पश्चात् अध्याय १३ के अन्तर्गत अनुच्छेद ८६ से ११ तक न्यास-परिषद के संयुक्त कार्य एवं अधिकार, महत्त्व तथा कार्य विधि आदि पर प्रकाश डाला गया है। अतः हम पहिले न्यास-पद्धति या न्यास व्यवस्था पर ही बर्षा करेंगे।

(क) न्यास-पद्धति —पहिले राष्ट्रसंघ में संरक्षण व्यवस्था (Mandat System) की। उसके स्थान पर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने न्यास-व्यवस्था अपनाई है जिसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि विश्व में अनेक विच्छिन्न हुए एवं अतिक्रिस्त प्रदेश हैं जिनका विकास तक ही सम्भव है जब कि तत्प

* "The Economic and Social Council is provided for in articles 6 to 72 of the charter. This body of 18 states is also limited to giving advice and making studies and recommendations—a fact which is not altered by the complexity of its organization and by the multiplicity of the specialised agencies which it consults."

—Stroke An Introduction to International Law
p. 385

† "The Economic and Social Council can hardly be described as an executive organ as its functions are primarily advisory and recommendatory. Through its guidance and direction, Governments and the specialised agencies are enabled to work towards a common goal in solving economic and social problems of international concern."

—Frederick L. Schuman.

धीर उन्नत देश उन्हें सहयोग प्रदान करें। प्रत उन्नत देशों का यह कतम्प है कि उस समय तक अपने प्रापको म्यानी (Trustee) समझ कर अधिकांश प्रदेशों के हितों की देखभाल करते हुए उनके विकास में हर सम्भव सहयोग दें। इस सम्बन्ध में प्रथम ११ के प्रथम संयुक्त राष्ट्र ७१ में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभ्य प्रतिज्ञाबद्ध हुए हैं। यह अनुच्छेद इस प्रकार है—

“संयुक्त राष्ट्र संघ के वे सदस्य जिन पर प्रेशों के अधिशासन की जिम्मेदारियां हैं या हाथी जहाँ लोगों को पूरा रूप से स्वतंत्रता नहीं मिली है वह स्वीकार करते हैं कि उन प्रेशों के निवासियों के हितों की रक्षा सबसे पहिले होनी चाहिये और वे एक पृथ्म म्यास के रूप में अपना यह उत्तरदायित्व मानते हैं कि बलमान चार्टर द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा प्रणाली के अधीन, अधिक से अधिक इन देशों के निवासियों की सहाई करनी है और इसक लिये उन्हें—

१ इन प्रेशों के लोगों की सहायता का पूरा ध्यान रखते हुए, उनकी राजनीतिक आर्थिक सामाजिक और शैक्षणिक उन्नति करनी होगी तथा उनके साथ म्यायपूर्ण व्यवहार और उन्हें परवाचारों से बचाने का पूरा प्रयत्न रना होगा।

२ प्रत्येक प्रदेश और उसके लोगों की अपनी-अपनी परिस्थितियों का उन्नत विकास की समस्या के अनुमत्त उन्नत व्यवसाय को प्रोत्साहन देने उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं के प्रति उचित ध्यान रखने का एवं उनकी इस राजनीतिक संस्थाओं के विकास में अधिकारिक सहायता देने का पूरा यत्न करना होगा।

३ अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की अधिवृद्धि करनी होगी।

४ इस अनुच्छेद में बताये गये सामाजिक आर्थिक एवं वैज्ञानिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिये विकास के रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहन देना होगा जो-कार्यों को बढ़ावा देना होगा और एक दूसरे के साथ तथा जब और जहाँ ठीक हो विभिन्न कार्य करने वाला अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग स्थापित करना होगा।

५ सुरक्षा एवं सौभाग्यिक बाडों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए महासचिव को इन प्रेशों की आर्थिक सामाजिक शैक्षणिक परिस्थिति के अध्ययन-अन्त आंकड़ों द्वारा सभ्य तकनीकी सूचनाएँ देनी होंगी जिनके लिये वे उत्तरवादी हैं। सिवाय उन प्रेशों के जिन पर १०^{वें} और ११^{वें} प्राणियों के उपबन्ध लागू होते हैं।

यह स्मरणीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की म्यास-व्यवस्था राष्ट्र संघ की संरक्षण व्यवस्था (Mandate System) का विकसित और नव्यतर रूप है और संरक्षण व्यवस्था (Mandate System) के साथ व्यवहारी सिद्धान्तों एवं धारमभिरुण्य (Whichever is burden) के साथ व्यवहारी सिद्धान्तों एवं धारमभिरुण्य की प्रतीकता के साम्राज्यवाद विरोधी सिद्धान्तों के मध्य एक समझौता है किन्तु यह प्रयत्न है कि इसका साम्राज्यवाद विरोधी पक्ष मैन्डेट व्यवस्था की प्रवेदा अधिक प्रबल है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना होगा कि अगस्त १९४१ के अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर में सभी पराधीन देशों के लिए धारमभिरुण्य के

विद्यालय को स्वीकार कर लिया गया था। सान-वॉग्निसको के सम्मेलन में प्रवेश होते-होते दक्षिण अफ्रिका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सैनिक रत पुरानी मैनरेट व्यवस्था में किसी प्रकार के विस्तार के और अमेरिकन एज-पति कन्वेंशंस की तथा विगत मन्त्री काउंसिल हल की स्यास-पद्धति के विचारों के विरोधी थे। वे अपने उपनिवेशों पर अपना नियंत्रण छोड़ने को तैयार थे। इसके विपरीत यूजीवीव आस्ट्रिया मध्यपूर्व तथा दक्षिण अमेरिका के इन सोवियत कृत्रिम चीन प्रायि साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के उन्मूलन के पक्ष में थे। अतः इन दोनों दृष्टिकोणों एवं परस्पर विरोधी हितों के मध्य समझौता, होना ही संयुक्त राष्ट्र सब की स्यास पद्धति (Trusteeship System) का जन्म हुआ था। आर्टर के अनुच्छेद ७१ में यह व्यवस्था की गई।

“संयुक्त राष्ट्र सब अपने अधिकारों के अर्थात् ऐसे प्रवेशों के अंतर्गत और संरक्षण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्यास पद्धति बनायेगा जो मध्यमजित समझौतों द्वारा उनके अर्थात् ऐसे प्रवेशों को बन कर स्यास-प्रवेश कहा जाएगा।”

यह बात अत्यन्त ही है कि राष्ट्र सब (League of Nations) मैनरेट व्यवस्था केवल अमरी टीकी प्रायि से पीड़ित हुए प्रवेशों के कि किन्तु संयुक्त राष्ट्र सब की स्यास पद्धति का अर्थ उपनिवेशवा साम्राज्यवाद द्वारा अर्थात् बनाये गये सभी अर्थों के लिये है।

स्यास-व्यवस्था के उद्देश्य (Purposes of Trusteeship System) स्यास व्यवस्था के उद्देश्यों को बड़े स्पष्टतापूर्वक अनुच्छेद ७१ में दिया गया है। यह अनुच्छेद इस प्रकार है—

“अतः आर्टर के अनुच्छेद १ में संयुक्त राष्ट्र सब के जो प्रयोजन बताये गये हैं उनके आचार पर स्यास-पद्धति के निम्नलिखित मूल उद्देश्य होंगे —

- (१) अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा और सुरक्षा को बढ़ाना
- (२) लोगों की राजनीतिक आर्थिक सामाजिक एवं अर्थसिद्धि उन्नति में योग देना तथा स्वशासन अथवा स्वतन्त्रता के क्रमिक विकास में सहायता प्रदान करना। यह सब प्रत्येक प्रवेश में वहाँ के लोगों की विशेष परिस्थितियों के अन्वये उन लोगों की स्वतन्त्र सम्मति के अनुसार किया जाएगा और प्रत्येक स्यास-समझौते की शर्तों में जो कुछ उपबन्ध किया गया हो उनका पूरा ध्यान रखा जाएगा।
- (३) शांति लिये आया और अर्थ का श्रेष्ठ क्रिये बिना सब के लिये मानव-अधिकारों एवं मूल स्वतन्त्रताओं के प्रति विश्वास में अहिंसा और अहिंसा पर निर्भर है।
- (४) सामाजिक आर्थिक और राजनिय सभ्यता मामलों में संयुक्त राष्ट्र सब के सब सदस्यों और उनके प्रति समानता के व्यवहार का विश्वास बिलाना साथ ही इन लोगों को इस बात का भी विश्वास दिलाना कि स्यास करने की विधा में सब के साथ एक बीसा व्यवहार किया जाएगा।”

स्वातन्त्र्य-व्यवस्था के प्रस्तावित घाने वाले प्रदेश—जैसे कि क्यूबा या बुरुंडा है। स्वातन्त्र्य-व्यवस्था का शत्रु मैतडेट-व्यवस्था की प्रवेसा कही अधिक व्यापक है। मैतडेट-व्यवस्था केवल उन उपनिवेशों तक सीमित थी जो अथ राष्ट्रों (बर्मेनी एवं टर्की आदि) से छीन लिए गये थे परन्तु स्वातन्त्र्य-व्यवस्था संसार के सभी पराधीन देशों से सम्बन्ध रखती है।

स्वातन्त्र्य-व्यवस्था के प्रस्तावित घाने वाले प्रदेशों को दो भागों में विभाजित किया गया है—

(१) अ-स्वशासित प्रदेश (Non-Self Governing Territories)

(२) स्वास या स रक्षित प्रदेश (Trust Territories)

अ-स्वशासित अर्थात् स्वशासन न करने वाले प्रदेशों में वे सब पराधीन प्रदेश और उपनिवेश शामिल हैं जो स रक्षित प्रदेश नहीं बना दिए गये हों। वे ब्रिटेन फ्रांस आदि पश्चिमी देशों के साम्राज्य के अन्तर्गत आते हैं। इसके सम्बन्ध में आर्ट ११ विशेष नियम निर्धारित नहीं किये गये हैं। केवल इतना ही है कि इन्हें समय-समय पर बिगिड्ट सूचनार्थ देनी पड़ता है।

स्वास प्रदेश (Trust Territories) के अन्तर्गत वे प्रदेश आते हैं जो स्वास समझौतों के द्वारा स्वास प्रदेश बना दिये जाते हैं। ये समझौते सम्बन्धित राज्यों के मध्य होते हैं पर उन सब महा सभा की स्वीकृति अनिवार्य है।

निम्नलिखित ३ प्रकार के प्रदेश स्वास प्रदेश बनाये जा सकते हैं—

(१) मैतडेट के अधीन प्रदेश

(२) द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप राष्ट्र राज्यों से छीने गये प्रदेश एवम्

(३) अपनी इच्छा से महा सभितियों द्वारा सब को छोड़े जाने वाले प्रदेश।

उल्लेखनीय है कि अभी तक किसी भी देश ने अपने बसबर्डी किसी भी क्षेत्र को संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपने की सकारता प्रदर्शित नहीं की है। राष्ट्र संघ (League of Nations) के मैतडेट वाले प्रदेशों में बहिष्णी अफिरा संघ में दक्षिण-पश्चिमी अफिरा की तीव्र आलोचना के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्वास पद्धति के अन्तर्गत सौंपना स्वीकार नहीं किया है। मानना अन्तर्राष्ट्रीय स्वायत्तता को सौंपा जाने पर स्वायत्तता का निष्पत्त यह था कि यद्यपि दक्षिण को इस बात के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता कि वह दक्षिण-पश्चिमी अफिरा को स्वास प्रदेश बना दे, लेकिन उस पर राष्ट्र संघ का मैतडेट विद्यमान है और राष्ट्र संघ के उत्तराधिकारी के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ की उस प्रदेश पर वे अधिकार प्राप्त हैं जो राष्ट्र संघ को प्राप्त थे किन्तु दक्षिण अफिरा पर इस विस्तार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा स्थापित समिति को इस प्रदेश के शासन के सम्बन्ध में बाध्यकारी रिपोर्ट प्रेषित करने से इन्कार कर दिया। १३ अक्टूबर, १९३० को स्वास समिति को दक्षिण अफिरा सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट उपस्थित होने पर अब यह सुझाव दिया गया कि अन्य विषय

अधिकारों के साथ इस प्रदेश का विभाजन करते हुए राष्ट्रसंघ जैसा संघटन इस पर स्थापित किया जाए, भारत के प्रतिनिधि भी इच्छा मैनन में इस बात का घोर विरोध किया। उन्होंने घोषणा की कि— 'यह बातों की मर्जी नहीं है जहाँ एक बम दूसरे बम को यह कह कि हम तुम्हें प्रदेश का भाग सौंपते हैं पर इसके बदले में तुम दूसरे भाग की घोर ध्याम नहीं दोगे। बसिग अधिकार के साथ के शौर्य संघ के कारण ही यह समस्या प्रबल नहीं गुलाम पाई है।

यह जानना आवश्यक होगा कि व्यास पद्धति के घन्तराष्ट्रीय बौद्धिक से प्रवेक से घोर कौन से प्रदेश अब तक स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं।

कुछ वर्ष पूर्व इस पद्धति के घन्तराष्ट्रीय प्रदेशों के घन्तराष्ट्रीय बर्णन निम्नलिखित हैं।

क्रम संख्या	व्यास पद्धति के प्रदेश का नाम	प्रशासक प्रदेश का नाम	जनसंख्या	क्षेत्रफल (वर्ग मील में)
१	सूयिमी	ब्राह्मिलिया	१०,६२०	११,०००
२	ब्रह्माव्हा उरुग्डी	बेल्जियम	१०,६२६	२,६१६
३	फ्रैंच कैमरुन्ज	फ्रांस	२७,२५००	१,६६,७६०
४	फ्रैंच टोगोलैण्ड	फ्रांस	७,४४,४४६	२१,२१६
५	पश्चिमी समोया	न्यूजीलैण्ड	७२,६१६	१,११६
६	टांगा निकिया	पेट ब्रिटेन	७०,७६,५५०	३,६२,६००
७	ब्रिटिश कैमरुन्ज	पेट ब्रिटेन	६,६१,०००	१४,६१
८	नीक	ब्राह्मिलिया	१,६६२	६२
९	प्रशान्त महासागर के द्वीपों का व्यास प्रदेश	संयुक्त राज्य अमेरिका	६,००	६००
१०	सुमाली लैण्ड	इटली	६,१५	१,६५
११	टांगो लैण्ड	पेट ब्रिटेन	१,६२,०००	१,१००
		योग	१,७४,७५,६४०	६,७६,६०

उपरोक्त में निम्न प्रदेश स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं जिनका बर्णन नीचे लिखे अनुसार है—

क्रम सं०	व्यास पद्धति के प्रदेश का नाम	प्रशासक प्रदेश का नाम	स्वाधीनता प्राप्ति की तिथि
१	टोगोलैण्ड	ब्रिटेन	६ मार्च १९४७
२	फ्रैंच कैमरुन्ज	फ्रांस	१ जनवरी १९६०
३	फ्रैंच टोगोलैण्ड	फ्रांस	२७ अप्रैल १९६०
४	सुमाली लैण्ड	इटली	१ जुलाई १९६१
५	ब्रिटिश कैमरुन्ज	ब्रिटेन	१ जुलाई १९६१
६	टांगानिकिया	ब्रिटेन	६ दिसम्बर १९६१
७	पश्चिमी समोया	न्यूजीलैण्ड	१ जनवरी १९६२
८	ब्रह्माव्हा और उरुग्डी	बेल्जियम	१ जुलाई १९६२ (सोनी युपक राज्य बने)

प्रत्येक नौकरी को छोड़ कर केवल दो प्रदेश ही न्याय पद्धति में रह पाए हैं जिन्हें स्वायत्तता का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि बाट र के अनुच्छेद ७८ में यह व्यवस्था ही गई है कि—

यह न्याय पद्धति उन देशों पर लागू नहीं होगी जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बन गये हैं और जिनके बीच सम्बन्ध सबकी समान प्रभुता के प्रति ध्यासा रखने पर आधारित होय।

न्याय पद्धति के अन्तर्गत ध्यान देने वाले प्रदेशों के सबम में यह उल्लेखनीय है कि न्याय प्रदेशों का भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

- (१) सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश एवं
- (२) ऐसे प्रदेश जिनका सामरिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व न हो

सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेशों को सुरक्षा परिषद का संरक्षण प्राप्त है जब कि दूसरे वर्ग के सामान्य न्याय प्रदेश महाममा और न्याय परिषद के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। इस प्रकार के न्याय प्रदेशों के शासन के लिए एक राज्य प्रत्येक राज्यो अपना स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ को एक निरुक्त किया जा सकता है।

(क) न्याय-परिवर्तन संरक्षण (Composition)—न्याय प्रदेशों से मिलित संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों का सम्पादन करने में मुख्य सत्ता न्याय-परिवर्तन है। यह राष्ट्र संघ के स्थायी मिश्रित प्रायोगिक (Permanent Mandate Commission) की प्रेरणा एक अधिक शक्तिशाली राष्ट्र संघ से हुआ था। इसका कार्यविधि १९५० से हुआ था।

संयुक्त राष्ट्र संघ के निम्नलिखित सदस्य इसके भी सदस्य होते हैं—

- (क) सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य चाहे वे न्याय-क्षेत्र का प्रशासन करते ही अपना नहीं
- (घ) संयुक्त राष्ट्र संघ के वे सदस्य जो न्याय-क्षेत्र का प्रशासन करते हैं और।

(ङ) महाममा द्वारा ३ वर्ष के लिए निर्वाचित उन्ने सदस्य जिनके न्याय-परिवर्तन में न्याय-प्रदेशों का शासन करने और न करने वाले सदस्यों की संख्या को समान करने के लिए आवश्यक हों।

मतदान और कार्य-विधि (Voting and Procedure)—वार्टर के अनुच्छेद ८९ में न्याय-परिवर्तन की मतदान-प्रणाली उपस्थित है। इसके अनुसार—

- (१) न्याय-परिवर्तन के प्रत्येक सदस्य का एक वोट होगा,
 - (२) न्याय-परिवर्तन में निर्णय उपस्थित एवं वोट देने वाले सदस्यों के वोट से किया जाएगा।
- वार्टर के अनुच्छेद ९० में इस परिवर्तन की कार्यविधि का वर्णन है।

(१) न्यास-परिषद अपनी कार्य विधि के नियम स्वयं बनाएकी। अपना अध्यक्ष चुनने की विधि भी यह तय करेगी।

(२) न्यास-परिषद की समाप्त उनके नियमों के अनुसार हुवा करेगी। इन नियमों में यह भी प्रबन्ध होगा कि सदस्यों के बहुमत की प्राप्ति पर इसकी बैठकें धामनिष्ठ की जा सकें।

अनुच्छेद २१ में यह व्यवस्था की गई है कि-

न्यास परिषद जहाँ भी उचित होगा प्राथमिक और सामाजिक परिषद तथा विशेष कार्य करने वाली संस्थाओं से उन मामलों पर सहायता ले सकेगी जिनसे उनका अपना अपना सम्बन्ध है।

कार्य और शक्तियाँ (Functions and Powers) परधि आम परिषद संयुक्त राष्ट्रसंघ की घम है परन्तु इसे कोई स्वतन्त्र सत्ता प्रकृति प्रकृति प्राप्त नहीं है। इसे अपने समस्त अधिकारों का प्रयोग सामान्य प्रकार के न्यास प्रवेसों के सम्बन्ध में महासभा के आदेश और माध्यम से तथा विशेष प्रकार के प्रकृत सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण न्यासी प्रवेसों के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद के प्रथम और माध्यम से करना पड़ता है। कोई भी न्यास प्रवेस किन बातों पर ही देत के संरक्षण में रखा जाए, इसका निर्णय सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बारे में सुरक्षा परिषद और घम्य प्रकार के क्षेत्रों के बारे में महासभा को करना पड़ता है। इन समझौतों में प्राथमिक परिवर्तन एवम् संशोधन को इसी की सहमति से किया जा सकता है। अक्टूबर १९४९ में महासभा ने तत्कालीन ईरानी प्रतिनिधि अखनीखालि (Awnikhalid) ने लही ही कहा कि न्यास-परिषद "संयुक्त राष्ट्र के सर्वाधिक रुपचाप रूप से उपयोगी कार्य करने वाले घमों में है।"

न्यास-परिषद प्रजागठ ३ प्रकार के कार्य करती है-

प्रथम, न्यास परिषद एक विस्तृत प्रस्तावनी तैयार करती है और उसे आचार पर शासनकर्ता देत से न्यास प्रवेस की शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में प्राथमिक रिपोर्ट प्राप्त करती है। इसमें न्यास प्रवेसों की राजनीतिक प्राथम सामाजिक प्राथि सभी क्षेत्रों की प्रकृति का विवरण होता है। न्यास-परिषद द्वारा तैयार की गई प्रस्तावनी में न्यास प्रवेसों के शासन से सम्बन्धित सूक्ष्म प्रकृति इनकी बटिल एवम् सूक्ष्म होती है कि शासनकर्ता प्रकृति अथिजासक को प्रकृति का उत्तर देने के लिय अपनी शासन प्रकृति के बारे में प्रकृति सन्ध ५१७ सन्ध रचना पड़ता है।

द्वितीय यह न्यास प्रवेसों के लिखित तथा मौखिक। घम प्रकृति पर विचार करती है। १९४९ तक परिषद ने पक्ष ७० प्रकृति पर विचार किया था। १९४५ में इसकी संख्या बढ़कर एक ही घमि ४०० तक पहुँच गई थी १९४७ में यह संख्या १ ३७ हो गई थी और १ में परिषद की १२३३ प्राथम-पक्ष विचार के लिय प्राप्त हुए थे। परिषद ने प्रकृति पूर्व प्रकृति केसलीनोक्स मुनरो (Leslie Knox Munro) के प्रकृति प्राथम-पक्ष पर विचार करना न्यास-परिषद की एक सर्वाथि महासभ्य विधि है क्योंकि वाटेर द्वारा प्रकृति प्रकृति प्राथम-पक्ष देने का प्रकृति प्रवेसों की देती जगत और परिषद के माध्य सीमा सम्बन्ध रथ पिठ कर

व्यवस्था मन्त्राली प्रणाली को किसी प्रकार भी पराधीन लोगों की एक विषय नहीं कहा जा सकता परन्तु यह समुक्त राष्ट्रमण्डल से यह स्वीकार करा जाती है कि साम्राज्यों के पुराने विचार मृत हो चुके हैं। वस्तुतः इस व्यवस्था द्वारा रास्फ जे कृष का कन्दन है कि 'नई व्यवस्था पुरानी धारक-व्यवस्था (Mandato System) का परिवर्तित रूप नहीं है। यह निश्चित रूप से एक विस्तृत क्षेत्र रखती है और इसमें अधिक व्यापक पन्तराष्ट्रीय नियन्त्रण सम्भव है। यह न्यास प्रयोगों के निहायियों को स्वशासन एवम् स्वाधीनता के लिये शिक्षित करने की क्षमता रखता है।

युद्ध प्राणोपकरणों में पुरानी मैग्नेट-व्यवस्था और वर्तमान न्यास-व्यवस्था का एक ही सिक्के के दो पहलू कह कर कटु घासीयता की है और समुक्त राष्ट्र संघ की न्यास व्यवस्था को राष्ट्र संघ की मैग्नेट-व्यवस्था के समान "एक बमकीमा बोबा (Agglomerous fraud)" कहा है किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रशासनिक दृष्टिकोण से दोनों प्रणालियों के मूल में समान शिक्षाओं और उपायों का व्यवसम्बन्ध किया गया है अकिन् विस्तार की बातों में दोनों में कई महत्वपूर्ण पन्तर बटिबत होते हैं और ये अन्तर प्रकट करते हैं कि न्यास-परिधि कई कारणों से मैग्नेट-व्यवस्था से अधिक उत्कृष्ट व्यवस्था है।

पहला कारण यह है कि मैग्नेट-व्यवस्था का लक्ष्य बहुत सीमित था जबकि न्यास-व्यवस्था का क्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत विस्तृत है। मैग्नेट-व्यवस्था केवल बर्मी और टर्की से छिपे हुए प्रयोगों तक सीमित थी किन्तु न्यास व्यवस्था केवल राष्ट्र में छिपे गये प्रयोगों के लिए है अपितु स्वशासन न करने वाले (Non Self-Governing) पराधीन और साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विकार बने सभी क्षेत्रों पर लागू होती है।

दूसरा कारण यह है कि न्यास-व्यवस्था में न्यासी प्रयोगों पर शासन करने वाली शक्तियों पर मैग्नेट-व्यवस्था की अपेक्षा अधिक कठोर निरीक्षण स्थापित किया गया है। न्यास परिधि समुक्त राष्ट्र संघ का एक स्थायी और प्रभावशाली है। मैग्नेट-व्यवस्था में स्थायी मैग्नेट प्रायोगों को न तो सीमित प्रदेशों में बाहर निरीक्षण करने का अधिकार था और न ही वह स राजन के सम्बन्ध में किसी प्रकार के प्रार्थना पत्रों पर ही विचार कर सकता था तात्पर्य यह है कि स रक्षण के सम्बन्ध में देखन और सुनने दोनों प्रकार के अधिकारों से स रक्षण प्रायोग (Mandato Commission) वंचित था। न्यास-व्यवस्था में न्यास-परिधि आवेदन पत्र भुन सकती है और बीच पड़ताल के लिये अपने स रक्षा-मंडल तक भेज सकती है। यह इसका निरीक्षण मैग्नेट प्रणाली के निरीक्षण से निश्चित रूप से अधिक प्रभावशाली, विस्तृत एवं क्षमतापूवक है।

तीसरा कारण यह है कि न्यास परिधि का गठन भी स्थायी मैग्नेट प्रायोग से निम्न और बेहतर है क्योंकि—
 (क) न्यास-परिधि वहाँ समुक्त राष्ट्र संघ का एक स्थायी और प्रभाव

पग है वही स्वामी मैग्नेट धायोग राष्ट्र सच द्वारा नियुक्त किया गया था।

- (क) न्यास-परिषद के सदस्य सरकारों के प्रतिनिधि होते हैं जबकि मैग्नेट-धायोग के सदस्य विशेषज्ञ वे जिनकी नियुक्ति राष्ट्र सच की परिषद में उनकी विशेष योग्यता के आधार पर की थी।
- (ख) न्यास-परिषद में न्यास-प्रदेशों पर काम करने वाले और और शासक देशों की संख्या बराबर-२ है जब कि मैग्नेट धायोग में अधिकतम सदस्य राज्य ऐसे वे जो मैग्नेट में शामिल नहीं थे एव
- (ग) सुरक्षा-परिषद के प्रत्येक स्थायी सदस्य को न्यास-परिषद में स्थान प्राप्त है इस प्रकार पाँच महान शक्तियों और न्यास प्रदेशों पर शासनकर्ता देशों को भी वही स्थायी प्रतिनिधित्व प्राप्त है जब कि जेप नदस्यों का चुनाव महासभा १ वर्ष के लिये करती है।

चौथा कारण यह है कि न्यास-व्यवस्था में मैग्नेट व्यवस्था की अपेक्षा उत्तरदायित्व का अधिक विस्तृत विचार रखा गया है। न्यास व्यवस्था इस बात पर स्पष्ट रूप से बल देती है कि देशी जनता का हित न्यास प्रदेशों के प्रशासन का सबप्रमुख मध्य है। इसमें उपनिवेशवाद के सम्मूलन को स्पष्ट व्यवस्था है जबकि मैग्नेट प्रणाली में ऐसा नहीं था।

पाँचवां कारण यह है कि मैग्नेट प्रणाली के अन्तर्गत मैग्नेटों की समस्या प्रभावित: स्थायी मैग्नेट धायोग का संघ सम्झी जाती थी; लेकिन न्यास व्यवस्था के अन्तर्गत न्यास परिषद के अतिरिक्त महासभा और सुरक्षा परिषद भी पराधीन देशों की समस्या में रुचि लेती हैं। विशेषतः महासभा जिसमें एशिया, अफ्रीका और सेंटिन अमेरिका के राज्यों का बहुमत है और स्वशासित (Non-self-Governing Territories) देशों को स्वशासन एवं स्वाधीनता दिलाने के लिए गिरफ्तार प्रयत्नशील है।

छठा कारण यह है कि व्यवहार में भी न्यास-व्यवस्था मैग्नेट व्यवस्था की अपेक्षा नहीं अधिक सफल सिद्ध हुई है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष सी टी रोमुलो (C.T. Romulo) ने कहा था कि 'न्यास पद्धति की उत्तम प्रवृत्ति धातुनिक जगत् में राजनीतिक और नैतिकता के उच्च बिन्दु का प्रतिनिधित्व करती है। यह स पद्धति की व्यावहारिक सफलता का पक्का प्रमाण नहीं है कि जहाँ अधिकतम मैग्नेट प्रदेश राष्ट्र सच का अन्त ही जाने तक भी पराधीन रहे वहाँ अधिकतम न्यास प्रदेश १३ वर्षों की छोटीसी अवधि में ही स्वाधीन हो गये वैसे कि पूर्व पुर्तगाल में की गयी सूची से स्पष्ट है।

उपरोक्त सभी कारणों के पुरुस्वरूप निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सबका निर्योप धीरे धादर्शन न होते हुए भी न्यास व्यवस्था मैग्नेट व्यवस्था से अधिक अच्छा है। न्यास व्यवस्था की अपेक्षा और महत्ता न्यास-

परिषद का प्रथम सम्मेलन प्रो बी सायरे (Prof B Sayre) के इन शब्दों में प्रतिष्पन्नित होती है—

“जब तक एशिया और अफ्रीका में विद्रोह हुए धन हैं हमें स्वाधीनता की नींवों का ध्यान देना। स्वातन्त्र्यवस्था विद्रोह हुए लोगों में ऐसी शान्ति की प्राप्ति का व्यवहारिक यत्न प्रदान करती है।”

५ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

(The International Court of Justice)

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सङ्घुक्त राष्ट्र सभ का मुख्य न्यायिक अंग है। सभ का यह अंग नवीन नहीं है। यह वही पुरानी अन्तर्राष्ट्रीय अदालत है जिसे राष्ट्र सभ ने १९२१ में हैग में स्थापित किया था। संयुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर (अनुच्छेद ९२-९६) ने उक्त पुराने न्यायालय में केवल जान बाली है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का प्रथम अधिवेशन सन् १९४६ में ३ अप्रैल से ६ मई तक बना था जिसमें मुख्य रूप से प्रशासनात्मक एवं संपठनात्मक मामलों पर विचार किया गया था।

सङ्घुक्त राष्ट्र सभ के सभी सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्राचीन हैं। न्यायिक प्रश्नों पर आधारित सदस्य राज्यों के सभी विवादों का निर्णय इस न्यायालय में अन्तर्राष्ट्रीय विधानों के अनुसार होता है। वह ऐस भी जो सङ्घुक्त राष्ट्र सभ का सदस्य न हो सुरक्षा परिषद की सिफारिशों के आधार पर महासभा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान का पक्षकार (Party) बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत तौर पर अपने मामले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। केवल राज्य ही न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकते हैं।

संघटन (Composition)—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में १५ स्वाधीन होते हैं जिनमें एक सभापति और एक उप-सभापति होता है। सभापति और उप-सभापति न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा उन्हीं में से निर्वाचित किया जाता है। न्यायालय के इन १५ न्यायाधीशों में सभार की सभी प्रमुख काहूनी व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले काहून विवेकम होते हैं। इनकी नाम-बदली स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय पंच न्यायालय (Permanent Court of Arbitration) की सूची से की जाती है। न्यायाधीशों का चुनाव महा सभा और सुरक्षा परिषद मिल कर करती है।

न्यायालय का उम्मीदवार होने के लिये व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

- (i) उच्च नैतिक चरित्रवान हो
- (ii) अपने देश के सबसे उच्च न्यायिक पद पर प्राचीन हो अथवा नियुक्त होने के योग्य हो
- (iii) अन्तर्राष्ट्रीय काहून में माग्गता प्राप्त योग्यता रखता हो, और
- (iv) जिसका नाम सदस्य राष्ट्रों द्वारा प्रस्तावित हो।

अनुच्छेद ३८ के भाग दो में लिखा गया है कि यदि विवादी राबो हो तो न्याय और हित के आधार पर किसी मामल का फंक्शन करने की न्यायालय की शक्ति पर इन उपबन्ध का कोई प्रभर नहीं पड़ेगा।"

न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of the Court)—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को तीन भागों में बाटा जा सकता है—(१) ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (ii) अनिवार्य क्षेत्राधिकार एवम् (iii) परामर्श-राबो क्षेत्राधिकार।

(i) ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (Voluntary Jurisdiction)—न्यायालय के विधान भववा अधिनियम (Statute of International Court of Justice) के अनुच्छेद ३९ के अनुसार न्यायालय इन सभी मामलों पर विचार कर सकता है जिनसे सम्बन्धित राज्य पारस्परिक सहमति से प्रत विवादों को न्यायालय के विचारार्थ प्रस्तुत करें।

(ii) अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Obligatory Jurisdiction)—इसे वैकल्पिक धावरवक (Optional Compulsory) क्षेत्राधिकार भी कहा जाता है। न्यायालय के अधिनियम के ३९ वें अनुच्छेद के दूसरे पैराग्राफ में लिखे वैकल्पिक धार (Optional Clause) भी कहा जाता है यह व्यवस्था दी गई है कि कोई भी राज्य किसी भी समय यह घोषणा कर सकता है कि यदि अन्य राज्यों का भी ऐसा ही हो तो वह निम्नलिखित धार भागों से सम्बन्धित सभी वैधानिक विवादों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को स्वतः अपने धावरवक (Ipso-facto-Compulsory) मानते हैं—

- (क) सधि की व्याख्या
- (ख) अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अथ से सम्बन्धित सभी मामले
- (ग) किसी ऐसे धम्य का अस्तित्व जिसके विरुद्ध जून पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कठ ध्व का उरसभग समझ प्राप्त
- (घ) किसी अन्तर्राष्ट्रीय उरसभग पर अस्तित्व का रूप और परिचय।

उपरोक्त घोषणा से स्थापित न्यायालय के क्षेत्राधिकार को घोषित होने से वैकल्पिक धावरवक क्षेत्राधिकार (Optional Compulsory Jurisdiction) इसलिये कहा है कि—(१) यह वैकल्पिक है क्योंकि यह उन्ही राज्यों पर लागू होता है जो उपरोक्त घोषणा करें, और प्रायः ही ठक ही होता है जब विवाद से सम्बन्धित धम्य राज्य भी इसी प्रकार की घोषणा कर चुका है। (२) यह प्रावन्तक है क्योंकि जो राज्य इस तरह की घोषणा कर वेना है उनसे सम्बन्धित विवाद किसी विशेष समझौते बिना भी न्यायालय के समझ जाने का सकते हैं।

उपरोक्त प्रकार की घोषणा करते समय प्रायः राष्ट्र-कुल सत बना देते हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको और पाकिस्तान ने यह कर्त सवाई कि वे जिन मामलों को घरेलू अधिकार अथ (Domestic Jurisdiction) नहीं समझेंगे उनके विषय का अधिकार-अथ स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी कर्तों से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अथ बहुत समुचित और सीमित हो पये हैं। हेत वैकल्पिक का रूप है कि न्यायालय के अधिनियम के ३९ वें

पनुच्छेद क दूसरे पैराग्राफ के अनुसार विभिन्न राज्या द्वारा की गई घोषणाएँ
ऐसी शर्तों क साथ हैं जो इसे क्रियात्मक दृष्टि से विन्मूक्त निरर्थक बना देती
हैं। परन्तु ओपेनहेम के अनुसार "प्रतिवन्धो (Reservations) क द्वारा
हए भी वैकल्पिक द्वारा प्रतिवारण न्यायिक निकाय की सर्वाधिक शक्ति और
महत्वपूर्ण व्यवस्था है। वैकल्पिक धारा क कारण प्रदूषण नियम नये उत्तरदायित्वा
- से न्यायालय की कार्यक्षमता में एक महत्वपूर्ण धारा की वृद्धि होती है।

(ii) परामर्शदात्री अधिकार (Advisory Jurisdiction)—
संयुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर के अनुच्छेद १९ क अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
निम्नलिखितप्रश्नों पर परामर्श दे सकता है—

(अ) महासभा तथा सुरक्षा परिषद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से किसी
वैधानिक प्रश्न पर परामर्शदात्री सम्मति लेने के लिये प्राप्ति कर सकती
है एवम्

(ब) संयुक्त राष्ट्र सभ के अन्य प्रग और विशिष्ट अधिकारगर्त
महामन्त्रा द्वारा इस सम्बन्ध में कमी की अधिकार दिये जाने पर अपने-अपने
अधिकार क्षेत्रों के भीतर उत्पन्न होने वाले कानूनी प्रश्नों पर न्यायालय की
परामर्शदात्री सम्मति के लिये प्राप्ति कर सकते हैं।
न्यायालय द्वारा परामर्शदात्री सम्मतियों क सम्बन्ध में न्यायालय के
व्यवस्थित क अनुच्छेद ६५ से निम्न हुआ है कि—

(१) न्यायालय किसी ऐसी मस्या की प्राप्ति पर किसी कानूनी
- सवाल के बारे में सभाह के रूप में अपनी सम्मति दे सकता है बिनाको संयुक्त
राष्ट्र सभ के वर्तमान चार्टर के अनुसार या उसके द्वारा ऐसी प्राप्ति करने
का अधिकार प्राप्त हो।

(२) जिस प्रश्न पर सभाह के रूप में सम्मति मांगी जाए, वह
न्यायालय के धारों निम्नलिखित प्राप्ति क रूप में रखा जाएगा। इस प्राप्ति-पत्र
में सम्मति मांगे जाने वाले प्रश्न पर विचार होगा और उसके साथ ही सब
वस्तुओं गृह्ये जिनसे सवाल पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

महामन्त्रीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की राय या सभाह केवल
परामर्शपूर्ण है तथा सिखात रूप से महामन्त्रा अथवा सुरक्षा परिषद चाहें
तो इनका प्रवृत्तता कर सकती है परन्तु विश्व में राष्ट्र सभ (League)
तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (U N) दोनों मही उनके लिये ऐसा करना
कठिन मित्र हुआ है। ओपेनहेम (Oppenheim) का मत है कि परामर्श
सम्बन्धी स अधिकार आत्मक में उत्पन्न नहीं अधिक उत्पादक और महत्वपूर्ण
- मित्र हुआ है जितना कि प्रथम सोचा गया था। न्यायालय द्वारा दिये गये
परामर्श मतों की सख्या निरर्थक रूप में दिय गये मतों की संख्या की समय
बराबरी करती है।¹ ओपेनहेम ने अपना महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के
सम्बन्ध में व्यक्त किया था-सकिन् संयुक्त राष्ट्र सभ के अन्तर्राष्ट्रीय न्याया
लय क सम्बन्ध में भी उसका यह मत ठीक उतरता है। उदाहरणार्थ १९२५

¹Hans Kelson Principles of International Law, p 292.
²Oppenheim International Law, Vol II, p. 55.

के अन्त तक अन्तर्राष्ट्रीय म्यायालय में १४ मामलों पर परामर्शदात्री सम्मतिपत्रों की थीं और १५ मामलों में निर्णय लिया था। महासभा की प्रार्थना पर दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के सम्बन्ध में किया गया परामर्श-मत्र म्यायालय द्वारा दिये गये परामर्श-मत्रों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

इसके प्रतिरिक्त एक बात यह भी है कि बाकी पक्ष अपने मतों के अनुसार उत्तम कानूनी राय प्राप्त करता है जिसके प्रीक्षित्य व अनीक्षित्य का यह भसी भांति सम्बन्ध है। स्टोन ने लिखा है कि बायीं राज्य की पेम कुत्ते से बचाने के लिये वे विवाद के सहमतिपूर्ण निपटारे के लिये तैयार हो जाते हैं। म्यायालय के मत का नैतिक बल भी बहुत अधिक होता है और यदि कोई राज्य प्रतियोगिता करे भी तो उसे विश्व के जन-मत के सम्मुख मस्तेना सहनी; पड़ती है। फलतः यह परामर्शदात्री मत चाहे कानूनी रूप से अनिर्णाय नहीं है परन्तु राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है।”

व्यावहारिक महत्त्वता—अन्तर्राष्ट्रीय म्यायालय ने अनेक महत्वपूर्ण विवादों के निपटारे में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है जैसे मोरक्को का मामला (फ्रान्स और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच मोरक्को के अमेरिकी नागरिकों के सम्बन्ध में) एम्सो-ब्राजिलियन मामला (एट ब्रिटेन और ईरान के मध्य में) भारत-पूर्ववाल^१ का भारतीय प्रवेश में से पूर्वगत को माग देने के अधिकार का विवाद कोरफू चीनल विवाद एम्सो-नार्वेजियन मछलीबाहू विवाद आदि। परन्तु इस एवं उसके अन्य सहयोगी व कुत्ते साम्राज्यवादी राज्यों की अवहेलना और असहयोगपूर्ण रव के कारण म्यायालय बहुत अधिक क्षमिताशी एक उपयोगी संस्था नहीं बन पाया है फिर भी जैसा कि भारत के श्री एम सी० खान्ना का मत है—“अन्तर्राष्ट्रीय म्यायालय समुक्त राष्ट्र सब का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। यद्यपि यह पूर्ण नहीं है इसके पास यह शक्ति और अधिकार नहीं है जो इसे प्राप्त होने चाहिये फिर भी यह एक महान विचार का मूर्त रूप है—एक मात्र यही विचार राष्ट्रों में शांति और सहभाव माना जाता है। इस विचार के अनुसार जैसे व्यक्ति आपस में विवाद होने पर एक दूसरे का मत काटने को नहीं दीड़ते वैसे ही राष्ट्रों को भी आपस में मतभेद होने पर जस्त्रों का सहारा नहीं लेना चाहिये बल्कि एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष म्यायालय के निर्णयों को स्वीकार करना चाहिये।”

सचिवालय

(Secretariat)

समुक्त राष्ट्र सब के कार्यों के सम्पादन के लिये एक सचिवालय की स्थापना की गई है। चार्टर के १३वें अध्याय में अनुच्छेद २७ से १०१ तक इसके संयोजन का वर्णन है। इसका संयोजन प्रायः वैसा ही है जैसा राष्ट्र संघ के सचिवालय का था।

चार्टर के अनुच्छेद २७ में लिखा हुआ है कि—

“सचिवालय में महासचिव और सब की प्राथम्यतानुसार कर्मचारी-बर्ग रहेगा। महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर

महासभा करेगी। वही सब का प्रमुख अधिकारी (प्रशासकीय अधिकारी) होगा।”

महासचिव सचिवालय की सहायता से ही अपना सारा कार्य सम्पन्न करता है। यदि इस राष्ट्र संघ के सचिवालय से वर्तमान सचिवालय की तुलना करें तो जो महत्वपूर्ण अन्तर देखने को मिलता है जो महासचिव के कार्य और अधिकारों से सम्बन्धित है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत महासचिव को कुछ ऐसे अधिकार मिले हैं और उन्हे कुछ ऐसे कर्तव्य का पालन करना पड़ता है जिनका पुराने राष्ट्र संघ में सबका अभाव था। चाटेंर क अनुसार महासचिव के कार्य निम्नलिखित हैं—

(१) अनुच्छेद १८ में उल्लिखित है कि 'महासचिव इनी हैनियत से महासभा में सुरक्षा परिषद में प्राधिकार और सामाजिक परिषद में और न्याय परिषद की सभी बैठकों में काम करेगा। इसके अलावा वह उन कामों को भी पूरा करेगा जो वे संघ उन्हे सौंपे जायें।'

(२) महासचिव संघ के नाम के विषय में महासभा को आवधिक रिपोर्ट भी देता है।

(३) अनुच्छेद १९ में यह व्यवस्था दी गई है कि 'यदि महासचिव यह समझे कि किसी मामले में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को अंतरा र्था होता है तो वह सुरक्षा परिषद का ध्यान उन मामलों की ओर आकर्षित कर सकता है।' यह महासचिव का निश्चय ही सब से बड़ा अधिकार है। इस तरह का कोई अधिकार राष्ट्र संघ के महासचिव को नहीं था। अपने अधिकार के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ का महासचिव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अत्यन्त गत दिलचस्पी ले कर दिक्कत-शांति कायम रखने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

(४) अनुच्छेद १०१ के अन्तर्गत महासचिव संघ के पदाधिकारियों को पदाधिकारियों की नियुक्ति महासभा द्वारा अन्तर्गत में नियुक्त करेगा। यह व्यवस्था है कि प्राधिकार और सामाजिक परिषद तथा न्याय परिषद को स्थायी रूप में नियुक्त कर्मचारी नियुक्त किए जाएँ और संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य व्यक्तियों को भी आवश्यकतानुसार कर्मचारी प्रदान किए जाएँ। ये कर्मचारी सचिवालय के ही एक भाग होंगे। कर्मचारियों को भर्ती करने की उनकी शक्ति को निर्धारित करने में संघ के अधिकारों के अन्तर्गत बात पर विचार जाता है जिससे दक्षता समता और इमानदारी के अन्तर्गत संघ के स्तर कायम हो सके। विश्व के विभिन्न देशों के कर्मचारी भर्ती किये जाएँ ताकि अधिक से अधिक देशों को सचिवालय की सेवाओं में प्रतिनिधित्व मिल सके।

यह अत्यन्त ही है कि महासचिव और उसके कर्मचारी केवल संयुक्त राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हैं। अनुच्छेद १०० में यह स्पष्ट निश्चय किया गया है— 'अन्तर्गत में महासचिव और कर्मचारी न तो किसी राज्य या संघ के बाहर किसी दूसरे अधिकारी से समाह नहीं माँगे और न होंगे। वे अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी हैं और केवल संघ के प्रति उत्तरदायी हैं। कोई भी काम नहीं करेंगे जिससे उनकी इस हैनियत पर प्रभाव पड़े।'

स्पष्ट है कि ही गई व्यवस्था के अनुसार महासचिव और उसके कर्मचारी वर्ग से यह अपेक्षित है कि वे कोई भी ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे यह प्रतीत हो कि उनके काम पर किसी प्रकार का बाह्य प्रभाव है। फिर भी ऐसे उदाहरण हैं जब अनेक बार इस पारदर्शक के विपरीत काम हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ वर्ष पहले साम्यवादी विरोधी प्रादोलन बहुत उभर होने पर स. यु. व. राज्य अमेरिका ने अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए महासचिव की सहायता से स. य. में कार्य करने वाले लेकिन साम्यवादी प्रवृत्ति वाले कुछ अफसरों को सचिवालय में नियुक्त किया था।

अनुच्छेद १०० (२) के अनुसार सयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्येक सदस्य यह प्रतिज्ञा करता है कि वह महासचिव और उसके कर्मचारियों के दायित्वों के पूर्ण अन्तर्गत स्वयं को मानेगा और उन दायित्वों के निर्वाह में किसी प्रकार का प्रभाव डालने का प्रयत्न नहीं करेगा।

महासचिव का संघ में महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण उसके द्वारा शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना से भी बड़ा डर है। इसी कारण मूलतः सोवियत प्रधानमंत्री मिखाइल सुखोव ने यह सुझाव दिया था कि महासचिव के वर्तमान पद की समाप्ति कर देना चाहिये तथा इसके स्थान पर ट्रिब्यूनल (Tribunals) की स्थापना कर दी जाये। अर्थात् तीन राष्ट्रों की कार्यकारिणी बना दी जाये जो कि सोवियत इस समुक्त राज्य अमेरिका तथा पाँच अन्य देशों का प्रतिनिधित्व करे। तीनों के पास वीटो का अधिकार होना चाहिये। इस सुझाव को अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण अनुपयोगी समझा गया।

महासचिव की स्थिति—संयुक्त राष्ट्र संघ में महासचिव के पद पर अभी तक तीन व्यक्तियों की नियुक्ति हुई है—ट्रिब्येनी इमर होल्ड तथा डे-वाट। १ नवम्बर १९४६ को वाशिंगटन के ट्रिब्येनी (Trygve Lie) ३ वर्ष के लिये महासचिव के पद पर नियुक्त किये गये थे। १ नवम्बर, १९४० को उनके कार्यकाल में १ वर्ष की वृद्धि कर दी गई। १० नवम्बर, १९४२ को संसदीय पद से त्याग-पत्र दे दिया, १० अगस्त, १९४३ को स्वीडन के दाग इमरहोल्ड (Dag Hammarschoeld) को उनके स्थान पर महासचिव नियुक्त किया गया। २६ सितम्बर, १९४७ को इमरहोल्ड का १० अगस्त १९४७ से कुछ होने वाले ३ वर्ष के लिये पुनः नियुक्त किया गया। लेकिन वापो समस्या के शीटल १५ सितम्बर १९६१ को एक हवाई दुर्घटना में उनका अचानक निधन हो जाने के कारण उनके स्थान पर बर्मा के डे-वाट को कार्यवाहक महासचिव नियुक्त किया गया। वाश में उनका नियुक्ति ३ वर्ष की पूरी अवधि तक के लिये कर दी गई। १९६६ के बाद पुनः उनके कार्यकाल में ३ वर्ष की अधिवृद्धि हो गई है।

वास्तव में महासचिव का पद बड़ा महत्व का है और उसे न केवल प्रशासनिक पण्डित राजनीतिक कार्य भी करने पड़ते हैं। राजनीतिक कार्यों में वह बहुत बड़ी भूमिका खेला कर सकता है। १९४३ में जब कत डारा यह घोषणा की गई कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाहियों में तब तक भाग नहीं लेता जब तक चीन की साम्यवादी सरकार को प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं

किया जायगा तब संयुक्त राष्ट्र संघ के सफल उपस्थित इन मंच पर सभ्यता की टांगने के लिये महा-सचिव ट्रिमेनी ने प्रथम प्रयास किये और वह देशों के प्रयास के साथ लयबद्ध कार्य स सार की याचिका की। उन्होंने सदस्य राज्यों से शक्ति की और समझौते के लिये बोझापूर्व प्रस्तुत की। पुन १९५० में वह कोरिया के सम्बन्ध में विचार करने के लिये सुरक्षा परिषद की बैठक घामन्त्रित हुई तो महा-सचिव ट्रिमेनी ने ही इस समस्या पर नर्व प्रथम जायक प्रकाश डाला। उत्तरी कोरिया के विरुद्ध कार्रवाई करने की प्रस्तावकारी घोषणा की। इसके बाद परिषद द्वारा अब उत्तरी कोरिया के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करने की छूट दे दी गई तो उन सैनिक कार्यवाहियों के लिए सदस्य राज्यों का सहयोग धर्मित कराने और उनमें सम्बन्ध स्थापित कराने का उन्मत्तचित्त भी महा-सचिव को ही उठाना पड़ा।

इसी प्रकार कांगो में रिफे बृह पुंड के सम्बन्ध में भी महा-सचिव को बहुत बड़े उत्तरदायित्व का निवाह करना पड़ा। वहाँ बृह-पुंड की गमाप्न करके शांति की स्थापना करने का भार संयुक्त राष्ट्र संघ व अपने ऊपर प लिया। स्वतंत्रक संयुक्त संघीय सेना कांगो में प्रविष्ट हुई और उसे बर्त मंच पर पुंड करना पड़ा। महा-सचिव हेमरलोन्ड ने अत्यन्त साहस और मूर्खता के साथ इन सैनिक खनियान का निपटन किया तथा अपने दायित्वों को निभाते हुए, प्राणों की परबाह न करते हुए भी वे अनेक बार कांगो व और इहाँ कम में हवाई दुर्घटना में प्राणों से हाथ भी धोना पड़ा। हमसे स्पष्ट है कि महा-सचिव का पत्र कितना उत्तरदायित्वपूर्ण है और एक उत्तर दायित्वपूर्ण महा-सचिव को कितने विषय परिस्थितियों में अपने दायित्वों का निवाह करना पड़ता है।

महा-सचिव की राजनीतिक जिम्मेदारी का ताजा उदाहरण सन् १९६३ में भारत पाक युद्ध में देखा की गई ठ-पाठ मुम्बिका से मिलता है। मितम्बर १९६३ में दोनों देशों में महायुद्ध सिद्धा का युद्ध बन्द करवाने के महा-सचिव ने और प्रयास किये और उन्ही के प्रथम प्रयासों के फलस्वरूप दोनों देशों में युद्ध बन्धी की घोषणा निकट आई।

बलुत महा सचिव को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने के अनेक अवसर मिलते हैं और वह, अनुराता तथा समस्यारी से काम करते हुए, विश्व शांति की शिक्षा व उन्मत्तनीय कार्य का शकता है। महा सचिव का पिनिय देशों के प्रतिनिधि मंडलों के साथ बिरन्तर सम्पर्क रहता है अतः ससकी स्थिति ऐसी होती है कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सरभारतों को प्रभावित कर सके। महा सचिव को यह स्वतंत्रता होती है कि वह सदस्य राज्यों के विदेश मंत्रालयों में जा सक और स्वतंत्रतापूर्वक अन्तर्हा अपने जापकों द्वारा वह विश्व जन-मठ को प्रभावित कर सकता है। इतना ही नहीं अपनी रिपोर्टों में भी वह इस तरह की सिफारिशें कर सकता है कि संघ को कौनसी नीति एवं कार्यक्रम अपनाना चाहिये।

सचिवालय के विभाग—सचिवालय में इस समय आठ विभाग हैं जो इस प्रकार हैं— १. पालिक कार २. आयाजिक कार्य ३. स्वाय सम्बन्धी

तथा स्वप्रशासन रहित क्षेत्रों से सूचना ४ सुरक्षा परिषद सम्बन्धी कार्य ५ जन सूचना, ६ सम्मेलन तथा सामान्य सेवाएँ • प्रशासकीय एवं आर्थिक सेवाएँ और ८ वैधानिक विभाग । १ जनवरी १९५३ को महा सचिव का कार्य भार कम करने के लिये सात प्रचीन महा सचिवों (Under Secretary Generals) की नियुक्ति की गई । जैसे सचिवालय के प्रधान कार्यालय न्युयार्क तथा जेनेवा में हैं किन्तु सत्रीय सेवाओं प्रादेशिक आयोगों तथा सूचना केंद्रों के लिए इसके कर्मचारी विश्व के कई भागों में बिखरे रहते हैं । सचिवालय द्वारा बड़े महत्वपूर्ण एवं पाठ्यक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं । यह सभ के प्रर्षों एवं प्रतिकारणों की मीटिंग के लिए अनेक देशों प्रदान करता है । यह इन मीटिंगों के लिए व्ययवहन करता है तथा पृष्ठभूमि तैयार करता है । यह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौक्य कर सब क प्रत्येक प्रर्षों के लिये सचिवालय सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान करता है तथा एक कार्यकारिणी की भांति व्यवहार करता है । संयुक्त राष्ट्र सभ की कार्यवाही के सब्य का ध्यान में रख कर यह प्रत्येक साधन द्वारा हर प्रकार की सूचना एवमित्त करता है ।

संघ के चार्टर का संशोधन

(Amendments to the Charter)

संयुक्त राष्ट्र सभ के पुनरावलोकन तथा संशोधन के लिए आवश्यक निर्देशों का समावेश इसकी धारा १८-१०२ में है । धारा प्रथमा अनुच्छेद १०८ एवं १०९ इस प्रकार हैं ।

अनुच्छेद १०८—“वर्तमान चार्टर में जो भी संशोधन होने के संयुक्त राष्ट्र सभ के सब सदस्यों पर समी लागू हो सके जो उनको महा सभा दो-तिहाई बहुमत से मान ले और सुरक्षा परिषद के सभी स्थायी सदस्यों सहित संयुक्त राष्ट्र सभ के सबसब घपनी घपनी वैधानिक प्रक्रियाओं के अनुसार दो-तिहाई के बहुमत से उनका सत्यांकन (Ratification) करे ।”

अनुच्छेद १०९—१ जब कभी वर्तमान चार्टर के पुनरावलोकन (Review) की बात हो तो उसके लिए संयुक्त राष्ट्र सभ के सदस्यों का एक सामान्य सम्मेलन (General Conference) किया जा सकता है जिसकी तारीख और जिसका समय व स्थान महा सभा दो-तिहाई बहुमत से तथा सुरक्षा परिषद अपने किन्हीं सात सदस्यों के वोट से तय करेगी । इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र सभ के प्रत्येक सदस्य का एकमत (Vote) होगा ।”

२ ‘यदि सम्मेलन में वर्तमान चार्टर का कोई परिवर्तन दो-तिहाई के बहुमत से मान लिया जाता है तो वह लागू समी हो सकेगा जब सुरक्षा परिषद के सभी स्थायी सदस्यों सहित संयुक्त राष्ट्र सभ के सबसब घपनी घपनी वैधानिक प्रक्रियाओं के अनुसार दो-तिहाई के बहुमत से उनका सत्यांकन करे ।

३ ‘चार्टर के अन्तर्गत में जाने के बाद महा सभा के सबसब वैधानिक अधिवेशन के पहल पगर ऐसा सम्मेलन नहीं होता तो ऐसा सम्मेलन करने का प्रस्ताव महासभा के उसी अधिवेशन के कार्यक्रम (Agenda) पर रखा

जायगा और यदि महासभा में बहुमत से तथा सुरक्षा परिषद में किन्हीं सात सदस्यों के मत से यह स्वीकार कर लिया जाता है तो एसा सम्मेलन किया जायगा।

चाटेर में सभोपन के सुझाव—चाटेर में जब तक प्रदेक होप बताय जात रहूँ और उगहें दूर करन के लिए समय समय पर घनत सुझाव न्दिये पय है। महा सभा के प्रथम अधिवेशन में ही न्यूया द्वारा यह पय की गई थी चाटेर क १०६ वें अनुच्छेद के अन्तर्गत चाटेर के सभापन के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया जाता चाहिए। महा सभा के दुम्रे अधिवेशन में प्रेसिडेंट द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि नियन्त्रिकार की समाप्ति की जाय। १९३३ में महा सभा के ८ वें अधिवेशन में प्रेसिडेंट नीदरलैण्ड्स और मिथ में चाटेर के सभापन के सम्बन्ध में तीन प्रस्ताव रहे। १९३३ में ही महा सभा के १० वें अधिवेशन में महा सभा क सुत्री सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई और उस यह कार्य लीगा गया कि अगिन अवसर पर यह चाटेर में सभोपन के लिए एक सम्मेलन बुलाये। इस समिति ने ३ जून १९३७ को यह प्रस्ताव पाम किया कि विश्व-स्थिति को ध्यान में रखते हुए चाटेर के सभोपन के लिए प्रस्तावित सम्मेलन को सितम्बर १९३६ तक के लिए स्थगित कर दिया जाय। ऐसा इमी घाता से किया गया कि तब तक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में अनुकूल सुधार हो जायगा किन्तु १९३६ में सम्मेलन का बुलाया जाना पुनः स्थगित कर दिया गया। तब से अब तक चाटेर में सभोपन का प्रथम फिर नहीं उठया गया है क्योंकि अभी दृष्टिकोण अधिक प्रबल है कि अभी चाटेर में सभोपन करने का उपयुक्त अवसर नहीं है। केवल सितम्बर १९६३ में महा सभा ने दो प्रस्ताव पारित कर निम्नलिखित सभोपनों को प्रस्तावित किया किन्तु १९६५ में महा सभा के अध्यक्ष राम्यो का अनुममजन भी मिल गया और १ जनवरी १९६६ से जो साष्ट भी हो गये—

१ सुरक्षा परिषद के अस्वापी सदस्यों की संख्या बढ़ा कर १६ कर दी जाय तथा प्रस्तावों को पास करने के लिए ९ सदस्यों के स्वीकारात्मक मत आवश्यक हूँ।

२ आर्थिक और सामाजिक परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ा कर २८ के स्थान पर ५७ कर दी जाय।

उपर्युक्त सरकारी प्रस्तावों के अतिरिक्त चाटेर में सभोपन के किसी भी प्रस्ताव के पारित होने की घामा सदैव निराशा में ही बदसठी रही है। अस्तम में अब तक सुरक्षा परिषद में बुरी और पक्षिणी घुट, मास्को और लन्दन का वैरिड तथा काङ्गिस्टन का उग्र शीतय से विद्यमान है तब तक यह पूरा अब है कि चाटेर में सभोपन करने हेतु जाया गया कोई भी प्रस्ताव किछी न किछी पय की ओर से बीटो (Veto) कर दिया जायगा।

यद्यपि निकट भविष्य में चाटेर में किसी संशोधन के होने की संभावना कम नहीं जाती किन्तु फिर भी निम्न १३ वर्षों का इतिहास बताता है कि चाटेर की निम्नलिखित व्यवस्थाओं में संशोधन किया जाना उपयुक्त होगा—

(१) नवीन राज्यों के संघ में प्रवेश के लिए स्वामी सदस्यों द्वारा निवेशाधिकार के प्रयोग की व्यवस्था हटा दी जानी चाहिए।

(२) चार्टर के दूसरे अनुच्छेद के सातवें पैराग्राफ में यह व्यवस्था दी गयी है कि—“वर्तमान चार्टर में जो कुछ कहा गया है, उसके समुक्त राष्ट्र संघ किसी भी राज्य के उन मामलों में हस्तगत करने का अधिकारी न होना जो निश्चित रूप से उस राज्य के घरेलू क्षेत्र के भीतर जाते हों।” घरेलू क्षेत्र (Domestic Jurisdiction) की इस व्यवस्था न संघ की कार्यवाहियों के क्षेत्र को बहुत सीमित बना दिया है। उदाहरणार्थ रंगभेद की नीति किसी राष्ट्र का घरेलू मामला न होकर सम्पूर्ण मानवता के प्रति अपराध है किंतु दक्षिण अफ्रीका में इसे घरेलू मामला बता कर संयुक्त राष्ट्र संघ में रंगभेद विरोधी भारतीय प्रस्ताव का विरोध करने में सफलता प्राप्त की। इसी तरह एम्सो-इरानियन तेल विवाद में ग्रीक कोरिया के संघ में भी घरेलू-क्षेत्र की व्यवस्था की आड़ में संघ की कार्यवाही को रोकने का प्रयाग किये गये थे। वास्तव में घरेलू-क्षेत्र की व्यवस्था इतनी लचकीली है कि इसके आधार पर राष्ट्रों द्वारा संघ की कार्यवाहियों में घड़ने लगाये जा सकते हैं। संघ अपने उद्देश्यों की दिशा में अधिक सक्रियता की आवश्यकता बने—इसके लिए घरेलू-क्षेत्र की व्यवस्था में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए।

(३) चार्टर के अनुच्छेद ४ में तब की तरत्त्वता के लिए वास्तव में—(१) सभी शक्ति चाहने वाले राष्ट्र सहस्य बन सकते हैं। बताते हैं कि वे चार्टर में दिये हुए बाधितों को मारने और संघ की राय में इन बाधितों को पुरा करने की उनमें इच्छा तथा योग्यता प्रतीति हो एवं (२) कोई राष्ट्र संघ का सदस्य तभी बनाया जायगा जब सुरक्षा परिषद सिफारिश करे व महासभा सिफारिश पर अनुकूल निराय है। स्पष्ट है कि संघ की सहस्यता की दृष्टि में विश्वो का आमनिर्णय करने वाली है। सुरक्षा परिषद में महासभियों का अधिकार प्राप्त है। इस और परिषदी राष्ट्र स्वयं की स्थिति को संयुक्त संघ में सुनुइ बनाय रखने की दृष्टि से घरेलू विरोधी नवीन राज्यों के को निवेशाधिकार के क्षेत्र पर राक सकते हैं। उदाहरणार्थ धाररलेण्ड देश इटली पुत गाल घाट्टिया जोर्डन सीमाना और जापान के संघ में का संघ न ही विरोध किया क्योंकि उसकी दृष्टि में वे अमेरिका संघर्ष थे। इसी तरह अमेरिका ने अल्बानिया बल्गेरिया हंगरी रूमानिया मंगोलियन जनगण राज्य के मौखिक पक्षगती होने के कारण इनके संसद बनने के मार्ग में रोड़ा घटकाया। बलुन संसदता के प्रवेश की दृष्टि से संघ के दार्मों पक्षों में बटुना बढ़ाने वाली है और इसी कारण से विश्व के कुछ देशों का प्रतिनिधित्व संघ में अभी तक नहीं हो पा रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि तरत्त्वता के लिए सुरक्षा परिषद की सिफारिश की शक्ति हटा देनी चाहिए वरना उसमें बहुमत के आधार पर निर्णय की व्यवस्था की जानी चाहिए।

११ (१४) न्याय पद्धति से सम्बन्धित अनुच्छेद ७६ (ख) बड़ा अपठ है। इसमें पराधीन देशों को स्वतंत्र करने की बात प्रयोग कही गयी है। किंतु इसके लिए कोई शक्ति निश्चित नहीं की है। इस अनुच्छेद में इस तरह की

व्यवस्था जोड़ी जानी चाहिए कि विभिन्न प्रदेशों के विधान को देखने हुए उक्त कितनी अवधि में स्थायीता दे दिया जाना उपयुक्त है।

(२) ग्यास पद्धति से सम्बन्धित ७७ (क) में इस तरह का मन्तापन किया जाता चाहिए कि राष्ट्रसच के सभी मीम्बेट प्रतिश्रयत ग्यास परिषद के सच समझे जाए। बहिष्ठी प्रफीका द्वारा दक्षिणी-पश्चिमी प्रफीका का ग्यास प्रदेश न बनाने के दुपुसह के कारण इस तरह का संशोधन आवश्यक है।

(१) समुच्चर ११, १२ में चार्टर द्वारा प्रादेशिक संघठनों को बनाने की अनुमति दी जाना का ही यह परिपाम है कि नाटो (NATO) साटो (SEATO) जैसे सैनिक संघठन बन सके हैं। इस धारा में ऐसा मन्तापन होना चाहिए कि तिसस सैनिक संघठनों की स्थापना को प्रात्याहल न मिन मके।

(७) समुच्चर २७ में सुरक्षा परिषद में मतदान की व्यवस्था में प्रक्रिया सम्बन्धी (Procedural Matters) और अन्य सभी विषय (On All Other Matters) जस इनमें प्रतिश्रित और बस्यष्ट है कि तिनसे नियेबाधिकार का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। बस यह उायुक्त है कि इन सबों को अधिक स्पष्ट दिया जाय।

(८) सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों का प्रतिनिधित्व समुचित एक संतुलित नहीं है। एशिया के सदस्य के रूप में भाग कई लोक के फारमोमा जनाले चीन को सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य बना रना है जो तर्क की दिसी भी कसौती पर उचित नहीं कहा जा सकता। साम्यवादी चीन और भारत दो एशिया के ऐसे महान राष्ट्र हैं जिन्हें सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य बनाया जाना चाहिए। निष्पक्षता और संतुलित विचारों का दृष्टि से तथा संयुक्त राष्ट्र सच के प्रति प्रतिबद्ध किये गये महान सहयोग की दृष्टि से उचित हुए भारत को तो सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता मिन ही हो चाहिए। संयुक्त राष्ट्र सच में भारतीय प्रतिनिधि भी अग्रेकोर म्मा में घबटुबर १९५६ में कहा भी था कि सुरक्षा परिषद में एशिया और अफ्रीका के देशों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। सुरक्षा परिषद अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना के घपने सच को उभी पूरा कर सकता है जब कि तिन के इन दो बड़ घुनामों को भी इसमें यथस्य प्रतिनिधित्व प्रदान दिया जाय।

(९) चार्टर में उल्लिखित मानवीय अधिकारों की प्राप्ति को किया संभव बनाने के लिए उपयुक्त न स्थायी की स्थापना सर्वोपे प्राप्तवानों और अन्य व्यवस्थाओं का होना भी आवश्यक है।

महाशाक्तियों को चार्टर में लसोबन की बधि—संयुक्त राष्ट्र सच के चार्टर का संशोधन करने के पय में संयुक्त संघ घमेरिटा प्रारम्भ में ही और देता रना है। जनवरी १९५४ में जॉन फास्टर डलैस ने चार्टर को संशोधन के मुख्य विषयों का उल्लेख करते हुए कहा था कि संयुक्त महासुधार संशोधन निम्नलिखित विषयों में सर्वोपे किये जाने चाहिए—

- (१) सर्वोपे मानवीय
- (२) सुरक्षा

- (३) सुरक्षा परिषद की सदस्यता एवं महत्त्व प्रणाली
- (४) महासभा में महत्त्व प्रणाली
- (५) अर्थों की समस्या
- (६) अन्तर्राष्ट्रीय कानून धारि ।

सावित्त कस पहले चार्टर में सञ्चयन का समयक नहीं था । समकाल-विचार था कि नव तक साम्यवादी चीन से स प का सदस्य नहीं बना गया था। तब तक वह किसी भी प्रकार के सञ्चयन का समर्थन नहीं करेगा किन्तु बाद में (१९६० में) इस मुद्दा परिसर में कस द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछ प्रस्ताव बीटो के कारण अडकल हो गये और यू-२ तथा (R. B.) धार बी. ४० नामक अमेरिकन विचारों की कमी प्रवेश पर जासुती उद्धानों में संबंधित अमेरिका की निश्चा करने का प्रस्ताव मु ख्या परिषद में पास नहीं हो सका तो कस चार्टर की व्यवस्था में परिवर्तन करने का हामी हो गया । कस के तत्का चीन प्रयाग मंत्री लुइवेब ने २८ सितम्बर १९६० को न्युयार्क के एक पत्र सम्मेलन में बोपचा की कि स मुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अत्र परिवर्तन करने का समय था गया है क्योंकि तब अमेरिका के प्रभाव में है और सुरक्षा परिषद अमेरिकन जासुती उद्धानों के सम्बन्ध में अमेरिका की निश्चा करने में अमकल रही है । इसके अतिरिक्त संघ के निर्माण के समय से अत्र एक उसमें पदेक परिवर्तन था गये हैं । पहले एक मात्र स मुक्त राज्य अमेरिका सर्वव्यक्तिगत हैम का किन्तु अत्र साम्यवादी गुट भी काफ़ी बड़ा और सक्तिवादी हो गया है तथा अफ्रीका और अन्य स्थानों के उपनिवेश भी पयाँठ सख्या में स्वतंत्र हो चुके हैं । श्री लुइवेब ने धारोप लनाया कि संघ के महामंत्री एकाधिकारवादी पु भीवादियों के बाकर है ।

सौरियत कस ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अनेक परिवर्तन करने के सुझाव समय-समय पर । ये त्रिन्हें जानना हमारे लिए आवश्यक है । ये विभिन्न सुझाव संघ प में निम्न प्रकार से थे—

- (१) स प की सभी परिषदों में से अमेरिका का हस्तक्षेप कम किया जाय और इनसे अफ्रीका तथा एशिया के देशों को अधिकधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय ।
- (२) साम्यवादी चीन को स मुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया जाय ।

(३) संघ का महासचिव एक न होकर तीन बनाने जाय । २३ सितम्बर १९६० को स मुक्त राष्ट्र संघ में मापण करते हुए कसी प्रयागकी अज्ञान ने कहा कि एक महासचिव वाली व्यवस्था अयोग्य है क्योंकि वह प्रायः एक पक्ष का ही समर्थक बन जाता है तथा अत्र नवा द्वारा संघ की अक्तियों का अनुचित लाभ उठाना जाता है । अज्ञान का कहना था कि इस समस्या का समाधान करने के लिए एक के स्थान पर तीन महासचिवों की नियुक्ति की जाय-एक साम्यवादी गुट की धोर से, दूसरा पश्चिमी अक्तियों की धोर से तथा तीसरा उदरक या अत्र अत्र राष्ट्रों की धोर से । ऐसा करने पर कोई भी समस्या को सुरक्षा परिषद में राजनीतियों के अतिरिक्त के कारण अतिरिक्त उत्पन्न कर देती है वह महासचिवों के स्तर पर विचार-विमर्श के बाद एक ठेका रास्ता

निकासकर तय की जा सकेंगी जो कि तीनों पक्षों को स्वीकार हो। इस मुद्दा का अधिकार विचारकों एवं राजनीतिकों द्वारा सवेह एवं भावनात्मक द्वारा स्वागत किया गया। यह समझ गया कि हम मुद्दा को त्रिव्यक्त करने पर महासचिव स्तर पर राजनीति उठर पायगी तथा मुरझा परिपद की भांति यहाँ भी परिपक्ष की समस्या पैदा हो जायगी तथा कोई भी निष्पत्ति केना मत भव बन जायगा। मलाया के प्रधानमंत्री तु कु अय्युम रहमान ने ० सितम्बर १९६० में हम मुद्दा को एक शरारतपूर्ण विचार बताया और कहा कि इसका सत्य विश्व के देशों को परस्पर लड़ाना है। वह एक जूना पुण बात है और इसके संयुक्त राष्ट्र विमल राष्ट्र बन जायगा।

(४) आर्ट में परिवर्तन से सम्बन्धित एक अन्य मुद्दा मोबियल पहा द्वारा यह लिया जाता है कि सब का प्रधान कार्यालय संयुक्त राज्य अमेरिका में न रखकर विभिन्न भागों में रखना चाहिए। यह अर्थ देग स्वयं माबियल सब, सिस्ट्ररलैण्ड या आस्ट्रिया हो सकते हैं।

यह अर्थ रोचक और स्मरणीय है कि यद्यपि इस और अमेरिका के द्वारा आर्ट के सहायन के बारे में अनेक मुद्दा प्रस्तुत किये गये किन्तु ये मुद्दा इस प्रकार के हैं कि वे हमारे को मात्र नहीं हाते। ऐसा सोचा जाता है कि आर्ट पर पुनर्विचार करने का समय अभी तक नहीं था पाया है। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर आदगवार तथा मजबूत का बड़ा प्रभाव है। इस समय यदि आर्ट का परिवर्तन किया गया तो हो सकता है कि वह अपने मूल स्वरूप को अनेका और भी अधिक कटोर बन जाय। यदि पुनर्विचार सम्मेलन (Review Conference) बुलाई जाती तो हम महासचिव की अस्थिरता कम करने के मुद्दा रखता तथा पूरी शक्ति से उनका समर्थन करता। धाना है कि वह ट्रायका (Troika) का मुद्दा अक्षय रखता। सम्भावना है कि वह महासभा की शक्ति को निरन्तर दबडी जा रही है, जो भी कम करने का प्रयास करता तथा पुन मुरझा परिपद की शक्ति को बढ़ाने की तिष्ठारिण करता जिसमें कि महासचिवों की भीटो शक्ति सुदृष्टित रहे।

ई विचारकों का मत है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने अभी तक यह निश्चय नहीं किया है कि वह सब को कितना अधिकशाली बनाना चाहता है और यह मत भी आर्ट के संशोधन के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है।

अधोपचारिक संशोधन—यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि अधोपचारिक रूप से आर्ट में संशोधन नहीं हो पाये हैं किन्तु अधोपचारिक रूप से अथवा भारत आर्ट के कुछ उपबन्धों को प्रभावी अथवा प्रभावहीन किया जा चुका है, उदाहरण के तौर पर १ नवम्बर १९६० के अन्ति के लिए एकत्रा के प्रस्ताव ने नियमावली के अन्तर्गत प्रभावहीन ही कर दिया है और महासभा को सुरक्षापरिपद से अधिक शक्तिशाली बना दिया है। हाता यह है कि सुधार के सुझावों के सम्बन्ध में महासचिवों एकमत हो सकती है बाह्य के आर्ट के वास्तविक रूप में कोई परिवर्तन करने पर राजी हों या न हों। सुधार के सम्बन्ध में मुद्दा तथा उनका सब के अतिरिक्त रूप एवं संगठन पर प्रभाव यद्यपि आर्ट में परिवर्तन तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इससे अर्थ अधिकशाली बनता है इन अर्थ को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पामर तथा

परकिसस ने इसे अनौपचारिक संशोधन की प्रक्रिया (The Process of informal amendment) कहा है। इस तरीके से धनकों परिकल्पन किये जा सकते हैं तथा निष्पत्ति ही प्राप्त का संयुक्त राष्ट्र संघ की नहीं मही है जो १९४४ में था। इस प्रक्रिया से महासम्मेलनों की आवश्यक महामति बगरी नहीं होती। फ्रान्सिस विलकोक्स (Francis O. W. Cox) के मतानुसार चार्टर निम्न प्रकार से संशोधित किया गया है—

- (१) चार्टर के कुछ शब्दों को विनाशित न करके;
- (२) संघ के विभिन्न पैगों तथा सदस्यों द्वारा चार्टर की व्याख्या करके
- (३) सहायक न पियों एवं सम्मेलनों के निर्णयों के द्वारा
- (४) विशेष मामलों एवं घमिकरणों की रचना करके।

क्लाइड इग्लेन (Clyde Eagleton) चारि विचारकों के मत से ब बहुत सी बातें बिना वर सम्मेलन में विचार करने की बात कही जाती है उनको सामान्य स्वीकृति द्वारा जैसे ही पूरा किया जा सकता है किन्तु यह ठानी है जबकि इस प्रकार की स्वीकृति पहले से ही शायद की जा सके। चार्टर के संशोधनात्मक सम्मेलन न बुलाये जाने पर कुछ लोगों को संशोधन हो सकता है किन्तु वह अत्यन्त ही धीरे की अधिक बह जावेगा जबकि ऐसा सम्मेलन बुलाया जाने के बाद भी किसी निर्णय पर नहीं जा पावे।

राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ की तुलना (The League of Nations & The U N O)

संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्गम विकास और रूप विधान धारि पर विचार करने के उपरान्त यह देखना चाहिये कि अपनी पूर्ववर्ती अन्तर्राष्ट्रीय संस्था राष्ट्रसंघ (League of Nations) से यह कहा तक अगेत है दोनों में क्या सादृश्य तथा अन्तर है और क्या संयुक्त राष्ट्र संघ को राष्ट्रसंघ का एक अग्रगण्य कदम (One step further to League of Nations) कहा जा सकता है। दोनों संस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि यद्यपि दोनों में अनेक समानताएँ और साध हो मौलिक अन्तर विद्यमान हैं तथापि कुछ मिला कर संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रसंघ की अपेक्षा व्यापक उद्दिष्ट और प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

समानताएँ—गामा कुनी परकिसस (Palmer & Perkins) का मत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ बहुत कुछ राष्ट्रसंघ की ही प्रकृति का है। ध्यान से देखने पर दोनों ही संस्थाओं में निम्नलिखित समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) इन दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के अग्रेता अमेरिकन राष्ट्रपति थे। राष्ट्रपति विस्तार में १९१९ में राष्ट्र संघ की और राष्ट्रपति ट्रूमैन ने १९४५ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की प्रेरणा दी। दोनों ही संस्थाओं का अन्त अन्तर्राष्ट्रीय अन्त में अन्त और अन्त के मध्य हुआ तथा दोनों ही को उच्चतम अधिकार में कुछ अन्त विषय की अन्त राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक समस्याएँ प्राप्त हुईं।

(२) दोनों ही संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में अन्त-प्रयोग के अधिकार पर कुछ परिधीयताओं को छोड़कर सभी राष्ट्र अपनी इच्छानुसार

कृषि भी कार्य करने को बयानिब दृष्टि से स्वतंत्र है। इस प्रकार आधारभूत विद्युतवा की दृष्टि से दोनों में अत्यधिक साम्यता है। दोनों ही की स्थापना प्रभुत्वता सम्पन्न राष्ट्रों के केवल सीमित अधिकार सम्पन्न संघटनों के रूप में हुई थी। दूसरे शब्दों में दोनों ही सन्स्थाओं के राष्ट्रों की सम्प्रभुता का भावर करना स्वीकार किया और गिज्ञान्त रूप में प्रत्येक देश के मत को बराबर का महत्व प्रदान करने का मान्यता थी।

३. मूल रूप से दोनों ही संस्थाओं की स्थापना के समय विजिता राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों को छोड़ दिया। जब राष्ट्र मंच की स्थापना हुई तो इसकी संरक्ष्य संस्था विजेता राष्ट्रों तक ही सीमित रही और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय ३० राष्ट्रों तक।

४. जहाँ तक दोनों संस्थाओं के संघटन संरचना का सम्बन्ध है दोनों के संविधानों और अधिनियमों में प्राथम्यजनक समानता दिखाई देती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमाण तथा सहायक शर्तों का निर्माण अत्यंत समय राष्ट्र संघ के संघटन से बहुत कुछ प्रेरणा ली गई है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि इनके राष्ट्र संघ के शर्तों में जोड़ा सुधार करने के बाद उन्हें अपना लिया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा सुरक्षा परिषद और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय राष्ट्र संघ की संसम्बन्धी परिषद स्थायी-अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय के प्रतिकल्प हैं। जहाँ तक अराजनीतिक कार्यों का सम्बन्ध है राष्ट्र संघ की भांति संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न सहायक शर्तों भी विश्व की जनता को बरीबी बीमारी भुखमरी भसिता अज्ञान आदि से छुटकारा दिसा कर बड़ी सामाजिक सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक विकास करना चाहते हैं।

दोनों ही संघटनों में परिषद के अध्यक्ष पद को क्रमानुसार रखने की व्यवस्था की गई और दोनों ही में व्यवहार तथा तत्त्व निर्णयों और विचारधाराओं में अन्तर रखा गया है।

दोनों ही संस्थाओं में समस्त विचारों के निर्णय के सर्वोत्तम उपाय परस्पर बातचीत द्वारा समझौता कर समझे गये। इसे यों भी कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ भी अपने संघटन की भांति परस्पर विचार-विमर्श तथा बातचीत के बाद ही किसी निर्णय पर जाता है।

५. दोनों ही संघटनों की प्रकृति कुछ इस प्रकार की है कि इनके सदस्यों के सक्रिय सहयोग के बिना ये सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। सदस्यों के सहयोग के अभाव में ही राष्ट्र संघ समाप्त हो गया और यदि संयुक्त राष्ट्र संघ को इस सचिप्य से दूर रखना है तो हमें निश्चय ही ऐसी परिस्थितियों एवं ऐसे वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है जिनमें इनके छोटे बड़े अतिज्ञानी और कमबोर सभी राष्ट्रों का यथाशक्ति सहयोग प्राप्त हो सके।

अन्तर — अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शांति के लिये प्रयत्नशील इन दोनों संस्थाओं के बीच उपयुक्त समानताएँ पाई जाती हैं, किन्तु फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने राष्ट्र संघ के अभावों एवं इसकी कमबोरियों के परिणामों के अनुभवों का लाभ उठा कर नवीन संस्था को इनकी पुनरावृत्ति से बचाने का यथासम्भव प्रयास किया है

घौर इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ को राष्ट्र संघ का संज्ञोपित परिबन्धित एवं परिबद्धित संस्करण कहा जा सकता है। सन्धे घनों में यह राष्ट्र संघ का अगला चरण है तथा इसकी घोषणा कही अधिक प्रभावशाली साधन-सम्पन्न घौर अधिकार सम्पन्न है। बागो स पठनों के स विधान व्यवस्था घौर व्यवहार में जो प्रमुख अन्तर देखने को मिलता है वह निम्न प्रकार है :—

१. दोनों ही संस्थाओं का प्रादुर्भाव विभिन्न प्रकार से हुआ है। राष्ट्र संघ केवल विजेता राष्ट्रों की संस्था कही जाती है। प्रतिशयातिक होने पर भी इस कथन में आधिक सत्यता है क्योंकि इसका मुख्य कार्य युद्ध के बाद की गई सति-संधियों को विमानित करना या घौर इसका स विधान या संधि (Covenant) बरसाय की संधि तथा अन्य संधियों का एक प्रावणक भाग था। संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्बन्ध पराजित राष्ट्रों पर बोये गये ऐसी किसी संधि से नहीं है। यह विजेता एवं विजित शक्तिशाली एवम् दुर्बल सभी देशों को समावृत्त का स्तर होता है। इसका सम्बन्ध विजयी शक्तियों के प्राण एवम् बसम को बनाये रखना नहीं है बरन् समय के साध-साध उस कम करना घौर समाप्त कर देना है। वर्तमान काल में एशिया और अफिरा के नवोदित राष्ट्रों का प्रभाव इसमें बढ़ता जात है। यह निश्चय ही सत्य है कि राष्ट्र संघ की सति संयुक्त राष्ट्र संघ पर 'विजयी राष्ट्रों द्वारा अपने स्वर्णों की रक्षा के लिये बोयी गई व्यवस्था' का आरोप या घासन नहीं लगाया जा सकता।

२. संयुक्त राष्ट्र संघ का नाम ही राष्ट्र संघ के नाम से अधिक प्रभावशाली घौर अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। यद्यपि बोयला-यव के अन्तगत सदस्य राष्ट्रों की सम्प्रमुता अधुण रबी पर्यै है परन्तु नविय में अधिक अंश और सद्भावनापूर्ण परिस्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रों के अधिक बनिष्ट सम्पक में घान की सम्भावना अस्त होती है।

३. संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य सख्या राष्ट्र संघ की सदस्य सख्या से अधिक है क्योंकि १२२ सदस्य इस संगठन क भागीदार हैं। राष्ट्र संघ में तरकासीन ३ महा शक्तियों में से २ ही स्थायी सदस्य के रूप में सम्मिलित रहती थीं जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ में त्रितीय महाशक्तितर तीनों महा शक्तियाँ सम्मिलित हैं। संयुक्त राज्य प्रयैरिब कमी की राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बना और उस क इसमें प्रवेश करते ही आपात तथा कमनी इसमें से निकस गव। अत विषय के महान शक्तिशाली राष्ट्रों का बीना कमघट संयुक्त राष्ट्र संघ में है बीसा राष्ट्र संघ में कमी भी नहीं रहा। राष्ट्र संघ को सभी विश्व शक्तियों का बहु विश्वास प्राप्त न हा सका जो घास संयुक्त राष्ट्र संघ का प्राप्त है।

४. राष्ट्र संघ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ दोनों ही संगठनों में महासभा का अरिष्ठत पिसता है किन्तु दोनों के स्वभाव एवम् व्यवहार में भारी अन्तर है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में निर्णय २/३ मत से लिया जाता है तथा यह निर्णय सदस्य देशों पर बाध्य रूप से लागू नहीं होता बरन् इनकी प्रवृति सिफारिश के रूप में होती है। दुबरी घौर राष्ट्र संघ की महासभा के निर्णय सदस्य की सर्व सम्मति से लिये जाते थे तथा सदस्यों द्वारा बाध्य रूप से इनका

पासन किया जाता था। इन दृष्टि से यह कहना चाहिये कि संयुक्त राष्ट्र संघ की महामन्त्रा राष्ट्र संघ की महामन्त्रा सं निर्बल है।

५. राष्ट्र संघ के मुख्य अंग केवल तीन थे - प्रेम्बसी (महामन्त्रा) परिषद और सचिब-समय। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रथम अंग १ है—महामन्त्रा सुरक्षा परिषद प्राथिक और सामाजिक परिषद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और सचिब-समय। इनसे यह स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का संयुक्त राष्ट्र संघ से व्यापक है। पुनश्च राष्ट्र संघ के कार्य प्रधान रूप से राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित थे जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ के राजनीतिक कार्यों के अनिश्चित प्राथिक सामाजिक सांस्कृतिक एकत्र मानवीय कार्यों तथा ऐसे ही अन्य विषयों को भी बहुत महत्व दिया गया है। इन संगठन में मानव व्यक्तिगत विकास और व्यक्तियों के मानवीय अधिकारों के संरक्षण के महत्व को समझा गया है। इनके विभिन्न संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्रिय प्राथिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन प्राथि मानव जाति की प्राथिक सामाजिक और सांस्कृतिक एकता की कृति के सिधे प्रयत्नशील है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इन कार्यों को जो प्राथमिकता दी गई है वह यूनेस्को के संविधान की भूमिका के इन शब्दों से स्पष्ट होती है— 'यद्यपि मुद्रा पहल मनुष्यों के मन में उत्पन्न होता है अतः जाति की आधार बनाए मनुष्य के मन में स्थापित की जानी चाहिये।'

६. संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में महामन्त्रा और सुरक्षा परिषद के कार्यों का राष्ट्र संघ की उभा और परिषद (Assembly and Council) के कार्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट विभाजन है। राष्ट्र संघ में इन दोनों के कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं था अतः अनिश्चितता और संविह विद्यमान था तथा इस कारण राष्ट्र संघ की स्थिति अन्त तक बड़ी ही दुर्बल रही। लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में इन प्रकार की दुर्बलता के लिए सावधानी बरती गई है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम रखने का कार्य सुरक्षा परिषद का विषय है। सुरक्षा परिषद का कार्य क्षेत्र राष्ट्र संघ की कौंसिल की अपेक्षा मर्यादित होते हुए भी सुस्पष्ट है। उसके निर्णयों का पालन सदस्यों के सिधे बाध्य है। इस तरह वह राष्ट्र संघ की कौंसिल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। १९५० में पारित शांति के सिधे एकता के प्रस्ताव (Uniting for peace resolution) द्वारा महामन्त्रा को शांति रक्षा का कार्य मिला गया है किन्तु यह इस तरह ही करती है जब सुरक्षा परिषद किसी महत्वपूर्ण विषय पर कार्यवाही करने में निपट-दिनांक के कारण विफल हो जाए और विश्व में शांति संय होने की धामका पैदा हो जाय। किन्तु इस स्थिति में भी महामन्त्रा सम्बंधित प्रश्न पर विचार विचार और सिफररिक्त ही कर सकती है किन्तु कार्यवाही नहीं कर सकती। कार्यवाही करने का अधिकार केवल सुरक्षा परिषद को ही है। इस प्रकार साफ जाहिर है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर द्वारा सुरक्षा परिषद एवं महामन्त्रा के बीच कार्यों का विभाजन अन्तने स्पष्ट रूप से किया गया है राष्ट्र संघ के आधीन उतना स्पष्ट नहीं था। सुरक्षा परिषद राष्ट्र संघ की कौंसिल की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट तथा शक्तिशाली है। इसके पास वास्तविक शक्ति है, उसके संगठन एवं व्यवहार के अनेक नियमों ने उसे महत्वपूर्ण संस्था बना दिया है।

७ सुरक्षा परिषद राष्ट्र सभ की कौंसिल या परिषद से इस दृष्टि से भी उत्कृष्ट है कि यह एक स्थायी सभा है और १४ दिन में इसकी एक बैठक आवश्यक होती है। राष्ट्र सभ की परिषद की बैठकें बड़े मर में कबस तीन ही होती थी। यही नहीं सफ़ट काल में सुरक्षा परिषद की आवश्यक बैठक बहुत षोड समय में सुरक्षा ही बुलाई जा सकती है। उदाहरणार्थ उत्तरी कोरिया द्वारा रक्षित कारिया पर आक्रमण होने पर २६ जून, १९५० को सुरक्षा परिषद की आपातकालीन बैठक सुरक्षा ही धामनित करती गई थी।

८ राष्ट्र सभ की तुलना में संयुक्त राष्ट्र सभ एक धमिक समर्थ और प्रभावकारी संस्था है तथा बिस्व शांति की स्थापना में यह तुलनात्मक रूप से धमिक महत्वपूर्ण है। निम्नलिखित तथ्य इसे स्पष्ट करते हैं —

(क) राष्ट्र सभ आक्रमण होने पर ही उसे रोकने के लिये कोई कार्यवाही कर सकता था जबकि संयुक्त राष्ट्र सभ वास्तविक युद्ध छिड़न पर ही नहीं बरन् शांति भंग होने की आशंका और आक्रमण होने के भय से प्रभावित होकर भी अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर सकता है।

(ख) राष्ट्र सभ में शांति भंग करने वाले के विरुद्ध मुख्य रूप से धाधिक प्रवर्गों (Economic sanctions) की व्यवस्था थी। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र सभ भी अपनी कार्यवाही अधिकतर धाधिक प्रवर्गों तक ही सीमित रहता है परन्तु विधेय परिस्थिति में विधेय कतरा उत्पन्न होने पर सुरक्षा परिषद बस धस और बाहु मायों से सैनिक तयवाही कर सकती है। यह अपने सदस्यों से सेनाधों की मांग करती है और उसकी सैनिक बाजनाधों को सुचारु रूप से कार्यान्वित करने के लिये एक सैनिक स्टाफ समिति (Military Staff Committee) भी है। राष्ट्र सभ इस सम्बन्ध में प्रसहाय था। उसके पास सफ़ट म प्रयुक्त की जा सकने वाली इस प्रकार की कोई सेनायें न थीं और इसीलिये उस पर आक्रान्ता को रोकने की व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र सभ की धरपन्थ क्षमितावाली तथा प्रभावपूर्ण नहीं थी। इतना ही नहीं संयुक्त राष्ट्र सभ के बोधना-पत्र की ४६वीं धारा के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद को धाधिकता पकने पर अन्तर्राष्ट्रीय सेना संघठित करने का भी धधिकार है। इस धधिकार का प्रयोग पिछले धयों में कई बार किया जा चुका है तथा धाध भी साइप्रस तथा पश्चिमी एशिया में संयुक्त राष्ट्र सभ सेनायें विद्यमान हैं।

(घ) आक्रमण को रोकने की कार्यवाही के सम्बन्ध में राष्ट्र सभ और संयुक्त राष्ट्र सभ के प्रतिज्ञापत्र या संधि (Covenants) में सदस्यों के सहस्र सेनाधों के प्रयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाधना नहीं थी और सभ के सदस्यों का यह कार्य था कि वे यह निणय करें कि किसी सदस्य में सभ के प्रतिज्ञापत्र के धाधितों का उल्लंघन किया है या नहीं तथा उसके विरुद्ध सैनिक कामवाही की जाए या नहीं बड़ा म बलत राष्ट्र सभ के चार्टर में शांति भंग की रक्षा का निश्चित करना और सैनिक कार्यवाही करने का निर्णय करना सदस्यों पर नहीं धपितु सुरक्षा परिषद पर छोड़ दिया गया है तथा उसके निर्णयों का पालन मन्सा की इच्छा पर नहीं धपितु धाधिक है। शांति के लिये एकता के प्रस्ताव में महाममा को भी सुरक्षा परिषद में निवेधाधिकार के कारण गठित होत पर शांति स्थापित करना

के लिये सैनिक क्राय बाही करने का अधिकार प्रदान किया है। इस प्रकार की व्यवस्था राष्ट्र संघ की सन्धि में न थी। इस तरह संयुक्त राष्ट्र संघ की प्राक्रमणकारी के विरुद्ध सदस्यों द्वारा सैनिक क्राय बाही करने की व्यवस्था राष्ट्र संघ की प्रवेसा निश्चित रूप से अधिक श्रेष्ठ धार बलितगामी है।

८. शक्ति और यत्न के मामलों में राष्ट्र संघ अपनी तरफ ग कोई पक्ष नहीं कर सकता था। किसी सदस्य द्वारा मामला प्रस्तुत करने पर ही वह उस पर विचार कर सकता था लेकिन मध्यम राष्ट्र संघ में इस कमजोरी का दूर कर दिया गया है। चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद की महासभा दोनों इस दिशा में पहल करन में समर्थ है। महासक्ति पर मा इस सम्बन्ध में विशेष शक्ति है।

१०. राष्ट्र संघ की सदस्यता स्वेच्छिक थी और कोई भी राष्ट्र शो र्क का नोटिस देकर सदस्यता वा परित्याग कर सकता था परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में ऐसी कोई छूट नहीं दी गई है। इसकी सदस्यता अनिवार्य है।

११. संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्तर्राष्ट्रीय ग्वास प्रणाली (Trusteeship System) राष्ट्र संघ की अन्तर्गत व्यवस्था (Mandate System) की प्रवेसा अधिक सुनिश्चित है। ग्वास प्रणाली में सीधी योजना करने की प्रणाली समय-समय पर दौरा करने वाले लिट्ट मध्य तथा मौखिक सुनवाई प्राधिक समय-समय पर दौरा करने वाले लिट्ट मध्य तथा मौखिक सुनवाई प्राधिक व्यवस्था है और ग्वास क्षेत्रों की जनता की राजनीतिक सामाजिक प्राधिक एक सीमित प्रगति को सुनिश्चित करन पर पूरा ध्यान दिया गया है। राष्ट्र संघ की मरदान व्यवस्था का तीन प ली ने म ब स -में वर्गीकरण किया गया था कि सरलित क्षेत्रों के राजनीतिक विकास के मापदण्ड के अनुसार और स्वशासन प्राप्त क्षेत्रों को स्वतंत्रता प्रदान करने की निश्चित तिथियाँ तर्क वर दी गई थी जवाहरलाल नेहरू का मामल में १९४२ तथा इटली-मोसाली संघ के मामले में १९६० का वर्ष निश्चित किया गया था। राष्ट्र संघ के अन्तर्गत ऐसा करता अन्तर्गामी था।

१२. संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र की एक उत्प्रेक्षणीय विशेषता यह है कि इसमें इस बात की व्यवस्था की गई है कि सुरक्षा परिषद के सभी सदस्य संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रधान कार्यालय में पाना एक स्थायी प्रतिनिधि निय रलें ताकि प्राक्षमकता पड़ने पर तुरन्त विचार-विमल सम्मेल हो सके। राष्ट्र संघ की परिषद के विधान में इस प्रकार की कोई व्यवस्था थी।

१३. संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रस्तावना में यह लिखे गये हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग बहुत ही अक्षमण तथा सारगमिण हैं। यदि संयुक्त राष्ट्र संघ प्राधिक शक्तिगामी बन जाता है और इस बात की प्राक्षमकता करने का प्रथम प्रस्तुत होता है कि कि-ही विशेष परिस्थितियों में बना मघ को प्रभावगामी अन्तर्राष्ट्रीय कामबाही करने का अधिकार है तो इस अर्थ में यह अन्तर्गामी निश्चय ही अत्यन्त सहायक तथा उपयोगी सिद्ध हो

सकती है। "इस सम्भावना का उपयोग विश्व-समाज की श्रेष्ठता प्रबलता सर्वोन्नति मित्र करने के लिये किया जा सकता है।" समुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर में शांति रक्षा के लिये प्रादेशिक संगठन (Regional Organisations) बनाने की प्रवृत्ति ही गई है जबकि राष्ट्र सभ के सचिव प्रबलता प्रतिज्ञा-पत्र में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

१३. राष्ट्र सभ के प्रतिज्ञा-पत्र में "आत्मरक्षा" के अधिकार के सम्बन्ध में कोई बात स्पष्ट रूप से नहीं कही गई थी केवल अनुच्छेद १५ (७) में इसका गौणमान संकेत था किन्तु समुक्त राष्ट्र सभ के चार्टर के अनुच्छेद २१ में सभ द्वारा कार्यवाही करने में पहले आक्रमण का निवारण ही राज्यों को आत्मरक्षा का अधिकार वह स्पष्ट शब्दों में दिया गया है।

१४. समुक्त राष्ट्र सभ मानवीय अधिकारों मौलिक स्वतंत्रताओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक बहुयोन पर भारी बल देता है। राष्ट्र सभ के प्रतिज्ञा-पत्र में इनका बहुत कम उल्लेख था।

१५. दोनों संस्थाओं में "घरेलू अधिकार क्षेत्र" (Domestic Jurisdiction) के सम्बन्ध में भी मौलिक अन्तर पाया जाता है। समुक्त राष्ट्र सभ इस विषय में राष्ट्र सभ की घरेलू अधिकार व्यापक व्यवस्था करता है तथा सबस्यों को अधिक स्वतंत्रता देता है। चार्टर के अनुच्छेद २७ में उल्लिखित है कि "समुक्त राष्ट्र सभ को किसी भी राज्य के उन मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा जो निश्चित रूप से उस राज्य के घरेलू क्षेत्र में भीतर घाते हों।" यह अनुच्छेद इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि "घरेलू क्षेत्र" का निश्चय कौन करेगा। स्पष्ट ही अनुच्छेद द्वारा प्रत्येक सदस्य को "घरेलू क्षेत्र" का निर्णय करने की स्वतंत्रता मिल जाती है और इस तरह समुक्त राष्ट्र सभ का कार्य क्षेत्र ब प्रभाव समुचित हो जाता है। राष्ट्र सभ की इस विषय की व्यवस्था अधिक अच्छी थी क्योंकि उसमें "घरेलू क्षेत्र" का निर्धारण सदस्यों पर नहीं छोड़ा गया था अपितु अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधार पर इसके निर्णय करने का यार परिवार पर जाल दिया गया था।

अपरोक्ष विवरण से स्पष्ट है कि समुक्त राष्ट्र सभ का संयुक्त राष्ट्र सभ के संयुक्त से अनेक अर्थों में अधिक उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ है। प्रो० ईग्ल्टन (Prof Eagleton) का यह कहना सत्य है कि "यद्यपि दोनों व्यवस्थाओं के रूप और साधारण ज्ञान में एकस्यता दिखाई देती है किन्तु इनके बीच की मौलिक अन्तर है उनको देखने पर वह स्पष्ट हो जाता है कि समुक्त राष्ट्र

“—Although there is a resemblance between the two Systems in structure and general appearance, fundamental differences show when added up that the United Nations is quite different in concept and character from the League.”

—Prof Eagleton 'Covenant of the League of Nations and the Charter of U.N points of difference. Department of State Bulletin August 19 1945

प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार संघ राष्ट्रों की सम्प्रभुता के व्यवहार पर ही प्रभारित रहता है जबकि इसमें सरकारों के स्वतंत्र पर जन्म के विचार के लोगों के प्रतिनिधि होने चाहेंगे। क्लार्क एल्चेबर्गर (Clark Elcheberger) के मतानुसार 'संयुक्त राष्ट्र संघ एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति है जिसके निर्माताओं ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने की शक्ति का बाना पहिनाया है तथा जिसके सदस्यों ने इसके प्रति महत्वपूर्ण दायित्व सम्भाले हैं किन्तु यह न तो एक राज्य है और न ही सर्वोच्च राज्य। यह अस्तित्वहीन तो विश्व समाज के विकास में निहित ही रहता है।' संयुक्त राष्ट्र संघ तो केवल अर्थात् बाह-विचार तथा विचारों के मातृपुत्र है इसके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वतंत्र मान बना हुआ है। इसके पास अपनी स्वयं की ठोस शक्ति नहीं है सिवाय उन अधिकारों के जो सर्वसम्पन्न राष्ट्रों ने उसे स्वच्छता से प्रदान किये हैं। विभिन्न देशों के 'बरेलू मामलों' में सब का कोई अधिकार नहीं है और 'बरेलू मामलों' की स्पष्ट परिभाषा बोपचा-पत्र में नहीं दी गई है। इस दुर्बलता का परिणाम यहाँ तक निकला है कि औपनिवेशिक प्रश्न धरबा गैर स्वतंत्रता क्षेत्रों को आत्म-निर्णय का अधिकार देने के प्रश्न पर भी औपनिवेशिक शक्तियों ने इसे अपने 'बरेलू अधिकार क्षेत्र' के अन्तर्गत मान कर विचार किया है।

४ संयुक्त राष्ट्र संघ के बाद विचार एबम् निर्णय पक्षपातपूर्ण होते हैं। अधिकार क्षेत्रों द्वारा एक प्रस्ताव को केवल इसी कारण सहमति प्रदान की जाती है क्योंकि वह उसके गुण वाले किसी देश की ओर से उद्यमता गया है। विरोधी गुट वालों का उपरोपी एबम् महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी अनुचित तरीकों के आचार पर ठुकरा दिया जाता है। सुरक्षा-परिषद में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव है और इसी कारण सोवियत रूस को अनेक बार बीटा को सहारा लेकर अपनी रक्षा करनी होती है।

५ संयुक्त राष्ट्र संघ नियन्त्रिका के बुद्धयोग का संघर्ष बना हुआ है। सुरक्षा परिषद में ५ महा शक्तियों ब्रिटेन अमेरिका फ्रांस रूस और राष्ट्रवादी चीन को नियन्त्रिका प्राप्त है। इसमें से कोई भी शक्ति किसी भी उचित किन्तु अपने विरोधी वाले को नियन्त्रिका के प्रभाव से प्रभाव्य ठहरा देती है। इस तरह यह नियन्त्रिका-शक्ति विश्व में शक्ति एबम् सुरक्षा को स्थिर करने की दिशा में प्रभावकारी कार्यवाहियों में अक्षरान्त सत्य कर देती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रथम महासंघी दिग्दर्शी तक ने स्वीकार किया था कि 'नियन्त्रिका

"Here then is the U.N. and international personality clothed by its frames with authority to operate on an international plan and whose members have taken important obligations towards it. But it is neither State nor a Supreme State. The dilemma is inherent in the development of worthy society"

—Clark Elcheberger U.N. : The First Twenty Years, 1965 Page 129

इस समय रोडेसिया में २ प्रतिबन्ध धीरे-धीरे लोगों द्वारा संपूर्ण बासन का बल पुनः अपने हाथों में ले लिया गया है। ईरान-सिन्ध की स्वतन्त्रता की एक तरफ़ा नीयत—मानविक एवम् अनुचित होने पर भी ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रों के तीव्र विरोध एवम् प्रतिधिया का कारण नहीं बन सकी।

६. संयुक्त राष्ट्र संघ के बाहर की नई सैनिक सशक्तियों के कारण भी इसका महत्व कुछ कम हो गया है। गाटा सीटो तथा एमे ही अन्य सैन्य-संयुक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति स्थापना के कार्य को विधुल करते हुए पारस्परिक विरोध और संघर्ष भाव को प्रोत्साहन देने वाले हैं।

१०. संयुक्त राष्ट्र संघ की निर्बलता एवम् असफलता का एक प्रमुख कारण यह है कि धार्मिक विश्व को परस्पर विरोधी शक्ति युद्धों में बटा हुआ है और पूँजीवादी तथा साम्यवादी को प्रमुख विचारधाराओं में अन्तर संघर्ष बना पा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ भी इस और धमके सहयोगी राष्ट्र तथा अमेरिका और उसके साथी राष्ट्रों की पारस्परिक नीयत का संघर्ष बना हुआ है। दोनों के पारस्परिक मतभेदों के कारण ही अभी तक धर्मनी की समस्या का अंतिम समाधान नहीं हो सका है और निरन्त्रीकरण के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर किसी तरह का समझौता नहीं हो पाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा किये जाने वाले निरन्त्रीकरण प्रयासों पर पाला इसी-से पड़ा है कि इस और अमेरिका के दोनों विरोधी गुट परस्पर एक-दूसरे को प्रतिबन्ध की दृष्टि से देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की पूर्ति के विषय में ईमानदार नहीं हैं। विश्व के ये दोनों गुट संघ में और उसके बाहर भी प्रायः प्रत्येक प्रश्न पर एक-दूसरे के विरोधी विचार ही व्यक्त करते हैं। अन्तर सम्बन्धों के द्वारा दोनों को समझौते के विभिन्न प्रयासों ने अपनी ईमानदारी की भावना में प्रतिबन्ध ही की है। किसी भी देश के गुह युद्ध में ऐसे दोनों गुट परस्पर विरोधी शक्तियों को सह-पदा लेकर विश्व-शांति के लिए अंतरा-पदा करने में सहायक होते रहे हैं। विद्यमान का संघर्ष इसका अन्ततः प्रमाण है। अन्ततः समय में साम्यवादी चीन के रूप में एक नई युद्धवादी नये रूप में सामने आ रही है। आज यह दिखाई पड़ता है कि एक तरफ़ साम्यवादी अन्त में इस और चीन में कोई बड़ती जा रही है। ती-दूसरी तरफ़ पूँजीवादी देशों में भी अन्त के नाटो (NATO) से पुनः हमारे की नीयत का कारण अन्ततः स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इन सभी बातों व संयुक्त संघ को निर्बल बनाने में ही सहायता पहुँचाई है।

११. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का एक उद्देश्य विश्व के समस्त राष्ट्रों की स्वतन्त्रता एवम् समानता दिखाना है परन्तु संघ की स्थापना के बाद भी विश्व के राष्ट्रों में साम्राज्यवादी मनोबुद्धि का पूर्ण अन्त नहीं हो सका है और आज भी अनेक पराधीन राष्ट्रों को अपनी स्वतन्त्रता के लिये और प्रयत्न करने पड़ रहे हैं तथा अर्थ की अन्त को स्तन बना की भाँति करने पर नीयतों का अन्त बनना पड़ता है। अब तक धार्मिक विश्व में यह साम्राज्यवादी भावना नापस रहेगी तक तक संघ की अन्ततः में बाधा उपस्थित होना स्वाभाविक बात है।

बच पाया है। कान्ति मनुष्य के समूह जीवन में ही हो रही है। औपनिवेशिक राज्यों की जनता में चेतना बढ रही है वहाँ शासता की बढियाँ एक के बाद एक टूटनी जा रही हैं। पिछड हुए देश में गरीबी बीमारी एवं अज्ञानता आदि मानवता के बलिघातों के विरुद्ध संघर्ष आरंभ हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में पहले पाँच शक्तियाँ राष्ट्रों का प्रमुखगुण हस्तक्षेप थीं किन्तु युद्ध के बाद ये मिट गईं और विश्व रणमंच पर केवल दो शक्तियाँ ही दिखाई देने लगीं। इन सब परिवर्तनों के संघर्ष में संयुक्त राष्ट्र सब को शक्तिशाली बनाने के उपायों पर विचार करना सामयिक तथा जितामत्त आवश्यक है।

सब को शक्तिशाली बनाने के लिये चाटर में जो प्रावधान संशोधन एवं परिवर्तन बांझनीय हैं उनका विस्तृत सम्मेलन "चाटर में संशोधन" के प्रवर्तकों कीयुक्त के अन्तर्गत किया जा चुका है। किन्तु उनके प्रतिनिधित्व की भी संघ को शक्तिशाली बनाने के लिये एक सुभद्रा समय-समय पर दिये जाते रहे हैं या प्रमुखतया निम्नलिखित हैं—

१. संघ सम्प्रभु राज्या की एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है और इस रूप में उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके निर्णयों को क्रियान्वित करने में सदस्य राष्ट्रों द्वारा वितनी सखी ली जाती है। यदि संघ को शक्तिशाली बनाना है तो सदस्य राज्यों को अधिक स्वायत्तता एवं सहकारिता (Imaginative) रूप से अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करना चाहिये।

२. चाटर की व्याख्या करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाया जाहिए। क्लार्क एल्शेबर्गर (Clark Echebberger) के विचारानुसार विश्व शक्ति के लिये यह तीक्ष्णपूर्ण होगा कि चाटर की कठोरता की संख्या उदात्त पुरुष व्याख्या की जाये। * शांति के लिये एकता के प्रस्ताव का एक प्रकार की व्याख्या का उदाहरण माना जा सकता है। उदार दृष्टिकोण शान्ति के महानुसार संयुक्त राष्ट्र सब उन सभी कार्यों को कर सकता है जो कि उसके सक्षम की प्रति के लिये आवश्यक हैं। सोवियत कम इस प्रकार के दृष्टिकोण का विरोध करत है। उसके मतानुसार संघ का कोई भी कार्य वह कार्य नहीं कर सकता जो कि संघ के चाट द्वारा उसे शीघ्र नहीं गया है। सुरक्षा परिषद की शक्तियों के मुख्य पर यदि महामत्ता कोई भी कार्य करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती है तो उस द्वारा उसका विरोध किया जाता है जब कि यह नहीं होना चाहिये।

३. संघ के सर्वमान्य रूप को विस्तृत बना देना चाहिये ताकि आवश्यकता के मनुष्य लचीले संस्थाओं का निर्माण किया जा सक।

४. जो क्षेत्र राष्ट्रीय सम्प्रभुता के प्राचीन नहीं हैं वहाँ पर प्रजातन्त्रीय

"It is fortunate for the peace of the world that the Charter has been liberally interpreted, instead of being a straight jacket."

सत्ता स्थापित कर सनी चाहिए, उदाहरण के लिए बाहरी धाकाज (Outer Space)।

२. संध को सर्वम्यापी बनाने के हर समय प्रयास किये जायें। यदि संध का कानून पर आधारित विश्व समान दगाना है तो सभी राष्ट्र इसके सदस्य होने चाहिये।

३. धाय का कोई स्वतंत्र स्रोत रक्षना चाहिए। राष्ट्रों के बन्धा एवं सहयोग पर प्रबलान्वित रह कर संध अपने धर्मों में अपने सध्या को परा करने में प्रयत्न रहता है। संध को चाहिए कि बहु विकास कर (Improvement Tax) सेवा कर (Service Tax) यात्री कर (Traveller Tax) प्रादि सयाय तथा विश्व बैंक की धाय तथा बाहरी आकास की फीम प्रादि द्वारा धपनी धाय को बढ़ाये।

४. वर्तमान धर्मों की बनावट तथा नाय प्रयासी में सुधार किया जाना चाहिए।

५. विश्व कानून की प्रक्रिया का रिचाम करना चाहिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्रयोग से अधिक लोक प्रिय बनाता चाहिए।

६. चाट र का परिवर्तन करना चाहिए।

महासचिव के सुझाव (Suggestions of Secretary General)—
संयुक्त राष्ट्र संध को मजबूत करने की दृष्टि से इसके प्रथम महा सचिव ट्रिग्वेरी (Trigve Lie) ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किये थे। उनके मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं—

(i) बमनी के अधिक्य की समस्या का कोई प्रभावपूर्ण समझौता र सना चाहिए।

(ii) सुरक्षा परिषद के पास अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को सुसभाने तथा शान्ति को कायम रखने के लिए काफी शक्तियाँ हैं इनका उपयोग करना चाहिए।

(iii) सुरक्षा परिषद के प्रयोग के लिए धमन्धेद ४३ के प्राचीन सदस्यों को सतंत्र सेवा देनी चाहिए।

(iv) चाटक सदस्यों से उत्पन्न समस्याओं पर निवन्धन करने के लिए संध को इसका धम्भयन कराना चाहिए।

(v) सुरक्षा परिषद के स्वामी सदस्यों को धपनी बीटो शक्ति का अधिक प्रयास मही करना चाहिये।

(vi) संध के सदस्यों को महासभा एवं सुरक्षा परिषद के निर्णयों को यथासम्भव समर्थन देना चाहिए चाहे वे सदस्यों के लिए सिफारिश के रूप में हों न हों।

६ जून १९५० को। ली महासदय न संयुक्त राष्ट्र संध प्राप शक्ति प्राप्त करने के लिए २० बय की एक यात्रा प्रस्तुत की तथा दस-सूत्री कार्यक्रम को पूरा करने को कहा। ये सूत्र निम्नलिखित हैं—

१. समय-समय पर विश्व मन्त्रियों या राष्ट्रों के प्रधातों की बैठक की जाय ताकि उनके बीच का सम्बन्ध घनिष्ठ हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्यारों के समाधान को आसार-भूमि दूरी जाय तथा आपसी मतभेदों को दूर कर

निमा जाय ।

२ धरतु शक्ति क अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण पर सम्मोचना करने के प्रयास नये सिरे से किये जायें ।

३ सब प्रकार क सन्धियों पर विवस्त्रता रखने क नए सिरे से प्रयास किये जायें ।

४ सुरक्षा परिषद को सेवा प्राप्त करने के नये प्रयास ।

५ संयुक्त राष्ट्र की महत्त्वता को सर्वव्यापी बनाने के प्रयास ।

६ एक विस्तृत एवं सुदृढ़ तकनीकी महायत्ना योजना ।

७ संयुक्त राष्ट्र क विशेष अधिकारों का अधिक व्यापक प्रयोग ।

८ मानव अधिकारों का सम्मान ।

९ अपीन लोगों की समानता का बिकास ।

१० अन्तर्राष्ट्रीय कानून का बिकास ।

इस दस-सूची कार्यक्रम में प्रथम सूत्र एक ऐसी महीन विवेकता है जो पहली योजना में समाहित नहीं की जा सकी थी । श्री तथा उनके उत्तराधिकारी डाग हम्मरसोल्ड (Dag Hammarskjöld) दोनों ही महासचिव क्षेत्रीय सैनिक संगठनों का पूरी तरह विरोध करते थे क्योंकि इनके द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को महात्त्वहीन बना दिया जाता है । संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व शांति एवं सुरक्षा का प्रतीक है किन्तु इस प्रतीक का प्रयोग पूरी तरह एवं सर्वोपजनक रूप से अभी तक नहीं किया गया है । कार्लोस रोमालो (Carlos Romulo) का मत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ मर रहा है । इस मत को प्रतिशयोक्ति ही माना जायगा । संयुक्त राष्ट्र संघ पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया है वह कथन सत्य है किन्तु यह भी सत्य है कि यह पूरी तरह असफल भी नहीं रहा है । संयुक्त राष्ट्र संघ ने धार्मिक सफलताएँ प्राप्त की हैं । यद्यपि निरन्तर इसका अपमान किया गया है घबहेतना की गई है तथा इसे समाप्त करने जैसे प्रयास भी किये गये हैं तो भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में इसने शांति बनाये रखने के अनेक बार सफल प्रयास किये हैं । विश्व के राष्ट्रों एवं लोगों की सेवा के लिये जो विभिन्न सभ्यता तथा जातीय कार्य कर रहे हैं उनके बीच सब में सम्बन्ध की स्थापना की है । संयुक्त राष्ट्र संघ वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय की एक आवश्यक उपयोगी एवं अपेक्षित विवेकता है तथा अणु-युग में अस्तित्व की आवश्यक शक्ति ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के परिवार की विशिष्ट एजेंसियाँ एवं संस्थाएँ

[Specialized Agencies & Institutions of the U N O]

संयुक्त राष्ट्र संघ के बच्चों का अध्ययन करने के साथ-साथ हमारे लिये इसकी अन्य प्रमुख एजेंसियों और संस्थाओं का अध्ययन करना भी अनिवार्य हो जाता है । संघ के परिवार की एजेंसियाँ और संस्थाएँ विश्व के विभिन्न क्षेत्रों की जनता के रहन-सहन के स्तर को ठीक करने धार्मिक व सामाजिक बिकास को बढ़ावा देने बालों व शारदाधियों जैसे खास वर्ग को सहायता पहुँचाने व प्राथमिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान को प्रदान करने के लिये विभिन्न क्षेत्रों की सरकारों के साथ मिल कर काम कर रही हैं ।

संघ की प्रमुख एजेंसियाँ एवं संस्थाएँ निम्नलिखित हैं —

१. अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघठन
[International Labour Organization I L O]
२. खाद्य और कृषि संघठन
[Food and Agriculture Organization F A O]
३. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
[International Monetary Fund IMF]
४. पुनर्निर्माण और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक
[The International Bank for Reconstruction and Development]
५. अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ
[The International Civil Aviation Organization]
६. संयुक्त राष्ट्र विश्व शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक संघठन
[The United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization UNESCO]
७. विश्व स्वास्थ्य संघठन
[The World Health Organization WHO]
८. अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संघठन
[The International Refugee Organization]
९. अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र परामर्श संघठन
[The International Maritime Consultative Organization]
१०. विश्व डाक संघ
[The Universal Postal Union]
११. अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ
[The International Telecommunications Union]
१२. विश्व मन्तरिक्ष-शून्य विज्ञान संघ
[The World Meteorological Organization]
१३. अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु शक्ति एजेंसी
[International Atomic Energy Agency]
१४. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम
[International Finance Corporation]

(१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघठन

(International Labour Organisation)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघठन संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न समितियों में सर्वाधिक प्राचीन है। इसकी स्थापना ११ अप्रैल १९१९ को बर्लिन की संधि के भाग १३ के अनुसार सन्तियों के हित साधन के उद्देश्य से की गई थी। प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्ती काल में यह संस्था राष्ट्र संघ की एक सहायक संस्था के रूप में कार्य करती रही। द्वितीय महायुद्ध के बाद राष्ट्र संघ की समाप्ति हो गई थी तब १९४६ में इस संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशिष्ट समिति के रूप में पुनर्गठित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ और

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सङ्गठन के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इस सङ्गठन में विश्व के देशों में श्रम तथा सामाजिक कार्यों के करने का वास्तविक धपने ऊपर से लिया।

सिद्धान्त तथा उद्देश्य—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सङ्गठन इस विश्वास पर आधारित है कि मासिक तथा स्थायी जाति की स्थापना सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर ही सम्भव है। १९४४ में फिन्लैंड में फिन्लैंड में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सङ्गठन हुआ जिसमें इन सङ्गठन की जातिपूर्ण नीति को बुराया गया। इस धापना में निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किये गए—

(क) श्रम कोई वस्तु नहीं है।

(ख) कौसी भी शक्तिता हो वह सब बपह की समृद्धि के लिये बतरा है।

(ग) निरन्तर उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि बमिष्यति धीर सङ्गठन की स्वतंत्रता हो।

(घ) श्रमिक एवं शक्तिता के बिक्रय प्रत्येक देश में पूर्ण उस्ताह के साथ युद्ध क्रिया जाना चाहिये।

फिन्लैंड में हुई बैठक में की गई घोषणा में इन उद्देश्यों का प्रतिपादन किया गया जिनसे प्रमुख इस प्रकार हैं—

(i) युद्ध रोकगार धीर जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक युद्ध बतम;

(ii) सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था

(iii) पर्याप्त जीवन एवं आवास की व्यवस्थाओं का विस्तार

(iv) सामुहिक रूप से मोस-तीन धपना सीमा करने का अधिकार;

(v) बचसरो की समानता;

(vi) स्वास्थ्य धीर सुरक्षा के साधनों की उपयुक्त व्यवस्था।

सङ्गठन—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सङ्गठन के तीन प्रमुख धप हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference);

(२) शासक मंडल बपना संस्था (Governing Body); एवं

(३) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन श्रम सङ्गठन (I.L.O.) की सर्वोच्च संस्था है। इसका निर्माण उन सभी राष्ट्रों के राष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडलों से हुआ है जो स युक्त राष्ट्र सभ के सदस्य हैं। प्रत्येक राष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल में ४ सदस्य होते हैं जिनमें से २ सरकार का एक मानिकों का तथा एक श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है। सम्मेलन का प्रमुख कार्य समझौते (Conventions) के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक मापदंड (Standards) का निर्धारण करना है। सम्मेलन का वर्ष में एक बार अधिवेशन प्रचल्य जाता है। इसके निर्णय केवल माप्य बतम का कार्य करते हैं ये किसी भी देश पर बाध्य नहीं हैं, बसरे सबों में बहु अधिधार्य नहीं है कि किसी देश के धम सम्बन्धी

कानून सम्मेलन के निम्न यों व अनुसार ही बनाय जाए । सम्मेलन ही शासक मंडल का सामाजिक कर्ता है तथा वार्षिक बजट भी पान करता है ।

शासक मंडल अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यकारी परिषद है । इसमें ४० मान्य होते हैं २० सरकारी के १० मानिकों के तथा १० श्रमिकों के । प्रतिनिधि प्रत्येक तीसरे वर्ष निर्वाचित होते हैं । सरकारों के २० प्रतिनिधियों में से १० राज्यों की सरकारों को अपनी औद्योगिक महत्ता के कारण मजदूरों की मददगार प्राप्ति है । ये १० स्थायी सदस्य हैं—ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, जापान, भारत, इटली, स्पेन, युनायटेड किंगडम, यु.एस.ए. और क्यूबा । शासक मंडल एक महा निदेशक (Director General) का चुनाव करता है जो इसका कार्यालय का काम देखता है । शासक मंडल का प्रधान कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय एवम् श्रम संगठन के अनेक भागों तथा समितियों के कार्यों की देखरेख करना है ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय संघ (I.L.O.) के सचिवालय के रूप में कार्य करता है । इसका प्रधान महा सचिव होता है । वर्तमान में इसका प्रधान कार्यालय जेनेवा में स्थित है ।

श्रम संघ के कार्य और उसकी सफलताएँ—सामाजिक न्याय पर ही विश्वास निर्भर करती है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रमिक मानिक एक सरकार के प्रतिनिधि मिसकर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की नीतियों एवं कार्यों की देखरेख करते हैं । इस प्रकार इस संगठन का विश्वीय स्वरूप अतिरिक्त है ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रमुख कार्य और उसकी सफलताएँ निम्नानुसार हैं—

(१) इसका एक प्रधान कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक समझौतों (Conventions) व सिफारिशों के रूप में विभिन्न प्रकार की श्रम-सम्बन्धी दशाओं के अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक मानकों (Standards) का निर्माण करना है । संगठन के सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे अपनी सरकारों से इन समझौतों का अनुमोदन (Ratification) करवा कर इन्हें कानून का रूप प्रदान कर प्रयत्न करेंगे । वे श्रम कार्यालय को इस बात की रिपोर्ट भी देंगे कि इनका पालन कहां तक हो रहा है । स्पष्ट ही यह वर्तमान इस नवीन सिद्धान्त का परिचायक है कि सब की केवल सवस्यता मात्र ही कुछ ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय उत्पन्न कर देती है जो केवल औपचारिक नहीं है ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में अब तक सौ से भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समझौतों (Conventions) की (जिनमें से ६३ इस समय लागू हैं) स्वीकार किया है तथा जिनका मं इस संगठन के प्रधान कार्यालय में समझौतों की १००० संपुष्टियाँ (Ratifications) जमा हो चुकी हैं । इसके अतिरिक्त विभाग निर्देशन के रूप में १११ से ऊपर सिफारिशें भी की गई हैं । कुछ समझौतों या कन्वेंशनों में समुदाय-स्वतंत्रता के अधिकार, दिन में ८ घंटे काम करने की सुरक्षा व सर्वोच्च प्रवृत्तता की बात है तो कुछ में बालकों और स्त्रियों के लिए कठोर श्रम खानों में स्त्रियों को काम पर लाने तथा

बपार लेने अपना अपना काम को बतित किया गया है। उपरोक्त प्रकार के समझौतों व सिफारिशों को सम्मिलित रूप से 'अन्तर्राष्ट्रीय धम संहिता' (International Labour Code) कहा जाता है।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय धम संयुक्त धमिकों की द्वाया सुधार के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक अनुसन्धान करना है धोकड तथा रिपोर्ट प्रकाशित करता है। यह अमेरिका एशिया और यूरोप में समय-समय पर क्षेत्रीय अधिवेशन बुलाता है और विश्व के प्रबान उद्योगों के सम्बन्ध में सरकार धमिक और मानिकों के त्रिदलीय सम्मेलन धामधित करता है।

(३) यह विभिन्न देशों को प्राबिक सहायता (Technical Assistance) प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करता है। इस तरह धमिकों मानिकों और सरकारों को यह स गठन सिखलाता है कि किस तरह धमिक व धमका मान उत्पादित किया जाये।

(४) यह विभिन्न देशों को जीवन स्तर उधा करने मजदूरों की समता बढ़ने केकारी को रोकने धारि के बारे में परामर्श देता है। यह कारिता सामाजिक सुरक्षा औद्योगिक सुरक्षा स्वास्थ्य धारि के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों को धिये मये इसके परामर्श धत्यन्त उपयोगी मिड हुए है।

(५) धमिक संयुक्त सरकारों के उन नियमों को जिनके कारण धने बसे हुए देशों से धस्य विकसित देशों में बड़ी धनिक बहिर् की कमी हो धमिकों के जाने में बाधा पड़ती है हटव न में भी सहायता करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय धम संयुक्त धमिकों के धनेवा कार्यालय के धर्मचारी मजदूर व स मार मार में उसके नाबा-कार्यालयों के प्रमुख को महानिदेशक कहते हैं। इसका स्वाई कार्यालय धनेवा में है और क्षेत्रीय कार्यालय (Field offices) एशिया के लिए बंगलौर (भारत) में दक्षिण अमेरिका के लिए लाभा (पेरू) में मध्य अमेरिका के लिए मेक्सिको नगर में और मध्य पूव के लिए इन्तम्बुन में है।

अन्तर्राष्ट्रीय धम संयुक्त धमिकों के धनेवा समितियों में सहायता भेता है। किसी उद्योग विधेय की नाम त्रिक व प्राबिक समस्याधो के निराकरण में धम धौद्योगिक समितियाँ सहायता पहुँचाती हैं व धम्य सहायक धम संयुक्त का काम धने धनाने हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि विश्व में धमिकों का जीवन-स्तर उधा उठाने में धम संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नाना उद्योगी धर्म करके इसने धमके मजदूर में कृति ही की है। एन एन कौस (N N Kaul) के बर्धों में 'अन्तर्राष्ट्रीय धम संघ' में धमनी स्थापना मात्र से धम त्रिक ध्याव को धनिकधम की महर्तों और प्रतिक्रियाबाध के प्रमुख में बन्धन मुक्त कर दिया और विश्व के धम-करण को धम्य कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय धम संघ के संधिधम में उन धमिकों को बल प्रदान किया है जो उन धम-धमियों को धुधारने का प्रयत्न कर रही थी जिनमें धमिक धर्म धर्म कर रहा और जीवन धामन कर रहा था तथा इसने विरोधी ज-धमों का धुध करने में मरव की है।"

खाद्य एवं कृषि संगठन

(Food and Agriculture Organisation—F.A.O.)

स्थापना.—यह संगठन की स्थापना संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंतर्गत १९४५ में तृतीय महायुद्ध के बाद सबसे पहले हुई।

संगठन—यह संगठन के तीन प्रमुख घटक हैं—सामान्य सभा (General Conference) कार्यकारिणी परिषद तथा कार्यालय। संगठन का नियंत्रण सामान्य सभा द्वारा होता है जिसमें ७७ सदस्य राष्ट्रों का एक-एक प्रतिनिधि होता है। सभा की प्रति दो वर्ष में एक बैठक अवश्य की जाती है। सदस्यों में से प्रत्येक का एक वोट होता है। सभा के विशेष अधिवेशन कम-से-कम एक तिहाई सदस्यों की प्राप्ति पर या 'कृषि एवं खाद्य संगठन की परिषद' (कार्यकारिणी परिषद) के आदेशों पर बुलाया जा सकता है।

कार्यकारिणी परिषद में सामान्य सभा द्वारा चुने हुए २४ राष्ट्रों के सदस्य होते हैं। इसका एक महा निदेशक (Director General) होता है। इस सभा का कर्मचारी वर्ग पाँच तकनीकी विभागों में विभक्त है—(a) कृषि (Agriculture) (b) अर्थ और सामर्थ्यकीय (Economics and Statistics) (c) मत्स्य पालन (Fisheries) (d) वन्य [Forest], [e] प्राणिक [Nutrition]। कार्यकारिणी परिषद ही सभा के अधिवेशनों के बीच नियंत्रण प्रय की तरह कार्य करती है।

संगठन का मुख्य एवं स्थाई कार्यालय रोम में है। इसके अतिरिक्त ब्राजिलियन काहिरा बैंगलोर मेक्सिको सिटी रियो डि जेनेरो व सेण्टियागो में प्रादेशिक कार्यालय हैं व कई विस्ती में एक सूचना कार्यालय व संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रधान कार्यालय न्यूयार्क में सम्पर्क व सूचना कार्यालय हैं।

उद्देश्य एवं कार्य—खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रमुख उद्देश्य ये हैं—
 १. खुराक के स्तर को ऊँचा करने में राष्ट्रों की मदद करना समस्त देशों के लोगों की खुराक को उन्नत करना कृषि उत्पादन व मछली पालन की क्षमता को बढ़ाना प्राथमिक लोगों की हासत को प्रबुद्ध करना व इन सब साधनों के जरिये उत्पादन काम के लिए समस्त लोगों के अवसर व्यापक करना।

खाद्य एवं कृषि संगठन का प्रथम कार्य खाद्य तथा कृषि सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन और अनुसन्धान करना विश्व में खाद्य सामग्री एवं कृषि की परिस्थितियों का निरीक्षण करना विभिन्न सरकारों को इस विषय में सहायक बनाना तथा मावी समाजताओं की सूचनायें देना आदि है।

कृषि वन-उत्पत्ति और मछली पालन आदि के बारे में गिनगिनित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय कार्य करने हेतु यह संगठन अपनी सहायिकायें देता है—

- (i) खाद्यान्नों वन्य सम्पत्ति तथा मछलियों का उत्पादन बढ़ाना तथा इसके विषय की उन्नत व्यवस्था करना।
- (ii) बीबल-पालन और पोषण के स्तर को उन्नत करना।
- (iii) अपने कार्य क्षेत्र में शिक्षण एवं प्रशासन सुधार करना।
- (iv) प्राकृतिक साधनों का संरक्षण करना।

(v) भूमि धारण व्यवस्था की विभिन्न पद्धतियों में सुधार और कृषि के लिए साख का प्रबन्ध करना ।

यह संगठन प्रार्थना करने वाली सशक्त सरकारों को प्राविधिक सहायता देता है। भ्रष्ट विनियमनों के राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमों में सहायता देने के लिए अपने विशेषज्ञ भेजता है । समान समस्याओं में रुचि रखने वाले देशों प्रकवा किसी क्षेत्र विषय के देशों के मध्य (या उसके सरस्य हों) सामूहिक कार्यवाही को प्रोत्साहन देता है ।

खाद्य एवं कृषि संगठन की सफलताएं (Achievements)—खाद्य एवं कृषि संगठन ने अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है । इसने राष्ट्रीय पोषण-सेवाओं की स्थापना व टिड्डी वस-निरोधी धमियाओं में सहायता पहुंचाई है । इनके भारत में चावल के पनुसंधान का एक केंद्र स्थापित किया है । उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र की कृषि घास बनाने में सहायता दी है । इंडोनेशिया में इसकी सहायता से मछली और चावल का उत्पादन बढ़ा है । इसके कारण ही वार्डनैंग और ईटा में कृषि की लचीन विधियों का प्रचार हुआ है । मध्य एवं सुदूर पूर्व भागों पशुओं को व तक बीमारियों से बचाकर इस संगठन ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है । इसने पशुओं का संहार करने वाली बीमारियों के प्रतिकार दूक है । इस संगठन ने यूनान आटेमाता फिलिपाइन द्वीपसमूह और वार्डनैंग में पोषण की समस्याओं का अध्ययन किया है । यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका में इमारतों लकड़ी का उत्पादन बढ़ाने में सहायता दी है और कृषि सतत्याजों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया है । खाद्य और कृषि के क्षेत्र में अनेक देशों को पठमर्ल एवं तकनीकी सहायता देकर तथा प्रतिवर्ष विश्व खाद्यान्नों का सर्वेक्षण (World Food Survey) करके इस क्षेत्र में इसका बड़ा योग्य पहुंचाया है । इसके द्वारा बुनियादी प्राथमिक साधनों को समुचित करने और उत्पादन के विकसित तरीकों का प्रयोग करने पर विशेष रूप से बल दिया गया है ।

(१) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

(International Monetary Fund—I.M.F.)

जुलाई १९४४ में संयुक्त राष्ट्र का एक वित्तीय सम्मेलन ब्रिटेन लुइस में हुआ । अमेरिका के अन्तर्गत राष्ट्रपति रूथवस्त द्वारा आयोजित इस सम्मेलन में ४५ देशों ने भाग लिया और इसी में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना का निर्णय लिया गया । इस निर्णय के अनुसार २० दिसम्बर, १९४६ को इस संस्था की स्थापना हुई ।

संगठन—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष-क प्रमुख अंग ४ हैं—(i) गवर्नरों का बोर्ड (Board of Governors) (ii) कार्यकारी निदेशक (Executive Directors) (iii) प्रबन्धकर्ता निदेशक (Managing Director) एवं (iv) कर्मचारी बग (Staff) ।

११ दिसम्बर, १९६५ तक १२२ राष्ट्रों ने इसकी सदस्यता स्वीकार की जब यह संस्था बंद कर १०१ हुआ गई है ।

कोष के मुख्य कार्य धारि—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रत्येक सदस्य

के लिए एक कोटा निर्धारित है और उसी कोटा के हिसाब से उस देश को मत देने का अधिकार प्रांका जाता है तथा यह निश्चय किया जाता है कि कितनी राशि की विदेशी मुद्रा वह कोय से विनिमय कर सकता है। कोटा क बराबर ही राष्ट्र का योग होता है जिसका भुगतान कुछ पण स्वयं में उभा जय उसे अपनी मुद्रा में करता होता है। कोटा की राशि १००,००० डॉलर से लेकर २७१००,०००० डॉलर तक की जाती है। १९५८ के प्रथम तक 'कोय' की कुल मात्रा १२ परब २१ करोड़ १४ लाख डॉलर की जितम घब 'परपनि' बृद्धि हो गई है।

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रों में मुद्रा सम्बन्धी सहयोग बढ़ाना विनिमय में स्थिरता लाना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रसार में सुविधायें प्रदान करना उत्पादन में बृद्धि करना तथा सदस्यों को प्राथिक सहायता प्रदान करना प्रादि हैं।

'कोय' अपने ३ प्रमुख सैद्धान्तिक तरीका द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करता है।

(१) अपने सदस्यों की अल्पकालीन धनबा मध्यकालीन भुगतान-कठिनाइयों का सामना करने के लिय उचित मुद्रा के अन्तर्गत अपने विदेशी मुद्रा-विनिमय साधनों को उन्हें उपलब्ध करके

(२) प्रायना किये जाने पर सदस्यों को उनकी प्राथिक एवं मौद्रिक समस्याओं के समाधानार्थ विशेषज्ञों एवं तकनीकीयों की सेवाएँ प्रदान करन और

(३) विश्वीय एवं मुद्रा विनिमय के मामलों पर बराबर तथा पूरा व्यापार विनिमय करके।

सदस्यों की प्रायना पर यह संस्था कुछ शर्तों के प्राधीन सदस्य-ओं की मुद्रा के बदले विदेशी मुद्रा का विनय भी करती है। इस संस्था का यह प्रमुख प्रयान रहता है कि वह सदस्यों के मुद्रा संचय को स्तर तक कायम रख सके ताकि वह संचय उन सदस्यों के लिए सदैव उपलब्ध हो सके जो अस्वाइ रूप से विदेशी भुगतान-कठिनाइयों का सामना कर रहे हों।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा काय में एक एक विश्वीय मामलों के प्राधिपतियों का जो स्टाफ रता, हुषा है वह अत्यन्त प्रवीण है तथा सचठन एवं सगठन के सदस्यों की समस्याओं को एकत्र करके उससे सम्बन्धित हाल की सूचनाओं का विश्लेषण करता है। इस सगठन अथवा संस्था द्वारा सदस्य देशों का प्रामक्षण पर सिष्ट महत्त्व भी देये जाते हैं। यह संस्था इस बात के लिए असाहित करती है कि प्रत्येक सदस्य के साथ उसका उसकी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वीय मिति के बारे में सलाह-महविग हो, अर्थात् सम्बन्धित समस्याओं के बारे में सभी सदस्यों के विचार एक साथ प्रस्तुत किये जायें। संस्था का यह कस्तव्य है कि वह अपने प्रत्येक सदस्य को विश्व की प्राथिक स्थितियों के परिवर्तन की सूचनाओं से नियमित रूप से अचगत रहे।

'कोय' अर्थात् संस्था (I.M.F.) ने विभिन्न सरकारों को उनकी मुद्राओं के सोने तथा डॉलर में विनिमय दर निश्चित करने में सहयोग प्रदान

किया है तथा विनिमय सम्बन्धी व्यवहार में ध्यान बासी बाजारों को दूर किया है।

कोयल का प्रधान कार्यालय वाशिंगटन डी० सी में है।

(४) पुनर्निर्माण और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक
[International Bank for Reconstruction and
Development-IBRD]

ब्रिटनबुद्ध सम्मेलन बुनाई १९४४ में लिये गए निर्णय के अनुसार ही इस संस्था का उद्भव हुआ और इसने अपना नाम जून १९४६ में प्रारम्भ किया। इस संस्था का मुख्य कार्यालय भी वाशिंगटन में ही है और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य होने पर कोई भी राष्ट्र इसका भी सदस्य हो सकता है। इस बैंक को विश्व बैंक [World Bank] के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

संरचना— इस विकास बैंक के प्रमुख भाग ५ हैं।

- (i) यवनेरों का बोर्ड (Board of Governors)
- (ii) कार्यवाहक निर्देशक (Executive Directors)
- (iii) अध्यक्ष (President)
- (iv) अधिकारी वर्ग (Officers) एवं
- (v) कर्मचारी वर्ग (Staff)।

दिसम्बर १९६५ तक इस संस्था के ५१ सदस्य थे। अब यह संस्था बढ़ कर १०३ हो गई है।

पूजी उद्देश्य एवं कार्य— प्रारम्भ में बैंक की अधिकृत पूंजी (Authorized Capital) एक हजार मिलियन (१० बिलियन) डॉलर थी। ३१ दिसम्बर १९६३ में यह बढ़ कर २२ मिलियन (२२ बिलियन) डॉलर हो गयी है।

विश्व बैंक के समझौते की धारा १ के अनुसार इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) विश्व बैंक का प्रथम मुख्य उद्देश्य विभिन्नित सदस्य देशों की धर्म-व्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण कार्य में वित्तीय सहायता देना तथा प्रतिक्रित सदस्य राष्ट्रों को पर्याप्त मात्रा में मौद्रिक व भौतिक सहायता प्रदान करके इन देशों के तीव्र आर्थिक विकास को संभव बनाना है।

(२) विश्व बैंक का दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत तथा संस्थागत निवेशकर्ताओं को उनके देशों के मुद्राओं की गारंटी देकर जबकि उनके साथ निवेशकर्ता के रूप में सम्मिलित हो कर सदस्य देशों में व्यक्तिगत तथा धर्म संस्थागत ऋण पूंजी का विस्तार करना है।

(३) विश्व बैंक का तीसरा प्रमुख उद्देश्य संसार में मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्थायी व सुलभ विकास में सहायता प्रदान करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय निवेशकर्ताओं को उत्पादक सामानों के विकास के लिए प्रोत्साहन देकर इन देशों में उत्पादन रोकथाम, धाय तथा जीवन स्तर में वृद्धि करना है।

(४) विश्व बैंक का चौथा प्रमुख उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों में आर्थिकीय धर्म-व्यवस्था की स्थापना के लिए समुचित दबाव उत्पन्न करना है।

विश्व बैंक सदस्य देशों को सामान्यतया निम्नलिखित रूपों में ऋण सहायता प्रदान करता है—

[i] अपनी पूंजी में से प्रत्यक्ष ऋण लेकर अपना किसी अन्य संस्था के साथ ऋण देने की श्रिया में भाग लेकर

[ii] ऋण की राशि को सदस्य अपना अन्य देशों के मुद्रा बाजारों में प्राप्त करके

[iii] व्यक्तिगत निवेशकर्ताओं द्वारा प्राप्त होने वाले ऋणों के सम्बन्ध में ऋण तथा व्याज के भुगतानों की मरती देकर।

ऋण देने परवा ऋण क भुगतान की गारंटी करने के पूरा बैंक मंत्री प्रकार की धारक्यक बांध पड़तास करती है। 'साधारणतः' बैंक सदस्यों का उत्पादक योजनाओं के विकास के लिए दीयकवासीन तथा सम्भकासीन ऋण सहायता देता है।

बैंक की उपयोगिता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इसके द्वारा ३० सितम्बर १९६१ तक को २० वर्षों की अवधि में प्रदान दिये गये ऋणों की राशि ६ ००० ८ मिलियन डॉलर है जो लगभग ८० बिलियन उपार ळी देशों में लगभग ४३० ऋणों के रूप में फैली हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और भारत—भारत को विश्व बैंक ने अब तक अनेक विकास-कार्यों के लिए ऋण प्रदान किये हैं। इनमें से प्रमुख कार्य जिनके लिए ऋण दिये गये थे हैं— [i] रेलों के इन्जनों की लरीय नरमा [ii] जपसों की भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा ट्रेक्टर कुसडोजर प्रादि कृषि उपकरण खरीदना [iii] बामोवर बाटी की बाकारो कोनार योजना की पूर्ति करना [iv] एयर इन्डिया इन्टरनैशनल द्वारा नये हवाई महान् करीबना [v] प्रावरल स्टील कम्पनी तथा टाटा प्राइरल कम्पनी का विस्तार व प्राधुनिकरण करना [vi] ट्राम्बे में बिजली के लिए बर्मल प्लांट लगाना [vii] विभिन्न बांध बनाना और बन्दरगाहों तथा रेलों प्रादि का विकास करना।

भारत विश्व बैंक की सहायता के कारण अपने आर्थिक विकास में अत्यन्त उपयोगी सहायता प्राप्त कर सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ

(The International Civil Aviation Organization-ICAO)

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ ने अन्तरिम रूप से अगस्त १९४५ में काम करना शुरू किया किन्तु ४ अगस्त १९४७ से यह एक स्थायी संघटन में बदल दिया गया। इसका मुख्य कार्यालय कनाडा में मोन्ट्रियल (Montreal) नगर में है।

संघटन - इसका संघटन इस प्रकार है—

(i) समान—इसमें ७४ राष्ट्रों के प्रतिनिधि हैं। यह तमाम ही संघटन की शारा बना है।

(ii) कौंसिल—इसमें समान द्वारा निर्वाचित २१ राष्ट्रों के प्रतिनिधि होते हैं। इसका चुनाव करते समय समान यह ध्यान रखती है कि इसमें ऐसे देशों को भी प्रतिनिधित्व मिले जो हवाई यातायात से विशेष महत्त्व रखते हैं।

सभी छोटे बड़े देश और समुक्त राष्ट्र मंत्रीय संरक्षित प्रदेश इस सब के सदस्य हैं। मई १९६५ तक ही सब को सदस्य संख्या १२७ हो गई थी।

इस संस्था के मुख्य प्रश्न इस प्रकार हैं—विश्व डाक काँग्रेस [Universal Postal Congress] कार्यकारणी एवं सम्पर्क समितियों [Executive and Liaison Committees] डाक अध्ययन पर परामर्शदात्री समिति [Consultative Commission on Postal Studies] एवं अन्तर्राष्ट्रीय ब्यूरो [International Bureau]। विश्व डाक काँग्रेस की बैठक धार्मतीर से पांच वर्ष बाद होती है। यह सदस्य देशों के मुख्यों के ध्यान पर विश्व डाक मंत्रि परिषद के सहायक समझौतों पर विचार करती है। यही कार्यकारिणी समिति का चुनाव करती है जिसमें २० सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी परिषद सम्पर्क समितियों समुक्त राष्ट्र मंत्रि तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों से सम्बन्ध कायम करने समाह-महबिरे करने डाक समस्याओं का अध्ययन करने और काँग्रेस से तिकारिने करने का काम करती है।

विश्व डाक सब द्वारा १९६५ में पहली बार विकसित देशों के बहुत से डाक अधिकारियों को विकसित देशों में प्रतिस्थापन के लिए भेजा गया। इस सब ने अनेक भव्य विकसित एवं पिछड़े हुए देशों को डाक-सेवा विधेयकों की सेवायें प्रदान की हैं और कानों बलुण्डन में डाक व वित्तीय सेवाओं के पुनर्गठन में सहायता प्रदान की है। सोमालिया में डाक कानूनों और डाक बरों के कार्य को पूरा करने के लिए डाक-मंत्र के विधेयक कार्यरत हैं।

(११) अन्तर्राष्ट्रीय दूर-संचार संघ

(The International Tele-Communications Union-ITU)

अन्तर्राष्ट्रीय दूर-संचार संघ बहु संगठन है जिसके अन्तर्गत अनेक अन्तर्राष्ट्रीय दूर-संचार को नियमित करते हैं। इस संगठन की स्थापना द्वितीय महायुद्ध के पूर्व १९३२ में हुई थी। युद्ध के बाद १९४७ में घटनात्मक नगर में इसका पुनसंगठन किया गया। १० जनवरी १९४९ को समुक्त राष्ट्र संघ ने इस संस्था से सम्बन्धित करके इसको भी अपने कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया।

संचार संघ का मुख्य कार्यालय जेनेवा में है। विश्व के लगभग सभी छोटे-बड़े राष्ट्र इस संघ के सदस्य हैं। १९६५ में ही इसकी सदस्य संख्या १२७ हो चुकी थी।

संगठन—इस संघ का संगठन इस प्रकार है—

(i) पूर्ण अधिकारों से सम्पन्न एक सम्मेलन इस संघ का सर्वोच्च संघ है। सम्मेलन की बैठक धार्मतीर पर पांच वर्ष में एक बार होती है।

(ii) एक प्रशासकीय सम्मेलन है जिसके अधिकारधन धार्मतीर से पूर्ण अधिकार से सम्पन्न सम्मेलन के साथ-साथ ही होते हैं।

(iii) एक प्रबन्ध व्यवस्था कार्यकारी परिषद है जिसमें पूर्ण अधिकार सम्पन्न सम्मेलन द्वारा निर्वाचित संघ के १५ सदस्य होते हैं। इन सदस्यों के निर्वाचन में अतिशय प्रौद्योगिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा जाता है। परिषद की बैठक धार्मतीर पर पांच वर्ष में एक बार होती है। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर

मा एक सदस्यों द्वारा प्रयोजना क्रिय जाने पर अधिक बैठकें भी युगायी जा सकनी हैं। एक परिषेसन ममाप्ट होने से दुसरे परिषेसन के शुरू होने तक परिषद ही पूर्ण अधिकार सम्पन्न सम्मान की घोष है काम-आज भताती है।

(iv) सञ्चार सभ का एक सामान्य सञ्चिबासय है जो केनेबा म स्थित है। सभ में एक अन्तर्राष्ट्रीय रेडिओेशन बोर्ड वीर ठार, टेसीफोन व रेडियो सम्बन्धी सनाहकार समितियाँ भी हैं।

उद्देश्य एवं कार्य — अन्तर्राष्ट्रीय दूर-सञ्चार सभ के प्रमुख उद्देश्य तीन हैं—

प्रथम दूर-सञ्चार के साधनों को विकसित करने तथा उनके सदुपयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग को स्थिर रखना तथा इनका विस्तार बढ़ाना।

द्वितीय उपरोक्त साधनों की उपादेयता को बढ़ाने के लिए इनके विकास को प्रोत्साहन देना।

तृतीय दूर-सञ्चार सम्बन्धी प्राविधिक सुविधाओं को यथासंभव सभी राष्ट्रों को उपलब्ध कराना ताकि समान सरवों को प्राप्ति की जा सक।

दूर-सञ्चार सभ की ठार व टेसीफोन सनाहकार समिति टेसीफाफी केजिमिन व टेसीफोन सम्बन्धी सञ्चालन और दूर सम्बन्धी सवासों पर अध्ययन तथा सिफारिशें करती है। रेडियो सनाहकार समिति रेडियो-तकनीकों और इन सञ्चालन सभों जिनका निराकरण विशेषतय प्राविधिक मुद्दाओं पर ही निर्भर है के बारे में अध्ययन एवं सिफारिशें करती है।

इस संस्था न बर तक सेक्रेटो विशेषज्ञ अधिकारित तथा विद्युद्दुष्ट देशों को भेजे हैं और इन देशों को प्रतिक्षण-सामग्री भी प्रदान की है।

(१२) विश्व श्रुतु विज्ञान सभ

(World Meteorological Organization—WMO)

विश्व श्रुतु विज्ञान सभ उस अन्तर्राष्ट्रीय श्रुतु विज्ञान सभठन का उत्तराधिकारी है जो १९७० में अपने सदस्यों के मध्य मौसम-सुखमा-संवाधों में तासमेस स्थापित करता रहा है। इस सभ की स्थापना २३ मार्च १९४० का दुर्द और मधुक्त राष्ट्र सभ के साथ सम्बद्ध विशेष एजेन्टी के रूप में इसका प्रादुर्भाव २० दिसम्बर, १९४१ को हुआ। तभी से इस सभठन का काय-जय सधुक्त राष्ट्र सभ के सभन कार्य क्रम में सम्मिलित हो गया है।

विश्व श्रुतु विज्ञान सभ के सदस्य वे सब राज्य व प्रदेश हैं, जिनकी अपनी स्वतन्त्र मौसम-संवाध है।

सभठन—इस सभ का सभठन सक्षेप में निम्नलिखित रूप से है—

(i) एक विश्व श्रुतु विज्ञान कांग्रेस है जिसमें सभ के समस्त सदस्य राष्ट्रों की ओर से श्रुतु विज्ञान व्यवस्थाओं के बध्यल प्रतिनिधित्व करते हैं। सभ की प्रति सभ वर्ष में कम से कम एक बैठक अवश्य होती है। कांग्रेस श्रुतु विज्ञान सम्बन्धी प्रणालियों और कार्य-विधियों के बारे में प्राविधिक नियम स्वीकार करती है तथा धाम नीति का निर्धारण करती है।

(ii) एक प्रथम सभका कार्यकारी समिति है जो कांग्रेस के प्रस्तावों के पासन की देखरेख करती है। यह इन मामलों में सिफारिश करती है जिन

पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कदम उठाना आवश्यक हो। सरस्यों को प्राथमिक जानकारी परामर्श व सहयोग देने का काम यह मिति करती है। वष में कम से कम एक बार इसकी बैठक का होना आवश्यक है। इसके सदस्य हैं—विश्व अणु विज्ञान संघ के प्रधान तथा उन प्रधान संघ के अणु विज्ञान सम्बन्धी छा: प्रादेशिक अणु विज्ञान—एनोर्गिज्बना के प्रधान एवं स. निर्वाचित सदस्य।

(1b) संघ का एक सचिवालय हो और प्राथमिक घावोग भी।

छ. प्रादेशिक अणु विज्ञान एसोसियेशन कमन वेलथ्का एशिया वसिख अमेरिका उत्तर व मध्य अमेरिका यूरोप एवं दक्षिण-पश्चिम प्रशांत के लिए हैं। संघ का मुखिया एक महासचिव होता है जिसका प्रथम कार्यसम बेनेवा में है।

उद्देश्य एवं कार्य—विश्व अणु विज्ञान संघ के उद्देश्य एवं कार्य ये हैं—

(i) संसार की अणुविज्ञानीय क्रियाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना उनका प्रमाणीकरण करना।

(ii) अणु विज्ञान सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्थाओं के लिए क इ रूप में कार्य करना और उन्हें ठीक ठाक रखना।

(iii) मौसम की जानकारी के तैजी से आदान-प्रदान के लिए प्रावश्यक व्यवस्था करना और उसे सुव्यवस्थित रखने में योग देना।

(iv) अणु विज्ञान के क्षेत्र में सम्बन्ध तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहन देना।

(v) विमान संचालन अहाजरानी कृषि एवं अन्य मानवीय उपयोगों में अणु विज्ञान से प्राप्त उठाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना।

प्राथमिक महायत्ना कम से विश्व अणु विज्ञान संघ का सम्बन्ध राष्ट्रीय अणु-सेवाओं और अणु विज्ञान के कनि स्वास्थ्य तथा यातायात जैसे क्षेत्रों से रहता है।

(१३) अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी

(International Atomic Agency)

अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी एक महीनतम अन्तर सरकारी समठन है। अमेरिका के मूवपूर्ण राष्ट्रपति आइजनहोवर द्वारा दिसम्बर १९५१ का संयुक्त राष्ट्र महीन महासभा के सामने दिखे गये एक भाषण में इस परमाणु इति एजेंसी का अन्तर्गत सामने आया और अतिरिक्त रूप से २९ जुलाई १९५७ को इसकी स्थापना हुई। इनका स्थापना मयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत में की गयी।

उद्देश्य एवं कार्य—इस एजेंसी की स्थापना का उद्देश्य परमाणु के शान्तिमय उपयोग का और धामे बढ़ाना था। यह शान्तिमय उपयोग के लिए परमाणु सम्बन्धी अनुसंधान में सहायता पहुंचाती है। इस बात के विकास और सके काम में सान में सहयोग देती है। एजेंसी वज्ञानिक तथा प्राथमिक भूचनार्थों के आदान-प्रदान में योग देती है और वैज्ञानिकों का प्राथमिक एवं आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करती है। इस रूप में एक मध्यस्थ का काम

